मत्स्य महापुराण

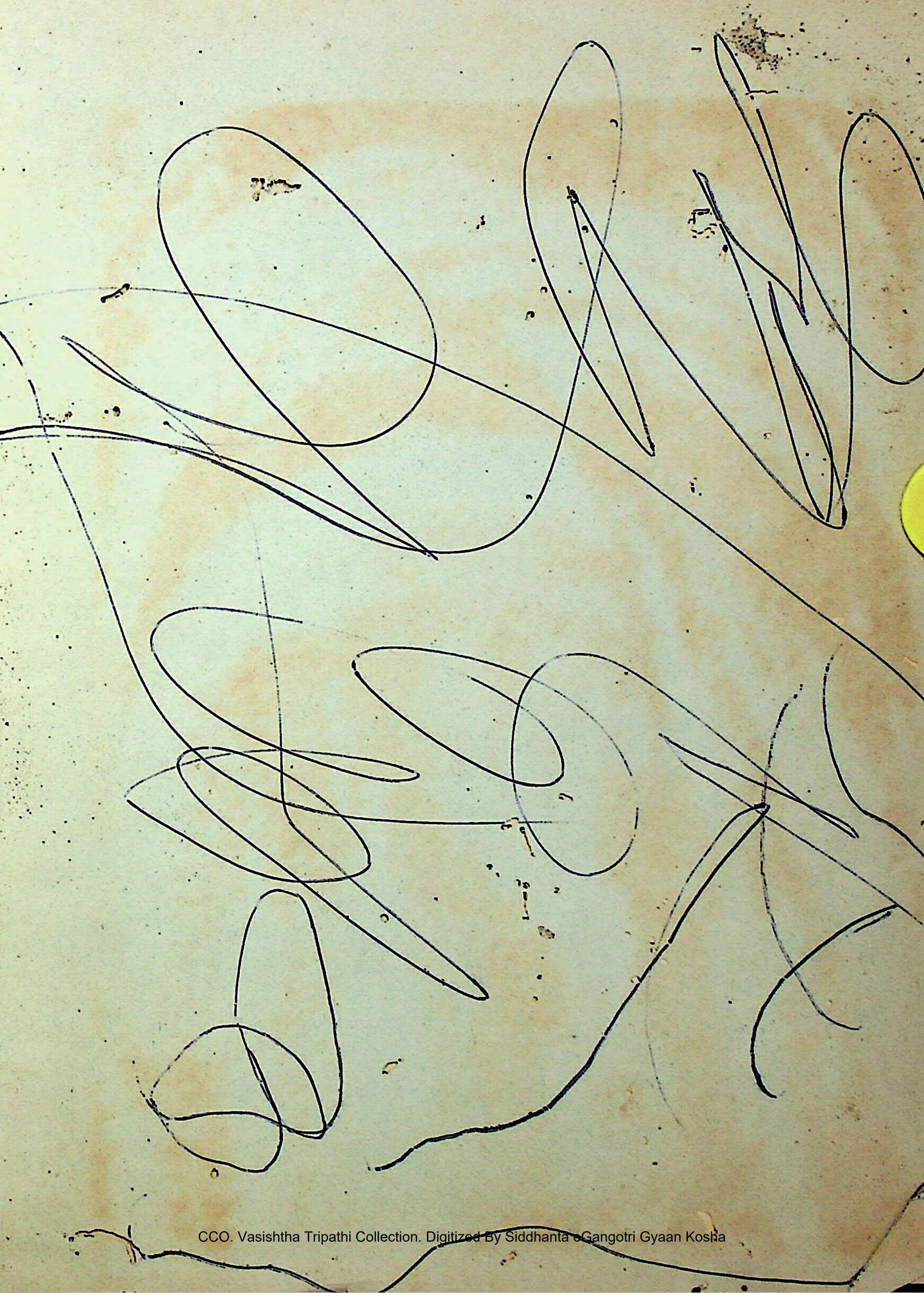
अनुवादक

श्री रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री



संवत् २००६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग



प्राक्कथन

मानव स्वभावतः अपने अतीत के प्रति आस्था रखता है क्योंकि उसके द्वारा वर्तमान एवं भविष्य में उसे अधिक लाभ की सम्भावना रहती है। अपने ही जीवन की अतीतकालिक स्मृतियों को वह परम सम्मान एवं स्नेह की दृष्टि से देखता है। भले ही उनमें कष्ट के कण्टक अथवा सुख के सुमन हों; पर कालान्तर में वे दोनों समान सुखदायिनी हो जाती हैं। जब अपने ही जीवन का अतीत-स्मरण एवं चिन्तन आनन्ददायक होता है तो अपने पूर्वजों के अतीत को जानने की उत्कट अभिलाषा किस सहृदय को न होगी। प्राचीन काल में जब कि आज की तरह सब प्रकार के साधन ही नहीं प्रत्युत विचारों को मूर्त रूप देनेवाली लिपि का भी अस्तित्व नहीं था, तब लोग यथासम्भव सभी बातों को स्मरण रखते थे, अपने गुरुजनों से सुनते थे और अपने से छोटों को सुनाते थे। आज भी दस-बारह वर्ष तक की अवस्था के बालकों को नानी की कहानी में प्रेमचन्द और शरच्चन्द्र की कहानियों से अधिक आनन्द मिलता है। कहानियों एवं उपन्यासों की सहस्रों पुस्तकों के प्रकाशित हो जाने पर भी घूम-घूम कर किस्सा-कहानी सुनाने वालों की आज भी अच्छी संख्या है। वीर गाथात्मक आल्हा आदि की पुस्तकों के सैकड़ों संस्करण प्रकाशित होने पर भी आज वर्षा ऋतु में उसका गायक एक-एक दिन में चार-चार स्थानों पर बुलाया जाता है। सारांश यह कि उस पुरानी प्रथा का अवशेष आज भी भारत में जीवित है। पुराण इस देश की इसी परम्परा के अतीतकालिक चित्र हैं, यह दूसरी बात है कि उनमें आवश्यकता से बहुत अधिक चढ़ाव-उतार और रंगीनी आ गई है। व्यासों और सूतों की परम्परा ने उनके मूल स्वरूप को आवृत कर दिया है। हमारी अन्धश्रद्धा, भक्ति और रूढिपूजा ने अक्षत, जल, और पुष्प चढ़ा कर उन (चित्रों) को और अधिक विकृत कर दिया है। परिणामतः उनके उद्देश आज दूसरे हो गये हैं, वे सर्वसाधारण की दृष्टि में इतिहास न रहकर पूजा की वस्तु बन गये हैं। पुराणों की यह सामान्य प्रतिष्ठा उनकी दुर्दशा का कारण बनी है। आज का बुद्धिवादी विचारशील नवयुवक सिवा उपेक्षा एवं घृणा के उस ओर अपना एक क्षण भी देना नहीं चाहता। पाश्चात्य रीति-रस्म एवं वहाँ की अन्धपरम्परा के विषय में वह चाहे पचासों ग्रन्थ पढ़ ले, किन्तु अपने यहाँ के पुराणादि का एक पृष्ठ भी नहीं देखना चाहता। उसके मन में इस ओर से घोर प्रतिक्रिया के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। मनोरंजक चुटकुले, तिलिस्मी उपन्यास आदि सारहीन विषयों से भी वह पुराणों को गया बीता समझ बैठता है। हम कोसते हैं कि यह सब पश्चिमी सभ्यता का कुफल है। बात सत्य है; पर आंशिक। हमें विचारपूर्वक यह सोचना चाहिये कि उनके मन में इस घोर तितिक्षा का बीज कहाँ से पड़ा। पश्चिमी सभ्यता तो केवल जल-वायु का काम करती है। वह बीज पड़ता है, हमारे समाज की प्रचलित अन्धपरम्परामूलक विश्वसनीय रूढ़ियों से। जो आँख खोलनेवालों की आँखें बन्द कराती हैं, विचार करने को पाप बतलाती हैं, सच्चे जिज्ञासु को अविश्वासी एवं नारकीय की उपाधि देती हैं, आँख मूँदकर चलनेवालों को स्वर्ग-साम्राज्य, इन्द्र का महान् पद, सैकड़ों अश्वमेध का अवभृथ-स्नान करने की प्रमाण-पत्र बाँटती हैं। ऐसी भित्तिहीन अट्टालिकाओं पर विहार करने के लिए कोई विचारशील नवयुवक कैसे तैयार हो सकता है।

'पुराण' शब्द का सामान्यतया प्राचीनकाल की वस्तुओं अथवा कथाओं से तात्पर्य है। 'पुरा भवम्' अथवा 'पुरा नीयते' इस विग्रह से इसकी निष्पत्ति होती है, दोनों विग्रहों से उक्त अर्थ निष्पन्न होता है। प्राचीन आख्यायिकादि के एकत्र संकलन का नाम 'पुराण' है। स्वयं पुराणों में ही 'पुराण' के कई लक्षण दिये गये हैं। कोशकारों ने उनके इस मत को अपनाया है। जिनमें सर्वाधिक प्रचलित लक्षण यह है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

जिसमें सर्ग ईश्वर कृत सृष्टि (कारण सृष्टि), प्रतिसर्ग पुनः (कार्य) सृष्टि और लय, देवताओं एवं पितरों की वंशावली, समस्त मन्वन्तर (किस मनु का कब तक अधिकार रहता है) तथा वंशानुचरित (सूर्य-चन्द्र प्रभृति राजवंशों में उत्पन्न होने वाले राजाओं के संक्षिप्त वर्णन) पुराण के ये हो पाँच लक्षण हैं। इस लक्षण से सर्वांशतः घटित होनेवाले प्रायः अधिकांश महापुराण हैं, पर कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें सब लक्षण नहीं घटित होते। 'पुराण' शब्द का व्यवहार अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, तैत्तिरीयारण्यक, आश्वलायन गृह्य सूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनु संहिता, रामायण, महाभारत प्रभृति हिन्दू जाति के प्राचीनतम एवं सम्मान्य ग्रन्थों में किया गया है। पर यह विवादास्पद है कि उस समय भी 'पुराण' की यही परिभाषा थी। अथर्व संहिता के 'ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषाः सह', (अथर्व ११।७।२४) इस मत का 'ऋक्, साम, छन्द और पुराण ये साथ उत्पन्न हुए' यह स्फुट अर्थ है। वृहदारण्यक और शतपथ ब्राह्मण में एक स्थान पर यह वर्णन किया गया है कि 'जिस प्रकार गीले काष्ठ से उत्पन्न अग्नि से पृथक्-पृथक् धुआँ निकलता है, उसी प्रकार इस महान् भूत के निःश्वास से ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषत्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुव्याखान निकले हैं। ये सभी इसके निःश्वास हैं।' इसमें भी 'पुराण' का इतिहासादि से पृथक् कथन किया गया है। छान्दोग्योपनिषत् के 'स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।' (छान्दोग्य उ०७।१।१) इस वचन द्वारा इतिहास और 'पुराण' भी वेद समूह में पाँचवें वेद माने गये हैं। इसी प्रकार महाभारत और रामायण में भी पुराण शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। स्वामी शङ्कराचार्य ने वृहदारण्यक के भाष्य में 'पुराण' शब्द की व्याख्या की है। उनका कहना है कि 'वेदों में ऊर्वशी और पुरूरवा के कथोपकथन आदि ब्राह्मण भाग का नाम इतिहास और सबसे पहले एक मात्र असत् था इत्यादि सृष्टि के प्रक्रिया घटित वृत्तान्त का नाम पुराण है।' इसी प्रकार आचार्य सायण ने भी वेदों में आये हुए 'पुराण' शब्द की निरुक्ति करते हुए सृष्टि प्रक्रिया घटित वृत्तान्त को 'पुराण' माना है। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि अति प्राचीन काल में भी पुराणों का अस्तित्व था। वह बहुत बाद की रचना नहीं हैं। यह अन्य बात है कि कालान्तर में चलकर उनमें अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक परिवर्तन हुआ। उन प्राचीन पुराणों में क्या-क्या विषय थे, क्या-क्या विषय बाद में जोड़े गये, इसका निर्णय आज दिन किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता। शंकराचार्य एवं सायण की परिभाषा के अतिरिक्त महाभारत एवं रामायण में पुराणों का जो परिचय दिया गया है, उसमें सृष्टि-प्रक्रिया-घटित वृतान्तों के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी उल्लेख किया गया है। महाभारत के आदि पर्व में महर्षि शौनक ने कहा है—

पुराणे हि कथा दिव्याः आदिवंशाश्च धीमताम्।
कथ्यन्ते ये पुराऽस्माभिः श्रुतपूर्वं पितुस्तव। (महाभारत आदिपर्व ५।२।)

'पुराणों में दिव्य कथाओं एवं परम बुद्धिमान् व्यक्तियों के आदिवंशों के वर्णन हैं, जिन्हें मैं पूर्वकाल में (आप के पिता जी से) सुन चुका हूँ।' यही नहीं महाभारत के आदि पर्व में उन समस्त राजाओं की नामावलि है जिनके वंशवर्णन पुराणों में हैं। इसी प्रकार रामायण के बालकाण्ड के नवम् सर्ग से लेकर ग्यारहवें सर्ग तक वर्णित कथाओं को भी 'पुराण' संज्ञा दी गई है। इन बातों पर विचार करने से पता लगता है कि वेद काल से लेकर रामायण एवं महाभारत काल तक जो 'पुराण' प्रचलित थे, उनमें सृष्टि-प्रक्रिया-घटित वृत्तान्तों, दिव्य कथाओं एवं परम बुद्धिमान् व्यक्तियों के आदि वंशों का वर्णन था। 'पुराण' के अधुना प्रचलित 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च' इस उपर्युक्त लक्षण से इसकी समानता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि पुराणों का अस्तित्व वेदों से भी प्राचीन है। उसकी यह परम्परा मनुष्य जीवन के संस्कृत होने के साथ-साथ चली है। समय के अनुसार उनमें परिवर्तन होते आये हैं। इधर बहुत पीछे आकर इस परिवर्तन-पद्धति का क्या दुष्परिणाम हुआ, इसे हम आगे बतलायेंगे। किन्तु वैदिक युग में 'पुराण' का प्रचार रहने पर भी इस बात का कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता कि पुराण के रचयिता अथवा संकलयिता कौन थे? वेद मंत्रों की भाँति उनके ऋषियों या प्रवक्ताओं की कोई सूची या विनियोग नहीं है। केवल वृहदारण्यक उपनिषद्

के उपर्युक्त उद्धरण में इतिहासादि के साथ 'महान् भूत' के निःश्वास से केवल उत्पत्ति होने की चर्चा मात्र आती है। पर मनुसंहिता, आश्वलायन गृह्यसूत्र एवं महाभारत में 'पुराण' के अनेक होने का प्रमाण भी उपलब्ध होता है।

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ॥

(मनुसंहिता ३, २३२)

श्राद्धादि पितरों के उद्देश से सम्पन्न होनेवाले कार्यों में वेद, धर्मशास्त्र, पुण्य आख्यान, इतिहास, पुराण एवं खिल का पाठ पितरों को सुनाना चाहिये। इसमें 'पुराण' का बहुवचन प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार—

आयुष्मतां कथाः कीर्तयन्तो माङ्गल्यानीतिहासपुराणानीत्याख्यापयमानाः

(आश्वलायन गृह्यसूत्र ४।६)

उपर्युक्त उद्धरण में भी 'पुराण' के बहुवचन प्रयोग से उसके अनेकत्व की सिद्धि होती है। आज के उपलब्ध पुराणों में उनके विषय के सम्बन्ध में जो कुछ ज्ञात होता है, उसका सारांश यह है कि पुराण सर्वप्रथम एक था। उसी एक से धीरे-धीरे अठारह पुराण हुए। सत्यवतीनन्दन[1] (कृष्ण द्वैपायन) व्यास उन अठारहों पुराणों के सर्वप्रथम एकमात्र प्रवक्ता थे। इस सम्बन्ध में विष्णुपुराण का यह उद्धरण समीचीन होगा। प्रायः इसी आशय के वचन अनेक पुराणों में कुछ परिवर्तन के साथ आये हैं।

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहिता चक्रे पुराणार्थविशारदः ॥
प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत् सूतो वै लोमहर्षणः।
पुराणसंहिता तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः ॥
सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रायुः शांशपायनः।
अकृतव्रणोऽथसावर्णिः षट् शिष्यास्तस्य चाभवन्।
काश्यपः संहिताकर्त्ता सावर्णिः शांशपायनः।
लौमहर्षणिका चान्या तिसृणां मूलसंहिता ॥
चतुष्टयेनाप्येतेन संहिता नामिदंमुने।

(विष्णु पुराण, ३ अंश, ६ अ० श्लोक १६-१६)

'पुराणों के अर्थ को भली भाँति जाननेवाले सत्यवती सुत (कृष्ण द्वैपायन) व्यास ने आख्यान[2], उपाख्यान[3] गाथा[4] और कल्पशुद्धियों[5] द्वारा पुराण संहिता की रचना की, और उसे अपने सुप्रसिद्ध शिष्य सूत-कुलोत्पन्न लोमहर्षण को प्रदान किया। सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, शांशपायन, अकृतव्रण और सावर्णि—ये छ लोमहर्षण के शिष्य थे। इनमें से काश्यप (कश्यपवंशीय अकृतव्रण), सावर्णि और शांशपायन ने लोमहर्षण से प्राप्त मूल संहिता के आधार पर एक-एक पुराणसंहिता की रचना की। उक्त चारों संहिताओं का (सारांश) संग्रह कर (प्रस्तुत) पुराण-संहिता की रचना हुई।' इस उद्धरण से सर्वप्रथम एक पुराण के अस्तित्व का पता लगता है। उसका स्मरण सभी शास्त्रों के निर्माण के पूर्व ब्रह्मा ने किया, तदनन्तर उनके मुख से वेद निकले—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ॥

(मत्स्य पुराण अ० ५३ श्लोक ३)

---

[1]अष्टादशपुराणानां वक्ता सत्यवती सुतः (पद्मपुराण रेवाखण्ड।)
[2]स्वयं देखे गये विषयों का वर्णन। [3]कर्णपरम्परा द्वारा सुने गये विषयों का वर्णन, [4]पितरगण, परलोक अथवा अन्यान्य विभिन्न विषयों के गीत या अनुश्रुतियाँ। [5]श्राद्धकल्प आदि के निर्णय।

ऐसा वर्णन केवल मत्स्य में ही नहीं ब्रह्माण्ड प्रभृति कई पुराणों में किया गया है। जो हो, चाहे ब्रह्मा ने स्मरण किया हो अथवा उस महान् भूत के निःश्वास से वह आविर्भूत हुआ हो पर अति प्राचीन काल में उसका अस्तित्व था और वह संख्या में पहले एक था।

कई पुराणों में कृष्णद्वैपायन व्यास को वेद का भी चार विभाग करनेवाला बतलाया गया है, और इसी कारण से उनका नाम भी वेदव्यास अर्थात् वेदों का फैलाव करनेवाला कहा गया है'। इस कथन से यदि यह अनुमान किया जाय कि वेदों की तरह व्यास जी ने अपने समय में उपलब्ध पौराणिक सामग्रियों का भी एकत्र सङ्कलन किया था तो कोई आपत्ति न होनी चाहिए। पर यह मान लेना कि सभी पुराणों के एकमात्र कर्त्ता सत्यवती सुत व्यास थे, कई दृष्टियों से उचित नहीं प्रतीत होता। पुराणों की शैलियों के अतिरिक्त साम्प्रदायिक दृष्टियों से भी यदि विचार किया जाय तो इसकी निःसारता मालूम हो जाती है। शैव पुराण में शिव को सभी देवताओं एवं शक्तियों का स्वामी माननेवाला वैष्णव आदि पुराणों में शिव से भी अधिक महत्त्वशाली विष्णु आदि को किस प्रकार मानेगा? अथवा इस प्रकार उसकी इस बात में कौन मान्य है, कौन अमान्य है, इसका निर्णय किस प्रकार हो सकेगा? इसके अतिरिक्त एक ही कथानक, एक ही विषय, एक ही वर्णन कई पुराणों में समान रूप से मिलते हों सो तो है ही अक्षरशः अध्याय के अध्याय कई पुराणों में समान रूप से मिलते चलते हैं। एक ही बातों को सभी ग्रन्थों में अविकल रूप में रख देना स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता है। इन बातों से यह अनुमान और पुष्ट हो जाता है कि कृष्णद्वैपायन व्यास ने अठारहों पुराणों का प्रचार स्वयं नहीं किया होगा, उन्होंने संहिता के नाम से अपने समय तक उपलब्ध पौराणिक सामग्रियों का संकलन किया होगा और उसका अधिकार सूतवंशीय अपने शिष्य लोमहर्षण को दिया होगा। और बाद में चलकर लोमहर्षण की शिष्यपरम्परा ने लोक में उसका इतना बहुल प्रचार एवं प्रसार किया होगा। यहाँ पर एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि कृष्णद्वैपायन व्यास ने पुराणों के प्रचारादि का कार्य सूतवंशीय लोमहर्षण को क्यों सौंपा? वायु और पाद्मपुराण के कथन से इसका समाधान इस रूप में मिलता है कि 'सूतों का पुराण कहने (बाँचने) का अधिकार जन्म से ही है।' इस कथन का मूल कारण यह समझ पड़ता है कि जिस समय ब्राह्मणों का ध्यान विविध प्रकार की वैदिक संहिताओं, उपनिषदों, आरण्यकों आदि प्रशस्त आध्यात्मिक एवं धार्मिक ग्रन्थों के प्रचारादि की ओर था, उस समय उन्हें राजवंशादि के कीर्तन, पर्व, तीर्थ, त्यौहार, दानादि सांसारिक विषयों की ओर प्रवृत्त करना उचित नहीं समझा गया, पर इन सब विषयों की लोक के लिए परम आवश्यकता थी, अतः 'जन्मना' ब्राह्मण न होने पर भी सूतों को यह कार्य सौंपा गया। आज भी बड़ी संख्या में बन्दी, मागध एवं चारण लोग सूतों की इस जीविका पथ के पथिक हैं और उनका भी समाज में काफी सम्मान है। ऐसा अनुमान होता है कि इन्हीं सूतों की परम्परा से सत्यवती नन्दन' कृष्णद्वैपायन व्यास द्वारा संकलित पुराण-संहिता का लोक में व्यापक प्रचार हुआ होगा और सामान्य जनता ने, जिसे वैदिक संहिताओं एवं आरण्यकों के समझने का समय एवं साधन कम था, सूतों की इस देन का पर्याप्त सम्मान किया होगा। उन्हीं सूतों ने ही इसके अठारह भेद भी किये होंगे और इन अठारहों के बाद भी परिशिष्ट रूप में बहुत से उपपुराणों की सृष्टि हुई होगी। इस अनुमान का आधार पुराणों की वर्णन शैली की विविधता के अतिरिक्त उनमें कुछ परिवर्तन के साथ पाई जानेवाली प्रचुर समानता भी है। एक ही वर्ण्य वस्तु को विविध व्याख्याता अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं से कुछ भिन्न-भिन्न कर देते हैं। सभी पुराणों के लिए एक ही लक्षण एवं 'पुराणमेकमेवासीत्तदा कल्पान्तरेऽनघ।' (अ० ५३ श्लोक ४) मत्स्य महापुराण के इस कथन से भी हमारे अनुमान को पुष्टि मिलती है।

जनता में सूतों द्वारा प्रचलित पुराणों पर इतिहास के धार्मिक आन्दोलनों का विशेष प्रभाव पड़ा। समय-समय पर भारतभूमि में प्रचलित होनेवाले सम्प्रदायों की उस पर इतनी अधिक छाप पड़ी कि एक सम्प्रदाय वालों ने तीन-तीन चार-चार पुराणों तक को प्रभावित किया। ब्राह्म, शैव, वैष्णव, भागवत आदि पुराणों के नाम से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उन विशेष सम्प्रदायों के धार्मिक ग्रन्थ हैं। साम्प्रदायिक विषयों को छोड़कर ऊपर कहे गये पुराणों के पाँचों लक्षण प्रायः सभी पुराणों में कुछ हेर-फेर के साथ पाये जाते हैं। इससे यह बात स्पष्ट-सी है

कि एक-एक सम्प्रदाय के अनुयायी पण्डितों ने अपने-अपने सम्प्रदाय के अनुकूल विचारों एवं भावों का उनमें सम्मिश्रण किया और स्थल-स्थल पर उपयोगी परिवर्तन एवं परिवर्द्धन भी किया। उन्होंने इस खूबी के साथ यह कार्य किया कि वास्तविक और प्रक्षिप्त विषयों में भेद बहुत कम मालूम पड़ता है। यह प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ गई कि पुराण के सर्वमान्य उपर्युक्त 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च' इत्यादि लक्षण के अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त पुराण में महापुराण के दूसरे लक्षण भी बनाये गये। और उस सर्वमान्य लक्षण को उपपुराणों का लक्षण बतलाया गया।

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिस्तेषाञ्च पालनम्।
कर्मणां वासना वार्ता मनूनाञ्च क्रमेण च॥
वर्णनं प्रलयानाञ्च मोक्षस्य च निरूपणम्।
उत्कीर्त्तनं हरेरेव देवानाञ्च पृथक्-पृथक्।
दशाधिकं लक्षणञ्च महतां परिकीर्तितम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण १३२ अध्याय। श्लोक ३१-३७)

इस प्रकार यदि ब्रह्मवैवर्त पुराण का मत माना जाय तो महापुराण में उपर्युक्त दस लक्षण होने चाहियें और उपपुराणों में पाँच। किन्तु इससे भी अमरकोष में वर्णित उक्त सर्वसम्मत लक्षण की ही मान्यता सिद्ध होती है। क्योंकि उपपुराणों में उक्त पाँच लक्षण भी नहीं मिलते। जो हो, पर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि सूतों ने एवं पण्डित समाज ने अपनी-अपनी देश-काल जनित परिस्थितियों से बाध्य होकर पुराणों में यथेच्छ परिवर्तन किया और कथाओं को अलंकार के रंग में इतना गहरा रँग दिया कि उन पर आज के युग में विश्वास करना ही कठिन हो गया। एक-एक राजाओं के राज्य काल लाख-लाख वर्षों के हो गये, पुत्रों की संख्या करोड़ों तक पहुँच गई, सामान्य पिण्डदान का पुण्य अश्वमेध यज्ञ के अवभृथ स्नान से भी बढ़ गया। एक बात और भी मालूम पड़ती है कि सूतों ने अपने-अपने क्षेत्रों (यजमानी) का भी विभाग कर लिया था। यदि किसी पुराण में मध्यभारत के तीर्थों, नदियों, देवालयों एवं पुण्यक्षेत्रों का माहात्म्य है तो किसी में उत्तर भारत के। कहीं पर गंगा यदि सौ योजन दूर से ही नाम लेने वाले को भवसागर से पार उतारती हैं तो कहीं क्षिप्रा, नर्मदा एवं फल्गु, जैसी नदियाँ उन से भी अधिक पुण्य एवं फल प्रदान करती हैं। मत्स्य महापुराण में नर्मदा का विस्तृत माहात्म्य एवं उसके समीपस्थ छोटे-छोटे ग्रामों एवं देवालयों की, जिनमें से अधिकांश का अस्तित्व भी अब लुप्त हो गया होगा, विस्तृत नामावलि के देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसके मूलप्रवक्ता सूत का वहाँ से विशेष सम्बन्ध था। इस प्रकार छानबीन करने के उपरान्त इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि पुराणों में सामयिक एवं दैशिक परिवर्तनों की भी अधिकता है। एक ही पुराण की विभिन्न प्रतियों तक में महान् भेद पाये जाते हैं, वे केवल लेखकों एवं सूतों के कारण ही नहीं हैं। समय-समय पर भिन्न-भिन्न देशों में होनेवाले परिवर्तन भी इसके कारण हैं। प्रायः साम्प्रदायिक पुराण इस दृष्टि से कुछ सुधरे हुए हैं क्योंकि सम्प्रदायाचार्यों ने उनकी एकवाक्यता पर पर्याप्त ध्यान रखा है और वेद वाक्यों की तरह उनकी व्याख्या एवं भाष्य में 'पदकृत्य' शैली को अपनाकर परिवर्तन को कुछ असम्भव बना दिया है।

सूतों द्वारा पुराणों का यह प्रसार कब हुआ? एक मूलसंहिता के अठारह भेद कब बने? उनका क्रम कैसा रहा? इन प्रश्नों पर कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कई पुराणों में अठारहों महापुराणों एवं उपपुराणों का क्रमानुगत वर्णन किया गया है, श्लोकों की संख्या बतलाई गई है। इनमें से किसी पुराण में एक को प्रथम कहा गया है तो किसी में दूसरे को। ऐसी स्थिति में निर्भ्रान्त रूप से क्या कहा जा सकता है? कहना न होगा कि सभी पुराणों में इस नामावलि का प्रक्षेप भी सूतों द्वारा ही हुआ। 'इस पुराण के अतिरिक्त अन्य पुराण भी हैं, उनके सुनने का भी परम श्रेय है, उनकी श्लोक संख्या इतनी है', इस संक्षिप्त परिचय से श्रोताओं के मन में अन्य पुराणों के प्रति भी आस्था बढ़े—यही उनका मूल उद्देश था। मत्स्य महापुराण की उपलब्ध प्रतियों में महापुराणों के साथ-साथ उपपुराणों की भी नामावलि दी गई है, इस से उसकी परम नवीनता सिद्ध होती है। पर इससे यह न मान लेना चाहिये कि उसकी सारी कथाएँ नवीन हैं, जहाँ तक सृष्टि-प्रकिया घटित वृत्तान्त, मन्वन्तर, देव-पितृ

वंश एवं राजवंशादि के वर्णनों का सम्बन्ध है, यह सब प्राचीन हैं। सारांश यह कि कुछ पुराणों में बहुत अधिक परिवर्तन हुए और कुछ में कम। पर साम्प्रदायिक पुराणों में इस प्रकार के परिवर्तन जो कुछ किये गये वे इतनी निपुणता से हुए कि क्षीर नीर के समान उनका पार्थक्य करना बहुत कठिन कार्य हो गया। इस परिवर्तन के कुचक्र ने भविष्य पुराण को भानमती का पिटारा कर दिया। ऐसा लगता है कि पिछली शताब्दी तक के पण्डितों ने अपनी निपुणता उसमें दिखाई। दुर्भाग्यवश इस परिवर्तन पद्धति ने पारौणिक साहित्य के महत्त्व को जनता की दृष्टि में कम कर दिया। वेदों, उपनिषदों एवं आरण्यकों की तरह उनकी विशुद्धता स्थिर नहीं रह सकी। पर इन परिवर्तनों एवं परिवर्द्धनों के कारण यह मान लेना कि सभी पुराण आधुनिक हैं, उनमें कुछ भी तत्त्व नहीं है, नितान्त अनुचित है। पुराण का एक मूल रूप ही नहीं परम प्राचीन है, उसके अठारह भेद भी प्राचीनकाल के हैं। आपस्तम्ब गृह्य सूत्र में स्पष्ट रूप से भविष्य पुराण का नामोल्लेख किया गया है और किसी पुराण का निर्देश न कर उसमें यह उद्धरण दिया गया है—

अष्टाशीतिसहस्राणि ये प्रजामीषिरर्षयः।
दक्षिणेनार्यम्णः पन्थानं ते श्मशानानि भेजिरे॥
अष्टाशीतिसहस्राणि ये प्रजां नेषिरर्षयः।
उत्तरेणार्यम्णः पन्थानं तेऽमृतत्वं हि कल्पते॥'

(आपस्तम्ब गृह्यसूत्र २।२३।३-५)

'जिन अठासी सहस्र ऋषियों ने सन्तान की कामना की वे अर्यमा के दक्षिण पथ में श्मशान को प्राप्त हुए और जिन अठासी सहस्र ऋषियों ने सन्तान विषयक कामना नहीं प्रकट की वे अर्यमा के उत्तर पथावलम्बी होकर अमरत्व के अधिकारी बने।' इसी से एकदम मिलते-जुलते श्लोक ब्रह्माण्ड पुराण, पद्मपुराण, मत्स्यपुराण आदि में भी मिलते हैं। भविष्य पुराण के स्पष्ट नामोल्लेख से मूल संहिता का विभाग भी अति प्राचीनकाल में सिद्ध होता है, क्योंकि आपस्तम्ब गृह्यसूत्र का रचना काल अनेक विद्वानों ने ईस्वी पूर्व ३ री शताब्दी के आसपास माना है। इधर विष्णु पुराण के क्रम के अनुसार भविष्यत् पुराण का नवम स्थान है। जो हो, पर इतना सिद्ध हो जाता है कि पुराणों की मूल संहिता के भेद भी नवीन नहीं हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण भी हैं। अनेक पुराणों के अनुसार दी गई क्रम संख्या से ब्रह्माण्ड पुराण का अठारहवाँ स्थान है। ऐतिहासिकों का अनुमान है कि ईसा की ५ वीं शती में भारतीयों ने यवद्वीप में पदार्पण किया था। उसी समय वे लोग स्वभावतया अपने साथ रामायण महाभारत एवं पुराणादि धार्मिक ग्रन्थों को भी साथ ले गये होंगे। उसी के परिणामस्वरूप वहाँ के शैव ब्राह्मणों के घर आज भी ब्रह्माण्ड पुराण का वेदों की तरह आदर होता है। वहाँ के ब्रह्माण्ड पुराण एवं हमारे देश में उपलब्ध ब्रह्माण्ड पुराण में बहुत कम अन्तर मिलता है। इससे यह अनुमान होता है कि ईसा की ५ वीं शताब्दी के पूर्व ही पुराणों के अनेक भेद हो चुके थे। इन प्रमाणों के अतिरिक्त आठवीं शताब्दी में उत्पन्न होने वाले स्वामी शङ्कराचार्य ने मार्कण्डेय पुराण से उद्धरण दिया है, सातवीं शताब्दी में होने वाले बाण भट्ट ने हर्ष-चरित में मार्कण्डेय पुराण के देवी माहात्म्य से विषयों का चयन किया है, वायु पुराण की चर्चा की है। मयूर भट्ट ने, जो कि बाणभट्ट के समसामयिक ही थे, सौर पुराण से सूरशतक का विवरण उपस्थित किया है। उसी समय के ब्रह्मगुप्त ने विष्णुधर्मोत्तर पुराण के आधार पर ब्रह्मसिद्धान्त की रचना की है। ग्यारहवीं शताब्दी में आने वाले विदेशी यात्री अलबेरुनी ने आदित्य, वायु, मत्स्य, विष्णुधर्मोत्तर आदि पुराणों की चर्चा की है। इन सब प्रमाणों से यह मानने में किसी को भी आपत्ति न होनी चाहिये कि आज से डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व ही पुराणों के भेदोपभेद हो चुके थे। पर पीछे चलकर समय-समय पर उनमें परिवर्तन होते रहे। उनमें क्या मौलिक है, क्या प्रक्षिप्त, यद्यपि यह कहना सरल नहीं है पर पुराणों के उक्त लक्षण से इस विषय में सहायता मिलती है। उपर्युक्त पाँचों विषयों के अतिरिक्त धार्मिक क्रियाएँ, सामान्य समुदाचार, देवी-देवताओं के माहात्म्य, देवार्चना, देवोत्सव, व्रत, नियम, विविध प्रकार के दान, प्रायश्चित्त, राजनीति, भूगोल, खगोल, नदी, तीर्थ एवं देशों के माहात्म्यादि लौकिक

विषय पुराणों में पीछे से आवश्यक समझ कर सन्निविष्ट किये गये हैं। जब-जब विरुद्ध धर्मानुयायियों ने हिन्दुओं को 'सनातनधर्म' से विचलित करना चाहा है, तब-तब पण्डितों एवं सूतों ने पुराणों में 'आवश्यक' संशोधन किये हैं। उनके वह संशोधन उस परिस्थिति में उपकारक भी हुए हैं। सामान्य जनता गृहस्थाश्रम के बखेड़ों में पड़कर धार्मिक सिद्धान्तों एवं तत्त्वों के फेर में फँसना पसन्द नहीं करती, उसे इतना क्षण नहीं है कि वह द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, जीव, ब्रह्म आदि के विषय में आचार्यों के निर्णीत मतों को पकड़ सके, उसे कोई सरल, सूधी वस्तु चाहिये, जो सुनने में सुबोध्य और करने में सुकार्य हो। इसी उद्देश से कट्टर पण्डितों ने बौद्ध, जैन आदि 'सनातन धर्म' विरोधी मतों के बहकावे से बचने के लिए पुराणों में उपासना तथा कर्मकाण्ड के विषयों को आवश्यकता से अधिक भरा और सूतों ने उनका ग्राम-ग्राम में घूम घूम कर प्रचार किया। जनता की रुचि के अनुकूल उसमें विविध काव्य रसों एवं अलंकारों की भरमार कर दी गई। आज भी आल्हा गानेवाले, अभी छ-सात सौ वर्ष पूर्व उत्पन्न होने वाले आल्हा ऊदल आदि की वीरता में अतिशयोक्ति का दिवाला निकाल देते हैं, और वह अंश जनता में चमत्कारी होने से सर्वाधिक पसन्द किया जाता है। इस उदाहरण का प्रयोग हम किसी बुरे मंशा से नहीं कर रहे हैं। मेरे कथन का तात्पर्य केवल इतना ही है कि सामयिक परिस्थितियों के कारण पुराणों में इतने अधिक परिवर्तन हुए हैं। समय-समय पर जितने भी धार्मिक आन्दोलन हुए, उन सब से मोर्चा लेने का काम परोक्ष रूप में पुराणों से भी लिया गया। यह बात दूसरी है कि उनमें आज कितने ऐसे अंश मिलते हैं जो एकदम अविश्वसनीय ही नहीं सर्वथा घृण्य, दुष्ट एवं उपहास्य भी हैं। 'विष्णुदर्शनमात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते' अथवा 'धिक् धिक् कपालम्' को कोई उग्र वैष्णव भले ही युक्त ठहराये पर वह सर्वमान्य नैतिकता के स्तर से भी बहुत नीचे है। ऐसे दूषित परिवर्तन परिवर्तनकारियों के व्यक्तिगत अवगुण के परिचायक हैं। ऐसी निन्द्य कोटि की बातों का सम्मिश्रण उन्होंने अन्न में विष की भाँति कर दिया है जिसको अपवारित करने के सिवा कोई दूसरा चारा नहीं दिखाई पड़ता। पर वास्तव में क्या पुराण एकदम भ्रष्ट हो गये हैं, उनमें लोक-कल्याण की भावना सर्वथा हीन कोटि की हो गई है? नहीं। यदि वे ऐसे ही होते तो पंचम वेद की उपाधि उन्हें कैसे मिलती! वेदों के साथ पुण्यकार्यों में उनके पारायण का उपक्रम किस प्रकार चलता। आज भी उनमें वह गुण वर्तमान हैं। जीवन के सभी क्षेत्रों में आनेवाली आवश्यकताओं का सूक्ष्म रीति से उनमें विश्लेषण किया गया है। दया, क्षमा, सुजनता, कष्टसहिष्णुता, वीरता, धीरता, गम्भीरता, पवित्रता, सत्य, आदि पारमार्थिक गुणों का सीधे-सादे ढंग में विशद स्वरूप चित्रित किया गया है। दानव से मानव ही नहीं राजर्षि तक बनने का आदर्श उपस्थित किया गया है। पारिवारिक जीवन की सभी कठिनाइयों को सरलता से पार करने के उपाय बतलाये गये हैं। इस लोक की नश्वरता को प्रतिष्ठापित करते हुए भी मानव जीवन को उच्चातिउच्च उठाने का विस्तृत कर्मक्षेत्र उपस्थित किया गया है। सामान्य कुल में उत्पन्न होकर महान से भी महत्तम् बनने का उदाहरण रखा गया है। जीव क्या है? ईश्वर क्या है? सृष्टि क्यों है? परलोक क्या है? जीव की गति किस प्रकार होगी? इस लोक एवं परलोक के कर्त्तव्य क्या हैं? ऐसे गूढ़ प्रश्नों का युक्तियुक्त एवं सरल समाधान किया गया है। दार्शनिक विषयों के अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे ऐसे विषयों को भी उनमें स्थान दिया गया है, जिनकी परम आवश्यकता है। ज्यौतिष, राजनीति, अर्थनीति, वास्तुकला, मूर्तिकला, आयुर्वेद, धनुर्वेद, कर्मकाण्ड आदि का भी संक्षिप्त किन्तु उपयोगी वर्णन उनमें किया गया है। हिन्दू संस्कृति को संबल देनेवाले ऐसे अनेक शत चरित्रों का उनमें वर्णन है, जिनका स्मरण आज भी उत्साह एवं गौरव का कारण है। अवतारवाद का इतना बहुल प्रचार पुराणों द्वारा ही हुआ। सभी पुराणों में किसी न किसी देवता के अवतार की चर्चा की गई है। शैव मतानुयायी पुराणों में जिस प्रकार शिव के नाना अवतार धारण करने की चर्चा है उसी प्रकार वैष्णव मतानुयायी पुराणों में विष्णु के। अवतारवाद की यह कल्पना इन्हीं पुराणों के कारण ही चली ऐसा कहना तो उचित नहीं है। उनकी संक्षिप्त मूलकथाएँ उपनिषदों एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में ही थीं, पुराणों ने उनको बहुत विस्तृत और प्रचारित किया। एक-एक मत के अवलम्बन करनेवालों ने अपने इष्टदेव का अवतार पुष्ट किया। इस पुष्टि में उन्होंने एक दूसरे मत की स्पष्ट निन्दा तक की। इस अन्ध साम्प्रदायिकता के कारण पुराणों की मर्यादा हानि भी हुई। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ

पुराणों में एक ओर विश्वबन्धुत्व की भावना निहित है, जीवन के परम उपयोगी तत्त्वों का संकलन किया गया है, वहीं पर अन्ध साम्प्रदायिकता के पुजारियों ने उसे अपने संकुचित क्षेत्र में ताला बन्द कर के रखने की चेष्टा भी की है, घृणा द्वेषादि के बीज बोने में अपनी सारी विद्या बुद्धि लगा दी है।

सूक्ष्म रीति से पर्यालोचन करने पर इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि प्रत्येक पुराणकार ने परमात्मा के उपर्युक्त भिन्न-भिन्न सगुण रूपों को स्वीकार किया है। सृष्टि में इनके कार्यों का विभाजन किया है। अपने इष्ट प्रतिपाद्य की महिमा के सामने अन्य को अवच दिखाया है। दूसरे देवगणों को उसका सहायक अथवा साधन बनाया है। देवताओं और असुरों के भीषण युद्धों का रोमांचकारी वर्णन कर उसमें उसे मुख्य सहायक बनाया है। इस प्रकार कोई ऐसा पुराण न होगा, जिसमें उसके इष्ट प्रतिपाद्य को महान असुरों से डटकर लोहा न लेना पड़ा हो। देवताओं की कृपा से ही वर प्राप्त कर असुरों की शक्ति की वृद्धि होती है; वे आगे चलकर ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त होकर लोकपीड़न में निरत हो जाते हैं। उनके मारने की चिन्ता सभी देवताओं को होती है, क्योंकि उनके पूर्व अधिकारी इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि एवं वायु प्रभृति अधिकार से च्युत कर दिये जाते हैं। लोक में विशेष विद्रोह की भावना बढ़ती है, तब वे मिलकर उन महान् असुरों के बध का उपाय निश्चित करते हैं, बध में प्रमुख भाग उस पुराण के इष्ट प्रतिपाद्य विभूति का ही होता है। शैव पुराणों में शिव, शाक्त पुराणों में देवी, वैष्णव पुराणों में विष्णु एवं अन्य पुराणों में उसका मुख्य प्रतिपाद्य देव उस महान आसुर संकट से लोक की रक्षा करता हुआ दिखाया जाता है। देवताओं और असुरों के युद्ध का वर्णन पुराणों में अधिकतर आये हैं। [illegible] हिरण्यकशिपु, तारक, शुम्भ, निशुम्भ, मय, बलि, प्रह्लाद, रावणादि की चर्चा तो अनेक पुराणों में [illegible] ही प्रकार से आई है। रामायण एवं महाभारत की कथाओं का भी अधिकांश पुराणों में वर्णन आया है। सुप्रसिद्ध दम्पति की कथाएँ जैसे— सावित्री-सत्यवान, नल-दमयन्ती, दुष्यन्त शकुन्तला-प्रभृति की कथाओं का भी प्रायः सभी पुराणों में एक-सा वर्णन है। राजाओं की वंशावलि का वर्णन करते हुए सूर्य, चन्द्र, यदु, कुरु आदि वंशों के सुप्रसिद्ध राजाओं की ललित कथाओं का भी सभी पुराणों ने समान रूप से आदर किया है। उनमें बहुत ही समानता रखी गई है। अनेक स्थलों पर तो कई पुराणों में एक ही शब्दावलि भी पाई जाती है। सभी पुराणों में किसी न किसी सुप्रसिद्ध नदी, तीर्थ, क्षेत्र, पर्वत आदि के विस्तृत माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। उसकी सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने में सूतों ने रीतिकालीन कवियों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। जिन सुप्रसिद्ध व्यक्तियों के साथ जिस सुप्रसिद्ध घटना का संयोग कर्णपरम्परा से विदित है, उसका उल्लेख प्रायः सभी पुराणों में एक रूप से किया गया है। तीर्थों के अतिरिक्त व्रतों और दानों का जितना माहात्म्य पुराणों में आया है, उसे देखते हुए अतीतकालिक भारत की समृद्धि का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। यह मानते हुए भी कि सूतों ने अथवा प्रतिग्रहीता ब्राह्मण पण्डितों ने अपने लाभ के लोभ से दानों को बहुत बढ़ा चढ़ा कर कह दिया है; इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उस प्रकार की दान पद्धति उन दिनों में वर्तमान थी। मत्स्य महापुराण में व्रतों एवं दानों के महान् माहात्म्यों से प्रायः पचासों अध्यायों की पूर्ति की गयी है। सुवर्ण, चाँदी, ताँबे आदि धातुओं के पहाड़, वृषभ अथवा धेनु दान करने की अनेक विधियाँ बतलाई गई हैं। उनमें से किसी एक विधि को साङ्गोपाङ्ग पूर्ण करने की सामर्थ्य आज दिन करोड़पतियों में भी नहीं दिखाई पड़ती। प्रत्येक व्रतों, नियमों एवं यज्ञों का पर्यवसान दान में ही किया गया है। विना प्रचुर दक्षिणा को दिये हुए इन सब का कोई फल नहीं होता। तीर्थों एवं क्षेत्रों के माहात्म्यां में भी दान का विस्तृत वर्णन किया जाता है। जितने भी तीर्थ होते हैं, उन सब के छोटे-से लेकर बड़े स्थानों तक का माहात्म्य रहता है और सर्वत्र दान देने की विधि विहित है। इस प्रकार दान पद्धति की अतिचर्चा से वास्तव में पुराणों की महिमा हानि भी हुई है। अखबारी विज्ञापनों की तरह सामान्य जनता भी सूतों की इस करणी से दान के वास्तविक महत्त्व को हेय समझकर उसकी ओर से आँखें मूँद लेती है।

जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, प्रायः सभी पुराणों में अठारहों महापुराणों की नामावलि तथा उनकी श्लोक संख्या दी गई है। जिनमें परस्पर भिन्नता पाई जाती है। भिन्नता का कारण सूतों की अव्यवस्थित वर्णना शैली ही

है। वास्तव में कौन पुराण प्रथम बना, कौन बाद में बना—इसका कोई प्रमाण उन लोगों के पास भी नहीं था। जो जिसको जिस क्रम से स्मरणपथ में मिला उसको उसने उसी क्रम से रख दिया। मत्स्य महापुराण में विभिन्न पुराणों का जो क्रम दिया गया है, उसके साथ अनेक पुराणों की एकवाक्यता नहीं होती। इस दृष्टि से विष्णु पुराण की सूची कुछ प्रामाणिक लगती है, क्योंकि उसका क्रम अनेक पुराणों के क्रमों से कुछ मिलता-जुलता है। उसमें अठारहों पुराणों के जो नाम आये हैं, उन्हें यथाक्रम दे रहा हूँ। प्रथम ब्राह्म, द्वितीय पाद्म, तृतीय वैष्णव (विष्णुपुराण), चतुर्थ शैव, पञ्चम भागवत, षष्ठ नारदीय, सप्तम् मार्कण्डेय, अष्टम् आग्नेय, नवम् भविष्य, दशम् ब्रह्मवैवर्त, एकादश लैङ्ग, द्वादश बाराह, त्रयोदश स्कान्द, चतुर्दश वामन, पञ्चदश कौर्म, षोडश मात्स्य, सप्तदश गारुड और अष्टादश ब्रह्माण्ड। इस क्रम से आपाततः यह भासित होता है कि सभी पुराण एक साथ नहीं बने थे; पर इस कथन से भी कई आपत्तियाँ उठेंगी। यदि सभी पुराण वास्तव में क्रमशः निर्मित हुए होते तो पूर्ववर्ती पुराणों में परवर्ती पुराणों का नामोल्लेख कैसे सम्भव होता? एक पुराण किसी को प्रथम और दूसरा किसी अन्य को प्रथम कैसे मानता? आदि। जो हो, पुराणों की उपर्युक्त नामावलि में गृहीत कई पुराणों के विषय में यह भी विवाद प्रचलित है कि वह महापुराण हैं या नहीं? यह विषय स्वयं इतना महत्त्वपूर्ण और विस्तृत है कि इसके लिए कभी अलग से कुछ लिखा जायगा। आज प्रकृत स्थल में हम केवल इस दिशा की ओर संकेत मात्र कर देते हैं कि क्रम और नामावलि में पुराणों के निर्माणकाल आदि का कोई सूक्ष्म ध्यान नहीं रखा गया है। एक ही विषय की बातें घूम-फिर कर सभी पुराणों में आती गई हैं। कुछ ऐसे विशेष विषय अवश्य हैं, जिन पर भिन्न-भिन्न पुराणों में विस्तृत प्रकाश डाला गया है, उन-उन वि... को छोड़कर यदि सब के उक्त पंचलक्षणयुक्त पौराणिक विषयों को एकत्र करें तो पाठक आश्चर्यचकित रह जायँगे कि सब में एक-सी-ही बातें हैं। महापुराणों के अतिरिक्त उपपुराणों की भी नामावलि देवी भागवत एवं मात्स्य आदि महापुराणों में दी गई है। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उपपुराणों की रचना बहुत बाद में हुई है। प्रायः पौराणिक महान पात्रों को लेकर इनमें उन्हीं का विस्तृत माहात्म्य वर्णन किया गया है। शैली और उद्देश भी प्रायः वही हैं। इनमें प्रमुख उपपुराण यह हैं, सनत्कुमार, नरसिंह, नारदीय, शिव, दुर्वासा, कपिल, मानव, औशनस, वरुण, कालिका, साम्ब, नन्दी, सौर, पराशर, आदित्य, महेश्वर, देवी भागवत और वसिष्ठ। स्कान्द पुराण के रेवाखण्ड शिवधर्म में ब्रह्माण्ड, कूर्म और भविष्य को उपपुराण बतलाया गया है, साथ ही नारदीय, शिव, आदित्य और वसिष्ठ का नामोल्लेख नहीं किया गया है। इन उपपुराणों में से अधिकांश में पुराणों के उक्त पंचलक्षणों का पालन नहीं किया गया है। वर्णना शैली में इतनी अधिक चमत्कृति लाने की चेष्टा की गई है जिसे देखने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि वे बहुत आधुनिक हैं। यही कारण है कि उनकी चर्चा अधिकांश महापुराणों में कहीं नहीं आई है।

उक्त अठारह महापुराणों को वर्गों में भी विभक्त किया गया है। स्कान्दपुराण के केदारखण्ड में यह चर्चा आयी है कि अठारहों महापुराणों में दस शैव, चार ब्राह्म, दो शाक्त और दो वैष्णव हैं। इस सम्बन्ध में शिव रहस्य खण्डान्तर्गत सम्भवकाण्ड में स्कान्द पुराण में ही लिखा गया है कि शैव, भविष्य, मार्कण्डेय, लैङ्ग, वाराह, स्कान्द, मात्स्य, कौर्म, वामन और ब्रह्माण्ड ये दस पुराण शैव हैं। इन सब की श्लोक संख्या ३ लाख है। वैष्णव (विष्णु), भागवत, नारदीय और गारुड ये चार वैष्णव हैं, इनमें भगवान विष्णु की महिमा वर्णित है। ब्राह्म और पाद्म—ये दो ब्रह्मा के पुराण हैं। अग्नि पुराण अग्नि की और ब्रह्मवैवर्त पुराण सूर्य की महिमा से पूर्ण है। चारों वैष्णव पुराणों में अधिकतर महादेव और विष्णु की समानता प्रतिपादित की गयी है। कहीं-कहीं पर महादेव से अधिक विष्णु का माहात्म्य वर्णन किया गया है। ब्राह्म पुराण में ब्रह्मा विष्णु महेश का साम्य प्रतिपादित करते हुए भी ब्रह्मा को श्रेष्ठ और सूर्य को त्रिदेवात्मक सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार शैव पुराणों में शिव को सभी देवताओं से अधिक शक्तिशाली माना गया है। प्रकृत मत्स्य महापुराण में यद्यपि भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार का ही वर्णन किया गया है पर महादेव के विविध अवतारों एवं कार्यों का इसमें विशद वर्णन है। उन्हें देखते हुए मत्स्यावतार की कथा का महत्त्व विस्तार की दृष्टि से बहुत न्यून हो जाती है, इसकी चर्चा मैं आगे

करूँगा। इसी प्रकार वाराह वामन और ब्रह्माण्ड में भी शिव की अनन्त शक्ति का वर्णन किया गया है, जिसके सम्मुख विष्णु, ब्रह्मा प्रभृति सभी देवों एवं शक्तियों को कई बार प्रभावहीन होते दिखाया गया है। शैव मत की प्राचीनता एवं उसके उदात्त विचारों का ही यह परिणाम है कि अधिकांश पुराणों में उसकी चर्चा की गई है। ऋक्, यजु, साम, और अथर्व चारों वैदिक संहिताओं में रुद्र की स्तुति मिलती है। इनमें यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राष्टाध्यायी का आज भी बहुत प्रचार है। यद्यपि इस बात में विवाद उठाया गया है कि वैदिक रुद्र ही पारौणिक शिव अथवा रुद्र हैं, पर यह परम्परा इतनी प्रचलित हो गई है कि वह तर्क नहीं स्वीकार करती। वाजसनेय संहिता में शतरुद्रों के बीच-बीच में शिव, गिरिश, पशुपति, नीलग्रीव, शितिकण्ठ, भव, शर्व, महादेव इत्यादि नामों को देखने से रुद्र और शिव के एकत्व में अविश्वास नहीं रह जाता। अथर्व संहिता में भी महादेव, भव, पशुपति आदि नामों का उल्लेख हुआ है। अस्तु, शैव पुराणों में प्रायः इन्हीं उपर्युक्त नामों की चरितार्थता मनोहर कथाओं के रूप में की गई है। इनके अतिरिक्त सात्त्विक, राजस एवं तामस—इन तीन गुणों के आधार पर भी पुराणों का वर्ग विभाग किया गया है। मैं यह कहने में संकोच नहीं करूँगा कि इस अभिनव विभाग में कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। किन्हीं सूत महादेय ने तीन का अठारह में भाग देकर ६-६ का वर्ग बना दिया है। वस्तुतः सभी पुराणों की शैली देखने से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि सब में उक्त तीनों गुणों एवं स्वभावों का यथास्थल प्रयोग किया गया है। इन सभी महापुराणों एवं उपपुराणों का यद्यपि एक व्यष्टिगत उद्देश्य भी है, पर सब का समष्टि रूप में जो स्थूल उद्देश्य पाया जाता है वह यह है। पुराणों में कोई न कोई अवतार स्वीकार किया गया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सूर्य, गणेश और शक्ति इनमें से किसी एक की उपासना का लोक में प्रचार हो, इस दृष्टि से इनमें से किसी एक को प्रधान और अन्य को गौण माना गया है। पण्डितों ने देश एवं काल की परिस्थिति के अनुसार अपने-अपने मत को प्रचारित करने के लिए एक-एक पुराण में एक-एक देवता की प्रमुखता स्वीकार की है।

पुराणों में इन सब बातों के होते हुए भी अनेक लोकोपकारियों ने, जिन्हें वास्तव में देश और जाति के कल्याण करने की सच्ची अनुपम लगन थी, पुराणों को सर्वथा त्याज्य माना है, उनकी भरपेट निन्दा की है, मार्मिक दुष्ट स्थलों को तर्क के चाकू से चीर-फाड़कर जनता के सामने खोलकर रख दिया है। क्या उनके यह कार्य किसी द्वेष के कारण हुए हैं, कदापि नहीं! वास्तव में उन्होंने 'त्याज्यः दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता' अर्थात् साँप की काटी हुई अँगुली की तरह दुष्ट (दोषपूर्ण वस्तु) अत्यन्त प्रिय होने पर भी सर्वथा त्याज्य है, इस लोकोक्ति को चरितार्थ किया है। उनकी यह धारणा थी कि ये पुराण सार्वजनिक उपयोग के योग्य नहीं रह गये हैं, सामान्य जनता इनमें वर्णित आदर्शों पर चलकर सुखी नहीं रह सकेगी, अपना वास्तविक कर्त्तव्य भूल जायगी। उनकी धारणा कुछ अंश में सत्य है; पर यदि औषधि करने से सर्प का विष उतर जाय तो अंगुली को काट कर फेंक देना समीचीन नहीं लगता। सभी औषधियों के अभाव एवं विशेष परिस्थिति में अंगुली का काटना भी एक शेष कर्त्तव्य है पर जिस अंगुली ने इतने जीवन तक अनेक दुःखों एवं सुखों में साथ दिया है यथासम्भव उसकी रक्षा करनी ही चाहिये। पुराणों ने चिरकाल से हिन्दू समाज का बहुत उपकार किया है। हमारी वंशपरम्परागत पवित्र भावनाएँ उनके साथ जुड़ी हुई हैं, इन सब बातों को देखते हुए उनको एकदम वहिष्कृत कर देना नितान्त अनुचित है, जब कि थोड़ी-सी सावधानी ही उन्हें पूर्ववत् पवित्र कर देती है। नितान्त अनर्गल कथाओं एवं स्वार्थपूर्ण उपदेशों को पुराणों से अलग करके उनकी उपादेयता से आप इनकार नहीं कर सकते। सोनारों की दूकान की मिट्टी को बटोर कर धोने वालों को भी जीवन-यापन के लिए पर्याप्त सोना चाँदी मिल जाता है, पुराण तो अनेक रत्नों के आकर हैं, दृष्टि फैलाइये, विवेक के जल से मृत्तिकामिश्रित उनके अनपेक्षित प्रसंगों को, जिनमें निन्दा आदि के सिवा दूसरी चीज नहीं है, स्वच्छ कीजिये, सहानुभूति एवं विश्वास का सम्बल रखिये, उनसे आपको अनमोल रत्न मिलेंगे।

पुराणों में पाठान्तरों की कठिनाइयाँ

पाठों की भिन्नता से यद्यपि सभी प्रचीन ग्रन्थ भरे पड़े हैं; पर पुराणों में तो यह सब से अधिक हैं। एक एक पद वा शब्द के दस-दस पाठान्तर पाये जाते हैं। पाठों की इस अनेकता के कारण समय, देश एवं व्यक्ति रहे

हैं। जिस ग्रन्थ का जितने अधिक देशों, कालों एवं व्यक्तियों में स्थान रहेगा, उसमें उतना ही अधिक पाठान्तर पाया जायगा। प्रश्न यह होगा कि क्या वेद, उपनिषद् अथवा अन्यान्य संस्कृत के धार्मिक, ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय ग्रन्थों का पुराणों की अपेक्षा कम देश, समय वा व्यक्तियों में प्रचार था। नहीं। इन ग्रन्थों का भी इस दिशा में उनसे कम महत्त्व नहीं था; पर वेदों की तरह पुराणादि के पाठों में कोई बन्धन नहीं रहता। स्वर के चिह्नों एवं उच्चारणों में समानता रखने के कारण उनमें पाठ-भेद की सम्भावना ही कैसे की जा सकती है। उनके उच्चारण एवं प्रयोग के लिए शिक्षाओं में नियम बतलाए गये हैं, अशुद्ध उच्चारण के घोर प्रत्यवाय एवं अनिष्ट होने की सम्भावना दिखाई गई है।

मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात्॥

स्वर अथवा वर्ण से हीन उच्चारित मंत्र अपने वास्तविक अर्थ को नहीं प्रकट करता, वह मिथ्या हो जाता है। यही नहीं, वह वचन रूपी वज्र बेचारे यजमान का वृत्रासुर की तरह विनाश भी कर देता है। कहा जाता है कि प्रचीनकाल में मंत्रप्रयोक्ता ऋषियों द्वारा स्वर में गड़बड़ी कर देने के कारण यज्ञ का यजमान वृत्रासुर तो पराजित हो गया और उलटे इन्द्र ही विजयी हुए। जो हो, परम प्राचीन काल से वेदों के उच्चारणादि के प्रति जैसी सावधानी रखी गई वैसी समस्त विश्व में किसी भी धार्मिक ग्रन्थ की नहीं रखी गई। सुदूर दक्षिण प्रान्त के भट्ट, बंगाल के भट्टाचार्य, कश्मीर एवं काशी के शास्त्रियों के वैदिक मंत्रों के उच्चारणों में अनेक भौगोलिक विषमताओं के रहने पर भी आज अद्भुत समानता पाई जाती है। यह सब उसी सावधानी का परिणाम है। इसी तरह अन्यान्य धार्मिक ग्रन्थों में भी पर्याप्त सावधानी रखी गई है। न्याय, सांख्य, वेदान्तादि शास्त्रीय ग्रन्थों में भी समय समय पर होने वाले उनके विस्तृत भाष्यों एवं टिप्पणों से पाठान्तर की सम्भावना नहीं रही। आचार्यों एवं शिष्यों की परम्परा ने अनन्तकाल से लेकर आज तक उनको कण्ठस्थ करने की अपनी प्राचीन पद्धति नहीं छोड़ी। उसी का परिणाम है कि इस विपरीत परिस्थिति में भी एक-एक शास्त्र के सैकड़ों ऐसे विद्वान् मिलेंगे, जिन्हें सम्पूर्ण विषय यदि कण्ठस्थ नहीं हैं तो स्पष्ट अवश्य हैं। ऐसी अवस्था में उनमें पाठान्तरों की कल्पना कैसे की जा सकती है? यही दशा आयुर्वेदादि अन्य संस्कृत ग्रन्थों की भी रही है। पुराणों का पण्डित समाज ने उपयुक्त सम्मान नहीं किया। पुराणों की पवित्रता में आस्था रखते हुए भी वे इधर से प्रायः उदासीन ही रहे। बहुत प्रचीन काल से पुराणों के उपदेशादि का अधिकार निम्नवर्गीय सूतों में रहने के कारण उच्च वर्गीय ऋषियों ने उनकी ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। पीछे चलकर जब द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, आदि सम्प्रदायों के आचार्यों को जनता तक अपने सिद्धान्तों के फैलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उन्होंने एकाधिक पुराणों की विस्तृत टीकाएँ लिखीं। अपने मत को पुष्ट करनेवाली युक्तियों का उनमें खुलकर प्रयोग किया। पाठ की एकरूपता को स्थिर रखने के लिए 'पदकृत्य' की शैली अपनायी। उसका परिणाम यह हुआ कि कुछ साम्प्रदायिक पुराण यथा श्री मद्भागवत, विष्णु पुराण, शिव पुराण अधिक पाठान्तरों से बचाये जा सके। उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक उनके एकरूप रखने की कुछ चेष्टा भी की गई। पर वे पुराण, जिनमें स्मार्त धर्म का सामान्यतया प्रतिपादन किया गया था, अनेक उपयोगी विषयों की जिनमें चर्चा की गई थी, उन साम्प्रदायिक आचार्यों के कृपाभाजन नहीं हुए। एक ही साथ शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति, गणेशादि का माहात्म्य जिसमें वर्णन किया गया है उसके द्वारा एक ही सम्प्रदाय की पुष्टि किस प्रकार हो सकती है? फलतः ऐसे पुराणों के ऊपर न तो साम्प्रदायिक आचार्यों ने कभी कृपादृष्टि फेरी और न अपने को स्मार्त कहने वाले पंडितों ने। परिणाम यह हुआ कि वह सूतों की ही सम्पत्ति बने रहे। उन लोगों ने जिस प्रकार चाहा उनका प्रचार किया। जनता के मनोरंजन एवं कल्याण के लिए जिस वस्तु एवं जिस प्रकार के वर्णन उन्हें उपयोगी लगे सब को उनमें मिलाया। आज कल की तरह मुद्रण की सुविधा तो थी नहीं, लिपिकारों की तनिक-सी असावधानी ने भी पुराणों के इन पाठान्तरों में योगदान किया। यथा किसी पुराण की प्रतिलिपि करने के लिये मद्रास प्रान्त का कोई लिपिकर्त्ता

पण्डित आया। मानवसुलभ असावधानता से उसने 'शतम्' के स्थान पर 'मतम्' लिख लिया और अपनी प्रति लेकर मद्रास गया। 'काशी की प्रति से यह पाठ आया है, अतएव अशुद्ध न होगा'—ऐसा मानकर उस प्रति से प्रतिलिपि करनेवाले सभी 'शतम्' के स्थान पर 'मतम्' आसानी से बना लेंगे। इसी प्रकार वर्णों की आकृतिगत समानता के कारण हस्तलिखित प्रतियों के पाठकों को भी कई स्थानों पर भ्रम हो जाता है। वे भ्रान्त पाठक यदि प्रतिलिपि करेंगे तो उसी अपने भाव के अनुकूल उसका पाठ कर देंगे। इस प्रकार भी एक अशुद्ध पाठ की परम्परा फैलेगी। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रदेश वाले अपनी लिपि में प्रतिलिपि करते समय मूल शुद्ध पाठ से प्रायः दूर चले जाते हैं। इन सब कारणों से पुराणों के पाठान्तरों की इतनी अधिक संख्या हो गई है कि ठीक-ठीक अर्थ लगाना कठिन हो जाता है। कहीं-कहीं पर ऐसे भ्रामक पाठान्तर आ जाते हैं जो प्रसंग, विषय एवं अवसर की कोई चिन्ता नहीं करते। यह तो साधारण-सी बात है। इससे भी बढ़ बढ़ कर पुराणों में परिवर्तन हुए हैं। अध्याय के अध्याय नये जुड़ जाते हैं। कथा के बीच में कोई नवीन प्रसंग आ जाता है, जिसके कारण कथा की अन्विति तो बिगड़ती ही है, उसकी संगति लगाना भी कठिन हो जाता है। कई स्थलों पर तो किसी प्रकार भी अर्थ नहीं निकल सकता।

अतएव संस्कृत के पण्डितों का इस ओर ध्यान जाना आवश्यक है। पुराण उनकी प्रतिष्ठा के ही एक अंग नहीं हैं, भारतीय संस्कृति के साथ उनका बहुत काल से संबंध है। उनका उद्धार एक जातीय कार्य है। कम से कम काशी में तो, जो संस्कृत विद्या का संसार में प्रमुख केन्द्र है, उसके यथार्थ स्वरूपनिश्चय का कार्य होना ही चाहिये। पर मैंने देखा है कि पुराणों की ओर ध्यान देने का अवसर काशीस्थ पण्डितों को भी नहीं मिलता। व्याकरण, न्याय, वेदान्त आदि की एक ही पंक्ति में वे दस-दस दिन भले लगा दें, पर पुराणों की ओर एक घड़ी भी देना उन्हें पसन्द नहीं है। काशी की राजकीय संस्कृत परीक्षा में पुराणेतिहास विषय भी रखा गया है। उसमें आचार्य तक केवल वायुपुराण का कुछ अंश, जो बहुत स्पष्ट है, पाठ्य-क्रम में निर्धारित है, पर इतने से क्या होगा ? कम से कम ३, ४, पुराणों को पाठ्यक्रम में रखना आवश्यक था। पाठ्यक्रम में न होने के कारण उन पुराणों का प्रकाशन भी प्रकाशक गण नहीं करते, जिनका जनता में प्रचार नहीं है। अठारह पुराण तो सभी जानते हैं; पर अच्छे-अच्छे पण्डित भी, जो अपनी व्युत्पत्ति एवं स्मरण शक्ति के कारण ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, यह नहीं जानते कि वे अठारह पुराण कौन-कौन हैं ? उनमें क्या-क्या विषय है ? पण्डितों में यह प्रसिद्ध है कि 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' अर्थात् विद्वानों की परीक्षा भागवत में है, सारांश यह कि भागवत बहुत ही जटिल पुराण है। बात सत्य है; पर भागवत के ऊपर आवश्यकता से अधिक ध्यान दिया जा चुका है। अन्य पुराणों में भी उन्हें अपनी व्युत्पादन शक्ति का सदुपयोग करना चाहिये। मत्स्य, अग्नि एवं विष्णु पुराण को तो उसमें रखना ही चाहिये, साथ ही पौराणिक विषयों के अन्वेषण का भी कार्य होना चाहिए।

मूल पुराणों का निर्माण कब हुआ इस विषय पर मैं पूर्व ही में कुछ संकेत कर चुका हूँ कि इनका मूल स्वरूप वेदकाल में भी था और वह बहुत ही संक्षिप्त था। पीछे चलकर व्यासों ने इनका फैलाव किया और सूतों ने जनता में प्रसार किया। पर इनमें सर्वत्र पाणिनि व्याकरणों के नियमों का बहुधा पालन हुआ है, इससे यह सिद्ध होता है कि यह पाणिनि के बहुत बाद तक बने हैं। पाणिनि का समय विक्रम संवत के ७ वीं ८ वीं शताब्दी पूर्व माना जाता है। किन्तु राजवंशों की नामावलि से यह भी स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल तक इनमें आवश्यकतानुसार समावेश होता रहा। पुराणों में तो उन्नीसवीं शताब्दी तक मनमानी हुई है। कोई नियंत्रण न रहने के कारण जिसने जिस विषय को अधिक पसंद किया उसने उसी को पुराणों में रख दिया। शंकर, रामानुज, माध्व, वल्लभ, आदि के सिद्धांतों का समावेश तो प्रायः पुराणों में खुलकर किया गया। इस दृष्टि से अग्नि, वायु और मत्स्य पुराण कुछ बचे हुये हैं; पर इनमें भी स्थल-स्थल पर साम्प्रदायिकता की गंध मिलती है।

व्यास और सूत के बारे में मैं कभी अलग से लिखूँगा पर अभी तक मेरी धारणा यही है कि यह व्यक्ति-वाचक संज्ञा नहीं हैं। विष्णु पुराण से इनकी अनेकता का पता लगता है, महाभारत के इस कथन पर कि सत्यवती के पुत्र कृष्णद्वैपायन ही अठारहों पुराणों के एकमात्र रचयिता थे, विश्वास नहीं जमता। यह हो सकता है कि

कृष्णद्वैपायन महोदय ही सर्वप्रमुख व्यास रहे होंगे। इनकी प्रधानता इतनी व्यापक हो गई कि व्यास नाम लेते ही इनका स्मरण हो जाता है। पर जैसा कि ऊपर कह चुका हूँ, शैली की विविधता, विषयों की अनेकता, एक ही विषय पर परस्पर घोर मतभेद, काल दोष आदि ऐसे अनेक कारण हैं जिनसे इन्हीं को सभी पुराणों का कर्त्ता मानने में घोर आपत्ति उठती है। यदि समय के ऊपर ही ध्यान दिया जाय तो यह महाभारत के समकालिक थे, जो पाणिनि के प्रादुर्भाव से बहुत पहिले ही सिद्ध होता है। तो फिर पुराणों में पाणिनि व्याकरण का नियम-पालन किस प्रकार सम्भव हो सकता है। इसी प्रकार एक सूत भी सूत परम्परा (मागध, भाट) के अग्रणी हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि भिन्न-भिन्न काल के पंडितों ने अपने यश की कोई चिन्ता न कर पुराणों में अपनी रचनाओं को समाविष्ट कर अपने दृष्टिकोण से देश, समाज और सभ्यता की उन्नति करने में योगदान किया है। उनकी यह निःस्पृहता निस्सन्देह स्मरणीय है।

पुराणों की शैली

पुराणों में काव्य के सभी रसों का स्थान-स्थान पर उपयोग किया गया है : पर विशेषतया वीररस का इनमें बहुल वर्णन है। उसका कारण यही है कि सामान्य जनता इसे बहुत पसन्द करती है। इस जनप्रियता के लिए वैष्णव पुराणों में भी देवासुरयुद्ध का भीषण चित्र अंकित किया गया है। इन वर्णनों में अलंकारों का इतना अधिक प्रयोग किया गया है कि संख्या आदि में भी उसका कोई ध्यान नहीं रखा गया। वेदों या उपनिषदों में जिन कथाओं का बीज पाया जाता है उसका पुराणों में घटाटोप वर्णन किया गया है, इन्द्र द्वारा वृत्र के निधन आदि की कथाएँ, जो वैदिक संहिताओं में बहुत संक्षिप्त रूप में विद्यमान हैं, अनेक पुराणों के बीसों अध्यायों में विस्तार पा चुकी हैं। इसी तरह त्रिपुर आदि की कल्पना भी वेदमंत्रों में निगूढ है। अगस्त और उर्वशी की उत्पत्ति कथा वेदों से ही आई है। इन्द्र, वरुण, कुवेर, रूद्र, सूर्य, चन्द्रमा आदि के स्वरूप की कल्पना भी वेदों से ही आई है, उनमें उनके गुणों के अनुसार स्वरूप की कल्पना की गई है। तीर्थ, दान, श्राद्ध आदि की महिमा में अतिशयोक्तियों की सीमा पर ध्यान नहीं रखा गया है। किन्तु इनका मुख्य उद्देश सामान्य अपढ़ जनता में धार्मिक प्रवृत्तियों को जगाना ही है। इसी विचार से अपने सम्प्रदाय के विरोधी मतवालों पर घोर आक्षेप भी इनमें किया गया है।

भूगोल और खगोल वर्णन में भी एक ही प्रकार की पद्धति पुराणों में अपनाई गई है। मत्स्य पुराण में भी जम्बू, शाक, कुश, क्रौञ्च, शाल्मल, गोमेद एवं पुष्कर द्वीपों का विचित्र ढंग से वर्णन किया गया है। इस भौगोलिक कल्पना में प्रत्येक द्वीप के चारों ओर कोई न कोई रसात्मक समुद्र है। पृथ्वी के मध्य भाग में लोकालोक नामक पर्वत है। सूर्य उसी पर उदित होता है। सूर्य से ऊपर (?) चन्द्रमा है। मेरु पर्वत की महत्ता प्रायः सभी पुराणों में है। इन द्वीपों, समुद्रों एवं पर्वतों का विस्तार करोड़ों एवं लाखों योजनों में दिया गया है। योजन के जो प्रमाण पुराणों में दिये गये हैं, उनका कुछ विचित्र परिमाण मालूम पड़ता है, आधुनिक योजन अर्थात् चार कोस का एक योजन यदि माना जाय तो साम्प्रतिक भूगोल (भू-परिधि) बहुत ही छोटा पड़ जायगा। पुराणों के कथनानुसार सुमेरु पर्वत के निम्न प्रदेश में भारतवर्ष की अवस्थिति वर्णित है। पर उस सुमेरु पर्वत का कोई नामोनिशान आज नहीं है। उसके स्थान पर आधुनिक पामीर का पठार यदि माना जाय तो कुछ संगति भले ही हो सकती है। द्वीपों के साथ-साथ वहाँ के निवासियों एवं कुछ रीति-रस्मों का भी संक्षिप्त वर्णन पुराणों में किया गया है; पर उनसे आज का भौतिक मस्तिष्क कोई तात्पर्य नहीं निकाल सकता। द्वीपों एवं समुद्रों का वर्णन देखकर यदि कोई यह कहे कि सूतों ने इस प्रकार की कल्पना अपने घर बैठे ही कर ली है, अथवा इनका सम्बन्ध अतीन्द्रिय जगत् से है तो कुछ अनुचित न होगा। मत्स्य पुराण में वर्णित जम्बू द्वीप में जामुन के वृक्ष से टपकने-वाले पक्के फलों से सुवर्ण की नदी बहती है, इस वर्णन का कोई तान्त्रिक भले ही कुछ अर्थ लगावे पर भारतखण्ड वाले जम्बूद्वीप में वह जामुन पैसे की पाव भर के हिसाब से बिकती है।

देवताओं, असुरों एवं राजाओं के राज्य-काल का भी यही हाल है। उनमें जितने वर्षों की संख्या दी गई है, उतने दिन भी जीवन धारण करनेवाले आज कम मिलेंगे। एक-एक युद्ध लाखों वर्षों तक चलते हैं, एक-एक मुनि

या तपस्वी की समाधि में ही सहस्रों वर्ष बीत जाते हैं। एक-एक ऐसे शिशु उत्पन्न होते हैं, जो गर्भावस्था में ही सहस्रों वर्ष रहते हैं—ऐसे वर्षों का क्या प्रमाण माना जाय ? इस प्रकार अनेक आश्चर्यजनक बातों से पुराणों की वर्तमानकालिक उपयोगिता में कुछ सन्देह हो जाता है जिसकी चर्चा ऊपर आ चुकी है। पर पुराणों की सीधी-सादी, आडम्बर विहीन कथाओं की शिक्षा हमारे जीवन में बड़े काम की है। उनकी सुरुचि, सरलता और मनोरंजकता की तुलना भारतीय वाङ्मय में बेजोड़ है। मत्स्य महापुराण में कच और देवयानी, इला और बुध, बृहस्पति और तारा, दीर्घतमा और ममता, सत्यवान और सावित्री आदि की कथाएँ अपने पुरातन सौन्दर्य में आज भी जीवित हैं, वे न केवल एक आदर्श ही उपस्थित करती हैं, प्रत्युत उनके याथार्थ्य एवं नाटकीय तत्त्वों का भी एक महत्त्व है। मत्स्य पुराण में वर्णित त्रिपुर की चन्द्रिका एवं वन में असुर-कन्याओं के शृंगार का वर्णन भी एक खण्ड-काव्य का आनन्द उपस्थित करता है। स्थल-स्थल पर हिमालय की छटा, किसी वन्य-प्रान्त की शोभा, नदी-तट एवं नागरिक समृद्धि का जो चित्र इसमें अंकित किया गया है, वह बहुत ही चित्ताकर्षक और विशद है। राजाओं के कर्तव्य तथा राज्य-रक्षा के विविध उपायों में तात्कालिक आर्थिक एवं सामाजिक नीति का जो वर्णन आया है वह आज भी अविस्मरणीय है। अभिषेक क्रिया एवं उपद्रवादि के होने पर शान्ति के अनेक उपाय बतलाये गये हैं। सेनापतियों एवं मन्त्रियों के कर्त्तव्यों से लेकर साधारण से साधारण राज-कर्मचारी का कैसा व्यवहार होना चाहिये, इस पर सूक्ष्म रीति से साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से विचार किया गया है। राज्य में स्थायी शान्ति रखने के जो विविध उपाय बतलाये गये हैं, उनकी उपयोगिता आज भी शेष है। प्रजाओं को सब प्रकार से सन्तुष्ट रखने के लिए राजाओं के जो कर्त्तव्य निश्चित किये गये हैं, उन्हें देखने से गूढ़ राजनीति का परिचय मिलता है। मूर्तिकला एवं वास्तु का वर्णन इस विषय के तात्कालिक विज्ञान का सूचक है, पर इन सब के साथ-साथ कूटनीति, अभिचार एवं वेश्या-व्रत की कथाएँ कुछ वीभत्स चित्रों का भी संकलन करती हैं। पुराण जैसे धार्मिक उपाख्यानों में ऐसे विषयों का समावेश पीछे चलकर हुआ होगा, ऐसा अनुमान होता है। अब इस विषय पर विशेष कहने की आवश्यकता मुझे नहीं है। विषय-सूची में प्रायः सभी कथाओं का आकलन कर दिया गया है, जिससे पाठकों को सुविधा होगी।

संक्षेप में मत्स्य महापुराण के वर्ण्य विषयों में श्राद्ध, दान, मूर्तिपूजा वा मूर्तिप्रतिष्ठा तथा देवासुर संग्राम का ही विशेष वर्णन है। मूर्तिपूजा, दान एवं श्राद्ध की विधियों में ब्राह्मण धर्म की कट्टरता भी स्पष्ट है। पितरों की कल्पनाओं में भी शूद्रादि को अवच स्थिति में रखा गया है। इस विषय का अद्भुत दृश्य तो उस समय उपस्थित होता है जिस समय राजधर्म के प्रकरण में बहुत सामान्य अपराध के कारण शूद्र को महान् दण्ड देने का विधान प्रस्तुत किया गया है जब कि वैसे अपराध का अपराधी ब्राह्मण और क्षत्रिय सामान्य शिष्टाचार से वंचित करार दिया गया है। मूर्तिपूजा एवं दान में भी शूद्रादि को सर्वथा बहिष्कृत किया गया है। वास्तु आदि वैज्ञानिक प्रकरणों में भी ब्राह्मणों की महत्ता गाई गई है, इस प्रकार सर्वत्र अति ब्राह्मणवाद की चर्चा से इसमें इन विषयों का प्रक्षेप उस काल का हुआ मालूम पड़ता है जब समाज में ब्राह्मणों की तूती बोलती थी। इसी में वर्णित अनेक युद्धों में अधिकांश शिव ही विजयी होते हैं। त्रिपुरवासी दानवराज मय के बाणों से घायल होकर भगवान् विष्णु एवं इन्द्र युद्ध-भूमि से पलायन कर शिव की शरण ताकते हैं, ब्रह्मा को भी उस स्थिति में कुछ नहीं सुझाई पड़ता। कुवेर, वरुण, अश्विनीकुमार—यही नहीं मृत्यु के अधिदेवता यमराज को भी मुँह की खानी पड़ती है। ऐसे समय में केवल शिव जगत् की रक्षा करते दिखाई पड़ते हैं। शिव की विभिन्न स्तुतियों से अध्याय के अध्याय भरे पड़े हैं। काशी एवं प्रयाग के विस्तृत माहात्म्य तथा नर्मदा तटवर्ती सैकड़ों छोटे-छोटे तीर्थों की चर्चा से यह भी ज्ञात होता है कि इन स्थानों में इसके सूतों का व्यापक प्रसार था। वैष्णव मत का प्रचार या प्रसार इन प्रदेशों में सदा से ही कम रहा है। काशी, मथुरा या वृन्दावन की चर्चा इसमें कहीं नहीं आई है, भगवान् कृष्ण की कुछ प्रसिद्ध कथाएँ केवल उनके वंश के प्रसंग में आई हैं। किन्तु कृष्ण की पत्नियों के दूसरे जन्म में वेश्यात्व की प्राप्ति एवं पर पुरुष को देख कामासक्त होने की कथा से वैष्णव धर्म के प्रति कुछ अनास्था-सी भी इसमें प्रकट होती है। मूर्ति-निर्माण के प्रकरण में भी शिव की विभिन्न

मूर्तियों का अनेक प्रकार से जितना विशद निर्माण इसमें बताया गया है उतना विष्णु, कृष्ण या रामादि की मूर्ति का नहीं। रामायण की कथा तो इसमें बहुत ही संक्षिप्त रूप में आई है। इस प्रकार ऐसे विचारों की प्रधानता से इसके वर्ण्य विषयों में इतना अधिक प्रक्षेप मालूम होता है कि इसी आधार पर हमारा अनुमान है कि किसी समय जनता में इसका बहुत अधिक प्रचार रहा होगा और बाद में वैष्णव पुराणों की महत्ता से इसकी महिमा की हानि हुई होगी। इसके प्रक्षिप्त विषयों की ऐतिहासिक भूमि से प्रक्षेपकाल की कुरीतियों का चित्र इसमें बहुत अधिक उभरा हुआ है। इतना तो स्पष्ट ही होता है कि उस समय ब्राह्मण धर्म की पूरी धूम थी। समाज का सूत्र परिचालन सोलहो आने उन्हीं के हाथ का खिलवाड़ था। राजनीति से लेकर धर्मनीति तक सर्वत्र उनका अबाध संचरण था। राजाओं को अधिकार च्युत करने से लेकर श्राद्धकर्त्ता को स्वर्ग वा अपवर्ग देने की शक्ति उन्हें परम्परा से प्राप्त हो चुकी थी। बौद्ध वा जैन सम्प्रदाय की ओर से किसी भी सम्भावित विपत्तिकी उन्हें तिलमात्र की आशंका उस समय में नहीं रह गई थी। देश मूर्ति-पूजा में मस्त हो रहा था, सर्वत्र ब्राह्मण ही 'भू-सुर' बन कर जगन्मय हो रहे थे। उस समय इन ब्राह्मणों को सिवा अनुशासन, शान्ति और व्यवस्था कायम रखने के कोई दूसरा मुख्य काम नहीं था। विविध प्रकार का दान लेने, श्राद्ध करने वा मन्दिर निर्माण आदि कराने की ही उन्हें चिन्ता थी। आभिचारिक प्रयोगों का प्रक्षेप नाथ पन्थियों के तान्त्रिक जमाने का मालूम पड़ता है पर उसमें भी कुछ विशेषता है। और वह है यज्ञादि के विविधरूपों में ही उन अभिचारों को अंग रूप में स्वीकार करना। वेश्याव्रत वा अशून्य शयनव्रत की उद्भावना भी इन्हीं तांत्रिकों के प्रभाव से निहित मालूम पड़ती है। इसमें वर्णित युद्ध के वर्णनों में गृहीत शैली से युद्धकला के विविध रूपों का चित्र उपस्थित होता है। युद्धार्थ सुसज्जित देवासुरों की सेना में घोड़े, रथ, पदाति और आकाशगामी रथों की कल्पनाएँ यथार्थ रूप में कुछ अस्तित्व को साथ लेकर ही हुई होंगी। जिन अद्भुत वाणों और पाशादि अस्त्रों की कल्पना इसमें की गई है वह 'ऐटम बम' से कम महत्त्वशाली नहीं हैं। सीमा प्रान्तीय दस्युओं की वृत्ति और उनके रहन-सहन का जो विकृत चित्र इसमें आया है उससे भी सिद्ध होता है कि उस समय हमारे देश की राजनैतिक सीमा सुदूर विस्तृत एक महान् साम्राज्य की ही रही है। उसमें गंगा, यमुना, सिंध, नर्मदा, अंग, वंग, कलिंग एवं गुर्जर की सीमाएँ अन्तर्भूत थीं। इसी प्रकार जिस प्रकार के आदर्श राजा और उसके योग्य भवन, कोश, मंत्रिपरिषद् आदि का इसमें वर्णन किया गया है वह सब भी एक महान् साम्राज्य के अधिकारी सम्राट् के ही अनुरूप है। दण्ड और कर रूप में मुद्राएँ ली जाती थीं। इसका आदर्श राजा बहुधा सर्व सम्मति पर ही चलता है, वह अकेला ही भूपति नहीं है, वरन् स्वामी, सचिव, सुहृद्, वर्ग, कोष, राष्ट्र, बल, दुर्ग और प्रजानायक सात राज्य के अंग होते हैं। राज्य की रक्षा में दुर्गों का अनुपम महत्त्व है। मय द्वारा रचित त्रिपुर दुर्ग की कल्पना एक अत्यन्त सुदृढ़ एवं दुर्गम दुर्ग की यथार्थता से प्रसूत है। त्रिपुर की दुर्गमता जितनी प्रशंसनीय है उतनी ही उसके भीतर का दृश्य भी मनोरम एवं आकर्षक है। कानून बनाने का अधिकार राजा को नहीं है वरन् वह शिष्ट लोगों की सम्मति से ही सदा चलता है। युद्ध में केवल धनुर्विधा का ही कौशल नहीं प्रदर्शित किया गया है, वरन् असि, गदा, परिघ, मुसल, वज्र, पाश, तेग, फावड़ा, दण्ड आदि के साथ-साथ मल्लयुद्ध एवं रथ के चक्र आदि से भी युद्ध की चर्चा है। इस प्रकार इसमें वर्णित तथ्यों का उपजीव्य एक परम सुखमय, समृद्ध, शान्त एवं निर्वैर साम्राज्य था, जिसमें ब्राह्मण धर्म का बोल बाला था। वह जो कुछ चाहते थे करते थे। समाज उनका अनुगामी था और वह चारों ओर से जीवन को शान्त, सुखी और समुन्नत बनाने के साथ-साथ अपनी मर्यादा को चिरस्थायी बनाने में भी जागरूक थे, अपने से निम्नस्थिति वालों के प्रति उनमें वहीं तक सहानुभूति अथवा स्नेह-भावना थी जहाँ तक उनसे किसी अपकार की आशंका नहीं हो सकती थी। ऐसी तथाकथित घोर हिन्दू सभ्यता अथवा ब्राह्मण वाद की अति चर्चा में ही इस पुराण का जीवन बहुत दिनों तक बीता है। इतना कहकर इस विषय को अब मैं समाप्त करता हूं।

अपनी कठिनाइयों के सम्बन्ध में मैं क्या कहूँ ? किसी प्रचलित भाषा के अनुवाद का काम भी बहुत सरल नहीं होता। मैं एक ऐसी (अ) मृत (अप्रचलित) भाषा का अनुवाद करने बैठा था जिसका सर्वसामान्य उपयोग सदियों

से नहीं हो रहा है, जिसमें प्रयुक्त अनेक शब्दों का पता बड़े-बड़े स्थूलकाय बहुव्यय-सम्पन्न कोषों में भी नहीं है। पुराणों में जितने विषय आये हैं, मैं उन सब का जानकार नहीं हूँ, केवल संस्कृत व्याकरण, साहित्य और हिन्दी ज्ञान के बल से उन सब का ठीक अर्थ निकालना कितना अनधिकारपूर्ण और उपहसनीय है, यह सब मैं जानता रहा, पर जब एक काम सौंप दिया गया था तो उसे तो पूरा करना ही था। बीच-बीच में जो कठिनाइयाँ और जो उलझनें आई हैं, उन्हें मैं ही जानता हूँ। जिन विशेषज्ञों से बड़ी-बड़ी सहायता मिलने की आशा थी, उनसे भी कोई काम नहीं सधा; पर इससे मुझे कुछ आत्मविश्वास अवश्य मिला। अनुवाद में मैंने अपनी ओर से कोई चीज बढ़ायी नहीं है, विषय को अधिक स्पष्ट करने या अनुवाद में प्रवाह तथा अच्छी हिन्दी का प्रयोग करने की इच्छा रखते हुए भी कुछ बढ़ाने या घटाने का कोई उपक्रम मैंने नहीं किया है। पर इतना अवश्य हुआ है कि कुछ प्राचीन ग्रंथों में रूढ शब्दों को नवीन उद्भावनाओं में मैंने अन्वित किया है और यह केवल हिन्दी पाठकों की सुविधा के लिए ही किया है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरा यह प्रयत्न केवल उन्हीं के लिए है। संस्कृत के विद्वद्वर्यों को मेरी इस अनुकृति में कोई विशेष आकर्षण नहीं होगा। संभवतः मूल में कितने ऐसे शब्द उन्हें मिलेंगे जिनका अर्थ उनकी दृष्टि में दूसरा होगा और मेरी दृष्टि से दूसरा रहा, क्योंकि उनका अर्थज्ञान केवल अपने या अपने ही समान विद्या-बुद्धि-सम्पन्न के लिए है; जब कि मेरा यह प्रयत्न एक ऐसे समाज के लिए है जिसे उक्त आशय समझाने के लिए कोई दूसरा उपयुक्त अर्थ मेरे समीप नहीं था। आशा है, संस्कृतज्ञ पण्डितजन इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। अनुवाद में सरलता और प्रवाह लाने की मैंने वहीं तक चेष्टा की है, जहाँ तक मूल पाठ के शब्दों की सहायता मिलती रही है और उनकी अर्थ-शक्ति का अपकर्ष नहीं हुआ है। प्रवाह और रोचकता के लिए श्लोकों की संख्या एक अल्प प्रसंग की समाप्ति पर दी गई है। मूल को छोड़ कर बाहर जाने की सुविधा न तो मुझे पसन्द थी और न सम्मेलन ने ही दी थी। अनुवाद के लिए मुझे जो एक प्रति मिली थी, वह थी आनन्दाश्रम पूना की। उसके सम्पादन के विषय में केवल इतना ही कहूँगा कि सम्प्रति उपलब्ध मत्स्य महापुराण की प्रतियों में वही सर्वश्रेष्ठ है; पर इतना होते हुए भी वह दोषरहित नहीं है। जिन पण्डितों के हाथों में उसके सम्पादन का काम दिया गया था उन्होंने कतिपय प्रतियों के पाठान्तरों का संकलन करने के अतिरिक्त अपनी विद्या या बुद्धि का सदुपयोग उसमें बहुत कम किया है। अनेक स्थलों पर या तो उनकी अनवधानता से अथवा प्रूफ देखनेवालों की असावधानी से बहुत कुछ गड़बड़ी हुई है, ऐसे स्थलों का संकेत हमारे पाठकों को उन्हीं शब्दों के आगे आये हुए कोष्ठकों से मिलेगा, जिनमें मेरी ओर से दूसरा अर्थ दिया गया है। किन्तु इस प्रति में संकलित विभिन्न प्रतियों के पाठान्तरों से मुझे विशेष सहायता मिली है। संदिग्ध स्थलों पर मैंने उक्त पुस्तक के मूल पाठ को छोड़ कर फुटनोट में दिए गए पाठान्तरों की शरण ली है। क्योंकि ऐसे स्थलों पर उन्ह के द्वारा अर्थ में कुछ जीवन आ सकता था। वास्तु और मूर्ति निर्माण के प्रकरण में पारिभाषिक शब्दों के अर्थ मुझे विश्वकोष तक में नहीं मिले। उन-उन विषयों के प्रसिद्ध कतिपय विशेषज्ञों ने भी अपनी असमर्थता प्रकट की अतएव पाठकवृन्द इसके लिये मुझे क्षमा करेंगे। ऐसे सभी शब्दों के आगे (?) चिह्न दिया गया है। इसी प्रकार कुछ स्थलों पर मूलप्रति की अशुद्धि से अथवा विषय के अस्पष्ट एवं अतिशय गूढ होने के कारण मुझे कुछ पदों या श्लोकों का ठीक अर्थ नहीं लगा, आशय भी नहीं प्रकट हुआ, यही नहीं सुप्रसिद्ध पण्डितों एवं उन विषयों के विशेषज्ञों को भी उक्त स्थलों पर वही भ्रम हुआ, जो मुझे था तो विवश होकर ऐसे स्थलों पर या तो फुट नोट में अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी है अथवा उक्त स्थलों पर··· ···? चिह्न रख दिया है। पर ऐसे स्थल दो ही चार हैं अधिक नहीं। पर इन सब दोषों के बावजूद भी मुझे अपने इस प्रयास पर कुछ सन्तोष है, वह इसलिए नहीं कि मैं इसे अच्छा समझता हूँ, वरन् इसलिए कि इसे मैंने यथाशक्य सभी दृष्टियों से सफल बनाने का यत्न किया है, अपनी ओर से कुछ भी उठा नहीं रखा है। जहाँ कहीं कुछ भी सन्देह हुआ है उसके समाधान के लिए भरसक प्रयत्न किया है। फिर भी मानव अपूर्ण है, उसकी कृति कभी दोषरहित हो ही नहीं सकती। यह तो अनुकृति ठहरी इसके लिए मैं विनतभाव से अपने विद्वान् एवं सहृदय पाठकों से प्रार्थी हूँ कि अपनी बहुज्ञता का लाभ वह मुझे अगले संस्करण के लिए अवश्य दें। जहाँ कहीं उन्हें कोई त्रुटि या च्युति दिखाई पड़े तुरन्त मुझे सूचित करें मैं उन्हें सुधारने और

जानने को सहर्ष तैयार हूँ।

इस अनुवाद के अनेक अस्पष्ट स्थलों में अपने बहुमूल्य समय और श्रम की कोई चिन्ता न कर जिन महानुभावों ने मुझे सहयोग किया है, स्वभावतया उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। व्याकरणाचार्य विद्वद्वर्य पंडित अनन्त शास्त्री फड़के पुराणाचार्य, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय काशी; ज्योतिषाचार्य पं० रामव्यास पाण्डेय, अध्यक्ष ज्योतिषविभाग हिन्दू विश्वविद्यालय काशी; आयुर्वेदपंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल प्रयाग; व्याकरण-वेदान्ताचार्य पं० कमलाकान्त मिश्र, प्रिन्सिपल गोयनका महाविद्यालय काशी; व्याकरण-साहित्याचार्य पं० रामशंकर द्विवेदी, संस्कृत अध्यापक लखनऊ विश्वविद्यालय, बाबू सम्पूर्णानन्द शिक्षामंत्री युक्तप्रान्त काशी, डा० बाबूराम सक्सेना, एम० ए० डी० लिट्०, विश्वविद्यालय प्रयाग, श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस्सी० एल्० टी० प्रयाग से कतिपय संदिग्ध स्थलों पर विचार-विमर्श किया है।

पुस्तक प्रकाशन में मेरे अनेक दैवी विपदाओं में ग्रस्त होने के कारण अनपेक्षित विलम्ब हुआ है। प्रायः डेढ़ वर्ष तः यह प्रेस में ही पड़ी रह गई। पूज्य पितृचरण की असामयिक मृत्यु ने मेरे हृदय के हर्ष और उल्लास को बहुत दिनों के लिए दूर कर दिया है, उस समय तो अगाध विपत्ति-सागर में निमज्जित मैं एकाध बार यही सोच रहा था कि न जाने फिर कब यह प्रेस से बाहर निकलेगी ; पर आज इसके इस रूप में बाहर निकलने पर, जिसे मुझसे भी बढ़कर खुशी होती उसके सर्वथा अभाव में, मुझे कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हो रही है।

सौर मार्गशीर्ष २३,२००३
हिन्दी विद्यापीठ, प्रयाग

रामप्रताप त्रिपाठी

विषय सूची

श्रीः

पहला अध्याय

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्, देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।

प्रचण्ड ताण्डव नृत्य के वेग में (अपने असह्य भार से) दिग्गजों को अपने-अपने स्थान से विचलित कर देने वाले भगवान् शंकर के चरणकमल संसार के विघ्नों का नाश करें ॥१॥

मत्स्यावतार के समय पाताल लोक से ऊपर उछलते हुए जिस विष्णु भगवान् की पूछ की चपेट से सारे समुद्र विक्षुब्ध होकर ऊपर की ओर उछल पड़े, और ब्रह्माण्ड के खण्डों के पारस्परिक संघर्ष से इधर-उधर हो जाने के कारण समस्त पृथ्वीमण्डल पर छा गये, उस (भगवान् मत्स्य) के मुख से निकली हुई वेदों की ध्वनि तुम लोगों के अमङ्गल को दूर करे ॥२॥

नारायण, नरोत्तम नर और सरस्वती देवी को (प्रारम्भ में) नमस्कार करके तब जय (महाभारत एवं पुराणादि) का उच्चारण करना चाहिये । ॥३॥

अजन्मा (जन्म रहित) होकर भी जो अपने कार्य के लिए नारायण नाम से स्मरण किया जाता है उस त्रिगुणमय, (सत्त्व, रजस्, तमस् स्वरूप) त्रिवेद स्वरूप, (ऋक्, यजुः और सामवेद स्वरूप) एवं स्वयम्भू (स्वयम् उत्पन्न होनेवाले) भगवान् को हमारा नमस्कार है ॥३॥

एक बार एक बहुत बड़े यज्ञ की समाप्ति के बाद, नैमिषारण्य में रहनेवाले शौनक आदि ऋषियों ने एकाग्र चित्त होकर बैठे हुए सूत जी का बारम्बार अभिनन्दन करके, अनेक पुरानी पापों को दूर करने वाली ललित कथाओं के प्रसंग में (मत्स्य पुराण की) इस लम्बी कथा को पूछा । ॥४-५॥

ऋषियों ने कहा—निष्पाप सूत जी ! कथा के प्रसंग में आपने हम लोगों को अनेक पुरानी कथाएँ सुनाई हैं । उन्हीं अमृत के समान मधुर एवं आनन्द देनेवाली कथाओं को हम लोग पुनः सुनना चाहते हैं । हम यह जानना चाहते हैं कि भगवान् लोकनाथ विष्णु ने इस चर-अचरमय जगत् की सृष्टि किस प्रकार की ? और उन्हें किन कारणों से मत्स्य का अवतार धारण करना पड़ा ? और भगवान् वृषभध्वज को भैरव (अत्यन्त भयंकर) पुरारि एवं कपाली (मुण्डमाला धारण करने वाला) की उपाधि धारण करने का क्या कारण है ? सूत जी ! इन सभी बातों को हमें क्रमशः विस्तारपूर्वक समझाइये, क्योंकि अमृत के समान आनन्द देनेवाली आपकी इन बातों से हम लोगों की तृप्ति नहीं होती । ॥५-९॥

सूत जी बोले—विप्रवृन्द ! इस पुण्य को बढ़ानेवाले, दीर्घायु प्रदान करनेवाले, अत्यन्त पवित्र–जिसे भगवान् गदाधर ने स्वयम् कहा है—सम्पूर्ण मत्स्य पुराण को आप लोग सुनिये । प्राचीन काल में सूर्य का पुत्र मनु दुःख-सुख में समान व्यवहार करनेवाला एवं संसार के सभी जीवों के ऊपर

दया भाव रखनेवाला एक क्षमाशील राजा था। उसने अपने सारे राज-पाट को अपने पुत्र को सौंप कर घोर तपस्या की और मलयाचल के एक भाग में सब प्रकार के आत्मगुणों से संयुक्त होकर योगाभ्यास प्रारम्भ किया। इस प्रकार योग और तपस्या में कई लाख वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरान्त कमलासन ब्रह्मा जी प्रसन्न हुये और मनु से यथाभिलषित वरदान माँगने का उन्होंने अनुरोध किया। ब्रह्मा की आज्ञा पाने पर मनु ने उन्हें प्रणाम किया और कहा—ब्रह्मन्! आप से मैं केवल एक उत्तम वरदान माँगने की अभिलाषा करता हूँ। वह यह कि प्रलयकाल के आ जाने पर मैं इस स्थावर जंगमात्मक सम्पूर्ण जगत् की रक्षा कर सकूँ। मनु की प्रार्थना सुनकर विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा 'ऐसा ही हो' कह कर अन्तर्धान हो गये। और उधर (मनु पर प्रसन्न) देवताओं द्वारा आकाश से पुष्पों की विपुल वर्षा हुई। ॥१०–१६॥

तदनन्तर कुछ समय व्यतीत हो जाने के बाद एक दिन मनु जी जिस समय अपने आश्रम में पितरों को अर्घ्य दे रहे थे, उसी समय उनके दोनों हाथों में होकर कमण्डलु के जल के साथ एक शफरी (मछली) नीचे गिर पड़ी। दयालु स्वभाव राजा ने पृथ्वी पर दयनीय दशा में छटपटाती हुई उस छोटी मछली को उठाकर उसी कमण्डलु के जल में प्राणरक्षा के लिए छोड़ दिया। कमण्डलु में छोड़ने पर एक दिन और एक रात व्यतीत हो जाने के बाद वह छोटी मछली सोलह अँगुल लम्बे मत्स्य के आकार में परिणत हो गई और स्थान की संकीर्णता से उसे जब उस छोटे-से कमण्डलु में इधर-उधर तैरने का कष्ट होने लगा तो आर्त्त होकर पुकारने लगी कि 'हे राजन्! मेरी रक्षा कीजिये।' 'मेरी रक्षा कीजिये।' राजा ने उसे कष्ट में देखकर मिट्टी के एक बड़े घड़े में छोड़ दिया; पर वहाँ भी वह मत्स्य एक ही रात में तीन हाथ लम्बे आकार का हो गया और पुनः स्थान की संकीर्णता के कारण अत्यन्त आतुर होकर सूर्यपुत्र राजा मनु से कहने लगा—'हे राजन्! मैं आपकी शरण में हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। मेरी रक्षा कीजिये।' राजा ने पुनः उसे कष्ट में देखकर एक कुएँ में छोड़ दिया, पर वहाँ भी उसकी वही दशा हुई। कुएँ में भी न समाता देख राजा ने उसे तालाब में छोड़ दिया; परन्तु तालाब में छोड़ने पर भी वह अत्यन्त मोटा और एक योजन लम्बे आकार में परिणत हो गया और उसमें से भी आर्त्त होकर कहने लगा कि 'हे नृपतिवर! मेरी रक्षा कीजिये, मेरी रक्षा कीजिये।' तदुपरान्त मनु जी ने उसे गंगा के प्रवाह में छोड़ दिया; पर थोड़े ही अवसर में वह वहाँ पर भी इतना विशाल आकारवाला हो गया कि इधर-उधर घूमने का कष्ट होने लगा और पुनः राजा से दूसरे विस्तृत स्थान की प्रार्थना करने लगा। अन्ततः राजा ने अनन्योपाय होकर उसे समुद्र में डाल दिया; परन्तु थोड़े ही दिनों में उस ने अपने विशाल शरीर से सारे समुद्र को भी छेंक लिया, तब राजा निपट घबराये और भयभीत होकर मत्स्य से कहने लगे कि तुम अवश्य कोई महाराक्षस हो, अथवा स्वयम् भगवान विष्णु हो, क्योंकि तुम्हारे सिवा और कौन ऐसा है जो इस प्रकार का विस्मयजनक कार्य कर सके। संसार में ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो बीस अयुत योजन का शरीर धारण कर सके। हे केशव! हे हृषीकेश! हे जगन्नाथ! हे विश्वात्मन्! तुम्हारे लिए हमारा नमस्कार है। अब हमें यह निश्चय हो गया कि तुम्हीं मत्स्य का रूप धारण करके हमें शोकाकुल कर रहे हो। ॥१७—२७॥

मनु की इस विनीत प्रार्थना को सुनकर मत्स्य रूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु ने कहा—निष्पाप मनु ! सचमुच तुमने हमें भली भाँति जान लिया है, तुम धन्य हो, धन्य हो। हे सत्कर्मपरायण राजन् ! थोड़े ही दिनों के अनन्तर पर्वत जंगल आदि के साथ साथ यह सारी पृथ्वी जल में डूब जायगी। अतः यह नौका, (लो) जिसे संसार के बड़े बड़े जीवों की रक्षा के लिए सब देवताओं ने मिलकर बनाई है। इसमें संसार के सभी स्वेदज, अण्डज, उद्भिद् और जरायुज जीवों को, जो उस समय अनाथ-से हो जायँगे, बैठाकर उनकी रक्षा करना। प्रलयकाल की प्रचण्ड वायु के चपेटों से जब यह नौका डगमगाने लगे तो इसे एक बन्धन लेकर मेरी इस सींग में बाँध देना। सर्वज्ञ ! धैर्यशाली नृपते ! इस प्रकार प्रलय बीत जाने के अनन्तर जब पुनः सृष्टि का निर्माण होगा तब सतयुग के प्रारम्भ में तुम इस सभी चराचर जगत् के प्रजापति होगे और मन्वन्तरों के अधिपति होकर देवताओं के भी पूज्य बनोगे। ॥२८—३४॥

श्री मात्स्य महापुराण में मनु-विष्णु संवाद नामक पहला अध्याय समाप्त ॥१॥

दूसरा अध्याय

सूत जी बोले—ऋषिवृन्द ! मत्स्य भगवान् के इस प्रकार कहने पर मनु जी ने पूछा—'हे भगवन् ! कितनों वर्षों के अनन्तर यह प्रलयकाण्ड होने वाला है ? हे नाथ ! मैं (अकेला) संसार भर के इन चराचर जीवों की रक्षा कैसे कर सकूँगा ? और मेरी भेंट आप से पुनः किस प्रकार हो सकेगी ?' ॥१—२॥

मत्स्य भगवान् बोले—राजन् ! आज से सौ वर्ष तक इस पृथ्वी मण्डल पर वृष्टि नहीं होगी, जिसके कारण अत्यन्त भयानक दुर्भिक्ष पड़ेगा। इसके बाद तपाये हुए अंगारे बरसाने वाली अतिशय भयानक सूर्य की सात किरणों का (आकाश मण्डल में) उदय होगा, जिससे संसार के सभी छोटे-मोटे जीव-जंतु जल कर नष्ट हो जायँगे। यही नहीं, प्रलय का आरम्भ होने पर समुद्र की बाडवाग्नि भी दूषित होकर अत्यन्त प्रखर हो उठेगी, पाताल लोक में रहने वाले शेषनाग के मुख से निकलने वाली विषाग्नि भी विकराल रूप धारण कर लेगी और त्रिनेत्र भगवान् रुद्र के मस्तक में प्रकट होने वाली तीसरे नेत्र की अग्नि भी अपनी पूरी शक्ति के साथ भभक उठेगी। महर्षि स्वरूप परम तपस्विन् ! इस प्रकार अग्नियों के अत्यन्त उग्र रूप धारण करने पर तीनों लोक जलकर भस्मावशेष हो जायँगे, भीषण गर्मी से सारा गगन-मण्डल जलने लगेगा और देवताओं, नक्षत्रों आदि के समेत सारा संसार नष्ट हो जायगा। (१) संवर्त्त, (२) भीमनाद, (३) द्रोण, (४) चण्ड; (५) बलाहक (६) विद्युत्पताक और शोण नामक (७) सात जो प्रलयकालीन मेघ हैं, वे भी अग्नि के समान जलानेवाले जल की विपुल वृष्टि कर के सारा पृथ्वीमण्डल जलमग्न कर देंगे, जिससे सातों समुद्र उमड़ कर सारी पृथ्वी को अपने में समेट कर एकाकार हो जायँगे, और तीनों लोक एक महा समुद्र के रूप में दिखाई देने लगेंगे। उस समय हे राजन् ! तुम इस (मेरी दी हुई) नाव को पकड़कर उसी पर वेदों, संसार के सभी जीवों, और बीजों को लादकर मेरे द्वारा दी जाने वाली

रस्सी से मेरी सींग में बाँध देना। मेरे प्रभाव के कारण प्रलय काल की उस भयानक स्थिति में भी—जब कि सारे देवगण जलकर नष्ट हो जायँगे—तुम अकेले उस नाव पर बैठे रहना। इस प्रकार इस प्रलय काण्ड में चन्द्रमा, सूर्य, मैं, और चारों लोकों समेत ब्रह्मा, पुण्यसलिला नर्मदा नदी, महर्षि मार्कण्डेय, शंकर, तीनों वेद, सम्पूर्ण विद्याओं समेत सभी पुराण और तुम्हारे साथ यह संसार (सामग्रियाँ)—ये ही अवशेष रह जायँगे। इसी प्रकार चाक्षुष-मन्वन्तर के अवसान होने पर भी जब सारी पृथ्वी जल से आप्लावित होकर समुद्र रूप में परिणत हो जायगी, तब भी यही सब कार्य होगा। और हे राजन्! प्रलय के अनन्तर जब पुनः तुम्हारे द्वारा सृष्टि का प्रारम्भ होगा तब मैं अवतीर्ण होकर वेदों का प्रवर्तन करूँगा। इतनी बातें मनु जी को सुनाकर भगवान् मत्स्य वहीं पर अन्तर्हित हो गये और मनु जी भी भगवान् विष्णु की कृपा से प्राप्त किये हुए योग का अभ्यास तब तक करते रहे जब तक पूर्व सूचित प्रलयकाल का आगमन नहीं हो गया। ॥३—१६॥

भगवान् विष्णु, जैसा कि मनु जी से कहा गया था, वैसा समय आ जाने पर ठीक उसी प्रकार सींगवाले मत्स्य का रूप धारण कर मनु के समीप प्रादुर्भूत हुए और रस्सी के रूप में एक सर्प भी (जल में बहता हुआ) मनु के समीप आ पहुँचा। धर्मज्ञ राजा मनु ने अपने योगबल द्वारा संसार के सभी जीवों को आकृष्ट कर उसी नाव पर बिठा लिया और उक्त साँप रूपी रस्सी से मत्स्य की सींग में उसे बाँध दिया तथा भगवान् जनार्दन (विष्णु) को प्रणाम कर वे स्वयम् नाव पर बैठ गये। ऋषिगण! इस प्रकार अतीत प्रलयकाल के अवसर पर योगाभ्यासी मनुजी के अनुरोध पर भगवान् विष्णु ने जिस पुराण को उनसे कहा था उसी पुराण को मैं आप लोगों से कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये। आप लोगों ने सृष्टि आदि के विषय में जिन ज्ञातव्य बातों को मुझसे पूछा है, ठीक उन्हीं बातों को उस महाप्रलय के अवसर पर मनु जी ने भी भगवान् मत्स्य से पूछी थीं। ॥१७-२१॥

मनु जी ने पूछा—भगवन्! इस संसार की उत्पत्ति कैसे होती है? इन सबका विनाश कैसे होगा? सर्व प्रथम मनुष्यों का वंश कैसे प्रारम्भ हुआ? मन्वन्तरों का प्रादुर्भाव कब और कैसे हुआ? उन वंशों में उत्पन्न होनेवालों का चरित कैसा था? इन भुवनों का विस्तार कैसे हुआ? दान देने और धर्म करने की विधियाँ क्या हैं? श्राद्धादि कर्मों का विधान क्या है? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का यह वर्णविभाग क्या है? वापी कूप तड़ाग आदि के निर्माण की व्यवस्था कैसी होनी चाहिये? देवालयों में देवमूर्तियों की प्रतिष्ठा आदि के क्या नियम हैं? और भी अनेक सांसारिक उपयोगी बातें, जो जानने योग्य हैं, मैं जानना चाहता हूँ। आप हमें विस्तारपूर्वक बताइये। ॥२२-२४॥

मत्स्य भगवान् बोले—राजन्! महाप्रलय व्यतीत होने के अनन्तर यह सारा जगत् अन्धकार में सोये हुये की भाँति घने तम से आच्छन्न था, न तो कहीं पर किसी चर वा अचर वस्तु का पता लग सकता था, न तो वे पहचानी ही जा सकती थीं। और न कहीं कोई वस्तु ज्ञात ही होती थी। इसके अनन्तर संसार में पुण्य कर्म के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले निराकार स्वयम् उत्पन्न होने वाले भगवान्,

जो नारायण नाम से जगत् में प्रसिद्ध हैं, इन्द्रियों से भी परे हैं, सूक्ष्म से भी अति- सूक्ष्म एवं महान् से भी महत्तम हैं, जिनकी सत्ता का विनाश कभी नहीं होता, उस घोर अन्धकार का विनाश करते हुये, सारे चराचर जगत् को उत्पन्न करने के लिये स्वयम् प्रादुर्भूत हुए । ॥२५-२७॥

भगवान् ने अपने शरीर से अनेक प्रकार की सृष्टि करने की इच्छा से भलीभाँति पूर्व सृष्टि का चिन्तन कर सर्व प्रथम जल की सृष्टि की और उसमें अपने वीर्य का निःक्षेप किया। जल में पड़कर वह वीर्य दस सहस्र सूर्य के समान देदीप्यमान होकर सुवर्ण एवं रूप्यमय महान् अण्डे के आकार में परिणत हो गया। स्वयम्भू भगवान् ने स्वयम् उस वृहत् अण्डे के भीतर प्रवेश करके एक सहस्र वर्ष तक इतना तेजस्वी रूप धारण किया था अतः उन्हीं के व्याप्त होने के कारण उस में विष्णु का तेज आविष्ट हो गया था। तदनन्तर उसी के गर्भ से इस सूर्य की उत्पत्ति हुई और सबसे आदि में उत्पन्न होने के कारण उसका नाम आदित्य पड़ा। ब्रह्म का ध्यान करते हुए उत्पत्ति हुई थी अतः ब्रह्मा नाम से भी उसकी प्रसिद्धि हुई। उस तेजोमय वृहत् अण्डे को दो भागों में विभक्त करके स्वर्गलोक और मर्त्यलोक की रचना की और सभी दिशाओं का निर्माण किया और उनके मध्य में शाश्वत (कभी नष्ट न होनेवाले), आकाश की रचना हुई। उसी समय उस वृहत् अण्डे के जरायु भाग से सुमेरु आदि प्रमुख पर्वत, उल्ब से (जरायु का एक भाग) विद्युन्मण्डल समेत मेघ, और अण्डे के अवशिष्ट भाग से पितर समस्त मनुगण और नदियों की उत्पत्ति हुई। अण्डे के मध्य में रहने वाले जल भाग से अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्नों से प्रपूर्ण लवण इक्षु सुरा आदि सातों समुद्रों की उत्पत्ति हुई। शत्रुओं के विनाश करने वाले मनु जी! इसके अनन्तर सृष्टि रचने की इच्छा से प्रजापति भगवान् ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ और उन्हीं के तेज से सूर्य इतने परम तेजस्वी हुए। मृत अण्डे से उनकी उत्पत्ति हुई थी अतः लोक में वे मार्तण्ड के नाम से विख्यात हुए। उनका यह प्रखर रूप, जो इतना असह्य प्रतीत होता है, रजोगुण से युक्त है। चतुर्मुख लोक पितामह ब्रह्मा जी को, जिन्होंने समस्त देवताओं तथा राक्षसों समेत इस निखिल जगत् की सृष्टि की है, महत्सत्त्व स्वरूप एवं रजोगुणमय जानना चाहिये। ॥२८-३७॥

श्री मात्स्य महापुराण के आदि सर्ग में ब्रह्माण्ड वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

तीसरा अध्याय

मनुजी ने पूछा—भगवन्! ब्रह्मज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ लोक पितामह ब्रह्माजी को चार मुख किस प्रकार प्राप्त हुये? और उन्होंने इन समस्त लोकों की रचना किस प्रकार की?॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—मनुजी! सृष्टि उत्पन्न करने के पहिले ही देवताओं के पितामह ब्रह्मा जी ने तपस्या की थी। जिसके प्रभाव से अङ्गों एवं (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) उपाङ्गों (साहित्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा आदि) के पदक्रम समेत वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। इन सम्पूर्ण

शास्त्रों के प्रादुर्भाव के पूर्व ब्रह्माजी ने कभी नष्ट न होने वाले परम पुनीत शत कोटि संख्यक विस्तृत पुराण का स्मरण किया। तदुपरांत उनके मुखों से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। तदनन्तर आठों प्रमाणों सहित मीमांसा और न्याय शास्त्र का भी उन्हीं से आविर्भाव हुआ ॥२-४॥

वेदाभ्यास में निरत रहनेवाले ब्रह्मा ने पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से सर्वप्रथम अपने मन से दस मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। मन की इच्छा से उत्पन्न होने के कारण वे मानस पुत्रों के नाम से विख्यात हुये। इनमें सबसे प्रथम मरीचि उत्पन्न हुए, तदनन्तर ऋषिवर अत्रि भगवान् उत्पन्न हुए, पश्चात् अँगिरा उत्पन्न हुए। इसके पश्चात् पुलस्त्य की उत्पत्ति हुई। तदुपरान्त पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद का क्रमशः जन्म हुआ। इन्हीं दस मानसपुत्रों को, जो मुनि के नाम से विख्यात हैं, ब्रह्मा जी ने अपने मन से उत्पन्न किया था। राजन्! अब मैं इसके अनन्तर ब्रह्माजी के शरीर से उत्पन्न होने वाले मातृविहीन शारीर पुत्रों को बतला रहा हूँ। प्रजापति ब्रह्मा के दाहिने अँगूठे से दक्ष प्रजापति, स्तनान्त भाग से धर्मराज, हृदय से कुसुमायुध, भौंहों के मध्य से क्रोध, होंठ से लोभ, बुद्धि से मोह, अहंकार से मद, कण्ठ से प्रमोद, आँखों से मृत्यु और हथेली से भरत उत्पन्न हुए, जो सब के सब ब्रह्मा के पुत्र कहलाये। राजन्! ब्रह्माजी के ये नव[1] पुत्र तथा दसवीं अँगजा नाम की एक कन्या भी उत्पन्न हुई थी। ॥५-१२ ॥

मनुजी ने पूछा—भगवन्! आपने जो यह कहा कि बुद्धि से मोह की उत्पत्ति हुई, और उसी प्रसंग में अहंकार, क्रोध और बुद्धि का भी नाम लिया, सो ये सब क्या हैं? मैं इन सबको जानना चाहता हूँ! ॥१३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! सत्त्व, रजस् और तमस्—ये तीन प्रकार के जो गुण गिनाये गये हैं; इन तीनों की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। कुछ लोग इस प्रकृति को प्रधान मानते हैं और कुछ लोग इसी को अव्यक्त कहते हैं। यही प्रकृति इस सांसारिक सृष्टि को बनाती और बिगाड़ती है। और इन्हीं तीनों गुणों के उत्कर्ष से तीनों प्रमुख देवों की उत्पत्ति होती है। इन त्रिदेवों की मूर्ति तो एक ही है; पर उसके तीन भाग ब्रह्मा, विष्णु और महादेव के नाम से विख्यात हैं। तीनों गुणों के विकारों के प्रमुख अंश से, महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इसी तत्त्व से लोक की सर्वदा महान् ख्याति कही जाती है। उसी महत्तत्त्व से मान को बढ़ाने वाले अहङ्कार की उत्पत्ति होती है। ॥१४-१७॥

उस अहङ्कार से दसों इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। जिनमें बुद्धि के वश में रहनेवाली पाँच इन्द्रियों को (ज्ञानेन्द्रियों) बतलाता हूँ, इन पाँचों के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियाँ कर्म के अधीन रहती हैं। कान, त्वचा (चमड़ी,) आँख, जिह्वा और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और गुदा, मूत्रेन्द्रिय, हस्त, पाद और

---

[1] यद्यपि साधारणतया गिनने में पुत्रों की संख्या दस होती है; पर सभी पुस्तकों में 'एते नव सुता राजन्!' यही पाठ उपलब्ध होता है। अतः हमारे विचार से यहाँ यह मान लेना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि ब्रह्मा के इन शारीर पुत्रों की संख्या वास्तव में नव ही हुई; क्योंकि 'बुद्धि से मोह की उत्पत्ति हुई' ऐसा कहा गया है। बुद्धि शरीरी तो है नहीं अतः उससे उत्पन्न होनेवाले पुत्र को शारीर नहीं कह सकते।

वाणी—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इन दसों इन्द्रियों के कर्म क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, उत्सर्ग (मल, अपानवायु आदि का त्याग) आनन्द, आदान (ग्रहण करना, लेना), गमन और आलाप हैं। इन दसों कर्म तथा ज्ञान इन्द्रियों के अतिरिक्त मन नामक एक ग्यारहवीं इन्द्रिय है, जिसमें कर्म और बुद्धि दोनों इन्द्रियों के गुण पाये जाते हैं। जो सूक्ष्म इन्द्रियाँ (इन्द्रियों के सूक्ष्म अवयव) मनीषी की मूर्ति का आश्रय लेती हैं उन्हें तन्मात्रा कहते हैं। जिससे तन्मात्राओं का आश्रय लिया जाता है उसे शरीर कहते हैं, और इसी शरीर में निवास करने के कारण पण्डित लोग जीव को शरीरी कहते हैं। सृष्टि करने की इच्छा से प्रेरित होकर मन (इन्द्रिय) ही सृष्टि का प्रारम्भ करता है। शब्द रूप तन्मात्र से शब्द गुणात्मक आकाश का प्रादुर्भाव हुआ। इसी आकाश के विकार से वायु की उत्पत्ति हुई और यह शब्द तथा स्पर्श दो गुणों वाली हुई। इसके अनन्तर वायु और स्पर्शतन्मात्र के आश्रय से तेज की उत्पत्ति हुई और शब्द, स्पर्श तथा रूप इन तीन विकारों का संयोग होने के कारण वह तेज त्रिगुणात्मक हुआ। हे राजन्! इसी त्रिगुणात्मक तेज के विकार एवं रस तन्मात्र के आश्रयण से चार गुणों वाले जल की उत्पत्ति हुई जो प्रायः रस गुण-प्रधान रहता है। गन्ध तन्मात्र के आश्रयण से पंच गुणात्मिका पृथ्वी का अविर्भाव हुआ पर वह भी प्रायः गन्ध गुण युक्त रहती है। यही (इन्हीं सबका वास्तविक ज्ञान रखना ही) श्रेष्ठ बुद्धि है। इन्हीं चौबीस (५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ महाभूत, ५ तन्मात्रा १ मन, १ बुद्धि, १ अव्यक्त, १ अहङ्कार) तत्त्वों से सम्पादित सुखदुःखात्मक कर्म को पचीसवाँ पुरुष भोग करता है। ब्रह्मज्ञानी लोग इस पुरुष को भी ईश्वरेच्छा के अधीन मानकर 'जीवात्मा' नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार जीवात्मा को मिलाकर छब्बीस प्रकार के भेद शरीर के कहे गये हैं। कपिल आदि सांख्य शास्त्र के आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में इन्हीं सब तत्त्वों की परिगणना करके विवेचन किया है। और इन्हीं सब तत्त्वों के आश्रय से ब्रह्मा ने सारे जगत् की सृष्टि की है। ॥१८-२९॥

ब्रह्मा ने लोक की रचना करने की इच्छा से अपने हृदय में सावित्री का ध्यान करके तपस्या करनी प्रारम्भ की, जप करते समय उनके निष्पाप शरीर के दो भाग हो गये, जिनमें एक अर्ध भाग का स्त्री रूप और दूसरे अर्द्ध भाग का पुरुष रूप हो गया। जितेन्द्रिय मनु जी! उसी स्त्री रूप का शतरूपा नाम पड़ा, जो सावित्री, सरस्वती, गायत्री और ब्रह्माणी के नाम से भी विख्यात हैं। इस प्रकार अपने शरीर से उत्पन्न होने वाली सावित्री को ब्रह्मा ने अपनी कन्या के रूप में स्वीकार किया। किन्तु सावित्री के अतिशय मनोहारी रूप को देखकर काम वाण से व्यथित होकर वे कहने लगे कि 'अहा! कितना मनोहर रूप है, कितनी अपूर्व सुन्दरता है!' ब्रह्मा की इस तरह कामुक चेष्टा देखकर वशिष्ठ आदि ऋषियों ने शोर मचाया कि 'अरे! हमारी बहिन को तुम क्या कह रहे हो!' किन्तु ब्रह्मा इतने कामवश हो चले थे कि उन्हें सावित्री के मनोहर रूप के देखने के अतिरिक्त उस समय कुछ भी नहीं सुझाई देता था। और वे बार-बार यही कह रहे थे कि 'अहा कैसा मनोहारि रूप है, कैसी सुन्दर आकृति है!' ॥३०-३५॥

ब्रह्मा ने विनम्र सावित्री की ओर पुनः देखा, उस समय वह प्रणाम कर रही थी। तदुपरान्त उस

सुन्दरी ने अपने रूप को देखने के लिए लालायित अपने पिता की प्रदक्षिणा की, जो वशिष्ठ आदि ऋषियों के शोर मचाने से लज्जित हो चले थे। सावित्री को प्रदक्षिणा करते देखकर ब्रह्मा और भी लज्जित हो गये और उनके मुख की दाहिनी ओर पीले कपोलों वाला एक नया मुख आविर्भूत हो गया। फिर आश्चर्य से फड़कते हुए होंठोवाले एक तीसरे मुख का अविर्भाव पीछे की ओर हो गया। थोड़ी देर बाद अत्यन्त कामलोलुप होने के कारण एकदम कामातुरों की भाँति चौथे मुख का आविर्भाव बाईं ओर हो गया। अपनी इस कामचेष्टा से आकाश की ओर जाने को उद्यत सावित्री के परम मनोरम रूप को देखने की उत्कंठा ब्रह्मा फिर भी नहीं रोक सके। और इस प्रकार सृष्टि के लिये अर्जित ब्रह्मा की परम दारुण तपस्या पुत्री के साथ अभिगमन करने की इच्छा रखने के कारण एकदम व्यर्थ हो गई और इसी पाप के कारण उनके ऊपर की ओर एक अन्य पाँचवें मस्तक का आर्विभाव हुआ, जो चारों ओर से जटाओं से आवृत था। प्रभु ने उसे भी स्वीकार किया। अनन्तर उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि तुम लोग इस पृथ्वी मण्डल पर सब ओर जाकर देव दानव और मनुष्यों की सृष्टि करो। इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर उन पुत्रों ने अनेक प्रकार की सृष्टि रचना प्रारम्भ की। ॥४१-४२॥

सृष्टि के लिए अपने पुत्रों के चले जाने के उपरान्त ब्रह्मा ने उस परम सुन्दरी शतरूपा का पाणिग्रहण किया। और सामान्य कामातुर मनुष्यों की भाँति लज्जा से अवनतमुखी शतरूपा के साथ विशेष कामातुर होकर समुद्र में देवताओं के सौ वर्ष पर्यन्त वे विहार करते रहे। बहुत दिन बीत जाने के बाद शतरूपा से एक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जो विराट स्वायम्भुव मनु के नाम से विख्यात हुआ और अपने पिता ब्रह्मा के रूप और गुण की समानता के कारण अधिपुरुष के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ—ऐसा हमने सुना है। उस वंश में अन्य जो सात-सात अपने नियमों का पालन करनेवाले, महाभाग्यशाली स्वारोचिष तथा औत्तमि प्रमुख स्वायम्भुव मनुगण हुए वे भी ब्रह्मा ही के समान स्वरूप एवं तेजवाले थे। उनमें से तुम सातवें मनु हो ॥४०-४७॥

श्री मात्स्य महापुराण के आदि सर्ग में मुखोत्पत्ति नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

चौथा अध्याय

मनु जी ने पूछा—हे भगवन्! यह अत्यन्त कष्ट का विषय है कि अपनी पुत्री के साथ व्यभिचार किया जाय; पर ऐसा निन्द्य कार्य करने पर भी ब्रह्मा इस दुष्कर्म के दोषी क्यों नहीं हुए? और इस प्रकार सगोत्र का परस्पर विवाह संस्कार कैसे होता था? हे प्रभो! हमारे इस संदेह को दूर कीजिये। ॥१-२॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—मनुजी! इस वर्तमान जगत् की आदिसृष्टि रजोगुणमयी थी, उसमें इन्द्रिय तथा शरीर आदि का सम्बन्ध अगोचर रहता था। हे राजन्! इस प्रकार यह सारी आदि सृष्टि

दिव्य तेजोमयी, एवं दिव्यज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाली है। मांस के पिण्ड से उत्पन्न होने वाला मानव समाज अपनी आँखों से इसे सब ओर से भली भाँति नहीं समझ सकता। जिस प्रकार सर्पों के मार्ग को सर्प, आकाश के मार्ग को आकाशगामी पक्षीगण जान सकते हैं उसी प्रकार दिव्य मार्ग को दिव्य गुणवाले ही जान सकते हैं, मनुष्य नहीं। हे नृपेन्द्र! देवताओं के कार्य (करने योग्य, उचित) और अकार्य (न करने योग्य, अनुचित) शुभ और अशुभ फलों के देनेवाले नहीं होते। इसलिये मनुष्य को इसका विचार करना श्रेयस्कर नहीं। ॥३-६॥

ब्रह्माजी के दोषी न होने का कारण यह भी है कि जिस तरह ब्रह्माजी सभी वेदों के अध्यक्ष हैं, उसी तरह गायत्री भी उनकी अंग स्वरूप कही जाती हैं। इस रहस्य को जानने वाले पण्डित लोग उनके इस मिथुन (जोड़े) को अमूर्त एवं मूर्तिमान दोनों कहते हैं। उनका यह पारस्परिक सम्बन्ध इतना अविच्छेद्य है कि जहाँ पर भगवान् ब्रह्मा निवास करते हैं, वहाँ पर सरस्वती जी भी विद्यमान रहती हैं और जहाँ जहाँ सरस्वती निवास करती हैं, वहाँ वहाँ ब्रह्मा भी विद्यमान रहते हैं। जिस प्रकार छाया विना धूप के कहीं पर नहीं दिखाई देती, उसी प्रकार गायत्री भी ब्रह्मा का सामीप्य कभी नहीं छोड़तीं। हे राजन्! ब्रह्माजी वेदों के अधिकारी माने गये हैं और सावित्री पर उनका पूर्ण आधिपत्य है अतः सावित्री के साथ गमन करने में उन्हें कोई अपराध नहीं लगा। परन्तु इस प्रकार निर्दोष होते हुए भी अपनी अँगजा सावित्री के साथ गमन करने से ब्रह्मा अतिशय लज्जित हुए और अपने इस दुष्कार्य का उत्तरदायी कामदेव को समझकर उसे उन्होंने शाप दिया। काम से कहा कि 'तू ने पराजित करने की इच्छा से मेरे मन को अपने बाणों से क्षुब्ध कर दिया है अतः शीघ्र ही तुम्हारे इस शरीर को महादेव रुद्र जला डालेंगे।' ब्रह्मा के इस कठोर शाप को सुनकर कामदेव ने बड़ी प्रार्थना करके उन्हें प्रसन्न किया और कहा कि 'हे मानियों को मान देनेवाले! आपको इस प्रकार निष्प्रयोजन ही मुझे शाप नहीं देना चाहिये था, क्योंकि आप ही ने मुझे संसार में इस कार्य को करने के लिए उत्पन्न किया है। और आप ही ने प्राचीनकाल में मुझे यह आज्ञा दी थी कि मैं जाकर संसार में सर्वदा स्त्री-पुरुष का कोई भी विचार न कर उनके चित्त को अपने उपायों से क्षुब्ध किया करूँ! इसलिये इस कार्य में तो मैं निरपराध हूँ; पर आपने इसका विचार न कर मुझे इतना भीषण शाप दिया। हे प्रभो! जिस प्रकार मुझे पुनः दूसरा शरीर मिले उसके लिये आप मुझ पर कृपा करें ॥७-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—'कामदेव! वैवस्वत मन्वन्तर में यदु वंशियों के वंश में मेरे ही तेज और पराक्रम के अंशभूत बलराम की उत्पत्ति होगी, जो राक्षसों का विनाश कर द्वारकापुरी में अपना निवासस्थान बनायेंगे। उस समय बलराम ही के समान पराक्रमी और तेजस्वी उनके भाई के पुत्र रूप में तुम उत्पन्न होगे। इस प्रकार द्वारका में जन्म लेकर सम्पूर्ण भोग विलासों को भोगकर, दूसरे जन्म में तुम भरत के वंश में राजा वत्स के पुत्र होगे। और फिर प्रलयकाल तक विद्याधरों के अध्यक्ष हो धर्मपूर्वक सभी सुखों को भोगकर मेरे समीप फिर आवोगे।' ब्रह्मा के इस प्रकार शाप और वरदान को पाकर काम दुःखी और आनन्दित दोनों हुआ और जैसे आया था वैसे ही चला गया ॥१७-२१॥

मनु ने पूछा—भगवन् ! जिनके वंश में कामदेव की उत्पत्ति हुई वह यदु कौन हैं ? महादेव जी ने काम को क्यों और कैसे जलाया ? भरत के वंश में पहले किसकी सृष्टि हुई ? इन सब बातों को लेकर मेरे मन में बड़ा सन्देह है अतः आप प्रारम्भ से इस कथा को मुझे बताइये ॥२२-२३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—राजन् ! ब्रह्मा के आधे शरीर भाग से उत्पन्न होनेवाली ब्रह्मवादिनी मनु की माता गायत्री देवी के संयोग से, जो शतरूपा तथा शतेन्द्रिया के नाम से भी विख्यात थीं, ब्रह्माजी ने रति, मन, तप, बुद्धि, महान् , दिक् और संभ्रम नामक सात सन्तानों की उत्पत्ति की। प्राचीनकाल में ब्रह्माजी के मरीचि आदि जो दस मानस पुत्र थे, यह सर्वज्ञान मय संसार सर्वप्रथम उन्हीं का लीलास्थल था। अनन्तर ब्रह्मा ने त्रिशूल धारण करनेवाले वामदेव का आविर्भाव किया फिर पूर्वजों के भी पूर्वज परम शक्तिमान् सनत्कुमार को उत्पन्न किया। भगवान् वामदेव ने अपने मुख से ब्राह्मणों की, बाहु से क्षत्रियों की, उरु भाग से वैश्यों की तथा पैर से शूद्रों की उत्पत्ति की। इसके उपरांत उन्होंने क्रमशः विजली, वज्र, मेघ, इन्द्रधनुष और छन्दों की रचना की और बाद में जल बरसाने वाले बादलों की सृष्टि की। फिर तीन नेत्रवाले चौरासी करोड़ साध्य गणों को बनाया, जो जरा और मृत्यु के भय से निर्भय थे। इस प्रकार जरा मरण विवर्जित सृष्टि करते हुये वामदेव को ब्रह्माजी ने यह कहकर मना कर दिया कि इस प्रकार की सृष्टि नहीं होती, क्योंकि मंगल और अमङ्गल दोनों जिसमें हों वही सृष्टि प्रशंसनीय है। इस प्रकार उन्होंने मनुष्यों का सृजन नहीं किया। ब्रह्मा के निषेध करने पर सृष्टि कार्य से विरत हो वामदेव सृष्टि के स्थाणु नाम से प्रसिद्ध हुए ॥२४-३२॥

बुद्धिशाली राजा स्वायम्भुव मनु ने अतिशय उग्र तपस्या करके परम सुन्दरी अनन्ता नाम की पत्नी प्राप्त की; जिससे प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। धर्म की सुन्दरी तथा चतुर कन्या सुनृता ने उत्तानपाद प्रजापति के संयोग से अपस्यति, अपस्यन्त, कीर्तिमान् और ध्रुव नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। जिनमें से ध्रुव ने प्राचीनकाल में तीन सहस्त्र वर्ष तक घोर तपस्या करके ब्रह्मा के वरदान से निश्चल एवं दिव्य स्थान की प्राप्ति की। उन्हीं ध्रुव को आगे करके सातों ऋषि अब भी अवस्थित हैं। मनु की धन्या नामक पुत्री ने ध्रुव के संयोग से शिष्ट नामक पुत्र को उत्पन्न किया, और अग्नि की कन्या सुच्छाया ने शिष्ट के संयोग से कृप, रिपुञ्जय, वृत्त, वृक, वृकतेजस् और चक्षु नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। उनमें से रिपुञ्जय ने ब्रह्मा की दौहित्री वीरिणी में चक्षु नामक पुत्र उत्पन्न किया। चक्षु द्वारा वीरणनन्दिनी के गर्भ से चाक्षुष मनु की उत्पत्ति हुई। चाक्षुष मनु ने राजकन्या नड्वला के संयोग से अत्यन्त पराक्रमी निष्पाप यशस्वी ऊरु, पूरु, शतद्युम्न, सत्यवाक् , हवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न, अपराजित और अभिमन्यु नामक दस पुत्रों को उत्पन्न किया। आग्नेयी ने ऊरु के संयोग से अत्यन्त तेजस्वी अग्नि, सुमनस् , ख्याति, क्रतु, अंगिरस और गय नामक छः पुत्रों को उत्पन्न किया। पितरों की कन्या सुनीथा ने अपने पति अंग के संयोग से वेन नामक पुत्र उत्पन्न किया। ब्राह्मणों ने अन्यायी वेन को शाप देकर मार डाला और उसके शरीर का मन्थन किया। जिससे उसके हाथ से महातेजस्वी पृथु नामक एक पुत्र निकला, उसके अन्तर्धान और हविर्धान नामक दो पुत्र उत्पन्न

हुए। अन्तर्धान ने शिखंडिनी नामक पत्नी में मारीच नामक पुत्र उत्पन्न किया और अग्नि की पुत्री धिषणा ने हर्विधान के संयोग से प्राचीनवर्हि; साँग, यम, शुक्र, बल और शुभ नामक छः पुत्रों को उत्पन्न किया। जिनमें से परमतेजस्वी प्राचीनवर्हि प्रजापति थे, उन्होंने हर्विधान नाम से विख्यात प्रजाओं के विस्तृत वंश का विस्तार किया। उन्होंने समुद्र पुत्री सवर्णा में दस पुत्रों को उत्पन्न किया जो सब के सब धनुर्विद्या में निष्णात थे और जिनका समुदाय प्रचेता नाम से विख्यात था। हे रविनन्दन! इन्हीं प्रचेताओं के तपोबल के प्रभाव से संसार में वृक्ष शोभा देते थे; पर देवताओं की आज्ञा से अग्नि ने उन्हें जला दिया। चन्द्रमा की मारीषा नामक कन्या इन प्रचेताओं की पत्नी हुई, जिसने इन सबों के संयोग से सर्वप्रथम दक्ष नामक पुत्र को उत्पन्न किया। दक्ष की उत्पत्ति के बाद मारीषा ने सृष्टि के सभी वृक्षों, औषधियों तथा चन्द्रावती नामक नदी को उत्पन्न किया। चन्द्रमा के अंश से उत्पन्न होनेवाले इस दक्ष प्रजापति की अस्सी करोड़ सन्तानें हुईं, जिनका विस्तार सृष्टि भर में फैला हुआ है और जिन्हें मैं आगे चलकर कहूँगा। दक्ष की इन विस्तीर्ण सन्तानों में कोई दो पैर का है तो कोई अनेक पैरों वाला है, कोई टेढ़े मुख का है तो कोई खूँटे के समान कानों वाला है, और किसी का कान इतना चौड़ा है कि कर्णछिद्र को ढँके जा रहा है। किसी का मुख घोड़े के समान है तो कोई रीछ, सिंह, कुत्ता, सुअर और ऊँट आदि चौपायों जैसे मुख वाले हैं। इस प्रकार धर्मात्मा दक्ष ने प्रथमतः अनेक प्रकार के कुरूप और म्लेच्छ पुरुषों की उत्पत्ति मानसिक इच्छा से की और बाद में उसी प्रकार कन्याओं का सृजन किया। जिनमें से दस धर्म को, तेरह कश्यप को, नक्षत्र नाम से विख्यात अश्विनी भरणी आदि सत्ताइस चन्द्रमा को समर्पित की। इन्हीं कन्याओं द्वारा जगत् में देवता, राक्षस तथा मनुष्यों की सृष्टि का विपुल विस्तार हुआ। ॥२३-५५॥

श्री मात्स्य महापुराण के आदि सर्ग में चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥४॥

पाँचवाँ अध्याय

ऋषियों ने पूछा—सूत जी! देवता, दानव, गन्धर्व, नाग तथा राक्षस-इन सब की सृष्टि किस प्रकार हुई? हमें विस्तारपूर्वक सुनाइये ॥१॥

सूत ने कहा—हे ऋषिगण! प्राचेतस दक्ष प्रजापति के अनन्तर सृष्टि का विस्तार मैथुन कर्म द्वारा होने लगा; किन्तु इनके पहले पूर्वजों में संकल्प, दर्शन अथवा स्पर्शमात्र से ही सृष्टि होती थी। पूर्वकाल में ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति ने सृष्टि करने की आज्ञा प्राप्त कर प्रारम्भ में जिस प्रकार सृष्टि रचना की उसे आप लोग सुनिये। जब उपर्युक्त तीनों प्रकारों से देवता, ऋषि तथा नागों के सृष्टि विस्तार करते हुए जीवों की संख्या में विशेष वृद्धि न हुई तो दक्ष ने मैथुन कर्म द्वारा पाँचजनी नामक पत्नी में एक सहस्र हर्यश्व नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। दक्ष के इन हर्यश्व नामक पुत्रों को सृष्टि कर्म के लिए उत्सुक देखकर अनेक प्रकार की सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा से महाभाग्यशाली नारद जी ने उनसे कहा—हे ऋषिगण!

आप लोग इस पृथ्वी के विस्तृत खण्डों को ऊपर-नीचे भली भाँति जान-बूझ कर, भिन्न-भिन्न स्थानों में जा-जाकर सन्तानोत्पत्ति कीजिए। नारद की बातें सुनकर उन लोगों ने विभिन्न दिशाओं की ओर प्रस्थान किया और जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में मिल जाने के बाद फिर नहीं लौटतीं वे आज तक उन अपने-अपने स्थानों से नहीं लौटे। अपने हर्यश्व नामक पुत्रों के इस प्रकार अदृश्य हो जाने पर दक्ष प्रजपति ने पुनः पत्नी वैरिणी में एक सहस्र शबल नामक पुत्रों को उत्पन्न किया, जो सबके सब सृष्टि विस्तार के लिए पुनः नारद के साथ हो लिये। नारद ने अपने पीछे आने वाले इन ब्रह्मर्षियों को फिर पहले की भाँति बातें बतलाईं और कहा कि हे ऋषियो! आप लोग जा-जाकर इस निखिल ब्रह्माण्ड के सभी खण्डों में घूम आइए और अपने ज्येष्ठ भाइयों का पता लगाइये, फिर यहाँ लौटकर सृष्टि का विशेष विस्तार कीजिए! दक्ष प्रजापति के इन पिछले पुत्रों ने भी अपने बड़े भाइयों के जानेवाले मार्ग से यात्रा प्रारम्भ की, और ज्येष्ठ भाइयों की सी उनकी भी गति हुई, तब से यह नियम प्रचलित हो गया कि छोटा भाई अपने बड़े भाई के मार्ग को नहीं ग्रहण करता, क्योंकि ग्रहण करने से दुःख पाता है। इसलिए बड़े भाई का मार्ग छोटे भाइयों के लिए वर्जित किया गया है ॥२—११॥

अपने पिछले पुत्रों के भी नष्ट हो जाने पर प्राचेतस दक्ष प्रजापति ने वैरिणी में फिर साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं, जिनमें से दस धर्मराज को, तेरह कश्यप को, सत्ताइस चन्द्रमा को, चार अरिष्टनेमि को, दो भृगुनन्दन को, दो विद्वान् कृशाश्व को और दो अङ्गिरा को समर्पित किया! इन उपर्युक्त साठ देवमाताओं के नाम तथा इनकी सन्तानों का विस्तार प्रारम्भ से जिस प्रकार हुआ उसे विस्तारपूर्वक आप लोग सुनिये। इनमें से धर्मराज की वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, अरुन्धती, संकल्पा, मुहूर्त्ता, साध्या, और विश्वा, नामक दस स्त्रियाँ थीं। उनके पुत्रों का भी नाम सुनिये! धर्मराज की इन सब स्त्रियों में विश्वा ने दस देवों, साध्या ने बारह साध्यों, मरुतों ने उनचास मरुतों, वसु ने आठ वसुओं, भानु ने बारह भानुओं, मुहूर्त्ता ने मुहूर्त्तक, लम्बा ने घोष, यामी ने नागवीथी तथा संकल्पा ने संकल्प नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। अरुन्धती से इस पृथ्वी पर रहनेवाले समस्त जीवजन्तुओं की उत्पत्ति हुई। अब इसके अनन्तर वसुओं की सृष्टि सुनिये। दसों दिशाओं में सभी ओर से प्रकाशमान तथा सर्वत्र व्याप्त जो देवगण हैं उन्हें वसु कहते हैं, उनकी सृष्टि-विस्तार की कथा सुनिये! आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास—ये आठ वसुओं के नाम हैं! प्रथम वसु आप के शान्त, दण्ड, शाम्ब और मणिवक्त्र नामक पुत्र उत्पन्न हुए, जो चारों यज्ञ-रक्षा के अधिकारी हैं। शेष वसुओं में से ध्रुव के काल, तथा सोम के वर्च नामक पुत्र उत्पन्न हुए। धर की कल्याणिनी नामक पत्नी में द्रविण और हव्यवाह नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। और हरि की कन्या मनोहरा ने धर के संयोग से प्राण, शिशिर तथा रमण नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। शिवा नामक अनल की पत्नी ने अपने पति के संयोग से अग्नि के समान गुणोंवाले मनोजव और अविज्ञातगति नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया। अग्नि के अन्य पुत्र कुमार की उत्पत्ति तो शर (सरपतों) के स्तम्ब (गुच्छों) में हुई थी। उनके शाख, विशाख तथा नैगमेय नामक तीन छोटे भाई थे।

कृत्तिका की सन्तति होने के कारण ये कार्तिकेय नाम से भी विख्यात हुए । प्रत्यूषस् वसु के विभु और देवल नामक पुत्र हुए । प्रभास के विश्वकर्मा नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो शिल्प विद्या में अतिशय निपुण प्रजापति था । देवताओं के राजभवन, उद्यान, मूर्ति, आभूषण, वापी, तड़ाग, वाटिका आदि के निर्माण एवं अलंकरण में वह अमरवर्द्धकि (देवताओं के बढ़ई, या कारीगर) के नाम से विख्यात था । अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित—ये एकादश रुद्र गणेश्वर के नाम से विख्यात हैं । इन सब त्रिशूल धारण करनेवाले मानस रुद्रों के चौरासी करोड़ पुत्र हुए, जो सब के सब अक्षय माने जाते हैं अर्थात् जिनका कभी नाश नहीं होता । सुरभी के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले एकादश रुद्रों के ये पुत्र पौत्रादि, जो गणेश्वर कहे जाते हैं, इस चराचर जगत् की रक्षा करते हैं । ॥१२-३२॥

श्री मत्स्य महापुराण के आदि सर्ग में वसु एवं रुद्रगणों का वंश विस्तार वर्णन नामक
पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

छठाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण ! अब मैं कश्यप ऋषि की स्त्रियों से उत्पन्न होने वाले पुत्र पौत्रादि का वर्णन करूँगा । महर्षि कश्यप की अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरषा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, विश्वा और मुनि नामक तेरह स्त्रियाँ थीं । उनके पुत्रों का वर्णन सुनिये । चाक्षुष मनु के समय में तुषित नामक जो देवगण थे वे वैवस्वत मनु के समय में बारह आदित्यों के नाम से विख्यात हुए । इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, विवस्वान्, वरुण, यम, सविता, पूषा, अंशुमान और विष्णु नामक सहस्र किरणों वाले ये बारह आदित्य कहे जाते हैं, इन्हें अदिति ने मरीचिनन्दन कश्यप के संयोग से उत्पन्न किया था । महर्षि कृशाश्व के पुत्र देवप्रहरण के नाम से विख्यात हैं, जो प्रत्येक मन्वन्तर एवं कल्पों में उत्पन्न और विलीन होते हैं । हमने ऐसा सुना है कि कश्यप की स्त्री दिति ने उनके संयोग से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया । हिरण्यकशिपु के उसी के समान तेजस्वी एवं पराक्रमी प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद तथा ह्लाद नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए । जिनमें से प्रह्लाद के आयुष्मान्, शिवि, बाष्कल और विरोचन नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए । इनमें से चतुर्थ पुत्र विरोचन से महापराक्रमी बलि नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । ऋषिगण ! बलि के सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें से बाण सबसे ज्येष्ठ था । उसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, चन्द्रांशुतापन, निकुम्भनाभ, गुर्वक्ष, कुक्षिभीम, विभीषण, तथा इसी प्रकार के अन्यान्य पराक्रमी पुत्रों की भी उत्पत्ति हुई, जो सब ही श्रेष्ठ गुणोंवाले थे । किन्तु इन सब में ज्येष्ठ तथा सहस्रबाहु बाण सब प्रकार की अस्त्र-शस्त्र विद्याओं में निपुण था, उसकी घोर तपस्या से संतुष्ट होकर महादेव सर्वदा उसी नगरी में निवास करते थे, जहाँ वह रहता था । बाण ने अपनी उग्र तपस्या के

प्रभाव से महाकाल पद की प्राप्ति कर ली थी, जो शंकर की बराबरी के समान है ॥१-१२॥

दिति के द्वितीय पुत्र हिरण्याक्ष से उलूक, शकुनि, भूतसंतापन और महानाभ नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई। इन सबों के पुत्र-पौत्रादिकों की संख्या बढ़कर सतहत्तर करोड़ तक पहुँच गई, जिनमें से सबके सब-बलवान्, तेजस्वी, रूप गुण सम्पन्न एवं विशाल आकारवाले थे। कश्यप की तीसरी पत्नी दनु ने अपने पति के संयोग से अत्यन्त बलशाली सौ पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनमें से विप्रचित्ति नामक पुत्र सबों का प्रधान था। अन्य शेष पुत्रों में से द्विमूर्धा, शकुनि, शंकुशिरोधर, अयोमुख, शम्बर, कपिश, वामन मारीच, मेघवान्, इरागर्भशिरा, विद्रावण, केतु, केतुवीर्य, शतरुद्र, इन्द्रजित्, सप्तजित्, वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु, वज्राक्ष, तारक, असिलोमा, पुलोमा, विन्दु, महाराक्षस बाण, स्वर्भानु और वृषपर्वा आदि के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। स्वर्भानु की प्रभा, मय की उपदानवी, मन्दोदरी तथा कुहू, वृषपर्वा की शर्म्मिष्ठा, सुन्दरी और चन्द्रा, वैश्वानर की पुलोमा तथा कालका नामक कन्याएँ थीं। महान् बलशालिनी तथा अनेक पुत्रों वाली पुलोमा और कालका मारीच की स्त्रियाँ थीं, प्राचीनकाल में इनके द्वारा उत्पन्न दानवों की संख्या साठ सहस्र हो गई। इन वैश्वानर की कन्याओं से मारीच ने पौलोम और कालकेय उपाधिधारी हिरण्यपुर निवासी दानवों को उत्पन्न किया, जिनका विनाश विजय (अर्जुन) ने किया था, क्योंकि वे ब्रह्मा के वरदान के माहात्म्य से देवताओं द्वारा नहीं मारे जा सकते थे। दनु के सर्वश्रेष्ठ पुत्र विप्रचित्ति ने सिंहिका के संयोग से सैंहिकेय नामक पुत्रों को उत्पन्न किया, जो सुप्रसिद्ध हिरण्यकशिपु के भानजे थे और जिनकी संख्या तेरह थी। उनके नाम व्यंस, कल्प, राजेन्द्र, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि, श्वसृप, अजन, नरक, कालनाभ, सरमाण तथा कालवीर्य थे, ये सब ही दनु वंश के विस्तार करनेवाले थे। हिरण्यकशिपु के पुत्र संह्लाद नामक दैत्य के निवातकवच कहे जाने वाले अतिशय बलशाली पुत्र हुए, उनका भी संहार शिव की सहायता प्राप्त कर तेजस्वी अर्जुन ने किया था, क्योंकि वे सबके सब देवताओं, गन्धर्वों, नागों, एवं राक्षसों द्वारा नहीं मारे जा सकते थे। ताम्रा ने अपने पति मरीचिनन्दन कश्यप के संयोग से शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, गृध्रिका तथा शुचि नामक छः कन्याओं की उत्पत्ति की। जिनमें से शुकी ने धर्म के संयोग से शुकों तथा उलूकों को, श्येनी ने श्येनों (बाजपक्षी) को, भासी ने कुररों (एक प्रकार का बाज पक्षी) को, गृध्रिका ने गृध्र, कपोत, पारावत, हंस, सारस और क्रौञ्च आदि पक्षियों को, सुग्रीवी ने अज (छाग) अश्व, मेष (भेंड़ें), उष्ट्र (ऊँट) और खरों को उत्पन्न किया। ताम्रा के इस वंश विस्तार को मैं कह चुका अब विनता के वंशधरों का वृतान्त सुनिये। ॥१३-३३॥

विनता के दो पुत्र गरुड़ तथा अरुण आकाशगामी छोटे-बड़े सभी पक्षियों के स्वामी हैं, उसकी तीसरी सन्तान सौदामिनी (विद्युत) है, जो नभ में विख्यात है। विनता के इन पुत्रों में अरुण के सम्पाति और जटायु नामक दो पुत्र थे। जिनमें से सम्पाति के पुत्र बभ्रु और शीघ्रग के नाम से विख्यात हुए। दूसरे पुत्र जटायु के कर्णिकार और शतगामी नाम से विख्यात दो पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनों के अतिरिक्त सारस, रज्जुवाल और भेरुण्ड नामक जटायु के अन्य पुत्र भी थे। इन सबों के पुत्र पौत्रादि की संख्या अगणित है।

हे शत्रुसूदन ! महर्षि कश्यप की अन्य पत्नी सुरसा से सहस्र फणवाले एक सहस्र सर्पों की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार कद्रू से भी एक सहस्र शिरोंवाले सर्पों की उत्पत्ति हुई। इन सर्पों में से जो छब्बीस प्रमुख माने गये हैं उनके नाम ये हैं—(१) शेष (२) वासुकि (३) कर्कोट (४) शंख (५) ऐरावत (६) कम्बल (७) धनञ्जय (८) महानील (९) पद्म (१०) अश्वतर (११) तक्षक (१२) एलापत्र (१३) महापद्म (१४) धृतराष्ट्र (१५) बलाहक (१६) शंखपाल (१७) महाशंख (१८) पुष्पदंष्ट्र (१९) शुभानन (२०) शंकुरोम (२१) बहुल (२२) वामन (२३) पाणिनि (२४) कपिल (२५) दुर्मुख तथा (२६) पतंजलि। इन सभी सर्पों के पुत्र-पौत्रादि की संख्या अगणित थी; पर उनमें से प्रायः सभी ऋषियों द्वारा जन्मेजय के नागयज्ञ में जला डाले गये। कश्यप की अन्य स्त्री क्रोधवशा ने अपने ही नामों वाले (क्रोधवश नामक) राक्षस-समूहों को उत्पन्न किया, जिनमें से एक लाख दाढ़वाले भीमसेन द्वारा नष्ट किये गये। पतिव्रत-परायणा सुरभी ने अपने पति महर्षि कश्यप के संयोग से उपर्युक्त रुद्रगणों को तथा उसी प्रकार सुडौल अंगवाले गौ तथा महिषी आदि को भी उत्पन्न किया। अन्य पत्नी मुनि ने मुनियों तथा अप्सराओं के समूहों को तथा अरिष्टा ने अनेक किन्नर गन्धर्व आदि देवयोनियों को उत्पन्न किया। इरा नामक अन्य पत्नी ने इस जगत् के सभी प्रकार के तृण, वृक्ष, लता गुल्म आदि की उत्पत्ति की। इसी प्रकार विश्वा ने करोड़ों यक्ष तथा राक्षसों को और दैत्यों की माता दिति ने उनचास मरुतों को उत्पन्न किया, जो सब के सब बड़े धर्मात्मा तथा देवताओं के प्रेमपात्र हुए। ॥३४—४७॥

श्री मात्स्य महापुराण के आदि सर्ग में कश्यपवंश वर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ॥६॥

सातवाँ अध्याय

ऋषियों ने पूछा—सूत जी ! दैत्यों की माता दिति के पुत्र उनचास मरुत् गण भला देवताओं के प्रेमपात्र कैसे बन गये ? और उन मरुतों की अपने सौतेले भाई देवताओं से ऐसी प्रगाढ़ मैत्री कैसे हो गई ? ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! प्राचीनकाल में दैत्यों की माता दिति ने भगवान् विष्णु द्वारा देवासुर संग्राम में अपने पुत्र पौत्रादिकों के नाश होजाने पर शोक से विह्वल होकर ऋषियों की भाँति पवित्र नियमों से युक्त हो फलाहार आदि कर सरस्वती नदी के किनारे स्यमन्त पञ्चक क्षेत्र में अपने आराध्य पति महर्षि कश्यप की सेवा में निरत रह घोर तपस्या की थी। उस समय उसने चान्द्रायण आदि व्रतों का भी नियमपूर्वक पालन किया था। इस प्रकार वृद्धावस्था में शोकाकुल होने पर भी दिति ने सौ वर्षों तक अपनी यह उग्र तपस्या चालू रखी। इसके उपरान्त वसिष्ठ आदि ऋषियों से उसने पूछा कि हे महर्षिगण ! आप लोग पुत्र-पौत्रादि के शोक को नाश करनेवाले तथा ऐहिक पारलौकिक—दोनों प्रकार के कल्याणों को देनेवाले किसी व्रत का विधान मुझे बतलाइये। दिति के अनुरोध पर वसिष्ठ आदि ऋषियों ने उसे मदनद्वादशी व्रत का

विधान बतलाया, जिसके अमोघ प्रभाव से दिति अपने पुत्र-पौत्रादि के शोक से उन्मुक्त हो गई ॥२-७॥

ऋषियों ने पूछा—सूत जी! हम लोग भी उस मदनद्वादशी व्रत के विधान को सुनना चाहते हैं, जिसके प्रभाव से दिति नें फिर उनचास पुत्रों को उत्पन्न किया ॥८॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! वसिष्ठ आदि ऋषियों ने जिस मदनद्वादशी व्रत का विधान दिति को बताया था, उसी को मैं आपलोगों से कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये। इस व्रत के विधान का पालन करने वाला सर्व प्रथम संयतेन्द्रिय होकर चैत्र महीने के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि को श्वेत चावलों से भरे हुए एक विना फूटे हुए कलश की स्थापना करे, जो अनेक प्रकार के सुस्वादु फलों से युक्त हो। ईख के टुकड़े जिसमें रखे गये हों तथा दो श्वेत-वस्त्रों से जो विधिवत् अलंकृत हो। अपनी शक्ति के अनुकूल उसमें सुवर्ण छोड़ दे और ताम्र के पात्र में गुड़ रखकर उसको ऊपर से ढँक दे। फिर उसके ऊपर केले के पत्तों में काम का तथा शर्करा में रति का आवाहन करके स्थापना करे। इसके उपरान्त उस घट की गन्ध, धूप, दीप आदि उपचारों से पूजा करके नाच गान आदि का प्रबन्ध करे। यदि सामर्थ्य के अभाव से नाच गान आदि का प्रबन्ध न करा सके तो कामदेव तथा विष्णु भगवान् की कथा कराये। फिर काम के नाम से विष्णु भगवान की मूर्ति को सुगन्धित जल से स्नान कराकर श्वेत पुष्प, अक्षत तथा तिल से मधुसूदन की विधिवत् पूजा करे। इसके पश्चात् "पैरों में कामदेव, जँघाओं में सौभाग्य देने वाले, उरु भाग में स्मर, कटि प्रदेश में मन्मथ, उदर में स्वच्छ उदर वाले, हरि के उरुओं में अनंग, मुख में पद्ममुख, बाहुओं में पंचशर, और मस्तक में सर्वात्मा कामदेव को हमारा नमस्कार है"—ऐसा कहकर केशव की पूजा करे और प्रातःकाल होने पर उस कलश को ब्राह्मण को दान कर दे। फिर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराये और स्वयम् विना नमक का भोजन करके ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा दे और इस मंत्र का उच्चारण करे। "संसार के समस्त प्राणियों के हृदय में आनन्द स्वरूप होकर निवास करनेवाले जो कामरूपी भगवान् जनार्दन हैं, अर्थात् जिनसे लोग अपनी इच्छा पूर्ति किया करते हैं, वे हमारे इस अनुष्ठान में प्रसन्न हों।" इस प्रकार चैत्र शुक्ल द्वादशी से प्रारम्भ कर के प्रत्येक मास की शुक्ल चतुर्दशी को व्रत रख कर त्रयोदशी को कभी नाश न होनेवाले भगवान् विष्णु की पूजा करे। जिस द्वादशी तिथि को व्रत रहे उस दिन केवल एक फल खाकर पृथ्वी पर ही शयन करे। इसके पश्चात् फिर तेरहवें मास के आने पर घृत, धेनु, सब प्रकार की सुन्दर सामग्रियों के साथ एक सुन्दर शय्या, स्वर्णमयी कामदेव की प्रतिमा, दूध देनेवाली एक श्वेत रंग की गाय कामदेव को दे, (कामदेव के उद्देश से ब्राह्मण को दान करे) फिर ब्राह्मण दम्पति की अपनी शक्ति के अनुकूल आभूषण तथा वस्त्र आदि से अलंकृत कर विधिवत् पूजा करे और शय्या तथा सुगन्धित द्रव्य इत्र आदि समर्पित कर उनसे कहे कि 'आप प्रसन्न हों।' इसके पश्चात् धर्म में चित्त लगाकर गाय के घृत खीर आदि अनेक प्रकार की आहुतियों तथा श्वेत तिलों से कामदेव के विविध नामों का उच्चारण करके हवन करे। फिर कंजूसी छोड़कर ब्राह्मणों को भोजन कराये और उन्हें ईख के टुकड़ों तथा फूलों की मालाओं से खूब सन्तुष्ट करे। जो कोई मनुष्य इन उपर्युक्त

विधि विधानों से मदनद्वादशी व्रत का नियम रखता है वह अपने सम्पूर्ण अर्जित पापों से छुटकारा पाकर विष्णुत्व की प्राप्ति करता है। जो कोई प्राणी आनन्दमेय, समस्त संसार के अधीश्वर, विष्णुस्वरूप भगवान् कामदेव का विधिवत् स्मरण करता है वह इस लोक में श्रेष्ठ पुत्रों को प्राप्तकर सौभाग्य का सम्पूर्ण फल भोगता है। इसलिए हे दिते ! सुख की इच्छा करनेवाले प्राणियों को सर्व समर्थ भगवान् का कामरूप से अवश्य स्मरण करना चाहिए। क्योंकि जो स्मर हैं, वही विष्णु तथा आनन्दस्वरूप महेश्वर हैं।' इस प्रकार वशिष्ठ आदि ऋषियों की बातें सुनकर दिति ने विधानपूर्वक मदनद्वादशी व्रत का पालन किया। ॥९–२१॥

दिति के इस मदनद्वादशी व्रत-पालन के माहात्म्य से प्रभावित होकर महर्षि कश्यप सहर्ष आकर उसे कृशाङ्गिनी से रूप एवं यौवनवती बनाकर वरदान माँगने का अनुरोध करने लगे। दिति ने पति की आज्ञा पाकर इन्द्र का वध करने के लिए अत्यन्त पराक्रमी तथा शक्तिसम्पन्न पुत्र को प्राप्त करने का वरदान माँगते हुए कहा—'हे स्वामिन् ! मैं सम्पूर्ण देवताओं का अकेले ही नाश कर देनेवाले महान् पराक्रमी एक पुत्र का वरदान आप से चाहती हूँ।' महर्षि कश्यप ने दिति की प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा—'हे कल्याणि ! सत्कर्म-परायणे ! मैं अवश्य तुम्हारे इस वरदान को पूर्ण करूँगा पर इसके लिए हे सुव्रते ! तुम आज ही आपस्तम्ब ऋषि द्वारा एक पुत्रेष्टि यज्ञ कराओ। यज्ञान्त में मैं तुम्हारे पुत्रों के परम शत्रु इन्द्र आदि देवगणों का नाश करने वाले शक्तिमान् पुत्र का गर्भाधान तुम में करूँगा।' पति की आज्ञा प्राप्तकर दिति ने प्रचुर धन लगाकर आपस्तम्ब द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान करवाया और हवन में 'इन्द्र-शत्रु उत्पन्न हो' ऐसा कहते हुए आहुति छोड़ी। किन्तु देवताओं को जब यह विदित होगया कि इसके सत्परिणाम से दानव तथा राक्षसगण विमुख होंगे अर्थात् उनका कल्याण नहीं होगा, तो वे विशेष प्रसन्न हुए। यज्ञ की समाप्ति के बाद महर्षि कश्यप ने दिति में गर्भाधान संस्कार किया और उससे कहा—हे वरानने ! इस गर्भ की रक्षा के लिए तुम्हें सौ वर्ष तक इस तपोवन में विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है। गर्भावस्था में तुम्हें संध्या के समय भोजन नहीं करना चाहिए; वृक्षों की जड़ों पर न बैठना चाहिए न तो उनके पास ही जाना चाहिए, घरेलू सामग्रियों—जैसे मूसल, उलखल, आदि पर नहीं बैठना चाहिए। तालाब, नदी आदि के जल में प्रवेश नहीं करना चाहिये; सुनसान घर में नहीं रहना चाहिये। साँप आदि विषैले जानवरों की बिलों पर नहीं बैठना चाहिये। चित्त को खिन्न या उदास नहीं करना चाहिये। नखों, लकड़ी के अधजले टुकड़ों तथा राखों से पृथ्वी पर चिह्न नहीं बनाना चाहिये। आलस्यवश होकर सदा निद्रालु मत बनी रहना; विशेषशारीरिक श्रम भी मत करना; राख हड्डी तथा कपाल आदि पर न बैठना। लोगों से वाद विवाद न करना; अंगोंको तोड़ना-मरोड़ना नहीं, शिर के बालों को खोलकर मत बैठना, कभी अपवित्र न रहना, शिर को नीचे की ओर करके शयन न करना। उत्तर दिशा की ओर शिर करके न सोना। खिन्न मन, भीगे पैरों तथा नग्न होकर भी कभी शयन न करना। अमांगलिक शब्द, शाप अथवा गाली-गलौज की बातें भी मुँह पर न लाना, अधिक हास्य भी मत करना। सर्वदा मांगलिक कार्यों में दत्तचित्त हो पति सेवा में तत्पर रहना। गर्भवती स्त्रियों के लिए जो लाभदायक औषधियाँ बतलाई गई हैं, उनको जल में छोड़कर गर्म करके स्नान

करना। अपने शरीर की रक्षा में विशेष ध्यान देना, सर्वदा स्वच्छ वस्त्र आदि से सुशोभित होकर प्रसन्न मुखी बनी रहना। वास्तु की पूजा में मन लगाना, पति को सुख पहुँचानेवाले कार्यों का ध्यान रखना, प्रत्येक तृतीया को दान देना और पार्वण्य[1] तथा नक्त[2] व्रतों का पालन करना। सभी गर्भिणी स्त्रियों को इन उपर्युक्त नियमों का विशेष रूप से पालन करना चाहिये, इस प्रकार नियम आदि के पालन करने पर गर्भिणी का भावी शिशु विशेष आयुवाला तथा शीलवान् होगा। अन्यथा इन नियमों के व्यतिक्रम करने से निश्चय ही गर्भपात होने की सम्भावना बनी रहती है। हे प्रिये! तुम्हें इन नियमों का पालन गर्भस्थ शिशु के कल्याण के लिए अवश्य विधिपूर्वक करना चाहिये। तुम्हारा कल्याण हो 'अब मैं जा रहा हूँ।' दिति ने कहा—'आर्यपुत्र! मैं अवश्य इन नियमों का पालन करूँगी।' तदनन्तर महर्षि कश्यप वहीं सब प्राणियों के देखते-देखते अन्तर्धान होगये। दिति भी कश्यप के बताये गये इन नियमों का कठोरता से पालन करते हुए दिन बिताने लगी। ॥३०–४९॥

दिति की इन कार्यवाहियों की सूचना पाकर इन्द्र बहुत भयभीत होगये। और कपट से उसके छिद्रमार्ग द्वारा उदर में प्रवेश पाने की इच्छा से ऊपर से कपट सेवा करने का भाव प्रकट करते हुए वे अमरावती पुरी छोड़कर दिति के समीप में ही आकर निवास करने लगे। प्रकट रूप में दिखाने के लिए वे अत्यन्त शान्त, विनीत तथा धैर्य सम्पन्न बने रहते थे और बेचारी दिति के स्वार्थ की कोई चिन्ता न कर अपने ही कल्याण साधन में सदा दत्तचित्त रहते थे। इस प्रकार इन्द्र के साथ विश्वास एवं सुखपूर्वक दिति का समय बीतने लगा। अन्त में जब सौ वर्ष में केवल तीन दिन शेष रह गये तब दिति अपने को सफल मनोरथ समझ बैठी। हर्ष से पुलकित हो असावधानी से विना पैरों को धोये, केशों के बन्धन को छोड़कर वह निद्रा से विह्वल हो, शिर को नीचे किये हुए दिन में ही शयन करने लगी। इसी समय उपयुक्त अवसर आया देख इन्द्र ने उसके छिद्र द्वारा उदर में प्रवेश किया और अपने वज्र से गर्भस्थ शिशु को काटकर सात टुकड़ों में परिणत कर दिया। पर काटे जाने के बाद भी सूर्य के समान चमकनेवाले तेजोमय वे शिशुखण्ड सात बालकों के रूप में परिणत होगये और रोने लगे। बच्चों को रोता देख इन्द्र ने उन्हें रुदन करने से मना किया, पर वे फिर भी चुप न हुए। और इस प्रकार रोते देख इन्द्र ने उन एक-एक को फिर सात-सात टुकड़ों में काट डाला। इस प्रकार उनकी संख्या सात से बढ़कर उनचास हो गयी और वे सबके सब मिलकर और अधिक रुदन करने लगे। इन्द्र ने उन सब शिशुओं को बार-बार चुप रहने का आदेश दिया पर वे फिर भी चुप नहीं हुए। तब इन्द्र सोचने लगे कि यह बात क्या है? किस पुण्य कर्म के माहात्म्य से ये मेरे वज्र द्वारा काटे जाने पर भी फिर से जीवित हो उठते हैं? कुछ देर बाद योगदृष्टि से मदनद्वादशी व्रत के पुण्य फल को जानकर इन्द्र ने सोचा 'निश्चय ही भगवान् कृष्ण की पूजा के प्रभाव से इन्हें यह

---

[1] पूर्णिमा आदि विशेष-विशेष पर्वों पर होनेवाले वे त्योहार, जो व्रत के लिए विशेष प्रशस्त माने गये हैं।

[2] एक प्रकार का व्रत, जिसमें सारा दिन व्रत रहकर रात में चार घड़ी रात बीतने पर पारणा की जाती है।

अमोघ शक्ति प्राप्त हुई है, जिस से वज्र द्वारा काटे जाने पर भी ये नष्ट नहीं हुए। और इस प्रकार गर्भ दशा में होने पर भी एक से उनचास हो गये। निश्चय ही ये सब के सब अवध्य हैं। मेरी इच्छा है कि इन्हें अमरत्व की प्राप्ति हो। और भी, यतः मैंने गर्भ में इन्हें 'मा रुदत' मा रुदत,' (मत रोओ, मत रोओ) यह कहकर चुप कराया है, अतः इनका नाम मरुत् पड़े और यज्ञादि देव कार्यों में इन्हें भी उचित स्थान मिले।' ऐसा निश्चय कर इन्द्र उदर के बाहर आये और दिति से अपने इस महान् अपराध को क्षमा कराने के लिए बड़ी प्रार्थना की। उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करते हुए उन्होंने कहा 'हे जननि! मैंने कुत्सित स्वार्थवश होकर ऐसा अनर्थकारी कार्य किया है, मुझे क्षमा करो।' दयालु दिति से क्षमा प्राप्त हो जाने पर देवराज इन्द्र ने मरुतों को देवताओं की समानता का पद प्रदान किया। और सब पुत्रों समेत दिति को अपने विमान पर चढ़ाकर स्वर्ग को ले गये। ऋषिगण! इसके उपरान्त वे मरुत्गण यज्ञों में भाग प्राप्त करने के अधिकारी हुए और इसी कारण देवताओं के प्रेमपात्र होने से असुरों के साथ भाई होने पर भी उन लोगों ने एकता का नाता नहीं जोड़ा। ॥५०–६५॥

श्री मात्स्य पुराण के आदिसर्ग में मरुत् गणों की उत्पत्ति के प्रसंग में मदनद्वादशी व्रत वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

आठवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! आप आदिसर्ग[1] तथा प्रतिसर्ग[2] की बातें तो हम लोगों को विस्तारपूर्वक बता चुके। अब जो जिन वर्गों के स्वामी हुए उन्हें हमें बतलाइए। ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! जिस समय जगत् पितामह ब्रह्मा ने इस सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल के अधिनायकत्व पर राजा पृथु को अभिषिक्त किया, उसी समय औषधि, यज्ञ, व्रत, तपस्या, नक्षत्र, तारागण, द्विज, वृक्ष तथा लताओं के अध्यक्ष पद पर चन्द्रमा को अभिषिक्त किया। इसी प्रकार उस समय जल की अध्यक्षता वरुण को, धन की कुबेर को, द्वादश आदित्यों की विष्णु को, आठ वसुओं की अग्नि को, प्रजापतियों की दक्ष प्रजापति को, मरुतों की इन्द्र को, दैत्यों और दानवों की प्रह्लाद को, पितरों की यमराज को, पिशाच, राक्षस, भूत, प्रेत, बेताल और यक्ष आदि की शूलपाणि को, पर्वतों की हिमालय को, नदी और नदों की समुद्र को, गन्धर्वों, विद्याधरों और किन्नरों की चित्ररथ को, नागों की अत्यन्त तेजस्वी वासुकि को, सर्पों की तक्षक को, पक्षियों की गरुड़ को, अश्वों की उच्चैःश्रवा को, मृगों (जंगली जानवरों) की सिंह को, गौओं की बैल को, सम्पूर्ण वनस्पतियों की पाकड़ को दी। दसों दिशाओं के दिक्पालों को भी पूर्व आदि

---

१. ईश्वर कृत सर्वप्रथम सृष्टि कार्य।

२. आदि सृष्टि के अनन्तर दक्ष प्रभृति प्रजापतियों द्वारा विस्तारित सृष्टि कार्य।

दिशाओं की अध्यक्षता पर अभिषिक्त किया। इनमें से सुधर्मा अरातिकेतु को पूर्व दिशा का स्वामी बनाया, इसके उपरान्त दक्षिण दिशा का आधिपत्य शंखपद सर्वेश्वर को दिया। इसी प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड को अपने में अन्तर्भूत करनेवाले भगवान् ब्रह्मा ने केतुमान को पश्चिम दिशा का अध्यक्ष बनाया, फिर हिरण्यरोमा देवसुत को उत्तर दिशा का स्वामित्व प्रदान किया। ये उपर्युक्त दिशाओं के दिक्पालगण आज भी चारों ओर से इस भूमण्डल की रक्षा करते हैं। इस प्रकार इन चारों दिक्पालों से सुरक्षित इस पृथ्वी मण्डल पर सर्वप्रथम उस पृथु नामक राजा का राज्याभिषेक किया गया। चाक्षुष मन्वन्तर के समाप्त होने पर वैवस्वत मनु के प्रारम्भ काल में सूर्य वंश का प्रतापी राजा वह पृथु ही इस चराचर जगत् का प्रजापति था। ॥२–१२॥

श्री मात्स्य महापुराण में आधिपत्य-अभिषेचन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

नवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण! इस प्रकार सृष्टि सम्बन्धी मत्स्य भगवान् की बातें सुनने के उपरान्त मनु जी ने पुनः जनार्दन से पूछा—मधुसूदन! अब पूर्वकाल में उत्पन्न होनेवाले पूर्वजों के पुण्य चरितों को हमें बतलाइये ॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—मार्तण्डनन्दन नृपतिवर मनु जी! अब मैं मन्वन्तरों को, तुमसे पहले उत्पन्न होनेवाले मनुओं के जीवन चरित को, प्रत्येक के शासन काल के प्रमाण को तथा उनके द्वारा विस्तारित की गई इस सृष्टि के वृत्तान्त को संक्षेप में बतला रहा हूँ, शान्तिपूर्वक दत्तचित्त होकर सुनिये। प्राचीनकाल में स्वायम्भुव नामक मन्वन्तर में यामा नामक देवगण हुए थे और मरीचि आदि सप्तर्षि भी उसी समय में हुए सुने जाते हैं। उस स्वायम्भुव मनु के आग्नीध्र, अग्निबाहु, सह, सवन, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, मेधा, मेधातिथि और वसु नामक दस पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनके द्वारा उनके वंश का विस्तार हुआ था। ये सभी प्रतिसर्ग के विधान करने के बाद परमपद को चले गये। यह स्वायम्भुव मनु का वंश मैं सुना चुका अब स्वारोचिष नामक मन्वन्तर का वर्णन कर रहा हूँ। स्वारोचिष मनु के देवता के समान तेजोमय नभ, नभस्य, प्रसृति और भानु नामक चार यशस्वी पुत्र हुए। इस मन्वन्तर में दत्त, निश्च्यवन, स्तम्ब, प्राण, कश्यप, और्व और वृहस्पति—ये सात ऋषि हुए सुने जाते हैं। इस स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित नामक देवता तथा हस्तीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप, ज्योति, अय और स्मय नामक सात वसिष्ठ के पुत्र प्रजापति हुए—ऐसा सुना जाता है। दूसरे मन्वन्तर का वर्णन कर चुका अब इसके बाद श्रेष्ठ औत्तमीय नामक मन्वन्तर का वर्णन कर रहा हूँ, जिसमें औत्तमि नामक मनु के ईष, ऊर्ज, तर्ज, शुचि, शक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभ और सब से कनिष्ठ सह नामक उदार और यशस्वी दस पुत्र उत्पन्न हुए। इस मन्वन्तर में भावना नामक देवगण हुए तथा अतिशय तेजस्वी कौकुरुण्डि, दाल्भ्य, शंख, प्रवहण, शिव, सित

और सस्मित नामक सात योग शास्त्र के परम पारगामी ऋषि हुए। अब तामस नामक चतुर्थ मन्वन्तर का वर्णन कर रहा हूँ, जिसमें कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जल्प और धीमान् नामक सात प्रसिद्ध मुनि हुए। इस मन्वन्तर के देवता साध्य नाम से विख्यात थे। तामस मनु के अकल्मष, धन्वी, तपोमूल, तपोधन, तपोरत्नि, तपस्य, तपोद्युति, परन्तप, तपोभागी और तपोयोगी नामक सदाचार परायण दस पुत्र थे, जिनसे उनके वंश का विपुल विस्तार हुआ। इसके उपरान्त पाँचवें रैवत नामक मन्वन्तर का वर्णन सुनिये। उस समय देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा और सप्ताश्व नामक सात ऋषि हुए। देवतागण अभूतरज के नाम से विख्यात थे। प्रजाएँ शुभकर्म युक्त थीं। रैवत मनु के अरुण, तत्वदर्शी, वित्तवान् हव्यप, कपि, युक्त, निरुत्सुक, सत्त्व, निर्मोह तथा प्रकाशक नामक दस धर्मपरायण बलवान् तथा पराक्रमी पुत्र थे। छठें चाक्षुष मन्वन्तर में भृगु, सुधामा, विरजा, सहिष्णु, नाद, विवस्वान् और अतिनामा नामक सात ऋषि हुए तथा लेखा, ऋभव, ऋभाद्य, वारिमूल और दिवौकस इन पाँच उपाधियों से विभूषित देवताओं की योनियाँ थी। स्वायम्भुव मनु के वंश में जिस प्रकार दस पुत्रों का वर्णन ऊपर किया गया है, उसी प्रकार रुरु आदि दस पुत्र चाक्षुष मनु के भी हुए। इस प्रकार चाक्षुष मन्वन्तर का वर्णन मैं सुना चुका अब इसके उपरान्त सातवें मन्वन्तर का वर्णन कर रहा हूँ, जो वैवस्वत नाम से लोक में कहा जाता है। इस मन्वन्तर में अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, गौतम, योगनिरत भारद्वाज, प्रतापी विश्वामित्र तथा जमदग्नि नामक सात ऋषि थे, जो इस समय भी विख्यात हैं। ये सातों महर्षिगण धर्म की विधिवत् व्यवस्था बाँध कर परम पद की प्राप्ति करते हैं। वैवस्वत मन्वन्तर के समय साध्य, विश्वेदेव, रुद्र, मरुत्, वसु, अश्विनीकुमार और आदित्य—ये सात देवगण थे। इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र वैवस्वत मनु के थे, जो भूमण्डल भर में अपने पुण्य कर्म से यश प्राप्ति कर चुके हैं। इस प्रकार उपर्युक्त सातों मन्वन्तरों के समय में सात-सात महर्षि हो गये हैं। ये सब अपने-अपने समय में धर्म की विधिवत् व्यवस्था बाँधकर परम पद को प्राप्त करते हैं। अब इसके बाद मैं सावर्ण नामक भावी मन्वन्तर का वर्णन कर रहा हूँ, जिसमें अश्वत्थामा, शरद्वान्, कौशिक, गालव, शतानन्द, काश्यप और राम (परशुराम) नामक सात महर्षि प्रादुर्भूत होंगे। सावर्ण मनु के धृति, वरीयान्, यवस्, सुवर्ण, वृष्टि, चरिष्णु, ईड्य, सुमति, वसु और पराक्रमशाली शुक्र नामक दस सुप्रसिद्ध पुत्र होंगे। इसी प्रकार भविष्य में रौच्य आदि अनेक अन्य मन्वन्तरों का वर्णन किया गया है। रुचि नामक प्रजापति के पुत्र का नाम रौच्य मनु तथा भूति नामक प्रजापति के पुत्र का नाम भौत्य मनु पड़ेगा। इसके उपरान्त ब्रह्मा के पुत्र मेरुसावर्णि मनु नाम से विख्यात होंगे। और उनके अतिरिक्त ऋत, ऋतधामा और विष्वक्सेन नामक तीन मनु भी उत्पन्न होंगे। राजन्! इस प्रकार अतीत और भविष्य में होनेवाले मनुओं को मैं आप से बतला चुका। ये सब लोग मिलकर ९९४ युगों तक इस भूमण्डल को व्याप्त किये रहेंगे। अर्थात् इन १४ मनुओं में से एक मनु का अधिकार काल ७१ युगों तक का रहेगा। ये सभी मनुगण अपने-अपने समय में इस सम्पूर्ण चराचर जगत् का निर्माण करके कल्पान्त के अवसर पर ब्रह्मा के साथ मुक्त हो जाते हैं। ऋषिगण! एक सहस्र युग की समाप्ति होने पर ये मनुगण पुनः पुनः

प्रादुर्भूत होकर विनष्ट होते हैं और ब्रह्मा आदि देवगण भी विष्णु का सायुज्य प्राप्त करते हैं और भविष्य में भी इसी प्रकार प्राप्त करते रहेंगे। ॥२-२९॥

श्री मात्स्य महापुराण में मन्वन्तर वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

दसवाँ अध्याय

ऋषियों ने पूछा—सूतजी! प्राचीनकाल में अनेक राजाओं द्वारा यह पृथ्वी शासित हो चुकी है—ऐसा सुना जाता है। पृथ्वी से सम्बन्ध रखने के कारण राजाओं का नाम भी पार्थिव कहा जाता है। पर इसका 'पृथ्वी' यह नाम किसके सम्बन्ध से पड़ा है अर्थात् 'पृथ्वी' नाम पड़ने का क्या कारण है? तथा इसकी 'गौ' नाम से ख्याति क्यों हुई? इन सब बातों को कृपापूर्वक हमें बतलाइये। ॥१-२॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! प्राचीनकाल में स्वायम्भुव मनु के वंश में अंग नामक एक प्रजापति हुआ, जिसने मृत्यु की अत्यन्त भयानक मुखवाली सुनीथा नामक कन्या से अपना विवाह संस्कार किया। उसके संयोग से अत्यन्त पराक्रमी वेन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो पीछे चलकर बड़ा विधर्मी शासक हुआ। अपने बाहुबल से सारी पृथ्वी को अधीन कर वह अधर्म में तत्पर होगया, दूसरों की स्त्री चुराकर प्रजा के साथ भी अत्याचार करने लगा। इस प्रकार संसार के धर्मकार्यों में स्वच्छन्दता की प्राप्ति के लिए महर्षियों के अत्यन्त अनुनय-विनय-करने पर भी जब उसने आज्ञा नहीं दी तो उन्होंने शाप देकर उसे मार डाला, पर राजाहीन पृथ्वी में अराजकता फैल जाने के भय से उन निष्पाप ब्राह्मणों ने बलपूर्वक उसके सारे शरीर का मन्थन किया। जिससे उसके शरीर के मातृ अंश से काले कज्जल के समान शरीरवाले म्लेच्छों की जातियाँ तथा उसके शरीर के धर्मपरायण पिता के अंशवाले दाहने हाथ से धनुष-बाण और गदा हाथ में लिये हुए, रत्नजटित कवच कुंडल से अलंकृत, देवताओं के समान तेजोमय शरीरवाले, अतिशय धार्मिक एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। यतः यत्नपूर्वक मथे जाने से पृथु (मोटी भुजा) से उस पुत्र की उत्पत्ति हुई थी अतः उसका नाम भी पृथु ही रखा गया। यद्यपि ब्राह्मणों ने उसे पिता के पद का उत्तराधिकारी बनाकर राज्याभिषिक्त कर दिया था, पर फिर भी उसने अतिशय दारुण तपस्या करके विष्णु भगवान् के वरदान से सारे चराचर जगत् को जीतकर स्वयं भी अध्यक्षता प्राप्त की। अपने पिता के कुप्रबन्ध के कारण सारे भूमण्डल में अनध्यायियों द्वारा यज्ञ होता देख एवं अधर्म को बढ़ता जान वह महाबलशाली पृथु परम क्रुद्ध हो बाणों से सारे भूमण्डल को जला देने के लिए उद्यत हुआ। उसे क्रुद्ध देख पृथ्वी गाय का रूप धारण कर भागने लगी और प्रचण्ड धनुर्धारी पृथु उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। पृथु को अपने पीछे लगा देखकर बचने की कोई आशा न जान पृथ्वी एक जगह हताश होकर खड़ी हो गई और कहने लगी—'हे नाथ! मैं क्या करूँ?' पृथु ने कहा—'हे सुव्रते! तुम शीघ्र ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को मनोवांछित फलों की सिद्धि दो।' पृथु की आज्ञा सुनकर पृथ्वी ने कहा—'अच्छा, ऐसा ही होगा।' पृथु ने उसकी

अनुमति जान स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाया और अपने ही हाथों से उस गौ रूप धारिणी पृथ्वी का दोहन किया। इस प्रकार दुहा गया पदार्थ शुद्ध अन्न हुआ, जिससे संसार के सभी प्राणियों का पालन होता है। फिर ऋषियों ने चन्द्रमा को बछड़ा बनाकर उसको दुहा, जिसमें दुहने वाले वृहस्पति, पात्र वेद तथा दुहा गया पदार्थ तप था। देवताओं ने पृथ्वी का दोहन किया, जिसमें दुहनेवाले सूर्य, बछड़ा इन्द्र और दुहा गया पदार्थ तेजोमय बल था। देवताओं का पात्र स्वर्णमय था। अन्तक ने पृथ्वी का दोहन किया, जिसमें यम बछड़ा तथा स्वधा रस था। पितरों का पात्र रजतमय था। नागों ने पृथ्वी का दोहन किया, उनका पात्र तुम्बी, बछड़ा तक्षक नागराज, दुहनेवाला धृतराष्ट्र नामक नागराज तथा दुहा हुआ पदार्थ विष था। असुरों ने भी पृथ्वी से लौहमय पात्र में इन्द्र को पीड़ा देनेवाली माया का दोहन किया। उनके इस व्यापार में प्रह्लादपुत्र विरोचन दैत्य बछड़ा तथा माया का प्रवर्त्तन करनेवाला द्विमूर्धा दुहनेवाला बना था। फिर हे राजन्! अन्तर्हित हो जाने की इच्छा से यक्षों ने भी कुबेर को बछड़ा बनाकर कच्चे पात्र में वसुधा का दोहन किया। प्रेतों और राक्षसों ने पृथ्वी से रक्त धारा का दोहन किया, जिसमें रौप्यनाभ नामक प्रेत दुहनेवाला तथा सुमाली नामक प्रेत बछड़ा बना था। अप्सराओं समेत गन्धर्वों ने चैत्ररथ को बछड़ा बनाकर कमल के पत्तों में सुगन्धि का दोहन किया, जिसमें दुहनेवाला नाट्यशास्त्र का पारगामी वररुचि नामक गन्धर्व था। पर्वतों ने पृथ्वी से अनेक प्रकार के रत्नों तथा दिव्य तेजोमयी औषधियों का दोहन किया, जिसमें दुहनेवाला महागिरि सुमेरु, बछड़ा हिमवान् तथा पात्र शैलमय था। वृक्षों ने पृथ्वी से अंकुर आदि के टूटने पर निकलनेवाले दूध को पलाश के पत्तों में दुहा, जिसमें दुहनेवाला शाल वृक्ष था। वह पुष्प और लताओं से लदा था। वृक्षों के इस दोहन व्यापार में अत्यन्त समृद्धिशाली सर्ववृक्षमय पीपल बछड़ा बना था। इसी प्रकार संसार के अन्य जीवधारियों ने भी उस समय मनमाने ढंग से पृथ्वी का दोहन किया। पृथु के राज्य काल में सारी पृथ्वी पर लोग दीर्घायु धन-धान्य सुख समृद्धि से सम्पन्न थे। कोई मनुष्य न तो दरिद्र था, न रोगी था और न पापी। प्रजा में किसी भी आधिदैविक या आधिभौतिक उपद्रव का आतंक नहीं था। सर्वदा लोग दुःख शोकादि से विवर्जित तथा आनन्दित रहते थे। महा पराक्रमी राजा पृथु ने प्रजा की कल्याण भावना से प्रेरित हो बड़े-बड़े पर्वतों को अपनी धनुष कोटि से उखाड़कर पृथ्वीतल को समतल कर दिया था। उसके शासनकाल में कोई पुर, ग्राम अथवा दुर्ग नहीं था और न आत्म रक्षा आदि के लिए अस्त्र-शस्त्र धारण करनेवाले मनुष्य ही थे। क्षय आदि अतिशय दुःख देनेवाले असाध्य रोगों का तो एकदम अभाव था। अर्थशास्त्र का कोई भी आदर नहीं करता था। प्रजा धार्मिक कार्यों में निरत थी। ॥२-३३॥

जिन-जिन दुहनेवाले वर्ग विशेष के लिए जिस-जिस पात्र तथा जिस-जिस दुग्ध (दुहे गये) पदार्थ का वर्णन मैंने ऊपर किया है, उसमें जिस वर्ग विशेष की जिस विशेष पदार्थ में अधिक रुचि है ? उसने उसी का दोहन किया है। यज्ञ तथा श्राद्ध आदि कार्यों में लोगों को जानकर वे ही पदार्थ उन्हें देने चाहियें। इस प्रकार मैं वह कथा आप लोगों को सुना चुका, जिस कारण यह मही (पृथ्वी) धर्म परायण

राजा पृथु की पुत्री के पद को प्राप्त हुई थी। उसके अतिशय अनुराग के कारण ही पण्डित लोग उसे 'पृथ्वी' के नाम से पुकारते हैं॥३४-३५॥

श्री मात्स्य महापुराण में वेनपुत्र पृथु वर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

ऋषिगण बोले—तत्वदर्शी सूत जी! आप क्रमानुसार सम्पूर्ण सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश का विस्तार जैसे हुआ है, हमें बताइये॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! प्राचीन काल में सर्वप्रथम महर्षि कश्यप की अदिति नामक पत्नी में विवस्वान् नामक एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। उसकी परम तेजस्विनी संज्ञा, राज्ञी तथा प्रभा नाम की तीन स्त्रियाँ थीं। जिनमें से सर्व प्रथम रैवत की पुत्री राज्ञी ने रेवत नामक पुत्र को उत्पन्न किया। दूसरी स्त्री प्रभा ने प्रभात नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। तीसरी स्त्री त्वाष्ट्री ने, जिसका एक नाम संज्ञा भी था, मनु और यम नामक दो पुत्रों को तथा यमुना नामक एक पुत्री को उत्पन्न किया। इनमें यम और यमुना—ये दोनों जुड़वा उत्पन्न हुए थे। बहुत दिनों बाद एक बार विवस्वान् के अतिशय तेजोमय रूप को न सहन कर सकने के कारण त्वाष्ट्री ने अपने ही समान अतिशय सुन्दरी छाया नामक एक स्त्री को अपने शरीर से उत्पन्न किया और उसे अपने सामने खड़ी देखकर कहा—'हे वरानने! तुम हमारे पतिदेव विवस्वान् की सेवा करो और मेरे बालकों का माता के समान स्नेह से पालन-पोषण करो।' छाया द्वारा इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने पर व्रतपरायणा त्वाष्ट्री अन्यत्र चली गयी। इधर देव विवस्वान् भी छाया को संज्ञा (त्वाष्ट्री) ही समझ कर आदर पूर्वक पूर्ववत् व्यवहार करते रहे। और उसमें उन्होंने यथासमय मनु के समान तेजस्वी और पराक्रमी एक पुत्र को उत्पन्न किया, जो वैवस्वत् मनु के सवर्ण (समान रूप रंग) होने के कारण सावर्णि नाम से विख्यात हुआ। इसके उपरान्त शनि नामक एक पुत्र तथा विष्टि और तपती नाम की दो कन्याओं को भी सूर्य ने छाया को संज्ञा ही समझते हुए उत्पन्न किया। छाया अपने पुत्र मनु को सभी सन्तानों से अधिक प्यार करती थी। उसके इस व्यवहार को संज्ञासुत मनु तो सहन कर लेते थे पर क्रोध से अभिभूत यम नहीं सहन कर सकते थे। एक दिन इसी प्रकार के व्यवहार से ऊबकर यम अपने दाहने पैर को उठाकर छाया को मारने के लिए दौड़ पड़े। छाया ने यम की यह मुद्रा देख उसे शाप दे दिया कि 'यह तुम्हारा एक पैर, जिससे मुझे मारने दौड़े हो, सर्वदा कृमियों से युक्त, पूय और दूषित रक्त से घिनौना तथा क्षतपूर्ण रहा करेगा।' यम छाया का ऐसा शाप सुनकर खिन्न हो गये। और उदास मन हो अपने पिता से उन्होंने निवेदन किया कि 'हे तात! परम क्रोधी स्वाभाववाली मेरी माता ने विना किसी अपराध के ही मुझे ऐसा शाप दे दिया है। लड़कपन की चंचलता के कारण मैंने केवल एक बार अपना पैर उठा लिया था, इस छोटे-से अपराध पर, भाई मनु के निषेध करने पर भी उसने मुझे ऐसा भीषण शाप दे दिया।

अतः मुझे विदित होता है कि वह मेरी सच्ची माता नहीं, अपितु बनावटी माता है।' यम की विषाद पूर्ण बातों को सुनकर दिवाकर ने यम से कहा—महाबुद्धिमान्! मैं क्या करूँ? अपनी मूर्खता के लिए किसे दुःख नहीं झेलना पड़ता, अथवा संचित कर्म के बन्धन को कौन विना भोगे छुट्टी पा सकता है? महादेव को भी अपने शुभाशुभ कर्मों का फलाफल भोगना पड़ता है तो अन्य प्राणियों के लिए क्या कहा जाय? बेटा! लो, मैं एक मुर्गा तुम्हें दे रहा हूँ, जो तुम्हारे इस पैर में उत्पन्न होनेवाले कृमियों को तुरन्त खा जायगा और दूषित मज्जा तथा रक्त आदि के विकारों को भी दूर करेगा ॥२-१७॥

पिता की इस प्रकार की निराशा भरी बातें सुन यशस्वी यम ने विरक्त हो गोकर्ण तीर्थ में जाकर भीषण तपस्या की। और बीस सहस्र वर्षों को फल, पत्ते और वायु का आहार करके महादेव जी की आराधना में व्यतीत कर दिये। इस भीषण तपश्चर्या पर सन्तुष्ट होकर त्रिशूलधारी महादेव ने यम को लोकपाल, पितरों का अध्यक्ष तथा जगत् के धर्म तथा अधर्म का निर्णायक पद प्राप्त करने का वरदान दिया। निष्पाप राजन्! इस प्रकार महादेव के वरदान से यम को लोकपाल, पितरों की अध्यक्षता एवं समस्त संसार के धर्माधर्म के निर्णायक का पद प्राप्त हुआ ॥१८-२१॥

इधर भगवान् भास्कर त्वाष्ट्री संज्ञा की सब करतूतें जान गये। वे अत्यन्त कुपित हुए और त्वष्टा (विश्वकर्मा) के पास जाकर सारी बातें बतलायीं। ऋषिगण! विवस्वान् की रोष तथा अमर्ष से भरी बातें सुनकर विश्वकर्मा ने बड़ी सान्त्वना दी और कहा—'भगवन्! आपके इस प्रगाढ़ अन्धकार के नाश करने वाले अतिशय प्रचण्ड तेज को न सहन कर सकने के कारण मेरी पुत्री त्वाष्ट्री, बडवा (घोड़ी) का रूप धारण कर मेरे पास अवश्य आई थी; पर मैंने उसे अपने पास रहने की अनुमति नहीं दी। मैंने कहा था—क्योंकि तुम विना अपने पति की आज्ञा के छुपकर मेरे पास आई हो, अतः मेरे घर में तुम्हें प्रवेश नहीं करना चाहिए।' इस प्रकार आपके और मेरे—दोनों स्थानों से निराश होकर उस निष्पापा ने दुःखी चित्त से उसी बडवा रूप में मरुदेश का मार्ग ग्रहण किया और भूलोक को चली गई। इसलिए भगवन्! मेरे ऊपर कृपा कीजिए। यदि सचमुच आपका कोई भी अपकार न कर मैं अनुग्रह का भाजन हूँ, तो मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिए। दिवाकर! मैं अपने यन्त्र द्वारा आपके इस असह्य एवं दाहक तेज को, जिसे सर्वसाधारण नहीं सहन कर सकते, कुछ हल्का कर दूँगा। प्रभो! इस प्रकार आपका रूप लोक में अत्यन्त आनन्दकारी हो जायगा। सूर्य ने इस प्रस्ताव को जब अंगीकार कर लिया तो विश्वकर्मा ने अपने भूमियन्त्र के चक्के पर बिठाकर उनके असह्य तेज को हल्का कर दिया और उस पूर्व प्रचण्ड तेज द्वारा उसने भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र, शिव का त्रिशूल, तथा दैत्य और दानवों का विनाश करने वाले इन्द्र का विशाल वज्र निर्मित किया। इस प्रकार विश्वकर्मा ने भगवान् भास्कर के दोनों पैरों को छोड़कर अन्य सभी अंगों को परम मनोहर एवं आकर्षक बना दिया; उनके पैर के तेज को अपेक्षाकृत अत्यन्त असह्य होने के कारण वह नहीं देख सका, जिससे पैरों में पूर्ववत् तेज बना ही रह गया। इसी कारण पूजा आदि कार्यों में कहीं पर सूर्य के पैर नहीं बनाये जाते। यदि कोई पैरों वाले सूर्य का

आकार बनाकर पूजा आदि करता है तो वह निन्दित पापियों की गति प्राप्त करता है तथा संसार में अनेक प्रकार के कष्टों को झेलकर कुष्ठी होता है। इसलिए धर्मात्मा जनों को मन्दिरों में अथवा चित्रों में देवाधिदेव भगवान् सूर्य की प्रतिमा का पैर नहीं बनाना चाहिए। ॥२२–३३॥

इधर विश्वकर्मा द्वारा अत्यन्त सुन्दर स्वरूप पाकर देवताओं के अधिपति भगवान् भास्कर, अतिशय तेजस्वी घोड़े का रूप धारण कर पृथ्वी लोक को गये और वहाँ अति कामुक हो बड़वा रूपधारिणी त्वाष्ट्री के मुख को अपने मुख से लगाकर अपनी कामवासना प्रकट की। सूर्य के उस महान् एवं तेजस्वी अश्वरूप को देखकर त्वाष्ट्री संज्ञा 'यह कोई अन्य पुरुष है' इस आशंका से भयभीत हो, अपने मन में अति क्षुब्ध हुई और अपने नासापुटों (थूथड़ों) से उसके वीर्य को बाहर गिरा दिया। अश्वरूपधारी भगवान् भास्कर के उस वीर्य से दोनों अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई। नासिका के अग्र भाग से निकलने के कारण वे नासत्य तथा दस्र नाम से विख्यात हुए। कुछ दिनों बाद अश्वरूपधारी भगवान् विवस्वान् को पहचान कर त्वाष्ट्री बहुत ही सन्तुष्ट हुई और अतिशय आनन्दित हो पति के साथ विमान पर चढ़कर स्वर्ग लोक को गई। ॥३४–३७॥

छाया पुत्र सावर्णि मनु आज भी सुमेरु गिरि पर तपस्या में निरत हैं। द्वितीय पुत्र शनि ने अपनी उग्र तपस्या के प्रभाव से ग्रहों की पदवी प्राप्त की। यमुना और तपती नामक दोनों कन्याएँ नदी के रूप में परिणत हो गईं और तीसरी कन्या विष्टि (भद्रा) समय (मुहूर्त्तों) में अत्यन्त घोर रूप धारण कर कर व्यवस्थित हुई। वैवस्वत मनु के अत्यन्त पराक्रमी और तेजस्वी दस पुत्र हुए। जिनमें सर्वप्रथम इल, पुत्रेष्टि यज्ञ करने से उत्पन्न हुआ था। अन्य छोटे नव पुत्र इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ठ, नरिष्यन्त, करुष, महाबली शर्याति, पृषध्र और नाभाग नाम से विख्यात थे, जो सब के सब दिव्य गुणों से सम्पन्न थे। ॥३८–४१॥

बहुत दिनों बाद धर्म परायण वैवस्वत मनु ने ज्येष्ठ पुत्र इल का राज्याभिषेक कर तपस्या करने के लिए महेन्द्रवन का मार्ग ग्रहण किया। पिता द्वारा राज पद प्राप्त हो जाने के बाद इल ने दिग्विजय करने की इच्छा से इस सारे भूमण्डल का भ्रमण किया। सभी द्वीपों में जा-जाकर उसने वहाँ के राजाओं को गर्वरहित किया। इसी प्रसंग में एक बार उसने कल्पद्रुम की लताओं से सघन शरवण नामक एक बड़े उपवन में घोड़ा दौड़ाते हुए प्रवेश किया, जिसमें सोमार्धशेखर महादेव जी पार्वती के साथ विहार कर रहे थे। उस शरवण नामक महान् उपवन में 'किसी परकीय पुरुष के आ जाने से लज्जित होना पड़ेगा' इसलिए पार्वती जी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'यदि कोई पुरुष जीव तुम्हारे इस उपवन के दस योजन मण्डल में प्रवेश करेगा तो वह स्त्री रूप में परिवर्तित हो जायगा।' राजा इल को शरवण उपवन प्रवेश के विषय में पार्वती जी की यह प्रतिज्ञा ज्ञात नहीं थी, अतः उन्होंने बे-रोक टोक प्रवेश किया। परिणामतः प्रवेश करते ही स्त्री रूप में परिवर्तित हो गये, अश्व भी वडवा (घोड़ी) के रूप में बदल गया। इल के शरीर से पुरुषत्व के सभी चिह्न लुप्त हो गये। इस प्रकार स्त्री रूप हो जाने पर राजा बड़ा विस्मित हुआ। स्त्री

होकर वह इला के नाम से ख्यात हुआ। स्त्री होते ही उसके पीन एवं उन्नत स्तन हो गये। वह मनोहर कटि प्रदेश और स्थूल जघन मण्डलों से समन्वित हो गयी। मनोहर कमल के दलों के समान नेत्र, कृश शरीर, एवं पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति आकर्षणशील मुख से उसकी एक अपूर्व शोभा हो गई। विलास के लिये लालायित चंचल नेत्रों एवं गोल मोटे बाहुओं से उसका सौन्दर्य बहुत बढ़ गया। सुशोभित काले और घुँघराले बालों, सूक्ष्म और मनोहारिणी रोमावली, सुन्दर, स्वच्छ और आकर्षक दाँतों की सुषमा, मीठी और गम्भीर शब्दावली से वह परम सुशोभित हो गई। शरीर की गौर कान्ति, हंस और हाथी के समान मतवाली और लुभावनी चाल, दो धनुष की कोटि के समान टेढ़े नेत्रपक्ष्म, पतले और लाल नखों से सुशोभित इला उस उपवन में अकेली घूमती हुई सोचने लगी कि 'इस महान् उपवन में मेरा कौन पिता है ? कौन माता है ? कौन भाई है ?' और किस की मैं पत्नी हूँ ? अभी न जाने कितने दिनों तक अकेली इस भूतल में मुझे रहना पड़ेगा ?—इस प्रकार चिन्ता में निमग्न इला को उपवन में घूमते हुए चन्द्रमा के पुत्र बुध ने देखा और उसके आकर्षक सौन्दर्य एवं यौवन पर मुग्ध होकर उसे स्ववश करने का उपाय सोचा। ॥४२—५४॥

इला को अपने वश में करने के लिए कामपीड़ित बुध ने बड़ा यत्न किया। अपने हाथों में कमण्डलु और पुस्तक ले ब्रह्मचारियों की भाँति उसने अपना एक विशेष वेश बनाया। हाथ में दण्ड धारण किया। और बाँस के दण्ड में अनेक पवित्र वस्तुओं को बाँधकर अपने को विप्र प्रकट करने के लिए मोटी शिखा बाँधकर, पुष्प, जल समिधा और कुश लिये हुए अनेक विद्यार्थियों को साथ लिया। कानों में कुण्डल धारणकर वेद का उच्चारण करते हुए वह ऐसी मुद्रा व्यंजित करने लगा मानों निश्चय ही कुछ ढूँढ़ रहा हो। इस प्रकार उस महान् उपवन की सीमा से थोड़ी दूर बाहर ही वृक्षों की झुरमुट में वह बैठ गया और वहीं से वन में घूमती हुई इला को बुलाने लगा। अकस्मात् भय से अचकचाये हुए की तरह उसने उलाहना देते हुए इला से कहा—'सुन्दरि ! घर से अग्निहोत्र आदि और मेरी सेवा-शुश्रूषा छोड़कर तुम यहाँ कहाँ चली आई हो ? तुम्हारे साथ विहार करने की यह सुन्दर बेला बीतती जा रही है और तुम पागलों की भाँति निरुद्देश्य कैसी घूम रही हो ? यह सायंकाल की बेला विहार करने योग्य है, अतः पुष्प आदि सुगंधित द्रव्यों से अंगों को अलंकृत कर सुनसान घर को चलकर अलंकृत करो।' इला ने बुध की ऐसी उलाहना भरी बातें सुनकर कहा—'तपस्विन् ! आपने जो ये सब बातें बताई हैं, उन्हें मैं एक दम भूल-सी गई हूँ। इसलिए हे निष्पाप ! मुझे स्वयम् मेरा, अपना तथा मेरे कुल का परिचय दीजिये।' इला के अनुरोध पर बुध ने उस मनोहर अंगोंवाली से कहा—'सुन्दरि ! तुम्हारा नाम इला है, और मैं कामुकला में प्रवीण अनेक विद्याओं का जानने वाला बुध हूँ। मैं अत्यन्त तेजस्वी कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, मेरा पिता ब्राह्मणों का अधिपति है।' बुध की इस प्रकार की बातों में आकर इला उस के घर चली गई। और रत्नजटित खम्भों से विमण्डित माया द्वारा रचित बुध के दिव्य भवन में स्थित होकर उसने अपने को कृतकृत्य समझ लिया। सोचने लगी 'अहा कितना अच्छा है, जो मैं तथा मेरा पति—दोनों इतने धनी, इतने रूपवान्

इतने उच्च कुलवाले और इतने भाग्यशाली हैं।' इस प्रकार सभी प्रकार के आमोद-प्रमोद के साधनों से सुसम्पन्न इन्द्र के भवन की भाँति बुध के भवन में इला ने बहुत दिनों तक उसके साथ भोग-विलास पूर्ण जीवन व्यतीत किया। ५५—६६॥

श्री मात्स्य महापुराण में इला-बुध समागम नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

सूतजी बोले—ऋषिगण! इस प्रकार बड़े भाई इल के स्त्री होजाने के कारण बहुत दिनों तक राजधानी न लौटने पर छोटे भाई इक्ष्वाकु आदि ढूँढ़ते हुए उसी शरवण नामक महान् उपवन के समीप पहुँचे। और वन में प्रवेश करनेवाले मार्ग के पूर्व में ही आगे खड़ी हुई सुन्दर बड़वा (घोड़ी) को उन सबों ने देखा, जिसका शरीर रत्नों से जड़े गये जीन के कारण खूब चमक रहा था। सभी बन्धु जीन को पहचान कर बड़े विस्मय में पड़ गये और परस्पर कहने लगे कि 'अरे! यह तो चन्द्रप्रभ नामक श्रेष्ठ घोड़ा हमारे अग्रज महाराज इल का है। यह घोड़ी के रूप में कैसे परिणत हो गया!' अपने सन्देह का निवारण करने के लिए उन्होंने सारा वृत्तान्त अपने कुल पुरोहित वसिष्ठजी को कह सुनाया और पूछा—'योगियों में श्रेष्ठ! यह ऐसी विचित्र बात कैसे घटित होगयी? इसका कारण हमें बताइये!' वसिष्ठ ने अपनी योगदृष्टि से सभी बातें जानकर इक्ष्वाकु आदि से कहा—'राजपुत्र वृन्द! बहुत दिन हुए शरवण नामक महान् उपवन में पार्वतीजी ने विहार में कोई बाधा-विघ्न न पड़े इस विचार से प्रतिज्ञा की थी कि इस में जो कोई भी पुरुष जीव प्रवेश करेगा वह स्त्री हो जायगा। यह आपका अश्व भी राजा इल के साथ उसी उपवन में प्रवेश करने के कारण स्त्री योनि में परिणत हो गया है। कुबेर की भाँति यशस्वी वह राजा इल जिस प्रकार पुरुषत्व की प्राप्ति करे, आप लोग पिनाकधारी शिव की आराधना कर वैसा प्रयत्न कीजिये।' वसिष्ठ की बातें सुनकर वे सभी मनुपुत्र शिवजी के पास गये और अनेक प्रकार की स्तुतियों द्वारा शिव तथा पार्वती की आराधना कर उन्हें प्रसन्न किया। उन लोगों की स्तुतियों से प्रसन्न होकर शिव तथा पार्वती ने कहा—'यद्यपि यह हमारी प्रतिज्ञा अलंघनीय है, पर इसकी शान्ति के लिए हम एक अन्य उपाय बतला रहे हैं। वह यह कि राजा इक्ष्वाकु को एक अश्वमेध यज्ञ करने का जो फल प्राप्त हो उसे यदि वे हमें समर्पित कर दें तो यह वीर इल निश्चय ही किंपुरुष हो सकता है।' शिव-पार्वती के उक्त प्रस्ताव को इक्ष्वाकु आदि वैवस्वत मनु के पुत्रों ने 'ऐसा ही करूँगा' कहकर स्वीकार किया और वहाँ से अपने नगर को वापस लौटे। इक्ष्वाकु ने घर आकर एक अश्वमेधयज्ञ का अनुष्ठान सम्पन्न किया। और उसके पुण्य को शिव पार्वती को समर्पित कर दिया। फलतः इल किन्नर योनि में परिणत हो गया। इस किन्नर योनि में एक मास तक पुरुष तथा एक मास तक स्त्री रूप में उसे रहना पड़ता था। बुध के गृह में इल ने गर्भ धारण किया, जिससे यथासमय सर्वगुणसम्पन्न एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। बुध ने स्त्री रूपधारिणी इल में पुत्र की उत्पत्ति कर भूलोक से

स्वर्ग लोक को प्रस्थान किया। १–१३॥

स्त्री योनि में बुध के गृह निवास करने के कारण वह देश इल के नाम के अनुरूप इलावृत्त के नाम से विख्यात हुआ, जहाँ बुध का भवन था। इस प्रकार सूर्य तथा चन्द्र—इन दोनों वंशों के प्रारम्भ में सर्व प्रथम मनु का पुत्र इल ही राजा हुआ। ऋषिगण! जिस प्रकार इल की पुरुषावस्था में चन्द्र वंश का विस्तार करनेवाला राजा पुरुरवा उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार राजा इक्ष्वाकु सूर्य वंश का विस्तार करनेवाला विख्यात हुआ। इल किम्पुरुष योनि में सुद्युम्न के नाम से विख्यात था। कुछ समय के अनन्तर पुरुरवा के अतिरिक्त सुद्युम्न के अत्यन्त बलशाली उत्कल, गय और हरिताश्व नामक तीन पुत्र और उत्पन्न हुए। इल ने अपने इन चारों पुत्रों में से उत्कल नामक पुत्र को उत्कल (उड़ीसा) देश; गय को गया नामक नगरी, हरिताश्व को कुरुदेश की समीपस्थ पूर्व दिशा, और पुरुरवा को मुख्य राजधानी प्रतिष्ठानपुर में राज्याभिषिक्त कर, इलावृत्त की ओर दिव्य फल और अन्न के उपभोग के लिए प्रस्थान किया। मनु के सर्वश्रेष्ठ उत्तराधिकारी इक्ष्वाकु ने मध्यदेश को प्राप्त किया। सूर्य के अन्य पुत्रों में से नरिष्यन्त का महा बलशाली शुच नामक पुत्र हुआ तथा नाभाग को अम्बरीष नामक पुत्र हुआ। धृष्ट के धृतकेतु, चित्रनाथ तथा पराक्रमी रणधृष्ट नामक तीन पुत्र हुए। शर्याति को आनर्त नामक एक पुत्र तथा सुकन्या नामक एक पुत्री हुई। इसी आनर्त को एक महान् प्रतापी रोचमान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। आनर्त का बसाया हुआ आनर्त नामक देश तथा कुशस्थली नामक नगरी थी। रोचमान को रेव नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अपने सौ भाइयों में सब से ज्येष्ठ था। उसके अन्य नाम ककुद्मी तथा रैवत भी थे, उसकी पुत्री रेवती बलराम की स्त्री हुई। करुष के कारुष नाम से पृथ्वी भर में विख्यात अनेक पुत्र हुए। गोहत्या करने के कारण गुरु के शाप दे देने से पृषध्र शूद्र योनि में परिणत हो गया ॥१४–२५॥

ऋषिगण! अब मैं इसके अनन्तर इक्ष्वाकु के वंश का वर्णन करूँगा, आप लोग सावधान होकर सुनिये। राजा इक्ष्वाकु के विकुक्षि नामक एक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अपने सौ भाइयों में ज्येष्ठ था, उसके पन्द्रह पुत्र थे, जो सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में श्रेष्ठ राजा हुए। इसके अतिरिक्त हमने सुना है कि उसके एक सौ चौदह और पुत्र उत्पन्न हुए, जो सुमेरु गिरि की दक्षिण दिशा की ओर शासन करते थे। विकुक्षि के पुत्रों में सब से ज्येष्ठ पुत्र ककुत्स्थ के नाम से विख्यात था, उसका पुत्र सुयोधन हुआ। सुयोधन का पुत्र पृथु और पृथु के पुत्र का नाम विश्वग था। उसका पुत्र इन्दु हुआ। जिससे युवनाश्व की उत्पत्ति हुई। युवनाश्व के श्रावस्त अथवा वत्सक नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जिसने गौड़ देश में श्रावस्ती नामक नगरी बसाई। श्रावस्त से वृहदश्व और उससे कुवलाश्व हुआ, धुन्धु से मारे जाने के कारण जिसका नाम धुन्धुमार भी था। धुन्धुमार के तीन महाप्रतापी पुत्र दृढ़ाश्व, दण्ड और कपिलाश्व नामक हुए, जिनमें प्रतापी कपिलाश्व धौन्धुमारि के नाम से भी विख्यात था। दृढ़ाश्व का पुत्र प्रमोद तथा उससे हर्यश्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ था, जिससे संहताश्व की उत्पत्ति हुई। संहताश्व के दो पुत्र अकृताश्व तथा रणाश्व हुए, जिनमें रणाश्व का पुत्र युवनाश्व हुआ, जिससे मान्धाता की उत्पत्ति हुई। मान्धाता

के पुरुकुत्स, राजा धर्मसेन, महाप्रतापी तथा शत्रुओं का विनाश करने में विख्यात मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए । पुरुकुत्स के नर्मदापति वसुद नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र सम्भूति हुआ । जिससे त्रिधन्वा की उत्पत्ति हुई । त्रिधन्वा का पुत्र त्रय्यारुण नाम से विख्यात था, जिससे सत्यव्रत नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । सत्यव्रत के सत्यरथ नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र हरिश्चन्द्र था, हरिश्चन्द्र से रोहित और रोहित से वृक नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । वृक से वाहु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र परम धार्मिक राजा सगर था । राजा सगर की प्रभा तथा भानुमती नामक दो रानियाँ थीं । सगर की इन दोनों रानियों ने पुत्र-प्राप्ति की अभिलाषा से प्राचीनकाल में और्वाग्नि की आराधना की, जिससे सन्तुष्ट होकर और्व ने उन दोनों को यथाभिलाषित श्रेष्ठ वरदान देते हुए कहा—'तुम दोनों में से एक को साठ सहस्र, तथा दूसरी को केवल एक पुत्र प्राप्त करने का वरदान मैं दूँगा, जो अकेला ही वंश का विस्तार करनेवाला होगा । जिसे जो वरदान स्वीकार हो, वह ले ले।' प्रभा ने और्व से अपनी इच्छा से साठ हजार पुत्रों को प्राप्त करने की तथा भानुमती ने केवल एक पुत्र की याचना की, जो बाद में चलकर असमंजस के नाम से विख्यात हुआ । वरदान प्राप्ति के कुछ ही दिनों के बाद यदुवंश में उत्पन्न होनेवाली प्रभा ने साठ सहस्र पुत्र तथा भानुमती ने असमंजस नामक एक पुत्र को उत्पन्न किया । प्रभा के वे साठ सहस्र पुत्रगण अश्वमेध यज्ञ का अश्व ढूँढ़ते हुए जिस समय पृथिवी को खन रहे थे, उसी समय उन्हें विष्णु (कपिल रूपधारी) ने भस्म कर दिया । सगर की दूसरी रानी के असमंजस नामक पुत्र से अंशुमान नामक पुत्र हुआ, उससे दिलीप नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । दिलीप से भगीरथ हुए, जिन्होंने तपस्या करके भागीरथी गंगा को स्वर्ग से मृत्युलोक में अवतरित किया । भगीरथ का पुत्र नाभाग नाम से विख्यात हुआ, जिसका पुत्र अम्बरीष था । अम्बरीष का पुत्र सिन्धुद्वीप हुआ, जिसका पुत्र अयुतायु था । अयुतायु से ऋतुपर्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जिसका कल्माषपाद नामक पुत्र था । उससे सर्वकर्मा की उत्पत्ति हुई । सर्वकर्मा का पुत्र अनरण्य नाम से विख्यात था, जिसका पुत्र निघ्न हुआ । इसी निघ्न से अनमित्र और राजा रघु इन दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जिनमें अनमित्र वन को चला गया, जो कृतयुग में राजा होगा । रघु से दिलीप नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई और दिलीप का पुत्र अज हुआ । अज से दीर्घवाहु और दीर्घवाहु से अजपाल नामक पुत्र हुआ, अजपाल के पुत्र दशरथ हुए, जिनके चार पुत्र थे । दशरथ के ये चारो पुत्र विष्णु भगवान् के अंश से उत्पन्न हुए थे । जिनमें राम सबसे बड़े थे, उन्होंने रावण के वंश का समूल नाश करके रघु वंश का विस्तार किया था । भृगुवंशप्रवर बाल्मीकि ने रामचन्द्र के चरित का गुण गान किया । राम के कुश तथा लव नामक दो पुत्र थे, जिनके द्वारा इक्ष्वाकु के वंश का विपुल विस्तार हुआ । कुश से अतिथि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र निषध नाम से विख्यात था । निषध का पुत्र नल हुआ और नल से नभ नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । नभ का पुत्र पुण्डरीक नाम से विख्यात हुआ, जिससे क्षेमधन्वा नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । उसका पुत्र अतिशय बलशाली और प्रतापी देवानीक हुआ । उसका पुत्र अहीनगु था, जिससे सहस्राश्व नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई । सहस्राश्व का पुत्र चन्द्रावलोक नाम से विख्यात था, जिसका

पुत्र तारापीड हुआ। तारापीड का पुत्र चन्द्रगिरि था, जिससे भानुचन्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसके अनन्तर श्रुतायु हुआ, जो भारत के युद्ध में मारा गया। कश्यप की इस वंशावली में नल नाम के दो विख्यात राजा हुए जिसमें एक वीरसेन का तथा दूसरा निषध का पुत्र था। पूर्व काल में वैवस्वत वंशीय राजा इक्ष्वाकु के वंश में ये उपर्युक्त अतिशय दानशील राजागण हो गये हैं, जिनका मुख्य रूप से मैं वर्णन कर चुका ॥२५–५७॥

श्री मात्स्य महापुराण में सूर्यवंशवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

मनु ने कहा—भगवन्! अब मैं पितरों के श्रेष्ठ वंश का वर्णन सुनना चाहता हूँ और विशेषतया यह जानना चाहता हूँ कि श्राद्ध के देवताओं में सूर्य तथा चन्द्रमा का स्थान क्यों है? ॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—मनु जी! अत्यन्त प्रसन्नता के साथ इस कथा को मैं आपको सुना रहा हूँ। स्वर्ग लोक में पितरों की संख्या सात है, जिनमें से तीन अमूर्त्त और चार मूर्तिमान् हैं, वे सब महान् तेजस्वी हैं। तीन अमूर्त पितर गण वैराज नामक प्रजापति के हैं। इन अमूर्त पितरों की वैराज नामक देवगण पूजा किया करते हैं, ये पितर गण सनातन लोक की प्राप्ति हो जाने के उपरान्त योग मार्ग से च्युत हो जाते हैं। और पुनः ब्रह्मा के एक दिन के व्यतीत होने के उपरान्त ब्रह्मवादी रूप में जन्म ग्रहण कर पूर्व जन्म की स्मृति के शेष रहने के कारण योग और सांख्य शास्त्र की आराधना में निरत रह पुनः पूर्ववत् सिद्धि प्राप्त करते हैं, जिससे संसार के आवागमन से मुक्त हो जाते हैं। अतएव श्राद्धादि कार्यों में पितरों के उद्देश्य से दिये जाने वाले पदार्थों को दातागण योगियों को ही समर्पित करें। ॥२–६॥

इन उपर्युक्त पितरगणों की मानसी कन्या मेना नाम से विख्यात थी, वह पर्वतराज हिमवान् की पत्नी थी। उसका पुत्र मेनाक हुआ। मेनाक का बड़ा भाई क्रौंच था, इसी क्रौंच के नाम पर चारों ओर से घृत समुद्र से परिवेष्टित क्रौञ्च द्वीप की प्रसिद्धि है। मेना ने उग्र तपस्या करनेवाली, योगाभ्यास में निरत उमा, एकपर्णा और अपर्णा नाम की तीन कन्याओं को भी उत्पन्न किया। हिमवान् ने लोक प्रसिद्ध इन तपस्विनी कन्याओं में से एक महादेव को, एक सित को और एक जैगीषव्य को दी ॥७–९॥

ऋषियों ने पूछा—सूत जी! प्राचीन काल में दक्ष की पुत्री दाक्षायणी सती ने अपने शरीर को अपने आप क्यों जलाया था? और वे फिर उसी प्रकार का शरीर धारण कर हिमवान् की पुत्री के रूप में पृथ्वीतल पर किस प्रकार अवतीर्ण हुईं? ब्रह्मा के पुत्र दक्ष ने जगज्जननी सती को कौन ऐसी बात कह दी थी, जिससे वे अपने मरण पर उतारू हो गईं? इन सब कथाओं को विस्तारपूर्वक आप हम लोगों को सुनाइये। ॥१०–११॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! प्राचीन काल में प्रजापति दक्ष ने विपुल दक्षिणा सम्पन्न एक बहुत बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया था, जिसमें भाग लेने के लिए सभी देवताओं को आमंत्रित किया था। निमंत्रित देवगणों ने आ-आकर उस महान् यज्ञ में भाग लिया। सती ने पिता के इतने बड़े विशाल यज्ञ में अपने पति का कोई भाग न देखकर पूछा—'तात ! आपने अपने इस महान् यज्ञ में मेरे पति को क्यों नहीं निमंत्रित किया ?' दक्ष ने कहा—'पुत्रि ! तुम्हारा पति अमंगल रूप त्रिशूलधारी रुद्र यज्ञादि शुभ कार्यों में सारे संसार का विनाश करने के कारण निमंत्रण के योग्य नहीं है।' पिता की इन अपमानजनक बातों से सती बड़ी विक्षुब्ध हुईं और बोलीं—'हे तात ! तुम्हारे पापी शरीर से उत्पन्न, मैं अपने इस शरीर को छोड़ दूँगी ! तुम दस पितरों के केवल एक पुत्र होगे और बाद में क्षत्रिय योनि में उत्पन्न होने पर अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर रुद्र के द्वारा तुम्हारा विनाश होगा।' यह कहकर सती ने अपना योगासन लगाया और अपने शरीर से उत्पन्न होनेवाले अग्नि के समान दाहक तेज से अपने शरीर को स्वयम् जलाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार सती को यज्ञ भवन में जलती देख देवता, असुर, किन्नर, गन्धर्व तथा गुह्यकों ने 'अरे यह क्या अनर्थ हो रहा है।' कह कहकर शोर मचाना प्रारम्भ किया। दक्ष भी अतिशय दुखित होकर दोनों हाथ जोड़ सती के पास गया और प्रार्थना करने लगा—'हे देवि ! तुम इस सारे चराचर जगत् को सौभाग्य प्रदान करनेवाली जगन्माता हो। मेरे ऊपर अतिशय अनुग्रह करने की इच्छा से ही तुम मेरी पुत्री के रूप में अवतरित हुई थी, तुम धर्म के गूढ़ मर्मों को जाननेवाली हो। देवि ! इस निखिल ब्रह्माण्ड में जितनी भी चराचर वस्तुएँ विद्यमान् हैं, उन सब में तुम्हारी ही सत्ता व्याप्त है, तुम्हारे बिना किसी भी वस्तु की स्थिति नहीं रह सकती। देवि ! मेरे ऊपर प्रसन्न हो, ऐसे अवसर पर तुमको मुझे नहीं छोड़ना चाहिये।' इस प्रकार दक्ष के अतिशय अनुनय-विनय करने पर सती ने कहा—'मैंने जो कार्य प्रारम्भ कर दिया है उसे तो अब अवश्य ही करूँगी; किन्तु रुद्र द्वारा यज्ञ विध्वंस हो जाने के उपरान्त उन्हें प्रसन्न करने के लिए तुम मृत्युलोक में मेरे पास लोक सृष्टि की इच्छा से तपस्या करना। उसके माहात्म्य से दस पितरों के मध्य में तुम अकेले प्रजापति होगे। और मेरे अंशों से तुम्हें साठ पुत्रियाँ उत्पन्न होंगी, मेरे समीप तपस्या करते हुए तुम्हें योग की सिद्धि प्राप्त होगी।' सती की इस प्रकार आश्वासन भरी बातें सुन दक्ष ने पूछा—'हे निष्पापे ! इस सिद्धि की प्राप्ति के लिए मुझे किन-किन तीर्थस्थानों में तुम्हारा दर्शन करना होगा ? और वहाँ किन-किन नामों से तुम्हारी स्तुति करनी पड़ेगी ?' ॥१२—२३॥

देवी ने कहा—दक्ष ! यद्यपि मुझे पृथ्वी पर सभी जीवों में, सब स्थानों में सर्वदा विद्यमान देखना चाहिये, इस निखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी चर अचर पदार्थ है, उन सब में मेरी सत्ता विद्यमान है, मेरे अंश के बिना किसी का भी अस्तित्व नहीं रहता; तथापि सिद्धि प्राप्त करने की कामना करनेवालों तथा धन, ऐश्वर्य, सम्पत्ति आदि के अभिलाषियों को विशेष रूप से जिन-जिन स्थानों में मेरा दर्शन अथवा स्मरण करना चाहिये, उन सबको मैं मुख्य रूप से तुमको बतला रही हूँ ॥२४—२५॥

वाराणसी में विशालाक्षी, नैमिषारण्य में लिंगधारिणी, प्रयाग में ललिता देवी, गन्धमादन पर्वत पर

कामाक्षी देवी, मानसरोवर तीर्थ में कुमुदा देवी, अम्बर में विश्वकाया देवी, गोमन्त में गोमती देवी, मन्दरगिरि में कामचारिणी देवी, चैत्ररथ में मदोत्कटा देवी, हस्तिनापुर में जयन्ती देवी, कान्यकुब्ज में गौरी देवी, मलय पर्वत पर रम्भा देवी, एकाम्भक तीर्थ में कीर्तिमती देवी, विश्वेश्वर में विश्वा देवी, पुष्कर क्षेत्र में पुरुहूता देवी, केदारतीर्थ में मार्गदायिनी देवी, हिमवान् के पृष्ठ प्रदेश पर नन्दादेवी, गोकर्ण तीर्थ में भद्रकर्णिका देवी, स्थानेश्वर में भवानी, बिल्वल तीर्थ में बिल्वपत्रिका देवी, श्रीशैल गिरि पर माधवी देवी, भद्रेश्वर तीर्थ में भद्रादेवी, वराहशैल नामक गिरि पर जयादेवी, कमलालय तीर्थ में कामलादेवी, रुद्रकोटि नामक तीर्थ में रुद्राणी देवी, कालञ्जर नामक गिरि पर काली देवी, महालिंग नामक तीर्थ में कपिलादेवी, मर्कोट में मुकुटेश्वरी देवी, शालग्राम नामक तीर्थ में महादेवी, शिवलिंग तीर्थ में जलप्रिया देवी, मायापुरी तीर्थ में कुमारी देवी, सन्तान नामक तीर्थ में ललिता देवी, सहस्राक्ष तीर्थ में उत्पलाक्षी देवी, कमलाक्ष तीर्थ में महोत्पला देवी, गंगा में मंगला देवी, पुरुषोत्तम नामक क्षेत्र में विमला देवी, विपाशा में अमोघाक्षी देवी, पुण्ड्रवर्धन तीर्थ में पाटला देवी, सुपार्श्व तीर्थ में नारायणी देवी, त्रिकूट तीर्थ में भद्रसुन्दरी देवी, विपुलतीर्थ में विपुला देवी, मलयाचल में कल्याणी देवी, कोटितीर्थ में कोटवी देवी, माधवन में सुगन्धा देवी, गोदाश्रम तीर्थ में त्रिसन्ध्या देवी, गंगाद्वार में रतिप्रिया देवी, शिवकुण्ड नामक तीर्थ में शिवानन्दा देवी, देविका तट पर नन्दिनी देवी, द्वारावती पुरी में रुक्मिणी देवी, वृन्दावन में राधादेवी, मथुरापुरी में देवकी देवी, पाताल में परमेश्वरी देवी, चित्रकूट में सीतादेवी, विन्ध्याचल पर विन्ध्यवासिनी देवी, सह्याद्रि गिरि पर एकवीरा देवी, हरिश्चन्द्र में चन्द्रिका देवी, रामतीर्थ में रमणा देवी, यमुना में मृगावती देवी, करवीर तीर्थ में महालक्ष्मी देवी, विनायक तीर्थ में उमा देवी, वैद्यनाथ धाम में अरोगा देवी, महाकाल नामक तीर्थ में महेश्वरी देवी, उष्णतीर्थों में अभया देवी, विन्ध्य कन्दरा में अमृता देवी, माण्डव्य तीर्थ में माण्डवी देवी, माहेश्वरपुर में स्वाहा देवी, छागलाण्ड तीर्थ में प्रचण्डा देवी, मकरन्दक तीर्थ में चण्डिका देवी, सोमेश्वर तीर्थ में वरारोहा देवी, प्रभास क्षेत्र में पुष्करावती देवी, सरस्वती में देवमाता देवी, समुद्रतटवर्ती महालय नामक तीर्थ में महाभागा देवी, पयोष्णी में पिंगलेश्वरी देवी, कृतशौच तीर्थ में सिंहिका देवी, कार्तिकेय तीर्थ में यशस्करी देवी, उत्पलावर्तक क्षेत्र में लोला देवी, शोण संगम में सुभद्रा देवी, सिद्धपुर में माता, भरताश्रम में अंगना लक्ष्मी देवी, जालन्धर तीर्थ में विश्वमुखी देवी, किष्किन्धा पर्वत पर तारा देवी, देवदारु वन में तुष्टि देवी, काश्मीर देश में मेधा देवी, हिमालय पर भीमा देवी, विश्वेश्वर तीर्थ में पुष्टि देवी, कपालमोचन तीर्थ में शुद्धि देवी, कायावरोहण तीर्थ में माता देवी, शंखोद्धार तीर्थ में ध्वनि देवी, पिण्डारक तीर्थ में धृति देवी, चन्द्रभागा में काली देवी, अच्छोद तीर्थ में शिवकारिणी देवी, वेणा में अमृता देवी, बदरी तीर्थ में उर्वशी देवी, उत्तर कुरुप्रदेश में औषधी देवी, कुशद्वीप में कुशोदका देवी, हेमकूट गिरि पर मन्मथा देवी, मुकुट तीर्थ में सत्यवादिनी देवी, अश्वत्थ में वन्दनीया देवी, वैश्रवणालय तीर्थ में निधि देवी, वेदवदन तीर्थ में गायत्री देवी, शिव जी के समीप पार्वती देवी, देवलोक में इन्द्राणी देवी, ब्रह्मा के मुखों में सरस्वती देवी, सूर्यबिम्ब में प्रभा देवी, माताओं में वैष्णवी देवी, सतियों में अरुन्धती देवी,

स्त्रियों में तिलोत्तमा देवी, चित्त में ब्रह्मकला देवी और निखिल शरीर धारियों के मध्य में शक्ति देवी के नाम से मेरा निवास रहता है। मैंने संक्षेप में इन एक सौ आठ तीर्थों तथा अपने उत्तम नामों को बतलाया है। इन मेरे उत्तम एक सौ आठ नामों का जो कोई मनुष्य स्मरण करेगा अथवा दूसरे के मुख द्वारा केवल श्रवण करेगा वह अपने सम्पूर्ण संचित पाप कर्मों से मुक्त हो जायगा। और जो इन उपर्युक्त पवित्र तीर्थों में जाकर स्नान कर मेरा दर्शन करेगा, वह अपने सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो कल्प पर्यन्त शिव के लोक में निवास करेगा। और जो कोई मनुष्य इन तीर्थों में मेरे इस अन्तिम समय का स्मरण करेगा वह इस निखिल ब्रह्माण्ड का भेदन कर शंकर के परम पद की प्राप्ति करेगा। जो कोई मनुष्य मेरे इन नामों को तृतीया अथवा अष्टमी तिथि को शिव के समीप जाकर सुनायेगा वह अनेक पुत्रोंवाला होगा। गोदान, श्राद्धदान, अथवा प्रतिदिन के देवपूजन तथा दान आदि के उत्सवों पर जो कोई विद्वान् मेरे इन नामों का पाठ करेगा वह ब्रह्मपद की प्राप्ति करेगा। इस प्रकार दक्ष को शिव भक्ति का उपदेश देते हुए सती ने अपने ही से अपने शरीर को जला कर भस्म कर दिया। इसके उपरान्त निर्दिष्ट अवधि व्यतीत होने पर ब्रह्मा के पुत्र दक्ष प्रजापति प्राचेतस[1] प्रजापति के नाम से प्रसिद्ध हुए। और सती जी शिव जी की अर्द्धाङ्गिनी पार्वती (हिमवान् पर्वत की पुत्री) के रूप में मेना के गर्भ से उत्पन्न होकर अवतीर्ण हुईं, जो भुक्ति तथा मुक्ति की देनेवाली हैं। इन उपर्युक्त नामों का जप करती हुई अरुन्धती ने सर्व श्रेष्ठ योग की सिद्धि प्राप्त की, राजर्षि पुरूरवा ने इन्हीं नामों का जपकर अजेयता प्राप्त की, ययाति ने पुत्र की प्राप्ति की, भृगुनन्दन ने धन लाभ किया। इसी प्रकार अन्यान्य बहुतेरे देव, दैत्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों ने पूर्वकाल में इसके माहात्म्य से मनचाही सिद्धियों की प्राप्ति की। जिस स्थान पर किसी देवता के समीप में यह नामावली लिखकर रखी रहती है और पूजा की जाती है, वहाँ पर कभी शोक तथा दुर्गति का प्रसार नहीं होता। ॥२६–६४॥

श्री मात्स्य महापुराण में पितरों के वंशवर्णन प्रसंग में गौरी के एक सौ आठ नामों का कथन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥१३॥

चौदहवाँ अध्याय

सूत बोले—ऋषिगण! जहाँ पर मारीच के पुत्र देवताओं के पितर गण निवास करते हैं, वे लोक सोमपथ के नाम से विख्यात हैं। देवगण निरन्तर इनका ध्यान करते हैं। ये यज्ञपरायण देव पितरगण अग्निष्वात्त नाम से विख्यात हैं। उन लोगों की मानसी कन्या अच्छोदा नाम की एक नदी वहाँ पर अवस्थित है। प्राचीन काल में पितरों ने एक अच्छोद नामक सरोवर का भी वहाँ पर निर्माण किया था। देव पितरों की मानसी कन्या अच्छोदा ने एक बार देवताओं के एक सहस्र वर्ष पर्यन्त घोर तपस्या की। उसकी इस घोर तपस्या से प्रसन्न होकर देवताओं के समान सुन्दर पितरगण दिव्य पुष्पों की मालाओं तथा

[1]प्रचेताओं के पुत्र रूप में उत्पन्न होकर।

सुगन्धित पदार्थों से सुसज्जित होकर वरदान देने के लिए उसके पास आये। इनमें सभी पितरगण बलशाली तथा युवावस्था के थे और सभी का रूप कामदेव के समान मनोमुग्धकारी था। पितरों के इस समूह में अमावसु नामक एक अत्यन्त सुन्दर पितर को देखकर अच्छोदा अतिशय कामातुर हो गयी और उसी के साथ समागम करने की याचना करने लगी। अपने इस मानसिक व्यभिचार के कारण वह योगभ्रष्ट हो गयी और स्वर्ग लोक से च्युत होकर पृथ्वीतल पर गिर पड़ी, इससे पूर्व पृथ्वी का स्पर्श उसने नहीं किया था। जिस तिथि को अमावसु ने अच्छोदा की इस काम-प्रार्थना को ठुकराकर उसके साथ समागम की अनिच्छा प्रकट की थी, वह तिथि उसके अनुपम धैर्य रखने के कारण अमावस्या नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई, और इसी कारण से कि उसमें देवपितर अमावसु का धर्म अक्षुण्ण रहा, वह तिथि (अमावस्या) इन (पितरों) की अत्यन्त प्रिय तिथि हुई। इस तिथि को पितरों के उद्देश्य से किया गया कार्य अक्षयफलदायी होता है। ॥१—८॥

इस प्रकार अपने इतने दिनों की घोर तपस्या के विनष्ट हो जाने से अच्छोदा अतिशय लज्जित हुई। अत्यन्त दीन होकर नीचे मुख किये हुए देवताओं के पुर में अपनी प्रसिद्धि के लिए वह पितरों से पुनः प्रार्थना करने लगी। तब उस तपस्विनी को विलाप करते देखकर महाभाग्यशाली पितरगण देवताओं के भविष्य में घटित होनेवाले कार्यों का विचारकर प्रसन्नता एवं कल्याण से युक्त वाणी में सान्त्वना देते हुए बोले—'हे सुन्दरि! स्वर्ग में दिव्य शरीर धारण कर बुद्धिमान् लोग जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म करते हैं, उसका फल वे उसी शरीर से भोगते हैं क्योंकि देवयोनि में कर्मों का फल तुरन्त भोगना पड़ता है। इसके विपरीत मनुष्य योनि में कर्मों का फल दूसरे जन्म में भोगना पड़ता है। इसलिए हे पुत्रि! तपस्या द्वारा अर्जित पुण्यों को तुम जन्मान्तर में भोगोगी। अट्ठाईसवें द्वापर में तुम मत्स्य की योनि में उत्पन्न होगी। पितृकुल के साथ इस असद् व्यवहार के कारण ही तुम कष्ट भोगनेवाली मत्स्य योनि को प्राप्त करोगी। इसके अनन्तर तुम राजा वसु की कन्या होगी। उसकी कन्या होकर तुम फिर अपने इस दुर्लभ लोक को अवश्य प्राप्त करोगी और महर्षि पराशर के संयोग से बदरी वृक्षों से संकुलित किसी द्वीप में बादरायण (वेदव्यास) नामक एक अच्युत (कभी न डिगनेवाले) पुत्र को प्राप्त करोगी, तुम्हारा वह पुत्र एक वेद का अनेक विभाग करनेवाला होगा। तदनन्तर समुद्र के अंशभूत पुरुवंशीय परम बुद्धिमान राजा शान्तनु के संयोग से विचित्रवीर्य तथा चित्राङ्गद नामक दो क्षेत्रज पुत्रों को उत्पन्न कर प्रोष्ठपद नक्षत्र में अष्टका के रूप में तुम पितृलोक में जन्म ग्रहण करोगी। मनुष्य लोक में सत्यवती और पितृलोक में आयु और आरोग्य को प्रदान करनेवाली तथा सर्वदा सभी प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करनेवाली अष्टका के नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। उसके अनन्तर लोक में नदियों में श्रेष्ठ पुण्यसलिला अच्छोदा रूप में तुम जन्म धारण करोगी। इतना कह चुकने के बाद पितरों का वह समूह वहीं पर अन्तर्हित हो गया और अच्छोदा ने पितरों के कथनानुसार अपने समस्त कर्म फलों को प्राप्त किया, जो पहले कहे जा चुके हैं। ॥९—२१॥

श्री मात्स्य महापुराण में पितरों का वंश वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

सूत जी बोले—स्वर्ग में दूसरे विभ्राज नामक परम ज्योतिर्मय लोक हैं, जिनमें अत्यन्त तेजस्वी सुव्रतपरायण वर्हिषद् नामक पितरगण निवास करते हैं। वहाँ मयूरों से युक्त सहस्रों विमान सुशोभित रहते हैं! संकल्प के लिए काम में लाया हुआ बर्हि (कुश) वहाँ फल देने के लिए उपस्थित रहता है। वहाँ की अभ्युदयशाला में पितरों को श्राद्ध देनेवाले विराजमान रहते हैं। देवता और असुरों के समूह, गन्धर्व और अप्सराओं के वृन्द तथा यक्ष और राक्षसों के गण स्वर्ग में उन पितरों के उद्देश्य से यज्ञ का विधान करते हैं। पुलस्त्य के सैकड़ों तपस्वी और योगी पुत्रगण, जो परम महात्मा महान् भाग्यशाली तथा अपने भक्तों को अभय प्रदान करनेवाले हैं, अतिशय आनन्द के साथ वहाँ निवास करते हैं। स्वर्ग में पीवरी नाम से विख्यात उन पितरों की एक मानसी कन्या थी। योग साधना में लीन पीवरी ने अत्यन्त उग्र तपस्या की, जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न हुए। उसने भगवान् से वरदान माँगा—'हे देव! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो योगाभ्यासपरायण, परम रूपवान्, जितेन्द्रिय, परम प्रवक्ता (वाग्मी) पति का वरदान मुझे दीजिये!' भगवान् ने कहा—'व्रतपरायणे! वेदव्यास के पुत्र योगशास्त्र में पारंगत शुकदेव का आविर्भाव इस पृथ्वी तल पर जब होगा तब तुम उन्हीं की स्त्री होकर अवतीर्ण होओगी। शुकदेव के संयोग से तुम्हारे कृत्वी नाम की एक योगाभ्यासपरायणा कन्या उत्पन्न होगी। उसे तुम पाञ्चाल देश के राजा को समर्पित करना। वह तुम्हारी पुत्री योग में पारंगत, ब्रह्मदत्त की माता गौ के नाम से प्रसिद्ध होगी। इसके अनन्तर कृष्ण, गौर, प्रभु और शम्भु नामक तुम्हारे चार पुत्र होंगे, वे सब भी अत्यन्त भाग्यशाली और महात्मा होंगे और अन्त में परमपद को प्राप्त करेंगे। उन्हें उत्पन्न करने के अनन्तर अपने योगबल से तुम पुनः अपने पति के साथ वर प्राप्त कर के मोक्ष प्राप्त करोगी।' ॥१–११॥

महर्षि वसिष्ठ के पुत्र सुन्दर स्वरूपवाले पितरगण, जो सब मानस नाम से विख्यात हैं, साक्षात् धर्म की मूर्ति हैं और वे स्वर्ग का अतिक्रम कर ज्योतिर्भास नामक लोक में निवास करते हैं। वहाँ पर श्राद्ध देनेवाले शूद्र भी सम्पूर्ण मानसिक इच्छाओं की पूर्ति करनेवाले रथों पर विराजमान होकर क्रीड़ा करते हैं तो श्राद्ध देनेवाले क्रियानिष्ठ भक्तिमान् ब्राह्मणों के लिए फिर क्या कहना है? इन पितरों की गौ नाम की मानसी कन्या स्वर्गलोक में विराजमान है, जो शुक्र की प्रिय पत्नी तथा साध्यगणों की कीर्ति का विस्तार करनेवाली है। सूर्यमण्डल में मरीचिगर्भ नाम से विख्यात अन्य लोक अवस्थित हैं, उनमें अंगिरा के पुत्र हविष्मान् नामक पितरगण निवास करते हैं। ये राजाओं (क्षत्रियों) के पितरगण स्वर्ग एवं मुक्ति का फल देनेवाले हैं। जो श्रेष्ठ क्षत्रिय तीर्थ स्थानों में अपने पितरों के लिए श्राद्ध आदि करते हैं वे इसी स्थान को प्राप्त करते हैं। इन क्षत्रिय पितरों की यशोदा नाम से लोक प्रसिद्ध एक मानसी कन्या थी, जो राजा पंचजन की पुत्रवधू, राजा अंशुमान की स्त्री, राजा दिलीप की माता तथा राजा भगीरथ की पितामही थी। कामदुघ नामक सब प्रकार के मनोरथ और भोगों को प्रदान करनेवाले अन्य पितरलोक हैं,

उनमें सुस्वधा नामक व्रतपरायण पितरगण निवास करते हैं। कर्दम नामक प्रजापति के लोक में वे पितरगण आज्यप नाम से विख्यात हैं। महर्षि पुलह के वंशज वैश्यगण उनकी पूजा करते हैं। श्राद्ध करनेवाले (वैश्यगण) इस लोक में पहुँचकर दस सहस्र जन्मान्तरों तक के देखे तथा अनुभव किये हुए अपने सहस्रों माता, पिता, भाई, बहन, मित्र तथा सम्बन्धियों को एक साथ में विराजमान देखते हैं। इन पितरगणों की मानसी कन्या विरजा नाम से सुविख्यात थी, जो राजा नहुष की धर्मपत्नी तथा राजा ययाति की माता थी। तदनन्तर वह सती (पतिपरायणा) ब्रह्मलोकको चली गई और वहाँ अष्टका के नाम से प्रसिद्ध हुई। इन तीन स्वर्गीय देव पितरगणों को मैं बतला चुका अब इसके उपरान्त चौथे पितरगणों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ॥१२–२४॥

ब्रह्माण्ड के ऊपर अवस्थित मानस नामक लोक हैं, जिन में सोमपा नामक पितरगण निरन्तर निवास करते हैं। उनकी नर्मदा नामक सुप्रसिद्ध मानसी कन्या है। ये सभी पितरगण धर्ममूर्ति हैं और ब्रह्मा से भी श्रेष्ठ कहे जाते हैं। ये योगाभ्यासी पितरगण स्वधा से उत्पन्न हुए हैं और अपने योगबल द्वारा ब्रह्मत्व की प्राप्ति करके सृष्टि आदि सांसारिक कर्मों को निवृत्तकर इस समय उपर्युक्त मानस लोक में निवास करते हैं। इनकी कन्या नर्मदा भारत के दक्षिणापथ के देशों में बहती हुई सभी जीवों को पवित्र करती है। इन्हीं पितरगणों की तुष्टि के लिए मनुगण सृष्टि के आदि काल में प्रजाओं का निर्माण करते हैं। लोग इस रहस्य को जानकर धर्म के अभाव में भी श्राद्ध आदि कर्मों को करते हैं। उन्हीं की प्रसन्नता से पुनः योग परम्परा की प्राप्ति के लिए प्रथम सृष्टि के अवसर पर पितरों के श्राद्ध आदि कर्मों का विधान प्रस्तुत किया गया था। पितरों के उद्देश्य से स्वधा के साथ चाँदी का अथवा चाँदी के सहित जो पात्र पुरोहित को दिया जाता है, उससे पितरगण बहुत प्रसन्न होते हैं। पण्डित लोग श्राद्ध में अग्नि, चन्द्रमा और यमराज का प्रथमतः तर्पण करते हैं। पितरों के उद्देश्य से दिया गया अन्नादि अग्नि में छोड़ देना चाहिये। अग्नि के अभाव में ब्राह्मण की हथेली पर, जल में, अजाकर्ण[1], अश्वकर्ण, गोशाला, जलाशय के समीप अथवा आकाश में पितरों का स्थान जानना चाहिये। उनके लिए दक्षिण दिशा प्रशस्त मानी गई है। प्राचीनावीत जल के सहित तिल, विपरीत अंग,[2] दर्भ,[3] मांस, पाठीन (एक प्रकार की मछली), गाय का दूध, सुमधुर रस, खड्ग से

---

[1] प्राचीन काल में पितरों के श्राद्धादि कर्मों में, जैसा कि आगे भी कहा गया है, मांस का विधान था। उसी प्रसंग में अजा आदि का बध होता रहा होगा और शरीर के सभी अङ्ग हवन कर देने के पश्चात् कान शेष रहता रहा होगा, जो पितृ-कार्य के लिये पवित्र माना जाता था। उसी प्रकार अश्वकर्ण का भी विधान होता रहा होगा।

[2] पितरों को तर्पण करते समय कुछ कार्य बाएँ अंग से किये जाते हैं। यज्ञोपवीत बाईं ओर से दाईं ओर कर लिया जाता है, जो प्राचीनावीत कहा जाता है। यह विधान केवल पितरों के ही कार्यों में है। देव कार्यों में इसका विधान नहीं है।

[3] दर्भ शब्द यद्यपि साधारणतया कुश का ही बोध कराता है, परन्तु कुश शब्द के अलग ग्रहण किये जाने से अन्य छः प्रकार के दर्भों में से कोई एक लेना चाहिये। वे छः कुश ये हैं—कुशा, कास, बल्वल, तीक्ष्ण रोमवाले कुश, मूँज और शाद्वल।

काटा गया मांस, मधु, कुश, श्यामाक (साँवा), शालि (साठी नामक एक धान विशेष), जव, नीवार (तीनी), मूँग, ईख, श्वेत पुष्प और घृत—ये सब पदार्थ पितरों को सदैव प्रिय और प्रशस्त कहे गये हैं। अब इसके बाद मैं श्राद्धादि कार्यों में वर्जित उन पदार्थों को बतला रहा हूँ, जो पितरों को प्रिय नहीं हैं। मसूर, शण (पटुआ के बीज), पतुआ अन्न, काला उड़द, कुसुम्भा (एक प्रकार का अन्न), कमल, बेल, मन्दार, धतूरा, पारिजात और अड़ूसा के पुष्प और बकरी का दूध—ये पितरों के कार्य में नहीं देने चाहियें। कोदो, चना, कपित्थ, (कैंथा) महुआ और अलसी—इन सब पितृ कार्य में दूषित पदार्थों को भी पितरों के कल्याण की दृष्टि से नहीं देना चाहिये। जो कोई अपने पितरों की भक्ति सहित श्राद्धादि द्वारा तृप्ति करता है, पितरगण भी उसका विधिवत् पालन करते हैं। पितर गण प्रसन्न होकर श्राद्धादि कार्यों के करनेवाले को अनेक प्रकार की समृद्धि, आरोग्य, सन्तान एवं स्वर्ग आदि प्रदान करते हैं। देवताओं के कार्यों से भी बढ़कर पितरों के कार्यों का माहात्म्य है, देवताओं से पूर्व पितरों के तर्पण आदि का विधान कहा जाता है। पितर गण सर्वदा शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, शान्तचित्त, पवित्रतापरायण, प्रियवादी, अपने भक्तों में अनुरक्त तथा सुख देनेवाले हैं, अतः गृहस्थों के ये ही प्रथम देवता हैं। हविष्यान्न के भक्षण करने वालों के आधिपत्य में श्राद्ध के देवता सूर्य कहे गये हैं। इन पितरों के वंश का वृत्तान्त मैंने सब कह सुनाया, यह परम पुण्य पवित्रता तथा दीर्घ आयु को देनेवाला है, मनुष्यों को सर्वदा इसका कीर्तन करना चाहिये। ॥२५—४३॥

श्री मात्स्य महापुराण में पितरों का वंश वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१५॥

सोलहवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण! भगवान् मत्स्य के मुख से इन सब बातों को सुनकर मनुजी ने पूछा—'भगवन्! श्राद्धभेद, कालभेद, किन द्विजातियों को भोजन कराना चाहिये? किन्हें नहीं निमन्त्रित करना चाहिये? दिन के किस भाग में श्राद्ध करना चाहिये? किस पात्र में देने से किस रूप में पितरों को फल मिलता है? मधुसूदन! किस प्रकार के विधान से यह श्राद्ध करना चाहिये? और यह श्राद्ध पितरों को किस प्रकार तृप्त करता है? इन सभी बातों को कृपया आप हमें बताइये। ॥१—३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—मनुजी! प्रतिदिन यथाशक्ति अन्न आदि से वा जल से अथवा दूध वा मूल फल आदि से ही पितरों पर श्रद्धा रखकर श्राद्ध कर्म करना चाहिये। नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीन प्रकार के श्राद्ध कहे गये हैं। इन तीनों में से प्रथमतः नित्य श्राद्ध को बतला रहा हूँ, जो अर्घ्य तथा आवाहन के विना ही किया जाता है। इस श्राद्ध-कर्म को अदैवी जानना चाहिये। पर्व-पर्व पर सम्पन्न होने वाले को पार्वण श्राद्ध कहते हैं। राजन्! यह पार्वण श्राद्ध तीन प्रकार का होता है, उन्हें सुनिये। इसमें जिन लोगों को श्राद्ध का अधिकारी बनाकर सम्मिलित करना चाहिये, प्रथमतः उन्हें बतला रहा हूँ, सुनिये।

गार्हपत्य आदि पाँच प्रकार की अग्नियों की नित्य उपासना करनेवाला हो, स्नातक हो, त्रिसुपर्णा हो, वेद के छहों अंगों का अधिकारी हो, श्रोत्रिय हो अथवा श्रोत्रिय का पुत्र हो, विधि वाक्य (कर्म काण्ड के समस्त विधानों) का विज्ञाता हो, सर्वज्ञ हो, वेदों का जाननेवाला हो, उचित सम्मति का दाता हो, जिसका वंश तथा कुल सुप्रसिद्ध तथा प्रशस्त हो, पुराणों का जाननेवाला हो, धर्मिष्ठ हो, स्वाध्यायी तथा तपश्चर्या में निरत रहनेवाला हो, शिव का भक्त हो अथवा वैष्णव हो, पितृभक्त तथा सूर्य का उपासक हो, ब्रह्मण्य (ब्राह्मण अथवा वेदों की रक्षा करनेवाला) तथा योगाभ्यासी हो, शान्त तथा जितेन्द्रिय हो, शीलवान् हो—ऐसे पुरोहित को श्राद्ध कर्म में नियुक्त करना चाहिये। इस पुनीत श्राद्ध कर्म में अपने नाती, मित्र, गुरु (कुलगुरु), जामाता, मामा, परिवार के लोग, पुरोहित, आचार्य (विद्यागुरु) और यज्ञ में सोमरस पीनेवालों को यत्नपूर्वक बुलाकर अवश्य भोजन करवाना चाहिये। श्राद्धादि कार्यों में विधि वाक्यों की व्याख्या करनेवाले, यज्ञ की मीमांसा करनेवाले, सामवेद के स्वर और विधि को भलीभाँति जाननेवाले, पवित्र पंक्तिपावन[1], पूर्ण सामवेद के पारगामी, ब्रह्मचारी, ब्रह्मज्ञानी तथा वेदज्ञ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। जिस श्राद्धकर्म में ऐसे पवित्र ब्राह्मण भोजन करते हैं, वह परमार्थ के समान पुण्यदायी होता है। अतः श्राद्धकर्त्ता को प्रयत्नपूर्वक श्राद्धादि कार्यों में ऐसे ही ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। अब श्राद्धादि कार्यों में जो लोग वर्जित किये गये हैं, उन्हें बतला रहा हूँ, सुनो। पतित (जो अपने आश्रमधर्म से च्युत हो गया हो), मिथ्यावादी, परस्त्रीरत, नपुंसक, धूर्त, विकृत अंगोंवाला, रोगी, बुरे नखोंवाला, काले पीले दाँतों वाला, छिनाले से उत्पन्न, कुत्तों का पालनेवाला, परिवित्ति[2], नौकर अथवा जिसका चित्त कहीं अन्यत्र लगा हो, पागल, उन्मादी, क्रूर, विड़ाल तथा बगले की तरह चोरी से जीविका उपार्जन करनेवाला, दम्भी, देवमन्दिर में पूजा कर वेतन लेनेवाला—ये सब श्राद्ध कार्य में वर्जित किये गये हैं। इसी प्रकार कृतघ्न, नास्तिक (परलोक को न माननेवाला) त्रिशंकु, वर्वर, द्राव, वीत, द्रविड और कोंकड आदि म्लेच्छ देश में रहनेवालों तथा सब प्रकार के संन्यासियों—गिरि, पुरी, भारती आदि दशनामियों—को भी श्राद्धकाल में विशेषतया वर्जित करना चाहिये। श्राद्ध कर्म के एक दिन अथवा दो दिन पूर्व ही श्राद्धकर्त्ता विनीतभाव से ब्राह्मणों को निमंत्रित करे। उन निमंत्रित ब्राह्मणों के शरीर में पितरगण वायुरूप होकर स्थित रहते हैं, उनके पीछे-पीछे वे गमन करते हैं और उनके बैठने पर वे भी उन्हीं में आविष्ट होकर वा उन्हीं के पास बैठते हैं। उस समय श्राद्धकर्त्ता अपने दाहने घुटने को टेककर कहे—'आपको मैं निमंत्रित करता हूँ।' इस प्रकार निमंत्रित करके पिता के परिवार वालों को अपना निश्चय सुनावे और उनसे कहे—'मैं अमुक दिन श्राद्ध करूँगा आप लोग उस दिन निष्क्रोध, पवित्र तथा ब्रह्मचर्य व्रत रखकर हमारे श्राद्ध में सम्मिलित हों, मैं भी वैसा ही रहूँगा।' पितृयज्ञ से निवृत्त होकर पितृगणों का तर्पण करना चाहिये। अग्निमान् अर्थात् यज्ञकर्त्ता को अन्वाहार्यक नामक श्राद्ध सर्वदा अमावस्या तिथि को करना चाहिये।

---

[1] श्राद्धादि कर्मों में भोजन कराने योग्य वे ब्राह्मण जो नित्य पंचाग्नियों के उपासक तथा सदाचार निरत हों।

[2] बड़े भाई के अविवाहित रहने पर भी जो छोटा भाई अपना विवाह कर लेता है।

दक्षिण दिशा की ओर कुछ झुके हुये स्थान को, जो गोशाला वा जलाशय के समीप में हो, गोबर से भली-भाँति लीपकर वहीं पर भक्ति के साथ श्राद्ध का विधान करना चाहिये। श्राद्धकर्त्ता अपनी मुट्ठियों में पितरों को दी जाने वाली चरु को सम संख्या (२, ४, ६ आदि) में लेकर "पितरों के लिये इसका निर्वाप कर रहा हूँ"—ऐसा कहकर सब को अपने बैठने के स्थान से दक्षिण दिशा की ओर कर ले। इसके पश्चात् अग्नि में घी की धारा छोड़कर, फिर तीन भाग करके चरु को अपने आगे की ओर रखे। और उसे चार अंगुल के आकार में विस्तृत करके फैला दे। तीन दर्वी (करछुल, जिससे हवन के समय हवनीय पदार्थ अग्नि में छोड़े जाते हैं।), जो खदिर की बनी हों अथवा चाँदी से युक्त हों, एकत्र करनी चाहिये। वे आकार में मुट्ठी बँधे हुये हाथ जितनी बड़ी, चिकनी, उत्तम तथा हथेली की भाँति बनी हुई और सुडौल हों। फिर अपसव्य होकर (जनेऊ को बाईं ओर से दाहिनी ओर करके) काँसे का जलपात्र, मेक्षण (यज्ञ के काम में आने वाला पात्रविशेष), समिधा, कुश, तिल, अन्यान्य पात्र, सुन्दर वस्त्र, गन्ध, धूप और अंगराग आदि पदार्थों को, जो श्राद्धकर्म के लिये आवश्यक हैं, लाकर वहीं पर धीरे से रखे। इस प्रकार सभी वस्तुओं को इकट्ठा करके अपने घर के आगे (सामने) गोबर से स्वच्छ की हुई भूमि पर, गो मूत्र से पवित्र किये हुये मण्डल में अपसव्य होकर फूल तथा अक्षतों से पूजा करे। निमन्त्रित ब्राह्मणों का बारम्बार अभिनन्दन करके पैर धोये और कुश के बने हुए आसनों पर विधानपूर्वक जल से आचमन कराकर उन्हें बैठाये और इसके अनन्तर उनसे सम्मति ले। पण्डितों को देवकार्य में दो, पितर कार्य में तीन अथवा दोनों में एक ही एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। इस पार्वण श्राद्ध में बहुत बड़े समर्थ को भी विस्तार नहीं करना चाहिये[1]। प्रथमतः परमात्मा को समर्पित करके फ़िर निमंत्रित ब्राह्मणों को अर्घ्य आदि से पूजित करे और उनकी आज्ञा से अपने गृह्यसूक्त तथा वंश परम्परा के अनुकूल, विधिपूर्वक काँसे के पात्र में हवनीय पदार्थ को लेकर अग्नि में छोड़े। पण्डितों को चाहिये कि वे पहले अग्नि, चन्द्रमा तथा यमराज का तर्पण करें। एकाग्नि (केवल एक बार अग्नि की पूजा करनेवाला) यज्ञोपवीती (जिसका जनेऊ किया गया हो) ब्राह्मण दक्षिण नामक अग्नि में प्रज्वलित हो जाने पर श्राद्ध सम्पन्न करे। इसके अनन्तर पर्युक्षण आदि से निवृत्त होकर उपर्युक्त विधियों को भलीभाँति समझकर प्राचीनावीती होकर समस्त क्रियाएँ सम्पन्न करे। फिर बचे हुए हवि से छः पिण्ड बनाकर, उसके ऊपर अपने बाएँ हाथ से पानीवाले पात्र द्वारा तिल के सहित जल छोड़े और बाएँ घुटने को मोड़कर, ईर्ष्या तथा क्रोध से रहित होकर, कुश लेकर उन्हीं पिण्डों पर यत्नपूर्वक चिंह्न बनाये और दक्षिण दिशा की ओर मुख करके चरु (हविष्यान्न में) के ऊपर अवनेजन (पिण्डों के ऊपर कुश लेकर जल छिड़कने की क्रिया) करे। फिर हाथ में करछुल लेकर एक एक पिण्डे को क्रमशः सभी (बिछाये गये) कुशों पर पितरों का नाम तथा गोत्र का उच्चारण करके रखे और बाद में हाथ में लगे हुए हविष्यान्न को भी उन्हीं कुशों में पोंछ दे। फिर उसी प्रकार प्रत्यवनेजन (पिण्डों

---

[1] क्योंकि तथोक्त विशेषणों से युक्त ब्राह्मणों का अधिक संख्या में मिलना दुष्कर है।

के ऊपर जल छोड़ना) की क्रिया भी करे। इसके उपरान्त गन्ध, धूप आदि पूजा की सामग्रियों द्वारा छहों पितरों को नमस्कार करके वेद में कहे गये मंत्रों द्वारा उनका आवाहन करे। एकाग्नि ब्राह्मण के लिए केवल एक निर्वाप तथा करछुल का विधान है। इसके सम्पन्न कर लेने के उपरान्त वह कुशों पर पितरों की स्त्रियों को अन्न दान दे। पिण्डादि कार्यों का विधान, आवाहन तथा विसर्जन आदि की विधियाँ पितरकार्य में जिस प्रकार हैं, उसी प्रकार इसमें भी करना चाहिये। फिर श्राद्धकर्त्ता सभी पिण्डों में से कुछ थोड़ी थोड़ी मात्रा में लेकर उन्हीं ब्राह्मणों को यत्नपूर्वक सबसे पहले भोजन करायें। ॥४-४२॥

यतः पिण्ड के अन्न से हरण किये गये (लिये गये) अंश को ब्राह्मण अमावास्या को खाते हैं, अतः इस श्राद्ध का नाम अन्वाहार्यक पड़ा। श्राद्धकर्त्ता पहले तिल सहित जल को भोजन करनेवाले ब्राह्मण के हाथ में देकर, 'इन हमारे पितरों के लिए 'स्वधा' हो'—ऐसा कहकर उस पिण्डों के अंश को दे दे। भोजन करनेवाले ब्राह्मण को चाहिये कि वह विष्णु भगवान् का स्मरण करते हुए निष्क्रोध भाव से, 'खूब मीठा है', 'बड़ा पवित्र है'—ऐसा कहते हुए उस पदार्थ का भोजन करे। इस प्रकार ब्राह्मणों को तृप्त जानकर सब वर्ण वालों के लिए विकिरण करे और जल के सहित अन्न को उठाकर पृथ्वी पर जल छोड़े। फिर आचमन करके, फूल, अक्षत और जल लेकर स्वस्तिवाचन करते हुए सब को पिण्डों के ऊपर छोड़े। श्राद्ध की इन क्रियाओं को परमात्मा के लिए समर्पित करना चाहिए, अन्यथा श्राद्ध का फल नष्ट हो जाता है। ब्राह्मणों को प्रदक्षिणा करके विसर्जित करे और दक्षिण दिशा की ओर मुख करके हार्दिक अभिलाषाओं की पूर्त्ति के लिए पितरों से प्रार्थना करते हुए कहे—'हे पितरगण! हमारे दाताओं की अभिवृद्धि हो, हमारा वेदज्ञान बढ़े, हमारी सन्तति बढ़े, हमारी श्रद्धा कभी न घटे, हमारे पास देने के लिए विपुल सम्पत्ति हो, हमारे पास पर्याप्त अन्न हो, हमारे घर पर अधिक अतिथि आवें। हमसे दूसरे याचना करनेवाले हों, हम किसी से याचना न करें।' यजमान की इस प्रार्थना के उत्तर में ब्राह्मण लोग कहें—'ऐसा ही होगा।' इस प्रकार अन्वाहार्यक पार्वण श्राद्ध का विधान कहा जा चुका। जिस प्रकार अमावास्या तिथि को इस श्राद्ध का विधान बताया गया है, वैसे ही अन्य तिथियों को भी इसका विधान है। श्राद्ध कर्म हो जाने के उपरान्त पिण्डों को गाय, अजा अथवा ब्राह्मणों को दे देना चाहिये वा अग्नि अथवा जल में छोड़ देना चाहिये, अथवा ब्राह्मणों के आगे पक्षियों को खिला दे—ऐसी भी विधि है। पत्नी 'पितृगण वंशवृद्धि करने वाली सन्तान का मुझमें गर्भाधान करें'—इस भावना से बीच वाले पिण्ड को विनयपूर्वक स्वयं खाय। जब तक ब्राह्मण लोग विसर्जित किये जाते हैं तब तक यह पिंड उच्छिष्ट रहता है। पितर कर्म की समाप्ति के अनन्तर वैश्वदेव का पूजन करना चाहिये। इसके उपरान्त अपने इष्ट मित्रों समेत पितरों से उच्छिष्ट भोजन को स्वयम् करना चाहिये। ॥४३-५५॥

श्राद्धकर्त्ता तथा श्राद्धान्न के खानेवालों के लिए फिर से भोजन, मार्ग (यात्रा), सवारी (अश्वारोहण आदि) परिश्रम, मैथुन, स्वाध्याय, कलह, दिन में शयन आदि कार्य सर्वदा वर्जित माने गये हैं—इस उपर्युक्त विधान से जठुआई आदि भी न लेकर श्राद्धकर्म तथा पिण्डदान आदि करना चाहिये। कन्या, कुम्भ

तथा वृष राशि पर सूर्य होने के समय कृष्ण पक्ष में जब-जब सपिण्डीकरण के पश्चात् पिण्ड दान दे, तब-तब अग्निमान् ब्राह्मणों को उपर्युक्त नियम के अनुसार ही श्राद्ध करना चाहिये। ॥५६—५८॥

श्री मात्स्य महापुराण में श्राद्धकाल नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

————

सत्रहवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण! अब इसके उपरान्त मैं भोग एवं मोक्ष देनेवाले साधारण श्राद्ध की विधि बतलाऊँगा, जिसे स्वयं विष्णु भगवान् ने कहा है। सूर्य की मकर, कर्क, तुला और मेष की संक्रान्ति के अवसर पर, अमावास्या, अष्टका तथा पूर्णिमा तिथि को, आर्द्रा, मघा और रोहिणी नक्षत्र में, धन और ब्राह्मण के समागम में, गजच्छाया और व्यतीपात नामक योग के अवसर पर, विष्टि नामक करण तथा वैधृति नामक योगवाले दिन में, उक्त साधारण श्राद्ध किया जाता है। वैशाख मास की शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया, जिस तिथि को त्रेता युग का प्रारम्भ हुआ था।) कार्तिक की शुक्ल नवमी (अक्षय नवमी, जो सतयुग की आदि तिथि है।), माघ की पूर्णमासी (जो द्वापर की युगादि तिथि है) तथा श्रावण की त्रयोदशी (जो कलियुग की आदि तिथि है।)—ये तिथियाँ युगादि तिथियों के नाम से प्रसिद्ध हैं, अतः इन में किया गया श्राद्ध पितरों को अक्षयफलदायी होता है। इसी प्रकार मन्वन्तर की आदि तिथियों में भी श्राद्धकर्त्ता को श्राद्ध कर्म करना चाहिये। आश्विन मास की शुक्ल नवमी, कार्तिक की शुक्ल द्वादशी, चैत्र की शुक्ल तृतीया, भादों की शुक्ल तृतीया, फाल्गुन की अमावास्या, पूस की शुक्ल एकादशी, आषाढ़ की शुक्ल दशमी, माघ की शुक्ल सप्तमी, श्रावण की कृष्ण अष्टमी, आषाढ़ की पूर्णिमा, कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र तथा ज्येष्ठ की पूर्णिमा—ये उपर्युक्त चौदह तिथियाँ चौदह मन्वन्तरों की आदि तिथियाँ हैं, इनमें किया गया श्राद्ध अक्षयफलदायक होता है। जिस मन्वन्तर की आदि तिथि को भगवान् सूर्य रथ पर समासीन होते हैं, वह माघ मास की शुक्ल सप्तमी रथसप्तमी के नाम से प्रसिद्ध है। इस तिथि को श्राद्धकर्त्ता यदि नियमपूर्वक तिल से मिला हुआ जल भी अपने पितरों को प्रदान करता है तो वह सहस्र वर्षों के श्राद्ध के समान पुण्य प्राप्त करता है। इस रहस्य को पितरगण स्वयं कहते हैं। वैशाख के महीने में जब कभी कोई ग्रहण लगे अथवा पितृपक्ष में वा किसी विशेष उत्सव के अवसर पर इसे करना चाहिये। पण्डित जन किसी तीर्थ अथवा गोशाला, दीपगृह वा वाटिका में एकान्त स्थान देखकर खूब लीप-पोतकर श्राद्ध करें। श्राद्ध के एक दिन पूर्व तथा बाद में विनीत भाव से शील-सदाचार निष्ठ, गुणी, रूपवान्, एवं अधिक अवस्था वाले ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे। देव कार्य में दो, पितर कार्य में तीन अथवा दोनों में एक ही एक ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिये। किसी अधिक समृद्धिशाली को भी इस संख्या में विस्तार नहीं करना चाहिये। विश्वेदेवों को जव तथा पुष्पों द्वारा विधिवत् पूजित करके उनके लिए दो आसन रखे। और दो पात्र स्थापित करके उनमें कुश का पवित्रक (मोटक, जो तीन कुशों से बनाया जाता है) डाले।

फिर "शन्नो देवी..............." इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके उनमें जल तथा "यवोऽसि यवया" इत्यादि मन्त्र से जव छोड़े। तदनन्तर गन्ध, धूप, पुष्प आदि उपचारों से विधिवत् पूजा कर वैश्वदेवों के उद्देश्य से उसे रख दे। इसके उपरान्त 'विश्वेदेवा स ....', इत्यादि दो मंत्रों से आवाहन करके नीचे जव बिखेर दे। फिर सुगन्धित द्रव्यों तथा पुष्पों से अलंकृत कर के 'या दिव्या..........' इत्यादि मंत्र से अर्ध्य प्रदान करे। इस प्रकार उनकी विधिवत् पूजा करने के अनन्तर पितरों की पूजा का विधान प्रारम्भ करे। पहले पितरों के लिए कुशासन देकर तीन पात्रों में कुश के पवित्रक (मोटक) के साथ 'शन्नो देवी...........' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण कर जल छोड़े और पात्र को पूरा पूरा भर दे। फिर 'तिलोऽसि........' इत्यादि मंत्रों से तिल छोड़े और पुनः विना मंत्रोच्चारण के सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्प चढ़ाये। वे तीनों पात्र वनस्पति के पत्तों के बने हों, अथवा जल से या समुद्र से उत्पन्न होनेवाले पत्तों के बने हों। अथवा सुवर्णमय वा चाँदीमय पात्र हों। यदि इन सुवर्ण वा रजत पात्रों के देने की सामर्थ्य न हो तो चाँदी का वर्णन वा दर्शन अथवा अल्प परिमाण में दान कर देने से भी कार्य चल सकता है। पितरों को श्रद्धापूर्वक चाँदी के बने हुए अथवा चाँदी मढ़े हुए पात्रों में दिया हुआ जल अक्षय तृप्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार उनके अर्ध्य, पिण्ड तथा भोज्य पदार्थों के रखने के पात्र भी चाँदी ही के प्रशस्त माने गये हैं। चाँदी शिव जी के नेत्रों से निकली है, अतः पितरों की यह अतिशय प्रिय वस्तु है। किन्तु देव कार्यों में इसे अमांगलिक माना गया है, अतः देवकार्य में यत्न पूर्वक इसे वर्जित रखना चाहिये। इस प्रकार अपनी स्थिति के अनुकूल पात्रों का संजोव (विचार) कर ईर्ष्या और अहंकार से रहित हो, कुशा हाथ में लेकर 'या दिव्ये....' इत्यादि मंत्र का उच्चारण कर अपने पितरों का नाम और गोत्र का उच्चारण करे और पात्र को भूमि पर रख दे। फिर ब्राह्मणों की ओर देख कर यह कहे 'मैं अपने पितरों का आवाहन कर रहा हूँ' इसके उत्तर में ब्राह्मण लोग कहें—'करो' फिर 'उशन्तस्त्वा...' और 'तथायन्तु....' इत्यादि दो मंत्रों से पितरों का आवाहन करे। इसके उपरान्त 'या दिव्या...' इत्यादि मंत्र से पितरों के लिए अर्ध्य देकर सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्प आदि समर्पित करे। फिर हाथ में उसी जल को लेकर पहले उन्हीं पितरों के पात्रों में छोड़े और उसे औंधा करके उत्तर की ओर रख दे और यह कहे—'यह पितरों के लिए स्थान हो', और फिर जल से उसका सेचन करे। इस श्राद्ध में भी पूर्व कही गयी श्राद्ध की विधियों के अनुसार मत्सर रहित होकर अग्नि का कार्य सम्पादित करे। इसके उपरान्त अपने हाथों में कुशा लेकर शान्त चित्त से सभी खाद्य पदार्थों को, जो अनेक प्रकार के गुणदायक दाल और शाकादि व्यंजनों से युक्त हो, अपने दोनों हाथों से उठाकर परोसे। भगवान ने कहा है कि दही, दूध के साथ शक्कर से मिश्रित अन्न, गाय का घी और मांस—ये खाद्य पदार्थ सभी पितरों को प्रसन्न और तृप्त करते हैं। पितर गण मछली के मांस से दो मास, हरिण के मांस से तीन मास, भेंड़ के मांस से चार मास, पक्षी के मांस से पाँच मास, बकरे के मांस से छःमास, सफेद चकत्ते वाले मृग के मांस से सात मास, काले रंग वाले मृग के मांस से आठ मास, सुअर तथा भैंसों के माँस से दस मास, खरगोश और कछुए के मांस से

ग्यारह मास, गाय के दूध में चुराई हुई खीर से एक वर्ष, रुरु नामक एक विशेष मृग के मांस से पन्द्रह मास, तथा वार्ध्रीणस के मांस से बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं। कालशाक तथा खड्ग मांस से उनकी अनन्तकाल तक तृप्ति होती है। इसके अतिरिक्त जो मधुमिश्रित, गाय का दूध, घृत तथा खीर आदि पदार्थ पितरोंको दिये जाते हैं, वे भी उनके अक्षय तृप्तिकारक कहे गये हैं। श्राद्ध के समय पितरों को यथाशक्ति सभी पुराणों, ब्रह्मा विष्णु तथा शंकर के अनेक प्रकार के स्तोत्रों, परम पवित्र इन्द्र, अग्नि तथा चन्द्रमा के सूक्तों, बृहद्रथन्तर, सरौहिण ज्येष्ठसाम, शान्तिकाध्याय, मधु ब्राह्मण मण्डल आदि सूक्तों तथा अन्य प्रीतिवर्धक सूक्तों वा स्तोत्रों को ब्राह्मणों के द्वारा अथवा स्वयं सुनाना चाहिये। हे राजन्! ब्राह्मणों के भोजन कर लेने के उपरान्त उनके भोजन के समीप में ही सब प्रकार के अन्न आदि पदार्थों को लेकर और उस स्थान को जल द्वारा शुद्धकर भोजन कर लेनेवालों के आगे रखकर बिखेर दे और कहे—'मेरे परिवार में जो लोग अग्नि में जलकर अथवा बिना जलाये (जिनका शवदहन संस्कार न हुआ हो) मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, वे इस भूमि पर दिये हुए अन्न से परम गति प्राप्त करें। मेरे परिवार में जिनकी न माता हो, न पिता हो, न भाई हो, जिनकी न गोत्रशुद्धि हुई हो अथवा पिण्डदान के लिए जिनके परिवार वालों के पास अन्न न हो—उन सब की तृप्ति के निमित्त मैंने भूमि पर यह अन्न बिखेर दिया है, वे इसे ग्रहण कर के उसी प्रकार (मेरे पितरों की भाँति) स्वर्ग को प्राप्त करें। जो बिना किसी संस्कार के हुए ही मृत्यु को प्राप्त हो गये हों तथा वे कुल-वधुएँ, जिनको लांछन लगा कर परिवारवालों ने छोड़ दिया हो, उन सबके लिए भी कुश तथा विकीरित (छींटे गये) पदार्थ में जूठा हिस्सा शेष है।' तदनन्तर तृप्त जान कर ब्राह्मणों के हाथ में एक बार जल छोड़ दे तथा गाय के गोबर, गोमूत्र और जल से भली भाँति लीपे गये भूमि के पृष्ठ भाग पर विधिपूर्वक कुशा को दक्षिणाभिमुख रखे। और सब प्रकार के अन्न से बने हुए पिण्डों को पितरों के यज्ञ की भाँति रख और नाम तथा गोत्र का उच्चारण करके अवनेजन करे। फिर सुगन्धित द्रव्य तथा धूप आदि देकर प्रत्यवनेजन करके बाएँ घुटने को टेककर बाएँ हाथ से प्रदक्षिणा करे और हाथ में कुशा लेकर पितरों का श्राद्ध कार्य करे। पहले कहे गये विधानों के अनुकूल पण्डित श्राद्धकर्त्ता दीपक जलाये और फूलों से पूजा करे फिर आचमन करे और आचमन के बाद एक-एक बार जल प्रदान किया करे। इसके उपरान्त पुष्प, अक्षत तथा अक्षय जल (जो जलपात्र में श्राद्ध कार्य के लिए पहले ही से रखा गया हो) को तिल के साथ, नाम और गोत्र का उच्चारण कर के दे और फिर पुरोहित को यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। अपने तथा अपने पिता की सामर्थ्य के अनुरूप कृपणता को छोड़कर पितरों के ऊपर प्रीति करके ब्राह्मणों को गाय, भूमि, सोना, वस्त्र तथा सुन्दर बिस्तरा आदि का दान करे। फिर स्वधा का उच्चारण करके विद्वान् श्राद्धकर्त्ता पूर्वाभिमुख होकर विश्वेदेवों को जल दे और ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण करे। उनसे कहे—'हमारे पितरगण शान्त हों' फिर ब्राह्मणों के यह कहने पर कि 'आपके पितरगण तृप्त हों' प्रार्थना करे—'हमारे गोत्र की अभिवृद्धि हो' ब्राह्मण फिर कहें—'हो।' तदनन्तर फिर प्रार्थना करे 'हमारे दाताओं की अभिवृद्धि हो', ब्राह्मण

लोग फिर कहें—'आपके दाताओं की अभिवृद्धि हो।' फिर कहे—'आप के दिये हुए ये आशीर्वाद सत्य हों' ब्राह्मण लोग कहें—'अवश्य सत्य हों।' फिर ब्राह्मणों द्वारा पाठ कराये और भक्तिपूर्वक पिण्डों को उठाकर ग्रहवलि करे। यही पितरों के धर्म की मर्यादा है। जब तक निमन्त्रित ब्राह्मण विसर्जित किये जाते हैं तब तक सभी वस्तुएँ उच्छिष्ट रहती हैं। सरल स्वभाव आस्तिक ब्राह्मण जनों के उच्छिष्ट तथा भूमि में गिरे हुए श्राद्ध के अन्नादि पदार्थों को अपने सेवक वर्गों को दे देना चाहिये। हे राजन्! पितरों द्वारा व्यवस्थित यह तर्पण कार्य विना पुत्रवाले, पुत्रवाले, पुरुष तथा स्त्री—सब के लिए है। तदनन्तर ब्राह्मणों को आगे खड़ा कर, जलपात्र को लेकर 'बाजे-बाजे......' इत्यादि मंत्र को जपते हुए कुशा के अग्र भाग से पितरों को विसर्जित करे और बाहर जाकर अपने परिवार वर्ग, स्त्री तथा पुत्रादि को साथ लेकर आठ पग उनके पीछे चलकर प्रदक्षिणा करे। इस कार्य को निवृत्त कर लेने के बाद अग्नि को प्रणाम करे और मन्त्र आदि का उच्चारण कर विधिपूर्वक उसका पर्युक्षण कर वैश्वदेव बलि और नित्य बलि प्रदान करे। वैश्वदेव बलि की समाप्ति के उपरान्त अपने नौकर, पुत्र, परिवार तथा अतिथियों के साथ पितरों से सेवित (जिसे पहले पितरों को समर्पित किया जा चुका है) खाद्य पदार्थों को खाय। यह साधारण नामक पार्वण श्राद्ध, जो सब प्रकार के मानसिक फलों का देनेवाला है, विना यज्ञोपवीत संस्कार वाला व्यक्ति भी प्रत्येक पर्वों पर कर सकता है। स्त्री रहित तथा परदेशी व्यक्ति भी भक्तिपूर्वक इस को सम्पन्न कर सकता है। शूद्र भी उपर्युक्त विधियों से विना मंत्रोच्चारण किये इस को कर सकते हैं। ॥२-६४॥

अब तीसरे पार्वण श्राद्ध को, जो आभ्युदयिक वृद्धि श्राद्ध के नाम से विख्यात है, बतला रहा हूँ। किसी उत्सव, मांगलिक यज्ञ अथवा विवाहादि के शुभ अवसर पर यह सम्पन्न किया जाता है। हे राजन्! इस श्राद्ध में पहले माताओं (माता, मातामही, प्रमातामही) की पूजा कर फिर पितरों की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर मातामह तथा विश्वेदेवों की पूजा का विधान है। सर्वथा श्राद्धकर्त्ता पूर्वाभिमुख हो प्रदक्षिणा करके दधि, अक्षत, तथा जल आदि पूजा की सामग्रियों द्वारा पिण्डों को दूर्वा और कुशा के साथ समर्पित करे। इस अभ्युदय नामक श्राद्ध कर्म में 'सम्पन्नम्....' इत्यादि मंत्र का उच्चारण करके दो दो (पितरों को) को अर्घ्य दे। फिर वस्त्र तथा स्वर्ण आदि से युगल ब्रह्मण की पूजा करे। इस श्राद्ध कर्म में तिल के स्थान पर 'नान्दी मुख श्राद्ध' इस विशेषण का उच्चारण करके जव से सब कार्य करना चाहिये। ब्राह्मणों से मंगलदायक सूक्त तथा स्तोत्र आदि का पाठ करवाना चाहिये। इसी प्रकार इस सामान्य वृद्धि श्राद्ध में शूद्र भी नमस्कार रूपी मंत्र से (मंत्र के स्थान पर केवल प्रणाम का प्रयोग कर) तथा कच्चे अन्नों से (भोजन के स्थान पर आंटा चावल दाल आदि देकर) सम्मिलित हो सकता है। ऋषि गण! शूद्र को विशेषतया दान के द्वारा ही यह श्राद्ध कर्म करना चाहिये, क्योंकि भगवान् ने स्वयं उनके लिए यह कहा है कि दान से ही उनके सभी मनोरथों की पूर्ति होती है ॥६५-७१॥

श्री मात्स्य महापुराण में साधारण तथा अभ्युदय श्राद्ध वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

अठारहवाँ अध्याय

सूत ने कहा— ऋषिगण ! अब इसके अनन्तर मैं एकोद्दिष्ट नामक श्राद्ध का विधान बतला रहा हूँ, जिसे भगवान् विष्णु ने स्वयं कहा है। पिता की मृत्यु के उपरान्त पुत्रों को किस प्रकार इस का विधान करना चाहिये ? इसे सुनिये । ब्राह्मण को मरण का अशौच दस दिनों तक क्षत्रिय को बारह दिनों तक वैश्य को एक पक्ष तक तथा शूद्र को एक मास तक सगोत्र में मानना चाहिये । जिसका चूडा कर्म (मुण्डन) संस्कार न हुआ हो ऐसे बच्चों के मरण का अशौच केवल एक रात्रि तक तथा उससे बड़ी अवस्थावाले बालकों के मरण का अशौच तीन रात तक सुना गया है । इसी प्रकार बच्चों की उत्पत्ति काल का अशौच भी सभी जातिवालों में सर्वदा होता है । मरण काल के अशौच में अस्थिसंचय (मृतक को जलाने के बाद हड्डियों को एकत्र कर पिण्डदान आदि का विधान, जो प्रायः तीसरे दिन किया जाता है) के उपरान्त (परिवार वालों का) शरीर स्पर्श करना चाहिये । प्रेतात्मा के लिए बारह दिनों तक पिण्डदान करना चाहिये । क्योंकि मृतक के लिए दिये गये वे पिण्ड पाथेय रूप में अतिशय सुखदायी कहे गये हैं । इसीलिए मृत्यु के उपरान्त बारह दिनों तक प्रेतात्मा प्रेतपुरी (यमपुरी) को नहीं जाता और अपने घर पर पुत्र स्त्री आदि को बारह दिनों तक देखता रहता है । मृतक के परिवार वालों को उस प्रेतात्मा की तुष्टि के लिए दस रात तक आकाश में (ऊपर रखकर) दाह की शान्ति तथा इतने बड़े मार्ग के परिश्रम को दूर करने के लिए जल रखना चाहिये । ग्यारहवें दिन ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये । क्षत्रिय आदि जाति वाले भी अपने सूतकों की समाप्ति पर एक, दो, तीन, पाँच, सात आदि विषम संख्यक ब्राह्मणों को यथा शक्ति भोजन करायें । फिर उसके दूसरे दिन उसी प्रकार विधिपूर्वक एकोदिष्ट श्राद्ध करें, जिसमें आवाहन, अग्नि में पिण्ड दान तथा विश्वेदेवों को भाग—यह सब कार्य वर्जित माने गये हैं । इस एकोद्दिष्ट श्राद्ध में केवल एक पवित्रक (जो कुश में गाँठ बाँधकर बनाया जाता है) एक अर्घ्य तथा एक पिण्ड का विधान प्रशस्त माना गया है । इसके उपरान्त 'उपतिष्ठताम्.....' इस मंत्र का उच्चारण करके तिल सहित जल प्रदान करे और 'स्वदितम.....' इस मंत्र का उच्चारण कर अन्न को पृथ्वी पर बिखेर दे और विसर्जन करते समय 'अभिरम्यताम्' कहे । पुत्र इस प्रकार वेद की विधियों द्वारा अपने पिता का शेष अन्य श्राद्ध कार्य पूर्ववत् करे । इसी उपर्युक्त विधान द्वारा अन्य सब कार्यों को प्रत्येक मास के अन्त में करना चाहिये । सूतक बीत जाने के अनन्तर दूसरे दिन एक सोने का बना हुआ पुरुष तथा उसी के अनुकूल वस्त्र, फल आदि सहित एक विलक्षण शय्या दान दे । ब्राह्मण के दम्पत्ति की विधिपूर्वक अनेक प्रकार के अलंकारों से सुसज्जित करके पूजा करे और फिर वृषोत्सर्ग कर उसे एक सुन्दर कपिला गाय दे । हे राजन् ! फिर अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य पदार्थों समेत एक जलपात्र, जो तिल मिश्रित जल से भरा हो, दान करे । इसी प्रकार वर्ष भर तक तिल मिश्रित जल दान करता रहे । वर्ष बीत जाने के बाद सपिण्डीकरण नामक श्राद्ध का विधान कहा गया है । इस सपिण्डीकरण पिण्डदान के बाद प्रेतात्मा पार्वण श्राद्ध का अधिकारी

होता है। इन उपर्युक्त विधानों द्वारा जब वृद्ध पिता, पितामह, प्रपितामह आदि का श्राद्ध पुत्र सम्पन्न कर लेता है तब योग्य गृहस्थ होता है। सपिण्डीकरण श्राद्ध में प्रथमतः विश्वेदेवों को सम्मिलित करना चाहिये तब पितरों को। उन्हें भिन्न-भिन्न स्थानों पर बैठने के लिए स्थान निर्दिष्ट कर प्रेतात्मा के लिए अलग स्थान निर्दिष्ट करना चाहिये। सुगन्धित द्रव्य, जल तथा तिल से युक्त चार पात्र अर्घ के लिए बनाये, और पितरों के पात्रों में प्रेत के पात्र का जल-सिंचन करे। फिर पिण्डदान करनेवाला उसी प्रकार संकल्प करके चार पिण्डों को उनके उनके स्थानों पर रखे और 'येसमाना·····' इन दो मंत्रों से (इस मंत्र के दो भाग हैं।) चतुर्थ पिण्ड को तीन भागों में विभक्त करे, और उसे उन्हीं तीन पिण्डों में मिला दे। इसके अतिरिक्त उस चतुर्थ पिण्ड की अन्य कोई उपयोगिता नहीं है। इस पिण्डदान के बाद सब ओर से संतुष्ट होकर प्रेतात्मा पितरों की योनि में चला जाता है और श्रेष्ठ अग्निष्वात्त आदि देव पितरों के बीच में वह अपना एक स्थान प्राप्त करता है। अतः सपिण्डीकरण के अनन्तर उसे कुछ नहीं देना चाहिये। जिन तीन पितरों, (प्रेत का पिता, पितामह और प्रपितामह) के मध्य में प्रेतात्मा (इस एकोद्दिष्ट श्राद्ध में) अवस्थित है, उन्हीं के पिण्डों में इसके पिण्ड के तीनों भागों को मिला देना चाहिये। इसके बाद संक्रान्ति अथवा ग्रहण आदि के अवसरों पर तीन पिण्डोंवाले श्राद्ध को देना चाहिए। प्रेतात्मा के मृत्यु के दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जाता है, इस एकोद्दिष्ट श्राद्ध को छोड़कर जो मनुष्य मृत्यु के दिन अन्य पार्वण आदि श्राद्ध करता है, वह प्रत्येक योनि में पिता का विनाशक होता है और माता, भाई आदि का भी विनाश करता है। मृतक की मृत्यु के दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध को विना किये अन्य पार्वण आदि श्राद्ध करने से मनुष्य पतित हो जाता है। इस पिण्ड-दान के विना सभी पितरगण व्याकुल हो जाते हैं अतः प्रति वर्ष यह एकोद्दिष्ट नामक श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। जो कोई मनुष्य मत्सर रहित होकर वर्ष भर तक मृतात्मा के लिए अन्न आदि पदार्थों से संयुक्त जलपात्र का दान करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। विधियों का जाननेवाला श्राद्धकर्त्ता जब आम श्राद्ध (जिसमें ब्राह्मणों को भोजन के स्थान पर कच्चा अन्न दिया जाता है) करे तो विधिपूर्वक अग्निकरण भी करे और उसी समय पिण्डदान दे। अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह आदि के साथ जब समय आने पर सपिण्डीकरण श्राद्ध को प्रेतात्मा प्राप्त कर लेता है तब वह प्रेत योनि के बन्धन से मुक्त हो जाता है। और मुक्त होकर कुश के मार्जन से हाथ में लिपटे हुए पिण्ड के अन्नादि को वह प्राप्त करता है, क्योंकि मुक्त पितरगण भी उसे प्राप्त करते हैं। इस लेप के भागी चौथे, पाँचवे आदि स्वर्गीय तीन पितरगण हैं और पिता आदि तीन पितरगण पिण्डभागी हैं, पिंडदान कर्त्ता उन पितरों की सातवीं सन्तान है, यह सपिण्डता सात पूर्व पुरुषों तक मानी जाती है ॥१—२९॥

श्री मात्स्य महापुराण में सपिण्डीकरण श्राद्ध विधि नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा – सूत जी ! मनुष्यों को हव्य एवं कव्य किस प्रकार देना चाहिये ? इस मर्त्यलोक में मनुष्यों द्वारा पितरों के लिए दिये हुए ये हव्य कव्य पदार्थ पितरों के लोक में कैसे प्राप्त होजाते हैं ? इन सबको वहाँ तक पहुँचानेवाला कौन कहा जाता है ? यदि इसे मृत्युलोकवासी ब्राह्मण आदि खाते हैं अथवा वह अग्नि में छोड़ा जाता है तो शुभ अथवा अशुभ फलों के भोगनेवाले प्रेतगण इस दिये गये पदार्थ का उपभोग किस प्रकार करते हैं ? ॥१–२॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! पितरों को वसुगण, पितामहों को रुद्रगण तथा प्रपितामहों को आदित्यगण कहा जाता है—इन सबकी यह संज्ञा वेदों द्वारा सुनी जाती है। पितरों का नाम तथा गोत्र ही उनके उद्देश से दिये गये हव्य कव्य आदि पदार्थों का (उनके पास तक) ले जानेवाला है। अतिशय श्रद्धा तथा भक्ति के साथ मन्त्रों का प्रयोग करके श्राद्ध कार्य में जो अन्नादि पदार्थ, अग्निष्वात्त आदि देव पितरों के आधिपत्य में व्यवस्थित रूप से नाम, गोत्र, काल, देश आदि का उच्चारण कर दिये जाते हैं, वे सब उनके आहार के रूप में परिणत हो जाते हैं। और अन्यलोक में उत्पन्न होनेवाले जीवों को वे प्राप्त होते हैं। यदि अपने शुभ कर्मों के प्रभाव से पिता देवयोनि में उत्पन्न होगया है तो उसके उद्देश्य से दिया गया अन्नादि पदार्थ अमृत होकर देवयोनि में भी मिलता है। इसी प्रकार दैत्ययोनि में भोगरूप तथा पशुयोनि में तृणरूप में वह परिणत हो जाता है। श्राद्ध में दिया हुआ अन्न वायुरूप होकर सर्पयोनि में भी मिलता है। यक्षयोनि में वह पीनेवाली वस्तु के रूप में, राक्षस योनि में मांस के रूप में, दनुज योनि में माया रूप में, प्रेतयोनि में रक्त तथा जल के रूप में तथा मनुष्ययोनि में अनेक प्रकार के मनोहर खाद्य पदार्थ तथा मधुर रसों के रूप में वह प्राप्त होता है। रति शक्ति, मनोहर स्त्री, अनेक प्रकार के सुन्दर खाद्य पदार्थ, भोजन पचाने की सामर्थ्य, विपुल सम्पत्ति के साथ दान देने की निष्ठा, सुन्दर स्वरूप तथा स्वास्थ्य—ये सब श्राद्धरूपी तरु के पुष्प हैं, और अन्त में परब्रह्म की प्राप्ति ही उसका मनोहर फल है। पितरगण प्रसन्न होकर धन, स्वर्ग, मोक्ष, सातों सुख और राज्य मनुष्यों को प्रदान करते हैं। ऐसा सुना जाता है कि प्रचीनकाल में विश्वामित्र के पुत्रों ने इसी श्राद्धकर्म के माहात्म्य से मोक्ष को प्राप्त किया था और पाँच जन्मों में कर्मों से मुक्ति प्राप्तकर विष्णु भगवान् के परमपद वैकुण्ठलोक को प्राप्त किया था। ॥३–१२॥

श्री मात्स्य महापुराण के श्राद्ध विधान में फलप्राप्ति नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

ऋषियों ने पूछा—सूत जी ! महर्षि विश्वामित्र के पुत्रों ने किस प्रकार उत्तम योग प्राप्त किया ? और पाँच जन्मों में उनके बुरे कर्मों का नाश किस प्रकार हुआ ? ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! कुरुक्षेत्र में विश्वामित्र नामक एक धर्मात्मा महर्षि थे; उनके सात

पुत्र थे, उनके नाम और काम बतला रहा हूँ, सुनिये। उनके नाम स्वरूप, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, वाग्दुष्ट तथा पितृवर्ती थे। वे सभी पुत्रगण महर्षि गर्ग के शिष्य थे। पिता की मृत्यु हो जाने पर वहाँ एक बार महान् दुर्भिक्ष पड़ा और सारे संसार में परम भीषण व्यापक अनावृष्टि हुई। इसी बीच एक बार महर्षि गर्ग के आदेश से बन में गाय चराते समय वे तपस्वी पुत्रगण भूख से अत्यन्त व्याकुल हो गये तो परस्पर विचार किया कि अब क्षुधा की शान्ति के लिए कोई अन्य उपाय नहीं दिखाई दे रहा है। अतः हम लोग इसी गुरु की कपिला गाय को मारकर अपनी क्षुधाशान्ति करें। ऐसी चर्चा चल ही रही थी कि सबसे छोटा सातवाँ पितृवर्ती नामक पुत्र बोला—'यदि इस गाय को मारने का निश्चय आप लोगों ने अवश्य कर लिया है तो इसे श्राद्ध में नियुक्त कीजिये। श्राद्ध में नियुक्त हो जाने पर यह हम लोगों को पाप से निश्चय ही बचायेगी।' अन्य सभी भाइयों की अनुमति प्राप्त हो जाने पर पितृवर्ती ने एकाग्रचित्त होकर उस गाय का श्राद्धकर्म में उपयोग करना प्रारम्भ किया। इस प्रसंग में उसने अपने दो भाइयों को देवकार्य में, तीन भाइयों को पितृकार्य में तथा एक को अतिथि रूप में नियुक्त कर स्वयं श्राद्धकर्त्ता का पद ग्रहण किया। और इस प्रकार विधिपूर्वक मंत्रादि समेत उसने पितरों का श्राद्धकर्म सम्पन्न किया। तदनन्तर बछड़े को ले जाकर सब भाइयों ने गुरु से निवेदन किया—'गुरुदेव! आपकी गाय को बाघ ने मार डाला, बछड़ा बच-गया है, इसे लीजिये।' इस प्रकार उन तपस्वी विश्वामित्र के क्रूरकर्मा सात पुत्रों ने वेद की शक्ति प्राप्त कर इतने निन्दित कर्म के अशुभ फल से निडर होकर गुरु की गाय को खा डाला। कालक्रमानुसार मृत्यु के उपरान्त वे सब अन्य जन्म में दाशपुर नामक नगर में बहेलिया योनि में उत्पन्न हुए, किन्तु पितरों के ऊपर विशेष श्रद्धा रखने के कारण उन्हें अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्तों का पूर्ण स्मरण तब भी बना था। क्रूरकर्मा होकर भी उन्होंने इस विगर्हित कार्य को श्राद्धरूप में किया था अतः क्रूर कर्म करनेवाले बहेलियों के घर में उनका पुनर्जन्म तो हुआ किन्तु पितरों की श्रद्धा के माहात्म्य से पूर्वजन्म के वृत्तान्त का उन्हें स्मरण बना रहा। इस जन्म में पूर्व जन्म के निन्दित कर्मों का स्मरण करके उन सबों ने जीवन से वैराग्य ग्रहण कर लिया और अनशन करके अपने शरीर को त्याग दिया। तदनन्तर उन सबों ने पितरों के ऊपर विशेष श्रद्धा रखने के कारण नीलकण्ठ के सामने कालंजर नामक गिरि पर मृग का शरीर धारण किया। पूर्वजन्म का स्मरण इस जन्म में भी उनका पूर्ववत् बना रहा। इस योनि में भी उन योगाभ्यासी मृगरूपधारी ऋषियों ने समस्त तीर्थ स्थानों में जा-जाकर ज्ञान एवं वैराग्य से अनशन कर करके लोगों के देखते-देखते अपने प्राण त्याग दिये और फिर मानससरोवर में चक्रवाक योनि में उत्पन्न हुए। ऋषिगण! उन सबों के इस योनि के नाम और कर्म सम्बन्धी सभी वृत्तान्त सुनिये। इस योनि में वे सुमन, कुमुद, शुद्ध, छिद्रदर्शी सुनेत्रक, सुनेत्र तथा अंशुमान् नाम से प्रसिद्ध हुए। इस योनि में भी उनका योग च्युत नहीं हुआ था, किन्तु इसी बीच में इनमें से तीन अल्पबुद्धि अपने योगमार्ग से पतित होगये और अपना स्थान छोड़कर इधर-उधर भ्रमण करने लगे। उनमें से सबसे छोटे पितृवर्ती ने, जो पूर्व जन्म में श्राद्धकर्ता और अपेक्षाकृत पितरों का परम भक्त था, एक बार क्रीडा उपवन में महाबलशाली अपार सेना और बाहनों से संयुक्त, सुन्दरी

स्त्रियों के साथ अनेक प्रकार की कामकेलि करते हुए पाँचाल देश के राजा को देखकर मन में राजा बनने की अभिकांक्षा प्रकट की। इसी प्रकार अन्य दो ने उसके दोनों मंत्रियों को प्रचुर सेना एवं वाहनों से समन्वित सुखपूर्वक घूमते देखकर मंत्री होने की इच्छा की। उनमें से चार जो निष्काम योगाभ्यासी थे; वे अन्य जन्म में श्रेष्ठ ब्राह्मण योनि में उत्पन्न हुए। उन तीनों में से एक ब्रह्मदत्त नाम से विख्यात राजा विभ्राज का पुत्र हुआ, शेष दो कण्डरीक और सुबालक नाम से विख्यात उसके मंत्री के पुत्र हुए। यथासमय विद्वान् पुरोहितों ने राज्याभिषेक करके ब्रह्मदत्त को पांचाल देश का राजा बनाया। वह अत्यन्त ऐश्वर्यशाली, सब शास्त्रों में पारङ्गत, योगाभ्यासी तथा सभी जीव जन्तुओं की बोली समझनेवाला था। उसकी स्त्री, देवल की कल्याणी पुत्री सन्नति नाम से विख्यात थी। और पूर्वजन्म में वही 'कपिला' (महर्षि गर्ग की गाय) के नाम से विख्यात थी। सन्नति पितरों के कार्य में प्रवृत्त होने के कारण ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान रखती थी। राजपुत्र ब्रह्मदत्त उसके साथ अपना राज्यकार्य करने लगा। ॥२–२७॥

एक समय अपनी पत्नी सन्नति के साथ घूमने के लिए राजा ब्रह्मदत्त बगीचे में गया हुआ था, वहाँ उसने कामकलह से व्याकुलित एक कीट दम्पति (चींटे-चींटी) को देखा। कामुक कीट, जिसके प्रत्येक अंग काम के बाण से जल रहे थे, चींटीं को चारों ओर से घेरकर गद्गद स्वर में कह रहा था—'कल्याणि! इस लोक में कहीं भी तुम्हारे समान कोई सुन्दरी नहीं है। कटि प्रदेश में दुर्बल, मोटे जंघोंवाली, ऊँचे और कठोर स्तनों के भार से नम्र होकर चलनेवाली, सोने के समान गौरवर्ण, सुन्दर कमरवाली, मृदुभाषिणी, सुन्दर हँसनेवाली, लक्ष्य पर जानेवाले बाणों की तरह तीक्ष्ण नेत्रोंवाली, मन को विमुग्ध करनेवाली बातें करनेवाली, गुड़ और शक्कर को पसन्द करनेवाली तुम्हारे समान दूसरी सुन्दरी कौन है? तुम मेरे भोजन करने के बाद भोजन करती हो, मेरे स्नान करने के बाद नहाती हो। मेरी इतनी शुश्रूषा करने पर भी सर्वदा नम्र बनी रहती हो और मेरे क्रुद्ध होने पर डर से विचलित हो जाती हो। बताओ! तुम किस लिए इस समय अपना मुँह क्रुद्ध की भाँति बनाये हुए हो!' (कीट की इन चाटुकारिता पूर्ण बातों को सुनकर) क्रोध प्रकट करते हुए चींटी ने कहा—'दुष्ट! कामुक! क्यों झूठ मूठ बक रहे हो? अभी तुमने कल लड्डू का चूर्ण ले जाकर मुझको न देकर दूसरी चींटीं को दे दिया था। ॥२७–३४॥

चींटे ने कहा—सुन्दरि! तुम्हारे ही समान उसकी भी आकृति थी, मैंने भ्रमवश लड्डू का चूर्ण उसे दे दिया होगा, इसलिए बिना जाने हुए मेरे इस एक अपराध को तुम्हें क्षमा करना चाहिये। व्रतपरायणे! मैं सच-सच कह रहा हूँ फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूँगा, तुम्हारे पैरों पड़ रहा हूँ, मुझ विनीत के ऊपर तुम प्रसन्न हो। ॥३५-३६॥

सूत जी ने कहा—ऋषिगण! चींटे की ऐसी बातें सुनकर चींटी प्रसन्न हो गई और उसने रति के लिए अपने शरीर को चींटे के लिए अर्पित कर दिया। भगवान् विष्णु के वरदान से सभी जन्तुओं की बोली समझने के कारण राजा ब्रह्मदत्त इस सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानकर अति विस्मित हुआ। ॥३७॥

श्रीमात्स्य महापुराण के श्राद्धविधान में श्राद्ध माहात्म्य के प्रसंग में पिपीलिका का उपहास नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

ऋषियों ने पूछा—सूत जी ! इस मृत्युलोक में उत्पन्न होकर अर्थात् मनुष्य होकर ब्रह्मदत्त किस प्रकार सभी जीवों की बोली समझने लगा ? और वे शेष चार चक्रवाक फिर अन्य जन्म में कहाँ उत्पन्न हुए ? ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! उसी राजा ब्रह्मदत्त के ग्राम में वे चारों चक्रवाक भी एक वृद्ध ब्राह्मण के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए और इस जन्म में भी उन्हें पितरों के आशीर्वाद से पूर्व जन्म का स्मरण पूर्ववत् बना था। इस योनि में वे धृतिमान्, तत्वदर्शी, विद्याचण्ड तथा तपोत्सुक—ये चार सुदरिद्र नामक पिता के यथा नाम तथा गुण वाले पुत्र हुए। बचपन में ही इन ब्राह्मण पुत्रों की मनोवृत्ति तपस्या की ओर हुई और वे अपने पिता से प्रार्थना करने लगे कि हम लोग तपस्या करके परम सिद्धि की प्राप्ति करना चाहते हैं। अपने पुत्रों की ऐसी बातें सुनकर महा तपस्वी सुदरिद्र अतिशय करुणाजनक स्वर में मना करते हुए बोला—'पुत्रो ! यह क्या कर रहे हो। मैं तुम लोगों का पिता होकर इस कार्य के लिए मना कर रहा हूँ, अतः तुम लोगों का घर छोड़कर जाना अधर्मपूर्ण है। मुझ अतिशय दरिद्र और वृद्ध पिता को छोड़कर तुम लोग बन को जा रहे हो, यह कौन-सा धर्म होगा ? मुझे छोड़ देने से तुम्हें क्या गति मिलेगी ?' पुत्रों ने पिता की इस दीन वाणी को सुनकर कहा—'तात ! आप को जीविका के लिए क्या चाहिये, उसे कहिये, हम लोगों ने तो आप के लिए जीविकोपार्जन का पर्याप्त प्रबन्ध कर रखा है। इस ग्राम का राजा प्रातःकाल इस श्लोक के पाठ करने पर तुम्हें विपुल धन-सम्पत्ति तथा सहस्रों ग्राम देगा। तुम जाकर इसको उसे सुनाना।' ॥२-८॥

"जो कुरुक्षेत्र के जंगल में श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, दाशपुर में बहेलिया थे, कालंजर पर्वत पर मृग थे तथा मानससरोवर में चक्रवाक थे, वे लोग यहाँ सिद्धि प्राप्त कर चुके।" ॥२-९॥

अपने पिता से ऐसी बातें कहकर वे चारो भाई तप करने के लिए जंगल को चले गये। प्रातः काल वृद्ध ब्राह्मण ने अपने मनोरथ को पूर्ण करने के लिए राजा के घर की ओर प्रस्थान किया।९-१०॥

प्राचीन काल में विभ्राट् के पुत्र अनघ नामक एक पाँचाल देश के राजा थे। पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा से उन्होंने देवाधिदेव सर्वशक्तिमान् नारायण भगवान् की आराधना की। बहुत दिनों तक राजा को घोर तपस्या में लीन देखकर भगवान् जर्नादन विशेष प्रसन्न हुए और बोले—'राजन् ! अपने मनोवांछित वरदान को मुझसे माँगो।' भगवान् के इस प्रकार कहने पर राजा ने अपने श्रेष्ठ वरदान की याचना करते हुए कहा—'देवेश ! मुझे एक महाबलशाली, उद्यमशील, सब शास्त्रों में पारंगत, धर्मनिष्ठ, श्रेष्ठ योगी तथा सभी जीवों की बोली समझनेवाला एक पुत्र प्रदान कीजिये।' राजा की इस प्रार्थना को सुनकर भगवान् विश्वात्मा परमेश्वर 'ऐसा ही होगा' कहकर सभी देवताओं के देखते-देखते वहीं पर अर्न्तधान हो गये। वरदान के फल स्वरूप वही प्रतापी ब्रह्मदत्त उस राजा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। वह सभी जीवों पर दया करनेवाला, संसार में सब से बढ़कर बलशाली, सभी जीवों की बोली समझनेवाला

तथा सभी जीवों के स्वामियों का भी अधिपति था । ॥११-१७॥

अनन्तर जहाँ पर वे कीट दम्पति अवस्थित थे वहाँ चींटे की इस काम चेष्टा को देखकर योगी ब्रह्मदत्त को हँसी आ गई । उसे इस प्रकार निष्कारण हँसते हुये देखकर सन्नति आश्चर्य में पड़ गई और मन में किसी बात का सन्देह करके राजा से पूछने लगी । ॥१८-१९॥

सन्नति ने पूछा—राजन् ! अकस्मात् आप का यह अतिहास किस लिए हुआ ? मैं आपके इस असामयिक हास के कारण को न जान सकी । ॥२०॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! सन्नति के इस प्रकार पूछने पर राजपुत्र ब्रह्मदत्त ने चींटे और चींटी का वह सारा वार्तालाप सुना दिया और कहा—'वरानने ! इनके इन कामातुर वचनों को सोचकर मुझे इतनी हँसी आ गई । सुन्दर हास्य करनेवाली ! मेरी हँसी का अन्य कोई कारण नहीं है ।' रानी सन्नति ने राजा के इस कथन पर विश्वास नहीं किया और कहा—'राजन् ! यह बात नहीं है । तुमने मेरे ऊपर ही यह हास्य किया है, ऐसे अपमान पर मैं नहीं जी सकती । भला देवताओं को छोड़ कौन ऐसा मनुष्य है जो चींटे चींटी की बातों को समझ सके ? इसलिए मुझे निश्चय है कि तुमने यहाँ मुझको ही हँसी का विषय बनाया है, इससे बढ़कर मेरा अपमान दूसरा क्या हो सकता है ?' रानी की इन अमर्षपूर्ण बातों को सुनकर राजा निरुत्तर हो गया और रानी की ऐसी हठपूर्ण बातों का आज क्या कारण है—इसे जानने की इच्छा से वह भगवान् श्री हरि की आराधना करने लगा । सात रात तक नियमपूर्वक शान्त चित्त हो वह एक ही स्थान पर स्थित रहा । भगवान् हृषीकेश ने स्वप्न में कहा—'राजन् ! प्रातःकाल तुम्हारे ही ग्राम में घूमता हुआ एक वृद्ध ब्राह्मण जो कुछ कहेगा उसी से तुम्हें ये सब बातें अवगत होंगी ।' स्वप्न में ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये । तदनन्तर प्रातःकाल राजा अपनी स्त्री और मन्त्रियों के साथ जब अपने पुर से बाहर निकल रहा था, उसी समय आगे आते हुए एक ब्राह्मण को देखा, जो यह बातें कह रहा था । ॥२१-२६॥

ब्राह्मण कह रहा था—"जो कुरु देश के जंगलों में श्रेष्ठ ब्राह्मण के रूप में, दशपुर में बहेलियों के रूप में, कालंजर गिरि में मृग के रूप में तथा मानससरोवर में चक्रवाक के रूप में थे, वे यहाँ सिद्धि प्राप्त कर चुके । ॥२१-२८॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! ब्राह्मण की इस बात को सुनकर राजा शोकाकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, क्योंकि पूर्व जन्म की सभी बातों का उसे उस समय स्मरण हो आया । दोनों मंत्रियों की भी वही दशा हुई । इन दोनों मंत्रियों में से प्रथम बाभ्रव्य सुबालक, पाञ्चाल नाम से विख्यात था, वह कामशास्त्र का प्रणेता तथा सभी शास्त्रों का पण्डित था । दूसरा मंत्री कण्डरीक भी परम धर्मिष्ठ तथा वेद-शास्त्रों के सिद्धान्तों का अधिकारी था । ये दोनों मंत्री भी शोक से व्यथित होकर उसी ब्राह्मण के आगे गिर पड़े । 'हाय ! कर्म के बंधन में फँस काम लोलुप होकर हम लोग योग मार्ग से पतित हो गये ।' इस तरह अनेक प्रकार विलाप करके उन तीनों योगियों ने विस्मयपूर्वक श्राद्ध के माहात्म्य का बारम्बार अभिनन्दन किया । राजा ब्रह्मदत्त ने अनेक ग्रामों के साथ-साथ विपुल धन देकर, वृद्ध ब्राह्मण को धन और हर्ष से युक्त विदा

किया और समस्त राजलक्षणों से सुशोभित विष्वकसेन नामक पुत्र का अपने स्थान पर राज्याभिषेक किया। तदनन्तर योगियों में श्रेष्ठ पितृभक्त ब्रह्मदत्त तथा उसके दोनों अन्य भाई मत्सर रहित होकर मानस में, अपने शेष भाइयों से जाकर मिले। सन्नति यह सोचकर कि यह सब अनर्थ मैंने ही किया है, बड़ी दुःखी हुई और राजा से निवेदन किया कि 'मैं ही आप के राज्य-त्याग का कारण हुई; आप जो अभिलाषा कर रहे हैं वह सब राज्य त्याग का ही परिणाम है।' राजा ने उसकी बातों को स्वीकार किया और उसका अभिनन्दन करते हुए कहा—'यह सब महान् फल मुझे तुम्हारी ही कृपा से मिले हैं।' तदुपरान्त इस प्रकार उन सभी वनवासी तपस्वियों ने योग की साधना करके अपने अर्जित तपोबल से ब्रह्मरन्ध्र द्वारा परम पद को प्राप्त किया। मनुष्यों के पितामह आदि पितरगण इसी प्रकार प्रसन्न होकर श्राद्ध कर्त्ताओं को दीर्घायु, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख, पुत्र-पौत्रादि तथा राज्य प्रदान करते हैं। ऋषिगण! ब्रह्मदत्त के इस पितृमाहात्म्य को जो ब्राह्मणों को सुनाता है अथवा स्वयं सुनता है वा पाठ करता है वह शत कोटि कल्प पर्यन्त ब्रह्मलोक में पूजित होता है। ॥२९-४१॥

श्री मात्स्य महापुराण के श्राद्धकल्प में पितृमाहात्म्य नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१॥

बाईसवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! श्राद्धकर्त्ता को दिन के किस भाग में श्राद्ध करना चाहिये? किस काल में दिया हुआ श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है? और किन तीर्थ स्थानों में श्राद्ध करने से अति श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है? ॥१॥

सूत बोले—ऋषिगण! दिन के तीसरे पहर, अभिजित् मुहूर्त तथा रोहिणी के उदयकाल में पितरों के उद्देश्य से जो कुछ दिया जाता है वह सब अक्षय फलदायक सिद्ध होता है। द्विजोत्तमवृन्द! पितरों के अतिशय प्रिय जो तीर्थ स्थान है, उन्हें मैं आप लोगों से संक्षेप में बतला रहा हूँ। गया नामक पितरों का तीर्थ स्थान सभी तीर्थों से बढ़कर मंगलकारी है, वहाँ पर देवदेव भगवान् पितामह स्वयम् विराजमान हैं। वहाँ के लिए श्राद्ध का भाग पानेवाले पितरगण यह गाथा गाया करते हैं कि 'मनुष्य को अनेक पुत्रों की अभिलाषा करनी चाहिये क्योंकि यदि उनमें से एक पुत्र भी गया तीर्थ में चला जायगा वा अश्वमेध यज्ञ कर देगा अथवा नीले रंग का वृषोत्सर्ग कर देगा तो (हमारा सर्वोत्तम काम बन जायगा)। इसी प्रकार पुण्यदायिनी वाराणसी नगरी भी पितरों को अतिशय प्रिय है। वहाँ अविमुक्त के समीप विमलेश्वर तीर्थ में दिया गया पितरों का दान भुक्ति तथा मुक्ति दोनों फलों को प्रदान करता है। उसी प्रकार परम पुण्यमय पितरों का परम प्रिय प्रयाग तीर्थ तो सब प्रकार के मनोरथों का देनेवाला है, वहाँ पर माधव के साथ भगवान् अक्षयवट विराजमान हैं। योग निद्रा में शयन करनेवाले आदिकेशव वहाँ सर्वदा निवास करते हैं। वहाँ का दशाश्वमेध नामक स्थान अतिशय पुण्यप्रद है। गंगाद्वार, नन्दा, ललिता, कल्याणदायिनी मायापुरी

आदि तीर्थ स्थान भी पूर्वोक्त तीर्थ स्थानों के समान ही पितरों के अतिशय प्रिय हैं। इसी प्रकार मित्रपद, केदारतीर्थ तथा सर्वतीर्थ स्वरूप कल्याण दायक गंगासागर नामक तीर्थ स्थान को भी पितरों का प्रिय तीर्थ कहा जाता है। उसी प्रकार शतद्रु नामक नदी के प्रवाह में स्थित ब्रह्मसर नामक सरोवर भी पितरों का परम प्रिय तीर्थ है। सभी तीर्थों के फल को देनेवाला नैमिष नामक तीर्थ स्थान पितरों को अतिशय प्रिय है। गोमती नदी के तट पर गङ्गोद्भेद नामक स्थान में देवाधिदेव त्रिशूलधारी, सनातन यज्ञवाराह भगवान् अवतीर्ण हुए थे। जहाँ पर अठारह भुजा धारण करनेवाले भगवान् शंकर स्वयं विराजमान हैं, वह काञ्चनद्वार नामक तीर्थ भी पितरों को प्रिय है। जहाँ पर भगवान् विष्णु के रथ की नेमि (हाल) शीर्ण हो गई थी, सब तीर्थ स्थानों द्वारा सेवित वह नैमिषारण्य नामक तीर्थ परम पुण्यप्रद है। वहाँ पितृकार्य के लिए जाने वालों को भगवान् वाराह का दर्शन मिलता है। जो व्यक्ति इस परम पुण्य प्रद तीर्थ का दर्शन करता है वह पवित्रात्मा होकर नारायण पद को प्राप्त करता है। इसी प्रकार कृतशौच नामक महान् पुण्यप्रद तथा सभी पापों को दूर करनेवाला तीर्थ है, वहाँ नरसिंह स्वरूप धारी भगवान् जनार्दन स्वयं विराजमान हैं। इसी प्रकार इक्षुमती नामक तीर्थ स्थान पितरों को सर्वदा प्रिय है, इस इक्षुमती के साथ गंगा जी के संगम पर पितरगण सर्वदा निवास करते हैं। सर्वतीर्थमय कुरुक्षेत्र अक्षयपुण्यकारक तीर्थ स्थानों में से है। सब देवताओं द्वारा नमस्कृत सरयू नदी भी पितरों के लिए परमपुण्यदायिनी है। उसी प्रकार इरावती नामक नदी भी पितरों के तीर्थ स्थानों की अधिवासिनी है। श्राद्ध कार्य में कोटि गुना फल प्रदान करनेवाली, पितरों की अतिशय प्रिय यमुना, देविका, काली, चन्द्रभागा, दृषद्वती, वेणुमती तथा पुण्यदायिनी वेत्रवती नामक नदियाँ भी पितरों को प्रिय हैं। हे द्विजोत्तम वृन्द ! जम्बू मार्ग नामक तीर्थ महा पुण्यदायक एवं पितरों का परम प्रिय तीर्थ है, आज भी सब प्रकार के मनोरथों को प्रदान करने वाले इस तीर्थ का मार्ग दिखाई पड़ता है। पितरों के अन्यान्य बहुतेरे तीर्थ हैं, जिनमें नीलकुण्ड नाम से विख्यात पितरों का तीर्थ है। इसी प्रकार पुण्यदायक रुद्रसर तथा विख्यात मानससर भी पितरों के प्रिय तीर्थ कहे गये हैं। मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा तथा सरस्वती नामक नदियाँ, पूर्वमित्रपद नामक तीर्थ, महाफलदायक वैद्यनाथ धाम, क्षिप्रा नदी, महाकाल तीर्थ, कल्याणदायक कालंजर नामक तीर्थ, महाफलदायक वंशोद्भेद, गंगोद्भेद, भद्रेश्वर, विष्णुपद तथा नर्मदाद्वार नामक तीर्थ स्थान भी उसी प्रकार पितरों को अतिशय प्रिय हैं। महर्षि गण इन उपर्युक्त स्थानों पर पितरों के उद्देश से किये गये पिण्डदान आदि कर्म को गया के पिण्ड दानादि के समान फल देनेवाला बतलाते हैं। ये पितरों के तीर्थ स्थान स्मरण मात्र से मनुष्यों के सभी पापों को दूर करने वाले हैं तो वहाँ जाकर श्राद्ध करनेवालों के लिए क्या कहना है ? पितरों के अन्य प्रिय तीर्थों में ओंकार, कावेरी नदी, कपिलोदक तीर्थ, चण्डवेगा का संगम तथा अमरकण्टक भी हैं। इन सब तीर्थ स्थानों में स्नान आदि कार्य कुरुक्षेत्र से सौ गुने अधिक फल दायी होते हैं। विख्यात शुक्र तथा सोमेश्वर नामक परम पवित्र तीर्थ श्राद्ध, दान, स्नान, हवन, स्वाध्याय आदि कार्यों में शत कोटि गुना अधिक फल देनेवाले तथा सभी व्याधियों को दूर करनेवाले हैं। इसी

प्रकार कायावरोहण नामक तीर्थ, चर्मरवती, गोमती और वरणा नामक नदियाँ, औशनस, भैरव, भृगुतुङ्ग सर्वश्रेष्ठ गौरी तीर्थ, वैनायक तीर्थ, भद्रेश्वर, परम पापहर तीर्थ, पुण्यदायिनी तपती, मूलतापी, पयोष्णी नामक नदियाँ, पयोष्णी का संगम स्थान, महाबोधि, पाटला, नागतीर्थ, पुण्यसलिला अवन्तिका तथा वेणा नामक नदियाँ, महाशाल, महारुद्र, महालिंग नामक तीर्थ स्थान, कल्याणदायिनी दशार्णा, शतरुद्रा, शताह्वा नामक नदियाँ, विश्वपद नामक तीर्थ, अंगारवाहिका नामक नदी, शोण तथा घर्घर नामक नद, पुण्यदायिनी कालिका और वितस्ता नामक नदियाँ—ये सब पितरों के तीर्थ स्थान स्नान और दान के लिए परम प्रशंसनीय माने गये हैं। इनमें जो कुछ भी पितरों के उद्देश्य से दिया जाता है उसका अनन्त फल होता है। द्रोणी, वाटमती, धारा नदी तथा क्षीरनदी, गोकर्ण, गजकर्ण, पुरुषोत्तम तीर्थ, कृष्ण तीर्थ, द्वारकापुरी, अर्बुद, सरस्वती, मणिमती गिरिकर्णिका नामक नदियाँ, धूतपाप नामक तीर्थ तथा दक्षिण समुद्र—इन तीर्थ स्थानों में किया हुआ पितरों का श्राद्ध अनन्त काल तक तृप्ति करनेवाला होता है। मेघकर नामक तीर्थ स्वयम् भगवान विष्णु के तुल्य है, वहाँ पर धनुषधारी भगवान् विष्णु मेखला में अवस्थित हैं। मन्दोन्दरी नामक तीर्थ, चम्पा नामक नदी, सामलनाथ नामक तीर्थ, महाशाल नामक नदी, चक्रवाक, चर्मकोट, महाजन्मेश्वर, अर्जुन तीर्थ, त्रिपुर, परम श्रेष्ठ सिद्धेश्वर नामक तीर्थ, श्री शैल, शांकर तथा नारसिंह नामक तीर्थ, पवित्र महेन्द्र और श्रीरंग नामक तीर्थ—इन सबों में पितरों के उद्देश्य से किये गये श्राद्धादि कार्य अनन्त फलदायक होते हैं। इन के दर्शन ही शीघ्र पापों को दूर कर देनेवाले हैं। पवित्रसलिला तुँगभद्रा, भीमरथी, कृष्णवेण्या, कावेरी तथा गोदावरी नामक नदियाँ, भीमेश्वर तथा त्रिसन्ध्य नामक पवित्र तीर्थस्थान, त्रैयम्बक नामक तीर्थ स्थान, जिसे सभी तीर्थ गण नमस्कार करते हैं, और जहाँ पर भगवान् त्रिलोचन महादेव स्वयं निवास करते हैं। ये सब भी पितरों के प्रिय तीर्थ हैं। ऋषिगण! इन सब तीर्थ स्थानों के स्मरण मात्र से ही पाप सैकड़ों टुकड़ों में चूर-चूर होकर नष्ट हो जाते हैं। अतः इन में श्राद्ध करने से कोटि-कोटि गुना फल होता है। श्रीपर्णी, ताम्रपर्णी तथा सर्वश्रेष्ठ जया नामक उत्तम तीर्थ, पुण्यसलिला महानदी, तथा शिवधार नामक तीर्थ, विख्यात भद्रतीर्थ तथा कभी नष्ट न होने वाला पम्पा तीर्थ, पुण्यदायक रामेश्वर तीर्थ, उसी प्रकार एलापुर तथा अलम्पुर नामक तीर्थ, अंगभूत, विख्यात आमर्दक, अलम्बुष नामक तीर्थ तथा उसी तरह पुण्यदायक आम्रातकेश्वर और उससे भी बढ़कर एकाम्भक नामक तीर्थ, गोवर्द्धन, हरिश्चन्द्र, कृपुचन्द्र, पृथूदक, सहस्राक्ष, हिरण्याक्ष नामक तीर्थ, कदली नामक नदी, रामचन्द्र जी के वनवास स्थान, सौमित्रि संगम नामक तीर्थ इन्द्रकील, महानन्द तथा प्रियमेलक नामक तीर्थ स्थान—इन उपर्युक्त तीर्थ स्थानों में पितरों को देवताओं का सान्निध्य प्राप्त होता है, अतः ये पितरों के श्राद्ध कार्य में परम प्रशंसनीय माने गये हैं। इन सभी तीर्थ स्थानों में दिया हुआ दान कोटि गुना अधिक पुण्य देता है। पुण्यसलिला वाहुदा नामक नदी तथा मंगलदायक सिद्धवन, पाशुपत नामक तीर्थ स्थान तथा कल्याणदायिनी पार्वतिका नामक नदी—इन सब पवित्र स्थानों में भी किया हुआ श्राद्ध कार्य शत कोटि गुने से अधिक पुण्य प्रदान करता है। उसी प्रकार वे भी पितृतीर्थ हैं, जहाँ पर सहस्रों शिव लिंगों से आविष्ट, अन्तर में सभी नदियों

के परम पवित्र जल को धारण करने वाली गोदावरी नामक नदी है। वहाँ पर जामदग्न्य का परम श्रेष्ठ तीर्थ स्थान आकर सम्मिलित होता है। प्रतीक के भय से वह अलग हो गया था। जिन स्थानों में गोदावरी नदी बहती है, वे स्थान हव्य कव्य आदि प्राप्त करनेवाले पितरों के परम प्रिय तीर्थ अप्सरोयुग के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सभी तीर्थ श्राद्ध तथा अग्नि कार्यों में सौ कोटि गुने से भी अधिक फल देने वाले हैं। सहस्रलिंग, सर्वश्रेष्ठ राघवेश्वर नामक तीर्थ तथा पुण्यसलिला सेन्द्रफेना नदी, जहाँ प्राचीनकाल में देवराज इन्द्र गिर गये थे। नमुचि राक्षस को मारकर उन्होंने यहीं अपने तपोबल द्वारा स्वर्ग प्राप्ति की थी। इस परम पवित्र तीर्थ में दिया हुआ श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है। पुष्कर, शालग्राम, तथा विख्यात सोमपान नामक तीर्थ स्थान वैश्वानरों के निवास स्थान कहे जाते हैं। सारस्वत तीर्थ, स्वामि तीर्थ, पुण्यसलिला मलन्दरा, कौशिकी, चन्द्रिका, वैदर्भा अथवा वैरा, पयोष्णी, प्राङ्मुखा, कावेरी, उत्तरा तथा पुण्या नामक नदियाँ और जालन्धर नामक गिरि— इन सब तीर्थ स्थानों में दिये हुए श्राद्ध को पितरगण अनन्त काल तक भोगते हैं। लौहदण्ड तथा चित्रकूट नामक तीर्थ स्थान, गंगा-विन्ध्य संयोग, कल्याणदायक नदीतट नामक तीर्थ, कुब्जाम्र, उर्वशीपुलिन, संसारमोचन तथा ऋणमोचन नामक पवित्र तीर्थ—इन तीर्थ स्थानों में भी दिये हुए श्राद्ध का उपभोग पितरगण अनन्त काल तक करते हैं। अट्टहास, गौतमेश्वर, वसिष्ठ, परम पवित्र हारीत नामक तीर्थ, ब्रह्मावर्त्त, कुशावर्त्त, हयतीर्थ, विख्यात पिण्डारक, शंखोद्धार, घंटेश्वर, विल्वक, नील पर्वत, धरणी तीर्थ, रामतीर्थ तथा अश्व तीर्थ—ये सब तीर्थ स्थान भी श्राद्ध और दानादि कार्यों के लिए अनन्त पुण्यप्रद रूप में विख्यात हैं। वेदशिरा नामक तीर्थ, ओघवती नामक नदी, वसुप्रद तथा छागलाण्ड नामक तीर्थ—इन सब तीर्थों में श्राद्ध के देनेवाले परम पद की प्राप्ति करते हैं। वदरी तीर्थ, गण तीर्थ, जयन्त, विजय, शक्रतीर्थ, श्रीपति तीर्थ, रैवतक तीर्थ, शारदा तीर्थ, भद्रकालेश्वर तीर्थ, परम श्रेष्ठ वैकुण्ठ तीर्थ और भीमेश्वर तीर्थ—इन सब तीर्थ स्थानों में श्राद्ध करने वाले परम पद की प्राप्ति करते हैं। मातागृह तीर्थ, करवीरपुर, विख्यात कुशेशय तीर्थ, गौरीशिखर, तीर्थ, नकुलेश तीर्थ, कर्दमाल तीर्थ, दिण्डिपुण्याकर, पुण्डरीकपुर तथा सभी तीर्थों का अधीश्वर सप्त गोदावरी नामक तीर्थ—इन तीर्थ स्थानों में अनन्त फल की प्राप्ति की इच्छा रखनेवालों को श्राद्ध करना चाहिये। मैंने पितृतीर्थों का यह संग्रह संक्षेप में बतलाया है, इनके विस्तार का वर्णन बृहस्पति भी नहीं कर सकते तो मनुष्यों की क्या गणना ? वर्णाश्रमधर्म माननेवालों के घर सत्य, दया तथा इन्द्रियनिग्रह तीर्थ स्थान कहे गये हैं, इन तीर्थों में किया हुआ श्राद्ध कोटि गुना फल दायक सिद्ध होता है, इसलिए मनुष्यों को प्रयत्नपूर्वक इन तीर्थों में श्राद्ध करना चाहिये। प्रातःकाल के तीन मुहूर्त तथा तदुपरान्त के तीन मुहूर्त संगव नाम से प्रसिद्ध हैं। मध्याह्न काल में तीन मुहूर्त्त, अपराह्न काल में तीन मुहूर्त तथा सायंकाल में तीन मुहूर्त होते हैं, उनमें भी श्राद्ध नहीं करना चाहिये। सायंकाल की वेला का नाम राक्षसी वेला है, वह तो सभी कार्य्यों में निन्दनीय मानी गयी है। दिन के सम्पूर्ण भाग में सर्वदा पन्द्रह मुहूर्त विख्यात हैं, उनमें से जो आठवाँ मुहूर्त है वह 'कुतप' कहा जाता है। सर्वदा मध्याह्न काल में जब कि सूर्य मन्दगति हो

जाते हैं, अनन्त फल देनेवाले इस मुहूर्त का तब आरम्भ होता है। मध्याह्न की बेला, खड्ग पात्र, नेपालकम्बल, चाँदी, कुश, तिल, गाय तथा नाती—ये आठ पदार्थ कुतप कहे जाते हैं (इन सब की उपस्थिति पितृकार्य में आवश्यक है।) यतः पाप को कुत अर्थात् कुत्सित कहा गया है और उसको सन्ताप देनेवाली ये उपर्युक्त आठ वस्तुएँ हैं, अतः इन आठों वस्तुओं का नाम 'कुतप' कहा जाता है। इस आठवें कुतप मुहूर्त के उपरान्त अन्य जो चार वा पाँच मुहूर्त हैं, उन्हें मुहूर्तपञ्चक कहा जाता है—वे स्वधा (पितरों के उद्देश से उच्चरित शब्द) के आगार स्वरूप हैं। देवगण कहते हैं कि कुश तथा काला तिल—ये दोनों पदार्थ भगवान् विष्णु के शरीर से निकले हुए हैं, अतः ये दोनों वस्तुएँ श्राद्ध की रक्षा में महान् उपयोगी हैं। तीर्थ स्थानों के निवासियों को अपने पितरों के लिए एक हाथ में कुश लेकर जल में खड़े होकर तिल के सहित जलांजलि देनी चाहिए। इस प्रकार श्राद्ध की बहुत अधिक विशेषता हो जाती है। श्राद्ध करते समय पिण्ड आदि को एक हाथ से देना चाहिये, परन्तु तर्पण दोनों हाथों से करना चाहिये; यह विधान सर्वदा के लिए कहा गया है। ॥२—९१॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! इस पुण्योत्पादक, पवित्र, दीर्घायु देने वाले, सब पापों का विनाश करनेवाले तीर्थ और श्राद्धों के वर्णन को, जिसे प्राचीनकाल में मत्स्य भगवान् ने स्वयं कहा है, जो कोई सुनेगा अथवा पढ़ेगा वह श्रीसम्पन्न होगा। तीर्थवासियों को इस माहात्म्य का श्राद्धकाल में सब पापों की शान्ति तथा दरिद्रता आदि को दूर करने के लिए अवश्य पाठ करना चाहिये। इस श्राद्ध माहात्म्य को पण्डित लोग परम पवित्र, यशोवर्द्धक, घोर से घोर पापों को दूर करनेवाला तथा ब्रह्मा, विष्णु और महादेव द्वारा पूजित बतलाते हैं। ॥९२-९४॥

श्री मात्स्य महापुराण के श्राद्धकल्प में बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

तेईसवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—शास्त्रविशारद सूत जी। पितरों के अधीश्वर चन्द्रमा किस प्रकार उत्पन्न हुए? उनके वंश में जो परम यशस्वी राजागण हो गये हैं, उन सब के वृत्तान्त को भी हम लोग सुनना चाहते हैं। ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! ब्रह्मा की आज्ञा प्राप्तकर महर्षि अत्रि ने प्राचीन काल में सृष्टि के विस्तार के लिए सम्पूर्ण विधियों से युक्त सर्वश्रेष्ठ तप किया। महर्षि अत्रि के इस उग्र तप के माहात्म्य से संसार के क्लेशों के विनाश करनेवाले, परम आनन्ददायक, भक्त जनों को शान्ति प्रदान करनेवाले ब्रह्म ही, जो अगोचर रूप से ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा सूर्य के अन्तर में निवास करनेवाले हैं, उनके नेत्रों के अन्तर प्रदेश में अवस्थित हुए। उमा के साथ शंकर जी अत्रि के समीप उपस्थित हुए, उन्हें सम्मुख देखकर आठवें अंश से उन्हीं महर्षि अत्रि से बालक रूप में चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई। महर्षि अत्रि के दोनों नेत्रों से जल

रूप में परिणत होकर वह ब्रह्मतेज अपनी किरणों से सारे चराचर जगत् को प्रकाशित करता हुआ नीचे चू पड़ा। दिशाओं ने स्त्री रूप धारण कर पुत्र की कामना से उस तेज को ग्रहण कर लिया। इस प्रकार दिशाओं के उदर में गर्भ रूप में परिणत होकर वह तीन सौ वर्षों तक पड़ा रहा। इसके उपरान्त बहुत अधिक दिनों तक गर्भ रूप में धारण करने में असमर्थ होकर दिशाओं ने उसको बाहर गिरा दिया। इस प्रकार दिशाओं द्वारा छोड़े गये उस गर्भ को चतुर्मुख ब्रह्मा ने एकाकार कर सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारण करनेवाले एक सुन्दर युवा पुरुष के रूप में परिणत कर दिया। और वेद शक्ति से सम्पन्न एक सहस्र घोड़ोंवाले रथ पर बिठाकर उसे अपने लोक को ले गये। वहाँ जाने पर चन्द्रमा को देख सभी ब्रह्मर्षियों ने कहा—'यह हमारे स्वामी हों।' तदनन्तर ब्रह्मर्षियों के साथ पितरगण, देव, गन्धर्व और औषधियों ने एक साथ सोमदैवत मंत्रों से चन्द्रमा की स्तुति की। उन सबों की स्तुति करने से चन्द्रमा की तेजस्विता और भी अधिक हो गयी और उस तेज पुञ्ज से पृथ्वी पर अनेक दिव्य गुणवाली औषधियाँ उत्पन्न हुईं। चन्द्रमा से उत्पन्न होने के कारण ही औषधियों की दीप्ति सर्वदा रात्रि में दिन की अपेक्षा अधिक हुआ करती है। इसी कारण से चन्द्रमा औषधीश तथा द्विजेश (ब्राह्मणों के स्वामी) नाम से भी पुकारे जाते हैं। वेद-धाम रस-रूप शुभ्र प्रकाश देनेवाला, शान्त तथा तेजोमय चन्द्रमण्डल सर्वदा शुक्ल पक्ष में वृद्धि तथा कृष्ण पक्ष में ह्रास को प्राप्त होता है। ॥२-१४॥

प्राचेतस दक्ष प्रजापति ने अपनी अत्यन्त तेजस्विनी रूप तथा सौन्दर्य सम्पन्न सत्ताईस कन्याओं को चन्द्रमा के साथ व्याह दिया। तदनन्तर चन्द्रमा ने ब्रह्मा के ग्यारह सहस्र वर्ष पर्यन्त विष्णु भगवान् के ध्यान में एकचित्त हो घोर तपस्या की। जिससे सन्तुष्ट होकर विष्णु भगवान् ने, जो जनार्दन (दुष्टों के विनाशक) परमात्मा (स्वयं प्रकाशमान् ब्रह्म) एवं नारायण (जलराशि में शयन करनेवाले) की उपाधियों से विभूषित हैं, चन्द्रमा से कहा—'वरदान माँगो।' भगवान् विष्णु की आज्ञा प्राप्तकर चन्द्रमा ने वरदान माँगते हुए कहा—'हे भगवन्! मैं चाहता हूँ कि इन्द्र को जीत कर इन्द्र लोक पर अधिकार प्राप्त करूँ, जिससे देवगण प्रत्यक्ष रूप में हमारे घर आ-आकर आहार ग्रहण करें। मेरे घर पर राजसूय यज्ञ के महोत्सव में साक्षात् ब्रह्मा आदि देवगण यज्ञ के सम्पन्न करानेवाले ब्राह्मण बनें। यज्ञ में राक्षसों द्वारा होने वाले विघ्नों को नाश करने के लिए त्रिशूल धारण कर शिव जी स्वयं उपस्थित रहें।' विष्णु भगवान् द्वारा वरदानों के स्वीकार करने के उपरान्त चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ का समारम्भ किया। जिसमें होता ब्रह्मर्षि अत्रि, अध्वर्यु, भृगु तथा उद्गाता स्वयम् ब्रह्मा जी बने। स्वयं भगवान् विष्णु ब्रह्मा का पद ग्रहण कर उस यज्ञ में उपद्रष्टा बने। सनक, सनन्दन आदि ऋषिगण भी उक्त राजसूय यज्ञ के विधान में सदस्य बने। ऐसा सुना जाता है कि दसों विश्वेदेवगण चमसाध्वर्यु (यज्ञ में सोमरस पीनेवाले) बने। चन्द्रमा ने अपने इस महान् राजसूय यज्ञ की दक्षिणा में तीनों लोकों को पुरोहितों को दान कर दिया। यज्ञान्त स्नान कर लेने के उपरान्त चन्द्रमा के परम मनोरम रूप को देखने की अतिशय इच्छुक कामवाण से व्यथित निम्नलिखित नव देवियों ने उसकी आराधना की। लक्ष्मी ने नारायण को, सिनीवाली ने कर्दम को, दिति ने विभावसु को, तुष्टि ने कभी

न च्युत होनेवाले ब्रह्मा को, प्रभा ने सूर्य को, कुहू ने हविष्मान् को, कीर्ति ने जयन्त को, वसु ने मरीचि नन्दन कश्यप को तथा धृति ने अपने आराध्य पति नन्दि को छोड़कर सोम की ही सेवा करने का निश्चय प्रकट किया। सोम ने भी उन नव देवियों को अपनी स्त्री की भाँति सादर ग्रहण कर उनके साथ भोग विलास किया। उन नव देवियों के पतिगण, इस प्रकार स्त्री लेकर हानि पहुँचाने वाले चन्द्रमा: को शाप अथवा युद्ध में शस्त्रादि द्वारा, कोई भी हानि नहीं पहुँचा सके। उन लोगों के अनेक प्रकार की हानि चेष्टा करने पर भी चन्द्रमा दसों दिशाओं में विराजमान होकर सुशोभित ही रहे और अपने उग्र तप के प्रभाव से ऋषि कल्पित दुष्प्राप्य ऐश्वर्य की प्राप्ति करके भू आदि सातों लोकों पर उसने एकच्छत्र आधिपत्य प्राप्त किया। ॥१५-२८॥

एक बार ताराधिपति चन्द्रमा ने वाटिका में घूमती हुई, अनेक प्रकार के पुष्प से बने हुए अलंकारों से सुशोभित, वृहत् नितम्ब तथा उन्नत स्तनों के दुर्वह भार के खेद से पुष्प तोड़ने में भी अतिशय अशक्त अंगोंवाली, देवगुरु वृहस्पति की पत्नी तारा को देखा। कामदेव के कुसुममय वाणों के समान हृदय को बींधनेवाले, अतिशय सुन्दर तथा बड़े-बड़े नेत्रोंवाली उस तारा को देख चन्द्रमा अतिशय कामातुर होकर अपने को संभाल न सके और एक एकान्त स्थान में जाकर उसके केशपाश को पकड़ लिया। मनोहर रूप की कान्ति से आकर्षित हृदयवाले चन्द्रमा के साथ कामातुर तारा ने भी पर्याप्त भोग विलास किया। बहुत समय तक भोग विलास करने के बाद भी चन्द्रमा तारा को वहाँ से अपने साथ घर लिवा ले गये। किन्तु तारा के अपार सौन्दर्य पर लट्टू सोम की कामवासना की तृप्ति घर में भी नहीं हो सकी। इधर तारा के विरहा-नल में दग्ध वृहस्पति सर्वदा उसी के ध्यान में निमग्न रहने लगे किन्तु अपने महान् अपकारी चन्द्रमा को शाप देने में भी वे समर्थ नहीं हो सके, और न मंत्र, शस्त्र, अग्नि, विष आदि अनेक प्रकार के उपायों अथवा अभिचारों से ही उसका कुछ अपकार कर सके। अन्ततः जब निराश हो गये तब अतिशय कामातुर हो दीनतापूर्वक अपनी पत्नी तारा को प्राप्त करने के लिए वे चन्द्रमा से याचना करने लगे। परन्तु तारा के अनुपम रूप एवं यौवन के सुख रूपी पाश में निवद्ध चन्द्रमा ने तारा को फिर भी नहीं लौटाया। अन्त में महादेव, ब्रह्मा, साध्यगण, मरुत् गण तथा दिग्पालों के कहने पर भी जब चन्द्रमा ने तारा को नहीं लौटाया तब अतिशय हठ देख असंख्य रुद्रगणों के स्वामी वामदेव शिव जी उस पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। इस प्रकार वृहस्पति के स्नेह में बँधकर पिनाकधारी भूतनाथ शंकर, जिनकी सिद्धगण सर्वदा सेवा करते हैं, अपने सब शिष्यों को साथ ले अजगव नामक प्रसिद्ध पिनाक को धारणकर चन्द्रमा के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थित हुए। उस समय उनका तीसरा नेत्र विशेष उद्दीप्त हो रहा था और उससे अत्यन्त भयानक आग की लपटें निकल रही थीं जिससे उनका मुख भी परम भयानक हो गया था। उन्हीं के साथ चौरासी रुद्रगण भी अनेक शस्त्रास्त्र धारणकर प्रस्थित हुए। यक्षों के स्वामी कुबेर ने अपने साथ अनेक शत करोड़ सेनाओं के साथ-साथ एक पद्म वेताल, एक अरब यक्ष, तीन लाख नाग तथा बारह लाख किन्नरों को लेकर शिवजी का अनुसरण किया। उधर चन्द्रमा ने भी अतिशय क्रुद्ध होकर नक्षत्रगण, दैत्य,

असुर आदि की अन्यान्य विपुल सेनाओं तथा अतिशय तेजस्वी शनैश्चर तथा मंगल को साथ ले रणभूमि में प्रस्थान किया। इस प्रकार दोनों ओर से भीषण युद्ध की तैयारी देख सातों लोक बहुत ही भयभीत हो गये तथा द्वीपों और समुद्रों के साथ सारी पृथ्वी विचलित हो गयी। महादेव जी एक अतिशय प्रचण्ड अग्निवर्षक विशाल अस्त्र लेकर चन्द्रमा की ओर दौड़ पड़े। तदनन्तर दोनों महान सेनाओं में सम्पूर्ण जीवों के नाश करनेवाले, अतिशय प्रचण्ड तीक्ष्ण और उग्र हथियारों की चमक से युक्त भीषण संग्राम होने लगा। अतिशय तीक्ष्ण और उग्र शस्त्रों से दोनों पक्षों की सेनाएँ नष्ट होने लगीं। दोनों ओर से स्वर्ग, भूमि और पाताल लोक को जलानेवाले, अतिशय जाज्वल्यमान् महान् भीषण शस्त्रास्त्रों की विपुल वर्षा होने लगी। शिव ने कुपित होकर सोम का विनाश करने के लिए ब्रह्मशिरा नामक एक बाण चलाया, उसके प्रतिकार में सोम ने भी कभी न चूकनेवाले अपने सोमास्त्र को संचालित किया। इन दोनों अस्त्रों के छूटने से समुद्र, भूमि और आकाश में सभी स्थानों पर हाहाकार मच गया। ब्रह्मा ने जब उन दोनों अस्त्रों से सारे संसार को विनष्ट होता देखा तो देवताओं को साथ लेकर दोनों के बीच में खड़े हो गये और जैसे भी सम्भव हो सका, उन्हें शान्त किया। फिर सोम से कहा—'हे सोम! तुमने ऐसा निन्द्य कार्य किया है, जिससे विना किसी कारण के सब का विनाश हो रहा है। दूसरे की स्त्री को चुराकर आत्मसात् करने के लिए तुमने ऐसा अत्यन्त भयानक युद्ध किया है, अतः पर्याप्त शान्त एवं शुभकारी होने पर भी तुम जनता में निश्चय ही कृष्ण पक्ष में पापग्रह हुआ करोगे। वृहस्पति की स्त्री तारा को उन्हें सौंप दो, दूसरों की वस्तु लेकर दे देने में तुम्हारा कोई अपमान नहीं है।' ॥२९-४६॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! ब्रह्मा की बातें सुन चन्द्रमा हतप्रभ हो गया और 'अच्छी बात है ऐसा ही करूँगा'—कह कर शान्तचित्त हो युद्ध से विरत हो गया। उधर वृहस्पति भी प्रसन्न मन से अपनी स्त्री तारा को साथ ले महादेव जी के साथ अपने गृह को वापस चले गये। ॥४७॥

श्री मात्स्य महापुराण के सोमवंश वर्णन प्रसंग में चन्द्रमा का दुराचार नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३॥

चौबीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण! तदुपरान्त एक वर्ष बीत जाने पर बारह सूर्यों की भाँति अतिशय तेजस्वी, दिव्य पीताम्बर धारण किये, दिव्य आभूषणों से विभूषित, चन्द्रमा के समान सुन्दर एक कुमार तारा की कुक्षि से उत्पन्न हुआ, जो पीछे चलकर सब प्रकार के शास्त्रों का ज्ञाता तथा उस हस्तीविज्ञान का प्रवर्तक हुआ, जिसके द्वारा हाथियों के गुण दोष, रोग आदि जाने जाते हैं। उसका एक प्रसिद्ध नाम गजवैद्य भी पड़ा। राजा चन्द्रमा का पुत्र होने के कारण राजपुत्र बुध नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई। उस महाबलवान कुमार ने अपने उत्पत्ति काल के साथ ही संसार के सभी तेजस्वी पदार्थों को पराभूत कर दिया। उस समय जब कि वह उत्पन्न हुआ ब्रह्मा आदि देवगण ऋषियों तथा देवताओं को साथ लेकर उसके जातकर्म के

उत्सव में सम्मिलित होने के लिए बृहस्पति के गृह गये। वहाँ देवताओं ने तारा से पूछा—'तुमने किसके संयोग से इस पुत्र को उत्पन्न किया है ?' देवताओं के इस प्रकार पूछने पर पहले तारा ने कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। परन्तु बारम्बार अनुरोध करने पर लजाती हुई उस सुन्दरी ने बहुत देर बाद कहा—'चन्द्रमा के संयोग से।' तारा के कथनानुसार चन्द्रमा ने उस पुत्र को बृहस्पति से ले लिया और उसका नाम बुध रखकर उसे भूतल में राज्य प्रदान किया। ब्रह्मा ने राज्याभिषेक कर उसे सर्व ग्रहों में प्रधान बनाया और ब्रह्मर्षियों के साथ उसे ग्रहों की समकक्षता प्रदान की। तदनन्तर सभी देवताओं के देखते-देखते ब्रह्मा वहीं पर अन्तर्हित हो गये। बुध ने इला के गर्भ से एक धर्मिष्ठ पुत्र उत्पन्न किया, जो अपने पराक्रम तथा तेज से सौ अश्वमेध यज्ञों का करनेवाला, सर्वलोकनमस्कृत पुरूरवा के नाम से विख्यात हुआ। उस राजा पुरूरवा ने हिमवान् पर्वत के मनोहर शिखर पर भगवान् जनार्दन विष्णु की आराधना कर सारे संसार का ऐश्वर्य एवं सातों द्वीपों का आधिपत्य प्राप्त किया था। उसने केशि आदि करोड़ों दैत्यों का संग्राम भूमि में संहार किया था। उसके परम आकर्षक रूप पर मुग्ध होकर उर्वशी ने उसे पति रूप में स्वीकार किया था। सभी लोकों के कल्याण की कामना से पुरूरवा ने सातों द्वीपों तथा शैल, वन और काननों समेत इस निखिल वसुमती का धर्मपूर्वक पालन किया था। कीर्ति तो सदा चमर डुलानेवाली की भाँति उसकी अंगवाहिका बनी रहती थी। विष्णु की प्रसन्नता से देवाधिदेव इन्द्र ने अपना आधा आसन उसे प्रदान किया था। वह सर्वदा धर्म, अर्थ तथा काम का समान रूप से पालन करता था। एक बार कुतूहल वश धर्म, अर्थ तथा काम उसके चरित को जानने की इच्छा से यह देखने के लिए कि 'देखें! किस प्रकार हम लोगों को यह समान दृष्टि से देखता है', उसके यहाँ प्रत्यक्ष रूप धारणकर आये। राजा ने भक्तिपूर्वक उन तीनों को अर्घ्य, पाद्य आदि से सम्मानित किया। दिव्य तीन कनकमय आसनों को बिछाकर उन पर उन्हें बिठाया और पहले सबों की सामान्यतया एक भाव से पूजा की, किन्तु धर्म की उसने फिर से विशेष रूप में पूजा की। उसके इस व्यवहार से काम और अर्थ अत्यन्त कुपित हुए। अर्थ ने उसे शाप देते हुए कहा—'तुम शोक के कारण नष्ट हो जाओगे।' काम ने कहा—'तुम्हें गन्धमादन पर्वत पर अवस्थित कुमारवन में उर्वशी के वियोग के कारण प्रमाद हो जायगा।' किन्तु धर्म ने कहा—'राजेन्द्र! तुम चिरजीवी और परम धार्मिक होगे। तुम्हारे पुत्र-पौत्रादि सन्ततिगण सैकड़ों की संख्या में बढ़ेंगे, उनका पृथ्वी मण्डल पर तब तक निवास रहेगा जब तक चन्द्र, सूर्य तथा तारागण विद्यमान हैं, वे कभी नष्ट नहीं होंगे।' यह कहकर वे सब के सब अन्तर्हित हो गये। राजा ने उसी प्रकार राज्य सुख का अनुभव किया। वह राजाधिराज प्रतिदिन देवेन्द्र को देखने के लिए अमरावतीपुरी को जाता था। एक बार कभी दक्षिण आकाश की ओर जानेवाले रथ पर चढ़कर सूर्य के साथ आकाश मार्ग में घूमते हुए उसने दानवराज केशि को, चित्रलेखा और उर्वशी नामक अप्सराओं को ले जाते हुए देखा। बुधपुत्र पुरूरवा ने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारणकर यश प्राप्ति के लिए संग्राम में उस महा बलवान् केशि को पराजित कर दिया, जिसने इन्द्र को भी समर भूमि में पराजित किया था। और इस प्रकार प्राप्त उर्वशी को ले जाकर उसने इन्द्र को सौंप दिया। जिससे देवताओं के साथ उसकी

मैत्री और भी दृढ़ बन गई और इन्द्र भी तब से उसके परम मित्र हो गये और सन्तुष्ट होकर उसे सम्पूर्ण संसार में सबसे अधिक बल, पराक्रम, यश तथा सम्पत्ति प्रदान की। इसी सम्मान के उपलक्ष्य में भरत मुनि द्वारा उसके यश का गान भी कराया गया। उर्वशी ने पुरूरवा के प्रेम से भरत विरचित लक्ष्मीस्वयम्बर नामक महान् नाटक में अभिनय किया। उस अभिनय में मेनका, उर्वशी, और रम्भा नामक अप्सराओं को भी इन्द्र ने नृत्य करने का आदेश दिया था। उर्वशी ने लक्ष्मी का रूप धारणकर सुन्दर लय के साथ नृत्य तो किया किन्तु नाचते समय पुरूरवा के अतिशय मनोहर रूप को देखकर वह कामातुर हो गई। और इस प्रकार भरत मुनि ने जो कुछ अभिनय के विषय में उसको नियम आदि बतलाये थे, उन्हें वह भूल गई। भरत यह देखकर अतिशय क्रुद्ध हो गये और उर्वशी को उन्होंने शाप दे दिया कि 'इसी के वियोग से पृथ्वीतल में जाकर तुम पचपन वर्ष तक सूक्ष्मलता रूप में उत्पन्न होगी और वहीं पर पुरूरवा भी पिशाचयोनि का अनुभव करेगा।' अनन्तर उर्वशी ने जाकर पुरूरवा को पति रूप में वरण किया और भरत मुनि की शापनिवृत्ति हो जाने पर बहुत काल तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए उसके संयोग से आठ पुत्रों को उत्पन्न किया। उनके नाम हैं आयु, दृढ़ायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, शुचिविद्य और शतायु। ये सभी पुत्र दिव्य पराक्रम और तेज सम्पन्न थे। आयु के नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, दम्भ तथा विपाप्मा नामक पाँच महारथी पुत्र उत्पन्न हुए। रजि के राजेय नामक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। रजि ने निखिल पापों से रहित भगवान् विष्णु की घोर आराधना की थी। उग्र तपस्या से सन्तुष्ट होकर भगवान् विष्णु ने राजा रजि को अनेक वरदान दिया, जिसके प्रभाव से रजि अपने समय में समस्त देवता, असुर तथा मनुष्यों का विजेता हुआ। एक बार कभी देवता और राक्षसों में तीन सौ वर्षों तक भीषण युद्ध चल रहा था, जिसमें प्रह्लाद तथा इन्द्र लड़ रहे थे। किन्तु इतने दिनों के बाद भी कोई विजयी नहीं हो सका था। अन्त में देवता और राक्षस दोनों पक्षवालों के यह पूछने पर कि 'इन दोनों पक्षों में से कौन पक्ष विजेता होगा' भगवान् ब्रह्मा ने कहा—'जिस पक्ष में राजा रजि होगा वही विजेता होगा।' ब्रह्मा की इस बात को सुनकर राक्षसों ने अपने पक्ष की विजय के लिये राजा रजि से प्रार्थना की कि 'आप हमारे सहायक हो जायँ।' राजा ने कहा —'यदि मैं आप लोगों का राजा हो जाऊँ तभी पर्याप्त सहायता कर सकता हूँ।' राक्षसों ने उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। देवताओं ने स्वीकार कर लिया और कहा—'तुम हम लोगों के अधीश्वर हो जाओ और युद्ध में शत्रुओं का विनाश करो।' इस प्रकार रजि के देव पक्ष के सहायक हो जाने पर वे राक्षस मारे गये, जो अब तक इन्द्र द्वारा नहीं मारे जा सके थे। रजि के इस कार्य से सन्तुष्ट होकर प्रभु इन्द्र ने स्वयं उसका पुत्र होना स्वीकार किया। इन्द्र के पुत्र हो जाने पर रजि ने सारा राज्य कार्य फिर इन्द्र को लौटा दिया और स्वयं तपस्या के लिए वन को प्रस्थान किया। इधर रजि के तपस्वी और बलवान् पुत्रों ने बलपूर्वक इन्द्र के साम्राज्य, धन, सम्पत्ति तथा यज्ञ आदि शुभ कार्यों में उनके भाग को भी छीन लिया। रजि पुत्रों द्वारा अपदस्थ इन्द्र अपने राज्य भार से निकाले जाने पर अति दीन तथा दुःखी हो बृहस्पति के पास गये और कहा —'गुरुदेव! रजि के पुत्रों ने मुझे बहुत सताया। मेरा साम्राज्य छीन लिया, यज्ञ आदि कार्यों से भी मेरा अधिकार ले लिया, मैं एक दम पराजित हो

गया हूँ। हे वृहस्पते ! मेरी राज्य प्राप्ति के लिए कुछ उपाय कीजिये, इन्द्र की इस विनीत प्रार्थना से देवगुरु वृहस्पति ने ग्रह शान्ति आदि पुष्टि उत्पादक कार्यों से इन्द्र को अतिशय बलवान् तथा साहसी किया, जिससे इन्द्र ने रजि के उन पुत्रों के पास जाकर उन्हें मोहित कर लिया। और वेद की अमोघ शक्ति को जानकर उन्हें विनाश के पथ पर ले जाने के लिए जैन धर्मावलम्बी बनाकर तीनों वेदों द्वारा प्रशस्त सनातन धर्म से भ्रष्ट करा दिया। और तब उन सबों को वेदोक्त धर्म से वहिष्कृत हेतुवादी मानकर अपने वज्र द्वारा मार डाला। ॥१-४६॥

इसके उपरान्त मैं नहुष के सात धार्मिक पुत्रों का वर्णन कर रहा हूँ। नहुष के यति, ययाति, संयति, उद्धव, पाचि, शर्याति और मेघजाति नामक सात वंश का विस्तार करनेवाले पुत्र थे। प्रथम पुत्र यति अपनी कुमारावस्था में ही राज्य भार से विरक्त हो वैखानस का वेश धारणकर योगी हो गया। उसके बाद दूसरे पुत्र ययाति ने धर्म की शरण ले राज्य का भार सँभाला। उसकी धर्म पत्नियों में एक वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा तथा दूसरी उसी की भांति रूपवती भार्गव की व्रतपरायण कन्या देवयानी थी। ययाति के पाँच उत्तराधिकारी पुत्र थे, उनका नाम बता रहा हूँ। देवयानी ने ययाति के संयोग से यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये, तथा शार्मिष्ठा ने द्रुह्यु, अनु तथा पूरू नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। इन पाँचों पुत्रों में से यदु और पुरु—इन दो पुत्रों के द्वारा वंश का विपुल विस्तार हुआ। नहुष का पुत्र ययाति एक सत्यवादी तथा पराक्रमी शासक था। वह सदा नियमपूर्वक रहता था, उसने विधिपूर्वक अनेक यज्ञों का अनुष्ठान किया। अपने राज्य काल में उसने पृथ्वी का विधिवत् शासन एवं पालन किया। भक्तिपूर्वक पितरों तथा देवताओं की वह पूजा करता था, अपने व्यवहार से प्रजा को सर्वदा प्रसन्न रखता था। कभी शत्रुओं द्वारा वह पराजित नहीं हुआ। इसी प्रकार सहस्रों वर्षों तक उस राजा ने धर्मपूर्वक अपनी प्रजा का विधिवत् पालन किया। इसके बाद नहुष के पुत्र उस राजा ययाति को रूप सौन्दर्य नष्ट करनेवाली घोर वृद्धावस्था प्राप्त हुई। वृद्धावस्था से अतिशय दुःखी हो राजा ने अपने यदु, पूरु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु नामक पाँचों पुत्रों से कहा—'पुत्रो ! यद्यपि मैं वृद्ध हो गया हूँ; पर इस अवस्था में भी मुझे युवावस्था प्राप्तकर युवती स्त्रियों के साथ काम क्रीडा करने की बड़ी अभिलाषा है, इस विषय में तुम लोग मेरी सहायता करो !' पिता की ऐसी बातें सुन देवयानी के ज्येष्ठ पुत्र यदुने कहा—'हम लोग आप की सहायता करने के लिए सर्वदा प्रस्तुत हैं, यौवन की तो बात ही क्या है ?' ययाति ने अपने पुत्रों से कहा—'इस मेरी वृद्धावस्था को तुम लोग ग्रहण करो। तुम लोगों की यौवनावस्था प्राप्तकर मैं अनेक विषय सुखों का सेवन करूँगा। मैं पूर्व काल में अनेक दीर्घकाल व्यापी यज्ञों का अनुष्ठान कर रहा था, उसी प्रसंग में असुरों के गुरु शुक्राचार्य के शाप के कारण मेरे काम तथा अर्थ—दोनों पदार्थ नष्ट हो गये, अतः इस अवस्था में भी मेरी काम वासना की तृप्ति नहीं हो सकी, इसीं कारण मैं अब भी अतृप्त हूँ। अतः अपने शरीर द्वारा तुम लोगों में से कोई मेरी वृद्धावस्था का वहन करे और मैं तुम लोगों की इस नयी युवास्था को लेकर युवा बनकर अपनी काम पिपासा शान्त करूँ।' ययाति की ऐसी बातें सुनकर यदु आदि चार पुत्रों ने वृद्धावस्था लेने से साफ इनकार कर दिया, जिससे कुपित

होकर राजर्षि ययाति ने उन चारों को शाप दे दिया—ऐसा हमने सुना है। इस प्रकार चारों पुत्रों को शाप देकर जब पिता ने पाँचवे पुत्र पूरु से अपनी आकांक्षा प्रकट की तब सत्यवादी तथा परम पराक्रमी कनिष्ठ पुत्र पूरु ने पिता से कहा—'तात ! आप अपनी इस दुःखदायिनी वृद्धावस्था को मुझे दे दीजिये और मेरी इस नयी युवावस्था से यौवन प्राप्तकर विषय सुख भोग कीजिये। आपके आज्ञानुसार मैं इस वृद्धावस्था को लेकर राज्य प्रबन्ध करूँगा।' कनिष्ठ पुत्र पूरु के ऐसा कहने पर राजर्षि ययाति ने अपने उग्र तप एवं योग के बल से अपने उस धर्मात्मा पुत्र के शरीर में वृद्धावस्था को आविष्ट कर दिया और उस की नयी युवावस्था से वह स्वयं युवा हो गया। इस प्रकार ययाति की वृद्ध अवस्था को प्राप्तकर पूरु ने राज्य का कार्य संचालन किया। तदुपरान्त एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी पराक्रमी ययाति कामादि विषयों में अतृप्त ही से रहे तब अन्त में अपने पुत्र पूरु से उन्होंने कहा—'पुत्र ! अकेले एक मात्र तुम्ही से मैं अपने को पुत्रवान् मानता हूँ, तुम ही मेरे वंश के विस्तार करने वाले योग्य पुत्र हो। तुम्हारे ही नाम के अनुकूल अब हमारा यह वंश पौरव नाम से संसार में विख्यात होगा।' इस प्रकार राजा ययाति ने अपने राज्य सिंहासन पर पूरु का अभिषेक कर बहुत दिनों के व्यतीत होने पर इहलोक लीला समाप्त की। ऋषिवर्य गण ! अब इसके उपरान्त मैं पूरु के वंश का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ! इसी वंश में भरत के वंश का विस्तार करनेवाले भारत नामक नृपति गण उत्पन्न हुए। ॥५०-७१॥

श्री मात्स्य पुराण के चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययाति चरित नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४॥

पचीसवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! क्या ऐसा कारण है कि पूरु के वंश में उत्पन्न होनेवाले पौरव इस पृथ्वीतल पर अति श्रेष्ठ माने गये और ज्येष्ठ होने पर भी यदु के वंशज श्रीरहित हो गये ? इसके अतिरिक्त महर्षि ययाति के जीवन चरित को हमें विस्तारपूर्वक सुनाइये, क्योंकि उनका चरित पुण्य तथा दीर्घायु को प्रदान करनेवाला तथा देवताओं द्वारा अभिनन्दनीय है। ॥१-२॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! इसी परम पुण्यमय, अतिशय निर्मल, दीर्घायु प्रदान करनेवाले, राजर्षि ययाति के महान् जीवन चरित को प्राचीनकाल में शतानीक ने शौनक जी से पूछा था। ॥३॥

शतानीक ने पूछा था—तपस्वी शौनक जी ! हम लोगों के पूर्व पुरुष दसवें प्रजापति महाराज ययाति ने किस प्रकार परम दुर्लभ शुक्र की पुत्री देवयानी के साथ अपना विवाह संस्कार किया था ? इस कथा को हम विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त पूरु के वंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं को भी क्रमानुसार हमें बतलाइये ! ॥४-५॥

शौनक ने कहा—नृपतिवर ! राजर्षि ययाति देवराज इन्द्र के समान पराक्रमी एवं यशस्वी थे, उन्हें शुक्र तथा वृषपर्वा ने प्राचीनकाल में जिस प्रकार अपनी-अपनी कन्याएँ वरण की थीं, और जिस प्रकार भार्गव

पुत्री देवयानी और नहुष पुत्र महाराज ययाति का परस्पर संयोग हुआ था, उस कथा को आपके पूछने पर हम सुना रहे हैं, सुनिये। प्राचीनकाल में एक बार देवताओं और राक्षसों में परस्पर चराचर जगत् में स्वामित्व प्राप्त करने के लिए संघर्ष मचा था। उस समय विजय प्राप्त करने की कामना से देवताओं ने अपने यज्ञादि कार्यों के सम्पन्न करने के लिए महर्षि अंगिरा के पुत्र ऋषि बृहस्पति को और दूसरे पक्ष वालों—राक्षसों—ने महर्षि भृगु के पुत्र शुक्र को पुरोहित रूप में वरण किया था। इस कारण वे दोनों ऋषि भी सर्वदा एक दूसरे की अति प्रतिस्पर्द्धा से यज्ञ का विधान करते थे। उस युद्ध में देवगण जिन-जिन दानवों का संहार करते थे, उन्हें शुक्र अपनी संजीवनी विद्या के प्रभाव से पुनः जीवित कर देते थे, जिससे वे फिर उठ-उठकर देवताओं के साथ युद्ध करने लगते थे। उधर राक्षसगण समरभूमि में जिन देवताओं का संहार करते थे, उन्हें उदारबुद्धि बृहस्पति पुनः जीवित नहीं कर सकते थे, क्योंकि वे उस संजीवनी विद्या को नहीं जानते थे, जिसे परम पराक्रमी एवं विद्वान् शुक्र जानते थे। इस कारण देवगण अतिशय विषण्ण हुए और शुक्र से परम भयभीत होकर बृहस्पति के ज्येष्ठ पुत्र कच के पास जाकर निवेदन किया—'कच! हम लोग आपकी शरण में हैं, हमारे कल्याणार्थ कुछ सहायता आप भी कीजिये। इस युद्ध में आप हमारी यह सहायता कीजिये कि उस उत्तम संजीवनी नामक विद्या को, जिसे अमित तेजस्वी शुक्र जानता है, आप शीघ्र जाकर उससे प्राप्त कीजिये। इस महान् उपकार के बदले आप हम लोगों के यज्ञादि कार्यों में भाग प्राप्त करने के अधिकारी होंगे। द्विजश्रेष्ठ शुक्र को आप वृषपर्वा के सन्निकट जाकर देख सकते हैं, वहाँ पर वह दानवों की रक्षा करता है। दानवों के अतिरिक्त अन्य किसी की रक्षा वह नहीं करता। आपको छोड़कर कोई अन्य ऐसा साहसी नहीं है, जो शुक्र की आराधना कर उक्त विद्या को प्राप्त कर सके। अपने शील, सदाचार, सहनशीलता, माधुर्य, चतुरता आदि सद्गुणों से देवयानी को सन्तुष्ट करने पर निश्चय ही शुक्र आपको वह विद्या दे देगा।' उस समय इस प्रकार निवेदन कर देवताओं ने कच को वृषपर्वा के समीप जाने के लिए सहमत कर लिया। राजन्! देवताओं द्वारा अभिनन्दित कच ने तुरन्त ही दानवों की पुरी में अवस्थित शुक्र के पास जाकर प्रणाम किया और कहा—'गुरुदेव! मैं महर्षि अंगिरा का पौत्र तथा द्विजश्रेष्ठ बृहस्पति का पुत्र हूँ, मेरा नाम कच है। मुझे शिष्य रूप में आप स्वीकार कीजिये, आपकी सेवा में तत्पर रह कर मैं ब्रह्मचर्य आदि श्रेष्ठ छात्रनियमों का पालन करूँगा। इसके लिए मुझे अपनी सेवा में एक सहस्र वर्ष पर्यन्त रहने की अनुमति प्रदान कीजिये।' ॥६-२३॥

शुक्र ने कहा—कच! तुम्हारा आगमन कल्याणमय हो, तुम्हारी प्रार्थना मैं स्वीकार करता हूँ, तुम सम्माननीय हो, मैं तुम्हारा सम्मान कर रहा हूँ, हमारे इस सम्मान करने से बृहस्पति जी सम्मानित हों ॥२४॥

शौनक ने कहा—भरतकुलश्रेष्ठ! कच ने शुक्र की आज्ञा स्वीकार कर उस छात्रव्रत को अंगीकार किया, जिसके लिए स्वयम् कवि पुत्र शुक्र ने उसे आदेश किया। छात्र जीवन का नियम तथा उस नियम की अवधि आदि विषयों को लेकर शुक्र ने जैसा कुछ आदेश किया उसे कच ने सम्पूर्णतया स्वीकार किया। और इस प्रकार उपाध्याय भृगु की आराधना में तत्पर रहते हुए वह गुरुपुत्री देवयानी की सेवा में

भी सर्वदा तत्पर रहता था। युवावस्था होने पर भी कच प्रतिदिन उस देवयानी को, जिसके शरीर में यौवन के चिह्न प्रकट हो रहे थे, पवित्र भाव से, गा-गाकर, नाच-नाचकर, विविध प्रकार के बाजे बजा-बजाकर प्रसन्न करता था। इसी प्रकार उस भृगुपुत्री देवयानी के लिए, जो पूर्णरूप से युवती हो चली थी, पुष्प फल आदि आवश्यक पदार्थों को ला-लाकर वह प्रसन्न रखता था। देवयानी भी इस प्रकार नियम तथा व्रत में पटु, अखण्ड ब्रह्मचारी वटु कच को देखकर अपने मन में उसके प्रति सेवा की भावना रखकर प्रत्येक कार्यों के पश्चात् उसकी प्रशंसा किया करती थी। एकान्त में उसकी सेवा भी किया करती थी। इस प्रकार कठोर छात्रजीवन व्यतीत करते हुए कच के पाँच सौ वर्ष बीत गये। कच के ऐसे-परम कठोर छात्रव्रतों को दानवगण नहीं सह सकें। एक बार वृहस्पति की ईर्ष्या के कारण अपनी जाति के रक्षार्थ उन सबों ने एकान्त वन में अकेले गाय चराते हुए कच को मार डाला। और मारने के बाद उसके शरीर को तिल-तिल काट करके पालतू भेड़ियों और गीदड़ों को खिला दिया। इस प्रकार कच के मर जाने के बाद गौएँ विना चरवाहे के अपने स्थान को लौट आयीं। सायंकाल हो जाने पर कच के विना आई हुई गौओं को देखकर देवयानी ने भार्गव से कहा—'तात! आपने अपना अग्निहोत्र कर्म समाप्त कर दिया, भगवान् भास्कर भी अस्ताचल गामी हो गये, विना चरवाहे की गौएँ भी वन से वापस आ गईं, पर कच अभी तक नहीं दिखाई पड़ रहा है। इससे प्रकट होता है कि वह या तो मार डाला गया अथवा किसी ने उसे पकड़ लिया। मैं सच-सच कह रही हूँ कि विना कच के मैं नही जी सकती।' ॥२५-३५॥

शुक्र ने कहा—'यहाँ आवो, यहाँ आवो' इन शब्दों का उच्चारण कर मैं मृत को जीवित कर देता हूँ तुम मत घबराओ, इतना कह कर शुक्र ने संजीवनी विद्या का प्रयोग कर कच को 'यहाँ आओ, यहाँ आओ', कहकर बुलाया। बुलाये जाने पर दूर से दौड़ता हुआ कच उपस्थित हो गया और शुक्र को प्रणाम करते हुए कहा—'गुरुदेव! राक्षसों ने मुझे मार डाला था।' इस प्रकार एक बार मारे जाने तथा भृगु द्वारा जीवित किये जाने पर देवयानी ने दूसरी बार पुनः अपनी इच्छा से कच को वन से पुष्प तोड़ लाने की आज्ञा दी। कच भी शाश्वत् ब्रह्म का ध्यान करता हुआ पुष्प तोड़ने के लिए वन में गया। दानवों ने वन में पुष्प तोड़ते हुए उसे पुनः देखा, और अब दूसरी बार उन्होंने उसको मारकर जलाकर एक दम चूर्णवत् कर मदिरा में मिला दिया और उसे स्वयं शुक्राचार्य को पिला दिया। उस दिन भी बहुत देर तक कच को न आया देख देवयानी ने पिता से कहा—'तात! मैंने कच को वन से फूल तोड़ लाने के लिए कहा था, पर वह अभी तक लौट कर नहीं आया, निश्चय है कि या तो वह मार डाला गया अथवा स्वयं मर गया। आपसे सच कह रही हूँ कि उसके विना मैं नहीं जी सकती।' ॥३६-४१॥

शुक्र ने कहा—बेटी! बृहस्पति का पुत्र कच प्रेत योनि में चला गया है। अब उक्त विद्या द्वारा जीवित कर देने पर भी वह इसी प्रकार फिर मारा जायगा, तो अब मैं क्या करूँ? देवयानि! उसके लिए तुम अब व्यर्थ में शोक मत करो और मत रोओ। तुम्हारे समान सर्वशक्तिसम्पन्न बालिका को एक मरणधर्मा मनुष्य के लिए इतना शोक नहीं करना चाहिये। मेरे तप के प्रभाव से स्वयं ब्रह्म, ब्राह्मण समूह, इन्द्र, सभी

देवगण, आठों वसु, दोनों अश्विनी कुमार, सभी दानवगण, यही क्यों सारा संसार तुम्हारे अधीन है। और सर्वदा सेवा में उपस्थित हो सकते हैं। ब्राह्मण कच अब पुनः जीवित करने योग्य नहीं है, क्योंकि इस प्रकार जीवित होने पर भी वह पुनः राक्षसों द्वारा मारा जायगा।॥४२-४४॥

देवयानी ने कहा—तात ! जिसके अभी अतिशय वयोवृद्ध पितामह महर्षि अंगिरा तथा पिता तपोनिधि बृहस्पति विद्यमान हैं, उन के सुपुत्र तथा पौत्र कच के मरने पर मैं क्यों न शोक करूँ और कैसे न रोऊँ ? वह अखण्ड ब्रह्मचारी था, अतिशय तपोनिष्ठ था, मेरे प्रत्येक कार्यों के लिए सदा सन्नद्ध रहता था और छोटे-बड़े सभी कार्यों में निपुण था। यदि वह जीवित न होगा तो उसी कच के मार्ग को मैं भी ग्रहण करूँगी। वह मनोरम रूपशाली कच मुझे परम प्रिय था। अब उसको विना देखे मैं भोजन नहीं करूँगी।॥४५-४६॥

शौनक ने कहा—राजन् ! देवयानी के इस प्रकार कहने पर शुक्र ने अतिशय कुपित होकर कहा—'मुझे निश्चय हो गया कि असुरगण मेरे साथ द्वेष करते हैं। जो यहाँ आये हुए मेरे शिष्यों को भी मार डालते हैं। ये लोग अपने इन भयानक कर्मों द्वारा पृथ्वी को निश्चय ही ब्राह्मण रहित कर देना चाहते हैं। ये दानवगण व्यर्थ ही मेरी इतनी स्तुति करते हैं। इस महानिन्द्य कर्म से ही इनका अन्त यहाँ हो जायगा, क्योंकि ब्रह्महत्या जब इन्द्र को भी भस्म कर सकती है तो किसे नहीं जला सकती !' ऐसा कह कर शुक्र ने संजीवनी विद्या द्वारा कच का आवाहन किया। इस बार उन्हीं के उदर से ही कच की आवाज सुनाई पड़ी। शुक्र ने उससे पूछा—'वत्स ! कहो किसने तुम्हें इस अवस्था में मेरी उदरस्थली में ला दिया।' ॥४७-४९॥

कच ने कहा—गुरुदेव ! आपकी कृपा से मुझे अभी स्मृति ने नहीं छोड़ा है अर्थात् जिस प्रकार ये सब घटनाएँ घटित हुई वह सब हमें स्मरण है। इस अवस्था में भी हमारे तप का पुण्यफल नष्ट नहीं हुआ है। मैं अपने उस घोर कष्ट को अब भी स्मरण कर रहा हूँ। आचार्य ! राक्षसों ने मुझे मार कर जलाकर फिर चूर्ण बनाकर मदिरा में मिला दिया और उसे आपको पीने के लिए दे दिया। इस प्रकार मैं यहाँ आपके उदर में आ गया हूँ। हे महाराज ! आपके रहते हुए भी ब्राह्मी माया को यह आसुरी माया (राक्षसों की छल-कपट पूर्ण माया) किस प्रकार अभिभूत कर लेती है, अर्थात् आपके प्रयत्नशील होने पर भी मुझे बारम्बार दैत्यों द्वारा ऐसी यातनाएँ क्यों भोगनी पड़ रही हैं ? ॥५०-५१॥

शुक्र ने (देवयानी से) कहा—पुत्रि ! आज मैं तुम्हारा प्रिय कार्य किस प्रकार कर सकता हूँ क्योंकि मेरे न रहने से ही कच पुनः जीवित हो सकता है। हे देवयानि ! वह कहीं अन्यत्र नहीं है, मेरे ही उदर में है, मेरी कुक्षि के फाड़ने से ही वह दिखाई पड़ेगा।॥५२॥

देवयानी ने कहा—तात ! अग्नि के समान दुःखदायी ये दोनों शोक—कच का विनाश तथा उसे पुनः जीवित करने के लिए आपका विनाश—मुझे जला रहे हैं, क्योंकि कच के नष्ट हो जाने पर मुझे कहाँ सुख है ? और तुम्हारी मृत्यु हो जाने से मैं कैसे जी सकती हूँ ? ॥५३॥

शुक्र ने (कच से) कहा—बृहस्पति पुत्र कच ! तुम सचमुच स्वभाव से ही सिद्ध हो, क्योंकि तुम्हारे जैसे भक्त को देवयानी इतना प्यार करती है। यदि तुम कपट से कच रूप धारण कर सचमुच इन्द्र नहीं हो तो मेरी इस संजीवनी नामक विद्या को ग्रहण करो। मेरे उदर से ब्राह्मण को छोड़कर यदि कोई अन्य छद्मवेशी होगा तो वह पुनः जीवित होकर नहीं निकल सकेगा, अतः मेरी इस विद्या को तुम प्राप्त करो। मेरे उदर से पुत्र की भाँति इस कुक्षिप्रदेश को फाड़कर बाहर निकल आओ और उसी विद्या के प्रभाव से पुनः मुझे जीवित करो। गुरु से इस परम मननीय धर्म सम्पन्न विद्या को प्राप्त कर पुनः उस विद्या की रक्षा के लिए यथोचित ध्यान देना। ॥५४-५६॥

शौनक ने कहा—राजन् ! शुक्र की अनुमति प्राप्त कर कच शुक्र द्वारा उस संजीवनी विद्या को ग्रहण कर इस प्रकार उदर फाड़कर बाहर निकला जैसे पूर्णमासी की रात्रि आने पर हिमालय गिरि के श्वेत शिखर को भेद कर चन्द्रमा बाहर निकलता है। बाहर आने पर वेद राशि अपने गुरु को पृथ्वी पर निर्जीव गिरा देख उसने उठाया और उक्त सिद्ध संजीवनी विद्या को प्राप्त करने के उपलक्ष में प्रणाम करते हुए कहा—'निधियों के भी निधि, श्रेष्ठों को वरदान देनेवाले, हिमवान् पर्वत के समान प्रकाशमान शिखर (मस्तक) वाले नित्य वन्दनीय गुरु का जो आदर नहीं करते वे लोग इह लोक में निन्दित होकर परलोक में भी पापियों के लोक को जाते हैं। ॥५७-५९॥

शौनक ने कहा—राजन् ! राक्षसों की प्रवंचना से मदिरा पानकर शुक्र बहुत अधिक संज्ञा हीन हो गये थे। और अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाले कच को देखकर भी वे मदिरा के मोह से पान कर गये थे। इसी कारणवश उन्हें मद्यपान के ऊपर महान् क्रोध एवं घृणा हो गई। अतः भविष्य के लिए सशंकित होकर ब्राह्मण जाति के कल्याणार्थ सुरापान के प्रति उन्होंने स्वयं निम्न बातें कहीं। ॥६०-६१॥

शुक्र ने कहा—जो कोई मन्दबुद्धि ब्राह्मण आज से विवेक रहित हो मदिरा पान करेगा, वह इस लोक में धर्मच्युत हो ब्रह्महत्या के समान पाप का भागी होगा तथा परलोक में भी निन्दित होगा। मैंने सम्पूर्ण लोकों में कही गई ब्राह्मण धर्म की प्रशस्त सीमा के भीतर ही इस मर्यादा को स्थापित किया है, इसे सभी गुरु की सेवा करने की इच्छा करनेवाले ब्राह्मण देव दैत्य आदि आज से सुन लें।

शौनक ने कहा—राजन् ! तपस्वियों में सर्वश्रेष्ठ महा प्रभावशाली शुक्र ने, जिनकी शक्ति का कोई ओर छोर नहीं, उपर्युक्त बातें कह कर उन कपट बुद्धि राक्षसों को बुलाकर कहा। ॥६४॥

शुक्र ने कहा—दानवगण ! तुम लोग बड़े ही निर्बुद्धि हो, तुम्हीं लोगों से मैं यह कह रहा हूँ कि यह हमारा शिष्य कच मुझसे संजीवनी नामक विद्या सीखकर अब मेरे ही समान प्रभावशाली एवं ब्रह्म स्वरूप ब्राह्मण रूप में हमारे समीप निवास करता है। ॥६५॥

शौनक ने कहा—राजन् ! इस प्रकार गुरु के पास एक सहस्र वर्ष तक निवास कर और अंत में उनकी आज्ञा प्राप्तकर कच देवताओं की पुरी में जाने के लिए इच्छुक हुआ। ॥६६॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—राजन् ! इस प्रकार छात्रव्रत समाप्त कर गुरु से आज्ञा प्राप्त कर देवपुर जाने के लिए उद्यत कच से देवयानी ने ये बातें कहीं ॥१॥

देवयानी ने कहा—महर्षि अंगिरा के पौत्र ! तुम उच्च एवं प्रशंसित कुल, सद्व्यवहार, कार्य पटुता, विद्या, तप, सहनशीलता आदि सद्गुणों से विभूषित हो । जिस प्रकार परम यशस्वी महर्षि अंगिरा हमारे पूज्यपिता जी के मान्य हैं, उसी प्रकार मेरे लिए परम माननीय तथा पूज्य तुम्हारे पिता वृहस्पति जी भी हैं । हे तपस्विन् ! यही जानकर मैं तुमसे जो कुछ कह रही हूँ, उसे सच मानो ! तुम्हारे छात्र जीवन के कठोर व्रतों तथा नियमों में निबद्ध रहने पर मैंने तुम्हारे साथ जैसा व्यवहार किया है, उसे ध्यान में रख कर, अब गुरु द्वारा सम्पूर्ण विद्याएँ प्राप्त हो जाने पर मुझ को मत छोड़ो । मैं तुम्हारी परम भक्त हूँ । अतः विधिपूर्वक मंत्रोच्चारण करके मेरा पाणिग्रहण करो । ॥२-५॥

कच ने कहा—भद्रे ! जिस प्रकार मेरे लिए परमपूजनीय तथा मान्य तुम्हारे पिता शुक्र भगवान् हैं, हे निर्दोष अंगोवाली ! उसी प्रकार मेरे लिए तुम भी परम पूजनीय मानी गई हो । महात्मा शुक्र जी को तुम प्राणों से भी परम प्रिय हो और मेरी गुरुपुत्री हो । मेरे लिए तुम सर्वदा धर्मभाव से पूजनीय हो । देव-यानि ! जिस प्रकार तुम्हारे आदरणीय पिता जी सर्वदा मेरे मान्य हैं, उसी प्रकार तुम भी मेरे लिए पूजनीय हो, इस प्रकार के सम्बन्ध की बातें मुझसे मत कहो । ॥७-८॥

देवयानी ने कहा—कच ! तुम हमारे गुरुपुत्र वृहस्पति के पुत्र हो, मेरे पिता के पुत्र नहीं हो । द्विजोत्तम ! इस कारण तुम भी मेरे परम माननीय तथा पूज्य हो । असुरों द्वारा फिर-फिर से तुम्हारे मारे जाने पर, मैंने तुम्हारे लिए जैसी प्रीति प्रदर्शित की है और तब से लेकर मेरे हृदय में तुम्हारे लिए जो स्थान है, उसे तुम ही स्मरण करो । तुम धर्म के मर्म को जाननेवाले हो । उस सौहार्द तथा अनुराग में मेरी जैसी सेवा की भावना थी उसे तुम भली भाँति जानते हो । निरपराध इस प्रकार मुझ परिचारिका को तुम्हें नहीं छोड़ना चाहिये । ॥९-११॥

कच ने कहा—शुभव्रते ! कल्याणि ! तुम मुझे न करने योग्य एक अति अनुचित कार्य के लिए आदेश कर रही हो । सुभ्रु ! मेरे ऊपर कृपा करो । शुभे ! तुम तो मेरे लिए गुरु से भी बढ़कर पूज्य हो । चन्द्रमुखि । विशालनेत्रोंवाली ! भामिनि ! शुक्र जी की जिस पवित्र कुक्षि में तुमने निवास किया है, उसी में मैं भी रह चुका हूँ । शुभानने ! अतः धर्म से तुम हमारी भगिनी हो । इस प्रकार की बातें मुझसे मत कहो । भद्रे ! इतने दिनों तक छात्र जीवन में मैं तुम्हारे समीप सुखपूर्वक रहा हूँ, मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति कोई भी दूषित भाव नहीं हैं । तुमसे आज्ञा प्राप्त करने के लिए ही मैं तुम्हारे पास आया था । अब मुझे आज्ञा दो कि मैं अपने गृह जाऊँ और मार्ग में मेरा कल्याण हो । भविष्य में कभी प्रसंग आने पर मेरा भी धर्म भाव से स्मरण किया करना और मेरे गुरुदेव की सावधानी तथा उत्साह के साथ प्रतिदिन सेवा किया करना । ॥१२-१६॥

देवयानी ने कहा—कच ! दैत्यों द्वारा बारम्बार मारे जाने पर पति की भावना से मैंने अपने पिता द्वारा तुम्हारी रक्षा करायी है, और अब तुम धर्म की दुहाई देकर, धर्म एवं काम के लिए सहयोग की प्रार्थना करनेवाली मुझको पाणिग्रहण के अयोग्य ठहरा रहे हो, अतः इस अपराध से तुम्हारी यह विद्या सफल नहीं हो सकेगी । ॥१७॥

कच ने कहा—देवयानि ! तुम मेरे गुरु की कन्या हो, अतः तुम्हारे साथ मेरा पाणिग्रहण संस्कार अयुक्त है—इसी भावना से मैं तुम्हारा पाणिग्रहण इनकार रहा हूँ, किन्हीं अन्य दोषों के कारण नहीं । गुरुजी ने भी मुझे जाने की आज्ञा प्रदान कर दी है, ऐसी दशा में तुम मुझे भले ही शाप दो, मैंने धर्म बुद्धि से ऋषियों द्वारा निर्धारित धर्ममर्यादा की चर्चा करते हुए तुम्हारा निराकरण किया है । हे कल्याणि ! तुम्हें धर्म एवं काम के वश होकर मुझे शाप नहीं देना चाहिये था । अतः जिस कामबुद्धि से तुम मुझे शापित कर रही हो वह काम तुम्हारे मनोनुकूल कभी नहीं फलीभूत होगा । ब्राह्मणी होने पर भी कभी तुम्हारा पाणिग्रहण कोई ऋषिपुत्र नहीं करेगा । तुम्हारे कथनानुसार मेरी यह संजीवनी विद्या भले ही सफल न हो पर मैं उसे जिसको पढ़ा दूँगा, उसके पास अवश्य सफल होगी । ॥१८-२१॥

शौनक ने कहा—नृपतिवर ! ब्राह्मणश्रेष्ठ कच ने देवयानी से इस प्रकार की बातें कह कर शीघ्रतापूर्वक इन्द्रपुरी की ओर प्रस्थान किया । शुक्र के आश्रम से उसे आता देख इन्द्र को प्रमुख बनाकर सब देवताओं ने बृहस्पति का अभिनन्दन कर कच से प्रसन्न होकर कहा ॥२२-२३॥

देवगण बोले—कच ! तुमने हम लोगों का अद्भुत तथा महान् उपकार किया है, तुम्हारा यश कभी नष्ट नहीं होगा, तुम हम लोगों के साथ यज्ञ आदि कार्यों में भाग के अधिकारी होगे ॥२४॥

श्री मत्स्य महापुराण में चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—भरतकुलश्रेष्ठ ! राजन् ! इस प्रकार संजीवनी विद्या प्राप्तकर आनन्दपूर्वक आये हुए कच से देवतागण अतिशय हर्ष के साथ उक्त विद्या को प्राप्तकर कृतार्थ हो गये । और सभी एकत्र होकर इन्द्र के पास जाकर बोले—'पुरन्दर ! आज आप के ऐश्वर्य एवं पराक्रम के दिखाने का अच्छा समय आ गया है, चलिए और शत्रुओं का संहार कीजिये ।' देवताओं के इस प्रकार कहने पर इन्द्र ने 'अच्छा ऐसा ही होगा'—यह कहकर युद्ध का उपक्रम प्रारम्भ किया । इसी प्रसंग में इन्द्र ने एक वन में कुछ कन्याओं को देखा, जो चैत्ररथ के समान उस सुन्दर वन में जलविहार कर रही थीं । वहाँ वायु रूप धारण कर इन्द्र ने उन सभी कन्याओं का वस्त्र उड़ाकर परस्पर मिला दिया । स्नान के उपरान्त वे कन्याएँ जल से जब बाहर निकलीं, तब अनेक स्थलों में उड़कर एकत्र हुए उन वस्त्रों में अपना अपना पहचान कर

धारण करने लगीं, उसी समय वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने भूल से अपना वस्त्र समझ कर देवयानी का वस्त्र पहन लिया। राजेन्द्र ! जिससे उन दोनों में परस्पर विरोध उत्पन्न होगया। ॥७॥

देवयानी ने कहा—असुरपुत्रि ! मेरी शिष्या होकर तुमने क्यों मेरा वस्त्र पहन लिया ? शिष्टाचार न जाननेवाली ! तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। ॥८॥

शर्मिष्ठा ने कहा—भिक्षुकि ! आसन पर बैठे हुए, पलँग पर सोये हुए, मेरे पिता के सामने प्रतिदिन सर्वदा तुम्हारा पिता नीचे खड़ा होकर विनीतों की भाँति प्रार्थना करता है, आज्ञा, प्राप्त करता है। तुम एक याचक, प्रार्थी और दान लेनेवाले निर्धन ब्राह्मण की कन्या हो। मैं एक दाता की कन्या हूँ, जिसकी प्रतिदिन तुम्हारा पिता प्रार्थना करता है। तुम्हारी तरह मैं दान लेनेवाले की पुत्री नहीं हूँ। तुम स्वयं निरायुध (विना किसी शक्ति की अर्थात् अशक्त) होकर सायुध (अनेक प्रकार की शक्तियों से युक्त) मुझे क्यों अपना क्रोध दिखा रही हो। किसी झगड़ालू से यदि तुम्हारी भेंट हो जायगी तो उचित फल पा जाओगी, मैं तुम्हें कुछ नहीं गिनती ? ॥९–११॥

शौनक ने कहा—राजन् ! शर्मिष्ठा की इन आवेशपूर्ण बातों से देवयानी तो विस्मय में पड़ गई। और उधर पाप-कर्म के लिए उतारू शर्मिष्ठा ने वस्त्रयुक्त देवयानी को, एक कुएँ में ढकेल दिया और स्वयं अपनी पुरी की ओर प्रस्थान किया। शर्मिष्ठा ने उसे कूप में ढकेल कर यह सोचा कि वह अवश्य मर गई होगी, अतः विना उसे देखे ही क्रोध से वेगपूर्वक अपने गृह की ओर प्रस्थित हुई। तत्पश्चात् उसी वन-प्रदेश में शिकार खेलते हुए अतिशय थके-माँदे, प्यास से व्याकुल नहुष पुत्र राजा ययाति आ पहुँचे। उनका अश्व भी एकदम श्रान्त हो चला था। उस निर्जल कूप में जल देखने की इच्छा से राजा ययाति ने जब झाँका तो उसमें अग्नि-शिखा के समान तेजोमयी सुन्दरी देवयानी को देखा। देवबाला के समान सुन्दरी देवयानी को देखकर राजा ययाति ने परम शान्तिप्रद मीठी वाणी से सान्त्वना देते हुए पूछा—'सुन्दरि ! सुमुखि ! श्यामे ! बहुमूल्य मणियुक्त कुण्डलों को पहने हुए तुम कौन हो ? किस विचार में निमग्न हो ? क्यों आतुर होकर इतना हाँफ रही हो ? किस प्रकार लता और तृणों से आवृत इस भयानक कूप में तुम गिर पड़ी हो ? तुम किसकी कन्या हो ? हे सुन्दरकटिवाली ! इन सब बातों को हमें बताओ। ॥१२-१८॥

देवयानी ने कहा—राजन् ! जो देवताओं द्वारा मारे जानेवाले समस्त राक्षसों को, अपनी अमोघ संजीवनी विद्या से पुनः जीवित कर देता है, उस शुक्र की मैं कन्या हूँ। मुझे विदित होता है कि तुम मुझे नहीं पहचान रहे हो। इस मेरे लाल नखयुक्त अँगुलियों वाले दाहिने हाथ को पकड़ कर मेरा उद्धार करो। मैं समझती हूँ कि तुम अतिशय कुलीन एवं धार्मिक हो। मैं तुमको अतिशय शान्त, पराक्रमी तथा प्रतापी जानती हूँ; अतः इस कूप में गिरी हुई मुझको उबारो। ॥१९–२१॥

शौनक ने कहा—राजन् ! देवयानी के इस प्रकार विनीत प्रार्थना करने पर राजा ययाति ने उसे एक ब्राह्मणी—विशेषकर स्त्री—समझकर दाहिना हाथ पकड़कर शीघ्रतापूर्वक कूप से बाहर निकाला। इस प्रकार कूप से बाहर निकालने के बाद राजा ने उस सुन्दरी से कुछ बातें कर

अपने पुर की ओर प्रस्थान किया। नहुष पुत्र राजा ययाति के अपने पुर की ओर प्रस्थान करने के उपरान्त देवयानी की दूती वहाँ पहुँची। उसे देखकर शर्मिष्ठा द्वारा अपमानित देवयानी ने अति शोकाकुल होकर सब बातें सुनाकर उससे कहीं। ॥२२–२४॥

देवयानी ने कहा—दूति! तुम यहाँ से तुरन्त ही जाकर मेरे पूज्य पिताजी को यह सब वृत्तान्त सुनाओ, मैं तो अब वृषपर्वा के नगर में अपना पैर नहीं रखूंगी। ॥२५॥

शौनक ने कहा—राजन्! दूती तुरत ही असुरराज वृषपर्वा के पुर को गई और वहाँ शुक्र जी से अतिशय व्याकुल एवं विचेत-सी होकर काँपते हुए बोली—'महाराज! महाभाग्यशालिनी आपकी पुत्री देवयानी को राक्षसराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने वन-प्रदेश में मार डाला (?)' अपनी कन्या देवयानी को शर्मिष्ठा द्वारा मारी गई सुन, भार्गव शुक्र अतिशय दुःखी हो गये और तुरन्त ही उसे ढूँढ़ते हुए वन-प्रदेश की ओर दौड़ पड़े। वहाँ तपोवन में कन्या देवयानी को इस दशा में देख शुक्रजी अतिशय दुःखी हुए, और उसे अपनी भुजाओं में पकड़कर बोले—'बेटी! सभी मनुष्य अपने दोषों तथा गुणों द्वारा ही दुःख अथवा सुख की प्राप्ति करते हैं, मैं समझता हूँ कि तुमने भी कोई अनुचित कार्य किया था, उसी से निस्तार पाने के लिए तुम्हें यह फल भोगना पड़ा है। ॥२६–३०॥

देवयानी ने कहा—तात्! निस्तार हो वा न हो, वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा ने मुझे जो बातें कही हैं, उन्हें सावधान होकर सुनिये। मैं सच-सच कह रही हूँ, उसने मुझे ऐसी बातें कही हैं कि 'मैं दैत्यों की गायिका (गा-गाकर जीविका उपार्जन करने वाली) हूँ। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने इसी प्रकार के अपमानजनक शब्दों में क्रोध से अपने नेत्रों को लाल किये हुए, अतिशय कठोर शब्दों में आगे भी कहा है कि "तुम प्रार्थना करने वाले, याचक, दान आदि लेनेवाले एक ब्राह्मण की कन्या हो, मैं एक दान देनेवाले राजा की पुत्री हूँ, जिसकी सब लोग स्तुति करते हैं। मेरा पिता किसी से कभी कुछ भी दान नहीं लेता।" पिताजी! मैं सच-सच कह रही हूँ वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने अत्यन्त क्रोध से दोनों नेत्रों को लाल किये हुए अतिशय गर्व में भरकर मुझको इतनी अपमानपूर्ण बातें कही हैं। यदि मैं प्रार्थना करनेवाले, याचक तथा दान आदि लेने वाले एक निर्धन की पुत्री हूँ तो शर्मिष्ठा को अपनी सेवा से प्रसन्न करूँगी—ऐसा मैंने भी उससे कहा है। ॥३१-३५॥

शुक्र ने कहा—भद्रे! देवयानि! तुम स्तुति करनेवाले, दान आदि ग्रहण करनेवाले एक अकिंचन ब्राह्मण की पुत्री नहीं हो, प्रत्युत तुम एक ऐसे परम शक्तिमान् ब्राह्मण की कन्या हो, जिसकी बड़े-बड़े लोग प्रार्थना करते हैं। बेटी! मेरे इस परम प्रभावपूर्ण ब्रह्मतेज को, जिसका पार कोई नहीं पा सकता, वृषपर्वा ही जानता है अथवा इन्द्र तथा नहुषपुत्र राजा ययाति जानते हैं। ॥३६–३७॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

शुक्र ने कहा—देवयानि ! जो मनुष्य सर्वदा दूसरों की कटु बातों को सहन कर लेता है, ऐसा समझ लो कि उसने सभी संसार को जीत लिया । जो मनुष्य उत्पन्न होनेवाले क्रोध को, अश्व की तरह लगाम का सहारा लिये बिना केवल इशारे से अपने वश में रखता है, उसी को सत्पुरुष लोग अच्छा यन्ता (सारथी, तथा अपने को वश में रखनेवाला) बतलाते हैं । वह अच्छा यन्ता नहीं कहा जाता जो केवल लगाम पर अवलम्बित रहता है । देवयानि ! जो मनुष्य अपने उत्पन्न हुए क्रोध को शान्त चित्त होकर दूर कर देता है यह जान लो कि संसार में उसने सब कुछ अपने वश में कर लिया । जो मनुष्य अपने उत्पन्न क्रोध को क्षमा द्वारा सर्प की पुरानी केंचुली की भाँति आसानी से निराकृत कर देता है वही सच्चा पुरुष कहा जाता है । जो अत्यन्त श्रद्धापूर्वक धर्माचरण करता है, जो शान्ति एवं क्षमा द्वारा दूसरों के कटुवादों को सहन कर लेता है तथा जो दूसरों द्वारा अत्यन्त तप्त होने पर भी अन्य को नहीं तप्त करता, वही पुरुष संसार में परम परमार्थ एवं श्रेय का पात्र है । एक मनुष्य जो सौ वर्षों तक प्रत्येक महीने में एक-एक अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करता है, तथा दूसरा मनुष्य जो सभी प्राणियों के साथ क्रोध नहीं करता, उन दोनों में से वही अक्रोधी (क्षमाशील) पुरुष श्रेष्ठ माना गया है । पुत्रि ! छोटी अवस्थावाले कुमार अथवा कुमारियाँ आपस में वैर भाव कर लेती हैं, क्योंकि वे अपने बल अबल को नहीं जानतीं, निर्बुद्धि हैं ; किन्तु बलाबल को जाननेवाले बुद्धिमान् ऐसा नहीं करते । ॥१–७॥

देवयानी ने कहा—तात ! छोटी अवस्था वाली बालिका होते हुए भी मैं कार्यों के औचित्य अथवा अनौचित्य को भली भाँति जानती हूँ, यह भी जानती हूँ कि क्रोध अथवा अमर्ष की शान्ति के लिए क्या करना उचित है ? क्या अनुचित है ? परन्तु शिष्यों का अशिष्ट व्यवहार, जो एकदम अशिष्यों की भाँति हो, अपनी मर्यादा की रक्षा करनेवाले गुरु को नहीं सहन करना चाहिये । ऐसे दुर्जन तथा संकीर्ण व्यवहार करनेवाले असुरों के मध्य में निवास करना अब मुझे अच्छा नहीं लगता । जो अपने पूज्यों का अपने सम्मानपूर्ण व्यवहार तथा कुल द्वारा सम्मान नहीं करते, उन पापमति वालों के बीच में कल्याण के इच्छुक पण्डितजन को निवास नहीं करना चाहिये । जो लोग अपने सद्व्यवहार तथा कुल के पवित्र आचरण द्वारा अपने पूज्य को प्रसन्न रखते हैं, उन्हीं श्रेष्ठ सज्जन लोगों के बीच में निवास करना चाहिये । वही निवास श्रेष्ठ माना गया है । वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के अतिशय क्लेशदायक, निन्दित, अग्नि के समान दुःखदायी कुवाच्य मेरे इस हृदय को मथ रहे हैं । जिस प्रकार अग्नि अरणी को भस्म कर देती है उसी प्रकार उसके कुवाक्य मेरे हृदय को जला रहे हैं । हे तात ! स्वयं दीन हीन एवं अप्रतिष्ठ होकर अपने शत्रुओं की दीप्त राज्यश्री की सेवा करने से बढ़कर कोई भी कठिन कार्य तीनों लोकों में मैं नहीं मानती । ॥८–१३॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—राजन् ! देवयानी की ऐसी अमर्षपूर्ण बातें सुन भृगुवंशश्रेष्ठ शुक्र अति क्रोध के साथ सिंहासन पर बैठे हुए वृषपर्वा के पास जाकर विना कुछ विचार किये ही बोले—'हे राजन् ! अधर्माचरण न करने से संचित पुण्य कर्म शीघ्र ही पृथ्वी की तरह फल प्रदान करते हैं, किन्तु पाप कर्म यदि शनैः शनैः अल्प परिमाण में भी किये जायँ तो वे कर्त्ता का समूल नाश कर देते हैं। यदि कोई स्वयं अपने, अपने पुत्रों तथा अपने नातियों द्वारा किये गये पाप कर्मों को नहीं देखता और उसके प्रतिकार का कोई उपाय नहीं करता तो यह भी एक महान् पाप कर्म है, जो उसके धर्मार्थकाम त्रिवर्ग को निष्फल करता है। इस प्रकार उपेक्षा से किया गया पाप कर्म अधिक मात्रा में भोजन किये गये उदरस्थ पदार्थ की तरह निश्चय ही अनिष्ट फल देता है। परम धर्मज्ञ, निष्पाप, सेवा में संलग्न, मेरे घर पर आये हुए महर्षि अंगिरा के पौत्र, मेरे प्रिय शिष्य कच को तुमने छलपूर्वक मरवा डाला था, जिसका वध सर्वथा अयोग्य तथा निन्दित था, फिर मेरी प्राणप्रिय पुत्री देवयानी को इस प्रकार मरवा डाला—इन दोनों परम घोर पापों की उपेक्षा करने से परिवार के साथ तुम्हें मैं छोड़कर जा रहा हूँ। हे वृषपर्वा ! अब मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता। आज ही मैं तुम जैसे मिथ्याप्रलापी राक्षसों को भलीभाँति जान सका हूँ, तुमसे मैं पूछता हूँ कि अपनी उद्धत स्वभाववाली सयानी कन्या के अपराधों के प्रति तुम क्यों इतनी उपेक्षा कर रहे हो ? ॥१–७॥

वृषपर्वा ने कहा—भगुनन्दन ! आप के साथ मैंने कौन-सा निन्द्य व्यवहार किया, अथवा आप से कौन-सी झूठी बातें कहीं—इसे मैं नहीं जानता। सदैव सत्य एवं धर्म के साथ मेरा व्यवहार आपके प्रति होता आया है। अतः मैं सर्वथा आपका कृपापात्र हूँ। मेरे ऊपर कृपा कीजिये। हे महाराज ! यदि आप आज हम लोगों को सचमुच छोड़कर यहाँ से चले जाने का निश्चय कर रहे हैं तो हमलोग भी समुद्र में प्रवेश करेंगे ; क्योंकि हमारे लिए अन्य कोई भी शरण नहीं है। ॥८–९॥

शुक्र ने कहा—वृषपर्वा ! चाहे तुम लोग समुद्र में प्रवेश करो अथवा यहाँ से दसों दिशाओं को भाग जाओ; पर हम अपनी प्राणप्रिय कन्या का अकल्याण एवं अपमान नहीं सहन कर सकते। यदि तुम लोगों को अपने कल्याण की चिन्ता है तो मेरी पुत्री देवयानी को जाकर प्रसन्न करो; क्योंकि मेरा जीवन उसी पर निर्भर है। मैं तुम्हारा उतना ही हितैषी हूँ जितना इन्द्र के वृहस्पति। ॥१०–११॥

वृषपर्वा ने कहा—भृगुकुलश्रेष्ठ ! इस पृथ्वीतल में बड़े-बड़े दैत्यों के पास जितना भी धन, सम्पत्ति तथा हाथी, रथ, अश्व आदि पदार्थ हैं, उन सबों के साथ तुम मेरे भी अधीश्वर हो ॥१२॥

शुक्र ने कहा—दैत्यराज ! जो कुछ भी दैत्यों के स्वामियों का इस संसार में धन है, उन सबका मैं अधीश्वर तब हूँ, जब तुम देवयानी को जाकर प्रसन्न करो। ॥१३॥

शौनक ने कहा—राजन् ! तत्पश्चात् दैत्यराज वृषपर्वा को साथ ले शुक्र तुरन्त ही अपनी पुत्री देवयानी के पास पहुँचे और उससे बोले 'मङ्गले ! तुमने जो कुछ कहा था वह सब होगया।' ॥१४॥

देवयानी ने कहा—तात ! तुम दैत्यराज वृषपर्वा के तथा उनके सभी ऐश्वर्यों के अधीश्वर हो, किन्तु इसे मैं तुम्हारे मुँह से नहीं सुनना चाहती, राजा स्वयं अपने मुँह से मुझसे कहें । ॥१५॥

वृषपर्वा ने कहा—सुन्दर हँसनेवाली ! देवयानि ! जिस मनोरथ को तुम अपनी इच्छा से बहुत पसन्द करो उसी को मैं सफल करूँगा । माँगो, भले ही वह अति दुर्लभ क्यों न हो ? ॥१६॥

देवयानी ने कहा—राजन् ! मैं एक सहस्र कुमारी कन्याओं के साथ तुम्हारी पुत्री शर्मिष्ठा को अपनी दासी के रूप में देखना चाहती हूँ, मेरे पूज्य पिता जी जहाँ कहीं भी मेरा व्याह करेंगे वहाँ उसे भी दासी के रूप में मेरे साथ जाना होगा, मैं यही चाहती हूँ । ॥१७॥

वृषपर्वा ने [अपनी धाय से] **कहा**—धाय ! तुम उठकर शीघ्र जाओ और शर्मिष्ठा को अपने साथ लिवा लाओ, देवयानी की अभिलाषा तुम जाकर पूरी करो । ॥१८॥

शौनक ने कहा—राजन् ! वृषपर्वा की आज्ञा सुनकर धाय ने शर्मिष्ठा के पास जाकर कहा—'भद्रे शर्मिष्ठे ! उठो, अपनी जाति का कल्याण करो । देवयानी की प्रेरणा से परम क्रुद्ध होकर महर्षि भार्गव अपने शिष्य दानवों को छोड़ कर अन्यत्र चले जा रहे हैं । निष्पापे ! इसलिए इस समय देवयानी का जो कुछ भी मनोरथ हो, उसे तुम पूर्ण करो । सुन्दरि ! देवयानी के अनुरोध पर तुम्हारे पिता ने तुम्हें उस की दासी बनाया है ।' ॥१९-२०॥

शर्मिष्ठा ने कहा—धाय ! देवयानी जो कुछ भी चाहेगी, उसे मैं करूँगी । मेरे कारण क्रुद्ध होकर शुक्र जी तथा देवयानी कहीं अन्यत्र न जायँ । ॥२१॥

शौनक ने कहा—राजन् ! तत्पश्चात् नालकी में चढ़कर एक सहस्र कन्याओं को साथ ले पिता के आदेशानुसार शर्मिष्ठा ने तुरन्त अपने उत्तम नगर से देवयानी के समीप प्रस्थान किया । ॥२२॥

शर्मिष्ठा ने कहा—देवयानि ! मैं निश्चयपूर्वक कह रही हूँ कि आज से मैं एक सहस्र कन्याओं के साथ तुम्हारी टहलुनी के रूप में तुम्हारे संग रहूँगी, तुम्हारे पिता जहाँ कहीं तुम्हें देंगे वहीं मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी । ॥२३॥

देवयानी ने कहा—शर्मिष्ठे ! मैं तो तुम्हारे कथनानुसार एक स्तुति करनेवाले, याचक तथा दान आदि ग्रहण करनेवाले अकिंचन ब्राह्मण की कन्या हूँ, तुम एक ऐसे राजा की, जिसकी सभी लोग प्रार्थना करते रहते हैं, कन्या होकर भला किस प्रकार मेरी दासी हो सकती हो ? ॥२४॥

शर्मिष्ठा ने कहा—देवयानि ! जिस किसी उपाय से भी सम्भव हो, अनेक कष्ट सहन कर के भी अपने दुःखित परिवार वर्ग को सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिये, इसीलिए मैं दासी रूप में तुम्हारे साथ वहाँ चलूँगी, जहाँ तुम्हारे पिता तुम्हें देंगे । ॥२५॥

शौनक ने कहा—राजन् ! वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा द्वारा दासी रूप में रहने की प्रतिज्ञा कर लेने के उपरान्त देवयानी ने अपने पिता शुक्र से कहा । ॥२६॥

देवयानी ने कहा—तात ! ब्राह्मणकुलश्रेष्ठ ! अब मैं पूर्णतया सन्तुष्ट हूँ, चलिये, इस असुर

नगरी में मैं अब प्रवेश कर रही हूँ, तुम्हारा विज्ञान तथा विद्याबल कभी व्यर्थ होनेवाला नहीं है। ॥२७॥

शौनक ने कहा—राजन्! तदनन्तर सभी दानवों द्वारा पूजित महान् यशस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्र जी अपनी पुत्री देवयानी के साथ असुरपुर में प्रविष्ट हुए। ॥२८॥

श्री मात्स्य महापुराण के चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥२९॥

तीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—नृपोत्तम! तदुपरान्त बहुत दिवस व्यतीत हो जाने पर एक बार विहार करने की इच्छा से सुन्दरी देवयानी ने वन की ओर प्रस्थान किया। उसके साथ एक सहस्र दासियों के साथ शर्मिष्ठा भी थी। उसी पूर्वपरिचित वनप्रदेश में जाकर उसने स्वेच्छापूर्वक भ्रमण किया। वहाँ पहुँच कर सखियों के साथ अति आनन्दित हो अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करती हुई वन के अनेक प्रकार के सुन्दर फलों एवं पकवानों को वह खाने लगी। सभी सखियों को साथ ले माधवी मधु पान करने लगी। दैवयोग से पुनः आखेट खेलते हुए अतिशय पिपासाकुलित नहुषपुत्र महाराज ययाति जल पीने की इच्छा से उसी वनप्रदेश में आ गये। वहाँ आकर उन्होंने क्रीड़ा करती हुई देवयानी शर्मिष्ठा तथा अन्य दासियों को देखा। राजा ने देखा कि वहाँ पर वे अनेक परम सुन्दरी स्त्रियाँ दिव्य आभरणों से विभूषित होकर मधुपान कर रही है। उन सबों के मध्य में मन्दहास करती हुई अनुपम सुन्दरी देवयानी विराजमान है। शर्मिष्ठा उसके पैरों को दाब रही है। ॥१–७॥

ययाति ने कहा—दो सहस्र कन्याओं द्वारा सुसेवित आप दो सुन्दरी कौन हैं? आप दोनों के नाम तथा गोत्र को मैं जानना चाहता हूँ। ॥८॥

देवयानी ने कहा—राजन्! मैं अपना परिचय स्वयं दे रही हूँ, सुनिये। शुक्र नामक दैत्यों के गुरु हैं, मुझे उनकी पुत्री जानिये। यह मेरी सखी तथा दासी है, जहाँ कहीं मैं जाऊँगी वहीं इसे भी जाना पड़ेगा। यह दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री है, इसका नाम शर्मिष्ठा है। ॥९-१०॥

ययाति ने कहा—सुभ्रु। यह सुन्दरी दानवराज की कन्या किस प्रकार तुम्हारी सखी भी है और दासी भी है? यह दैत्यराज्य वृषपर्वा की कन्या है, अतः मुझे बड़ा आश्चर्य है कि यह किस प्रकार तुम्हारी दासी है? ॥११॥

देवयानी ने कहा—नरव्याघ्र! यह सब भाग्य की बात है, विधि का विधान समझ कर इस विषय पर मन में कोई आश्चर्य न कीजिये। आपका वेश तथा रूप राजाओं जैसा विदित हो रहा है, और संस्कृत वाणी में आप बोल रहे हैं। आपका नाम क्या है? कहाँ से आप आ रहे हैं? किसके पुत्र हैं? कृपया यह सब मुझे बतलाइये। ॥१२-१३॥

ययाति ने कहा—अखण्ड ब्रह्मचर्य धारणकर सम्पूर्ण वेदों को मैं कण्ठस्थ कर चुका हूँ, मैं

राजा का पुत्र हूँ, स्वयं भी राजा हूँ, मेरा नाम ययाति है। ॥१४॥

देवयानी ने कहा—राजन्! आप किस प्रयोजन से इस वनप्रदेश में आये हुए हैं? जलपान करने की इच्छा से अथवा मृगया प्रसंग में? ॥१५॥

ययाति ने कहा—मङ्गले! मृगया खेलते हुए मैं इस समय जल पीने की इच्छा से यहाँ आया हूँ। मैं सब प्रकार से आपकी सेवा करने के लिये प्रस्तुत हूँ। आप आज्ञा दे सकती हैं। ॥१६॥

देवयानी ने कहा—आर्यपुरुष! दो सहस्र कन्याओं से युक्त दासी शर्मिष्ठा के साथ मैं स्वयं आपके अधीन हूँ, मेरी इच्छा है कि आप मेरे पति हों, आप का कल्याण हो। ॥१७॥

ययाति ने कहा—भार्गवपुत्रि! भामिनि! देवयानि! तुम्हारा कल्याण हो। तुम भली-भाँति सोच लो कि मैं तुम्हारे पति होने के योग्य नहीं हूँ। तुम्हारे पिता शुक्र ब्राह्मण होकर कभी राजपुत्रों के साथ अपनी कन्या का विवाहसंस्कार नहीं करेंगे। ॥१८॥

देवयानी ने कहा—नहुषपुत्र! क्षत्रिय परस्पर व्यवहार में ब्राह्मणों से मिले रहते हैं, और क्षत्रियों के साथ ब्राह्मणों का व्यवहार भी मान्य है। आप एक राजर्षि के पुत्र हैं, स्वयं भी राजर्षि हैं अतः आज मुझे अपनी सेवा में स्वीकार कीजिये। ॥१९॥

ययाति ने कहा—सुमुखि! ब्रह्मा के एक ही शरीर से उत्पन्न होनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—चारों वर्ण हैं; पर उनके आश्रम, धर्म तथा आचार-विचार अलग-अलग हैं। उन चारों में ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ माने गये हैं। ॥२०॥

देवयानी ने कहा—नहुषपुत्र! विश्वास मानो, तुम्हारे अतिरिक्त कभी किसी अन्य पुरुष ने मेरा पाणिग्रहण नहीं किया है। मैं तुम्हें हृदय से पति रूप में स्वीकार कर रही हूँ। सर्वप्रथम तुम्हीं ने मेरा पाणिग्रहण भी किया है। भला यह किस प्रकार सम्भव था कि ऋषिपुत्र और स्वयं भी ऋषितुल्य, तुम जिस मुझ मनस्विनी का पाणिग्रहण कर चुके हो, उसे कोई अन्य पुरुष ग्रहण कर लेता! ॥२१-२२॥

ययाति ने कहा—सुन्दरि! पण्डित जन ऐसा कहते हैं कि ब्राह्मण जाति; क्रुद्ध विषैले सर्प तथा चारों ओर से जलानेवाली भीषण अग्नि से भी बढ़कर भयानक एवं दुराराध्य होती है। ॥२३॥

देवयानी ने कहा—पुरुषश्रेष्ठ! ऐसा आप क्यों कह रहे हैं कि ब्राह्मण क्रोधित विषैले सर्प तथा चारों ओर से प्रदीप्त अग्नि से भी बढ़कर दुराराध्य होते हैं। ॥२४॥

ययाति ने कहा—भीरु! क्रुद्ध विषैला सर्प तो केवल एक व्यक्ति को डस सकता है तथा हाथ से छूटा हुआ शस्त्र भी एक ही का विनाश कर सकता है; परन्तु ब्राह्मण कुपित होने पर राज्य के साथ-साथ समस्त पुर का विनाश कर सकता है। इसीलिए ब्राह्मण मेरे मत से सबसे बढ़कर दुराराध्य हैं। भद्रे! यही कारण है कि विना आपके पूज्य पिता जी की आज्ञा प्राप्त किये हुए मैं आपके साथ विवाहसंस्कार नहीं करूँगा। ॥२५-२६॥

देवयानी ने कहा—राजन्! ठीक है, पिता द्वारा दिये जाने पर तथा मेरे द्वारा पति रूप में स्वीकार कर लेने पर आप मुझे ग्रहण करें। विना याचना किये ही पिता द्वारा दिये जाने पर मुझे ग्रहण

करने में आपको किसी का भय नहीं रहेगा ! ॥२७॥

शौनक ने कहा—राजन् ! तत्पश्चात् देवयानी ने अपने पिता शुक्र के पास सन्देश ले कर एक दूती भेजा । दूती ने जाकर सब—जैसा का तैसा—समाचार शुक्र जी को कह सुनाया । दूती द्वारा सब वृत्तान्त सुन भृगुनन्दन शुक्र जी ने स्वयं वहाँ से आकर राजा को दर्शन दिया । शुक्र को आते देख, राजा ययाति ने अँजलि बाँध विनम्र भाव से स्थित होकर उनकी वन्दना की । राजा को इस विनीत वेश एवं मुद्रा में देखकर भार्गव शुक्र ने भी अति मधुर एवं शान्तिपूर्ण शब्दों से राजा का अभिवादन स्वीकार किया । ॥२८-३०॥

देवयानी ने कहा—तात ! यह राजर्षि नहुष के पुत्र राजा ययाति हैं, बहुत दिन पूर्व इन्होंने बड़े संकटमय अवसर पर मेरा पाणिग्रहण करके उद्धार किया था । मुझे इन्हीं को प्रदान दीजिये, इन्हें छोड़कर मैं संसार भर में किसी अन्य पुरुष को पतिरूप में नहीं स्वीकार करूँगी । आपको मेरा नमस्कार है । ॥३१॥

शुक्र ने कहा—नहुषपुत्र वीरवर ! ययाति ! मैं अपनी प्राणवल्लिय पुत्री देवयानी को तुम्हें वरण कर चुका, मेरे द्वारा प्रदत्त इस सुकुमारी को तुम स्वीकार करो । ॥३२॥

ययाति ने कहा—भृगुकुलश्रेष्ठ ! आप की आज्ञा से देवयानी को ग्रहण करने पर मुझे पाप का भागी न होना पड़े तथा इसके द्वारा हमारी भावी सन्तान को वर्णसंकरता का अपयश न लगे । ब्रह्मन् ! इसके लिए मैं आपसे विशेष प्रार्थना कर रहा हूँ । ॥३३॥

शुक्र ने कहा—राजन् ! मैं इस अधर्म से तुम्हें मुक्त कर रहा हूँ, तुम अपने ईप्सित मनोरथ को प्राप्त करो । इस विवाह कार्य में तुम प्रशंसा के पात्र हो, मैं तुम्हारे गुप्त पापों को भी नष्ट कर रहा हूँ । इस शुचिस्मिता देवयानी को धर्मपूर्वक स्त्री रूप में तुम अंगीकार करो । इसके साथ तुम्हारा संयोग अतुल प्रीति वर्द्धक हो । राजन् ! यह वृषपर्वा की पुत्री कुमारी शर्मिष्ठा भी तुम्हारे ही अधीन है ; इसकी सुविधाओं की ओर भी सर्वदा तुम्हें ध्यान रखना होगा ; पर इसको कभी शय्या पर मत बुलाना, इसका ध्यान रहे । ॥३४-३६॥

शौनक ने कहा—राजन् ! शुक्र की ऐसी बातें सुनकर राजा ययाति ने उनकी प्रदक्षिणा की और विदा होने की आज्ञा प्राप्त कर सहर्ष अपने नगर की ओर प्रस्थान किया । ॥३७॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

एकतीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—राजन् ! तदुपरान्त इन्द्र की अमरावतीपुरी के समान समृद्ध अपने नगर में प्रवेश कर राजा ययाति ने अन्तःपुर में ले जाकर शुक्रपुत्री देवयानी के निवास का प्रबन्ध किया और उसकी सम्मति लेकर वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा और उसकी एक सहस्र दासियों के लिए अशोकवाटिका में नूतन गृह निर्मित कराकर वहीं पर सब के रहने का अलग-अलग प्रबन्ध किया । और वहाँ उन सबों के लिए वस्त्र तथा अन्न-पान आदि की भी पृथक्-पृथक् व्यवस्था बाँध दी । इस प्रकार देवयानी के साथ नहुषपुत्र राजा

ययाति ने अनेक वर्षों तक देवताओं के समान सुखपूर्वक विहार किया। सुन्दरी देवयानी ने प्रथम ऋतुकाल के अवसर पर गर्भ धारण किया, जिससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अनन्तर एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर कमलदल के समान सुन्दर एवं आकर्षक नेत्रोंवाली वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने भी युवती होकर ऋतुकाल का दर्शन किया। ऋतुकाल आ जाने पर धर्मपरायण शर्मिष्ठा ने अपने मन में चिन्ता की कि 'मेरा ऋतुकाल तो आ गया पर आज तक मैंने किसी पुरुष का पतिरूप में वरण नहीं किया। यह कैसा संकटमय अवसर आ गया है, इसमें मुझे क्या करना चाहिये ? कौन-सा कार्य करने पर मेरा कल्याण हो सकता है ? मेरी समवयस्का देवयानी ने तो एक पुत्र भी उत्पन्न किया और मेरी यह यौवनावस्था व्यर्थ ही बीत रही है। उसने जिसको अपना पति बनाया है, उसे ही मैं भी अपना पति बनाऊँगी। मेरा यह सोचना ठीक है कि राजा को मुझमें भी पुत्र उत्पन्न करना चाहिये। किन्तु क्या इस समय धर्मात्मा राजा ययाति एकान्त में मुझसे मिलेंगे।' ॥१-९॥

शौनक ने कहा—राजन्! शर्मिष्ठा यह सोच ही रही थी कि दैवयोग से राजा ययाति उसी समय अन्तःपुर से निकल कर अशोकवाटिका में घूमते हुए दिखाई पड़े। वे उस समय शर्मिष्ठा के ठीक सामने ही चले आ रहे थे। चारुहासिनी शर्मिष्ठा इस प्रकार समुचित अवसर आया देख एकान्त में राजा के पास आगे बढ़कर गयी और अंजलि बाँधकर विनम्रतापूर्वक बोली। ॥१०-११॥

शर्मिष्ठा ने कहा—नहुषपुत्र! चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, यम अथवा वरुण—इनमें से कोई देवता भी आपके गृह में स्त्रियों को नहीं देख सकता। राजन्! आप सदा से रूप, कुल, शील, सदाचार आदि से मुझे भली भाँति जानते हैं। मैं आपकी दासी हूँ। आज आपको प्रसन्न करके यह विनीत याचना कर रही हूँ कि हे नराधिप! मेरे साथ रमण करने के लिए आप यहाँ मेरे भवन में पदार्पण करें। ॥१२-१३॥

ययाति ने कहा—शर्मिष्ठे! मैं तुम्हें दैत्यराज वृषपर्वा की अति सुन्दरी, शील सदाचारपरायण कन्या के रूप में भली भाँति जानता हूँ, तुम्हारे रूप एवं सौन्दर्य को मैं सूई के अग्र भाग जितना भी निन्दित नहीं देखता। किन्तु जिस समय मैं देवयानी का पाणिग्रहण कर रहा था उस समय शुक्र ने मुझसे यह कहा था कि इस वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा को तुम कभी अपनी शय्या पर मत बुलाना। ॥१४-१५॥

शर्मिष्ठा ने कहा—राजन्! परिहास (हँसी-मजाक) के अवसर पर बोला हुआ मिथ्या वचन वक्ता को हानि नहीं पहुँचाता, इसी प्रकार स्त्रियों के विषय में, किसी के विवाह आदि कराने में, प्राण संकट उपस्थित होने पर तथा सब सम्पत्ति नष्ट हो जाने के अवसर पर भी यदि मिथ्या बात कह दी जाय तो वह अमंगलकारक नहीं है। इन उपर्युक्त पाँच अवसरों पर कहे गये मिथ्या वचन पापरहित माने गये हैं। नरेन्द्र! साक्षी बना कर पूछे जाने पर जो व्यक्ति अपनी जानकारी के विरुद्ध साक्ष्य (गवाही) देते हैं, वही यथार्थतः मिथ्यावादी कहे जाते हैं। किसी विवादी विषय में एक निश्चित सम्मति देने के लिए एकत्र मनुष्यों के समूह में (पंचायत आदि में) जो व्यक्ति अपनी जानकारी के विरुद्ध बातें कहता है, उसे मिथ्या का पाप हानि पहुँचाता है। ॥१६-१७॥

ययाति ने कहा—शर्मिष्ठे! संसार के सभी प्राणियों के कार्यों में औचित्यानौचित्य के निर्णय

के लिए राजा ही प्रमाणभूत माना गया है। यदि ऐसा होकर भी वह मिथ्या बोलता है तो उसका विनाश हो जाता है। मैं अत्यन्त निर्धन हो जाने पर भी कभी मिथ्या व्यवहार नहीं कर सकता क्योंकि मैं भी राजा हूँ। ॥१८॥

शर्मिष्ठा ने कहा—राजन्! जो सखी का पति होता है वह अपना भी पति है, क्योंकि वे दोनों ही समान मानी गयी हैं। ऐसा लोग कहते हैं कि उनका विवाह एक ही साथ हो जाता है। मेरी सखी देवयानी के साथ आपका विवाह हो चुका है अतः मेरे भी पति धर्मतः आप ही हुए। ॥१९॥

ययाति ने कहा—शर्मिष्ठे! राजा को प्रत्येक याचक का मनोरथ सिद्ध करना चाहिये—इसी व्रत का पालन इस समय मैं कर रहा हूँ। तुम मुझसे काम प्रार्थना कर रही हो। अतः मुझे बतलाओ कि मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ? ॥२०॥

शर्मिष्ठा ने कहा—राजन्! इस अधर्म से मेरी रक्षा कीजिये और मुझमें भी पुत्रोत्पत्ति करके धर्मोपार्जन कीजिये। आपके द्वारा सन्तति लाभ कर मैं भी संसार में उत्तम धर्मोपार्जन कर सकूँ—यही मेरी कामना है। हे राजन्! स्त्री, पुत्र तथा दास—ये तीन संसार में अधन (निर्धन) अर्थात् धन उपार्जन करते हुए भी उपभोग करने में असमर्थ माने गये हैं, क्योंकि ये लोग जो कुछ भी उपार्जन करते हैं, वह उनका नहीं प्रत्युत उनके अधिकारी का है। जिस प्रकार भार्गवपुत्री देवयानी आपकी दासी हैं उसी प्रकार मैं उनकी दासी हूँ। मैं और वह दोनों आपकी कृपा का भाजन बनें—ऐसी कृपा कीजिये। हे नाथ! मैं सर्वदा आपकी परिचारिका हूँ, मेरी सेवा आप ग्रहण करें। ॥२१-२३॥

शौनक ने कहा—हे राजन्! शर्मिष्ठा के इस प्रकार विनीत प्रार्थना करने पर राजा ययाति ने यह निश्चय किया कि 'यह ठीक कह रही है।' तदनन्तर धर्म का उपार्जन करते हुए उन्होंने शर्मिष्ठा का सम्मान किया। और इस प्रकार शर्मिष्ठा के साथ यथेप्सित भोग-विलास किया। अपने व्यवहारों से उन दोनों ने एक दूसरे को प्रसन्न एवं सम्मानित किया और तदनन्तर वहाँ से अपने-अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान किया। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने राजा ययाति के इस प्रथम समागम से ही गर्भ धारण किया। और यथासमय उस कमल लोचना रानी ने देव बालकों की तरह परम सुन्दर एवं सूर्य के समान तेजस्वी एक कुमार को उत्पन्न किया। ॥२४-२६॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक एकतीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—भरतकुलश्रेष्ठ! शर्मिष्ठा के गर्भ से पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनकर सुन्दरी देवयानी उसके इस गुप्त व्यवहार से अतिशय चिन्तित एवं दुःखित हुई। और शर्मिष्ठा के निवास स्थान पर जाकर उससे पूछा—'सुभ्रु! तुम ने कामलोलुप होकर यह छलपूर्ण पाप कर्म किस लिए किया? ॥१-२॥

शर्मिष्ठा ने कहा—शुचिस्मिते ! एक परम धर्मात्मा एवं वेदों में पारङ्गत ऋषि यहाँ मेरे स्थान पर आये हुए थे, मैंने उन्हीं से धर्मरक्षा के लिए काम प्रार्थना की । और उन्हीं ऋषि के संयोग से मुझे यह पुत्रप्राप्ति हुई है। मैं तुमसे यह बात सच-सच कह रही हूँ । मैंने अधर्म अथवा अन्याय से अपनी कामपिपासा नहीं शान्त की है । ॥३-४॥

देवयानी ने कहा—शर्मिष्ठे ! यदि यही बात है तो इसके लिए मेरे हृदय में कोई द्वेष वा दुःख नहीं है । सभी वर्णों में श्रेष्ठ तथा कुलीन ब्राह्मण से ही यदि तुमने पुत्र प्राप्त किया है तो मैं तुमसे अप्रसन्न नहीं हूँ । भीरु ! यदि सचमुच तुमने ऐसा किया तो बड़ा अच्छा किया ; किन्तु उक्त पुरुष को तुमने ब्राह्मण कैसे समझ लिया ? मैं उक्त ब्राह्मण का गोत्र, कुल तथा नाम आदि सुनना चाहती हूँ । ॥५-६॥

शर्मिष्ठा ने कहा—शुचिस्मिते ! सच मानो, सूर्य के समान तेजस्वी तथा प्रतिभासम्पन्न उक्त ऋषि को देखकर, मेरा यह सब पूछने का साहस नहीं हुआ । ॥७॥

शौनक ने कहा—राजन् ! इस प्रकार वे दोनों सखियाँ परस्पर परिहासपूर्ण बातों द्वारा विनोद करती रहीं । शर्मिष्ठा की बातों को सच मानकर देवयानी अन्तःपुर को चली गई । राजा ययाति ने देवयानी के संयोग से इन्द्र तथा विष्णु के समान ऐश्वर्यशाली तथा परम पराक्रमी यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया । वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा ने भी राजा ययाति के संयोग से द्रुह्यु, अनु तथा पूरु नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न किया । राजन् ! तदुपरान्त कभी एक दिन शुचिस्मिता देवयानी राजा ययाति के साथ घूमती हुई हरी भरी उसी मनोहर अशोकवाटिका में आ पहुँची और उस समय वहाँ परम परिचितों की तरह विश्वस्त भाव से खेलते हुए देवताओं के समान सुन्दर आकृतिवाले बालकों को देखकर उसने विस्मयविमुग्ध होकर राजा से पूछा । ॥८-१२॥

देवयानी ने कहा—'राजन् ! देवताओं के समान परम सुन्दर आकृतिवाले ये मंगल स्वरूप बालक किसके हैं ? ये तेज तथा रूप में तो आप के ही समान दिखाई दे रहे हैं !' [राजा से इस प्रकार पूछकर देवयानी उन बालकों से पूछने लगीं ।] 'वत्सवृन्द ! तुम लोगों का नाम क्या है ? और तुम्हारा गोत्र कौन सा है ? क्या तुम्हारे पिता ब्राह्मण हैं ? मैं इन सब बातों को सच सच सुनना चाहती हूँ इसीलिए तुम लोगों से पूछ रही हूँ ।' देवयानी की ऐसी बातें सुनकर बालकों ने तर्जनी अंगुली के इशारे से राजा ययाति को अपना पिता तथा शर्मिष्ठा को अपनी माता बतलाया । ॥१३-१५॥

शौनक ने कहा—राजन् ! बालक वृन्द देवयानी से ऐसा कहकर राजा की ओर स्नेह से एक ही साथ दौड़ पड़े, किन्तु उस समय देवयानी के सन्निकट होने के कारण राजा ने उनका कुछ भी सम्मान नहीं किया । राजा का इस प्रकार रूखा व्यवहार देखकर वे बालक अपनी माता के पास रोते हुए पहुँच गये । बालकों का राजा के प्रति इतना प्रगाढ़ स्नेह देख और सारी बातें विना कहे ही जानकर देवयानी ने शर्मिष्ठा से कहा । ॥१६-१८॥

देवयानी ने कहा—शर्मिष्ठे ! दासी रूप में मेरे अधीन रहकर भी तूने मेरा ऐसा अनुपकार

किस लिए किया ? क्या पुनः इस प्रकार असुरवत् अहितकर कार्य करते हुए तुमने मुझसे भय नहीं किया ? ॥१९॥

शर्मिष्ठा ने कहा—हे चारुहासिनि ! मैंने जैसा कि तुमसे कहा था 'ऋषि के संयोग से मैंने पुत्र प्राप्ति की है', वह बात नितान्त सत्य है । न्याय तथा धर्म के मार्ग पर चलते हुए मैं तुमसे नहीं डरती । सुन्दरि ! जिस समय तुमने पतिरूप में राजा का वरण किया उसी समय मैं भी उन्हें वरण कर चुकी, क्योंकि एक सखी का पति अन्य सखी का भी धर्मतः पति हो जाता है । तुम ब्राह्मणी हो, मुझसे ज्येष्ठ हो, श्रेष्ठ हो, मेरी पूज्या हो, मान्या हो, सब कुछ हो; किन्तु क्या तुम यह नहीं जानतीं कि राजर्षि तुमसे भी बढ़कर हमारे आराध्य हैं । ॥२०-२२॥

शौनक ने कहा—राजन् ! शर्मिष्ठा की ऐसी तर्कपूर्ण बातें सुनकर देवयानी ने राजा ययाति से कहा—'राजन् ! अब मैं यहाँ पर नहीं रह सकती, आपने मेरा बड़ा ही अनुपकार किया है ।' ऐसा कह वह सहसा उठकरशीघ्र ही अपने पिता शुक्र के पास जाने को उद्यत होगई । आँसू बहाते हुए सुन्दरी देवयानी को इस प्रकार रूठकर पितृ-गृह जाते देखकर राजा ययाति बहुत दुःखी हुए और उसके पीछे-पीछे सान्त्वना देते हुए विक्षुब्ध-से वे भी चल पड़े । किन्तु क्रोध से रक्त नेत्रोंवाली देवयानी राजा के अतिशय विनीत प्रार्थना करने पर भी नहीं लौटीं, प्रत्युत अतिशय शोक से रोते हुए वह राजा को बहुत कुछ कुवाच्य कहती हुई अति शीघ्र भार्गव शुक्र के समीप जा पहुँची । वहाँ पहुँचकर पिता शुक्र को देखते ही वह अभिवादन करके आगे खड़ी हो गई तदुपरान्त पीछे राजा ययाति ने भी भार्गव को प्रणाम आदि किया । ॥२३-२७॥

देवयानी ने कहा—तात ! बड़ा ही अनर्थकारी एवं निन्द्य कार्य हो गया । क्योंकि जो अधम थे उनकी पूजा की गई, जो पूज्य थे उनका अपमान किया गया और अधर्म ने धर्म को जीत लिया । वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने, जो मेरी दासी के रूप में राजा के यहाँ गई थी, मेरे साथ बड़ा छल किया । उस दुराचारिणी एवं दुर्भगा के गर्भ से राजा ने तीन पुत्र उत्पन्न किये और मुझसे (केवल) दो पुत्र उत्पन्न किये, यह अनर्थपूर्ण व्यवहार मैं आप से निवेदन कर रही हूँ । भृगुकुलश्रेष्ठ ! काव्य ! यह राजा संसार में परम धर्मज्ञ की उपाधि से विख्यात है; पर ऐसा होकर भी इसने अपनी मर्यादा को इस प्रकार भंग किया है—इसे मैं आप से निवेदन कर रही हूँ । ॥२८-३०॥

शुक्र ने कहा—राजाधिराज ! धर्म की मर्यादा को जानते हुए भी तुमने जो इस परम अधर्ममय किन्तु प्रिय कार्य को किया हैं, इसके बदले में तुम्हें शीघ्र ही दुर्जेय वृद्धावस्था द्वारा महान् दुःख भोगना पड़ेगा । ॥३१॥

ययाति ने कहा—ब्रह्मन् ! ऋतुकाल में समागम की प्रार्थना करनेवाली स्त्री के साथ जो पुरुष समागम नहीं करता, ब्रह्मवादी लोग उसे इस लोक में भ्रूणहा (गर्भ की हत्या करनेवाला) कहते हैं । ऋतु के अवसान में रति की इच्छुक, अभिगमन करने योग्य स्त्री द्वारा एकान्त में समागम की प्रार्थना करने पर जो पुरुष धर्म का ध्यान कर समागम नहीं करता, पण्डित लोग उसे ब्राह्मण-घाती के समान पापी बतलाते

हैं। भृगुवंशश्रेष्ठ ! इन्हीं धर्म की मर्यादाओं का विचार कर और वैसा न करने पर महान् अधर्म की आशंका से ही मैंने शर्मिष्ठा के साथ समागम किया। ॥३२-३४॥

शुक्र ने कहा—राजन् ! बात सच है, किन्तु इस कार्य में तो तुम हमारे अधीन थे। मेरी उपेक्षा तुम किसी प्रकार भी नहीं कर सकते थे। नहुषपुत्र ! इस प्रकार मिथ्याचरण धर्म में तुम्हें चोरी करने का पाप लग रहा है। ॥३५॥

शौनक ने कहा—राजन् ! तदनन्तर शुक्र द्वारा क्रोध से इस प्रकार शापित किये जाने पर नहुषपुत्र राजा ययाति अपनी पूर्व युवावस्था को छोड़कर अति शीघ्र वृद्धावस्था में परिणत हो गये। ॥३६॥

ययाति ने कहा—भृगुकुलश्रेष्ठ ! अभी तक मैं देवयानी में अपनी युवावस्था का पूर्ण विषय भोग कर तृप्त नहीं हो सका। अतः हे ब्रह्मन् ! मेरे ऊपर कृपा कीजिये ! जिससे अभी तुरन्त यह वृद्धावस्था मुझे स्पर्श न कर सके। ॥३७॥

शुक्र ने कहा—राजन् ! मैं मिथ्या सम्भाषण नहीं करता, तुम अब वृद्धावस्था को प्राप्त कर चुके हो। किन्तु यदि तुम यह इच्छा प्रकट कर रहे हो तो इस वृद्धावस्था को दूसरे से बदल सकते हो। ॥३८॥

ययाति ने कहा—ब्रह्मन् ! जो मुझे अपनी परम प्रिय यौवनावस्था दे, वही मेरे राज्य का उत्तराधिकारी, पुण्यवान् तथा यशस्वी हो—ऐसी मेरी इच्छा है। शुक्र ! इसके लिए आप अपनी अनुमति प्रदान करें। ॥३९॥

शुक्र ने कहा—नहुषात्मज ! तुम अपनी इच्छा से इस वृद्धावस्था को मेरा स्मरण कर सत्यतापूर्वक दूसरे से बदल सकते हो। इस कार्य में तुम्हें कोई भी दोष नहीं लगेगा। जो तुम्हारा पुत्र तुम्हें अपनी प्रिय यौवनावस्था का दान देगा, तुम्हारी इच्छानुसार वही तुम्हारे राज्य का उत्तराधिकारी, दीर्घायु सम्पन्न, यशस्वी तथा अनेक सन्तानोंवाला होगा। ॥४०-४१॥

श्री मात्स्य महापुराण के चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—राजन् ! इस प्रकार शुक्र के शाप से वृद्धावस्था को प्राप्त कर राजा ययाति अपने नगर को लौट आये और अपने ज्येष्ठ तथा सर्वश्रेष्ठ पुत्र यदु को बुलाकर बोले—॥१॥

ययाति ने कहा—प्रियपुत्र ! भृगुपुत्र शुक्र के शाप के कारण मुझे बलवती वृद्धावस्था ने आक्रान्त कर लिया है, जिससे मेरे चमड़ों में सिकुड़न तथा बालों में श्वेतता आ गई है। किन्तु मैं अभी तक अपनी यौवनावस्था से पूर्णरूपेण तृप्त नहीं हो सका हूँ। यदो ! तुम इस मेरी वृद्धावस्था को अंगीकार कर प्रायश्चित रूप इस पाप दशा का अनुभव करो तब तक मैं तुम्हारी युवावस्था को ग्रहण कर अपने ईप्सित विषय भोगों को, जिससे अभी तक तृप्त नहीं हो सका हूँ, भोग लूँ। एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो

जाने के उपरान्त मैं तुम्हारी यौवनावस्था को तुम्हें लौटा दूँगा और पुनः अपनी वृद्धावस्था को ग्रहण कर इस पापदशा का अनुभव करूँगा। ||२-४||

यदु ने कहा—तात! श्वेत दाढ़ीवाली, अति दीन, शिथिल, असमर्थ अंगोंवाली, देखने में भ्रष्ट, एकदम दुर्बल तथा कार्य करने में अशक्त कर देने वाली इस वृद्धावस्था को मैं अपने भृत्यों समेत नहीं ग्रहण कर सकता। राजन्! मुझसे बढ़कर प्रिय आप के और भी पुत्र हैं। धर्मज्ञ! अतः वृद्धावस्था को स्वीकार करने के लिए आप अपने अन्य पुत्रों से प्रार्थना करें। ||५-७||

ययाति ने कहा—यदो! तुम हमारे हृदय से उत्पन्न होकर भी अपनी युवावस्था को हमें नहीं दे रहे हो तो इस पापकर्म के कारण तुम्हारी सन्तान मामा के अनुचित सम्बन्ध द्वारा उत्पन्न होकर दुष्प्रजा कहलायेगी। ऐसा कह कर राजा ययाति ने दूसरे पुत्र तुर्वसु से कहा 'तुर्वसो! मेरी इस वृद्धावस्था को लेकर तुम तब तक पाप समेत इस का अनुभव करो जब तक मैं तुम्हारी युवावस्था के द्वारा अपने अतृप्त मन को अनेक विषय भोगों का उपभोग कर शान्त न कर लूँ। एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर मैं तुम्हारी यौवनावस्था वापस कर दूँगा और पुनः अपनी वृद्धावस्था से अपने प्रायश्चित का अनुभव करूँगा। ||८-१०||

तुर्वसु ने कहा—तात! मैं इस विषय भोगेच्छा को विनष्ट करनेवाली वृद्धावस्था को नहीं चाहता, जो बल तथा रूप सौन्दर्य को नष्ट करनेवाली तथा बुद्धि और सम्मान को भी बिगाड़ने वाली है। ||११||

ययाति ने कहा—तुर्वसो! तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी यौवनावस्था को मुझे नहीं दे रहे हो तो इस पाप कर्म के कारण तुम्हारे पुत्र-पौत्रादि सभी विनष्ट हो जायँगे। चोरी करनेवाले, वर्णसंकर प्रतिलोमगामी, (उत्तम जाति की स्त्री में नीच जाति के पुरुष द्वारा उत्पन्न,) मांसाहारी प्रजाओं के तुम राजा होगे। यही नहीं गुरु स्त्री के साथ भोग करनेवाले, उत्तम जाति के होकर भी अधम जाति की स्त्री में निरत रहनेवाले और पशुधर्मी म्लेच्छों की जातियों पर तुम्हारा शासन होगा। ये सब बातें निश्चय ही घटित होंगी। ||१२-१४||

शौनक ने कहा—राजन्! इस प्रकार अपने पुत्र तुर्वसु को शाप देकर राजा ययाति ने शर्मिष्ठा के ज्येष्ठ पुत्र द्रुह्यु से कहा। ||१५||

ययाति ने कहा—बेटा द्रुह्यु! इस रंग और रूप-सौन्दर्य को विनष्ट करनेवाली मेरी वृद्धावस्था को अंगीकार करके एक सहस्र वर्षों के लिए अपनी यौवनावस्था तुम मुझे दे दो। एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरान्त मैं तुम्हारी यौवनावस्था तुम्हें वापस दे दूँगा और तब पुनः अपनी वृद्धावस्था लेकर पाप समेत इसका अनुभव करूँगा। ||१६-१७||

द्रुह्यु ने कहा—तात! वृद्ध पुरुष न तो राज्य सुख का अनुभव कर सकता है और न रथ अश्व आदि वाहनों का ही। स्त्रियों के साथ वह भोग भी नहीं कर सकता, क्योंकि उसके शुष्क हृदय में भला राग क्यों कर उत्पन्न हो सकता है? अतः आपकी यह वृद्धावस्था मुझे नहीं चाहिये। ||१८||

ययाति ने कहा—नीच द्रुह्यु ! तुम मेरे औरस पुत्र होकर भी अपनी युवावस्था को मुझे नहीं दे रहे हो अतः इस घोर पाप कर्म के कारण तुम्हारी काम पिपासा कहीं भी शान्त नहीं हो सकती। जहाँ पर नित्य नाव पर चढ़कर ही जाया जा सकता है, ऐसे जल प्रदेश में तुम अपने सभी वंशधरों के साथ निवास करोगे। वहाँ पर राज्य तथा भोग शब्द का भी तुम्हारे लिए सर्वथा अभाव रहेगा। ॥१९-२०॥

ययाति ने [अनु से] **कहा**—बेटा अनु ! तुम मेरी वृद्धावस्था लेकर पाप समेत उसका अनुभव करो, मैं तुम्हारे यौवन को लेकर एक सहस्र वर्षों तक अनेक विषय भोगों का उपभोग कर अपने अतृप्त मन को शान्त करना चाहता हूँ। ॥२१॥

अनु ने कहा—तात ! वृद्ध पुरुष बालकों की भाँति भोजन करते समय अन्न आदि पदार्थों को ग्रहण करता है अर्थात् बालकों की तरह उसे नियमित, परिमित एवं पवित्रता का कोई ख्याल न रखकर भोजन करना पड़ता है। वह जवानों की तरह जो ही मन में आया वही नहीं खा सकता। और अपवित्र मनुष्यों की भाँति वह कभी ठीक समय पर यज्ञ आदि कार्य भी नहीं कर सकता, अतः ऐसी दुःखदायिनी वृद्धावस्था को मैं नहीं लेना चाहता। ॥१२॥

ययाति ने कहा—दुष्ट अनु ! तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी अपनी युवावस्था को मेरे लिए नहीं दे रहे हो अतः इस पापकर्म के फलस्वरूप तुम स्वयं जिन वृद्धावस्था के दोषों को बतला रहे हो, उन्हें प्राप्त करोगे और तुम्हारी सन्ततियाँ यौवनावस्था में ही विनष्ट हो जायँगी। अन्त में तुम्हारा विनाश अग्नि में गिरकर जल जाने से होगा। ॥२३-२४॥

ययाति ने [पूरु से] **कहा**—प्रिय पुत्र पूरो ! तुम मेरी इस वृद्धावस्था को ग्रहण कर पाप समेत इसका अनुभव करो, तुम मुझे सब पुत्रों से बढ़कर प्रिय हो और तुम्हीं इन सबों में सब से श्रेष्ठ भी होगे। तात ! भृगुपुत्र शुक्र के शाप से बलवती वृद्धावस्था द्वारा अभिभूत होने के कारण मेरे शरीर में चारों ओर सिकुड़न एवं श्वेतता तो दिखाई दे रही है, पर मेरा मन अभी तक विषय-भोगों से तृप्त नहीं हो पाया है, अतः तुम्हारे यौवन को लेकर मैं विषयभोग करूँगा और एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरान्त उसे तुम्हें वापस कर दूँगा। और तब पुनः तुमसे अपनी वृद्धावस्था लेकर अपने पापकर्मों के प्रायश्चित्त का अनुभव करूँगा। ॥२५-२७॥

शौनक ने कहा—राजन् ! अपने पिता ययाति के इस प्रकार कहने पर सब से कनिष्ठ पुत्र पूरु ने पिता से तुरन्त कहा—'महाराज ! आप जो कुछ भी मुझे आज्ञा कर रहे हैं, सब मैं पूर्ण करूँगा। राजन् ! आपकी वृद्धावस्था लेकर मैं आपके पापकर्म के फल का अनुभव करने को सन्नद्ध हूँ। मुझसे यौवन लेकर आप यथेप्सित विषय-भोगों का अनुभव कर अपने को पूर्ण तृप्त कर लें। आपके बुढ़ापे में छिपकर आपके ही समान वृद्ध तथा रूपवान होकर मैं अपना यौवन आपको दे दूँगा और स्वयं स्वेच्छापूर्वक विचरण करूँगा। ॥२८-३०॥

ययाति ने कहा—परम प्रिय पूरो ! मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न हूँ, मैं यह वरदान तुम्हें दे रहा हूँ कि तुम्हारी प्रजाएँ सब प्रकार की कामनाओं से सफल तथा समृद्ध हों । ॥३१॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—राजेन्द्र ! उस अवसर पर इस प्रकार कनिष्ठ पुत्र पूरु द्वारा अपना प्रस्ताव स्वीकार कर लेने पर राजर्षि ययाति ने महातपस्वी शुक्र का स्मरण कर अपने महात्मा पुत्र पूरु से वृद्धावस्था को परिवर्तित कर लिया । पूरु की यौवनावस्था द्वारा मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ उस नहुषपुत्र राजा ययाति ने अपने अभिलषित विषय-सुखों का सेवन किया । धर्म की मर्यादा के अनुकूल रहकर उसने अपने यथेष्ट व्यवहारों द्वारा उत्साह और सुखपूर्वक समय-समय पर सभी लोगों को सुख पहुँचाया । यज्ञों से देवताओं को परम तृप्त किया। इसी प्रकार श्राद्धादि कार्यों से पितरों को, इष्ट वस्तुओं का अनुग्रहपूर्वक दान देने से निर्धनों को, वाञ्छित वस्तुओं के पर्याप्त दान से ब्राह्मणों को, यथेष्ट अन्न-पानादि से अतिथियों को, प्रेमपूर्वक पालन से वैश्यों को, दया और उपकार से शूद्रों को, तिरस्कार तथा समुचित दण्ड आदि से चोरों को और धर्म से प्रजावर्ग को पूर्ण सन्तुष्ट रखा । संक्षेप में सब को प्रसन्न रखनेवाली नीति से उसने दूसरे इन्द्र की भाँति सब का पालन किया । सिंह के समान पराक्रमी उस राजा ने युवावस्था प्राप्त कर, विषय-भोगों के उपभोग में भी धर्म की मर्यादा पर ध्यान रखा और उत्तम विषय-सुखों का उपभोग भी किया । इस प्रकार यथेप्सित विषय भोगों को प्राप्तकर एक सहस्र वर्ष में व्यतीत हो जानेवाले उस प्रतिज्ञात समय का उसने खिन्न होकर स्मरण किया । काल की महिमा जाननेवाले पराक्रमी राजा ने समय की गणना तथा उसके बीतने की अवधि का जब स्मरण किया तो गिनने पर उसे पता लगा कि अवधि समाप्त होने पर है, तब उसने अपने कनिष्ठ पुत्र पूरु से कहा—'मेरे शत्रुसूदन पुत्र ! पुरुष के हृदय में उत्पन्न होनेवाली विषय वासना की तृप्ति, कभी उसके उपभोग से नहीं हो सकती, प्रत्युत जिस प्रकार अग्नि में घृत आदि हवनीय पदार्थ डालने से अग्नि की ज्वाला उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है, उसी प्रकार विषय भोगों के निरन्तर उपभोग से विषय की अभिलाषा भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है । पृथ्वी भर में जितना कुछ अन्न, जव, स्वर्ण, पशु तथा स्त्रियाँ आदि भोग्य पदार्थ हैं, वे सब एक पुरुष के भोग के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं, अर्थात् उन सब का उपभोग यदि एक ही मनुष्य करे तब भी वह तृप्त नहीं हो सकता । यही सोचकर मनुष्य को मन में शान्ति धारण करनी चाहिये । तुम्हारे यौवन को प्राप्त कर मैं यथेष्ट विषय सुखों का अपने साहस भर सुखपूर्वक सेवन कर चुका । पूरो ! तुम्हारे इस उपकार से मैं बहुत ही संतुष्ट हूँ, तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो । लो, यह अपनी युवावस्था ग्रहण करो । यह मेरा राज्य भी तुम स्वीकार करो, तुम मेरे मनोरथ को पूर्ण करनेवाले मेरे परम प्रिय पुत्र हो । ॥१-१३॥

शौनक ने कहा—राजन् ! तत्पश्चात् नहुषपुत्र राजा ययाति ने पूरु से अपनी वृद्धावस्था वापस

लेकर स्वयं ग्रहण की और पूरु ने अपनी युवावस्था पुनः प्राप्त की। उस समय राजा ययाति की सब से कनिष्ठ पुत्र पूरु के राज्याभिषेक करने की इच्छा को जानकर ब्राह्मण क्षत्रिय आदि प्रजावर्गवालों ने कहा—'प्रभो! कौन-सा ऐसा कारण है, जो आप महाराज शुक्र के नाती तथा देवयानी के ज्येष्ठ पुत्र यदु को छोड़कर राज्य-भार पूरु को सौंप रहे हैं। उनके बाद भी आपके सब से बड़े पुत्र तुर्वसु हैं, तब शर्मिष्ठा से उत्पन्न द्रुह्यु, उसके पश्चात् अनु तब पूरु हैं। बड़े पुत्रों को छोड़कर सब से छोटे पुत्र को राज्यभार किस प्रकार दिया जा सकता है? इस न्यायसंगत बात की ओर आपका ध्यान हम लोग आकृष्ट कर रहे हैं। इस अवसर पर आप अपने राजधर्म की मर्यादा का पालन कीजिये। ॥१४-१८॥

ययाति ने कहा—ब्राह्मण आदि प्रमुख जातियोंवाले हमारे प्रजावर्ग! आप लोग हमारी बातें सुनिये, जिस कारण से हम अपने ज्येष्ठ पुत्रों को किसी प्रकार भी राज्यभार नहीं सौंप सकते। सर्वप्रथम मेरे पाँचों पुत्रों में सब से ज्येष्ठ यदु ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया। विद्वानों का कहना है कि जो पुत्र अपने पिता की आज्ञा के प्रतिकूल आचरण करता है वह पुत्र कहलाने का अधिकारी नहीं है। माता और पिता की आज्ञा को माननेवाला, उपकारी एवं सुमार्ग पर चलनेवाला जो पुत्र अपने पूज्य माता-पिता का समादर करता है, वही सच्चा पुत्र है। किन्तु हमारे इन पुत्रों में ज्येष्ठ यदु ने हमारी अवज्ञा की, तुर्वसु ने की, शर्मिष्ठा के पुत्र द्रुह्यु तथा अनु ने भी की, किन्तु सबसे छोटे पुत्र पूरु ने हमारी आज्ञा का पूर्णतया पालन करके हमारा विशेष सम्मान किया है, अतः हमारा वही सच्चा उत्तराधिकारी पुत्र है। उसने हमारी पापयुक्त वृद्धावस्था स्वीकार की है। इस प्रकार मेरे उस योग्य एवं प्रिय पुत्र पूरु ने मेरी समस्त कामनाओं को पूर्ण किया है। उशना तथा काव्य के नाम से सुविख्यात नीतिज्ञ भृगुपुत्र शुक्र ने मुझे स्वयं यह वरदान दिया था कि 'तुम्हारे पुत्रों में से जो कोई तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगा, वही राजा होगा।' आप लोग इस बात को भलीभाँति जान लें और पूरु का राज्याभिषेक करें। ॥१९-२५॥

ब्राह्मण आदि प्रजावर्ग वालों ने कहा—राजन्! आपका कथन नितान्त सत्य है, जो गुणवान् पुत्र सर्वदा अपने पूजनीय माता-पिता के हित के लिए सचेष्ट रहता है, वही सब कल्याणों को भोगता है। छोटा होने पर भी वही पिता की समस्त सम्पत्ति का उत्तराधिकारी है। सचमुच पूरु के ही योग्य आपका यह राज्यभार है, जो आपके परम हितकारी एवं प्रिय पुत्र हैं। महाराज शुक्र के वरदान के कारण भी हम लोग इस विषय में कुछ हस्तक्षेप नहीं कर सकते। ॥२६-२७॥

शौनक ने कहा—राजन्! उस समय ब्राह्मण आदि प्रजावर्ग तथा सभी नागरिकों के यह स्वीकार कर लेने पर कि हम सब लोग आपके इस प्रस्ताव से सहमत एवं सन्तुष्ट हैं, महाराज ययाति ने अपने सबसे छोटे पुत्र पूरु का राज्याभिषेक किया। राज्य का समस्त भार सौंपकर, स्वयं वनवास के लिए दीक्षा ग्रहण की (वानप्रस्थ का व्रत धारण किया)। और अपनी राजधानी से तपस्वी ब्राह्मणों के साथ वे वनवास के लिए प्रस्थित हो गये। ययाति के अन्य पुत्रों में यदु से यादव, तुर्वसु से यवन, द्रुह्यु से भोज तथा अनु से म्लेच्छों की जातियाँ उत्पन्न हुईं। शतानीक! और उसी कनिष्ठ पुत्र पूरु से विख्यात पौरव राज्य वंश का

प्रादुर्भाव हुआ, जिस कुल में आप उत्पन्न हुए हैं, यह पौरव राज्य वंश इधर एक सहस्र वर्षों से कुरुकुल में सम्मिलित हो गया है (अर्थात् कुरुवंश के नाम से प्रसिद्ध होगया है।)। ॥२८-३१॥

श्री मात्स्य महापुराण के चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—राजन्! इस प्रकार महाराज ययाति, अपने प्रियपुत्र पूरु का राज्याभिषेक कर अति हर्षित हो वानप्रस्थाश्रम में मुनियों जैसा जीवन व्यतीत करने लगे। वहाँ वन में वे तपस्वी ब्राह्मणों के साथ निवास करते थे, फल मूल आदि का नियमित आहार करते थे। जितेन्द्रिय रहकर नियमित जीवन व्यतीत करते थे। वन में भी उन्हें स्वर्ग की भाँति सुख था। इस प्रकार आनन्दमय जीवन व्यतीत कर इहलोक की लीला समाप्त कर वे स्वर्गलोक को गये और वहाँ भी अति प्रमुदित एवं सुखी हो निवास करने लगे। किन्तु वहाँ गये बहुत दिन नहीं बीता था कि इन्द्र द्वारा वे पुनः स्वर्ग से पदच्युत कर दिये गये। मैंने ऐसा सुना है कि इन्द्र द्वारा पदच्युत किये जाने पर राजा ययाति विवश कर स्वर्ग से गिरा दिये गये थे; किन्तु पृथ्वीतल पर उस समय न आकर वे मध्यमार्ग आकाश में ही अवस्थित रह गये। ऐसी किम्वदन्ति है कि उसी अन्तरिक्ष स्थल से राजा वसुमान्, अष्टक तथा शिवि आदि सत्पुरुषों के साथ पराक्रमी राजा ययाति पुनः स्वर्ग को चले गये। ॥१—६॥

शतानीक ने पूछा—भगवन्! किस कारण से इन्द्र ने महाराज ययाति को स्वर्ग से पदच्युत करके पृथ्वीतल पर गिरा दिया था? और किस पुण्यकर्म के माहात्म्य से वे पुनः स्वर्ग को पहुँच गये? महर्षे! देवता तथा ऋषियों के समूह में आप द्वारा कहे गये महाराज ययाति के इस सम्पूर्ण जीवन-चरित को हम ठीक-ठीक सुनना चाहते हैं। ऋषिवर्य! महाराज ययाति इन्द्र के समान पराक्रमी, अग्नि एवं सूर्य के समान तेजस्वी तथा सुप्रसिद्ध कुरुवंश के विस्तार करनेवाले थे; ऐसे सत्यकीर्ति, महान् यशस्वी तथा महात्मा के इह लोक तथा स्वर्ग लोक के सभी वृत्तान्तों को हमें पूर्णतया सुनने की इच्छा है। ॥७-९॥

शौनक ने कहा—राजन्! अति प्रसन्नता के साथ मैं महाराज ययाति की इह तथा स्वर्ग लोक की उन उत्तम कथाओं को आपको सुना रहा हूँ, जो पुण्य को प्रदान करनेवाली तथा समस्त पापों को दूर करनेवाली हैं। उस अवसर पर नहुषपुत्र महाराज ययाति अपने प्रजावर्ग के सन्तुष्ट हो जाने पर कनिष्ठ पुत्र पूरु को पृथ्वी का राज्य भार तथा यदु आदि ज्येष्ठ चारों पुत्रों को पृथ्वी के सुदूरस्थ जघन्य प्रदेशों का अधिकार एवं राज्य भार सौंप, सहर्ष वान प्रस्थाश्रम को स्वीकार कर वन को चले गये और वहाँ पर फल मूल आदि का नियमित आहार कर चिरकाल तक उन्होंने निवास किया। वहाँ वानप्रस्थाश्रम के विधानानुकूल राजा ययाति जितेन्द्रिय तथा जितक्रोध होकर पितरों तथा देवताओं का नित्य तर्पण करते थे। विधिपूर्वक हवन करते थे, जंगली फल मूल आदि भक्ष्य पदार्थों द्वारा आगत अतिथियों का समादर करते

थे। नित्य शिलोञ्छ[1] वृत्ति द्वारा खेतों में छूटे हुए अन्नों से भोजन करते थे। इसी प्रकार एक सहस्र वर्षों तक काल यापन करने के पश्चात् वाणी तथा मन को स्ववश कर तीन वर्षों को केवल जल पीकर उन्होंने बिता दिया। तत्पश्चात् निरालस रह कर एक वर्ष को केवल वायु पान कर व्यतीत किया। तदनन्तर एक वर्ष तक पंचाग्नि के मध्य में तपस्या करते रहे, उसके उपरान्त छः महीने तक वायु पान कर एक पैर पर अवलम्बित हो उग्र तपस्या में लीन रहे। तदुपरान्त पुण्यकीर्ति महाराज ययाति ने इस प्रकार पृथ्वी एवं आकाश को अपने पुण्य यश से व्याप्त कर स्वर्ग लोक को प्रस्थान किया। ॥१०-१७॥

श्री मात्स्य महापुराण के चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—राजन्! स्वर्गलोक में पहुँचकर महाराज ययाति देवताओं, बारह साध्यों, उनचास मरुतों तथा आठों वसुओं द्वारा पूजित तथा सम्मानित हो एक देवगृह में निवास करने लगे। ऐसी जनश्रुति है कि पृथ्वीपति महान् पुण्यकर्त्ता तथा जितेन्द्रिय महाराज ययाति अपने अक्षय पुण्य के प्रभाव से देवलोक से ब्रह्मलोक को जाया करते थे। इस प्रकार दीर्घ काल तक स्वर्ग लोक में उन्होंने निवास किया था। एक बार कभी नृपवर्य ययाति देवराज इन्द्र के पास गये थे, वहाँ किसी कथा-प्रसंग के अन्त में इन्द्र ने राजा से पूछा। ॥१-३॥

इन्द्र बोले—राजन्! जिस समय आपका कनिष्ठ पुत्र पूरु आपके रूप में वृद्धावस्था को धारण कर संसार में अपनी जीवन यात्रा पर चल रहा था, उस समय आपने समस्त राज्य भार को सौंप कर उससे क्या कहा? हमें यथार्थतः बतलाइये। ॥४॥

ययाति ने कहा—देवराज! प्रजावर्ग की अनुमति प्राप्त कर लेने पर पूरु को राज्याधिकारी बना कर हमने उससे यह कहा था। 'गंगा तथा यमुना—इन नदियों के मध्य देश में सम्पूर्ण स्वत्व तुम्हारा है, पृथ्वी के समस्त मध्यभाग के तुम राजा हो, और सीमान्त के प्रान्तों के अधिपति तुम्हारे ज्येष्ठ बन्धुगण है। क्रोधी स्वभाव वाले मनुष्यों से अक्रोधी क्षमाशील मनुष्य श्रेष्ठ है, असहनशील मनुष्य से सहनशील श्रेष्ठ है; मनुष्येतर जातियों से मनुष्य श्रेष्ठ है और अविद्वान् पुरुषों से विद्वान् पुरुष श्रेष्ठ है। किसी अन्य पुरुष द्वारा निन्दा, शाप वा कुवाच्य कह देने पर उसकी निन्दा आदि नहीं करनी चाहिये; प्रत्युत अपने क्रोध को ही वश में करना चाहिये। जो वशी पुरुष इस प्रकार का आचरण करता है वह उस आक्रोष्टा को समूल जला देता है और स्वयं अपने सुकृत को बढ़ाता है। मनुष्य को व्यंग्यभाषी नहीं होना चाहिये। ऐसी बातें कभी न कहनी चाहियें, जो दूसरों के मर्मस्थल में चुभ जायँ, और न निर्दय एवं अनुपकार सूचक बातें ही कहनी चाहियें, कभी अति कष्ट सहने पर भी किसी हीन व्यक्ति से कोई वस्तु ग्रहण नहीं करनी

[1] किसानों द्वारा अन्न के काट लेने पर जो अन्न खेतों में गिरा रह जाता है, उसे बटोर कर भोजन करने की प्रथा।

चाहिये । जिस बात के कहने से दूसरा उद्विग्न हो जाय—ऐसी पापपूर्ण हिंसक बात कभी प्रयोग में नहीं लानी चाहिये । व्यंग्यभाषी तथा कटुवादी पुरुष को, जो अपने वचन रूपी बाणों से सर्वदा किसी न किसी के मर्म पर आघात किया करते हैं, संसार में सभी मनुष्यों से बढ़कर अलक्ष्मी (दरिद्रता एवं कष्ट) का पात्र समझना चाहिये, क्योंकि ऐसे मनुष्यों के मुख में सर्वदा विपत्तियाँ निवास करती हैं और सर्वदा एक न एक बन्धन उनके लिए विद्यमान रहता है । सर्वदा सत्पुरुषों का प्रशंसाभाजन होकर उत्तम एवं साधुप्रकृति वाले लोगों को अपना पृष्ठपोषक भी बनाना चाहिये । और सर्वदा सत्पुरुषों के अपवादों वा कटुवचनों को क्षमाकर उनके चरित का अनुकरण करना चाहिये । मुख से जो वचन रूपी बाण निकलते हैं, उनसे आहत हुआ मनुष्य कम से कम तीन दिनों तक तो शोकमग्न रहता ही है, ऐसे वाग्बाणों को जो दूसरों के मर्मस्थल में जाकर घाव करते हैं, पण्डितों को दूसरे के लिए नहीं छोड़ना चाहिये । तीनों लोक में मित्रता, दान, तथा मीठी वाणी के समान प्राणियों को वश में करने का कोई अन्य साधन नहीं है । इस कारण मनुष्य को सदा शान्तिपूर्ण मीठी बातें करनी चाहियें, कभी कठोर बातें नहीं बोलनी चाहियें । जो अपने पूज्य तथा सम्माननीय हों उनकी पूजा करनी चाहिये तथा किसी को भी अभिशाप आदि नहीं देना चाहिये । ॥५-१३॥

श्री मात्स्य महापुराण के चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

इन्द्र ने कहा—नहुषपुत्र ययाति ! लोक के सभी कार्यों को विधिवत् समाप्त कर गृहस्थाश्रम को छोड़कर आप वानप्रस्थ आश्रम में भी निवास कर चुके हैं, इसलिए हे राजन् ! मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ कि आप तपस्या में किसके तुल्य हैं ? ॥१॥

ययाति ने कहा—वासव ! मैं अपने तपोबल के समान तपोबल देवता, मनुष्य, गन्धर्व तथा महर्षियों में भी किसी का नहीं देख रहा हूँ । ॥२॥

इन्द्र ने कहा—राजन् ! इस प्रकार देवता, महर्षि आदि के तपोबल के प्रभाव को यथार्थतः न जानकर आप अपने समान एवं अपने से बड़े सभी लोगों को पापी समझ कर उनके तपोबल को न्यून बतला रहे हैं और सब का अपमान कर रहे हैं । अतः आपके समस्त अर्जित पुण्य तथा ये स्वर्गस्थ लोक इस पाप से नष्ट हो गये । हे राजन् ! इसके परिणाम स्वरूप आज से आप स्वर्ग से च्युत हो गये । ॥३॥

ययाति ने कहा—देवराज इन्द्र ! यदि देव, ऋषि, मनुष्य तथा गन्धर्व आदि के अपमान करने के कारण हमारे ये स्वर्गलोक सचमुच नष्ट हो गये तो भगवन् ! सुरलोक से च्युत होने पर मैं यहाँ से सज्जनों के मध्य में गिरने की इच्छा करता हूँ, अर्थात् यहाँ से च्युत होने पर मेरा निवास सत्पुरुषों के मध्य में हो । ॥४॥

इन्द्र ने कहा—राजन् ! अपनी इच्छानुसार स्वर्गच्युत हो करके तुम सज्जनों के मध्य में ही निवास करोगे और पुनः अपनी महती प्रतिष्ठा को प्राप्त करोगे । अतः हे ययाति ! अब से तुम पुनः कभी कल्याण के लिए अपने समान तपस्यावालों का भी अपमान न करना । ॥५॥

शौनक ने कहा—राजन् ! तत्पश्चात् देवराज इन्द्र द्वारा सेवित पुण्य स्वर्ग लोक से महाराज ययाति निपतित हो गये । वहाँ से उन्हें गिरते हुए देखकर राजर्षि श्रेष्ठ सद्धर्मों के विधाता अष्टक ने पूछा । ॥६॥

अष्टक ने कहा—इन्द्र के समान आकर्षक रूपवाले ! अपने असह्य तेज से अग्नि के समान जाज्वल्यमान ! विशाल आकारवाले ! मेघों के समान विस्तृत शरीरवाले युवक ! आप कौन हैं जो ऊपर से नीचे चले आ रहे हैं ? आप आकाश से पृथ्वी पर गिरते हुए इस प्रकार दिखाई पड़ रहे हैं मानो आकाश मण्डल में भ्रमण करनेवाले प्रकाशमय पिण्डों में सर्वश्रेष्ठ सूर्य हों । अग्नि तथा सूर्य के समान अमित कान्तिमान आप को, सूर्य मार्ग से गिरते हुए देखकर हम लोग यह सोच रहे थे कि क्या सूर्य ही तो ऊपर से नीचे नहीं चले आ रहे हैं ? इसी तर्क वितर्क में मग्न होकर हम सब विमोहित-से हो रहे हैं । इन्द्र, विष्णु तथा सूर्य के समान अमित प्रभावशाली तथा परम तेजस्वी आपको देवमार्ग से आज इस प्रकार नीचे गिरता हुआ देखकर हम सब सम्मानार्थ खड़े हो गये हैं । आपके इस आकस्मिक पतन के जानने की हम लोगों को बड़ी उत्कण्ठा हो रही है । आप जैसे परम तेजस्वी के सम्मुख खड़े होकर पूर्ण वृत्तान्त पूछने का साहस हम सबों में नहीं है ; और न आप ही हम लोगों से यह पूछ रहे हैं कि 'हम लोग कौन हैं ?' अतः हे सौम्यमूर्ते ! आप से मैं यह पूछने का साहस कर रहा हूँ कि आप किसके पुत्र हैं ? और किस कारण स्वर्ग से नीचे चले आ रहे हैं ? देवेन्द्र के समान परम सुन्दर एवं तेजस्वी आकृतिवाले ! आप भय छोड़ दें तथा विषाद मुक्त हो जायँ । सत्पुरुषों के समीप में विद्यमान आपके तपोबल को समर्थी तथा बल के मारनेवाले देवराज इन्द्र भी नहीं सहन कर सकते । देवेन्द्र के समान पराक्रमवाले ! सुख से च्युत होने वाले सत्पुरुषों के लिए सर्वदा सज्जनों का समागम ही सुखप्रद आश्रय होता है । स्थावर तथा जंगमों के अधिपति हम लोग यहाँ आप ही के समान सत्पुरुष रूप में एकत्र हैं, अतः आप अपने को यहाँ पर अपने ही समान सत्पुरुषों में प्रतिष्ठित समझिये । जिस प्रकार जलाने की क्रिया को सम्पन्न करने के लिए अग्नि ही सब कुछ है, बीजों को बोने आदि के लिए भूमि ही सब कुछ है तथा प्रकाश करने की क्रिया के सर्वस्व सूर्य हैं ; उसी प्रकार सत्पुरुषों के लिए उसके अभ्यागत ही सब कुछ हैं । ॥७-१३॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त । ॥३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

ययाति ने कहा—सौम्य ! मैं राजर्षि नहुष का पुत्र तथा पूरु का पिता ययाति हूँ। सिद्धों द्वारा सेवित स्वर्ग लोक में देवताओं तथा सभी जीवधारियों के अपमान करने के कारण मैं पुण्यक्षीण होकर अपने उस स्थान से च्युत हो गया हूँ, और अब वहाँ से नीचे आ रहा हूँ। मैं अवस्था में आप लोगों से यतः ज्येष्ठ था, अतः आप लोगों को प्रणाम नहीं किया, क्योंकि द्विजातियों में जो व्यक्ति विद्या, तप तथा अवस्था में बड़ा होता है वह पूज्य माना जाता है। ॥१-२॥

अष्टक ने कहा—राजन् ! आप जो यह कह रहे हैं कि मैं अवस्था में आप लोगों से बड़ा हूँ, अतः ज्येष्ठ हूँ; सो इसमें कुछ अधिक कह रहे हैं; वस्तुतः जो व्यक्ति विद्वान् तथा तपस्या में वृद्ध (बड़ा) होता है द्विजातियों में वह पूज्य माना जाता है। ॥३॥

ययाति ने कहा—अष्टक ! शास्त्र सम्मत कर्मों के विपरीत जो कर्म किये जाते हैं उन को पाप कहा जाता है, इस पाप कर्म के करनेवालों के लिए अधम पाप लोक बनाये गये हैं। सज्जन पुरुष कभी इन पापाचारी असज्जनों के अनुगामी नहीं होते क्योंकि वे अन्तःकरण से ही इनके प्रतिकूलवादी होते हैं। 'मेरे पास विपुल धन (ऐश्वर्य) था अपने उद्योग द्वारा उसी को प्राप्त कर रहा हूँ',—ऐसा विचार कर आत्म हित के लिए उद्यत होकर जो व्यवहार करता है वही धीर पुरुष जीवन के तत्त्व को जानता है। इस जीवलोक में बड़े विचित्र स्वभाववाले पुरुष होते हैं। विधि (प्रारब्ध) ही बलवान है, शक्ति और उद्योग निरर्थक हैं, क्योंकि वे दैव के अधीन हैं। अतः अपनी बुद्धि से दैव को ही प्रधान मानकर धीर पुरुष जो कुछ सुख अथवा दुःख आ पड़े उसके लिए हर्ष अथवा शोक न करे। संसार में जीव जो कुछ भी सुख अथवा दुःख का अनुभव प्राप्त करता है, वह दैव के अधीन होकर ही प्राप्त करता है। अपनी सामर्थ्य से नहीं। अतः भाग्य को ही प्रबल मानकर कभी न तो दुःख प्राप्त होनेपर दुःखी होना चाहिये और न सुख प्राप्त होने पर हर्षित होना चाहिये। इस प्रकार धीर पुरुष को दुःख प्राप्त होने पर न तो दुःखी होना चाहिये और न सुख में हर्षित ही होना चाहिये; प्रत्युत उसे दोनों दशाओं में समता का व्यवहार करना चाहिये। समय को बलवान मानकर उसे कभी दुःखी अथवा हर्षित न होना चाहिये। अष्टक ! यह सोचकर कि 'विधाता हमे जिस प्रकार रच रहा है, निश्चय ही मैं वैसा ही होऊँगा' मैं कभी भय का अवसर प्राप्त होने पर भी विवेकरहित नहीं होता और न मेरे मन में किसी प्रकार का सन्ताप ही होता है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिद्, सरीसृप, कीट, पतंग, जल में रहनेवाले मत्स्य आदि जीवजन्तु तथा पत्थर, तृण, काष्ठ आदि संसार के पदार्थ—ये सभी अपना समय (अवधि) व्यतीत होजाने पर पुनः अपनी प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। हे अष्टक ! मैं जानता हूँ कि सुख और दुःख दोनों ही अनित्य हैं, अतः मैं उसके लिए क्यों सन्ताप करूँ ? क्या करके तथा क्या करने से, शोक सन्तापादि नहीं होता है—यह बात जानना कठिन है, अतः मैं सर्वदा सावधान रहकर संताप को छोड़ देता हूँ। ॥४-११॥

शौनक ने कहा—राजन् ! इस प्रकार उपदेशपूर्ण वाक्य बोलते हुए सर्वगुणसम्पन्न अपने नाना ययाति से अष्टक ने पुनः उस स्वर्गलोक के विषय में पूछा, जहाँ पर वे कुछ काल तक निवास कर चुके थे । ॥१२॥

अष्टक ने कहा—महाराज ! जिन-जिन मुख्य स्वर्ग लोकों में आप ने जिस प्रकार और जितने दिनों तक निवास किया है—उन सब वृत्तान्तों को हमे विस्तारपूर्वक यथार्थतः सुनाइये, क्योंकि हे राजन् ! आप एक क्षेत्रज्ञ की भाँति धर्म का उपदेश कर रहे हैं । ॥१३॥

ययाति ने कहा—अष्टक ! इस मर्त्यलोक में मैं सार्वभौम अर्थात् चक्रवर्ती राजा था इसके उपरान्त मैं महत्लोक को गया और वहाँ पर सहस्र वर्षों तक निवास किया । फिर वहाँ से परमलोक को प्राप्त कर इन्द्र की परम मनोहर, सहस्र द्वारोंवाली, शतयोजन में विस्तीर्ण नगरी को प्राप्त किया । और वहाँ से भी सहस्र वर्ष तक निवास करके परम लोकों को प्राप्त किया । फिर वहाँ से भी दिव्य, अजर, प्रजापति के दुष्प्राप्य लोक को प्राप्त कर वहाँ भी एक सहस्र वर्ष तक निवास किया, तदुपरान्त वहाँ से भी उत्कृष्ट लोक को प्राप्त किया । और प्रत्येक देवताओं के स्थानों में जा-जाकर उनके लोकों को भी मैंने जीत लिया और उन सबों में भी यथेष्ठ निवास किया । उस समय देवताओं के समान परम प्रभाव तथा कान्तिमान होने के कारण समस्त देवगण हमारी पूजा करते थे । इस प्रकार नन्दन वन में इच्छानुकूल रूप धारण कर, अतिशय सुगन्धित परम सुन्दर पुष्पित कल्प वृक्षों की झुरमुट में मैंने दस लाख वर्षों तक अप्सराओं के साथ विहार करते हुए निवास किया । वहाँ देवताओं के उन सुख साधनों में अतिशय अनुरक्त हो जाने पर जब मुझे बहुत दिन व्यतीत हो गये तब एक दिन अतिशय उग्र आकारवाले देवताओं के एक दूत ने मेरे समीप आकर अति कर्कश उच्च प्लुत[1] स्वर में तीन बार 'ध्वंस' (यहाँ से गिर जाओ) शब्द का उच्चारण किया । राजसिंह ! हमें उस लोक की केवल इतनी ही बातें ज्ञात हैं, उसके पश्चात् पुण्यच्युत होकर मैं नन्दन वन से नीचे गिर पड़ा । नरेन्द्र ! वहाँ से गिरते हुए आकाश मार्ग में मेरे इस आकस्मिक पतन पर दया और शोक प्रकट करनेवाले देवताओं के शब्दों को भी मैंने सुना था, वे लोग कह रहे थे कि 'यह पुण्यात्मा तथा यशस्वी ययाति अकस्मात् ही पुण्यच्युत हो स्वर्ग से नीचे गिर रहा है !' स्वर्ग से नीचे की ओर गिरते हुए मैंने उनसे पूछा था कि मैं उन सज्जनों के मध्य में कैसे गिरूँगा, जिनके लिए इन्द्र से मैंने प्रार्थना की थी । मेरे इस प्रकार पूछे जाने पर उन लोगों ने आप लोगों को इस सुप्रसिद्ध यज्ञ भूमि को बतलाया, जिसमें सुगन्धित हवनीय द्रव्यों से उठे हुए धूम्र ऊपर व्याप्त हो रहे हैं । इसे भली भाँति देख कर मैं यहाँ चला आ रहा हूँ । ॥१४-२२॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त । ॥३८॥

---

[1] एक प्लुत वर्ण के उच्चारण में तीन ह्रस्व वर्णों के उच्चारण का आयास तथा समय लगता है ।

उनतालीसवाँ अध्याय

अष्टक ने पूछा—सतयुग में उत्पन्न होने वाले पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ राजन् ! नन्दन वन में इच्छानुकूल रूप धारण कर दस लाख वर्षों तक निवास करने के उपरान्त आप किस कारण से उसे छोड़ कर पृथ्वीतल पर चले आये। ॥१॥

ययाति ने कहा—अष्टक ! जिस प्रकार इस मर्त्य लोक में धन हीन हो जाने पर अपने सगे सम्बन्धी, मित्र तथा परिवार वर्ग के लोग भी शीघ्र छोड़ देते हैं; उसी प्रकार स्वर्ग लोक में क्षीणपुण्य मनुष्य को आकाशगामी इन्द्रादि देवगण भी शीघ्र छोड़ देते हैं। ॥२॥

अष्टक ने कहा—महाराज ! भला स्वर्ग लोक में मनुष्य किस प्रकार क्षीणपुण्य हो जाते हैं ? इस विषय को लेकर मेरे मन में घोर विस्मय उत्पन्न हो रहा है। हमें यह बतलाइये कि किस प्रकार के कर्मों के करनेवाले मनुष्य कौन से स्थान (लोक) को प्राप्त करते हैं ? हमारे मत से आप एक क्षेत्रज्ञ विदित हो रहे हैं, अतः यह बातें आप से पूछ रहा हूँ। ॥३॥

ययाति ने कहा—नरदेव ! वे क्षीणपुण्य मनुष्य स्वर्ग से च्युत होकर विलाप करते हुए इस पृथ्वी के नरक में आकर गिरते हैं। और इस पृथ्वी पर काग, गृध्र, सियार आदि जीव जन्तुओं के भोजन के रूप में ही वे अनेक प्रकार से वृद्धिप्राप्त करते हैं—अर्थात् उन मांसाहारी जीवों के आहार बनते हैं। नरेन्द्र ! इस कारण लोकनिन्दित, दोषपूर्ण तथा वर्जनीय कार्य को मनुष्य को नहीं करना चाहिये। हे राजन् ! यह सब तो मैं आप से बतला चुका, अब पुनः पूछिये कि मैं फिर से आपको क्या बतलाऊँ ? ॥४-५॥

अष्टक ने कहा—राजन् ! जब उस जीव के शरीर को काग, गृध्र, सियार, मोर आदि पक्षी तथा पतिंगे फाड़ डालते हैं तब शरीर की क्या दशा होती है ? और उसे पुनः दूसरा शरीर किस प्रकार मिलता है ? आप से इस भौम नरक का रहस्यपूर्ण वृत्तान्त मैं सुन रहा हूँ। ॥६॥

ययाति ने कहा—अष्टक ! वे जीव समूह माता के गर्भ से कर्मप्राप्त देह पाने पर पृथ्वी पर आकर व्यक्त रूप धारण कर कर्म फल भोगते हैं। इसी कारण इस पृथ्वी को भौम नरक कहा गया है। यहाँ आकर जीव ऐसा मूढ़ हो जाता है कि सारी आयु व्यर्थ ही बीत जाती है, वह आयु के वर्ष समूहों को बीतते हुए नहीं जान पाता। स्वर्ग में सुख भोगनेवाले जीव साठ हजार या अस्सी हजार वर्षों तक रहकर वहाँ से गिरते हैं। यहाँ भौम नरक में भयानक भौम राक्षस अपनी तीखी दाढ़ों से उन्हें काट-काट कर खा जाते हैं, तब वे यहाँ नरक की यातना का अनुभव करते हैं। ॥७-८॥

अष्टक ने पूछा—राजन् ! जब पाप के कारण स्वर्ग मार्ग से गिरे हुए उनके शरीर को तीक्ष्ण दाँतों वाले भयानक भौम राक्षसगण फाड़ डालते हैं, तब वे किस प्रकार विद्यमान रह जाते हैं ? कहाँ निवास करते हैं ? और फिर कैसे माता के गर्भ में अवस्थित होते हैं ? ॥९॥

ययाति ने कहा—अष्टक ! पुरुष द्वारा गर्भाधान की अवस्था में छोड़ा गया वीर्य, जो रक्त

द्वारा वीर्य की अवस्था में आता है, शीघ्र ही स्त्री के पुष्प रस रज से मिलकर उदर में जाकर गर्भरूप में परिणत हो जाता है। वनस्पति, औषधि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, चतुष्पद तथा द्विपद आदि सभी योनियों में जीवात्मा इसी प्रकार गर्भरूप में परिणत होता है। ॥१०-११॥

अष्टक ने कहा—नरश्रेष्ठ! मनुष्य योनि को प्राप्त जीवात्मा गर्भ में कोई दूसरा शरीर धारण करता है अथवा अपने मनोरथ के अनुकूल शरीर प्राप्त करता है। माता के गर्भ में जीव का शरीर किस प्रकार विकसित होता है? उसमें आँख कान आदि इन्द्रियाँ तथा चेतनता किस प्रकार प्राप्त होती है? आपको हम सभी एक क्षेत्रज्ञ मानते हैं, अतः इस विषय का तात्त्विक ज्ञान बतलाइये। मुझे इस विषय पर सन्देह है। ॥१२-१३॥

ययाति ने कहा—हे अष्टक! ऋतुकाल में स्त्रियों के पुष्प रस रज से युक्त पुरुष द्वारा छोड़े गये वीर्य को वायु गर्भयोनि में चढ़ा देती है। वहाँ प्राप्त होकर सर्वप्रथम वह गर्भ रूप में अर्थात् अति लघुरूप में रहता है, फिर गर्भाशय में भी वही वायु क्रमशः उसे बढ़ाती है। पहिले ही से सूक्ष्म वासनामय शरीर धारण करनेवाला जीव गर्भ में क्रमशः अङ्ग-प्रत्यङ्ग इन्द्रिय और चैतन्य से युक्त होकर बाहर निकलता है। तब उसका मनुष्य नाम रखा जाता है। उत्पन्न होने के अनन्तर दोनों कानों से वह शब्दों को सुनता-है, आँख से स्वरूप देखता है। इसी प्रकार नासिका से गन्धग्रहण, जीभ से रसास्वादन, चमड़े से स्पर्श तथा मन से भावों को जानता है। हे अष्टक! इस सभी जीवधारियों में श्रेष्ठ तथा प्रभावशाली पुरुष के शरीर में इन सभी इन्द्रियों को सदा उपाधि रूप से समझो। ॥१४-१६॥

अष्टक ने कहा—राजन्! जो मृत पुरुष जलाया जाता है, खन कर गाड़ा जाता है अथवा फेंक दिया जाता है, वह इस प्रकार विनष्ट होकर जब अभाव में परिणत हो जाता है तब आगे चल कर दूसरे शरीर में किसके द्वारा पुनः चेतना प्राप्त करता है? ॥१७॥

ययाति ने कहा—राजसिंह! वह मनुष्य सोये हुए व्यक्ति की तरह स्थूल शरीर को छोड़कर पुण्य तथा पाप को आगे कर उसी पुण्य तथा पाप के अनुसार मिलनेवाली अन्य योनि में जन्म धारण करता है। और इस प्रकार पुण्य करनेवाले जीव पुण्य उच्च योनि में तथा पाप कर्म करनेवाले अधम पाप योनि में जन्म धारण करते हैं। हे महानुभाव! इसी प्रकार पापकर्म के प्रभाव से जीवात्मा कीट, पतंग आदि निकृष्ट योनियों में उत्पन्न होता है। इस विषय में मुझे अब अधिक कहने की इच्छा नहीं है। संक्षेप में इसी प्रकार आगे भी समझ लो कि चतुष्पद, द्विपद, पक्षी आदि तिर्यक् योनियों में भी अपने-अपने कर्म के अनुसार जीवात्मा जन्म धारण करता है। यह सब वृत्तान्त मैं आप को सुना चुका। अब इसके उपरान्त और क्या पूछ रहे हो? ॥१७-२०॥

अष्टक ने कहा—महाराज! कौन-सा उत्तम कर्म करके, किस तपस्या अथवा विद्या के प्रभाव से मनुष्य उत्तम मनुष्य कहलाता है। और किस कर्म के प्रभाव से जीवात्मा क्रमशः उन्नत होकर मंगलमय लोकों को प्राप्त करता है? इन सब बातों को हमें विधिवत् सुनाइये। ॥२१॥

ययाति ने कहा—अष्टक ! तपस्या, दान, शान्ति, दमन (इन्द्रियों को उनके विषयों से निरुद्ध करना) लज्जा, आर्जव (सरलता) तथा सभी जीवों के ऊपर अनुकम्पा—इन सात गुणों को सज्जन लोग पुरुषों के लिए स्वर्ग के सात महाद्वार मानते हैं। साधु पुरुषों ने यह भी कहा है कि यदि पुरुष इन सबों को प्राप्तकर अभिमान करता है तो उसके ये सब तप आदि तमोगुण से तिरस्कृत होकर नष्ट हो जाते हैं। अपने को पण्डित मानकर अभिमान करनेवाला, जो अध्ययनशील मनुष्य अपनी विद्या से दूसरों के यश को नष्ट करता है, उसको अक्षयलोक नहीं मिलते तथा उसकी विद्या कभी भी ब्रह्म प्राप्ति का सुफल नहीं प्रदान कर सकती। अध्ययन, मौन (मुनिवत् आचरण), अग्निहोत्र और यज्ञ—ये चार कर्म यद्यपि मनुष्य को भय से छुड़ानेवाले माने गये हैं; परन्तु ये ही कर्म अभिमान के साथ किये जाने पर भय देनेवाले भी हो जाते हैं। अतः मनुष्य को सम्मान प्राप्त होने पर न तो अतिशय प्रसन्न होना चाहिये और न अपमान होने से दुःखी ही होना चाहिये। सज्जन लोग सर्वदा सज्जनों ही की पूजा इस लोक में करते हैं, असज्जन लोग कभी सद्बुद्धि नहीं प्राप्त कर सकते। ऐसा दान करना चाहिये, ऐसा यज्ञ करना चाहिये, ऐसा अध्ययन करना चाहिये—ये सब अभय प्रदान करनेवाले विचार हैं, अतः इन्हें नित्यशः अनिवार्य समझने चाहियें—ऐसा मैंने सुना है। विद्वान् साधुजन उस पुराणपुरुष परब्रह्म को अपना आश्रय मान कर समाधिमग्न हो अपने हृदय में उसी का ध्यान अथवा कीर्तन करते हैं। यह एक उत्तम अक्षय सुख का साधन है। ऐसा करनेवाले पुरुष इस लोक में शान्ति से जीवन बिताकर पर लोक में मोक्ष प्राप्त करते हैं। ॥२२–२८॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

चालीसवाँ अध्याय

अष्टक ने कहा—वेदों के जाननेवाले पण्डितजन धर्मों को स्वर्ग-प्राप्ति का कारण बतलाते हैं, अतः सन्मार्ग पर रहकर अपने अपने आचार धर्म में लीन रहकर ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थाश्रमी तथा संन्यासी किस धर्म के पालन करने से देवताओं की समानता को प्राप्त करते हैं ? यह हमें बतलाइये। ॥१॥

ययाति ने कहा—अष्टक ! ब्रह्मचारी को नित्य यज्ञादि कार्यों से निवृत्त होकर अध्ययन करना चाहिये। अपने से श्रेष्ठजनों के कार्य को करने के लिए सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। गुरु से पहले सोकर उठना चाहिये। गुरु के सो जाने के उपरान्त शयन करना चाहिये। मृदुभाषी होना चाहिये। इन्द्रियजित्, धैर्यशील तथा सर्वदा सावधान होना चाहिये। इस प्रकार स्वाध्याय में निरत रहकर वह एक योग्य ब्रह्मचारी बन सकता है। गृहस्थों को धर्म आचरण से मिले हुए धन द्वारा यज्ञ, दान तथा अतिथियों को भोजन कराना चाहिये। विना दिये हुए किसी दूसरे की वस्तु न लेनी चाहिये। गृहस्थों के लिए यही परम प्राचीन धर्ममार्ग की शिक्षा देनेवाली उपनिषत् (ब्रह्मविद्या) है। वन में निवासकरनेवाले वानप्रस्थी को अपने पराक्रम से जीविका उपार्जित करनी चाहिये। पापकर्मों से दूर रहना चाहिये। दूसरों को दान देना चाहिये। कभी किसी से ईर्ष्या

द्वेष नहीं रखना चाहिये। इस प्रकार वन में निवास करते हुए नियत आहार-व्यवहार करनेवाला वानप्रस्थी मुनियों के समान सिद्धि प्राप्त करता है। जो शिल्पविद्या द्वारा जीविका नहीं कमाता, सर्वदा गृहहीन रहता है, जितेन्द्रिय रहकर चारों ओर की माया-मोह से मुक्त रहता है, किसी के घर पर शयन नहीं करता, थोड़े—केवल उदर पूर्ति—के लिए याचना करता है, देश में चारों ओर विचरण किया करता है तथा एक वस्त्र धारण करता है, वही उत्तम भिक्षु (संन्यासी) है। जिस रात्रि में संसार के सामान्य जन कामवश होकर सुखपूर्वक भोग-विलास करते हैं, उसी रात्रि में जंगल में रहनेवाला विद्वान् पुरुष जितेन्द्रिय होने के लिए यत्न करे। अरण्य में निवास करते हुए जो पुरुष अपने शरीरस्थ धातुओं को छोड़ता है अर्थात् वन में ही अपने स्थूल शरीर का त्याग करता है, वह स्वयं अपने को तथा अपनी दस आगे की और दस पीछे की–कुल इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करता है। ॥२-७॥

अष्टक ने कहा—देव! मुनि कितने प्रकार के होते हैं? और मौनधर्म कितने प्रकार के हैं? इसे बतलाइये, हम जानना चाहते हैं। ॥८॥

ययाति ने कहा—राजन्! वन में निवास करते समय ग्राम जिसके पीछे (उपेक्षित) हो जाता है, अथवा ग्राम में निवास करते समय वन जिसके पीछे हो जाता है, वही उत्तम मुनि है। ॥९॥

अष्टक ने कहा—हे राजन्! वन में निवास करते समय ग्राम किस प्रकार पीछे हो जाता है? अथवा ग्राम में निवास करते समय वन किस प्रकार पीछे हो जाता है—इसे हम नहीं समझ सके। ॥१०॥

ययाति ने कहा—अष्टक! जो वन प्रदेश में निवास करनेवाला मुनि है, उसे ग्रामीण वस्तुओं एवं ग्राम्य साधनों का उपयोग नहीं करना चाहिये, इस प्रकार जंगल में रहकर ग्राम्य वस्तुओं की उपेक्षा करने पर ग्राम उसके पीछे हो जाता है। इसी प्रकार ग्रामों में निवास करते समय मुनियों को अग्नि की उपासना नहीं करनी चाहिये, गृहहीन रहना चाहिये, परिवार अथवा स्त्री-पुत्रादि से सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये, जितने से गुप्तांग ढँके जा सकें उतने ही चीवर की इच्छा करनी चाहिये, जितने भोजन से प्राणधारणा शक्ति बनी रहे उतना ही भोजन करना चाहिये—इस प्रकार के नियमों का पालन करने से ग्राम में रहते हुए भी वन उससे पीछे हो जाता है। और इस प्रकार जो कोई जितेन्द्रिय होकर संसार के सभी राग-द्वेषात्मक स्वार्थपूर्ण कर्मों का परित्याग कर सभी मनोरथों से विरत हो मुनियों के समान आचरण करेगा वह सभी लौकिक एवं पारलौकिक सिद्धियों को प्राप्त करेगा। स्वच्छ दाँतोंवाले, कटे हुए नाखूनोंवाले, सर्वदा स्नान करनेवाले, अपनी वेश भूषा से सुसज्जित, सदा कर्म बन्धनों से स्वतन्त्र रह कर कल्याण दायी स्वर्गिक कामों को करनेवाले मुनि की कौन पुरुष ऐसा है, जो पूजा न करेगा। अपनी साधना में लीन रह कर जो मुनि तपस्या करते करते अतिक्षीण तथा दुर्बल हो जाता है, शरीर के रक्त मांस तथा हड्डियों तक को सुखा देता है तथा मुनियों के उत्तम कर्तव्यों का आचरण करते हुए चिन्तामुक्त हो जाता है, वह अपने तपोबल द्वारा इस लोक को जीतकर परलोक को भी जीत लेता है। इस प्रकार मुक्त अवस्था में पहुँचा हुआ मुनि जब पशुओं की भाँति केवल मुख से आहार करता है हाथ पैर नहीं चलाता, अर्थात् उसके लिए पहिले ही से प्रयत्न नहीं करता और रस

के स्वाद को भूलकर केवल शरीर धारण के लिए भोजन करता है, वह प्राणिमात्र का आत्मस्वरूप है और मोक्षप्राप्ति का सच्चा अधिकारी है। ॥११-१७॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

एकतालीसवाँ अध्याय

अष्टक ने पूछा—राजन्! सूर्य और चन्द्रमा के समान दिन-रात अपने कर्त्तव्य पथ पर दौड़ने वाले इन दोनों प्रकार के—योगी और ज्ञानी—मुनियों में कौन-सा मुनि पहले देवताओं की समानता (मोक्ष) प्राप्त करता है? ॥१॥

ययाति ने कहा—अष्टक! विषय भोग करनेवाले मनुष्यों के बीच में रह कर भी ज्ञानी मनुष्य इन्द्रियों को विषयों में फँसने नहीं देता, वह वहाँ पर रहते हुए भी इन्द्रियों को स्ववश कर समाधि में लीन रहता है, अतः वही पहले सिद्धि प्राप्त करता है। क्योंकि ज्ञान बल से जगत् के मिथ्यात्व का उसे निश्चय रहता है और तदनुकूल उसके व्यवहार होते हैं। किन्तु योगी को योगाभ्यास के बल से द्वैत का विस्मरण करना पड़ता है अतः उसे ज्ञानी की अपेक्षा वाद में सिद्धि प्राप्त होती है। जो योगी इस प्रकार के अभ्यास के लिए आयु की कमी के कारण यथेष्ट समय न पाकर योगसिद्धि के बल से बीच मार्ग में ही दिव्य और लौकिक विषयों का भोग करने लगता है और अपनी तपस्या को क्षीण कर देता है, वह अन्ततः बहुत पश्चाताप करता है और मुक्ति के लिए उसे फिर दूसरा तप करना पड़ता है। हे राजन्! जो नृशंस कर्म कहे गये हैं, वे सब अकल्याणप्रद हैं। जो अनर्थ बुद्धिवाला व्यक्ति ऐसे कर्मों का अनुष्ठान करता है वह कदापि सशक्त नहीं हो सकता, उसकी समाधि, सरलता एवं मनोवृत्ति सब उन्हीं कर्मों के अनुकूल हो जाती हैं। ॥२-४॥

अष्टक ने कहा—राजन्! आज यहाँ पर आप को किसने भेजा है? आप देखने में अति मनोहर, युवा, सुन्दर, वनमाला से विभूषित तथा तेजस्वी दिखाई पड़ रहे हैं! आप कहाँ से आ रहे हैं? किस दिशा को जायँगे? क्या आप पृथ्वी पर रहने के लिए आ रहे हैं? ॥५॥

ययाति ने कहा—स्वर्ग से अपना पुण्यक्षीण होजाने के कारण इस भौम नरक में प्रवेश करने के लिये मैं आकाश से पृथ्वी पर गिर रहा हूँ। आप लोगों को यह सन्देश सुना लेने के उपरान्त अब मैं गिरूँगा। ये जो ब्रह्मपरायण सर्वगुणातीत लोकपाल हैं वे मुझे शीघ्रता करने के लिए वाध्य कर रहे हैं। हे राजन्! स्वर्ग से भूमितल पर गिरते समय इन्द्र द्वारा हमें यह वरदान प्राप्त हो चुका है कि हमारा यह पतन सत्पुरुषों के समीप में होगा तथा वे सभी सत्पुरुष गुणवान् एवं मित्रों के समान समादर करनेवाले होंगे। उसी के अनुसार मैं यहाँ ठहर सका हूँ। ॥६-७॥

अष्टक ने पूछा—हे राजन्! आकाश मार्ग से भूमितल पर गिरते हुए आप से मैं यह पूछ

रहा हूँ कि यहाँ अन्तरिक्ष में अथवा स्वर्गलोक में हमारे तप से अर्जित कितने लोक हैं ? मैं आपको उस विषय का पण्डित मानता हूँ अतः पूछ रहा हूँ । ।।८।।

ययाति ने कहा—राजसिंह ! इस पृथ्वी मण्डल पर जितने पशु-पक्षियों तथा जंगलों को मिला कर गौ तथा अश्वादि की रचनाएँ विधाता ने की हैं, संख्या में उतने ही तुम्हारे लोक स्वर्ग में हैं—ऐसा जानिये । ।।९।।

अष्टक ने कहा—हे राजेन्द्र ! यदि हमारे उतने ही लोक अन्तरिक्ष में तथा स्वर्गलोक में हैं, जितने कि आप बतला रहे हैं तो मैं अपने उन सभी स्वर्गस्थ लोकों को आपको समर्पित कर रहा हूँ, आप शीघ्र ही उन पर अपना अधिकार प्राप्त करें और आकाशमार्ग से नीचे न गिरें । आप शत्रुओं के विनाश करने वाले हैं । ।।१०।।

ययाति ने कहा—नृपश्रेष्ठ ! दान लेने के लिए हमारे समान अब्राह्मण (क्षत्रिय) कभी योग्य नहीं माना जाता, प्रत्युत दान लेने का अधिकार ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को ही है । हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार इस समय तुम मुझे दान दे रहे हो ऐसे ही मैंने भी पहले ब्राह्मणों को बहुतेरा दान दिया है । मेरे समान अब्राह्मण क्षत्रिय जिसकी वीरप्रसू ब्राह्मणी पत्नी है, दान माँगने की हीनता को नहीं स्वीकार कर सकता—क्योंकि मेरा यह धर्म नहीं हैं । जो कार्य पहले कभी नहीं किया वह करके क्या मैं सत्पुरुष समझा जा सकूँगा ? ।।११-१२।।

प्रतर्दन[1] ने पूछा—मनोहर रूपवाले ! मेरा नाम प्रतर्दन है । मैं आपसे यह पूछ रहा हूँ कि यदि मेरे लोक स्वर्ग में अथवा अन्तरिक्ष में कहीं भी हों तो उन्हें मुझे बताइये, क्योंकि मैं आपको उस विषय का पण्डित मानता हूँ । ।।१३।।

ययाति ने कहा—हे नरेन्द्र ! स्वर्ग में आपके अनेक लोक हैं, जो सब शोक दूर करनेवाले, घृत तथा मधु से पूर्ण और परम भासमान हैं । उनमें से यदि एक-एक में सात-सात दिनों तक निवास किया जाय तब भी उनका अन्त नहीं होगा, वे सभी लोक तुम्हारी वहाँ प्रतीक्षा कर रहे हैं । ।।१४।।

प्रतर्दन ने कहा—राजन् ! इस प्रकार स्वर्ग से पुण्यच्युत होकर भौमनरक में गिरते हुए आपको देखकर मैं उन अपने सब लोकों को आपको समर्पित कर रहा हूँ, अब से वे सब लोक आपके लिए हों । यदि सचमुच मेरे आकाश में तथा स्वर्ग में वे लोक विद्यमान हैं, जैसा कि आप कह रहे हैं तो निश्चय ही अपने वितर्क तथा मोहादि को छोड़कर आप उन लोकों पर आधिपत्य प्राप्त करें । ।।१५।।

ययाति ने कहा—राजन् ! मैं आपके समान एक राजा तथा तेजस्वी होकर आपसे अपने योग क्षेम की कामना नहीं कर सकता । क्योंकि दैव के अधीन होकर यदि विपत्ति में विद्वान् पुरुष (ब्राह्मण) कोई अनुचित कार्य कर बैठे तो वह क्षम्य माना जा सकता है ; पर राजा को दैवाधीन विपत्ति में भी

---

[1] उस सत्पुरुषों की सभा में स्थित दूसरा धर्मात्मा राजा ।

कभी निन्दित कार्य नहीं करना चाहिये। सर्वदा अपनी मर्यादा की चिन्ता रखते हुए राजा को चाहिये कि वह धर्म मार्ग पर डटे रहकर यश देनेवाले धमार्थ कार्यों में लगा रहे। मेरे समान धर्मबुद्धि में निरत रहनेवाला राजा ऐसा कृपणतापूर्ण कार्य नहीं कर सकता, जिसके लिए आप कह रहे हैं। मैं ऐसा कार्य नहीं करूँगा जिसे आज तक किसी दूसरे राजा ने नहीं किया है, ऐसा अयोग्य कार्य करके क्या मैं साधु कहा सकूँगा ? इस प्रकार बातें करते हुये राजा ययाति से नृपतिवर वसुमान* ने कहा। ॥१५-१८॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

वसुमान ने कहा—नरेन्द्र ययाति ! मेरा नाम वसुमान है और मैं उषदश्व का पुत्र हूँ। आपसे पूछ रहा हूँ कि स्वर्ग अथवा आकाश में यदि कोई मेरा लोक हो तो उसे मुझे बताइये, क्योंकि मैं आप को उस विषय का पण्डित एवं प्रभावशाली महात्मा मानता हूँ। ॥१॥

ययाति ने कहा—वसुमान् ! अन्तरिक्ष, पृथ्वी और समस्त दिशाओं में जितने स्थानों को सूर्य अपने तेज से प्रकाशित करते हैं, उतने ही अक्षय लोक स्वर्ग में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ॥२॥

वसुमान ने कहा—राजन् ! हमारे जितने भी लोक स्वर्ग में हैं, उन सब को मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ, अब से वे सब आपके लिए हैं। यदि आप दान को राजाओं के लिए विगर्हित बताकर लेने से इनकार कर रहे हैं तो एक छोटे-से तिनके को हमें देकर उसी के मूल्य से उन्हें क्रय कर लीजिये और इस प्रकार आकाश मार्ग से भौम नरक में मत गिरिये ॥३॥

ययाति ने कहा—वसुमान् ! मैं इस प्रकार के मिथ्या अर्थात् वास्तविक मूल्य न देकर केवल दिखावटी क्रय-विक्रय का व्यवहार नहीं जानता। अपने लड़कपन में भी मैंने इस प्रकार कोई वस्तु नहीं क्रय की है। ऐसे निन्द्य कार्य को मैं नहीं करना चाहता, जिसे कभी किसी ने नहीं किया है। हे राजन् ! ऐसा अनुचित कार्य करके क्या मैं साधु बना रह सकूँगा ? ॥४॥

वसुमान ने कहा—राजन् ! यदि इस प्रकार तृण से क्रय करने को आप अनुचित बता रहे हैं तो मेरे उन लोकों को आप यूँ ही ले जायँ, मैं उनके बदले में कोई अन्य वस्तु लेने के लिए कभी इच्छा नहीं करूँगा। नरेन्द्र ! वे मेरे सभी लोक अब से आप के लिए हों। ॥५॥

***शिबि ने कहा**—तात ! मैं उशीनर का पुत्र शिबि हूँ। आप से यह पूछ रहा हूँ कि वहाँ स्वर्ग में अथवा अन्तरिक्ष में मेरे भी कुछ लोक हैं ? यदि हों तो उन्हें मुझे बताइये, मैं आप को उस विषय का महापण्डित मानता हूँ। ॥६॥

---

*उस सत्पुरुषों के समाज में अवस्थित एक राजा।

ययाति ने कहा—नरेन्द्र ! तुम ने कभी वचन और हृदय द्वारा किसी याचक एवं साधु पुरुष का अपमान नहीं किया है। इसी कारण से वहाँ स्वर्ग में अति विस्तृत तथा महान्, विद्युत् के समान चमकनेवाले तथा स्वर्गीय संगीत की मनोरम ध्वनि से गुंजरित तुम्हारे अनन्त लोक विद्यमान हैं। ॥७॥

शिबि ने कहा—महाराज ! मैं उन सब लोकों को आप को समर्पित कर रहा हूँ। आप उन मेरे लोकों को यूँ ही अंगीकार करें। यदि उनका क्रय अनुचित समझ रहे हैं तो आप को सौंपकर मैं पुनः कभी उनके प्राप्त करने की चिन्ता भी नहीं करूँगा, यदि सचमुच आप मेरे उन लोकों को वापस चले जायँ। ॥८॥

ययाति ने कहा—शिबि ! यद्यपि तुम इन्द्र के समान प्रभावशाली तथा तेजस्वी हो और तदनुरूप तुम्हारे सभी लोक भी अनन्त हैं तथापि मैं दूसरे के दिये गये लोकों में सुख नहीं भोगना चाहता। इसी से मैं तुम्हारे दिये इस दान को स्वीकार नहीं कर सकता। ॥९॥

अष्टक ने कहा—राजन् ! इस प्रकार एक-एक करके आप हम सभी लोगों के स्वर्गस्थित लोकों को यदि स्वीकार नहीं करेंगे तो हम सब लोग अपने समस्त पुण्यलोकों को देकर स्वयं भौम नरक को चले जायँगे। ॥१०॥

ययाति ने कहा—हे राजन् ! इस विषय में आप लोगों को जो भी उचित जान पड़े कहिये, क्योंकि सन्त लोग सत्य आदि सद्गुणों के द्रष्टा होते हैं, किन्तु मैं तो सचमुच आप लोगों के उन लोकों को नहीं ग्रहण करना चाहता हूँ। आज तक अपने पूर्व जीवन में मैंने जिस काम को नहीं किया है उसे भला अब कैसे कर सकता हूँ। नरेन्द्रसिंह ! यहाँ पर आप लोगों से मैंने निर्लोभियों की-सी जो नीरस बातें की हैं, उनका परिणाम वैसा ही निराशापूर्ण नहीं होगा। इतने बड़े दान के बदले में आप लोगों को जैसा सुफल मिलना चाहिये वैसा ही फल प्राप्त होगा। ॥११-१२॥

अष्टक ने कहा—राजन् ! ये स्वर्णरचित पाँच सुन्दर रथ किसके दिखाई पड़ रहे हैं, जो आकाश मण्डल में बड़ी ऊँचाई पर अवस्थित हैं और अग्नि के समान चमक रहे हैं। ॥१३॥

ययाति ने कहा—अष्टक ! इन्हीं पाँचों सुन्दर रथोंपर जो ऊपर दिखाई दे रहे हैं, आप लोग चढ़कर मेरे साथ ब्रह्मलोक को चलेंगे। ॥१४॥

अष्टक ने कहा—राजन् ! आप रथ पर बैठकर आकाशमार्ग से स्वर्ग को प्राप्त करें। हम लोगों का भी जब समय आवेगा तो आपके पीछे-पीछे वहाँ पहुँच जायँगे। ॥१५॥

ययाति ने कहा—अष्टक ! हम सभी लोगों को इसी समय एक साथ चलना चाहिये, क्योंकि सब लोगों ने साथ ही निष्पाप होकर स्वर्ग को प्राप्त किया है। वह (देखिये) स्वर्गपुरी को जानेवाला धूलि रहित आकाश मार्ग दिखाई पड़ रहा है। ॥१६॥

शौनक ने कहा—राजन् ! महाराज ययाति के इतना कहने के बाद वे सभी राजागण उन दिव्य रथों पर सवार होकर स्वर्ग को चले गये। वहाँ धर्म के अमित प्रभाव से समस्त स्वर्ग एवं आकाश

मण्डल में उनके पुण्य की धाक व्याप्त होगई । ॥१७॥

[मार्ग में जाते हुए] **अष्टक ने पूछा**—महाराज ! मेरा विचार था कि महात्मा इन्द्र मेरे मित्र हैं, इसलिए सर्वप्रथम मैं ही स्वर्गपुरी को पहुँचूँगा किन्तु यहाँ देखता हूँ कि उशीनर का पुत्र शिबि सब लोगों से आगे होकर स्वर्ग को पहुँच रहा है, इसका क्या कारण है ? ॥१८॥

ययाति ने कहा—अष्टक ! उशीनर के पुत्र राजा शिबि ने इस ब्रह्मलोक को पाने के लिए याचकों को अपना सर्वस्व दे डालने में भी संकोच नहीं किया है । अतः हम सभी लोगों में वह श्रेष्ठ है । और भी हे राजन् ! इस अनुपम यशस्वी राजा शिबि में दान, पवित्रता, सत्य, अहिंसा, लज्जा, सहनशीलता समदर्शिता तथा सभी जीवों के प्रति अनुकम्पा आदि सभी सद्गुण सर्वदा पाये जाते हैं । इस प्रकार के उत्तमोत्तम गुणों को यह लज्जाशील एवं मर्यादावादी राजा शिबि धारण करता है । यही कारण है कि वह हम सभी लोगों से अग्रसर होकर रथ द्वारा ब्रह्मलोक को पहुँच जायगा । ॥१९-२०॥

शौनक ने कहा—राजन् ! तत्पश्चात् इन्द्र के समान तेजस्वी तथा अमित पराक्रमी अपने नाना राजा ययाति से अष्टक ने पुनः कुतूहलवश पूछा—'राजन् ! आप सचमुच बताइये कि आप कौन हैं ? कहाँ से आ रहे हैं ? और किस प्रकार यहाँ चले आये ? आप ने जैसा आश्चर्यजनक कार्य किया है उसका करनेवाला संसार में आपको छोड़कर अन्य कोई ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय नहीं है, इसीलिए मेरे मन में बारम्बार कुतूहल हो रहा है ।' ॥२१॥

ययाति ने कहा—अष्टक ! जैसा कि तुम्हें मैं पहले ही बता चुका हूँ, मैं सचमुच महाराज नहुष का पुत्र तथा वर्तमान राजा पूरु का पिता सुप्रसिद्ध ययाति हूँ । मैं पद में आप का नाना लगता हूँ । इस मर्त्यलोक का मैं चक्रवर्ती सम्राट् था । अपने परिवार के समान आत्मीय एवं परम हितैषी आप लोगों को मैं अपनी इस रहस्यपूर्ण बात को बतला रहा हूँ । मैंने इस निखिल पृथ्वी मण्डल को अपने पराक्रम से जीत लिया था, और धन-धान्यादि समेत ब्राह्मणों को दान रूप में दे दिया था । सुन्दर स्वरूपवाले अनेक श्यामकर्ण अश्वों को यज्ञ में देकर मैंने देवताओं को प्रसन्न किया था । क्योंकि ऐसा करने से देवतागण सुप्रसन्न होते हैं । सब प्रकार के अन्नादिकों से सुशोभित इस सम्पूर्ण पृथ्वी को मैंने दक्षिणारूप में ब्राह्मणों को समर्पित कर दी थी और उसी के साथ सैकड़ों श्रेष्ठ गाय, घोड़े तथा हाथी भी दिये थे, यही नहीं अरबों का स्वर्ण तथा सम्पत्ति भी दान रूप में दी थी । मेरे ही सत्यबल के अमिट प्रभाव से यह आकाश मण्डल रुका हुआ है, तथा यह पृथ्वी टिकी हुई है । और तो क्या मनुष्यों में अग्नि भी मेरे ही सत्य के प्रभाव से जलती है । मैंने कभी झूठ नहीं बोला है । सत्पुरुष लोग सत्य का ही समादर करते हैं । हे अष्टक ! मैं यहाँ पर यह बातें बिल्कुल सत्यता तथा सरलतापूर्वक तुम, प्रतर्दन, वसुमान तथा शिबि—सबसे कह रहा हूँ कि सभी देव, मुनि तथा मनुष्य सत्य के ही बल से पूज्य माने जाते हैं । यह हमारे अपने मनोगत विचार हैं । जो कोई व्यक्ति ईर्ष्यादि दोषों से मुक्त हो मेरे इस स्वर्ग विजय के वृत्तान्त को, जैसा कि मैंने आप लोगों से अभी कहा है, द्विजातियों के सामने कहेगा, वह भी हमारे ही लोकों को प्राप्त करेगा । ॥२२—२७॥

शौनक ने कहा—राजन् ! इस प्रकार परम उदारचेता महात्मा ययाति अपने श्रेष्ठ मित्र तथा नातियों द्वारा तारे जाने पर अपने श्रेष्ठ कर्मों से सारी पृथ्वी को तपोमयी बनाकर इस पृथ्वी मण्डल से स्वर्ग को चले गये। हे शतानीक। नहुषपुत्र महाराज ययाति के सम्पूर्ण जीवनचरित को मैं इस प्रकार यथार्थतः आप को विस्तारपूर्वक सुना चुका, जिसका वंश पीछे चलकर पौरव वंश के नाम से विख्यात हुआ। उसी वंश में आप के समान महान् सम्राट् उत्पन्न हुए हैं। ॥२८-२९॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययातिचरितं नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण ! महाराज ययाति के इस सम्पूर्ण जीवन वृत्तान्त को शौनक द्वारा सुनकर महाराज शतानीक अति प्रेम से विह्वल होकर पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति खिल उठे। और तदुपरान्त विधिपूर्वक उन्होंने अनेक रत्न, गाय, सुवर्ण तथा विविध प्रकार के सुन्दर वस्त्रों द्वारा शौनक जी की पूजा की। राजा द्वारा प्राप्त इन सभी सामग्रियों तथा धन को शौनक ने समागत ब्राह्मणों को दानरूप में दे दिया और स्वयं वहीं पर अन्तर्हित हो गये। ॥१-३॥

ऋषियों ने कहा—सूतजी ! अब हम लोग महाराज ययाति के वंश का वर्णन सुनना चाहते हैं। जब उनके यदु आदि चार पुत्र राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए तब आगे चलकर क्या हुआ ? इसे विस्तारपूर्वक कहिये। ॥४॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! सर्वप्रथम मैं ययाति के सब से बड़े तथा अमित तेजस्वी पुत्र यदु के वंश का वर्णन क्रमशः विस्तारपूर्वक कर रहा हूँ, आप लोग ध्यान देकर सुनें। यदु के देवता के पुत्रों के समान तेजस्वी, महारथी, एवं धनुर्विद्या में पारंगत पाँच पुत्र हुए, उनके नाम सुनिये। उनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्र का नाम सहस्रजि तथा अन्य चार पुत्रों के नाम क्रोष्टु, नील, अन्तिक और लघु थे। सहस्रजि का पुत्र राजा शतजि हुआ। शतजि के भी तीन परम यशस्वी पुत्र हुए, जिनके नाम हैहय, हय तथा वेणुहय थे। इनमें सबसे बड़े हैहय के पुत्र का नाम धर्मनेत्र हुआ। धर्मनेत्र के कुन्ति और कुन्ति के संहत नामक पुत्र हुआ। संहत का पुत्र राजा महिष्मान् हुआ। राजा महिष्मान् का पुत्र प्रतापशाली राजा रुद्रश्रेण्य हुआ, जो पूर्वकाल में वाराणसी नगरी का राजा था, उसकी कथा पहले ही कही जा चुकी है। रुद्रश्रेण्य का पुत्र राजा दुर्दम हुआ। दुर्दम का पुत्र विद्वान् तथा अतिशय पराक्रमी कनक हुआ। इस कनक के चार लोक-विख्यात पुत्र हुए, जिनके नाम कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा तथा कृतौजा थे। प्रथम पुत्र कृतवीर्य से अर्जुन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सहस्र हाथोंवाला तथा सातों द्वीपों का अधीश्वर था। उस राजा कार्तवीर्य (कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन) ने इस सिद्धि की प्राप्ति के लिए दस सहस्र वर्षों तक घोर तपस्या करते हुए अत्रि के पुत्र भगवान् दत्तात्रेय की आराधना की थी। उसकी घोर तपस्या से प्रसन्न होकर दत्तात्रेय ने उसे चार

वरदान दिये थे। उन चारों वरदानों में से प्रथम वरदान उस नृपवर्य अर्जुन ने सहस्र बाहुओं को प्राप्त करने के लिए माँगा था। और दूसरे वरदान में साधु पुरुषों को सतानेवाले अधर्मी पुरुषों को दण्ड देने का अधिकार एवं प्रभुत्व माँगा था। इसी प्रकार तृतीय वरदान में युद्ध द्वारा समग्र पृथ्वी की विजय तथा चतुर्थ द्वारा संग्राम भूमि में अपने से बलवान् किसी उत्तम व्यक्ति के हाथों से अपनी मृत्यु की प्राप्ति माँगी थी। ॥५-१७॥

इन वरदानों के प्रभाव से उस महापराक्रमी राजा कार्तवीर्य ने सातों द्वीपों, समस्त पर्वतों तथा सातों समुद्रों से परिवेष्ठित समग्र पृथ्वी को क्षत्रियोचित युद्ध व्यापार द्वारा जीत लिया था। ऐसा सुना जाता है कि उस परम विद्वान एवं विवेकशील राजा के शरीर में इच्छा करते ही एक सहस्र बाहु उत्पन्न हो जाती थीं और उतने ही रथ, ध्वजा आदि साधन भी उसके उपयोग के लिए सदा प्रस्तुत रहते थे। और भी, ऐसा सुना जाता है कि उस विद्वान् कार्त्तवीर्य ने अपने जीवन काल में सभी द्वीपों में जा-जाकर दस सहस्र यज्ञों का निर्विघ्न अनुष्ठान सम्पन्न किया था। उन सभी यज्ञों में उस राजाधिराज ने पण्डितों को विपुल दक्षिणाएँ दी थीं। उन सभी यज्ञों में सुवर्ण के खम्भे गाड़े गये थे और स्वर्णरचित वेदिकाओं पर यज्ञ कार्य सम्पन्न हुआ था। उनमें भाग लेने के लिए देववृन्द एक साथ ही अपने-अपने विमानों पर चढ़कर आये हुए थे और गन्धर्व तथा अप्सराएँ भी सम्मिलित होकर सर्वदा उनकी शोभा वृद्धि करती थीं। उस राजर्षि कार्तवीर्यार्जुन की ऐसी महिमा देखकर गन्धर्व नारद ने यज्ञ में उसकी प्रशंसा के ये गीत गाते थे कि 'मुझे निश्चय हो रहा है कि अब कोई भी क्षत्रिय यज्ञ, दान, तप, पराक्रम अथवा ज्ञान द्वारा राजर्षि कार्त्तवीर्य के समान गति नहीं प्राप्त कर सकेगा।' खड्ग, चक्र, तथा धनुष धारण कर रथ पर आरूढ़ होकर अपने योगाभ्यास के प्रभाव से वह राजा कार्तवीर्य सर्वदा सातों द्वीपों में घूमा करता था और प्रत्येक दुष्टों तथा चोरों के ऊपर दृष्टि रखता था। इस प्रकार पचासी सहस्र वर्षों तक सभी प्रकार के बहुमूल्य रत्नादिकों का उपभोग करते हुए वह चक्रवर्ती सम्राट् बना रहा। अपने शासनकाल में योगबल से वह स्वयं पशुओं की पालना करता था, खेतों की रखवाली करता था तथा समय-समय पर वृष्टि कराके बादलों का भी कार्य करता था। धनुष की डोर खींचते-खींचते कठोर चमड़ियों वाले अपने सहस्र हाथों से युक्त वह इस प्रकार तेजस्वी, लोकप्रिय और सुशोभित प्रतीत होता था जिस प्रकार सहस्र किरणों से युक्त शरत्काल का सूर्य। अपनी महिष्मती नामक नगरी में मनुष्यों के मध्य में सर्वाधिक परमतेजस्वी इस राजा कार्तवीर्य ने कर्कोटक नामक नागराज के पुत्र को जीतकर बाँध रखा था। वह परम तेजस्वी राजा जलक्रीड़ा के समय विना विशेष परिश्रम किये ही समुद्र के वर्षाकालीन स्रोतोवेग को फिरा देता था। जलक्रीड़ा के अवसर पर ललितक्रीड़ाओं में निरत इस राजा के साथ इसके कंठ से गिरी हुई मालाओं और पुष्पों से सुशोभित हो तथा अपनी लहर रूप भृकुटि के बहाने से भय प्रकट करती हुई पुण्यसलिला नर्मदा सर्वदा विहार करती थी। वह पराक्रमी राजा कार्तवीर्य अकेला होते हुए भी अपनी विशाल सहस्र बाहुओं से समुद्र को विलोडित कर देता था एवं वर्षाकाल में अति गम्भीर वेगवाली नर्मदा की धारा को भी अति द्रुत वेगवाली बना देता था। विलोडन करते समय उसकी एक सहस्र बाहुओं द्वारा समुद्र जब अत्यन्त क्षुभित हो जाता था तब पाताल लोक में रहनेवाले राक्षसगण एकदम अकर्मण्य हो जाते थे। समुद्र

में उठनेवाली ऊँची-ऊँची लहरों को अपने सहस्र बाहुओं से तोड़कर वह छोटी-छोटी मछलियों, बड़े-बड़े मत्स्य तथा विशाल शरीर वाले जल-जन्तुओं को पीसकर चूर्ण बना देता था। बाहुओं से आलोड़ित किये जाने पर निकलने वाली वायु के वेग द्वारा एकत्र फेनों के समूहों से तथा भयानक भँवरों से उस समय समुद्र एकदम विक्षुब्ध हो उठता था। उस भीषण अवसर पर राक्षसगण यह समझकर कि 'पुनः मन्दराचल द्वारा समुद्रमन्थन हो रहा है और अमृत पुनः उत्पन्न होगा,' अतिशय क्षुब्ध तथा चकित हो उठते थे। उस समय पाताल के बड़े-बड़े नागराजों के फण इस प्रकार निश्चल रह जाते थे मानो सायंकाल की शान्त वेला में, जब वायु का बहना थोड़ी देर के लिए बन्द हो जाता है, केले के पत्ते नीरव खड़े हों। एक बार लंकापुरी में जाकर उसने अपने पाँच सम्मोहन बाणों द्वारा अहंकारी रावण को सेना सहित मोहित कर लिया था। उसे बलपूर्वक धनुष की डोर में बाँधकर एवं उसके समस्त वैभव को खर्व कर माहिष्मती नगरी में लाकर बाँधा था। रावण को वहाँ बँधा देख पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसकी बड़ी प्रार्थना की और किसी तरह प्रसन्न किया था। पुलस्त्य के बहुत प्रकार से भविष्य में किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाने की सान्त्वना देने पर उसने राक्षसराज रावण को छोड़ा था। उसकी सहस्र बाहुओं द्वारा धनुष की डोर खींचने पर जब घोर स्वर होता था तो मालूम होता था कि प्रलयकाल के सहस्र बादलों की घटाओं में से वज्रपात हो रहा है। पर हाय! विधि का पराक्रम धन्य है कि ऐसे परम पराक्रमी अर्जुन की सहस्र बाहुओं को भृगुकुलोत्पन्न परशुराम जी ने हेमताल के वन की भाँति काट डाला। उसका कारण यह था कि एक बार अतिशय क्रुद्ध होकर महर्षि आपव ने अर्जुन को शाप दे दिया था। उन्होंने कहा था कि 'हे हैहय! तुमने हमारे विख्यात वन को यतः जला दिया है अतः तुम्हारे इस दुष्कर कार्य द्वारा उत्पन्न पुण्य यश एवं गर्व को कोई दूसरा हरण करेगा। भृगुवंश में उत्पन्न, तपस्वी तथा बलवान एक ब्राह्मण तुम्हारी सहस्रों बाहुओं को अपने पराक्रम से काटकर तुम्हारा संहार कर देगा।' ॥५–४३॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! महर्षि आपव के इस शाप से कार्त्तवीर्यार्जुन की मृत्यु के कारण भृगुवंशोत्पन्न परशुराम जी हुए। राजर्षि कार्तवीर्य ने एक वरदान प्राचीनकाल में और भी प्राप्त किया था, जिसके परिणाम स्वरूप उस के सौ पुत्र थे। उनमें से पाँच तो बड़े महारथी थे। शस्त्रास्त्र सम्पन्न, बलवान्, शूरवीर, धर्मात्मा तथा महापराक्रमी उन सब पुत्रों में शूरसेन, शूर, धृष्ट, क्रोष्टु, जयध्वज, वैकर्ता तथा अवन्ति नामक पुत्र विशेष ख्यात थे। जयध्वज का पुत्र तालजंघ था, जिसके सौ पुत्र थे, जो सभी तालजंघ के नाम से विख्यात हुए। इन महात्मा हैहय वंशवालों का कुल बाद में चलकर पाँच भागों में विख्यात हुआ, जिनके नाम वीतिहोत्र, शार्यात, भोज, अवन्ति तथा पराक्रमी कुण्डिकेर थे। ये सब तालजंघ भी कहे जाते थे। वीतिहोत्र का पुत्र बलवान् आनर्त था, जिसका पुत्र दुर्जेय अपने शत्रुओं का परम विनाशक था। वह राजाधिराज सहस्रबाहु कार्तवीर्यार्जुन अति प्रेम तथा धर्म से अपनी समस्त प्रजाओं का पालन करता था। अपने धनुष के बल से ही वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का विजेता बना था। जो कोई मनुष्य प्रातःकाल उठकर उस महाराज कार्तवीर्यार्जुन के नाम का स्मरण करता है, उसका धन कभी नष्ट नहीं होता। यदि नष्ट भी हुआ

रहता है तो नाम कीर्तन के प्रभाव से उसे पुनः प्राप्त हो जाता है। महाविद्वान् कार्तवीर्य के इस परम पवित्र जन्म वृत्तान्त को जो कोई व्यक्ति पवित्र होकर कहता है वह स्वर्गलोक प्राप्त करता है ।।४४–५२।।

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में ययातिचरित नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ।।४३।।

चौवालीसवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! महात्मा आपव के उस तपोवन को कार्तवीर्यार्जुन ने किस कारण बलपूर्वक जलाया था। हम लोगों ने अभी आपसे यह सुना कि वह राजर्षि कार्तवीर्य अपनी प्रजा की सब प्रकार से रक्षा करता था तो फिर प्रजारक्षक होकर उसने ऐसे महर्षि के तपोवन को क्यों जलाया? आप इस वृत्तान्त को यथार्थरूप में हमसे कहिये। ।।१-२।।

सूत बोले—ऋषिवृन्द! एक बार आदित्य ब्राह्मण का वेश धारण कर कार्त्तवीर्य के पास गये और बोले—'हे राजन्! मैं आदित्य हूँ, मेरी एक बार तृप्ति कर दीजिये।' ।।३।।

राजा ने कहा—भगवन् दिवाकर! वह आपकी तृप्ति किस प्रकार होगी? तृप्ति के लिए मैं आपको किस प्रकार का भोजन दूँ? आप जैसा कहेंगे उसे सुनकर ही तो मैं आपकी तृप्ति का उपाय करूँगा। ।।४।।

आदित्य ने कहा—दानिशिरोमणि! इस पृथ्वीतल में फैले हुए समस्त वृक्षादि को आहार रूप में हमें प्रदान कीजिये। निश्चय ही हम उससे तृप्त हो जायँगे क्योंकि हमारी उसी भोजन के प्राप्त होने से सच्ची तृप्ति होगी। ।।५।।

कार्त्तवीर्य ने कहा—देव आदित्य! मैं अपने व्यक्तिगत तेजोबल अथवा सैन्यादि साधनों द्वारा भी संसार के समस्त वृक्षादि स्थावरों को जलाने में सर्वथा असमर्थ हूँ। अतः इसके लिए मैं अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए आपको नमस्कार करता हूँ। ।।६।।

आदित्य ने कहा—राजन्! मैं आप के इस सद्व्यवहार से आपके ऊपर सन्तुष्ट हूँ। इस दुष्कर कार्य को साध्य करने के लिए मैं आपको अपने तेजोबल से युक्त, सर्वतोमुखी, अपने अक्षय बाणों को दे रहा हूँ; जो छोड़े जाने पर अग्नि की भाँति जलने लगेंगे। मेरे प्रखर तेज से भरे होने के कारण वे संसार के सभी वृक्षों को सोख लेंगे अर्थात् शुष्क बना देंगे। और शुष्क हो जाने के बाद उन्हें जला देंगे, इस प्रकार हमारी तृप्ति सहज ही में हो जायगी। ।।७-८।।

सूत ने कहा—ऋषिगण! कार्तवीर्य को अपने प्रस्ताव पर सहमत कर लेने के बाद भगवान् सूर्य ने अपने उन प्रखर बाणों को कार्तवीर्यार्जुन को दे दिया। उन्हें प्राप्त कर कार्तवीर्य ने जगत् के सभी स्थावर वृक्षादि को जला डाला। ग्राम, मुनियों के आश्रम, ग्रामीणों की बस्तियाँ, नगर, सुन्दर तपोवन, बड़े-बड़े जंगल, और वाटिकाओं में—जहाँ कहीं भी—वृक्षादि मिले सब को उसने जलाना प्रारम्भ किया और

इस प्रकार सर्वप्रथम पूर्व दिशा को जलाकर वृक्षों से रहित करने के बाद समूची दक्षिण दिशा को जलाया। सूर्य के उन परम प्रखर एवं तेजस्वी बाणों के उग्र तेज से सारी पृथ्वी तृण तथा वृक्षादि से रहित होकर जलकर खाक हो गई। संयोगतः इसी अवसर पर महर्षि आपव दस सहस्र वर्षों के लिए जल में निवास कर रहे थे। जलनिवास-व्रत के पूर्ण हो जाने पर परम तपस्वी महामुनि आपव जी जब जल से बाहर निकले तो अपने आश्रम को उन्होंने कार्तवीर्यार्जुन द्वारा जलाया हुआ देखा। इस पर अत्यन्त क्रोधित होकर राजर्षि अर्जुन को उन्होंने उक्त शाप दिया, जिसे अभी हम आप लोगों को सुना चुके हैं। ॥९-१४॥

अब इसके उपरान्त आप लोग राजर्षि क्रोष्टु के बलवान् वंश का वर्णन सुनें, जिनके पवित्रवंश में वृष्णिकुलोद्भव भगवान् विष्णु (कृष्ण) स्वयं उत्पन्न हुए थे। राजर्षि क्रोष्टु का वृजिनीवान् नामक एक महारथी पुत्र हुआ। वृजिनीवान् का पुत्र महाबलवान् स्वाह हुआ। राजन्! स्वाह का उषंगु नामक पुत्र था, जो अच्छा धर्मोपदेशक तथा वाग्गमी था। सन्तति की इच्छा करके उषंगु ने अति उदार तथा कर्मण्य चित्ररथ नामक पुत्र को प्राप्त किया। चित्ररथ का पुत्र शशविन्दु नामक परम बलवान् तथा विपुल दक्षिणा देने वाला चक्रवर्ती पुत्र हुआ। इसी प्रसंग में पूर्वकाल का एक वंश की अनुक्रमणिका बतलाने वाला श्लोक गाया जाता है, जिसका आशय यह है कि 'शशविन्दु के एक सौ पुत्र थे, उनके भी सौ पुत्र हुए।' वे सभी पुत्रगण परम बुद्धिमान्, सुन्दर आकृतिवाले, सुसम्पन्न तथा तेजस्वी थे। उन सौ प्रमुख पुत्रों में ये निम्नलिखित नाम से पुकारे जाने वाले पुत्र महाबली थे। शशविन्दु के वंश में वे पृथु नामधारी पुत्रगण पृथुश्रव, पृथुयशा पृथुधर्मा, पृथुञ्जय, पृथुकीर्ति, और पृथुमना नाम से विख्यात राजा हुए। पुराणों के जाननेवाले लोग इन सभी पुत्रों में सर्वश्रेष्ठ पृथुश्रवा की बड़ी प्रशंसा करते हैं। अन्तर का पुत्र सुयज्ञ हुआ। इस सुयज्ञ का पुत्र उशना हुआ, जो परम धार्मिक राजा था। उसने विधिवत् पृथ्वी का पालन करते हुए सौ अश्वमेघ यज्ञों को निर्विघ्न सम्पन्न किया था। उशना का पुत्र तितिक्षु अपने शत्रुओं को परम दुःख देने वाला राजा हुआ, उसका पुत्र मरुत्त था, जो राजर्षियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। मरुत्त का पुत्र वीर कम्बलवर्हिष् था। कम्बलवर्हिष् का पुत्र विद्वान् रुक्मकवच हुआ। इस रुक्मकवच नामक प्रतापी राजा ने अपने विविध प्रकार के बाणों द्वारा कवच तथा धनुर्धारी अपने शत्रुओं का विनाश करके समस्त पृथ्वी को प्राप्त किया था। एक बार अश्वमेघ यज्ञ में शत्रु पक्ष के वीर सैनिकों का संहार करके इसने ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा दी थी। इसके महाबलशाली, धर्नुधर पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम रुक्मेष, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि थे। पिता ने अपने इन पाँचों पुत्रों में से परिघ और हरि नामक पुत्रों को विदेह देश के राज्य पद पर स्थापित किया। ज्येष्ठ पुत्र रुक्मेष स्वयं उसके मुख्य स्थान पर राजा हुआ। पृथुरुक्म उसका आश्रित बना। इन चारों पुत्रों द्वारा राज्यपद से वञ्चित कर खदेड़ा हुआ तृतीय पुत्र ज्यामघ एक ब्राह्मण के आश्रम में बहुत समझाये बुझाये जाने पर कुछ दिनों तक शान्त होकर बैठा रहा पश्चात् धनुष बाण ले ध्वजा तथा रथ से विभूषित हो, वह दूसरे देश को चला गया। इसी प्रसंग में जीवकोपार्जन के लिये वह अकेला नर्मदा नदी के तट पर गया और वहाँ ऋक्षवान् नामक पर्वत पर अधिकार प्राप्त कर भोजन किया और वहाँ के मूल निवासियों के समीप

निवास बनाकर रहने लगा। ज्यामघ की प्रथम ब्याही हुई स्त्री का नाम चैत्रा था, जो परम पतिव्रता थी; किन्तु उसके संयोग से राजा को कोई सन्तति नहीं थी। राजा ने अपुत्र रहकर भी दूसरी स्त्री को स्वीकार नहीं किया। एक बार एक युद्ध में ज्यामघ की विजय हुई, जिसमें उसे एक कन्या भी विजय रूप में प्राप्त हुई। राजा ने उसे ले जाकर अपनी स्त्री से भयपूर्वक कहा—'शुचिस्मिते! यह तुम्हारी पुत्रवधू (पतोहू) होगी।' राजा के इस प्रकार कहने पर स्त्री ने कहा—आर्यपुत्र! यह किसकी पुत्रवधू होगी?' ॥९-३४॥

राजा ने कहा—'भविष्य में जो तुम्हें एक पुत्र उत्पन्न होगा, यह उसी की पत्नी होगी।' इस घटना के उपरान्त उस कन्या के अनुपम एवं उग्र तपस्या के प्रभाव से राजा की व्याही पत्नी पतिव्रता सुन्दरी चैत्रा में अधिक अवस्था हो जाने पर भी विदर्भ नामक एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। उस राजपुत्री में विद्वान् राजा विदर्भ ने क्रथ, कैशिक तथा लोमपाद नामक परम धार्मिक पुत्रों को उत्पन्न किया। ये पुत्रगण परम वीर तथा रणविशारद थे। इन पुत्रों में लोमपाद का पुत्र मनु हुआ, जिसका पुत्र ज्ञाति था। कैशिक का पुत्र चिदि हुआ, उससे चैद्य नामक नृपतिगण उत्पन्न हुए। क्रथ नामक जो दूसरा विदर्भ पुत्र था, उससे कुन्ति नामक पुत्र हुआ। कुन्ति से परम प्रतापी तथा रणकुशल धृष्ठ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। धृष्ठ का पुत्र निर्वृत्ति था, जो शत्रु के वीरों को मारने में निपुण पर परम धर्मात्मा था। उस निर्वृत्ति के विदूरथ नामक एक पुत्र था। उसका पुत्र दशार्ह हुआ, जिससे व्योम नामक पुत्र कहा जाता है। दशार्ह के पुत्र व्योम से जीमूत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जीमूत का पुंत्र विमल था, उसका पुत्र भीमरथ हुआ। भीमरथ का पुत्र नवरथ हुआ—ऐसा कहा जाता है। उसका पुत्र दृढ़रथ था, जिसका पुत्र शकुनि हुआ। शकुनि से करम्भ नामक पुत्र हुआ, करम्भ का पुत्र देवरात था। देवरात का महायशस्वी देवक्षत्र नामक पुत्र था, इस देवनक्षत्र? (देवक्षत्र) का देवता के बालक की भाँति सुन्दर तथा महातेजस्वी मधु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। मधु से पुरवस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुरवस से नरश्रेष्ठ पुरुद्वान् नामक एक पुत्र हुआ। इस पुरुद्वान् के संयोग से विदर्भ देश की कन्या भद्रसेनी में जन्तु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जन्तु की स्त्री ऐक्ष्वाकी थी, उसमें परम पराक्रमशाली, यदुवंशियों की कीर्त्ति का विस्तारक सात्वत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस महात्मा ज्यामघ के वंश विस्तार को जानकर बुद्धिमान् मनुष्य द्विजपति चन्द्रमा का लोक प्राप्त करता है तथा पुत्रादि से सम्पन्न होता है। हे नृप! कौशल्या ने सात्वत नामक जिन पुत्रों को उत्पन्न किया, उनमें भजी, भजमान, दिव्य, देवावृध, अन्धक, महाभोज, वृष्णि तथा यदुनन्दन—ये सब परम पराक्रमशील तथा विष्णुभक्तिपरायण थे। उनके चार विभाग हुए, उन्हें विस्तारपूर्वक सुनिये। भजमान की दो स्त्रियों—सृञ्जयी तथा वाह्यका—में वाह्यक नामक पुत्रगण उत्पन्न हुए। सृञ्जय की ये कन्याएँ थीं। ये वाह्यक कहे जाने वाले पुत्रगण उन्हीं दोनों से उत्पन्न हुए। भजमान् की इन दोनों स्त्रियों ने, जो आपस में सगी बहनें थीं, निमि, क्रमिल तथा परपुरंजय वृष्णि नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। ये पुत्र सृञ्जय की पुत्री वाह्यका में भजमान के संयोग से उत्पन्न हुए थे। अपने वन्धुवर्गों तथा मित्रों का परम सहायक राजा देवावृध सन्तति विहीन था। 'मेरे सब गुणों से युक्त एक पुत्र उत्पन्न हो,' ऐसी अभिलाषा करके उसने परम घोर तपस्या की

और यज्ञ में मंत्र का उच्चारण करके पर्णाशा नदी के जल का स्पर्श किया। उसके इस मंत्रवत् स्पर्श से वशीभूत होकर पर्णाशा ने राजा के प्रिय कार्य को सम्पन्न किया। पर्णाशा ने राजा के कल्याणार्थ यह विचार निश्चय किया कि 'मैं ऐसी सुन्दरी तथा गुणवती कोई दूसरी स्त्री नहीं प्राप्त कर सकूँगी, जिसमें इस राजा के अनुरूप पुत्र उत्पन्न हो सके, अतः मैं स्वयं आज सुन्दर रूप धारण कर इसकी स्त्री बनूँगी।' इस प्रकार विचार कर पर्णाशा ने सुन्दरी कुमारी का शरीर धारण कर राजा को सूचित किया। महान् व्रतशाली राजा ने उसे पत्नी रूप में ग्रहण किया। तदुपरान्त नवें महीने में नदियों में श्रेष्ठ पर्णाशा ने उस राजा देवावृध के संयोग से सर्वगुण-सम्पन्न बभ्रु नामक एक पुत्र को उत्पन्न किया। पुराणों के जाननेवाले लोग कथाप्रसंग में इस राजा देवावृध के गुणों एवं यशों का कीर्तन करते हुए इस प्रकार गान करते हैं कि 'जिस प्रकार दूर से हम लोग यह सुनते हैं कि मनुष्यों में राजा बभ्रु परमश्रेष्ठ है तथा उसका पिता राजा देवावृध देवताओं के समान उदार है, उसी प्रकार सन्निकट में जाने पर व्यवहारों में भी हम उन्हें देखते हैं।' हे राजन्! बभ्रु तथा देवावृध के परम पुण्यमय कर्मों के प्रभाव से उनके पूर्ववर्ती साठ-सत्तर सहस्र पूर्वजों ने अमरत्व की प्राप्ति की। यह बभ्रु, परम यज्ञशील, दानशील, वीर, ब्राह्मणरक्षक, दृढ़प्रतिज्ञ, रूपवान्, महातेजस्वी, विद्वान् तथा बलवान् था। कंक की पुत्री ने कुकुर, भजमान, शशि तथा कम्बलबर्हिष् नामक चार पुत्रों को उत्पन्न किया। कुकुर का पुत्र वृष्णि और वृष्णि का धृति नामक पुत्र था। इसके उपरान्त धृति का पुत्र कपोतरोमा हुआ। जिसका पुत्र तैत्तिरि था, तैत्तिरि का पुत्र सर्प था। सर्प का परम विद्वान् पुत्र नल हुआ। उस नल का पुत्र दरदुन्दुभि नाम से विख्यात था, उसके यज्ञारम्भ के अवसर पर पुनर्वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र की प्राप्ति के लिए उस राजा ने एक अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान किया था। अतिरात्र नामक यज्ञ के अवसर पर सभा के बीच से वह पुत्र उठ खड़ा हुआ था। इसी कारण से वह पुनर्वसु परम विद्वान्, शुभाशुभ कर्मों का जाननेवाला, यज्ञकर्त्ता तथा परम दानी हुआ। हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ। उस पुनर्वसु के शत्रुओं द्वारा कभी पराजित न होने वाले आहुक नामक एक पुत्र और आहुकी नामक एक कन्या जुड़वें रूप में उत्पन्न हुए। उस पराक्रमी राजा आहुक के लिए लोग इस श्लोक की चर्चा करते हैं कि वह राजा सर्वदा उपासङ्ग, अनुकर्ष, ध्वजा तथा कवच समेत, मेघ के समान भीषण शब्द करनेवाले दस सहस्र रथों से संयुक्त रहता था। यही नहीं प्रत्युत उस सारे भोजवंश में उत्पन्न होने वालों में से कोई भी राजा असत्यवादी, निस्तेज, यज्ञादि शुभ कार्यों का न करनेवाला, कम से कम एक सहस्र का दान न देनेवाला, अपवित्र तथा मूर्ख नहीं हुआ।' आहुक द्वारा वृत्ति प्राप्त करके जीवन बितानेवाले लोग इसी प्रकार उसकी प्रशंसा करते थे। आहुक ने अपनी बहन आहुकी को अवन्ति देश के राजा के साथ व्याहा था। आहुक के संयोग से काश्य की पुत्री ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम देवक और उग्र-सेन थे। ये दोनों देवताओं के बालकों के समान परम सुन्दर थे। देवक के देवताओं के समान सुन्दर एवं पराक्रमशाली चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित थे। उन भाइयों के बीच में सात बहनें थीं। उन सब बहनों को उन्होंने वसुदेव को समर्पित किया था। उनके नाम देवकी, श्रुतदेवी मित्रदेवी, यशोधरा, श्री देवी, सत्यदेवी तथा सुतापी था। उग्रसेन के नव पुत्र हुए, जिनमें कंस ज्येष्ठ

था। शेष पुत्रों के नाम न्योग्रोध, सुनामा, कंक, बलवान् शंकु, अजभू, राष्ट्रपाल, युद्धमुष्ठि और सुमुष्टिद थे। उन भाइयों के बीच में पाँच बहने भी थीं, जिनके नाम कंसा, कंसावती, सुतन्तू, राष्ट्रपाली तथा कंका थे। वे सब की सब परम सुन्दरी थीं। पुत्रों तथा कन्याओं के साथ-साथ उग्रसेन कुकुर के वंशोद्भव कहे जाते हैं। भजमान का महारथी पुत्र विदूरथ था। विदूरथ का पुत्र शूर राजाधिदेव था। राजाधिदेव के देवताओं के समान परम सुन्दर नियम तथा व्रत के परम पालक शोणाश्व और श्वेतवाहन नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। शोणाश्व के रणविशारद शूरवीर पाँच पुत्र हुए; जिनके नाम शमी, देवशर्मा, निकुन्त, शुक्र तथा शत्रुजित् थे। शमी का पुत्र प्रतिक्षत्र तथा प्रतिक्षत्र का पुत्र प्रतिक्षेत्र हुआ। प्रतिक्षेत्र का पुत्र भोज था उसका पुत्र हृदीक हुआ। हृदीक के दस महापराक्रमी पुत्र हुए, जिनमें सब से बड़ा कृतवर्मा और मँझला शतधन्वा नाम से विख्यात था। शेष पुत्र देवार्ह, नाभ, भीषण, महाबल, अजात, वनजात, कनीयक और करम्भक नाम से विख्यात थे। देवार्ह के कम्बलवर्हिष् नामक विद्वान् पुत्र हुआ, जिसका पुत्र असामंजा हुआ, असामंजा का पुत्र तमौजा था। परम यशस्वी तथा बलवान् सुदँष्ट्र, सुनाभ और कृष्ण को कोई पुत्र नहीं थे। ये सब राजागण अन्धक नाम से विख्यात हैं। अन्धकों के इस वंश का कीर्त्तन जो कोई मनुष्य नित्य करता है वह विपुल वंश को प्राप्त करता है। ॥५३-८५॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंश वर्णन नामक चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! गान्धारी और माद्री नामक वृष्णि की दो स्त्रियाँ थीं। इनमें से गांधारी ने सुमित्र और मित्रनन्दन नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। माद्री ने प्रथमतः युधाजित को पश्चात् देवमीढुष को फिर अनमित्र और शिबि को तथा फिर पाँचवे कृतलक्षण नामक पुत्र को उत्पन्न किया। इनमें अनमित्र का निम्न नामक पुत्र था, निम्न के भी महावीर प्रसेन और शक्तिसेन नामक दो पुत्र थे। इसी प्रसेन के पास संसार की सभी मणियों तथा रत्नों में अनुपम स्यमन्तक नामक एक मणि थी, जो इस पृथ्वीमण्डल पर विद्यमान सभी मणियों में श्रेष्ठ थी। उसे गोविन्द (कृष्ण) हार्दिक याचना करने पर भी नहीं प्राप्त कर सके। किन्तु इस प्रकार विफल एवं प्रसेन की अपेक्षा बलवान् होकर भी उन्होंने प्रसेन से उसे नहीं छीना। एक बार कभी प्रसेन उस मणि को पहन कर शिकार खेलने के लिए वन में गया। वहाँ जाकर उसने एक बिल में, जिसमें उसका निवासी घोर जन्तु विद्यमान था, होनेवाले कोलाहल को सुना। कुतूहल वश बिल में प्रवेश करके उसने एक रीछ देखा। प्रविष्ट हो जाने पर रीछ ने भी प्रसेन को देखा। तदनन्तर रीछ ने प्रसेन को मारकर मणि को छीन लिया। रीछ द्वारा मारे गये प्रसेन को बिल के भीतर होने के कारण किसी दूसरे ने नहीं देखा। प्रसेन को मरा हुआ जानकर गोविन्द बहुत ही चिन्तित हुए। क्योंकि उन्हें यह आशंका हुई कि लोग यह कहते होंगे कि 'मणि को प्राप्त करने के लिए अवश्य कृष्ण ने ही प्रसेन का वध किया है।'

उधर सचमुच जनता में इस धारणा ने स्थान बना लिया था कि मणि के कारण गोविन्द ने ही प्रसेन का वध किया होगा। किसी के पूछे जाने पर गोविन्द यह प्रत्युत्तर देते कि 'मणि से विभूषित होकर प्रसेन जंगल को गया था अतः उसी मणि को देखकर उसे प्राप्त करने के लिए किसी ने उसे लोभवश मार डाला होगा ? किन्तु यदुवंशियों के बीच में मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि उस परम दुराचारी शत्रु का मैं संहार करूँगा।' इसके उपरान्त बहुत दिन बीत जाने के बाद एक बार श्रीकृष्ण मृगया के लिए घर से वन को गये और ईश्वरेच्छा से उसी बिल के समीप आ पहुँचे जहाँ प्रसेन का बध हुआ था। वहाँ गोविन्द को देखकर बलवान् रीछराज ने घोर शब्द किया। शब्द को सुनकर तलवार हाथ में ले कृष्ण बिल में घुस गये, और वहाँ पर उन्होंने महाबलशाली रीछराज जाम्बवान् को देखा। तदुपरान्त हृषीकेश भगवान् कृष्ण ने, जिनके नेत्र मारे क्रोध के रक्त वर्ण हो गये थे, वेगपूर्वक जाम्बवान् को अपने वश में कर लिया। तब रीछराज जाम्बवान् ने विष्णु के भक्तों की भाँति भगवान् गोविन्द कृष्ण की परम स्तुति की, सन्तुष्ट होकर उन्होंने वरदान देकर उसे भी परम प्रसन्न किया।। ॥१-१४॥

जाम्बवान् ने कहा—'प्रभो! आप के चक्र के प्रहार से मैं अपनी मृत्यु होने की इच्छा करता हूँ। यह मेरी सौभाग्यशालिनी कन्या आप को पति रूप में प्राप्त करे। हे प्रभो! जिस श्रेष्ठ मणि को प्रसेन का वध करके मैंने प्राप्त किया था उसे आप ही ग्रहण करें। यही मेरी इच्छाएँ हैं।' जाम्बवान् की इस प्रार्थना के पश्चात् आजानुबाहु भगवान् कृष्ण ने अपने चक्र द्वारा जाम्बवान् का वध किया, और इस प्रकार कृतकृत्य होकर उसकी कन्या के साथ स्यमन्तक मणि को भी प्राप्त किया। तदनन्तर सभी यदुवंशियों की भरी सभा में, उस मिथ्या अपवाद से अति दुःखित जनार्दन ने उस मणि को सत्राजित को समर्पित कर दिया। उस समय उन सभी यदुवंशियों ने वासुदेव भगवान् कृष्ण से यह कहा कि 'हम लोगों की मति तो यह हो रही थी कि आप ही ने प्रसेन का वध किया था।' ॥१५-१८॥

कैकय की सौभाग्यशालिनी दस कन्याएँ सत्राजित की स्त्रियाँ थीं। उनसे उत्पन्न होनेवाले पुत्रों में सौ परम विख्यात तथा महाबलवान् थे। सबसे बड़े पुत्र का नाम भंगकार था। इसी सबसे बड़े पुत्र भंगकार के संयोग से उसकी व्रतपरायणा स्त्री ने कमल के समान सुन्दर नेत्रोंवाली, सुकुमारी स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ सत्यभामा, दृढ़व्रतपरायण व्रतिनी तथा पद्मावती नामक तीन कन्याओं को उत्पन्न किया। इन अपनी तीनों कन्याओं को उसने कृष्ण को व्याह दिया था। वृष्णि के कनिष्ठ पुत्र अनमित्र से शिनि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र सत्यक हुआ। जिसका पुत्र सात्यकि था। शिनि के नाती प्रतापी सत्यवान् तथा युयुधान थे। इनमें युयुधान का पुत्र असंग और उसका पुत्र द्युम्नि हुआ। द्युम्नि का पुत्र युगंधर हुआ, ये सभी शैन्य नाम से प्रसिद्ध हैं। वृष्णि वंश में उत्पन्न अनमित्र का वंश कह रहा हूँ। अनमित्र की दूसरी पत्नी पृथ्वी में वीर युधाजित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और पुनः दो अन्य वीरपुत्र वृषभ और सूत्र नामक उत्पन्न हुए। वृषभ ने काशिराज की कन्या जयन्ती को स्त्री रूप में वरण किया। जयन्ती में जयन्त नामक भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न हुआ। जयन्त से अतिथियों के प्रेमी, शास्त्रों के परम मर्मज्ञ, सर्वदा यज्ञ में निरत

रहनेवाले, ब्राह्मणों को विपुल दक्षिणा देनेवाले अक्रूर नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। शैव्य की रत्ना नामक कन्या को अक्रूर ने स्त्री रूप में प्राप्त किया था, जिसके संयोग से उसने महाबलवान् ग्यारह पुत्रों को उत्पन्न किया था। उनके नाम उपलम्भ, सदालम्भ, वृकल, वीर्य, सवीतर, सदापक्ष, शत्रुघ्न, वारिमेजय, धर्मभृत, धर्मवर्मा, तथा धृष्ठमान थे। रत्ना से उत्पन्न होनेवाले ये सभी पुत्रगण यज्ञादि शुभ कार्यों के करनेवाले थे। अक्रूर को उग्रसेना नामक दूसरी पत्नी के संयोग से यदुकुल की वृद्धि करनेवाले देवताओं के समान परम सुन्दर तथा पराक्रमी देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। अश्विनी में पृथु, विपृथु, अश्वत्थामा, सुबाहु, सुपार्श्वक, गणेश्वर, वृष्टिनेमि, सुधर्मा, शर्याति, अभूमि, वर्जभूमि, श्रमिष्ठ तथा श्रवण नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। जो कोई मनुष्य भगवान् श्री कृष्ण द्वारा निराकृत इस मिथ्या अपवाद की कथा को जानता है वह कभी किसी के मिथ्यापवाद वा अभिशाप के द्वारा अपमानित वा अभिशापित नहीं होता। ॥१९-३४॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४५॥

छियालीसवाँ अध्याय

सूत बोले—ऐक्ष्वाकी ने विख्यात एवं अद्भुतकर्मा शूर ईढुष नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। शूर के पौरुष से भोजा में दस पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें सर्वप्रथम महाबाहु वसुदेव, जिनकी आनकदुन्दुभि नाम से भी प्रसिद्धि है, उत्पन्न हुए। तदनन्तर देवमार्ग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। तब फिर देवश्रवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार अनाधृष्टि, शिनि, नन्द, ससृञ्जय, श्याम, शमीक और संयूप नामक पुत्र भी उत्पन्न हुए। इन दस भाइयों के बीच में परम सुन्दरी पाच बहनें भी उत्पन्न हुईं, जिनके नाम श्रुतकीर्ति, पृथा, श्रुतादेवी, श्रुतश्रवा तथा राजाधिदेवी थे। ये पाँचों बहिनें भी वीर पुत्रों की माताएँ थीं। कृत की पत्नी श्रुतादेवी ने सुग्रीव नामक पुत्र उत्पन्न किया। केकय देश की राजमहिषी श्रुतकीर्ति में राजा अनुव्रत ने जन्म लिया। चेदि देश के राजा के साथ व्याही गई श्रुतश्रवा में सुनीथ नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अनेक प्रकार के धर्मकार्यों का करनेवाला तथा शत्रुओं का समूल विनाशक था। इन कन्याओं के विवाह के उपरान्त शूरसेन ने मित्रता वश अपनी पृथा नामक कन्या वृद्ध राजा कुन्तिभोज को दे दी थी। इसी कारण वश वसुदेव की बहन पृथा कुन्ती के नाम से विख्यात हुई। वसुदेव द्वारा पदत्त पाण्डु की प्रशंसनीय गुणोंवाली स्त्री इस कुन्ती ने पाण्डु के वंश की वृद्धि के लिए पति की आज्ञा से महारथी देवपुत्रों को उत्पन्न किया। कुन्ती के इन पुत्रों में धर्मराज के अंश से युधिष्ठिर, वायु के अंश से वृकोदर तथा इन्द्र के अंश से इन्द्र के तुल्य पराक्रमी धनञ्जय (अर्जुन) उत्पन्न हुए। दोनों अश्विनीकुमारों के अंश से पाण्डु की द्वितीय पत्नी माद्रवती में परम रूपवान् तथा शील-सदाचार परायण नकुल तथा सहदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुए—ऐसा हम लोगों ने सुना है। पुरु कुलोत्पन्न रोहिणी नामक पत्नी ने अपने पति आनकदुन्दुभि के संयोग से सर्वप्रथम ज्येष्ठ पुत्र राम को

तथा दूसरी बार अपने परम प्रिय पुत्र सारण को उत्पन्न किया। इसी प्रकार दुर्दम, दमन, सुभ्रु, पिण्डारक और महाहनु नामक पुत्रों को भी उसने प्राप्त किया। रोहिणी में ही चित्रा और अत्ती नामक (अथवा सुन्दर नेत्रों वाली) दो कन्याएँ भी उत्पन्न हुई थीं। उसी शौरि वसुदेव के संयोग से देवकी नामक पत्नी में सुषेण, कीर्तिमान्, उदासी, भद्रसेन, ऋषिवास तथा भद्रविदेह नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। कंस ने इन सभी बालकों का शैशव में ही संहार, कर डाला था। वर्षारम्भ में जो सर्वप्रथम अमावस्या होगी, उसी तिथि को आजानुबाहु प्रजापति भगवान कृष्ण देवकी के सातवें गर्भ से उत्पन्न हुए। कृष्ण के पश्चात् मृदुभाषिणी सुभद्रा ने जन्म लिया। फिर देवकी के गर्भ से महायशस्वी तथा तेजस्वी शूरी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ताम्रा के गर्भ से शौरि वंश के उद्धारक सहदेव का जन्म हुआ। देवरक्षिता ने उपासंगधर नामक पुत्र तथा एक परम सुन्दरी कन्या को, जिसे कंस ने मार डाला, उत्पन्न किया। उपदेवी के गर्भ से विजय, रोचमान, वर्धमान तथा देवल नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो सब के सब परम ऐश्वर्यशाली तथा महात्मा थे। वृकदेवी के गर्भ से महात्मा अवगाह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसी वृकदेवी के गर्भ में नन्दक नामक एक पुत्र और भी उत्पन्न हुआ था। हे राजन्! देवकी के सप्तम मदन और गवेषण नामक महा भाग्यशाली तथा संग्राम भूमि में पीठ न दिखाने वाले अन्य पुत्रों को भी उसने उत्पन्न किया था। प्राचीन काल में शौरि वसुदेव ने श्रद्धादेवी के साथ वन में विहार करते समय वैश्य की पुत्री के गर्भ से कौशिक नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। शौरि की सुतनु तथा रथराजी नामक दो अन्य स्त्रियाँ भी थीं। उनमें वसुदेव के बलवान् पुण्ड्र तथा कपिल नामक दो पुत्र थे। इनका अग्रज एक जरा नामक निषाद था, जो धनुर्विद्या में परम प्रवीण था। तदुपरान्त सौभद्र तथा भव नामक महाबलवान दो पुत्र और भी उससे उत्पन्न हुए थे। देवभाग का पुत्र उद्धव नाम से प्रसिद्ध था। देवश्रवा के प्रथम पुत्र को लोग पण्डित कहा करते थे। अनाधृष्टि की ऐक्ष्वाकी नामक यशस्विनी पत्नी ने शत्रुओं का विनाश करनेवाले निधूतसत्त्व नामक पुत्र को प्राप्त किया। उससे श्राद्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रीकृष्ण ने सन्तुष्ट होकर सन्ततिहीन करुष को सुचन्द्र नामक एक बलवान् पराक्रमी तथा भाग्यशाली पुत्र को दे दिया था। जाम्बवती के महाबलवान् तथा पराक्रमी चारुदेष्ण तथा साम्ब नामक दो पुत्र अति अद्भुत एवं श्रेष्ठ लक्षणों वाले थे। नन्दन के तन्तिपाल और तन्तिं नामक दो पुत्र थे। शमीक के महाबलवान् तथा पराक्रमी विराज, धनु, श्याम और सृञ्जय नामक चार पुत्र थे। इनमें श्याम सन्तति-विहीन था। शमीक ने भोजवंशीयों के आचार एवं व्यवहारों की निन्दा करते हुए ऋषियों के धर्म को अंगीकार कर स्वयं राजधानी छोड़कर वन का मार्ग ग्रहण किया था। जो कोई मनुष्य भगवान् कृष्ण के जन्म तथा अभ्युदय के इस वृत्तान्त का वर्णन करता अथवा सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। ॥१-२९॥

श्री मात्स्य पुराण में चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में वृष्णिवंशवर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४६॥

सैतालीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—पूर्वकाल में देवाधिदेव आदि प्रजापति भगवान् कृष्ण इस मर्त्यलोक में लीला करने के लिए मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए थे। उस समय वसुदेव की तपस्या के प्रभाव से देवकी के गर्भ से कमल के समान सुन्दर नेत्रोंवाले, चतुर्भुज भगवान् दिव्य रूप धारण कर शरीर की अमित दीप्ति से चारों ओर दिशाओं को प्रकाशमान करते हुए उत्पन्न हुए थे। अनेक दिव्य लक्षणों से युक्त, श्रीवत्स चिह्न*से विभूषित भगवान विष्णु को इस रूप में देखकर वसुदेव ने कहा—'प्रभो आप अपने इस रूप को छोड़ दीजिये। देव! मैं कंस से अतिशय भयभीत होकर आप से ऐसी बातें कर रहा हूँ। मेरे बड़े ही होनहार बच्चों को, जो आप से अवस्था में ज्येष्ठ थे, उसने मार डाला है।' ऐसी बातें सुन अच्युत भगवान् कृष्ण ने वसुदेव जी को यह आज्ञा देकर कि 'मुझे नन्द गोप के घर पहुँचा दो,' अपने विष्णु रूप को छोड़ दिया। अनन्तर वसुदेव ने बालक रूपधारी भगवान् को नन्द गोप के घर ले जाकर उसे सौंप दिया और कहा—'मेरे इस बालक की रक्षा करना। इसी पुत्र से यदुवंशियों को सभी प्रकार की कल्याण प्राप्ति होगी और देवकी के गर्भ द्वारा उत्पन्न यही पुत्र कंस का विनाशक होगा।' ॥१-६॥

ऋषियों ने कहा—सूत जी! ये वसुदेव, जिन्होंने भगवान् कृष्ण को उत्पन्न किया, तथा ये देवकी जिन्होंने भगवान् को गर्भ रूप में धारण किया, कौन थे? इसी प्रकार ये नन्द गोप तथा व्रतपरायण यशोदा कौन थीं? जिन्होंने भगवान का शैशव काल में पालन-पोषण किया और जिन्हें स्वयम् भगवान् तात कहकर पुकारते थे। ॥७-८॥

सूत ने कहा—ऋषि वृन्द! आपने जिन दम्पतियों के बारे में ये प्रश्न किये हैं, उनमें, दोनों पुरुष महर्षि कश्यप तथा स्त्रियाँ साक्षात् अदिति थीं। ऋषि कश्यप ब्रह्मा के अंशभूत तथा अदिति पृथ्वी की अंशस्वरूप है। महाबाहु भगवान ने देवकी की उन सभी कामनाओं को पूर्ण किया था, जिन-जिन के लिए देवकी ने उन से याचना की थी। उस अवसर पर योगेश्वर भगवान विष्णु जगत् के निर्माण करने की अपनी अनुपम शक्ति से चराचर जगत् के सम्पूर्ण जीवों को मोहित करते हुए मनुष्य शरीर धारण कर पृथ्वी तल पर अवतीर्ण हुए थे। पृथ्वी पर यज्ञादि धर्म कार्यों के सर्वथा विनष्ट हो जाने पर वे भगवान् विष्णु धर्म की स्थापना तथा यज्ञादि कार्यों के विघातक असुरों के विनाश के लिए यदुकुल में उत्पन्न हुए थे। उनकी रुक्मिणी, सत्यभामा, सत्या, नाग्नजिती, सुभामा, शैव्या, गान्धारी, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, जाम्बवती, सुशीला, माद्री, कौशल्या विजया आदि सोलह सहस्र देवियाँ थीं। इनमें से रुक्मिणी ने रणभूमि में परम शूर चारुदेष्ण, महावली प्रद्युम्न, सुचारु, भद्रचारु, सुदेष्ण, भद्र, परशु, चारुगुप्त,

---

* एक बार अतिशय क्रुद्ध हो भृगु जी ने भगवान् विष्णु की छाती में लात मार दी थी, जिससे अंगूठे की रेखाएँ भगवान की छाती में अमिट हो गई थीं, उसी को श्रीवत्स कहते हैं। श्रीवत्स महा पुरुषों की छाती पर श्वेत रंग की दाहिनी ओर मुड़ी हुई रोमावली को भी कहते हैं, जो प्राय: महापुरुषों का शुभलक्षण है।

चारु, सुचारुक तथा चारुहास नामक पुत्रों को उत्पन्न किया था। इनके अतिरिक्त चारुमती नामक कन्या को भी उसी ने उत्पन्न किया था। सत्यभामा के गर्भ से भानु, अमरतेक्षण, रोहित, दीप्तिमान, ताम्र, चक्र तथा जलंधर नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनकी छोटी चार बहनें भी उत्पन्न हुई थीं। जाम्बवती के गर्भ से सभा में परम निपुण तथा परम सुन्दर साम्ब नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। मित्रविन्दा ने मित्रवान् तथा मित्रविन्द नामक दो पुत्रों को तथा नाग्नजिति ने मित्रवाहु और सुनीथ नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया था। इसी प्रकार उन समस्त स्त्रियों से एक-एक सहस्र पुत्रों को और भी समझ लीजिये। परम बुद्धिमान् भगवान् कृष्ण के इन पुत्रों की संख्या बढ़कर सैकड़ों सहस्र अर्थात कई लाख तक पहुँच गई थी। ऋषिवृन्द! कृष्ण के इन पुत्रों की संख्या दस लाख अस्सी हजार तक कही जाती है। उपासंग के पुत्रों का नाम वज्र तथा संक्षिप्त था। गवेषण के दो पुत्रों के नाम भूरीन्द्रसेन तथा भूरि थे। प्रद्युम्न के वैदर्भी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र का नाम अनिरुद्ध था, जो परम बुद्धिमान् तथा रणाङ्गण में कभी डिगने वाला नहीं था। उसके मृगकेतन नामक एक पुत्र था। सुपार्श्व की पुत्री काश्या ने तेजस्वी साम्ब के संयोग से सत्यवादी पाँच पुत्रों को, जो देवस्वरूप तथा परम वीर थे, प्राप्त किया था। महात्मा तथा अद्भुत पराक्रम वाले इन यदु के वंशधरों की संख्या तीन करोड़ तक थी, जिनमें से साठ लाख तो महाबलवान् परम पराक्रमी तथा देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए थे। पूर्वकाल में जो महाबलशाली असुरगण देवासुर संग्राम में मारे गये थे, वे इस मनुष्य लोक में उत्पन्न होकर मनुष्यों के प्रत्येक शुभकार्यों में बाधा पहुँचाया करते थे, उन्हीं असुरों का विनाश करने के लिए महात्मा यादवों के एक सौ कुलों में ये पुत्रगण उत्पन्न हुए थे। उन महात्मा यदु वंशियों के ये एक सौ प्रतिष्ठित परिवार विष्णु (कृष्ण) कुल से सम्बन्ध रखनेवाले थे। इन सभी यदुवंशियों के एकमात्र नेता तथा स्वामी भगवान् विष्णु (कृष्ण) थे। ये सभी यदुवंशीगण सदा उनकी आज्ञा में रहते थे। ॥९-२९॥

ऋषियों ने कहा—सातों ऋषि, कुबेर यक्ष, माणिचर, शालकि, नारद, सिद्ध, धन्वन्तरि तथा देवसमाज—इन सब के साथ आदिदेव भगवान् विष्णु इस पृथ्वीतल पर संघवद्ध होकर किस लिए उत्पन्न होते हैं? उन भगवान् विष्णु की कितनी सम्भूतियाँ (अवतार) हो चुकी हैं और भविष्य में और कितनी होने वाली हैं? इस मृत्युलोक में ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के शान्त हो जाने पर वे किसलिए पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं? जिस विशेष प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए इस मर्त्यलोक में वे वृष्णि तथा अन्धक कुलश्रेष्ठ भगवान् कृष्ण उत्पन्न हुए थे तथा जिस विशेष प्रयोजन के लिए वे पुनः पुनः मनुष्य योनि में जन्म धारण करते हैं, उसे जानने के लिए हम लोग विशेष इच्छुक हैं, कृपया यह सब वृत्तान्त हमें बतलाइये। ॥३०-३३॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! प्रत्येक युग में लोगों के धर्म से पराङ्मुख हो जाने तथा यज्ञादि शुभ कर्मों के एकदम शिथिल हो जाने पर भगवान् विष्णु अपने दिव्य तेजोमय शरीर को छोड़कर मनुष्य का शरीर धारण करते हैं। प्राचीनकाल में जब हिरण्यकशिपु नामक दैत्य त्रैलोक्य का स्वामी था, तब घोर देवासुर

संग्राम हुआ था, उस अवसर पर भगवान् ने जन्म ग्रहण किया था। उसके पश्चात् जब बलि नामक दैत्य त्रैलोक्य का अधिष्ठाता हुआ, तब देवताओं का असुरों के साथ अति विचित्र सुन्दर मित्रतापूर्ण व्यवहार चल रहा था। इस प्रकार का समय एक पूरे युग तक रहा। उस समय असुरों का बल सभी स्थलों में बड़ा प्रबल हो गया था, संसार के सभी जीव उनके भय से बहुत ही व्याकुल हो गये थे। दैत्य तथा देवता—सभी उन दोनों के आदेशानुसार चलते थे। तदनन्तर बलि का विनाश करने के लिए महान् विनाशकारी अति घोर महायुद्ध दैत्यों तथा देवताओं के मध्य में हुआ। उक्त अवसर पर भी भृगु के शाप के कारण देवासुर संग्राम में दैत्यों का विनाश कर धर्म की व्यवस्था बाँधने के लिए भगवान् विष्णु मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए थे। ॥३४-३९॥

मुनियों ने कहा—सूत जी! उस समय देवताओं तथा असुरों के लिए किस प्रकार भगवान् अपने आप उद्भूत हो गये थे और यह देवासुर संग्राम किस प्रकार हुआ था? इसे कृपया हम लोगों को बताइये। ॥४०॥

सूत ने कहा—पूर्वकाल में वराह आदि बारह महाभयङ्कर संग्राम देवताओं तथा असुरों के मध्य में अधिकार प्राप्ति के लिए हुए थे, वे सभी युद्ध शण्डामर्क के पौरोहित्य कार्यकाल में हुए कहे जाते हैं। मैं उन सब युद्धों का वृत्तान्त संक्षेप में बतला रहा हूँ, आप लोग सुनिये। प्रथम युद्ध नृसिंहावतार के समय में, दूसरा वामनावतार में, तीसरा वराह अवतार में तथा चौथा अमृतमन्थन के अवसर पर हुआ था। इसी प्रकार उनमें पाँचवाँ युद्ध तारकामय, छठवाँ आडीवक, सातवाँ त्रिपुर, आठवाँ अन्धक, नवाँ वृत्रासुर के साथ, दसवाँ धात्र, ग्यारहवाँ हालाहल तथा बारहवाँ कोलाहल नाम से विख्यात है। नृसिंहावतार धारण करने वाले भगवान् ने हिरण्यकशिपु नामक दैत्यराज का विनाश किया था। वामन ने प्राचीन काल में समस्त त्रैलोक्य पर अधिकार प्राप्त करने वाले बलि नामक दैत्य को बाँधा था। वराह अवतार धारी प्रभु ने देवताओं को साथ ले अपनी दाढ़ों से हिरण्याक्ष नामक दैत्य का द्वन्द्व युद्ध में संहार किया था और समुद्र को दो भागों में विभक्त किया था। अमृत मन्थन के अवसर पर इन्द्र ने युद्ध में प्रह्लाद को पराजित कर दिया था, जिससे अपमानित होकर प्रह्लाद पुत्र विरोचन नित्य इन्द्र का बध करने के लिए उद्यत रहा करता था। इन्द्र ने अति पराक्रम से उसका तारकामय संग्राम में संहार किया था, क्योंकि वह सभी देव गणों के साथ तथा उनके व्यवहारों में सहनशीलता का व्यवहार नहीं रखता था। अन्धक नामक युद्ध में महादेव ने तीनों लोकों के सभी असुर, पिशाच तथा दानवों का संहार किया था। इस युद्ध में देवता तथा मनुष्य—सभी लोगों ने सहयोग प्रदान किया था एवं असुरों द्वारा पीड़ित पितरों ने भी सभी प्रकार की सहायता की थी। तत्पश्चात् होने वाले देवासुर संग्राम में वृत्र का निधन हुआ था। हालाहल युद्ध में घोर असुरों का संहार हुआ था। उसके बाद होने वाले युद्ध में विष्णु की सहायता प्राप्त कर महेन्द्र ने असुर गणों के साथ विप्रचित्ति नामक दानवराज को मृत्यु संकट में डाला था। उस अवसर पर मायावी एवं योग जाननेवाले विप्रचित्ति ने ध्वजा का स्वरूप धारण कर लिया था; पर फिर भी इन्द्र के हाथों से भाई समेत उसकी मृत्यु हुई ही। इस प्रकार उन महा

पराक्रमी, युद्ध के लिए एकत्र सभी दैत्यों तथा दानवों को इन्द्र ने देवताओं के मध्य में, महान् जय जय कार से गूंजते हुए 'कोलाहल' के बीच पराजित किया था। युद्ध के अवसान में देवताओं ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया था। उस यज्ञ के अन्त में स्नान करने के उपरान्त उन्होंने शण्डामर्क नामके ऋषियों का दर्शन किया था। देवता तथा असुरों के मध्य में ये बारह महायुद्ध पूर्वकाल में हुए थे, जो देवता तथा असुर दोनों पक्ष वालों के परम विनाशकारी किन्तु सामान्य प्रजा वर्ग के परम कल्याणकारी थे। ४१-५५॥

प्राचीन काल में हिरण्यकशिपु एक अरब बहत्तर करोड़ अस्सी सहस्र वर्षों तक तीनों लोकों का अधिपति बन राज्य सिंहासन पर सुशोभित था। इसके उपरान्त बलि नामक दैत्य राज एक अयुत साठ सहस्र बीस नियुत वर्षों तक राजा बना था। जितने दिनों तक दैत्यराज बलि के हाथों में राज्याधिकार एवं शासन की बागडोर थी उतने दिनों तक प्रह्लाद अपने अनुचर असुर गणों के साथ निवृत्ति मार्ग पर अवलंबित रहा। इन्हीं तीन महाबलशाली तथा परम पराक्रमी एवं तेजस्वी दैत्यों को तत्कालीन असुरों का अध्यक्ष मानना चाहिये। यह सम्पूर्ण त्रिलोक दैत्यों के हाथों में दस युगों तक था। पुनः दैत्यों के विनाश हो जाने पर दस युगों तक त्रिलोक का शासनाधिकार इन्द्र के हाथों में आया। उस समय वे ही सारे जगत का पालन करते थे। उनके शासनकाल में सभी लोग शान्त एवं सुखी थे। राज्य में शत्रुओं द्वारा कोई बाधा नहीं थी। काल चक्र के परिवर्तन से इस पिछले महायुद्ध में प्रह्लाद के वध हो जाने के उपरान्त जब तीनों लोकों का शासनाधिकार पर्याय क्रम से इन्द्र के हाथों में आया तब शुक्र अपने शिष्य दैत्यों को छोड़कर देवताओं की ओर चले आये। इस प्रकार यज्ञ के अवसर पर शुक्र को देवताओं के पास गया हुआ समझ कर दिति के पुत्र दैत्यों ने शुक्र को उपालम्भ देते हुए कहा—'महाराज! आप इस प्रकार हम लोगों के देखते हुए हमें छोड़कर पुनः यज्ञ में क्यों सम्मिलित हो गये? अब हम लोग इस लोक में नहीं ठहर सकते, रसातल को जा रहे हैं।' दुख तथा अमर्ष से अति कातर होकर दैत्यों के इस प्रकार कहने पर शुक्र ने मृदु वाणी में सान्त्वना प्रदान करते हुए दैत्यों से कहा—'असुरवृन्द! तुम लोग मत डरो, मैं अपने तेजोबल से पुनः तुम सब को अपनाऊँगा। इस चराचर जगत् में जो कुछ भी मंत्र-तंत्र, औषधि, रस तथा अमूल्य धन-सम्पत्ति आदि पदार्थ हैं, वे सभी मुझमें हैं, उनका केवल चौथाई भाग समस्त देवताओं में मिल कर है। तुम्हारे कल्याणार्थ मैं उन समस्त साधन एवं सामग्रियों को तुम लोगों को दे दूँगा। तुम्हीं लोगों के लिए मैंने उन्हें संचित किया है।' इस प्रकार परम बुद्धिमान शुक्र के सान्त्वना देने पर स्थिरमति राक्षसों को पुनः अविचलित देखकर, सुचतुर देवताओं ने शुक्र के प्रभाव को निष्फल करने की इच्छा से आपस में यह सम्मति की कि 'यह शुक्र अपने पराक्रम द्वारा हम लोगों के समस्त प्रयोग, विद्या, एवं प्रभाव आदि को व्यर्थ कर देगा, अतः यह अच्छा होगा कि हम लोग शीघ्र ही जाकर जब तक कि शुक्र उन्हें अपने प्रभाव से प्रभावशाली नहीं बना पाता तब तक मार डालें और उनमें से जो शेष रह जायँ उन्हें पाताल जाने को विवश कर दें।' ऐसी सम्मति निश्चित करके देवताओं ने अति क्रोध से राक्षसों के पास जाकर उनको मारना प्रारम्भ किया। इस प्रकार देवताओं द्वारा पीड़ित होकर असुर गण शुक्र के पास भाग चले। इस प्रकार देवताओं द्वारा मार

कर खदेड़े गये राक्षसों की अपने कौशल से शुक्र ने रक्षा की। बल्कि उनके प्रभाव से असुरों ने ही देवताओं को पीड़ित किया। देवताओं ने देखा कि वहाँ काव्य शुक्र विराजमान हैं और असुरवृन्द निःशंक भाव से स्थित हैं। ऐसा देखकर उन्होंने असुरों को छोड़ दिया। देवताओं द्वारा अपने शिष्य राक्षसों की ऐसी दुर्दशा देखकर ब्राह्मण शुक्र ने अपने अन्तः करण में पूर्व वृत्तान्त का स्मरण किया और राक्षसों से यह कल्याणदायी बातें कहीं—'असुरो! तुम्हारे द्वारा शासित समस्त त्रैलोक्य को वामन ने अपने तीन पगों द्वारा ले लिया। बलि को बाँध लिया, जम्भ को मार डाला, विरोचन को मार डाला। इस प्रकार जितने बड़े-बड़े महान् असुर थे, वे सभी बारह महायुद्धों में मारे जा चुके। जितने प्रधान-प्रधान सेनापति तथा वीर थे, उन सब को इन देवताओं ने अपनी चतुराई एवं छल पूर्ण उपायों द्वारा खोज-खोज कर मार डाला। अब तुम लोग थोड़ी संख्या में शेष रह गये हो अतः हमारी सम्मति है कि अब युद्ध न हो। हम जिस नीति को तुम्हारे हित के लिए बतला रहे हैं, उसके अनुसार कुछ दिनों तक अभी तुम लोग कालचक्र को बलवान् समझकर प्रतीक्षा करो। विजय प्रदान करनेवाले मंत्र को प्राप्त करने के लिए मैं महादेव जी की सेवा में जा रहा हूँ। देवाधिदेव शंकर से उस अमोघ मंत्र को प्राप्त करके जब मैं स्वयं देवताओं के साथ युद्ध में सम्मिलित होऊँगा, तब तुम लोग उस युद्ध में निश्चय ही विजय प्राप्त करोगे।' शुक्र द्वारा इस प्रकार युद्ध के स्थगित कर देने का परामर्श करके राक्षसों ने देवताओं के पास जाकर कहा—'देववृन्द! 'हम लोगों ने अपने-अपने शस्त्रास्त्रों को छोड़ दिया है, न तो हमारे पास कवच हैं और न रथ हैं, अब बल्कल धारण करके हम लोग वन प्रदेश में छिपकर तपस्या करेंगे।' सदा सत्य बोलने वाले- प्रह्लाद की ऐसी सत्य बातों को सुन एवं दैत्यों के शस्त्रास्त्र छोड़ देने पर देवता लोग उन असुरों का पीछा छोड़कर चिन्ता रहित हो लौट गये और विशेष प्रसन्न होकर दैत्यों के साथ युद्ध की चिन्ता से निवृत्त हो गये। ॥५६–७८॥

देवताओं के चले जाने के उपरान्त शुक्र ने दैत्यों से कहा—'दैत्य वृन्द! कुछ समय तक तुम लोग अपने अपने अभिमान तथा कुप्रवृत्तियों को छोड़ दो और मेरे पिता जी के आश्रम में मन तथा इन्द्रियों को वश में कर मनोरथ को पूर्ण करने वाले अभीष्ट समय के आने तक उपासना करतेहुए मेरे लौट आने की प्रतीक्षा करो।' दैत्यों को इस प्रकार आदेश देकर शुक्र महादेव के पास गये और उनसे निवेदन किया। ॥७१–८०॥

शुक्र ने कहा—देव! देवताओं को पराजित करने के लिए तथा असुरों की विजय के लिए हम उन मंत्रों को आप द्वारा जानना चाहते हैं, जो देवगुरु बृहस्पति के पास नहीं हैं।' शुक्र की ऐसी प्रार्थना पर महादेव ने कहा—'भार्गव! इसके लिए तुम्हें कठोर व्रत करना पड़ेगा, जिसमें सहस्र वर्षों तक विना कुछ बोले तथा शिर हिलाये कना के धूएँ का पान करना पड़ेगा। तब कहीं तुम्हें वे मंत्र मिलेंगे।' शिव की आज्ञा शिरोधार्य कर भृगुपुत्र शुक्र ने उनका चरणस्पर्श किया और कहा—'बहुत अच्छा। आपके आदेशानुसार मैं वैसा ही करूँगा। प्रभो! आप द्वारा बताये गये इस व्रत का मैं आज से ही यथावत् पालन करूँगा।' ॥८१–८२॥

इस प्रकार व्रत स्वीकार कर लेने के उपरान्त महादेव से विदा माँग शुक्र कुण्ड से धूम की धारा जहाँ से निकलती थी, वहाँ गये और असुरों के हितार्थ ब्रह्मचर्य व्रत धारणकर उक्त मंत्र की प्राप्ति के

लिए महादेव में चित्त लगाकर व्रताचरण करने लगे। तदनन्तर असुरों के राज्यादि छोड़ने में ऐसी कूट नीति एवं छिद्र की बातें जानकर देवता लोग अमर्ष से विचलित हो उठे और वृहस्पति को प्रमुख बना कवच धारण कर शस्त्रास्त्र ले असुरों पर उपद्रव करने पर तुल गये। पुनः इस प्रकार देवताओं को अपने पास शस्त्रास्त्र ग्रहण कर युद्ध के लिए समुद्यत देख असुरगण भयभीत होकर सहसा उठ खड़े हुए और देवताओं से कहने लगे—'देवगण! आप लोगों द्वारा शस्त्रास्त्र छोड़ देने पर हमें अभयदान मिल चुका है, हमारे आचार्य शुक्रजी इस समय व्रत में निरत हैं, ऐसी स्थिति में जब कि आप लोग किसी प्रकार का भय न पहुँचाने का संकल्प कर चुके हैं तो फिर से हम लोगों को मारने के लिए यहाँ क्यों एकत्र हुए हैं? इस समय हम लोग विना गुरु के हैं, शस्त्रास्त्र छोड़कर निहत्थे खड़े हैं, तपस्वियों की भाँति चीर तथा काले मृगचर्म पहने हुए हैं, निष्क्रिय तथा परिग्रह रहित हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें मारना आपको शोभा नहीं देता। रण में किसी प्रकार से भी हमलोग आप देवताओं को पराजित करने में समर्थ नहीं हैं। अतः विना युद्ध किये ही शुक्र की माता की शरण में जा रहे हैं, इस विषम संकट के समय को तब तक चुपचाप व्यतीत करना चाहिये, जब तक हमारे आचार्य नहीं आ जाते। शुक्र के तपस्या से निवृत्त हो जाने पर हम कवच तथा शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हो युद्ध करेंगे।' इस प्रकार दोनों पक्षवालों ने परस्पर अपने पक्ष की बातें कीं, पर अन्त में कोई परिणाम न देख दैत्य लोग अति भयभीत होकर शुक्र की माता की शरण में भागे। शुक्र की माता ने अभय दान देते हुए कहा—'दानवगण! मत डरो, मत डरो, भय छोड़ दो, मेरे पास आकर रहो। यहाँ रहने से तुम लोगों को किसी प्रकार का भी भय नहीं हो सकता।' इस प्रकार शुक्र की माता द्वारा अभय दान तथा सान्त्वना देने पर भी राक्षसों को वहाँ स्थित देखकर देवताओं ने साहस करके कुछ भी औचित्यानौचित्य का विचार नहीं किया और उन्हें खदेड़ लिया और पकड़-पकड़ कर बाँधना प्रारम्भ किया। इस प्रकार देवताओं को राक्षसों को बाँधते देख देवी ने अति क्रुद्ध होकर कहा—'मैं तुम लोगों को इन्द्ररहित कर रही हूँ।' ऐसा कहने के बाद देवी असुरों की सभी बाधाओं को शान्त करने की इच्छा से इन्द्र की ओर दौड़ पड़ी और अपने योगाभ्यास तथा तपस्या के अमिट प्रभाव द्वारा इन्द्र को स्तम्भित कर लिया। जिससे इन्द्र अपने स्थान से तनिक हिल भी नहीं सके। देवगण देवी द्वारा इन्द्र को गूँगों की भाँति स्तम्भित तथा वशीकृत जान अति भयभीत होकर भागने लगे। देवताओं के भाग जाने पर भगवान् विष्णु ने इन्द्र से कहा—'देवेश! तुम मेरे शरीर में प्रविष्ट हो जाओ जिससे अपनी शक्ति द्वारा मैं तुम्हें यहाँ से अन्यत्र कर दूँ।' विष्णु भगवान् की बात सुनकर इन्द्र ने विष्णु के शरीर में प्रवेश किया। इस प्रकार इन्द्र को विष्णु द्वारा रक्षित देख अति क्रुद्ध होकर देवी ने कहा—'हे इन्द्र! अब मैं अपने अमित पराक्रम तथा ऐश्वर्य द्वारा विष्णु समेत तुम्हें जला रही हूँ, संसार के सभी जीवों के सामने मैं यह अद्भुत कार्य कर रही हूँ। मेरे इस अमोघ तपोबल एवं शक्ति को देखो।' देवी की ऐसी कोप भरी बातें सुन दोनों देवेश्वर विष्णु तथा इन्द्र अतिशय भयभीत हो गये। उस समय विष्णु ने इन्द्र से कहा—'अब हम दोनों का कल्याण नहीं है। इस विषम संकट से किस प्रकार छुटकारा मिलेगा?' इन्द्र ने कहा—'प्रभो!

जब तक यह हम दोनों को जलाने जा रही है तब तक इसे ही मार डालिये, मैं तो आप ही से अतिशय पराभूत हो चुका हूँ अतः इसे आप ही शीघ्र मारिये, देर तनिक भी न कीजिए।' इन्द्र की ऐसी बातें सुन भगवान् विष्णु ने अपने मन में प्रथम विचार किया कि—यह एक स्त्री है। स्त्री- वध में अति घोर पाप लगता है—ऐसा सोचते हुए वे बड़ी कठिनाई में पड़ गये, किन्तु इस भीषण आपत्ति से छुटकारा पाने का कोई अन्य उपाय उनके सामने नहीं था, अतः आपत्ति से मुक्ति देनेवाले अपने चक्र का उन्होंने भलीभाँति ध्यान किया। और अति भयभीत एवं देवी के इस नृशंसतापूर्ण दुर्व्यवहार से अतिशय क्रुद्ध होकर तनिक भी देर करने में हानि होने की सम्भावना से शीघ्र ही अपने अस्त्र से उसके शिर को काट लिया। तदनन्तर अपनी स्त्री के इस कठोर वध को देखकर महर्षि भृगु अति क्रुद्ध हुए और उसी स्त्री-वध के महान् पाप के कारण उन्होंने भगवान् विष्णु को शाप देते हुए कहा—'यतः धर्म की मर्यादा को जानते हुए भी तुमने एक अनपराधिनी स्त्री का इस प्रकार नृशंसतापूर्ण वध किया है अतः इस मर्त्यलोक में तुम्हें सात बार मनुष्य योनि में उत्पन्न होना पड़ेगा।' भृगु के उसी शाप के कारण धर्म के नाश होने पर पुनः-पुनः लोक कल्याण के लिए भगवान् विष्णु मनुष्य योनि में अवतीर्ण होते हैं। ॥८३-१०७॥

इस प्रकार विष्णु भगवान् को उपर्युक्त शाप देने के उपरान्त महर्षि भृगु ने शीघ्र ही अपनी स्त्री के शिर तथा शरीर भाग को दोनों हाथों में लेकर 'देवि! तुम्हें विष्णु ने मारा है और मैं तुम्हें पुनः जीवित कर रहा हूँ।' कहकर शिर को शरीर भाग में संयुक्त करके 'जी जाओ' ऐसा कहा। और फिर कहा—'यदि मैं सर्वदा सत्यवादी रहा, सम्पूर्ण धर्मों का जाननेवाला रहा और सम्पूर्ण धर्म-कार्यों को कर चुका होऊँ तो मेरे उस सत्य के प्रभाव से तुम पुनः जीवित हो जाओ।' ऐसा कहकर देवी के शव को शीतल जल से पोंछकर उन्होंने 'जीवित हो जाओ' ऐसा पुनः कहा। भृगु के इन वाक्यों के कहने के उपरान्त ही देवी जीवित हो गई। ॥१०७-११०॥

इस प्रकार भृगु द्वारा जीवित कर देने पर वहाँ स्थित सभी प्राणिवृन्द सोकर उठी हुई की भाँति देवी को देखकर अपनी-अपनी वाणियों से दिशाओं को गुंजरित करते हुए 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहने लगे। देवी उस समय भृगु के द्वारा इस प्रकार पुनः जीवित की गई। देखनेवाले देवताओं के लिए भृगु का यह एक अति अद्भुत कार्य था। व्यवस्थित चित्तवृत्ति वाले भृगु द्वारा पुनः देवी को जीवित देखकर इन्द्र को शुक्र के भय से तनिक भी चैन नहीं मिला और उन्होंने रात को विना शयन किये ही व्यतीत किया। तदनन्तर भविष्य में घटित होनेवाली दुर्घटनाओं को भली भाँति सोच-विचार कर बुद्धिमान् इन्द्र ने अपनी कन्या जयन्ती से कहा—'पुत्रि! भृगुपुत्र शुक्र मेरे शत्रु दैत्यों के कल्याण के लिए घोर तप कर रहा है। वह परम बुद्धिमान् है, उसके पराक्रम के भय से मैं अतिशय व्याकुल हूँ। अतः तुम वहाँ उसके पास जाओ और वहाँ जाकर मेरे कल्याण के लिए आलस्य तथा तन्द्रा से रहित होकर सावधानी पूर्वक परिश्रम को दूर करनेवाले उसके मन के अनुकूल मधुर उपायों द्वारा उस की आराधना करो और जिस प्रकार से भी वह सन्तुष्ट हो, उसी प्रकार का अपना व्यवहार रखो। तुम जाओ, अपने कल्याण के लिए मैं आज तुम्हें

शुक्र को समर्पित कर रहा हूँ।' इन्द्र के इस प्रकार कहने के उपरान्त इन्द्रपुत्री जयन्ती ने पिता की सारी बातों को अंगीकार किया और वहाँ प्रस्थित हुई, जहाँ घोर तपस्या में निरत शुक्र समाधि में अवस्थित थे। ॥११०-११८॥

जयन्ती ने जाकर देखा कि द्विजवर्य शुक्र नीचे शिर किये हुए कण के धूम का पान कर रहे हैं, कोई यक्ष उन्हें उसी प्रकार गिराये हुए है, कुण्ड से धूम की धारा निकल रही है और शुक्र शान्त भाव से समाधि में लीन हैं। उसने वहाँ समीप में जाकर देखा कि शुक्र अपने शरीर में विभूति लगाये हुए हैं और एकदम दुर्बल हो गये हैं। शुक्र को इस प्रकार समाधि में अवस्थित देखकर पिता ने जैसा उपदेश किया था वैसा ही व्यवहार शुक्र की प्रसन्नता के लिए जयन्ती ने करना प्रारम्भ किया। वह शान्त मधुर तथा अनुकूल वचनों द्वारा सर्वदा प्रार्थना किया करती थी, समय-समय पर अंगों को दबा दबाकर सुन्दर सुखदायी अपने कर-स्पर्श से शुक्र को आनन्द पहुँचाती थी। इस प्रकार व्रत तथा नियम आदि का पालन करते हुए उसने बहुत वर्षों तक वहाँ निवास किया। महान् कठोर एवं एक सहस्र वर्षों में समाप्त होनेवाले उस धूम्रपान व्रत के समाप्त हो जाने पर शुक्र के ऊपर शिव जी प्रसन्न हुए और वरदान देकर उन्होंने शुक्र को उक्त मंत्रशक्ति से सम्पन्न कर परम ऐश्वर्यवान् बना दिया। ॥११९-१२२॥

[व्रत समाप्ति के अवसर पर] **महादेव ने कहा**—'ब्रह्मन्! इस परम कठोर व्रत का अनुष्ठान आज तक किसी अन्य ने नहीं किया था। सर्वप्रथम केवल तुमने इसका पालन किया है। अतः अपने इस उग्र तप के प्रभाव, अपनी परम निर्मल बुद्धि, अपने ब्रह्मज्ञान, अपने पराक्रम तथा अपने तेज से तुम अकेले होकर भी सम्पूर्ण देवताओं को पराजित कर सकते हो। भृगुनन्दन! तुम अपने मन की सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करोगे; किन्तु इस मंत्र को किसी से भी मत बतलाना। द्विजश्रेष्ठ! इसी से तुम संसार के सभी प्राणियों के विजेता बने रह सकते हो।' इस वरदान को देने के बाद शिवजी ने शुक्र को प्रजापति, धनेश तथा अवध्य होने का भी वरदान दिया। इन सारे वरदानों को प्राप्त कर शुक्र मारे आनन्द से पुलकित हो उठे। उस हर्ष के अवसर पर महादेव के लिए उनके मुख से यह निम्नलिखित दिव्यस्तोत्र बाहर निकाल और वे उसी प्रकार नीचे पड़े हुए विनम्र भाव से महादेव की स्तुति करने लगे। ॥१२२-१२७॥

शुक्र ने कहा—भगवान् शितिकण्ठ को हमारा नमस्कार है। कनिष्ठ, सुवर्चस, लेलिहान, काव्य, वत्सर, अन्धसःपति, कपर्दी, कराल, हर्यक्ष्ण, वरद, संस्तुत, सुतीर्थ, देवाधिदेव, रंहस, उष्णीषी, सुवक्त्र, बहुरूप, वेधा, वसुरेता, रुद्र, तप, चित्रवास, ह्रस्व, मुक्तकेश, सेनानी, रोहित, कवि, राजवृत्त, तक्षक, क्रीडन, सहस्रशिरा, सहस्राक्ष, मीढुष्, वर, भव्यरूप, श्वेत, पुरुष तथा गिरिश को हमारा नमस्कार है। अर्क, वली, अज्यप, सुतृप्त, सुवस्त्र, धन्वी, भार्गव, निषङ्गी, तार तथा स्वक्ष को हमारा नमस्कार है। क्षपण, ताम्र, भीम, उग्र, शिव, महादेव, शर्व, विश्वरूप, शिव, हिरण्य, वरिष्ठ, ज्येष्ठ, मध्यम, वास्तोष्पति, पिनाक, मुक्ति, केवल, मृगव्याध, दक्ष, स्थाणु, भीषण, बहुनेत्र, धुर्य, त्रिनेत्र, ईश्वर, कपाली, वीर, मृत्यु, त्र्यम्बक, बभ्रु, पिशङ्ग,

पिंगल, अरुण, पिनाकी, इषुमान्, तथा चित्र को हम नमस्कार करते हैं। रोहित, दुन्दुभ्य, एकपाद, अज, बुद्धिद, आरण्य, गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी, सांख्य, योग, व्यापी, दीक्षित, अनाहत, शर्व, भव्येश, यम, रोधस, चेकितान, ब्रह्मिष्ठ, महर्षि, चतुष्पद, मेध्य, रक्षी, शीघ्रग, शिखण्डी, कराल, दंष्ट्री, विश्ववेधा, भास्वर, प्रतीत, सुदीप्त, सुमेधा, क्रूर, अविकृत, भीषण, शिव, सौम्य, मुख्य, धार्मिक, शुभ, अवध्य, अमृत, नित्य, शाश्वत, व्यापृत, विशिष्ट, भरत, साक्षी, क्षेम, सहमान, सत्य, अमृत, कर्त्ता, परशु, शूली, दिव्यचक्षु, सोमपा, आज्यपा, धूमपा, ऊष्मपा, शुचि, परिधान, सद्योजात, मृत्यु, पिशिताश, सर्व, मेघ, विद्युत, व्यावृत्त, वरिष्ठ, भरित, तरक्षु, त्रिपुरघ्न, तीर्थ, अवक्र, रोमश, तिग्मायुध, व्याख्य, सुसिद्ध, पुलस्ति, रोचमान, चण्ड, स्फीत, ऋषभ, व्रती, युञ्जमान, शुचि, ऊर्ध्वरेता, असुरघ्न, स्वघ्न, मृत्युघ्न, यज्ञिय, कृशानु, प्रचेता, वह्नि, निर्मल, रक्षोघ्न, पशुघ्न, अविघ्न, श्वसित, विभ्रान्त, महान्त, अणु, दुर्गम, कृष्ण, जयन्त, सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर, अनाश्रित, वेध्य एवं समस्त संसार में सम रूप से अधिष्ठित रहने वाले प्रभु को हमारा नमस्कार है। हिरण्य-बाहु, व्याप्त, मह, सुकर्मा, प्रसह्य, ईशान, सुचक्षु, क्षिप्रेषु, सदश्व, शिव, मोक्ष देनेवाले, कपिल, पिशंग, महादेव बुद्धिमान, महाकाम, दीप्त, रोदन, सह, दृढ़धन्वी, कवची, रथी, वरूथी, भृगुनाथ, शुक्र, गह्वरेष्ठ, वेधा, अमोघ प्रशान्त, सुमेधा, वृष और मृगचर्म धारण करनेवाले विश्व स्वरूप तुमको हम प्रणाम करते हैं। हे भगवन्! पशुपति तथा भूतों के स्वामी तुम्हें हमारा नमस्कार है। प्रणव तथा ऋक् यजु सामवेद स्वरूप, स्वाहा, स्वधा एवं वषट्कार स्वरूप तथा मंत्रात्मा तुमको हमारा नमस्कार है। त्वष्टा, धाता, कर्त्ता, संसार के चक्षुश्रोत्रमय, भूत, भव्य, भवेश तथा कर्मस्वरूप तुम्हारे लिए हमारा अनेक नमस्कार है। वसु, साध्य, रुद्र आदित्यादि देवताओं के स्वरूप तुमको हमारा नमस्कार है। तुम विष, पवन तथा देवस्वरूप हो। अग्नि, सोम आदि यज्ञों की विधि को जानने वाले, पशु, मंत्र तथा औषधि रूप, स्वयं उत्पन्न होनेवाले, अज, अपूर्वप्रथम (जिसके पूर्व तथा प्रथम कोई नहीं उत्पन्न हुआ था) प्रजापति तथा ब्रह्मात्मा तुम्हारे लिए हमारा नमस्कार है। तुम आत्मेश, आत्मवश्य, सर्वेश, अतिशय, सर्वभूताङ्गभूत (संसार के सभी जीवों के शरीर रूप) तथा भूतात्मा हो, तुम्हें हम प्रणाम करते हैं। तुम पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव्यस्वरूप तथा महान् हो, जनस्तप तथा सत्यस्वरूप हो, तुमको हमारा नमस्कार है। अव्यक्त, महान्, सभी जीवधारियों के इन्द्रिय रूप, आत्मज्ञ, विशेष एवं सर्वात्मा तुमको हम नमस्कार करते हैं। नित्य, आत्मलिंग, सूक्ष्म, इतर, बुद्ध, विभव तथा मोक्षस्वरूप तुमको हमारा नमस्कार है। तीनों इहलोकों में तुम्हें नमस्कार है, तीनों परलोकों में तुम्हें नमस्कार है, चारों युगों में महदादि सत्य पर्यन्त निखिल पदार्थ स्वरूप तुमको हम नमस्कार करते हैं। यदि इस स्तोत्र में मुझसे कोई त्रुटियाँ वा स्खलन हो गया हो तो हे ब्राह्मणों के रक्षक! आप यह जानकर कि 'यह मेरा भक्त है' मुझे क्षमा करेंगे। ॥१२८-१६८॥

सूत ने कहा—इस प्रकार ऊपर कहे गये स्तोत्र द्वारा नीललोहित भगवान् शंकर की स्तुति कर शुक्र विशेष विनम्र हो हाथ जोड़कर चुप हो गये। भगवान् शिव प्रीतिपूर्वक शुक्र के शरीर का अपने हाथ से स्पर्श कर यथेष्ट दर्शन देने के उपरान्त वहीं अन्तर्हित हो गये। देवाधिदेव शंकर के अन्तर्हित हो

जाने पर शुक्र ने अपने समीप दासी रूप में अवस्थित इन्द्रपुत्री जयन्ती को देखकर यह कहा—'हे सुन्दरि ! तुम किसकी पुत्री हो, जो मेरे साथ इस तपस्या में अनेक कठोर दुःखों का अनुभव कर रही हो । और किस लिए इन घोर तपस्या के नियमों का पालन करती हुई मेरी सेवा में दत्तचित्त हो ? सुन्दरि ! सुश्रोणि ! तुम्हारी इस अपूर्व भक्ति, विनय, संयम, कष्टसहिष्णुता तथा स्नेह से मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हूँ । वरारोहे ! मुझसे तुम क्या चाहती हो ? तुम्हारी क्या इच्छा है ? उसे तुम अवश्य प्राप्त करोगी ! तुम्हारे मनोरथ को मैं आज अवश्य पूर्ण करूँगा, भले ही वह अति दुष्कर क्यों न हो ।' ॥१६९-१७४॥

शुक्र के ऐसा कहने पर जयन्ती ने कहा—'ब्रह्मन् ! मेरे सारे मनोरथों को आप अपने तपोबल से जान सकते हैं, आप से इस जगत् में कोई भी वस्तु अज्ञात नहीं है ।' जयन्ती के इस प्रकार कहने पर शुक्र ने अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा उसके मनोरथ को जानकर कहा—'सुन्दरि ! सुश्रोणि ! नीले कमल के समान श्यामवर्णवाली ! वामलोचने ! मृदुभाषिणि ! सुयोग्य ! देवि ! मेरे साथ दस वर्षों तक समस्त प्राणधारियों के विना देखे यदि संयोग की इच्छा कर रही हो तो अपने मनोवाञ्छित को मुझसे तुम प्राप्त करोगी । हे नवोढे ! ऐसा ही होगा, चलो अपने घर चलें ।' ऐसा कहकर शुक्र अपने घर चले आये और वहाँ आकर जयन्ती का पाणिग्रहण संस्कार किया; फिर अपनी माया से संसार के सभी जीवों से अदृश्य होकर दस वर्ष तक उसके साथ सहवास किया । शुक्र को अपना मनोरथ प्राप्त कर तपोवन से लौटते देख दिति के सभी पुत्रगण प्रसन्न होकर उन्हें देखने के लिये उनके घर गये; पर वहाँ जाकर माया द्वारा छिपे हुए शुक्र को वे नहीं देख सके तो यह सोचकर कि 'वह शुक्र की छाया रही होगी' वे जैसे आये थे वैसे लौट गये । उधर बृहस्पति ने शुक्र को जयन्ती के कल्याण की इच्छा से सन्तुष्ट करने के लिए दस वर्षों तक वरदान द्वारा बँधा हुआ जानकर, और यह सोचकर कि इस अवधि के भीतर दैत्यों के साथ शुक्र की भेंट तो हो नहीं सकती, इन्द्र की प्रेरणा से शुक्र का रूप धारण किया और राक्षसों को बुलाया । बुलाने पर आये हुए राक्षसों को देखकर बृहस्पति ने कहा—'मेरे यजमानों का स्वागत है । तुम लोगों के कल्याण के लिये मैं तपोवन से आ गया । वहाँ जिन विद्याओं को मैंने प्राप्त किया है उन्हें तुम लोगों को पढ़ाऊँगा ।' गुरु की ऐसी बातें सुन प्रमुदित होकर विद्या प्राप्त करने के लिए सभी दैत्यगण एकत्र हो गये । उधर दस वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरान्त शुक्र ने अपने यजमानों को देखने की इच्छा की । यह सुना जाता है कि उक्त अवधि की समाप्ति के उपरान्त शुक्र के संयोग से जयन्ती में देवयानी की उत्पत्ति हुई । तदनन्तर शुक्र ने जयन्ती से कहा—'देवि ! शुचिस्मिते ! चंचल ताकनेवाली ! विशाल नेत्रे ! पतिव्रते ! मैं अब अपने यजमानों की देखभाल के लिए जा रहा हूँ ।' शुक्र के इस प्रकार कहने पर जयन्ती ने कहा—'ब्रह्मन् ! महान् व्रत करनेवाले ! आप अपने भक्त असुरों की हितकामना अवश्य करें, सज्जनों का यही धर्म है । आपके इस धर्म को मैं नष्ट नहीं करना चाहती ।' ॥१७५-१८८॥

जयन्ती के इस प्रकार सहमत हो जाने पर शुक्र अपने शिष्यों के पास, जो बुद्धिमान् देवगुरु बृहस्पति द्वारा शुक्र रूप से वञ्चित किये गये थे, गये और बोले—'दैत्यवृन्द ! अपनी सेवा द्वारा भगवान्

शिव को जिसने प्रसन्न कर लिया है ऐसा आप लोगों का गुरु शुक्र मैं हूँ, मुझे ही शुक्र समझो, सब लोग यह ध्यानपूर्वक सुन लो कि तुम सभी बृहस्पति के छल से छले गये हो।' ऐसी भ्रामक बातें बोलते हुए शुक्र को एकाएक देखकर सभी दैत्यगण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये और इतने पर भी उन दोनों ही महानुभावों को वहाँ विराजमान देख वे आश्चर्यचकित रह गये और एकदम मूढ़ों की भाँति कुछ भी न जान सके कि वास्तविक स्थिति क्या है? इस प्रकार अपने शिष्यों को किंकर्तव्यविमूढ़ देख शुक्र पुनः बोले—'दैत्यवृन्द! तुम लोगों का आचार्य शुक्र मैं हूँ, और यह मेरे स्वरूप में दूसरा व्यक्ति देवताओं का गुरु बृहस्पति है। इधर आओ, मेरे पीछे-पीछे चलो, इस बृहस्पति को छोड़ दो।' शुक्र के इस प्रकार कहने पर भी दैत्यगण जब एक ही स्वरूपवाले दोनों महानुभावों को देखकर उन दोनों में से अपने गुरु को भली भाँति निश्चित नहीं कर सके कि कौन हैं, तब धैर्यपूर्वक तपस्वी बृहस्पति ने राक्षसों से कहा—'हे दैत्यवृन्द! तुम लोगों का आचार्य शुक्र मैं ही हूँ, यह मेरे ही समान रूपधारी बृहस्पति है। हे असुरगण! यह तुम लोगों को हमारा रूप धारण कर विमोहित कर रहा है।' बृहस्पति की बातें सुन दैत्यों ने एक स्वर से कहा—'यह हमारे गुरु आज दस वर्षों से निरन्तर हम लोगों को पढ़ाते आये हैं, यही संसार के सभी तत्वों के मूल में प्रवेश करने के इच्छुक, ब्रह्मज्ञानी महर्षि हमारे गुरु भगवान् शुक्र हैं।' ऐसा कहकर उन सभी दैत्यों ने बहुत दिनों के निरन्तर सहवास के अभ्यासी होने से मोहित होकर बृहस्पति को ही प्रणाम कर अभिनन्दित किया और उन्हीं के उपदेशों को अङ्गीकार भी किया। क्रोध से लाल नेत्रवाले उन सभी असुरों ने शुक्र से कहा—'यही हम लोगों के हितेच्छु हमारे सच्चे गुरु हैं, तुम हमारे गुरु नहीं हो, अतः यहाँ से चले जाओ। यह चाहे शुक्र हों अथवा बृहस्पति ही क्यों न हों, यही हमारे गुरु भगवान् हैं, हम सब लोग इन्हीं की आज्ञा में स्थित हैं, हम लोगों के लिए यही कल्याणप्रद भी होगा, अतः तुम यहाँ से शीघ्र चले जाओ, देर न करो। ॥१८९-२००॥

दैत्यगण शुक्र को इस प्रकार की अपमानपूर्ण बातें कहकर बृहस्पति के समीप चले आये। जब अपने द्वारा बताई गई महाकल्याण की बातें असुरों ने नहीं मानीं तब भृगुनन्दन शुक्र जी उनके इस गर्व से बहुत क्रुद्ध हुए और बोले—'दैत्यवृन्द! मेरे बार बार के समझाने पर भी तुम लोग मेरा कहना नहीं मान रहे हो, अतः तुम लोगों की चेतना नष्ट हो जायगी और इस होनेवाले भावी संग्राम में पराजय प्राप्त करोगे।' दैत्यों से ऐसा कहकर शुक्र जैसे आये थे वैसे वापस चले गये। शुक्र द्वारा राक्षसों को शापित जानकर बृहस्पति अपना मनोरथ सफल समझ अति प्रसन्न हुए और तत्क्षण अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट हो गये। इस प्रकार अपनी बुद्धि द्वारा राक्षसों को निश्चय ही मरा जानकर वे कृतार्थ हो अन्तर्हित भी हो गये। वहाँ से बृहस्पति के चले जाने पर दैत्यगण विशेष दुखी हुए और परस्पर कहने लगे—'हाय! हम लोग छले गये, अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति ने हमें चारों ओर से चौपट कर दिया। उसकी माया द्वारा हम लोग अपने-अपने मनोरथों से वञ्चित कर दिये गये।' इस प्रकार अतिशय दुखित एवं असंतुष्ट होकर वे सभी प्रह्लाद को आगे कर शुक्र के पीछे-पीछे पुनः शीघ्रता-

पूर्वक गये। वहाँ शुक्र के पास पहुँचकर वे एकदम चुप होकर खड़े हो गये। अपनी शरण में यजमानों को पुनः आया देखकर शुक्र ने कहा—'मेरे बार-बार के समझाने पर भी तुम लोगों ने मेरा सम्मान नहीं किया अतः उसी मेरे अपमान के कारण तुम पराजित हुए हो।' इस प्रकार आवेश में बोलते हुए शुक्र से आँसू गिराते हुए प्रह्लाद ने कहा—'हे भार्गव! आप हम लोगों को ऐसी परिस्थिति में न छोड़िये! हम सभी आप के अधीन हैं, आपके सेवक हैं, आपके भक्त हैं, हमें अपनाइये। वहाँ आपको पहले न देखकर हम लोग छले गये। देवगुरु ने हम सबको विमोहित कर लिया। हम लोग आपके कितने सच्चे भक्त हैं—इसे आप अपनी तपोमयी दिव्यदृष्टि से जान सकते हैं। हे भृगुनन्दन! यदि आप ऐसी भीषण परिस्थिति में हम लोगों के उपर प्रसन्न नहीं होते, और हम सबके अनिष्ट चिन्तन में ही निरत रहते हैं तो हम लोग यहाँ न रहकर रसातल को चले जायँगे।' इस प्रकार अति दीन वचनों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भृगुपुत्र शुक्र के हृदय में दैत्यों के प्रति अनुकम्पा तथा करुणा की उत्पत्ति हुई, और सभी वृत्तान्तों को यथार्थतः समझकर अपने बढ़े हुए क्रोध को उन्होंने वश में किया और बोले—'अच्छी बात है। अब तुम लोग मत डरो और रसातल को मत जाओ। किन्तु मेरे बहुत सचेष्ट रहने पर भी भविष्य में होनेवाले जो अनर्थ हैं वे तो अवश्य ही घटित होंगे, उन्हें मैं भी अन्यथा नहीं कर सकता। विधि-विधान बलवान है। तुम लोगों की चेतना नष्ट हो जाने का जो प्रथम अभिशाप मैंने दिया था उसे तो आज ही प्राप्त करोगे। एक बार देवताओं को जीतकर भी अपनी बारी आने पर तुम सब पाताल लोक को प्राप्त करोगे। क्योंकि ब्रह्मा ने ऐसी ही बातें कही थीं। मेरी ही कृपा से तुम लोगों ने इतने दिनों तक इस विशाल त्रैलोक्य का उपभोग किया है। देवताओं के शिर पर शासनाधिरूढ़ होकर तुम लोग दस युग बिता चुके हो। इतने ही दिनों के लिए तुम लोगों के राज्य को ब्रह्मा ने कहा भी था। हे प्रह्लाद! सावर्णिक नामक मन्वन्तर में तुम्हें पुनः त्रैलोक्य का राज्य प्राप्त होगा और तुम्हारा पौत्र बलि उस समय समस्त लोकों का अधीश्वर होगा। इस प्रकार की बातें स्वयं विष्णु ने तुम्हारे पौत्र बलि के विषय में मुझसे कही हैं। विष्णु (वामन) द्वारा बलि को वचन बद्ध करके त्रैलोक्य के ले लेने पर वे सारी बातें निश्चय ही घटित होंगी। यतः उसकी प्रवृत्तियाँ सत्य से विमिश्रित हैं अतः सुप्रसन्न होकर स्वयम्भू ने यह राज्य प्रदान किया है। मुझसे ईश्वर ने यह पहले ही कह दिया था कि देवताओं के राज्य पद पर बलि अधिष्ठित होगा, इसी कारणवश उस समय की प्रतीक्षा करता हुआ वह अदृश्य भाव से स्थित है। स्वयम्भू ने अतिप्रसन्न होकर तुम्हें जो अन्य वरदान दिया है, उसके लिए इस समय निरुत्सुक होकर सभी असुरों के साथ तुम चुपचाप स्थित रहो। हे समर्थ! उन भविष्य में घटित होनेवाली घटनाओं को जाननेवाले ब्रह्मा द्वारा निषेध किये जाने के कारण मैं सारी बातें तुमको नहीं बतला सकता, जो भविष्य में घटित होंगी। ये दोनों हमारे शिष्य हैं जो बृहस्पति के समान प्रभावशाली हैं, देवताओं के साथ युद्ध छिड़ने पर ये तुम लोगों की रक्षा करेंगे।' परम उदार शुक्राचार्य के इतना कह चुकने पर समस्त असुरगण अति प्रमुदित हो महात्मा प्रह्लाद के साथ अपने निवास की ओर प्रस्थित हो गये। शुक्र के कथनानुसार उन लोगों ने एक बार और विजय प्राप्त करने की

आशा बाँधकर विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर देवताओं को युद्ध के लिए ललकारा। देवताओं ने भी असुरों को संग्राम के लिए रणाङ्गण में इस प्रकार उपस्थित देखकर सभी रण सामग्रियों से सुसज्जित हो घोर युद्ध किया। उस देवासुर संग्राम में इस प्रकार घोर युद्ध होते हुए जब सौ वर्ष व्यतीत हो गये तब असुरों ने देवताओं को जीत लिया। पराजित देवताओं ने परस्पर मन्त्रणा की कि 'यज्ञ करके हम लोग उन दोनों अपने बिछुड़े साथी शुक्र के शिष्य शण्डामर्क को जब बुलाएँगे तभी असुरों पर विजय प्राप्त कर सकेंगे।' इस प्रकार मन्त्रणा कर लेने के उपरान्त यज्ञ का समारम्भ कर उन दोनों को बुलाकर देवताओं ने कहा — 'विप्रयुग्म! आप लोग असुरों को छोड़ दें, हम सभी देवगण राक्षसों को जीतने के बाद आप दोनों की शरण एवं आज्ञा में रहेंगे!' इस प्रकार शण्डामर्क को षड्यन्त्र द्वारा अपनी ओर मिला लेने के बाद जब देवताओं ने राक्षसों के साथ युद्ध किया तब वे सचमुच विजयी हुए। दानवगण इस बार पराजित हो गये। शण्डामर्क द्वारा परित्यक्त होने एवं प्रमुख सेनापतियों की मृत्यु हो जाने के कारण राक्षसगण निर्बल हो गये। इस प्रकार प्राचीनकाल में शुक्र के शाप के कारण वे मारे गये। शुक्र के शाप से पराजित एवं देवताओं द्वारा अपदस्थ किये जाने पर वे सभी ओर से निराधार होकर रसातल को चले गये। इस प्रकार देवताओं द्वारा अति कष्ट देकर असुरगण विवश किये गये। पृथ्वी पर धर्म के अति शिथिल हो जाने पर भृगु के शापवश भगवान् ने पुनः पुनः जन्म धारण कर धर्म की व्यवस्था एवं अधर्म करनेवाले राक्षसों का इस प्रकार संहार किया था। ॥२०१-२३५॥

पूर्वकाल में भगवान् ब्रह्मा ने ऐसा कहा था कि जो असुर दैत्यराज प्रह्लाद के अनुशासन में नहीं रहेंगे, वे मनुष्यों द्वारा मारे जायँगे। चाक्षुष मन्वन्तर में धर्म से नारायण भगवान् विष्णु का एक अंशावतार हुआ था। उनके प्रादुर्भाव के पश्चात् वैवस्वत नामक मन्वन्तर में देवताओं ने यज्ञों का अनुष्ठान किया था। उस यज्ञ में स्वयं ब्रह्मा पुरोहित थे। चौथे मन्वन्तर में, जब कि देवगण अत्यन्त विपत्ति में फँसे थे, हिरण्यकशिपु के वध के लिए समुद्रान्त में नृसिंहावतार हुआ था। इस द्वितीय नृसिंहावतार के अवसर पर भगवान शङ्कर पुरोहित थे। सातवें मन्वन्तर में, जब कि तीनों लोक दैत्यराज बलि के अधीन थे, त्रेतायुग में भगवान का तीसरा वामन नामक अवतार हुआ था, जिसमें स्वयं धर्मराज पुरोहित के पद पर आसीन थे। हे विप्रवृन्द! विष्णु भगवान की यह तीन दिव्य उत्पत्तियाँ कही जाती हैं, मनुष्य योनि में जो अन्य सात उत्पत्तियाँ शुक्र के शाप के कारण हुई हैं, अब उन्हें सुनिये। सर्वप्रथम त्रेतायुग में, जब कि धर्म का एक चतुर्थ अंश नष्ट हो गया था, मार्कण्डेय को पुरोहित कर भगवान दत्तात्रेय के रूप में अवतीर्ण हुए थे। फिर पन्द्रहवें त्रेता युग में उत्तङ्क को आगे करके मान्धाता नामक चक्रवर्ती राजा के रूप में वे पाचवीं बार उत्पन्न हुए थे।' फिर उन्नीसवें त्रेता युग में निखिल क्षत्रिय वंश को विनष्ट करनेवाले महर्षि जमदग्नि के पुत्र के रूप में छठवीं बार परशुराम जी का अवतार हुआ था, उस अवसर पर विश्वामित्र पुरोहित थे। फिर चौबीसवें त्रेतायुग में, महर्षि वशिष्ठ के पौरोहित्य में दशरथ सुत रामचन्द्र जी रावण के विनाशार्थ सातवीं बार अवतीर्ण हुए थे। फिर अट्ठाईसवें द्वापर युग में विष्णु भग-

वान्, पराशर मुनि के संयोग से, वेदव्यास के रूप में, जातूकर्ण्य के पौरोहित्य में उत्पन्न हुए थे, जो आठवाँ अवतार था। धर्म की व्यवस्था तथा राक्षसों के विनाशार्थ नवीं बार बुद्ध भगवान्, जिनके नेत्र कमल की तरह सुन्दर थे, देवताओं के समान सुन्दर स्वरूप धारण कर द्वैपायन को पुरोहित बना कर उत्पन्न हुए थे। उसी युग की समाप्ति के अवसर पर, जब कि सन्ध्यांश मात्र शेष रह जाता है, भगवान का दशम अवतार विष्णुयश के पुत्र रूप में कल्कि के नाम से होगा, जिसमें याज्ञवल्क्य पुरोहित होंगे। यह दसवाँ अवतार, जो भविष्य में होने वाला है, संसार के सभी विधर्मी जीवों को तथा पाषण्डों को चारों ओर से एकदम शान्त करके शत-शत सहस्र-सहस्र शस्त्रास्त्र धारण करनेवाले ब्राह्मणों के साथ होगा, और शूद्र राजाओं को इस पृथ्वी से निःशेष कर देगा। ब्राह्मणों से द्वेष करनेवाले शत्रुओं के संहार करने के लिए ही वह कल्कि अवतार होगा। उस पच्चीसवें कलियुग में अपने सैनिकों के साथ स्वयम् समुद्र पर्यन्त तक शूद्रों को भली भाँति दण्ड देकर एवं उन्हें परिशुद्ध करके ही वह कल्कि अवतार विश्राम लाभ करेगा। चक्र को धारणकर भगवान् का वह अवतार दुष्टों का और प्रायः उन अधार्मिक शूद्रों का समूल विनाश कर देगा। तदुपरान्त सैनिकों के साथ कल्कि भगवान् अपने उद्देश्यों को चरितार्थ करेंगे जिससे प्रजाएँ अति सन्तुष्ट हो उनकी साधना में निरत होंगी। और तदनन्तर एक बार पुनः विना किन्हीं कारणों के ही प्रजाएँ आपस में विधि विधान से प्रेरित होकर अज्ञान में फँस कर कोप के वश हो जायँगी। उस समय अवधि समाप्त हो जाने के कारण भगवान् कल्कि भी अन्तर्हित हो चुके रहेंगे। जिससे सभी लोग संग्राम में एक दूसरे को मार पीट कर अति दुखित होंगे। इस प्रकार सभी प्रजावर्ग स्त्री तथा परिवार से विहीन होकर वर्ण तथा आश्रम धर्मों से च्युत होकर अपने अपने पुरों तथा नगरों को भी छोड़ देंगे। उस युग विनाश के अवसर पर देश के लोग अटारियों के बेचनेवाले, चौराहे शिवमूर्ति के बेचने वाले तथा स्त्रियाँ केशराशि अथवा सतीत्व को बेचनेवाली उत्पन्न होंगी। सभी लोग छोटे छोटे शरीर वाले तथा अल्पायु होंगे, वन में घर बनायेंगे, नदी तथा पर्वतीय प्रान्तों में निवास करेंगे। कन्द, मूल, पत्ते तथा फलों को खाकर जीवन यापन करेंगे। चीर, चमड़े तथा मृगचर्म को पहनने वाले, घोर संकरवर्ण, उत्पात तथा दुःखों से सताये गये, निर्धन तथा अनेक आपत्तियों से वे घिरे होंगे। कलियुग की समाप्ति तथा सतयुग के प्रारम्भ के उस संधिकाल के आने पर इसी प्रकार के अनेक कष्टों से युक्त वे सारी प्रजाएँ कलियुग के साथ ही विनष्ट हो जायँगी। कलियुग के व्यतीत हो जाने पर सतयुग का प्रारम्भ होगा। इन समस्त देवता तथा राक्षसों के वृत्तान्त एवं यदुवंश के प्रसंग में कृष्ण भगवान के यशस्वी वंश के संक्षिप्त वृत्तान्त को मैं भली भाँति कह चुका। अब इसके उपरान्त तुर्वसु, पूरु, द्रुह्यु तथा अनु के वंश वृत्तान्त को कह रहा हूँ। ॥२३५-२६३॥

श्री मात्स्य महापुराण में असुरशाप नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! ययातिपुत्र तुर्वसु का पुत्र गर्भ था, जिसका पुत्र गोभानु हुआ। गोभानु का पुत्र वीर त्रिसारि था, जो कभी शत्रुओं द्वारा पराजित नहीं हुआ। त्रिसारि का पुत्र करंधम था, जिसका पुत्र भरत था। पौरव पुत्र निष्पाप दुष्यन्त था, उसका पुत्र अकल्मष था। प्राचीन काल में वृद्धावस्था के परिवर्तन के अवसर पर ययाति के शाप के कारण तुर्वसु का वंश स्वयं प्रसिद्ध न रहकर पौरव (पूरु के वंश) वंश में सम्मिलित हो गया था। दुष्यन्त का पुत्र राजा वरूथ था। वरूथ से अएडीर नामक पुत्र हुआ, उसके पुत्र संधान, पाराड्य, केरल, चोल तथा कर्ण थे। जिनके सुसमृद्ध देश पाराड्य, चोल तथा केरल नाम से विख्यात हैं। द्रुह्यु के दो शूर पुत्र सेतु तथा केतु थे। सेतु का पुत्र शरद्वान् था, जिसका पुत्र गन्धार हुआ। उसी के नाम से गान्धार नामक महान् देश विख्यात है। गन्धार के आरट्ट नामक प्रदेश में उत्पन्न अश्व बहुत ही श्रेष्ठ कोटि के होते हैं। गान्धार का पुत्र धर्म था, जिसका पुत्र घृत हुआ, घृत से विदुष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र प्रचेता हुआ। प्रचेता के सौ पुत्र थे जो सबके सब उत्तर दिशा में स्थित म्लेच्छ राष्ट्रों के अधीश्वर थे। अनु के तीन परम धार्मिक तथा शूर सभानर, चाक्षुष तथा परमेषु नामक पुत्र हुए। सभानर का पुत्र विद्वान् राजा कोलाहल हुआ। कोलाहल का धर्मात्मा पुत्र संजय नाम से विख्यात था। संजय का वीर पुत्र पुरंजय हुआ, पुरंजय के पुत्र महाराज जनमेजय हुए। इन राजर्षि जनमेजय के महाशाल नामक पुत्र हुआ, जो इन्द्र के समान प्रतिष्ठित तथा यशस्वी राजा था। उस महाशाल का परम धार्मिक, सातों द्वीपों का अधिपति चक्रवर्ती महामना नामक पुत्र था। महामना ने दो विख्यात पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम धर्मज्ञ उशीनर तथा तितिक्षु थे। उशीनर की पाँच स्त्रियाँ श्रेष्ठ राजवंश में उत्पन्न हुई थीं, उनके नाम भृशा, कृशा, नवा, दर्शा तथा देवी दृषद्वती थे। इन पाँचों स्त्रियों के गर्भ द्वारा उत्पन्न होनेवाले उशीनर के पुत्रगण अपने वंश के नेता तथा उद्धारक थे, जो अपने पिता की घोर तपस्या के प्रभाव से परम धार्मिक स्वभाववाले थे। भृशा का पुत्र नृग तथा नृग का पुत्र नव था, कृशा के गर्भ से कृश नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, और दर्शा के गर्भ से सुव्रत नामक एक पुत्र हुआ। दृषद्वती का पुत्र शिवि हुआ, जो औशीनर राजा शिवि के नाम से विख्यात था। शिवि के लोकविख्यात चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो शिविगण के नाम से विख्यात थे; उनके नाम पृथुदर्भ, सुवीर, केकय तथा भद्रक थे। इन पुत्रों के समृद्ध देश केकय, भद्रक, तथा सौवीर नाम से विख्यात थे। अन्य पुत्र नृग के देश पौर तथा केकय थे। सुव्रत की अम्बष्ठा तथा कृश की वृषला नामक पुरी थी, नव नामक पुत्र का देश नवराष्ट्र नाम से विख्यात था। अब तितिक्षु नामक पुत्र के परिवार का वर्णन सुनो। तितिक्षु पूर्व दिशा में अति विख्यात राजा हुआ था, उसका पुत्र वृहद्रथ था, जिसका पुत्र सेन हुआ। सेन के संयोग से सुतपा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, सुतपा का पुत्र (दैत्यराज) बलि हुआ, जो अपने वंशधरों के विनष्ट हो जाने पर पुनः सन्तति प्राप्त करने की इच्छा से मनुष्य योनि में उत्पन्न हुआ था। महात्मा (वामन) द्वारा बन्धनों से बाँधे

गये महायोगी उस बलि ने पाँच क्षेत्रज[1] पुत्रों को उत्पन्न किया, जो सब के सब राजा हुए। बलि के उन पुत्रों के नाम अंग, बंग, सुह्म, पुण्ड्र तथा कलिंग थे, जो बलि के क्षेत्रज पुत्रों के नाम से पुकारे जाते थे। वे पुत्रगण ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न होकर बलि के वंशवर्द्धक हुए। ॥१-२५॥

पूर्वकाल में परम सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने बुद्धिमान् बलि को महायोगी तथा कल्पपर्यन्त चिरजीवी होने का वरदान दिया था। इसी के साथ संग्राम में अजेयता, धर्म में उत्तम बुद्धि, त्रिकालज्ञता, प्रसव में प्रधानता, युद्ध में अनुपम विजय तथा धर्म में तत्त्वार्थदर्शन की प्राप्ति का भी वरदान बलि को ब्रह्मा द्वारा मिला था, जिसके फलस्वरूप वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चारों वर्णों की व्यवस्था तथा स्थापना करने वाला हुआ। बलि के उन पाँच क्षेत्रज पुत्रों के अंग, बंग, सुह्मक, पुण्ड्र तथा कलिंग नामक पाँच वंश प्रख्यात हुए। अब अंग के पुत्रों का वर्णन सुनिये। ॥२६-२९॥

मुनियों ने कहा—महात्मा बलि के वे पाँच क्षेत्रज पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुए थे? बलि की स्त्री का क्या नाम था? और कौन से ऋषि उनके पुत्रों के जन्मदाता थे? उन्होंने किस प्रकार बलि की स्त्री के गर्भ द्वारा इन पुत्रों को उत्पन्न किया? उस ऋषि के माहात्म्य तथा प्रभाव को हम लोग विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं, कृपया बतलाइये। ॥३०-३१॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! प्राचीन काल में उशिज नाम से विख्यात एक विद्वान् ऋषि थे। इन महात्मा की पत्नी का नाम ममता था। उशिज के छोटे भाई बृहस्पति महान् तेजस्वी थे। एक बार कामवश होकर उन्होंने अपने बड़े भाई की पत्नी ममता के पास जाकर काम प्रार्थना की। सुन्दरी ममता ने अपने देवर बृहस्पति से कहा—'मैं सम्प्रति आपके बड़े भाई उशिज के संयोग से गर्भवती हूँ, अतः ऐसा अनुचित प्रस्ताव मत कीजिये, यह विचार छोड़ दीजिये। महाभाग्यशाली बृहस्पते! आप के इस व्यवहार से मेरा गर्भावस्थित शिशु, जो आप के बड़े भाई उशिज के संयोग से है और सभी अंगों से समन्वित हो चुका है, वेदों का उच्चारण करता है, अतः वह कुपित हो जायगा। और भी, हे सुरश्रेष्ठ! आपका वीर्य कभी निष्फल होने वाला नहीं है। अतः ऐसे अवसर पर आप मेरे साथ समागम नहीं कर सकते, अथवा हे प्रभो! इस अवसर के व्यतीत हो जाने के उपरान्त आप जैसा कुछ उचित समझेंगे करेंगे।' ममता के इस प्रकार भली भाँति समझा कर कहने पर भी परम तेजस्वी बृहस्पति इतने कामासक्त हो गये कि महात्मा होने पर भी अपने चंचल मन को वश में नहीं कर सके। और अन्ततः समागम की इच्छा न करनेवाली उस ममता के साथ उन्होंने बलात् समागम किया ही। वीर्य पात करते समय गर्भस्थ शिशु ने बृहस्पति से कहा—'तात बृहस्पते! इस उदरस्थली में दो पुरुषों द्वारा छोड़े गये वीर्यों से उत्पन्न होने वाले दो गर्भों की अवस्थिति नहीं हो सकती, क्योंकि आप भी अमोघ वीर्य वाले हैं और मैं यहाँ पर पहले ही से आ चुका हूँ।' गर्भ के ऐसा कहने पर क्रुद्ध होकर भगवान् बृहस्हति ने अपने ज्येष्ठ भाई उशिज के संयोग से होने वाले उस गर्भावस्थित शिशु को शाप

[1] क्षेत्रज वे पुत्र माने गये हैं जो अपनी विवाहिता स्त्री में दूसरे पुरुष के संयोग से उत्पन्न हों। ये भी बारह प्रकार के पुत्रों में से एक माने गये हैं।

देते हुए कहा—'ऐसे आनन्द के अवसर पर गर्भावस्थित होकर भी जो तुम निषेध कर रहे हो और मुझसे ऐसी बातें कर रहे हो सो इस पाप के कारण तुम दीर्घकाल तक घोर अंधकार में विलीन रहोगे।' वृहस्पति के इस घोर शाप के कारण ममता के उस गर्भ से दीर्घतमा नामक बालक उत्पन्न हुआ। उशिज का वह बालक तेजस्विता में वृहस्पति के ही समान था। अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला वह दीर्घतमा अपने भाई के आश्रम में निवास करता था। उसका भाई उसका पालन पोषण करता था। वहाँ पर निवास करते हुए दीर्घतमा ने एक बार वृषभ द्वारा गौ धर्म का उपदेश प्राप्त किया। भाई के आश्रम में निवास करते समय दैवेच्छा वश एक वृषभ आया और यज्ञ कार्य के लिए लाये गये कुशों के ऊपर घूमने लगा। दीर्घतमा ने कुशों के ऊपर चलते हुए वृषभ की दोनों सीगों को कस कर पकड़ लिया। सीगों के पकड़ लेने पर वह वृषभ एक पग भी इधर-उधर नहीं चल सका और अन्त में विवश होकर बोला—'हे बलवानों में सर्वश्रेष्ठ! मुझे आप छोड़ दें। तात! आपके समान बलशाली कोई अन्य व्यक्ति मुझे कहीं नहीं मिला। मेरे ही समान बलवान कोई व्यक्ति अन्यत्र कहीं नहीं है। तात! मैं पुनः आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि मुझे छोड़ दीजिये। मैं आपके ऊपर अति प्रसन्न हूँ। मुझसे इसके बदले में वरदान माँग लीजिये।' वृषभ के ऐसा कहने पर दीर्घतमा ने कहा—'मेरे जीते जी तुम यहाँ से कहाँ जा सकोगे? तुम जैसे पराये धन को खाने वाले चतुष्पद को मैं अब नहीं छोड़ूँगा।' ॥३२-४८॥

वृषभ ने कहा—तात! ऐसे कार्यों के करने में हम लोगों के लिए न तो पाप लगता है और न चोरी लगती है, खाने और न खाने योग्य तथा पीने और न पीने योग्य वस्तुओं में भी हम लोगों के लिए कोई विचार नहीं रखा जाता। ये सभी धर्म द्विपद मनुष्यों के लिए विचारणीय हैं; किन्तु हम चतुष्पदों के लिए कुछ भी कार्य अथवा अकार्य, गम्य अथवा अगम्य का विचार नहीं किया जाता। ॥४९-५०॥

सूत ने कहा—उक्त वृषभ द्वारा गौ (पशु) धर्म की ऐसी व्यवस्था सुन दीर्घतमा ने अति आदर पूर्वक उसे छोड़ दिया। और अपनी शक्ति के अनुकूल अन्न पान आदि देकर उसे प्रसन्न भी किया। प्रसन्न होकर वृषभ के चले जाने के उपरान्त दीर्घतमा ने भक्ति एवं निष्ठापूर्वक उक्त गौ धर्म पर अपने मन में विचार और समाधान किया। तथा उसे हृदय से अंगीकार कर उसी धर्म के पालन करने का निश्चय भी किया। इस घटना के कितने दिनों बाद दीर्घतमा अपने छोटे भाई गौतम ऋषि की पत्नी के पास पहुँचे और काम प्रार्थना की, किन्तु गौतम पत्नी ने गर्वपूर्वक दीर्घतमा को बड़ी फटकार बतायी। तिसपर भी वे कामवेग को नहीं रोक सके और वृषभ (साँड़) की भाँति उस पुत्र वधू के साथ गौओं का पारमार्थिक धर्म समझ कर काम चेष्टा में निरत हो गये। दीर्घतमा को इस पशुकर्म के लिए उतारू देखकर गौतम पत्नी ने बड़ी भर्त्सना की और अपने हाथों से शक्तिपूर्वक उसे पकड़कर भविष्य में होने वाले उस निन्द्य कार्य के माहात्म्य को समझती हुई अतिशय क्रोधपूर्वक बोली—'तुम इस प्रकार विपरीत कर्म करते हुए एकदम बैलों की भाँति मेरे साथ दुर्व्यवहार कर रहे हो, अपनी पुत्री के समान अगम्य मेरे साथ काम प्रार्थना करते हुए तुम गम्यागम्य को एकदम नहीं सोच रहे हो, अतः ऐसे दुराचारी तुमको मैं अपने यहाँ से

निकाल रही हूँ। अपने कुकर्म के परिणाम स्वरूप तुम यहाँ से अब चाहे जहाँ चले जाओ। अन्धे, वृद्ध एवं दरिद्र थे,— यही समझकर मैं तुम्हारा भरण-पोषण करती थी, किन्तु तुम तो पूरे दुष्ट निकले।' ऐसा कहकर उसने काठ के एक सन्दूक में दीर्घतमा को बन्द कर गंगा की धारा में छोड़ दिया। गंगा की धारा के साथ वेग से बहता हुआ वह सन्दूक आगे चलकर एक स्रोत के समीप में ठहर गया, वहाँ पर उसे विरोचन के धर्मात्मा पुत्र बलि ने पकड़ लिया और साथ ले जाकर अनेक प्रकार के भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थों को खिलाकर दीर्घतमा को तृप्त कर अपने अन्तःपुर में रखा। इस सद्व्यवहार से परम प्रसन्न होकर दीर्घतमा ने अपने वरदानों द्वारा बलि को भी सन्तुष्ट किया। दैत्यों में श्रेष्ठ बलि ने उस ऋषि दीर्घतमा से पुत्र प्राप्ति के लिए वरदान की प्रार्थना करते हुए कहा—'हे मानियों को मान देने वाले! महाभाग! सन्तान उत्पन्न करने के लिए मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ, अतः मेरी स्त्री के गर्भ द्वारा आप मेरे लिए धर्मार्थ के तत्वों को जाननेवाले पुत्रों को उत्पन्न करें।' बलि के इस प्रकार विनीत प्रार्थना करने पर ऋषि ने कहा—'ऐसा ही होगा!' तदनन्तर दैत्यराज बलि ने अभीष्ट सन्तानोत्पत्ति के लिए अपनी स्त्री सुदेष्णा को ऋषि के लिए समर्पित किया, किन्तु सुन्दरी सुदेष्णा ऋषि को अन्धा और वृद्ध समझ कर उनके पास नहीं गईं। और शूद्रकुल में उत्पन्न अपनी धाय को सन्तानोत्पत्ति के लिये दीर्घतमा के पास भेज दिया। उस शूद्रकुलोत्पन्न धाय में जितेन्द्रिय तथा धर्मात्मा ऋषि दीर्घतमा ने काक्षीवान् आदि कई पुत्रों को उत्पन्न किया। उन काक्षीवान् आदि पुत्रों को देखकर राजा बलि ने दीर्घतमा से कहा। ॥५१-६३॥

राजा ने कहा—क्या ये ऋषियों के धर्म में परम चतुर, परम समर्थ, ब्रह्मवादी, धर्मज्ञ, बुद्धिमान् सदाचारी एवं सत्कर्मी पुत्रगण मेरे ही हैं? मुनि ने राजा से कहा—'नहीं वे मेरे पुत्र गण हैं। असुर-श्रेष्ठ! ये सभी पुत्र आपकी सम्मति से ही शूद्र योनि में उत्पन्न हुए हैं। हे राजन्! तुम्हारी पत्नी सुदेष्णा ने मुझे अन्धा तथा वृद्ध समझकर अपमानित किया, उसने अपनी शूद्र कुलोत्पन्न धाय को मेरे पास भेजा।' ऋषि की ऐसी बातें सुनकर बलि ने पुनः बड़ी प्रार्थना की और उनको प्रसन्न किया। तदनंतर घर जाकर अपनी स्त्री सुदेष्णा को बलि ने बहुत बुरा भला कहा और फिर से वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके उसे ऋषि के लिए समर्पित किया। ऋषि दीर्घतमा ने अपने साथ अपमानपूर्ण व्यवहार करनेवाली सुदेष्णा से कहा—'अब तुम नमक मिश्रित दधि तथा मधु लपेटे गये मेरे ऐंड़ी से लेकर मस्तक पर्यन्त समस्त शरीर को विना किसी हिचकिचाहट एवं घृणा के चाटोगी, तब अपने मनोनुकूल पुत्रों को प्राप्त कर सकोगी।' देवी सुदेष्णा ने इस बार दीर्घतमा की सारी आज्ञाएँ पूरी कीं। किन्तु चाटते समय इस बार भी अपान (गुदा) भाग को उसने घृणावश छोड़ दिया। इस पर ऋषि ने सुदेष्णा से कहा—'कल्याणि। चाटते हुए मेरे शरीर के अपान प्रदेश को तुमने घृणावश छोड़ दिया है अतः तुम पहले उत्पन्न होनेवाले कुमार को भी विना अपान भाग के ही उत्पन्न करोगी।' ॥६४-७१॥

सुदेष्णा ने कहा—महाभाग्यशालिन्! ऐसे अपानभागरहित पुत्र को मुझमें न उत्पन्न करें। हे प्रभो! यथाशक्ति हमने अपने व्यवहारों द्वारा आपको पूर्णतः सन्तुष्ट किया है, अतः मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों ॥७२॥

दीर्घतमा ने कहा—'देवि ! कल्याणि ! तुम्हारी ही भूल के कारण यह सब हुआ है। मेरे वचन अब अन्यथा तो नहीं हो सकते। किन्तु यदि ऐसा है तो तुम्हारा पुत्र इसका फल नहीं भोगेगा, उसका पुत्र अर्थात् तुम्हारा पौत्र भोगेगा। उसके शरीर में अपान मार्ग न रहने पर भी अन्य सारी इन्द्रियाँ रहेंगी, और वह एक योग्य पुरुष होगा।' ऐसा कह कर ऋषि दीर्घतमा ने अपनी कुक्षि एवं अन्यान्य अङ्गों का स्पर्श किया और कहा—'हे शुचिस्मिते ! तुमने गुह्य इन्द्रिय को छोड़कर मेरे समस्त शरीर को चाटा है अतः तुम्हारे गर्भ से पूर्णिमा की रात में उदित होनेवाले पूर्ण चन्द्रमा की भाँति परम मनोहर बालक होंगे। हे कल्याणि ! वे सभी बालक देवताओं के बालकों की भाँति परम सुन्दर, तेजस्वी, सत्कर्मी, यज्ञ आदि शुभ कार्य करनेवाले, परम-धार्मिक तथा संख्या में पाँच उत्पन्न होंगे। ॥७३-७६॥

सूत ने कहा—इस प्रकार सुदेष्णा के गर्भ से ऋषि दीर्घतमा के अंश द्वारा जो ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम अंग था। अनन्तर कलिंग, पुण्ड्र, सुह्म तथा बंगराज नामक पुत्र उत्पन्न हुए—ये पाँचों पुत्र बलि के क्षेत्रज पुत्र कहे जाते हैं। ये सभी ऋषि दीर्घतमा द्वारा राजा बलि को प्राप्त हुए थे। धीरे-धीरे इन पुत्रों के सुप्रतिष्ठित एवं वयस्क हो जाने पर ब्राह्मणोचित संस्कार करवाया गया। तदनन्तर इन पुत्रों ने मनुष्य योनि में अनेक सन्तानें उत्पन्न कीं। एक दिन कभी एक गाय ने दीर्घतमा से कहा—'हे प्रभो ! तुमने भलीभाँति विचार कर हमारे गोधर्म का प्रतिपालन किया है, अतः तुम्हारी इस अनुपम भक्ति से मैं परम प्रसन्न हूँ, और तुम्हें सूँघ कर इस दीर्घ अन्धकार से छुड़ा रही हूँ। तुम्हारे इस शरीर में यह तम वृहस्पति के पापांश से स्थित है, अब उसे तथा तुम्हारी वृद्धावस्था मृत्यु आदि सब व्याधियों को मैं सूँघकर दूर कर रही हूँ।' इतना कह कर गाय के सूँघते ही कर्म बन्धनों से मुक्त मुनिश्रेष्ठ दीर्घतमा दीर्घायु सम्पन्न, सुन्दर शरीर तथा सुन्दर नेत्रों वाले हो गये। इस प्रकार उक्त 'गौ' द्वारा घोर 'तम' के विनाश होने के कारण वे गौतम नाम से विख्यात हुए। तदनन्तर कात्तीवान नामक पुत्र अपने पिता गौतम के साथ पर्वतीय प्रदेश की ओर गया तथा वहाँ उनका दर्शन एवं स्पर्श करते हुए बहुत काल तक उन्हीं के साथ रहकर घोर तपस्या में लीन रहा। तपस्या द्वारा बहुत दिनों तक अपनी भावनाओं को पवित्र कर वह स्वतः परम सन्तुष्ट हुआ और शूद्रा माता द्वारा उत्पन्न अपने शरीर को परम पवित्र कर ब्राह्मणत्व की भी प्राप्ति की। तदनन्तर पिता ने उससे कहा—'मेरे प्रिय पुत्र ! मैं तुम जैसे योग्य पुत्र से ही पुत्र वाला हूँ। धर्मज्ञ ! परम यशस्वी तथा सज्जन तुम जैसे योग्य पुत्र को पाकर मैं कृतार्थ हो गया।' तदुपरान्त कात्तीवान् के पिता दीर्घतमा ने अपने शरीर को छोड़कर ब्रह्मलोक की प्राप्ति की और इधर कात्तीवान् ने ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर सहस्रों पुत्रों को उत्पन्न किया। कात्तीवान् के पुत्रगण कौष्माण्ड तथा गौतम के नाम से विख्यात हुए। विरोचन के पुत्र बलि के साथ दीर्घतमा ऋषि के समागम का वृत्तान्त तथा उन दोनों की सन्तानों का विस्तृत विवरण मैं आप लोगों को सुना चुका। ॥७७-८६॥

दीर्घतमा ऋषि के संयोग से उत्पन्न इन पापरहित पाँचों पुत्रों का बलि ने विशेष सम्मान किया और उनसे कहा—'पुत्रों ! तुम जैसे योग्य पुत्रों को प्राप्त कर मैं कृतार्थ हो गया।' इस प्रकार धर्मात्मा राजा

बलि स्वयम् भगवती योग माया की आराधना द्वारा काल के धर्म को प्राप्त हो संसार के सभी जीवों से अदृश्य हो गया। इन पाँचों पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र अंग का उत्तराधिकारी पुत्र राजा दधिवाहन हुआ। दधिवाहन का पुत्र राजा दिविरथ हुआ। राजा दिविरथ का पुत्र परम विद्वान् राजा धर्मरथ हुआ। यह धर्मरथ परम लक्ष्मीवान् राजा था। इस राजा ने महात्मा शुक्र के साथ विष्णुपद नामक पर्वत पर सोम रस का पान किया था। राजा धर्मरथ का पुत्र चित्ररथ हुआ। उसका पुत्र सत्यरथ था, सत्यरथ से दशरथ नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जो लोमपाद नाम से भी विख्यात था। इसकी शान्ता नामक एक पुत्री थी। उसके वीर पुत्र का नाम महायशस्वी चतुरंग था। ऋष्यश्रृंग के प्रसाद से चतुरंग का पृथुलाक्ष नामक पुत्र, अपने वंश का विपुल विस्तार करने वाला उत्पन्न हुआ। पृथुलाक्ष का चम्प नामक पुत्र हुआ। इस राजा चम्प की राजधानी चम्पा नामक नगरी थी, जो पहिले मालिनी के नाम से भी विख्यात थी। पूर्णभद्र के प्रसाद से इस राजा चम्प का पुत्र हर्यङ्ग हुआ, इस राजा हर्यङ्ग के यज्ञ में विभाण्डक ऋषि ने शत्रुओं की प्रवृत्तियों के विघातक एक हस्ती को मंत्रों द्वारा पृथ्वी पर अवतारित किया था उस समय समस्त संसार में वह हस्ती सर्वश्रेष्ठ वाहन था। हर्यङ्ग का उत्तराधिकारी पुत्र भद्ररथ हुआ। इस भद्ररथ का पुत्र राजा बृहत्कर्मा था, जिसके संयोग से महात्मा बृहद्भानु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाधिराज बृहद्भानु के वंश में जयद्रथ नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, उससे राजा बृहद्रथ उत्पन्न हुए। राजा बृहद्रथ के संयोग से विश्व विजयी जन्मेजय उत्पन्न हुए। उनके उत्तराधिकारी अङ्ग थे, जिससे राजा कर्ण उत्पन्न हुआ। कर्ण के वृषसेन तथा पृथुसेन नामक दो पुत्र थे। विप्रवृन्द! बलिपुत्र अंग के इन सब पुत्रों का, जो सब के सब राजा थे, वृत्तान्त मैं विस्तारपूर्वक क्रमशः तुम लोगों को सुना चुका, अब इसके उपरान्त पूरु के पुत्रों का वृत्तान्त सुनिये। ॥९०-१०३॥

ऋषियों ने कहा—सूत जी! कर्ण किस प्रकार सूत के पुत्र हुए? और किस प्रकार वे अंग के भी पुत्र कहाये? इसे हम लोग सुनना चाहते हैं। इन पुरानी कथाओं में आप परम प्रवीण हैं। ॥१०४॥

सूत ने कहा—राजा बृहद्भानु का पुत्र राजा बृहन्मना था। उसकी दो पत्नियाँ थीं, जो दोनों शैब्य की पुत्रियाँ थी। उनके नाम यशोदेवी तथा सत्या थे, इन दोनों के वंश को सुनिये। बृहन्मना के संयोग से यशोदेवी ने राजा जयद्रथ नामक पुत्र को तथा सत्या ने विश्वविख्यात विजय नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। इस विजय का पुत्र राजा बृहत्पुत्र था, जिसका पुत्र बृहद्रथ हुआ। इस बृहद्रथ का पुत्र परम मनस्वी सत्यकर्मा था, सत्यकर्मा का पुत्र अधिरथ था, वही अधिरथ सूत के नाम से भी विख्यात था, और इसी ने कर्ण को ग्रहण किया था। इसी कारण से कर्ण सूत के पुत्र भी कहे जाते हैं। कर्ण के विषय में जो वृत्तान्त कहा जाता है वह सब मैं आप लोगों से कह चुका। ॥१०५-१०८॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रवंश वर्णन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

उनचासवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! पूरु का पुत्र राजा जनमेजय था, जिसका पुत्र प्राचीत्वत् हुआ, उसीने प्राची (पूर्व) दिशा को बसाया था । प्राचीत्वत् का पुत्र मनस्यु हुआ और मनस्यु का पुत्र पीतायुध नामक राजा हुआ । इस राजा पीतायुध का उत्तराधिकारी पुत्र राजा धुन्धु था । धुन्धु का पुत्र बहुविध हुआ और उसका पुत्र सम्पाति हुआ । सम्पाति का पुत्र रंहवर्चा हुआ, जिसका पुत्र भद्राश्व था । इस भद्राश्व की पत्नी घृता के गर्भ से, जो अप्सरा थी, दस पुत्र औचेयु, हृषेयु, कक्षेयु, सनेयु, घृतेयु, विनेयु, स्थलेयु, धर्मेयु, संनतेयु और पुण्येयु नामक उत्पन्न हुए । प्रथम पुत्र औचेयु की पत्नी का नाम ज्वलना था, जो तक्षक नागराज की पुत्री थी । आचैयु ने इसके संयोग से अन्तिनार नामक पुत्र को उत्पन्न किया । इस अन्तिनार ने अपनी मनस्विनी नामक पत्नी में कल्याणकारी अनेक पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनमें वीर अमूर्तिरया तथा धार्मिक त्रिवन ये दो पुत्र और तीसरी कल्याणिनी गौरी नामक कन्या थी, जो राजा मान्धाता की जननी थी । इलिना नामक यम की एक कन्या थी, जो शुभ कर्मों की करनेवाली थी । उसने ब्रह्म की चर्चा में सर्वदा निरत रहनेवाले अनेक पुत्रों को उत्पन्न किया था । इलिना के पुत्र के संयोग से उपदानवी नामक पत्नी ने ऋष्यन्त, दुष्यन्त, प्रवीर तथा अनघ नामक चार पुत्रों को प्राप्त किया था । द्वितीय पुत्र दुष्यन्त के संयोग से शकुन्तला के गर्भ द्वारा समर विजयी चक्रवर्ती भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था, उसी के नाम पर उसके वंशधर भारत नाम से विख्यात हुए । इस दुष्यन्त पुत्र राजा भरत के लिए राजा को यह आकाशवाणी हुई थी कि—'हे राजन् ! इसकी माता भस्त्रा (थैली) स्वरूप है, पिता के (तुम्हारे) ही संयोग से इस पुत्र की उत्पत्ति हुई है, जिसके संयोग से जो उत्पन्न होता है, वह उसी का आत्मस्वरूप है, अभिन्न है । हे दुष्यन्त ! अपने इस पुत्र का तुम पालन करो, शकुन्तला का अपमान मत करो, पुत्र अपने मृत पिता को, जो प्रेत होकर यमपुरी में दुःख भोगता है, अपने सत्कर्मों द्वारा छुटकारा दिलाता है । तुम ही इस गर्भ के आधान करने वाले हो, शकुन्तला ने सब बातें सच्ची कही थीं ।' ॥१-१३॥

प्राचीन काल में राजा भरत के सभी पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर, मरुतों ने उत्तराधिकारी के लिए वृहस्पति के वीर्य से उत्पन्न भरद्वाज नामक एक पुत्र भरत को प्रदान किया था । क्योंकि दुष्ट माता के कोप के कारण भरत के सब पुत्रों का विनाश हो गया था । ॥१४-१५॥

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! भरत को पुत्र के लिए मरुतों ने किस प्रकार महा तेजस्वी भरद्वाज को लाकर दिया था ? इस वृत्तान्त को हम लोगों से यथार्थतः कहिये । ॥१६॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! (अभी अभी पूर्व कथा के प्रसंग में ममता देवी का वृतान्त बतला चुका हूँ) ममता के गर्भवती हो जाने पर एक बार ऋषि उशिज पृथ्वी पर समासीन थे । और इसी बीच बड़े भाई की पत्नी को अकेली देख कर वृहस्पति ने कहा—'हे कल्याणि ! भली भाँति अलंकृत होकर रति कर्म के लिए तुम यहाँ मेरे पास आओ ।' उनके ऐसा कहने पर ममता ने वृहस्पति से कहा—'मेरे उदर का गर्भ पूरा

हो गया है, और वह स्वयम् ब्रह्म का उच्चारण करता है, तुम्हारा वीर्य भी अमोघ है, वह निष्फल नहीं हो सकता, अतः इस प्रकार हमारा धर्म भ्रष्ट हो जायगा।' ममता के इस उत्तर पर वृहस्पति ने कहा—'सुन्दरि! तुम मुझे शिक्षा देने की योग्यता नहीं रखती, मैं सब जानता हूँ।' ऐसा कह कर बलात्कार पूर्वक उसको स्ववश कर रति करने का उपक्रम किया। इस प्रकार रतिकर्म करते हुए वृहस्पति से गर्भावस्थित शिशु ने कहा—'वृहस्पते! मैं पहले से ही इस उदर में प्रविष्ट हो चुका हूँ, और आप भी निष्फल वीर्य वाले नहीं हैं, इस संकीर्ण स्थली में दो प्राणियों के निवास के लिए स्थान नहीं है।' गर्भ के इस कथन पर कुपित होकर वृहस्पति ने कहा—'जो तुम सभी जीवों के परम आनन्द के इस अवसर पर इस प्रकार निषेध कर रहे हो सो इस पाप के कारण दीर्घकाल तक घने अन्धकार में प्रवेश करोगे। अर्थात् अन्धे हो जाओगे।' वृहस्पति के कामवासना से निवृत्त हो जाने पर वह गिराया हुआ वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा और गिरते ही एक बालक के रूप में परिणत हो गया। इस तुरन्त उत्पन्न होने वाले बालक को देखकर देवी ममता ने वृहस्पति से कहा—'वृहस्पते, मैं तो अब अपने घर जा रही हूँ; तुम अपने इस पुत्र का पालन करना।' ऐसा कह कर ममता अपने घर चली गई। उधर उसके चले जाने पर वृहस्पति ने भी उस शिशु को वहीं छोड़ दिया। इस प्रकार माता और पिता द्वारा परित्यक्त उस बालक को मरुद्गणों ने देखा और कृपापूर्वक उठा लिया। इन्हीं की कृपा से वह शिशु जीवित रहा। उस समय राजा भरत पुत्र प्राप्ति की इच्छा से प्रत्येक ऋतु काल में पुत्र नैमित्तिक यज्ञ का अनुष्ठान किया करते थे। किन्तु इस प्रकार अनेक यज्ञ करने से भी उन्हें पुत्र की प्राप्त नहीं हो सकी थी, तब अन्त में उन्होंने पुत्र के लिए मरुत्सोम नामक एक यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया था। उस मरुत्सोम नामक यज्ञ के अनुष्ठान से मरुत्गण विशेष सन्तुष्ट हुए और उसी बालक भरद्वाज को राजा भरत को देने के लिए अपने साथ ले गये। इस प्रकार मरुतों ने महर्षि अङ्गिरा के पुत्र वृहस्पति के सुपुत्र भरद्वाज को भरत के उत्तराधिकारी पुत्र के रूप में उन्हें सौंपा था। राजा भरत ने पुत्र रूप में भरद्वाज को पाकर मरुतों से कहा—'विभो! आत्म कल्याण के लिए आये हुए आपलोगों से मैं कृतकृत्य हो चुका।' यतः इस पुत्र प्राप्ति के पूर्व पुत्र जन्म के लिए किये गये राजा भरत के सारे यज्ञ वितथ (विफल) हो चुके थे अतः इस पुत्र का नाम वितथ रखा गया और इसी वितथ नाम से बालक भरद्वाज राजा हुए। भरद्वाज के संयोग से उत्पन्न होने वाले इस पृथ्वी मण्डल में उच्च वंशोत्पन्न कुलीन ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दो भेद हुए। जिनके कारण वे द्व्यामुष्यायण तथा कौलीन भी कहे जाते हैं। ॥१६-२३॥

इस प्रकार मरुतों द्वारा पुत्र रूप में वितथ (भरद्वाज) के प्राप्त होने पर राजा भरत स्वर्ग को चले गये। यथासमय राजर्षि भरद्वाज भी अपने स्थान पर अपने पुत्र को अभिषिक्त कर स्वर्ग को सिधारे। वितथ का उत्तराधिकारी महायशस्वी भुवमन्यु नामक पुत्र था, इस भुवमन्यु के पंच महाभूतों के समान परम तेजस्वी तथा सामर्थ्यशील वृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर तथा गर्ग नामक चार पुत्र हुए। नर के पुत्र संकृति हुए, संकृति के महायशस्वी गुरुधी और रन्तिदेव नामक पुत्र हुए; जो सत्कृति के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। गर्ग का उत्तराधिकारी परम विद्वान् शिनि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके उपरान्त शिबि से उत्पन्न होने वाले वंशधर,

जो क्षत्रियांश युक्त द्विज थे, गर्ग एवं शैव्य के नाम से विख्यात हुए। उनके आहार्य पुत्र बुद्धिमान् उरुक्षव हुए। उसकी विशाला नामक स्त्री ने तीन महायशस्वी त्र्युषण, पुष्करि तथा कवि नामक पुत्रों को उत्पन्न किया था। ये तीनों पुत्र उरुक्षवा कहे जाते थे और इन सबों ने भी ब्राह्मणत्व को (जन्मना क्षत्रिय होकर ब्राह्मण धर्म को) प्राप्त कर लिया था। काव्य के वंश में उत्पन्न होने वालों में ये तीन महर्षि सर्वश्रेष्ठ कहे गये हैं। गर्ग, संकृति तथा काव्य के नाम से विख्यात इन वंशों में उत्पन्न होने वाली प्रजाएँ क्षात्रधर्मयुक्त द्विजाति हैं। अंगिरा गोत्रीय वृहत्क्षत्र ने भी पृथ्वी का शासन किया था, उसके शासन काल में पृथ्वी परम समृद्ध थी। वृहत्क्षत्र का उत्तराधिकारी हस्ति नामक पुत्र हुआ, उसी ने प्राचीनकाल में हस्तिनापुरी का निर्माण किया था। इस राजा हस्ति के उत्तराधिकारी तीन पुत्र परमकीर्तिसम्पन्न अजमीढ, द्विमीढ तथा पुरुमीढ हुए। अजमीढ की तीन स्त्रियाँ थीं, जो कुरुकुल में उत्पन्न हुई थीं। उनके नाम नीलिनी, केशिनी तथा धूमिनी थे। राजा अजमीढ ने अपनी उन स्त्रियों में देवताओं के समान परम तेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया था। ये सभी परम तेजस्वी तथा धार्मिक पुत्र अपने वृद्ध पिता की तपस्या के अन्त में भरद्वाज के प्रसाद से उत्पन्न हुए थे। उनके वंश का विस्तारपूर्वक वर्णन मुझसे सुनिये। अजमीढ को केशिनी नामक पत्नी के संयोग से कण्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र मेधातिथि हुआ, जिससे काण्वायन कहे जाने वाले द्विजातियों की उत्पत्ति हुई। अजमीढ के संयोग से अन्य पत्नी भूमिनी ? (धूमिनी) के गर्भ द्वारा राजा वृहदनु उत्पन्न हुए। इस वृहदनु के पुत्र वृहदिषु थे, जिनका पुत्र जयद्रथ हुआ। जयद्रथ का पुत्र अश्वजित् था। अश्वजित् का पुत्र सेनजित् हुआ। तदुपरान्त सेनजित् के लोकविख्यात चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम रुचिराश्व, काव्य, राजा दृढ़रथ तथा वत्सावर्तक थे। इस वत्सावर्तक के वंशधर परिवत्सक के नाम से विख्यात हैं। रुचिराश्व का उत्तराधिकारी पुत्र महायशस्वी पृथुसेन था। पृथुसेन के पुत्र पौर हुए और पौर से नीप नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। नीप के महान् तेजस्वी पुत्रों की संख्या एक सौ थी, वे सभी नृपति थे, जो नीप के नाम से ही विख्यात थे। उन सभी नीप राजाओं के वंशविस्तारक श्रीमान् काव्यनन्दन समर हुए, जो समरभूमि में अति निपुण तथा यशस्वी राजा थे। समर के पार, संपार और सदश्व नामक तीन पुत्र थे, जो सर्वगुणसम्पन्न एवं पृथ्वीभर में विख्यात थे। पार का पुत्र पृथु हुआ और पृथु से सुकृत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस सुकृत के सर्वगुणसम्पन्न विभ्राज नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। विभ्राज का उत्तराधिकारी पुत्र बलवान् अणुह था, जो महायशस्वी शुक्र का दामाद तथा कृत्वी का पति था। अणुह का उत्तराधिकारी पुत्र ब्रह्मदत्त नामक राजा हुआ, जिसका पुत्र युगदत्त हुआ। इस युगदत्त का पुत्र महायशस्वी विष्वक्सेन हुआ। अपने सत्कर्मों द्वारा राजा विभ्राज ही पुनः विष्वक्सेन के रूप में उत्पन्न हुआ था। विष्वकसेन का पुत्र उदक्सेन हुआ, उसका पुत्र भल्लाट था। भल्लाट का पुत्र राजा जनमेजय था। इसी जनमेजय की रक्षा के लिए उग्रायुध ने सभी नीपवंशीय राजाओं का विनाश किया था। ॥३४-५९॥

ऋषियों ने कहा—वह राजा उग्रायुध किसका पुत्र था ? किसके वंश में उत्पन्न हुआ था ? और इसने सभी नीप वंशीय राजाओं का विनाश किसलिए किया था ? ॥६०॥

सूत ने कहा—यह राजा उग्रायुध सूर्यवंश में उत्पन्न हुआ था। इसने एक परम सुन्दर आश्रम में जाकर स्थाणु वृक्ष की भाँति आठ सहस्र वर्षों तक कठोर तपस्या की थी। पराजित होकर उस राजा उग्रायुध की शरण में जनमेजय गया। उसको राज्य देने की प्रतिज्ञा करके राजा उग्रायुध ने समस्त नीपवंशीय राजाओं का संहार किया था। सर्वप्रथम राजा उग्रायुध ने उन नीपवंशीय राजाओं के पास जाकर विविध प्रकार से समझाने-बुझाने की चेष्टा की; किन्तु वे इन दोनों ही को मारने पर तैयार हो गये। इस प्रकार मारने को उद्यत नीपवंशीयों से राजा ने कहा—'तुम लोग मेरी बातों को नहीं मान रहे हो, अतः शरणागत की रक्षा के लिए मैं तुम लोगों को इस प्रकार का शाप दे रहा हूँ कि यदि मैंने सचमुच कुछ तपस्या की है तो तुम सभी को यमराज शीघ्र अपने घर ले जायँ।' राजा के इतना कहते ही सचमुच यम उन्हें ले जाने लगे। इस प्रकार अपने सामने ही यम द्वारा ले जाते हुए उन वीरों को देखकर अति कृपालु राजा उग्रायुध ने जनमेजय से कहा—'हे वीर! यम दूतों द्वारा ले जाते हुए इन वीरों को तुम मेरा वचन मानकर बचाओ।' राजा की बातें सुन यमदूतों से जनमेजय ने कहा—'अरे नीचो! दुराचारियो! यम के दूतो! तुम लोग दण्ड के भागी होगे, इन्हें छोड़ दो।' जनमेजय के इन कटु वाक्यों का उत्तर यमदूतों ने भी उसी प्रकार का दिया। इस पर बात बहुत बढ़ गई और राजा जनमेजय ने यम के साथ चिरकाल तक युद्ध किया। अन्त में जनमेजय ने घोर नारकीय व्याधियों के साथ उन लोगों को अपने महान बल से जीत करके मुनिवत् जीवन व्यतीत करने वाले राजा उग्रायुध के पास लाकर खड़ा किया। यह एक अद्भुत कार्य हुआ। इससे अति सन्तुष्ट होकर यम ने जनमेजय को परम मुक्ति का ज्ञान दिया। तदनन्तर वे सब लोग यथायोग्य कार्य करके अच्युत भगवान् कृष्ण के शरीर में प्रविष्ट हो गये। इन राजाओं के जीवन चरित को जानकर मनुष्य को अकाल मृत्यु का भय नहीं होता। इस पुण्य कथा के प्रसाद से इस लोक तथा परलोक में मनुष्य को अक्षय फल की प्राप्ति होती है। ॥६१-६९॥

अजमीढ की धूमिनी नामक स्त्री में विद्वान् यवीनर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र धृतिमान् सत्यधृति हुआ। इस सत्यधृति का पुत्र प्रतापशाली दृढ़नेमि था। दृढ़नेमि का पुत्र राजा सुधर्मा था, इस सुधर्मा का पुत्र प्रतापशाली सार्वभौम था, जो इसी नाम से सारी पृथ्वी का एकच्छत्र शासक था। इस राजा के महावंश में महापौरव नामक एक राजा हुआ। उस महापौरव का पुत्र राजा रुक्मरथ हुआ, राजा रुक्मरथ का पुत्र राजा सुपार्श्व था। सुपार्श्व का पुत्र परम धार्मिक राजा सुमति था, उसका पुत्र धर्मात्मा राजा सन्नतिमान् हुआ। इस सन्नतिमान् का पुत्र कृत नामक परम विद्वान् राजा हुआ, जिसने परम निपुण कौशल्य महात्मा हिरण्यनाभि का शिष्यत्व ग्रहण किया। इसी परम धार्मिक राजा ने सामवेद की संहिताओं को चौबीस विभागों में विभक्त किया था, जो कार्त और प्राच्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस कृत का पुत्र राजा उग्रायुध था, जिसने पौरव वंश का महान् विस्तार किया। इसकी प्रतिष्ठा सर्वत्र व्याप्त थी। अपने साहस एवं बहादुरी से इसने पृथुक के पिता पांचाल देश के स्वामी जितेन्द्रिय महाराज नील का वध किया था। इस उग्रायुध का पुत्र महायशस्वी क्षेम हुआ। क्षेम से राजा सुनीथ उत्पन्न हुआ, सुनीथ का पुत्र नृपंजय

हुआ। नृपंजय से राजा विरथ उत्पन्न हुए—ये सभी राजा गण पौरव नाम से प्रसिद्ध हैं। ॥७०-७१॥

श्री मात्स्यमहापुराण में चन्द्रवंशवर्णन प्रसंग में पौरववंशवर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥४९॥

पचासवाँ अध्याय

सूत ने कहा—अजमीढ़ की नीलिनी नामक पत्नी के गर्भ से राजा नील का जन्म हुआ। नील की उग्र तपस्या के फलस्वरूप उसे सुशान्ति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सुशान्ति से राजा पुरुजानु और पुरुजानु से राजा पृथु की उत्पत्ति हुई। पृथु का पुत्र भद्राश्व हुआ। अब भद्राश्व के पुत्रों का वर्णन सुनिये। उसके मुद्गल, जय, राजा बृहदिषु, बलवान् जवीनर तथा कपिल—ये पाँच पुत्र हुए। ये पाँचों पुत्र पांचाल देश के रक्षक थे, इन्हीं द्वारा अधिकृत (शासित) देशों को पांचाल कहा जाता है—ऐसा हम लोगों ने सुना है। मुद्गल के पुत्रगण, जो क्षत्रिय तथा ब्राह्मण—दोनों अंशों से उत्पन्न हुए थे, मौद्गल्य नाम से विख्यात हुए। ये कण्व तथा मुद्गल के गोत्र में उत्पन्न होने वाले द्विजातिगण अंगिरस के पक्ष में मिल गये। मुद्गल का पुत्र महान् यशस्वी ब्रह्मिष्ठ हुआ, उसका पुत्र इन्द्रसेन था, इन्द्रसेन का पुत्र विन्ध्याश्व था—ऐसा सुना जाता है कि इसी विन्ध्याश्व के संयोग से मेनका के गर्भ द्वारा दो जुड़वाँ बालक—राजर्षि दिवोदास तथा यशस्विनी अहल्या—उत्पन्न हुए। शरद्वान् के संयोग से अहल्या ने ऋषिप्रवर शतानन्द नामक पुत्र को उत्पन्न किया। शतानन्द के पुत्र महातपस्वी धनुर्वेदपारगामी सत्यधृति हुए। परम धार्मिक सत्यधृति का वीर्य कभी व्यर्थ होनेवाला नहीं था। एक बार एक अप्सरा को देखकर सत्यधृति का वीर्य जल में क्षरित हो गया, जिससे उस सरोवर के जल में एक जुड़वाँ बालक उत्पन्न हुए। वन में शिकार खेलने के लिए आये हुए राजा शान्तनु ने सरोवर के जल में टहलते हुए उन जुड़वे बच्चों को कृपा करके ग्रहण किया था। शरद्वान् के पुत्रों का वृत्तान्त मैं कह चुका—ये सभी श्रेष्ठ पुत्रगण गौतम के नाम से पुकारे जाते हैं। अब इसके उपरान्त मैं दिवोदास की सन्तानों का वृत्तान्त कह रहा हूँ। दिवोदास का पुत्र परम धर्मिष्ठ राजा मित्रयु था, जिसका दूसरा नाम मैत्रायण भी था। उससे मैत्रेय नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ—ये सभी पुत्रगण यति पक्ष में थे। जो पुत्र क्षत्रियांश से युक्त थे, उनका भार्गव नाम पड़ा। मैत्रेय का पुत्र राजा चैद्यवर हुआ, इस चैद्यवर से विद्वान् राजा सुदास उत्पन्न हुआ। उस सुदास के पुत्र रूप में पुनः राजा अजमीढ पैदा हुआ। वंश के क्षीण हो जाने के कारण राजा अजमीढ ही सोमक के नाम से उत्पन्न हुआ। इस सोमक का प्रथम पुत्र जन्तु नाम से विख्यात था। जन्तु के मारे जाने पर इस महात्मा सोमक अजमीढ के सौ पुत्र उत्पन्न हुए। अजमीढ की स्त्री धूमिनी, जो अनेक पुत्रों को उत्पन्न करनेवाली थी, प्रथम पुत्र जन्तु की मृत्यु के उपरान्त किसी पुत्र के न रहने पर सौ वर्षों तक घोर तपस्या में निरत रही। वह तपस्या के समय अति पवित्र होकर भोजन करती थी, भली भाँति विधिपूर्वक अग्नि में हवन करते हुए अग्निहोत्र के सभी नियमों का पालन करती थीं। बराबर व्रत एवं उपवास रखती थी। नियमों का ध्यान

रखकर शयन करती थी। इस प्रकार निरन्तर तपश्चर्या में निरत रहने के कारण वह धूमिल वर्ण की हो गई थी। उस धूमिनी में अजमीढ ने गर्भाधान संस्कार सम्पन्न किया। जिससे धूम के समान काले वर्णवाले ऋक्ष नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो अपने सौ भाइयों में सब से बड़ा था। इसी ऋक्ष से संवरण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। संवरण से कुरु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने प्रयाग तीर्थ का अतिक्रमण करने वाले कुरुक्षेत्र नामक तीर्थ की स्थापना की थी। उस महाराज कुरु ने अनेक वर्षों तक इस विशाल कुरुक्षेत्र को अपने हाथों से जोता था। राजा कुरु को इस प्रकार स्वयं जोतते देखकर इन्द्र भयभीत हो गये और उन्होने स्वयं वरदान दिया। इसी कारण यह कुरुक्षेत्र परम पवित्र तथा रमणीय कहा जाता है। उस महाराज कुरु का वंश बहुत विशाल था, जो उस के नाम के अनुकूल 'कौरव' नाम से विख्यात हुआ। कुरु के परम धनुर्धारी जह्नु, महातेजस्वी परीक्षित्, प्रजन तथा अरिमर्दन नामक पुत्र थे। ये सभी पुत्र राजा कुरु को परम प्रिय थे। सुधन्वा का उत्तराधिकारी पुत्र बुद्धिमानों में श्रेष्ठ धर्मार्थ के तत्वों को जाननेवाला राजा च्यवन था। च्यवन का पुत्र ऋक्ष से उत्पन्न महान् तपस्वी कृमि था। कृमि का महाबलवान् पुत्र इन्द्र के समान लोकविख्यात तथा आकाशमार्ग में भ्रमण करनेवाला, चैद्योपरिचर वसु हुआ, इस चैद्योपरिचर के संयोग से उसकी गिरिका नामक पत्नी ने सात सन्तानों को उत्पन्न किया। इनमें प्रथम पुत्र महारथी मगध नरेश था, जो बृहद्रथ के नाम से विख्यात था। शेष सन्तानों में दूसरा पुत्र प्रत्यश्रवा, तीसरा कुश, चौथा हरिवाहन, पाँचवाँ यजु, छठवाँ मत्स्य तथा सातवीं काली नामक एक कन्या थी। बृहद्रथ का पुत्र कुशाग्र नाम से विख्यात हुआ। कुशाग्र का बलवान् वृषभ नामक पुत्र हुआ। वृषभ का पुत्र राजा पुण्यवान् हुआ। पुण्यवान् का पुत्र पुण्य और उससे सत्यधृति उत्पन्न हुआ। सत्यधृति का पुत्र धनुष् और धनुष् का पुत्र सर्व उत्पन्न हुआ। इस स ँ का पुत्र सम्भव नामक हुआ, जिससे राजा बृहद्रथ उत्पन्न हुआ। जन्म के समय इस के दो खण्ड उत्पन्न हुए थे, जिन्हें जरा नामक एक राक्षसी ने मध्यभाग में जोड़ दिया था। जरा द्वारा जोड़े जाने के कारण उसका नाम जरासंध भी था। वह महाबलवान् जरासन्ध अपने समय में वर्तमान सम्पूर्ण क्षत्रियों का विजेता था। जरासंध का पुत्र प्रतापशाली सहदेव हुआ, सहदेव का पुत्र महातपस्वी श्रीमान् सोमवित् था, उसका पुत्र श्रुतश्रवा था। सोम से लेकर श्रुतश्रवा पर्यन्त जितने नृपतिगण हो गये हैं, वे मगध देश के स्वामी होने के कारण मागध नाम से विख्यात थे। ॥१-३४॥

महाराज जह्नु का पुत्र राजा सुरथ हुआ। सुरथ का उत्तराधिकारी पुत्र वीर राजा विदूरथ हुआ। इस विदूरथ का पुत्र भी सार्वभौम नाम से विख्यात था। उससे जयत्सेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र रुचिर हुआ। इस रुचिर से भौम नामक पुत्र और भौम से त्वरितायु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। आयु का पुत्र अक्रोधन हुआ, उससे देवातिथि नामक पुत्र हुआ। देवातिथि का उत्तराधिकारी राजा दक्ष हुआ, इस दक्ष से भीमसेन नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र राजा दिलीप हुआ। दिलीप का पुत्र राजा प्रतीप और प्रतीप के तीन पुत्र हुए। जो देवापि, शान्तनु और बाह्लीक के नाम से विख्यात थे। बाह्लीक के सात पुत्र थे, जो सभी राजा थे और बाह्लीश्वर के नाम से विख्यात थे। दूसरे पुत्र देवापि ने, जिसे प्रजावर्ग ने

दोषी ठहरा दिया था, मुनियों का मार्ग ग्रहण किया था। ॥३५-३६॥

मुनियों ने कहा—सूत जी! किसलिए राजा देवापि को प्रजावर्ग ने दोषी ठहराया था? प्रजाओं ने उनका क्या दोष दिखाया था? ॥४०॥

सूत ने कहा—राजपुत्र देवापि कुष्ट का रोगी था। अतः श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग देवकार्यों में इस क्षत्रिय राजा की पूजा नहीं करना चाहते थे—यही उसका दोष था। अब इसके अनन्तर मैं शन्तनु के पुत्रों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। महाराज शन्तनु प्रगाढ विद्वान् तथा परम वैद्य थे। लोग उनके विषय में एक श्लोक कहा करते हैं, जिसका आशय इस प्रकार है। 'अपने हाथों से वे जिसी रोगी अथवा वृद्ध पुरुष को छू लेते थे, वह पुनः युवा की भाँति नीरोग और सुन्दर हो जाता था।' इसी कारणवश लोग उन्हें शन्तनु कहते थे। इस प्रकार लोग उनके इस शन्तनुत्व अर्थात् शरीर को नीरोग करनेवाले गुण का इस लोक में गान किया करते थे। राजा शन्तनु ने जह्नु कन्या गंगा को पत्नी रूप में वरण किया था और उनमें देवव्रत नामक कुमार को उत्पन्न किया था। दाशेयी (धीवर की कन्या) काली ने विचित्रवीर्य नामक पुत्र को, जो शन्तनु का अति प्रिय, शान्त तथा निष्पाप पुत्र था, उत्पन्न किया था। कृष्णद्वैपायन ने राजा विचित्रवीर्य के क्षेत्र में धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्र ने गान्धारी नामक पत्नी में सौ पुत्रों को उत्पन्न किया, इन सौ पुत्रों में सब से बड़ा पुत्र राजा दुर्योधन हुआ, जो अपने समय में वर्तमान समस्त क्षत्रियों का स्वामी था। पाण्डु की माद्री और कुन्ती नामक दो स्त्रियाँ थीं। पाण्डु के लिए देवताओं की प्रसन्नता से दिये गये पाँच पुत्रों को उन दोनों रानियों ने उत्पन्न किया था। इस प्रकार कुन्ती द्वारा धर्म से युधिष्ठिर, मारुत से वृकोदर भीमसेन, इन्द्र से इन्द्र के समान पराक्रमशाली धनंजय अर्जुन उत्पन्न हुए थे, और दूसरी रानी माद्री ने नकुल और सहदेव नामक दो पुत्रों को अश्विनीकुमारों के अंश से उत्पन्न किया था। इन पाँचों पाण्डवों द्वारा द्रौपदी में पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे। द्रुपद पुत्री द्रौपदी ने प्रतिविन्ध्य नामक पुत्र को युधिष्ठिर के संयोग से, श्रुतसेन नामक पुत्र को भीमसेन के संयोग से, श्रुतकीर्ति नामक पुत्र को अर्जुन के संयोग से, श्रुतकर्मा नामक पुत्र को सहदेव के संयोग से तथा शतानीक नामक पुत्र को नकुल के संयोग से उत्पन्न किया था। वे पाण्डवों के पाँचों पुत्र द्रौपदी पुत्रों के नाम से विख्यात थे—इन पाँचों के अतिरिक्त छः अन्य महारथी पुत्र भी पाण्डवों के थे। उनमें हैडम्ब (हिडिम्बा नामक राक्षसी के संयोग से उत्पन्न) घटोत्कच नामक पुत्र भीमसेन से उत्पन्न हुआ था। दूसरी काशी नामक पत्नी ने बलवान् भीमसेन से सर्वग नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। मद्र देशोत्पन्न माद्री ने सहोत्र नामक पुत्र को सहदेव के संयोग से उत्पन्न किया था। चेदि देश की राजपुत्री करेणुमती के गर्भ द्वारा नकुल पुत्र नरमित्र की उत्पत्ति हुई थी। सुभद्रा में अर्जुन के संयोग से महारथी अभिमन्यु उत्पन्न हुआ था, युधिष्ठिर की देवकी नामक पत्नी ने यौधेय नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित शत्रुओं के समूहों का जीतनेवाला था। उस परीक्षित का पुत्र परम धार्मिक राजा जनमेजय हुआ। इस महाराज जनमेजय ने यज्ञकार्य में वाजसनेय को ब्रह्मा के स्थान पर वरण किया था, जिससे अप्रसन्न होकर महर्षि वैशम्पायन ने यह शाप दिया था कि—'हे

दुर्बुद्धि ! तुम्हारा किया हुआ यह कार्य पृथ्वी पर स्थायित्व नहीं प्राप्त कर सकेगा, जब तक तुम पृथ्वी पर विद्यमान हो, तभी तक यह तुम्हारा कार्य भी रहेगा।' क्षत्रिय जाति की इस अभ्युन्नति को देखकर चारों ओर के कितने अन्य क्षत्रिय भी राजा जनमेजय के अनुगामी हुए थे। किन्तु ऋषि के शाप के कारण यज्ञ करानेवाले उन क्षत्रियों का विनाश होने लगा और उन महात्मा वैशम्पायन के शाप के कारण क्षत्रियों के कितने यज्ञकर्त्ता नष्ट भी होगये। तदनन्तर एक बार पौर्णमास हवि द्वारा प्रजापति का यज्ञ सम्पन्न कर राजा जनमेजय जिस समय यज्ञशाला में प्रवेश कर रहे थे, ठीक उसी समय वैशम्पायन ने उन्हें प्रवेश करने से निवारित कर दिया। तदनन्तर पुरुवंश में उत्पन्न परीक्षित पुत्र उस राजा जनमेजय ने दो अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करके उन्हें अपने द्वारा प्रवर्तित महावाजसनेय विधि द्वारा पूर्ण कराने का उपक्रम किया और ब्रह्मा के पद पर वाजसनेय को पुनः नियुक्त किया। किन्तु इस बार ब्राह्मणों के साथ अतिशय विवाद हो जाने के कारण शाप दे देने पर राजा वन को चला गया। उस राजा जनमेजय के संयोग से बलवान् राजा शतानीक उत्पन्न हुआ था। राजा जनमेजय ने अपना समस्त राज्य भार इसी शतानीक को सौंपकर अभिषेक किया था। राजा शतानीक के अश्वमेध यज्ञ करने से बलवान् अधिसोमकृष्ण नामक महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इस समय विद्यमान है। हे विप्रवृन्द ! उसी के शासनकाल में आप लोगों ने बहुत बड़े दुर्लभ यज्ञ को पुष्कर क्षेत्र में तीन वर्षों में तथा कुरुक्षेत्र में दृषद्वती के पुनीत तट पर दो वर्षों में अभी अभी समाप्त किया है। ॥४१—६७॥

मुनियों ने कहा—सूत जी ! अब हम लोग रोमांच उत्पन्न करनेवाली भविष्य की पुनीत कथाओं को सुनना चाहते हैं। प्राचीन काल में जो कुछ हो चुका है, उसे तो हम लोगों को सुना चुके। अब जिन जिन युगों में जो-जो क्षत्रिय उत्पन्न होंगे, उन्हें जानना चाहते हैं। वे लोग कितने दिनों तक जीवित रहेंगे ? उनके नाम क्या होंगे ? सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग की अवधि कितनी होगी ? प्रत्येक युगों में प्रजाओं में क्या दोष होंगे ? उनका विनाश कैसे होगा ? सुख एवं दुःख का प्रमाण क्या होगा ? प्रत्येक युग की प्रजाओं में क्या त्रुटियाँ होंगी ? इन सब बातों को हम लोग जानना चाहते हैं, कृपया कहिये ! ॥६८-७१॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! उदारतापूर्ण कर्मों को करनेवाले व्यास ने मुझसे भविष्य में आनेवाले कलियुग तथा आनेवाले सभी मंन्वतरों के विषय में जिस प्रकार की कथाएँ कहीं हैं, मैं आप लोगों से उन्हें कह रहा हूँ; सुनिये। अब इसके उपरान्त मैं भविष्य में होनेवाले राजाओं का ही वर्णन कर रहा हूँ। ऐल एवं इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न होनेवाले तथा पौरववंश में उत्पन्न होनेवाले राजाओं का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। ऐड (ऐल) एवं इक्ष्वाकु के कुल, जिन वंशों में परिणित हो जायँगे, उन सभी भविष्य में उत्पन्न होने वाले राजाओं के वंशों को मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ। इन वंशों के अतिरिक्त अन्य जितने नृपतिगण पृथ्वी पर उत्पन्न होंगे, उन सभी क्षत्रिय, पारशव, शूद्र, वहिश्चर, अन्ध, शक, पुलिन्द (चाण्डाल) चूलिका, यवन, कैवर्त, आभीर, शबर तथा अन्य म्लेच्छों से उत्पन्न होनेवाले राजाओं को

पर्यायक्रम से आप लोगों से कह रहा हूँ। इन सभी राजाओं में सर्वप्रथम अधिसोमकृष्ण नामक राजा है, जो इस समय विद्यमान है। उसके वंश में होनेवाले उन राजाओं को मैं बतला रहा हूँ, जो भविष्य में उत्पन्न होंगे। इस अधिसोमकृष्ण का पुत्र राजा विवक्षु होगा, जो गंगा नदी द्वारा हस्तिनापुर के डुबा दिये जाने पर उस प्राचीन नगर को छोड़कर कौशाम्बी नामक नगरी में निवास करेगा। उस विवक्षु के महाबलशाली तथा पराक्रमी आठ पुत्र होंगे। ज्येष्ठ पुत्र भूरि होगा और भूरि का पुत्र चित्ररथ होगा। चित्ररथ से शुचिद्रव नामक पुत्र उत्पन्न होगा और शुचिद्रव से वृष्णिमान् होगा। वृष्णिमान् का पुत्र राजा सुषेण होगा। इस सुषेण का पुत्र राजा सुनीथ होगा। राजा सुनीथ से महायशस्वी नृचक्षु नामक पुत्र होगा। नृचक्षु का उत्तराधिकारी पुत्र राजा सुखीबल होगा। इस राजा सुखीबल का पुंत्र परिष्णव होगा। परिष्णव का पुत्र राजा सुतपा होगा। उसका उत्तराधिकारी मेधावी नामक पुत्र होगा। मेधावी का पुत्र पुरंजय होगा। पुरंजय का पुत्र उर्व होगा, उसका पुत्र तिग्मात्मा और और तिग्मात्मा से वृहद्रथ नामक पुत्र उत्पन्न होगा। वृहद्रथ से वसुदामा नामक पुत्र होगा। वसुदामा का पुत्र शतानीक होगा, उससे उदयन नामक पुत्र की उत्पत्ति होगी। इस उदयन से राजा वहीनर उत्पन्न होगा। वहीनर का पुत्र दण्डपाणि होगा, दण्डपाणि से निरमित्र नामक पुत्र और निरमित्र से क्षेमक नामक पुत्र उत्पन्न होगा। इस भविष्यत्कालीन राजा क्षेमक के सम्बन्ध में प्राचीन काल के ऋषिगण एक श्लोक कहते रहे हैं जिसका सारांश यह है कि 'देवर्षियों द्वारा सत्कृत ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का आदि वंश कलियुग में क्षेमक राजा को प्राप्त कर अवस्थान करेगा अर्थात् उसके राज्य काल में समाप्त हो जायगा।' इस प्रकार महाराज पूरु के वंशजों का वृत्तान्त मैं यथार्थ रूप में बतला चुका, महात्मा एवं परमैश्वर्यशाली पाण्डुपुत्र अर्जुन के वंश को भी इसी प्रसंग में बतला चुका। ॥७२-८९॥

श्री मात्स्यमहापुराण में चन्द्रवंश वर्णन प्रसंग में पूरुवंश वर्णन नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! जो अग्नि द्विजातियों के परम पूज्य माने गये हैं अब उन सब को तथा उनके वंशजों को क्रमपूर्वक हम लोगों को सुनाइये। ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! स्वायम्भुव मनु के अधिकार काल में जो अभीमानी नामक अग्नि, ब्रह्मा के मानस पुत्र रूप में उत्पन्न कहे जाते हैं, उनके संयोग से स्वाहा नामक उनकी पत्नी ने पावक, पवमान और शुचि के नाम से विख्यात तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। उनमें से पवमान को निर्मथ्य (अरणी आदि के संयोग से मथने पर उत्पन्न) अग्नि, पावकात्मज को वैद्युत् (बिजली से उत्पन्न अग्नि) और शुचि को सौर (सूर्य के सम्बन्ध से निकली हुई अग्नि) अग्नि कहते हैं, ये सभी अग्नि स्थावर (स्थिर स्वभाव वाले) माने जाते हैं।

पवमान का पुत्र जो अग्नि हुआ, उसे हव्यवाह[1] कहते हैं। पावक अग्नि का पुत्र सहरक्ष नाम से विख्यात हुआ, शुचि अग्नि का पुत्र हव्यवाह हुआ। देवताओं के हव्यवाह नामक अग्नि ब्रह्मा के प्रथम पुत्र हैं।[2] सहरक्ष असुरों का अग्नि है। इस प्रकार ये तीन अग्नि तीनों के हैं। इनके पुत्र पौत्रों की संख्या चालीस[3] है। उनको विभागपूर्वक नाम सहित आप लोगों को बतला रहा हूँ, सुनिये। सर्वप्रथम पावन नामक लौकिक अग्नि हुए, जो ब्रह्मा के पुत्र हैं। उनके पुत्र ब्रह्मौदनाग्नि थे, जो भरत के नाम से विख्यात हैं। वैश्वानर हव्यवाह हवि को वहन करते समय मर गये। प्राचीन काल में अथर्वा के पुत्र के मर जाने पर मंथन करने से पुष्करोदधि अग्नि उत्पन्न हुआ। जो अथर्वा लौकिक अग्नि माना गया है, वही दक्षिणाग्नि भी कहा जाता है। महर्षि भृगु से अथर्वा उत्पन्न हुए थे और अथर्वा से अंगिरा उत्पन्न हुए—ऐसा सुना जाता है। उनके पुत्र अलौकिक अग्नि को दक्षिणाग्नि भी कहते हैं। ऊपर कह चुके हैं कि जो पवमान नामक अग्नि हैं वही निर्मथ्य नाम से भी विख्यात हैं, और वही ब्रह्मा के प्रथम पुत्र गार्हपत्य नामक अग्नि कहे जाते हैं। उनके संयोग से संशति के सभ्य और आवसथ्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो आहवनीय नामक अग्नि है, वही ब्राह्मणों द्वारा अभिमानी कहा गया है। उसी अग्नि ने कावेरी, कृष्णवेणी, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी, शतद्रु, सरयू, सीता, मनस्विनी, ह्लादिनी तथा पावना नामक सोलह नदियों की कामना की, और इन सोलहों नदियों में अपने को अलग-अलग सोलह भागों में विभक्त करके उसने विहार किया। उन नदियों में वह हव्यवाह धिष्ण्येच्छ (स्थान प्राप्ति का इच्छुक) हुआ था, अतः उसके नाम के अनुकूल उनमें धिष्णु नामक अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। इस कारण से कि वे धिष्ण्य में उत्पन्न हुए थे, अतः उनके नाम भी धिष्णु हुए। ये उपर्युक्त सब नदियों के अग्नि पुत्रगण धिष्ण्य में प्राप्त हुए थे। उन सबों के विहार एवं उपासना के योग्य जो स्थान हैं अब उन्हें बतला रहा हूँ, सुनिये। वे विभु, प्रवाहण तथा अग्नीध्र आदि अन्यान्य धिष्णु गण यज्ञादि के पुण्य अवसरों के उपस्थित होने पर अपने अपने समुचित स्थानों में विहार करते हैं, उक्त अनिर्देश्य तथा अनिवार्य अग्नियों के क्रम को सुनिये, बतला रहा हूँ।

---

[1] वायुपुराण में कव्यवाहन पाठ आता है। जो संगत प्रतीत होता है।

[2] वायुपुराण में इस स्थल पर ऐसा पाठ आता है। 'देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितृणां कव्यवाहनः। सहरक्षोऽसुराणां तु त्रयाणां ते त्रयोऽग्नयः।' इसका अर्थ यह हुआ कि—'देवताओं के अग्नि हव्यवाहन हैं, पितरों के कव्यवाहन हैं और असुरों के सहरक्ष हैं। इस प्रकार देवताओं, पितरों तथा असुरों के ये तीन अग्नि हैं।' मत्स्यपुराण की आनन्दाश्रम की प्रति में जो पाठ दिया गया है वह नितान्त भ्रामक तथा अशुद्ध है। उसके अनुसार जो अर्थ निकलता है वह ऊपर दिया गया है। उससे संगति एकदम नहीं बैठती। 'इस प्रकार ये तीन अग्नि तीनों के हैं।' इस वाक्य का प्रकृत पाठ से कोई सामंजस्य नहीं रहता।

[3] वायुपुराण में 'चत्वारिंशत्तथैव च' के स्थान पर 'चत्वारिंशन्नवैव च' पाठ है, जिसका अर्थ उनचास होता है। इसी प्रकार अनेक स्थलों पर दोनों पुराणों के पाठों में महान् अन्तर है। वायुपुराण के पाठों से पूर्वापर की कुछ संगति हो जाती है। पर मत्स्यपुराण के आनन्दाश्रम की प्रति का सम्पादन इस स्थल पर बड़ी असावधानी से किया गया है। मैंने यथासंभव दोनों के सामंजस्य का प्रयत्न किया है पर अनेक स्थलों पर मूल ग्रन्थ के आग्रह को नहीं छोड़ सका।

कृशानु नामक वासव अग्नि यज्ञ के उत्तर भाग में द्वितीय वेदी पर निवास करता है। उसी अग्नि का दूसरा नाम सम्राट भी है। उसके आठ पुत्र हुए। द्विजगण उन सभी अग्नि पुत्रों की उपासना करते हैं। पवमान नामक अग्नि पर्जन्य के आकार का दिखाई पड़ता है। उष्ण, जो उत्तराग्नि है, वह समूह्य नाम से भी विख्यात है। असमृज्य हव्यसूद अग्नि शामित्र भी कहा जाता है। शतधामा अग्नि सुधाज्योति है, उसे ही रौद्रैश्वर्य नाम से पुकारा जाता है। ब्रह्मज्योति अग्नि को वसुधामा तथा ब्रह्मस्थानीय भी कहते हैं। अजैकपात् अग्नि की शालामुख के नाम से भी प्रसिद्धि है, वह उपासनीय अग्नि है। अहिंबुघ्न्य अनिर्देश्य अग्नि हैं, और सब से कनिष्ठ हैं, ये दक्षिण दिशा के बाहर एवं अन्तर भाग में अवस्थित होते हैं। ये सभी अग्नि के पुत्रगण ब्राह्मणों के पूजनीय सुने जाते हैं। अब विहरणीय नामक आठ अग्निपुत्रों को बतला रहा हूँ, सुनिये। वर्हिष् नामक होत्रीय अग्नि से हव्यवाहन की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर प्रशंसनीय प्रचेता का जन्म हुआ, उसी का अन्य नाम संसहायक भी है। अग्निपुत्र विश्ववेदा का दूसरा नाम ब्राह्मणाच्छंशी भी कहा जाता है। जलयोनि स्वाम्भ नामक अग्निपुत्र सेतु नाम से भी पुकारा जाता है। ये धिष्ण्य अग्नि गण यज्ञस्थल में ससम्मान आवाहित होते हैं। द्विजगण सोम द्वारा इनकी पूजा करते हैं। पावक नामक जिस अग्नि को साधुगण योग नाम से पुकारते हैं, वह अग्नि यज्ञक्षेत्र में वरुण के साथ पूजित होता है। हृदय नामक अग्नि का पुत्र मन्युमान है, जो मनुष्यादि के उदर में निवास करता हुआ, क्षुद्र पदार्थों का परिपाक किया करता है। परस्पर के संघर्षण से उत्पन्न सभी जीवों को भस्म करनेवाला अग्नि विद्धाग्नि नाम से विख्यात है। मन्युमान अग्नि का पुत्र संवर्तक है, जो परम भयंकर अग्नि है। यह अग्नि समुद्र में वडवामुख होकर निरन्तर जल को पीते हुए निवास करता है। उस समुद्रनिवासी संवर्तक अग्नि का पुत्र सहरक्ष कहा जाता है। यह अग्नि सर्वदा गृह में निवास करते हुए मनुष्यों के सभी कार्यों को सम्पन्न करता है। उसका पुत्र क्रव्यादग्नि है, जो मृत पुरुषों का भक्षण करता है—ये सब पावकाग्नि के पुत्र ब्राह्मणपुत्रों द्वारा पूज्य कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त जो पुत्र हैं, उन्हें सौवीर्य से गन्धर्वों एवं असुरों ने हरण कर लिया था। जो अग्नि अरणी में मन्थन करने से उत्पन्न होता है वह इन्धनों का आश्रित है। पशुओं के लिए जो प्रभाववान् अग्नि नियत हुआ है, उसका नाम आयु है। उस आयु नामक अग्नि का पुत्र महिमान् है, उसका पुत्र दहन है। पाक यज्ञों में अभिमानी नामक जो अग्नि है वह यज्ञों में आहुति किये गये पदार्थों का भक्षण करता है। सभी देवलोकों में दिये गये हव्यों एवं कव्यों को जो अग्नि भक्षण करता है, वह इसका पुत्र सहित है। यह सहित अग्नि अति अद्भुत कर्म करनेवाला एवं महान् यशस्वी है। प्रायश्चित्त के कर्मों में आहुति किये गये हवनीय द्रव्यों का जो भक्षण करता है, वह भी अभिमानी अग्नि कहा जाता है। उस अद्भुत अग्नि का पुत्र वीर है, जो देवताओं के अंश से समुद्भूत तथा परम महान् सुना जाता है। उसका पुत्र विविधाग्नि है। और उसका पुत्र महाकवि है। विविधाग्नि के अर्क नामक पुत्र से आठ अग्निपुत्र कहे जाते हैं। किसी विशेष कामना से किये गये यज्ञादि कार्यों में अभिमानी रक्षोहा नामक अग्नि का निवास रहता है, जिसका दूसरा नाम यतिकृत भी है। उसके अन्य पुत्र के नाम सुरभि, वसुमान, नाद, हर्यश्व, रुक्मवान्,

अवर्ज्य तथा क्षेमवान् हैं। इन समस्त शुचि नामक अग्नि के सन्तानों की संख्या कुल मिलाकर चौदह है। यज्ञक्षेत्र में प्रणीत होनेवाले अग्नि के पुत्रों का विवरण बतला चुका। ये सभी अग्निगण प्रलय के अवसर पर याम नामक सर्वश्रेष्ठ देवगणों के साथ पूर्वकालीन स्वायम्भुव मनु के अधिकार काल में अभिमानी होकर चेतन एवं अचेतन सभी विहरणीय पदार्थों में अनुप्रविष्ट थे और सभी लोकों के पालन कार्य में परायण थे। इस पूर्व मन्वन्तर की समाप्ति हो जाने पर ये शुक्र एवं याम नामक देवगणों के साथ स्थानाभिमानी होकर अग्नीध्र के साथ हवनीय द्रव्यों के वहन करने का कार्य करते थे तथा किसी विशेष स्वर्गादि फल की कामना से अथवा पुत्रादि की कामना से किये गये यज्ञादि कार्यों में व्यवस्थित रहते थे। इस प्रकार अग्नि के सभी वंशधरों एवं उनके स्थानों का वर्णन मैं कर चुका, इन्हें स्वारोचिषु मन्वन्तर से लेकर सावर्णि मन्वन्तर तक—सात मन्वतन्तरों में—वर्तमान जानना चाहिये। ऋषियों ने वर्तमान एवं भविष्यत्कालीन सभी मन्वन्तरों में भी उन्हीं प्रकार के अग्नियों को उन्हीं लक्षणों तथा स्थानोंवाला गिना है उन्हें उसी प्रकार जानना चाहिये। ये अग्निगण सभी मन्वन्तरों में विविध प्रकार के रूप एवं प्रयाजनों से समन्वित होकर वर्तमानकालीन याम नायक देवताओं के साथ भी विद्यमान हैं एवं उसी प्रकार भविष्यत्काल में भी भविष्य में उत्पन्न होनेवाले याम संज्ञक देवगणों के साथ भी निवास करते हैं। इस प्रकार अग्निवंश का यह विवरण मैं विस्तारपूर्वक एवं क्रमानुसार आप लोगों को सुना चुका। अब बताइए, इसके उपरान्त क्या सुनना चाहते हैं? ॥१२-४७॥

श्री मात्स्य महापुराण में अग्निवंशवर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५१॥

बावनवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! मनु के पूछने पर धर्म तथा अधर्म के परमश्रेष्ठ जिस विस्तृत उपदेश को विष्णु भगवान् ने उन्हें दिया था, अब उसे हम लोगों को सुनाइये ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! उस अवसर पर, जब कि समस्त संसार एक समुद्र के रूप में परिणत हो गया था, मत्स्यरूपधारी विश्वात्मा भगवान् विष्णु ने इसी प्रकार आदि सर्ग तथा प्रतिसर्ग के निखिल व्यापारों का विस्तार तथा सांख्ययोग एवं कर्मयोग का विस्तार सूर्यपुत्र मनु जी को बतलाया था ॥२-३॥

ऋषियों ने कहा—सुव्रतपरायण सूत जी! हम लोग उस श्रेष्ठ कर्मयोग का लक्षण आपसे सुनना चाहते हैं, इस संसार में आपको कोई वस्तु अज्ञात नहीं है! ॥४॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! विष्णु भगवान् ने कर्मयोग की जिस प्रकार व्याख्या की है, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। ज्ञान योग की अपेक्षा यह कर्मयोग सहस्रगुणित अधिक प्रशस्त है। इसी कर्मयोग से ज्ञान की उत्पत्ति होती है, अतः यही परमपद है। कर्मज्ञान से ही ब्रह्म की भी प्राप्ति होती है, विना कर्मयोग के ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। कर्म में आत्मा का संयोग होने से ही जीव शाश्वत (कभी नष्ट न

होनेवाले) तत्त्व की प्राप्ति करता है। वेद एवं वेदों के जाननेवालों के आचार-व्यवहार ही अखिल धर्मों के मूल हैं। उनमें आठ प्रकार के आत्मगुण मुख्य रूप से अवस्थित हैं। जैसे सभी जीवों के प्रति क्षमा और दया का व्यवहार; आतुर एवं पीडित जीवों की रक्षा; लोक में किसी से द्वेषभाव न रखना; आन्तरिक तथा बाहरी-दोनों प्रकार की शुद्धियाँ; अल्प परिश्रम द्वारा साध्य होने वाले कार्यों को भी मंगलमयरूप से सम्पन्न करना; अपने सत्परिश्रम द्वारा उपार्जित द्रव्यों में से किसी दुःखी की सहायता के लिए कृपणता न करना तथा दूसरे के द्रव्य एवं स्त्री में कभी बुरी अभिलाषा न करना। पण्डितों ने पुराणों में कहे गये इन श्रेष्ठ आत्मा के आठ गुणों का वर्णन किया है। यही ज्ञान योग का परम साधक (उपकारी) क्रिया (कर्म) योग माना गया है। इस कर्मयोग के विना मर्त्यलोक में किसी को ज्ञानयोग की प्राप्ति होती नहीं दिखाई देती। वेदों तथा स्मृतियों में कहे गये धर्म कार्यों का प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। सर्वदा प्रतिदिन देवताओं, पितरों, तथा मनुष्यादि जीवों को यज्ञादि द्वारा और ऋषि गणों तथा प्रेतों को तर्पण द्वारा तृप्त करना चाहिये। विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह विधिपूर्वक स्वाध्याय तथा हवन से ऋषियों को, श्राद्ध से पितरों को, अन्नदान तथा बलि कर्म द्वारा सामान्य जीवों को सन्तुष्ट रखे। गृहस्थी में होने वाली पाँच प्रकार की जीवहिंसा के पापों को दूर करने के लिए पाँच प्रकार के (स्वाध्याय पाठ, अग्निहोत्र, अतिथि पूजन, पितृतर्पण और बलिकर्म।) यज्ञ बनाये गये हैं। वे पाँचों हत्याएँ इस प्रकार होती हैं। प्रथम कण्डनी में अर्थात् मूसल द्वारा उलूखल में अन्न छाँटते समय एक हिंसा होती है। दूसरे पेषणी में अर्थात् पीसते समय, तीसरे चुल्ली में भोजन बनाते समय, चौथे जलकुम्भी अर्थात् पानी लाने वाले घड़े से और पाँचवें प्रमार्जनी अर्थात् झाड़ू द्वारा बटोरते समय। गृहस्थों को इन पाँच प्रकार की हत्याओं का पाप लगता है, अतः उक्त पाप के कारण वह स्वर्ग नहीं जा सकता। उसी पाप के नाश करने के लिए ये पाँच प्रकार के यज्ञ कहे गये हैं। द्विजातियों के तीस प्रकार के जो संस्कार गिनाये गये हैं, उनसे भली भाँति संस्कृत होकर भी वह पुरुष, जो आत्मा के उपर्युक्त आठों गुणों से रहित है, स्वर्ग की प्राप्ति नहीं कर सकता। अतः उसे इन आठ आत्म गुणों से युक्त होकर वेद विहित कर्मों का सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिये। अपने सत्परिश्रम द्वारा उपार्जित धन से गौओं तथा ब्राह्मणों का सर्वदा कल्याण करना चाहिये। गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, माला तथा जल से ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, रुद्र तथा वसु स्वरूप शिव की विधिपूर्वक व्रत तथा उपवास रखकर श्रद्धा समेत पूजा करनी चाहिये। इसमें किसी प्रकार की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। इन्द्रियों से अगोचर परम शान्त सूक्ष्म अव्यक्त सर्वदा विद्यमान जो जगत्स्वरूप भगवान् वासुदेव हैं, उनकी विविध विभूतियाँ ये सब हैं। ब्रह्मा, भगवान विष्णु, सूर्य, शिव, आठो वसु, ग्यारह गणाधिपति, लोकपालेश्वर, पितर गण और मातृगण। यही नहीं प्रत्युत समस्त चराचर जगत् को भी उन्हीं की विभूति समझना चाहिये। इन विभूतियों का वर्णन कर चुका। ब्रह्मा आदि चार देव गण (ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और शिव) मूल रूप से इस जगत् के अव्यक्त अधिपति कहे जाते हैं। ब्रह्मा वा सूर्य विष्णु वा शिव इन सब को अभिन्न मान कर यदि सेवा की जाय तो इस प्रकार समस्त चराचर विश्व को पूजित समझना चाहिये। यह सूर्य देवता वेद के रूप हैं, ब्रह्मा आदि

तीनों देवताओं के परम तेजोधाम हैं, उन्हीं में इन तीनों देवताओं की अवस्थिति है, अतः मनुष्य को उनकी सर्वथा प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इसलिए मनुष्य को जप, हवन, दान, व्रत, उपवास आदि के द्वारा ब्राह्मण एवं अग्नि के मुख में इन देवताओं का आवाहन करके विधिवत् पूजा करनी चाहिये। इन उपर्युक्त विधानों से सदा कर्मयोग में लीन रहने वाले, वेदान्त, शास्त्र तथा स्मृतियों के प्रेमी, बुरे कर्मों से डरने वाले मनुष्य के लिए न तो इस संसार में कोई वस्तु पाने योग्य रहती है और न दूसरे लोक में अर्थात् कोई भी पदार्थ उसे किसी लोक में दुष्प्राप्य नहीं रहते। ॥५-२६॥

श्री मात्स्य महापुराण में कर्मयोगमाहात्म्य वर्णन नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

मुनियों ने कहा—सूत जी! अब हम लोगों को आप विस्तारपूर्वक एवं क्रमानुसार पुराणों की संख्या बतलाइये। साथ ही साथ सम्पूर्ण दान तथा धर्म की विधियों को भी क्रमशः बतलाइये। ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! उस समय मनु द्वारा इसी प्रश्न के पूछे जाने पर विश्वात्मा पुराण पुरुष मत्स्य भगवान् ने पुराणों के विषय में जो कुछ मनु से कहा था उसे आप लोग सुनें। ॥२॥

मत्स्य ने कहा—ब्रह्मा ने सब शास्त्रों के निर्माण के पहले पुराण का स्मरण किया था, तदुपरान्त उनके मुखों से वेद निकले थे। निष्पाप! उस समय कल्पान्तर में, जब कि ब्रह्मा ने पुराणों का स्मरण किया था, सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत, पुण्यप्रद, धर्म अर्थ तथा काम—इन तीनों पदार्थों को प्रदान करनेवाला पुराण एक ही था। सभी लोकों के जल जाने पर अश्व रूप धारण कर मैंने चारों वेदों, उनके अंगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण आदि) पुराणों, विस्तृत न्यायशास्त्र, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र को एकत्र संगृहीत कर संकलित किया था, तथा पुनः कल्प के आदि काल में, जब समस्त सृष्टि समुद्र में निमग्न थी, समुद्र के जल के भीतर से मैंने ही इन सम्पूर्ण वेदादि विषयों को ब्रह्मा से कहा था। उन्हें ही ग्रहणकर चतुर्मुख ब्रह्मा ने देवताओं और ऋषियों से इन विषयों को कहा था। तभी से सर्वसाधारण की प्रवृत्ति सब शास्त्रों की ओर तथा पुराण की ओर हुई। राजन्! काल के प्रभाव से बाद में चलकर पुराण की ओर लोगों की अरुचि देखकर मैं प्रति द्वापर युग में स्वयं व्यास रूप धारण कर उस सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत पुराण को चार लाख श्लोकों के संकुचित रूप में परिवर्तित कर देता हूँ। और उसी एक पुराण को अठारह भागों में विभक्त कर के इस पृथ्वीलोक पर प्रकाशित किया करता हूँ; किन्तु देवलोक में तो आज भी वह पुराण सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत है। उसी का सारांश इस लोक में चार लाख श्लोकों में मैंने भर दिया है। मुनिवृन्द! मैं उन पुराणों का वर्णन नाम सहित कर रहा हूँ। प्राचीन काल में ब्रह्मा ने महर्षि मरीचि को यह विवरण सुनाया था। सर्वप्रथम ब्राह्मपुराण तेरह सहस्र श्लोकों में कहा गया है, उसे लिखकर जो व्यक्ति सवत्सा जलधेनु के साथ वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि को दान देता है वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है। जिस समय यह समस्त

संसार एक स्वर्णमय पद्म के रूप में परिणत था, उस समय के वृत्तान्त का जिसमें वर्णन किया गया है, पण्डित लोग उसे पाद्म पुराण कहते हैं, उस पाद्मपुराण की कथा इस मर्त्यलोक में पचपन सहस्र श्लोकों में कही गयी है। उक्त पुराण को लिखकर जो व्यक्ति सुवर्ण निर्मित कमल के साथ ज्येष्ठ मास में तिल के सहित दान देता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। वाराह भगवान् के कल्प अर्थात् जिस सृष्टि के प्रारम्भ में वाराह रूप में भगवान् अवतरित हुए थे, वृत्तान्त को लक्ष्य कर पराशरनन्दन ने जिसमें सम्पूर्ण धर्मयुक्त उपदेशों को कहा है, उसे वैष्णव पुराण कहते हैं। उसे जो कोई व्यक्ति आषाढ़ मास में पूर्णिमा तिथि को पवित्रात्मा होकर सवत्सा घृतधेनु के साथ दान देता है वह वरुण के लोक को प्राप्त करता है। पण्डित लोग उक्त वैष्णव पुराण का प्रमाण तेईस सहस्र श्लोकों में जानते हैं। इस मर्त्यलोक में श्वेत कल्प वृत्तान्त के प्रसंग में वायु ने रुद्र माहात्म्य के समेत धर्ममय उपदेशों को जिस पुराण की कथाओं के प्रसंग में किया था, वह वायवीय पुराण है, वह पुराण इस लोक में चौबीस सहस्र श्लोकों में समाप्त हुआ कहा जाता है। श्रावण मास की पूर्णिमा तिथि श्रावणी को सवत्सा गुडधेनु तथा बैल के समेत कुटुम्बवाले ब्राह्मण को जो पवित्रात्मा मनुष्य इसका दान देता है, वह शिवलोक में एक कल्प पर्यन्त निवास करता है। जिस पुराण में गायत्री को लक्ष्य कर धर्म का विस्तारपूर्वक उपदेश किया गया है और जिसमें वृत्रासुर का बध भी वर्णित है, वह भागवत नामक पुराण कहा जाता है। सारस्वत[1] नामक कल्प में जो श्रेष्ठ मनुष्यगण उत्पन्न हो गये हैं, लोक में उनके वृत्तान्त से सम्बन्ध रखनेवाले पुराण को भागवत कहते हैं। इस पुराण को लिखकर जो कोई मनुष्य सुवर्ण रचित सिंह के सहित भाद्रपद मास की पूर्णमासी तिथि को दान देता है, वह परम गति प्राप्त करता है। यह भागवत नामक पुराण अट्ठारह सहस्र श्लोकों में कहा जाता है। जिस पुराण की कथा में नारद ने वृहत्कल्प के प्रसंग में धर्म का उपदेश दिया है, वह नारदीय पुराण कहा जाता है। उसका प्रमाण पच्चीस सहस्र श्लोकों का है। आश्विन मास की पूर्णिमा तिथि को जो कोई मनुष्य सवत्सा गौ समेत इसे दान देता है वह उस परम सिद्धि को प्राप्त करता है, जिसे प्राप्त कर पुनरागमन दुर्लभ हो जाता है। जिस पुराण में कुछ जिज्ञासु मुनियों के प्रश्न करने पर धर्मनिष्ठ मुनियों ने कुछ पक्षियों के प्रसंग में धर्म अधर्म का विवेचन और व्याख्यान किया है, वह मार्कण्डेय मुनि द्वारा विस्तारपूर्वक कहा गया नव सहस्र श्लोकों वाला मार्कण्डेय नामक पुराण इस मर्त्यलोक में परम प्रसिद्ध है। उसे लिखकर जो कोई मनुष्य सुवर्णमय हाथी के समेत कार्तिक की पूर्णिमा को दान देता है, वह पुण्डरीक यज्ञ के फल का भागी होता है। ईशान नामक कल्प वृत्तान्त के प्रसंग में अग्नि ने जिसे वशिष्ठ ऋषि के लिए कहा है, वह आग्नेय पुराण कहलाता है। जो मनुष्य इस पुराण को लिखकर सुवर्ण रचित कमल के समेत मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा तिथि को विधिपूर्वक सवत्सा तिलधेनु के साथ दान देता है वह स्वर्गलोक में पूजित होता है। उक्त आग्नेय पुराण का प्रमाण सोलह सहस्र श्लोकों में है। वह सभी यज्ञों का फल देनेवाला है। जिसमें ब्रह्मा ने सूर्य के

[1] यह पाठ सभी पुस्तकों में प्राप्त नहीं है।

माहात्म्य के लक्ष्य से अघोर नामक कल्प-वृत्तान्त के प्रसंग में संसार की स्थिति तथा सृष्टि के लक्षणादि को मनु से बतलाया है, वह प्रायः भविष्य में होनेवाले चरित्रों से संवलित, भविष्य नामक पुराण है। चौदह सहस्र पाँच सौ श्लोकों में, इस मर्त्यलोक में उसकी प्रसिद्धि है। उसे जो कोई मनुष्य अभिमान रहित हो, पौष मास की पूर्णिमा तिथि को गुड़ और घड़े के साथ दान देता है, वह अग्निष्टोम नामक यज्ञ का फल प्राप्त करता है। रथन्तर नामक कल्प के वृत्तान्त को लक्ष्य कर सावर्णि मनु ने नारद ऋषि के लिए कृष्ण भगवान् के श्रेष्ठ माहात्म्य को जिस पुराण में कहा है, और जिसमें ब्रह्म वाराह के उपदेश वारम्बार वर्णित हैं, वह अट्ठारह सहस्र श्लोकों का ब्रह्मवैवर्त नामक पुराण कहा जाता है। जो कोई मनुष्य माघ महीने की पूर्णिमा तिथि को शुभ दिन में इसका दान देता है, वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है। जिसमें अग्नि लिंग के मध्य में स्थित होकर भगवान् शंकर ने कल्पान्त में अग्नि को लक्ष्य कर, धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष—इन चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिए धर्म का उपदेश किया है, उस पुराण का स्वयं ब्रह्मा ने लैङ्ग नाम रखा है, उक्त ग्यारह सहस्र श्लोकों वाले पुराण को जो कोई मनुष्य फाल्गुन मास की पूर्णिमा तिथि को सवत्सा तिलधेनु के साथ दान देता है, वह शिव की समानता का पद प्राप्त करता है। मुनिवृन्द ! पुनः महावराह के माहात्म्य के विषय पर विष्णु भगवान् ने पृथ्वी के लिए मानव कल्प के प्रसंग में चौबीस सहस्र श्लोकों में जिसे वर्णित किया है, वह पुराण इस लोक में वाराह पुराण के नाम से प्रसिद्ध है। जो कोई मनुष्य चैत्र मास की पूर्णिमा तिथि को सुवर्ण रचित गरुड को बनाकर तिल और सवत्सा गौ के साथ कुटुम्ब वाले ब्राह्मण को इसका दान करता है, वह भगवान् वाराह की कृपा से विष्णु के स्थान को प्राप्त करता है। जिस पुराण में स्वामिकार्तिकेय ने माहेश्वर धर्म के विषय पर प्रलय काल में शिव के चरित्रों का गुण गान किया है, वह मर्त्यलोक में इक्यासी सहस्र एस सौ श्लोकों में विस्तृत स्कान्द पुराण कहा जाता है। इसे लिखकर जो कोई मनुष्य सुवर्णरचित त्रिशूल के साथ मीन राशि पर सूर्य के आने पर दान देता है, वह शैव पद को प्राप्त करता है। ब्रह्मा जी ने त्रिविक्रम (वामन भगवान्) के उस माहात्म्यमय वृत्तान्त का, जिसमें उन्होंने अपने तीन पगों से तीनों लोकों को नाप लिया था, जिस पुराण में भली भाँति कीर्तन किया है, और जो कूर्म कल्प से सम्बन्ध रखनेवाला तथा कल्याण प्रद है, उसे वामन पुराण कहते हैं। उसका प्रमाण दस सहस्र श्लोकों का कहा गया है। जो कोई मनुष्य शरत् ऋतु में, जिस तिथि को दिन-रात बराबर होते हैं, दान देता है वह विष्णु के लोक को प्राप्त करता है। जिस पुराण में भगवान् जनार्दन (विष्णु) ने कूर्म रूप धारण कर रसातल में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारों पदार्थों के माहात्म्य को इन्द्र के समीप में इन्द्रद्युम्न की कथा के प्रसंग में कहा है, वह लक्ष्मी कल्प से सम्बन्ध रखने वाला अट्ठारह सहस्र श्लोकों में समाप्त कूर्म पुराण के नाम से विख्यात है। जो कोई व्यक्ति इस कूर्म पुराण को अयन[1] के अवसर पर सुवर्ण रचित कूर्म (कच्छप) के साथ दान देता है, वह

[1]जब सूर्य उत्तर से दक्षिण तथा दक्षिण से उत्तर होते हैं तो उसे अयन कहते हैं, वे दक्षिणायन और उत्तरायण नाम से दो हैं।

सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है। मुनिवृन्द ! जिस पुराण में, सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् जनार्दन विष्णु ने मात्स्य रूप धारण कर मनु के लिए, वेदों में लोक प्रवृत्ति के लिए, नरसिंहावतार के विषय के प्रसंग से सात कल्प वृत्तान्तों का वर्णन किया है, उसे मात्स्य पुराण जानिये। वह चौदह सहस्र श्लोकों में विस्तृत है। विषुव (जिस तिथि को दिन और रात बराबर-बराबर होते हैं) के अवसर पर जो कोई मनुष्य इसे सुवर्ण निर्मित मत्स्य और सवत्सा गौ के साथ दान देता है, उसने मानो सम्पूर्ण पृथ्वी दान में दे दी। गारुड़ नामक कल्प के अवसर पर विश्वाण्ड (ब्रह्माण्ड) से गरुड की उत्पत्ति हुई थी, उक्त विषय को लेकर भगवान् कृष्ण द्वारा कथित अट्ठारह सहस्र तथा एक सहस्र अर्थात् उन्नीस सहस्र श्लोकों वाले पुराण को इस लोक में लोग गारुड पुराण कहते हैं। जो कोई मनुष्य मर्त्यलोक में इस गारुड पुराण को सुवर्ण निर्मित हंस समेत दान देता है, वह मुख्य सिद्धियों को प्राप्त करता है और शिव लोक में निवास करता है। ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड के माहात्म्य को लेकर जिस पुराण में उपदेश किया था और जिसमें भविष्य तथा कल्पों के वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णित हैं, वह बारह सहस्र दो सौ श्लोकों में विस्तृत ब्रह्माण्ड पुराण कहा जाता है। ब्रह्मा द्वारा कथित उक्त ब्रह्माण्ड पुराण को जो कोई मनुष्य व्यतीपात नामक योग के अवसर पर पीले रंग के कम्बल समेत दान देता है, वह सहस्र राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। और वही पुराण सुवर्णमयी सवत्सा गौ के सहित दान देने पर ब्रह्म-लोक-प्राप्ति का फल प्रदान करता है। अद्भुत कर्म करने वाले महर्षि वेदव्यास ने इन चार लाख श्लोकों में समाप्त होने वाले पुराणों को मर्त्यलोक के प्राणियों के कल्याणार्थ मेरे पिता से कहा था और उसी को मेरे पिता जी ने और स्वयं मैंने तुम लोगों को सुनाया। यह पुराण अब भी देवताओं में सौ करोड़ श्लोकों में—विस्तृत रूप में—विद्यमान है। अब मैं पुराण के उन उपभेदों को कह रहा हूँ, जो लोक में प्रचलित हैं। पाद्मपुराण में जिस स्थल पर भगवान नरसिंह का वर्णन है, उस अठारह सहस्र श्लोकोंवाले पुराण को इस लोक में नारसिंह पुराण कहते हैं। जिस पुराण में स्वामिकार्तिकेय के द्वारा नन्दा के माहात्म्य का वर्णन किया गया है, उसे लोग नन्दीपुराण कहते हैं, और उसकी कथा का कीर्तन करते हैं। हे मुनिवृन्द! जिस पुराण में प्रथमतः शाम्ब का वर्णन करके भविष्य का वृतान्त वर्णित हैं, वह मर्त्यलोक में शाम्ब नामक उपपुराण कहा जाता है। पण्डित लोग पुरातन कल्पों में घटित होनेवाली कथाओं से युक्त इन पुराणों को जानते हैं। इसी प्रकार लोक में आदित्य नामक अन्य उपपुराण का भी नाम लिया जाता है। पुराणों का यह अनुक्रम (क्रम) धन्य है, यश तथा दीर्घायु का देनेवाला है।॥१-६३॥

विप्रवर्यवृन्द! ऊपर कहे गये अठारह महापुराणों से अलग जो अन्य उप पुराण कहे गये हैं, उन्हें इन्हीं सब पुराणों से निकला हुआ ही समझिये। पुराणों में प्राचीन काल की प्रसिद्ध कथाएँ कही गई हैं। और उनके सामान्यतया पाँच लक्षण होते हैं। सर्ग (ब्रह्मा द्वारा सृष्टि रचना), प्रतिसर्ग (ब्रह्मा द्वारा सृष्टि रचना किये जाने के उपरान्त रुद्र, विराट् मनु, दक्ष एवं मरीचि आदि ब्रह्मा के मानसपुत्रों द्वारा पृथक-पृथक सृष्टि रचना), वंश (सूर्य, चंद्र आदि) मन्वन्तर (स्वायम्भुव, स्वारोचिष् आदि) और

वंशानुचरित (उक्त वंशों में उत्पन्न होनेवाले राजाओं आदि का वर्णन) ये पाँच प्रकार के पुराणों के लक्षण कहे गये हैं। इन पाँच प्रकार के लक्षणोंवाले सभी पुराणों में संसार के उत्पत्ति और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य एवं शिव के माहात्म्य, अन्यान्य वृत्तान्त, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारों पदार्थों के प्राप्त करने के विविध उपाय तथा विपरीत आचरण करने पर जो कुफल मिलता है उसका वर्णन भी किया गया है। सत्त्व गुण प्रधान पुराणों में भगवान् विष्णु का माहात्म्य अधिक बताया गया है। रजोगुण प्रधान पुराणों में ब्रह्मा के माहात्म्य अधिक बताये गये हैं। उसी प्रकार तमो गुण प्रधान पुराणों में अग्नि तथा शिव के माहात्म्य अधिक वर्णित किये गये हैं। संकीर्ण पुराणों में सरस्वती तथा पितरों के माहात्म्य वर्णित हैं। सत्यवतीसुत व्यास ने इन अठारह पुराणों की रचना करके सम्पूर्ण महाभारत की रचना की थी, जो एक लाख श्लोकों में वेदसम्मत अर्थों से सुशोभित कहा जाता है। वाल्मीकि ने जिस रामचन्द्र के उत्तम वृत्तान्त को कहा है, जिसे सौ करौड़ श्लोकों में विस्तृत करके ब्रह्मा ने नारद से कहा था और संक्षेप में नारद ने वाल्मीकि से कहा था, उसी धर्म अर्थ तथा काम को प्रदान करनेवाले रामचरित को वाल्मीकि ने मर्त्यलोक में कहा है। इस प्रकार ऊपर के पुराणों की सारी संख्या को जोड़ कर—सब मिलाकर—सवा पाँच लाख श्लोकों में पुरानी कथाएँ इस मर्त्यलोक में कही गई हैं। पण्डित लोग पुराणों की कथाओं को पुरातन सृष्टि के सम्बन्ध में कहते हैं। पुराणों का यह क्रम-वृत्तान्त धन्य है, यश तथा दीर्घ आयु को प्रदान करनेवाला है। जो कोई मनुष्य इसे पढ़ता है अथवा सुनता है वह परम गति को प्राप्त करता है। यह पवित्र है, यश का निधान है, पितरों का अति प्रिय विषय है, देवताओं के लिए अमृत के समान सुखदायी है और पुरुषों के लिए नित्य पापों को दूर करनेवाला है। ॥६४-७४॥

श्री मात्स्य महापुराण में पुराणों की अनुक्रमणिका नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५३॥

चौवनवाँ अध्याय

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं आप लोगों से सभी प्रकार के उन दान धर्मों का वृत्तान्त कहूँगा, जो व्रत तथा उपवास समेत किये जाते हैं। जैसा कि मर्त्यलोक में भगवान् मत्स्य ने भी कहा है। पूर्वकाल में महादेव तथा बुद्धिमान् नारद के बीच में दान संवाद जिस प्रकार हुआ था, उसी प्रकार मैं भी धर्म अर्थ तथा काम को देनेवाले उक्त वृत्तान्त को तुम लोगों से कह रहा हूँ, सुनिये। ॥१-२॥

प्राचीन काल में एकबार कैलास पर्वत के शिखर पर बैठे हुए कामदेव के शरीर को जलानेवाले त्रिनेत्र भगवान् शंकर से नारद जी ने पूछा था। ॥३॥

नारद ने कहा—देवाधिदेव! ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र के नायक! भगवन्! आपका अथवा भगवान् विष्णु का भक्त होकर मनुष्य किस प्रकार धन-सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, आरोग्य, सौन्दर्य, दीर्घायु, भाग्य, सौभाग्य तथा संपदा से सम्पन्न हो सकता है? अथवा विधवा नारी किस प्रकार सभी प्रकार के सद्गुणों से युक्त

तथा सौभाग्यवती हो सकती है ? देव ! आप कृपापूर्वक मुक्ति को प्रदान करनेवाले किसी ऐसे ही व्रत का विधान हमें बतलाइये । ॥४-५॥

ईश्वर ने कहा—नारद ! ब्रह्मन् ! सम्पूर्ण लोक के कल्याण करनेवाले शुभ व्रत का प्रसंग आपने बड़ा अच्छा छेड़ा, जो सुननेमात्र से ही शान्ति प्रदान करनेवाला है । ऐसे व्रत को मैं बतला रहा हूँ, सुनिये । नारायणात्मक नक्षत्र पुरुष नामक एक महान् व्रत है । उस व्रत में भगवान् के पाद आदि स्वरूप विधिपूर्वक बनावे और उनके नामों का कीर्तन करे । चैत्र महीने में सर्वप्रथम ब्राह्मण को बुलाकर संकल्प करे और तब मूल नक्षत्रों में भगवान् वासुदेव की मूर्ति की पूजा करे । मूल नक्षत्र में 'विश्वधराय नमः' समस्त विश्व —ब्रह्माण्ड—को धारण करनेवाले को नमस्कार है—ऐसा कहकर दोनों पैरों की पूजा करे । रोहिणी नक्षत्र में 'अनन्ताय नमः' अनन्त के लिए नमस्कार है—ऐसा कहकर दोनों गुल्फों (ऐंड़ी के ऊपर वाली गाँठ) की पूजा करे । इसी प्रकार दोनों जंघाओं की अथवा जानु (घुटनों को) की 'वरदाय नमः' वरदान देनेवाले के लिए नमस्कार कर के अश्विनी कुमार के नक्षत्र (अश्विनी) में पूजा करे । पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ इन दोनों नक्षत्रों में 'नमः शिवाय' शिव के लिए नमस्कार है—यह कह कर ऊरू की पूजा करे । पूर्वा फाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रों में पंचशर—के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर मेढ़ (लिंग) की पूजा करे । नारद ! कृत्तिका नक्षत्र में शार्ङ्गधर (विष्णु) के लिए नमस्कार है—ऐसा कहकर विष्णु भगवान् के कटि प्रदेश की पूजा करे । पूर्व भाद्रपद और उत्तर भाद्रपद इन दोनों नक्षत्रों में केशिनिषूदन के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर पार्श्व (बगल) भाग की पूजा करे । नारद ! रेवती नक्षत्र में दामोदर (दाम अर्थात् सम्पूर्ण लोकों के नाम हों पेट में जिसके, अर्थात् भगवान् विष्णु) के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर दोनों कुक्षि (कोख) प्रदेशों की पूजा करे । अनुराधा नक्षत्र में माधव (विष्णु) के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर उर (छाती) स्थल की पूजा करे । धनिष्ठा नक्षत्र में अघौघविध्वंसकर (पापों के समूहों को विध्वंस करनेवाले) के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर पृष्ठ (पीठ) देश की पूजा करे । विशाखा नक्षत्र में श्री शंखचक्रासिगदाधर (लक्ष्मी सम्पन्न, शंख, चक्र, तलवार तथा गदा धारण करने वाले) के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर भुजाओं (चारों भुजाओं) की पूजा करे । हस्त नक्षत्र में मधु सूदन (मधु नामक राक्षस का विनाश करने वाले भगवान् विष्णु) के लिए नमस्कार है, —ऐसा कह कर कैटभ के शत्रु (विष्णु) के हाथों की पूजा करे। पुनर्वसु नक्षत्र में साम्नामधीश (साम के मध्य में संगीत के माधुर्य के कारण अति रमणीय होने से विष्णु भगवान् की मूर्ति भी साम कही जाती है, उसके स्वामी विष्णु) के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर अंगुलियों के अग्रभागों की पूजा करे । आश्लेषा नक्षत्र के दिन मत्स्य शरीर धारण करने वाले के (विष्णु के) नखों की पूजा करे । ज्येष्ठा नक्षत्र में कूर्म (कच्छप) के चरणों की मैं शरण में हूँ—ऐसा कह कर कण्ठ प्रदेश में हरि की पूजा करे । श्रवण नक्षत्र में वाराह के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर भगवान् जनार्दन के कानों की भली भाँति पूजा करे । पुष्य नक्षत्र में दानव के विनाशक नृसिंह भगवान् के लिए हमारा नमस्कार है—ऐसा कह कर मुख की

पूजा करे। स्वाती नक्षत्र में भक्तों के कारण से वामन रूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु को नमस्कार है—ऐसा कह कर दाँतों के अग्रभाग की पूजा करे। द्विज! वरुण के नक्षत्र (शतभिष नक्षत्र में) में भार्गव नन्दन के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर विष्णु भगवान् के मुख की पूजा करे। मघा नक्षत्र में राम के लिए हमारा नमस्कार है,—ऐसा कह कर रघुनन्दन की नासिका की पूजा करे। मृगशिरा नक्षत्र में हे तिरछे नेत्रोंवाले राम! आप को हमारा नमस्कार है—ऐसा कह कर दोनों नेत्रों की पूजा करे। चित्रा नक्षत्र में शान्त और शुद्ध रूप (भगवान् विष्णु को) को हमारा नमस्कार है—ऐसा कह कर मुरारि (विष्णु) के ललाट-प्रदेश की पूजा करे। भरणी नक्षत्र में हे विश्वेश्वर! कल्कि रूप धारण करने वाले आपको हमारा नमस्कार है—ऐसा कह कर विष्णु भगवान् के शिर की पूजा करे! आर्द्रा नक्षत्र में हरि के लिए हमारा नमस्कार है—ऐसा कह कर पुरुषोत्तम के केशों की पूजा करे। उक्त नक्षत्रों के दिन उपवास करके श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा भी करनी चाहिये। व्रत की समाप्ति पर सर्वगुणसम्पन्न, वक्ता, रूपवान्, शीलवान्, सामवेद को जाननेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण को सुवर्ण से बनी हुई विशाल और लम्बी बाहुओं वाली, मोती, तथा हीरे से जड़ी हुई, जल से भरे हुए कलश में रखी गई, विष्णु भगवान् की सुन्दर मूर्ति सुन्दर वस्त्र, गौ तथा सब प्रकार की सामग्रियों और पात्रों का दान दे। साथ ही एक सुन्दर शय्या भी दान करे। इस प्रकार जो कुछ भी हो सके अपने कल्याण के लिए ब्राह्मण को देना चाहिये। तदन्तर ब्राह्मण से 'ब्रह्मा विष्णु और शिव स्वरूप ब्राह्मण देव! मेरे मनोरथों को सफल कीजिये'—ऐसा निवेदन करना चाहिये। ॥६-२३॥

लक्ष्मी समेत सुवर्ण से बनी हुई पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की मूर्ति को तथा शय्या को उक्त ब्राह्मण को विना गाँठ बाँधे ही मंत्रोच्चारणपूर्वक दान दे, ब्राह्मण स्त्री युक्त हो। और तब निवेदन करे कि 'जिस प्रकार विष्णु के भक्तों से कभी पाप नहीं होता उसी प्रकार केशव के प्रसन्न होने पर सौन्दर्य, आरोग्य तथा श्रेष्ठ भक्ति भी प्राप्त होती है। हे जनार्दन! जिस प्रकार आप की शय्या कभी लक्ष्मी से शून्य नहीं रहती, उसी प्रकार हे कृष्ण! प्रत्येक जन्म में मेरी भी शय्या कभी शून्य न रहे।' इस प्रकार निवेदन करने के उपरान्त उन सब वस्त्र माला चन्दन आदि सामग्रियों को भी उक्त नक्षत्रपुरुष नामक व्रत को जानने वाले (कराने वाले, पुरोहित) ब्राह्मण को दान दे दे। उक्त सभी नक्षत्रों में उपवास रख कर तैल तथा नमक के विना ही भोजन करना चाहिये। भोजन यथाशक्ति करे। उसमें किसी प्रकार की कृपणता न करे। इस प्रकार स्वयम् इस नक्षत्रपुरुष नामक व्रत की विधिपूर्वक उपासना करके मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त करता है, और विष्णु लोक में पूजित होता है। इसके सम्पन्न करने से ब्रह्महत्या आदि घोर पाप—वे चाहे इस लोक के किये हों वा परलोक के किये हों, अथवा पितरों के किये हों—नष्ट हो जाते हैं। इस भगवान् विष्णु के समस्त घोर पापों को विनष्ट करनेवाले व्रत के माहात्म्य को जो कोई श्रेष्ठ मनुष्य वा स्त्री अति भक्ति से पढ़ती है, सुनती है अथवा आचरण करती है उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। यह पुनीत व्रत पुरुषों को सभी प्रकार की विभूतियों और फलों का देने वाला है। ॥२४-३१॥

श्री मात्स्य महापुराण में नक्षत्रपुरुष व्रत माहात्म्य नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥५४॥

पचपनवाँ अध्याय

नारद ने कहा—अभ्यास न होने के कारण अथवा रोग युक्त होने के कारण जो मनुष्य उपवास करने में असमर्थ है, और उसी प्रकार के फल को प्राप्त करना चाहता है, उसके लिए कौन-सा व्रत करना ठीक होगा ? ॥१॥

ईश्वर ने कहा—उपवास करने में असमर्थ लोगों के लिए, जिस में रात्रि काल में भोजन कर लेने का विधान बतलाया गया है, ऐसे महान् तथा अक्षय फल देनेवाले आदित्यशयन नामक व्रत को बतला रहा हूँ, सुनिये। जिसमें तिथियों एवं नक्षत्रों के संयोग के अवसर पर पुराणों के जानने वाले विधिपूर्वक शंकर भगवान् की पूजा का माहात्म्य बतलाते हैं। जब सप्तमी तिथि को हस्त नक्षत्र युक्त रविवार का दिन आये और उसी दिन सूर्य की संक्रान्ति भी हो तो उक्त तिथि को सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करनेवाली समझना चाहिये। इस पुण्य तिथि को पार्वती और महादेव की पूजा सूर्य का नामोच्चारण करके करे, और शिव लिङ्ग में सूर्य की पूजा करते हुए यत्नपूर्वक उसकी उपासना करे। मुनिवर! उमापति शिव तथा सूर्य का भेद कहीं पर देखा नहीं गया है, अतः मनुष्य को घर में शिव लिंग की पूजा करनी चाहिये ॥२-६॥

हस्त नक्षत्र में सूर्य के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर दोनों पैरों की पूजा करे। चित्रा नक्षत्र में अर्क के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर गुल्फ प्रदेश की पूजा करे। इसी प्रकार स्वाती नक्षत्र में पुरुषोत्तम के लिए नमस्कार है—ऐसा कहकर दोनों जंघाओं की पूजा, विशाखा नक्षत्र में धाता के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर जानु प्रदेश की पूजा और अनुराधा नक्षत्र में सहस्रभानु के लिए नमस्कार करके दोनों उरु प्रदेशों की भली भाँति पूजा करे। इसी प्रकार ज्येष्ठा नक्षत्र में अनङ्ग के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर गुह्य इन्द्रिय की पूजा करे। मूल नक्षत्र में इन्द्र के लिए और सोम (चन्द्रमा) के लिए नमस्कार है ऐसा कह कर कटि प्रदेश की पूजा करे। पूर्वाषाढ़ तथा उत्तराषाढ़—इन दोनों नक्षत्रों में त्वष्ट्रा सप्ततुरंगम (सात घोड़ों वाले सूर्य) के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर नाभि देश की पूजा करे। श्रवण नक्षत्र में तीक्ष्णांशु (तेज किरणों वाले) के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर कुक्षि प्रदेश की, धनिष्ठा नक्षत्र में विकर्त्तन के लिए कह कर पृष्ठ (पीठ) देश की पूजा करे। इसी प्रकार शतभिष नक्षत्र में ध्वांतविनाशन (अंधकार नाशक) के लिए नमस्कार कह कर नेत्रों की पूजा करनी चाहिये। पूर्व और उत्तर भाद्रपद—इन दोनों नक्षत्रों में त्वष्ट्रा चण्डकर (तीक्ष्ण किरणों वाले) को नमस्कार है—ऐसा कह कर दोनों बाहुओं की पूजा करे। हे द्विज! इसी तरह रेवती नक्षत्र में साम के अधीश को हमारा नमस्कार है—ऐसा कह कर दोनों हाथों की पूजा करनी चाहिये। अश्विनी नक्षत्र में सप्ताश्वधुरंधर के लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर नखों की पूजा करनी चाहिये। भरणी नक्षत्र में कठोरधामा दिवाकर (उग्र तेज वाले सूर्य) के लिए हमारा नमस्कार है—ऐसा कह कर कण्ठ प्रदेश की पूजा करे। हे नारद! कृत्तिका नक्षत्र में दिवाकर को नमस्कार है—ऐसा कह कर गले की और रोहिणी नक्षत्र में अम्बुजेश को नमस्कार है—ऐसा कह कर ओंठ

की पूजा करे। मृगशिरा नक्षत्र में हरि ! तुम्हारे लिए नमस्कार है—ऐसा कह कर मुरारि के दाँतों की पूजा करे। पुनर्वसु नक्षत्र में सविता के लिए नमस्कार है—ऐसा कहकर शंकर भगवान् की मूर्ति में जिह्वा तथा नासिका की पूजा करे। पुष्य नक्षत्र में वेदमूर्ति धारी कमल कुल के परम प्रिय ! तुम्हें नमस्कार है—ऐसा कहकर ललाट प्रदेश की और केशों की पूजा करे फिर आश्लेषा नक्षत्र में विद्वानों के परम प्रिय तुम्हें नमस्कार है—ऐसा कहकर मस्तक की पूजा करे। मघा नक्षत्र में, गौ (पृथ्वी) और गणों के ईश शंकर भगवान् की मूर्ति में नमस्कार करके कानों की पूजा करे। पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में गौ और ब्राह्मणों के वन्दनीय शिव को नमस्कार है—ऐसा कहकर शिव के नेत्रों की पूजा करे। फिर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में विश्वेश्वर को नमस्कार है— ऐसा कहकर भौंहों की पूजा करे और कहे—'हे पाश, अंकुश शूल कमल कपाल सर्प चन्द्रमा और धनुष को धारण करनेवाले ! गजासुर, अनंग (कामदेव) त्रिपुर, तथा अन्धक के विनाश के कारण भूत ! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकार हो।' ऊपर कहे गये अस्त्रों की तथा विश्वेश्वर को नमस्कार है—ऐसा कहकर शिव जी की नित्य पूजा करे। जब तक यह अनुष्ठान चले तब तक तैल, शाक, मांस तथा नमक से रहित भोजन करना चाहिये। पहली बार परोसा हुआ भोजन न छोड़ना चाहिये। द्विजवर्य नारद जी ! व्रती पुरुष दिन भर उपवास कर, रात के समय भोजन करके इस व्रत को समाप्त करे और तब पुनर्वसु नक्षत्र आने पर ब्राह्मण को एक सेर शाठी का चावल, ताँबे के पात्र में घी, सुवर्ण तथा दो वस्त्रों का दान करे। सातवें पारण के अवसर पर ऐसा करने से अधिक पुण्य होता है। इसी प्रकार हे नारद जी ! चौदहवें पारण के अवसर पर गुड़, दूध, घी आदि से बने हुए भोज्य पदार्थों द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराये। इसी के लिए शुद्ध सुवर्ण का लाल रंग के आठ पत्तोंवाला आठ अंगुल विस्तृत एक सुन्दर कमल पद्मकी स्वाभाविक लालिमा से युक्त पहले ही से बनवा रखे, जिसमें नीचे का कर्णिक अंश भी बना हो। इसके अतिरिक्त एक मनोहर शैय्या निर्मित करा के, जिसमें उलटी गाठें न दी गई हों, तकिया, सुन्दर बिछौना, व्यजन (पंखा) भोजन, जूता, छाता, चँवर, आसन, दर्पण और भूषणों से अलंकृत करके, फल वस्त्र तथा चन्दनादि लेपनों से सुशोभित करके और उसी में उक्त सुवर्ण निर्मित कमल को स्थापित करके श्वेत रंग की दूध देनेवाली एक गौ के साथ, जो चारों ओर से वस्त्र से ढँकी हुई हो और सूधे स्वभाववाली हो, जिसकी खुरें चाँदी से और सीगें सुवर्ण से मढ़ी हुई हों, जिसके दुहनेके लिए काँसे का पात्र भी साथ हो, मंत्रोच्चारणपूर्वक दिन के प्रथम प्रहर में दान करे। दान देते समय उक्त गाय को कभी उपवास नहीं कराना चाहिये। दान देने के पश्चात् सूर्य से प्रार्थना करे—'हे आदित्य ! जिस प्रकार आपकी शैय्या कान्ति, धृति, श्री और रति से कभी सूनी नहीं रहती, उसी प्रकार मुझे भी उक्त सिद्धियों की प्राप्ति हो, देवगण आपको छोड़ निष्पाप तथा कल्याण देनेवाला देवता किसी अन्य को नहीं समझते, आप मुझे इस सम्पूर्ण दुःख रूपी संसार सागर से उबारें।' इस प्रकार निवेदन कर उक्त मूर्ति की प्रदक्षिणा करे और प्रणाम करके उसका विसर्जन करे। उन दिये गये शय्या तथा गौ आदि पदार्थों को ब्राह्मण के घर पहुँचा दे। किसी अहंकारी, निन्दक, दुःशील एवं कुतर्की व्यक्ति से महादेव के इस परम

श्रेष्ठ व्रत को नहीं बतलाना चाहिये और उससे भी नहीं बतलाना चाहिये जो निन्दक स्वभाव का हो। इस गुह्य शिव व्रत को भक्त, विनम्र तथा जिज्ञासा रखनेवाले व्यक्ति को ही बताना चाहिये। वेदों को जाननेवाले लोग इस व्रत को महापाप का विनाश करनेवाला तथा अक्षय पुण्य प्रदान करनेवाला बतलाते हैं। जो कोई देवताओं को आनन्दित करनेवाला पुरुष अति भक्तिपूर्वक इस व्रत का अनुष्ठान करता है, वह बन्धु, पुत्र, धन तथा पत्नी से कभी वियुक्त नहीं होता। उसे न तो कभी रोग होता है न शोक। और न कभी दुःख ही प्राप्त होता है। जो कोई स्त्री इस पावन व्रत का पालन भक्ति के साथ करती है वह भी ऊपर कहे गये फलों को प्राप्त करती है। इस पुण्य व्रत का अनुष्ठान, जिसके केवल माहत्म्य कीर्तन करने से ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, पूर्वकाल में वशिष्ठ, अर्जुन, कुवेर तथा देवराज इन्द्र ने किया था। इस परम पुनीत रविशयन नामक व्रत के माहात्म्य को जो मनुष्य पढ़ता अथवा सुनता है, वह इन्द्र का प्रेम पात्र होता है। जो व्यक्ति इसका अनुष्ठान करता है वह अपने सम्पूर्ण नरकस्थ पितरों को स्वर्ग लोक पहुँचाता है। ॥७-३३॥

श्री मात्स्य महापुराण में आदित्यशयन व्रत-माहात्म्य नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

श्री भगवान (मत्स्य) बोले—अब इसके उपरान्त मैं सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करनेवाले कृष्णाष्टमी नामक व्रत को बतला रहा हूँ, जिसके अनुष्ठान करने से पुरुषों को शान्ति, मुक्ति तथा विजय की प्राप्ति होती है। मार्गशीर्ष मास में शंकर की, पौष मास में शम्भु की, माघ में महेश्वर की और फाल्गुन में महादेव जी की पूजा करनी चाहिये। उसी प्रकार चैत्र में स्थाणु की तथा वैशाख मास में शिव की पूजा मनुष्य करे। ज्येष्ठ महीने में पशुपति की, आषाढ़ में उग्र की, श्रावण में शर्व की, भाद्रपद में त्र्यम्बक की, आश्विन में हर की तथा कार्तिक में ईशान की पूजा करे। इन महीनों की कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि को उपवास कर समर्थ व्यक्ति (अपनी सामर्थ्य के अनुकूल) गौ, सुवर्ण, पृथ्वी, और वस्त्रों से शिव में भक्ति रखनेवाले ब्राह्मणों की पूजा करे। गाय का मूत्र, घी, दूध, तिल, जव, कुश, गाय की सींग से स्पर्श किया गया जल, शिरीष, मन्दार, वेलपत्र, एवं दही, अथवा केवल पंच गव्य का भक्षण कर रात में शंकर की पूजा करे। इस व्रत के लिए महर्षि वृन्द पीपल, बरगद, गूलर, पाकर, पलाश तथा जामुन के वृक्ष को विशेष फलदायी जानते हैं। अगहन और आषाढ़ इन दो महीनों में प्रारम्भ करके क्रम से इन्हीं में से एक-एक की दातून व्रती को करनी चाहिये। देव के लिए अर्घ्य, काली गाय और काले वस्त्र का दान करना चाहिये। व्रत के समाप्त हो जाने पर ब्राह्मणों को दही से युक्त अन्न, वितान, पताका, चँवर, पाँच प्रकार के रत्नों समेत जल भरने का सुन्दर कलश, काली गौ, सुवर्ण एवं अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्रों का दान करना चाहिये। यदि उपर्युक्त वस्तुएँ देने में व्रती असमर्थ है तो अपनी शक्ति के अनुकूल एक ही गौ का दान करे। पर इस व्रत में यथाशक्ति कंजूसी नहीं करनी चाहिये, कंजूसी करने पर दोष

भागी होना पड़ता है। इस कृष्णाष्टमी नामक व्रत का विधिवत् पालन करने पर मनुष्य इक्कीस सौ कल्प पर्यन्त शिव लोक में देवताओं द्वारा पूजित होकर निवास करता है। ॥१-११॥

श्री मात्स्य महापुराण में कृष्णाष्टमी व्रत-माहात्म्य नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥५६॥

सत्तावनवाँ अध्याय

नारद ने कहा— भगवन् चन्द्रमौले ! जिस पुनीत व्रत के पालन करने से पुरुष प्रत्येक जन्म में दीर्घायु आरोग्य, वंश वृद्धि तथा अभ्युन्नति से युक्त होकर राजा के कुल में उत्पन्न होता है, ऐसे किसी परम श्रेष्ठ व्रत को हमें विधिपूर्वक बतलाइये। ॥१॥

श्री भगवान् बोले—नारद जी ! आपने ऐसे पुनीत व्रत की चर्चा छेड़कर बहुत अच्छा काम किया, मैं उस गुप्त व्रत को आपसे बतला रहा हूँ, जिसे अक्षय पुण्य देनेवाला कहा गया है, और जिसको केवल पुराणों के जानने वाले लोग जानते हैं। उक्त पुनीत व्रत की प्रसिद्धि इस मर्त्य लोक में रोहिणीचन्द्र-शयन नाम से है। उस में चन्द्रमा के नामों का उच्चारण कर नारायण की मूर्ति की पूजा करनी चाहिये। जब कभी सोमवार के दिन शुक्ल पक्ष की पन्द्रहवीं अर्थात् पूर्णिमा तिथि पड़े अथवा पूर्णिमा तिथि को ब्रह्म नक्षत्र पड़े, तब मनुष्य सरसों (सरसों के तेल) से अथवा घृत से अथवा पंचगव्य से विधिवत् स्नान करे। तदनन्तर विद्वान् पुरुष 'आप्यायस्व....' इत्यादि मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे। इस व्रत के विधान का पालन शूद्र भी छल कपट तथा बातचीत से रहित होकर मौन भाव से करे। वरदान देनेवाले सोमरूप भगवान् विष्णु को हमारा नमस्कार है, नमस्कार है—इस प्रकार जप करे और जप करने के उपरान्त अपने घर आकर मधुसूदन की चन्द्रमा के नामों का उच्चारण करते हुए फल और पुष्पों से विधिवत् पूजा करे। ॥२-७॥

शान्त सोम को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहकर पैरों की पूजा करे, अनन्त को नमस्कार है—ऐसा कहकर जानु भाग और जंघों की पूजा करे फिर तेजस्वी जलोदर को नमस्कार है—ऐसा कहकर दोनों उरु प्रदेशों की, अनन्तबाहु को नमस्कार है—ऐसा कहकर लिंग की पूजा करे। फिर इच्छानुरूप सुख देनेवाले को नमस्कार है, नमस्कार है—ऐसा कहकर चन्द्रमा के कटि की सदा पूजा करनी चाहिये। अमृतोदर को नमस्कार है—ऐसा कहकर उदरप्रदेश की, शशांक को नमस्कार है—ऐसा कहकर नाभि की पूजा करनी चाहिये। फिर चन्द्रमा के लिये नमस्कार है—ऐसा कह मुख की, द्विजों के अधिपति (चन्द्रमा) को नमस्कार है, ऐसा कह दाँतों की, चन्द्रमा को नमस्कार है—ऐसा कह हास्य की, कुमुद समूहों के प्रिय (चन्द्रमा) को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों होठों की, वनौषधियों के स्वामी को नमस्कार है—ऐसा कहकर नासिका की, आनन्दस्वरूप के लिए नमस्कार है—ऐसा कह भौहों की पूजा करे। कमल के समान नीले हाथोंवाले को नमस्कार है—ऐसा कह कृष्णचन्द्र के कमल के समान सुन्दर दोनों नेत्रों की पूजा करे। सम्पूर्ण यज्ञों द्वारा वन्दनीय दैत्य निषूदन को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों कानों की, उदधिप्रिय को

नमस्कार है—ऐसा कह ललाट प्रदेश की और सुषुम्ना के अधिपति को नमस्कार है—ऐसा कह केशों की पूजा करे। शशांक विश्वेश्वर किरीट धारण करनेवाले भगवान् विष्णु को नमस्कार है—ऐसा कह मुरारि के शिर की पूजा करे और पुनः 'हे रोहिणि ! पद्मप्रिये ! सौभाग्य, सौख्य और अमरत्व प्रदान करनेवाली ! सुन्दर शरीरवाली ! देवि ! आप ही लक्ष्मी स्वरूप हैं—ऐसा कहकर चन्द्रमा की पत्नी रोहिणी देवी की सुगन्धित पुष्प, नैवेद्य, धूप आदि सामग्रियों द्वारा भली भाँति पूजा करे। व्रत के समय पृथ्वी पर ही शयन करे। पुनः प्रातः काल उठकर स्नान करे और व्रत में खाने योग्य सामग्रियों के साथ सुवर्ण सहित जलकलश को लेकर, पाप विनाशन को नमस्कार है—ऐसा कहकर सब वस्तुओं का दान करे। सर्वप्रथम उपवास करके गोमूत्र पान कर मांस रहित अन्न को, जो घी दूध से युक्त हो, विना नमक के ही अट्ठाईस ग्रास खाय। तदुपरान्त दो घड़ी तक पुराण इतिहासादि पुनीत कथाएँ सुने। नारद ! इस व्रत में चन्द्र स्वरूप भगवान् विष्णु को कदम्ब, नील कमल, केतकी, चमेली, श्वेत कमल, शतपत्रिका, अम्लान कुब्ज, सिन्दुवार (निगुण्डी) मल्लिका, करवीर, तथा श्री चम्पक के सुन्दर पुष्पों द्वारा पूजित करना चाहिये। श्रावण से प्रारम्भ कर क्रमशः इन्हीं पुष्पों को सर्वदा देना चाहिये। जिस महीने में व्रत प्रारम्भ करे, उसी महीने में होनेवाले पुष्पों से हरि की पूजा भी करे। इस प्रकार वर्ष भर तक विधिपूर्वक व्रत करने वाला अनुष्ठान करने के उपरान्त व्रत की समाप्ति हो जाने पर दर्पण तथा अन्य सामग्रियों समेत एक शय्या भी दान करे। व्रती सुवर्ण की चन्द्रमा और रोहिणी की युग्म मूर्ति बनवाये, जिसमें चन्द्रमा की मूर्ति छः अंगुल की और रोहिणी की मूर्ति चार अंगुल की हो। उसे मोती के आठ दानों से युक्त कर, श्वेत वस्त्र से नेत्र को ढँक कर, दूध से युक्त कलश के ऊपर अक्षत समेत काँसे के पात्र को रखकर दिन के पहले पहर में शाली ईख तथा फलों के साथ मंत्रोच्चारण करते हुए उसका दान दे। फिर श्वेत रंग की एक गाय को, जिसका मुख सुवर्ण से और खुर चाँदी से अलंकृत हो, वस्त्रों से सुशोभित कर दुहने के वर्तनों के समेत दान करे। साथ में एक सुन्दर शंख भी दान करे। अनेक प्रकार के आभूषणों से गुणवान् ब्राम्हण दम्पति को अलंकृत कर यजमान स्त्री समेत मन में यह कल्पना करे कि 'यह द्विज दम्पति चन्द्र स्वरूप हैं।' फिर उन्हीं से प्रार्थना करे—'हे कृष्ण ! जिस प्रकार सोम स्वरूप आपकी शैय्या को छोड़ कर रोहिणी कहीं अन्यत्र नहीं जातीं, उसी प्रकार मेरा भी उन विभूतियों के साथ कभी वियोग न हो। हे भगवन् ! आप संसार के सभी जीवों को परम आनन्द, भुक्ति एवं मुक्ति के प्रदाता हैं, हे चन्द्र ! आप में मेरी सर्वदा अनुपम भक्ति बनी रहे।' ॥८-२४॥

निष्पाप नारद जी ! संसार से डरनेवाले मुक्ति के इच्छुक मनुष्य के लिए यह उत्तम व्रत सौंदर्य आरोग्य तथा दीर्घायु का देने वाला है। मुनिवर ! यह व्रत पितरों को सर्वदा प्रिय है। जो कोई पुरुष इस व्रत का विधिपूर्वक पालन करता है वह इक्कीस सौ कल्प पर्यन्त तीनों लोकों का अधिपति होकर चन्द्र-लोक को प्राप्त करता है। पश्चात् विद्युत् के रूप में प्राप्त होकर मुक्ति लाभ करता है। जो स्त्री इस चन्द्र शयन नामक व्रत का अनुष्ठान करती है वह उस श्रेष्ठ फल को प्राप्त करती है, जिसके प्राप्त करने से पुनजर्न्म दुर्लभ हो जाता है। इस प्रकार जो कोई मनुष्य चन्द्रमा के कीर्तन के प्रसंग से मधुमथन (विष्णु) के पूजन के

माहात्म्य का यह वर्णन पढ़ता है, सुनता है अथवा दूसरों को मति देता है वह भी शौरि (कृष्ण भगवान् विष्णु) के लोक को प्राप्त होकर देव वृन्दों द्वारा पूजित होता है । ॥२८॥

श्री मात्स्यमहापुराण में रोहिणीचन्द्रशयन व्रत वर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५७॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

सूत बोले—ऋषिवृन्द ! जलाशय (समुद्र) में अवस्थित मत्स्य रूपधारी भगवान् विष्णु से सूर्यपुत्र मनु ने कहा—देवेश ! तालाब, वाटिका, कूप, बावली, सरोवर तथा देवालयों के निर्माण की विधि मैं पूछ रहा हूँ । नाथ ! इन कार्यों में कौन लोग पुरोहित होने के योग्य हैं ? इसमें किस प्रकार की वेदी बनानी चाहिये ? कितनी दक्षिणा दी जानी चाहिये ? इनके निर्माण का कौन-सा समय होना चाहिये ? कैसा स्थान होना चाहिये ? आचार्य कौन बनें ? कौन-कौन से पदार्थ इन कार्यों में प्रशंसित माने गये हैं ? इन सब बातों को आप हमें यथार्थ रूप में बतलाइये । ॥१-३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—महाबाहु राजन् ! तड़ाग आदि के बनवाने में जो विधि बतलायी गयी है, उसे बतला रहा हूँ, सुनिये । वेदवादी लोग इस सम्बन्ध में पुराणों से इस प्रकार का इतिहास बतलाते हैं । सूर्य के उत्तरायण होने पर शुभ शुक्ल पक्ष में ब्राह्मण द्वारा निश्चय किये गये पुण्यप्रद दिन में किसी योग्य ब्राम्हण को बुलाकर मुख्यतया इसी कार्य के लिए नियुक्त करे । और पूर्व दिशा में किसी जलाशय के समीप ऐसे स्थान में, जहाँ पानी डालने पर उसका ढाल नीचे की ओर हो, चार हाथ की एक शुभ वेदी, चारों ओर से समतल और चौकोर बनाये । और सोलह हाथ का चौकोर तथा चार द्वार वाले मण्डप का वहाँ निर्माण करे । वेदी के चारों ओर तीन मेखला वाले गड्ढे बनवाये, जो कि प्रमाण में रत्नि (मुट्ठिहस्त, मुट्ठी बाँधने पर हाथ की लम्बाई जितनी होती है) के बराबर हो । नृपात्मज ! वे गड्ढे संख्या में नव हों सात हों अथवा पाँच हों, इनके अतिरिक्त नहीं । उनकी गहराई एक बालिस्त के बराबर हो, और चौड़ाई छः या सात अंगुल की हो । उस मण्डप के भीतर उन पूर्वकथित सातों गड्ढों में मेखलाओं को तीन पर्व ऊँची बनाना चाहिये । उन गडढों पर सभी ओर से एक रंगवाली पताका तथा ध्वजाएँ सुशोभित करे। पीपल, बरगद, गूलर और पाकर की छोटी-छोटी डालियों से सुशोभित करके मण्डप के चारों ओर चारों दिशाओं में चार द्वार बनवाये । उक्त मण्डप में आठ मांगलिक हवन कर्ता हों, और आठ ही द्वारपाल भी हों । पुरोहित ऐसा श्रेष्ठ ब्राह्मण हो, जो विद्वानों के सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त हो, मन्त्रों का जाननेवाला हो, जितेन्द्रिय हो, कुलीन तथा सदाचार-परायण हो । प्रत्येक कुण्डों के समीप में एक कलश का स्थापन कराये, यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्रियाँ वहीं स्थापित की जायँ । उनमें मुख्यतया पंखा हो, दो सुन्दर चँवर हों, दो बड़े-बड़े ताँबे के पात्र हों । देवताओं के लिए अनेक प्रकार की हवन करने योग्य सामग्रियाँ हों, जिन्हें विचारशील आचार्य मन्त्रों का विधिपूर्वक उच्चारण करके पृथ्वी में छोड़ें । यूप अर्थात् यज्ञ में गाड़े जानेवाले खम्भे को तीन रत्नि के बराबर दूधवाले

वृक्षों से, जैसे—पीपल, वट पाकर आदि का बनवाना चाहिये। अथवा विजय की कामना करनेवाला यजमान अपनी लम्बाई जितना बड़ा यज्ञ स्तम्भ स्थापित करे। इस अनुष्ठान में पच्चीस पुरोहितों को सुवर्ण से अलंकृत करना चाहिये। उनके आभूषण मुख्यतया ये हों—सुवर्ण के कुंडल, केयूर, कटक तथा अँगूठियाँ। इसी प्रकार अनेक प्रकार के पवित्र वस्त्र भी हों। सभी पुरोहितों की एक समान दक्षिणा देकर पूजा करनी चाहिये; किन्तु आचार्य को सभी वस्तुएँ द्विगुणित परिमाण में देनी चाहियें। यजमान को जो वस्तु विशेष प्रिय हो उसे तथा एक शय्या भी आचार्य के लिए देनी चाहिये। इसके लिए सुवर्ण के कच्छप तथा मकर, चाँदी के मत्स्य तथा नगाड़े, ताँबे के कर्कट (केकड़ा) और मेढक तथा लोहे के शिशुमार बनवाने, चाहियें। हे राजन्! इन सभी वस्तुओं को पहले ही से बनवाये। अनुष्ठान के अवसर पर यजमान श्वेत माला और श्वेत रंग का वस्त्र पहनकर श्वेत रंग के चन्दन आदि से अलंकृत हो। वेद के पारगामी पुरोहितों द्वारा सभी प्रकार की औषधियों से युक्त जल द्वारा स्नान कराया गया हो। अपनी स्त्री तथा पुत्र-पौत्र आदि कुटुम्बवालों को साथ लेकर वह पश्चिमवाले द्वार से यज्ञमण्डप में प्रथम प्रवेश करे। तत्पश्चात् व्रत के माहात्म्य को जाननेवाला यजमान मण्डप को शीघ्र मांगलिक गीतों से, भेरी शहनाई आदि बाजनों के शब्दों से तथा पाँच प्रकार के रंगों से संयुक्त कर दे। फिर विचारवान यजमान, सोलह अरों (चक्के के बीच में लगनेवाली लकड़ियों) वाले चक्र तथा चार मुखवाले ब्रह्मा को उस चौकोर तथा सुशोभित यज्ञ मण्डप के मध्यभाग में वेदी के ऊपर स्थापित करे। तब सभी ग्रहों तथा लोकपालों को मन्त्रोच्चारणपूर्वक प्रत्येक दिशाओं में स्थापित करे। वेदी के मध्यभाग में वरुण के मन्त्र का उच्चारण कर कच्छप आदि को स्थापित करे। बुद्धिमान् यजमान उसी मन्त्र से ब्रह्मा शिव तथा विष्णु को भी वहीं पर स्थापित करे। गणेश को स्थापित कर लक्ष्मी तथा अम्बिका (पार्वती) को भी स्थापित करे। सभी लोगों की शान्ति की कामना से सभी भूतों की भी स्थापना करे। इस प्रकार पुष्पों से तथा खाने योग्य फलों से देवताओं की स्थापना करके उन जलयुक्त कलशों को वस्त्रों से लपेट दे, और पुष्प तथा सुगन्धित पदार्थों से उन्हें सुशोभित करके द्वारपालों से निवेदन करे—'आप लोग बेद मन्त्रों का पाठ करें' तदनन्तर आचार्य आगे की पूजा प्रारम्भ करे। इस अनुष्ठान में पूर्व दिशा के द्वार पर दो ऋग्वेदाध्यायी ब्राह्मणों को नियुक्त करना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में यजुर्वेद के अध्यायी, पश्चिम में सामवेदाध्यायी और उत्तर दिशा में अथर्व वेदाध्यायी ब्राह्मण को नियुक्त करना चाहिये। यजमान को मण्डप में दक्षिण दिशा की ओर से उत्तर दिशा की ओर मुँह करके बैठना चाहिये। और यज्ञ करनेवाले पुरोहितों से कहना चाहिये कि 'आप लोग अब यज्ञ प्रारम्भ करें'। फिर श्रेष्ठ मंत्र के जप करने वाले ब्राह्मणों से 'आप लोग मंत्र जप करने से तनिक रुक जाँय'—ऐसी आज्ञा देकर मंत्रों का जाननेवाला आचार्य अग्नि को प्रज्वलित करे और वरुण के मंत्रों से आज्य (घी) तथा समिधा की उसमें आहुति करे। इसी प्रकार चारों ओर से पुरोहितगण भी वरुण के मंत्रों द्वारा हवन प्रारम्भ करें। प्रथमतः ग्रहों के लिए विधिपूर्वक हवन करना चाहिये। तब इन्द्र तथा शिव के लिए। फिर विधिपूर्वक उनचास मरुतों, लोकपालों एवं विश्वकर्मा के लिए आहुति देनी चाहिये। वह गणच

ऋग्वेदाध्यायी) अपना पृथक पाठ, रात्रिसूक्त, रौद्र, पावमान्, सुमंगल पौरुषसूक्त का पूर्व दिशा से जप करते रहें। दक्षिण दिशा से यजुर्वेदाध्यायी लोग शाक्र, रौद्र, सौम्य, कुष्माण्ड, जातवेदस्, सौर सूक्त आदि का जप करते रहें। इसी प्रकार हे राजन्! पश्चिम दिशा के द्वार देश पर अवस्थित सामवेदाध्यायी ब्राह्मण वैराज्य, पौरुष सूक्त, सौवर्ण सूक्त, रुद्रसंहिता, शैशव सूक्त, पंचनिधन, गायत्र, ज्येष्ठ साम, वामदेव्य, वृहत्साम, रथन्तर, रौरव साम समेत गवम्व्रत, काण्व, रक्षोघ्न तथा व्रयस् आदि सूक्तों का जप करें। और उत्तर दिशा से अथर्ववेदाध्यायी ब्राम्हण शान्तिक तथा पौष्टिक सूक्तों का जप करें। इस प्रकार पहले ही दिन रात्रि काल में देवस्थापना करके हाथी तथा घोड़े के नीचे की, सड़क, बिल, नदी के संगम, तालाब, गौओं के ठहरने के स्थान तथा चौराहे पर की मिट्टी लाकर उन कलशों में छोड़नी चाहिये। कलश को सफेद सरसों समेत गोरोचन, गूगुल, गन्ध तथा पंचगव्यादि से विधिवत् स्नान कराये। इसी प्रकार प्रत्येक क्रिया विधिपूर्वक महामन्त्र का उच्चारण करते हुए समाप्त करानी चाहिये। ऊपर कहे गये प्रकारों से विधि युक्त सभी शुभ कर्मों द्वारा रात बिता कर पवित्र प्रातः काल होने पर यजमान ब्राह्मणों को सौ गौएँ दान दे अथवा अड़सठ गौओं को दे। असमर्थतावश पचास अथवा छत्तीस वा पच्चीस ही दे। तत्पश्चात् ज्यौतिषी द्वारा बतलाये गये मांगलिक शुभ लग्न में वेद के मनोहर शब्दों तथा विविध प्रकार के गान्धर्व वाजनों के बजते समय सुवर्ण के अलंकारों से अलंकृत कर एक गाय को जल में उतारे और सामवेद के गान करने वाले ब्राह्मण को उसका दान करे। हे राजन्! फिर सुवर्ण से बनी हुई कटोरी को, जो पाँच प्रकार के रत्नों से जड़ी हुई हो, लेकर उसमें सभी उपर्युक्त मकर मत्स्य आदि को स्थापित करे। चारों ओर से वेद तथा वेदाङ्गों के पारगामी विद्वानों द्वारा पकड़ी हुई, महा नदियों (गंगा, यमुना आदि) के जल से युक्त, दही तथा अक्षत से अलंकृत गौ को उत्तर की ओर मुँह किए हुए जल में उतारे और उसे अथर्व वेदाध्यायी ब्राह्मण द्वारा उच्चारण कराकर नहलाये। 'पुनर्मामेति.. ., तथा 'आपोहिष्ठा....इत्यादि मंत्रों का जप करते हुए उसका दान दे। अनन्तर मण्डप में आकर सरोवर की पूजा और बलिकर्म करे। हे श्रेष्ठ मुनिवृन्द ? इसके पश्चात् पुनः चार दिनों तक यजमान हवन करे। राजसिंह! तदनन्तर चतुर्थी कर्म करे और उसमें भी अपनी शक्ति के अनुकूल दक्षिणा दे। तत्पश्चात् वरुण के मंत्रों का उच्चारण कर क्षमा प्रार्थना करते हुए यज्ञ के पात्रों और सामग्रियों को बराबर-बराबर करके पुरोहितों को देकर मंडप को भी विभक्त कर दे। सुवर्ण से बनी हुई कटोरी और शय्या का दान उसे दे, जिसने देवताओं की स्थापना कराई हो। तत्पश्चात् एक सहस्र ब्राह्मणों को अथवा एक सौ आठ वा पचास अथवा बीस ब्राह्मणों को यथाशक्ति भोजन करवाये। पुराणों में सरोवरों की प्रतिष्ठा की यही विधि कही गई है। सभी प्रकार के कूएँ, बावली, पुष्करिणी के खनाने तथा देवप्रतिष्ठा में भी यही विधान प्रायः देखा गया है। प्रासाद (महल) तथा उद्यान (वाटिका) की प्रतिष्ठा में मंत्रों की ही कुछ विशेषता होती है, अन्य शेष विधान उसी प्रकार होते हैं। ब्रह्मा ने उक्त पूर्ण विधान की असमर्थता पर केवल आधे विधान को ही करने का आदेश दिया है। किन्तु इस अल्प विधान में मनुष्य को कृपणता छोड़कर एकाग्नि ब्राह्मण की भाँति दान आदि देना चाहिये। इस प्रकार खनाये गये सरोवर में यदि

केवल वर्षा काल में जल रहता है तो भी अग्निष्टोम नामक यज्ञ का फल मिलता है। जिसमें शरत्काल में जल रहता है उससे भी वही पूर्वकथित फल मिलता है। हेमन्त तथा शिशिर काल में जल रहने पर वाजपेय तथा अतिरात्र नामक यज्ञ का फल प्राप्त होता है। वसन्त के समय जल रहने पर लोग अश्वमेध के समान पुण्य बतलाते हैं। और ग्रीष्म काल में जल रहने पर राजसूय यज्ञ से भी बढ़कर फल प्राप्त होता है। हे महाराज! वेदों के परिशीलन द्वारा शुद्ध बुद्धिसम्पन्न जो कोई मनुष्य इन धर्म कार्यों को सम्पन्न करता है वह शीघ्र ही रुद्र के लोक को प्राप्त करता है और अनेक कल्प पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है। अनेक महत्तम आदि लोकों का उपभोग करके वह मनोरम स्त्रियों के साथ दो परार्द्ध पर्यन्त विष्णु के उस परम पद को प्राप्त करता है, जिसे लोग अनेक यज्ञों द्वारा प्राप्त करते हैं। ॥१-५७॥

श्री मात्स्य महापुराण में तडागविधि वर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त। ॥५८॥

उनसठवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! अब आप वृक्षों के लगाने की विधि विस्तारपूर्वक बतलाइये। बुद्धिमान मनुष्यों को किस प्रकार से वृक्षों को लगवाना चाहिये? उन वृक्ष लगाने वालों के लिए जो लोक कहे जाते हैं उन्हें भी हम लोगों को बताइये। इस लोक के पश्चात् उन्हें जो फल प्राप्त करते हैं उन सबको भी कहिये। ॥१-२॥

सूत ने कहा—जगदीश्वर! अब वृक्षों के लगाने की विधि मैं कह रहा हूँ। उद्यान की भूमि में भी उसी तड़ाग विधि के समान सभी सामग्रियाँ एकत्र करे। पुरोहित, मण्डप, सामग्रियाँ, तथा आचार्य—ये सभी उसी प्रकार के इसमें भी होने चाहियें। सुवर्ण, वस्त्र तथा चन्दनादि से ब्राह्मणों की उसी प्रकार इसमें भी पूजा करनी चाहिये। वृक्षों को सभी प्रकार की औषधियों से मिले हुए जल द्वारा सिंचित करे फिर उन्हें अबीर गुलाल आदि मांगलिक द्रव्यों से अलंकृत करे। मालाएँ पहिना कर वस्त्रों द्वारा चारों ओर से ढँक दे। फिर सुवर्ण की बनी हुई सूई द्वारा सभी का कान छेद दे। उसी प्रकार सुवर्ण निर्मित सलाई से उन्हें अंजन भी दे दे। सात वा आठ सुवर्ण वा चाँदी के फल बनवाये, और सभी वृक्षों को वेदी पर स्थापित कर के इन फलों को भी वहीं रख दे। हे नरेश्वर! इस कार्य में गूगुल के धूप श्रेष्ठ मानी गयी है। फिर ताँबे के बने हुए पात्रों को ऊपर से रखकर वस्त्र गन्ध तथा चन्दनादि से अलंकृत कर, कलश को सात प्रकार के अन्नों के ऊपर सभी वृक्षों के नीचे स्थापित करे और उन सभी के भीतर सुवर्ण डाले। फिर बलि करे। द्विजाति विद्वानों को यथावित्त लोकपालों तथा विशेष कर इन्द्र आदि देवताओं तथा वनस्पति के लिए आहुति करनी चाहिये। तदनन्तर श्वेत रंग के वस्त्रों से युक्त, सुवर्ण के आभूषणों से सुशोभित, काँसे के दोहन पात्र से संयुक्त, सोने से मँढ़े हुए सींगों की एक दूध देनेवाली गाय का, जिसका मुखभाग उत्तर दिशा की ओर हो, उन्हीं वृक्षों के मध्य भाग में दान करे। तदनन्तर अभिषेचन के मंत्र से बाजन तथा मांगलिक

गीतों के मध्य में ऋक्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के मंत्रों से तथा वरुण की स्तुतियों का पाठ कराते हुए उन्हीं कुम्भों द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण को स्नान करना चाहिये। स्नान कर लेने के बाद यजमान सावधान चित्त हो श्वेतरंग का वस्त्र पहन कर यथाशक्ति गौओं द्वारा उन पुरोहितों की पूजा करे। और कटक के सहित सुवर्ण निर्मित सूत्रों, अंगूठियों, वस्त्रों, खड़ाऊँ तथा शय्या की सभी सामग्रियों का दान दे। अगले चार दिनों तक दूध के साथ भोजन कराये। सरसों जव तथा काले तिल से हवन करे। इस हवन में पलाश की लकड़ी प्रशंसित मानी गई है। हवन बीत जाने के बाद चौथे दिन उत्सव करे। इस उत्सव में भी अपनी शक्ति के अनुकूल उसी प्रकार दक्षिणा दे। अपने को जो-जो वस्तुएँ विशेष प्रिय हों, उन्हें भी मत्सर रहित होकर दान देना चाहिये। सभी वस्तुओं को देते समय आचार्य को द्विगुणित देना चाहिये, और प्रणामपूर्वक उन्हें विदा करना चाहिये। इस विधि के अनुकूल जो कोई बुद्धिमान् पुरुष वृक्षोत्सव करता है वह सभी इच्छाओं को प्राप्त करता है और इसके प्रभाव से अनन्त फल भी प्राप्त करता है। हे राजेन्द्र! जो कोई मनुष्य इस प्रकार एक वृक्ष की भी स्थापना करता है, राजन्! वह भी स्वर्ग लोक में तीस सहस्र इन्द्र के समय तक निवास करता है। वृक्षों की बराबर संख्या में भूत में उत्पन्न हुए तथा भविष्य में होने वाले अपने पूर्व तथा पश्चात् पुरुषों को वह नरक से तारता है और ऐसी परम सिद्धि को प्राप्त करता है, जिसके प्राप्त करने से पुनरागमन दुर्लभ हो जाता है। जो कोई मनुष्य इस माहात्म्य को सुनता अथवा सुनाता है, वह भी देवताओं द्वारा पूजित होकर ब्रह्मलोक में शोभित होता है। ॥३—२०॥

श्री मात्स्य महापुराण में वृक्षोत्सव वर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥५९॥

साठवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—राजन्! उसी प्रकार एक अन्य सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले सौभाग्यशयन नामक व्रत को मैं बतला रहा हूँ, जिसे पुराणों के जानने वाले लोग जानते हैं। प्राचीनकाल में जब भूः भुवः स्वः महः आदि लोक जल गये थे तब सभी प्राणियों का सौभाग्य एक स्थान पर स्थित हो गया था, वह वैकुण्ठ लोक में अवस्थित विष्णु भगवान् के वक्षस्थल में स्थित था। इस प्रकार बहुत दिनों तक उसी दशा में पड़े रहने के बाद जब सृष्टि रचना के अवसर पर लोक अहंकार में आवृत तथा प्रधान पुरुष के साथ हुए तब ब्रह्मा और कृष्ण (विष्णु) के बीच, एक दूसरे को पराजित करने की इच्छा से, अत्यन्त भीषण आग की लपट लिंग के आकार में उद्भूत हुई। उस अग्नि द्वारा जल जाने पर विष्णु भगवान् के वक्षस्थल से वह (लोकसौभाग्य) बाहर निकला, क्योंकि वह वहीं विष्णु भगवान् के वक्षस्थल में था। वक्षस्थल से निकल कर रस के रूप में जब तक वह पृथ्वीतल पर गिर रहा था तब तक आकाश मार्ग में ही ब्रह्मा के बुद्धिमान् पुत्र दक्ष ने उसे ग्रहण कर पान कर लिया। रूप तथा सौन्दर्य की वृद्धि करने वाले उस परम रस को पी लेने मात्र से परमात्मा में लीन होने वाले दक्ष जी का बल और तेज बहुत

अधिक बढ़ गया। शेष जो कुछ पृथ्वी पर गिरा वह आठ भागों में विभक्त हुआ। जिनमें से मनुष्यों को सौभाग्य प्रदान करने वाली ये सात वस्तुएँ उत्पन्न हुईं। जैसे रसराज ईख, निष्पाव, जीरा, धनिया, गौ का दुग्ध, विकार (घी), कुसुम्भ तथा केसर। इनके अतिरिक्त जो आठवीं वस्तु थी वह लवण है। ये सभी वस्तुएँ सौभाग्याष्टक के नाम से कही जाती हैं। योग ज्ञान को जानने वाले ब्रह्मा के पुत्र दक्ष ने जो रस पान कर लिया था, उसके प्रभाव से उन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई, जो सती के नाम से विख्यात है। अपने लालित्य (सौन्दर्य) से सभी लोकों को पराजित करने के कारण उसका 'ललिता' नाम भी कहा जाता है। उस तीनों लोक में परम सुन्दरी कन्या के साथ पिनाक धारण करने वाले शिव ने विवाह संस्कार किया, जो सौभाग्य-मयी तथा मुक्ति और भुक्ति—दोनों को देने वाली देवी है। भक्ति पूर्वक उसकी आराधना करने पर पुरुष अथवा स्त्री क्या नहीं प्राप्त कर सकते? ॥१-१२॥

मनु ने कहा—जनार्दन! उस समस्त संसार का पालन करनेवाली देवी की आराधना कैसे की जानी चाहिये? जगन्नाथ! उसका सम्पूर्ण विधान मुझे बतलाइये। ॥१३॥

मत्स्य ने कहा—जनप्रिय! यजमान वसन्त के महीने में शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को दिन के पहले भाग में तिल द्वारा स्नान करे। उसी दिन उक्त विश्वात्मिका सुन्दरी सती देवी पाणि ग्रहण के मंत्रों द्वारा व्याही गयी थीं। अतः उक्त तृतीया तिथि को उसके साथ देवेश (शिवाजी) की अनेक प्रकार के फल, फूल, धूप, दीप, नैवेद्य आदि के द्वारा पूजा करे। मूर्ति को पंचगव्य द्वारा तथा सुगन्धित जल द्वारा स्नान कराये। स्नान कराने के बाद शिव के मूर्ति के समेत गौरी की पूजा करे। पाटला को नमस्कार है—ऐसा कह कर देवी के पैरों की और शिव को नमस्कार है—ऐसा कहकर शिव के चरणों की पूजा करे। जया को नमस्कार है—ऐसा कहकर देवी के दोनों गुल्फों की, त्रिगुणात्मक शिव के लिए नमस्कार है—ऐसा कहकर शिव के दोनों गुल्फों की, भवानी को नमस्कार है, शिवा और रुद्रेश्वरी को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के दोनों जंघों की, विजय को नमस्कार है—ऐसा कहकर शिव के दोनों जानुभागों की हरिकेश को नमस्कार है—ऐसा संकीर्तन करके 'वरदे! तुम्हें नमस्कार है—ऐसा कह दोनों उरु प्रदेशों की पूजा करे। ईशा के लिए नमस्कार है—ऐसा कहकर देवी के कंटि की, शंकर को नमस्कार है—ऐसा कह शंकर की, कोटवी को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों कुक्षियों की, शूलपाणि को नमस्कार है—ऐसा कह त्रिशूलधारी शिव जी की पूजा करे। मङ्गले तुम्हें नमस्कार है—ऐसा कहकर उदर की पूजा करे। सर्वात्मा रुद्र को नमस्कार है—ऐसा कहकर रुद्र के उदर की पूजा करे। ईशानी को नमस्कार है—ऐसा कहकर देवी के दोनों कुचों की पूजा करे। उसी प्रकार वेदात्मा को नमस्कार है—ऐसा कह शिव की पूजा करे। रुद्राणी को नमस्कार है—ऐसा कहकर कण्ठप्रदेश की पूजा करे, और त्रिपुर विनाशक को नमस्कार है—ऐसा कह शिव जी के तथा अनन्ता देवी को नमस्कार है—ऐसा कहकर देवी के तथा त्रिलोचन को नमस्कार है—ऐसा कह शिव के, दोनों हाथों की काल और अनल की प्रिये! तुम्हें नमस्कार है—ऐसा कह देवी के दोनों बाहुओं की और सौभाग्य के भवनस्वरूप तुम्हें नमस्कार है—ऐसा कह भूषणों की सर्वदा पूजा करे। स्वाहा तथा स्वधा स्वरूप देवी को नमस्कार है—ऐसा

कहकर शिव जी के मुख की पूजा करे। अशोक और मधु में निवास करनेवाली देवी को नमस्कार है—ऐसा कहकर देवी के विजय देनेवाले दोनों होठों की पूजा करे। उसी प्रकार सृष्टि के स्थाणु को नमस्कार है—ऐसा कह शिव की पूजा करे। चन्द्रमुखप्रिये ! तुम्हें नमस्कार है—ऐसा कह देवी के हास्य की, तथा अर्धनारीश्वर को नमस्कार कर शिव की पूजा करे। असितांगी (कृष्ण वर्ण वाली) यह कहकर नासिका की, उग्र के लिए नमस्कार है—ऐसा कहकर लोकेश्वर शंकर की पूजा करे। फिर ललिता, ऐसा उच्चारण कर देवी के दोनों भौंहों की, शर्व को नमस्कार है—ऐसा कह पुरहन्ता शिव के भौहें की पूजा करे। वासवी श्रीकण्ठ स्वामिनी को नमस्कार है—ऐसा कहकर देवी के केशों की पूजा करे। तब शिव के केशोंकी पूजा करे। भयानक तथा उग्र स्वरूपों वाली देवी को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के शिर की, सर्वात्मा को नमस्कार है—ऐसा कह शिव जी की विधिपूर्वक पूजा कर सौभाग्यप्रद उन आठों वस्तुओं को मूर्ति के आगे रखे। वे आठों वस्तुएँ ये हैं—घृत, निष्पाव, कुसुम्भ, क्षीर, जीरा, रसराज, नमक तथा धनिया। ये वस्तुएँ दान देने पर सौभाग्य प्रदान करती हैं, अतः इनका नाम सौभाग्याष्टक रखा गया है। हे शत्रुओं को वश में करनेवाले ! इस प्रकार उन सभी वस्तुओं को शिव तथा पार्वती के आगे निवेदन कर रात्रि में केवल सींग (शिव जी को जल चढ़ाने के लिए सींगों का पात्र) द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से जल पान करे और भूमि पर ही शयन करे। पुनः प्रातःकाल होने पर उसी प्रकार स्नान तथा जप कर पवित्रात्मा हो, वस्त्र, माला तथा आभूषणों द्वारा ब्राह्मण दम्पति की, भली भाँति पूजा कर के उक्त सौभाग्याष्टक समेत, सुवर्ण से बने हुए चरणों वाली मूर्ति का ब्राह्मण को दान करे और निवेदन करे—'मेरे इस व्रत में ललिता देवी प्रसन्न हों।' मनु जी ! इसी प्रकार सभी प्रकार के सौभाग्य की अभिलाषा करनेवाले लोगों को भक्ति से विधिपूर्वक पूरे वर्ष तक सर्वदा तृतीया तिथि को उक्त विधान करना चाहिये। केवल भोजन करने में तथा दान के मंत्रों में कुछ विशेषता है, जिसे मुझसे सुन लीजिये। चैत्र के महीने में सींगों द्वारा जल, बैशाख में गोबर, ज्येष्ठ में मँदार का फूल, आषाढ़ में बेल का पत्ता, श्रावण में दही, भादों में कुश का जल, आश्विन में दूध, कातिक में दही मिश्रित घी, अगहन में गाय का मूत्र, पौष में केवल घी, माघ महीने में काला तिल तथा फाल्गुन में पंचगव्य का प्राशन करना चाहिये। दान देते समय ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा शिवा, वासुदेवी, गौरी, मंगला, कमला, सती तथा उमा प्रसन्न हों—यह कहना चाहिये। इसी प्रकार क्रम से उन महीनों में मल्लिका, अशोक, कमल, कदम्ब, नीला कमल, मालती, कुब्जक, करवीर, बाण, अम्लान, कुमकुम (केसर) तथा सिन्दुवार के फूल चढ़ाने के लिए कहे गये हैं। जपा, जवाकुसुम, मालती तथा शतपत्रिका के भी पुष्प यदि मिल सकें तो प्रशंसित माने गये हैं। करवीर तो सभी महीनों में श्रेष्ठ माना गया है। इस प्रकार विधिपूर्वक पूरे वर्ष तक उपवास रख कर शिव की भक्ति से पूजा करे। पुरुष भक्त स्त्री अथवा कुमारी कोई भी हो—सब को व्रत की समाप्ति होने पर सभी सामग्रियों के समेत एक शय्या दान रूप में देनी चाहिये। उसी शय्या पर सुवर्ण से बने हुए पार्वती तथा शिव एवं गाय के साथ नन्दी (शिव वाहन) को भी स्थापित कर के ब्राह्मण को दान देना चाहिये। अन्य दम्पति को भी वस्त्रादि, अन्न, अलंकार तथा धन से

यथाशक्ति सन्तुष्ट करना चाहिये। सब की पूजा अभिमान तथा कृपणता से रहित होकर करनी चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक जो कोई इस सौभाग्यशयन नामक व्रत का भली प्रकार से अनुष्ठान करता है, वह अपने सभी मनोरथों को प्राप्तिकर श्रेष्ठ पद प्राप्त करता है। इस व्रत का पालन किसी फल का त्याग करके करना चाहिये। राजन्! जो कोई इस व्रत को पालन करने की इच्छा करता है वह कीर्तिमान होता है। प्रति मास इस प्रनीत व्रत का पालन करनेवाला मनुष्य सौभाग्य, आरोग्य, रूप, आयु, वस्त्र, अलंकार भूषणादि से नव अरब तीन सौ वर्षों तक कभी हीन नहीं होता। जो बारह वर्षों तक इस सौभाग्यंशयन नामक व्रत का पालन करता है, अथवा सात ही आठ वर्षों तक करता है, वह श्रीकण्ठ के लोक में देवताओं द्वारा पूजित होकर तीस सहस्र कल्प पर्यन्त निवास करता है। राजन्! जो कोई विवाहित स्त्री अथवा कुमारी इस व्रत का पालन करती है वह भी देवी की अतिशय कृपा से उक्त फलों को प्राप्त करती है। जो इस व्रत के विधान को सुनता है अथवा किसी अन्य को इसके पालन की मति देता है, वह भी स्वर्ग लोक में विद्याधर होकर चिरकाल तक निवास करता है। ॥१४–४८॥

हे जननाथ! इस मर्त्यलोक में प्राचीन काल में मदन (कामदेव) ने इस व्रत का अनुष्ठान किया था, फिर कृतवीर्य के पुत्र शतधन्वा ने किया था, उसके बाद वरुण और नन्दी ने किया था। इस व्रत के माहात्म्य की पुनीत कथा के बारे में इससे अधिक और क्या कहें? ॥४९॥

श्री मात्स्य महापुराण में सौभाग्यशयन व्रत नामक साठवाँ अध्याय समाप्त ॥६०॥

इकसठवाँ अध्याय

नारद ने कहा—हे पुर के नाश करनेवाले! भू भुवस्वर् मह जन तप और सत्य नामक जो सात देवलोक कहे गये हैं, इन लोकों पर किस प्रकार क्रमशः मनुष्य आधिपत्य प्राप्त कर सकता है? और हे नाथ! किस प्रकार इस मर्त्यलोक में सुन्दर स्वरूप, दीर्घायु, सौभाग्य और विपुल यशश्री की प्राप्ति हो सकती है? इसे हमें कृपया बतलाइये। ॥१-२॥

महेश्वर ने कहा—तपोधन! प्राचीन काल में इन्द्र की आज्ञा से देवद्वेषी राक्षसों का विनाश करने के लिए अग्नि ने इस पृथ्वी लोक में पवन की सहायता से सहस्रों दानवों को जला दिया था। उस समय तारक, कमलाक्ष, कालदंष्ट्र, परावसु और विरोचन नामक राक्षस संग्राम भूमि से भाग गये थे। और वे सभी समुद्र के जल में प्रवेश कर गये थे। इस प्रकार उनको जलाने में अपनी असमर्थता देखकर अग्नि और मारुत ने उस समय उनकी उपेक्षा कर दी थी। तभी से वे देवताओं, समस्त जंगम जीवों (चलनेवालों) मनुष्यों और मुनियों को प्रपीडित करके पुनः जल में प्रवेश कर जाते थे। ब्रह्मन्! इसी प्रकार वे राक्षस वीर गण बारह सहस्र वर्षों तक अपने अभेद्य जल दुर्ग के भरोसे तीनों लोकों को पीडित करते रहे। तब बहुत दिनों के बाद अमराधिप इन्द्र ने अग्नि और मारुत को पुनः आज्ञा दी

कि 'आप लोग इस समुद्र को सुखा दें। वरुण का यह आश्रय हमारे शत्रुओं को शरण देने वाला है, अतः आप दोनों मिलकर इसे एकदम विनष्ट कर दें।' इस प्रकार इन्द्र के कहने पर अग्नि और मारुत ने शम्बर का विनाश करने वाले इन्द्र से कहा—'देवेन्द्र! सागर का विनाश करना एक अधर्म का कार्य होगा, क्योंकि इससे बहुत बड़े जीवों के निवासस्थान का ही विनाश हो जायगा। अतः हे पुरन्दर! हम दोनों इस प्रकार का पाप कर्म नहीं कर सकते। इस महान् समुद्र के केवल एक योजन भर में सैकड़ों करोड़ जीव जन्तु गण निवास करते होंगे। सुरश्रेष्ठ! किस प्रकार उनका विनाश किया जा सकता है?' अग्नि और मारुत के इस प्रकार कहने पर जलते हुए अग्नि की भाँति क्रोध से लाल नेत्र हो सुरेन्द्र ने क्रोधपूर्वक उन दोनों से यह बात कही—'विभावसु! देवगण कभी धर्म अथवा अधर्म के फल को नहीं भोगते। आप दोनों तो देवताओं के उक्त माहात्म्य के विशेष रूप से अधिकारी हैं। यतः पवन के साथ आपने हमारी आज्ञा का उल्लंघन किया है और मुनियों की भाँति अहिंसा व्रत धारण कर, धर्म-अर्थ तथा शास्त्र से शून्य शत्रुओं के प्रति उपेक्षा दिखाई है, अतः एक ही शरीर द्वारा मर्त्यलोक में मारुत के साथ मुनि रूप में आपकी उत्पत्ति होगी। और हे अग्ने! जब मनुष्ययोनि स्वीकार करने पर अगस्त्य रूप धारण कर तुम मुनि होकर इस समुद्र का शोषण कर लोगे तब कहीं पुनः देवयोनि में उत्पन्न होगे।' इस प्रकार इन्द्र के शाप के कारण वे दोनों देव उसी क्षण पृथ्वी तल पर पतित हो गये। तपोधन! तत्पश्चात् उन दोनों देवों ने एक ही शरीर में कुम्भ द्वारा जन्म ग्रहण किया और मित्रावरुण के वीर्य से महर्षि वशिष्ठ के अनुज रूप में उत्पन्न होकर उग्र तपस्वी अगस्त्य मुनि के नाम से ख्याति प्राप्त की। ॥३—१९॥

नारद ने कहा—पुर के शत्रु! वे मुनि किस प्रकार महर्षि वशिष्ठ के भ्राता रूप में उत्पन्न हुए? और किस प्रकार मित्रावरुण उनके पिता हुए? कुम्भ से उन मुनिवर अगस्त्य की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? इन सब बातों को हम जानना चाहते हैं। ॥२०॥

ईश्वर ने कहा—प्राचीन काल में एक बार कभी गन्धमादन पर्वत पर भगवान् विष्णु ने धर्म सुत होकर विपुल तपस्या की थी। उनकी इस तपस्या से भयभीत हो इन्द्र ने विघ्न पहुँचाने के उद्देश से अप्सराओं के समूहों के साथ माधव (वसन्त) और अनंग (कामदेव) को उनके पास भेजा था। जब अप्सराओं के गीत, वाद्य तथा शरीर सौन्दर्य आदि के प्रदर्शन तथा माधव और कामदेव के प्रयत्नों से विष्णु भगवान् कामादि विषयों की ओर आकर्षित नहीं हो सके, तब कामदेव, माधव तथा अप्सराओं के समूह को बड़ी चिन्ता हुई। उन सबों को और अधिक क्षुब्ध करने के लिए नर के अग्रज भगवान् विष्णु ने अपने उरु प्रदेश से तीनों लोक को मोहित करनेवाली एक परम सुन्दरी स्त्री को उत्पन्न किया। उसने अपने अनुपम सौन्दर्य द्वारा सभी देवताओं के साथ-साथ उन दोनों देवताओं को भी अतिशय क्षुब्ध कर दिया। उस समय अप्सराओं के सामने विष्णु भगवान् ने देवताओं से कहा—यह एक सर्वसाधारण के लिए गमनीय सामान्य अप्सरा है, और 'उर्वशी' नाम से लोक में इसकी प्रसिद्धि होगी।' ॥२१—२६॥

भगवान् विष्णु के इस कथन के उपरान्त कामलोलुप होकर मित्र ने उर्वशी को बुलाकर कहा—

'तुम मेरे साथ विहार करो।' उर्वशी ने मित्र के प्रस्ताव से सहमति प्रकट की और इस प्रकार स्वीकृति देने के पश्चात् जब कमल के समान सुन्दर नेत्रोंवाली उर्वशी थोड़ी ही दूर पर आकाशमार्ग से जा रही थी कि वरुण ने भी पीछे से उसे पकड़ लिया; किन्तु इस प्रकार उसने वरुण का अभिनन्दन नहीं किया। और बोली—'प्रभो! मुझे मित्र ने पहले ही बुला लिया है, अतः मैं आज आप की स्त्री नहीं हो सकती।' वरुण ने कहा 'मुझमें तुम अपना चित्त छोड़कर अर्थात् मुझमें चित्त लगाकर जा सकती हो।' उर्वशी ने कहा—'बहुत अच्छा।' इस प्रकार उर्वशी के चले जाने के बाद उसके इस रहस्य को जानकर मित्र ने उसे शाप दे दिया कि 'तुम मनुष्य लोक में जाकर चन्द्रमा के पुत्र इल के आत्मज पुरूरवा की स्त्री हो जाओ और उसी की सेवा करो। तुमने वेश्या के समान आचरण मेरे साथ किया है।' ऐसा कहने के उपरान्त मित्र तथा वरुण—दोनों ने अपने-अपने वीर्य को जल के कुम्भ में गिराया, जिससे दोनों के वीर्य से दो श्रेष्ठ मुनि उत्पन्न हुए। ॥२७-३१॥

प्राचीन काल की बात है। एक बार कभी राजा निमि अपनी स्त्रियों के साथ एक स्थान पर जूआ खेल रहे थे, उसी स्थान पर ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ जी भी कहीं से आ पहुँचे। किन्तु राजा ने सम्मान प्रदर्शन नहीं किया और इस प्रकार यथोचित सेवा सत्कार द्वारा राजा ने जब वशिष्ठ जी की पूजा नहीं की तो उन्होंने राजा निमि को शाप दे दिया कि—'तुम विदेह (देह रहित) हो जाओ।' वशिष्ठ का शाप सुनकर राजा निमि ने भी उन्हें वही शाप दे दिया। इस प्रकार आपस में एक दूसरे को शाप देकर महर्षि वशिष्ठ तथा राजा निमि—दोनों ही एकदम निश्चेष्टों की भाँति हो इस शाप को नष्ट कराने के लिए संसार के स्वामी ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा के आदेश से राजा निमि नेत्रों की पलकों पर निवास करने लगे। नारद जी! उन्हीं को विश्राम देने के लिए मनुष्यादि जीवों की पलकें ऊपर और नीचे की ओर जाती-आती रहती हैं। और महर्षि वशिष्ठ उसी जलकुम्भ से उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् गौर शरीर, चार बाहुओं वाले, अक्ष, यज्ञोपवीत और कमण्डलु को धारण किये हुए शान्तात्मा ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्य जी भी उसी घट से उत्पन्न हुए। मलय पर्वत के एक भाग में वानप्रस्थियों के नियमों का पालन कर इन्हीं अगस्त्य ने अपनी स्त्री के साथ अनेक ब्राह्मणों द्वारा सुरक्षित रहकर अतिघोर तपस्या की थी। बहुत दिनों के बाद तारक नामक राक्षस द्वारा जगत् को अति पीड़ित देखकर उन्होंने ही क्रुद्ध होकर समुद्र को पी डाला था। उनके इस अद्भुत कार्य के करने पर शंकर आदि सभी देवताओं ने उन्हें अनेक वरदान दिया था। उस अवसर पर ब्रह्मा तथा विष्णु स्वयं वरदान देने के लिए उनके समीप आये और बोले—मुनिवर आप को जो भी अभीष्ट हो, उसको वरदान रूप में हमसे माँगिये। ॥३२—३९॥

अगस्त्य ने कहा—एक सहस्र ब्रह्मा के पच्चीस करोड़ वर्ष पर्यन्त मैं दक्षिणाचल के मार्ग में विमान पर अवस्थित होकर सुखपूर्वक निवास करूँ और मेरे विमान के उदय होने के समय जो कोई मनुष्य मेरी पूजा करे, वह क्रम से सातों लोकों का अधिपति हो। ॥४०—४१॥

ईश्वर ने कहा—नारद जी! तदनन्तर वे देवगण 'ऐसा ही हो' कह कर जहाँ से आये थे वहाँ

चले गये। अतः बुद्धिमान् पुरुषों को अगस्त्य को सदैव अर्घ्य देना चाहिये ॥४२॥

नारद ने कहा—विभो! अगस्त्य जी को किस प्रकार यह अर्घ्य प्रदान करना चाहिये? और उनके पूजन का क्या विधान है? उसे भी मुझे बतलाइये ॥४३॥

ईश्वर ने कहा—गृहस्थ विद्वान् पुरुष को चाहिये कि रात्रि में प्रातःकाल सन्निकट होने पर जब कि इनका (अगस्त्य) उदय आकाश मण्डल में हुआ रहता है—श्वेत रंग के तिलों द्वारा स्वयं स्नान करे और उसी प्रकार श्वेत रंग की माला और वस्त्र धारण कर माला तथा वस्त्र से सुशोभित एक विना फूटे हुए कलश की स्थापना करे। वह कलश पाँच प्रकार के रत्नों से युक्त तथा घी के पात्र से सुशोभित हो। अनेक प्रकार के खाने योग्य फल तथा ताँबे से बना हुआ एक पात्र भी उसके साथ रखना चाहिये। अनन्तर सुवर्ण से बनी हुई विस्तृत भुजाओं तथा चार मुखों वाली एक पुरुषाकृति को, जो लम्बाई में अंगूठे जितनी बड़ी हो, उसी कुम्भ में रख कर अन्नों तथा सात वस्त्रों के समेत, काँसे से बने हुए पात्र, अक्षत, तथा शंख के साथ मंत्रोच्चारण पूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान देना चाहिये। और तब अनन्य चित्त हो यम की दिशा दक्षिण की ओर मुख करके लम्बी बाहु तथा उदर वाले गणेश को स्थापित करना चाहिये। यदि अपनी शक्ति हो तो श्वेत रंग की दूध देने वाली सवत्सा गौ की खुरों को चाँदी तथा मुख को सुवर्ण मय करके बछड़े समेत, घण्टी तथा आभरण से विभूषित कर ब्राह्मण को प्रणामपूर्वक दान करे। इस अनुष्ठान को करने वाले मनुष्य को सातवीं रात्रि में अगस्त्य के उदय काल तक इन उपर्युक्त सभी वस्तुओं का दान करना चाहिये। नियमतः सात अथवा दस वर्षों तक इस विधान को करना चाहिये, कोई-कोई लोग इससे भी अधिक इसकी अवधि बतलाते हैं। ॥४४-४९॥

(और तब प्रार्थना करे) 'हे काश के फूल की भाँति श्वेत रंगवाले! अग्नि तथा पवन के संयोग के उत्पन्न होने वाले! मित्र और वरुण के पुत्र! कुम्भयोनि! आपको मेरा नमस्कार है। हे विन्ध्य पर्वत के शरीर की वृद्धि को रोकने वाले! बादलों के जलीय विष को दूर करने वाले! रत्नवल्लभ! लंका निवासी देवेश! आपको मेरा नमस्कार है। आपने प्राचीनकाल में वातापी नामक राक्षस को खा डाला और समुद्र को सुखा दिया, ऐसे लोपामुद्रा के प्रति श्रीमान् अगस्त्य मुनि! आप को मेरा बारम्बार नमस्कार है। हे राजपुत्रि! महाभाग्यशालिनि! अगस्त्य की पत्नी! वरानने! लोपामुद्रे! तुमको भी मेरा नमस्कार है, यह मेरा अर्घ्य ग्रहण करो!' इस प्रकार प्रति वर्ष फल की अभिलाषा का परित्याग कर अनुष्ठान करनेवाला पुरुष कभी विनाश को नहीं प्राप्त होता। तत्पश्चात् हवन करके यजमान को चाहिये कि वह किसी फल की अभिलाषा न करे। इस प्रकार के विधान से जो पुरुष अगस्त्य को अर्घ्य दान देता है वह इस मर्त्यलोक में सुन्दर रूप तथा आरोग्य सम्पन्न होकर निवास करता है। दूसरे अर्घ्य दान के करने से वह भुवर्लोक को प्राप्त करता है, इसके बाद स्वर्ग लोक को। इस प्रकार जो कोई पुरुष सात बार अर्घ्य दान करता है, वह उक्त सातों लोकों को प्राप्त करता है। इसी प्रकार जो कोई इस अनुष्ठान को अपनी आयु पर्यन्त करता रहता है वह परब्रह्म को प्राप्त करता है। ॥५०-५६॥

इस मर्त्यलोक में जो कोई पुरुष इस युगल मुनि मित्रावरुण के संयोग से उत्पन्न होने वाले अगस्त्य जी को अर्घ्य दान देने के विधान को पढ़ता है, सुनता है, अथवा इसके अनुष्ठान करने की सम्मति देता है, वह भी विष्णु भगवान् के धाम को प्राप्त होकर देववृन्दों द्वारा पूजित होता है। ॥५७॥

श्री मात्स्य महापुराण में अगस्त्य की उत्पत्ति और पूजा विधान नामक इकसठवाँ अध्याय समाप्त। ॥६१॥

बासठवाँ अध्याय

मनु ने कहा—देव जनार्दन! इस लोक में सौभाग्य तथा आरोग्य का फल प्रदान करने वाले, परलोक में अक्षय फल देने वाले तथा भुक्ति और मुक्ति के प्रदाता किसी अन्य व्रत को अब मुझसे बतलाइये। ॥१॥

मत्स्य ने कहा—मनु! प्राचीन काल में कैलाश पर्वत के शिखर पर समासीन भगवान् शंकर ने देवी पार्वती के पूछने पर उनसे अनेक धर्ममयी ललित कथाओं के प्रसंग में जिस पुनीत व्रत का उपदेश किया था, उस भुक्ति तथा मुक्ति को प्रदान करनेवाले व्रत को मैं अब आप से कह रहा हूँ, सुनिये। ॥२-३॥

ईश्वर ने कहा—देवि! सावधान होकर अनन्त पुण्य फल देने वाले पुरुषों अथवा स्त्रियों के करने योग्य परम श्रेष्ठ व्रत को बतला रहा हूँ, सुनो। भादों, वैशाख अथवा पुण्यप्रद अगहन महीने के शुक्ल पक्ष में तृतीया तिथि को श्वेत रंग की सरसों से विधिवत् स्नान करके, गोरोचन, गोमूत्र तथा उष्ण गोबर से संयुक्त दही तथा चन्दन से विमिश्रित तिलक मस्तक पर लगावे, क्योंकि यह तिलक ललिता देवी को अतिप्रिय तथा सौभाग्य और आरोग्य का देने वाला कहा जाता है। प्रत्येक पक्ष में तृतीया तिथि को पुरुष पीले रंग के कपड़े, स्त्री जितेन्द्रिय होकर रक्त वर्ण के कपड़े, विधवा स्त्री गेरु आदि धातुओं से रँगे गये लाल रंग के कपड़े तथा कुमारी श्वेत रंग के कपड़े को धारण करे। तत्पश्चात् प्रथमतः देवी को पंचगव्य से फिर केवल दुग्ध से स्नान करावे। उसी प्रकार फिर मधु, पुष्प, सुगन्धित द्रव्य तथा जल से स्नान करावे। श्वेतरंग के पुष्पों तथा अनेक प्रकार के फलों द्वारा धनिया, जीरा; लवण, गुड़, दूध तथा घी समेत पूजा करे। तत्पश्चात् देवी की श्वेत रंग के अक्षत तथा तिल द्वारा पूजा करे। वरानने! इस प्रकार प्रत्येक पक्ष में देवी के पादादि की पूजा करे। वरदान देने वाली देवी को नमस्कार है—ऐसा कह कर दोनों पादों की, श्री (लक्ष्मी) को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों गुल्फों की, अशोका (शोक रहित करने वाली) को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों जंघों की, पार्वती को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों जानुओं की, मंगलकारिणी को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों उरु प्रदेशों की, वामदेवी को नमस्कार है—ऐसा कह कटि प्रदेश की, पद्मोदरा को नमस्कार है—ऐसा कह उदर प्रदेश की, कामश्री को नमस्कार है—ऐसा कह वक्षस्थल की, सौभाग्यदायिनी को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों हाथों की, हरमुखश्री को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों बाहुओं की, दर्पणवासिनी को नमस्कार है—ऐसा कह मुख की, स्मरदा को नमस्कार है

ऐसा कह हास्य की, गौरी को नमस्कार है—ऐसा कह नासिका की, उत्पला को नमस्कार है—ऐसा कह नेत्रों की, तुष्टि को नमस्कार है—ऐसा कह ललाट की, कात्यायनी को नमस्कार है—ऐसा कह केशों तथा शिर की पूजा करनी चाहिये। गौरी को नमस्कार है, धिष्णया को नमस्कार है, कान्ति को नमस्कार है, श्री को नमस्कार है, रम्भा ललिता तथा वासुदेवी को नमस्कार है, नमस्कार है—इस प्रकार विधिपूर्वक देवी की पूजा कर अपने आगे एक कमल जो बीज कोष के समेत बारह पत्तों से युक्त हो, केसर द्वारा चित्रित करे। उसमें पूर्व दिशा की ओर से गौरी को, उसके बगल में अपर्णा को, दक्षिण की ओर से भवानी को, उसके बाद रुद्राणी को, पश्चिम दिशा की ओर सर्वदा सौम्या मदनवासिनी को वायव्य कोण से उग्रस्वरूप पाटलादेवी को, उसके बाद उमा को, फिर मध्य भाग में मासांगा, मंगला कुमुदा तथा सती को चित्रित करे। इन सबों के मध्य भाग में शिव को स्थापित कर कमल के बीजकोष (नीचे वाले भाग में) में ललिता देवी को पुष्प, अक्षत, जल तथा नमस्कार समेत स्थापित करे। मांगलिक गीत वाद्य आदि को सुवासिनी (यौवनकाल तक पिता के परिवार में निवास करने वाली कुमारियों) कन्याओं द्वारा कराकर लाल रंग के वस्त्रों से, लाल रंग की माला तथा चन्दनादि से देवी की पूजा करे। फिर उन सभी देवियों के सिर पर सिन्दूर तथा स्नान करने योग्य चूर्ण कुंकुम आदि गिराये; क्योंकि इस पुण्य कार्य के लिए सिन्दूर केसर तथा स्नान अतिशय इष्ट के देने वाले माने गये हैं। देवी की पूजा करने के बाद उपदेश देने वाले गुरु की भी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। जिस अनुष्ठान में गुरु की पूजा नहीं की जाती, उसकी सभी क्रियायें निष्फल हो जाती हैं। भादों के महीने में सर्वदा नीले कमल द्वारा गौरी की पूजा करनी चाहिये। कार के महीने में बन्धु जीव के (दोपहरी के) पुष्पों से, कार्तिक में शतपत्रक (कमल) के पुष्पों से, अगहन में मालती के पुष्पों से, पौष में पीले कुरण्टक (कटसरैया) के पुष्पों से, माघ में देवी की पूजा कुन्द तथा कुंकुम के पुष्पों से करनी चाहिये। फाल्गुन महीने में सिन्दुवार के अथवा मालती के पुष्पों द्वारा उमा की पूजा करनी चाहिये। चैत्र महीने में मल्लिका तथा अशोक के पुष्पों से, वैशाख महीने में गन्धपाटला के पुष्पों से, ज्येष्ठ महीने में कमल तथा मँदार के पुष्पों से आषाढ़ महीने में नये कमल के पुष्पों से तथा श्रावण महीने में सर्वदा कदम्ब तथा मालती के पुष्पों द्वारा देवी की पूजा करनी चाहिये। इन महीनों में क्रम से गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशोदक, बेल का पत्ता, मँदार का पुष्प, जव, गौ की सींग से स्पर्श किया गया वा चूता हुआ जल, पंचगव्य (गाय का मूत्र, गोबर, घी, दूध, तथा दही) तथा बेल का प्राशन करना चाहिये। भादों आदि महीनों में प्राशन के लिए क्रमशः ये ही सामग्रियाँ बताई गई हैं। वरानने! प्रत्येक पक्ष की तृतीया तिथि को ब्राह्मण दम्पती की भली भाँति पूजा करके भक्तिपूर्वक वस्त्र, माला तथा चन्दन आदि सामग्रियों से अर्चना करे, जिनमें से पुरुष के लिए दो पीले वस्त्र और स्त्री के लिए कुसुम्भ रंग की दो साड़ियाँ दे। तथा सुवर्ण निर्मित कमल के साथ निष्पाव, जीरा, लवण, ईख का टुकड़ा और गुड़ समेत फल तथा पुष्प भी उसे देने चाहियें। (यह सब दान देने के पश्चात् प्रार्थना करे—) 'हे देवि! जिस प्रकार देवाधिदेव शंकर भगवान् तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाते, उसी प्रकार मुझे भी इस सम्पूर्ण सांसारिक दुःख

रूपी सागर से तुम उबारो।' भादों आदि महीनों में क्रम से देवी के कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, सुधा, शिवा, ललिता, गौरी, सती, रम्भा तथा पार्वती—इन नामों का उच्चारण कर 'प्रसन्न हो' ऐसा कहे। व्रत की समाप्ति हो जाने पर सुवर्ण निर्मित कमल के समेत एक शय्या का दान दे और चौबीस, अथवा बारह दम्पतियों की पूजा करे। फिर प्रति महीने बाद आठ अथवा छः दम्पति की पूजा करे। इस व्रत में बुद्धिमान पुरुष सर्वप्रथम गुरु को दान देकर पश्चात् शेष ब्राह्मणों की पूजा करे। सर्वदा अनन्त फल देनेवाली इस अनन्त-तृतीया नामक व्रत के विधान को मैं कह चुका। देवि! सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाली, सौभाग्य तथा आरोग्य को देने वाली इस अनन्त तृतीया को कभी भी मनुष्य को कृपणता वश छोड़ना नहीं चाहिये। पुरुष हो अथवा स्त्री हो, कोई भी इसमें कृपणता करने पर नीचे गिर जाता है। यदि इस व्रत का पालन करने वाली स्त्री गर्भिणी हो, सूतिका (बच्चा उत्पन्न करने वाली) हो, कुमारी हो, नक्त (?) अथवा रोगिणी हो वा अशुद्ध हो तो उसे स्वयम् नियम युक्त रह कर दूसरों से रात्रि में इसका अनुष्ठान करवाना चाहिये। जो कोई पुरुष इस अनन्त-फलदायिनी तृतीया व्रत का पालन करता है वह सौ करोड़ कल्प पर्यन्त शिवलोक में पूजित होता है। निर्धन पुरुष भी यदि तीन वर्षों तक उक्त तिथि को उपवास रखकर केवल पुष्प तथा मन्त्रादि से इसके नियमों का पालन करता है वह भी उसी फल को प्राप्त करता है। सधवा स्त्री, कुमारी अथवा विधवा—जो कोई भी इस व्रत का यथोचित पालन करती है, वह भी गौरी के अनुग्रह से अनुगृहीत हो उसी फल को प्राप्त करती है। ॥४—३८॥

इस प्रकार पार्वती के इस अनन्ततृतीया व्रत के विधान को जो कोई मनुष्य पढ़ता है, अथवा सुनता है, वह इन्द्रलोक का निवासी होता है और जो कोई इस व्रत के पालन करने की सम्मति भी देता है, वह भी देवताओं, अप्सराओं तथा किन्नरों द्वारा पूजित होता है ॥३९॥

श्री मात्स्य महापुराण में अनन्ततृतीया व्रत माहात्म्य वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥६२॥

तिरसठवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके बाद मैं एक अन्य पापों को नाश करनेवाली रसकल्याणिनी नामक तृतीया को बतला रहा हूँ, जिसे प्राचीन काल की कथाओं को जानने वाले लोग जानते हैं। माघ महीना आने पर शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को प्रातःकाल में गाय के दूध तथा तिल द्वारा स्नान कर देवी को मधु तथा ईख के रस से स्नान करावे और सुगन्धित द्रव्यमिश्रित उदक द्वारा केसर का लेपन करे। इस प्रकार पहले दाहिने अंगों की विधिवत् पूजा करके बाएँ अंगों की पूजा करे। ललिता को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के दोनों पैरों की फिर दोनों गुल्फों की पूजा करे। शान्ति को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के जंघा और जानु प्रदेश की पूजा करे, श्री को नमस्कार है—ऐसा कह उरु प्रदेश की, मदालसा को नमस्कार है—ऐसा कह कटि की, अमला को नमस्कार है—ऐसा कह उदर की, मदनवासिनी को नमस्कार है—ऐसा

कह दोनों स्तनों की, कुमुदा को नमस्कार है—ऐसा कह कन्धों की, माधवी को नमस्कार है—ऐसा कह भुजा और भुजाओं के अग्रभाग की, कमला को नमस्कार है—ऐसा कह मुख तथा हास्य की, रुद्राणी को नमस्कार है—ऐसा कह भौंहों और ललाट प्रदेश की, मोहन को नमस्कार है—ऐसा कह फिर से दोनों भौंहों की, चन्द्रार्धधारिणी को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों नेत्रों की, तुष्टि को नमस्कार है—ऐसा कह पुनः मुख की, उत्कण्ठिनी को नमस्कार है—ऐसा कह कण्ठ प्रदेश की, अमृता को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों स्तनों की, रम्भा को नमस्कार है—ऐसा कह बायीं कोख की, विशोका को नमस्कार है—ऐसा कह कटि प्रदेश की, मन्मथाधिष्णि को नमस्कार है—ऐसा कह हृदय की, पाटला को नमस्कार है—ऐसा कह उदर की, सुरतवासिनी को नमस्कार है—ऐसा कह कटि की, हे चम्पकप्रिये ! तुम्हें हमारा नमस्कार है—ऐसा कह उरु की, गौरी को नमस्कार है—ऐसा कह जानु और दोनों जंघों की, गायत्री को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों गुल्फों की, धराधरा को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों पैरों की, तथा विश्वकाया को नमस्कार है—ऐसा कह शिर की पूजा करे। भवानी को, कामिनी को, कामदेवी को नमस्कार है, हे जगत्प्रिये ! तुम्हें हमारा नमस्कार है। आनंन्दा को, सुनन्दा को, सुभद्रा को हमारा नमस्कार है, नमस्कार है।' इस प्रकार विधिपूर्वक देवी की पूजा करके तब ब्राह्मण दम्पती की पूजा करे। यजमान अभिमान रहित हो मधुर अन्न-पान आदि से उन्हें भरपेट भोजन कराये। जल से भरे हुए घट को देकर दो श्वेत रंग के जोड़े वस्त्र तथा सुवर्ण निर्मित एक कमल देकर सुगन्धित द्रव्य तथा माला आदि से विधिवत् पूजा करनी चाहिये। और कहना चाहिये—'हमारे इस व्रत से कुमुदा देवी प्रसन्न हों'—ऐसा कर नमक का व्रत रखना चाहिये अर्थात् नमक नहीं खाना चाहिये। इस विधि से प्रत्येक महीने में देवी की पूजा करनी चाहिये। प्रथमतः माघ के महीने में नमक छोड़ दे। फिर फाल्गुन में गुड़, चैत्र में तेल तथा श्वेत सरसों, वैशाख में मधु, ज्येष्ठ महीने में पानक (पन्ना), आषाढ़ में जीरा, श्रावण में दूध, भादों में दही, क्वार में घी, कार्तिक में माक्षिक (मधु), अगहन में धनिया और पूस में शक्कर को वर्जित कर दे। प्रत्येक महीने में व्रत की समाप्ति होने पर इन्हीं उपर्युक्त वस्तुओंको करवा में भरकर पूर्णपात्र के साथ द्विकाल बेला में अर्थात् जब दो बेलाओं की संधि होती है, ब्राह्मण को दान दे। माघ आदि महीने में क्रम से श्वेत रंग के लड्डू, हलवा, पूड़ी, घेवर, पूआ, आँटे का बना हुआ पूआ, माँड़, दूध, शाक, दही मिश्रित अन्न, इण्डरी (?) अशोकवर्तिका (?)—इन सब को करवे के ऊपर रखकर देना चाहिये। कुमुदा, माधवी, गौरी, रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, रति, सती, मंगला और रतिलालसा—इन बारह नामों का उच्चारण कर 'प्रसन्न हो' ऐसा कहे। सभी महीनों में पंचगव्य का प्राशन (भक्षण) बतलाया गया है। इस व्रत में सर्वदा उपवास करना चाहिये, यदि वैसा करने में अशक्त हो तो केवल रात्रि में उपवास रखे। फिर माघ महीना आने पर करवे के ऊपर शक्कर रख कर सुवर्णनिर्मित गौरी (पार्वती) की मूर्ति जो अंगूठे जितनी बड़ी, चार भुजाओंवाली, मस्तक पर चन्द्रिका से सुशोभित, तथा श्वेत रंग के नेत्रावरण से अलंकृत हो, बनवा कर पाँच प्रकार के रत्नों समेत पाश, सूत्र और कमण्डलु के साथ दान दे। उसी प्रकार गाय के जोड़े, जो श्वेत रंग के हों, सुवर्ण द्वारा मुख पर अलंकृत हों, श्वेत वस्त्रों से आच्छा-

दित हों, अन्यान्य वस्त्रों तथा पात्रों के समेत दान देना चाहिये। उस समय 'भवानी प्रसन्न हो'—ऐसा कहे। इस प्रकार की विधि से जो कोई पुरुष इस रसकल्याणिनी नामक व्रत का पालन करता है वह तुरन्त अपने पापों से छुटकारा पा जाता है, और नव अरब एक सहस्र वर्ष तक दुःखी नहीं होता। गौरि! प्रत्येक महीनों में सुवर्ण निर्मित कमल का दान देकर मनुष्य सहस्र अग्निष्टोम नामक यज्ञ के समान पुण्य फल प्राप्त करता है। वरानने! जो कोई सधवा स्त्री, कुमारी अथवा विधवा स्त्री इस व्रत का पालन करती है, वह भी उसी फल को प्राप्त करती है और सौभाग्य तथा आरोग्य से सम्पन्न होकर पार्वती के लोक में पूजित होती है। ॥१-२८॥

इस प्रकार जो मनुष्य प्रसंगवश इस कथा को पढ़ता है, सुनता है अथवा सुनाता है, वह कलियुग के पापों से रहित होकर पार्वती के लोक को प्राप्त करता है। और जो कोई किसी अन्य पुरुष को कल्याण की भावना से इस व्रत के अनुष्ठान करने की सम्मति देता है, वह देवताओं के स्वामी इन्द्र के विमान में अवस्थित होकर अक्षय काल तक के लिए नायक के पद की प्राप्ति करता है। ॥२९॥

श्री मात्स्य महापुराण में रसकल्याणिनी माहात्म्य वर्णन नामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६३॥

चौसठवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—उसी प्रकार एक दूसरी पापों को विनष्ट करनेवाली तृतीया को मैं आप से बतला रहा हूँ, जो लोक में आर्द्रानन्दकरी नाम से विख्यात है। जब कभी शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को आषाढ़ का (पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़) नक्षत्र पड़े अथवा ब्रह्मनक्षत्र रोहिणी, मृगशिरा, हस्त वा मूल पड़े तो कुश सुगन्धित द्रव्य तथा जल से भली भांति स्नान करे। श्वेत रंग की माला धारण कर श्वेत चन्दादि से शरीर को सुशोभित कर अति भक्ति पूर्वक श्वेत रंग के पुष्पों तथा सुगन्धित पदार्थों से भवानी की पूजा करे, जो एक बहुत बड़े आसन पर महादेव के साथ विराजमान हों। ॥१-३॥

वासुदेवी को नमस्कार है—ऐसा कहकर भवानी के दोनों पैरों की तथा शंकर को नमस्कार है—, ऐसा कह महादेव के दोनों पैरों की पूजा करे। फिर शोक विनाशिनी को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के दोनों जंघों की और हे प्रभो! आनन्दस्वरूप आपको हमारा नमस्कार है—ऐसा कह शिव के दोनों जंघों की, रम्भा को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के दोनों उरु भागों की, शिव को नमस्कार है—ऐसा कह पिनाकी के तथा अदिति को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के कटि प्रदेश की और शूलपाणि को नमस्कार है—ऐसा कह शूली (महादेव जी) के, माधवी को नमस्कार है—ऐसा कह देवी की नाभि की और भव को नमस्कार है—ऐसा कह शम्भु की नाभि की पूजा करे। आनन्दकारिणी को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के दोनों स्तनों की तथा इन्दुधारी को नमस्कार है—ऐसा कह शंकर के स्तनों की पूजा करे। उत्कण्ठिनी को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के कण्ठ प्रदेश की और नीलकण्ठ को नमस्कार है—ऐसा कह हर

के कण्ठ प्रदेश की, उत्पल धारिणी को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के दोनों हाथों की—हे जगत्पते रुद्र ! आप को हमारा नमस्कार है—ऐसा कह शिव जी के; परिरम्भिणी को नमस्कार है—ऐसा कह देवी की दोनों बाहुओं की, त्रिशूल को नमस्कार है—ऐसा कह महादेव के, विलासिनी को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के मुख की, वृषेश को नमस्कार है—ऐसा कह पुनः विभु (शंकर) के मुख की स्मेरलीला को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के हास्य की, विश्ववक्र को नमस्कार है—ऐसा कह विभु के, मदनवासिनी को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के दोनों नेत्रों की; विश्वधामा को नमस्कार है—ऐसा कह त्रिशूली के, नृत्यप्रिया को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के दोनों भौहों की, ताण्डवेश को नमस्कार है, ऐसा कह शूली के, इन्द्राणी को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के ललाट प्रदेश की और हव्यवाह को नमस्कार है—ऐसा कह विभु के, स्वाहा को नमस्कार है—ऐसा कह देवी के मुकुट की तथा गंगाधर को नमस्कार है—ऐसा कह विभु के मुकुट की पूजा करे। विश्व के शरीर रूप विश्व के मुख रूप और विश्व के पाद और कर रूप प्रसन्न मुख पार्वती और परमेश्वर (शंकर जी) की मैं बन्दना करता हूँ।' इस प्रकार कहते हुए विधिपूर्वक पूजा करके शिव तथा पार्वती की मूर्तियों के आगे विभिन्न रंगों के रज से कमल का आकार बनाये और कटक के समेत शंख, चक्र, स्वस्तिका, अंकुश और चँवर के भी आकारों को चित्रित करे। ऐसा करते हुए पृथ्वी पर रज के जितने कण गिरते हैं उतने ही सहस्र वर्षों तक यजमान शिव लोक में पूजित होता है। विधान कर्त्ता को चाहिए कि अपनी शक्ति के अनुकूल चार घृतपूर्ण पात्र, सुवर्ण के सहित जल और अन्न से पूर्ण करवे के साथ ब्राह्मण को दान दे। और इसी प्रकार चार महीने तक प्रत्येक पक्ष में उक्त तिथि को सभी सामग्रियों का दान दे। तत्पश्चात् चार महीने तक पहिले ही की भाँति करवे के ऊपर चार सतुवे के पात्र और उसके ऊपर चार तिल के पात्र रखे। यजमान को सुगन्धित पदार्थ मिश्रित जल, पुष्प का जल चन्दन, केसर मिश्रित जल, विना पकाया हुआ दही और दूध, गौ की सींग से स्पर्श किया हुआ जल, पीठी मिश्रित जल, कूट (एक प्रकार की सुगन्धित जड़ी) के चूर्ण से मिश्रित जल, उशीर से मिश्रित जल, जव के चूर्ण से मिश्रित जल और तिल विमिश्रित जल का क्रमशः अगहन आदि महीनों में प्राशन करके शयन करना चाहिये। इन सब वस्तुओं का महीने के दोनों पक्षों में दो बार प्राशन करने का विधान है। सभी महीनों में श्वेत रंग के पुष्प इस पूजन में प्रशंसनीय माने गये हैं। दान देते समय सभी स्थलों पर इस मंत्र का उच्चारण करे।

'नित्य हमारे पापों के नाश करने के लिए निखिल मंगलों को देने वाली पार्वती प्रसन्न हों तथा ललिता, भवानी सभी प्रकार की सिद्धियों एवं सौभाग्यों की देने वाली हों।' इस प्रकार वर्ष की समाप्ति होने पर लवण, गुड़ युक्त कुम्भ, सज्जी, चन्दन, सुवर्ण निर्मित कमल के साथ नेत्रावरण के लिए वस्त्र, सुवर्ण की बनी हुई ईख तथा फलों से युक्त पार्वती और महेश्वर की मूर्ति, रुई के गद्दे और आवरण (चादर) से युक्त मनोहर शैया, जो तकिये से युक्त हो, किसी सपत्नीक ब्राह्मण को निवेदन करे (दे) और उससे कहे कि आप 'प्रसन्न हों।' यह सदा से होने वाली आर्द्रानन्दकरी नामक तृतीया है,

जिसके विधिपूर्वक उपवास करने से मनुष्य उस स्थान को प्राप्त करता है, जो शंकर का परम स्थान है। इस लोक में धन-सम्पत्ति, दीर्घायु, आरोग्य आदि से युक्त होकर वह सर्वदा आनन्द प्राप्त करता है और कभी शोक नहीं प्राप्त करता। जो कोई स्त्री इस व्रत का विधिपूर्वक पालन करती है वह चाहे कुमारी हो वा विधवा ही क्यों न हों, देवी के अनुग्रह से अनुगृहीत हो उसी फल को प्राप्त करती है। इसी प्रकार प्रत्येक पक्ष में मंत्र तथा पूजाविधि आदि का जानने वाला पुरुष उक्त व्रत का पालन कर रुद्राणी के उस लोक को प्राप्त करता है, जिसमें पहुँचकर पुनरागमन दुर्लभ हो जाता है। जो कोई मनुष्य नित्य इस विधान का श्रवण करता है अथवा कराता है, वह इन्द्र के लोक में तीन युगों तक गन्धर्वों द्वारा पूजित होता है। इस आनन्द देने वाली, सभी दुखों को दूर करने वाली तृतीया को जो कोई सधवा अथवा विधवा स्त्री करती है, वह अपने घर में सैकड़ों सुखों का अनुभव करके पति के समेत पुनः पार्वती के स्थान को प्राप्त करती है। ॥४-२८॥

श्री मात्स्य महापुराण में आर्द्रानन्दकरी तृतीया व्रत माहात्म्य वर्णन नामक चौसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—इसके बाद मैं एक दूसरी सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाले तृतीया को बतला रहा हूँ। जिसमें दान किया हुआ, हवन किया हुआ, और जप किया हुआ—सभी अक्षय फल देने वाला होता है। वैशाख महीने के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को जो मनुष्य व्रत रहता है, वह अपने सम्पूर्ण सत्कर्मों का अक्षय फल प्राप्त करता है। यह तृतीया कृत्तिका नक्षत्र से युक्त होने पर विशेष पूज्य मानी जाती है। उक्त योग से युक्त तृतीया में दान दिया हुआ, हवन किया हुआ और जप किया हुआ पदार्थ अक्षय फलदायी कहा जाता है। इस व्रत के करने वाले मनुष्य की सन्तानें अक्षय होती हैं और इसमें किया हुआ सत्कर्म भी अक्षय फलदायी होता है। इस व्रत में अक्षत के द्वारा विष्णु भगवान् की पूजा की जाती है अतः अक्षयतृतीया के नाम से वह विख्यात है। इसमें अक्षतों द्वारा मनुष्य स्नान करके विष्णु भगवान् को अक्षत समर्पित कर ब्राह्मणों को भी उसी अक्षत का तथा शुद्ध सत्तू का दान दे और स्वयं उसी का भोजन करे, इससे अक्षय फल की प्राप्ति होती है। एक भी अक्षय तृतीया का विधिपूर्वक ऊपर कहे हुए विधानों से करनेवाला मनुष्य इन सभी तृतीया के व्रतों का फल प्राप्त करता है। इस अक्षय तृतीया तिथि में उपवास रखकर जनार्दन (भगवान् विष्णु) भगवान् की विधिपूर्वक आराधना कर मनुष्य राजसूय यज्ञ के फल की प्राप्ति करता है और श्रेष्ठ गति पाता है। ॥१-७॥

श्री मात्स्यमहापुराण में अक्षयतृतीयाव्रत माहात्म्य वर्णन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६५॥

छाछठवाँ अध्याय

मनु ने कहा—माधव ! किस व्रत के पालन करने से मनुष्य को उत्तम सरस्वती (वाणी) सभी विद्याओं में विशेष निपुणता, सौभाग्य, स्त्री-पुरुष में अभिन्नता, वन्धु जनों में प्रीति और दीर्घायु की प्राप्ति होती है, कृपया उसे मुझे बतलाइये ॥१-२॥

मत्स्य ने कहा—राजन् ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया, ऐसे सारस्वत नामक व्रत को सुनो, जिसके केवल गुणगान करने मात्र से इस लोक में सरस्वती देवी सन्तुष्ट हो जाती हैं। जो पुरुष जिस विशेष देवता का उपासक हो, उसी के दिन से प्रारम्भ कर ब्राह्मणों की विधिपूर्वक पूजा कर इस श्रेष्ठ व्रत का अनुष्ठान करे। अथवा रविवार के दिन से ग्रहों तथा ताराओं की उपयुक्त स्थिति में ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति-वाचन करा के उन्हें खीर का भोजन करवाये, और अपनी शक्ति के अनुकूल सुवर्ण के सहित श्वेत वस्त्र देकर, भक्ति पूर्वक श्वेत रंग की मालाओं तथा चन्दनों से गायत्री देवी की पूजा करे। (और प्रार्थना करे) 'हे देवि ! जिस प्रकार भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मलोक में आप को छोड़ कर कहीं अन्यत्र नहीं रुकते, उसी प्रकार का वरदान हमें भी दो। हे देवि ! जिस प्रकार चारों वेद, सभी शास्त्र, गीत, नृत्य आदि संसार की सभी कलाएँ आप के विना नहीं रह सकतीं उसी प्रकार इन सब वस्तुओं की सिद्धि हमें भी मिले। सरस्वति ! आप अपनी लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुत्रि, गौरी, तुष्टि, प्रभा, और मति—इन आठ संमूर्तियों (शरीरों) से मेरी सर्वदा रक्षा करो।' इस प्रकार वीणा, पाश, तथा मणि को धारण करने वाली कमण्डलु तथा पुस्तक से सुशोभित गायत्री देवी की श्वेत रंग के पुष्प तथा अक्षतों द्वारा विधिपूर्वक पूजा कर के मौन व्रत धारण कर धर्मात्मा पुरुष को चाहिये कि वह सायंकाल और प्रातःकाल भोजन करे। प्रत्येक पक्ष में पञ्चमी तिथि को ब्रह्मवासिनी सरस्वती देवी की पूजा करनी चाहिये और सेर भर चावल, जो घृत पूर्ण पात्र से युक्त हो, सुवर्ण तथा दुग्ध का दान देना चाहिये। उस समय कहे—'गायत्री देवी प्रसन्न हों।' इन सभी व्रत के विधानों को करते हुए मौन व्रत धारण करना चाहिये, बीच में भोजन नहीं करना चाहिये, जब तक कि तेरह महीने व्यतीत न हो जायँ। व्रत की समाप्ति हो जाने पर श्वेत चावलों का भोजन करे, किन्तु भोजन करने के पूर्व ब्राह्मण को दो वस्त्रों के समेत भोजन का दान देना चाहिये। देवी के लिए एक चँदोवा, घण्टा, चाँदी के बने हुए दो नेत्र, दूध देने वाली गाय, चन्दन, जोड़ा वस्त्र तथा शिर का कोई आभूषण देना चाहिये। उसी प्रकार उपदेश करने वाले गुरु की भी कृपणता छोड़कर वस्त्र, माला तथा चन्दनादि सामग्रियों द्वारा पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार ऊपर कही गई विधि से जो कोई इस सरस्वती के व्रत का अनुष्ठान करता है वह विद्यावान्, धनी तथा लाल कण्ठवाला (सुन्दुर कण्ठयुक्त अर्थात् मृदुभाषी) होता है और सरस्वती देवी के प्रसाद से ब्रह्म लोक में पूजित होता है। जो कोई स्त्री इसका अनुष्ठान करती है वह भी उक्त फल को प्राप्त करती है। हे राजन् ! वह स्त्री ब्रह्म लोक में तीस सहस्र कल्प पर्यन्त निवास करती है। जो कोई मनुष्य सरस्वती के व्रत के इस विधान

का पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, वह भी विद्याधर के लोक में तीस सहस्र कल्प पर्यन्त निवास करता है। ॥३—१८॥

श्री मात्स्य महापुराण में सारस्वत व्रत माहात्म्य वर्णन नामक छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥६६॥

सरसठवाँ अध्याय

मनु ने पूछा—हे द्रव्य तथा मंत्रों के विधान को जाननेवाले! सूर्य तथा चन्द्रमा के ग्रहण के अवसर पर किस प्रकार स्नान किया जाता है? उसे हम सुनना चाहते हैं ॥१॥

मत्स्य ने कहा—जिस पुरुष की राशि पर ग्रहण का योग होता है, उसके लिए औषधि तथा मंत्रों के विधानों समेत स्नान करने की विधि बतला रहा हूँ। चन्द्रमा के ग्रहण के अवसर पर प्रथमतः ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन करा के चार ब्राह्मणों की वस्त्र, माला तथा चन्दनादि पूजा की सामग्रियों द्वारा विधिपूर्वक पूजा कर के, ग्रहण लगने के पूर्व ही औषधियों को लेकर चार विना टूटे हुए कलशों की समुद्र की कल्पना कर स्थापना करे। फिर हाथी, घोड़े, सड़क, बिल, संगम (नदी के संगम) तालाब, गौओं के ठहरने के स्थान, और राजा के द्वार देश से मिट्टी लाकर उनमें छोड़े। इनके अतिरिक्त उनमें पंचगव्य, शुद्ध मोतियाँ, गोरोचन, कमल, शंख, जो पाँच प्रकार के रत्नों से युक्त हों, स्फटिक, श्वेत रंग के चन्दन, तीर्थ का जल, सरसों, कुमुद (कुईं) के समेत राजदन्त (एक औषधि विशेष) उशीर और गूगल भी छोड़े। इन सभी औषधियों को कलशों में छोड़ कर देवताओं का आवाहन करे। (फिर प्रार्थना करे) 'यज्ञ करने वाले मनुष्य के पापों को नाश करने वालें सभी समुद्र, नदियाँ, तीर्थ, बादल तथा नद—ये सब हमारे इन कलशों में आवें। जो यह वज्र धारण करने वाले बारह आदित्यों के प्रभु माने गये हैं, वे सहस्र नयनों वाले इन्द्र भगवान् ग्रहों की पीड़ा का नाश करें। जो सभी देवताओं के मुख रूप, अमित कान्ति धारण करने वाले अग्नि देव हैं, वे चन्द्रमा के ग्रहण से उठने वाली हमारी पीड़ा का विनाश करें। जो जीवों के सभी प्रकार के प्रकट तथा गुप्त कर्मों के साक्षी हैं, ऐसे महिषवाहन धर्मराज (यम) देव ग्रहण से उठने वाली हमारी कठोर पीड़ा का विनाश करें। जो सभी राक्षसों के गणों के स्वामी, साक्षात् प्रलय की भीषण अग्नि के समान भयानक खड्ग धारण करनेवाले तथा स्वरूप से भी अतिशय भयानक हैं, वे (नैर्ऋति) हमारी राक्षसों द्वारा उत्पन्न होने वाली पीड़ा को दूर करें। नाग पाश धारण करने वाले साक्षात् मकरवाहन, जो जलाधिपति वरुण देव हैं, वे चन्द्रग्रहण जनित हमारी पीड़ा का विनाश करें। जो प्राण रूप होकर जगत् के सभी जीवों की पालना करते हैं, ऐसे कृष्णमृग के प्रिय वायु देव इस लोक में चन्द्रग्रहण के कारण उत्पन्न होनेवाली हमारी पीड़ा को नष्ट करें। जो यह कोषाध्यक्ष, खड्ग, शूल तथा गदा के धारण करने वाले कुबेर देव हैं, वे चन्द्रग्रहण से उत्पन्न होने वाले हमारे विकारों को विनष्ट करें। जो यह चन्द्रमा को धारण करने वाले पिनाकी वृषवाहन शंकर देव हैं, वे चन्द्रग्रहण से उत्पन्न होने वाली

हमारी पीड़ा का विनाश करें। इन तीनों लोकों में जितने चर अचर जीव निकाय हैं, वे सभी ब्रह्मा विष्णु तथा सूर्य से युक्त होकर हमारे पापों को जला दें।' इस प्रकार देवों को आमंत्रित कर उन्हीं कुम्भों के जलों से अभिषिक्त यजमान ऋक् यजु और साम—इन तीनों वेदों के मंत्रों का उच्चारण करते हुए श्वेत रंग की माला तथा चन्दनादि पूजा की सामग्रियों द्वारा, वस्त्र तथा गौ आदि का दान देकर इष्ट देवता और ब्राह्मणों की पूजा करे। फिर करवे के समेत पाँच प्रकार के रत्नों के चित्रों के साथ इन्हीं पूर्वोक्त मंत्रों को वस्त्र के सिंहासन अथवा पद्म पर लिखे। फिर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों को चाहिये कि वे यजमान के शिर पर उसको स्थापित कर दें। तदुपरान्त यजमान ग्रहण की बेला को कहीं छिपकर बितावे। उस समय पूर्वाभिमुख हो इष्ट देवताओं को नमस्कार करते हुए पूजा करके चन्द्रग्रहण के बीत जाने पर गोदान तथा मंगल विधान कर उक्त आसन को, स्नान से निवृत्त होने वाले ब्राह्मण को निवेदित करे। इस प्रकार ऊपर कहे गए विधि विधानों का पालन करते हुए जो कोई पुरुष ग्रहण पर स्नान करता है, उसे कभी ग्रह पीड़ा नहीं सताती और न उसके बन्धुवर्ग का कभी विनाश ही होता है। इसके प्रभाव से वह उस परम सिद्धि को प्राप्त करता है, जिसे प्राप्त कर संसार में पुनरागमन दुर्लभ हो जाता है। इसी प्रकार सूर्यग्रहण के अवसर पर मंत्रों में सूर्य का नाम लेना चाहिये। सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण—दोनों के अवसर पर निशापति चन्द्रमा के लिए अधिक संख्या में पद्मराग मणि और एक सुन्दर कपिला गौ देनी चाहिये। जो कोई मनुष्य इस विधान को सुनता है, अथवा सुनाता है, वह सम्पूर्ण पापों से रहित होकर इन्द्र के लोक में पूजित होता है। ॥२-२५॥

श्री मात्स्य महापुराण में चन्द्रसूर्य-ग्रहण-स्नान विधि एवं माहात्म्य वर्णन नामक सरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६७॥

अरसठवाँ अध्याय

नारद ने कहा—आकस्मिक आपत्ति आ जाने तथा चित्त के व्याकुल हो जाने पर मनुष्य को किस व्रत का पालन करना चाहिये? किस श्रेष्ठ व्रत के द्वारा विपत्ति एवं दारिद्र्य का विनाश होता है? जिस स्त्री के प्रिय बच्चों की मृत्यु हो जाती है उसके अभिषेकादि कार्यों में कौन-सा व्रत करना चाहिये? ॥१॥

श्री भगवान् ने कहा—तपोधन! पूर्व जन्म में किया हुआ पाप इस जन्म में रोग, दारिद्र्य आदि दुर्गति तथा प्रिय जन की मृत्यु के रूप में फलित होता है। इन सब विपत्तियों के विनाशार्थ सदा कल्याण करनेवाले मनुष्यों की सारी पीड़ाओं को दूर करने वाले सप्तमीस्नपन नामक व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। उस व्रत को आप से बतला रहा हूँ। जिस स्थान पर दूध पीने वाले छोटे-छोटे बच्चों की मृत्यु होती देखी जाती है, वृद्ध तथा आतुर मनुष्यों की तथा यौवनावस्था में वर्तमान युवकों की मृत्यु देखी जाती है, वहीं के लिए उक्त उपद्रवों के शान्त्यर्थ इस मृत्वत्साभिषेचन को मैं बतला रहा हूँ, यही आकस्मिक विपत्ति, व्याकुलता तथा चित्त के भ्रम को विनाश करने वाला श्रेष्ठ व्रत है। ॥२-५॥

तपोधन! भविष्यत्काल में जब वाराह नामक कल्प होगा उसी समय सर्वश्रेष्ठ वैवस्वत मनु उत्पन्न

होंगे। उसी कल्प में जब पच्चीसवें सतयुग का प्रारम्भ होगा तब हैहय वंश का विस्तार करने वाला, प्रतापशाली कृतवीर्य नामक वीर राजा उत्पन्न होगा। हे नारद! वह प्रतापी राजा सातों द्वीपों समेत इस निखिल भूमण्डल की सतहत्तर सहस्र वर्षों तक पालना करेगा। च्यवन ऋषि के शाप के कारण उस राजा के सौ पुत्र उत्पन्न होते ही विनाश को प्राप्त हो जावेंगे। नारद जी! इस प्रकार जब उस राजा को मृगों के समान सुन्दर नेत्रों वाला राजाओं के सभी लक्षणों से सम्पन्न श्रीमान् सहस्रबाहु पुत्र रूप में उत्पन्न होगा तब राजा कृतवीर्य सहस्र किरणों वाले भगवान् भास्कर की उपवास, व्रत तथा दिव्य वेद सूक्तों द्वारा आराधना कर पुत्र की पर्याप्त दीर्घायु के लिए इस विशेष स्नान का विधान करेगा। कृतवीर्य द्वारा पूछे जाने पर भगवान् भास्कर सम्पूर्ण दोषों को शान्त तथा पापों को विनष्ट करने वाले इस श्रेष्ठ व्रत का विधान उससे इस प्रकार बतलायेंगे। ॥६-१२॥

सूर्य ने कहा—नराधिप! आपको बहुत कष्ट मिला। आपका यह पुत्र दीर्घजीवी होगा; किन्तु इसके लिए हम आपको संसार के मनुष्यों के कल्याणार्थ पापों को नष्ट करनेवाले सप्तमीस्नपन नामक व्रत को बतला रहे हैं। नारद! जिस स्त्री के बच्चे मरते हों, उसके जब पुत्र उत्पन्न हो तो उसके सातवें महीने पर अथवा किसी शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को यह सब विधान प्रशंसित माना गया है। उक्त अवसर पर ग्रह तथा तारा बल का विचार करके ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन करा के इन सब विधानों को करना चाहिये; परन्तु बालक का जन्म नक्षत्र यदि उक्त तिथि को पड़ रहा हो तो बुद्धिमान पुरुष उक्त तिथि को छोड़ दे। इसी प्रकार वृद्ध तथा रोगी अथवा अन्य दूसरे प्राणियों के लिए भी विचार कर लेना चाहिये। इस प्रकार उक्त तिथि को गोबर द्वारा लीपी हुई पृथ्वी पर विधानकर्त्ता एकाग्नि उपासक की भाँति लाल साठी के चावलों तथा गाय के दूध के समेत चरु (हवनीय पदार्थ) को सूर्य तथा शिव को मंत्रों द्वारा प्रदान करे। नारद जी! प्रथमतः सूर्य देवता के लिए कही गई सात ऋचाओं का कीर्त्तन कर सात घी की आहुति करे, उसी प्रकार शिव के लिए भी। इस व्रत में मँदार तथा पलाश की समिधाओं द्वारा हवन करना चाहिये। इसमें जव तथा काले तिल द्वारा एक सौ आठ बार आहुति देनी चाहिये। फिर उसी प्रकार घृत से व्याहृतियों (भूः भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्यम्—ये सात व्याहृतियाँ कही जाती हैं) का उच्चारण कर एक सौ आठ बार हवन करे। हवन करके पुनः बुद्धिमान् पुरुष स्नान करे, इससे अधिक मंगल की प्राप्ति होती है। फिर हाथ में कुश लिए हुए वेदों के विद्वान् ब्राह्मण द्वारा सूर्य की सात ऋचाओं के उच्चारण से अभिमंत्रित एक विना टूटे हुए कलश की स्थापना करे, वह कलश तीर्थों के जल से पूर्ण हो तथा पंचरत्न से युक्त हो। इसी प्रकार अन्यान्य कलशों की स्थापना भी की जानी चाहिये, जो सब के सब सम्पूर्ण मांगलिक औषधियों तथा पंचगव्य से युक्त हों। वे भी पंचरत्न, फल तथा पुष्प से युक्त हों, वस्त्रों से चारों ओर लपेटे गये हों। हाथी, घोड़ा, सड़क, बिल, संगम, तालाब और गौओं के ठहरने की जगह से शुद्ध मिट्टी लाकर उन सभी कलशों में छोड़नी चाहिये। रत्न संयुक्त चार कलशों के मध्य भाग में स्थित एक कलश को पकड़कर ब्राह्मण सूर्य के मंत्रों का उच्चारण करे और तब सात ऐसी स्त्रियों द्वारा, जिनमें से कोई हीन अंगोंवाली अथवा कुरूपा न हों,

यथाशक्ति माला, वस्त्र तथा आभूषणों से पूजित की गई हों, और जिनके साथ ब्राह्मण भी हों, उस मृतवत्सा (जिस स्त्री का बच्चा मरता हो) स्त्री का अभिषेक करवाना चाहिए। (अभिषेचन के मंत्र नीचे हैं।) 'यह बालक दीर्घजीवी हो, और यह सुन्दरी जीवित पुत्रों वाली हो, सूर्य, ग्रह तथा नक्षत्र मण्डलों के साथ चन्द्रमा, इन्द्र के समेत सभी लोकपालगण, ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये सब देववृन्द तथा अन्यान्य देववृन्द इस बालक की रक्षा करें। सूर्य, शनैश्चर अथवा अन्य जो कोई हवनीय पदार्थों के खानेवाले बालकों के ग्रह हों, वे सभी इस बालक को, इसकी माँ को तथा इसके पिता को कहीं भी पीड़ा न पहुँचावें।' इस प्रकार अभिषेचन हो जाने के उपरान्त वह मृतवत्सा स्त्री अपने कुमार तथा पति के साथ श्वेत रंग के वस्त्र पहिनकर उन सात स्त्रियों की भक्तिपूर्वक पूजा करे। फिर गुरु की पूजा करे। सुवर्ण की धर्मराज की मूर्ति बनवाकर और उसे ताँबे के पत्र पर रखकर गुरु को निवेदित करे। कृपणता छोड़कर वस्त्र, सुवर्ण तथा रत्नों के समूहों से तथा घृत और खीर के समेत अनेक सुन्दर सुस्वादु खाद्य पदार्थों से अन्यान्य ब्राह्मणों की भी पूजा करे। गुरु को चाहिये कि वह खाद्य पदार्थों को खाकर इन मंत्रों का उच्चारण करे। 'यह बालक सौ वर्ष की दीर्घायुवाला तथा सुखी हो। जो कुछ भी इस बालक का पूर्वजन्म कृत पाप हो, वह बडवानल में फेंक दिया गया। ब्रह्मा, शिव, वसु, स्कन्द, विष्णु, इन्द्र तथा अग्नि आदि सभी देववृन्द इस बालक की दुष्टों (ग्रहों, व्याधियों) द्वारा रक्षा करें और इसे सर्वदा वरदान देनेवाले हों।' इत्यादि आशीर्वादों का उच्चारण करते हुए गुरु की यजमान स्त्री को पूजा करनी चाहिये। गुरु के लिए उसे अपनी शक्ति के अनुकूल एक कपिला गाय देनी चाहिये और प्रणाम कर विदा करना चाहिये। तत्पश्चात् पुत्र के समेत सूर्य और शंकर को प्रणाम कर हवन करने से बचे हुये चरु (हवनीय पदार्थ) का स्वयं भक्षण करना चाहिये। आदित्य (सूर्य) को हमारा नमस्कार है—ऐसा उच्चारण कर प्रणाम करना चाहिये। यही विधान आकस्मिक विपत्ति, चित्त व्याकुलता तथा बुरे स्वप्नों के अनिष्ट को भी दूर करने के लिए कहा गया है। सर्वदा करनेवाले को, अपने जन्मदिन का नक्षत्र छोड़कर इस विधान को करना चाहिये। शुक्ल पक्ष की सप्तमी को शान्ति के लिये जो इस विधान को करता है वह कभी दुःखी नहीं होता। सर्वदा इस विधान के द्वारा मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है। इसी के प्रभाव से सहस्रबाहु ने दस सहस्र वर्षों तक इस पृथ्वी मण्डल का शासन किया। द्विजश्रेष्ठ! सूर्य भगवान् इस पुण्यप्रद, पवित्र, दीर्घायु प्रदान करने वाले सप्तमीस्नपन नामक व्रत का विधान बतला कर वहीं पर अन्तर्हित हो गये। मैंने इन सब उसी सर्वश्रेष्ठ सप्तमी स्नपन नामक, सभी दुष्ट ग्रहों को शान्त करने वाले, बालकों के विशेष हितकारी व्रत के विधान को तुम से बतलाया है। मनुष्य को आरोग्य की सूर्य से, धन की अग्नि से, ज्ञान की ईश्वर (महादेव जी) से और मोक्ष की जनार्दन (भगवान् विष्णु) से अभिलाषा करनी चाहिये। यह व्रत बहुत बड़े पापों का विनाशक, बालकों का वृद्धि कारक तथा अति कल्याणकर है, जो कोई अनन्यचित्त होकर इसके विधान को सुनता है, मुनि लोग कहते हैं कि उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है। ॥१३-४२॥

श्री मात्स्य महापुराण में सप्तमी व्रत माहात्म्य वर्णन नामक अरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥६८॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—प्राचीन काल में रथन्तर नामक कल्प के अवसर पर स्वयम् महात्मा ब्रह्मा ने मन्दराचल पर अवस्थित पिनाकधारी शिव से इस प्रकार पूछा। ॥१॥

ब्रह्मा ने कहा—देवताओं के स्वामिन्! देव! किस प्रकार थोड़ी ही तपस्या से मनुष्यों को आरोग्य तथा अनन्त ऐश्वर्य एवं मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है? महादेव! अधोक्षज! (जिसका स्वरूप इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता) आप के प्रसाद से कौन-सा व्रत अज्ञात है? इस मर्त्यलोक में थोड़ी ही तपस्या द्वारा महत्फल की प्राप्ति जिस व्रत से हो, उसको हमें बतलाइये। ॥२-३॥

मत्स्य ने कहा—ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर लोकभावन उमापति विश्वात्मा शंकर ने मन में प्रीति उत्पन्न करने वाली इस पुनीत कथा को इस प्रकार कहा। ॥४॥

ईश्वर ने कहा—इस तेईसवें रथन्तर नामक कल्प के व्यतीत हो जाने के उपरान्त जब फिर बाराह नामक कल्प होगा और उसमें वैवस्वत नामक कल्याणकर सातवें मन्वन्तर में अट्ठाईसवाँ द्वापर नामक युग आवेगा, तब उसकी समाप्ति के अवसर पर सातों लोकों के बनानेवाले महादेव वासुदेव जनार्दन विष्णु भगवान् संसार का भार दूर करने के लिए महर्षि द्वैपायन, रौहिणेय (बलराम) तथा केशव—इन तीन मूर्तियों में आविर्भूत होंगे। वही केशव भगवान् उस समय कंसादि महाबलवान् राक्षसों का विनाश कर संसार के दुःखों का अन्त करेंगे। उनकी पुरी का नाम द्वारावती होगा। इस समय वह कुशस्थली नाम से विख्यात है। जगत्पति शार्ङ्गधारी केशव के निमित्त हमारे आदेश से विश्वकर्मा उस श्रेष्ठ पुरी का निर्माण करेगा। वह श्रेष्ठ पुरी अनेक दिव्य विभूतियों से सुसम्पन्न होगी। उसी नगरी में भविष्यत्काल में एक बार कभी सभा में अमित कान्तिधारी कैटभासुर के शत्रु भगवान् विष्णु यदुवंशियों, राधा आदि सभी स्त्रियों, भूरि दक्षिणा देने वाले राजाओं, कुरुवंशियों, देवताओं तथा गन्धर्वों द्वारा चारों ओर से घिरे हुए सुशोभित होंगे। उसी समय अनेक धर्मसम्बन्धी पुरानी कथाओं के प्रसंग में कथा की समाप्ति पर भीमसेन द्वारा पूछे जाने पर प्रतापी भगवान् उन धर्मों को कहेंगे, जिन्हें आप ने मुझसे पूछा है। स्वयम् भगवान् ही उन रहस्यों को प्रकट करनेवाले भी होंगे। ब्रह्मा जी! इस पुनीत धर्म व्रत के प्रवर्त्तक तथा करने वाले भी उस समय में बलवान् पाण्डुपुत्र वृकोदर भीम ही होंगे। भीम के उदर में मेरे द्वारा प्रदत्त पर वृकनामक तीक्ष्ण अग्नि निवास करेगा, अतः उस धर्मात्मा का नाम वृकोदर पड़ेगा। वह श्रीमान् भीमसेन मतिमान्, स्वाभिमानी, शीलवान्, महान्, दस सहस्र हाथियों के समान बलवाला, कामदेव के समान सुन्दर तथा अजर (सर्वदा युवक) होगा। धर्मात्मा होकर भी उदर में तीक्ष्ण अग्नि के निवास के कारण अन्य उपवास व्रतों को करने में असमर्थ जान कर विश्वात्मा, जगत्स्वामी भगवान् वासुदेव इस व्रत को उसे बतलायेंगे। यह श्रेष्ठ व्रत निखिल यज्ञों का फल देने वाला, सम्पूर्ण पापों का विनाशक, समस्त दुष्टों (ग्रहों या शत्रुओं) को शान्त करने वाला, सभी देववृन्दों द्वारा पूजित, पवित्र से भी पवित्र,

मंगलों को भी मंगल देने वाला, भविष्य से भी अति भविष्य तथा प्राचीन से भी अति प्राचीन है। अर्थात् ऐसा कोई भी व्रत न तो भूतकाल में था और न भविष्य में होगा। ॥५-१८॥

वासुदेव ने कहा—महान् भरत कुल में उत्पन्न भीमसेन! यदि तुम अष्टमी, चतुर्दशी अथवा द्वादशी आदि तिथियों में अथवा अन्यान्य दिनों व नक्षत्रों में उपवास करने में असमर्थ हो तो इस सर्व पापों को दूर करनेवाली पुण्य तिथि को इस विधान द्वारा उपवास रख भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त करो। जब माघ महीने में शुक्लपक्ष की दशमी तिथि आवे तब शरीर में सर्वत्र घी लपेट कर तिलों द्वारा स्नान करना चाहिये। और उसी प्रकार पवित्रात्मा हो नारायण को नमस्कार है—ऐसा कह विष्णु भगवान् की विधिवत् पूजा करके कृष्ण को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों पैरों की, सर्वात्मा को नमस्कार है—ऐसा कह शिर की, श्रीवत्सधारी को नमस्कार है, वैकुण्ठ को नमस्कार है—ऐसा कह वैकुण्ठ (भगवान् विष्णु) के वक्षस्थल की, शंख धारण करनेवाले, गदा धारण करनेवाले, चक्र धारण करनेवाले तथा पद्म धारण करनेवाले को हमारा नमस्कार है—ऐसा कह नारायण की चारों बाहुओं की क्रमशः पूजा करनी चाहिये। दामोदर को नमस्कार है—ऐसा कह उदर की, पंचशर को नमस्कार है—ऐसा कह मेढ्र (लिंग) की, सौभाग्य नाथ को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों उरु प्रदेशों की, भूतधारी को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों जानुओं की, नील को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों जंघाओं की, विश्वस्रष्टा को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों पैरों की पूजा करे। देवी को नमस्कार है, शान्ति को नमस्कार है, लक्ष्मी को नमस्कार है, श्री को नमस्कार है, पुष्टि को नमस्कार है, तुष्टि को नमस्कार है, धृष्टि को नमस्कार है, हृष्टि को नमस्कार है, नमस्कार है। विहंगों के स्वामी, वायु के समान वेगवाले, विष (सर्पों) को व्याकुल करनेवाले पक्षी (गरुड़) को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहकर गरुड की नित्य पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार गोविन्द की विधिपूर्वक पूजा करके गन्ध, माला, धूप तथा अनेक प्रकार के उत्तम फलों द्वारा उमापति (शंकर) तथा गणेश की भी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् मौन होकर गाय के दूध वे पकाई हुई खिचड़ी को घी के साथ खाकर बुद्धिमान् पुरुष सौ पग चले। बरगद अथवा खदिर की दातून लेकर बुद्धिमान् पुरुष दाँतों को स्वच्छ करे और आचमन कर पूर्व वा उत्तर दिशा की ओर मुख करके सूर्यास्त हो जाने पर सायंकाल की संध्या करे और यह कहे—'नारायण! आपको हमारा नमस्कार है, मैं आपकी शरण में हूँ।' इस प्रकार एकादशी को निराहार रहकर भगवान् विष्णु की विधिवत् पूजा कर रात्रि भर उसी प्रकार स्थित रहे और प्रातःकाल जंल वा दुग्ध द्वारा स्नान कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा घी की आहुति दे कर प्रार्थना करे। 'हे पुण्डरीकाक्ष! यतात्मा होकर मैं श्रेष्ठ ब्राह्मणों के साथ द्वादशी को दुग्ध का भोजन करूँगा! आपकी कृपा से मेरा यह व्रत निर्विघ्न सम्पन्न हो।' ऐसा कहकर भूमि पर ही शयन करे और पुनः इतिहास और पवित्र कथायें सुने। राजन्! प्रातःकाल होने पर नदी तट पर जाकर मिट्टी लगाकर खूब स्नान करे और पवित्रात्मा होकर पाषण्डों को छोड़ दे तथा विधिपूर्वक सन्ध्या वन्दन कर पितरों को तर्पण दे। अनन्तर सातों लोकों के एकमात्र अधीश्वर भगवान् हृषीकेश को नमस्कार

कर बुद्धिमान् पुरुष अपने घर के सामने की ओर मण्डप की रचना करे। राजन्! मण्डप को दस वा आठ हाथ की बनानी चाहिये। शत्रुसूदन! उस मण्डप में चार हाथ प्रमाण की वेदी बनाये। चार हाथ के प्रमाण का उसमें तोरण लगाये। तत्पश्चात् कलश की स्थापना करके दिक्पालों की पूजा करे। फिर काले मृग चर्म पर अवस्थित होकर जल पूर्ण कलश के छिद्र द्वारा निकलती हुई जल की धारा को सारी रात शिर पर धारण करे, उसी प्रकार विष्णुभगवान् के शिर के ऊपर भी दुग्ध की धारा रात भर गिरावे। मण्डप में अरत्नि जितना बड़ा तीन मेखलाओं से सुशोभित एक कुण्ड बनाये। उसका मुख योनि के आकार का बनावे। उसी में ब्राह्मणों द्वारा विष्णु के मंत्रों का उच्चारण करा कर दुग्ध घृत तथा तिलों द्वारा एकाग्नि उपासक की भाँति हवन कर भली भाँति गाय के दूध से संयुक्त वैष्णव चरु का हवन करे और घृत की निष्पाव के आधे प्रमाण जितनी धारा अग्नि में गिरावे। हे महावीर! तदनन्तर तेरह जल कुम्भों की स्थापना करे, जो अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों से युक्त हों, श्वेत रंग के वस्त्रों से ढँके हुए हों, ताँबे के पात्रों से सुशोभित तथा पंचरत्न से युक्त हों। उस समय उत्तराभिमुख हो चार ऋग्वेदाध्यायी ब्राह्मणों द्वारा आहुति देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त यजुर्वेद जानने वाले चार ब्राह्मणों द्वारा रुद्र का जाप, चार सामवेदाध्यायी ब्राह्मणों द्वारा विष्णु का जाप करवाना चाहिये। चारों ओर अरिष्टों को शान्त करने के लिए मांगलिक पाठ करवाने चाहियें। इन बारह ब्राह्मणों की वस्त्र माला तथा चन्दन आदि पूजा की सामग्री, अँगूठी, कटक, सुवर्ण निर्मित सूत्र, सुन्दर वस्त्र, शय्या आदि से पूजा करनी चाहिये। उक्त कार्य में उपाध्याय (गुरु) को सभी वस्तुएँ द्विगुणित देनी चाहिये। धन की कृपणता नहीं करनी चाहिये। हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ भीमसेन! इसी प्रकार मांगलिक गीत वाद्यादि करा कर रात बिता कर पवित्र प्रातःकाल होने पर उठकर तेरह सुवर्ण द्वारा मुख प्रान्त पर अलंकृत, दूध देने वाली, शीलवती (सीधी) गौयें तेरह काँसे के दोहन पात्रों से युक्त दान देनी चाहियें। उन गौओं की खुरी चाँदी द्वारा मढ़ी गई हो, वस्त्र युक्त हों, चन्दन द्वारा अभिसिंचित की गई हों। फिर उन सभी ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक खाद्य तथा भोज्य पदार्थों से तथा अनेक प्रकार के अन्नों से खूब सन्तुष्ट करके स्वयं विना क्षार नमक का भोजन कर बिदा करे। उन ब्राह्मणों के पीछे अपनी स्त्री तथा पुत्र समेत आठ पग चल कर यह प्रार्थना करे—'मेरे इस व्रत में देवाधिदेव क्लेशनाशक भगवान् केशव प्रसन्न हों। जिस प्रकार शिव के हृदय में विष्णु और विष्णु के हृदय में शिव निवास करते हैं, जिस प्रकार मैं इनमें किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं देखता हूँ, उसी प्रकार मेरी आयु का कल्याण हो।' ऐसा कह कर उन कलशों को गौओं तथा शयन, आसन आदि सभी वस्तुओं को, बुद्धिमान् पुरुष उन ब्राह्मणों के घर पर स्वयमेव पहुँचा दे। यदि बहुतेरी शय्याओं का अभाव हो तो एक खूब सुसज्जित तथा सभी सामग्रियों से युक्त शय्या ब्राह्मण को अवश्य देनी चाहिये। नरशार्दूल! जो विपुल सम्पत्ति की इच्छा करे उसे चाहिये कि वह दिन इतिहास तथा पुराण आदि धार्मिक कथाओं को बाँच कर वा सुनकर बितावे। इसलिए भीमसेन! तुम भी पराक्रम कर मत्सर एवं क्रोध आदि से रहित हो इस उत्तम व्रत का भली भाँति अनुष्ठान करो, तुम्हारे स्नेह के कारण ही मैंने इसे बतलाया है। वीर!

तुम्हारे कर लेने के बाद यह व्रत तुम्हारे ही नाम से विख्यात होगा। जो कल्याणिनी द्वादशी नाम से प्राचीन कल्पों में प्रसिद्ध थी, वह अब सभी पापों को दूर करने वाली तुम्हारे नाम पर भीमद्वादशी नाम से प्रसिद्ध होगी। हे महावीरों में श्रेष्ठ! इस सूकर नामक कल्प में उक्त द्वादशी व्रत के शुभ आदि कर्त्ता बनो, जिसके स्मरण तथा कीर्त्तन मात्र से सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो जाते हैं और करने वाला देवताओं का अधिपति होता है। इस श्रेष्ठ द्वादशी व्रत को पूर्व जन्म में एक अहीर कुल में उत्पन्न होने वाली कन्या ने अति कुतूहल वश करके अप्सराओं के प्रधान पद को प्राप्त किया था, वह इस समय स्वर्ग लोक में उर्वशी के नाम से विख्यात है। वैश्यकुल में उत्पन्न एक दूसरी कन्या ने इसका अनुष्ठान कर पुलोम की कन्या हो कर देवराज इन्द्र की पत्नी के पद को प्राप्त किया। वह वैश्य कन्या जो इस पुण्य उत्सव में परिचारिका थी, इस जन्म में मेरी प्रिय पत्नी सत्यभामा है। इस कल्याणमयी तिथि में अपनी सहस्र धाराओं द्वारा प्रभासमान सहस्र किरणों वाले भगवान् भास्कर ने प्राचीन काल में स्नान किया था, जिसके प्रभाव से इस विस्तृत भानुमण्डल तथा वेद शक्ति सम्पन्न शरीर को उन्होंने प्राप्त किया। इसी श्रेष्ठ व्रत को महेन्द्र प्रमुख वसुओं तथा अन्यान्य देवताओं और राक्षसों ने भी किया था। इसके श्रेष्ठ फल को यदि हमारे मुख में करोड़ों जिह्वाएँ हों, तब भी नहीं कह सकता। इस प्रकार कलियुग के पापों को दूर करने वाली अनन्त द्वादशी के माहात्म्य को यादवेन्द्र वसुदेव के पुत्र भगवान् कृष्णचन्द्र भीमसेन से स्वयमेव कहेंगे। इस मर्त्यलोक में जो कोई इसका अनुष्ठान करता है, वह इसके पुण्य से अपने नरक में गिरे हुए समस्त पितरों को तारता है। चतुरानन! जो कोई मनुष्य भक्तिपूर्वक इस अघों को नाश करने वाली तिथि के विधान को सुनता है अथवा दूसरों के उपकारार्थ पाठ करता है, वह नरश्रेष्ठ सब प्रकार के मनोरथों को प्राप्त कर तुम्हारी समकक्षता प्राप्त करता है। निष्पाप! जो द्वादशी माघ महीने में प्राचीन काल में कल्याणिनी नाम से पूजित होती थी, वही पाण्डुपुत्र भीमसेन द्वारा करने के उपरान्त अनन्त पुण्य देने वाली भीमद्वादशी के नाम से विख्यात होगी। ॥१९–६५॥

श्री मात्स्य महापुराण में भीमद्वादशी व्रत माहात्म्य वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥६९॥

सत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्मा ने कहा—भगवन्! पुराणों में मैं वर्णाश्रम धर्म मानने वालों के सदाचार तथा धर्मशास्त्रादि के सिद्धान्तों को सुन चुका हूँ, अब वेश्याओं अथवा उन निम्न कोटि की स्त्रियों का, जिन्हें द्रव्य द्वारा खरीदा जा सकता है, सदाचार यथार्थतः सुनना चाहता हूँ। ॥१॥

ईश्वर ने कहा—कमल से उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मन्! उसी द्वापर युग में भगवान् वासुदेव कृष्ण की सोलह सहस्र स्त्रियाँ होंगी। एक बार वसन्त ऋतु के समय में कोकिल और भ्रमरों के समूहों से गुञ्जायमान एक सुन्दर तालाब के किनारे, जिसमें श्वेत रंग के कमल खिले हुए होंगे और सुगन्धित हवा बह रही होगी, वे सभी सखियाँ आपस में गोष्ठी (बात-चीत) सुख के अनुभव में लीन होंगी। उसी समय आभूषणों से

अलंकृत, मृग के समान सुन्दर नेत्रों वाले, मालती के पुष्पों से शिर को सुशोभित किये, शत्रुओं के नगरों को जीतनेवाले, साक्षात् कामदेव की भाँति परम रूपवान् श्रीमान् साम्ब तालाब के समीप वाले मार्ग से जाते हुए कामदेव के बाण से तप्त उन स्त्रियों द्वारा उत्सुक नेत्रों से देखे जायँगे। साम्ब के सुन्दर रूप पर आकर्षित उन सभी स्त्रियों के मन में इस प्रकार जब काम की वृद्धि हो जायगी तब जगत्स्वामी भगवान् कृष्ण अपने ज्ञान चक्षु से उन्हें इस प्रकार काम वश देख कर यह शाप दे देंगे कि —'मेरे परोक्ष में तुम लोगों ने काम लोलुप हो कर ऐसा पाप पूर्ण एवं अधर्ममय कार्य किया है, अतः तुम सब को चोर हर ले जायँगे।' शाप से अति दुःखित उन गोपियों द्वारा प्रसन्न किये गये भूतभावन अनन्तात्मा ब्राह्मणों के प्रेमी शार्ङ्गधारी भगवान् वासुदेव भविष्य में कल्याण करने वाले और समुद्र से उन स्त्रियों की दासता छुड़ाने वाले उपदेशों को उन्हें देंगे। 'दाल्भ्य नामक ऋषि जिस पुनीत व्रत का उपदेश तुम लोगों को करेंगे, वही व्रत दासता में भी तुम लोगों का उद्धारक होगा।' ऐसा कह द्वारकाधीश भगवान् उन लोगों का आलिंगन कर वहाँ से चले जायँगे।' ॥२-१०॥

इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो जाने के उपरान्त दुष्टों का संहार कर संसार का भार हटा चुकने पर जब भगवान् केशव स्वर्ग लोक को प्रस्थित हो जायँगे और मूसलोत्पत्ति से समस्त यदुवंशियों का विनाश हो जायगा तब यदुवंशियों से विहीन वे कृष्ण की पत्नियाँ दासों द्वारा समुद्र में हर ली जायँगी। रक्षा कार्य में नियुक्त वीरवर अर्जुन भी उस अवसर पर पराजित हो जाँयगे। इस प्रकार वे कृष्ण की स्त्रियाँ उन्हीं दासों की स्त्रियाँ बन जायँगीं और दास गण उनके साथ सम्भोग करेंगे। ब्रह्माजी! इस प्रकार दासों के घर में शोक तथा दुर्दशा से ग्रस्त होकर वे एक समय बैठी रहेंगी उसी समय महा तपस्वी योगात्मा दाल्भ्य नामक ऋषि वहाँ पर आवेंगे। ऋषि का बारम्बार प्रणाम कर अर्घ्य से सम्मानित कर अनुताप करती हुई वे कृष्ण स्त्रियाँ बहुत विलाप करेंगी। उस समय वे जगत्स्वामी अनन्त अपराजित अपने पूज्य पति भगवान् कृष्णचन्द्र का, द्वारका पुरी की विपुल सुख सामग्री का, दिव्य माला चन्दनादि शृंगार सामग्रियों का, अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित सुन्दर भवनों का, दिव्य द्वारकापुरी का, एवं देवताओं के समान सुन्दर अपने बच्चों तथा द्वारका निवासियों का स्मरण कर हाय-हाय करने लगेंगी और मुनि के सम्मुख उपस्थित हो कर इस प्रकार सामूहिक रूप में यह प्रश्न करेंगी। ॥११-१६॥

स्त्रियों ने कहा—'भगवन्! चोरों ने बलपूर्वक हम सबों का अपहरण कर लिया है, उन नीचों ने हमारे साथ सम्भोग भी कर लिया है। ऐसी स्वधर्म से पतित हम अभागिनों के आप शरणदाता हों। ब्राह्मणदेव! प्राचीन काल में परम बुद्धिमान् भगवान् केशव ने इस कार्य के लिए हम लोगों को आप ही की शरण में जाने की आज्ञा दी थी। तपोधन! किस घोर पाप कर्म के कारण हम एक बार परमात्मा कृष्ण का संयोग प्राप्त कर आज वेश्या धर्म में गिर गई? हम वेश्याओं के लिए इस स्थिति में जो धर्म कहे गये हों, उन्हें हम लोगों को बतलाइये।' इस प्रकार गोपियों द्वारा पूछे जाने पर चैकितायन दाल्भ्य ऋषि उन सबों से कहेंगे। ॥१७-१६॥

दाल्भ्य ने कहा—गोपियो ! प्राचीन काल में आप सभी अप्सरा थीं और सब की सब अग्नि की पुत्री थीं। एक बार मानससरोवर में जब आप सभी जलक्रीड़ा कर रही थीं तो आप लोगों के पास देवर्षि नारद जी पहुँचे। उस समय योगविद् नारद को आप सबों ने प्रणाम नहीं किया प्रत्युत गर्वपूर्वक उनसे पूछा—नारद जी ! किस प्रकार भगवान् विष्णु हम सब के पति हो सकेंगे—इसका हमें उपदेश दीजिए। प्राचीनकाल का वह वरदान आप लोगों के लिए अभिशाप बन गया। नारद ने कहा था—'चैत्र और वैशाख महीने में शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को सुवर्ण की सामग्रियों के दान देने से निश्चय ही अन्य जन्म में आप सब के पति भगवान विष्णु होंगे। किन्तु आप लोगों ने अपने सौन्दर्य और सौभाग्य के घमंड में आकर मुझसे विना प्रणाम किये ही यह प्रश्न किया है, सो उसके कारण शीघ्र ही भगवान् से आप सब का वियोग भी हो जायगा। और चोरों द्वारा हरी जाकर आप सभी वेश्याधर्म को प्राप्त करेंगी।' इस प्रकार काम द्वारा मोहित आप सभी नारद और स्वयम् परम बुद्धिमान् भगवान् कृष्ण के अभिशापों के कारण सम्प्रति वेश्यावृत्ति में आकर फँसी हैं। वारांगनाओं ! इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये। ॥२०-२५॥

दाल्भ्य ने कहा—प्राचीनकाल में होनेवाले सैकड़ों देवासुर संग्राम में देवताओं द्वारा अवसर-अवसर पर मारे गये दानव, असुर तथा राक्षस आदि की सैकड़ों, सहस्रों स्त्रियों से—जिन्हें दूसरे-दूसरे लोगों ने व्याह लिया था अथवा जिन्हें बलपूर्वक दूसरों ने उपभुक्त कर लिया था—बोलनेवालों में सर्वश्रेष्ठ देवेश इन्द्र ने कहा। ॥२६–२७॥

इन्द्र ने कहा—भक्तिमती सुन्दरियो ! अब से तुम लोग वेश्यावृत्ति स्वीकार कर राजधानी अथवा देवमन्दिर आदि सभी स्थलों में निवास करो। राजा लोग तुम्हारे पति के समान हैं और उनके पुत्र भी पति के समान हैं। उनके साथ इस प्रकार के व्यवहार से तुम सब का कल्याण होगा। जो कोई पुरुष अपनी शक्ति के अनुकूल शुल्क लेकर तुम लोगों के घर जाय, उसकी सदा सेवा करना, चाहे वह दरिद्र ही क्यों न हो, किन्तु दम्भी पुरुषों को छोड़कर। हे सुन्दरियो ! देवताओं अथवा पितरों के पुण्यप्रद दिनों के आने पर अपनी शक्ति के अनुकूल गौ, पृथ्वी, सुवर्ण तथा अन्न आदि सामग्रियों का दान करना तथा ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन करना। इसके अतिरिक्त जो कुछ दूसरे व्रत आदि हैं उनका भी मैं उपदेश कर रहा हूँ। तुम सब विना किसी विकल्प के उनका पालन करना। वे व्रत तुम लोगों को संसार सागर से उद्धार करने में पर्याप्त सहायक होंगे, इन्हें केवल वेदों के जाननेवाले लोग ही जानते हैं। जब सूर्य के दिन हस्त, पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र पड़े तो सभी स्नान योग्य औषधियों द्वारा वार स्त्री भलीभाँति स्नान करे। ऐसा करने से वह पंचशर कामदेव की अधिक समीपता प्राप्त करती है। उस दिन कामदेव का अनुकीर्त्तन करते हुए उसे पुण्डरीकाक्ष भगवान् की विधिवत् पूजा करनी चाहिये। काम को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों पैरों की पूजा करके, मोहकारी को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों जंघाओं की पूजा करनी चाहिये। कन्दर्पनिधि को नमस्कार है—ऐसा कह लिंग की, प्रीतिमान् को

नमस्कार है—ऐसा कह कटि प्रदेश की, सौख्यसमुद्र को नमस्कार—ऐसा कह नाभि की, वाम को नमस्कार है—ऐसा कह उदर की, हृदयेश को नमस्कार है—ऐसा कह हृदय की, आह्लादकारी को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों स्तनों की, उत्कण्ठ को नमस्कार है, ऐसा कह वैकुण्ठ के वक्ष की, आनन्दकारी को नमस्कार है—ऐसा कह मुख की, पुष्पचाप को नमस्कार है—ऐसा कह बाएँ अंग की, पुष्पबाण को नमस्कार है—ऐसा कह दाहिने अंग की, मानस को नमस्कार है—ऐसा कह मौलि प्रदेश की, विलोल को नमस्कार है—ऐसा कह केशों तथा सर्वात्मा को नमस्कार है—ऐसा कह देवाधिदेव के सभी अंगों की पूजा करनी चाहिये। पाश और अंकुश धारण करनेवाले पीतवस्त्र से सुशोभित शंख चक्र तथा गदा से संयुक्त शान्तात्मा शिव को नमस्कार है। कामदेव स्वरूप भगवान् विष्णु को नमस्कार है, सर्वशक्तिमान् को नमस्कार है, प्रीति को नमस्कार है, रति को नमस्कार है, श्री को नमस्कार है, पुष्टि को नमस्कार है, तुष्टि को नमस्कार है, सभी प्रकार के अर्थ तथा सम्पत्तियों को नमस्कार है। इस प्रकार नमस्कार कर कामिनी अनंग स्वरूप देवाधिदेव भगवान् की सुगंधित द्रव्य, माला, धूप, नैवेद्य आदि पूजा की सामग्रियों द्वारा विधिवत् पूजन करे। तपश्चात् वेदपारगामी विद्वान् ब्राह्मण को बुलाकर, जिसका कोई अंग विकृत न हो, गन्ध, पुष्प तथा अन्य पूजा की सामग्रियों द्वारा पूजित कर शाली के एक सेर चावल को घृत पात्र से युक्त करके दान देना चाहिये और उस समय यह कहना चाहिये—'माधव प्रसन्न हों'। तदनन्तर ब्राह्मण को यथेप्सित आहार कराकर 'रति के लिए यह कामदेव के समान हैं'—ऐसा अपने चित्त में विचार कर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण की सभी इच्छाओं को वह विलासिनी पूर्ण करे और हास्य युक्त मीठे वचन बोलते हुए उसके लिए अनन्य भाव से अपने को समर्पित कर दे। इस प्रकार रविवार से प्रारम्भ करके इन सब विधानों को समाप्त करना चाहिये। सेर भर चावल का दान तो तेरह महीने तक बराबर देते रहना चाहिये। तेरहवाँ महीना आने पर भामिनी को चाहिये कि उक्त ब्राह्मण के लिए सभी प्रकार की सामग्रियों से सुशोभित एक विलक्षण शैय्या दान करे, जिस पर तकिया तथा गद्दे और ऊपर बिछाने के चादर तथा आवरण भी हों। उसी शय्या के साथ प्रदीप, जूता, छाता, खड़ाऊँ तथा बैठने के आसन भी हों। पत्नी के समेत उक्त ब्राह्मण को सुवर्ण के सूत्र, अँगूठी, बाजूबन्द आदि आभूषणों, सूक्ष्म वस्त्रों, तथा धूप, माला, चन्दनादि सामग्रियों से विधिवत् अलंकृत करके गुड़ के घड़े के ऊपर ताँबे के पात्र के आसन पर सुवर्णनिर्मित नेत्र पट से ढँके हुए पत्नी के समेत कामदेव की मूर्ति को भी दान दे। मूर्ति काँसे के पात्र, भोजन तथा इक्षुदण्ड से संयुक्त हो। निम्न मंत्र का उच्चारण करते हुए उसका दान देना चाहिये और एक दूध देनेवाली गाय भी उसी समय दान करनी चाहिये। 'हे विष्णु भगवान् जिस प्रकार मैं कामदेव तथा केशव में सर्वदा अन्तर (भेद) नहीं देखती, उसी प्रकार सर्वदा मेरी भी सभी इच्छाएँ पूर्ण हों। केशव! जिस प्रकार आप के शरीर से लक्ष्मी अलग हो कर अन्यत्र कहीं नहीं जातीं उसी प्रकार देवेश प्रभो! अपने शरीर में मुझे भी आप सम्मिलित करें।' तत्पश्चात् सुवर्ण निर्मित कामदेव की प्रतिमा को ग्रहण करते समय उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को चाहिये कि 'क इदं…… कस्माऽदात्……' इत्यादि वैदिक मंत्र का उच्चारण करे। तत्पश्चात् प्रदक्षिणा करके श्रेष्ठ ब्राह्मण को बिदा

कर शय्या, आसन आदि दी गई सभी सामग्रियों को कामिनी उसके घर भिजवा दे। उसके बाद जब कोई ब्राह्मण रति के लिए रविवार के दिन घर पर आये तो उस समय उसकी भी आज्ञा माननी चाहिये और पर्याप्त आदर करना चाहिये। इस प्रकार से तेरह महीने तक श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यथेप्सित तृप्त करना चाहिये और उनके चले जाने पर अन्य लोगों का सेवन करना चाहिये। ब्राह्मण की आज्ञा से अन्य जो कोई रूपवान् पुरुष अतिथि रूप से घर पर आवे, उसकी भी—अपने कल्याण की जिस प्रकार कोई हानि न हो, कोई विघ्न न पड़े—सेवा करनी चाहिये। इस प्रकार दैव तथा मानव का अति प्रिय यह कर्म, जो गर्भ का संभूति करने वाला है, अनुरागपूर्वक करते हुए यथाशक्ति अट्ठावन बार इस व्रत का आचरण करना चाहिये। विशेष कर तुम लोगों के लाभ के लिए ही मैंने इस व्रत के विधान को बतलाया है। इसके सर्वदा पालन करने से मर्त्यलोक में वेश्याओं को अधर्म का दोष नहीं लगता। ॥२८-६१॥

प्राचीन काल में इन्द्र ने उन दानव पत्नियों के लिए जिस व्रत को बतलाया था उसी को मैं (दाल्भ्य) ने आप लोगों से कहा है, इस अवस्था में वे ही सब नियम आप लोगों के लिए भी उपकारक होंगे। गोपियो! कल्याणी वारस्त्रियों के समस्त पापों को दूर करने वाले अनन्त फल दायक इस नियम को मैंने आप लोगों से कहा है, इसका अवश्य पालन कीजिये। जो कोई सुन्दरी वेश्या इस व्रत का अखंड तथा अशेष (सम्पूर्ण विधियों समेत) रूप से पालन करती है वह माधव के वैकुण्ठ लोक में सुशोभित होती है और सम्पूर्ण देव वृन्दों द्वारा पूजित होकर विष्णु भगवान् के परमानन्द दायक पद को भी प्राप्त करती है। ॥६२-६३॥

श्री भगवान् ने कहा—इस प्रकार तपस्वी दाल्भ्य जी उस समय उन गोपियों को वारस्त्रियों के इस पुनीत व्रत का उपदेश कर के अपने स्थान को चले जायँगे और उनके जाने के पश्चात् वे सब गोपियाँ देवरथों द्वारा इस व्रत का अविकल रूप में अनुष्ठान करेंगी। ॥६४॥

श्री मात्स्य महापुराण में अनङ्गदान व्रत विधान एवं माहात्म्य वर्णन नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७०॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्मा ने कहा—सब के ऊपर कृपा करनेवाले देव! मोह (अज्ञान वा भ्रम) से अथवा मद (अहंकार) से जो कोई पुरुष किसी परकीय स्त्री के साथ समागम करता है, उसकी निष्कृति के लिए भी कोई उपाय बतलाइये। भगवन्! इस मर्त्यलोक में पुरुष को अथवा स्त्री को जिस उपाय से विरह, शोक, व्याधि, भय आदि न हों उस व्रत को भी हमें बतलाइये। ॥१-२॥

श्री भगवान् ने कहा—ब्रह्मा जी! श्रावण महीने की कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि को क्षीर सागर में भगवान् मधुसूदन केशव अपनी प्रियतमा लक्ष्मी के साथ निवास करते हैं अतः उक्त तिथि को सात सौ कल्प तक फल देनेवाले गौ, भूमि तथा सुवर्ण का दान देकर गोविन्द की विधिपूर्वक पूजा करके

मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त करता है। वह अशून्यशयन नामक द्वितीया कही जाती है, उसमें विधिपूर्वक इन मंत्रों द्वारा विष्णु भगवान् की पूजा करनी चाहिये।॥३-५॥

'श्रीवत्स को धारण करनेवाले, श्री के कान्त, श्री धामन्! श्रीपते! अव्यय! धर्म, अर्थ तथा काम को देनेवाली मेरी गृहस्थी आपकी कृपा से कभी नष्ट न हो। पुरुषों में श्रेष्ठ! मेरे घर से अग्नि अथवा इष्ट देवताओं का कभी अभाव न हो; मेरे पितरों का अभाव न हो, हमारे पति-पत्नी के मध्य में कभी वियोग न हो। देव! जिस प्रकार आप कभी लक्ष्मी से वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार हे देव! हमारा भी स्त्री-सम्बन्ध कभी खण्डित न हो। वरदान देनेवाले! जिस प्रकार आप लक्ष्मी से अशून्य (युक्त) शय्या पर शयन करते हैं, उसी प्रकार मधुसूदन! मेरी भी शय्या सर्वदा अशून्य रहे।' इस प्रकार प्रार्थना कर गायन, वाद्य तथा मांगलिक शब्दों के बीच देवाधिदेव का संकीर्तन करना चाहिये। जो सभी प्रकार के गायन वाद्य आदि का प्रबन्ध कराने में असमर्थ हो, उसे केवल घण्टा ही बजवाना चाहिये; क्योंकि असमर्थ के लिए घण्टा ही सभी बाजे के समान माना गया है। इस प्रकार यजमान विधिपूर्वक गोविन्द की पूजा करके विना तेल लगाये ही स्नान करे। रात में भोजन तब तक विना क्षार नमक के करना चाहिये, जब तक यह अनुष्ठान चार बार न हो जाय। तत्पश्चात् प्रातःकाल होने पर लक्ष्मीपति विष्णु भगवान् की मूर्ति से संयुक्त दीप, अन्न, पात्र आदि आवश्यक सामग्रियों समेत एक विलक्षण शय्या, जो खड़ाऊँ, जूता, छाता, चँवर, आसन तथा अन्यान्य अभीष्ट सामग्रियों से युक्त हो, श्वेत रंग के पुष्प तथा वस्त्र से सुशोभित हो, तकिया तथा गद्दे लगे हों, यथाशक्ति अनेक प्रकार के फल, आभूषण तथा अन्नादि भी रखे गये हों, एक कुटुम्बवाले विष्णु के उपासक वेदज्ञ सदाचार सम्पन्न अविकृत अंगों वाले ब्राह्मण को दान देनी चाहिये। उसी शैय्या पर बिठाकर द्विज दम्पत्ति को विधिपूर्वक अलंकारों से अलंकृत कर पत्नी के लिए खाद्य सामग्रियों के समेत भोजनादि के पात्र तथा पुरुष (ब्राह्मण) के लिए सभी सामग्रियों से संयुक्त सुवर्ण निर्मित देवाधिदेव की प्रतिमा, जो जल कुम्भ से युक्त हो, दान देनी चाहिये। इस प्रकार जो कोई पुरुष विष्णुभगवान् के अशून्यशयन नामक इस पुनीत व्रत का अनुष्ठान कृपणता छोड़ कर तथा विष्णुभगवान् में ध्यान लगाकर करता है, उसे कभी पत्नी का वियोग नहीं होता। स्त्री यदि करती है तो वह कभी विधवा नहीं होती। ब्रह्मा जी! जब तक जगत् में चन्द्रमा, सूर्य और तारे विद्यमान रहते हैं तब तक उक्त दम्पति कभी कुरूप अथवा शोकाकुल नहीं होते। पितामह! उनके पुत्र, पशु, रत्नादि धन कभी नष्ट नहीं होते। इस अशून्यशयन नामक व्रत को करने वाला पुरुष सात सहस्र सात सौ कल्प पर्यन्त विष्णु भगवान् के लोक में पूजित होता है।॥६-२०॥

श्री मात्स्य महापुराण में अशून्यशयन व्रत माहात्म्य वर्णन नामक इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७१॥

बहत्तरवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—पितामह! अब भविष्य में घटित होने वाले रूप तथा सम्पत्ति को देने वाले एक अन्य व्रत वृत्तान्त को सुनो। उसी द्वापर नामक युग के अन्तिम भाग में महर्षि पिप्पलाद का युधिष्ठिर आदि पाण्डवों के साथ सुन्दर संवाद होगा। उस समय नैमिषारण्य में रहने वाले तपोनिष्ठ पिप्पलाद नामक महामुनि के पास जाकर परम धर्मात्मा धर्मराज के पुत्र युधिष्ठिर एक प्रश्न पूछेंगे। ॥१-२॥

युधिष्ठिर ने कहा—किस प्रकार मनुष्य आरोग्य, ऐश्वर्य, धर्म में मति, गति, अव्यंगता (किसी अंग की अहीनता) एवं शिव तथा विष्णु में अनुपम भक्ति प्राप्त कर सकता है? ॥३॥

ईश्वर ने कहा—ब्रह्माजी! इस प्रकार युधिष्ठिर के पूछने पर परम बुद्धिमान् पिप्पलाद जी का जो उत्तर होगा, वह ऐसा होगा। परम धार्मिक ऋषि पिप्पलाद धर्मपुत्र युधिष्ठिर से जो कुछ कहेंगे उसे आप सुनिये। ॥४॥

पिप्पलाद ने कहा—'भद्र! आपने बड़ा अच्छा विषय छेड़ दिया है, अब उसे मैं आप से बतला रहा हूँ।' ऐसा कह कर ऋषि राजा युधिष्ठिर को परम पुनीत अंगार नामक व्रत का उपदेश देंगे। युधिष्ठिर! इस मर्त्यलोक में भी इस प्राचीन इतिहास की चर्चा लोग करते हैं, जिसमें विरोचन और परम बुद्धिमान् भृगुनन्दन शुक्र का संवाद हुआ था। एक बार प्रह्लाद के सोलह वर्षीय पुत्र विरोचन को, जो रूप तथा कान्ति में संसार में सब से अधिक था, देखकर भृगुनन्दन शुक्र हँसने लगे। और विरोचन से बोले—'महाबाहु विरोचन! तुम धन्य हो, तुम्हारा कल्याण हो।' इस प्रकार शुक्र को हँसते हुए देख कर देवताओं के शत्रु विरोचन ने उनके हँसने का कारण पूछते हुए कहा—'ब्रह्मन्! आप ने किस प्रयोजन से यह आकस्मिक हास्य किया है? और किस लिए मुझे 'धन्य' 'धन्य' कहा है? इसका कारण मुझे बतलाइये।' इस प्रकार पूछने पर विरोचन से बोलने वालों में परम श्रेष्ठ शुक्र ने कहा—व्रत के माहात्म्य से परम आश्चर्यचकित होकर मैंने यह हास्य किया है। सुनिये। प्राचीन काल में दक्ष के विनाशार्थ परम क्रुद्ध, शूल धारण करने वाले भगवान् शंकर के महा भयानक मुख प्रदेश के ऊपर ललाट से एक पसीने की बूँद नीचे की ओर गिरी। जिसने सातों पाताल लोकों का भेदन कर सातों महासमुद्रों को भस्मसात् कर दिया, और अनेक मुख और नेत्र धारण कर भीषण जलती हुई आग की लपटों की भाँति भयानक, दस सहस्र पैर और हाथों को धारण कर वीरभद्र के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। इस प्रकार दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर, पुनः भूतल से उत्पन्न हो तीनों लोकों को जलाने का उपक्रम करते हुए उसे शिव ने रोक दिया। शिव ने कहा—'वीरभद्र! तुम दक्ष के यज्ञ का विनाश कर चुके, अब इस लोक को जलाने वाले अपने क्रूर कार्य को बन्द कर दो। तुम सभी ग्रहों के प्रथम शान्ति प्रदाता बनो, मेरे वरदान से मनुष्य तुम्हारा दर्शन और पूजन करेंगे। पृथ्वी के पुत्र! तुम अंगारक के नाम से प्रसिद्ध होओगे और समस्त देव लोक में तुम्हारा अद्वितीय रूप होगा। जो मनुष्य तुम्हारे दिन चतुर्थी तिथि होने पर तुम्हारी पूजा करेंगे उन्हें अनन्त रूप, आरोग्य

एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति होगी।' शिव के ऐसा कहने पर इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले वीरभद्र सचमुच शान्त हो गये। राजन्! उसी क्षण पुनः उत्पन्न हो कर उन्होंने ग्रहों का स्थान प्राप्त किया। एक बार कभी उनके लिए किये गये। उक्त श्रेष्ठ पूजन, अर्घ्यदान आदि पुनीत अनुष्ठानों को शूद्र (सेवक) रूप में नियुक्त होकर आप ने देख लिया था इसी लिए देवताओं के शत्रु कुल में उत्पन्न होकर इस जन्म में आप इतने रूपवान् हुए। आप की रुचि बहुमुखी एवं दूर गामिनी है। अतः देवता तथा दानव सभी आपको विरोचन नाम से कहते हैं। शूद्र द्वारा किये गये व्रत को केवल देखने मात्र से प्राप्त आप की इस अद्भुत रूप सम्पत्ति को देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया। इसी लिए आपको मैंने धन्य-धन्य भी कहा। धन्य है इस व्रत का माहात्म्य, जिसके केवल देखने मात्र से इस प्रकार सुन्दर रूप प्राप्त होता हैं। उसके करने वाले के लिए फिर कहना ही क्या है? दितिपुत्र! धरणीसुत मंगल के उक्त यज्ञ में गोदान आदि कर्मों को सम्पन्न कराते समय आपने भक्ति एवं निष्ठा के भावों से देखा था अतः उक्त पुण्य के प्रभाव से आप की यह सुन्दर आकृति दैत्य के गर्भ द्वारा हुई। ॥५-२३॥

ईश्वर ने कहा—महात्मा भार्गव (शुक्र) की ऐसी बातें सुनकर प्रह्लाद पुत्र वीर विरोचन ने विस्मित होकर पूछा। ॥२४॥

विरोचन ने कहा—भगवन्! अब मैं उक्त अंगारक व्रत को भली भाँति सुनना चाहता हूँ; जिसमें दिये गये दान को पूर्व जन्म में मैंने देखा था। उस श्रेष्ठ व्रत के माहात्म्य तथा विधि को आप यथार्थ रूप में मुझसे बतलाइये। इस प्रकार विरोचन की बातें सुनकर शुक्र ने पुंनः विस्तारपूर्वक उनसे कहा। ॥२५-२६॥

शुक्र ने कहा—हे दानव! जब कभी मंगल के दिन चतुर्थी तिथि पड़े तब उस दिन पद्मराग (लाल रंग की मणि, मूँगा) को पहिन कर मिट्टी लगाकर स्नान करे। और उत्तराभिमुख हो बैठ कर 'अग्निर्मूर्धा दिवो.....' इत्यादि मंत्र का पाठ करे। शूद्र को चाहिये कि वह चुपचाप, भोग से रहित होकर विना कुछ खाये पिये केवल मंगल का स्मरण करे। तदनन्तर सूर्यास्त हो जाने पर गोबर से आँगन को खूब लीप पोत कर चारों ओर से अक्षत, पुष्प और माला आदि से सुशोभित करे। फिर पूजा करके केसर द्वारा आठ पत्तों वाले एक कमल को आँगम में लिखे (चित्र बनाये)। केसर के अभाव में लाल चन्दन (देवी चन्दन) का विधान है। चार करवे, जो अनेक प्रकार के भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थों से युक्त हों, लाल रंग वाले साठी धान के चावल और पद्मराग से संयुक्त हों, आँगन के चारों कोनों में स्थापित करे और उसी प्रकार चारों ओर विविध प्रकार के फल, गन्ध, माला आदि पूजा की सामग्रियों को भी यथास्थान रखे। तदुपरान्त एक कपिला गाय की, जिसकी सींग सुवर्ण से तथा खुर चाँदी से मढ़े गये हों, बछड़े तथा काँसे की बनी हुई दोहनी भी साथ हो, विधि पूर्वक पूजा करके दान दे। इसी प्रकार लाल रंग के वृषभ की भी, जो सरल स्वभाव का हो, पूजा करनी चाहिये। सात प्रकार के वस्त्रों से युक्त अन्न भी उसके साथ हो। उसी प्रकार सुवर्ण निर्मित अति विस्तृत चार भुजाओं वाली भगवान् की मूर्ति, जो सुवर्णमय पात्र में रखी गई हो, और वह पात्र

गुड़ के ऊपर हो और घी से युक्त हो, दान करे। इन सामग्रियों को समस्त यज्ञों के विधान जाननेवाले, जितेन्द्रिय, सत्पात्र, शीलवान्, उत्तम कुलवाले कुटुम्बी एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण को हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक दान देना चाहिये, किसी दम्भी (ढोंगी) को यह दान नहीं देना चाहिये। दान देने के पहले इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिये। 'हे पृथ्वी के पुत्र! त्रिशूलधारी शंकर के स्वेद-विन्दु से उत्पन्न होने वाले! महाभाग्य-शाली! मैं सौन्दर्य प्राप्त करने की अभिलाषा से आपकी शरण में आया हूँ, आप को मेरा नमस्कार है, मेरे अर्घ्य को ग्रहण कीजिये।' इस मंत्र द्वारा रक्त चन्दन मिश्रित जल का अर्घ्य देकर लाल रंग की माला तथा वस्त्रादि द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण की पूजा करनी चाहिये। पश्चात् उसी मंत्र का उच्चारण कर अपनी शक्ति के अनुकूल एक गाय और बैल के समेत भौम की मूर्ति तथा सम्पूर्ण सामग्रियों समेत एक शय्या भी ब्राह्मण को दान देनी चाहिये। लोक में उसे जो-जो वस्तुएँ विशेष इष्ट हों, अपने घर में भी जो वस्तु विशेष प्रिय हो, उन्हें भी अक्षय रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा से गुणवान् ब्राह्मण को दान देना चाहिये। तत्पश्चात् प्रदक्षिणा कर श्रेष्ठ ब्राह्मण को बिदाकर रात में घृत के साथ विना नमक का भोजन करना चाहिये। जो कोई पुरुष भक्ति से इस अंगारक व्रत का आठ बार अथवा चार बार अनुष्ठान करता है, उसे जो पुण्य मिलता है उसको मैं आप से बतला रहा हूँ। वह प्राणी प्रत्येक जन्म में सौन्दर्य तथा सौभाग्य से सम्पन्न, विष्णु अथवा शिव का भक्त होकर सातों द्वीपों का स्वामी होता है और इसी के प्रभाव से सात सहस्र कल्प पर्यन्त शिव के लोक में पूजित होता है। इसलिए दैत्येन्द्र! तुम भी इस व्रत का अनुष्ठान करो। ॥२७-४३॥

पिप्पलाद ने कहा—राजन्! इस प्रकार की बातें कह भृगुनन्दन शुक्र चले गये, दैत्यराज विरोचन ने सभी विधियों समेत उक्त व्रत का अनुष्ठान किया। राजन्! तुम भी इन सब विधियों समेत उक्त व्रत को सम्पन्न करो, क्योंकि वेद के जानने वाले लोग इसका अक्षय फल बतलाते हैं। ॥४४॥

ईश्वर ने कहा—अद्भुत पराक्रमपूर्ण कार्यों को करने वाले युधिष्ठिर ने 'ऐसा ही करूँगा' कह कर महर्षि पिप्पलाद की विधिपूर्वक पूजा कर उनके वचन को पूरा किया। जो कोई पुरुष इस वृतान्त को अनन्यचित्त होकर सुनता है, भगवान् उसकी भी मनोरथ-सिद्धि करते हैं। ॥४५॥

श्री मात्स्य महापुराण में अङ्गारक व्रत माहात्म्य वर्णन नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७२॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

पिप्पलाद ने कहा—भूपाल! अब इसके बाद तुम विपरीत शुक्र की शान्ति के उपायों को सुनो। इस मर्त्यलोक में शुक्र के उदय काल में यात्रा के आरम्भ एवं समाप्ति पर सुवर्ण के चाँदी के अथवा काँसे के बने हुए पात्र में, जो श्वेत रंग के पुष्प तथा वस्त्र से सुशोभित एवं श्वेत रंग के चावल से भरा हुआ हो, चाँदी की बनी हुई, शुक्र की प्रतिमा, जो श्वेत रंग की मोती से युक्त हो, स्थापित कर निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण कर सामवेद के अध्ययन करने वाले ब्राह्मण को दान देना चाहिये। 'सम्पूर्ण लोकों के

स्वामी! भृगुनन्दन! आपको हमारा नमस्कार है, हमारे सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने के लिए आप इस अर्घ्य को ग्रहण कीजिये, आपको हमारा नमस्कार है।' भारत! यात्रा आदि कार्यों में जब प्रतिकूल दिशा में शुक्र का उदय हो तब उपर्युक्त विधान को करने से मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है और विष्णु के लोक में पूजित होता है। जब तक शुक्र की यह पूजा मांगलिक पुष्प, बड़ा, पूड़ी, गेहूँ और चना द्वारा नहीं की जाती तब तक धर्म अर्थ तथा काम की इच्छा करने वाले मनुष्य को अपनी सिद्धि के लिए आहार नहीं ग्रहण करना चाहिये। युधिष्ठिर! अब मैं बृहस्पति की पूजा का विधान बतला रहा हूँ। सुवर्ण निर्मित पात्र में सुवर्ण के बने हुए देवराज इन्द्र के पुरोहित बृहस्पति को पीले रंग के पुष्प तथा पीले वस्त्र से सुशोभित कर स्थापित करे। और स्वयम् सरसों पलाश और पीपल के संयोग से पंचगव्य मिश्रित जल द्वारा स्नान कर पीले रंग के चन्दन एवं अंगरागादि तथा वस्त्र को धारण कर घृत का हवन करे और ब्राह्मण को प्रणाम कर गाय के सहित उक्त प्रतिमा आदि वस्तुएँ दान दे। और प्रार्थना करे 'अंगिरा गोत्रोत्पन्न! वाक्पते! बृहस्पते! आप को हमारा नमस्कार है। क्रूर ग्रहों द्वारा पीडित व्यक्तियों को अमृत के समान फल देने वाले आप को हमारा बारम्बार नमस्कार है।' कुन्ती पुत्र! सूर्य की संक्रान्ति के समय यात्राओं में अथवा अभ्युदय के कार्यों में बृहस्पति की पूजा करने से मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त करता है। ॥१-११॥

श्री मात्स्य महापुराण में गुरु–शुक्र पूजा विधि नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७३॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्मा ने कहा—संसार सागर से पार करने वाले! भगवन्! स्वर्ग, आरोग्य तथा आनन्द को देने वाले किसी अन्य व्रत को अब हमें बतलाइये। ॥१॥

ईश्वर ने कहा—अब मैं सूर्य सम्बन्धी (रविवार को पड़ने वाले) धर्म (व्रत) को आप से बतला रहा हूँ। जो लोक में कल्याण सप्तमी, विशोक सप्तमी, फलाढ्या (फलों से समृद्ध) सप्तमी, पापनाशिनी सप्तमी, पुण्यप्रदा शर्करा सप्तमी, कमल सप्तमी, पुण्यमयी मन्दार सप्तमी तथा कल्याण दायिनी शुभ सप्तमी के नाम से ख्यात हैं। ये सभी सप्तमियाँ देवताओं तथा ऋषियों द्वारा पूजित तथा अनन्त फल देने वाली कही जाती हैं। इन सबों के विधान मैं क्रमशः अविकल रूप में आप को बतला रहा हूँ। जब शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को रविवार का दिन पड़े तो वह सप्तमी तिथि कल्याणिनी नाम से पुकारी जाती है, और विजया भी उसी का नाम है। उक्त तिथि में प्रातःकाल उठकर गाय के दूध से स्नान करे और श्वेत रंग का वस्त्र पहिन कर अक्षतों द्वारा पूर्वाभिमुख हो आठ पत्तों वाले एक कमल का चित्र बनाये और उसके मध्य भाग में उसी आकार की कर्णिका (पद्म का निचला भाग, बीजकोष) भी बनाये। तदुपरान्त पुष्प तथा अक्षतों से चारों ओर क्रमशः देवाधिदेव (सूर्य) का विन्यास करे। प्रथमतः पूर्व दिशा की ओर

तपन को नमस्कार है, अग्नि कोण में मार्तण्ड को, दक्षिण दिशा में दिवाकर को, नैर्ऋत्य कोण में विधाता को, पश्चिम में वरुण को, वायुकोण में भास्कर को, उत्तर दिशा में विकर्त्तन को और आठवें दल में रवि को नमस्कार है। आदि मध्य और अन्त सभी स्थलों में परमात्मा को हमारा नमस्कार स्वीकार हो'—इन मंत्रों द्वारा विधिपूर्वक पूजा कर नमस्कार करने के उपरान्त शुभ्र स्वच्छ श्वेत रंग के वस्त्र, फल, खाद्य सामग्री, धूप, माला तथा चन्दनादि पूजा की सामग्रियों से भक्तिपूर्वक गुड़ तथा लवण द्वारा मण्डप में सुशोभित बालुका की वेदी पर सप्त महा व्याहृतियों (भूः भुवः स्वः आदि) का उच्चारण कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा कर विसर्जन करे। अपनी शक्ति के अनुकूल भक्तिपूर्वक गुड़ दुग्ध तथा घृत से पूजा कर तिल सहित पात्र तथा सुवर्ण ब्राह्मण को दान दे। इस प्रकार नियम (व्रत) करने वाले को चाहिये कि रात्रि में शयन कर दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर अपना स्नान तथा जप आदि समाप्त कर ब्राह्मणों के साथ घृत तथा दुग्ध से बने हुए पदार्थ का भोजन करे तथा भोजन के उपरान्त वेदज्ञ, विडाल के समान कपट व्यवहार न करने वाले ब्राह्मण को सुवर्ण समेत घृतपूर्ण पात्र और जल का पात्र दान देना चाहिये। उस समय कहे—'मेरे इस व्रत में परमात्मा सूर्य भगवान् प्रसन्न हों।' इस विधि से महीने-महीने इस व्रत का पालन करे। तेरहवाँ महीना आने पर तेरह गौएँ दान दे, जिनके प्रत्येक अंग वस्त्र तथा अलंकार से सुशोभित हों, मुखभाग सुवर्ण द्वारा अलंकृत हों और सब की सब दूध देने वाली हों। धन हीन पुरुष को चाहिये कि वह गर्व रहित हो एक ही गाय का दान दे। इस व्रत में कृपणता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि जो अज्ञान से कंजूसी करता है वह नीचे गिर जाता है। इस उपर्युक्त विधि से जो कोई पुरुष कल्याणसप्तमी का अनुष्ठान करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर सूर्य के लोक में पूजित होता है, इस लोक में भी वह अनन्त आयु आरोग्य तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है। यह कल्याणसप्तमी सर्वदा सम्पूर्ण पापों को हरनेवाली, सभी देवताओं द्वारा पूजित एवं सभी दुष्ट ग्रहों के उपद्रवों को शान्त करनेवाली है। इस अनन्त फल देने वाली कल्याण सप्तमी के वृतान्त को जो कोई सुनता है अथवा पढ़ता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाता है। ॥२-२०॥

श्रीमात्स्य महापुराण में कल्याणसप्तमी व्रत विधि वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७४॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—मुनिपुंगव! उसी प्रकार पुण्यदायिनी विशोक सप्तमी को मैं आपसे बतला रहा हूँ, जिसका व्रत रखकर मनुष्य इस लोक में कभी शोक मग्न नहीं होता। माघ के महीने में शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को काले तिलों द्वारा स्नान कर दन्त धावन करके खिचड़ी खाय और रात में उपवास के नियमों का पालन कर ब्रह्मचारी की भाँति रहे। प्रातःकाल उठकर स्नान जप आदि नित्य कर्मों को कर पवित्र हो सुवर्ण का कमल बनाकर सूर्य को नमस्कार है—ऐसा कह लाल कनेर के पुष्पों तथा लाल रंग के

दो वस्त्रों से उनकी पूजा करे। और प्रार्थना करे—'आदित्य! जिस प्रकार आपही के द्वारा यह समस्त जगत् शोक रहित है, उसी प्रकार मैं भी शोक रहित होऊँ और प्रत्येक जन्म में मुझे आपकी भक्ति प्राप्त हो।' इस प्रकार षष्ठी तिथि में ही सूर्य की पूजा कर ब्राह्मणों की भी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। रात्रि में गो मूत्र का प्राशन कर शयन करे और प्रातःकाल उठकर नित्य कर्म से अवकाश प्राप्त कर ब्राह्मणों को गुड़ युक्त पात्र के समेत अन्न द्वारा पूजा करे। उसी प्रकार भक्ति पूर्वक दो और वस्त्र तथा वह कमल भी ब्राह्मण को दान कर देना चाहिये। सप्तमी तिथि में मौन धारण कर विना तेल तथा नमक का भोजन कर समृद्धि की इच्छा रखने वाले को पुराणों का श्रवण करना चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त विधि पूर्वक दोनों—कृष्ण तथा शुक्ल—पक्षों में तब तक यह विधान करे जब तक पुनः माघ मास की शुक्ल सप्तमी न आ जाय। इस व्रत की समाप्ति होने पर सुवर्ण निर्मित कमल के साथ एक कलश दान देना चाहिये। सभी सामग्रियों समेत एक शय्या तथा दूध देने वाली एक कपिला गाय भी देनी चाहिये। इस विधि से जो कोई पुरुष कृपणता छोड़कर इस विशोकसप्तमी नामक व्रत का पालन करता है वह श्रेष्ठ गति प्राप्त करता है। और शत कोटि सहस्र जन्म तक रोग तथा दारिद्र्य से रहित हो शोकाकुल नहीं होता और जिस जिस मनोरथ की चिन्तना करता है उसे विपुल रूप में प्राप्त करता है। जो व्यक्ति निष्काम भाव से करता है वह परब्रह्म को प्राप्त करता है। जो कोई इस विशोका सप्तमी के वृतान्त को सुनता है अथवा पाठ करता है, वह भी इन्द्र लोक को प्राप्त करता है और कभी दुःखी नहीं होता। ॥१-१३॥

श्री मात्स्य महापुराण में विशोकसप्तमी व्रत माहात्म्य वर्णन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७५॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब फलसप्तमी नामक अन्य व्रत को भी मैं बतला रहा हूँ, जिसका उपवास रखकर मनुष्य पाप से छुटकारा पाकर स्वर्गलोक का अधिकारी होता है। मार्गशीर्ष (अगहन) के शुभ महीने में सप्तमी तिथि को नियमपूर्वक उपवास रखकर सुवर्ण का कमल बनाये और उसे शक्कर के साथ कुटुम्बवाले ब्राह्मण को दान दे। फिर धर्म की मर्यादा जाननेवाले पुरुष को चाहिये कि वह एक पल (चार तोले) भर सुवर्ण की सूर्य की मूर्ति बनवाये और उसे सायंकाल की बेला में 'मुझ पर सूर्य प्रसन्न हो' यह कहकर दान करे। फिर अष्टमी तिथि को ब्राह्मणों की विधिपूर्वक पूजा करके दुग्ध का भोजन देकर स्वयं फल का व्रत तब तक करे जब तक कृष्ण पक्ष की अष्टमी न आ जाय। उस अष्टमी तिथि को भी इसी क्रम से विधिपूर्वक उपवास रखकर उसी प्रकार सुवर्ण निर्मित कमल के साथ सुवर्ण फल दे जो शक्कर युक्त पात्र, वस्त्र और पुष्प आदि सामग्रियों से युक्त हो। इस प्रकार पूरे वर्ष भर दोनों—कृष्ण तथा शुक्ल—अष्टमियों को क्रमशः उपवास रखकर सभी वस्तुएँ दान देकर सूर्य के मन्त्र का उच्चारण करे। 'भानु, अर्क, रवि, ब्रह्मा, सूर्य, शुक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा और

वरुण प्रसन्न हों।' प्रत्येक महीने की सप्तमी तिथि को इन्हीं नामों में से क्रमशः एक-एक नाम ले। प्रत्येक पक्ष में इस व्रत को करते समय फल का दान भी करना चाहिये। इस प्रकार व्रत की समाप्ति हो जाने पर वस्त्र तथा आभूषणों द्वारा एक ब्राह्मण दम्पति की पूजा करनी चाहिये, और सुवर्ण निर्मित कमल के दलों से युक्त शक्कर से भरा हुआ कलश का दान भी देना चाहिये। उस समय प्रार्थना करे—'भगवन् सूर्य ! जिस प्रकार सर्वदा आपके भक्तों के मनोरथ निष्फल नहीं होते उसी प्रकार सात जन्म तक मुझे भी अनन्त फलों की प्राप्ति हो' इस अनन्त फल देनेवाली फलसप्तमी को जो कोई करता है वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा प्राप्तकर विशुद्धात्मा हो सूर्य लोक में पूजित होता है। उस व्यक्ति के मदिरापान आदि निन्दित कर्म—वे चाहे इस जन्म के हों अथवा पुराने जन्म के हों—नष्ट हो जाते हैं, जो इस पुनीत व्रत का अनुष्ठान करता है। इस फलसप्तमी नामक व्रत का अनुष्ठान करनेवाला पुरुष सर्वदा रोगों से विमुक्त रह अपनी इक्कीस बीती हुई और भविष्य में होनेवाली पीढ़ियों के पुरुषों को संसार सागर से पार उतारता है। जो इस वृतान्त को सुनता है अथवा पढ़ता है वह भी कल्याण प्राप्त करता है। ॥११-१३॥

श्री मात्स्य महापुराण में फलसप्तमी व्रत विधान वर्णन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७६॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब पापों को नाश करनेवाली शर्करा नामक सप्तमी को बतला रहा हूँ, जिसके प्रभाव से अनन्त आयु, आरोग्य तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। वैशाख महीने के शुक्ल पक्ष में सप्तमी तिथि को नियमपूर्वक व्रत रखकर प्रातःकाल श्वेत रंग के तिलों द्वारा स्नान कर श्वेत रंग के पुष्प माला और चन्दनादि से विभूषित हो मण्डप में बनी हुई बालुका की वेदी पर केसर द्वारा बीजकोष समेत एक पद्म का चित्रण करे। उसमें सविता को नमस्कार है—ऐसा कह गन्ध और धूप दान करे। पुनः जल का कलश शक्कर युक्त पात्र के साथ स्थापित करे, जो श्वेत रंग के वस्त्रों से तथा श्वेत रंग के पुष्प माला एवं चन्दनादि से विधिवत् अलंकृत तथा सुवर्ण से संयुक्त हो। उक्त कलश की इस मन्त्र द्वारा पूजा करनी चाहिये। 'तुम विश्व और वेद से संयुक्त हो, 'वेदवादी' इस नाम से पढ़े जाते हो, सभी प्राणधारियों के लिये अमृत के समान फलदायी हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।' तत्पश्चात् पंचगव्य का प्राशनकर उस कलश की बगलवाली भूमि पर शयन करे तथा सूर्य के सूक्त का स्मरण तथा पुराणों का श्रवण करते हुए स्थित रहे। इस प्रकार दिन और रात बीत जाने के बाद अष्टमी तिथि को नित्यकर्म से अवकाश प्राप्त कर उन सब सामग्रियों को विद्वान ब्राह्मणों को दान करे। फिर अपनी शक्ति के अनुकूल शक्कर, घृत तथा दूध से बने हुए खाद्य पदार्थों द्वारा ब्राह्मणों को भोजन करवाये और स्वयम् मौन व्रत धारण कर तेल और नमक के विना भोजन करे। इस विधान से प्रत्येक महीने में व्रत का अनुष्ठान करे। वर्ष की समाप्ति पर शक्कर युक्त कलश के समेत एक शय्या, जो सभी सामग्रियों से सुसज्जित हो, एक दूध देनेवाली गाय तथा शक्ति संपन्न

पुरुष सम्पूर्ण साधनों से सम्पन्न एक गृह को दान में दे। फिर अपनी शक्ति के अनुकूल एक सहस्र निष्क (सोलह मासे सुवर्ण) अथवा सौ वा दस वा पाँच ही निष्क सुवर्ण का दान दे। एक सुवर्ण निर्मित अश्व का दान तो देना ही चाहिये, इसमें भी पूर्व ही की भाँति मन्त्रोच्चारण करे। दान आदि कार्यों में कृपणता नहीं करनी चाहिये, कृपणता करने से दोषभागी होना पड़ता है। अमृत पीते हुए सूर्य के मुख से जो अमृत के विन्दु पृथ्वी पर गिर पड़े थे वे शालि मूँग और ईख कहे जाते हैं। ईख का सार भाग, जो अमृत के समान सुस्वादु तथा गुणदायी है, शक्कर है। शक्कर इन तीनों पदार्थों में श्रेष्ठ है, अतः यह शक्कर सूर्य भगवान् के हवनीय पदार्थों—हव्य—कव्य दोनों में विशेष इष्ट तथा पुण्य दायिनी मानी गई है। यह शर्करा नामक सप्तमी अश्वमेध यज्ञ के समान फलदायिनी, सभी दुष्ट ग्रहों से उत्पन्न होनेवाली बाधाओं को शान्त करनेवाली एवं पुत्र तथा पौत्र की प्रवर्द्धिनी है। जो कोई पुरुष विशेष भक्ति से इस शर्करा नामक सप्तमी व्रत को करता है वह अच्छी गति प्राप्त करता है एवं स्वर्गलोक में एक कल्प पर्यन्त निवास कर तत्पश्चात् परम पद की प्राप्ति करता है। इस निष्पाप शर्करासप्तमी नामक व्रत के विधान को जो कोई मनुष्य सुनता है, स्मरण करता है, अथवा पाठ करता है, वह सूर्य के लोक में पूजित होता है। और जो कोई इस श्रेष्ठ व्रत के अनुष्ठान करने की सम्मति मात्र देता है वह भी देवताओं तथा देवांगनाओं से पुष्पमाला आदि सामग्रियों द्वारा पूजित होता है। ॥१-१७॥

श्री मात्स्य महापुराण में शर्करासप्तमी व्रत विधान वर्णन नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७७॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके बाद मैं उसी प्रकार पुण्य देनेवाली कमल नामक सप्तमी का व्रत बतला रहा हूँ, जिसका कीर्तन मात्र करने से इस मर्त्यलोक में भगवान् सूर्य सन्तुष्ट हो जाते हैं। वसन्त ऋतु की अमल (शुक्ल) सप्तमी तिथि को श्वेत रंग की सरसों द्वारा स्नान कर सुवर्ण निर्मित तिल से पूर्ण पात्र में शुभ कमल को रखकर, उसे दो वस्त्रों द्वारा ढककर गन्ध तथा पुष्पों से विधिपूर्वक पूजित करे। कमलहस्त को हमारा नमस्कार है, विश्वधारिन! आपको हमारा नमस्कार स्वीकृत हो, दिवाकर! आप को हमारा नमस्कार है, प्रभाकर! आपको हमारा नमस्कार है।' इन मंत्रों से पूजा कर सायंकाल में जलकलश के समेत एक कपिला गाय, जो विधानपूर्वक अलंकृत की गई हो, वस्त्र पुष्पमाला एवं आभूषणों द्वारा ब्राह्मण की विधिपूर्वक पूजा करके दान दे। इस प्रकार पूरा दिन और रात बीत जाने के उपरान्त यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करवाये और स्वयं मांस तथा तेल के विना भोजन करे। इस विधि से प्रत्येक महीने की शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को कृपणता छोड़कर यह अनुष्ठान करे। व्रत की समाप्ति हो जाने पर सुवर्णनिर्मित कमल के साथ एक शय्या तथा दूध देनेवाली एक यथाशक्ति सुवर्ण से विधिवत् अलंकृत गाय दान में दे। पात्र, आसन, दीप आदि सामग्रियाँ—जो विशेष इष्ट हों—दान देनी चाहियें। इस विधि से जो कोई मनुष्य कमल

सप्तमी का अनुष्ठान करता है वह अनन्त लक्ष्मी को प्राप्त करता है और सूर्य के लोक में पूजित होता है। प्रत्येक कल्प में वह अलग-अलग सातों लोकों में अप्सराओं से चारों ओर घिरा हुआ श्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है। जो कोई इस व्रत विधान को देखता है, इसके वृतान्त को भक्तिपूर्वक पढ़ता है, सुनता है अथवा करने की सम्मति मात्र देता है, वह भी इस मर्त्यलोक में अचल लक्ष्मी की प्राप्ति कर गन्धर्वों और विद्याधरों के लोक का अधिकारी होता है। ॥१-११॥

श्री मात्स्य महापुराण में कमलसप्तमी व्रत विधान वर्णन नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७८॥

उन्यासीवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके बाद मैं सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाली, सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाली, सुमनोहर मन्दार नामक सप्तमी को बतला रहा हूँ। माघ महीने की शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि को अल्प भोजन करके बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिये कि दातून करके षष्ठी तिथि को उपवास रखे और ब्राह्मणों की विधिपूर्वक पूजा कर रात्रि में मन्दार (पारिभद्र) का प्राशन करे। पुनः प्रातःकाल उठकर स्नान कर ब्राह्मणों को यथा शक्ति भोजन करवाये। और आठ मन्दार के पुष्पों को सुवर्ण निर्मित कराकर उसी प्रकार सुवर्ण द्वारा एक पुरुष की आकृति बनवाये, जिसके हाथ में पद्म सुशोभित हो। फिर काले रंग के तिलों द्वारा ताँबे के पात्र में आठ दल वाले कमल को बनाकर सुवर्ण निर्मित मन्दार के फूलों द्वारा पूर्व दिशा से भास्कर को नमस्कार है—ऐसा कह पूजन करे। उसी प्रकार अग्नि कोण में सूर्य के लिए, दक्षिण दिशा में अर्क के लिए, नैऋत कोण में अर्यमा के लिए पश्चिम दिशा में वेदधामा के लिए वायव्य कोण में चण्डभानु के लिए उत्तर दिशा में पूष्णा के लिए, ईशान कोण में आनन्द के लिए और कमल की कर्णिका (बीजकोष) में सर्वात्मा के लिए नमस्कार है यह कह कर सुवर्ण पुरुष की स्थापना करे। वह सुवर्ण पुरुष श्वेत रंग के वस्त्रों से भली भाँति चारों ओर ढँका हुआ हो और अनेक प्रकार भक्ष्य फल, माला आदि से पूजित हो। इस प्रकार पूजा करने के उपरान्त उन सभी सामग्रियों को वेदज्ञ ब्राह्मण को दान दे और गृहस्थ स्वयं पूर्वाभिमुख हो मौन व्रत धारण कर तेल तथा लवण के विना भोजन करे। इस ऊपर बताई गई विधि से महीने-महीने में प्रत्येक सप्तमी तिथि को यह विधान कृपणता छोड़कर पूरे वर्ष भर करे। व्रत की समाप्ति पर समृद्धि की इच्छा रखनेवाले पुरुष को चाहिये कि वे ही वस्तुएँ कलश के ऊपर स्थापित कर अपनी आर्थिक शक्ति के अनुकूल गौओं के साथ दान दे। 'मन्दार नाथ को हमारा नमस्कार है, मन्दार-भवन को हमारा नमस्कार है, रविदेव! तुम हम लोगों को संसार समुद्र से पार उतारो।' इस प्रकार प्रार्थना कर उक्त विधि से जो मनुष्य मन्दार सप्तमी का अनुष्ठान करता है वह पाप रहित हो सुख पूर्वक कल्प पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करता है। पाप के समूह रूपी अति भयानक अज्ञान अंधकार में प्रकाश देने वाली इस सप्तमी के समीप जाने से मनुष्य संसार में स्थित सभी पदार्थों को यथाभिलषित रूप में प्राप्त करता

है। अभीष्ट फलों को देनेवाली इस मन्दार सप्तमी के वृतान्त को जो मनुष्य सुनता है अथवा पढ़ता है, वह भी समस्त पापों से छुटकारा पाता है। ॥१-१५॥

श्री मात्स्य महापुराण में मन्दारसप्तमी व्रत विधि वर्णन नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥७९॥

अस्सीवाँ अध्याय

श्री भगवान् ने कहा—अब इसके बाद मैं कल्याण देने वाली शुभ नामक अन्य सप्तमी व्रत को भी बतला रहा हूँ, जिसका उपवास रखकर मनुष्य रोग शोक एवं दुःखादि से छुटकारा पाता है। पुण्यप्रद क्वार के महीने में स्नानादि नित्यकर्म कर पवित्र हो ब्राह्मणों द्वारा स्वास्तिवाचन करवा कर शुभ सप्तमी व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ करना चाहिये। प्रथमतः सुगन्धित पदार्थ, पुष्प, माला एवं चन्दन से भक्तिपूर्वक कपिला गाय की पूजा करे। (प्रार्थना करे) 'सूर्य से उत्पन्न होने वाली, सम्पूर्ण संसार की आश्रयभूत, मंगलमयी सुन्दर शरीर वाली आपको मैं सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ।' तत्पश्चात् सेर भर तिल को ताँबे के पात्र में रख सुवर्ण निर्मित एक वृषभ को सुगन्धित पदार्थ, माला, पुष्प, गुड़ के साथ अनेक प्रकार के फल, घृत एवं दुग्ध से बनी हुई खाद्य सामग्रियों का सायंकाल की बेला में दान दे और कहे—'अर्यमा प्रसन्न हों'। तत्पश्चात् गर्व रहित हो पञ्चगव्य का प्राशन कर भूमि पर ही रात में शयन करे। प्रातःकल होने पर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा करे। इसी विधि से मनुष्य को सर्वदा प्रत्येक महीने में दो वस्त्र, सुवर्ण निर्मित वृषभ तथा सुवर्ण की गाय दान देनी चाहिए। वर्ष भर व्यतीत हो जाने पर ईख तथा शय्या, जो गद्दा, तकिया, आदि सामग्रियों तथा पात्र आसन आदि से युक्त हो, ताँबे के पात्र में सेर भर तिल और सुवर्ण निर्मित वृषभ—इन सब सामग्रियों को वेदज्ञ ब्राह्मण को 'विश्वात्मा प्रसन्न हों' कह कर दान देना चाहिये। इस विधि के अनुसार जो विद्वान् मनुष्य इस शुभ सप्तमी का अनुष्ठान करता है, उसकी प्रत्येक जन्म में विपुल सम्पत्ति तथा कीर्ति होती है। देवलोक में जाकर वह अप्सराओं तथा गन्धर्वगणों से पूजित होता है, जब तक प्रलय नहीं हो जाता तब तक गणाध्यक्ष होकर निवास करता है और पुनः कल्प के आदिकाल में सातो द्वीपों का अधिपति होता है। यह पुण्यदायिनी शुभ सप्तमी एक सहस्र ब्रह्महत्या तथा एक सौ भ्रूणहत्या के घोर पापों को विनाश करने में समर्थ मानी जाती है। इस शुभ सप्तमी के वृतान्त को जो कोई मनुष्य पढ़ता है अथवा इसमें दिये जाने वाले दानादि कार्यों को किसी प्रसंग से दो घड़ी मात्र देख लेता है, वह भी इस मर्त्यलोक में सभी पापों से विमुक्त होकर परलोक में विद्याधरों के नायकत्व की प्राप्ति करता है। जो कोई मनुष्य सातों विधानों से युक्त इस शुभ सप्तमी को सात वर्षों तक करता है, वह क्रम से सातों लोकों का अधिपति होकर मुरारि भगवान् विष्णु के परम पद की प्राप्ति करता है। ॥१-१४॥

श्री मात्स्य महापुराण में शुभसप्तमी व्रत विधि वर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥८०॥

इक्यासीवाँ अध्याय

मनु ने कहा—इस पृथ्वीतल पर कौन-सा ऐसा उपवास अथवा व्रत है जो पुरुष को अभीष्ट वस्तु अथवा व्यक्ति के वियोग से उत्पन्न होने वाले शोक समूह से उद्धार करने में समर्थ, सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य आदि का देनेवाला और भव भीति का विनाश करने वाला है ? ॥१॥

मत्स्य ने कहा—मनु ! तुमने जो विषय पूछा है वह जगत भर का प्रिय है, उसका महत्त्व देवताओं को भी नहीं मालूम है। यद्यपि वह व्रत इन्द्र असुर तथा मानव समूह—किसी को नहीं मालूम है, तथापि तुझ जैसे भक्तिमान से मैं उसे अवश्य कहूँगा। वह व्रत पुण्यप्रद क्वार के महीने में विशोक द्वादशी के नाम से विख्यात है। दशमी तिथि को अल्प भोजन कर विद्वान् पुरुष को चाहिये कि नियमपूर्वक उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख होकर दातों को स्वच्छ करके उक्त व्रत का प्रारम्भ करे। 'एकादशी तिथि को निराहार रह केशव तथा लक्ष्मी की विधिपूर्वक पूजा करके आगामी दिन में मैं भोजन करूँगा' इस प्रकार का संकल्पपूर्वक नियम करके शयन करे और प्रातःकाल उठकर सम्पूर्ण औषधियों तथा पंचगव्य द्वारा स्नान करे। पश्चात् श्वेत रंग की माला तथा वस्त्र धारण कर कमलों द्वारा विष्णु भगवान् की पूजा करे। विशोक को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों पैरों की, वरद को नमस्कार है—ऐसा कह जंघाओं की, श्रीश को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों जानु प्रदेशों की, जलशायी को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों उरु देश की पूजा करनी चाहिये। कन्दर्प को नमस्कार है—ऐसा कह गुह्य देश की, माधव को नमस्कार है—ऐसा कह कटि प्रदेश की, दामोदर को नमस्कार है—ऐसा कह उदर की, विपुल को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों पार्श्वों की, पद्मनाभ को नमस्कार है—ऐसा कह नाभि की, मन्मथ को नमस्कार है—ऐसा कह हृदय की, श्रीधर को नमस्कार है—ऐसा कह विभु के वक्षस्थल की, मधुजित् को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों हाथों की पूजा करे। चक्र धारण करने वाले को नमस्कार है—ऐसा कह बाँयी बाहु की, गदाधारण करने वाले को नमस्कार है—ऐसा कह दाहिने हाथ की, वैकुण्ठ को नमस्कार है—ऐसा कह कण्ठ प्रदेश की, यज्ञमुख को नमस्कार है—ऐसा कह मुख की, अशोकनिधि को नमस्कार है—ऐसा कह नासिका की, वासुदेव को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों आँखों की, वामन को नमस्कार है—ऐसा कह ललाट-प्रदेश की, हरि को नमस्कार है—ऐसा कह पुनः दोनों भौंहों की पूजा करे। माधव को नमस्कार है—ऐसा कह केशों की, विश्वरूपी (विश्वात्मा) को नमस्कार है—ऐसा कह किरीट की, सर्वात्मा को नमस्कार है—ऐसा कह शिर की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार फल, पुष्प माला एवं चन्दनादि से गोविन्द की विधिपूर्वक पूजा करके मण्डल[1] की रचना करके मोद के साथ हवन के लिए वेदी का निर्माण करे, जो चारों ओर से चौकोर तथा परिमाण में रत्नि मात्र और उत्तर दिशा की ओर ढालू चिकना चारों ओर से मनोज्ञ

---

[1] तीन कोण अथवा चार कोण वा वृत्त के आकार का मण्डल जो यज्ञादि कार्यों में बनाया जाता है।

और तीन किनारों से घिरा हुआ हो। वे किनारे एक अंगुल ऊँचे तथा दो अंगुल चौड़े हों। हवन के चत्वर के ऊपरी भाग में आठ अंगुल की भित्ति बनी हो। फिर सूप में नदी की बालू से लक्ष्मी की एक मूर्ति बनाये और चत्वर में सूप रख कर बुद्धिमान् पुरुष 'लक्ष्मी की पूजा कर रहा हूँ'—ऐसी भावना करके निम्न मंत्रों से पूजा करे। 'देवी को नमस्कार है, शान्ति को नमस्कार है, लक्ष्मी को नमस्कार है, श्री को नमस्कार है, पुष्टि को नमस्कार है, तुष्टि को नमस्कार है, वृष्टि को नमस्कार है और हृष्टि को नमस्कार है। यह विशोका नामक सप्तमी हमारे दुःखों का नाश करने वाली हो, मुझे वरदान देने वाली हो, विशोका मेरी सम्पत्तियों के लिए हो, विशोका मेरी सम्पूर्ण सिद्धियों के लिए हो।' तत्पश्चात् श्वेत वस्त्र द्वारा सूप को चारों ओर से आच्छादित कर फल, अनेक प्रकार के वस्त्र तथा सुवर्ण निर्मित कमल द्वारा विधिपूर्वकपूजन करे। सभी रात्रियों में बुद्धिमान् पुरुष कुशमिश्रित जल पान करे और सारी रात नाच गान आदि कराये। फिर तीन पहर व्यतीत होने पर यजमान शयन करके उठे और उसी समय शैय्या पर अवस्थित ब्राह्मणों के दम्पतियों के पास जाकर अपनी शक्ति के अनुकूल तीन अथवा एक ही की वस्त्र, माला पुष्प एवं चन्दनादि पूजा की सामग्रियों द्वारा 'जल में शयन करने वाले विष्णु भगवान् को हमारा नमस्कार स्वीकृत हो'—ऐसा कह कर पूजा करे। इस प्रकार रात्रि में नाच गान आदि करा के रात भर जागरण करने के उपरान्त प्रातःकाल होने पर स्नान कर के एक ब्राह्मण दम्पति की पुनः पूजा करे। तदनन्तर यथा शक्ति कृपणता छोड़कर भोजन करे और पुराण इतिहास आदि धार्मिक कथाओं को सुनकर वह दिन बिताये। इस विधि के अनुसार प्रत्येक महीने में इस व्रत का पालन करे और व्रत की समाप्ति पर एक सुन्दर शैय्या, जो गुड़धेनु[1] से युक्त, तकिया, गद्दा, बिछौने और ओढ़ने की सामग्रियों से संयुक्त हो, दान दे। प्रार्थना करे 'देवेश! जिस प्रकार लक्ष्मी आप को छोड़कर अन्यत्र नहीं जातीं उसी प्रकार सुरूपता, आरोग्य तथा शोक का अभाव—ये सब सर्वदा मेरे पास रहें। जिस प्रकार विष्णु भगवान् से रहित होकर भगवती लक्ष्मी कहीं अन्यत्र नहीं जातीं उसी प्रकार मुझे भी विशोकता प्राप्त हो और केशव में मेरी उत्तम भक्ति हो।' उपर्युक्त मंत्र से गुडधेनु से संयुक्त शैय्या तथा लक्ष्मी के समेत उक्त सूप का दान समृद्धि की इच्छा रखनेवाले को यजमान को देना चाहिये। इस व्रत में सर्वदा कमल, कनेर, बाण, अम्लान, केसर, केतकी, सिन्दुवार, मल्लिका, गन्धपाटल (गुलाब) कदम्ब, कुब्जक (कूजा) और मालती—ये पुष्प विशेष प्रशंसित माने गये हैं। ॥२-२८॥

श्री मात्स्य महापुराण में विशोकद्वादशी व्रत वर्णन नामक इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८१॥

---

[1]दान देने के लिये गुड़ द्वारा धेनु की आकृति बनाई जाती है। जिसका पूर्ण विवरण आगे आयेगा।

बयासीवाँ अध्याय

मुनि ने कहा—जगत्स्वामिन्! गुडधेनु का विधान अब हमें बतलाइये। इस गुडधेनु का अनुष्ठान किस प्रकार सम्पन्न होता है और उसे इस मर्त्यलोक में किस मंत्र का उच्चारण कर देना चाहिये? कृपया यह सब कहिये। ॥१॥

मत्स्य ने कहा—गुडधेनु का इस मर्त्यलोक में जैसा विधान है, और उसके करने से जो फल प्राप्ति होती है, सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाले उस व्रत को मैं बतला रहा हूँ। गोबर से खूब लिपी पुती हुई पृथ्वी पर चारों ओर से कुशा बिछाकर परिमाण में चार हाथ विस्तृत काले मृग का चर्म, जिसका शिर पूर्व दिशा की ओर हो, बनाये और उसमें गाय की कल्पना करे। उसी प्रकार छोटे काले मृग चर्म को रखे और इसमें बछड़े की कल्पना करे। पूर्व दिशा की ओर मुख, उत्तर दिशा की ओर पैर बनाकर बछड़े के समेत गाय को इस प्रकार कल्पित करे। सर्वदा उत्तम गुडधेनु चार भार[1] गुड़ के परिमाण में बनती है, और उसका बछड़ा एक भार (गुड) का बनाना चाहिये। मध्यमा गुडधेनु दो भार की मानी गयी है और उसका बछड़ा आधे भार का इसी प्रकार कनिष्ठा गुडधेनु एक भार के परिमाण में होती है, उसका बछड़ा चौथाई भार का होना चाहिये। तात्पर्य यह कि अपनी सम्पत्ति के अनुकूल इसका निर्माण कराना चाहिये। ये धेनु और बछड़े घृत के मुख वाले तथा श्वेत रंग के महीन वस्त्रों से चारों ओर ढँके हुए हों। इनके कान सुतुही से, पैर ईखों से तथा नेत्र शुभ्र मुक्ता के दानों से बने हुए हों। उन दोनों के शरीर भाग की नाड़ियाँ सफेद सूत के धागे की बनीं हों और श्वेत रंग के कम्बल की बनी हुई सास्ना (गाय और बैल के गले का लोमसमूह) हो। पीठ लाल रंग के दागों वाली हो, दोनों के रोयें श्वेत रंग के मृग पुच्छ (चमर) के हों, दोनों की भौंहें मूंगे की बनी हुई हों, दोनों के स्तन नवनीत के बने हुए हों, रेशमी वस्त्र की पूँछे हो, काँसे के बने हुए दुहने के पात्र हों, नीलम मणि की बनी दोनों की आँखें के तारे हों। दोनों के सींगों पर सुवर्ण के अलंकार विभूषित हों, खुरों में चाँदी मँढ़ी गई हो, अनेक प्रकार के फलों से नासिका के दोनों छिद्रों एवं पुटों की रचना की गई हो। इस प्रकार उन दोनों की रचना करके धूप दीप एवं पूजन की अन्य सामग्रियों द्वारा उनकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। पूजा का मंत्र यह है। 'जो समस्त प्राणिमात्र की लक्ष्मी रूप है और देव वर्गों में लक्ष्मी रूप से विराजमान है, वह देवी धेनु रूप से मुझे शान्ति प्रदान करे। जो भगवान् शंकर के शरीर में अधिष्ठित एवं उनकी सर्वदा प्रिय भगवती रुद्राणी है, वह धेनु रूप से मेरे पापों को दूर करे। भगवान् विष्णु के वक्षस्थल में विराजमान जो लक्ष्मी रूपा है और अग्नि की प्रियभार्या स्वाहा रूप से भी जो विद्यमान् कही जाती हैं, जो चन्द्रमा-सूर्य और इन्द्र की शक्ति रूप मानी गई हैं, वह धेनु रूप से हमारी श्री के लिए हों। भगवान् ब्रह्मा की, कुबेर की एवं लोकपालों

---

[1]एक भार आठ हजार तोला का माना गया है।

की जो लक्ष्मी स्वरुपा हैं, वही धेनुरूप लक्ष्मी हमें वरदान देने वाली हों। जो मुख्य पितरों को सन्तुष्ट करने के लिए स्वधा रूप हैं, यज्ञ भाग भोगी देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिए स्वाहा रूप हैं, वही सम्पूर्ण पापों को दूर करने वाली धेनु रूपा भी हैं, वे मुझे शान्ति प्रदान करें।' इस प्रकार उक्त धेनु की पूजा कर उसे ब्राह्मण को दान कर दे। यही सम्पूर्ण धेनुओं के दान करने का विधान कहा जाता है। पहली गुडधेनु है, दूसरी घृतधेनु, तीसरी तिलधेनु, चौथी जलधेनु, पाँचवी विख्यात क्षीरधेनु, छठवीं मधुधेनु, सातवीं शर्कराधेनु, आठवीं दधिधेनु, नवीं रसधेनु और दसवीं स्वरूपतः साक्षात धेनु है। द्रव (बहने वाले) पदार्थों की धेनु की रचना कुम्भ (कलश) द्वारा होती है, और अन्य अद्रव पदार्थों की राशि अथवा स्तूप रूप से। कोई-कोई मनुष्य इस लोक में सुवर्ण द्वारा धेनु की रचना की इच्छा करते हैं और अन्य महर्षिगण नवनीत तथा रत्नों से। किन्तु सभी प्रकार की धेनुओं के दान कर्म में यही उपर्युक्त विधान है, और प्रायः यही सामग्रियाँ भी। सर्वदा पर्व-पर्व पर मंत्र उच्चारण तथा आवाहन आदि कर के भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी इन धेनुओं का अपनी श्रद्धा के अनुकूल दान करना चाहिये। गुडधेनु के वर्णन के प्रसंग से मैंने सभी प्रकार की धेनुओं का वर्णन कर दिया, ये सभी सम्पूर्ण यज्ञों के फल देने वाली, कल्याणदायिनी तथा पाप हारिणी हैं। सभी प्रकार के व्रतों में विशोकद्वादशी नामक व्रत सर्वश्रेष्ठ है। इस लोक में उसके अंगभूत गुडधेनु के दान का विधान प्रशंसित माना गया है। पुण्यप्रद अयनों की संक्रान्ति, विषुव अर्थात् तुला और मेष की संक्रान्ति अथवा व्यतीपात नामक योग में वा ग्रहण आदि विशेष पर्वों पर इन गुडधेनु आदि दानों को देना चाहिये। यह विशोकद्वादशी पुण्यप्रदायिनी, पापहारिणी तथा मंगल-दायिनी है, इसका पुनीत व्रत रखकर मनुष्य विष्णु भगवान् के श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है। इसके प्रभाव से मनुष्य इस मर्त्यलोक में सौभाग्य, दीर्घायु और आरोग्य को प्राप्त करके अन्त समय में भगवान् का स्मरण कर विष्णु के लोक को प्राप्त करता है। राजन्! उस धर्मात्मा पुरुष को नव सहस्र अयुत वर्ष तक कभी शोक, दुख अथवा दारिद्र्य की प्राप्ति नहीं होती। जो कोई स्त्री नित्य नृत्य तथा गीत आदि में तत्पर रह-कर इस विशोकद्वादशी व्रत का विधिवत् पालन करती है वह भी उक्त फल को प्राप्त करती है। राजन्! इसी कारण समृद्धि की इच्छा रखने वाले पुरुष को नित्य भगवान् विष्णु के सामने गायन, वादन आदि उत्सव परम भक्ति के साथ कराने चाहियें। इस प्रकार इस लोक में जो कोई मनुष्य मधु, मुर तथा नरका-सुर के शत्रु भगवान् विष्णु की पूजा के विधान को भली भाँति पढ़ता है, सुनता है, देखता है, अथवा उसके अनुष्ठान की सम्मति मात्र देता है वह भी इन्द्रलोक में देववृन्दों द्वारा एक कल्प पर्यन्त पूजित होता है। ॥१-३१॥

श्री मात्स्य महापुराण में विशोकद्वादशी व्रत माहात्म्य वर्णन नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८२॥

तिरासीवाँ अध्याय

नारद ने कहा—भगवन् ! मैं दान के सर्वश्रेष्ठ माहात्म्य को सुनना चाहता हूँ, जो परलोक में अक्षय फल देनेवाला तथा देव और ऋषि गणों द्वारा पूजनीय है। ॥१॥

उमापतिने कहा—मुनिपुंगव ! मैं मेरु (पर्वत) दान के दस प्रकारों को बतला रहा हूँ, जिनके दान देने से मनुष्य देवताओं द्वारा पूजित लोकों की प्राप्ति करता है। इस लोक में मेरु दान के देने से मनुष्य जो श्रेष्ठ फल प्रात करता है वह पुराणों तथा वेदों के अध्ययन तथा यज्ञों वा देवमन्दिरों के निर्माण से भी नहीं प्राप्त कर सकता। इसलिए क्रमपूर्वक मैं पर्वतों के दान का विधान बतला रहा हूँ। सर्वप्रथम धान्य (अन्न) का शैल होता है, दूसरा लवणाचल (नमक का पर्वत), तीसरा गुडाचल (गुड का पर्वत) चौथा सुवर्णाचल, पाँचवा तिलाचल, छठाँ कपासाचल, सातवाँ घृताचल, आठवाँ रत्नाचल, नवाँ राजताचल (चाँदी का पर्वत) और दसवाँ शर्कराचल। क्रमपूर्वक इन अचलों के दान का विधान बतला रहा हूँ। पुण्यप्रद अयन, तथा तुला एवं मेष की संक्रान्ति, जब सूर्य उत्तर से दक्षिण वा दक्षिण से उत्तर होता है तब, व्यतीपात नामक योग, चन्द्रग्रहण, शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि, ग्रहण आदि के अवसर पर चन्द्रमा के डूब जाने पर, विवाह आदि के उत्सव यज्ञों में, द्वादशी तिथि को वा शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को—, जब पुण्यप्रद मांगलिक नक्षत्रों का योग हो—शास्त्रीय यथोचित नियमों को जाननेवाला पुरुष इन धान्य शैल आदि का दान दे। इसके लिए तीर्थों में, देवमन्दिरों में, गौओं के ठहरनेवाले स्थानों में अथवा अपने भवन के आँगन में ही भक्तिपूर्वक विधान से मण्डप बनवाये, जो चार कोनवाला हो। उसका प्रवेशद्वार पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर हो। वहाँ की पृथ्वी पूर्व और उत्तर दिशा की ओर ढालू हो। उक्त मण्डप की गोबर द्वारा लिपी पुती पृथ्वी पर चारों ओर से कुशा बिछाकर मध्य भाग में विष्कम्भ[1] पर्वतों के समेत उक्त पर्वतों का आकार बनवाये। एक सहस्र द्रोण[2] परिमाण के अन्न द्वारा इस लोक में उत्तम गिरि की रचना की जाती है। इसी प्रकार मध्यम गिरि पाँच सौ द्रोण के परिमाण का होता है और कनिष्ठ गिरि तीन सौ द्रोण का होता है। महामेरु, जो अन्नों द्वारा बनाया जाता है, मध्यभाग में सुवर्ण निर्मित तीन वृक्षों से संयुक्त, पूर्व दिशा में मोती और हीरे द्वारा अलंकृत, दक्षिण दिशा में गोमेदक और पुष्पराग (पीत) मणियों से सुशोभित, पश्चिम में मरकत और नीलम मणियों से समन्वित तथा उत्तर दिशा में वैदूर्य और पद्मराग से सुशोभित रहता है। सब ओर से प्रवाल और श्रीखण्ड (चन्दन) के खण्डों द्वारा सुशोभित, लताओं द्वारा वेष्टित तथा शुक्तियों की बनी हुई शिलाओं से युक्त उसे करना चाहिये। इस पर्वत में भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सूर्य की

---

[1] सुमेरु गिरि की दृढता के लिए चारों दिशाओं में चार पर्वत अवस्थित माने जाते हैं जिनके नाम मन्दर, गन्धमादन विपुल और सुपार्श्व हैं। इनके रंग क्रमशः श्वेत, पीत, नील एवं लाल हैं।

[2] चौंतीस सेर का एक द्रोण होता है।

प्रतिमाएँ भी सुवर्ण की स्थापित होनी चाहियें। इस समय यजमान को गर्व रहित होकर पर्वत के शिखर पर अनेक ब्राह्मण समूहों को बिठाना चाहिये। उस पर्वत की चार चोटियाँ होनी चाहियें, जो चाँदी की बनी हुई हों। उनके किनारे पर भी चाँदी लगी रहनी चाहिये। उसी प्रकार ईख और बाँसों से घिरी हुई कन्दरायें और अन्यान्य दिशाओं में घी और दूध के झरने भी उनमें होने चाहियें। पूर्व दिशा में श्वेत रंग के वस्त्रों द्वारा बादलों के समूह बनाने चाहिये, उसी प्रकार दक्षिण में पीले वस्त्रों द्वारा, पश्चिम में चितकबरे और उत्तर में लाल रंग के वस्त्रों द्वारा बादलों की पंक्तियाँ बनानी चाहियें। तत्पश्चात् क्रमपूर्वक महेन्द्र प्रभृति आठों दिक्पालों को, जो चाँदी के बने हुए हों, विधिपूर्वक स्थापित कर चारों ओर से मन को लुभानेवाले पुष्प, चन्दन तथा अनेक प्रकार के फलों के समूहों की रचना करनी चाहियें। उक्त पर्वत के ऊपर पाँच प्रकार के रंगोंवाले चँदोवा और खिले हुए श्वेत रंग के पुष्पों के आभूषणों की भी सजावट करानी चाहिये। इस प्रकार सर्व प्रथम अमरगिरि मेरु की स्थापना करके उसके चारों ओर चारों दिशाओं में उक्त मात्रा के चौथाई भाग द्वारा क्रमपूर्वक विष्कम्भ पर्वतों की रचना करे। वे भी पुष्प तथा चन्दनों से विधिवत अलंकृत हों। पूर्व दिशा में अनेक प्रकार के फल समूहों से युक्त, कनक भद्र (देवदारु) और कदम्ब के वृक्षों से सुशोभित, जव से मन्दर नामक पर्वत की रचना करे और सुवर्ण निर्मित कामदेव की मूर्ति से युक्त कर पुष्प वस्त्र तथा चन्दनादि से उसे समृद्ध करे। इसी प्रकार अपनी शक्ति के अनुकूल चाँदी के बने हुए वन तथा दुग्ध द्वारा बने हुए अरुणोदक नामक तालाब से भी उसे सुशोभित करना चाहिये। दक्षिण दिशा में गेहूँ की राशि द्वारा सुवर्ण से संयुक्त उस गन्धमादन नामक पर्वत की स्थापना करनी चाहिये, जो सुवर्णमय यज्ञपति, घृत के बने हुए सरोवर, वस्त्रों तथा चाँदी के बने हुए वनों से समन्वित हो। पश्चिम दिशा में तिल से बने हुए पर्वत की रचना करनी चाहिये, जो अनेक प्रकार की सुगन्धियों, पुष्पों, सुवर्ण से बने हुए पिप्पल (पीपल वृक्ष या पक्षी विशेष) तथा सुवर्ण से बने हुए हंस से सुशोभित हो। इसको भी उसी प्रकार चाँदी के बने हुए पुष्प, वन तथा वस्त्रों से संयुक्त बनाना चाहिये। इसके अगले भाग में दही द्वारा सितोदक नामक तालाब की रचना करनी चाहिये। इस प्रकार ऊपर कहे गए विस्तृत तिलशैल की विधिपूर्वक स्थापना करके उत्तर दिशा में सुपार्श्व नामक पर्वत की स्थापना करनी चाहिये, जो उड़द का बना हुआ, सुन्दर वस्त्रों, पुष्पों तथा शिखर पर सुवर्ण निर्मित वट वृक्ष तथा अन्यान्य वृक्षों और सुवर्ण निर्मित धेनु से शोभायमान हो। उपर्युक्त प्रकार से उसे भी मधु द्वारा निर्मित भद्रसरोवर तथा चाँदी से बने हुए चमकीले वन से युक्त करना चाहिये। इसके उपरान्त वेदों तथा पुराणों के मर्म को जानने वाले अनिन्दित चरित्र तथा स्वरूपवान्, सहनशील, दयावान् चार श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा, पूर्व दिशा में हाथ भर का यज्ञकुण्ड बनाकर तिल, जव, घृत, समिधा तथा कुशों से हवन कराना चाहिये। और रात भर गम्भीर तथा मृदु स्वर में होने वाले गीतों तथा तुरुही के शब्दों को कराते हुए जागरण करते रहना चाहिये। अब मैं पर्वतों के आवाहन का प्रकार बतला रहा हूँ। 'सम्पूर्ण देवताओं तथा गणों के भवन एवं रत्नों के आकर स्वरूप! अमरगिरि! तुम हम लोगों के घर में से विरोध भावना (वैर भाव) को शीघ्र ही नष्ट करो, और हम लोगों को उत्तम शान्ति दो तथा हमारा कल्याण करो, अति

भक्तिपूर्वक मैंने आप की विधिवत् पूजा की है। सनातन! तुम्हीं भगवान् शंकर हो, ब्रह्मा हो, विष्णु हो, सूर्य हो और मूर्त तथा अमूर्त (निराकार तथा साकार) से परे समस्त संसार के बीज (आदि कारण) रूप हो, तुम हमारी रक्षा करो। तुम ही समस्त लोकपालों, रुद्र आदित्य तथा वसु गणों तथाँ विश्वात्मा विष्णु भगवान् के मन्दिर रूप हो, मुझे अक्षय शान्ति प्रदान करो। तुम समस्त देवताओं, देवांगनाओं तथा शिव से अशून्य रहने वाले हो, अतः मुझको इस समस्त दुःख रूपी संसार सागर से उबारो।' इस प्रकार उस मेरु गिरि की पूजा करके विष्कम्भ पर्वतों में से सर्वप्रथम मन्दर नामक पर्वत की पूजा करनी चाहिये। 'मन्दराचल! तुम चैत्ररथ तथा भद्राश्व नामक वर्षों से सुशोभित हो, शीघ्र ही मुझे सन्तोष देने वाले बनो। गन्धमादन! जम्बूदीप में शिरोमणि के समान सुशोभित तथा गन्धर्व वनों की शोभा से संयुक्त तुम मेरी कीर्ति अचल बनाओ। तुम केतुमाल और वैभ्राज नामक वनों से संयुक्त शिखर पर सुवर्णमय पीपल से अलंकृत हो, मेरी पुष्टि तुम्हारे प्रसाद से निश्चल हो। सुपार्श्व! उत्तर तथा कुरु नामक देशों तथा सावित्र नामक वन से तुम नित्य सुशोभित रहते हो मेरी लक्ष्मी भी तुम्हारी अनुकम्पा से अक्षय हो।' इस प्रकार उन सबों को आमंत्रित कर पुनः पवित्र प्रातःकाल होने पर यजमान स्नान कर मध्यभाग में स्थित मेरु पर्वत को गुरु को दान देना चाहिये। मुने! उन विष्कम्भ नामक चारों पर्वतों को क्रमपूर्वक पुरोहितों को दान देना चाहिये। नारद जी! इस दान कार्य में चौबीस गौएं दान देनी चाहियें। असमर्थता में दस, नव, सात, आठ वा पाँच तक देने का विधान है। गुरु के लिए इनके अतिरिक्त श्वेतवर्ण की एक दूध देने वाली गाय दान करनी चाहिये। सम्पूर्ण पर्वतों के दान में यही विधि बतलाई गयी है। ब्रह्मा आदि देवताओं तथा लोकपालों के वे ही मन्त्र हैं और पूजन में सर्वदा वे ही सब सामग्रियाँ भी रहती हैं। पर्वतों के दान में उनके मंत्रों का स्पष्ट उच्चारण कर हवन करना चाहिए। विधान कर्त्ता को नियमित उपवासी रहना चाहिये, असमर्थता में केवल रात भर का उपवास भी प्रशस्त माना गया है। नारद जी! अब सब पर्वतों के दान में जो अन्य विधान हैं—उन्हें सुनो। दान देते समय जिन मंत्रों को पढ़ना चाहिये और पर्वतों के देने पर जिस फल की प्राप्ति होती है—उन सब को बतला रहा हूँ। 'अन्न ही ब्रह्म स्वरूप कहा गया है, क्योंकि अन्न में ही प्राण बसते हैं। अन्न से ही जीव पैदा होते हैं, सारा संसार अन्न ही से वर्तमान है, इसलिए अन्न ही लक्ष्मी रूप है, और अन्न ही जनार्दन रूप है। हे पर्वतश्रेष्ठ! तुम उसी अन्न के पर्वत स्वरूप हो अतः तुम मेरी सर्वदा रक्षा करो।' जो कोई मनुष्य इस विधि से अन्नमय पर्वत का दान देता है वह सौ मन्वन्तर पर्यन्त देव लोक में पूजित होता है। अप्सराओं तथा गन्धर्वों के वृन्द द्वारा पूजित वह महाभाग्यशाली वह अति शोभायमान सुन्दर विमान से स्वर्ग के सिंहासन पर आता है और पुण्य के नाश हो जाने पर भी राजाधिराज का पद प्राप्त करता है। ॥२-४५॥

श्री मात्स्य महापुराण में दान माहात्म्य वर्णन नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८३॥

चौरासीवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं सर्वश्रेष्ठ लवण के पर्वत का विधान बतला रहा हूँ, जिसके विधिपूर्वक दान देने से मनुष्य शिव से संयुक्त अर्थात् शिव के लोकों की प्राप्ति करता है। उत्तम लवणाचल मनुष्य को सोलह द्रोणों का बनाना चाहिये। मध्यम उसके आधे आठ द्रोण से और अधम चार द्रोण से। इस प्रकार लवणाचल का विधान बतलाया जाता है। निर्धन मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुकूल एक द्रोण से कुछ अधिक परिमाण का कराना चाहिये। और विष्कम्भ पर्वतों को अलग से एक चौथाई द्रोण का बनवाना चाहिये। ब्रह्मा आदि देवताओं के पूजन का विधान तो सर्वदा पूर्व कथित रीति के अनुसार ही होना चाहिये। और उसी प्रकार सुवर्णनिर्मित सभी लोकपालादि की भी स्थापना करनी चाहिये। पूर्व कथित रीति से ही इसमें भी कामदेव तथा सरोवर आदि की स्थापना करानी चाहिये और उसी प्रकार जागरण भी करते रहना चाहिये। अब दान के मंत्रों को सुनिये। 'हे लवण! तुम सौभाग्य सरोवर से समुत्पन्न हो, इसलिए पर्वतश्रेष्ठ! उसके दान करने के कारण तुम मेरी रक्षा करो। सभी प्रकार के अन्न एवं रस तुम्हारे विना उत्कृष्ट नहीं होते। तुम पार्वती जी तथा शिव जी के सर्वदा अति प्रिय पदार्थ हो, अब मुझे भी शान्ति प्रदान करो। विष्णु भगवान् के शरीर से उत्पन्न होकर तुम आरोग्य के बढ़ाने वाले हो, अतः पर्वत रूप से तुम इस संसार सागर से मेरी रक्षा करो।' इस प्रकार के विधान से जो कोई मनुष्य लवण के पर्वत का दान देता है वह पार्वती के लोक में एक कल्प पर्यन्त निवास करता है और तत्पश्चात् परम गति को प्राप्त करता है। ॥१-९॥

श्री मात्स्य महापुराण में लवणाचल कीर्तन नामक चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८४॥

पचासीवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं श्रेष्ठ गुड़ के पर्वत का विधान बतला रहा हूँ, जिसके विधिपूर्वक दान देने से मनुष्य देव पूजित स्वर्ग लोक की प्राप्ति करता है। यह गुडाचल उत्तम दश भार से, मध्यम पाँच भार से तथा कनिष्ठ तीन भार से बनाया जाता है। निर्धन मनुष्य उसके आधे अर्थात् डेढ़ भार द्वारा इसका विधान करे। ऊपर कथित रीति के अनुसार ही इस गुड़ाचल में भी आमन्त्रण, पूजन, सुवर्ण निर्मित वृक्ष देवताओं की पूजा तथा विष्कम्भ पर्वतों, तालाबों और वन देवताओं की रचना करनी चाहिये। उसी अन्न पर्वत के समान लोक पालों का स्थान, हवन, जागरण आदि कार्य भी होना चाहिये। और उस समय इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिये। 'जिस प्रकार देवताओं में सर्वश्रेष्ठ विश्वात्मा भगवान् विष्णु हैं, वेदों में सामवेद, योगाभ्यासियों में महादेव, सभी प्रकार के मंत्रों में प्रणव (ॐ) एवं स्त्रियों में पार्वती श्रेष्ठ मानी गई हैं, उसी प्रकार रसों में सर्वदा ईख का रस सर्वश्रेष्ठ माना गया है। गुड़ के पर्वत! इसलिए मुझे भी

उस परम लक्ष्मी को दो। गुड़पर्वत! यतः तुम उस सर्वसौभाग्य दायिनी के सहज और पार्वती के निवास स्वरूप हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।' इस प्रकार के विधान से जो गुड़ पर्वत का दान देता है, वह गन्धर्वों द्वारा पूजित होकर पार्वती के लोक में पूजित होता है। और सौ कल्प व्यतीत हो जाने के बाद आयु तथा आरोग्य से सम्पन्न और शत्रुओं से अजेय होकर सातों द्वीपों का अधीश्वर होता है। ॥१-९॥

श्री मात्स्य महापुराण में गुड़पर्वत कीर्तन नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८५॥

छियासीवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके बाद मैं श्रेष्ठ सुवर्ण पर्वत के दान का विधान बतला रहा हूँ, जिसके विधिपूर्वक दान देने से मनुष्य ब्रह्मा के लोक को प्राप्त करता है। उत्तम सुवर्णाचल एक सहस्र पल का, मध्यम पाँच सौ पल का और अधम उसके आधे अर्थात् ढाई सौ पलों का बनता है। निर्धन मनुष्य अपनी शक्ति के अनुकूल इसको बनाये। मुनिपुंगव! अन्नमय पर्वत के समान शेष सब सामग्रियों को इसमें भी बनाना चाहिये और उसी प्रकार विष्कम्भ पर्वतों की रचना कर पुरोहितों को दान आदि भी देना चाहिये। प्रार्थना मंत्र—'ब्रह्म के बीजस्वरूप! तुम को हमारा नमस्कार है, ब्रह्मगर्भ! तुम्हारे लिए हमारा नमस्कार है। तुम अनन्त फलदायक हो, अतः हे शिलोच्चय! मेरी रक्षा करो। तुम अग्नि की सन्तान हो, जगत् के स्वामी हो। पुण्यस्वरूप हो अतः हे गिरिश्रेष्ठ सुवर्ण पर्वत के रूप से तुम मेरी सर्वदा रक्षा करो।' इस विधि से जो कोई मनुष्य सुवर्ण पर्वत का दान करता है वह सर्वश्रेष्ठ आनन्दकारी ब्रह्म लोक को प्राप्त करता है और वहाँ पर सौ कल्प निवास करने के अनन्तर परम गति प्राप्त करता है। ॥१-६॥

श्री मात्स्य महापुराण में सुवर्णाचलकीर्तन नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८६॥

सतासीवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं विधिपूर्वक तिल पर्वत के दान को बतला रहा हूँ, जिसके दान करने से मनुष्य भगवान् विष्णु के सनातन लोक को प्राप्त करता है। उत्तम तिल शैल दस द्रोणों का और मध्यम पाँच द्रोणों का बतलाया जाता है। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! इसी प्रकार तीन द्रोण का कनिष्ठ तिल शैल बतलाया गया है। इसके चारों ओर अन्य विष्कम्भ नामक पर्वतों को पूर्व कथित रीति से ही बनाना चाहिये। मुनिपुंगव! दान के मंत्रों को बतला रहा हूँ। 'मधु नामक राक्षस के बध के अवसर पर भगवान् विष्णु के शरीर के पसीने से तिल, कुश और उड़द पैदा हुए थे, अतः इस लोक में वह हमारी शान्ति के लिए हो। शैलेन्द्र तिलाचल! यतः देव तथा पितृ-दोनों के हव्य तथा कव्य में तुम्हीं चारों ओर से रक्षक होते हो अतः मुझे भी इस संसार के कष्टों से उबारो, तुम्हें हम नमस्कार करते हैं।' इस प्रकार आमंत्रण कर जो सर्वश्रेष्ठ तिलों के पर्वत का दान देता है, वह भगवान् विष्णु के उस पद को प्राप्त करता

है, जिसे प्राप्त कर पुनरागमन दुर्लभ हो जाता है। इसके पुण्य से वह दीर्घायु प्राप्त करता है, पुत्र-पौत्रादिकों से परम सुख प्राप्त करता है तथा पितृगण और गन्धर्वों द्वारा पूजित होकर स्वर्ग को जाता है। ॥ १-७॥

श्री मात्स्य महापुराण में तिलाचल कीर्तन नामक सतासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८७॥

अट्ठासीवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं सर्वश्रेष्ठ कपास के पर्वत के दान की विधि बतला रहा हूँ, जिसके विधिपूर्वक दान करने से मनुष्य कभी नष्ट न होने वाले परम पद की प्राप्ति करता है। इस मर्त्य-लोक में उसी प्रकार उत्तम कपासाचल बीस भारों द्वारा निर्माण कराया जाता है, दस भारों का मध्यम पर्वत तथा पाँच भारों द्वारा अधम पर्वत बतलाया गया है। निर्धन मनुष्य को चाहिये कि वह कृपणता छोड़कर केवल एक भार द्वारा भी दान करे। मुनिपुंगव! पूर्व कथित अन्न पर्वत की भाँति सभी सामग्रियों का प्रबन्ध कर रात के व्यतीत हो जाने पर प्रातःकाल में इसका दान दे और इस मंत्र का उच्चारण करे। 'कपास के पर्वत! तुम ही सर्वदा लोगों के शरीर के ढकने वाले हो, अतः तुम्हें हम नमस्कार करते हैं, मेरे पाप समूहों के तुम विध्वंसक बनो।' इस प्रकार के विधान द्वारा जो मनुष्य शिव के समीप में कपास के पर्वत का दान करता है वह शिवलोक में एक कल्प पर्यन्त निवास कर पुनः इस लोक में राजा होता है। ॥१-५॥

श्री मात्स्य महापुराण में कपासाचल कीर्तन नामक अट्ठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८८॥

नवासीवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं सर्वश्रेष्ठ घृत के पर्वत के दान की विधि बतला रहा हूँ, जो तेज तथा अमृत मय, दिव्य एवं महापापों का विनाशक है। बीस भरे हुए घी के कलशों द्वारा उत्तम घृताचल बनता है, दस कलशों से मध्यम और पाँच से अधम बतलाया गया है। जो निर्धन है, वह भी इस लोक में विधिपूर्वक दो कुम्भों द्वारा इसका विधान कर सकता है। पूर्वकथित रीति के अनुसार विष्कम्भ पर्वतों को उसके चौथाई अंश द्वारा बनवाये। साठी के चावल से पूर्ण पात्रों को उन कलशों के ऊपर स्थापित करना चाहिये। विधिपूर्वक उन्हें (कलशों को) ऊँचा करके एक दूसरे से—जिस प्रकार शोभा अधिक हो—मिला देना चाहिये। श्वेत रंग के वस्त्रों द्वारा ढक देना चाहिये और ईख तथा फल आदि सामग्रियों से समन्वित कर देना चाहिये। इस लोक में शेष अन्य विधानों को अन्न पर्वत की भाँति ही बतलाया जाता है। इसमें भी उसी प्रकार देवताओं की स्थापना करके हवन तथा पूजन आदि करने चाहियें। और रात के व्यतीत होने पर प्रातःकाल गुरु को इसका दान करना चाहिये। शान्तचित्त हो उसी प्रकार विष्कम्भ पर्वतों को पुरोहितों को देना चाहिये। मन्त्र—'अमृत तथा तेज के संयोग से घृत उत्पन्न हुआ है, अतः घृतार्चि विश्वात्मा भगवान् शंकर इस व्रत में मुझ पर प्रसन्न हों। ब्रह्म तेजोमय है और वह तेज घृत में अवस्थित

है। हे नगोत्तम! उस घृत के पर्वत रूप से तुम मेरी सर्वदा रक्षा करो।' इस विधान से सर्वश्रेष्ठ घृत पर्वत का दान देना चाहिये, इससे महापापी भी शंकर के लोक को प्राप्त करता है। सुन्दर हंस तथा सारस पक्षियों से युक्त, छोटी-छोटी घंटियों के जाल की मालाओं से सुशोभित विमान पर बैठकर सिद्ध विद्याधर तथा अप्सराओं के समूहों से घिरा हुआ यजमान इस दान के पुण्य से पितरों के साथ तब तक विहार करता है जब तक महाप्रलय नहीं हो जाता। ॥१-१०॥

श्री मात्स्य महापुराण में घृताचल कीर्तन नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८९॥

नब्बेवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके बाद मैं सर्वश्रेष्ठ रत्न पर्वत के दान का विधान बतला रहा हूँ। एक सहस्र मोतियों द्वारा उत्तम रत्न पर्वत की, पाँच सौ द्वारा मध्यम की तथा तीन सौ द्वारा अधम की विधि बतलाई गई है। उसके चारों ओर पूर्ववत् चौथाई भाग द्वारा विष्कम्भ पर्वतों की रचना करनी चाहिये। विद्वानों को पूर्व दिशा में हीरा और गोमेद द्वारा (मन्दराचल की) दक्षिण दिशा में नीलम और पद्मराग मणि द्वारा गन्धमादन की रचना करनी चाहिये, पश्चिम दिशा में मिले हुए विमलाचल की वैदूर्य और विद्रुमों द्वारा तथा उत्तर दिशा में सुवर्णसमेत पद्मराग मणि द्वारा सुपार्श्व पर्वत की रचना करनी चाहिये। इस रत्नपर्वत में भी अन्न पर्वत की भाँति अन्य सब अंगों की पूर्ति करनी चाहिये। उसी प्रकार आवाहन भी करे, वृक्षों तथा देवताओं को भी उसी भाँति सुवर्णमय बनावे। प्रातःकाल होने पर यजमान को मत्सर रहित हो पुष्प तथा गन्ध आदि पूजन की अन्यान्य सामग्रियों द्वारा पूर्व रीति के अनुसार गुरु और पुरोहितों की पूजा करनी चाहिये और उस समय इन मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये। 'जब सब देवगण भी रत्नों में आश्रय लेते हैं तब तुम तो नित्य ही उन्हीं रत्नों से निर्मित हो, अतः हे अचल! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकृत हो। रत्न के दान करने से भगवान् विष्णु दाता को सब प्रकार से सन्तुष्ट करते हैं इसलिये हे पर्वत! इस रत्नदान से तुम हम लोगों की रक्षा करो।' इस विधि के अनुकूल जो रत्नमय गिरि का दान देता है। हे राजन्! वह सौ कल्प पर्यन्त इस लोक में निवास करता है और रूप, आरोग्य तथा सर्वगुणसम्पन्न होकर सातों द्वीपों का अधिपति होता है। इन्द्र द्वारा पूजित होकर विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त करता है। इस जन्म में अथवा अन्य जन्म में ब्रह्महत्या आदि जो भी घोर महापाप किये जाते हैं वे सब इस दान के प्रभाव से इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार वज्र द्वारा ताडित पर्वत। ॥१-११॥

श्री मात्स्य महापुराण में रत्नाचल कीर्तन नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥९०॥

इक्यानबेवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं सर्वश्रेष्ठ चाँदी के पर्वत के दान का माहात्म्य बतला रहा हूँ, जिसके विधिपूर्वक दान करने से मनुष्य श्रेष्ठ चन्द्रलोक को प्राप्त करता है। दस सहस्र पल के परिमाण भर चाँदी द्वारा उत्तम रजताचल, पाँच सहस्र द्वारा मध्यम तथा आधे—ढाई सहस्र पल—द्वारा अधम का विधान बतलाया गया है। असमर्थ मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुकूल बीस पल से अधिक द्वारा इसकी रचना करानी चाहिये। पूर्व कथित रीति के अनुसार इसमें भी मुख्य गिरि के चौथाई अंश द्वारा विष्कम्भ पर्वतों की रचना करवानी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष को पूर्वोक्त रीति से विधिपूर्वक इसमें भी चाँदी के बने हुए मन्दर आदि पर्वतों को बनाकर सुवर्णमय लोकपाल आदि की पूजा करनी चाहिये। इस पर्वत का तट सुवर्णमय तथा ब्रह्मा विष्णु और सूर्य से युक्त बनाना चाहिये। अन्य पर्वतों में जो वस्तुएँ चाँदी की होती हैं वे इसमें सुवर्ण की होनी चाहियें—यही इतना भेद है। अन्य शेष जागरण आदि कार्य पूर्वोक्त रीति के अनुसार ही करना चाहिये। तत्पश्चात् प्रातःकाल होने पर गुरु को चाँदी का पर्वत दान देना चाहिये, वस्त्रों तथा आभूषणों से पुरोहितों की पूजाकर विष्कम्भ नामक पर्वतों को उन्हें देना चाहिये। दाता को अपने हाथ में कुश लेकर गर्व रहित हो दान देते समय इस मन्त्र का पाठ करना चाहिये। 'तुम पितरों के, विष्णु के, इन्द्र के और शिव के अति प्रिय पदार्थ हो; अतः हे राजताचल! शोक रूपी संसार के सागर से मुझे बचाओ।' इस प्रकार निवेदन करके जो मनुष्य सर्वश्रेष्ठ चाँदी के पर्वत का दान देता है वह दस सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त करता है। और वह विद्वान् चन्द्रमा के लोक में गन्धर्व, किन्नर तथा अप्सराओं के समूहों द्वारा पूजित होकर महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है। ॥१-१०॥

श्री मात्स्य महापुराण में रौप्याचल कीर्तन नामक इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९१॥

बानबेवाँ अध्याय

ईश्वर ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं सर्वश्रेष्ठ शक्कर के शैल के दान का विधान बतला रहा हूँ, जिसके विधिपूर्वक दान करने से सर्वदा ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य तथा शिव सन्तुष्ट रहते हैं। शक्कर के आठ भार द्वारा उत्तम तथा महान् अचल, चार भार द्वारा मध्यम अचल तथा दो भारों द्वारा अधम अचल बतलाया जाता है। जो थोड़ी सम्पति वाला पुरुष है, वह एक भार अथवा आधे भार द्वारा इसकी रचना करे। मुख्य पर्वत के चौथाई अंश द्वारा विष्कम्भ नामक पर्वतों की रचना करानी चाहिये। अन्नमय पर्वत के समान इसमें भी सभी सामग्रियों का प्रबन्ध कर देवताओं से संयुक्त तीन सुवर्ण निर्मित वृक्षों को मेरु के ऊपर उसी प्रकार स्थापित करना चाहिये। सभी पर्वतों के शिखर पर मन्दार, पारिजात तथा कल्पद्रुम के वृक्षों को स्थापित करना चाहिये। पर्वतों के पूर्व तथा पश्चिम की ओर हरिचन्दन और कल्प वृक्ष की स्थापना करनी चाहिये, विशेषकर शक्कर के पर्वत में इसका अवश्य ध्यान रखना चाहिये। सर्वदा मन्दर नामक

विष्कम्भ पर्वत पर पश्चिम की ओर मुख किये कामदेव की, गन्धमादन पर्वत पर उत्तर की ओर मुख किये कुवेर की, विपुलाचल पर पूर्व की ओर मुख किये वेदमूर्ति हंस की और सुपार्श्व पर दक्षिण की ओर मुख किये सुवर्ण निर्मित धेनु की मूर्ति होनी चाहिये। पूर्व कथित धान्य पर्वत की भाँति इसमें भी आवाहन आदि कार्यों को करके मध्य भाग में अवस्थित मुख्य मेरु को गुरु के लिए दान देना चाहिये और शेष चार विष्कम्भ पर्वतों को इस निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करते हुए पुरोहितों को दान करना चाहिये। 'यह शक्कर युक्त पर्वत सौभाग्य तथा अमृत का सार है, हे शैलेन्द्र! तुम सर्वदा हमारे लिए आनन्ददायी बनो। अमृत पीते हुए देवताओं के मुख से जो बूँदें पृथ्वी पर गिर पड़ी थीं, हे शर्कराचल! तुम उन्हीं से निर्मित हुए हो, अतः मेरी रक्षा करो। शक्कर कामदेव की धनुष के मध्य भाग से उत्पन्न हुई है; हे महापर्वत। तुम उसी शक्कर से बने हुए हो, अतः संसार सागर से मेरी रक्षा करो।' जो मनुष्य इस विधि से शक्कर के शैल का दान देता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा कर परम गति प्राप्त करता है। अपने नौकर-चाकरों के समेत वह चन्द्रमा, सूर्य तथा तथा ताराओं का सान्निध्य प्राप्तकर विष्णु भगवान् की प्रेरणा से वहाँ उनके साथ ही विमान पर सुशोभित होता है। इस प्रकार सौ कल्प व्यतीत हो जाने के बाद तीन अरब जन्म पर्यन्त आयु तथा आरोग्य से सम्पन्न होकर वह सातों द्वीपों का अधिपति होता है। इन सभी पर्वतों के दान देते समय मत्सर रहित हो यथाशक्ति भोजन करना चाहिये। गुरु की आज्ञा से सभी पर्वतों के दान में क्षार नमक के विना भोजन करना चाहिये। पर्वत की सब सामग्रियाँ ब्राह्मण के घर पर पहुँचवा देनी चाहिये। ॥१-१६॥

ईश्वर ने कहा—प्राचीनकाल में बृहत् नामक कल्प में इन्द्र का मित्र धर्ममूर्ति नामक एक राजा था, जिसने सहस्रों दैत्यों का वध किया था। उसके अमित तेज के प्रभाव से चन्द्रमा सूर्य आदि देवगण मलिन पड़ जाते थे, सैकड़ों शत्रु नाम लेने मात्र से पराजित हो जाते थे। इच्छानुकूल रूप धारण करने वाला वह राजा मनुष्य होकर भी दूसरों से नहीं जीता गया। उसकी रानी तीनों लोक में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी भानुमती नामक थी, जो आकृति में लक्ष्मी के समान दिव्य सौन्दर्य सम्पन्न एवं देवांगनाओं को भी लज्जित करने वाली थी। राजा को वह महारानी प्राणों से भी बढ़ कर प्रिय थी। वह अपनी दस सहस्र दासियों के मध्य में लक्ष्मी की तरह सर्वदा शोभायमान रहती थी। इसी प्रकार राजा को भी दस सहस्र राजा कभी नही छोड़ते थे। एक बार कभी गुरु के स्थान पर जाकर राजा ने अत्यन्त आश्चर्य एवं कुतूहल में आकर अपने पुरोहित ब्रह्मर्षि वसिष्ठ से पूछा। ॥१७-२१॥

राजा ने कहा—भगवन्! किस धर्म के प्रभाव से हमारी लक्ष्मी इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ है? और किस कारण से हमारे शरीर में विपुल तेज सर्वदा देदीप्यमान है?। ॥२२॥

वसिष्ठ ने कहा—राजन्! प्राचीन काल में लीलावती नाम की एक शिवभक्तिपरायण वेश्या थी, उसने विधिपूर्वक चतुर्दशी तिथि को सुवर्णमय वृक्षों के समेत अपने गुरु को लवण (नमक) पर्वत का दान दिया था। और उसी समय शूद्र योनि में उत्पन्न सोनारी का काम करने वाला शौण्ड नाम से प्रसिद्ध लीलावती के घर में उसका एक सेवक भी रहता था, जिसने लीलावती के सुवर्ण से अति श्रद्धापूर्वक धर्म कार्य

समझ कर विना कुछ पारिश्रमिक लिए ही उस दान में वृक्ष तथा प्रमुख देवता आदि को अति सुन्दर गढ़ कर तैयार किया था। राजन्! उस स्वर्णकार की स्त्री ने भी वेश्या के उक्त पर्वत के दान में बड़ी परिचर्या की थी, और सुवर्ण निर्मित उन देवताओं और वृक्षों को उज्ज्वल करके चमकाया था। इस प्रकार भक्तिपूर्वक उक्त दम्पति की सहायता से गुरु शुश्रूषा आदि कार्यों को पूरा कर वेश्या लीलावती बहुत दिवस व्यतीत हो जाने पर काल की गति को प्राप्त हुई। नारद जी! वह वेश्या अपने इस शुभ कर्म के प्रभाव से जीवन में किये गये सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होकर शिव के धाम को चली गई। और वह सोनार, जो दरिद्र होते हुए भी अति सामर्थ्यशाली था, और देने पर भी अपने पारिश्रमिक को वेश्या से नहीं ग्रहण किया था, इस समय आप हैं, जो इस जन्म में सातों द्वीपों के अधिपति तथा दस सहस्र सूर्य के समान तेजस्वी हैं। उस जन्म में आपकी जिस पत्नी ने आप द्वारा बनाये हुए सुवर्ण निर्मित वृक्षों को भली भाँति स्वच्छ करके उज्ज्वल किया था, वह इस जन्म में भी आप की पत्नी भानुमती हैं। पूर्वजन्म में देवता तथा वृक्षों के उज्ज्वल करने के कारण इस मर्त्यलोक में उनका इतना उज्ज्वल रूप हुआ है। रात्रिकाल में यतः शान्त चित्त होकर आप दोनों ने लवण पर्वत के विधानों के सम्पन्न होने में सहायता पहुँचाई थी, इसी कारण पृथ्वीतल में दुर्जेय, आरोग्य एवं सौभाग्य से सम्पन्न होकर आप दोनों को उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति हुई है। राजन्! इस जन्म में तुम भी धान्याचल आदि दस पर्वतों का विधानपूर्वक दान करो। 'ऐसा ही करूँगा' कह कर राजा धर्ममूर्ति ने गुरु की बातों का सत्कार कर उक्त धान्याचल आदि सभी पर्वतों को सैकड़ों बार वशिष्ठ को दान किया और फल स्वरूप देवताओं द्वारा पूजित होकर विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त किया। निर्धन मनुष्य यदि भक्तिपूर्वक इन पर्वतों के दानों को देखता है, दानी मनुष्यों द्वारा देते समय उनका स्पर्श मात्र कर लेता है, अथवा इस वृतान्त को ही भक्तिपूर्वक सुनता है, वा सम्मति देता है, तो वह भी निष्पाप होकर स्वर्ग को जाता है। मुनिपुंगव! इस मर्त्यलोक में मनुष्यों के वर्णन करने पर भवभय को नाश करने वाले ये शैलेन्द्र गण दुःस्वप्नों के प्रभाव को शान्त कर देते हैं, तो जो कोई शान्तात्मा इन सम्पूर्ण पर्वतों के दान कर्म को भली भाँति करता है उसके लिए भला क्या कहा जा सकता है? ॥२३-३५॥

श्री मात्स्य महापुराण में पर्वत प्रदान माहात्म्य नामक बानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९२॥

तिरानबेवाँ अध्याय

सूत ने कहा—प्राचीन काल में एक बार बैठे हुए वैशम्पायन से शौनक ने पूछा—सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करने के लिए कभी विनष्ट न होने वाले शान्तिक एवं पौष्टिक शुभ कर्मों को किस प्रकार करना चाहिये? ॥१॥

वैशम्पायन ने कहा—ब्रह्मन्! लक्ष्मी की कामना करने वाले एवं शान्ति की अभिलाषा करने वाले मनुष्य को ग्रहयज्ञ का आरम्भ करना चाहिये। उसी प्रकार आयु की वृद्धि एवं पुष्टि की प्राप्ति के

लिए भी वही अनुष्ठान करना श्रेष्ठ है। अब जिस प्रकार से उक्त ग्रहयज्ञ समाप्त होता है, उसे मैं कह रहा हूँ, सुनिये। सम्पूर्ण शास्त्रों की परिपाटी के अनुसार, ग्रन्थ विस्तार को संक्षिप्त करके, पुराणों तथा श्रुतियों द्वारा प्रमाणित ग्रहों की शान्ति का विधान मैं बतला रहा हूँ। पण्डितों द्वारा निर्दिष्ट पुण्यप्रद दिन में ब्राह्मणों द्वारा पाठ वा मांगलिक स्तोत्र करवाकर ग्रहों तथा ग्रहों के अधिदेवों की स्थापना कर हवन प्रारम्भ करना चाहिये। पुराणों तथा वेदों के जानने वाले पण्डितों ने तीन प्रकार के ग्रह यज्ञ के विधान बतलाये हैं। प्रथम वह, जिसमें दस हजार आहुति दी जाती है। द्वितीय वह, जिसमें एक लाख आहुति और तीसरा सम्पूर्ण मनोरथों का प्रदान करने वाला वह, जिसमें एक करोड़ आहुति दी जाती है। दस सहस्र आहुतियों से नवग्रहों का यज्ञ पूर्ण होना बतलाया जाता है, उसकी विधि जिस प्रकार पुराणों तथा वेदों में बतलायी गई है, मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। हवन कुण्ड के उत्तर तथा पूर्व दिशा की ओर दो बीता चौड़ी, दो किनारों से घिरी हुई, एक बीता ऊँची, चार कोनों वाली, उत्तर की ओर मुख वाली वेदी देवताओं की स्थापना करने के लिए बनवाये। उसमें अग्नि स्थापना करने के पश्चात् देवताओं का आवाहन करे। और इस प्रकार बत्तीस देवताओं को उसमें स्थापित करे। ॥२–९॥

सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु—ये संसार के हित करने वाले ग्रह बताये गये हैं। उक्त वेदी के मध्य भाग में सूर्य को अवस्थित जानना चाहिये। दक्षिण से लोहित (मंगल) को, उत्तर से वृहस्पति को, पूर्वोत्तर से बुध को, पूर्व से शुक्र को, दक्षिण पूर्व से चन्द्रमा को, पश्चिम से शनैश्चर को, पश्चिम दक्षिण से राहु को, और पश्चिम उत्तर से केतु को जानना चाहिये। इन सभी ग्रहों को श्वेत रंग के चावल से स्थापित करे। सूर्य का अधिदेवता शिव को जानना चाहिये। इसी प्रकार चन्द्रमा के अधिदेवता पार्वती, मंगल के स्कन्द, बुध के भगवान् विष्णु, गुरु वृहस्पति के ब्रह्मा, शुक्र के इन्द्र, शनैश्चर के यमराज, राहु के काल और केतु के चित्रगुप्त—ये इन नव ग्रहों के अधिदेवता हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, ऐन्द्री, प्रजापति, ब्रह्मा और सर्पगण—ये प्रत्यधिदेवता हैं। इस ग्रहयज्ञ में इन उपर्युक्त देवगणों के अतिरिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश तथा दोनों अश्विनी कुमारों को भी व्याहृतियों द्वारा आवाहित करना चाहिये। मंगल के समेत सूर्य को लालवर्ण का स्मरण करना चाहिये। अर्थात् सूर्य और मंगल का स्वरूप लालवर्ण का होना चाहिये। इसी प्रकार चन्द्रमा और शुक्र को श्वेत रंग का, बुध और वृहस्पति को पीलेवर्ण का, शनैश्चर और राहु को काले वर्ण का तथा केतु को धूम्र वर्ण का जिस रंग के ग्रह हों उसी रंग का वस्त्र तथा पुष्प आदि भी उन्हें दान करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष इस ग्रहयज्ञ में धूप, सुगंधित द्रव्य आदि तथा ऊपर से एक सुन्दर चँदोवा तान कर—जिस प्रकार अधिक सुन्दर हो—फल एवं पुष्प आदि सामग्रियों द्वारा ग्रहों की स्थापना करे। सूर्य के लिए गुड़ और चावल, चन्द्रमा के लिए घृत तथा दुग्ध से बना हुआ पदार्थ, मंगल के लिए हलुआ, बुध के लिए दूध तथा साठी का चावल, वृहस्पति को दही और चावल, शुक्र को घी और चावल, शनैश्चर को खिचड़ी, राहु को बकरी का मांस और केतु को विचित्र रंग का चावल का दान करना चाहिये। इन्हीं सब

खाद्य पदार्थों द्वारा ग्रहों की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पूर्व और उत्तर दिशा की ओर दही और अक्षत से अलंकृत, आम के पल्लवों से ढँके हुए, फल और जोड़े वस्त्र के समेत पाँच प्रकार के रत्नों से युक्त पाँच भंगों (अवयवों) वाले कलश की स्थापना करनी चाहिये, जो टूटा हुआ न हो और उसीमें वरुण की स्थापना करनी चाहिये। विप्रेन्द्र! गंगा आदि सम्पूर्ण पवित्र नदियों की, समुद्रों की, सरोवरों की, हाथी, घोड़ा, सड़क, बिल, नदी के संगम, तालाब और गौओं के बाड़े के नीचे की मिट्टी लाकर उसे सम्पूर्ण औषधि मिश्रित जल से संयुक्त कर यजमान के स्नान के लिए धर्मज्ञ पुरोहित को इस ग्रहयज्ञ में पहले ही से सुरक्षित रखनी चाहिये। पश्चात् इस मंत्र से स्नान करावे—'सब समुद्र, नदियाँ, सरोवर, नद आदि यजमान के पापों के नष्ट करनेवाले यहाँ आवें।' मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मंत्रोच्चारण कर इन देवताओं का आवाहन कर घी, जव, तिल आदि सामग्रियों द्वारा हवन कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। आँक, पलाश, खदिर, अपामर्ग (चिरचिरा) पीपल, औदुम्बर (गूलर) शमी, दूब, और कुश—ये क्रमशः नव ग्रहों की समिधाएँ हैं। इनमें से एक एक की एक सौ आठ, अथवा केवल अट्ठाईस समिधाओं द्वारा मधु, घृत तथा दही के साथ हवन करना चाहिये। फैलाने पर तर्जनी अंगूली से अंगूठे जितनी बड़ी, बरोंहों से रहित, विना डाली और पत्तों की समिधाएँ बुद्धिमान् पुरुष सर्वदा सभी कार्यों में प्रयुक्त करे। परमार्थ के महत्त्व को जाननेवाला यजमान सभी देवताओं के लिए विलकुल धीरे-धीरे—जिससे कोई दूसरा न सुन सके—अलग अलग देवताओं के उनके मंत्रों का उच्चारण करते हुए उन्हीं-उन्हीं के लिए हवन करे। घी में डुबोए हुए चरु भक्ष्य आदि पदार्थों की दस वार आहुति देकर तब व्याहृतियों का उच्चारण करके हवन करे। ब्राह्मण पुंगवों को चाहिये कि वे उत्तर दिशा की ओर अथवा पूर्व दिशा की ओर मुख करके हवन करें, और चरु को देवता के मंत्रों के उच्चारण के साथ ही साथ अग्नि में छोड़ें। उस घी में डुबोई हुई चरु को भली भाँति हवन कर लेने के पश्चात् सामान्य हवन करना चाहिये। ब्राह्मणों को 'आकृष्णेन'····इत्यादि मंत्र का उच्चारण कर सूर्य के लिए हवन करना चाहिये। इसी प्रकार चन्द्रमा के लिए 'आप्यायस्व'····इत्यादि मंत्र का उच्चारण कर, मंगल के लिए 'अग्निमूर्धा दिवो····' इस मंत्र का कीर्तन कर, सोमसुत बुध के लिए 'अग्ने विवस्वदुषस····' इस मंत्र का उच्चारण कर, बृहस्पति के लिए 'बृहस्पते परीदीयारथेन····' इस मंत्र का उच्चारण कर हवन करना चाहिये। शुक्र के लिए भी 'शुक्र ते अन्यत····' इस मंत्र का पाठ करना बतलाया गया है, शनैश्चर के लिए 'शन्नो देवीरभीष्टय····' इस मंत्र का पाठ करके हवन करना चाहिये। राहु के लिए 'कयानश्चित्र आभुवत्····' इस मंत्र का पाठ बतलाया जाता है, केतु की शान्ति के लिए 'केतुं कृण्वन्नपि····' इस मंत्र का पाठ करना चाहिये। शिव जी के लिए 'आ वो राज····' इस मन्त्र का पाठ कर हवन करना चाहिए। 'आपो हिष्ठा····'इस मंत्र का पाठ पार्वती के लिए और 'स्योन····'इत्यादि का स्वामिकार्तिकेय के लिए बतलाया गया है। विष्णु भगवान् का मंत्र 'विष्णोरिदं····' इत्यादि है और ब्रह्मा के लिए 'तमीश····' इत्यादि मंत्र का जप करना चाहिये। तत्पश्चात् 'इन्द्रमिद्देव तात्····' इस मंत्र का पाठ कर इन्द्र के लिए हवन करना चाहिये। यम के लिए 'चाऽयं गौः····' इत्यादि मंत्र का पाठ कर हवन करना चाहिये।

काल के लिए 'ब्रह्म जज्ञानम्....' इस मंत्र का पाठ प्रशंसित माना गया है। चित्रगुप्त का मंत्र वेदज्ञ लोग 'चाज्ञातम....' इत्यादि जानते हैं। 'अग्निं दूतं वृणीमहे....' इस मंत्र को अग्नि के लिए लोग बतलाते हैं। 'उदुत्तमं वरुण....' इस मंत्र का पाठ जल के लिए कहा गया है। वेदों में पृथ्वी के लिए 'पृथिव्यन्तरिक्षम्....' यह मंत्र बतलाया गया है। विष्णु के लिए 'सहस्रशीर्षा पुरुष....' यह मंत्र बतलाया गया है, इन्द्र के लिए 'इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत्' यह मंत्र कहा गया है। देवी के लिए 'उत्तानपर्णे सुभगे....' यह मंत्र बतलाया जाता है। प्रजापति के लिए 'प्रजापति....' यह मंत्र बतलाया गया है। 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' यह मंत्र सर्पों के लिए कहा जाता है, ब्रह्मा के लिए 'एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्यः....' यह मंत्र कहा गया है। विद्वानों ने गणेश के लिए 'चाऽऽनूनं' यह मंत्र बतलाया है। 'जातवेदसे सुनवाम....' इत्यादि दुर्गा का मंत्र कहा जाता है। आकाश का 'आदित्प्रत्नस रेतस....' यह मंत्र बतलाया गया है। वायु का मंत्र 'काणा शिशुंमहीनां' बतलाया है। अश्विनीकुमारों का 'एषो उषा अपूर्व्या....' यह मंत्र कहा जाता है 'मूर्धानं दिव....' इस मंत्र का उच्चारण कर पूर्णाहुति करनी चाहिये। हे ब्रह्मन्! हवन की समाप्ति हो जाने पर बाजा तथा मांगलिक गीतों के मध्य में अभिषेचन के मंत्रों का उच्चारण करते हुए पूर्व तथा उत्तर की ओर मुख करके उसी जलकलश के द्वारा यजमान का स्नान वे चार ब्राह्मण करायें, जो विकृत अथवा न्यून अंगों वाले न हों तथा सुवर्ण निर्मित माला आदि से विभूषित हों। 'ब्रह्मा विष्णु तथा शिव—ये सब देवता तुम्हारा अभिषेचन करें। वासुदेव, जगन्नाथ, शक्तिशाली संकर्षण, प्रद्युम्न, तथा अनिरुद्ध आदि तुम्हारी विजय करें। देवराज इन्द्र, भगवान् अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, शिव, ब्रह्मा के सहित शेषनाग और दिक्पाल गण —ये सब तुम्हारी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, तुष्टि और क्रान्ति—ये माताएँ जो सब धर्म की पत्नियाँ हैं, आकर तुम्हारा अभिषेचन करें। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु—सब ग्रह तृप्त होकर तुम्हारा अभिषेचन करें। देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मुनि, गौएँ, देवमाताएँ, देव-स्त्रियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराएँ, सब प्रकार के अस्त्र शस्त्र, राजागण, वाहन, औषधियाँ, रत्न, काल, के अवयव—युग दिन, रात, पहर, घड़ी, पला, विपला आदि—नदियाँ, समुद्र, पर्वत, तीर्थ, बादल समूह, नद—ये सब तुम्हारे मनोरथों के पूर्ण करने के लिए तुम्हारा अभिषेचन करें।' इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणों से सम्पूर्ण औषधियों एवं सुगन्धित वस्तुओं द्वारा स्नान कराये जाने के बाद यजमान अपनी पत्नी के समेत श्वेत वस्त्र धारण कर श्वेत रंग के सुगन्धित चन्दनादि से विभूषित हो अपने परिनिष्ठित तथा विद्वान् पुरोहितों की विस्मय रहित हो प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा आदि से पूजा करे। सूर्य के लिए कपिला गाय तथा चन्द्रमा के लिए शंख का दान देना चाहिये। मंगल के लिए भार ढोने में समर्थ, डीलवाले एक लाल बैल का दान देना चाहिये। बुध के लिए सुवर्ण का दान करना चाहिये, वृहस्पति के लिए पीले रंग के दो वस्त्र देने चाहियें। दैत्य गुरु शुक्र के लिए श्वेत रंग का बैल, सूर्य पुत्र शनैश्चर के लिए काली गाय देनी चाहिये, राहु के लिए लोहे की बनी हुई वस्तु देनी चाहिये और केतु के लिए श्रेष्ठ बकरा। यजमान को सुवर्ण के साथ ये दक्षिणाएँ देनी चाहियें।

अथवा सभी ग्रहों के लिए सुवर्ण से अलंकृत गौएँ ही देनी चाहिये, अथवा सुवर्ण ही दे। तात्पर्य यह कि जिससे गुरु प्रसन्न हो वही वस्तु देनी चाहिये। सभी कार्यों में निम्न मंत्रोच्चारण के साथ ही दक्षिणा देनी चाहिये। मंत्र—'हे कपिले! तुम रोहिणी रूपा हो, सम्पूर्ण देववर्गों की पूजनीया हो, सर्व तीर्थ तथा देवमयी हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। शंख! तुम जगत् के सभी पुण्यमय पदार्थों में भी अधिक पुण्यप्रद हो, मंगल दायी में भी सर्वाधिक मंगलदाता हो, विष्णु भगवान् के हाथों में सुशोभित रहते हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। जगत को आनन्दित करने वाले! तुम वृषभ रूप से साक्षात् धर्म हो, भगवान् [1]अष्टमूर्ति के वाहन हो अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।' फिर (सुवर्ण से) प्रार्थना करे। 'सुवर्ण! तुम भगवान् हिरण्यगर्भ (ब्रह्माजी) के गर्भ स्वरूप हो, अग्नि और सूर्य के बीज हो, अनन्त पुण्य तथा फल को देने वाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।' (वस्त्र से) 'यतः पीले वस्त्र का जोड़ा भगवान् विष्णु को अति प्रिय है, इसलिए विष्णो! उस के दान देने से तुम मुझे शान्ति दो।' 'पृथ्वी! तुम धेनु रूप में भगवान् विष्णु के समान फल देनेवाली, पूजनीय तथा सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाली हो, अतः मुझे नित्य शान्ति प्रदान करो। सारे लाङ्गल (हल) तथा हथियार आदि के परिश्रमपूर्ण कार्य तुम्हारे ही अधीन हैं अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। सूर्य के वाहन! तुम नित्य ही सभी प्रकार के यज्ञ कार्यों में प्रमुख अंग रूप से निर्धारित रहते हो अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। गौअरे के अङ्गों में चौदहों भुवन निवास करते हैं अतः इस लोक तथा परलोक में वह हमारी लक्ष्मी के लिए सहायक हों। यतः भगवान् विष्णु की शैय्या सर्वदा अशून्य (लक्ष्मी से युक्त) रहती है अतः दान देने से हमारी शैय्या भी प्रत्येक जन्म में अशून्य रहे। सभी रत्नों में सम्पूर्ण देवगण निवास करते हैं अतः रत्नों के दान करने से देवगण हमें भी रत्नों को दें। अन्य वस्तुओं के दान पृथ्वी दान के सोलहवें भाग की भी समानता नहीं कर सकते अतः इस लोक में उस परमपुण्यप्रद पृथ्वी दान के करने से मुझे शान्ति प्राप्त हो।' इस प्रकार भक्तिपूर्वक कृपणता छोड़कर रत्न, सुवर्ण वस्त्रादि, धूप, पुष्प एवं चन्दन आदि पूजा की सामग्रियों द्वारा ग्रहों की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इस विधि के अनुकूल जो मनुष्य ग्रहों की पूजा करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है और मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग लोक में पूजित होता है। जिस निर्धन मनुष्य को कोई एक ग्रह अत्यन्त पीड़ा देने वाला हो, उस बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि उस पीड़ा पहुँचाने वाले एक ग्रह की यत्नपूर्वक पूजा करके अन्य ग्रहों की भी पूजा करे। ग्रहगण, गौएँ, राजा तथा विशेषकर ब्राह्मण लोग पूजित होने पर तो पूजा करनेवालों के मनोरथों को पूर्ण करते हैं, किन्तु अपमानित होने पर उसे जला देते हैं। जिस प्रकार बाण के प्रहार से बचाने में कवच वारण (बचानेवाला) होता है उसी प्रकार दुर्दैव के प्रहार को निवारण करने वाली यह शान्ति (ग्रहयज्ञ) वारण होती है। इसलिए समृद्धि की इच्छा करनेवाले मनुष्य को दक्षिणा के विना यज्ञ नहीं

---

[1]पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, यष्टा, सूर्य और चन्द्रमा, आठ मूर्ति वाले भगवान् शंकर।

करना चाहिये । क्योंकि भरपूर दक्षिणा देने पर एक ब्राह्मण भी सन्तुष्ट होकर मनोरथ सिद्ध कर सकता है । सर्वदा दस सहस्र आहुतियों द्वारा सम्पन्न होने वाला यह हवन नव ग्रहों के यज्ञ में होता है । मुनिश्रेष्ठ ! विवाहोत्सव, देवप्रतिष्ठा आदि कार्यों में तथा चित्त के उद्विग्न होने अथवा आकस्मिक आपत्तियों के घटित होने पर सर्वथा विघ्नों के नाश के लिए यह दस सहस्र आहुतियों का हवन करने का विधान बतलाया गया है । अब इसके पश्चात् एक लाख आहुतियों वाले यज्ञ को सुनो, क्योंकि बुद्धिमान् लोग सब प्रकार के मनोरथों की प्राप्ति के लिए इस लक्षहोम की महत्ता जानते हैं । यह पितरों को अतिप्रिय तथा भुक्ति और मुक्ति का देनेवाला है । ग्रहों तथा तारा के बल को प्राप्त कर अर्थात् ऐसी लग्न में जब कि कर्त्ता की राशि पर ग्रहों तथा ताराओं की क्रूर दृष्टि न पड़ती हो, ब्राह्मणों द्वारा वेदपाठ तथा स्वस्ति वाचनादि मांगलिक स्तोत्र कराकर अपने घर की उत्तर-पूर्व दिशा की ओर बुद्धिमान् पुरुष मण्डप की रचना करे । अथवा शिवालय की समीपवर्ती भूमि पर ही मण्डप बनाये । चार कोनोंवाला दस हाथ अथवा आठ हाथ परिमाण का मण्डप विधान पूर्वक बनवाना चाहिये, जिसका प्रधान द्वार उत्तर दिशा की ओर हो । बुद्धिमान् पुरुष मण्डप की भूमि को प्रयत्नपूर्वक पूर्व तथा उत्तर की ओर ढालू रखे । मण्डप की पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर एक भाग में, जिस प्रकार विधान बतलाया गया है, उसी के अनुकूल एक सुन्दर कुण्ड निर्मित करे, जो चारों ओर से समान तथा चौकोना हो, उसके मुख भाग पर योनि के आकार का घृतपात्र रखने का स्थान बना हो और वह मेखलाओं से अलंकृत हो । उस कुण्ड की मेखला चार अंगुल की विस्तृत तथा उतनी ही ऊँची होनी चाहिये । इसकी भूमि चारों ओर से बराबर और पूर्व और उत्तर की ओर झुकी हुई होनी चाहिये । सभी लोकों की शान्ति के लिए उक्त नवग्रह यज्ञ का विधान बतलाया गया है । ऊपर बतलाये गये परिमाण से अधिक वा न्यून कुण्ड अनेक प्रकार का भय देनेवाला होता है अतः उपर्युक्त परिमाण के अनुकूल ही शान्तिकुण्ड बनाना चाहियें । ब्रह्मा ने लक्ष आहुति वाले हवन को इससे दस गुना अधिक पुण्यदायी माना है, इसे प्रयत्नपूर्वक यथेष्ट आहुति तथा दक्षिणा से सम्पन्न करना चाहिये । दो हाथ विस्तृत तथा चार हाथ लम्बा यज्ञकुण्ड इस लक्षाहुति के हवन में बनाना चाहिये, इसके भी मुखभाग पर पूर्ववत् योनि का निर्माण हो और उसके चारों ओर तीन मेखलाएँ बनी हों । उक्त कुण्ड के उत्तर और पूर्व की ओर तीन बीते पर अवस्थित, पूर्व और उत्तर की ओर झुका हुआ चारों ओर से चौकोना, विष्कम्भ का आधा ऊँचा स्थण्डिल (बालू की बनी हुई वेदी, जो तीन प्राचीरों से युक्त हो) देवताओं के स्थापित करने के लिए विश्वकर्मा ने बतलाया है । जिनमें प्रथम प्राचीर दो अंगुल ऊँची तथा शेष दो प्राचीरें एक अंगुल ऊँची होनी चाहियें । पण्डित लोग इन सभी प्राचीरों की चौड़ाई तीन अंगुल बतलाते हैं । स्थण्डिल की भित्ति दस अंगुल ऊँची होनी चाहिये । उक्त रीति के अनुसार इस हवन में भी पुष्प तथा अक्षतों द्वारा देवताओं का आवाहन करना चाहिये । हे मुनियों में श्रेष्ठ ! अधिदेवता तथा प्रत्यधिदेवताओं के साथ सभी ग्रहों को सूर्य के सम्मुख ही स्थापित करना चाहिये । उन्हें उत्तर दिशा अथवा पराङ्मुख (पीछे की ओर) नहीं स्थापित करना चाहिये । इस हवन कार्य में लक्ष्मी की इच्छा करने वाले पुरुष को गरुड़ की विशेष पूजा करनी चाहिये । उसका मंत्र यह

है—हे गरुड़ ! सामवेद की ध्वनि ही तुम्हारा शरीर है। तुम परमात्मा विष्णु के वाहन हो, सर्वदा विषयुक्त पापों (सर्पों) का नाश करनेवाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।' पूर्वकथित रीति के अनुकूल ही कलश स्थापन का विधान करके उसी प्रकार हवन कार्य का प्रारम्भ करे। एक लक्ष आहुतियों का हवन करके जितनी समिधाओं की संख्या हो उतनी आहुति पुनः दे, तत्पश्चात् घृतकलश द्वारा जलती हुई अग्नि के ऊपर घृत की धारा गिरावे। गूलर की ऐसी गीली लकड़ी, जिसमें खोखलापन न हो, सीधी हो बाहु भर लम्बी हो, का स्रुवा बनवाकर उसी के द्वारा उन दोनों स्तम्भों (खम्भों) के ऊपर करके घी की धारा भली भाँति अग्नि के ऊपर गिरावे। हवन करते समय अग्नि विष्णु, शिव, चन्द्रमा का सूक्त गान कराना चाहिये। उसी प्रकार ज्येष्ठसाम, महावैश्वानर साम का भी मांगलिक पाठ करवाना चाहिये। यजमान का स्नान तो उसी प्रकार कराना चाहिये, जैसा कि ऊपर कह चुके हैं। काम क्रोध से रहित हो शान्तात्मा यजमान को भी पूर्वकथित रीति से पृथक्-पृथक् पुरोहितों को दक्षिणा देनी चाहिये। इस नवग्रह यज्ञ में वेद के जाननेवाले चार उत्तम ब्राह्मण चाहिये। वेदों के पारगामी शान्तचित्त दो ही पुरोहित दस सहस्र आहुतियों वाले हवन में होने चाहियें, विस्तार इससे अधिक नहीं करना चाहिये। उसी प्रकार इस लक्ष आहुति वाले हवन में यथाशक्ति अट्ठारह पुरोहित होने चाहिये अथवा उसी प्रकार चार ही पुरोहितों की नियुक्ति मत्सर रहित हो करनी चाहिये। मुनियों में श्रेष्ठ ! ऊपर कहे गये नवग्रह यज्ञ की अपेक्षा इस लक्ष हवन यज्ञ में दसगुनी अधिक खाद्य सामग्रियों का तथा आभूषणों का यथाशक्ति दान करना चाहिये। शक्तिसम्पन्न पुरुष को एक शैय्या, जो उत्तमोत्तम वस्त्रों से संयुक्त हो, सुवर्ण निर्मित बाजू-बन्द, विजायठ, कान और अँगुलियों के विविध आभूषण तथा गले का हार आदि भी दान देना चाहिये। मनुष्य को यह यज्ञ कृपणतावश दक्षिणा रहित नहीं करवाना चाहिये। अज्ञान से अथवा लोभ से जो इसमें यथेष्ठ दान नहीं करता उसका परिवार नष्ट हो जाता है। समृद्धि की इच्छा रखनेवाले पुरुष को यथाशक्ति अन्न दान करना चाहिये क्योंकि अन्नदान के विना किया हुआ यह यज्ञ दारिद्र्य देनेवाला होता है। अन्नहीन यज्ञ राष्ट्र का विनाशक होता है, मंत्रहीन पुरोहित का एवं दक्षिणाहीन हवन करने वाले का; इस प्रकार अनुचित रीति से सम्पन्न यज्ञ के समान कोई शत्रु भी संसार में नहीं है। अल्प धनवाले पुरुष को कभी इस एक लाख आहुतियों वाले हवन का अनुष्ठान नहीं करना चाहिये; क्योंकि यज्ञ के अवसर पर उत्पन्न होनेवाली विग्रह जन्य अपूर्णता पीड़ाकारक होती है। इसलिए अल्पवित्त मनुष्य को विधिपूर्वक उसी (अपने पुरोहित की) अथवा दो वा तीन अथवा एक ही वेद पारगामी ब्राह्मण की प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा आदि से पूजा करनी चाहिये, इससे अधिक की नहीं। अपने वित्त के अनुकूल लक्ष हवन का अनुष्ठान करना चाहिये, इससे अधिक फल की प्राप्ति होती है क्योंकि इसके विधानपूर्वक अनुष्ठान करने से मनुष्य अपने सभी मनोरथों को प्राप्त करता है और शिव के लोक में वसु आदित्य तथा मरुत् गणों द्वारा एक सौ आठ कल्पपर्यन्त पूजित होता है, तत्पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति करता है। जो कोई मनुष्य किसी विशेष अभिलाषा से इस लक्ष हवन को विधिपूर्वक सम्पन्न करता है, वह अपने मनोरथ की प्राप्ति करता है और अनन्त पद का उपभोग करता है। पुत्र का

चाहने वाला पुत्र प्राप्त करता है, धनार्थी धन प्राप्त करता है; स्त्री चाहने वाला सुन्दरी स्त्री प्राप्त करता है, कुमारी कन्या सुन्दर पति प्राप्त करती है। अधिकार से भ्रष्ट पुरुष अपने अधिकार को पुनः प्राप्त करता है और लक्ष्मी का अभिलाषी यथेष्ट लक्ष्मी प्राप्त करता है। जो जो कामना मनुष्य इस यज्ञ से करता है, उसे प्रचुर परिमाण में प्राप्त करता है। जो किसी कामना से रहित होकर इसका अनुष्ठान करता है वह परब्रह्म में लय होता है। ब्रह्मा ने इस लक्षाहुति हवन से परिमाण में सौगुणी अधिक आहुति, प्रयत्न, दक्षिणा एवं फलयुक्त कोटि होम का विधान बतलाया है। अर्थात् उसमें सभी वस्तुएँ सौ गुणी लगती हैं। इस यज्ञ में पूर्वकथित भी रीति से ही ग्रहों तथा देवताओं का आवाहन और विसर्जन करना चाहिये। होम, स्नान तथा दान आदि कार्यों में भी उन्हीं मंत्रों को बतलाया गया है। कुण्ड, मण्डप एवं वेदी में अवश्य कुछ विशेषता है, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनो। इस कोटि हवन में सब ओर से बराबर, चौकोना, चार हाथ परिमाण का कुण्ड बनाना चाहिये, जो दो योनि वक्त्रों तथा तीन मेखलाओं से युक्त हो। पंडित लोगों को पहली मेखला दो अंगुल ऊँची बनानी चाहिये उसी प्रकार दूसरी को तीन अंगुल ऊँची बतलाते हैं। तीसरी मेखला की ऊँचाई और चौड़ाई चार अंगुल की होनी चाहिये। पहले कही गई उन दोनों मेखलाओं का विस्तार तो दो ही अंगुल करना चाहिये। योनि को सात वा आठ अंगुल चौड़ी और एक बीता लम्बी बनानी चाहिये। इसका मध्यम भाग कच्छप की पीठ की भाँति उठा हुआ हो, दोनों बगलों में एक अंगुल ऊँचाई हो। वह हाथी के ओंठ की भाँति लम्बी तथा छिद्र युक्त होनी चाहिये। सभी कुण्डों में योनि के बनाने का यही लक्षण बतलाया जाता है। सभी स्थलों पर इस कोटि हवन में मेखलाओं के ऊपर पीपल के पत्ते के समान चार बीते की वेदी होनी चाहिये, जो सुडौल तथा तीन मेखलाओं से युक्त हो। मेखला एवं वेदी की ऊँचाई का प्रमाण ऊपर कहा जा चुका है। इसमें सोलह हाथ का चौमुखा मण्डल होना चाहिये, उसमें पूर्व दिशा के द्वार देश पर ऋग्वेद पारगामी ब्राह्मण को बिठाना चाहिये। इसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुषों को दक्षिण दिशा में यजुर्वेद के विद्वान् को, पश्चिम दिशा में सामवेदाध्यायी को और उत्तर दिशा में अथर्ववेद विज्ञ ब्राह्मण को बिठाना चाहिये। हवन करने के लिए वेद तथा वेदांगों के पारगामी आठ विद्वानों को नियुक्त करना चाहिये, इसी प्रकार बारह और ब्राह्मणों को भी रखना चाहिये। इन सभी ब्राह्मणों की वस्त्र, पुष्प, माला, आभूषण एवं पूजन की अन्य सामग्रियों द्वारा भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। पूर्व दिशा में नियुक्त ऋग्वेद के ज्ञाता ब्राह्मण को उत्तराभिमुख होकर रात्रि सूक्त, रौद्र सूक्त, पावमान सूक्त, सुमंगल, एवं शान्ति प्रद स्तोत्रों का पाठ करते हुए शान्त भाव से स्थित रहना चाहिये। दक्षिण द्वार पर नियुक्त यजुर्वेदी ब्राह्मण से शाक्त, शाक्र, सौम्य, कौष्माण्ड एवं शान्ति सूक्त का पाठ करवाना चाहिये। सामवेद के छन्दों का गायक पश्चिम दिशा से सुवर्ण, वैराज, आग्नेय।' रुद्रसंहिता ज्येष्ठसाम तथा शान्तिक का पाठ करे। उत्तर दिशा में स्थित अथर्ववेदी विद्वान् को भी शान्तिसूक्त, सौरसूक्त, कल्याणप्रद शाकुनक सूक्त, पौष्टिक एवं महाराज्य का पाठ करते रहना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! इसमें भी पाँच अथवा सात ब्राह्मणों द्वारा पूर्वकथित रीति से हवन कराना चाहिये। स्नान एवं दान के वही पूर्वकथित मंत्र हैं। केवल वसुधारा का विधान लक्ष

हवन में कुछ विशिष्ट है। इस प्रकार की विधि से जो मनुष्य इस कोटि हवन का अनुष्ठान करता है, वह अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है और तत्पश्चात् विष्णु भगवान् के परमपद को प्राप्त करता है। जो मनुष्य इन तीनों ग्रहयज्ञों के विधान को पढ़ता है अथवा सुनता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा विशुद्धात्मा बन इन्द्र के पद को जाता है। धर्मज्ञ पुरुष अट्ठारह सहस्र अश्वमेध यज्ञ करके जो फल प्राप्त करता है वह इस कोटि हवन के करने से प्राप्त करता है। जैसा कि शिव जी का कहना है, इस कोटि हवन के करने से एक सहस्र ब्रह्महत्या एवं एक करोड़ गर्भहत्या करने का पाप नष्ट होता है। शत्रुओं को वश में करने के लिए, शत्रुओं का मारण एवं उच्चाटन आदि करने के लिए जो तंत्रकर्म किया जाता है, उन सब को, इस नवग्रह यज्ञ का अनुष्ठान करके तत्पश्चात् करना चाहिये। इसके न करने से पुरुष का किया हुआ वह काम्य यज्ञ कभी सफल नहीं हो सकता; इसलिए उसके करने के पूर्व उक्त दस सहस्र आहुतियों वाले हवन का अनुष्ठान तो अवश्यमेव करना चाहिये। उच्चाटन एवं किसी को वश करने के अनुष्ठान में कुंड को गोलाकार बनाना चाहिये, जो तीन मेखलाओं से युक्त, एक मुखवाला एवं विस्तार में रत्नि[1] भर जितना न हो। इन सभी कार्यों में पलाश की समिधा बतलायी गयी है, उसे मधु और गोरोचन से युक्त कर चन्दन अगुरु एवं केसर से भलीभाँति सिंचित कर लेना चाहिये। ब्रह्मा ने सर्वत्र मधु, घी, बेल एवं कमल द्वारा दस सहस्र आहुतियों वाले यज्ञ के करने का विधान बतलाया है। धर्मात्मा पुरुष वश्यकर्म में बेल के पत्ते एवं कमल के द्वारा 'सुमित्रिया न आप ओषधयः....इस वैदिक मंत्र द्वारा हवन करे। इसमें कलशस्थापन और अभिषेचन नहीं करने चाहियें। गृहस्थ पुरुष सब प्रकार की औषधियों द्वारा स्नान करके श्वेत रंग का वस्त्र धारण कर, सुवर्ण के बने हुये कण्ठहार द्वारा ब्राह्मणों की विधिपूर्वक पूजा करे। उन्हें महीन वस्त्र दे, सुवर्ण के समेत श्वेत रंग की गौएँ भी दे। यह पापनाशक हवन सम्पूर्ण शत्रुओं की स्वतंत्र सेनाओं को भी वश में कर देता है, और शत्रु को भी मित्र बना देता है। विद्वेषण एवं मारण आदि तंत्रकार्यों में तीन कोण का कुंड बनाना चाहिये, जिन के कोनों पर दो मेखलाएँ बनी हों। और वह सब ओर से एक हाथ लम्बा हो। पश्चात् ब्राह्मण जनेऊ को माला की तरह धारण कर लाल रंग की पगड़ी बाँध, लाल रंग का वस्त्र धारण कर हवन करें। नव कौओं के रक्त से भरे हुए तीन पात्रों से युक्त समिधाओं को लेकर बाज पक्षी की हड्डियों के समूह के साथ बाएँ हाथ से हवन करे। उस समय ब्राह्मणों को शिखा छोड़कर शत्रु के अकल्याण की कामना करते हुए हवन करना चाहिये। 'दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु.....'तथा 'हुँ फट' और 'श्येनाभिचार' नामक मंत्र का उच्चारण कर छुरे को अभिमंत्रित कर शत्रु का एक पुतला बनाकर उसी से काटे और इस प्रकार शत्रु के उस कल्पित शरीर के सभी टुकड़ों को भी अग्नि में छोड़ दे। इस ग्रहयज्ञ के विधान की समाप्ति होने पर सर्वदा पुनः मारण एवं विद्वेषण आदि तंत्र कार्यों को करते हुए इसका विधान करना चाहिये। तंत्र के यह यज्ञ मनुष्य को इसी जन्म में फल देने वाले होते हैं, अन्य जन्म में नहीं। इसलिए समृद्धि की इच्छा रखनेवाले

---

[1]मुठ्ठी बाँधने पर हाथ की जितनी लम्बाई होती है उसे रत्नि कहते हैं, उतना नहीं। अर्थात् कनिष्ठिका अँगुली के फैलाने पर हाथ की जितनी लम्बाई होती है, उतना लम्बा।

मनुष्य को इस जन्म में शान्ति कारक यज्ञों का ही अनुष्ठान करना चाहिये। जो मनुष्य इन तीनों ग्रहयज्ञों का अनुष्ठान विना किसी कामना के करता है वह विष्णु भगवान् के उस स्थान को प्राप्त करता है, जिसे प्राप्त कर पुनर्जन्म दुर्लभ है। जो मनुष्य इस विधान के वृतान्त को पढ़ता है अथवा सुनता है उसे कभी ग्रहों की पीड़ा नहीं होती और न उसके भाइयों आदि का कभी विनाश होता है। यह तीनों ग्रहयज्ञों का लिखा हुआ विधान जिस स्थान पर रहता है, वहाँ पर बालकों को कोई पीड़ा, रोग अथवा बन्धन नहीं होता। बुद्धिमान् लोग इस कोटि आहुतियों वाले यज्ञ को सम्पूर्ण यज्ञों का फल देने वाला, सम्पूर्ण पापों का विनाशक एवं भुक्ति-मुक्ति फल का प्रदाता जानते हैं। श्रेष्ठ देवता लोग लक्ष आहुतियों वाले हवन का अश्वमेध यज्ञ जितना फल बतलाते हैं, उसी प्रकार नवग्रह यज्ञ का बारह यज्ञों के समान फल कहते हैं। उत्सव एवं आनन्द को देनेवाले, सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाले देव यज्ञों के अभिषेक का यह विधान मैं अब बतला चुका। जो इसी प्रकार इसका पाठ करता है, अथवा प्रसंग से सुनता मात्र है वह अपने शत्रुओं को पराजित करता है और स्वयं दीर्घायु एवं आरोग्य से युक्त रहता है। ॥१०-१६१॥

श्री मात्स्य महापुराण में नवग्रह होम शान्ति विधान नामक तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९३॥

चौरानबेवाँ अध्याय

शिव ने कहा—सूर्य सर्वदा लाल कमल के सुन्दर आसन पर समासीन, हाथ में पद्म धारण किये हुए, पद्म के भीतरी भाग की तरह कान्ति युक्त, सात घोड़े और रस्सी (लगाम) से युक्त दो भुजाओं वाले होते हैं। वर देने वाले चन्द्रमा को, श्वेत रंग के वस्त्रों से अलंकृत, श्वेत रंग के अश्व एवं श्वेत रथ पर श्वेत रंग के आभूषणों से सुसज्जित, हाथों में गदा युक्त और दो बाहुओंवाला बनाना चाहिये। वरदायक पृथ्वी पुत्र मंगल लाल रंग की पुष्प माला एवं वस्त्र से अलंकृत शक्ति शूल और गदा धारण किये हुए चार भुजाओं से युक्त तथा श्वेत रोम वाले होते हैं। अपने भक्तों को वरदान देने वाले बुध पीले रंग की माला और वस्त्र धारण किये हुए, कनैर पुष्प के समान द्युतिमान्, हाथ में तलवार, चर्म और गदा धारण किये हुए, सिंह पर समासीन होते हैं। देवता और दैत्यों के गुरु बृहस्पति और शुक्र क्रमशः पीले और श्वेत रंग वाले, चतुर्भुज, दण्ड धारण किये हुए, पाश, यज्ञोपवीत और कमण्डलु से सुशोभित होते हैं। वरदायक सूर्य पुत्र शनैश्चर को नीलम मणि के समान कान्तिमान्, शूलधारी, गिद्ध पर आसीन, बाण और धनुष धारण किए हुए बनाना चाहिये। इसी प्रकार वरदान देने वाले राहु इस लोक में भयानक मुखाकृति, खड्ग, चर्म और शूल धारण किये हुए, नीले रंग के सिंहासन पर शोभायमान बतलाये जाते हैं। केतु सर्वदा धूम्र के समान आकृतिवाले, दो भुजावाले, गदा धारण किये हुए, विकृत मुख वाले, गिद्ध पर समासीन होते हैं। लोक मंगल को करनेवाले इन समस्त नवग्रहों को मुकुट युक्त बनाना चाहिये और अपने एक सौ आठ अंगुल ऊँचा बनाना चाहिये। ॥१-९॥

श्री मात्स्य महापुराण में ग्रह स्वरूप वर्णन नामक चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९४॥

पंचानबेवाँ अध्याय

नारद ने कहा—'भूत और भविष्य के जानने वाले ! भगवन् भुक्ति तथा मुक्ति के फल देने वाले किसी अन्य व्रत को भी यदि आपने सुना हो तो मुझसे कहिये ।' नारद के इस प्रकार कहने पर शिव ने कहा—ब्रह्मन् ! शब्द शास्त्र का पारगामी, तपस्या में मेरे ही समान प्रभावशाली, विस्तृत पुराणों एवं वेदों का जानने वाला यह नन्दी नामक गणेश्वर वृषभ रूप धारी धर्म है । नारद जी ! अब इसके बाद आपको शैव (शिव सम्बन्धी) व्रतों को यही बतलायेगा । ॥१-३॥

मत्स्य ने कहा—देवाधिदेव शंकर भगवान् ऐसा कह कर वहीं पर अन्तर्हित हो गये । तदनन्तर व्रतों के माहात्म्यों के सुनने के परम इच्छुक नारद नन्दिकेश्वर से बोले—नन्दिकेश्वर ! भगवान् शिव ने जैसा आदेश दिया है उसी के अनुसार आप मुझे माहेश्वर व्रत का विधान बतलाइये ॥४॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—ब्रह्मन् ! सावधानतापूर्वक माहेश्वर व्रत का विधान सुनिये । तीनों लोकों में विख्यात शिव चतुर्दशी नामक व्रत को मैं बतला रहा हूँ । अगहन महीने की शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि को एक बार भोजन कर देवाधिदेव शंकर की प्रार्थना करे—'भगवन् मैं आप की शरण में हूँ । चतुर्दशी तिथि को निराहार रह भली भाँति आप की पूजा कर सुवर्ण निर्मित वृषभ का दान कर के मैं दूसरे दिन भोजन करूँगा ।' ऐसी प्रतिज्ञा कर के शयन करे । दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर व्रती मनुष्य स्नान तथा जप आदि करने के पश्चात् पार्वती के साथ शंकर की सुन्दर कमल के पुष्पों एवं सुगन्धित पदार्थ तथा फूल, माला एवं चन्दनादि सामग्रियों द्वारा पूजा करे । शिव को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों पैरों की पूजा करनी चाहिये । इसी प्रकार सर्वात्मा को नमस्कार है—ऐसा कह शिर की, त्रिनेत्र को नमस्कार है—ऐसा कह नेत्रों की, हरि को नमस्कार है—ऐसा कह ललाट प्रदेश की, इन्दुमुखको नमस्कार है—ऐसा कह मुख की, श्रीकण्ठ को नमस्कार है—ऐसा कह कन्धों की, सद्योजात को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों कानों की, वामदेव को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों भुजाओं की, अघोरहृदय को नमस्कार है—ऐसा कह हृदय की पूजा करनी चाहिये । तत्पुरुष कों नमस्कार है—ऐसा कह दोनों स्तनों की, ईशान को नमस्कार है—ऐसा कह उदर की पूजा करनी चाहिये । अनन्तधर्म को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों पार्श्वों अर्थात् कुक्षिप्रदेशों की, ज्ञानभूत को नमस्कार है—ऐसा कह कटि प्रदेश की, अनन्तवैराग्यसिंह को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों उरुओं की पूजा करनी चाहिये । पुनः बुद्धिमान् पुरुष अनन्तैश्वर्यनाथ को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों जानुओं की पूजा करे । प्रधान को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों जंघों की, व्योमात्मा को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों गुल्फों की और व्योमकेशात्मरूप को नमस्कार है—ऐसा कह केशों की तथा पीठ की पूजा करनी चाहिये । पुष्टि को नमस्कार है, तुष्टि को नमस्कार है—ऐसा कह पार्वती की भी पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार पूजन करने के उपरान्त जल कलश समेत सुवर्णनिर्मित वृषभ को श्वेत रंग के वस्त्र तथा पुष्प माला आदि से सुशोभित कर पाँच प्रकार के रत्नों से संयुक्त कर अनेक प्रकार की खाद्य सामग्रियों के साथ सुयोग्य ब्राह्मण को दान करे । प्रार्थना का मंत्र—

'इस यज्ञ में देवाधिदेव पिनाक धारण करनेवाले सद्योजात भगवान् शंकर प्रसन्न हों।' तदनन्तर मंगलकारी ब्राह्मणों को बुलाकर भक्तिपूर्वक भोजनादि सामग्री द्वारा उन्हें तृप्त करे और स्वयं दधिमिश्रित घृत को खाकर उत्तर दिशा की ओर मुख कर पृथ्वी पर ही शयन करे। फिर पूर्णिमा तिथि को ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा कर मौन धारण कर भोजन करे। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को भी इन सभी विधानों को सम्पन्न करे। उसी तरह सभी चतुर्दशी तिथियों में पूर्वकथित रीति से पूजन करे। प्रत्येक महीनों में जो-जो विशेषताएँ हैं, उन्हें क्रम से सुनिये। अगहन आदि महीनों में क्रमशः इन निम्नलिखित नामों का उच्चारण करना चाहिये। शंकर! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकृत हो, करवीरक! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं, त्र्यम्बक! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकृत हो, तत्पश्चात् महेश्वर को नमस्कार करे। महादेव! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकृत हो, तदनन्तर स्थाणु को नमस्कार है—ऐसा कहे। नाथ पशुपते! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। पुनः शम्भु को नमस्कार है। परमानन्द! तुम्हें हमारा नमस्कार है, सोमार्धधारी को हमारा नमस्कार है, भीम को नमस्कार है—ऐसा कह फिर कहे 'देव! मैं आप ही की शरण में हूँ।' गोमूत्र, गोबर, दुग्ध, दही, घृत, कुशमिश्रित जल, पंचगव्य, बेल, कपूर, अगुरु, जव तथा काला तिल—ये सामग्रियाँ अगहन आदि महीनों में क्रमशः विधिपूर्वक प्राशन के लिए बतलायी गई हैं। प्रत्येक महीने की दोनों—कृष्ण तथा शुक्ल—चतुर्दशी तिथियों में इनमें से एक-एक के प्राशन करने का विधान बतलाया गया है। मन्दार, मालती, धतूरा, सिन्दुवार, अशोक, मल्लिका, अर्क, कदम्ब, गुलाब तथा कमल—इन सब में से एक-एक के पुष्पों से दोनों चतुर्दशी तिथियों में पार्वतीपति शंकर की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पुनः कार्तिक महीना आने पर अन्न, अनेक प्रकार की खाद्य सामग्री, वस्त्र, पुष्प, माला एवं आभूषण आदि से ब्राह्मणों को खूब सन्तुष्ट करना चाहिये। व्रती पुरुष वेदोक्त विधि के अनुकूल नीले रंग का वृषोत्सर्ग करके सुवर्णनिर्मित शिव तथा पार्वती की मूर्ति को तथा गाय के साथ वृषभ नन्दीश्वर की मूर्ति को, जो आठ मोतियों के समेत हों, दान दे। तथा श्वेत रंग के रेशमी वस्त्र से आच्छादित सम्पूर्ण सामग्रियों से युक्त जल कलश के समेत एक शय्या भी दान दे। पुनः ताँबे के बने पात्र के ऊपर साठी के चावल समेत शिव जी को स्थापित कर शान्त, वेद व्रतधारी ज्येष्ठसाम को जानने वाले ब्राह्मण को दान करे। कभी बगुले के समान कपट व्रतधारी ब्राह्मण को दान नहीं देना चाहिये। गुणज्ञ, श्रोत्रिय एवं वेदपाठी तत्त्वज्ञ आचार्य को ही यह दान देना चाहिये। वस्त्र, पुष्प, माला एवं आभूषण आदि को, अविकृत अंगोंवाले, सहनशील, सदा कल्याणकारी सपत्नीक ब्राह्मण की विधिपूर्वक पूजा कर दान देना चाहिये। गुरु की विद्यमानता में गुरु को ही यह दान देना चाहिये, उनकी अविद्यमानता में किसी अन्य ब्राम्हण को। दान देने में कृपणता नहीं करनी चाहिये, कृपणता करने से दोषभागी होकर व्रती पतित हो जाता है। इस प्रकार की विधि से जो मनुष्य शिवचतुर्दशी का अनुष्ठान करता है वह सौ अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। ब्रह्महत्या आदि पाप—वे चाहे इस जन्म के किये हों अथवा पूर्व जन्म के, पितरों के किये हों वा पितरों के भाई बन्धु के—सभी इसके पुण्य प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। इस लोक में दीर्घायु, आरोग्य, कभी नष्ट न होने वाले कुल और अन्न की विपुल समृद्धि प्राप्तकर तथा परलोक स्वर्ग में चतुर्भुज ब्रह्मा एवं गणाधिप गणेश

का पद भोगते हुए सौ करोड़ वर्षों तक निवास कर शंकर का पद प्राप्त करता है। इस शिव चतुर्दशी के अनन्त फल का माहात्म्य यदि मुख में दस सहस्र करोड़ जिह्वाएँ भी हो जायँ तब भी बृहस्पति, इन्द्र, ब्रह्मा, सिद्धों के समूह और मैं स्वयं वर्णन नहीं कर सकता। जो सम्पूर्ण पापों का विनाश करनेवाली शिवचतुर्दशी के इस विधान को पढ़ता है अथवा सर्वदा इसका स्मरण करता है अथवा ईर्ष्या क्रोध आदि से रहित हो केवल सुनता भर है, उस अनिन्दनीय चरित्रवाले मनुष्य की देवताओं की करोड़ों सुन्दरी नारियाँ स्तुति करती हैं तो भला जो व्रती सर्वदा इसका अनुष्ठान करता है उसके लिए क्या कहा जा सकता है? जो कोई स्त्री अतिशय भक्ति से अपने पति से पुत्रों से अथवा गुरु जनों से पूछकर इस व्रत का पालन करती है वह भी परमेश्वर के प्रसाद से शिव के परम पद को प्राप्त करती है। ॥५-३८॥

श्री मात्स्य महापुराण में शिवचतुर्दशी व्रत वर्णन नामक पंचानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९५॥

छानबेवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वर ने कहा—नारद जी! फल त्याग करने का माहात्म्य सुनिये, जो परलोक में अक्षय फलदायी एवं सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है। मुनिवर! कल्याण प्रद अगहन के महीने में तृतीया तिथि को उक्त व्रत प्रारम्भ करना चाहिये अथवा द्वादशी अष्टमी वा चतुर्दशी—किसी भी तिथि में प्रारम्भ करना चाहिये। शुक्ल पक्ष की इन्हीं तिथियों में ब्राह्मणों द्वारा वेद मंत्रादि का पाठ करवाकर इस व्रत का आरम्भ करना चाहिये। मुनिवर्य्य! दूसरे पुण्यप्रद महीनों में भी इसका आरम्भ किया जा सकता है। यथाशक्ति दक्षिणा समेत दुग्ध में बने हुए पदार्थों का ब्राह्मणों को भोजन करवाये। इस व्रत में अट्ठारह प्रकार के अन्नों का एवं अन्य फल तथा कन्द आदि का एक वर्ष पर्यन्त त्याग करना चाहिये, केवल औषधि में सम्मिलित अन्न वा फल को छोड़ कर। नन्दी के समेत शिव तथा धर्मराज की प्रतिमा सुवर्ण द्वारा निर्मित करवाये। कुष्माण्ड, बिजौरा, चकोतरा (एक प्रकार का नींबू) भाँटा, कटहल, आमड़ा, कैथा, तरबूजा, बालुक, (ककड़ी वा कचरी), बेल, पीपल, बेर, जम्बीर (एक प्रकार का नींबू) केला की फली, कमरख तथा दाडिम—इन सोलहों फलों को अपनी आर्थिकस्थिति के अनुरूप सुवर्ण का बनवाये। मूली, आँवला, जामुन, इमली, करौंदा, कंकोल, मिर्च, इलायची, कुन्दुरू, केरीर, कुटज, शमी, गूलर, नारियल, अंगूर तथा दोनों बृहती—इन सोलह फलों को यथाशक्ति चाँदी का बनवाये। ताड़ तथा अगस्त के फलों को ताम्रमय कराना चाहिये उसी प्रकार विकंकद वा मैनफल तथा काश्मरी (खंभारी) के फल, सूरन की कन्द, रतालू, धतूरा, पिहटिया, चित्रबल्ली के फल, कूट, शाल्मलि के फल, आम, मटर, महुआ, बरगद तथा पटोल (परोरा)—इन सोलह फलों को यथाशक्ति ताँबे का बनवाना चाहिये। फिर अन्न के ऊपर जल के दो कलशों को रखना चाहिए, जो वस्त्र से युक्त हों। तत्पश्चात् एक सुन्दर शय्या प्रस्तुत करे और उसके ऊपर दो वस्त्र रखे। फिर भोजन के तीन पात्रों समेत यमराज, रुद्र तथा वृष—इन तीनों की मूर्तियों को तथा एक गाय को कुटुम्बी शान्त

एवं सपत्नीक ब्राह्मण की उस पुण्य प्रद दिन में विधिपूर्वक पूजा करके दान दे। प्रार्थना मंत्र—'इन सब प्रकार के फलों में करोड़ों देवता निवास करते हैं, इन सब फलों के त्याग व्रत से मेरी शिव जी में दृढ़ भक्ति हो। शिव तथा धर्म सर्वदा अनन्त फल के दाता कहे जाते हैं, मेरे इस फल के सहित दान करने से वे मुझे वरदान देने वाले हों। शिव के भक्तों को सर्वदा अनन्त फल की प्राप्ति होती है, मुझे भी प्रत्येक जन्म में अनन्त फल की प्राप्ति हो। मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सूर्य में किसी प्रकार का अन्तर नहीं देखता, विश्वात्मा भगवान् शंकर सर्वदा हमारे कल्याणकारी बनें।' इस प्रकार प्रार्थना कर भूषणादि से अलंकृत कर उन सामग्रियों को देकर यदि शक्ति हो तो व्रती एक शय्या का भी दान करे, जो सभी प्रकार की शयनीय सामग्रियों से युक्त हो। असमर्थ पुरुष को, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उन्हीं फलों को ही दान देना चाहिये और सुवर्णनिर्मित शिव तथा धर्म की मूर्ति को दो जल कलशों के समेत दान देना चाहिये। व्रती पुरुष ब्राह्मण को दान करने के पश्चात् स्वयम् मौन धारण कर तेल के विना भोजन करे। यथाशक्ति अन्यान्य खाद्य वस्तुएँ भी ब्राह्मणों को खिलाये। सूर्य, विष्णु और शिव के उपासक भागवत जनों के लिए इस कल्याणदायी सब फलों के त्याग व्रत की महत्ता वेदज्ञ लोग जानते हैं। द्विजपुंगव! स्त्रियों को भी यथाशक्ति इस व्रत का पालन करना चाहिए, क्योंकि मुनिश्रेष्ठ! इससे बढ़कर अनन्तफलदायक कोई अन्य व्रत न तो इस लोक में है और न स्वर्गलोक में। हे मुनिसत्तम! फलों में लगे हुए सुवर्ण, चाँदी तथा ताँबे के जितने परमाणु—उनके चूर्ण किए जाने पर—होंगे, उतने ही सहस्र युगों तक व्रती पुरुष रुद्र के लोक में पूजित होता है। मनुष्यों के समस्त पापों का विनष्ट करनेवाला यह पुण्य व्रत सर्वदा अनुष्ठान करने वाले का आजीवन कल्याणकारी होता है, इसके प्रभाव से अन्य जन्मों में भी व्रती कभी पुत्र के वियोग का दुःख नहीं भोगता। इसी के प्रभाव से वह अन्त में इन्द्र लोक में स्थान प्राप्त करता है। मुनीन्द्र! जो अल्पवित्तशाली पुरुष इस पुनीत दान कथा को देव मन्दिरों में अथवा धार्मिक पुरुषों के भवन में पढ़ता है अथवा सुनता है, वह भी इस लोक में अपने पापों से निर्मुक्त हो कर मृत्यु के बाद भगवान् विष्णु के आनन्दकारी लोक को प्राप्त करता है। ॥१-२५॥

श्री मात्स्य महापुराण में सर्वफलत्याग माहात्म्य नामक छानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९६॥

सत्तानबेवाँ अध्याय

नारद ने कहा—नन्दीश्वर! अब इसके बाद किसी ऐसे व्रत को, जो पुरुषों को अनन्त फल देनेवाला, आरोग्यप्रद एवं शान्तिकारक हो, कृपया बतलाइये। ॥१॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—विश्वात्मा भगवान् का जो परब्रह्मस्वरूप, कभी नष्ट न होने वाला तेजःपुञ्ज है, वही संसार में सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा के रूप में अवस्थित है। विप्रवर्य! उनकी आराधना करके

पुरुष सर्वदा कुशल प्राप्त करता है । अतएव रविवार के दिन से सदा रात्रि काल[1] में भोजन करना चाहिये । जब हस्त नक्षत्र से युक्त रविवार का दिन पड़े तब उसके पूर्ववर्ती शनैश्चर के दिन ही ईर्ष्या तथा क्रोधादि विकारों से रहित हो व्रती एक बार भोजन करे । और रवि के दिन रात्रि में श्रेष्ठ ब्राम्हणों को भोजन करवा कर लाल चन्दन से बारह दल वाले एक सुन्दर कमल का पूर्व दिशा से सूर्य को नमस्कार कर विन्यास करे । इसी प्रकार अग्नि कोण में दिवाकर को,दक्षिण दिशा में विवस्वान् को, नैर्ऋत्य कोण में भग को, पश्चिम के दल में वरुण को, वायु कोण में महेन्द्र को, उत्तर में आदित्य को, ईशान कोण में शान्त को नमस्कारपूर्वक विन्यस्त करे । बीजकोष के पूर्व दिशा वाले दल में सूर्य के अश्वों का विन्यास करे, उसी प्रकार दक्षिण में अर्यमा, पश्चिम में मार्तण्ड, उत्तर में रवि देव एवं कर्णिका (बीजकोष) में भास्कर का विन्यास करे । तत्पश्चात् उसी पद्म पर तिल एवं लाल चन्दन समेत लाल पुष्प एवं जल से अर्घ्यप्रदान करे और इस मन्त्र का उच्चारण करे । मंत्र—'दिवाकर । तुम काल स्वरूप हो, संसार के सभी चराचर जीवों के स्वामी हो, वेद स्वरूप हो, सब कुछ देखनेवाले हो, अग्नि एवं इन्द्र के स्वरूप हो, अतः मेरी रक्षा करो । हे भास्कर । तुम्ही 'अग्निमीले' इत्यादि मंत्र स्वरूप हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है, हे भास्कर ! हे वरदान देने वाले ! तुम ज्योतिःपुंजों के अध्यक्ष हो, 'इषेत्वोर्जे' एवं 'अग्न आयाहि·····' इत्यादि मंत्रों के स्वरूप भी तुम्हीं हो तुम्हें हमारा नमस्कार है, अर्घ्य दान के पश्चात् विसर्जन करे और रात में तैल के विना भोजन करे । इस प्रकार वर्ष भर व्यतीत हो जाने के उपरान्त सुवर्ण की उत्तम कमल और दो भुजाओं वाले पुरुष की प्रतिमा अपनी आर्थिक शक्ति के अनुरूप बनवाये । और अधिक मूल्य वाली एक कपिला गाय, जिसकी सींगे सुवर्ण से, खुरें चाँदी से मढ़ी गई हों और बछड़े और काँसे के बने हुए दोहन पात्र से जो युक्त हो, तथा गुड़ से भरे हुए ताँबे के पात्र के ऊपर उपर्युक्त पद्म तथा पुरुष की प्रतिमा को रखकर दान करना चाहिये । लाल वस्त्र, पुष्प तथा धूप आदि पूजन की सामग्रियों एवं सुवर्णमय लाल रंग के सिंगों[2] से ब्राह्मण की विधिपूर्वक पूजा कर संकल्प कर पद्म सहित पुरुष का दान देना चाहिये । श्रेष्ठ व्रतों में दान लेने के अधिकारी, अविकृत अंगों वाले, जितेन्द्रिय, शान्त एवं कुटुम्बी ब्राह्मण को ही इसका दान देना चाहिये । मंत्र–'पाप को नष्ट करने वाले, सात अश्वों पर चढ़ने वाले, साम ऋक् एवं यर्जुवेद के तेज को धारण करने वाले, जगत् के स्रष्टा, विधाता संसार सागर के जहाज, निखिल विश्व स्वरूप, भगवान् सूर्य को हम नमस्कार करते हैं ।' इस विधान से जो मनुष्य एक वर्ष तक इस लोक में इसका अनुष्ठान करता है वह पापों से उन्मुक्त हो चारो ओर झले जाते हुए चँवर समूहों के मध्य में स्थित हो सूर्य लोक को प्राप्त करता है । पुण्य के नष्ट हो जाने पर वह धर्ममूर्ति पुनः अमित कान्ति युक्त होकर शोक दुःख भय रोगादि से वर्जित हो सातों द्वीपों का अधिपति होता है । जो पति, गुरु एवं देवता की सेवा में अनुरक्त स्त्री, वेदमूर्ति भगवान्

---

[1] नक्ताशन—रविवार के दिन भर कुछ भी भोजन न करके रात्रिकाल में भोजन करे । विधवा और विरागी को दो घड़ी दिन शेष रहने पर भोजन करना चाहिये किन्तु गृहस्थाश्रमी तो रात में ही भोजन करे ।

[2] भैंसे आदि सत्वुओं की सींगों द्वारा निर्मित एक प्रकार का वाद्य जो शिव का विशेष प्रिय बतलाया जाता है ।

सूर्य के दिन इस पुनीत नक्तव्रत का अनुष्ठान करती है, हे नारद जी ! वह भी देवपति इन्द्र द्वारा पूजित हो सूर्य के लोक को प्राप्त करती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। जो मनुष्य इस दान विधि को पढ़ता है सुनता है अथवा पढ़नेवाले का अनुमोदन करता है, वह भी शुक्र लोक में स्थित हो देवताओं द्वारा पूजित होकर अक्षय काल पर्यन्त स्वर्ग लोक में निवास करता है। ॥१-२०॥

श्री मात्स्य महापुराण में आदित्य वार कल्प नामक सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९७॥

अट्ठानबेवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वर ने कहा—अब इसके बाद मैं दूसरे संक्रान्ति के अवसर पर किये जाने वाले उद्यापन आदि पुण्य व्रतों का फल बतला रहा हूँ, जो सम्पूर्ण कामनाओं का पूर्ण करनेवाला एवं परलोक में अक्षय फल प्रदान करने वाला है। अयन (जिस समय सूर्य दक्षिण से उत्तर एवं उत्तर से दक्षिण जाते हैं) तथा विषुव (जब रात और दिन बराबर हो जाते हैं तुला और मेष की संक्रान्ति) के अवसर पर उक्त संक्रान्ति व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। व्रती पुरुष संक्रान्ति के एक दिन पूर्व एक समय दोपहर को नियमित भोजन करके संक्रान्ति के दिन प्रातःकाल दातून करके तिलों द्वारा स्नान करे। रवि की संक्रान्ति के अवसर पर पृथ्वी पर चन्दन द्वारा कमल को कर्णिका (बीजकोष) समेत बनाये और उसमें सूर्य का आवाहन करे। बीजकोष में सूर्य का न्यास करे तत्पश्चात् पूर्व दिशा में आदित्य का, दक्षिण में ऋङमंडल को नमस्कार है—ऐसा कह उष्णार्चि (उष्ण किरणों वाले) को, सविता (सृष्टि करने वाले) को नमस्कार है—ऐसा कह नैर्ऋत्य कोण में पुनः पश्चिम दिशा में तपन (सूर्य) का विन्यास करे। वायव्य कोण में भग का न्यास कर उनकी पूजा करे। उत्तर दिशा में मार्तण्ड एवं ईशान कोण में विष्णु का विन्यास करे। तत्पश्चात् बालू की बनी हुई वेदी पर गन्ध पुष्प माला एवं फल आदि से उन सबों की पूजा करे और यथाशक्ति सुवर्ण का कमल बनवाकर सुवर्णमय घृत पात्र एवं जल कलश समेत ब्राह्मण को दान करे। फिर पृथ्वी पर सूर्य के लिए चन्दन एवं पुष्पमिश्रित जल का अर्घ्य करे।—मन्त्र 'हे ऋग्वेद यर्जुवेद एवं सामवेद के स्वामिन् अनन्त ! निखिलविश्वस्वरूप ! विश्वात्मन् विश्व भर में सर्वाधिक तेजस्वी, स्वयम उत्पन्न होने वाले जगत् के चालक ! आप को मैं नमस्कार करता हूँ।' इस विधि के अनुकूल प्रत्येक महीनों में यह अनुष्ठान करना चाहिये अथवा एक ही बार वर्ष की समाप्ति पर सम्पूर्ण विधानों को बारह बार करना चाहिये। इस प्रकार वर्ष की समाप्ति हो जाने पर घृत एवं दुग्ध से बने हुए खाद्य पदार्थों द्वारा अग्नि तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणों को विधिवत् तृप्त कर बारह कलशों को बारह गौओं तथा रत्नसमेत सुवर्ण के बने हुए कमल से संयुक्त कर दान करना चाहिये। गौएँ दूध देने वाली तथा सीधी होनी चाहियें, उनकी सींगें सुवर्ण तथा खुरें चाँदी से अलंकृत हों, सभी माला एवं वस्त्र से सुशोभित की गई हों, काँसे की बनी हुई दोहनी से युक्त हों। असमर्थ पुरुष को आठ, सात अथवा चार गौएँ तक देने का विधान है। अति दरिद्र पुरुष को केवल

एक कपिला गौ का दान श्रेष्ठ ब्राह्मण को करना चाहिये। व्रती इस प्रकार अपनी शक्ति के अनुरूप सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँबे की बनी हुई शेष सहित पृथ्वी की प्रतिमा को दान करे। अशक्त पुरुष को वासुकि समेत पृथ्वी की आँटे की प्रतिमा बनाकर सुवर्ण निर्मित सूर्य की प्रतिमा के साथ दान करना चाहिये। इस अनुष्ठान में व्रती को यथाशक्ति कृपणता नहीं करनी चाहिये, कृपणता करने से निश्चय ही वह नीचे गिर जाता है। नारद जी! इस व्रत के अनुष्ठान करने से मनुष्य तब तक गन्धर्व आदि देव योनियों से पूजित हो स्वर्ग में निवास करता है जब तक महेन्द्र प्रभृति देवगण, हिमालय प्रभृति पर्वत एवं सातों समुद्रों समेत पृथ्वी का अस्तित्व रहता है। तदनन्तर वहाँ से पुण्य के च्युत हो जाने पर वह इस संसार में सृष्टि के प्रारम्भ में उत्तम कुल एवं शील सदाचार सम्पन्न हो सपत्नीक सुन्दर शरीर युक्त अनेक पुत्र एवं परिवार वर्ग से सेवित सातों द्वीपों का स्वामी होता है। इस प्रकार सूर्य संक्रान्ति पर किये जाने वाले इस पुण्यप्रद अनुष्ठान को जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पढ़ता है सुनता है अथवा किसी को अनुष्ठान की सम्मति मात्र देता है वह भी देवपति इन्द्र के भवन में देवताओं द्वारा पूजित होता है। ॥१-१५॥

श्री मात्स्य महापुराण में संक्रान्ति उद्यापन विधि नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९८॥

निन्यानबेवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वर ने कहा—नारद जी! अब मैं भगवान् विष्णु के सर्वश्रेष्ठ विभूतिद्वादशी नामक व्रत को बतला रहा हूँ, जो सम्पूर्ण देवताओं द्वारा पूजित है, सुनिये। कार्तिक, चैत्र, वैशाख, अगहन, फाल्गुन, अथवा आषाढ़ के महीने में शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को अल्पाहार करके बुद्धिमान् मनुष्य सायंकाल की सन्ध्योपासना करने के बाद इस नियम को अंगीकार करे। एकादशी तिथि को निराहार रह कर भगवान् विष्णु की विधि पूर्वक पूजा करके वह संकल्प करे 'भगवन्! द्वादशी को ब्राह्मण के समेत मैं भोजन करूँगा। केशव! हमारा यह नियम निर्विघ्न समाप्त एवं सफल हो, मैं आप को नमस्कार करता हूँ।' रात्रिकाल में शयन करते हुए इस प्रकार का मानसिक संकल्प करना चाहिये। तदुपरान्त प्रातःकाल उठकर स्नान जप आदि से निवृत्त हो पवित्रात्मा व्रत श्वेत रंग की पुष्प माला एवं चन्दनादि सामग्रियों द्वारा कमलनेत्र भगवान् की पूजा करे। विभूति को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों पैरों की, अशोक को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों जानुओं की, शिव को नमस्कार है—ऐसा कह उरू प्रदेशों की, कन्दर्प को नमस्कार है—ऐसा कह लिंग की; आदित्य को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों हाथों की, दामोदर को नमस्कार है—ऐसा कह उदर की, वासुदेव को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों स्तनों की, माधव को नमस्कार है—ऐसा कह विष्णु के वक्षस्थल की, उत्कण्ठी को नमस्कार है,—ऐसा कह कण्ठ प्रदेश की, श्रीधर को नमस्कार है—ऐसा कह मुख की और हे नारद! केशव को नमस्कार है—ऐसा कह केशों की पूजा करनी चाहिये। शार्ङ्गधर को नमस्कार है—ऐसा कह पीठ की, वरद को नमस्कार है—ऐसा कह दोनों कानों की पूजा करने के उपरान्त व्रती

अपने नाम का उच्चारण कर हाथों में शंख, चक्र, गदा, तलवार तथा कमल धारण करने वाले भगवान् को पुनः नमस्कार करे। तदुपरान्त हे ब्रह्मन्! सर्वात्मा को नमस्कार है—ऐसा कह शिर की पूजा करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्ति के अनुकूल कमल के समेत सुवर्ण का मत्स्य बनवांकर जल कलश के समेत मण्डप के अगले भाग में स्थापित करे तथा तिल संयुक्त गुड़ का पात्र, जो श्वेत रंग के वस्त्र से ढँका हुआ हो, स्थापित करे, फिर रात भर इतिहास एवं पुरानी धर्म कथाओं की चर्चा करते हुए जागरण करे। रात व्यतीत हो जाने पर प्रातःकाल किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को सुवर्णमय कमल एवं जल कलश समेत देव की उक्त सुवर्ण मूर्ति दान कर दे। मंत्र—'देव! आप अपनी समस्त विभूतियों से कभी वियुक्त नहीं होते, इस दुःख रूपी संसार सागर के कीचड़ से हमें भी पार करें।' मुनिवर! इस प्रकार भगवान् के दसों अवतारों समेत दत्तात्रेय एवं व्यास की मूर्तियों को कमल के साथ प्रत्येक महीने में पूरे वर्ष भर दान करे और पाषण्ड, छल, कपट आदि दुर्गुणों को एक दम छोड़ दे। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अपनी शक्ति के अनुकूल बारह द्वादशी व्रतों को समाप्त कर वर्ष की समाप्ति पर उक्त लवण (नमक) पर्वत तथा गाय के समेत एक शय्या गुरु को दान करे। शक्तिसम्पन्न पुरुष विधिपूर्वक वस्त्र, अलंकार एवं अन्यान्य आभूषणादि से गुरु की पूजा कर गृह के साथ गाँव वा खेत का दान करे। इस अनुष्ठान में यथाशक्ति अन्यान्य ब्राह्मणों को भी भोजन कराकर वस्त्र, गौ, रत्नसमूह तथा धन राशियों द्वारा सन्तुष्ट करे। अल्पवित्त मनुष्य अपनी शक्ति के अनुकूल थोड़ा दान करे। जो पुरुष अत्यन्त दरिद्र हो किन्तु भगवान् विष्णु के प्रति निष्ठावान् हो वह इस व्रत में केवल पुष्प द्वारा भगवान् का पूजन कर दो वर्ष तक इसका नियम रखे। उपर्युक्त विधि के अनुसार जो मनुष्य इस विभूतिद्वादशी नामक व्रत को सम्पन्न करता है वह पापों से छुटकारा पाकर अपने सौ पूर्व पितरों को तारता है। उसे एक लक्ष जन्म पर्यन्त कभी शोक नहीं भोगना पड़ता और न कोई व्याधि सताती है न दारिद्र्य और न परकीय बन्धन। प्रत्येक जन्म में वह शिव तथा विष्णु भगवान् का भक्त होता है। ब्रह्मन्! यही नहीं वह पुण्यात्मा पुरुष एक सौ आठ सहस्र युगों तक स्वर्ग लोक में निवास करता है और तदुपरान्त पुनः राजा होता है। ॥१-२१॥

श्री मात्स्य महापुराण में विष्णु व्रत वर्णन नामक निन्यानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥९९॥

एक सौ अध्याय

नन्दिकेश्वर ने कहा—नारद जी! प्राचीन काल में रथन्तर नामक कल्प में सूर्य के समान अतिशय तेजस्वी पुष्पवाहन नामक एक जगत्प्रसिद्ध राजा था। मुनिवर! उसकी उग्र तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसे एक सुवर्ण का कमल दिया था, जो इच्छित स्थान पर तुरन्त जाने वाला था। राजा उस कमल के द्वारा अपने नगर निवासी समस्त प्रजाजनों समेत देवताओं के लोकों में एवं पृथ्वी पर अवस्थित समस्त द्वीपों में यथेष्ट विचरण किया करता था। कल्प के आदिम काल में वह पुष्कर (कमल)

निवासी राजा जहाँ पर निवास करता था वह सातवाँ द्वीप (पुष्कर) लोक में विशेष पूजनीय समझा जाता था, अतः बाद में चलकर उसका नाम भी पुष्कर द्वीप पड़ा। भगवान् ब्रह्मा ने उसे यह कमल का वाहन प्रदान किया था अतः राजा को भी देव तथा दानवगण पुष्पवाहन कहा करते थे। मुनीन्द्र! अपनी परम श्रेष्ठ तपस्या के प्रभाव से ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त उस जंगम कमल पर समासीन राजा पुष्पवाहन के लिए तीनों लोकों में कोई भी स्थान अगम्य नहीं था। उस प्रतापशाली राजा की स्त्री भी चारों ओर से सहस्रों सुन्दरी स्त्रियों द्वारा पूजित अनुपम सौन्दर्यशालिनी एवं शंकर की पार्वती की भाँति अतिवल्लभा थी। उसका नाम लावण्यवती था। उसके अतिशय धर्मात्मा एवं धनुर्धारियों में धुरन्धर पुत्रों की संख्या भी दस सहस्र थी। इस प्रकार अपनी इन अनुपम समस्त विभूतियों को देखकर राजा अपने मन में बारम्बार विस्मित होता था। एक बार मुनिप्रवर प्रचेता को आया हुआ देखकर उसने उनसे अपने मन की यह बात कही। ॥१-७॥

राजा ने कहा—मुनीन्द्र! किस कारण से मेरी विभूति इतनी निर्मल एवं देवताओं तथा मनुष्यों द्वारा पूजित है? क्या ऐसा कारण है कि मेरी स्त्री रूप-लावण्य में सभी देवांगनाओं को पराजित करनेवाली है? मेरे अल्प पुण्य से ही विधाता ने क्यों ऐसा सुन्दर एवं विस्तृत कमल का ऐसा गृह मुझे दिया है, जिसमें मन्त्रिवर्ग, हाथी, रथ आदि समूह एवं प्रजाजनों से घिरे हुए सौ करोड़ राजा वृन्द भी यदि प्रवेश कर जायँ तो आकाश के मध्य में चारों ओर विचरण करने वाले तारागणों से संयुक्त चन्द्रमा की भाँति यह न विदित हो सकेगा कि वे कहाँ गये? आप यह बतलाइये कि इस सम्पूर्ण फल प्राप्ति के मूल कारण उस परम धर्ममय कार्य को अन्य जननी के उदर से उत्पन्न होकर अर्थात् पूर्व जन्म में मैंने किया था अथवा मेरी इस सुन्दरी स्त्री ने किया था अथवा मेरे पुत्रों ने किया था। प्रचेतः! इन सब बातों को कृपया आप मुझे बतलाइये।' राजा की ऐसी बातें सुनकर मुनिवर प्रचेता ने राजा के इस आकस्मिक एवं अद्भुत प्रभावपूर्ण वृत्तान्त को अन्य जन्म से सम्बन्धित जानकर यथार्थतया बतलाना प्रारम्भ किया। 'राजन्! तुम्हारा पूर्व जन्म अति घोर कर्म करने वाले व्याध के कुल में हुआ था और तुम स्वयं भी प्रतिदिन घोर पापकर्म करने वाले थे। तुम्हारा शरीर भी अन्य पुरुषों के अंगों के जोड़ों की भाँति नहीं जुड़ा हुआ था, कुरूप और टेढ़ा मेढ़ा था। दुर्गन्धियुक्त जीवों एवं साँप आदि के समान बाहर से देखने में परम कुरूप था। उस जन्म में कोई भी मित्र पुत्र आदि बन्धुजन पिता माता और बहन तुम्हारे हितैषी नहीं थे। वे सभी तुम्हें बराबर कुवाच्य आदि कहकर दुःख पहुँचाया करते थे। राजन्! परन्तु तुम्हारी यह परम प्रिया कुरूप मुखवाली स्त्री तुम्हारी संगिनी थी और सर्वदा तुम्हारे कल्याण में निरत रहती थी। उसी समय एकबार इस मर्त्यलोक में अति भयानक अनावृष्टि पड़ी, अतिशय क्षुधा पीड़ित हो तुम एक दिन कुछ भी अन्न, फल, मांस आदि नहीं जुटा सके, और घूमते-घूमते एक बहुत बड़े तालाब के पास गये, जिसमें कमल खिले हुए थे और चारो ओर के तटों पर कीचड़ फैला हुआ था। उसमें प्रविष्ट होकर अधिक संख्या में कमल इकट्ठा कर तुम वैदिश नामक पुर की ओर गये। और उसे वहाँ विक्रय कर मूल्य प्राप्त करने के इरादे से तुम पुर में चारो ओर घूम आये; पर पूरा दिन बीत जाने पर भी उन कमलों का कोई विक्रेता नहीं दिखाई पड़ा और तुम थकान तथा क्षुधा से अति पीड़ित हो एक भवन

के आँगन में स्त्री के समेत बैठ गये। तदनन्तर रात में तुम्हें किसी स्थान पर जोरों से होने वाले मांगलिक शब्द सुनाई पड़े। उसे सुन कर तुम स्त्री समेत वहाँ गये, जहाँ से वह मांगलिक ध्वनि आ रही थी। वहाँ जाकर तुमने मण्डप के मध्य भाग में विधिवत् की जाने वाली भगवान् विष्णु की पूजा देखी। वहाँ अनंगवती नामक वेश्या विभूतिद्वादशी व्रत का अनुष्ठान कर रही थी और माघ महीने की समाप्ति पर भगवान् हृषीकेश को विधिपूर्वक अलंकृत कर सुवर्णनिर्मित कल्पद्रुम के समेत अपने गुरु को सर्वश्रेष्ठ लवणाचल तथा सम्पूर्ण सामग्रियों समेत एक शय्या का दान कर रही थी। तुम दोनों—पति पत्नी—ने इस प्रकार पूजा में संलग्न अनंगवती को देखकर यह सोचा कि मेरे इन कमलों से क्या होगा? बड़ा अच्छा होता यदि इनके द्वारा भगवान् विष्णु को अलंकृत कर दिया जाता। राजन्! उस समय तुम दोनों के हृदय में इस प्रकार की भक्ति उत्पन्न हुई। तुम्हारे अनुरोध पर भगवान् विष्णु एवं लवणाचल की उन्हीं कमलों द्वारा विधिवत् पूजा की गई। बाद में बचे हुए पुष्प समूहों से शय्या एवं पृथ्वी की भी विधिवत् पूजा एवं सजावट हुई। तदनन्तर अनंगवती ने सन्तुष्ट हो कर यह आज्ञा दी कि इस उपकार के बदले में इन्हें सुवर्ण की तीन सौ मुद्राएँ दी जायँ। किन्तु अतिशय सात्त्विक भावना के वशीभूत होकर तुम दोनों ने उस दिये जाते हुए धन को अंगीकार नहीं किया। राजन्! तब अनङ्गवती ने तुम दोनों के लिए चार प्रकार के पकवान लाकर कहा—लीजिये भोजन कीजिए। किन्तु उसे भी तुम लोगों ने स्वीकार नहीं किया और कहा—'हे वरानने! हम भोजन कर लेंगे; किन्तु हे निष्पापे! जन्म के पापी, कुत्सित कर्म करने वाले, हठधर्मी हम दोनों को तुम्हारे साथ साथ उपवास करने में आज विशेष आनन्द मिल रहा है।' हे अनघ! उसी प्रसंग में धर्म का लेशमात्र संचार तुझ में हुआ। इस प्रकार वेश्या के साथ साथ तुम दोनों ने भी उस रात भर जागरण किया। प्रातः काल होने पर वेश्या ने लवणाचल के समेत शय्या का दान किया, गुरु को कई गाँव दिये, अन्यान्य बारह ब्राह्मणों को भी वस्त्र अलंकार आदि से सुसज्जित कर करवे के समेत गौएं दीं। और सुहृत्, मित्र, दीन, अन्ध एवं दरिद्रों के साथ भोजन किया और उन (तुम) व्याध दम्पति की भी विधिपूर्वक पूजा की और विदा किया। राजन्! वह व्याध आप ही थे, जो इस जन्म में राजराजेश्वर हुए, उस कमल समूह से विष्णु भगवान् की पूजा करने के कारण तुम्हारे सर्व पाप नष्ट हो गये और तुम्हें यह पुष्कर (कमल) का भवन मिला। राजन्! उस तुम्हारे अतुल पराक्रम—जो भूखे रहते हुए भी मुद्राएँ नहीं लीं—के माहात्म्य के कारण अल्प तपस्या से ही भगवान् लोकनाथ चतुर्भुज ब्रह्मा, जो स्वयं भगवान् केशव के स्वरूप कहे जाते हैं, सन्तुष्ट हुए और उन्हीं की प्रसन्नता के फलस्वरूप तुम्हारा यह भवन (पुष्कर) यथेष्ट स्थान पर तुरन्त पहुँच जाने वाला हो गया। वह अनंगवती वेश्या सम्प्रति कामदेव की पत्नी रति की सपत्नी (सौत) के रूप में प्रीति नाम से उत्पन्न हुई है, जो लोक की आनन्ददायिनी एवं समस्त देवताओं की पूज्य है। इस कारण हे राजेन्द्र! इस पुष्कर को पृथ्वीतल पर छोड़ कर गंगा जी के किनारे उक्त विभूतिद्वादशी नामक व्रत का सम्पूर्णतया तुम भी अनुष्ठान करो। राजन्! इसके करने से तुमको अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होगी। ॥८-३३॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—ब्रह्मन्! इस प्रकार की बातें कह कर मुनिवर प्रचेता वहीं पर अन्तर्हित

हो गये और राजा पुष्पवाहन ने उनके कथनानुकूल उक्त व्रत का अनुष्ठान सम्पन्न किया। ब्रह्मन्! इस विभूति-द्वादशी नामक व्रत का अनुष्ठान करते समय अखण्ड व्रत का नियम करना चाहिये। बारह द्वादशी तक, जिसी प्रकार से भी सम्भव हो, कमलों द्वारा इस व्रत को समाप्त करना चाहिये। मुनिवर! इसमें यथाशक्ति ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा देनी चाहिये, कृपणता नहीं करनी चाहिये। भक्ति से ही भगवान् विष्णु सन्तुष्ट होते हैं। इस मर्त्यलोक में पापी मनुष्यों के भी पापों को नष्ट करनेवाली इस कथा को जो मनुष्य पढ़ता है भक्तिपूर्वक सुनता है अथवा सम्मति मात्र देता है, वह सौ करोड़ वर्ष पर्यन्त देवलोक में निवास करता है। ॥३४-३७॥

श्री मात्स्य महापुराण में नन्दिकेश्वर-नारद-संवाद प्रसंग में विभूतिद्वादशी व्रत वर्णन नामक सौवाँ अध्याय समाप्त ॥१००॥

एक सौ एक अध्याय

नन्दिकेश्वर ने कहा—नारद जी! अब इसके उपरान्त मैं उन सर्व श्रेष्ठ साठ व्रतों का विधान बतला रहा हूँ, जिन्हें स्वयम् भगवान् शंकर ने मुझे बतलाया है और जो घोरातिघोर पापों के विनाश करने वाले हैं। व्रती मनुष्य पूरे वर्ष तक केवल रात्रिकाल में भोजन करके कुटुम्ब वाले ब्राह्मण को सुवर्ण के बने हुए चक्र तथा त्रिशूल एवं दो श्रेष्ठ वस्त्रों का दान करे। इसके फलस्वरूप वह दाता शिव स्वरूप होकर हम लोगों के साथ शिव जी के लोक में आनन्द का अनुभव करता है। यह महापापनाशक देवव्रत है। जो पुरुष केवल एक बार दोपहर में नियमित भोजन कर वर्ष की समाप्ति पर सुवर्ण निर्मित वृषभ के समेत शिव की मूर्ति तथा तिलमयी गाय का दान देता है, वह शंकर के लोक को प्राप्त करता है। यह महापाप नाशक रुद्रव्रत है। जो एक दिन का व्यवधान देकर तीसरे दिन केवल रात्रिकाल में भोजन कर वर्ष की समाप्ति पर वृषभ समेत सुवर्णनिर्मित नील कमल का शक्कर युक्त पात्र के साथ दान करता है, वह विष्णु भगवान् के परम पद को प्राप्त करता है, यह लीलाव्रत के नाम से कहा जाता है। आषाढ़ आदि चार (आषाढ़, सावन, भादों तथा आश्विन) महीनों में जो मनुष्य शरीर में तेल लगाना वर्जित कर देता है और भोजन की सब सामग्रियों का दान करता है वह हरि के भवन को प्राप्त करता है। इस लोक में यह व्रत मनुष्य में प्रीति बढ़ानेवाला प्रीतिव्रत नाम से विख्यात है। जो मनुष्य चैत्र के महीने में दही, दूध, घृत एवं गुड़ आदि का सेवन वर्जित रखकर रस संयुक्त पात्रों के समेत सूक्ष्म वस्त्रों का दान करता है एवं उसी प्रसंग में ब्राह्मण दम्पति की 'गौरी मेरे ऊपर प्रसन्न हों'—ऐसी कामना करके विधि-पूर्वक पूजा करता है, वह भवानी (पार्वती) के लोक का फल देने वाले इस गौरी नामक व्रत द्वारा पूर्ण फल की प्राप्ति करता है। पुनः चैत्र महीने की पुष्प आदि शुभ नक्षत्रों से युक्त त्रयोदशी तिथि को नक्त व्रत (केवल रात्रि में भोजन करने का नियम) का पालन कर जो मनुष्य सुवर्णनिर्मित दस अंगुल के अशोक

वृक्ष को, ईख तथा वस्त्र से संयुक्त कर 'प्रद्युम्न जी प्रसन्न हों'—ऐसी कामना से ब्राह्मण को दान देता है, वह एक कल्पपर्यन्त विष्णुलोक में निवास कर पुनः शोक रहित हो उत्पन्न होता है। सर्वदा शोक के विनाश करनेवाले इस पुण्यव्रत का नाम कामव्रत है। आषाढ़ आदि चार महीनों में जो मनुष्य भाँटा का भोजन एवं नख का कटाना छोड़कर मधु और घृत को कलश के समेत दान करता है और फिर कार्तिक महीने में ब्राह्मण को सुवर्ण का दान करता है, वह शिव का लोक प्राप्त करता है, यह शिवव्रत कहा जाता है। जो मनुष्य हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में पुष्पों को व्यवहार में लाना वर्जित करता है और फाल्गुन की पूर्णिमा तिथि को अपनी शक्ति के अनुकूल सुवर्ण के तीन पुष्पों को सायंकाल के समय 'शिव और भगवान् विष्णु प्रसन्न हों'—ऐसी कामना से दान करता है, वह परमपद की प्राप्ति करता है, यह सौम्यव्रत कहा जाता है। फाल्गुन महीने की तृतीया तिथि को जो नमक वर्जित रखता है और इस व्रत के समाप्त होने पर शैय्या का एवं सम्पूर्ण सामग्रियों समेत गृह का दान करता है एवं उसी प्रसंग में ब्राह्मण दम्पति की 'पार्वती जी प्रसन्न हों'—इस कामना से विधिपूर्वक पूजा करता है वह एक कल्पपर्यन्त गौरी के लोक में निवास करता है। यह सौभाग्य नामक व्रत कहा जाता है। तत्पश्चात् सायंकाल में मौनव्रत धारण कर वर्ष की समाप्ति पर घृतपूर्ण कलश, जोड़ा वस्त्र, तिल एवं घण्टा को जो ब्राह्मण को दान देता है वह सरस्वती देवी के उस स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ पहुँच कर पुनर्जन्म दुर्लभ है, यह सौन्दर्य एवं विद्या का देनेवाला सारस्वत नामक व्रत है। जो मनुष्य पञ्चमी तिथि को उपवास रखकर लक्ष्मी की विधिपूर्वक पूजा कर वर्ष की समाप्ति होने पर सुवर्ण का कमल गाय समेत दान करता है वह लक्ष्मी का स्थान प्राप्त करता है और प्रत्येक जन्म में लक्ष्मीसम्पन्न रहता है। सदा पापों के विनाश करने वाले इस व्रत का नाम सम्पद् व्रत है। भगवान् विष्णु एवं शंकर जी के सम्मुख पूरे वर्ष तक अंगों में लेपन कर जो मनुष्य जल कलश समेत धेनु का दान देता है वह अपने दस सहस्र जन्म पर्यन्त राजा होता है और तदनन्तर शिव के लोक को प्राप्त करता है, यह सभी अभिलाषाओं का पूर्ण करनेवाला आयु व्रत है। मौन व्रत धारण कर एक ही स्थान पर पीपल वृक्ष, सूर्य तथा गंगा जी को प्रणाम कर जो मनुष्य एक वर्ष तक ईर्ष्या क्रोध आदि दुर्गुणों से रहित हो केवल दोपहर में एक बार नियमित भोजन करता है और व्रत की समाप्ति होने पर पूजनीय ब्राह्मण दम्पति की पूजा कर तीन गौओं के समेत सुवर्ण के वृक्ष का दान करता है वह अश्वमेध यज्ञ के समान उत्तम फल को प्राप्त करता है, समृद्धि एवं कीर्ति का फल देने वाला यह कीर्तिव्रत है। गोबर द्वारा मण्डल का निर्माण कर भगवान् विष्णु का अथवा शिव का घृत से स्नान करा कर पुष्प समेत अक्षतों से जो पूजा करता है, और इस प्रकार वर्ष की समाप्ति होने पर तिलधेनु समेत शुद्ध तथा परिमाण में आठ अंगुल विस्तृत सुवर्णनिर्मित कमल का सामवेदी ब्राह्मण को दान करता है, वह शिव के लोक में पूजित होता है। इस लोक में यह सामव्रत कहा जाता है। नवमी तिथि को दोपहर के समय नियम से एक बार भोजन कर अपनी शक्ति के अनुकूल अनेक कन्याओं को भोजन कराकर उन्हें भोजन की सामग्री एवं सुवर्णजटित चोली तथा वस्त्र का दान तथा ब्राह्मण को सुवर्ण का सिंह दान करता है वह मनुष्य

शिव का स्थान प्राप्त करता है और एक अरब जन्म पर्यन्त सौन्दर्यसम्पन्न एवं शत्रुओं द्वारा अपराजित रहता है। स्त्रियों को सुख देने वाले इस व्रत को वीरव्रत कहते हैं। जो मनुष्य पूरे वर्ष तक पूर्णिमा तिथि को दूध का व्रत रखता है और वर्ष की समाप्ति पर श्राद्ध कर पाँच दूध देने वाली गौओं का तथा जल कलश समेत पीले रंग के वस्त्रों का दान करता है वह विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त करता है, अपने सौ पूर्व पितरों को नरक से उबारता है तथा कल्प की समाप्ति होने पर राजाधिराज होता है। यह पितृव्रत कहा जाता है। चैत्र आदि चार (चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ तथा वैशाख) महीनों में जो विना याचना किये ही दूसरों को जल देता है और व्रत की समाप्ति पर अन्न एवं वस्त्र समेत मणि, तिल संयुक्त पात्र तथा सुवर्ण का दान करता है वह ब्रह्मा के लोक में पूजित होता है और कल्प की समाप्ति पर निश्चय ही राजा होता है, यह आनन्दव्रत कहा जाता है। पूरे वर्ष तक पंचामृत (दूध, शक्कर, घी, दही और शहद) द्वारा भगवान् की मूर्ति को स्नान कराकर वर्ष की समाप्ति पर पुनः पंचामृत के समेत धेनु तथा शंख का ब्राह्मण को दान देता है, वह भगवान् शंकर के स्थान को प्राप्त करता है और कल्प की समाप्ति पर राजा होता है, यह धृतिव्रत कहा जाता है। जो मनुष्य मांसाहार छोड़ कर एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर गाय का दान करता है और उसी प्रकार सुवर्णनिर्मित मृग का दान करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है तथा कल्पान्तर में राजा होता है, यह अहिंसा व्रत कहा जाता है। माघ के महीने में प्रातःकाल स्नान कर द्विज दम्पति की पूजा करे एवं वस्त्र, माला तथा आभूषण से अलंकृत हो उन्हें भली प्रकार भोजन कराये, जो मनुष्य ऐसा करता है वह एक कल्पपर्यन्त सूर्य के लोक में निवास करता है, यह सूर्यव्रत के नाते से प्रसिद्ध है। आषाढ़ आदि चार महीनों में प्रातः काल जो मनुष्य स्नान करता है, एवं कार्तिक के महीने में ब्राह्मणों को भोजन एवं गाय का दान देता है, वह भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करता है। यह शुभ विष्णुव्रत है। जो मनुष्य एक अयन से लेकर दूसरे अयन पर्यन्त पुष्प एवं घृत का व्यवहार छोड़ देता है और व्रत की समाप्ति पर घृतधेनु के समेत पुष्पों की मालाओं का दान करता है तथा ब्राह्मण को घृत तथा दुग्ध से बने हुए पदार्थ का दान करता है, वह शिव के स्थान को प्राप्त करता है, शील एवं आरोग्य का फल प्रदान करनेवाले इस व्रत का नाम शीलव्रत है। ॥१-३१॥

सायंकाल में जो दीपदान करता है एवं एक वर्ष पर्यन्त तेल का सेवन वर्जित रखता है, वर्ष की समाप्ति होने पर पुनः दीप तथा सुवर्णनिर्मित चक्र तथा शूल और जोड़े वस्त्र का दान कुलीन ब्राह्मण को करता है, वह इस मर्त्यलोक में तेजस्वी होता है और अनन्तर शिव जी का लोक प्राप्त करता है। यह व्रत दीप्तिव्रत के नाम से प्रसिद्ध है। जो मनुष्य कार्तिक महीने की प्रथम तृतीया तिथि को गोमूत्र तथा कुल्थी का प्राशन कर एक वर्ष पर्यन्त केवल रात्रि में भोजन करता है और वर्ष की समाप्ति होने पर गोदान करता है, वह पार्वती के लोक में एक कल्पपर्यन्त निवास करता है और तदनन्तर इस लोक में राजा होता है। सर्वदा कल्याण करने वाले इस व्रत का नाम रुद्रव्रत है। चैत्र के महीने में जो मनुष्य सुगन्धित द्रव्यों का लेपन वर्जित रखता है, एक पात्र और सुगंधित द्रव्यों से युक्त दो श्वेत वस्त्र ब्राह्मण को दान

करता है वह वरुण का स्थान प्राप्त करता है, यह दृढ़व्रत नामक व्रत है। वैशाख के महीने में पुष्प तथा नमक वर्जित रख कर जो गोदान करता है वह विष्णु भगवान् के स्थान में एक कल्पपर्यन्त रह कर पुनः इस लोक में राजा होता है। कान्ति तथा कीर्ति देने वाले इस पुनीत व्रत का नाम कान्तिव्रत है। तिल राशि से संयुक्त यथाशक्ति तीन पल से अधिक सुवर्ण द्वारा निर्मित ब्रह्माण्ड की प्रतिमा को बनवाकर जो तीन दिनों तक तिल दान कर अच्छे ब्राह्मण तथा अग्नि को सन्तुष्ट कर माला, वस्त्र एवं आभूषणादि से ब्राह्मण दम्पति की 'विश्वात्मा प्रसन्न हों'—इस भावना से पुण्य दिन में पूजा कर दान देता है, वह उस पर ब्रह्म की प्राप्ति करता है, जिसे प्राप्त कर पुनर्जन्म नहीं होता, निर्वाण (मोक्ष) पद देने वाले इस व्रत का नाम ब्रह्मव्रत है। जो मनुष्य प्रचुर सुवर्ण समेत दो मुखवाली अर्थात् सवत्सा धेनु का दान देता है और दिन में दुग्ध का व्रत धारण करता है, वह परम पद की प्राप्ति करता है, यह पुनरागमन दुर्लभ करनेवाला धेनुव्रत है। दुग्धव्रत में तीन दिन तक स्थित रह कर यथाशक्ति एक पल से अधिक सुवर्ण द्वारा कल्पवृक्ष की प्रतिमा बनवाकर तण्डुल की राशि के समेत दान देनेवाला मनुष्य ब्रह्मपद को प्राप्त करता है, यह कल्पव्रत कहा गया है। मास भर उपवास रख कर जो एक सुन्दर गौ ब्राह्मण को दान करता है वह विष्णु के पद की प्राप्ति करता है, यह भीमव्रत स्मरण किया जाता है। बीस पल से अधिक सुवर्ण द्वारा निर्मित पृथ्वी की मूर्ति को दान कर जो दिन में दुग्ध व्रत धारण करता है वह शिवलोक में पूजित होता है। सात कल्प पर्यन्त कर्त्ता के पीछे चलनेवाले (फल देनेवाले) इस व्रत को धराव्रत के नाम से स्मरण करते हैं। माघ अथवा चैत्र के महीने में जो गुड़ धेनु का दान करता है, और तृतीया तिथि में केवल गुड़ का व्रत धारण करता है वह गौरी के लोक में पूजित होता है। परमानन्दकारक इस व्रत को महाव्रत कहते हैं। जो एक पक्ष पर्यन्त उपवास रखकर ब्राह्मण को दो कपिला गौओं का दान करता है, वह देव तथा राक्षसवृन्द द्वारा सुसेवित ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है और कल्प की समाप्ति होने पर राजाधिराज होता है। यह प्रभाव्रत के नाम से स्मरण किया जाता है। पूरे वर्ष तक नियमित रूप से दोपहर को एक बार भोजन करके जो खाद्य पदार्थों समेत जलकलश का दान देता है वह एक कल्पपर्यन्त शिव के लोक में निवास करता है। यह प्राप्तिव्रत कहा जाता है। जो अष्टमी तिथि को केवल रात्रि में नियमित भोजन करके वर्ष की समाप्ति पर धेनु का दान करता है, वह इन्द्र के नगर को प्राप्त करता है। यह सुगतिव्रत के नाम से विख्यात है। वर्षा आदि चार (वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर) ऋतुओं में जो ब्राह्मण को इन्धन का दान करता है और व्रत की समाप्ति पर घृतधेनु का दान करता है, वह परब्रह्म की प्राप्ति करता है। यह सम्पूर्ण पापों का विनाश करनेवाला वैश्वानर नामक व्रत है। एकादशी तिथि को नियमित रूप से रात्रिकाल में भोजन कर एक वर्ष पूरे हो जाने पर सुवर्णनिर्मित विष्णु भगवान् के चक्र नामक अस्त्र को जो ब्राह्मण को दान करता है, वह विष्णु के लोक को प्राप्त करता है और कल्पान्त में राज्य का अधिकारी होता है। यह कृष्णव्रत के नाम से प्रसिद्ध है। जो नियमित रूप से दुग्ध का आहार कर वर्ष की समाप्ति पर ब्राह्मण को दो गौएँ दान करता है, वह लक्ष्मी का लोक प्राप्त करता है, यह देवीव्रत के नाम से स्मरण किया जाता है। सप्तमी तिथि को केवल रात्रि में

भोजन कर जो वर्ष की समाप्ति पर एक दुग्ध देनेवाली गाय दान देता है वह सूर्य का लोक प्राप्त करता है, यह भानुव्रत कहा जाता है। चतुर्थी तिथि को केवल रात्रि में भोजन करके जो सुवर्णनिर्मित हाथी की प्रतिमा दान करता है वह शिव के लोक को प्राप्त करता है, इस परम पुण्यप्रद शिवलोक को देनेवाले व्रत का नाम विनायक व्रत है। जो चार महीने तक महाफल (बेल तथा कैथा) का त्यागकर कार्तिक महीने में सुवर्णनिर्मित उन्हीं फलों को तथा दो गौओं को ब्राह्मण को दान करता है, वह विष्णु भगवान् का लोक प्राप्त करता है, यह व्रत विष्णु लोक का फल देनेवाला है और इसका नाम फलव्रत है। जो सप्तमी तिथि को उपवास रखकर वर्ष की समाप्ति पर सुवर्णनिर्मित कमल तथा यथाशक्ति गौ, सुवर्ण तथा अन्न समेत कलश का दान करता है, वह सूर्य लोक को प्राप्त करता है, तथोक्त फलदायी इस व्रत का नाम सौर व्रत है। जो पुरुष उपवास रखकर वर्ष की बारह द्वादशी तिथियों को समाप्तकर यथाशक्ति गौ, वस्त्र तथा सुवर्ण द्वारा ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा करता है वह परमपद की प्राप्ति करता है, यह विष्णु व्रत के नाम से प्रसिद्ध है। जो कार्तिक की पूर्णिमा तिथि को वृषोत्सर्ग कर रात्रि काल में भोजन करता है, वह शिव का स्थान प्राप्त करता है, यह वार्षव्रत कहा गया है। कृच्छ्र (अधिक कष्ट देनेवाले प्राजापत्य आदि) व्रत का अनुष्ठान समाप्त कर ब्राह्मणों को गो दान कर जो भोजन करता है वह शंकर के स्थान को प्राप्त करता है, यह प्राजापत्य नामक व्रत है। चतुर्थी तिथि को नियमित रूपेण रात्रिकाल में भोजन कर एक वर्ष पूरा हो जाने पर जो गोधन (गौओं के समूह) का दान करता है, वह शिव का स्थान प्राप्त करता है, यह पुण्यप्रद त्र्यम्बक व्रत कहा जाता है। सात रात तक उपवास कर जो ब्राह्मण को घृत समेत कलश का दान करता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, तथोक्त फल देनेवाले इस व्रत को लोग घृतव्रत कहते हैं। वर्षा ऋतु में पृथ्वी से ऊपर आकाश में शयन करने का नियम बनाकर जो व्रत के अन्त में दूध देनेवाली गौ का दान करता है, वह नित्य इन्द्रलोक में निवास करता है, यह इन्द्रव्रत के नाम से विख्यात है। जो मनुष्य तृतीया तिथि को विना अग्नि द्वारा पकाये हुये भोजन को खाता है और अन्त में गोदान करता है, वह शिव को प्राप्त करता है, जिन्हें प्राप्त कर पुनर्जन्म दुर्लभ है। इस लोक में पुरुषों को आनन्द देने वाले इस पुण्य व्रत को श्रेयोव्रत कहते हैं। जो उपवास रखकर दो पल से अधिक सुवर्ण द्वारा निर्मित दो घोड़ों समेत रथ की प्रतिमा को दान करता है वह सौ कल्प पर्यन्त स्वर्ग लोक में निवास करता है और कल्प के अन्त में राजाधिराज होता है, यह अश्वव्रत कहा जाता है। उसी प्रकार उपवासी रहकर जो मनुष्य दो हाथियों समेत सुवर्ण के रथ का दान करता है, वह एक सहस्र कल्प पर्यन्त सत्य लोक में निवास करता है और तदुपरान्त राजा होता है, यह करिव्रत के नाम से स्मरण किया जाता है। एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर उपवास का त्याग कर जो गोदान करता है, वह यक्षों का आधिपत्य प्राप्त करता है, यह सुखव्रत के नाम से प्रसिद्ध है। रात भर जल में निवास कर जो प्रातः काल गोदान करता है, वह वरुण का लोक प्राप्त करता है, यह वरुणव्रत के नाम से विख्यात है। जो चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करता है और सुवर्ण के बने हुए चन्द्रमा का दान करता है, वह चन्द्रमा के लोक में निवास करता है, तथोक्त फल प्रदान करने वाले इस

व्रत का नाम चन्द्रव्रत कहा गया है। जेठ के महीने में अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथि को पाँच अग्नियों का ताप सहन कर सायंकाल के समय सुवर्णनिर्मित धेनु की प्रतिमा का दान करता है वह रुद्र के लोक को प्राप्त करता है, यह रुद्रव्रत के नाम से विख्यात है। जो तृतीया तिथि को शिवालय में एक बार ध्वजा का आरोपण करता है, एवं वर्ष की समाप्ति पर धेनु का दान करता है, वह भवानी के लोक को प्राप्त करता है, यह भवानी व्रत के नाम से प्रसिद्ध है। माघ महीने की सप्तमी तिथि को रात्रि काल में गीले वस्त्र पहिन कर जो बिताता है, एवं प्रातःकाल गोदान करता है, वह एक कल्प पर्यन्त स्वर्ग लोक में निवास कर पुनः पृथ्वी पर राजा होता है। यह पवन व्रत है। तीन रात्रि तक उपवास रख कर फाल्गुन महीने की पूर्णिमा तिथि को एक शुभ भवन का जो दान करता है वह सूर्य का लोक प्राप्त करता है, वह धाम व्रत के नाम से प्रसिद्ध है। उपवास रख कर प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल में जो आभूषणों द्वारा ब्राह्मण दंपति की विधिपूर्वक पूजा करता है वह इस लोक में इस इन्द्रव्रत के माहात्म्य से विपुल अन्न तथा गौओं की एवं अन्त में मोक्ष की प्राप्ति करता है। शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि को चन्द्रमा के उद्देश्य से जो ब्राह्मण को लवण संयुक्त एक पात्र दान करता है एवं वर्ष की समाप्ति पर धेनु दान करता है वह शेष जी का स्थान प्राप्त करता है, तथा पुनः राजाधिराज होता है, यह सोमव्रत के नाम से स्मरण किया जाता है। प्रतिपदा तिथि को नियमित रूप से एक बार दोपहर में भोजन कर एक वर्ष की समाप्ति पर जो एक कपिला गौ दान करता है वह वैश्वानर (अग्नि) का स्थान प्राप्त करता है, यह शिवव्रत के नाम से विख्यात है। दशमी तिथि को नियमपूर्वक केवल एक बार दोपहर में भोजन का नियम कर जो वर्ष की समाप्ति पर दस धेनुओं एवं दसों दिशाओं की सुवर्ण मयी प्रतिमा का दान करता है वह निखिल ब्रह्माण्ड का अधिपति होता है। यह महापापनाशी विश्व व्रत के नाम से स्मरण किया जाता है। जो मनुष्य इन सर्व श्रेष्ठ साठ व्रतों के नियमों को पढ़ता है अथवा सुनता है वह भी सौ मन्वन्तर पर्यन्त गन्धर्वों का अधिपति होता है। हे नारद जी! समस्त मानव समुदाय के परम उपकारी इन पुण्यप्रद साठ व्रतों को मैं तुमसे बतला चुका, अब इसके अतिरिक्त कुछ सुनने की यदि तुम्हारी इच्छा है तो दूसरे व्रत बतलाऊँ। अपने प्रियजनों के लिये कौन-सी बात अकथनीय हो सकती है?॥४०-८५॥

श्री मात्स्य महापुराण में साठ व्रत विधान एवं माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ एक अध्याय समाप्त॥१०१॥

एक सौ दूसरा अध्याय

नन्दिकेश्वर बोले—नारद जी! निर्मलता एवं भावों में पवित्रता विना स्नान के नहीं प्राप्त होती, अतः मन को शुद्ध करने के लिए किसी भी व्रत के आरम्भ में स्नान करना चाहिये। मंत्रज्ञाता विद्वान् पुरुष को ऊपर निकाले हुए (कुएँ के जल) वा बिना निकाले हुए (तालाब आदि के) जल द्वारा स्नान करना चाहिये। और मूल मंत्र के द्वारा जलागार को तीर्थ बना लेना चाहिये। अर्थात् उसमें पुण्यतीर्थ

की भावना करनी चाहिये। वह मूल मंत्र "नमो नारायणाय" (नारायण—भगवान् विष्णु को नमस्कार है।) कहा गया है। हाथ में कुशा लेकर विधिपूर्वक आचमन कर जितेन्द्रिय एवं पवित्रात्मा हो चारों ओर चार हाथ परिमाण तक तीर्थ की कल्पना कर इन निम्नलिखित मंत्रों द्वारा वहाँ विवेकी पुरुष को गंगा का आवाहन करना चाहिये। 'हे जह्नुकन्ये! तुम भगवान् विष्णु की एकमात्र शक्तिस्वरूप हो, उनकी सेवा में सर्वदा तत्पर रहने वाली हो एवं उन्हीं के चरणों से निकली हो, अतः जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त होनेवाले पापों से हमारी रक्षा करो। वायु ने स्वर्ग, पृथ्वी एवं आकाश में मिलाकर सभी तीर्थों की संख्या साढ़े तीन करोड़ बतलाई है, जो सभी तुम में निवास करते हैं। तुम्हारे देवताओं में 'नन्दिनी' (आनन्द देनेवाली) तथा 'नलिनी' (कमलों वाली, आकाश गंगा) नाम प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वी, विहगा (आकाशगामिनी) विश्वकाया, अमृता, शिवा, विद्याधरी, सुप्रशान्ता, विश्वप्रसादिनी, क्षेमा, जाह्नवी, शान्ता, शान्तिप्रदायिनी—ये भी तुम्हारे पवित्र नाम हैं। तुम्हारे इन पुण्य नामों का स्नान करते समय कीर्त्तन करना चाहिये।'

'विष्णोः पादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुदेवता, पाहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्।
तिस्रःकोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि।
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च, दक्षा पृथ्वी च विहगा विश्वकायाऽमृता शिवा।
विद्याधरी सुप्रशान्ता तथा विश्वप्रसादिनी, क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी।'

इन उपर्युक्त नामों के कीर्त्तन करने से उस जलागार में त्रिपथगामिनी गंगा सन्निहित हो जाती हैं। इन नामों को सात बार जपकर अपने शिर पर प्रति बार दो, तीन, चार, पाँच अथवा सात बार तक जल डाले। पुनः उसी प्रकार अभिमंत्रित कर विधिपूर्वक मृत्तिका से स्नान करे। मंत्र—'हे वसुन्धरे! (अपने अंतर में धन धारण करनेवाली) अश्वक्रान्ते! (अश्वों द्वारा दबायी गयी) रथक्रान्ते (रथ द्वारा दबायी गयी) तथा विष्णुक्रान्ते! (विष्णु भगवान् द्वारा दबायी गयी) जिन दुष्कर्मों को मैंने किया है, उनसे होनेवाले पापों को तुम मुझसे दूर करो। बराहमूर्ति (शूकर रूपधारी भगवान् विष्णु), शतबाहुधारी, कृष्ण द्वारा तुम (हिरण्यकशिपु से छीनकर) ऊपर लायी गयी हो, ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त हो, महर्षि काश्यप द्वारा अभिमंत्रित हो, अतः मेरे अंगों पर चढ़कर तुम मेरे समस्त पापों को दूर करो। मृत्तिके! तुम्हीं में सब कुछ रखा हुआ है, सम्पूर्ण जीवों को उत्पन्न करनेवाली! सुव्रते! तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ, मुझे पुष्टि दो।'

'उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना, मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि काश्यपेनाभिमंत्रिता। आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रचोदय। मृत्तिके! देहि नः पुष्टिं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्। नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते।

इस प्रकार विधिपूर्वक स्नान कर पश्चात् आचमन कर, और फिर वहाँ से उठकर श्वेत रंग के शुद्ध दो वस्त्रों को धारण करे। तत्पश्चात् त्रैलोक्य की तुष्टि के लिए तर्पण करे। उस समय कहे 'देव, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सराएँ, असुर, क्रूर (क्रूरग्रह अथवा पक्षी आदि जन्तु) सर्प, सुपर्ण (गरुड आदि पक्षी) वृक्ष, शृगाल, अन्य-पक्षीगण एवं अन्य जीववृन्द जो वायु में रहने वाले, जल में रहनेवाले, आकाशगामी, निराधार एवं पाप तथा धर्म में निरत रहनेवाले हैं—उन सब की तृप्ति के लिए मैं यह जलदान कर रहा हूँ।'

"देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाऽप्सरसोऽसुराः । क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्चा तर वो जम्बुकाः खगाः । वाय्वाधारा जलाधारास्तथैवाकाशगामिनः । निराधाराश्च ये जीवा पापे धर्मरतास्तथा । तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ।"

तदनन्तर बाँये कन्धे पर यज्ञोपवीत रखकर देवताओं को जल दे । पश्चात् जनेऊ को माला की भाँति धारण करले और भक्तिपूर्वक मनुष्यों तथा ब्रह्मपुत्र ऋषियों को जल दे । उसी प्रकार 'सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु, पंचशिख—ये सभी मेरे दिये हुए जल द्वारा सदा तृप्त हों—ऐसा कह कर तर्पण करे । इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता; वसिष्ठ, भृगु, नारद प्रभृति देवर्षि तथा ब्रह्मर्षियों का अक्षत तथा जल द्वारा तर्पण करे । तत्पश्चात् जनेऊ को दाहिने कन्धे पर रखकर बायें घुटने को भूमि पर टेक कर अग्निष्वात्त, सौम्य, हविष्मान्; ऊष्मपा, सुकाली, बर्हिषद् आदि देव-पितरों तथा अन्यान्य यज्ञभागभोजी पितर गणों को तिल तथा चन्दनमिश्रित जल द्वारा विधिपूर्वक तर्पण करे । 'यमराज, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर (चौदह यमों के मध्य में एक यम ।) दध्ना, नील; परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र तथा चित्रगुप्त को नमस्कार है ।' ऐसा कहकर विधिपूर्वक हाथ में कुश लेकर बुद्धिमान् पुरुष इन पितरों का भी तर्पण करे । पितामह आदि पितृवंश के पूर्वपुरुष एवं नाना आदि मातृवंश के पूर्वपुरुषों को नाम एवं गोत्र का उच्चारण कर भक्तिपूर्वक विधिवत् तर्पण द्वारा खूब तृप्त करके इस मंत्र का उच्चारण करे । 'हमारे (इस जन्म के) परिवार के जो लोग नहीं हैं; जो लोग हैं और जो हमारे पूर्व जन्म के परिवार के हैं, वे सब विधिपूर्वक तृप्त हों, वे सब भी तृप्त हों, जो हम से जलाञ्जलि द्वारा तृप्त होने की इच्छा रखते हैं ।' ॥१-२५॥

तदुपरान्त आचमन कर आगे की ओर विधिपूर्वक पुष्प समेत अक्षतों द्वारा एक कमल बनाये । और प्रयत्नपूर्वक लाल चन्दन समेत जल का अर्घ्य सूर्य के नामों का उच्चारण करते हुए दे । "विष्णुस्व-रूप, विष्णु के मुखरूप, सहस्र किरणों वाले, सभी प्रकार तेजोमय देव तुम्हें हमारा नित्य नमस्कार है । हे शिव, सर्वेश, सर्ववत्सल, जगत्स्वामिन्, दिव्यचन्दन से सुशोभित तुम्हें हमारा नमस्कार है । हे पद्मासन ! कुण्डल एवं बाजूबन्द से अलंकृत, सम्पूर्ण लोकों के स्वामी ! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं । तुम ही सम्पूर्ण संसार को उद्बुद्ध करनेवाले हो । हे सर्वगामी ! सत्यदेव ! भास्कर ! मेरे सत्कर्मों एवं दुष्कर्मों—सभी को तुम देखते हो, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ । मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हो । दिवाकर ! प्रभाकर ! तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है ।"

इस प्रकार उक्त नामों का उच्चारण करते हुए सूर्य को नमस्कार एवं तीन बार प्रदक्षिणा कर जो मनुष्य ब्राह्मण; गौ एवं सुवर्ण का स्पर्श करता है, वह विष्णु भगवान् के लोक को प्राप्त करता है । ॥२६-३१॥

श्री मात्स्य महापुराण में स्नानविधि नामक एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त ॥१०२॥

एक सौ तीसरा अध्याय

नन्दिकेश्वर बोले—नारद जी ! अब इस कथा के उपरान्त मैं प्रयाग क्षेत्र का वर्णन करूँगा, जिसे प्राचीन काल में मार्कण्डेय ऋषि ने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर से कहा था। जब महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया और सारे कुरु देश का राज्य पृथापुत्र युधिष्ठिर को प्राप्त हुआ तो उस समय कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर भाइयों की मृत्यु से अतिशय दुखित होकर सोचने लगे। 'हमारे भाई राजा सुयोधन ग्यारह अक्षौहिणी सेना के स्वामी थे, किन्तु हम लोगों को दुःख में डालकर वे मृत्यु को प्राप्त हुए, हम पाण्डु के पाँच पुत्र वासुदेव भगवान् कृष्ण का साहाय्य प्राप्त कर किसी प्रकार बचे रह गये। महाबलशाली भीष्म, द्रोण, कर्ण, पुत्र तथा भाइयों समेत राजा दुर्योधन का संहार हम लोगों ने कर डाला। सभी राजा लोग तथा अन्यान्य अपने को शूरवीर माननेवाले वीरगण काल के कराल गाल में चले गये। गोविन्द ! हम लोगों के इस राज्य भोग विलास आदि सामग्रियों एवं जीवन से अब क्या लाभ है ? हाय ! ऐसे कष्टमय राज्य को धिक्कार है।' इस प्रकार की चिन्ता में निमग्न राजा युधिष्ठिर विकल हो कर उत्साह एवं व्यापार से शून्य हो गये और नीचे मुख करके कुछ देर तक यूं ही बैठे रहे। कुछ देर बाद होश आने पर राजा ने पुनः पुनः इसी बात की चिन्ता करते हुए सोचा। 'ऐसा कौन-सा विनियोग (प्रायश्चित्त) नियम (व्रतोपवास) अथवा तीर्थ है, जिसके द्वारा इस घोर महा पाप से मैं मुक्त हो सकूँगा और जिसे प्राप्त कर मनुष्य सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करता है। ऐसे पुण्यप्रद तीर्थादि को मैं भगवान् कृष्ण से कैसे पूछ सकता हूँ; क्योंकि उन्होंने स्वयं हम लोगों से यह घोर पाप करवाया है। धृतराष्ट्र से कैसे पूछ सकता हूँ; जिनके सौ पुत्रों को हमने मार डाला है, महर्षि व्यास से भी कैसे पूछ सकता हूँ, जिनके गोत्र का विनाश हुआ है।' इस प्रकार की घोर चिन्ता में धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिर विकल थे। उस समय सभी पाण्डववृन्द अपने ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर के इस शोक से उद्विग्न होकर रो रहे थे। इनके अतिरिक्त जो अन्यान्य वीरगण पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर के समीप वहाँ विद्यमान थे, वे तथा कुन्ती और द्रौपदी भी, जो वहाँ प्रसंगतः आ गयी थीं, अत्यंत विकल हो रही थीं। सब के सब चारों ओर से रुदन करते हुए पृथ्वी पर गिरे पड़े थे। ॥१-१२॥

वाराणसी नगरी में मार्कण्डेय नामक ऋषि निवास करते थे, जो राजा युधिष्ठिर से भली भाँति परिचित थे। राजा युधिष्ठिर को इस प्रकार विकल एवं दुःखी जान कर वे शीघ्र ही काशी से हस्तिनापुर पहुँचे और राजा के द्वार पर स्थित हुए। द्वारपाल ने ऋषि को द्वार पर आया देख राजा से शीघ्र जाकर निवेदन किया। 'महाराज ! आप को देखने के लिए मार्कण्डेय नामक ऋषि द्वार पर उपस्थित हैं।' द्वारपाल की बात सुनकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर स्वयं द्वार पर पहुँच आये। ॥१३-१५॥

युधिष्ठिर ने कहा—महामुने ! महाभाग्यशालिन् ! आप का बारम्बार स्वागत है। आज हमारा जन्म सफल हो गया। हमारे पूर्व पुरुषों का उद्धार हो गया। मुनिवर ! आज आप के दर्शन पा जाने से हमारे पितरगण सचमुच सन्तुष्ट हो गये। हमारा यह पार्थिव शरीर पवित्र हो गया। ॥१६-१७॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—तत्पश्चात् महात्मा युधिष्ठिर ने महामुनि मार्कण्डेय को सिंहासन पर बिठाकर उनके पैरों को धोकर विधिपूर्वक पूजा की। अति सन्तुष्ट एवं पूजित हो कर मार्कण्डेय जी ने पूछा—राजन्! तुम किस लिए रुदन कर रहे थे? किस कारण से इतने विकल थे? तुम्हें कौन-सी बाधा सता रही थी? और तुम्हारा क्या अशुभ हुआ? शीघ्र ही हमसे सब बातें बतलाओ। ॥१८-१९॥

युधिष्ठिर ने कहा—महामुने! राज्य पद की प्राप्ति के लिए हम लोगों ने जो-जो अनुचित कार्य किये हैं, उन्हीं सब को सोचकर मैं इस समय अत्यधिक चिन्तित हुआ हूँ। ॥२०॥

मार्कण्डेय ने कहा—महाबाहु! राजन्! क्षत्रियों के धर्म की जो व्यवस्था है, उसे सुनो। बुद्धिमान् पुरुष को युद्ध करने में कोई पाप लगता है—ऐसा मैंने कहीं नहीं देखा, तो फिर राजनीति से—विशेषतया क्षत्रिय जाति को—युद्ध करने में कौन-सा पाप लग सकता है? अतः इस प्रकार का विचार हृदय में रखकर युद्ध में पाप लगने की चिन्ता तो तुम्हें नहीं ही करनी चाहिये।' मुनि की ऐसी बातें सुनकर राजा युधिष्ठिर ने मुनि को शिर नवा कर पुनः प्रणाम किया और अति विनय और नम्रता-पूर्वक सम्पूर्ण पापों के विनाश का उपाय पूछा। ॥२१-२३॥

युधिष्ठिर ने कहा—बुद्धिमानों में सर्वश्रेष्ठ! तीनों लोक के नित्य प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले आप से मैं उन उपायों को पूछना चाहता हूँ, जिनसे मनुष्य अपने समस्त पाप कर्मों से छुटकारा पा जाता है। आप कृपया उन्हें संक्षेप में हमसे कहें। ॥२४॥

मार्कण्डेय ने कहा—महाबाहु राजन्! सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाले, परम पुण्यप्रद, प्रयाग नामक क्षेत्र की श्रेष्ठ यात्रा का वर्णन, जो पुण्यकर्मा मनुष्यों के लिए सर्वाधिक पुण्यदायी कहा जाता है, मैं तुमसे कह रहा हूँ, सुनो। ॥२५॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त ॥१०३॥

एक सौ चौथा अध्याय

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! मुनिवर्य्य! प्राचीन कल्प में प्रयाग की जैसी स्थिति थी, देवताओं में प्रमुख ब्रह्मा जी ने इसके विषय में आप से जैसा कुछ कहा है, उसे मैं उसी प्रकार सुनना चाहता हूँ। मनुष्य प्रयाग तीर्थ की यात्रा किस प्रकार करते हैं? वहाँ की विशेषता क्या है? वहाँ पर मृत्यु हो जाने से क्या फल मिलता है? और वहाँ के स्नान करनेवालों को किस फल की प्राप्ति होती है? यह भी बतलाइये कि जो लोग प्रयाग तीर्थ में ही निवास करते हैं, उन्हें कौन सा फल प्राप्त होता है? इन सभी बातों को कृपया हमें बतलाइये, इन्हें सुनने का हमें बड़ा कुतूहल है। ॥१-३॥

मार्कण्डेय ने कहा—वत्स! प्रयाग तीर्थ की जो विशेषता है और वहाँ जाने पर जो फल मिलता है, प्राचीन काल में ब्राह्मणों द्वारा कहे गये जिस माहात्म्य को मैंने सुना है, उन सब बातों को मैं तुमसे

बतला रहा हूँ। प्रयाग के प्रतिष्ठानपुर[1] नामक नगर से वासुकि[2] के तालाब के अग्रभाग तक, जहाँ पर कम्बल, अश्वतर तथा बहुमूलक नामक नाग गण निवास करते हैं, तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध प्रजापति ब्रह्मा जी का क्षेत्र कहा जाता है। मनुष्य वहाँ स्नान कर स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य वहीं पर अपने प्राण त्याग करते हैं, वे पुनः नहीं उत्पन्न होते एवं वहाँ पर निवास करने वालों की रक्षा ब्रह्मा आदि देवगण समवेत भाव से—एकत्र हो कर—करते हैं। राजन्! इस विस्तृत प्रयाग क्षेत्र में सम्पूर्ण पापों के नष्ट करने वाले कल्याणदायी अनेक तीर्थ हैं, जिन्हें सैकड़ों वर्षों में भी मैं नहीं गिना सकता। अतः संक्षेप में प्रयाग तीर्थ का कीर्तन कर रहा हूँ। साठ सहस्र धनुर्धारी सर्वदा गंगा की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार सप्त वाहन भगवान् सविता (सूर्य) यमुना की रक्षा करते हैं, विशेषतया प्रयाग की सर्वदा स्वयं देवराज इन्द्र रक्षा करते हैं, इसके मण्डल की रक्षा अन्यान्य देवताओं के साथ स्वयं भगवान् विष्णु करते हैं। सुप्रसिद्ध अक्षयवट की रक्षा सर्वदा भगवान् शंकर हाथ में त्रिशूल लेकर करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करनेवाले वहाँ के सभी स्थानों की रक्षा देववृन्द करते हैं। अतः अधर्म से घिरा हुआ मनुष्य उस क्षेत्र में नहीं जा सकता। राजन्! ऐसे उत्तम प्रयाग क्षेत्र के स्मरण करने मात्र से कुछ स्वल्प वा अति स्वल्प पाप भी यदि आपको लगा होगा तो वह भी नष्ट हो जायगा। ऐसे प्रयाग तीर्थ के दर्शन करने से, केवल नाम का कीर्त्तन करने से अथवा वहाँ की मृत्तिका के स्पर्श करने मात्र से भी मनुष्य अपने पापों से छुटकारा पा जाता है। राजेन्द्र! उस प्रयाग क्षेत्र में पाँच कुण्ड हैं, उनके मध्य भाग में गंगा बहती हैं। परम पुनीत प्रयाग क्षेत्र की सीमा में प्रवेश करने मात्र से पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं। सहस्र योजन दूर से ही गंगा का स्मरण करने से मनुष्य—चाहे कितना ही घोर पापी क्यों न हो—परम गति प्राप्त करता है। इस प्रयाग तीर्थ के नाम कीर्तन करने से घोर पापों से छुटकारा मिलता है, देखने से मंगल मिलता है, स्नान करने तथा जल के पान करने से तो मनुष्य अपने पूर्वजों की सातवीं पीढ़ी तक का उद्धार करता है। जो तत्त्वज्ञानी पुरुष इस प्रयाग क्षेत्र में बहनेवाली गंगा तथा यमुना की मध्य भूमि में सत्यवादी होकर क्रोध को वश में रख, अहिंसा परायण हो वेदोक्त धर्मानुसार गौ तथा ब्राह्मण की कल्याण भावना में निरत रहकर स्नान करता है वह घोर पापों से मुक्त हो जाता है। वह मन से जिस अभिलाषा के पूर्ण होने की चिन्ता करता है उसे प्रचुर परिमाण में प्राप्त करता है। अतएव उस सम्पूर्ण देवताओं द्वारा रक्षित प्रयाग तीर्थ में मनुष्य को ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर एक मास तक अवश्य निवास करना चाहिये और पितरों तथा देवताओं का विधिवत् तर्पण करना चाहिये। वहाँ निवास करते हुए जिन-जिन मनोरथों की अभिलाषा मनुष्य करता है उन्हें अवश्य प्राप्त करता है। तीनों लोक में विख्यात सूर्य की कन्या महाभाग्यशालिनी यमुना उस पुनीत प्रयागक्षेत्र में आई हुई हैं। और वहीं पर साक्षात् महादेव शंकर भी नित्य सन्निहित रहते हैं। युधिष्ठिर! यह प्रयाग तीर्थ मनुष्यों को बड़ी कठिनाई से मिलने वाला एवं परम पुण्यप्रद है। हे राजेन्द्र! वहाँ पर स्नान आदि करके देव, दानव,

[1]झूँसी, [2]वसुकी।

गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध तथा चारण आदि दिव्य योनिधारी स्वर्ग लोक की प्राप्ति करते हैं। ॥१-२०॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ चौथा अध्याय समाप्त। ॥१०४॥

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

मार्कण्डेय ने कहा—राजन्! प्रयाग का माहात्म्य मैं पुनः बतला रहा हूँ, सुनो। जिसे सुनकर निश्चय ही मनुष्य सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है; निश्चित व्यवसाय करनेवाले दुःखी एवं दरिद्र—इन सब के कल्याण के लिए प्रयाग ही एक तीर्थ स्थान कहा गया है। यह एक गोपनीय विषय है। मनुष्य किसी व्याधि से पीड़ित हो, दीन हो, अथवा वृद्ध हो, किसी विपत्ति में ग्रस्त हो यदि इस प्रयाग क्षेत्र में गंगा तथा यमुना के पुनीत संगम पर अपने प्राणों को छोड़ता है तो वह तपाये हुए सुवर्ण की भाँति सुन्दर, सूर्य के समान तेजोमय विमानों द्वारा, गन्धर्व एवं अप्सरा समूह के मध्य भाग में सुशोभित होकर स्वर्ग लोक में क्रीड़ा करता है और अपने यथेष्ठ मनोरथों की प्राप्ति करता है—ऐसा ही महर्षियों ने कहा है। उनके वे सुन्दर विमान सभी प्रकार के दिव्य रत्नों से सुशोभित, अनेक प्रकार की ध्वजा एवं पताकाओं से अलंकृत; दिव्य सुन्दरियों से आकीर्ण एवं अन्यान्य मांगलिक लक्षणों से सुशोभित रहते हैं। वह भाग्यशाली मनुष्य स्वर्गलोक में शयन करते हुए अनेक प्रकार के मनोहर गीतों एवं मांगलिक वाद्यों (बाजनों) के द्वारा जगाया जाता है। इस प्रकार जब तक पूर्व जन्म का स्मरण नहीं करता तब तक स्वर्गलोक में पूजित होता है। तत्पश्चात् पुण्य के क्षीण हो जाने पर स्वर्ग से च्युत होकर भी वह उस समृद्ध परिवार में जन्म धारण करता है, जो सुवर्ण एवं रत्नों से परम समृद्ध रहता है। इस जन्म में उत्पन्न होने पर वह पुनः इस प्रयाग तीर्थ का स्मरण करता है और पुनः वहाँ जाता है। अपने देश में हो, जंगल में हो, विदेश में हो अथवा अपने घर पर हो—कहीं भी हो—प्रयाग तीर्थ का स्मरण करते हुए जो प्राणों को छोड़ता है, वह परम पुनीत ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है—ऐसा महर्षिगण कहते हैं। उस ब्रह्मलोक के वृक्ष सम्पूर्ण मनोरथों को देने वाले एवं पृथ्वी सुवर्ण की पैदा करनेवाली होती है तथा वहाँ पर ऋषि, मुनि एवं सिद्ध वृन्द निवास करते हैं। उसी लोक में वह प्राणी निवास करता है। इस सत्कर्म के द्वारा वह भाग्यशाली मनुष्य मर्त्यलोक में पवित्र, सहस्रों स्त्रियों से घिरे हुए मन्दाकिनी के मंगलमय सुरम्य तट पर, ऋषियों के साथ आनन्द का अनुभव करता है और सिद्ध, चारण गन्धर्व एवं देवताओं द्वारा पूजित होता है। तत्पश्चात् स्वर्ग से च्युत होकर वह जम्बूद्वीप का अधिपति होता है। उस जन्म में भी पुनः पुनः मांगलिक कर्मों की चिन्ता में निरत रह कर वह निश्चय ही गुणवान् एवं धनी होता है। मनसा, वाचा, कर्मणा सर्वदा धर्म में निरत रहकर जो मनुष्य गंगा तथा यमुना के पुनीत संगम पर अपने मंगल के निमित्त किये जानेवाले अथवा पितरों के उद्देश्य से किये जानेवाले (श्राद्ध आदि) अथवा देवता के पूजन आदि कार्यों में गोदान करता है तथा सुवर्ण मणि मुक्ता आदि वस्तुएँ दान करता है, उसकी वह तीर्थ यात्रा सफल हो जाती है

और वह पर्याप्त पुण्य प्राप्त करता है । इस पुनीत तीर्थ में जाकर अथवा अन्यान्य पुण्यप्रद देव मन्दिरों में जाकर तीर्थ यात्री को दान नहीं ग्रहण करना चाहिये । और वहाँ के सभी कार्यों में—विशेषतया ब्राह्मण को—सावधान होना चाहिये । लाल रंग की अथवा श्वेत रंग की दूध देनेवाली गाय की सीगों को सुवर्ण द्वारा खुरों को चाँदी द्वारा मढ़ा कर काँसे के बने हुए दोहन पात्र के समेत प्रयाग तीर्थ में शान्त, धर्मज्ञ एवं वेदों के पारगामी ब्राह्मण को श्वेतरंग के वस्त्र से विभूषित कर विधिपूर्वक दान करना चाहिये तथा उसके साथ-साथ अन्यान्य बहुमूल्य वस्त्रों एवं रत्नों का भी दान देना चाहिये । हे नृपतिवर ! इस प्रकार दान करनेवाला प्राणी उस गौ के शरीर में जितने रोम रहते हैं उतने ही सहस्र वर्षों तक स्वर्गलोक में पूजित होता है । अगले जन्म में जिस स्थान पर वह पुरुष उत्पन्न होता है, वहीं पर वह गौ भी उसके घर उत्पन्न होती है । इस श्रेष्ठ कर्म के माहात्म्य से वह प्राणी घोर नरक को देख भी नहीं सकता । प्रत्युत उत्तर कुरु प्रदेश को प्राप्त कर अक्षय काल पर्यन्त वह आनन्द का अनुभव करता है । राजन् ! एक लाख साधारण गौओं की अपेक्षा दूध देनेवाली एक अच्छी गाय का ही दान प्रशस्त माना गया है अतः उसे अवश्य देना चाहिये । क्योंकि ऐसी एक ही गाय दान देने से पुत्र, स्त्री तथा नौकर-चाकर आदि को भी, संसार-सागर से तार सकती है । यही कारण है कि सब प्रकार के दान कार्यों में गोदान का विशेष महत्त्व माना गया है । विषम एवं अति भयानक महापाप से उत्पन्न होनेवाले ऐसे संकट में, जिससे कोई नहीं उबार सकता, एक गाय ही मनुष्य को उबारती है, अतः श्रेष्ठ ब्राह्मण को ऐसी गाय का दान अवश्यमेव करना चाहिये । ॥१-२२॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥१०५॥

एक सौ छठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन् ! ज्यों-ज्यों आप प्रयाग का माहात्म्य वर्णन मुझसे कर रहे हैं, त्यों-त्यों मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं अपने सम्पूर्ण पापों से निश्चित छुटकारा पाता जा रहा हूँ । महामुनि ! धर्म के प्रति श्रद्धा एवं निश्चय भाव रखने वाले पुरुषों को किस विधि से प्रयाग तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये और प्रयाग में पहुँच कर किस नियम के पालन करने की आज्ञा शास्त्रों में की गई है ? अब कृपया यह सब मुझे बतलाइये । ॥१-२॥

मार्कण्डेय ने कहा—राजन् ! मैं प्रयाग की यात्रा का विधान-क्रम तुमसे बतला रहा हूँ, सुनो । जिस प्रकार ऋषियों द्वारा निर्णीत विधानों को मैंने सुना है, जिस प्रकार लोगों को उन्हें करते देखा है, उसी प्रकार कह रहा हूँ, सुनो । जो मनुष्य प्रयाग तीर्थ की यात्रा करने के लिए बैल पर चढ़कर जाता है, उसका फल बतला रहा हूँ, सुनो । वह गोवंश को कष्ट देनेवाला पुरुष परम दारुण एवं घोर नरक में, निवास करता है, और उस पापी के हाथ से दिये गये जल को पितरगण नहीं ग्रहण करते । जो पुरुष अपनी ही तरह अपने पुत्रों तथा स्त्री आदि परिवार के लोगों को भी अपने ही साथ

प्रयाग-स्नान करवाता है तथा त्रिवेणी का उन्हें पवित्र जलपान कराता है, एवं उपर्युक्त सम्पूर्ण दान देने योग्य वस्तुओं का ब्राह्मणों को दान दिलाता है (उसकी यह तीर्थयात्रा परम सफल होती है) । जो मनुष्य अपने ऐश्वर्य के मद वा मोह से किसी वाहन द्वारा प्रयाग तीर्थ की यात्रा करता है, उसका सब किया धरा चौपट हो जाता है, अतः वाहन को इस यात्रा में वर्जित रखना चाहिये । इस प्रयाग तीर्थ में गंगा एवं यमुना नदी के संगम पर जो वेदोक्त विधि के अनुसार अपने वैभव एवं सम्पत्ति के अनुकूल कन्या दान करता है, वह अपने इस श्रेष्ठ कर्म के माहात्म्य से तथोक्त भयानक नरक को नहीं देखता तथा उत्तर कुरु प्रदेश को प्राप्त कर अक्षय काल पर्यन्त आनन्द एवं सुख का अनुभव करता है एवं सुन्दर रूपवान् धार्मिक प्रवृत्ति वाले पुत्र-पौत्रों को प्राप्त करता है । राजेन्द्र ! उस परम पुनीत प्रयाग तीर्थ में जाकर मनुष्य को अपने वैभव के अनुसार दान देना चाहिये । दान देने से तीर्थ-स्नान का फल विशेष अधिक हो जाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिये । दान देनेवाला तब तक स्वर्ग में निवास करता है, जब तक सृष्टि का प्रलय नहीं होता । प्रयाग तीर्थ में स्थित अक्षयवट के मूल भाग पर जाकर जो अपने प्राणों को छोड़ता है वह अन्य समस्त लोकों का अतिक्रमण कर रुद्रलोक में निवास करता है । उस प्रयाग तीर्थ में भगवान् शंकर के आश्रय में अवस्थित बारह आदित्यगण अपने प्रखर ताप से जब तपते हैं तब सारे जगत् को जला देते हैं, किन्तु अक्षयवट का मूलभाग तब भी नहीं जलता । जब प्रलयकाल आने पर सूर्य, चन्द्रमा एवं समस्त संसार का विनाश हो जाता है और सारा संसार जलमग्न होकर एक समुद्र की भाँति दिखाई पड़ता है उस समय भी उस परम पुनीत प्रयाग तीर्थ में भगवान् विष्णु यज्ञ की आराधना में तत्पर रहकर निवास करते हैं । गंगा तथा यमुना के संगम पर अवस्थित उस प्रयाग तीर्थ की देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध एवं चारणवृन्द सर्वदा सेवा करते रहते हैं । राजेन्द्र ! इसलिए उस प्रयाग की यात्रा मनुष्य को अवश्यमेव करनी चाहिये, जहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण, ऋषि, सिद्ध, चारण, लोकपाल, साध्य, लोक में वन्दनीय पितरगण, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, अंगिरा आदि महर्षि गण, बहुत बड़े-बड़े ब्रह्मर्षि गण, नाग, बड़े श्रेष्ठ गरुड़ आदि पक्षी, आकाशगामी सिद्धगण, समुद्र, नदियाँ, पर्वत, नाग तथा विद्याधर गण—ये सब निवास करते हैं, यही नहीं प्रत्युत वहाँ पर स्वयं प्रजापति ब्रह्मा को पुरस्सर कर विष्णु भगवान् भी निवास करते हैं । हे राजसिंह ! तीनों लोक में विख्यात गंगा तथा यमुना के पुनीत संगम पर अवस्थित प्रयाग क्षेत्र पृथ्वी का जघनस्थल कहा जाता है । भारत ! उससे बढ़कर पुण्यप्रद तीर्थ तीनों लोकों में अन्यत्र कहीं नहीं है । उसका नाम सुनने मात्र से, उसके नाम के कीर्त्तन मात्र से तथा वहाँ की मृत्तिका का स्पर्श करने मात्र से मनुष्य अपने घोर पाप कर्मों से छुटकारा पा जाता है । वहाँ गंगा यमुना के संगम पर अवस्थित होकर जो मनुष्य व्रत का निश्चय करके अभिषेचन करता है, वह राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने के समान पुण्य प्राप्त करता है । तात ! न तो किसी देवता के वचन से और न लोक के वचन से—किसी प्रकार भी—तुम्हारी प्रयाग की तीर्थयात्रा दूषित करने योग्य नहीं हो सकती । कुरुनन्दन ! भूतल में सब साठ करोड़ दस सहस्र श्रेष्ठ तीर्थ माने गये हैं, उन सबों का सन्निधान इस प्रयाग तीर्थ में ही होता है ।

इस पवित्र तीर्थ में गंगा यमुना के संगम पर प्राणों को छोड़नेवाला प्राणी उस श्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है, जिसे योगी एवं सत्य परायण मनीषी लोग प्राप्त करते हैं। युधिष्ठिर ! ऐसे परम पवित्र प्रयाग तीर्थ की यात्रा जो प्राणी नहीं करते वे वस्तुतः इस लोक में जीवन ही नहीं धारण करते अर्थात् वे जीते हुए भी मृतक के समान हैं और तीनों लोक के परम तत्व से वञ्चित ही रहते हैं। उस परम श्रेष्ठ, परम पवित्र तीर्थ स्थान प्रयाग का दर्शन करने मात्र से प्राणी राहु के ग्रास से मुक्त चन्द्रमा की भाँति पाप मुक्त होकर शोभायमान होता है। यमुना के विस्तृत पवित्र तट पर कंम्बल और अश्वतर नामक दो नागों का निवास स्थान है, जहाँ पर स्नान एवं जल पान कर प्राणी अपने सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है। उसी प्रयाग तीर्थ में त्रैलोक्य में सुप्रसिद्ध महादेव के पुनीत स्थान पर जाकर मनुष्य अपने दस पूर्व एवं दस पीछे पैदा होने वाली पीढ़ियों को इस भवसागर से तार देता है। वहाँ पर अभिषेचन करने वाला अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में कल्प पर्यन्त आनन्द का अनुभव करता है। भारत ! प्रयाग में गंगा के पूर्वी किनारे पर अति प्रसिद्ध प्रतिष्ठानपुर तथा समुद्रकूप नामक पवित्र तीर्थ स्थान हैं, उन पुनीत स्थानों पर ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर क्रोध आदि बुरी भावनाओं को वश में रखकर यदि मनुष्य तीन रात तक निवास करता है तो सम्पूर्ण पापों से मुक्त एवं पवित्रात्मा हो अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। गंगा के पूर्वी किनारे पर अवस्थित प्रतिष्ठानपुर से उत्तर दिशा की ओर तीनों लोक में विख्यात 'हंसप्रपतन' नामक एक तीर्थ है। भारत ! उसमें स्नान करने मात्र से प्राणी अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। उसके पुण्य प्रभाव से वह तब तक स्वर्ग लोक में पूजित होता है जब तक पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्रमा रहते हैं। वहाँ स्थित पुण्यप्रद 'उर्वशी रमण' नाम से विख्यात विस्तृत 'हंस पाण्डुर' नामक तीर्थ में जो अपने प्राणों को छोड़ता है, उसको जो फल मिलते हैं, उन्हें भी सुनिये। राजन् ! उपर्युक्त स्थानों पर प्राण त्याग करने वाला प्राणी साठ सहस्र साठ सौ अर्थात् ६६ सहस्र वर्षों तक स्वर्गलोक में पितरों के साथ सेवित होता है। नरश्रेष्ठ ! वत्स ! स्वर्ग लोक में निवास करते हुए वह प्राणी परम सुन्दरी अप्सरा उर्वशी को सर्वदा देखा करता है एवं ऋषि, गन्धर्व तथा किन्नर गणों से पूजित होता है। तदनन्तर पुण्य के क्षीण हो जाने पर स्वर्गलोक से च्युत होकर वह उर्वशी के समान सर्वाङ्गसुन्दरी एक सौ कन्याओं को प्राप्त करता है, एवं अनेक सहस्र स्त्रियों के मध्य में विराजमान होकर उनका पति होता है, तथा दस सहस्र ग्रामों का राजा होता है, किंकिणी तथा नूपुर के मृदुल शब्दों द्वारा वह जगाया जाता है। इसी प्रकार अनेक दुर्लभ भोगों का भोक्ता बन वह पुनः उसी तीर्थ (प्रयाग) की सेवा करता है। नित्य श्वेत रंग के वस्त्र पहिन कर इन्द्रियों को वश में रखकर नियमपूर्वक एक समय भोजन करके एक महीने तक जो प्रयाग तीर्थ में निवास करता है वह पुनर्जन्म में राजा होता है तथा सुवर्ण के आभूषणों से अलंकृत एक सौ स्त्रियों को प्राप्त करके समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का अधीश्वर होता है। धन धान्यादि से परिपूर्ण हो कर पुनः नित्य दान करता है एवं अनेक प्रकार की विपुल भोग्य सामग्रियों का विधिपूर्वक उपभोग कर उसी तीर्थ को प्राप्त करता है। उसी प्रयाग तीर्थ में स्थित परम रमणीय सन्ध्यावट के पास ब्रह्मचर्य

व्रत धारण कर इन्द्रियों को वश में रख उपवास कर पवित्र मन से सन्ध्योपासना करनेवाला ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। उसी प्रयाग के कोटितीर्थ में जाकर जो अपने प्राणों को छोड़ता है वह सहस्र करोड़ वर्ष पर्यन्त स्वर्गलोक में पूजित होता है। तदनन्तर पुण्यकर्म के क्षय हो जाने पर स्वर्ग से च्युत होकर सुवर्ण मणि मुक्ता आदि से सुसमृद्ध कुल में स्वरूपवान् होकर वह पुनः जन्म ग्रहण करता है। वासुकि नाग के निवास से उत्तर दिशा की ओर भोगवती नामक तीर्थ में जाकर, जहाँ पर दूसरा दशाश्वमेध नामक तीर्थ है, जो मनुष्य अभिषेचन करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है, एवं उसके पुण्य प्रभाव से धनाढ्य, रूपवान्, नीतिनिपुण, दान करनेवाला तथा धर्मपरायण होता है। चारों वेदों के अध्ययन से जो पुण्य प्राप्ति होती है, आजीवन सत्य वचन बोलनेवालों को जो फल प्राप्ति होती है, आजीवन अहिंसा व्रत के अंगीकार करने का जो धर्म बतलाया गया है, उतना ही श्रेय प्रयाग तीर्थ की यात्रा से प्राप्त होता कहा जाता है। गंगा में जहाँ-कहीं भी मनुष्य स्नान करते हैं, वहाँ-वहाँ पर उन्हें कुरुक्षेत्र के समान पुण्य प्राप्त होता है, किन्तु जहाँ पर गंगा विन्ध्याचल से मिली हुई हैं, वहाँ वे कुरुक्षेत्र से दसगुना अधिक फल देनेवाली कही जाती हैं। जिस स्थान पर अनेक तीर्थों से संयुक्त महाभाग्यशालिनी तपोधना गंगा बहती हैं उसे सिद्धों का क्षेत्र समझना चाहिये, इसमें कुतर्क नहीं करना चाहिये। यह पुण्यसलिला गंगा पृथ्वीतल पर मनुष्यों को तारती हैं, पाताल में नागों को तारती हैं तथा स्वर्ग लोक में देवताओं को तारती हैं, इसीलिए उनका पुण्य नाम त्रिपथगा (तीन मार्ग से जाने वाली) कहा जाता है। पुनीत गंगा में शरीर की जितनी हड्डियाँ पड़ती हैं उतने ही सहस्र वर्षों तक वह प्राणी स्वर्गलोक में पूजित होता है। तदुपरान्त पुण्यक्षीण होने पर स्वर्ग से च्युत होकर वह जम्बूदीप का स्वामी होता है। गंगा सभी तीर्थों से अधिक पुण्यदायिनी हैं, नदियों में सबसे बड़ी एवं पवित्रसलिला कही जाती हैं, सभी जीवधारियों को—विशेषतया महापापियों को भी—मोक्ष देने वाली हैं। ये सभी स्थानों पर तो अति सुलभ हैं; किन्तु तीन स्थानों—गंगाद्वार (हरद्वार), प्रयाग तथा गंगा और सागर के संगम—पर दुर्लभ मानी गई हैं। इन स्थानों पर स्नान करके प्राणी स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं तथा जो यहाँ प्राण त्याग करते हैं, वे पुनर्जन्म नहीं धारण करते। पुरातन पापों से जिनकी अन्तरात्मा मलिन हो गई है, जो अपनी सद्गति की खोज में हैं, ऐसे समस्त जीवधारियों को मुक्त करने के लिए गंगा से बढ़कर कोई अन्य तीर्थ नहीं है। पवित्र से भी अति पवित्र, मंगल से भी अति मंगलदायिनी, महादेव के शिर से मर्त्यलोक में गिरनेवाली, कल्याणमयी गंगा मनुष्यों के सम्पूर्ण पापों को दूर करनेवाली हैं। सतयुग में नैमिष क्षेत्र अति पवित्र माना जाता था, त्रेतायुग में सर्वश्रेष्ठ पुष्कर क्षेत्र था, द्वापर में कुरुक्षेत्र परम पवित्र माना जाता था, कलियुग में सबसे अधिक महत्त्व गंगा का है। राजन्! इस कारण मनुष्य को गंगा का ही सेवन विशेष रूप से करना चाहिये, उसमें भी विशेषकर प्रयाग तीर्थ में। इसके अतिरिक्त भव-भय से बचने की कोई अन्य औषधि इस घोर कलिकाल में दूसरी नहीं है ॥३-४८॥

श्री मात्स्य महापुराण में 'प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ छठाँ अध्याय समाप्त ॥१०६॥

एक सौ सातवाँ अध्याय

मार्कण्डेय ने कहा—राजन् ! प्रयाग तीर्थ का श्रेष्ठ माहात्म्य पुनः सुनो, जिसे सुनकर इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मनुष्य अपने सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है । उस प्रयाग तीर्थ में गंगा के उत्तरी किनारे पर मानस नामक एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ पर तीन रात उपवास कर मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है । धनवान् मनुष्य गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदि का दान कर जो फल प्राप्त करता है, वह फल उसे वहाँ जाने मात्र से प्राप्त हो जाता है; प्राणी पुनः उसी पवित्र तीर्थ का स्मरण करता रहता है । जो प्राणी निष्काम भाव से अथवा किसी कामना से गंगा की धारा में गिरता है, वह मर कर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है तथा नरक को कभी नहीं देखता । स्वर्गलोक को प्राप्त कर वह भाग्यशाली सोते समय अप्सराओं के सुमधुर गीतों द्वारा जगाया जाता है और हंस तथा सारस पक्षियों से युक्त विमान पर चढ़कर गमन करता है । राजेन्द्र ! इस प्रकार अनेक सहस्र वर्षों तक वह प्राणी स्वर्गलोक में आनन्द का अनुभव करता है । तदुपरान्त पुण्यकर्म के क्षीण हो जाने पर स्वर्गलोक से च्युत होकर भी वह सुवर्ण, मणि मुक्ता आदि बहुमूल्य पदार्थों से सुसमृद्ध किसी सम्भ्रान्त परिवार में जन्म धारण करता है ॥१-५॥

माघ के महीने में उस प्रयाग तीर्थ में गङ्गा तथा यमुना के पुनीत संगम पर साठ सहस्र तीर्थ तथा साठ करोड़ नदियाँ आती हैं । इसलिये माघ के महीने में उसमें तीन दिन तक स्नान करने का जितना फल प्राप्त होता है उतना फल एक लाख गौओं के विधिपूर्वक दान देने से प्राप्त होता है । गङ्गा यमुना के पवित्र संगम पर जो प्राणी करसा की अग्नि (उपले की आग) का सेवन करता है वह सभी अंगों से सम्पन्न, नीरोग तथा हाथ पैर आदि पाँचों बाह्य इन्द्रियों से संयुक्त हो, शरीर में जितने रोमकूप रहते हैं, उतने ही सहस्र वर्षों तक स्वर्गलोक में पूजित होता है । उसके बाद क्षीणपुण्य हो जाने पर स्वर्गलोक से च्युत होकर वह पृथ्वीलोक में जम्बूद्वीप का स्वामी होता है तथा विपुल भोग-विलास की सामग्रियों का उपभोग कर पुनः उसी तीर्थ का स्मरण करता है । राजेन्द्र ! इस लोकविख्यात गङ्गा यमुना के पुनीत संगम पर राहु द्वारा चन्द्रमा के ग्रस लिये जाने अर्थात् ग्रहण के अवसर पर जो मनुष्य जल में प्रवेश करता है वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है। इस पुण्य के प्रभाव से वह चन्द्रलोक को प्राप्त करता है तथा चन्द्रमा के साथ आनन्द का अनुभव करता है । इस प्रकार साठ सहस्र वर्षों तक वह स्वर्गलोक में पूजित होता है । स्वर्ग में जाकर वह प्राणी ऋषियों तथा गन्धर्वों द्वारा सेवित इन्द्र के लोक में निवास करता है । तत्पश्चात् स्वर्ग से पुण्यक्षीण हो जाने पर च्युत होकर धन-धान्यादि से सुसमृद्ध कुल में उत्पन्न होता है। जो मनुष्य प्रयाग तीर्थ में शिर को नीचे तथा पैरों को ऊपर की ओर करके अग्नि की ज्वाला का पान करता है वह एक लाख वर्ष तक स्वर्गलोक में पूजित होता है । राजेन्द्र ! स्वर्ग से पुण्यक्षीण हो जाने पर भी वह अग्निहोत्री (हवन करनेवाला) होता है तथा विपुल भोग सामग्रियों का उपभोग कर उसी तीर्थ की पुनः सेवा करता है । जो प्राणी इस प्रयाग तीर्थ में अपने शरीर को काटकर पक्षियों को खाने के लिए दे देता है, उस पक्षियों द्वारा खाए गये शरीर

वाले को जो फल मिलता है, उसे सुनिये। वह प्राणी एक लाख वर्ष पर्यन्त चन्द्रलोक में पूजित होता है और वहाँ से भी भ्रष्ट होकर मर्त्यलोक में परम धार्मिक राजा होकर जन्म धारण करता है। गुणवान्, रूपवान्, विद्वान् तथा मीठी बातें बोलनेवाला वह पुरुष विपुल भोग्य सामग्रियों का उपभोग कर पुनः उसी तीर्थ (प्रयाग) की सेवा करता है। यमुना के उत्तरी किनारे पर तथा प्रयाग के दक्षिण दिशा की ओर ऋणप्रमोचन नामक परम श्रेष्ठ तीर्थ सुना जाता है, वहाँ एक रात उपवास कर स्नान करनेवाला प्राणी अपने सभी ऋणों से मुक्त हो जाता है और सर्वदा ऋण रहित होकर स्वर्गलोक को प्राप्त करता है। ॥६-२१॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त ॥१०७॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! आपने प्रयाग का जो माहात्म्य वर्णन किया है, उसके सुनने तथा प्रयाग के कीर्तन करने से अब मेरा हृदय एकदम शुद्ध हो गया है। अब मुझे वहाँ पर अनशन व्रत करने से जो फल प्राप्त होता है उसे बतलाइये और यह भी बतलाइये कि सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर वह पवित्रात्मा पुरुष किस लोक को प्राप्त करता है? ॥१-२॥

मार्कण्डेय ने कहा—हे समर्थ राजन्! उस प्रयागतीर्थ में अनशन व्रत का पालन करने से जो फल प्राप्त होता उसे सुनो! श्रद्धालु, जितेन्द्रिय एवं बुद्धिमान् मनुष्य प्रयाग में अनशन व्रत का अनुष्ठान कर पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है और सर्वदा सभी अंगों से सुसम्पन्न, नीरोग तथा पाँचों इन्द्रियों से समन्वित रहता है। इस प्रकार हे राजन्! अपने इस पुण्य के प्रभाव से वह दस पूर्वज तथा दश बाद में उत्पन्न होनेवाले अपने वंशजों को तारता है और स्वयं सम्पूर्ण पापों से छुटकारा प्राप्तकर परम पद की प्राप्ति करता है। ॥३-५॥

युधिष्ठिर ने कहा—प्रभो! अति सौभाग्य प्रदान करनेवाली ऐसी धर्म वार्ताओं से, जिन्हें आप मुझसे बतला रहे हैं, यह सिद्ध होता है कि थोड़े से ही परिश्रम के द्वारा बहुत अधिक पुण्य एवं स्वर्गादि की प्राप्ति हो जाती है और दूसरी ओर सत्कर्मपरायण लोग अनेक सदनुष्ठानों से पूर्ण अश्वमेधादि यज्ञों द्वारा बड़ी साधना के बाद स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं। ऐसा क्यों? इस विषय को लेकर मेरे मन में बड़ा कुतूहल उठ रहा है, कृपया उसे आप निवारित करें। ॥६-७॥

मार्कण्डेय ने कहा—महाबलशाली राजन्! पूर्वकाल में ऋषियों के समीप इसी प्रसंग में ब्रह्मा ने जिन बातों को कहा था उन्हें मैंने भी सुना था, उन्हीं को बतला रहा हूँ, तुम भी सुनो। उस प्रयाग तीर्थ का मण्डल पाँच योजन में फैला हुआ है। उसी पवित्र भूमि में प्रवेश करने पर मनुष्य को पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। उस मण्डल में जो मनुष्य अपने प्राणों को छोड़ता है वह सात पूर्वज तथा चौदह बाद में होनेवाले वंशजों को तारता है। राजन्! इसलिए प्रयाग की ऐसी महिमा जान

कर सर्वदा उसकी सेवा करनी चाहिये। इस कथा में श्रद्धा न. रखनेवाले ऐसे पुरुष, जिनका अन्तःकरण पाप से दूषित हो गया है, देवताओं द्वारा सुरक्षित प्रयाग तीर्थ को नहीं प्राप्त कर सकते। ॥८-११॥

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह! स्नेह से अथवा धन के लोभ से जो पुरुष स्वार्थ एवं इच्छा के वश में हो जाते हैं, उन्हें किस प्रकार तीर्थ का फल होगा? और वे किस प्रकार के पुण्यफल के अधिकारी हो सकते हैं? क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये, इन सब बातों को जाननेवाले सब प्रकार के व्यापारों के करनेवाले मनुष्य को प्रयाग में कौन-सी गति प्राप्त होती है? कृपया यह सब मुझे बतलाइये। ॥१२-१३॥

मार्कण्डेय ने कहा—राजन्! अति गोपनीय, सम्पूर्ण पापों को दूर करनेवाली इस बात को बतला रहा हूँ, सुनो। जो पुरुष इन्द्रियों को वश में रख एक मास पर्यन्त प्रयाग में स्नान करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर परमपद की प्राप्ति करता है। प्रयाग में आकर विश्वासघात करनेवाले प्राणी को क्या करना चाहिये—उसे सुनो। उसे भिक्षावृत्ति द्वारा एकत्र किये गये अन्न का भोजन करना चाहिये तथा प्रातःकाल, मध्यान्ह और सायंकाल—तीनों बेला में स्नान करना चाहिये। इस प्रकार तीर्थ सेवन करने से तीन महीने में वह प्राणी प्रयाग में अपने घोर पाप से छुटकारा पा जाता है। जो प्राणी विना कुछ जाने ही तीर्थयात्रा के पुण्यप्रद अनुष्ठानों को प्रयाग में सम्पन्न करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त कर स्वर्ग लोक में पूजित होता है और कभी नष्ट न होने वाले धन-धान्य से परिपूर्ण उत्तम पद को प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त ऊपर कहे गये माहात्म्य को जानकर जो तीर्थयात्रा के नियमों का पालन करता है वह सर्वदा भोग्य एवं ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न रहता है। अपने इस पुण्य कर्म से वह प्रपितामह (पितामह के पिता) आदि पितरगणों को तार देता है। धर्म के रहस्यों को जाननेवाले! तुम्हारे बारम्बार के पूछने से मैंने तुम्हारे कल्याण के लिए धर्मानुकूल इन बातों को, जो परम गोपनीय तथा सर्वदा स्थिर रहने वाली हैं, बतला चुका। ॥१४-१८॥

युधिष्ठिर ने कहा—मुने! आपके दर्शन पा जाने से आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरे पूर्वज सचमुच तारे गये। आपकी कृपा से मैं अति प्रसन्न तथा अनुगृहीत हुआ। धर्मात्मन्! भगवन्! सचमुच आज मैं अपने पापों से मुक्त हो गया, अब मैं अपने को निष्पाप समझ रहा हूँ। ॥१९-२०॥

मार्कण्डेय ने कहा—तुम्हारे ही परम भाग्य से तुम्हारा जन्म सफल हुआ है और तुम्हारे ही भाग्य से तुम्हारे पूर्वज भी तारे गये हैं। इस प्रयाग तीर्थ के पुण्यप्रद माहात्म्य के कीर्तन से पुण्य की वृद्धि होती है तथा सुनने से पाप का विनाश होता है। ॥२१॥

युधिष्ठिर ने कहा—महामुने! यमुना में स्नान करने पर क्या पुण्य मिलता है? तथा वहाँ पर स्नान का क्या फल होता है? इन सब कार्यों को किये जाते हुए जिस प्रकार आपने देखा हो और सुना हो कृपया उसे भी हमें बतलाइये। ॥२२॥

मार्कण्डेय ने कहा—उस प्रयाग तीर्थ में प्रवाहित महाभाग्यशालिनी तीनों लोक में सुविख्यात

सूर्य की दिव्य तेजोमयी कन्या यमुना की बड़ी प्रशंसा की गई है। जिस प्रकार कलियुग के घोर पापों के उद्धार के लिए गंगा भगवान् के पैरों से निकली हैं, उसी प्रकार पापों के विनाशार्थ सूर्य से यमुना का प्रादुर्भाव हुआ है। यमुना सहस्रों योजन से ही पापों का विनाश करनेवाली हैं। युधिष्ठिर! यमुना में स्नान करने, वहाँ का जल पान करने तथा कीर्त्तन करने से परम पुण्य की प्राप्ति होती है, और उसका दर्शन करने से मनुष्य अपने कल्याण का दर्शन करता है। यमुना में अवगाहन तथा पान करके वह सातवें पूर्व पुरुषों तक का उद्धार करता है। पुण्यप्रदा यमुना के तट पर जो अपने प्राणों को छोड़ता है वह परम गति प्राप्त करता है। प्रयाग तीर्थ में यमुना के दक्षिण तट पर अग्नितीर्थ है तथा पश्चिम दिशा की ओर धर्मराज का नरक नामक तीर्थ है। वहाँ पर स्नान करके मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं, और जो वहाँ पर अपने प्राणों को छोड़ते हैं, वे पुनर्जन्म नहीं धारण करते। इसी प्रकार के पुण्यदायी सहस्रों अन्यान्य तीर्थ यमुना के दक्षिण तट पर अवस्थित हैं। उत्तर दिशा की ओर महातेजस्वी सूर्य भगवान् का निरंजन नामक एक तीर्थ है, जहाँ पर इन्द्र के साथ देवगण तीनों—प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल की—सन्ध्याओं की उपासना करते हैं। युधिष्ठिर! उस परम पवित्र तीर्थ की सेवा देवगण तथा अन्यान्य पण्डित गण सदा किया करते हैं। इसी प्रकार प्रयाग तीर्थ में सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाले अनेक तीर्थ स्थित हैं, तुम श्रद्धायुक्त उन तीर्थों में जाकर अभिषेचन आदि करो। उन पवित्र तीर्थों में स्नान करनेवाला पुरुष स्वर्ग को प्राप्त करता है तथा वहाँ मरनेवाले पुनर्जन्म नहीं धारण करते। गंगा तथा यमुना—ये दोनों समान फल देनेवाली पुण्य नदियाँ हैं, बड़ी होने के कारण गंगा की सर्वत्र पूजा की जाती है। कुन्तीपुत्र! तुम इन सब तीर्थों में जाकर अभिषेचन आदि करो। इनमें स्नान करने से सारे जीवन के घोर पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस प्रयाग माहात्म्य का पाठ करता है तथा इसका श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पा जाता है तथा स्वर्गलोक को प्राप्त करता है। ॥२३-३४॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रयाग महात्म्य वर्णन नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त ॥१०८॥

एक सौ नवाँ अध्याय

मार्कण्डेय ने कहा—राजेन्द्र! ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होनेवाले पुराणों में मैंने स्वयं ब्रह्माजी के मुख से तीर्थों की संख्या शत-शत, सहस्र-सहस्र तथा लाख लाख तक सुनी है, वे सभी अति पुण्य देनेवाले तथा परम पवित्र कहे जाते हैं, उनकी गति भी अत्युत्तम सुनी जाती है। उन सभी तीर्थों में सोमतीर्थ महापुण्यदायी तथा महान् पापनाशी माना गया है। राजेन्द्र! उस तीर्थ में स्नान करने मात्र से मनुष्य अपनी सैकड़ों पीढ़ियों को तारता है। इसलिए मनुष्य को प्रत्येक उपायों से वहाँ अवश्य स्नान करना चाहिये ॥१-३॥

युधिष्ठिर ने कहा—मुनिवर! इस पृथ्वी लोक में नैमिष तीर्थ अति पुण्यप्रद माना गया है, अन्तरिक्ष में पुष्कर तीर्थ का विशेष महत्त्व है और तीनों लोकों में कुरुक्षेत्र की विशेष प्रशंसा की गई है।

एक से एक उत्तम तीर्थों को छोड़कर आप केवल एक तीर्थ की इतनी प्रशंसा क्यों कर रहे हैं? मुझे आपकी यह बात शास्त्रीय प्रमाणों से रहित, अश्रद्धेय तथा अनुचित मालूम पड़ रही है तथा उसी प्रकार प्रयाग की परम दिव्य गति देने वाली तथा यथाभिलषित मनोरथों को पूर्ण करनेवाली जो बात आप बतला रहे हैं, वह भी इसी प्रकार की है; क्योंकि इस प्रकार थोड़े ही परिश्रम द्वारा अनन्त फल प्राप्त करने की प्रशंसा आप कर रहे हैं! अतः इस विषय में आपने जैसा देखा हो, जैसा सुना हो, कृपया वैसा ही कह कर हमारे संशय को दूर करें। ॥३-५॥

मार्कण्डेय ने कहा—तुम्हें 'अश्रद्धेय है'—ऐसा तो नहीं कहना चाहिये; क्योंकि पाप से जिनकी अन्तरात्मा मलिन हो गई है, ऐसे श्रद्धाहीन पुरुष को भी जो बात प्रत्यक्ष होती है उसे अश्रद्धेय कैसे कहा जा सकता है। श्रद्धारहित, मलिन, दुष्टि बुद्धिवाले तथा ऐसे पुरुष, जो मांगलिक कार्यों से विमुख हो गये हैं—सब के सब पापी हैं। मेरी समझ में तुम्हारे ऊपर भी ऐसा ही कोई पाप है, जिससे अभिभूत होकर तुमने ऐसा कहा है। प्रयाग तीर्थ का माहात्म्य हमने जैसा प्रत्यक्ष देखा है, जैसा सुना है तथा वहाँ पर जिस प्रकार दान आदि कर्म किये जाते हैं, उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनो। जगत् में जो कुछ भी विना देखी हुई, देखी हुई तथा सुनी हुई बातें हैं—वे सभी शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा अपने कल्याण में युक्त की जाती हैं, उन्हें जो नहीं मानता वह क्लेश सहन करता है तथा कभी उसे योग की प्राप्ति नहीं होती। ऐसे सुन्दर योग को सहस्रों जन्मों में कोई-कोई मनुष्य प्राप्त करते हैं। सहस्रों योगों की आराधना करने पर जिस प्रकार प्रकृत योग की प्राप्ति होती हैं, उस प्रकार प्रकृत योग की प्राप्ति वह नहीं प्राप्त कर सकता, जो केवल सभी प्रकार के रत्न ब्राह्मणों को समर्पित करता है। किन्तु प्रयाग क्षेत्र में शरीर त्यागने वाले प्राणी को वह प्रकृत योग समस्त रूपेण प्राप्त होता है। भारत! इसका एक प्रधान कारण मैं बतला रहा हूँ, उसे श्रद्धापूर्वक सुनो। जिस प्रकार जगत् के सभी जीवों में ब्रह्म की सत्ता सर्वत्र दिखाई पड़ती है किन्तु ब्राह्मण में उसका विशेष अंश विद्यमान् रहता है—ऐसा रहने पर अन्य जीव अब्राह्म कहे जाते हैं, किन्तु सभी जीवों में ब्रह्म की सत्ता मानकर उसकी पूजा की जाती है। उसी प्रकार सभी तीर्थों में कुछ न कुछ विशेष महत्त्व रहने पर भी प्रयाग तीर्थ को बुद्धिमान् पुरुष विशेष रूप से पूजनीय मानते हैं। युधिष्ठिर! सचमुच इस तीर्थराज प्रयाग की विशेष महिमा है और वह पूजा के योग्य है। ब्रह्मा भी नित्यप्रति उस तीर्थराज का स्मरण करते हैं, ऐसे तीर्थराज प्रयाग को प्राप्त होकर मनुष्य को किसी विशेष वस्तु की कामना नहीं रह जाती। भला कौन ऐसा है जो देवत्व को प्राप्त होकर मनुष्य होने की कामना करेगा, इसी उपमा से अन्य तीर्थों के साथ प्रयाग की विशेष महिमा का रहस्य तुम समझ सकोगे। इस प्रयाग तीर्थ की जो विशेष महनीयता थी उसे मैं तुम्हें बता चुका। ॥६-१७॥

युधिष्ठिर ने कहा—राजन्! तुम्हारे द्वारा पुनः पुनः प्रयाग की महिमा सुनकर मैं परम विस्मित हो गया हूँ। किस योग से उसकी प्राप्ति होती है? और किस कर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है? श्रेष्ठ कर्मों के फल से दाता अनेक प्रकार के भोग तथा विपुल पृथ्वी की प्राप्ति करते हैं, वे कर्म कौन से

हैं ? मैं उन्हीं को आप से पूछ रहा हूँ, और यह भी जानना चाहता हूँ कि वे प्राणी क्या पुनः पृथ्वी को प्राप्त होते हैं ? ॥१८-१९॥

मार्कण्डेय ने कहा—महाबाहु राजन् ! सुनो । पृथ्वी, अग्नि, ब्राह्मण, शास्त्र, सुवर्ण, सलिल, स्त्री, माता तथा पिता—इन सब की जो नीच पुरुष निन्दा करते हैं उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। ऐसा प्रजापति ब्रह्मा ने कहा है। इस प्रकार के निन्द्य कर्मों द्वारा परम पद की प्राप्ति परम दुर्लभ है। जो मनुष्य पाप कर्म करने वाले हैं, वे घोर नरक को जाते हैं। हाथी, अश्व, गौ, बैल, मणि, मुक्ता आदि बहुमूल्य वस्तुएँ तथा सुवर्ण—इन सब को जो व्यक्ति परोक्ष में दूसरे की चुरा लेते हैं और बाद में ले जाकर दान करते हैं, वे उस स्वर्ग को नहीं प्राप्त कर सकते, जिसे अपने पास से तथा अपनी ईमानदारी की कमाई दान देने वाले प्राणी प्राप्त कर सुख का अनुभव करते हैं। प्रत्युत अपने इस नीच कर्म से वे पुनः नरक में दुःख भोगते हैं। ॥२०-२४॥

हे युधिष्ठिर ! उक्त प्रकार के योग, धर्म, दाता, सत्य, असत्य, अस्ति एवं नास्ति अर्थात् सत् तथा असत्फल—इन सब का विवरण, जिसे स्वयं अंशुमान् सूर्य ने कहा है, मैं तुमसे बतला रहा हूँ। ॥२५॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त। ॥१०९॥

एक सौ दसवाँ अध्याय

मार्कण्डेय ने कहा—राजन् ! प्रयागतीर्थ का माहात्म्य और भी बतला रहा हूँ, सुनो ! नैमिष, पुष्कर, गोतीर्थ (गोकर्ण तीर्थ) सिंधुसागर, गया, चैत्रक तथा गंगासागर आदि पवित्र तीर्थ तथा अन्यान्य अति पवित्र जितने तीर्थ हैं, जितने पुण्यप्रद पर्वत हैं, उनमें तीस करोड़ और दस हजार जो परम पवित्र तीर्थ हैं, वे सब नित्य प्रयाग में उपस्थित रहते हैं। बुद्धिमान् लोग प्रयाग के विषय में ऐसा कहते आये हैं। उसी प्रयाग तीर्थ में तीन अग्नि के कुण्ड हैं, जिनके मध्य से गंगा प्रवाहित होती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण तीर्थों द्वारा पूजित गंगा प्रयाग से बाहर निकलती हैं। तीनों लोक में विख्यात सूर्य भगवान् की दिव्य तेजोमयी कन्या लोकभावनी यमुना गंगा के साथ वहाँ पर मिली हैं। राजसिंह ! गंगा तथा यमुना के संगम को पृथ्वी का जघनस्थल माना गया है वहाँ पर अवस्थित तीर्थराज प्रयाग की सोलहवीं कला की समानता भी संसार के अन्य तीर्थ नहीं कर सकते। वायु ने कहा है कि इस पृथ्वीलोक स्वर्गलोक तथा पाताललोक में कुल मिलाकर साढ़े तीन करोड़ पवित्र तीर्थ हैं, वे सभी गंगा में सन्निहित रहते हैं। उसी प्रयाग तीर्थ में कम्बल तथा अश्वतर नामक नागराजों के पवित्र निवास-स्थान हैं तथा वहीं पर भोगवती नामक तीर्थ है, जो प्रजापति ब्रह्मा के हवन करने की वेदी है। युधिष्ठिर ! उस प्रयाग तीर्थ में परम तपस्वी ऋषिगण तथा वेद और यज्ञ ऋषियों के स्वरूप धारण कर ब्रह्मा की आराधना करते हैं। वहाँ रहकर देवता तथा चक्रवर्ती नृपतिगण यज्ञ की आराधना करते आये हैं। भारत ! उससे बढ़कर पुण्यप्रद अन्य कोई तीर्थ तीनों

लोकों में नहीं है । समर्थ ! वह प्रयाग तीर्थ अपने अनुपम प्रभाव से परम पवित्र तीन करोड़ दस सहस्र तीर्थों में सबसे अधिक प्रभावशाली है । जहाँ पर महाभाग्यशालिनी गंगा स्वयं विद्यमान हैं, ऐसा परम तपोमय वह देश है । गंगा के तीर से संयुक्त उस परम पवित्र तीर्थ को सिद्धों का क्षेत्र जानना चाहिये । इस पुण्यप्रद माहात्म्य को सत्य मानना चाहिये । इसे साधु पुरुषों के अपने हितैषी मित्रों के तथा आज्ञाकारी शिष्यों के कान में धीरे से कहना चाहिये । यह परम पवित्र माहात्म्य स्वर्गप्रद, सत्य, सुखदायी, पुण्यप्रद, धर्ममय एवं धन्य है । सम्पूर्ण पापों के विनाश करनेवाले इस माहात्म्य को महर्षिगण भी गोपनीय रखते हैं । इसका अध्ययन कर द्विजाति स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं । पवित्र मन से जो कोई मनुष्य नित्य इस पुण्यप्रद तीर्थराज प्रयाग का माहात्म्य सुनता है, वह अपने पूर्व जन्म की जाति का स्मरण (ज्ञान) करता है तथा स्वर्ग के आसन पर समासीन हो आनन्द का अनुभव करता है । वेद के अनुगामी शिष्ट लोगों के अनुकरण करनेवाले सत्पुरुषों द्वारा मनुष्य उन पवित्र तीर्थों में पहुँचाये जाते हैं । कुरुनन्दन ! अतः तुम भी उन पवित्र तीर्थों में स्नान करो, दुष्टबुद्धि मत बनो । समर्थ ! तुम्हारे आग्रहपूर्वक पूछने पर ही मैंने इस गोपनीय माहात्म्य को बतलाया है, तुमने इसे पूँछकर अपने पितामह प्रभृति सभी पितरों को तार दिया । हे युधिष्ठिर ! संसार में जितने भी व्रत, दान, तपस्या, तीर्थ, प्रचुर दक्षिणासम्पन्न यज्ञ, योग, साधन, सांख्य, सदाचार तथा अन्यान्य जो ज्ञान के कारण हैं वे सभी प्रयाग की सोलहवीं कला की भी समता नहीं कर सकते । इस प्रकार का ज्ञान, योग, साधन तथा प्रयाग जैसे परम पवित्र तीर्थ का संयोग—ये सब बड़ी कठिनाई से एकत्र होते हैं, इसी कारण मनुष्य इस उत्तम तीर्थ के स्नान करने से परमगति की प्राप्ति करता है, तीनों कालों में उसका ज्ञान बना रहता है तथा अन्त में स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है । ॥१-२०॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ दसवाँ अध्याय समाप्त ॥११०॥

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर ने कहा—महामुनि ! प्रयाग के विषय में इस सब माहात्म्य का, जिसे आपने मुझे बताया है, कारण क्या है ? कृपया मुझसे बतलाइये, जिससे हमारे समस्त परिवार का उद्धार हो । ॥१॥

मार्कण्डेय ने कहा—राजन् ! सुनो ! प्रयाग में इस समस्त संसार के उत्पन्न करनेवाले, पालन करनेवाले तथा संहार करनेवाले अविनाशी भगवान् ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव सर्वदा निवास करते हैं । इस सारे संसार में चराचर जितने जीव हैं ब्रह्मा उन सब की सृष्टि करते हैं, विष्णु उन सब की पालना करते हैं, शिव कल्प की समाप्ति पर उन सभी के साथ समस्त संसार का संहार करते हैं । किन्तु उनके उस प्रलयकाल के समय भी कभी इस प्रयाग तीर्थ का विनाश नहीं होता । समस्त प्राणियों का ईश्वर वह स्वयमेव इस प्रयाग में निवास करता है, उसे इस प्रकार निवास करते हुए जो देखता है, वास्तव में वही देखनेवाला है अथवा

सभी प्राणियों में श्रेष्ठ जो प्राणी इस प्रकार देखता है वही वास्तव में देखनेवाला है। इस उपाय से जो वहाँ निवास करते हैं, वे परमगति प्राप्त करते हैं। ॥२-५॥

युधिष्ठिर ने कहा—यह किम्वदन्ति जिस कारण जगत् में फैल रही है कि प्रयाग तीर्थ में लोकनायक भगवान् ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव निवास करते हैं, उसे वास्तविक रूप में हमें बतलाइये। किस प्रयोजन से उक्त देवगण वहाँ निवास करते हैं ? ॥६॥

मार्कण्डेय ने कहा—युधिष्ठिर ! ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर जिस प्रयोजन से प्रयाग में निवास करते हैं, उसे मैं बतला रहा हूँ। प्रयाग तीर्थ का मण्डल पाँच योजन में विस्तृत है, वहाँ पाप कर्म के निवारण तथा धर्म की रक्षा के लिए उक्त देवगण निवास करते हैं। प्रतिष्ठानपुर की उत्तर दिशा में कपट रूप धारण कर ब्रह्मा निवास करते हैं। प्रयाग तीर्थ में वेणीमाधव का रूप धारण कर स्वयं भगवान् विष्णु निवास करते हैं, भगवान् शंकर अक्षयवट के स्वरूप में वहाँ निवास करते हैं। इनके अतिरिक्त गन्धर्वों समेत देव, सिद्ध तथा महर्षिगण पाप कर्म के निवारण के लिए उक्त तीर्थ की रक्षा करते हैं। जिस परम पवित्र तीर्थ में अपने पापों को हवन कर देने से मनुष्य नरक लोक को नहीं देखता, ऐसे प्रयाग में भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सातों द्वीप, सभी समुद्र तथा पृथ्वी भर के समस्त पर्वत रक्षा में तत्पर रहकर महाकल्प की समाप्ति पर्यन्त निवास करते हैं। युधिष्ठिर ! इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से देवगण भी वहाँ निवास करते हैं। उक्त तीनों देवताओं ने यहीं आश्रय प्राप्त कर पृथ्वी का निर्माण एवं उद्धार किया है। परम प्रसिद्ध यह प्रयाग तीर्थ प्रजापति ब्रह्मा का क्षेत्र माना गया है। युधिष्ठिर ! यह प्रयाग तीर्थ परम पवित्र तथा पुण्य का देनेवाला है। निष्पाप राजेन्द्र ! भाइयों के साथ अपना कार्य सँभालिये ॥१-१४॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१११॥

एक सौ बारहवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वर ने कहा—इस प्रकार मार्कण्डेय की बातें सुन महाराज युधिष्ठिर ने अपने सब भाइयों तथा द्रौपदी के साथ ब्राह्मणों को नमस्कार करके गुरुजनों तथा देवताओं का तर्पण किया। संयोगतः ठीक उसी समय भगवान् वासुदेव भी वहाँ पहुँच गये। तदनन्तर पाण्डवों ने भगवान् माधव (कृष्ण) की पूजा की। भगवान् कृष्ण प्रभृति महात्मा पुरुषों ने धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिर का राज्य पद पर अभिषेक किया। तदनन्तर महामुनि मार्कण्डेय जी 'कल्याण हो' ऐसा कह कर उसी क्षण अपने आश्रम को वापस आ गये। महापुरुष धर्मपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिर तुलापुरुष आदि सोलह पदार्थों के बहुत बड़े-बड़े दान कर के अपने भाइयों के साथ सुखपूर्वक निवास करने लगे। जो कोई मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस प्रयाग-माहात्म्य का पाठ करता है तथा नित्य प्रयाग का स्मरण करता है वह परम पद की प्राप्ति करता है और

सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर शिवलोक को जाता है । ॥१-६॥

वासुदेव ने कहा—महाराज ! मैं जो काम आप से बतला रहा हूँ, उसे कीजिये । उस प्रयाग तीर्थ में जाकर सब प्रकार के संतापों को छोड़कर जप तथा हवन कीजिये । राजेन्द्र युधिष्ठिर ! हम लोगों के साथ नित्य प्रयाग का स्मरण कीजिये । ऐसा करने से आप इसी शरीर से स्वर्ग लोक को प्राप्त करेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह मत कीजिये । जो मनुष्य प्रयाग तीर्थ की यात्रा करता है अथवा प्रयाग में निवास करता है, वह सम्पूर्ण पापों से मुक्ति प्राप्त कर विशुद्धात्मा हो शिव लोक को जाता है । इन्द्रियों को वश में रख, पवित्र भाव से सन्तुष्ट हो, किसी प्रकार के दान आदि को अंगीकार न कर जो मनुष्य प्रयाग में अहंकार आदि से दूर रहता है, वही तीर्थ का वास्तविक फल प्राप्त करता है । क्रोधरहित, सत्यवादी, सद्व्यवहार परायण एवं दृढ़प्रतिज्ञ बन कर जो अपने ही समान अन्य जीवों के प्रति भी व्यवहार करता है, वही इस उत्तम तीर्थ का वास्तविक फल प्राप्त करता है । राजन् ! बड़े-बड़े महर्षियों तथा देवताओं ने अनेक छोटे-बड़े यज्ञों के करने का विधान बतलाया है, किन्तु धनहीन साधारण पुरुष उन बहुव्ययसाध्य यज्ञों को कैसे सम्पन्न कर सकते हैं ? क्योंकि उन यज्ञों में अनेकानेक बहुमूल्य सामग्रियों की आवश्यकता रहती है । उन्हें या तो राजा लोग पूर्ण कर सकते हैं वा विरल धनिक लोग पूर्ण कर सकते हैं । इसलिये हे महाराज युधिष्ठिर ! उन यज्ञों के समान फल प्राप्त करने के लिये दरिद्रों को जो विधान बतलाया गया है, उसे सुनो । भरतकुलश्रेष्ठ ! यह ऋषियों के लिए भी गोपनीय विषय है । तीर्थयात्रा का पुण्य यज्ञों के पुण्य से भी विशेष महत्त्वपूर्ण होता है । भरतकुलश्रेष्ठ ! माघ महीने में गंगा में दस सहस्र तीर्थ तथा तीन करोड़ नदियाँ निवास करती हैं । राजेन्द्र ! यज्ञ करते समय विशेष रूप से तुम पुनः उन सब को देखोगे । महाराज ! अपनी सारी चिन्ताओं को छोड़कर तुम स्वस्थ हो जाओ और निष्कंटक अपना राज्य करो । इस प्रकार जब कभी फिर यज्ञ का अनुष्ठान करोगे तब मुझे यहाँ देख सकोगे । ॥६-१७॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—युधिष्ठिर से ऐसा कह कर महाभाग्यशाली परमतपस्वी मार्कण्डेय मुनि वहीं पर अन्तर्हित हो गये । तदनन्तर अपने परिवार वर्ग के साथ राजा युधिष्ठिर उस प्रयाग तीर्थ को गये और वहाँ यथाविधि स्नान किया । इस प्रकार उन्होंने परम सन्तोष लाभ किया । देवर्षि नारद ! उसी तरह आप भी उस परम पवित्र प्रयाग तीर्थ की ओर जाइये और वहाँ अभिषेचन कर आप भी आज कृतकृत्य हो जाइये । ॥१८-२०॥

सूत ने कहा—इस प्रकार नारद से बातें कर नन्दीश्वर वहीं पर अन्तर्हित हो गये और नारद भी वहाँ से शीघ्र ही प्रयाग की ओर प्रस्थित हुए और वहाँ पहुँच कर शास्त्रीय विधि से जप तथा स्नान आदि कार्य सम्पन्न कर ब्राह्मणों को दान दे अपने आश्रम की ओर चले गये । ॥२१-२२॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रयाग माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११२॥

एक सौ तेरहवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—संसार की यथार्थ बातों के जानने वाले सूत जी ! इस जगत् में कितने द्वीप हैं ? कितने समुद्र हैं ? कितने वर्ष हैं ? उनमें कितनी नदियाँ सुनी जाती हैं ? इस विस्तृत पृथ्वी का प्रमाण कितना है ? लोकालोक[1] पर्वत क्या है ? चन्द्रमा तथा सूर्य की गति कितनी है ? उनकी अवस्थिति तथा परिमाण क्या है ? इन सभी बातों को विस्तारपूर्वक आप हमें बतलाइये । इन सब विषयों को आप के मुख से हम लोग सुनना चाहते हैं । ॥१-३॥

सूत ने कहा—द्वीपों की संख्या एक सहस्र है, जो सभी प्रमुख सात द्वीपों के अन्तर्गत आ जाते हैं, उन सबों को क्रमपूर्वक बतलाकर समस्त संसार का वर्णन कोई नहीं कर सकता । अतः चन्द्रमा सूर्य तथा ग्रहों के साथ उन्हीं सात द्वीपों को मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ । उन सबों का मनुष्यसुलभ तर्क एवं गवेषणा द्वारा प्रमाण जिस प्रकार बतलाया गया है, उसे भी बतला रहा हूँ । जो विषय मनुष्य की विचारशक्ति से बाहर होता है वह अचिन्त्य कहा जाता है, इसलिए जो भाव वा विचार अचिन्त्य हैं वे तर्क द्वारा गम्य माने जाते हैं । जो विषय प्रकृति से परे होता है वह भी अचिन्त्य कहा गया है । अब मैं आप लोगों को सातों वर्षों का वर्णन सुना रहा हूँ । और इसी प्रसंग में इस जम्बूद्वीप का वर्णन, इसका विस्तार एवं इसका मण्डल जितना कहा गया है, उसे भी योजन के परिमाण में बतला रहा हूँ, सुनिये । यह विशाल जम्बूद्वीप एक लक्ष योजन में विस्तृत है, इसमें अनेक प्रकार के सुन्दर-सुन्दर देश, ग्राम तथा नगर हैं । सिद्धों तथा चारणों की इसमें बहुत अधिकता है । सब प्रकार की बहुमूल्य धातुओं से सम्पन्न चट्टानों एवं गुफाओं के समूहों से संयुक्त अनेक सुन्दर पर्वत इसमें विद्यमान हैं, उन पर्वतों से निकलनेवाली नदियाँ इसमें चारों ओर बहती हैं । इसके पूर्व तथा पश्चिम में फैले हुए अति विस्तृत छः वर्षपर्वत हैं । जिनमें दोनों ओर से पूर्व और पश्चिम के समुद्रों को अलग करनेवाला प्रायः सभी ऋतुओं में हिम से आच्छादित रहनेवाला, श्रेष्ठ हिमवान् नामक गिरि है । दूसरा सुवर्ण से सुशोभित हेमकूट नामक गिरि है । तीसरा, जो चारों ओर से देखने में परम सुंदर है, निषध नामक महापर्वत है । चौथा मेरु नामक पर्वत है, जो चार रंगोंवाला, सुवर्ण संयुक्त तथा उल्बमय कहा जाता है । वह मेरु गिरि चारों दिशाओं में चौबीस सहस्र योजनों तक फैला हुआ है, इसका ऊपरी भाग वृत्त की आकृति के समान तथा नीचे चार कोणवाला है । चारों ओर अनेक प्रकार की रंगोंवाली पार्श्वभूमियों से संयुक्त वह सुमेरु प्रजापति ब्रह्मा के समान सभी गुणों से संयुक्त है । पूर्व दिशा से श्वेतवर्णवाला वह सुमेरु पर्वत अव्यक्त ब्रह्मा की नाभि के बन्धन से उत्पन्न हुआ है, इसी श्वेतवर्णता से उसमें ब्राह्मण के गुणों की समता मानी गयी है । दक्षिण दिशा से देखने में वह पीले रंग का है, इसी से वह वैश्यवृत्ति का माना गया है ।

---

[1] लोकालोक नामक एक पर्वत है, जिसके एक ओर प्रकाश तथा दूसरी ओर अन्धकार रहता है ।

पश्चिम दिशा से उसकी शोभा भ्रमर के पंख के समान श्याम है, इसी से इसके मेरु नाम की सार्थकता अर्थ और कर्म—दोनों से—सिद्ध होती है तथा इसकी शूद्रता भी सिद्ध होती है। इसी प्रकार उस सुमेरु पर्वत का पश्चिमी भाग लाल रंग का है, जिससे इसका क्षत्रियत्व सिद्ध होता है। इस सुमेरु पर्वत के चारों रंग सफेद, पीले, काले तथा लाल कहे जा चुके। नील नामक पर्वत वैडूर्य मणियों से संयुक्त है। श्वेत पर्वत पीले रंग का तथा सुवर्ण से सम्पन्न है। शृंगवान् नामक पर्वत, जो सुवर्ण सम्पन्न है; मयूर की पूंछ के समान विचित्र रंगोंवाला है—ये सब पर्वतराज सिद्धों तथा चारणों से सेवित हैं। उनके मध्यभाग का व्यास नव सहस्र योजन विस्तृत कहा जाता है। मध्यभाग में इलावृत्त नामक एक वर्ष है, जो महामेरु के चारों ओर फैला हुआ है और चौवीस सहस्र योजन की समतल भूमि में विस्तृत है। इस इलावृत्त वर्ष के मध्य भाग में महामेरु पर्वत धूमरहित अग्नि के समान अति प्रकाशमान् होकर शोभित होता है। मेरु के मध्य भाग से दक्षिण दिशा की ओर दक्षिणमेरु तथा उत्तर दिशा की ओर उत्तरमेरु प्रसिद्ध है। इन सात वर्षों में सात वर्षपर्वत माने गये हैं, जो दक्षिण तथा उत्तर की दिशाओं की ओर दो-दो सहस्र योजन तक फैले हुए हैं। जम्बूद्वीप का विस्तार उन्हीं वर्षों तथा पर्वतों के विस्तार के बराबर तक कहा जाता है। उन सब में नील और निषध नामक पर्वत बड़े हैं तथा हेमकूट, श्वेत, हिमवान्, शृंगवान्—ये अपेक्षाकृत छोटे हैं। ऋषभ पर्वत परिमाण में जम्बूद्वीप के समान विस्तृत कहा जाता है। उसके बारहवें भाग से हेमकूट नामक पर्वत न्यून है, और उससे बीसवें भाग से न्यून हिमवान् पर्वत है। यह हेमकूट महागिरि अट्ठासी सहस्र योजन में विस्तृत कहा जाता है। हिमवान् पर्वत पूर्व और पश्चिम दिशा में अस्सी सहस्र योजन तक फैला हुआ है। द्वीप (जम्बूद्वीप) के मण्डलाकार अवस्थित होने के कारण इन पर्वतों की स्थिति में न्यूनाधिक्य बतलाया गया है। इन वर्षों में भी पर्वतों की भाँति भिन्नता है, तथा एक से उत्तर दिशा की ओर दूसरे का क्षेत्र पड़ता है। उन सभी वर्षों एवं पर्वतों में मनुष्यों के रहने योग्य देश हैं, उनकी कुल संख्या सात है। वे प्रत्येक वर्ष ऐसे दुर्गम पर्वतों से घिरे हुये हैं, जिनमें अनेक झरने हैं। सात नदियों के कारण ये एक दूसरे से असम्बद्ध एवं गमनागमन रहित हैं। इन सभी वर्षों में अनेक प्रकार के जीवों की जातियाँ बसती हैं। यह हिमवत् नामक वर्ष भारतवर्ष के नाम से भी विख्यात् है। उसकी सीमा से लेकर दूसरे पर्वत हेमकूट तक किंपुरुषवर्ष बतलाया जाता है। उस हेमकूट पर्वत की सीमा से निषध नामक पर्वत तक हरिवर्ष नामक वर्ष कहा जाता है। इस हरिवर्ष के बाद मेरु पर्वत तक इलावृत्त नामक वर्ष है। इलावृत्त के बाद नील नामक पर्वत तक रम्यक नामक वर्ष प्रसिद्ध है। रम्यक वर्ष के बाद श्वेत नामक पर्वत तक विस्तृत हिरण्यक नामक वर्ष है। उस हिरण्यक वर्ष के बाद शृंगशाक है, जिसकी कुरुवर्ष नाम से प्रसिद्धि है। मेरु पर्वत के दक्षिण तथा उत्तर दिशा में धनुष के आकार के दो वर्ष हैं, जो चार सहस्र योजन में विस्तृत हैं। इलावृत्त नामक वर्ष उनके मध्य भाग में है। निषध की पूर्व दिशा की ओर मेरु के दक्षिणांश की दक्षिणवेदी और इलावृत्त वर्ष के उत्तरांश में मेरु के उत्तरार्द्ध की उत्तर वेदी है। उन्हीं दोनों के मध्य भाग में मेरु को जानना चाहिये, जहाँ पर इलावृत्त अवस्थित है। नील पर्वत के दक्षिण तथा निषध पर्वत के उत्तर महागिरि

माल्यवान् है, जो उत्तर-दक्षिण की ओर लम्बा है। वह माल्यवान् गिरि बत्तीस सहस्र योजन तक पश्चिम दिशा में फैलकर समुद्र की सीमा तक चला गया है। नील और निषध पर्वत के बीच में वह माल्यवान् गिरि एक सहस्र योजन तक लम्बा है। इसी प्रकार बत्तीस सहस्र योजन तक विस्तृत गन्धमादन नामक पर्वत भी कहा गया है। दोनों मण्डलों के घेरे में सुवर्णमण्डित मेरु नामक गिरि चारों दिशाओं में चार प्रकार के रंगों से सुशोभित, चौकोर एवं समान ऊँचाई वाला है। वह अनेक प्रकार के रंगों वाला दिखाई देता है। पूर्व दिशा की ओर श्वेत, दक्षिण की ओर पीला, पश्चिम दिशा की ओर भ्रमर के पंख के समान काला एवं उत्तर दिशा की ओर लाल रंग का वह बतलाया जाता है। वह मेरु पर्वत इस प्रकार अनेक प्रकार रंग-विरंग की पर्वत श्रेणियों से सुशोभित, अनेक प्रकार के आभूषणादि से सुसज्जित राजा की भाँति शोभित होता है। धूम रहित अग्नि की भाँति कान्तियुक्त वह पर्वतराज मध्याह्न के सूर्य की भाँति परम सुशोभित होता है। यह मेरु पर्वत चौरासी सहस्र योजन उन्नत, सोलह सहस्र योजन निम्न प्रदेश में प्रविष्ट तथा अट्ठाईस सहस्र योजन विस्तृत है। इसकी चारों दिशाओं की गोलाई का परिमाण चौड़ाई से द्विगुणित कहा जाता है। ॥४–४०॥

इस प्रकार दिव्य तेजोमय वह सुमेरु नामक महान् गिरि अनेक प्रकार की दिव्य औषधियों से समन्वित है। उसकी पार्श्वभूमि में तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्तिमय अनेक भुवन हैं, जिनमें निवास करनेवाले देव, गन्धर्व तथा राक्षसों के समूह तथा अप्सराओं के वृन्द चारों ओर से इस पर्वतराज में आनन्द का अनुभव करते हैं। इस प्रकार वह जीवों को पवित्र करनेवाले अनेक लोकों से चारों ओर से घिरा हुआ है। इसके (पूर्व में) भद्राश्व, (उत्तर में) भारत, पश्चिम में केतुमाल तथा उत्तर में उत्तरकुरु नामक प्रदेश हैं। उसी प्रकार उसके चारों ओर सब प्रकार के बहुमूल्य रत्नों से सुशोभित मन्दर, गन्धमादन, विपुल तथा सुपार्श्व नामक विष्कम्भपर्वत विद्यमान हैं। उन पर्वतों के ऊपर चार सुन्दर सरोवर तथा वन प्रदेश हैं। उनके नाम अरुणोद, मानस, सितोद तथा भद्र हैं। मन्दर नामक विष्कम्भपर्वत में भद्र कदम्ब (कदम) का बन है, इसी प्रकार गन्धमादन में जामुन का, विपुल में पीपल का तथा सुपार्श्व में बरगद का जंगल है। गन्धमादन पर्वत की पश्चिम ओर अमरगण्डिक नामक एक परमविख्यात पर्वत है, जो बत्तीस सहस्र योजन तक चारों ओर फैला हुआ है। वहाँ शुभकर्मपरायण केतुमाल नाम से विख्यात लोगों का निवास स्थान है, जो कालाग्नि के समान भयानक अंगों वाले अतिशय पराक्रमी तथा बलशाली होते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ लाल कमल के समान सुन्दर वर्ण वाली एवं देखने में परम सुन्दरी होती हैं। वहीं पर दिव्य तेजोमय बहुत बड़ा एक कटहल का वृक्ष है, जिसके पत्ते बड़े चमकीले हैं। उसका रस पीकर वहाँ के सब प्राणी दस सहस्र वर्ष तक जीवित रहते हैं। माल्यवान् पर्वत की पूर्व दिशा की ओर पूर्व गण्डिका नामक जो पहाड़ी है, वह बत्तीस सहस्र योजन विस्तृत है। उसी में भद्राश्व नामक देश है, वहाँ के निवासी सर्वदा प्रसन्न चित्त रहते हैं। वहीं भद्रमाल नामक एक प्रसिद्ध वन है, जिसमें कालाम्र नामक एक बहुत बड़ा वृक्ष है। वहाँ पर निवास करने वाले पुरुष परम पराक्रमी बलवान् तथा गौरवर्ण के होते हैं।

स्त्रियाँ कुमुद के समान गौर वर्ण वाली, परम सुन्दरी, चन्द्रमा के समान आकर्षक, पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति प्रकाशमान मुखवाली, एवं चाँदनी की भाँति शीतल शरीर वाली होती हैं, उनके शरीर से कमल के समान सुगंधि निकलती रहती है। उस कालाम्र का रस पान कर वहाँ के सारे निवासी सर्वदा युवक बने रहते हैं, उनकी आयु दस सहस्र वर्ष की होती है, वे सर्वदा नीरोग रहते हैं। ॥४-५५॥

सूत ने कहा—'प्राचीन काल में मेरे ऊपर अतिशय अनुग्रह कर ब्रह्मा ने इन देशों की स्थिति को बतलाया था, जिन्हें मैं आप लोगों को बतला चुका। अब आप लोगों को क्या बतलाऊँ ?' इस प्रकार सूत की बातें सुन कर तपोनिष्ठ ऋषिगण परम आनन्दित हुए, वे कौतूहल में आकर पुनः पूछने लगे। ॥५६-५७॥

मुनियों ने कहा—'मुनिवर्य ! पूर्व तथा पश्चिम के देशों को तो आप हम लोगों को बतला चुके अब उत्तरापथ में विद्यमान वर्षों तथा पर्वतों को हम लोगों से बतलाइये। उनमें निवास करने वाले उन पार्वतीय लोगों का भी यथावत् वर्णन हमसे कीजिये।' इस प्रकार उन ऋषियों के पूछने पर सूत पुनः बोले। ॥५८-५९॥

सूत ने कहा—पूर्व कथा के प्रसंग में मैं जिन वर्षों का वर्णन आप लोगों से कर चुका हूँ, उन्हीं के विषय में कुछ और भी बता रहा हूँ, सुनिये ! नील पर्वत की दक्षिण तथा निषध की उत्तर दिशा में रमणक नामक वर्ष है। वहाँ की प्रजा, विशेष विलासिनी एवं स्वच्छ गौर शरीर वाली होती हैं। वहाँ के सारे मनुष्य गौरवर्ण, कुलीन तथा देखने में परम सुन्दर होते हैं। वहाँ पर भी न्यग्रोध (बरगद) का एक बहुत बड़ा रोहिण नामक वरगद का वृक्ष है। उसी का रस वहाँ के निवासी पान करते हैं, जिससे वे सभी नररत्न सर्वदा हृष्ट-पुष्ट, महाभाग्यशाली और ग्यारह सहस्र वर्ष तक जीवित रहनेवाले होते हैं। श्वेत नामक पर्वत के उत्तर तथा श्रृंगवान् के दक्षिण हिरण्वत नामक वर्ष है, जहाँ पर हैरण्वती नामक एक नदी है। वहाँ के निवासी महा पराक्रमी, बलवान्, नित्य प्रसन्न रहनेवाले, गौरवर्ण, कुलीन तथा देखने में परम सुन्दर होते हैं। वहाँ के वे नरश्रेष्ठ बारह सहस्र पाँच सौ वर्ष की दीर्घायु तक जीवित रहते हैं। उसी वर्ष में पत्तों से ढँका हुआ एक लकुच (बड़हर) का बहुत बड़ा वृक्ष है, वहाँ के निवासी उसी का रस पान किया करते हैं। उस श्रृंगवान् नामक पर्वत की तीन बहुत ऊँची पर्वतश्रेणियाँ हैं, जिनमें से एक मणि युक्त, दूसरी सुवर्ण युक्त तथा तीसरी सब प्रकार के बहुमूल्य रत्नों तथा भुवनों से सुशोभित रहती है। इस श्रृंग नामक पर्वत के उत्तर से दक्षिण समुद्र तक उत्तरकुरु नामक सुरम्य प्रदेश है, जो सिद्धों द्वारा सेवित तथा परम पुण्यप्रद कहा जाता है। वहाँ के वृक्ष मीठे फल देनेवाले तथा वहाँ की नदियाँ दिव्य तेजोमयी एवं अमृत के समान सुस्वादु जलवाली हैं। वहाँ के वृक्ष वस्त्र उत्पन्न करते हैं तथा विविध प्रकार के फल एवं आभूषण भी उत्पन्न करते हैं। उनमें से कुछ वृक्ष चित्त को हरनेवाले एवं मनोरथ को पूर्ण करनेवाले हैं। कुछ दूसरे प्रकार के दूध देनेवाले मनोहर वृक्ष भी वहाँ हैं, जो अमृत के समान सुस्वादुमय तथा सर्वदा छहों प्रकार के रसों से परिपूर्ण रहते हैं। वहाँ की सारी भूमि मणिमयी एवं महीन सुवर्ण के समान

चमकनेवाली पीली बालू से युक्त है, वहाँ स्पर्श से परम सुख देनेवाली निःशब्द एवं मंगलदायिनी वायु सभी स्थलों में सर्वदा बहा करती है। वहाँ पर वे मंगलमय पुरुष निवास करते है, जो स्वर्गलोक से पुण्य क्षीण होने पर जन्म धारण करते है। वहाँ के दम्पति गौरवर्ण कुलीन एवं चिरकाल तक यौवन धारण करनेवाले होते है। वहाँ की स्त्रियाँ अप्सराओं की तरह परम सुंदरी होती है। वे सभी प्राणी उन क्षीरवाले वृक्षों का अमृत के समान सुस्वादु क्षीर पान करते हैं। वहाँ के वे दम्पति साथ ही एक दिन उत्पन्न होते हैं और एक ही साथ ऐहिक जीवन लीला भी समाप्त करते हैं। परस्पर चक्रवाकों की भाँति सर्वदा स्नेह रखते हैं तथा रोग, शोक एवं चिन्ता से मुक्त नित्य प्रसन्न चित्तवाले होते हैं। उनकी लम्बी आयु ग्यारह सहस्र वर्ष की होती है। वहाँ कोई भी स्त्री विधवा नहीं रहती ॥६०-७७॥

सूत ने कहा—'परम धार्मिक ऋषिगण! भारतीय युग में इसी प्रकार की सृष्टि का विस्तार मैंने उन वर्षों का देखा है। पुनः आप लोगों को और क्या सुनाऊँ ?' इस प्रकार परम बुद्धिमान् सूतपुत्र के कहने पर ऋषियों ने उत्तर वाक्य सुनने की उत्कण्ठा से पुनः सूतनन्दन से पूछा। ॥७८-७९॥

श्री मात्स्य महापुराण में द्वीप वर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥११३॥

एक सौ चौदहवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—प्रवक्ताओं में श्रेष्ठ! सद्व्रत परायण! जिसमें उत्पन्न होकर स्वायम्भुव प्रभृति चौदह मनुओं ने प्रजा की सृष्टि की, ऐसा परम पवित्र यह भारतवर्ष नामक देश कहा जाता है, हम उसके विषय में आपसे विस्तारपूर्वक जानना चाहते हैं। कृपया इसका भली भाँति उत्तर दीजिये। ॥१-२॥

ऋषियों की इस प्रकार की अभ्यर्थना सुन परम प्रसिद्ध पौराणिक लोमहर्षण के पुत्र सूत ने उस समय उन पवित्रात्मा ऋषियों की बातों पर बुद्धिपूर्वक पुनः पुनः विधिवत् विचार किया और तब उन सबों को इस प्रकार का उत्तर दिया। ॥३-४॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! अब इसके उपरान्त मैं इस भारतवर्ष में निवास करनेवाली प्रजाओं का वर्णन करूँगा। उत्पन्न करने एवं पालन-पोषण करने के कारण मनु का 'भरत' नाम कहा जाता है। प्रकृति और प्रत्यय के अनुकूल अर्थ करने पर भरत के नाम पर ही इस देश को भारतवर्ष कहा जाता है। 'जहाँ से मनुष्य को स्वर्ग मोक्ष एवं दोनों का मध्यम भाव—इन तीनों पदों की प्राप्ति होती है, अर्थात् जहाँ के निवासियों को उक्त तीनों प्रकार की अवस्थाओं का अनुभव होता है, वही भारतवर्ष है। भूमण्डल में इस भारतभूमि को छोड़कर कहीं अन्यत्र मनुष्य के लिए कर्मों का विधान नहीं है। यह पुनीत भारतभूमि ही मनुष्यों की कर्म भूमि है। इस भारतवर्ष के नव भेद हैं, उन्हें सुनिये। इन्द्रदीप, कशेरु, ताम्रपर्णा, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वरुण—ये आठ, तथा नवाँ यह भारत, जो समुद्र से मिला हुआ है। यह द्वीप उत्तर से दक्षिण तक एक सहस्र योजन में विस्तृत है। गंगा के मुख द्वार (उत्पत्ति स्थान) से लेकर कुमारी

(अन्तरीप) तक यह लम्बा है। टेढ़े (तिरछे, एक कोण से दूसरे कोण तक) टेढ़े ऊपर में यह दस सहस्र योजन विस्तृत है। इस द्वीप की सीमा के सभी ओर के देशों में म्लेच्छ जातियों का निवास स्थान है। पूर्व तथा पश्चिम के भागों में क्रमशः किरात तथा यवनों की जातियाँ निवास करती हैं। मध्य भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जाति के लोग विभागपूर्वक स्वधर्म पालन करते हुए निवास करते हैं। वे यज्ञ, तप, युद्ध एवं व्यवसाय आदि स्व-स्व वर्णाश्रम धर्म में व्यवस्थित जीवन बिताते हैं। उन सभी वर्णवालों के पारस्परिक व्यवहार धर्म, अर्थ एवं काम से संयुक्त तथा अपने-अपने आश्रम के कर्मों में ही नियत होते हैं। निष्काम भावना से युक्त, धर्म, अर्थ, काम मोक्ष—इन पाँच प्रकार के धर्मों की प्राप्ति यहाँ होती है। इस द्वीप के मनुष्यों की कर्म प्रवृत्ति स्वर्ग एवं अपवर्ग की प्राप्ति के लिये होती है। इस विशाल मानव द्वीप को, जो तिरछे लम्बा कहा जाता है, जो सम्पूर्णरूपेण जीत लेता है, वही सम्राट् कहा जाता हैं। अन्तरिक्ष लोक को जीतने वालों का यह पवित्र लोक सम्राट् माना गया है, और यह स्वराट् नाम से भी प्रसिद्ध है। इसका विस्तृत वर्णन पुनः कर रहा हूँ, सुनिये। इस विस्तृत वर्ष में सात कुलपर्वत माने गये हैं, जिनके नाम महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य तथा पारियात्र हैं। उन सातों के समीप में अन्यान्य सहस्रों पर्वत हैं। उन सबों में अनेक विचित्र रंग की विशाल पर्वत श्रेणियाँ शोभायमान हैं, जो मनुष्यों को ज्ञात हैं। उनमें भी कितनी ही छोटी-मोटी सहायक श्रेणियाँ हैं। जिनमें मिले हुए आर्य एवं म्लेच्छ—दोनों जातियों के लोगों के रहने के स्थान बने हैं। सभी प्रान्त में रहनेवाले आर्य तथा म्लेच्छ जातियों के लोग नदियों का जल पान करते हैं। इस देश में नदियों की बहुत अधिकता है। गंगा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, ऐरावती, वितस्ता, विशाला, देविका, कुहू, गोमती, धौतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, निश्चला, गण्डकी, इक्षु, लौहित—ये नदियाँ हिमालय पर्वत की पार्श्वभूमि से निकली हुई हैं। वेदस्मृति, वेत्रवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, पर्णाशा, नर्मदा, कावेरी, महानदी, पारा, धन्वती, विदुषा, वेणुमती, शिप्रा, अवन्ती तथा कुन्ती—ये नदियाँ पारियात्र नामक पर्वत से आश्रित हैं। शोण नामक महानद तथा नन्दना, सुकृशा, क्षमा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पली, श्येनी, चित्रोत्पला, विमला, चंचला, धूतवाहिनी, शुक्तिमन्ती, शुनी, लज्जा, मुकुटा, ह्रादिका—ये निर्मल जलवाली मंगलकारिणी नदियाँ ऋष्य (ऋक्ष) वान् पर्वत की कन्याएँ हैं। तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, ऋषभा, वेणा, वैतरणी, विश्वमाला, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गमा तथा शिला नामक शीतल जलधारिणी मंगलदायिनी नदियाँ विन्ध्य गिरि के चरण से निकली हुई हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, वञ्जुला, तुंगभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या तथा कावेरी—ये दक्षिणापथ की नदियाँ सह्य नामक पर्वत के चरण प्रान्त से निकली हुई हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा तथा उत्पलावती नामक शीतल जलधारिणी, मंगल प्रदायिनी नदियाँ मलयगिरि की कन्याएँ हैं। त्रिभागा, ऋषिकुल्या, इक्षुदा, त्रिदिवाचला, ताम्रपर्णी, मूली, शरवा तथा विमला—ये सभी कल्याणदायिनी नदियाँ महेन्द्र गिरि की कन्याएँ हैं। कारिका, सुकुमारी, मन्दगा,

मन्दवाहिनी, कृपा तथा पाशिनी—ये नदियाँ शुक्तिमान् गिरि की कन्याएँ हैं। ये पुण्यजला, चारों ओर प्रवहमान, समुद्र में गिरनेवाली सभी नदियाँ निखिल विश्व की मातृका स्वरूप हैं, सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाली तथा मंगलदायिनी हैं। इन सबों की सहायक छोटी-मोटी नदियों की संख्या सैकड़ों सहस्रों तक है। इन्हीं पुण्य नदियों के किनारे कुरु, पांचाल, शाल्व, जांगल, शूरसेन, भद्रकार, वाह्य, सहपटच्चर, मत्स्य, किरात, कुल्य, कुन्तल, काशी, कोशल, आवन्त, कलिंग, मूक तथा अन्धक आदि मध्य देशीय देश कहे जाते हैं। ये सभी सह्य नामक पर्वत के समीप पवित्र एवं मनोरम देश हैं, इस स्थान पर गोदावरी नामक नदी बहती है। सम्पूर्ण पृथ्वी में ये प्रदेश अतिशय मनोमुग्धकारी हैं। यहीं पर गोवर्धन, मन्दर तथा रामचन्द्र का प्रियकारक गन्धमादन नामक प र्वत है। भरद्वाज मुनि ने श्री रामचन्द्रजी के लिए वहाँ स्वर्गीय वृक्ष एवं दिव्य तेजोमयी औषधियों को स्वर्गलोक से उतार कर लगाया था। वहाँ का सुन्दर देश सर्वदा पुष्पों से सुशोभित तथा मन को मुग्ध करनेवाला है। वाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोदक, आन्ध्र, शूद्र, पल्लव, आत्तखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्र, शक, द्रुह्य, पुलिन्द, पारद, ह्वार, मूर्तिक, पुरमठ, कण्ठकार, कैकेय्य तथा दश नामक क्षत्रियों के उपनिवेश, वैश्य तथा शूद्रों के निवास स्थान तथा अत्रि, भरद्वाज, प्रस्थल, सदसेरक, लम्पक, तलगान तथा जंगली प्रान्तों समेत सैनिक आदि उत्तरापथ के देश हैं। अब पूर्व दिशा के देशों को सुनिये। अंग, बंग, मद्गुरक, अन्तर्गिरि, वहिर्गिरि, प्लवंग, मातंग, यमक, मल्लवर्णक, सुह्म, उत्तर प्रविजय, मार्ग, वागेय, मालव, प्राग्ज्योतिष्, पुण्ड्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, शाल्व, मागध, गोनर्द—ये सब पूर्व दिशा के देश कहे जाते हैं। दक्षिणापथ के देशों में पाण्ड्य, केरल, चोल, कुल्य, सेतुक, सूतिक, कुपथ, वाजिवासिक, नवराष्ट्र, माहिषिक, कलिंग, कारूष, सैहीषक, आटव्य, शवर, पुलिन्द, विन्ध्यपुषिका, दण्डक, वैदर्भ, कुलीय, सिराल, तापस, रूपस, तैत्तिरिक, समस्त कारस्कर, वासिक नामक देश तथा वे देश, जो नर्मदा के अन्तर्प्रान्त में बसे हुए हैं, कहे जाते हैं। भारुकच्छ, सारस्वत, समाहेय काच्छीक, सौराष्ट्र, अर्बुद (अरब) तथा आनर्त—ये पश्चिमी देश कहे जाते हैं। अब विन्ध्यगिरि के अंचल में बसे हुये देशों को सुनिये। मालवा, करूष, उत्कल, मेकल, औण्ड्र, माष, दशार्ण, किष्किन्धक, भोज, स्तोशल, कोशल, त्रैपुर, वैदिश, तुमुरा, तुम्बुरा, नैषध, पन्नमा, अरूप, शौण्डिकेर, वीतिहोत्र, तथा अवन्तिका नामक देश विन्ध्य गिरि के पृष्ठदेश में अवस्थित कहे जाते हैं। अब इसके उपरान्त मैं उन देशों को बतला रहा हूँ, जो पर्वतों पर अवस्थित हैं। वे निराहार, सर्वग, कुपथ, अपथ, कुथप्रावरण, ऊर्णा, दर्व, समुद्गक, त्रिगर्त, मण्डल, चामर तथा किरात नामक देश हैं। इस भारतवर्ष में मुनियों ने सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग—नामक चार युगों को बतलाया है। उनका यथावत् वर्णन मैं कर रहा हूँ। ॥५-५७॥

मत्स्य ने कहा—लोमहर्षण के पुत्र पौराणिक सूत की इस पुनीत कथा को सुनकर पुनः उत्तर की सुनने की उत्कट इच्छा से प्रेरित होकर मुनियों ने उनसे पूछा ॥५८॥

ऋषियों ने कहा—विद्वानों में परम श्रेष्ठ! आप भारतवर्ष का यथावत् वर्णन तो सुना चुके।

अब हम लोगों को किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्ष का यथावत् वर्णन सुनाइये। तथा जम्बूद्वीप के अन्तर्गत अन्य द्वीपों के निवासियों तथा उन द्वीपों के विस्तार एवं उनमें होनेवाले वृक्षों का भी वर्णन कीजिये।' इस प्रकार ऋषियों के पूछने पर पौराणिक सूत ने उनके प्रश्नों के अनुकूल, ऋषियों द्वारा देखे गये पुराण सम्मत उत्तर इस प्रकार उन्हें देना प्रारम्भ किया। ॥५९-६१॥

सूत ने कहा—विप्रवृन्द! आप लोग जिस विषय को सुनना चाहते हैं, उसे कह रहा हूँ, सावधानी-पूर्वक सुनिये। जम्बू वर्ष एवं किम्पुरुष वर्ष बहुत बड़े नन्दन वन के समान शोभासम्पन्न हैं। किम्पुरुष वर्ष में मनुष्यों की आयु दस सहस्र वर्ष की होती है। वहाँ के मनुष्य भली भाँति तपाये गये सुवर्ण के समान गौर वर्ण के होते हैं। उस परमपुण्यप्रद किम्पुरुष वर्ष में एक बहुत बड़ा पाकड़ का वृक्ष है, जिससे सर्वदा मधु निकला करती है। उस श्रेष्ठ रस का पान करनेवाले वहाँ के निवासी किंपुरुष लोग सर्वदा शोक एवं रोग आदि से रहित, नित्य प्रमुदित मनवाले तथा सुवर्ण के समान सुन्दर गौर वर्ण के होते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ अप्सरा कही जाती हैं। उस किम्पुरुष वर्ष के बाद हरिवर्ष नामक देश कहा जाता है, जहाँ के मनुष्य सुवर्ण के समान कान्तिमान् होते हैं। देवलोक से पुण्य क्षीण होने पर च्युत होकर वे लोग इस वर्ष में उत्पन्न होते हैं। उस हरिवर्ष में रहनेवाले लोग सभी अंगों से अत्यन्त सुन्दर होते हैं। वे ईख के कल्याणकारी रस का पान करते है। इससे उन लोगों के पास वृद्धावस्था नहीं फटकती, वे ग्यारह सहस्र वर्ष की लम्बी आयु तक जीवित रहनेवाले होते हैं। सभी वर्षों के मध्यभाग में अवस्थित जिस इलावृत्त नामक वर्ष की चर्चा मैं आप लोगों से पूर्व में कर चुका हूँ, उसमें सूर्य का प्रकाश नहीं होता और न वहाँ के निवासी ताराओं के समेत चन्द्रमा तथा सूर्य आदि प्रकाशमान ग्रहों को ही जानते हैं। उस इलाव्रत के निवासी कमल के समान वर्णवाले, कान्तिमान् तथा कमल के दल के समान लाल नेत्रोंवाले होते हैं। सभी लोग कमल के समान सुगन्धियुक्त एवं नीरोग होते हैं। वे जामुन के फल का रस पान करते हैं। सुवर्ण द्वारा निर्मित सुन्दर वस्त्र धारण करनेवाले वे प्राणी स्वर्गलोक से पुण्यक्षीण होने के कारण च्युत होकर वहाँ उत्पन्न होते हैं। वे श्रेष्ठ मनुष्य तेरह सहस्र वर्ष की लम्बी आयु तक जीवित रहते हैं। मेरु पर्वत के दक्षिण एवं निषध की उत्तर ओर सुदर्शन नामक जामुन का विशाल वृक्ष है, जिसका विनाश कभी नहीं होता। सिद्ध तथा चारणों से सुसेवित वह वृक्ष सर्वदा फलों फूलों से सुशोभित रहता है। उसी वृक्ष के नाम पर इस द्वीप का जम्बूद्वीप—यह नाम विख्यात हुआ है। वह महान् जम्बूद्वीप एक लक्ष योजन में विस्तृत है। उस वृक्षराज की ऊँचाई स्वर्गलोक तक पहुँची हुई है तथा उसके फल का रस नदी रूप में परिणत होकर वहाँ पर निरन्तर बहता रहता है। 'उसके रस की धारा मेरु पर्वत की चारों ओर से परिक्रमा कर पुनः उस वृक्ष के मूल भाग को पहुँचती है। उस द्वीप के निवासी उस सुन्दर रस का पान कर सर्वदा हृष्ट पुष्ट एवं नीरोग बने रहते हैं। जामुन के रस के पान के कारण उन्हें वृद्धावस्था कभी दुःख नहीं देती, न भूख ही लगती है, न थकावट लगती है और न कोई दुःख ही होता है। उसी जम्बूद्वीप में देवताओं के आभूषण जिससे बनाये जाते है, वह बहुमूल्य सुवर्ण उत्पन्न होता है। जो

इन्द्र[1]गोप (बीरवहूटी) के समान चमकीला होता है। यह जाम्बूनद उस वर्ष (प्रदेश) के वृक्षों के फलों का सुन्दर रस है, जो चू कर नीचे आने पर चमकीले सुवर्ण के रूप में परिणत होकर देवताओं के आभूषणों का काम देता है। उनके शव, मल, मूत्र आदि एवं सभी ओर आठों दिशाओं में फैली हुई गन्दी वस्तुओं को ईश्वर के अनुग्रह से भूमि स्वयं ग्रस (अपने में समाप्त कर) लेती है। हिमालय पर्वत के रहनेवाले राक्षस, पिशाच तथा यक्ष गण हैं। हेमकूट नामक गिरि पर अप्सराओं समेत गन्धर्व गण निवास करते हैं! तथा शेष, वासुकि, तक्षक आदि बड़े-बड़े सर्पराज भी उसकी सेवा करते हैं। महामेरु गिरि पर परमश्रेष्ठ तैंतीस यज्ञ के देवगण क्रीड़ा करते हैं नीलम एवं वैदूर्य नामक मणियों से समृद्ध नील नामक पर्वत पर ब्रह्मर्षि तथा सिद्धगण निवास करते हैं। दैत्यों एवं दानवों का निवास स्थल श्वेत नामक गिरि पर कहा जाता है। श्रेष्ठ श्रृंगवान् नामक पर्वत पितरों का विहार स्थल है। इस प्रकार इन वर्षों को, जो भारतवर्ष के अन्तर्गत गिनाये गये हैं, बतला चुका। इनमें से प्रत्येक में जीवों के निवासस्थल हैं, ये परस्पर गतिमान् तथा स्थिर हैं। देवताओं एवं मनुष्यों ने अनेक प्रकार से इनके विस्तार को देखा है। इन्हें इससे अधिक विस्तारपूर्वक वर्णित नहीं किया जा सकता, मंगलार्थी पुरुष को केवल इन पर श्रद्धा रखनी चाहिये। ॥६२-८६॥

श्री मात्स्य महापुराण में भुवनकोष वर्णन नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त। ॥११४॥

एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय

मनु ने कहा—जनार्दन! आपके मुख से बुधपुत्र राजा पुरूरवा का जीवन चरित्र, सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करनेवाली एवं मंगलकारिणी श्राद्धकर्म की विधि, व्याई हुई धेनु के दान करने का फल, काले मृग-चर्म के दान तथा वृषोत्सर्ग के फल—इन सब पुण्य कथाओं को मैं पूर्व में सुन चुका। केशव! बुधपुत्र राजा पुरूरवा का रूप-वर्णन सुनकर मुझे बड़ा ही कुतूहल हुआ है। अतः मुझे यह बतलाइये कि किस श्रेष्ठ कर्म के परिणाम से राजा पुरूरवा ने ऐसे परम मनोहर रूप एवं ऐसे परम श्रेष्ठ सौभाग्य को प्राप्त किया था, जिससे परमसुन्दरी उर्वशी ने त्रिभुवन में सबसे अधिक सुन्दर देवताओं एवं परम मनोरम रूपधारी गन्धर्वों को छोड़कर सर्वतोभावेन उसे ही स्वीकार किया था। ॥१-५॥

मत्स्य ने कहा—जिस श्रेष्ठ कर्म के फल से राजा पुरूरवा को ऐसा परम मनोहारि रूप तथा उत्तम सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उसे बतला रहा हूँ, सुनो। यह राजा पुरूरवा प्राचीन काल में चाक्षुष नामक मन्वन्तर में राजा चाक्षुष मनु का वंशज एवं मद्रदेश का स्वामी था। उस जन्म में भी इसका नाम पुरूरवा ही था। सब प्रकार के राजोचित गुणों से सम्पन्न होते हुए भी प्राचीन जन्म में वह रूपवान् नहीं था। ॥६-८॥

१—एक बरसाती कीड़ा। केवल वर्षा काल में उत्पन्न होने के कारण इन्द्र ही उसका रक्षक होता है, अतः उसका इन्द्रगोप नाम पड़ा।

[इसी प्रश्न को सूत से] ऋषियों ने पूछा—सूतनन्दन ! किस कर्म के परिणाम से पुरूरवा मद्रदेश का स्वामी हुआ ? और किस कर्म से ऐसा सुन्दर रूपवान् हुआ ? ॥९॥

सूत ने कहा—यह महाराज पुरूरवा पहले जन्म में ब्राह्मणों के एक नदी तटवर्ती ग्राम में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था, उस जन्म में भी इसका पुरूरवा—यही नाम था। निष्पाप ! उस जन्म में मद्रदेशाधिपति होने के पूर्व ब्राह्मण पुरूरवा ने एक बार द्वादशी तिथि को राज्य-प्राप्ति की अभिलाषा से भगवान् विष्णु की पूजा की। उस पूजा में उसने उपवास रखकर भी तेल लगाकर स्नान किया। जिससे अपने उपवास के फल में तो मद्रदेश का निष्कण्टक राज्य उसने प्राप्त किया, किन्तु उपवास में तेल लगाने के कारण वह रूपरहित हो गया। राजन्[1] ! इसलिए उपवास रखनेवाले मनुष्य को तेल लगाकर भरसक स्नान नहीं करना चाहिये, उपवास के समय यह कर्म अति रूपनाशक होता है। पूर्व जन्म में जो कुछ हुआ था, उसे तो आप लोगों को सुना चुका, अब उस राजा के मद्रदेशाधिपति हो जाने के बाद की कथा सुनिये। यद्यपि सभी प्रकार के राजगुण उस राजा में विद्यमान थे, किन्तु रूपहीन होने के कारण प्रजा का उसमें तनिक भी अनुराग नहीं था। अतः सुन्दर रूप प्राप्त करने की इच्छा से राजा ने तपस्या करने की अभिलाषा की। एक दिन उसने अपना राज्यभार मंत्री को सौंपकर हिंमालय पर्वत की ओर प्रस्थान किया। महायशस्वी राजा पुरूरवा उस समय निःसहाय (विना नौकर चाकर के) अवस्था में था केवल तपस्या ही उसकी एक मात्र संगिनी थी। अपने ही राज्य सीमा के अन्तर्गत तीर्थ स्थानों के देखने की कामना से पैदल ही उसने यात्रा प्रारम्भ की और अति मनोहारिणी ऐरावती नदी के तट पर गया। वहाँ जाकर हिम के समान निर्मल यशस्वी उस राजा पुरूरवा ने हिमालय गिरि से निकलने वाली, चन्द्रमा के समान शीतल जलयुक्त, अथाह जल के गम्भीर वेग से सुशोभित, हिम के समान निर्मल एवं स्वच्छ उस ऐरावती नदी को देखा। ॥१०-१९॥

श्री मात्स्य महापुराण में तपोवन में पुरूरवा आगमन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥११५॥

एक सौ सोलहवाँ अध्याय

सूत ने कहा—राजा पुरूरवा ने दिव्य तेजोमयी, पुण्यदायिनी, कल्याणकारिणी हिमालय की पुत्री, गन्धर्वों द्वारा घिरी हुई, नित्य देवराज इन्द्र द्वारा पूजित, उस पुण्यनदी को देखा। उस दिन चारों दिशाओं से शोभा सम्पन्न, देवताओं के हाथी ऐरावत के मद जल से सुसिक्त, धारा के मध्य भाग में इन्द्र के धनुष के समान अनेक रंगों से सुशोभित वह ऐरावती स्नानार्थ शरण में आए हुए तपस्वियों से युक्त, श्रेष्ठ ब्राह्मण वृन्दों से सुसेवित एवं सुवर्ण के समान चमकनेवाली थी। ऐसी नदी को महाराज पुरूरवा ने देखा। उस समय श्वेत रंग के राजहंसों की पंक्तियों से वह ढकी हुई थी, चँवर के समान कास[2] से सुशोभित हो रही थी,

[1] यहाँ राजन् ! सम्बोधन मनु के लिये आया है।

[2] कास नामक एक घास होती है, जिसके फूल सफेद होते हैं।

सत्पुरुषों द्वारा नहवाई गई नायिका की भाँति उस नदी को देखकर राजा को परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। हृदय को मनोहर लगनेवाली, पुण्यमयी, मन में भक्ति एवं प्रेमभाव बढ़ानेवाली, सुशीतल, परम मनोहर, कभी घटने और कभी बढ़नेवाली वह ऐरावती उस समय चन्द्रमा की दूसरी मूर्ति की भाँति मालूम पड़ रही थी। अति शीतल तथा चंचल जलयुक्त, ब्राह्मण अथवा पक्षियों के वृन्द द्वारा सेवित, लोल लहरों द्वारा सुशोभित, हिमालय की श्रेष्ठ कन्या ऐरावती को देखकर राजा को परम प्रसन्नता हुई। तपस्वियों से सुशोभित, अमृत के समान सुस्वादु जल से पूर्ण, सम्पूर्ण पापों को नष्ट करनेवाली, स्वर्ग पर चढ़ने के लिए सीढ़ी के समान सहायिका, जलनिधि की परम सुन्दरी प्रियतमा, महर्षि वृन्दों द्वारा सुसेवित, सभी जीवों के मन में उत्सुकता प्रकट करानेवाली वह मनोहर सरिता सभी चराचर जगत् का उपकार करनेवाली, स्वर्ग का सीधा मार्ग पकड़ानेवाली, दोनों किनारों पर गौओं के समूहों से व्याप्त, सेवार से रहित, परम मनोहर, हंस तथा सारस जाति के पक्षियों के कलकल निनाद से गूँजित तथा कमलों से सुशोभित थी। गहरी (गम्भीर) नाभि के समान भँवरों वाली, जघनस्थली के समान सुरम्य स्थल भाग के पवित्र किनारों से संयुक्त, नेत्र के समान आकर्षक नीले कमल की शोभा से युक्त, मुख के समान खिले हुए कमलोंवाली, बरफ के समान निर्मल एवं स्वच्छ फेनरूपी वस्त्रों को धारण करनेवाली; ओंठों के समान चक्रवाक के जोड़ों से युक्त, कल्याणमयी, दाँतों की सुमनोहर पंक्तियों के समान बगुलों की श्वेत पंक्तियों से सुशोभित तथा भौहों के समान जल में चलनेवाली चंचल मछलियों की पंक्तियों से वह विराजित हो रही थी। उन्नत स्तनों के समान जल में छिपे हुए मतवाले हाथियों के मनोहर कुम्भ-स्थलों से सुशोभित, नूपुर के समान सुमधुर हंसों के सुन्दर शब्दों से गूँजित, वलय (कंकण) के समान कमल की नाल के समूहों से संयुक्त, उस ऐरावती नामक नदी को एक सर्वांग सुन्दरी रमणी की भाँति देख कर राजा को परम प्रसन्नता हुई। हे राजन्! उस ऐरावती नदी में रूप के मद से मतवाली, गन्धर्वों के पीछे चलनेवाली अप्सराओं के समूह मध्याह्न के समय सर्वदा विहार करते थे। उन अप्सराओं के शरीर से धुले हुए सुन्दर केसर के साथ-साथ अपने दोनों किनारों के अनेक प्रकार के वृक्षों के पुष्पों की विभिन्न प्रकार की सुगन्धियों से सुगन्धित, तरंगों के समूहों में सूर्य की परछाईं पड़ने से चकाचौंध के कारण कठिनाई से देखने योग्य सूर्यमण्डल को धारण करनेवाली, देवताओं के हाथी ऐरावत की चोट से चिह्नित दोनों किनारों से युक्त उस ऐरावती का जल देवगज के कपोल-स्थल से बहने वाले मद जल तथा देवांगनाओं के स्तनों में लगाये गये चन्दनों से व्याप्त एवं सुगंधित हो रहा था, जिससे भ्रमरगण उसे चारों ओर से घेरे हुए थे। उस ऐरावती नदी के दोनों किनारों के वृक्ष सुगन्धित पुष्पों से लसे हुए थे और सुगन्धि के परम लालची तथा जल्दी मचानेवाले भ्रमरों के समूहों से घिरे हुए थे। उस ऐरावती के मनोहर किनारों पर जाकर पशु, तपस्वी ऋषिगण एवं अप्सराओं समेत देववृन्द सर्वदा कामवश होकर प्रीति करने लगते थे। वहाँ देवताओं के समान सुन्दर पवित्र अंगों वाले पुरुष तथा कमल एवं चन्द्रमा के समान आकर्षक मुखवाली स्वर्ग की सुन्दरियों के समान स्त्रियाँ प्रायः विहार करते हुए पाई जाती थीं। वह ऐरावती नदी सर्वदा देवता, भील, शबर, पुलिन्द आदि जंगली जाति, राजाओं के समूह, एवं बाघ सिंह आदि हिंसक जंगली

जानवरों के समूहों द्वारा अपीड़ित परम पवित्र जल को धारण करती है। उस कमल समूहों से संयुक्त जलवाली, ताराओं के समेत आकाश मण्डल के समान सुशोभित, सत्पुरुषों के मनोरथों को पूर्ण करनेवाली ऐरावती को देखते हुए राजा आगे बढ़े। उस पुण्य नदी के दोनों सुन्दर किनारे तट पर उगनेवाली चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत रंग की कास आदि घासों तथा अनेक प्रकार के बहुत बड़े-बड़े सुन्दर एवं विशाल वृक्षों से सुशोभित थे। वह नित्य विविध प्रकार की उपासना में अनुरक्त ब्राह्मणों तथा देवताओं द्वारा सुसेवित होती थी। जो भक्तजन के सकल पाप पुंजों का शीघ्र ही विनाश करनेवाली थी, अनेक छोटी-छोटी नदियों के समूहों को साथ लेकर चलती थी, अनेक श्रेष्ठ मुनियों द्वारा पूजित थी, अपने पुत्रों की भाँति सभी मनुष्यों का पालन करती थी, सर्वदा बर्फ के समूहों से संयुक्त थी, सर्वदा देव समूहों से युक्त रहती थी, अपने कल्याण की कामना के लिए मनुष्य समूहों द्वारा सर्वदा सेवित थी ऐसी—सिंहों के समूहों से युक्त, हाथियों के वृन्दों से सेवित, कल्पद्रुम के सुगन्धित पुष्पों से युक्त जलवाली, सुवर्ण के समान चमकनेवाले जल से समृद्ध एवं चन्द्रमा की किरणों के समान शीतल जलवाली—ऐरावती नदी को, चन्द्रमा ही के समान शुभ्र एवं निर्मल यशस्वी राजा (पुरूरवा) ने देखा। ॥१३-२५॥

श्री मात्स्य महापुराण में भुवनकोश वर्णन प्रसंग में ऐरावती वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥११६॥

एक सौ सत्रहवाँ अध्याय

सूत बोले—उस पुण्यसलिला ऐरावती नदी को देखते हुए तथा मार्ग पर चलते हुए राजा पुरूरवा ने—जिसकी सारी थकावट नदी की ठंडी वायु से दूर हो गयी थी—हिमवान् नामक महागिरि को देखा। वह हिमवान् पर्वत ऐसे अनेक पाण्डु वर्णवाले, गगनचुम्बी, पर्वत के शिखरों से युक्त था, जहाँ पर पक्षिवृन्द भी उड़कर नहीं जा सकते थे, और जो केवल कल्याण की इच्छा रखनेवाले सिद्धजनों द्वारा ही गम्य थे। चारों ओर से निकलनेवाली नदियों के प्रवाह के घोर शब्द से वहाँ दूसरे शब्द बिल्कुल नहीं सुनाई पड़ते थे। वह हिमवान् गिरि शीतल जल से प्रपूर्ण तथा अति मनोरम था। राजा ने देखा कि वह हिमवान् पर्वत देवदारु के घने काले जंगलों को अँगरखे की भाँति तथा मेघों को उत्तरीय वस्त्र की भाँति अपने ऊपर ओढ़े हुए है। वह पगड़ी की भाँति श्वेत बादलों को धारण किये हुए है, मुकुट की भाँति एक ओर चन्द्रमा तथा दूसरी ओर सूर्य को धारण किये है, सम्पूर्ण शरीर में बर्फ लपेटे हुए है, कहीं-कहीं पर गेरू आदि धातुओं से सुशोभित सारे शरीर पर चन्दनादि का अंगराग लगाये हुए है। पीठ पर मानो पाँचों अँगुलियों की छाप लगा दी गई है। इस प्रकार भीषण गर्मी के समय में भी अति शीतल, सुन्दर शिलाओं के समूहों से समन्वित, कहीं अप्सराओं के महावर लगाये हुये चरणों के चिह्नों से चिह्नित, कहीं सूर्य की किरणों से छुए हुए (प्रकाशित), कहीं घोर

---

[1] बर्फ जमे रहने के कारण सूर्य की किरणों के पड़ने से बर्फ गल जाता है, जिससे जल और अधिक शीतल हो जाता है।

अन्धकार से घिरे हुए और कहीं भयानक गुफाओं के मुख भागों से जल पीते हुए की तरह उस महान् हिमवान नामक पर्वत को राजा ने देखा। कहीं क्रीड़ा में निरत विद्याधरों से सुशोभित, कहीं गाते हुए प्रमुख किन्नरों के समूहों से युक्त, कहीं मधुशाला (मदिरा पान करने की स्थली) में गन्धर्व एवं अप्सराओं के समूहों द्वारा गिराये हुए कल्पद्रुम, पारिजात आदि दिव्य पुष्पों से परिष्कृत, उस हिमवान् को राजा ने देखा। कहीं पर गन्धर्वों की मर्दित एवं परम मनोहर शय्याओं के पुष्पों से आकीर्ण—जिन पर से सोनेवाले उठ गये हैं—कहीं—जहाँ पर वायु भी नहीं पहुँच सकती—ऐसे दुर्गम तथा नीले और हरे रंग के प्रदेशों से युक्त, कहीं पर पुष्पों से सुशोभित, ऐसे कल्याणमय, अति रुचिर हिमवान् पर्वत को राजा ने देखा। तपस्वियों को शरण देनेवाले एवं कामी जनों के लिए अति दुर्लभ पर्वतीय वन को, जिसमें हाथियों द्वारा बड़े-बड़े पेड़ तोड़ डाले गये हैं तथा मृगगण इच्छानुकूल घूम रहे हैं—राजा ने देखा। वहाँ कहीं पर सिंहों की भयानक गर्जना सुनकर हाथियों के समूह बहुत श्रान्त एवं व्याकुल होकर भीषण चिग्घार करते हुए दिखाई पड़ते हैं तथा कहीं पर वैसे नहीं दिखाई पड़ते हैं। वहाँ के तटवर्ती प्रदेश लता के कुंजों में निवास करनेवाले तपस्वियों के समूहों से सुशोभित हैं। जिसमें उत्पन्न होनेवाले रत्नों से तीनों लोक अलंकृत हो गये हैं, उस सर्पराज वासुकि आदि की शरणस्थली, नित्य सत्पुरुषों द्वारा सेवित, रत्न आदि सम्पत्तियों से प्रपूर्ण गिरिवर (हिमवान्) को श्रेष्ठ राजा ने देखा। जहाँ जाकर तपस्वीगण थोड़े ही प्रयत्न से सिद्धि की प्राप्ति कर लेते हैं, जिसके देखने मात्र से सम्पूर्ण पापों का विनाश हो जाता है, जिसके किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर वायु के वेग से लाये हुए बड़े-बड़े तथा छोटे-छोटे झरनों के जलों से अनेक पर्वतीय प्रान्तों की तृप्ति होती है, ऐसे हिमवान् को राजा ने देखा। राजा ने कहीं पर उस हिमवान् पर्वत के कुछ शिखरों को जल से प्लावित तथा कुछ को सूर्य की किरणों से संतप्त होने के कारण अगम्य रूप में देखा। मानव केवल मन द्वारा ही वहाँ पहुँच सकता है। इसका कोई छोर देवदारु के विशाल वृक्ष समूहों की शाखाओं-प्रशाखाओं से एकदम व्याप्त एवं निरवकाश दिखाई पड़ता है, तो कोई छोर बाँसों की कोठ के समान दुर्भेद्य एवं दुर्गम प्रदेशों से शोभित है। इसके किसी स्थान पर छाते के समान महा शिखर बर्फ से आच्छन्न हैं। कहीं बरफ से ढँकी हुई कन्दराएँ हैं, कहीं सैकड़ों सुन्दर झरनों के प्रवाहों की शोभा दिख रही है। कहीं पर कलकल से ही जल की ध्वनि आ रही है, अर्थात् जलधारा दिखाई नहीं पड़ रही है। इस प्रकार सुंदर हिमालय को देखते हुए महानुभाव मद्रदेशाधिपति पुरूरवा ने वहाँ एक सुन्दर स्थली देखी और वहीं पर आनन्द विभोर हो एक सुन्दर-सा स्थान प्राप्त कर निवास करने का निश्चय किया। ॥१-२१॥

श्री मात्स्य महापुराण में भुवनकोश प्रसंग में हिमालय वर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥११७॥

एक सौ अठारहवाँ अध्याय

सूत ने कहा—दैव योग से (महाराज पुरूरवा) उसी पर्वतराज हिमालय के सुरम्य प्रदेश में—जहाँ पर कोई अन्य मनुष्य नहीं जा सकता था—पहुँच गये, जिस से श्रेष्ठ नदी ऐरावती निकली हुई है, और जो मेघ के समान काले रंग का है। वहाँ पर अनेक प्रकार के शाल (साखू), ताल (ताड़), तमाल, कनैर, शाल्मलि (सेमर), बरगद, पीपल, सिरसा, तथा शीशम के वृक्षों के समूह और श्लेष्मातक (लसोढ़ा) आमला, हर्रें, बहेड़े, भूर्जपत्र (भोजपत्र) मूँज, सरपत और रामशर की झाड़ें, सप्तच्छद (एक प्रकार का वृक्ष, जिसके एक साथ सात-सात पत्ते रहते हैं, सतौन, छतवन वा छतिवन भी इसे ही कहते हैं) महानिम्ब (वकाइन) नीम, निर्गुण्डी (शेफाली), हरिद्रु (इसे दारु हल्दी भी कहते हैं), देवदारु, पीलु वृक्ष, कालेयक (अगर) पद्मक (पद्माख), चन्दन, वेल, कैथा, देवीचन्दन, माटाम्र (तरबूजे की एक जाति), अखरोट, अब्दक (नागरमोथा), अर्जुन, सुन्दर फूलोंवाले हस्तिकर्ण (पलाश), फूले हुए कचनार, पुराने आमले के पेड़, खदिर के वृक्ष, धनिया, खजूर, नारियल, चिरौंजी, आमड़ा, हिंगोट, तन्तुमाल, मनोहर धव के वृक्ष, काश्मरी, शालपर्णी, जातीफल (जायफल) सुपारी, कटफल (कायफर) इलायची की लताओं के फल, मन्दार, कचनार, किंशुक (पलाश), कुसुमांशुक, जवास, शमी, तुलसी, बेंत, जल में उगनेवाले बेंत, थोड़े लाल रंग के तथा अतिशय लाल रंग के संतरो के वृक्ष, रामठ (जिसके रस से हींग बनाई जाती है), मेंहदी, लाल पत्तोंवाले अशोक, अशोक, आकल्ल (अकरकरा), अविचारक, मुचुकुन्द, कुन्द, अडूसा, परुषक (फालसा), किरात (चिरायता), किंकरात (बबूल), केतकी, सफेद केतकी, सहिजन, अंजन[1], कलिंग (तरबूजा), निकोटक, (ढेरा), तथा सुवर्ण की भाँति चमकनेवाले सुन्दर वल्कलों से सुशोभित विजय साल के श्रेष्ठ वृक्ष तथा कामदेव के वाण के समान सुन्दर आम के वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। पीली जूही, सफेद जूही, मालती, चम्पक के समूह, तुम्बर (एक प्रकार की धनिया), अतुम्बर(?) मोच (केला वा सेमर), लोच (गोरखमुण्डी), बड़हर, तिल तथा कमल के सुन्दर फूल तथा कामियों के प्रिय चव्यक (चाब नामक वृक्ष) के पुष्प तथा अंकुरों से, बकुल (मौलसिरी), पारिभद्र (फरहद नीम), हरिद्रक, जलकदम तथा पर्वत की श्रेणियों पर उत्पन्न होनेवाले कदम्ब और कुटज (कुरैया) के वृक्षों से, आदित्य मुस्तक........?, कुम्भ (कटफल) के फलों से कामदेव के वल्लभ कुंकुम (केसर), कटफल, बदर (बेर), परम उज्ज्वल दीपक की भाँति सुशोभित कदम्ब के वृक्षों से, लाल रंग के पाली (लाल चीता) के वनों तथा श्वेत रंग के अनार तथा चम्पकों के वृक्षों से, बन्धूक (दोपहरिया), सुबन्धूक तथा कुञ्जों के समूहों से, पाटला तथा गुलाब के पुष्पों से, मल्लिका, करवीर (अर्जुन अथवा कनैर), करबक (लाल कटसरैया), हिमवर (?) छोटी जामुन, बड़ी जामुन, बिजौरा, कपूर, गुरु, अगुरूह आदि के वृक्षों से, बिम्ब (एक फल) प्रतिबिम्ब, वितान की तरह फैले हुए सन्तानक (कल्पवृक्षों) तथा गुग्गुल

---

[1] वृक्षों के इन नामों में कई पुनः पुनः आ गये हैं, उनसे उनके भिन्न भिन्न भेदों को जानना चाहिये।

के वृक्षों से; हिन्ताल (हिंताल नामक एक वृक्ष, जो दक्षिण भारत में अधिकांश पाया जाता है) तथा श्वेत ईखों से, मल्लिका लता, कनेर, अशोक, चकवढ़, पीलु, धाय तथा घने चिलबिल के वृक्षों से; इमली, लोध, विडंग, खिरनी, लसोढ़ा, काल (रक्तचित्रक नामक एक वृक्ष), जम्बीर, श्वेतवृक्ष वरुण (बरना नामक एक वृक्ष विशेष), भिलावा, इन्द्रजव, वल्गुज (सोमराजी नाम से प्रसिद्ध), सिन्दुवार (सम्हालू), मन को हरनेवाले केसर तथा नागकेसर के वृक्षों से, करौंदा, कसौंदी, मिर्च तथा हुरहुर के पौदों से, रुद्राक्ष के वृक्ष, अंगूर की लताओं, सप्तच्छद वृक्ष एवं पुत्रजीवक नामक वृक्षों के समूहों से वह सारा वन्य प्रान्त व्याप्त हो रहा था। कहीं पर कंकोलक (शीतलचीनी), लवंग, दालचीनी तथा पारिजात के वृक्षों से, तथा कहीं पर किनारे पर उगी हुई पिप्पली (पीपर) तथा नागबल्ली नामक लताओं के कुंजों से वह सुशोभित था। कहीं काली मिर्च, नवमल्लिका तथा अंगूर की लताओं से मानों मण्डप बना हुआ था तो कहीं पर फलों से सुशोभित त्रपुषी (एक प्रकार की नील फूलों वाली लता) की लताएँ, कहीं पर कुष्माण्डों (कुम्हड़ों) की और कहीं पर कद्दू की लताएँ, कहीं पर ककड़ी और पटोल (परवर) तथा कर्कोटकी (काँकोड़ नामक एक लता) की लताएँ, कहीं पर बैंगन तथा भटकटैया के फल, कहीं पर अनेक प्रकार की मूली तथा काँटेदार वृक्ष शोभायमान थे। श्वेतकमल, विदारी, रुरूट, स्वादुकण्टक, भाण्डीर, विदूसार, राजजम्बुक, बालुक, सुवर्चला तथा सभी प्रकार के सरसों के पौदे भी थे। काकोली, क्षीर काकोली, छत्रा, अतिच्छत्रा (तालमखाना), कासमर्दी, कन्दल, काण्डक, क्षीर तथा काल नामक शाकों से तथा सेम की लताओं एवं अनेक प्रकार के अन्न के पौदों से सारा प्रदेश शोभित हो रहा था। हे राजन्! अनेक प्रकार की चित्र-विचित्र, दीर्घायु यश तथा बल देनेवाली, बुढ़ापे एवं मृत्यु को नष्ट करनेवाली, क्षुधा तथा भय को दूर करनेवाली, सौभाग्यदायिनी औषधियाँ तथा अनेक प्रकार की कँटीली बाँसों की टहनियाँ, कटे हुए बाँसों के ठूँठ, जो वायु के प्रवेश से शब्द करने लगते थे, वहाँ थे। वहाँ पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल प्रकाशमान् काँस के फूलों से तथा रामशर, सरपत कुश तथा मनोहर ईख के गुल्मों से तथा अनेक प्रकार के दुर्लभ मनोहर कपास और मालती के वृक्षों व लताओं से सारी वनभूमि सुशोभित हो रही थी। मन को हरनेवाले केलों की पंक्तियाँ वहाँ सुशोभित थीं। मरकत मणि के समान घासों से हरी-भरी सारी वनभूमि सुशोभित हो रही थी। कहीं-कहीं पर केसर तथा इरा के मनोहर पुष्पों से पृथ्वी अलंकृत थी। कहीं पर तगर, अतिविष (विष को शान्त करनेवाली एक लता), जटामाँसी तथा गूगुल के अनेक रंग-विरंगे तथा राजतरु (कनैर) और भूमि पर फैले हुए जम्बीर के पुष्प, जो मन को हरनेवाले थे और जिन पर सुग्गे विचर रहे थे, सुशोभित थे। अनेक प्रकार के अदरक, अजमोदा, कुबेरक (तून नामक वृक्ष विशेष), और चिरौंजी के पौदे भी वहाँ थे। रंग विरंगे, सुगंधिपूर्ण, कमल के वहाँ पुष्प खिले हुए थे। उनमें कुछ उदयकालीन सूर्य के समान, कुछ पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान, कुछ सुवर्ण के समान, कुछ अलसी के फूल के समान और कुछ सुग्गे के डैने के समान थे। पाँचों प्रकार के तथा अन्यान्य रंगों के स्थलपद्म भी वहाँ सुशोभित हो रहे थे। देखनेवाले की दृष्टि को सुख देनेवाले चन्द्रमा के समान आकर्षक कुमुदों, अग्नि की ज्योति के समान आकार वाले मनोहर हाथियों के मुखों में लगे हुए लाल एवं नीले

कमलों की शोभा तो देखती ही बनती थी। सफेद कमल, गुंजातक, कसेरु, शृंगारक (जलकण्टकी नामक जल में उगने वाली एक लता), कमल की नाल, चाँदी के समान श्वेत रंग के कमल तथा करट (कुसुम्भ) से सारा वन प्रान्त शोभायुक्त हो रहा था। राजन्! जल में तथा स्थल में उगनेवाले विशेष प्रकार के फल, मूल तथा पुष्पों से वह वनभूमि सुशोभित थी, मुनियों के खाने योग्य अनेक प्रकार के नीवार आदि पदार्थ भी वहाँ थे। वहाँ जाकर राजा ने ऐसा कोई भी अन्न, शाक, फल, मूल, कन्द तथा पुष्प आदि पदार्थ, जो नागलोक स्वर्गलोक मर्त्यलोक जल के किनारे वाले प्रान्त तथा जल में उत्पन्न होते हैं, नहीं पाया जो विद्यमान् न हो। वहाँ के वृक्षों में प्रत्येक ऋतुओं में सर्वदा फूल और फल प्राप्य थे। अपनी तपस्या के प्रभाव से मद्रदेशाधिपति राजा पुरुरवा ने उस वन प्रान्त को देखा था। वहाँ पर उसने अनेक प्रकार के रंग-विरंगे पक्षियों को देखा। मयूर, शतपत्र (कठफोरवा), चटक (गौरैया नामक पक्षी विशेष), कोकिल, कादम्बक (हंस की एक जाति), हंस, जल कुक्कुभ (कोड़हा नामक पक्षी), खंजरीट, कुरर, कालकूट (जलकौआ नामक पक्षी विशेष), पक्षियों को मारनेवाले खट्वांग (उसी नाम का एक पक्षी) गोक्ष्वेडक (हारिल), धार्तराष्ट्र (एक प्रकार के हंस जिनके शरीर सफेद तथा चोंच व चरण काले होते हैं), सुग्गे, बगले, पक्षियों पर घात करनेवाले चक्रवाक, कटुक (कर्कशध्वनि करनेवाले विशेष पक्षी), टिटिहिरी, भट, पुत्रप्रिय, लोहपृष्ठ (सफेद चील्ह, जिसे कंकभी कहते हैं), गोचर्म, गिरिवर्तक, पारावत (कबूतर) कमल, सारिका (मैना) जीवजीवक[1], लवा, बर्तक (बटेर की एक जाति), वार्ताक (यह भी बटेरों की एक जाति है) रक्तवर्त्म, प्रभद्रक, ताम्रचूड़ (ऐसे मुर्गे जिनके शिर पर लाल चोटी रहती है) स्वर्णचूड़, (जिनके शिर पर सुवर्ण की भाँति पीले रंग की चोटी रहती है) सामान्य मुर्गे, कुक्कुट, चातक, कलविंक (चटक, इसका नाम ऊपर एक बार आ चुका है) कुंकुमचूड़ (केसर की भाँति पीले रंग की चोटी वाला पक्षी) सुन्दर भृंगराज, सीरपाद, भूलिंग (भूमि में रहनेवाला एक पक्षी), डिण्डिम (हारिल पक्षियों की एक जाति), मंजुलीतक (एक प्रकार का चील्ह जाति का पक्षी) दात्यूह (जलकौआ पक्षी), भारद्वाज (भरदूल नामक पक्षी) तथा चष नामक पक्षियों के झुण्डों को तथा इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार पक्षियों को राजा ने वहाँ देखा। इसी प्रकार अनेक प्रकार के जंगली जानवर, छोटे-छोटे मृग छौने, बड़े-बड़े मृग समूह, बाघ, सिंह, भेड़िया, अनेक प्रकार के गीदड़, रीछ, चीता, बानर, लागूंली बानर, वायु के वेग के समान दौड़ने वाले खरगोश, मार्जार, कादम्ब, बिडाल आदि जानवरों को देखा। चूहे, नेवले, साही, काव आदि जानवरों को भी देखा। और वृक्ष के समान मनोहर लम्बी आकृति वाले, मतवाले हाथी, भैंसे, गवय, बैल, चमर और सृमर जाति के मृग तथा श्वेत रंग के गधों के समूहों को देखा। वहाँ अनेक प्रकार के मेढ़े, भेड़ें, मृग, कुत्ते, काले रंग के अति काले रंग के कराल, मृगमातृक, दाढ़ोंवाले महासरभ, क्रौंच, कारक, सम्बर, कराल, कृतमाल, कालपुच्छ, तोरण, ऊँट, गैंडे, सुअर, जंगली घोड़े, खच्चर, गधे, आदि सभी जीव जन्तु परस्पर विरुद्ध स्वभाव वाले होकर भी

---

[1] जीवजीवक, एक प्रकार का पक्षी जिसके देखने से विष शान्त हो जाता है।

अविरुद्ध रहते हुए दिखाई पड़े। इस प्रकार इन वन्य पशुओं के एक दूसरे में वैररहित प्रेम भाव को देख कर राजा परम विस्मित हुआ। वह पुण्यप्रद आश्रम प्राचीनकाल में महर्षि अत्रि का था, जिसे राजा ने देखा था। उन्हीं के प्रसाद से वह इतना शोभासम्पन्न था और यही कारण था कि वे हिंसक जानवर आपस में एक दूसरे से विरोध नहीं करते थे। महर्षि अत्रि ने उस आश्रम के इन जीवों की प्रकृति में इस प्रकार का परिवर्तन कर दिया था कि जिसके प्रभाव से मांस के खानेवाले जानवर भी दूध तथा फल का आहार करते थे। राजा ने वहाँ पर्वत के चरण प्रान्त में नीचे की ओर अपना निवासस्थान बनाया। हे राजन्! वहाँ कहीं भैंसे और कहीं पर बकरियाँ अमृत के समान स्वादुयुक्त दूध बहाया करती थीं। वहाँ की सभी शिलाएँ भीतर से और बाहर से दूध और दही से परिपूर्ण थीं। समस्त पृथ्वी के अधिपति राजा पुरुरवा को यह देखकर परम प्रसन्नता हुई। वहाँ के तालाब परम मनोहर थे और नदियाँ अतीव निर्मल जल से पूर्ण बह रही थीं। नालियाँ कहीं गरम जल से और कहीं ठंढे जल से भरी हुई थीं। उस सुन्दर पर्वत की कन्दरायें तो पग-पग पर सेवन करने योग्य थीं। उस आश्रम के चारों ओर पाँच योजन के घेरे में कभी बरफ नहीं गिरता था न वहाँ पर सुन्दर पर्वत के नीचे के भाग में तराई का कोई जनपद था। अर्थात् वह जनहीन प्रान्त था। हे राजन्! उस पर्वतराज की पीले रंग की एक चोटी वहाँ पर अवस्थित है, जिस पर बादलों के समूह एकत्र होकर सर्वदा बरफ की वर्षा किया करते हैं, वहीं पर एक दूसरी पर्वत श्रेणी भी है, जिस पर जल बरसानेवाले काले बादलों के समूह उस श्रेष्ठ शिखर पर बड़ी-बड़ी चट्टानों के साथ नित्य वर्षा किया करते हैं। जहाँ पर वह मन को हर लेने वाला आश्रम अवस्थित है, वहाँ की पृथ्वी मनुष्य की सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली है, प्रमुख देवताओं के उपयोग में आने के कारण वहाँ के वृक्षों के फल भी नित्य सफलता को प्राप्त कराते हैं। सर्वदा गूँजने वाले भ्रमरो के समूहों तथा अप्सराओं द्वारा सेवित परम पवित्र वह आश्रम पाप रूपी पर्वत को नष्ट करने में वज्र की भाँति शोभित हो रहा था। हे राजन्! खेलने वाले बन्दरों ने वहाँ के बरफ के समूहों को इधर-उधर से तोड़ फोड़कर चन्द्रबिम्ब की भाँति शोभायुत कर दिया था। चारों ओर से वह आश्रम सर्वदा बरफ से घिरी हुई गुफाओं एवं पथरीले मार्गों से घिरा हुआ था, इस कारण उसमें सामान्य लोग नहीं जा सकते थे। पूर्वजन्म की तपस्या के फल से महाराज पुरूरवा ने उस पुण्य आश्रम को देवाधिदेव भगवान् की कृपा से प्राप्त किया। इस प्रकार मद्र देश के राजा पुरूरवा ने थकावट को दूर करनेवाले, मनको हर लेनेवाले, मन को मुग्ध करने वाले सैकड़ों प्रकार के पुष्पों से अलंकृत, स्वयं महर्षि अत्रि द्वारा अति सुन्दर निर्मित, परम कल्याणकारी उस पुनीत एवं सुन्दर आश्रम को देखा। ॥१-७७॥

श्री मात्स्य महापुराण में भुवनकोशप्रसंग में आश्रमवर्णन नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११८॥

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—उस आश्रम में दो हिमाच्छादित महान् पर्वत शिखर थे, उन दोनों के मध्य भाग में अवस्थित अति ऊँचा एक तीसरा पर्वत शिखर भी था, जो सर्वदा बादलों के समूहों से रहित एवं विस्तृत शिलाओं के समूहों से व्याप्त था। उसके नीचे के प्रदेश के पश्चिमी भाग में, जहाँ घने वृक्षों के समूह थे, मालती की लताओं से घिरा हुआ, देखने में अतीव सुन्दर एक विवर (छिद्र) प्रदेश था। महाराज ने देखते ही अति कुतूहल वश उसमें प्रवेश किया। अन्धकार से घिरे हुए अतिशय संकीर्ण उस छिद्र की चार सौ हाथ की दूरी समाप्त कर आगे अपने ही प्रकाश से प्रकाशित बहुत विस्तृत तथा अति गहरे एक सरोवर पर राजा पहुँचे। वहाँ पर न तो सूर्य का प्रकाश था और न चन्द्रमा ही विराजमान् थे। किन्तु तिस पर भी रात-दिन—दोनों में वहाँ दिन की भाँति प्रकाश हो रहा था। वह सरोवर एक कोस से भी अधिक भूमि भाग पर फैला हुआ था। उस के चारों ओर पर्वत से मिली हुई परम स्वच्छ और परिष्कृत एक वेदी थी, जहाँ पर सुवर्ण चांदी एवं मूंगे के समान रंग वाले वृक्ष शोभायमान थे। उन वृक्षों के पुष्प अपनी ही चमक से प्रकाशमान मणि एवं मोतियों की भाँति चमक रहे थे। उस मनोहर सरोवर में विविध प्रकार के कमल खिले हुए थे। हे पार्थिव! उनके दल पद्मराग, केशर, हीरा एवं पत्ते मरकत, नील, एवं वैदूर्य मणि के तथा उन का बीज कोष पीले रंग के सुवर्ण का था। उस तालाब के मध्य में जो भूमि भाग था वह केवल वज्र से ही व्याप्त नहीं था प्रत्युत अनेक प्रकार के रत्नों से जटित भी था। जल में उत्पन्न होने वाली शंख, कौड़ी तथा सुतुही की सीपों से वह भरा हुआ था। हे राजन्! वह बड़े भयानक मकरों तथा मत्स्यों के रहने का स्थान भी था। उसमें सहस्रों मरकत मणि तथा हीरों के टुकड़े पड़े हुए थे। पद्मराग (लाल मणि) इन्द्रनील (पन्ना) महानील (एक मणि) पुष्पराग (पुखराज) तथा कर्कोटक नामक मणियों के टुकड़े भी पड़े थे। तुत्थक तथा शेष नामक मणियों के खण्ड भी उसमें जहाँ-तहाँ पड़े थे। इसी प्रकार राजावर्त, मुख्य, रुचिराक्ष, सूर्यकान्त चन्द्रकान्त, नीलम, वर्णान्तिम, ज्योतीरस, रम्य, तथा स्यमन्त नामक मणियों के खण्ड भी शोभित हो रहे थे। राजन्! सुरमणि, सर्पमणि, वलक्षमणि, स्फटिक मणि की चट्टानें, गोमेद, पित्तक, धूलीमरकत, वैदूर्य, सौगन्धिक, मुख्य वज्र राजमणि, ब्रह्ममणि, तथा ताराओं के समान कान्तियुक्त मोतियों के समूह भी उस सरोवर में बिखरे पड़े हुए थे। उसका सुन्दर जल कुछ गर्म रहता था, जिससे स्नान करने पर शीत दूर हो जाता था। हे राजन्! उस सुन्दर सरोवर-के मध्य भाग में एक वैदूर्य मणि की चट्टान थी, जो दो सौ धनुष विस्तृत थी। महर्षि अत्रि ने अपनी तपस्या के प्रभाव से उसे निर्मित किया था, वह चारों ओर से चौकोनी तथा अति सुन्दर बनी हुई थी। हे राजेन्द्र! पूर्वकथित विलद्वार की भाँति उस मनोहर द्वीप में उस प्रदेश के सारे स्थान सुवर्णनिर्मित थे। हे राजन्! उस चट्टान पर अवस्थित अति रमणीय वह पुष्करिणी (पोखरी) थी, जो कमलों से सुशोभित एवं निर्मल सुशीतल जल से परिपूर्ण थी। हे राजन्! चारों ओर से चौकोर वह परम सुन्दर, मन को हरने वाली पुष्करिणी निर्मल आकाश के समान शोभा पा रही थी। उसका वह

सुशीतल जल सुस्वादु, पचने में हल्का एवं सुगन्धि से पूर्ण था। वह गले को जिस प्रकार कष्ट नहीं पहुँचाता था, उसी प्रकार कुक्षि प्रदेश में जाकर पिपासा को भी शान्त करता था, पूर्ण तृप्ति पहुँचाता था। उसके पान करने से शरीर को बड़ा सुख मिलता था। उस पुष्करिणी के मध्य भाग में महर्षि अत्रि ने अपनी तपस्या से एक सुन्दर महल तैयार किया था। उसके भीतर जाने के लिए सुवर्ण की सीढ़ियाँ बनी हुई थीं, और अनेक प्रकार के रत्नों से वह सुन्दर प्रासाद अति मनोहर लगता था। वह कल्याणकारी प्रासाद चाँदी का बना हुआ था और चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल और मनोहर था। निर्मल विद्रुम तथा सुन्दर वैदूर्य मणि जटित सीढ़ियाँ उसमें बनी हुई थीं। उसके बड़े-बड़े खम्मे इन्द्रनील (नीलम मणि) के बने थे। उसकी नीचे की फर्श पर मरकत मणियाँ जड़ी हुई थीं। रत्नों की किरणों के समूहों सै अतिशय चमकने वाला वह सुन्दर प्रासाद देखने में अति मनोहर लगता था। उस प्रासाद में देवाधिदेव जनार्दन भगवान् (विष्णु की मूर्ति) सभी प्रकार के आभूषणों से अलंकृत सर्पों के फणों के ऊपर शयन कर रहे थे। देवाधिदेव सुदर्शनचक्रधारी भगवान् का एक चरण घुटने से सिकुड़ा हुआ था। हे निष्पाप! शेष के फण पर शयन करनेवाले भगवान् विष्णु का दूसरा चरण सर्पराज शेषनाग के ऊपर फैला हुआ था और लक्ष्मी की गोद में शोभित था। शेषनाग के फण पर रखा हुआ देवाधिदेव भगवान् का एक हाथ केयूर (बाजू) तथा बिजायठ से सुशोभित था और हथेली का पृष्ठभाग शिरोभाग पर रखा हुआ था। दूसरा हाथ फैला हुआ था। तीसरा हाथ सिकुड़े हुए घुटने के मणिबन्ध से सुशोभित, कुछ सिकुड़ा हुआ तथा नाभि के पास फैले हुए हाथ पर अवस्थित था। चौथे हाथ को सुनो। चौथे हाथ में भगवान् सन्तान (कल्पद्रुम) का पुष्प लिए हुए थे और उसे नासिका प्रदेश के समीप तक ले गये थे। उस समय कमल के समान सुन्दर लक्ष्मी के हाथों से भगवान् के चरण दबाये जा रहे थे। इस प्रकार कल्पद्रुम की माला तथा मुकुट से विभूषित, सुन्दर मणियों के हार तथा केयूर से अलंकृत, मनोहर अंगूठी तथा बाजूबंद से सुशोभित, शेषनाग के फण पर अवस्थित रत्नों की किरणों से सुप्रकाशित, महर्षि अत्रि द्वारा प्रतिष्ठित भगवान् को, जिनकी लीला अपरम्पार है, सिद्धगण जिनकी पूजा किया करते थे, कल्पद्रुम के पुष्पों से जो विधिवत् पूजित थे, दिव्य चन्दन से जिनके शरीर में लेप किया गया था, दिव्य धूप द्वारा जिनकी धूप (सुगन्धि) पूजा हुई थी, सर्वदा रसीले, सुन्दर एवं मनोहर फलों का सिद्धगण जिन्हें उपहार भेंट करते थे, जिनके शिरोभाग पर कमल के पुष्प सुशोभित थे, जिनका पार्श्व प्रदेश अति उत्तम था—ऐसे भगवान् विष्णु को सामने देखकर राजा ने प्रणाम किया और शास्त्रीय विधि के अनुकूल शिर और घुटने को पृथ्वी पर टेककर एक सहस्र नामों का कीर्तन कर उन मधुसूदन भगवान् की स्तुति की। फिर उठकर बारम्बार प्रदक्षिणा की और तदनंतर उस आश्रम को अतीव मनोहर देख वहीं पर निवास करने का विचार किया। उस विवर प्रदेश के बाहर एक मनोहर गुफा का सहारा लेकर वे मधुसूदन की पूजा करते हुए तपस्या करने लगे। इस प्रकार राजा नित्य तीन बार स्नान कर अग्नि की पूजा में लीन रह, अनेक प्रकार के सुमनोहर, पुष्प, मूल, फल तथा गोरस आदि पूजा की सामग्रियों से भगवान् मधुसूदन की पूजा करते थे। इस प्रकार नरपति सभी प्रकार के आहारों का परित्याग कर

भगवान् की उस बावली का जल पीकर अपने प्राणों की रक्षा करते थे। विना कुछ बिछाए ही गुफा की भूमि पर शयन करते हुए आहार क्रिया को छोड़कर केवल जल द्वारा अपना समय काटते थे। इस प्रकार इतने कष्टों पर भी उन्हें कभी थकावट नहीं लगती थी प्रत्युत उनका शरीर अद्भुत तेजोमय होता गया। इस प्रकार उस राजा पुरूरवा ने सर्वदा देवाधिदेव भगवान् विष्णु की पूजा में तत्पर रह, दुःखों को कुछ भी न समझते हुए स्वर्ग के समान परम मनोहर उस आश्रम में कुछ काल तक निवास किया। ॥१—४५॥

श्री मात्स्य महापुराण के भुवनकोश प्रसंग में आयतन वर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥११९॥

एक सौ बीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—इस प्रकार आहार रथ अश्व आदि सुखसाधनों से एकदम वंचित राजा पुरूरवा उस परम रमणीय वन प्रदेश में गन्धर्वों के साथ अप्सराओं की कामक्रीड़ा देखता था। प्रतिदिन वह राजा प्रचुर परिमाण में पुष्पों को तोड़-तोड़ उनकी मालाएँ बना भगवान् के आगे निवेदित कर पश्चात् गन्धर्वों को दिया करता था। पुष्पों के तोड़ने में तल्लीन, सुखपूर्वक क्रीडा करती हुई उन अप्सराओं की अनेक प्रकार की काम चेष्टाओं को राजा ने देखकर भी नहीं देखा (उदासीनता से देखा)। पुष्प तोड़ते समय लताओं के गुल्मों में चारों ओर से घिरी हुई, सखियों द्वारा छोड़ दी गई, किसी अप्सरा को उसके कान्त ने आकर उस लता-जाल के बन्धनों से छुड़ाया। कमल के समान सुगन्धि से पूर्ण शरीरवाली किसी अप्सरा के श्वासोच्छ्वास से गंधलोभी मधुपों ने आकर उसके मुँह को छेंक लिया था, जिसे उसके कान्त ने आकर छुड़ाया। कोई सुन्दरी आँख में मकरन्द पड़ जाने से अपने प्रियतम के श्वास की वायु से रजरहित नेत्रोंवाली बनायी गई अर्थात् प्रियतम ने फूँककर आँखों से धूल निकाली। पुष्पों को तोड़कर किसी सुन्दरी ने अपने प्रियतम को सौंप दिया था, और अब प्रियतम के द्वारा गुथे गये पुष्पों की माला पहनकर वह स्वयं सुशोभित हो रही थी। काम को बढ़ानेवाली कोई सुन्दरी इसलिए अपने को कृतकृत्य मान रही थी कि वह अपने प्रियतम के हाथों से तोड़े हुए पुष्पों की उन्हीं के हाथों से बनाई हुई माला को पहने हुई थी। 'इस घने लताकुंज में एक लता बहुत ही फूली हुई है' अर्थात् इस लता-कुंज में आकर पुष्प चयन करो—इस प्रकार कहते हुए रति के इच्छुक पति द्वारा कोई सुन्दरी एकांत में लाई (पहुँचाई) गई थी। पति द्वारा नवाकर नीचे की गई लता की डाली से पुष्पों को तोड़नेवाली कोई सुन्दरी अपने को सभी सखियों से सभी गुणों में अधिक समझ रही थी। कमलिनी के पुष्पों द्वारा, गन्धर्वों के साथ क्रीडा करनेवाली देवांगनाओं में से कुछ सुन्दरी राजा पुरूरवा को देख रही थीं। सुन्दर मुसकराने वाली कोई अप्सरा जल से अपने प्रियतम को मार रही थी, और कोई पति से जल द्वारा मारी जाने के कारण अति प्रसन्न हो रही थी। प्रियतम के जल ताड़न से खिन्न होकर कोई सुन्दरी पति के ऊपर जल

फेंक रही थी और इस परिश्रम के कारण श्वास क्रिया की शीघ्रता से उसके स्तन नाच रहे थे। प्रियतम के जलताडन तथा केशों के खींचने से कोई सुन्दरी बन्धन के छूट जाने के कारण मुख पर छिटकी हुई केशराशि से इस प्रकार शोभित हो रही थी मानो मधुपों ने कमल को छेक लिया हो। अपने नेत्रों के समान कमलिनी के समूहों में छिप जाने के कारण कोई सुन्दरी पति के अति प्रसन्नतापूर्वक खोजने के उपरान्त बहुत देर बाद मिली। 'बहुत स्नान कर चुकी', इस प्रकार कहती हुई कोई सुन्दरी शीत लग जाने का बहाना बनाती हुई, प्रियतम का मनचाहा आलिंगन बहुत देर तक करती रही। सुन्दर हँसनेवाली कोई सुन्दरी जल से भीगे हुए सूक्ष्म वस्त्र को, जो बिल्कुल अंगों में चिपक गया था, धारण कर अपने प्रियतम को काम के वश में कर रही थी। कोई सुन्दरी जल में कण्ठ की माला के सूत्र को पकड़कर पति द्वारा खींची जा रही थी, और उस माला के सूत्र के टूट जाने पर जब पति गिर पड़ा तो वह बहुत देर तक हँसती रही। कोई सुन्दरी सखी द्वारा घुटने के पास नखक्षत कर देने पर कुछ झुक गई थी और कोई भयभीत-सी हो बहुत देर तक अपने प्रियतम की गोद में खड़ी रहने के बाद अन्यत्र चली गयी थी। कोई अप्सरा सूर्य की ओर पीठ कर अपने केशों से जल निचोड़ रही थी और चट्टान पर बैठे अपने प्रियतम से कामातुर दृष्टि द्वारा देखी जा रही थी। इस प्रकार टूटी हुई मालाओं से व्याप्त, नहाकर ढबैल किया हुआ, स्तनों में लगे हुए कुकुम के रंग से रँगा हुआ उस तालाब का जल उपभुक्त नायिका की भाँति शोभित हो रहा था। तदुपरान्त विधिवत् स्नान कर गन्धर्वों और अप्सराओं के समूहों से पूजा किए जाते हुए देवाधिदेव भगवान् जनार्दन को राजा ने देखा। इसी प्रकार दूसरे किसी स्थान पर लता गृहों में बैठकर प्रियतम में चित्त लगाकर अपने अंगों को आभूषणादि से सजाती हुई सुन्दरियों को राजा ने देखा। कोई सुन्दरी हाथ में दर्पण लेकर स्वरूप देख रही थी, इसी अवसर पर दूती के मुख से प्रियतम के बुलाने का सन्देश सुनकर वह व्यग्र होगई और अधिक शोभित होने लगी। कोई दूती के संदेश से उतावलेपन में आकर कामातुर हो आभूषणों को विपरीत स्थानों में सजाकर भी न जान सकी कि मैंने आभूषणों को उल्टा पहन लिया है। वायु द्वारा गिराये गये अत्यन्त सुगन्धित पुष्पों से अलंकृत हरे भरे वन्य प्रान्त में मद्यपान करती हुई किसी सुन्दरी को राजा ने देखा। कोई सुन्दरी अपने हाथों से प्रियतम को आसव पान करा रही थी और कोई वरांगना प्रियतम के हाथों से समर्पित आसव का पान कर रही थी। कोई सुन्दरी अपने चंचल नेत्रों के समान सुन्दर दो कमलों के समेत जल को स्वयं पी गई और फिर अपने प्रियतम से पूछने लगी कि 'अरे! वे मेरे दोनों कमल कहाँ चले गये?' 'तुम्हें विदित नहीं, उन्हें तो तुम पी गई' इस प्रकार की बात प्रियतम ने उससे कही। वैसा जानकर (मैं कमलों को भी पी गई) मुग्धा होने के कारण वह सुन्दरी बहुत ही लजा गई। सुन्दर भौंहोंवाली कोई सुन्दरी प्रियतम के पीने से बचे हुए, कामोत्तेजक उस विशेष रस (आसव) को पति के हाथों से अर्पित करने पर स्वयं पी रही थी। ॥१-३०॥

तत्पश्चात् उन अप्सराओं की मधुशाला में राजा पुरूरवा ने सितार की सुमधुर ध्वनि से विमिश्रित अनेक प्रकार के गीतों को सुना। हे राजन्! वे अप्सराएँ सर्वदा सायंकाल के समय अनेक प्रकार की वाद्य

सामग्रियों समेत देवाधिदेव भगवान् जनार्दन के सम्मुख नृत्य किया करती थीं। एक पहर रात बीत जाने पर गुफा के द्वार से निकल वे अपने प्रियतमों के साथ उस सुन्दर बनायी हुई गुफा में, जो अनेक प्रकार की लताओं से युक्त, अनेक प्रकार की सुगंधियों से सुगंधित, पुष्पों की राशियों से सुशोभित एवं अनेक प्रकार की विचित्र शय्याओं से अलंकृत थी, निवास करती थीं। हे महाराज! इस प्रकार उस पर्वत प्रदेश पर अप्सराओं की केलि देखते हुए (राजा पुरूरवा) भगवान् केशव में चित्त लगाकर तपस्या करते रहे। एक बार राजा के पास जाकर गन्धर्व और अप्सरा के समूहों ने कहा—'शत्रुओं को वश में करनेवाले राजन्! आप स्वर्ग के समान इस अनुपम, हम लोगों के इस सुन्दर प्रदेश में आगये हैं, अब हम लोग आपके मनोवांछित वरदानों को देंगे, यदि आप चाहें तो उन्हें स्वीकार कर अपने घर चले जायँ अथवा यहीं बने रहें, जैसी इच्छा हो। ॥३४-३७॥

राजा ने कहा—'अमित तेजस्वी आप लोगों का दर्शन कभी निष्फल नहीं होता। अतः भगवान् मधुसूदन जिस प्रकार हमारे ऊपर प्रसन्न हों, वैसा वरदान हमें आज ही देने की कृपा करें।' राजा की बातें सुनकर उन लोगों ने कहा कि 'ऐसा ही होगा।' तदुपरान्त राजा पुरूरवा ने वहाँ पर भगवान् विष्णु की पूजा करते हुए एक मास तक निवास किया। और अपने व्यवहारों के कारण वह सर्वदा गन्धर्व एवं अप्सराओं का प्रेमपात्र बना रहा। राजा के धैर्ययुक्त इस तपःकर्म से वे लोग सर्वदा सन्तुष्ट रहे। महीने के बीच में ही राजा ने सहस्रों रत्नों से सुशोभित उस विचित्र आश्रम में प्रवेश किया। और एक महीने तक केवल जल का आहार करते हुए वहाँ तब तक निवास करता रहा जब तक फाल्गुन मास की शुक्ल पक्ष की अन्तिम तिथि नहीं हो गयी। तदनुसार फाल्गुन महीने के शुक्ल पक्ष की अन्तिम तिथि को राजा पुरूरवा ने स्वप्न में देवाधिदेव उन्हीं भगवान् विष्णु के कल्याणमय इन वाक्यों को सुना। 'हे राजन्! आज की रात बीत जाने पर तुम महर्षि अत्रि से मिलोगे, और उनका साक्षात्कार कर अपना मनोरथ पूर्ण करोगे।' स्वप्न देखने के उपरान्त देवराज इन्द्र के समान पराक्रमी राजर्षि पुरूरवा ने प्रातःकाल उठकर इन्द्रियों को वश में रख विधिपूर्वक स्नान किया, और इच्छानुकूल भगवान् जनार्दन की पूजा की। तत्पश्चात् उसे तपोनिधि महर्षि अत्रि का साक्षात् दर्शन मिला, जिससे वह कृतकृत्य हो गया। इस प्रकार साक्षात् होने पर धर्मपरायण राजा ने महर्षि से स्वप्न में देवाधिदेव भगवान् विष्णु से होनेवाली बातों की चर्चा की। राजा द्वारा महर्षि अत्रि ने देववाक्य सुनने के उपरान्त कहा—'पृथ्वीरक्षक! इस विषय में तुम्हें अपने मन में किसी अन्य विचार को स्थान देने की आवश्यकता नहीं, अर्थात् सब कुछ सत्य होगा। इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् जनार्दन की प्रसन्नता प्राप्त कर राजा पुरूरवा ने देवपूजा की और हवन किया और इस प्रकार उसने अपने सभी मनोरथों को भगवान् केशव के वरदान से प्राप्त किया। ॥३८-४८॥

श्री मत्स्य महापुराण में भुवनकोश प्रसंग में ऐलाश्रम वर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२०॥

एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—उसी आश्रम से उत्तर दिशा की ओर हिमालय के मध्य पृष्ठ भाग पर अवस्थित, अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त, कल्पद्रुम की पंक्तियों से सुशोभित पर्वत शिखरों से संयुक्त, भगवान् शंकर द्वारा सुसेवित कैलास नामक पर्वत है। उस कैलास नामक पर्वत पर श्रीमान् कुबेर गुह्यकों[1] के साथ निवास करते हैं। अलकापुरी के अधिपति राजा कुबेर अप्सराओं के साथ वहाँ आनन्द करते हैं। वहीं कैलास के चरण प्रान्त से उत्पन्न शीतल एवं कल्याण मय जल से परिपूर्ण मन्दोदक नामक एक तालाब है, जिसका जल दही के समान शुभ्र है। उसी सरोवर से दिव्य तेजोमयी कल्याणकारिणी मन्दाकिनी नामक नदी निकली हुई है। उस नदी के किनारे नन्दन नामक एक दिव्य महावन है। उस कैलास पर्वत की पूर्व और उत्तर दिशा की ओर सब प्रकार की धातुओं से विमंडित, अनेक प्रकार की सुगन्धियों से सुगन्धित, दिव्य सुवेल नामक पर्वत तक फैला हुआ, रत्न की तरह चमकनेवाला, चन्द्रप्रभ नामक गिरि है। उसके समीप ही अच्छोद नामक एक दिव्य सरोवर है। उस सरोवर से कल्याणदायिनी अच्छोदा नामक एक नदी निकली हुई है। उस अच्छोदा नदी के किनारे पर दिव्य चैत्ररथ नामक महावन है। उसी के समीपस्थ पर्वत पर अपने अनुचरों के साथ मणिभद्र नामक क्रूरकर्मा यक्ष सेनापति चारो ओर से गुह्यकों द्वारा रक्षित होकर निवास करता है। वह पुण्यसलिला मन्दाकिनी तथा कल्याणदायिनी अच्छोदा नामक नदियाँ पृथ्वी मण्डल के मध्यभाग से बहती हुई महासमुद्र में प्रविष्ट होती है। कैलास पर्वत की दक्षिण और पूर्व दिशा की ओर कल्याणकारी सभी प्रकार की औषधियों से पूर्ण, मैनशिल नामक धातु से युक्त, सुवेल नामक गिरि तक फैला हुआ, सुवर्ण शिखरों से विमंडित, सूर्य के समान चमकनेवाला हेमशृंग अथवा लोहित नामक एक महान् पर्वत है। उसके पाद प्रदेश के समीप लोहित नामक महान् सरोवर अवस्थित है, उसीसे लौहित्य[2] नामक महानद निकला हुआ है। उस महानद के किनारे पर विशोक नामक देवताओं का एक जंगल है। उसी पर्वत पर मणिधर नामक जितेन्द्रिय यक्ष परम धार्मिक एवं सौम्य गुह्यकों से रक्षित होकर निवास करता है। कैलास पर्वत की पश्चिम और उत्तर दिशा की ओर ककुद्मान नामक औषधियों से युक्त पर्वत है। उस ककुद्मान पर्वत पर भगवान रुद्र के ककुद्मी (वृष नन्दिकेश्वर) की उत्पत्ति हुई है। त्रिककुत पर्वत के सम्मुख त्रैककुद नामक कज्जल के समान काला शैल विराजमान है। वहीं पर सब प्रकार की धातुओं से युक्त, विस्तृत एवं विशाल वैद्युत नामक पर्वत भी है। उसके चरण प्रान्त में सिद्धों से सेवित एक मानस नामक दिव्य एवं महान् सरोवर है, उसी सरोवर से लोक को पावन करनेवाली पुण्यसलिला सरयू नदी निकलती है, जिसके किनारे पर विख्यात वैभाज्र नामक दिव्य वन। है और वहीं पर प्रहेति का पुत्र, कुबेर का सेवक ब्रह्मधाता नामक अनन्त पौरुषशाली राक्षस निवास करता है। कैलास पर्वत की पश्चिम

---

[1] एक देवयोनि। जो कुबेर के कोष की रखवाली किया करते है। [2] ब्रह्मपुत्र।

दिशा में सारी औषधियों से पूर्ण दिव्य वरुण नामक पर्वतराज है, जो सुवर्ण से सुशोभित है। वह शोभाशाली पर्वत भगवान शंकर का अतिप्रिय, सुवर्ण के समान चमकने वाला और अनेक सुवर्णमय दिव्य शिलाओं के समूहों से समृद्ध है। अपने सैकड़ों सुवर्ण के समान चमकनेवाले शिखरों से वह आकाश को छूता हुआ-सा है। शृंगवान नामक महान् दिव्य पर्वत दुर्गम तथा सुसमृद्ध है। उसी पर्वत पर धूम्रलोहित[1] भगवान् शंकर निवास करते हैं। उसी पर्वत के चरणप्रान्त में शैलोद नामक एक सरोवर है और उसी से पुण्यसलिला शैलोदका नामक नदी निकलती है। जिसका अन्य नाम चक्षुसी भी है। वह नदी उन दोनों पर्वतों के मध्यभाग में बहती हुई पश्चिमके समुद्र में जाकर गिरती है। कैलास पर्वत की उत्तर दिशा की ओर अति शुभकारी सर्वौषध नामक गिरि है, जो हरिताल से युक्त गौर पर्वत तक फैला हुआ है। यह दिव्य औषधियों से पूर्ण महान पर्वत सुवर्ण की चोटियों से युक्त है। उस पर्वत के चरणप्रान्त में महान् दिव्य मनोहर एवं सुवर्ण के समान बालू से युक्त बिन्दुसर नामक महान् सरोवर है, जहाँ पर "गंगा के परम पुनीत जल से सिक्त हड्डीवाले होकर मेरे पूर्वज स्वर्ग को चले जायँ", ऐसी भावना से भावित होकर गंगा जी के लिये राजा भगीरथ ने अनेक वर्षों तक निवास किया था। उसी स्थान पर त्रिपथगामिनी गंगा जी सर्वप्रथम प्रतिष्ठित हुई थीं। तदुपरान्त सोम के पाद से निकलकर वे सात भागों में विभक्त हुई थीं। उसी बिन्दुसरोवर के तट पर मणियों से सुशोभित यज्ञ के स्तम्भ, तथा सुवर्णजटित सुन्दर विमान सुशोभित हैं। वहीं पर देवताओं के साथ यज्ञ कर देवराज इन्द्र ने सिद्धि प्राप्त की थी। वहाँ पर दिव्य छायापथ एवं नक्षत्रों के मंडल विद्यमान हैं। वहीं से दिव्य तेजोमयी त्रिपथगामिनी गंगा रात्रि के समय विशेष कान्तियुत हो आकाश और स्वर्ग लोक को पवित्र करते हुए पृथ्वी लोक में आई हैं। शंकर के मस्तक पर गिरकर, उनकी योग शक्ति द्वारा अवरुद्ध, क्रोध से भरी गंगा के जल के जो बूंद उस समय पृथ्वी पर गिरे थे, उनसे एक बहुसर नामक तालाब बन गया था। उसी तालाब का नाम बाद में चलकर बिन्दुसर हो गया। उस अवसर पर शंकर से अवरोधित, क्रोध में भरी गंगा ने यह निश्चय किया था कि 'अपने प्रवाह के वेग से मैं शंकर को साथ ले पृथ्वी को फाड़कर पाताल को चली जाऊँगी' पर शंकर उनकी इस क्रूर चेष्टा तथा अभिप्राय को समझ गये और उनके इस अभिमान को जानकर अतिक्रुद्ध हुए और अपने अंगों में ही उन्हें छिपा लेने की बात वे भी सोचने लगे। पर ठीक इसी समय केवल नसों के जालों से युक्त, क्षुधा से व्याकुल, क्षीणकाय राजा (भागीरथ) को आगे देख उन्होंने यह सोचा कि इसने तो मुझे पहले ही से गंगा के अवतरण में सहायता देने के लिए सन्तुष्ट किया था, इसी कार्य के लिए मैं इसे वरदान भी दे चुका हूँ, अतः क्रोध को अपने वश में किया। विशेषतया ब्रह्मा द्वारा कही गई बातों का विशेष ध्यान रखा, और अपने तेज से रोकी हुई गंगा को भगीरथ की उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर पृथ्वी के उपकारार्थ अपने शिरसे बाहर कर दिया। तदुपरान्त गंगा से सात प्रवाह प्रस्फुटित हुए। जिनमें से तीन पूर्व और तीन पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित हुए। इस प्रकार त्रिपथगा

१—जो धुएँ के समान काले और लाल रंग के हों। भगवान शंकर का गला विषपान करने से कृष्ण और केश लाल रंग का है, अतः वे नीललोहित धूम्रलोहित आदि नामों से प्रसिद्ध हैं।

गंगा के सात प्रवाह हुए। उसकी नलिनी, ह्लादिनी और पावनी नामक धाराएँ पूर्व दिशा की ओर तथा सीता, चक्षु और सिन्धु नामक धाराएँ पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित हुईं। उन धाराओं में सातवीं धारा राजा भगीरथ के दाहिनी ओर पीछे-पीछे चली, इसीलिए उसका नाम भागीरथी हुआ। वह भागीरथी दक्षिण के समुद्र में मिली। ये सातों धारायें हिमवर्ष को सींचती हैं। और यही सातों कल्याणदायिनी नदियाँ विन्दु-सरोवर से निकली हुई हैं। ये प्रायः उन म्लेच्छों के देशों को सींचती हैं, जो पहाड़ियों से युक्त कुकुर, रौध्र, बर्बर, यवन, खस, पुलिक, कुलत्थ, तथा अंगलोक्य प्रभृति प्रदेश कहे जाते हैं। यह हिमवान् पर्वत को दो भागों में विभक्तकर दक्षिण के समुद्र में मिलती है। चक्षु नामक नदी वीर मरु, कालिक, शूलिक, तुषार, बर्बर, पह्लव, पारद, तथा शक प्रभृति देशों को सींचकर समुद्र में मिलती है। सिन्धु नामक धारा दरद, उर्जगुड, गान्धार, औरस, कुहु, शिवपौर, इन्द्रमरु, वसति, समतेज, सैन्धव, उर्वस, बर्ब, कुपथ, भीमरोमक, शुनामुख और उर्दमरु आदि देशों में प्रवाहित होती है। गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, उरग, कलाप ग्रामवासी किम्पुरुष, किरात, पुलिन्द, कुरु, भारत, पांचाल, कौशिक, मत्स्य, मागध, अंग, ब्रह्मोत्तर, बंग, ताम्रलिप्त नामक आर्यों के देशों को कल्याणकारिणी गंगा पवित्र करती है। आगे विन्ध्यगिरि से अवरुद्ध होकर वह दक्षिण समुद्र में प्रविष्ट होती है। उसी विन्दुसरोवर से पुण्यसलिला ह्लादिनी नामक धारा पूर्वाभिमुख होकर निकलती है और वह सम्पूर्ण उपक निषाद नामक देशों को सींचती है। इसी प्रकार धीवर, ऋषिक, नीलमुख, केकर, अनेककर्ण, किरात, कालंजर, विकर्ण, कुशिक, स्वर्गभौमक आदि देशों में बहती हुई समुद्र में किनारे पर मिल जाती है। वहीं से नलिनी नामक धारा भी पूर्व दिशा की ओर जाती है। वह धारा कुपथ, इन्द्रद्युम्न सरोवर, खरपथ, तथा नेत्रशंकु पथ नामक देशों में बहती हुई उज्जानक तथा मरु देश के मध्यभाग से कुथप्रावरण नामक देश में जाती है और इन्द्र द्वीप के समीप जाकर क्षार समुद्र में प्रविष्ट होती है। वहीं से पारवती नामक धारा वेगपूर्वक पूर्व दिशा की ओर जाती है, वह तोमर, हंसमार्ग तथा समूहक आदि जनपदों को सींचती हुई पूर्व के देशों में बहती हुई अनेक स्थलों पर पर्वतों को फोड़कर कर्णप्रावरण नामक देशों में और फिर अश्वमुख नामक देश में पहुँचती है। इसकी धारा मेरु पर्वत को सींचते हुए विद्याधरों के देशों में जाती है और वहाँ से शैमिमण्डल नामक बहुत बड़े सरोवर में प्रविष्ट हो जाती है। इन उपर्युक्त धाराओं की सहायक अनेक सैकड़ों क्या हजारों छोटी-छोटी नदियाँ तथा धारायें हैं, जो इनमें आकर मिलती हैं। उन्हीं के जलसे इन्द्र वर्षा करता है। वंशौकसारा नामक नदी के सुन्दर तट पर सुरभि नामक वह वन प्रदेश है, जिसमें जितेन्द्रिय हिरण्यश्रृंग नामक कुबेर का अनुचर, जो महान तेजस्वी, सुविख्यात पराक्रमी तथा यज्ञ से विमुख है, निवास करता है एवं वहीं पर अगस्त्य गोत्रोत्पन्न ब्रह्मराक्षस[1] विद्वानों का भी निवास स्थान है। उनकी संख्या चार है। वे कुबेर के अनुचर उन्हीं के आश्रय में रहनेवाले हैं। पर्वत पर निवास करने वालों की सिद्धियाँ इस प्रकार जाननी चाहिये। धर्म, अर्थ एवं

---

[1]विद्वान होते हुए भी जो ब्राह्मण बुरे कर्मों में लीन रहते हैं, वे ब्रह्मराक्षस कहे गये हैं।

काम के अनुसार इन स्थानों पर द्विगुणित सिद्धि प्राप्त होती है। वहाँ हेमकूट नामक गिरि के पृष्ठ भाग पर सर्पों का एक सरोवर है, जिससे सरस्वती तथा ज्योतिष्मती नामक दो नदियाँ निकलती हैं, जो क्रमशः पूर्व और पश्चिम के समुद्रों में जाकर मिलती हैं। निषध नामक उत्तम पर्वत के पृष्ठ भाग पर विष्णुपद नामक एक सरोवर है, जो उसी पर्वत के अग्रभाग से उत्पन्न हुआ है। ये दोनों सरोवर (नाग और विष्णुपद) गन्धर्वों के लिए अति अनुकूल हैं। सुमेरु पर्वत की पार्श्वभूमि में चन्द्रप्रभ नामक महान् सरोवर एवं जम्बू नामक पुष्पदायिनी नदी निकलती है, जिसमें निकलने वाले जाम्बूनद (सुवर्ण) का नाम सुप्रसिद्ध है। पयोद तथा पुण्डरीकवान नामक दो अन्य सरोवर क्रमशः नीले और श्वेत रंग के हैं। दोनों सरोवरों से दो अन्य सरोवर निकले हुए हैं। उनमें एक सरोवर से उत्तरमानस नामक एक सरोवर स्मरण किया जाता है, जिससे मृग्या तथा मृगकान्ता नामक दो नदियाँ उत्पन्न होती हैं। कुरु प्रदेश में कमल तथा मछलियों से व्याप्त वैजय नामक बारह सरोवर विख्यात हैं। वे बारहों सरोवर समुद्र के समान गहरे जल से युक्त हैं। इन सरोवरों से शान्ती तथा मध्वी नामक दो नदियाँ निकलती हैं। किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष कहे गये हैं उनमें इन्द्र वृष्टि नहीं करता। वहाँ की श्रेष्ठ नदियों में ही उद्भिद (अन्न आदि) तथा जल प्रवाहित होते रहते हैं। बलाहक, ऋषभ, चक्र तथा मैनाक नामक चार पर्वत हैं, जो प्रत्येक दिशाओं से क्षार समुद्र तक विस्तृत हैं। चन्द्रकान्त, द्रोण तथा सुमहान् नामक पर्वत उत्तर दिशा में उत्तर के समुद्र तक फैले हुए हैं। पश्चिम दिशा में चक्र, वधिरक तथा नारद नामक पर्वत हैं, जो पश्चिम दिशा में फैले हुए समुद्र तक विस्तृत हैं। जीमूत, द्रावण, मैनाक तथा चन्द्र नामक महापर्वत दक्षिण दिशा में दक्षिण के समुद्र तक फैले हुए हैं। दक्षिणापथ के समुद्र में चक्र और मैनाक नामक पर्वतों के मध्य भाग में संवर्तक नामक अग्नि का निवास है, जो जलों का पान करता है। समुद्र में निवास करनेवाला, उर्व ऋषि की सन्तान तथा अश्वा के मुख के समान मुखवाला वह अग्नि समुद्र के जल का पान करता है। प्राचीन काल में इन्द्र द्वारा सभी पर्वतों के पक्षों के काटे जाने के भय से उक्त चारों पर्वत क्षार समुद्र में भागकर छिप गये थे। उन पर्वतों के छिपे स्वरूप कृष्ण पक्ष तथा शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के होने पर दिखाई देते हैं। भारतवर्ष के जो भेदोपभेद बतलाये जाते हैं वे सभी कहे जा चुके। वर्ष संबन्धी अन्योन्य बातें अन्यत्र कही जा चुकी हैं। इन वर्षों में एक वर्ष दूसरे वर्ष की अपेक्षा गुणों में उत्तरोत्तर अधिक होता है। आरोग्य, आयुःप्रमाण, धर्म, अर्थ एवं काम—इन सबों के अनुसार प्राणी उन-उन वर्षों में विभाग क्रम से व्यवस्थित रहते हुए निवास करते हैं। उन वर्षों में अनेक प्रकार की जातियाँ समवेत रूप में निवास करती हैं। इस प्रकार यह विश्व समस्त वस्तुओं को धारण किये हुए पृथ्वी अथवा जगत् के नाम से अवस्थित है। ॥१-८२॥

श्रीमात्स्य महापुराण में भुवनकोश प्रसंग में जम्बूद्वीप वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२१॥

एक सौ बाईसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! अब मैं शाक नामक द्वीप की स्थिति का वर्णन कर रहा हूँ, तुम लोग सुनो । यह द्वीप जम्बू द्वीप के विस्तार से द्विगुणित तथा चारों दिशाओं के संयुक्त परिमाण से त्रिगुणित है । इसी शाक द्वीप से क्षार समुद्र (लवण सागर) चारों ओर से घिरा हुआ है । इस शाकद्वीप में अनेक पुण्यप्रद जनपद हैं तथा यहाँ के मनुष्य चिरकाल बाद मृत्यु प्राप्त करते हैं । क्षमाशील एवं तेजस्वी वहाँ के निवासियों में दुर्भिक्ष एवं दारिद्र्य क्यों कर हो सकता है ? इस द्वीप में भी विविध मणियों से अलंकृत श्वेत रंग के सात पर्वत हैं । शाक आदि तीन द्वीपों में सात-सात पर्वत, जो सीधे तथा लम्बाई में दूर तक चले गये हैं, प्रत्येक दिशाओं में फैले हुए हैं, और वर्षपवर्तों के नाम से प्रसिद्ध हैं । वे सब के सब रत्नाकरोंद्रि नामक शिखरों वाले, वृक्षादि से सुसम्पन्न पर्वत प्रत्येक दिशाओं में द्वीप की लम्बाई के साथ एक ओर क्षीर समुद्र तक तथा दूसरी ओर क्षार समुद्र तक फैले हुए हैं । प्रथमतः शाक द्वीप के उन सात दिव्य महा पवर्तों का मैं वर्णन करता हूँ । उनमें प्रथम पर्वत, जो देवताओं ऋषियों तथा गन्धर्वों से युक्त है, मेरु कहा जाता है । पूर्व दिशा में फैला हुआ सुवर्णमय वह पर्वत उदय के नाम से भी प्रसिद्ध है, उस पर मेघों के समूह वृष्टि करने के लिए आते हैं और बरस कर चले जाते हैं । उसी पर्वत की बगल में जलधार नामक महागिरि है, सब प्रकार की वनौषधियों से युक्त वह पर्वत चन्द्र नाम से भी विख्यात है । उसी पर्वत पर से इन्द्र नित्य श्रेष्ठ जल को ग्रहण करता है । वहीं पर नारद नामक सुसम्पन्न पर्वतराज है, जिसका दूसरा नाम दुर्ग शैल है । प्राचीन काल में वहीं पर दोनों नारद तथा पर्वत नामक अचल उत्पन्न हुये थे । उसकी बगल में अति विशाल श्याम नामक महागिरि है । ऐसी प्रसिद्ध है कि प्राचीन काल में वहीं पर प्रजाएँ श्यामलता को प्राप्त हुई थीं । काले विशाल पर्वत के समान यह वही पर्वतांश दुन्दभि (नगारा) है, जिसके शब्द को सुन कर देवताओं के शत्रुओं की मृत्यु हो जाती थी । प्राचीन काल में देवताओं ने इसी पर्वत पर ऐसी दुन्दुभि स्थापित करके बजाया था । इसके अन्तरप्रदेश में रत्नों की मालाएँ (समूह) तथा शाल्मलि के वृक्ष हैं । उस पर्वत की पार्श्वभूमि पर अवस्थित चाँदी से युक्त अति महान् अस्त नामक पर्वत है, उसका सोमक नाम भी कहा जाता है । प्राचीन काल में गरुड ने अपनी माता के लिये इसी पर्वत पर देवताओं से संचित किये गये अमृत को छीना था । उसकी बगल में अम्बिकेश नामक पर्वत है, जो सुमना नाम से भी स्मरण किया जाता है । बराह ने उसी पर्वत पर हिरण्याक्ष का संहार किया था । उस अम्बिकेश पर्वत की बगल में सब प्रकार की औषधियों से समृद्ध, स्फटिक की शिलाओं से युक्त, परम रमणीय विभ्राज नामक महागिरि है । इससे अग्नि की वृद्धि होती है, इसी कारणसे इसका नाम विभ्राज (खूब चमकनेवाला) भी पड़ा । वही पर्वत इस लोक में दूसरे केशव नाम से भी विख्यात है । यह वायु वहीं से बहती है । विप्रवृन्द ! उन पर्वतों के वर्षों के नाम बतला रहा हूँ, क्रमपूर्वक सुनिये । जिस प्रकार पर्वत दो नामों वाले हैं, उसी प्रकार वहाँ के वर्षों के भी दो-दो नाम हैं । उदय नामक गिरि का वर्ष उदय तथा जलधार—इन

दो नामों से विख्यात है, वही पहला वर्ष गतभय नामसे भी प्रसिद्ध है। दूसरे पर्वत जलधार का वर्ष सुकुमार नाम से स्मरण किया जाता है, वही शैशिर नामसे भी विख्यात है। तीसरे पर्वत नारद का वर्ष कौमार है, जो सुखोदय नाम से भी विख्यात है। चौथे श्याम पर्वत का देश अनीचक नाम से स्मरण किया जाता है, मुनिगण उस कल्याणमय वर्ष का दूसरा नाम आनन्दक भी बतलाते हैं। पाँचवे पर्वत सोमक का वर्ष कुसुमोत्कर नाम से जानना चाहिये, उसी सोमक वर्ष का दूसरा नाम असित भी बतलाया जाता है। छठें पर्वत अम्बिकेश का वर्ष मैनाक और क्षेमक नाम से स्मरण किया जाता है। सातवें केसर पर्वत का वर्ष महाद्रुम नामक है उसी को विभ्राज पर्वत का ध्रुव नामक वर्ष भी कहते हैं। इस शाक द्वीप का विस्तार, लम्बाई, चौड़ाई सभी कुछ जम्बूद्वीप के मान से (ऊपर) बतला चुके हैं। इस द्वीप के मध्यभाग में एक शाक नामक महान् वनस्पति है। उस द्वीप में निवास करने वाली प्रजाएँ शास्त्र की परम अनुगामिनी हैं। इन वर्षों में देव, गन्धर्व, सिद्ध एवं चारण आदि देवयोनियों में उत्पन्न होने वाली प्रजाएँ विहार करती हैं तथा पर्वतों के दर्शनीय रमणीक स्थानों को देखते हुए क्रीडा करती हैं। उस शाक द्वीप में ब्राह्मण आदि चारों जातियों से आकीर्ण परम सुन्दर तथा पुण्यप्रद नगर हैं। प्रत्येक वर्षों में समुद्र में गिरने वाली सात नदियाँ हैं, वे सब दो-दो नामों वाली हैं। गंगा वहाँ पर सात भागों में स्मरण की जाती है। पहिली गंगा सुकुमारी, जो कल्याणकारी तथा गुणी जल से प्रपूर्ण है, मुनितप्ता नदी के नाम से विख्यात है। दूसरी गंगा सुकुमारी तपःसिद्धा है जो सती—इस दूसरे नाम से विख्यात है। तीसरी नन्दा और पावनी नाम से बतलाई जाती है। चौथी नदी का नाम शिविका है, जो द्विविधा नाम से भी स्मरण की जाती है। पाँचवी इक्षु नामक नदी को कुहू नाम से भी विख्यात जानना चाहिये। छठवीं नदी वेणुका तथा अमृता के नाम से विख्यात है, इसी प्रकार सातवीं सुकृता तथा गभस्ती नाम से विख्यात है। ये सात महाभाग्यशालिनी, प्रत्येक वर्षों में बहनेवाली, कल्याणकारी, जलों से भरी हुई नदियाँ शाक द्वीप निवासी सभी प्राणियों को पवित्र करती हैं। इन नदियों में अनेक छोटी नदियाँ, नाले तथा सरोवर आ-आ कर मिलते हैं; क्योंकि वहाँ पर इन्द्र बहुत जल बरसाता है। उन छोटी नदियों के नाम तथा उनकी लम्बाई नहीं बतलाई जा सकती; किन्तु वे सब की सब परम पुण्यदायक एवं श्रेष्ठ नदियाँ हैं। उन के किनारे वाले नगरों एवं ग्रामों के निवासी उन नदियों के जल को सदा पीते हैं और हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। वे सातों देश शान्तमय, प्रमोद, शिव, आनन्द, सुख, क्षेमक तथा नव के नाम से विख्यात हैं। वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा को मानने वाले नीरोग तथा बली वहाँ के सभी निवासी मृत्यु के कष्ट से वर्जित रहते हैं। उन शाक द्वीप निवासियों में अवसर्पिणी (बड़ी जाति वालों का छोटी जाति वालों की पुत्री से वह्न का सम्बन्ध रखना वा उनके कार्यों की नकल करना) बुद्धि नहीं है और न उत्सर्पिणी (छोटी जाति वालों का बड़ी जाति की कन्या से विवाह सम्बन्ध रखना वा अनुकरण करना) बुद्धि ही है। वहाँ पर चारों युगों के साथ-साथ देश की अवस्था में कोई अन्तर नहीं होता। सर्वदा त्रेता युग के समान वहाँ का समय बीतता है। शाक द्वीप आदि पाँच द्वीपों में सर्वत्र ऐसी ही व्यवस्था जाननी चाहिये। देश के विचार से ही काल की स्वाभाविक गति स्मरण की जाती है अर्थात्

जो देश जैसा होता है, वैसी ही वहाँ की सामयिक परिस्थिति भी होती है। उन वर्षों में कहीं पर भी वर्णाश्रम मर्यादा को भंग करने वाली वर्णसंकर सन्तानें नहीं मिलेंगी। इस प्रकार धर्म के यथावत् रीति से पालन करने के कारण वहाँ की प्रजा एकान्त सुख का अनुभव करती है। उनमें माया (अज्ञान) का लेश मात्र भी नहीं है तो ईर्ष्या और डाह भला कैसे उत्पन्न हो सकती है? उनमें धर्म का विपर्यय कभी नहीं देखा जाता। सभी लोग अपने-अपने धर्म पर स्थिर रहते सुने जाते हैं, उन पर समय का कुछ भी प्रभाव नहीं दिखता। न तो वहाँ पर दण्ड की कोई व्यवस्था है और न दण्ड देने वाला ही कोई है। अपने-अपने धर्म की मर्यादा को जानने वाले वहाँ के निवासी एक दूसरे की रक्षा में सदा तत्पर रहते हैं। चारों ओर से मण्डलाकार, नदी के जल से घिरा हुआ, महान् कुश नामक द्वीप बादल के समान ऊँचे अनेक धातुओं से विचित्र रंग वाले मणि तथा विद्रुम से सुशोभित पर्वतों से घिरा हुआ है। वह अनेक परम रमणीय नगरों तथा फल-फूल से समृद्ध वृक्षों से युक्त है, चारों ओर से धन-धान्य से प्रपूर्ण, सर्वदा फल-फूल से सुसम्पन्न सब प्रकार के रत्नों से युक्त सभी स्थलों पर जंगली तथा ग्रामीण पशुओं से वह आकीर्ण रहता है। अब संक्षेप में क्रमानुसार कुश द्वीप का वर्णन सुनिये। उस तीसरे कुश नामक द्वीप के समग्र वर्णन को मैं बतला रहा हूँ। उस कुश द्वीप से चारों ओर क्षीरसागर घिरा हुआ है। वह कुश द्वीप शाक द्वीप के विस्तार से द्विगुणित है, उसमें भी रत्नों के उत्पत्ति-स्थान स्वरूप सात पर्वत जानने चाहियें। वहाँ की नदियाँ भी रत्नों की खानें हैं। उनके नाम मुझसे सुनिये। जिस प्रकार शाक द्वीष की नदियों तथा पर्वतों के दो नाम हैं उसी प्रकार कुश द्वीप की नदियों तथा पर्वतों के भी दो नाम हैं। पहिला सूर्य के समान चमकनेवाला कुमुद नामक पर्वत है, वही विद्रुमोच्चय पर्वत के नाम से भी विख्यात है। सभी प्रकार की धातुओं से युक्त शिखरोंवाले, शिलाओं के समूहों से सुसमृद्ध दूसरे पर्वत का उन्नत नाम विख्याति है, वही हेम पर्वत के नाम से भी कहा जाता है। अपने हरिताल के वृक्षों से युक्त शिखरों द्वारा चारों ओर से द्वीप को घेरने वाले तीसरे पर्वत का नाम बलाहक है जो कज्जल के समान काली चट्टानों से व्याप्त है, वह पर्वत द्युतिमान्—इस दूसरे नाम से भी प्रसिद्ध है। चौथा द्रोण नामक पर्वत है, जिस महापर्वत पर विशल्यकरणी (टूटी हड्डियों को यथास्थान बैठाने वाली) तथा मृत संजीवनी (मरे हुए को जिन्दा करनेवाली) नामक श्रेष्ठ औषधियाँ हैं। वह सुसमृद्ध पर्वत पुष्पवान नाम से भी कहा जाता है। उनमें से पाँचवाँ अति प्रमुख वस्तुओं से समृद्ध कंक नामक पर्वत है, जो कुशेशय पर्वत के नाम से भी प्रसिद्ध है। उस कुशद्वीप में अनेक दिव्य फलों से युक्त, दिव्य वृक्षों से व्याप्त, मेघ के समान काले रंग का महिष नामक छठवाँ पर्वत है, वही पुनः हरिन पर्वत के नाम से भी विख्यात हैं। उसी महिष पर्वत पर महिष नामक अग्नि निवास करता है, जो जल में उत्पन्न हुआ था। उस द्वीप का सातवाँ पर्वत ककुद्मान नाम से कहा जाता है, सब प्रकार की धातुओं से युक्त वही मन्दर गिरि नाम से भी विख्यात है। मन्द धातु जल रूप अर्थ का प्रकाशक है अर्थात् उसका अर्थ जल भी है अतः उसी जलसमूह को मंथन (विदारण) करने के कारण यह गिरि मन्दर नाम से विख्यात है। उस मन्दर नामक पर्वत पर अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्न समूह हैं, जिनकी रक्षा स्वयं इन्द्र प्रजापति के साथ करते हैं।

और वहाँ की प्रजाओं की भी अनेक प्रकार से वे रक्षा करते हैं। इन पर्वतों के अन्तर विष्कम्भ परिमाण में दुगुने कहे जाते हैं। कुश द्वीप में उपर्युक्त ये ही सात पर्वत कहे गये हैं। उन पर्वतों के सात वर्षों (देशों) को भी मैं विभागपूर्वक बतला रहा हूँ। प्रथम पर्वत कुमुद का वर्ष श्वेत कहा जाता है, जो उन्नत के नाम से भी विख्यात है। दूसरे पर्वत उन्नति के वर्ष का नाम लोहित है, जो वेणुमण्डलक के नाम से भी विख्यात है। तीसरे पर्वत बलाहक का वर्ष जीमूत है, जो स्वैरथाकर नाम से भी विख्यात है। चौथे पर्वत द्रोण के वर्ष का नाम हरिक है, जिसको लवण नाम से भी पुकारते हैं। कंक नामक पाँचवें पर्वत का वर्ष ककुद् और धृतिमान्—इन दो नामों से प्रसिद्ध है। छठें पर्वत महिष का वर्ष महिष और प्रभाकर नाम से विख्यात है। सातवें पर्वत ककुद्मी का वर्ष कपिल नाम से विख्यात है। उपर्युक्त नामों वाले ये सात वर्ष और ये सात पर्वत उस कुश द्वीप में हैं, जो सब एक दूसरे से अलग-अलग हैं। उस कुश द्वीप में भी सात नदियाँ हैं, जो एक-एक वर्षों में प्रवाहित होती हैं। वे सब की सब दो-दो नामोंवाली पवित्र जल से परिपूर्ण सुनी जाती हैं। पहिली धूतपापा नामक नदी है, जो योनि नाम से भी स्मरण की जाती है। दूसरी नदी सीता को जानना चाहिये और वही दूसरे निशा नाम से भी विख्यात है। तीसरी पवित्रा नामक नदी है, जो वितृष्णा नाम से भी पुकारी जाती है। चौथी ह्लादिनी नामक नदी है, जो चन्द्रभा नाम से भी स्मरण की जाती है। पांचवीं नदी विद्युत् है, जो शुक्ला नाम से भी प्रसिद्ध है। छठीं नदी पुण्ड्रा को जानना चाहिये, जो विभावरी नाम से भी विख्यात है। इसी प्रकार सातवीं महती नामक नदी है, जो धृति नाम से स्मरण की जाती है। इन उपर्युक्त नदियों के अतिरिक्त वहाँ सैकड़ों क्या सहस्रों अन्य छोटी-छोटी नदियाँ भी प्रवाहित होती हैं और उन्हीं सातों प्रमुख नदियों में जाकर मिलती हैं, क्योंकि इस कुश द्वीप में इन्द्र विशेष वृष्टि करता है। इस प्रकार कुश द्वीप की स्थिति का वर्णन तुम लोगों को मैं सुना चुका। और शाक द्वीप के विस्तार मान से उसके सनातन विस्तार को भी बता चुका। अर्थात् कुश द्वीप का परिमाण शाक द्वीप से द्विगुणित है। वह कुश द्वीप घृत तथा मण्ड के समुद्र द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ है। इस प्रकार सभी ओर से वह महान् द्वीप चन्द्रमा की भांति घिरा हुआ शोभित होता है। यह चारों ओर के विस्तार एवं मण्डल के परिमाण में क्षीरसागर से दुगुना माना जाता है। अब उसके बाद मैं क्रौञ्च नामक द्वीप का वर्णन जिस प्रकार किया जाता है, वैसा ही आप लोगों से कर रहा हूँ। कुश द्वीप के विस्तार से उसका विस्तार दुगुना कहा जाता है। उस क्रौञ्चद्वीप से घृत समुद्र चारों ओर से घिरा हुआ है। सभी ओर से चक्के की भाँति गोलाकार उस द्वीप से यह घृत समुद्र घिरा हुआ है। श्रेष्ठ ऋषिवृन्द! उस क्रौञ्चद्वीप में परम सुरम्य ऊँचे पर्वत हैं, जिनमें प्रथम पर्वत देवनगिरि के नाम से पुकारा जाता है, देवन के बाद गोविन्द पर्वत का विस्तार है, गोविन्द के बाद क्रौञ्च नामक प्रथम गिरि है, क्रौञ्च से बाद में पावनक पर्वत का विस्तार है, पावनक के वाद अन्धकारक नामक पर्वत है, अन्धकार के बाद देवावृत नामक पर्वत है, उस

---

[1]चन्द्रवत पाठ अशुद्ध मालूम पड़ता है।

देवावृत के अनन्तर पुण्डरीक नामक महान् गिरि है। ये रत्नों से प्रपूर्ण सात पर्वत क्रौञ्च द्वीप के कहे जाते हैं। इनके विष्कम्भक का परिमाण आपस में एक दूसरे से द्विगुणित बतलाया जाता है। उन पर्वतों के देशों को नाम सहित बतला रहा हूँ, सुनिये। क्रौञ्च पर्वत का प्रदेश कुशल नामक है, और वामन[1] पर्वत का प्रदेश मनोनुग है। मनोनुग के बाद उष्ण प्रदेश है, वही तीसरा भी कहा जाता है। उष्ण के बाद पावनक प्रदेश है, और पावनक के बाद अन्धकारक नामक देश है। इस अन्धकारक नामक देश के बाद मुनिदेश कहा जाता है, और उस मुनि देश के बाद दुन्दुभिस्वन नामक देश कहा जाता है। ये सभी देश सिद्धों तथा चारणों से आकीर्ण हैं। वहाँ के निवासी प्रायः गौर वर्णके होते हैं और सदा पवित्र रहते हैं। ऐसा सुना जाता है कि इन प्रत्येक प्रदेशों में कल्याणकारिणी नदियाँ बहती हैं। गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याती तथा पुण्डरीका—इन सात नामों वाली गंगा वहाँ स्मरण की जाती हैं। इनके इधर-उधर बहने वाली, अगाध जल से पूर्ण सहस्रों अन्य नदियाँ भी आ-आकर उनमें मिलती हैं। अनुक्रम पूर्वक उन पर्वत प्रदेशों की स्वाभाविक स्थिति एवं वहाँ के निवासियों की उत्पत्ति एवं प्रलय का यथावत् वर्णन विस्तार से सैकड़ों वर्षों में नहीं किया जा सकता। अब इसके उपरान्त मैं शाल्मल द्वीप के विस्तार का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। वह शाल्मल द्वीप विस्तार में क्रौञ्च द्वीप से द्विगुणित है, वह चारों ओर से दधि तथा मण्ड (माँड़) समुद्र को घेरकर अवस्थित है। वहाँ पर अनेक पुण्य नगर हैं तथा वहाँ के निवासी चिरकाल के बाद मरते हैं। वे क्षमाशील एवं तेजस्वी होते हैं, अतः उन्हें दारिद्र्य कहाँ से दुःखी कर सकता है। वहाँ का प्रथम सुमना नामक पर्वत है, जो सूर्य के समान (चमकने वाला) है और पीत वर्ण का है। उसके बाद कुम्भमय नामक पर्वत है। दिव्य औषधियों से युक्त उस पर्वत की सर्वसुख नाम से भी प्रसिद्धि है। तीसरा सुवर्णसम्पन्न भ्रमर के पत्र के समान रंग वाला रोहित नामक महान् गिरि है, वह श्रेष्ठ गिरि परम दिव्य प्रभा सम्पन्न एवं तेजोमय है। सुमना पर्वत का देश कुशल एवं दूसरे पर्वत सर्वसुख का देश सुखोदय है, जो सभी प्रकार के सुखों का देने वाला है, रोहित नामक जो तीसरा पर्वत है, उसका वर्ष रोहिण नाम से विख्यात है। वहाँ पर अनेक प्रकार के रत्नों की रक्षा स्वयं इन्द्र प्रजापति के साथ करता है, और प्रजाओं के लिए स्वयं प्रसन्न होकर उनके सब कार्यों का विधान करता है। उस द्वीप में मेघवृन्द वृष्टि नहीं करते और न वहाँ शीत एवं उष्णता ही का आधिक्य रहता है। इन तीनों द्वीपों में वर्णाश्रम धर्म की चर्चा विद्यमान है। वहाँ पर न तो ग्रह गण हैं, न चन्द्रमा है, और न वहाँ के निवासियों में ईर्ष्या, डाह भय आदि पाया जाता है। वहाँ अन्नादि एवं जल उन्हीं पर्वतों से प्राप्त होते हैं। वहाँ के निवासियों को षड्रस व्यंजन अपने आप तैयार मिलता है। उनमें नीच-ऊँच का भेद भाव नहीं है, न लोभ है और न सेना आदि सामग्री

---

[1] ऊपर वामन नामक कोई पर्वत नहीं बतलाया गया है। इससे मालूम पड़ता है कि गोविन्द पर्वत का दूसरा नाम ही वामन पर्वत है। यद्यपि पहले पर्वतों का वर्णन करते समय सर्वप्रथम देवन का नाम लिया गया है, किन्तु क्रौञ्च को ही प्रथम बतलाया गया है, इसके बाद दूसरा पर्वत गोविन्द है। दोनों के नामकरण में भी अर्थतः साम्य है। बाद वाले पर्वत प्रदेशों का क्रम भी उसी प्रकार पड़ता है, यद्यपि तीसरे का नाम नहीं लिया गया है।

ही है। आरोग्य एवं बल सम्पन्न वहाँ के निवासी एकान्त सुख का अनुभव करते हैं। तीस सहस्र वर्ष तक मानसिक सन्तोष की सिद्धि प्राप्तकर सुख, दीर्घायु, सुंदर स्वरूप, धर्म, एवं ऐश्वर्य को भोगते हुए वे लोग जीते रहते हैं। कुश, क्रौञ्च एवं शाल्मल—इन तीनों द्वीपों के सभी प्रदेशों की ऐसी ही स्थिति जाननी चाहिये। इस प्रकार कल्याणमय शाल्मल द्वीप तक मैं द्वीपों का वर्णन कर चुका। इस शाल्मल द्वीप का मण्डल (घेरा) परिमाण में द्विगुणित सुरा समुद्र से चारों ओर चक्के की भाँति घिरा हुआ है। ॥१-१०४॥

श्री मात्स्य महापुराण में भुवन कोश प्रसंग में द्वीपवर्णन नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२२॥

एक सौ तेईसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—तपस्वी गण! अब मैं गोमेदक नामक छठवें द्वीप का वर्णन कर रहा हूँ। उस गोमेदक द्वीप से सुरा समुद्र घिरा हुआ है। शाल्मल द्वीप के विस्तार से उसका विस्तार द्विगुणित है। उस द्वीप में दो उच्च पर्वतों को जानना चाहिये। वहाँ का प्रथम सुमना नामक पर्वत अंजन के समान काले रंग का तथा दूसरा कुमुद नामक पर्वत सब प्रकार की औषधियों से युक्त है। दूसरा पर्वत सुवर्णमय, शोभा सम्पन्न एवं वृक्षादिकों से आकीर्ण रहता है। यह गोमेदक द्वीप छठवें सुरा समुद्र की अपेक्षा परिमाण में द्विगुणित तथा इक्षुरस नामक समुद्र से चारों ओर घिरा हुआ है। सुविस्तृत धातकी और कुमुद नामक दो प्रदेश उसके हव्यपुत्र के नाम से विख्यात हैं। प्रथम प्रदेश जो सौमन (सुमना का प्रदेश) है, वही धातकी खण्ड भी कहा जाता है, प्रथम पर्वत धातकी का ही वह प्रदेश स्मरण किया जाता है। गोमेद नाम से जो वर्ष कहा जाता है, वही सर्वसुख के नाम से भी प्रसिद्ध है। उस प्रथम प्रदेश के बाद द्वितीय पर्वत कुमुद का प्रदेश भी कुमुद नाम से प्रसिद्ध है। उस गोमेदक द्वीप में अन्य समस्त पर्वतों से अधिक ऊँचे ये दोनों पर्वत हैं। सुमना नामक पर्वत उस द्वीप की पूर्व दिशा में अवस्थित है, और पूर्व से पश्चिम समुद्र तक फैला हुआ है। उसी प्रकार पश्चिम के अर्ध भाग में कुमुद नामक पर्वत अवस्थित है। इन पर्वतों के चरण प्रान्तों से वह प्रदेश दो भागों में बँट गया है, दक्षिण दिशा का आधा भाग धातकी खण्ड कहा जाता है, और उत्तरी आधा भाग कुमुद नाम से पुकारा जाता है, जो कि उस प्रान्त का दूसरा उत्तम वर्ष माना जाता है। उस गोमेद द्वीप के दोनों विस्तृत प्रदेश कहे जाते हैं। अब इसके उपरान्त मैं सातवें द्वीप का उत्तम वर्णन कर रहा हूँ। इस गोमेद द्वीप से विस्तार में वह सातवाँ द्वीप दुगुना माना जाता है। कमलों से व्याप्त वह सातवाँ पुष्कर द्वीप इक्षुरस समुद्र को चारों ओर से घेर कर अवस्थित है। चित्र-विचित्र मणिमय पर्वतों के शिखरों से संकुलित, कमलों से सुशोभित, शोभा सम्पन्न चित्रसानु नामक महान् पर्वत उस द्वीप के पूर्वार्द्ध में अवस्थित है, जो अनेक शिलाओं के समूहों से आकीर्ण है। वह महान् चित्रसानु गोलाई में सत्ताईस सहस्र योजन विस्तृत एवं चौबीस सहस्र योजन ऊँचा है। पुष्कर द्वीप के पश्चिमार्ध में मानस नामक गिरि समुद्र तट पर अवस्थित है, जो पूर्व दिशा में उदीयमान चन्द्रमा की भाँति शोभित है। वह पर्वत

साढ़े पंचास सहस्र योजन ऊँचा है। पश्चिम भाग में अवस्थित उस मानस पर्वत का पुत्र महावीत नामक पर्वत उस द्वीप की पूर्वार्द्ध में भी रक्षा करता है। इस प्रकार वह पुष्कर द्वीप दो विभागों में विभक्त कहा जाता है। परम सुस्वादु पीने योग्य जलयुक्त समुद्र से वह पुष्करद्वीप चारों ओर से घिरा हुआ है, और गोलाई एवं विस्तार दोनों में गोमेद द्वीप से द्विगुणित है। इसके भीतरी प्रदेशों के निवासी मानवगण तीस सहस्र वर्ष पर्यन्त जीवन धारण करते हैं। वहाँ के उन दीर्घजीवी निवासियों के व्यवहार में कोई विपर्यय नहीं देखा जाता। प्रत्युत यही बात उनके लिए स्वाभाविक मानी जाती है। वे सर्वदा आरोग्य, सुख एवं ऐश्वर्य की अधिकता तथा मानसिक सन्तोष की प्राप्ति करते हैं। इस प्रकार इन तीनों द्वीपों में सभी स्थलों पर सुख, दीर्घायु एवं सौन्दर्य की कमी नहीं पाई जाती। वहाँ के निवासियों में नीच-ऊँच का भेदभाव नहीं है, पराक्रम एवं रूप में भी सभी एक समान हैं। वहाँ पर न तो कोई मारा जाता है न कोई किसी को मारता है। ईर्ष्या, डाह, भय, लोभ, द्वेष, दम्भ एवं शपथ का नाम तक नहीं है। उनमें सत्य, असत्य एवं धर्माधर्म का बखेड़ा कभी नहीं उठता। वर्णाश्रम धर्म की चर्चा, पशुपालन, वणिकवृत्ति एवं कृषिकर्म को भी वहाँ वाले नहीं करते। उनमें त्रयीविद्या, दण्डनीति, सेवा एवं शारीरिक दण्ड आदि की व्यवस्था भी नहीं पाई जाती। वहाँ पर न तो वृष्टि होती है, न नदियाँ हैं न अधिक गर्मी पड़ती है, न अधिक सर्दी। अन्न आदि खाद्य सामग्रियाँ तथा जल वहाँ के पर्वतों से चूकर स्वतः गिरते हैं। उत्तर कुरु प्रदेश की भाँति वहाँ पर भी सर्वदा एक-सा मौसम बना रहता है। इस प्रकार बुढ़ापा एवं क्लेश से वंचित वहाँ के निवासी सुखपूर्वक अपना कालयापन करते हैं। धातकी खण्ड एवं महावीत दोनों प्रदेशों के निवासियों की यही दशा है। इसी प्रकार ये सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे हुए हैं। द्वीप के बाद जो समुद्र पड़ता है वह विस्तार में उसी द्वीप के बराबर ही माना गया है। इसी प्रकार द्वीपों और समुद्रों की आपस में वृद्धि जान लेनी चाहिये। अपने जल समूह के अत्यधिक उद्रेक होने के कारण ही अपार जलराशि का समुद्र नाम कहा जाता है। ऋषि धातु का रमण (ब्रह्म में वा सुख भोगादि में निरत रहता) अर्थ है। जिस स्थल पर रहनेवाली चार प्रकार की प्रजाएँ क्रीडापूर्वक निवास करें उसको वर्ष कहते हैं। उन द्वीपों में रहनेवाली प्रजाएँ अति सुखपूर्वक कालयापन करती हैं। पूर्व दिशा में चन्द्रमा के उदित होने पर सर्वदा समुद्र जल से पूर्ण हो जाता है, और अस्त हो जाने पर क्षीण हो जाता है। वह पूर्ण समुद्र अपनी मर्यादा के भीतर ही जल से पूर्ण होता है और चन्द्रमा के ह्रास के समय भी उसी सीमा में जल का क्षय भी होता है। चन्द्रोदय के समय जल की वृद्धि के साथ समुद्र की भी वृद्धि तथा जल के क्षय के साथ-साथ उसका भी ह्रास होता है। इस पर भी उसकी परिधि में किंचिन्मात्र न्यूनाधिक्य परिलक्षित नहीं होता। शुक्ल तथा कृष्ण पक्षों में चन्द्रमा के उदित एवं अस्त होने पर समुद्र में भी जल की वृद्धि तथा हानि होती देखी जाती है। और वह वृद्धि तथा क्षय परिमाण में एक सौ पन्द्रह अंगुल तक कहा जाता है। पर्वों पर दो बार (पूर्णिमा तथा अमावास्या को) यह समुद्र की होनेवाली वृद्धि तथा हानि देखी जाती है। दोनों ओर जल रहने के कारण समुद्रस्थ देश को द्वीप कहते हैं। उदक (जल) धारण करने के कारण समुद्र का उदधि नाम पड़ा। इसका सभी वस्तुओं को निर्गीर्ण

कर लेने के कारण गिरि तथा पर्वाकार विन्यास से युक्त होने के कारण पर्वत नाम कहा जाता है। शाक द्वीप में शाकमय पर्वत है, इसीलिए उस द्वीप का नाम भी शाक पड़ा। कुश द्वीप में नगर के मध्यभाग में कुशा का एक स्तम्ब (समूह) है, इसी से उसका नाम कुशद्वीप पड़ा। क्रौञ्च द्वीप में क्रौञ्च नामक एक गिरि है, जिसके नाम पर उसे क्रौञ्च कहते हैं। शाल्मल द्वीप में एक महान् शाल्मलि (सेमर) का वृक्ष है, जिसकी सभी लोग पूजा करते हैं। गोमदेक द्वीप में गोमेद नामक एक महान् पर्वत है, उसी के नाम पर उसका नाम लोग गोमेदक कहते हैं। पुष्कर नामक द्वीप में पद्म के आकार का न्यग्रोध (बरगद) का एक विशाल वृक्ष है, जिससे द्वीप का नाम भी पुष्कर स्मरण किया जाता है। वहाँ पर उसकी ब्रह्मांश से उत्पत्ति होने के कारण बड़े-बड़े देवगण पूजा करते हैं। उसकी उत्पत्ति का विषय अस्पष्ट है। उसी पुष्कर द्वीप में प्रजापति ब्रह्मा जी साध्य नामक देवगणों के साथ निवास करते हैं। वहाँ तैंतीस देवता महर्षिगणों के साथ उनकी पूजा करते हैं। वे आदिदेव भगवान् वहाँ पर श्रेष्ठ ऋषियों तथा देवताओं द्वारा पूजित होते हैं। जम्बू द्वीप से अनेक प्रकार के रत्न दूसरे-दूसरे द्वीपों तक प्रवर्तित होते हैं। उन सभी द्वीपों में तथा उन वर्षों में, जिन्हें ऊपर बतला चुके हैं, रहनेवाली प्रजाओं का व्यवहार सरलता, ब्रह्मचर्य, सत्य, संयम, आरोग्य एवं आयुःप्रमाण में क्रमशः एक द्वीप की अपेक्षा दूसरे द्वीप वालों में द्विगुणित होता है। वहाँ की प्रजाएँ अपने सहज पाण्डित्य से सर्वदा सुरक्षित रहती हैं अर्थात् वे लोग स्वभावतः अपने जीवन की प्रत्येक कठिनाइयों को दूर करने में पण्डित होते हैं। वहाँ पर भोजनादि सामग्रियाँ तो विना प्रयत्न किये ही सर्वदा स्वयमेव सम्मुख उपस्थित रहती हैं, इस प्रकार षट्रस व्यंजन का, जो महान् बल देनेवाला है, वहाँ के निवासी उपभोग करते हैं। उस पुष्कर दीप के बाद अति विशाल, सुस्वादु जल से पूर्ण वारिधि उसे चारों ओर से घेरकर अवस्थित है। उस सुस्वादु जलयुक्त समुद्र के मण्डल की चारों ओर मण्डलाकार एक अति महान् पर्वत है, जो प्रकाश एवं अन्धकार दोनों से सर्वदा युक्त रहता है। उसकी लोकालोक नाम से प्रसिद्धि है। उसके अगले आधे भाग में प्रकाश तथा पिछले आधे भाग में सर्वदा अन्धकार रहता है। परिमाण में सम्पूर्ण लोकों के विस्तार जितना पृथ्वी के अर्धभाग बाहर से वह महान् पर्वत फैला हुआ है, और चारों ओर से जल राशि से घिरा तथा ढँका हुआ है। पृथ्वी के दस गुने परिमाण में दस गुनी अग्नि सभी ओर से जल को धारण करती है। अग्नि से परिणाम में दस गुनी अधिक वायु अग्नि को धारण करती हुई स्थित होती है। यह विशाल वायुमंडल तिरछे होकर जगत् के समस्त जीवों को सभी ओर से आच्छादित कर व्यस्थित है। वायु से परिमाण में दसगुना अधिक आकाश जीवों को धारण किये हुए है, उस व्योम सें परिमाण में दस गुने अधिक भूतादि हैं। उन भूतादि से भी परिमाण में दस गुने अधिक महद्भूत को महत्तत्व धारण करता है (?) और उस महत्तत्व को अव्यक्त एवं अनन्त ब्रह्म धारण करता है। वे विकार विकारियों में आधाराधेय[1] सम्बन्ध से व्यवस्थित रहते हैं। ये

---

[1] आधार (आश्रय) तीन प्रकार के होते हैं। औपश्लेषिक (एक देश में सम्बन्ध), वैषयिक और अभिव्यापक। जैसे चटाई

पृथ्वी आदि विकार आपस में एक दूसरे से विशिष्ट रहते हैं। एक दूसरे से अधिक रहते हैं तथा एक दूसरे में अनुप्रविष्ट (मिले-जुले) भी रहते हैं। इसी प्रकार ये सब आपस में उत्पन्न होते हैं और एक दूसरे से हिले-मिले रहते हैं, अतएव इनमें स्थिरता रहती है। ये विकार पहले अविशेष रहते हैं, और फिर बाद में आपस में मिल जाने से विशिष्ट हो जाते हैं। उन पदार्थों में पृथ्वी से लेकर वायु तक के विकार अन्य की अपेक्षा आपस में एक दूसरे से उस विशिष्ट रूप में परिच्छिन्न होकर स्थित हैं। उन भूतादि से परे सभी ओर अलोक ?(लोकों का अभाव) का स्मरण किया जाता है। अर्थात् इन भूतों से परे कोई लोक नहीं है। आलोक ? (अलोक) आकाश में चारों ओर से वे विकार इस प्रकार अवस्थित रहते हैं, जिस प्रकार बहुत बड़े पात्र के अन्तर्गत छोटे-छोटे पात्र स्थित रहते हैं। एक दूसरे के आधार पर आधारित होने के कारण ये एक दूसरे से परिमाण में हीन हैं, और आलोक ?.... आकाश में ये भेद अन्तर्गत रहते हैं ?.... एक दूसरे से परिमाण में अधिक होनेवाले इन तत्वों का निर्माण हुआ है ?.... जब तक इन तत्वों का अस्तित्व रहता है तभी तक सृष्टि का भी अस्तित्व कहा जाता है। इस लोक में जीवधारियों का जीवन इन्हीं भूतों के अधीन है। इन महाभूतों का प्रत्याख्यान (वहिष्कार) करके कार्य (जगत्) की उत्पत्ति विद्यमान नहीं रह सकती। इसीलिए वे भेद, जो मर्यादित हैं, कार्यात्मक स्मरण किये जाते हैं। और वे महदादि भेद कारणात्मक होते हैं। इस प्रकार पृथ्वी मण्डल का सन्निवेश, विभागानुसार सातों द्वीपों एवं समुद्रों की स्थिति का वर्णन, उनके विस्तार सहित मण्डलों की स्थिति एवं गणना आदि को जानना चाहिये। परिमाण में एक देशी (?) प्रधान पुरुष के विश्व का स्वरूप मैं यथावत् रीति से सुना चुका। इस प्रकार मैंने भली भाँति सासांरिक स्थिति को प्रकाशित कर दिया है। राजन्! उस सांसारिक स्थिति (रचना) का वृत्तान्त इतना ही श्रवण करना चाहिये। ॥१-६४॥

श्री मात्स्यमहापुराण में भुवनकोश प्रसंग में सप्तद्वीपनिवेश वर्णन नामक एक सौ तेइसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२३॥

एक सौ चौबीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! अब इसके बाद मैं चन्द्रमा और सूर्य की गति बतला रहा हूँ। ये चन्द्रमा तथा सूर्य सातों समुद्रों तथा सातों द्वीपों समेत समग्र पृथ्वी तल के अर्धभाग तथा पृथ्वीके बर्हिभूत अन्य अनेक लोकों को प्रकाशित करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा विश्व की अन्तिम[१] सीमा तक प्रकाश करते हैं, पण्डित लोग इस अन्तिम तक ही आकाश लोक की तुल्यता स्मरण करते हैं। सूर्य अपनी अविलम्बित गति द्वारा साधारणतया तीनों लोकों में पहुँचता है। अति शीघ्र प्रकाशदान द्वारा सभी लोकों की रक्षा करने के कारण उसका रवि नाम से स्मरण किया जाता है। पुनः चन्द्रमा और सूर्य का प्रमाण बतला रहा हूँ। महनीय

पर सोता है, थाली में भोजन कर रहा है, मोक्ष में चित्त लगा हुआ है, सब में आत्मा है। इनमें आधार और आधारी का परस्पर जो संबन्ध है, वह आधाराधेयसम्बन्ध के नाम से प्रसिद्ध है।

[१]सूर्यसिद्धान्त का भूगोलाध्याय, 'ब्रह्माण्ड सम्पुटपरिभ्रमणं समन्तादभ्यन्तरे दिनकरस्य करप्रसारः।'

(पूजनीय) होने के कारण महत् शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस भारतवर्ष के विष्कम्भ के समान ही परिमाण में सूर्य का मण्डल माना गया है। वह विष्कम्भ कितने योजनों में है, इसे बता रहा हूँ, सुनिये। सूर्य के बिम्ब का व्यास नव सहस्र योजन है। इस बिम्ब की परिधि का विस्तार इसकी अपेक्षा तिगुना है। इस विष्कम्भ एवं मण्डल से चन्द्रमा सूर्य से द्विगुणित बड़ा[1] है। अब इसके उपरान्त मैं पुनः सातों समुद्रों तथा द्वीपों समेत पृथ्वी का परिमाण योजनों में बतला रहा हूँ। पुराणों में पृथ्वी का जो परिमाण संख्या में बतलाया गया है उसे ही मैं बतला रहा हूँ। प्राचीन काल के अभिमानी इस लोक से व्यतीत हो चुके हैं; पर इस काल के अभिमानियों के समान ही वे भी थे। पुराने देवता तथा दानव—दोनों ही अभिमानी रूप और नाम से व्यतीत हो चुके हैं, इस कारण इस समय के देवताओं के अनुसार पृथ्वीतल का परिमाण बतला रहा हूँ। सम्पूर्ण पृथ्वी के परिमाण के बराबर ही दिव्यलोक की अवस्थिति वर्तमान काल के लोगों ने मानी है। सम्पूर्ण पृथ्वी पचास लक्ष योजनों में विस्तृत मानी गई है। उसका आधा भाग मेरु पर्वत के चारों ओर उत्तरोत्तर विस्तृत है। मेरु के मध्यभाग से प्रत्येक दिशाओं में वह एक करोड़ योजन की मानी गयी है। नवासी लाख पचास सहस्र योजन सम्पूर्ण पृथ्वी के मण्डल के अर्ध भाग का विस्तार माना गया है। अब सम्पूर्ण पृथ्वी का विस्तार योजनों में सुनिये। चारों दिशाओं में यह पृथ्वी तीन करोड़ उन्यासी लाख योजनों में अपने पृष्ठफल से विस्तृत मानी गई है। सातों द्वीपों तथा समुद्रों समेत पृथ्वीमण्डल का यही विस्तार माना गया है। पृथ्वी के मध्यवर्ती भीतरी मण्डल का विस्तार इस बाहरी विस्तार से तीन गुना अधिक है, उसका परिमाण ग्यारह करोड़ सैंतीस लाख योजन कहा जाता है। यही पृथ्वी के मध्यवर्ती मण्डल का विस्तार गिना गया है। आकाश में तारागणों की अवस्थिति जितने मण्डल में है उतना ही सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का विस्तार माना गया है। फल स्वरूप भूमि के समान ही स्वर्ग का मण्डल माना गया है। मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में मानसोत्तर पर्वत की चोटी पर महेन्द्र की वस्वेकसारा नामक सुवर्ण से सजायी गयी एक पुण्य नगरी है। और उसी मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा की ओर मानस की पीठ पर अवस्थित संयमनपुर में सूर्य का पुत्र यम निवास करता है। मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा की ओर मानस नामक पर्वत की चोटी पर अवस्थित बुद्धिमान वरुण की सुषा नामक परम रमणीय नगरी है। मेरु की उत्तर दिशा में मानस गिरि की चोटी पर महेन्द्र की (वस्वेकसारा) नगरी के समान परम रमणीय चन्द्रमा की विभावरी नामक नगरी है। उसी मानसोत्तर के शिखर पर चारों दिशाओं में लोकपाल गण धर्म की व्यवस्था एवं लोक के संरक्षण के लिए अवस्थित हैं। दक्षिणायन के समय सूर्य उक्त लोकपालों के ऊपर भ्रमण करता है, उसकी गति सुनिये। यह दक्षिणायन का सूर्य धनुष से छूटे हुए बाण की तरह शीघ्रगति से चलता है। और अपने ज्योतिःचक्रों को साथ लेकर सर्वदा गतिशील

---

[1] ज्योतिष में चन्द्रमा का विस्तार सूर्य से बहुत कम माना गया है। देखिये, सूर्यसिद्धान्त का प्रथम भाग चन्द्रग्रहणाधिकार का प्रथम श्लोक।

रहता है। जिस समय अमरावती (वस्वेकसारा) पुरी में सूर्य मध्य में आता है उस समय वैवस्वत के संयमन पुर में वह उदित होता हुआ दिखाई पड़ता है, सुषा नामक नगरी में उस समय आधी रात होती है और विभावरी नगरी में सायंकाल होता है। इसी प्रकार जिस समय वैवस्वत (यमराज) के संयमन पुर में सूर्य मध्याह्न का होता है उस समय वरुण की सुषा नगरी में वह उदित होता हुआ दिखाई पड़ता है, विभावरी पुरी में आधी रात रहती है और महेन्द्र की अमरावती पुरी में सायंकाल होता है। जिस समय वरुण की सुषा नगरी में सूर्य मध्याह्न का होता है, उस समय चन्द्रमा की विभावरी नगरी में ऊँचाई पर प्रस्थान करता है अर्थात् उदित होता है। इसी प्रकार महेन्द्र की अमरावती पुरी में जब भानु उदित होता है उस समय संयमनपुर में आधी रात रहती है और वरुण की सुषा नगरी में अस्ताचल को जाता है। इस प्रकार सूर्य आलातचक्र[1] की भाँति शीघ्र गति से चलता है और स्वयं भ्रमण करता हुआ नक्षत्रों को भ्रमण कराता है। इस प्रकार चारों पार्श्वों में सूर्य प्रदक्षिणा करता हुआ गमन करता है तथा अपने उदय तथा अस्त काल के स्थानों पर बारम्बार उदित और अस्त होता रहता है। दिन के पहले तथा पिछले भागों में दो-दो देवताओं के निवास-स्थानों पर वह पहुँचता है। इस प्रकार वह एक पुरी में प्रातःकाल उदित हो बढ़नेवाली किरणों और कान्तियों से युक्त होकर मध्याह्न काल में तपता है और मध्याह्न के अनन्तर तेजोविहीन होती हुई उन्हीं किरणों के साथ अस्त होता है। सूर्य के इस प्रकार के उदय और अस्त से पूर्व और पश्चिम की दिशाओं की सृष्टि स्मरण की जाती है। वह सूर्य जिस प्रकार पूर्व भाग में तपता है उसी प्रकार दोनों पार्श्वों तथा पृष्ठ (पश्चिम) भाग में भी तपता है। जिस स्थान पर प्रथम उसका उदय दिखाई पड़ता है उसे उसका उदय स्थान और जिस स्थान पर लय होता है उसे उसका अस्त स्थान कहते हैं। सुमेरु पर्वत सभी पर्वतों के उत्तर में और लोकालोक पर्वत की दक्षिण ओर अवस्थित है। सूर्य के दूर हो जाने के कारण भूमि पर आती हुई उसकी किरणें अन्य पदार्थों पर पड़ जाती हैं, अतः यहाँ आने से वे रुक जाती हैं, इसी कारण रात में वह नहीं दिखलाई पड़ता। इस प्रकार जिस समय पुष्कर के मध्यभाग में सूर्य होता है उस समय ऊपर स्थित दिखलाई पड़ता है। एक मूहूर्त में (दो घड़ी) सूर्य इस पृथ्वी के तीसवें भाग तक जाता है। इस गति की संख्या योजनों में सुनिये। वह पूर्ण संख्या इकतीस लाख पचास सहस्र योजन से भी अधिक स्मरण की जाती है। सूर्य की इतनी एक मुहूर्त्त की गति है। इस क्रम से वह जब दक्षिण दिशा में भ्रमण करता है तो एक मास में उत्तर दिशा में प्राप्त होता है। दक्षिणायन में सूर्य पुष्कर द्वीप के मध्यभाग में होकर भ्रमण करता है। मानसोत्तर और मेरु के मध्य में इसका तीन गुना अन्तर है—ऐसा सुना जाता हैं। सूर्य की विशेष गति दक्षिण दिशा में जानिये। नव करोड़ पैंतालीस लाख योजन का यह मण्डल कहा गया है और सूर्य की यह गति एक दिन और एक रात की है। जब दक्षिणायन से निवृत होकर

---

[1] किसी जलती हुई वस्तु को चक्करदार गोलाई में घुमाते समय जो आग की लपटों वाला चक्कर बनता है उसे आलातचक्र कहते हैं।

सूर्य विषुव[1] स्थल पर हो जाता है उस समय क्षीर सागर की उत्तर दिशा की ओर भ्रमण करने लगता है। उस विषुव मण्डल को भी योजनों में सुनिये। सम्पूर्ण विषुव मण्डल तीन करोड़ एक लाख इक्कीस योजनों में विस्तृत है। जब श्रावण मास में चित्रभानु उत्तर दिशा में सूर्य हो जाता है तब गोमेद द्वीप के अनन्तर वाले प्रदेश में उत्तर दिशा में वह विचरण करता है। उत्तर दिशा के प्रमाण दक्षिण दिशा के प्रमाण तथा दोनों मध्य मण्डल के प्रमाण को क्रमपूर्वक एक समान जानना चाहिये। इस के मध्य में जरद्गव, उत्तर में ऐरावत तथा दक्षिण में वैश्वानर नामक स्थान सिद्धान्ततया निर्दिष्ट किये गये हैं। उत्तरा वीथी नागवीथी और दक्षिणा वीथी अजवीथी मानी गई हैं। दोनों आषाढ़ (पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़) तथा मूल—ये तीन तीन नक्षत्र अजावीथी आदि तीन वीथियों के कहे जाते हैं। अर्थात् मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, अभिजित्, पूर्वाभाद्रपद, स्वाती और उत्तराभाद्रपद—ये नागवीथी कहे जाते हैं। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका—ये तीन नक्षत्र नागवीथी के नाम से स्मरण किये जाते हैं। रोहिणी, आर्द्रा और मृगशिरा—ये भी नागवीथी ही के नाम से स्मरण किये जाते हैं। पुष्य, आश्लेषा और पुनर्वसु (दोनों)—इन तीनों की ऐरावती नामक वीथी स्मरण की जाती है। ये तीन वीथियाँ हैं, इनका मार्ग उत्तर कहा जाता है। पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी और मघा—इनकी आर्षभी वीथी है। पूर्व भाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती—ये गोवीथी के नाम से स्मरण किये जाते हैं। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—ये जरद्गव नामक वीथी में है, इन तीन वीथियों का मार्ग मध्यम कहा जाता है। हस्त, चित्रा तथा स्वाती —ये अजावीथी के नाम से स्मरण किये जाते हैं, ज्येष्ठा, विशाखा तथा अनुराधा—ये मृगवीथी कहे जाते हैं। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़—ये वैश्वानरी वीथी के नाम से विख्यात हैं। इन तीन वीथियों का मार्ग दक्षिण दिशा में है। अब इनमें से दो का अन्तर योजनों द्वारा बता रहा हूँ। यह अन्तर इकतीस लाख तैंतीस सौ योजनों की है। यहाँ इतना अन्तर बतलाया गया है। अब विषुव स्थल से दक्षिणायन और उत्तरायण पथों का परिमाण योजनों में बतला रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये। मध्य भाग में स्थित एक रेखा दूसरी से पचीस अधिक सहस्र योजन अन्तर पर है। बाहर और भीतर की इन दिशाओं और रेखाओं के मध्य में चलता हुआ सूर्य सर्वदा उत्तरायण में भीतर से मण्डलों को पार करता है। और दक्षिणायन में सूर्यमण्डल बाहर रह जाता है? इस प्रकार वहिर्भाग से विचरण करता हुआ सूर्य उत्तरायण में एक सौ अस्सी योजन भीतर प्रवेश करता है। अब मण्डल का परिमाण सुनिये। वह मण्डल अट्ठारह सहस्र अट्ठावन योजन का सुना जाता है। उस मण्डल का यह परिमाण तिरछा जानना चाहिये। इस प्रकार एक दिन रात में सूर्य मेरु के मण्डल को इस प्रकार प्राप्त होता है? जिस प्रकार कुम्हार की चाक नाभि के क्रम पर चलती है। सूर्य की भाँति चन्द्रमा भी नाभि के क्रम से ही मंडल को प्राप्त होता है। दक्षिणायन में सूर्य चक्र के समान शीघ्रता से अपनी गति समाप्त कर निवृत्त हो जाता है, इसी कारण से प्रमाण में अधिक भूमि को वह थोड़े ही समय में

---

[1]वह स्थान या रेखा जिस पर सूर्य के पहुँचने के समय दिन और रात बराबर होते हैं।

चलकर समाप्त कर लेता है। दक्षिणायन का सूर्य केवल बारह मुहूर्तों में नक्षत्रों की कुल संख्या के आधे अर्थात् साढ़े तेरह नक्षत्रों के मंडल में भ्रमण करता है। और रात के शेष अट्ठारह मुहूर्तों में उतने ही अर्थात् साढ़े तेरह नक्षत्रों के मंडल में भ्रमण करता है। कुम्हार की चाक के मध्य भाग में स्थित वस्तु ? जिस प्रकार मन्द गति से भ्रमण करती है उसी प्रकार उत्तरायण का मन्दपराक्रम शील सूर्य मन्द गति से भ्रमण करता है। यही कारण है कि वह बहुत अधिक काल में भी अपेक्षाकृत थोड़े मंडल का भ्रमण कर पाता है। उत्तरायण का सूर्य अट्ठारह मुहूर्तों में केवल तेरह नक्षत्रों के मध्य में विचरण करता है और उतने ही नक्षत्रों के मंडलों में रात के बारह मुहूर्तों में भ्रमण करता है। सूर्य और चन्द्रमा की गति से मन्द गति में चाक पर रखे हुए मिट्टी के पिंड की भाँति चक्राकार घूमता हुआ ध्रुव भी मंद गति से नक्षत्र मंडलों में निरन्तर भ्रमण करता रहता है। ध्रुव तीस मुहूर्तों में अर्थात् पूरे दिन-रात भर में भ्रमण करता हुआ दोनों सीमाओं के मध्य में स्थित उन मंडलों की परिक्रमा करता है। उत्तरायण में सूर्य की गति दिन में मंद कही गई है और रात को तीक्ष्ण सुनी जाती है, इसी प्रकार दक्षिणायन में सूर्य दिन में शीघ्र गति से चलता है और रात में मंदगति हो जाती है। इस प्रकार अपने गमन के तारतम्य से दिन और रात का विभाग करता हुआ वह दक्षिण की अजावीथी एवं लोकालोक की उत्तर दिशा की ओर प्रवृत्त होता है। लोकसंतान पर्वत और वैश्वानर के मार्ग से बाहर की ओर वह जब आता है तब पुष्कर नामक द्वीप से उसकी कान्ति अधिक प्रखर हो जाती है। पथ की पार्श्व भूमियों से बाहर की ओर वहाँ लोकालोक नामक पर्वत है, जिसकी ऊँचाई दस सहस्र योजन है और अवस्थिति मंडलाकार है। उक्त पर्वत का मंडल प्रकाश एवं अन्धकार—दोनों से युक्त रहता है। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह एवं तारागण सभी ज्योतिष्पुञ्ज इस लोकालोक के भीतरी भाग में प्रकाशित होते हैं। जहाँ पर प्रकाश होता है, उतना ही लोक माना गया है, उसके उपरान्त की संज्ञा निरालोक (अन्धकारमय) मानी गयी है। लोक धातु आलोकन अर्थात् दिखाई देने के अर्थ में प्रयुक्त होता है और न दिखाई पड़ने का नाम ही अलोकता है। भ्रमण करता हुआ सूर्य जब लोक (प्रकाश) और अलोक (प्रकाश रहित) की संन्धि पर पहुँचता है अर्थात् दोनों का संयोग कराता है तो उस समय को लोग सन्ध्या के नाम से पुकारते हैं। उषा और व्युष्टि में परस्पर अन्तर माना गया है। अर्थात् प्रातः की उषा एवं सन्ध्या दोनों संधिकालों में कुछ अन्तर है। ऋषि गण उषा को रात्रि में और व्युष्टि को दिन के भीतर स्मरण करते हैं। एक मुहूर्त तीस कला का और एक दिन पन्द्रह मुहूर्त का होता है। दिनों के प्रमाण में ह्रास और वृद्धि जो होती है उसका कारण सन्ध्या काल में एक मुहूर्त की ह्रास-वृद्धि है, जो बढ़ा घटा करती है (?)। सूर्य विषुव प्रभृति विभिन्न पथों से गमन करता हुआ तीन मुहूर्तों का ? व्यतिक्रम करता है। सम्पूर्ण दिन के पाँच भाग कहे गये हैं। दिन के प्रथम तीन मुहूर्तों को प्रातःकाल कहते हैं। उस प्रातःकाल के व्यतीत हो जाने पर तीन मुहूर्त तक संगव नामक काल रहता है। उसके अनन्तर तीन मुहूर्त तक मध्याह्न काल रहता है। उस मध्याह्न काल के बाद अपराह्न काल का स्मरण किया जाता है। पंडितों ने इस को भी तीन ही मुहूर्तों का बतलाया है। अपराह्न के बीत जाने पर जो काल प्रारम्भ होता है, उसे सायंकाल कहते हैं। इस प्रकार पन्द्रह मुहूर्तों वाले एक दिन

में ये तीन-तीन मुहूर्तों के पाँच काल होते हैं। विषुव स्थान में सूर्य के जाने पर दिन का प्रमाण पन्द्रह मुहूर्तों का स्मरण किया जाता है। दक्षिणायन में दिन का प्रमाण बढ़ जाता है और इसके बाद उत्तरायण में आने पर घट जाता है। इस प्रकार दिन बढ़कर रात को घटाता है और रात बढ़कर दिन को कम करती है। विषुव शरत् और वसन्त ऋतु को माना गया है। जहाँ तक सूर्य के आलोक का अन्त होता है वहाँ तक की संज्ञा लोक है और उस लोक के पश्चात् अलोक की स्थिति कही जाती है। उस लोक और आलोक ? के मध्य भाग में लोकपालों का निवास-स्थान है। उन लोकपालों में ऐसे चार महात्मा हैं, जो सृष्टि के प्रलय पर्यन्त वहाँ निवास करते हैं। प्रथम लोकपाल वैराज सुधामा नामक हैं, दूसरे कर्दम प्रजाप्रति हैं, तीसरे पर्जन्य हिरण्यरोमा तथा चौथे राजस् केतुमान नामक हैं। ये चारों लोकपाल आलस्य, क्रोध, वैर, अभिमान और सांसारिक कार्यों से विमुख रहकर लोकालोक पर्वत की चारों दिशाओं में निवास करते हैं। वैश्वानर के मार्ग से बाहर उत्तर दिशा की ओर देवताओं तथा ऋषिओं द्वारा सेवित जो अगस्त्य ऋषि का शिखर है, उसकी पितृयाण नाम से प्रसिद्धि है। उस पुनीत स्थान पर प्रजा की कामना करने वाले अग्निहोत्र के उपासक, लोक को सन्तति प्रदान करने वाले, पितरों के मार्ग पर व्यवस्थित ऋषिगण निवास करते हैं। राजन्! वे लोकोपकारी ऋषि गण, जीवों के आरम्भ किये हुए कर्मों को सफल करनेवाले तथा मंगलदायी आशीर्वादों के देने वाले हैं। उनका मार्ग दक्षिणापथ कहा जाता है। प्रत्येक युगों में सनातन मर्यादा से स्खलित होने वाले धर्मों को अपनी उग्र तपस्या एवं श्रुतियों की परम्परा द्वारा वे पुनः स्थापित करते हैं। वे सभी उत्पन्न होकर अपने पिछले उत्तराधिकारियों के घर इस लोक में मृत्यु हो जाने के बाद जन्म धारण करते हैं और पीछे वाले अपने पूर्वजों की मृत्यु के बाद उनका स्थान ग्रहण करते हैं। इस प्रकार पर्याय क्रम से जन्म धारण करते हुए वे लोग समस्त भूतों के महाप्रलय तक विद्यमान रहते हैं। अट्ठासी सहस्र गृहस्थाश्रमी ऋषिगण सूर्य के दक्षिणापथ में अवस्थित होकर सृष्टि के प्रलय तक विद्यमान रहते हैं। ऋषियों की यह संख्या क्रियानिष्ठों की है, जो श्मशानों की शरण प्राप्त करते हैं। ऋषिगण लोक-व्यवहार की रक्षा के लिए जीवों द्वारा आरम्भ किये गये कर्म, इच्छा, द्वेष, आसक्ति, मैथुन तथा स्वेच्छाचारितावश अन्यान्य सांसारिक विषयों में आसक्त हो जाने से सिद्ध होने पर भी यहाँ श्मशानों की सेवा कर रहे हैं। द्वापर युग में प्रजा की कामना करनेवाले सात ऋषि गण उत्पन्न हुए थे; किन्तु उन लोगों ने बाद में चलकर सन्तति से घृणा की, जिससे मृत्यु को जीत लिया। उन ऊर्ध्वरेता अर्थात् अखंड ब्रह्मचारी अठासी सहस्र ऋषियों का मार्ग उत्तरापथ है। वे भी सृष्टि के प्रलय तक नष्ट नहीं होते। वे लोक कल्याण के करने, मिथुन के वर्जित रखने, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुर्गुणों से निवृत्त रहने, सर्वसाधारण जीवों द्वारा आरम्भ किये गये कार्यों को छोड़ देने तथा अन्य काम आदि सहवास विषय के वासनामय शब्दों में दोष देखने के कारण इस सिद्धि को प्राप्त हुए। इन शुद्ध कारणों से ही उन लोगों ने अमरत्व की प्राप्ति की थी। सृष्टि के महा प्रलय तक जीवन धारण करना ही अमरत्व कहलाता है। अखंड ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता त्रैलोक्य की स्थिति काल तक जीवन धारण करते हैं किन्तु कामासक्त व्यक्ति तब तक नहीं बच सकता। गर्भहत्या एवं अश्वमेध

आदि यज्ञों से उत्पन्न होनेवाले पापों तथा पुण्यों की भाँति वे ऊर्ध्वरेता महर्षि गण महाप्रलय के उपरान्त नष्ट होते हैं। अर्थात् जिस प्रकार ये घोर पाप तथा महान् पुण्य महा प्रलय तक जीवात्मा के साथ लगे रहते हैं, बीच में नष्ट नहीं होते उसी प्रकार ऊर्ध्वरेता का शरीर भी तब तक विद्यमान रहता है। सप्त ऋषियों के मंडल से ऊपर उत्तर दिशा में जहाँ पर ध्रुव निवास करते हैं भगवान् विष्णु का तीसरा परम दिव्य पद है, वहाँ पहुँचकर प्राणी शोच से विमुक्त हो जाते हैं। वही स्थल भगवान् विष्णु का परम पद माना गया है। जो प्राणी उस ध्रुव लोक की कामना करने वाले हैं वे ध्रुव के ही धर्म में आस्था रखते हैं अर्थात् उन्हीं की भाँति वे आचरण करते हैं। ॥१-११३॥

श्री मात्स्य महापुराण में भुवन कोश प्रसंग में चन्द्र सूर्य का लोक विस्तार वर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२४॥

एक सौ पचीसवाँ अध्याय

ऋषिगण! इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा एवं ग्रहगणों के भ्रमण की दिव्य कथा को सुनकर ऋषियों ने लोमहर्षण के पुत्र सूत से पुनः पूछा ॥१॥

ऋषियों ने कहा—सौम्य! ये ज्योतिर्गण ग्रह, नक्षत्र आदि किस प्रकार सूर्य के मंडल में भ्रमण करते हैं? सभी एक समूह में मिलकर वा अलग-अलग? कोई इन्हें भ्रमण कराता है अथवा ये स्वयमेव भ्रमण करते हैं? इस रहस्य को जानने की हमें बड़ी इच्छा है, कृपया कहिये। ॥२-३॥

सूत बोले—ऋषिगण! यह विषय प्राणियों को मोह में डालने वाला है। क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाई देता हुआ भी यह व्यापार लोगों को आश्चर्य एवं अज्ञान में डाल देता है। मैं कह रहा हूँ, सुनिये। जहाँ पर चौदह नक्षत्रों में शिशुमार नामक एक ज्योतिश्चक्र व्यवस्थित है वहाँ आकाश में उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव मेढ़ (लिङ्ग) (?) के समान एक स्थान में अवस्थित है। यह ध्रुव भ्रमण करता हुआ नक्षत्र गणों को सूर्य और चन्द्रमा के साथ भ्रमाता है और स्वयं भ्रमण करता है। चक्र के समान भ्रमण करते हुए इसी के पीछे-पीछे सब नक्षत्र गण भ्रमण करते हैं। वायुमय बन्धनों से ध्रुव में बँधे हुए वे ज्योतिर्गण ध्रुव के मन से ही भ्रमण करते हैं। उन ज्योतिश्चक्रों के भेद, योग, काल के निर्णय, अस्त, उदय, उत्पात, दक्षिणायन एवं उत्तरायण में स्थिति, विषुव रेखा पर गमन आदि कार्य सभी ध्रुव की प्रेरणा पर ही निर्भर करते हैं। इस लोक के जीवों की जिनसे उत्पत्ति होती है, वे जीमूत नामक मेघ कहे जाते हैं। उन्हीं की वृष्टि से सृष्टि होती है। वे मेघ गण आवहन नामक वायु के आश्रय पर टिके हुए हैं। इससे डेढ़ योजन की दूरी पर अवस्थित रहकर वे जल की वृष्टि करते हैं। ये ही वृष्टिकर्त्ता मेघगण हैं। वहाँ से एक योजन ऊपर जाकर मेघ गण विकार को प्राप्त होते हैं। उन्हीं मेघों से यतः वर्षा होती है अतः वे वृष्टि के एक मात्र आश्रय कहे जाते हैं। पुष्करावर्तक नामक मेघ गण पक्ष से उत्पन्न कहे जाते हैं। महान् तेजस्वी देवराज इन्द्र ने अपनी इच्छा के अनुसार

उड़ने वाले, परम समृद्ध, जीवों के नाश करने की इच्छा रखने वाले पर्वतों के पत्तों को काट डाला था। अति परिमाण में जल धारण करने वाले ये पुष्करावर्तक नामक मेघ उन्हीं पत्तों से उत्पन्न हुए थे। यही कारण है कि ये उक्त नाम वाले कहे गये। वे अनेक रूपों को धारण करने वाले, अति कर्कश, घोर शब्द करने वाले, क़ल्प की समाप्ति के अवसर पर महावृष्टि करने वाले तथा महा प्रलय के अवसर पर फैलने वाली प्रचंड अग्नि को शान्त करनेवाले हैं। वे वायु के सहारे ढोये जाते हैं। इनमें अमृत का वास रहता है। ये ही कल्प अर्थात् महाप्रलय के भी साधक हैं। विशाल अण्डकटाह (ब्रह्माण्ड) के भिन्न होने पर, जिससे स्वयं चतुरानन ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए हैं, उसके विशाल कपाल (टुकड़े) ही इस रूप में परिणत हो गये थे। वे ही इन मेघों के रूप में हैं। उन सभी मेघों की तृप्ति धूम द्वारा होती है, उनमें कोई तारतम्य (न्यूनाधिक्य) नहीं है। उनमें सबसे उत्तम पर्जन्य नामक मेघ है। उसके अतिरिक्त चार दिग्गज नाम से प्रख्यात हैं। सर्प, पर्वत, गज, एवं मेघ—ये सब एक ही कुल से उत्पन्न कहे जाते हैं। जो पीछे दो भागों में विभक्त हो गये हैं। किन्तु इन सबों का उत्पत्ति-स्थान एकमात्र जल कहा गया है। पर्जन्य और वृद्ध दिग्गज वृन्द हेमन्त ऋतु में शीत से उत्पन्न होनेवाले तुषार की वृष्टि अन्न की वृद्धि के लिए करते हैं। छठवाँ परिवद्ध नामक वायु, जो अतितेजोमय तथा आकाश गंगा को धारण करनेवाला है, इन सबों का आश्रय कहा जाता है। वह पुण्यप्रदायिनी आकाश गंगा दिव्य गुण युक्त अमृत के समान जल से समन्वित तथा त्रिपथगामिनी नाम से विख्यात है। उससे गिरता हुआ जल दिग्गज वृन्द अपने मोटे शुण्डादण्डों से शीकरों के रूप में छोड़ते हैं, जो नीहार के नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिण पार्श्व में हेमकूट नामक पर्वत विख्यात है, वह हिमालय के उत्तर तथा दक्षिण दोनों भागों में विस्तृत है, उस पर निवास करनेवाला पुण्ड़ नामक मेघ है, जो भली भाँति वृष्टि की वृद्धि करने के लिए है। उस स्थान पर जो वृष्टि होती है वह तुषारों से ही उत्पन्न होती है। इसीलिए हिमवान् पर्वत से हिमयुक्त वायु प्रवाहित होती है। मेघ गण अपने वेग से हिमकणों को खींचकर उस महागिरि को सिंचित करते हैं। उस हिमवान् पर्वत के बाद जो देश हैं उनमें नाम मात्र की शेष वृष्टि होती है। इसके उपरान्त इभास्य नामक वर्ष है, जो भली भाँति प्राणियों की वृद्धि के लिए ख्यात है। ये पिछले जो दो वर्ष बताये गये हैं, उनमें वृष्टि की अधिकता है। इस प्रकार सब प्रकार के मेघों का तथा उनके द्वारा होनेवाली वृष्टि का वर्णन मैं कर चुका। ॥१-२६॥

सूर्य ही सब प्रकार की वृष्टि का कर्ता कहे जाते हैं। इस लोक में होनेवाली वृष्टि, धूप, तुषार, रात-दिन, दोनों सन्ध्याएँ, शुभ एवं अशुभ फल—सभी ध्रुव से प्रवर्तित होते हैं। ध्रुव में स्थित जल को सूर्य ग्रहण करता है। सभी प्रकार के जीवों के शरीर में जल परमाणु रूप में आश्रित रहता है। स्थावर जंगम जीवों के भस्म होते समय वह धुएँ के रूप में परिणत होकर सभी ओर से निकलता है। उसी धूम से मेघगण उत्पन्न होते हैं। आकाश मण्डल में अभ्रमय स्थान कहा जाता है। अपनी तेजोमयी किरणों से सूर्य सभी लोकों से जल को ग्रहण करता है। वे ही किरणें वायु के संयोग द्वारा समुद्र से भी जल को खींचती हैं। तदन्तर सूर्य ग्रीष्मादि ऋतु के प्रभाव से समय-समय पर परिवर्तन कर जल को अपनी श्वेत किरणों

द्वारा उन मेघों को जल देता है। वायु द्वारा प्रचालित होने पर मेघों की जलराशि बाद में चलकर पृथ्वी तल पर गिरती है। और तदनन्तर छः महीनों तक सभी प्रकार के जीवों की सन्तुष्टि एवं अभिवृद्धि के लिए सूर्य पृथ्वी तल पर वृष्टि करता है। वायु के वेग से उन मेघों में शब्द होते हैं। बिजलियाँ अग्नि से उत्पन्न बतलाई जाती हैं। 'मिह सेचने' धातु से मेघ शब्द जल छोड़ने अथवा सिंचन करने के अर्थ में निष्पन्न होता है। जिससे जल न गिरे उसे अभ्र (न भ्रश्यते आपो यस्मादसावभ्रः) कहते हैं। इस प्रकार वृष्टि की उत्पत्ति करनेवाले सूर्य ध्रुव के संरक्षण में रहते हैं। उसी ध्रुव के संरक्षण में अवस्थित वायु उस वृष्टि का उपसंहार करती है। नक्षत्रों का मण्डल सूर्य मण्डल से वहिर्गत होकर विचरण करता है। जब संचार समाप्त हो जाता है तब ध्रुव द्वारा अधिष्ठित सूर्य मण्डल में वे सभी प्रवेश करते हैं। अब इसके बाद मैं सूर्य के रथ का प्रमाण बतला रहा हूँ ॥२७-३७॥

एक चक्र, पाँच अरे, तीन नाभि तथा सुवर्ण की छोटी आठ पुट्ठियों द्वारा बनी हुई नेमि (जिस पर हाल चढ़ाई जाती है) से बने हुए तेजोमय शीघ्रगामी रथ द्वारा सूर्य गमन करते हैं। उनके रथ की लम्बाई एक लाख योजन कही जाती है। जुवे का दण्ड उससे दूना कहा गया है। वह सुन्दर रथ ब्रह्मा ने मुख्य प्रयोजन के लिए बनाया है। संसार भर में वह सुन्दर रथ अनुपम है। सुवर्ण द्वारा उसकी रचना हुई है। वह सचमुच परम तेजोमय है। पवन के समान वेगशील, चक्के की स्थिति के अनुकूल चलने वाले अश्वरूप धारी छन्दों से वह संयुक्त है। वरुण के रथ के चिह्नों से वह मिलता-जुलता है। उसी अनुपम रथ पर चढ़कर भगवान् भास्कर प्रतिदिन आकाश मार्ग में विचरण करते हैं। सूर्य के अंग तथा उसके रथ के प्रत्येक अंग-प्रत्यङ्ग वर्ष के अवयवों के रूप में कल्पित किये गये हैं। दिन उस एकचक्र सूर्यरथ की नाभि है और अरे उनके संवत्सर हैं, छहों ऋतुएँ नेमि कही जाती हैं। रात्रि उनके रथ का वरुथ[1] तथा घर्म[2] (घाम) ऊर्ध्वध्वजा के रूप में कल्पित है। चारों युग उस रथ की पहिये के छोर तथा कलाएँ जुवे की अग्रभाग हैं। दसों दिशाएँ अश्वों की नासिका तथा क्षण उनके दाँतों की पंक्तियाँ हैं। निमेष उनके अनुकर्ष[3] तथा कला जुवे का दण्ड है। अर्थ तथा काम—इस (रथ) के जुवे के अक्ष के अवयव हैं। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती तथा उष्णिक—ये सात छन्द अश्व रूप धारण कर वायु वेग से उस रथ को वहन करते हैं। इस रथ का चक्र अक्ष में बँधा हुआ है। और अक्ष ध्रुव से संलग्न है। चक्र के साथ अक्ष तथा अक्ष के साथ ध्रुव भ्रमण करता है। ध्रुव की प्रेरणा से प्रेरित रथ का अक्ष चक्र के समेत भ्रमण करता है। इस प्रकार किसी विशेष प्रयोजन के वश होकर उस रथ की निर्मिति ब्रह्मा ने की है। उक्त साधनों से संयुक्त भगवान् सूर्य का वह रथ आकाश मण्डल में भ्रमण करता है। इसके

[1] लोहे की चद्दर वा सोकड़ों का बना हुआ आवरण वा झूल, जो शत्रुपक्ष के आघात से रथ को सुरक्षित रखने के लिए उसके ऊपर डाली जाती है।

[2] कई पुस्तकों में 'धर्म' पाठ पाया जाता है। परन्तु 'घर्म' पाठ अधिक समीचीन है।

[3] रथ के नीचे रहनेवाली पहिये के ऊपर बँधी हुई लकड़ी।

दक्षिण भाग की ओर जुआ और अक्ष का शिरोभाग है। चक्का और जुवे में रश्मि का संयोग है। चक्के और जुवे के भ्रमण करते समय दोनों रश्मियाँ भी मण्डलाकार ? भ्रमण करती हैं। वह जुआ और अक्ष का शिरोभाग कुम्हार के चक्के की भाँति ध्रुव के चारों ओर परिभ्रमण करता है। उत्तरायण में इसका भ्रमण मण्डल ध्रुव मण्डल में प्रविष्ट हो जाता है, और दक्षिणायन में ध्रुव मण्डल से बाहर ? निकल आता है। इसका कारण यह है कि उत्तरायण में ध्रुव के आकर्षण से दोनों रश्मियाँ संक्षिप्त हो जाती हैं, और दक्षिणायन में ध्रुव के रश्मियों के परित्याग कर देने से बढ़ जाती हैं। ध्रुव जिस समय रश्मियों को आकृष्ट कर लेता है उस समय सूर्य दोनों दिशाओं की ओर अस्सी सौ मण्डलों ? के व्यवधान पर विचरण करता है। और जिस समय ध्रुव दोनों रश्मियों को त्याग देता है उस समय भी उतने ही ? परिमाण में वेगपूर्वक बाहरी ओर से मण्डलों को वेष्टित ? करता हुआ भ्रमण करता है (?)। ॥३८-५८॥

श्री मात्स्य महापुराण के भुवनकोश प्रसंग में सूर्य और चन्द्रमा की गति वर्णन नामक एक सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२५॥

एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय

सूत बोले—ऋषिवृन्द ! भगवान् भास्कर का वह रथ महीने-महीने के क्रमानुसार देवताओं द्वारा अधिरोहित होता है अर्थात् प्रत्येक महीने में देवादिगण इस पर आरोहित होते हैं। और इस प्रकार बहुत से ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, सारथी तथा राक्षस के समूहों के समेत वह सूर्य को वहन करता है। ये देवादि के समूह क्रम से सूर्य मण्डल में दो-दो मास तक निवास करते हैं। धाता, अर्यमा—दो देव, पुलस्त्य तथा पुलह नामक दो ऋषि प्रजापति, वासुकि तथा संकीर्ण नामक दो सर्प, गानविद्या में विशारद तुम्बुरू तथा नारद नामक दो गन्धर्व, कृतस्थला तथा पुञ्जिकस्थली नामक दो अप्सराएँ, रथकृत तथा रथौजा नामक दो सारथी, हेति तथा प्रहेति नामक दो राक्षस—ये सब सम्मिलित रूपेण चैत्र तथा वैशाख के महीने में सूर्य मण्डल में निवास करते हैं। ग्रीष्म ऋतु के ज्येष्ठ तथा आषाढ़—दो महीनों में मित्र तथा वरुण नामक दो देव, अत्रि तथा वसिष्ठ नामक दो ऋषि, तक्षक तथा रम्भक नामक दो सर्पराज, मेनका तथा धन्या नामक दो अप्सरायें, हाहा तथा हूहू नामक दो गंधर्व, रथन्तर तथा रथकृत नामक दो सारथी, पुरुषाद और वध नामक दो राक्षस सूर्य मण्डल में निवास करते हैं। तदुपरान्त सूर्यमण्डल में अन्य देवादिगण निवास करते है। उनमें इन्द्र तथा विवस्वान्—ये दो देव, अंगिरा तथा भृगु—ये दो ऋषि, एलापत्र तथा शंखपाल नामक दो नागराज, विश्वावसु तथा सुषेण नामक दो गन्धर्व, प्रात और रवि नामक दो सारथी, प्रम्लोचा तथा निम्लोचन्ती नामक दो अप्सरायें तथा हेति तथा व्याघ्र नामक दो राक्षस रहते हैं। ये सब सावन तथा भादों के महीनों में सूर्यमण्डल में निवास करते हैं। इसी प्रकार शरद् ऋतु के दो महीनों में अन्य देवगण निवास करते हैं। पर्जन्य और पूषा नामक दो देव, भरद्वाज और गौतम नामक दो महर्षि, चित्रसेन और

सुरुचि नामक दो गन्धर्व, विश्वाची तथा घृताची नामक दो शुभ लक्षण सम्पन्न अप्सराएँ, सुप्रसिद्ध ऐरावत तथा धनञ्जय नामक नागराज, सेनजित् तथा सुषेण नामक सारथी तथा नायक चार तथा बात नामक दो राक्षस—ये सब आश्विन तथा कार्तिक मास में सूर्यमण्डल में निवास करते हैं। हेमन्त ऋतु के दो महीनों में जो देवादिगण सूर्य में निवास करते हैं—वे ये हैं। अंश और भाग—ये दो देव, कश्यप और क्रतु—ये दो ऋषि, महापद्म तथा कर्कोटक नामक सर्पराज, चित्रसेन और पूर्णायु नामक गायक गन्धर्व, पूर्वचित्ति तथा उर्वशी—ये दो अप्सराएँ, तक्षा तथा अरिष्टनेमि नामक सारथी एवं नायक विद्युत् तथा सूर्य (?) नामक दो उग्र राक्षस—ये सब मार्गशीर्ष और पौष के महीनों में सूर्य मण्डल में निवास करते हैं। तदनन्तर शिशिर ऋतु के दो महीनों में त्वष्टा तथा विष्णु—ये दो देव, जमदग्नि तथा विश्वामित्र—ये दो ऋषि, काद्रवेय तथा कम्बलाश्वतर—ये दो नागराज, सूर्यवर्चा तथा धृतराष्ट्र—ये दो गन्धर्व,—सुन्दरता से मन को हर लेने वाली तिलोत्तमा तथा रम्भा नामक दो अप्सराएँ, ऋतजित् तथा सत्यजित् नामक दो महाबलवान् सारथी ब्रह्मोपेत तथा यज्ञोपेत नामक दो राक्षस निवास करते हैं। ॥१-२३॥

ये उपर्युक्त देव आदि गण क्रम से दो-दो महीने तक सूर्य मंडल में निवास करते हैं। ये बारह सप्तकों (देव, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, सारथी, नाग और अप्सरा) के जोड़े इन स्थानों के अभिमानी कहे जाते हैं। और ये सब बारह सप्तक देवादिगण भी अपने अतिशय तेज से सूर्य को उत्तम तेजों वाला बनाते हैं। ऋषिगण अपने बनाए हुए गेय वाक्यों से सूर्य की स्तुति करते हैं। गन्धर्व एवं अप्सराएँ अपने अपने नृत्यों तथा गीतों से सूर्य की उपासना करती हैं। विद्या में परम प्रवीण सारथी यक्षगण सूर्य के अश्वों की डोरियाँ पकड़ते हैं। सर्पगण सूर्यमण्डल में द्रुत गति से इधर-उधर दौड़ते तथा राक्षसगण पीछे-पीछे चलते हैं। इनके अतिरिक्त बालखिल्य ऋषि उदयकाल से सूर्य के समीप अवस्थित रह कर उन्हें अस्ताचल को प्राप्त कराते हैं। इन उपर्युक्त देवताओं का जिस प्रकार का पराक्रम, तपोबल, योगबल, धर्म, तत्त्व तथा शारीरिक बल रहता है, उसी प्रकार उनके तेज रूप इन्धन से समिद्ध होकर सूर्य अधिकाधिक तेजस्वी रूप में तपता है। यह सूर्य अपने तेजोबल से समस्त जीवों के अकल्याण का प्रशमन करता है, मनुष्यों की आपदा को इन्हीं मंगलमय उपादानों से दूर करता है और कहीं कहीं पर शुभाचरण करने वालों के अकल्याण को हरता है। ये उपर्युक्त सप्तक सूर्य के साथ ही अपने अनुचरों समेत आकाश मण्डल में भ्रमण करते हैं। ये देवगण दयावश प्रजावर्ग से तपस्या तथा जप कराते हुए उनकी रक्षा करते हैं तथा उनके हृदय को प्रसन्नता से पूर्ण कर देते हैं। अतीत काल, भविष्यत्काल तथा वर्तमान काल के स्थानाभिमानियों के ये स्थान विभिन्न मन्वन्तरों में भी वर्तमान रहते हैं। इस प्रकार नियमपूर्वक चौदह की संख्या में जोड़े रूप में वे सप्तक देवादि गण सूर्य मंडल में निवास करते हैं और चौदह मन्वन्तरों तक क्रमपूर्वक विद्यमान रहते हैं। ॥२४-३४॥

इस प्रकार सूर्य ग्रीष्म, शिशिर तथा वर्षा ऋतु में अपनी किरणों का क्रमशः परिवर्तन कर घाम, हिम तथा वृष्टि करता हुआ प्रतिदिन देवता, पितर तथा मनुष्यों को तृप्त करता है। और प्रतिक्षण

भ्रमण करता है। देव गण दिन-दिन के क्रम से शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष में महीने भर काल क्षय के अनुसार उस मीठे अमृत का पान करते हैं, जो सुवृष्टि के लिए सूर्य की किरणों द्वारा रक्षित रहता है। सभी देवता, सौम्य तथा काव्यादि पितरगण सूर्य के उस अमृत रस का पान करते हैं और कालान्तर में सुवृष्टि करते हुए संसार को तृप्त करते हैं। मानव गण सूर्य की किरणों द्वारा बढ़ाई गई, जल द्वारा परिवर्द्धित तथा वृष्टि द्वारा प्रवर्द्धित औषधियों से तथा अन्न से क्षुधा को अपने वश में करते हैं। सूर्य की उस संचित अमृत राशि से देवताओं की तृप्ति पन्द्रह दिनों तक तथा स्वधामय पितरों की तृप्ति एक महीने तक होती है। वृष्टि जनित अन्न राशि से मनुष्य गण सर्वदा अपना जीवन धारण करते हैं। इस प्रकार सूर्य अपनी किरणों द्वारा सब की पालना करता है। ॥३५-३८॥

सूर्य अपने उस एकचक्र रथ द्वारा शीघ्र गमन करता है और दिन के व्यतीत हो जाने पर उन्हीं विषम (सात अश्वों) संख्यक अश्वों द्वारा वह अपने स्थान को पुनः प्राप्त करता है। हरे रंग वाले अपने अश्वों से वह वहन किया जाता है और अपनी सहस्र किरणों से जल का हरण करता है एवं तृप्त होने पर हरित वर्ण वाले अपने अश्वों से संयुक्त रथ पर चढ़कर उसी जल को पुनः छोड़ता है। इस प्रकार अपने एक चक्र वाले रथ द्वारा दिन रात चलता हुआ सूर्य सातों द्वीपों तथा सातों समुद्रों समेत निखिल पृथ्वी मंडल का भ्रमण करता है। उसका वह अनुपम रथ अश्व रूपधारी छन्दों से युक्त है उसी पर वह समासीन होता है। वे अश्व इच्छानुकूल रूप धारण करने वाले, एक बार जोते गये, इच्छानुरूप चलने वाले तथा मन के वेग के समान शीघ्रगामी हैं। उनके रंग हरे हैं, उन्हें थकावट नहीं लगती। वे दिव्य तेजोमय शक्ति शाली तथा ब्रह्मवेत्ता हैं। प्रति दिन अपने निर्धारित परिधि मंडल की परिक्रमा बाहर तथा भीतर से वे करते हैं। युग के आदि काल में जोते गये वे अश्व महा प्रलय तक सूर्य का भार वहन करते हैं। बालखिल्य आदि ऋषि गण चारों ओर से परिभ्रमण के समय सूर्य को रात-दिन घेरे रहते हैं। महर्षि गण स्वरचित स्तोत्रों द्वारा उसकी स्तुति करते हैं। गन्धर्व तथा अप्सराओं के समूह संगीत तथा नृत्यों से उसका सत्कार करते हैं। इस प्रकार वह दिनमणि भास्कर पक्षियों के समान वेगशाली अश्वों द्वारा भ्रमण कराया जाता हुआ नक्षत्रों की वीथियों में विचरण करता है। उसी की भाँति चन्द्रमा भी भ्रमण करता है। चन्द्रमा की ह्रास-वृद्धि सूर्य के समान ही कही गई है। किरणें भी इसकी सूर्य के ही समान कही जाती हैं। चन्द्रमा का रथ तीन चक्रोंवाला है। उसके दोनों ओर अश्व जुते हैं। वह उस रथ, अश्व तथा सारथी के समेत ही गर्भ से उत्पन्न हुआ था। उसका सुन्दर रथ हार से सुशोभित, उन तीन चक्रों तथा स्वच्छ श्वेत रंग वाले दस अश्वों से अलंकृत है, जो दिव्य तेजोमय, अनुपम तथा मन के समान वेगशाली हैं। वे अश्व एक बार रथ में जोते जाते हैं तथा महाप्रलय होने तक बराबर भार वहन करते रहते हैं। रथ में जुते हुए, श्वेत आँख और कान वाले, एक रंगी, शंख के समान सुन्दर वे अश्व चन्द्रमा का भार वहन करते हैं। अज, त्रिपथ, वृष, बाजी, नर, हय, अंशुमान, सप्तधातु, हंस तथा व्योममृग— ये दस चन्द्रमा के अश्वों के नाम हैं। वे बलवान् अश्व महाप्रलय तक चन्द्रमा को वहन करते हैं। इस

प्रकार देवताओं तथा पितरों द्वारा चारों ओर से घिरा हुआ चन्द्रमा भ्रमण करता है। शुक्ल पक्ष के प्रारम्भ में सूर्य के पर भाग में अवस्थित होने के कारण चन्द्रमा का रिक्त भाग एक-एक दिन के क्रम से पूर्ण होता जाता है। देवताओं द्वारा अमृत के पी लेने से नष्ट शक्ति वाले चन्द्रमा को सूर्य अपने तेज से तृप्ति लाभ कराता है। और इस प्रकार पन्द्रह दिनों में देवताओं द्वारा पीकर रिक्त किये गये चन्द्रमा के एक-एक भाग को सूर्य अपनी एक किरण द्वारा एक-एक दिन के क्रम से पूर्ण करता जाता है। सूर्य की सुषुम्ना नामक किरण द्वारा तृप्ति को प्राप्त चन्द्रमा की कलाएँ शुक्ल पक्ष में बढ़ती जाती हैं और कृष्ण पक्ष में घटने लगती हैं और फिर शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त हो जाती हैं। इस रीति से सूर्य की शक्ति प्राप्त कर चन्द्रमा का शरीर वृद्धि को प्राप्त होता है और पूर्णिमा के दिन उसका सम्पूर्ण मंडल श्वेत दिखाई पड़ने लगता है। चन्द्रमा शुक्ल पक्ष में एक-एक दिन के क्रम से वृद्धि को प्राप्त होता है। जलों के सारभूत रसमात्रात्मक चन्द्रमा के सौम्य अमृत को कृष्ण पक्ष की द्वितीया से चतुर्दशी तक देवतागण पान करते हैं। सूर्य के तेज से एक पक्ष में देवताओं के भक्षणार्थ इस प्रकार अमृत एकत्र होता है और पूर्णिमा तिथि को वह पूर्ण हो जाता है। उस समय एक रात तक देवगण ऋषियों तथा पितरों के साथ उसकी उपासना (सेवन) करते हैं। सूर्य के अभिमुख उपस्थित चन्द्रमा का शरीर कृष्ण पक्ष के प्रारम्भ में देवताओं द्वारा पी जाती हुई अपनी एक-एक कलाओं के क्रम से क्षीण होता जाता है। इस प्रकार कुल मिलाकर छत्तीस सहस्र तीन सौ तैंतीस देवता चन्द्रमा का वह अमृत पान करते हैं। देवताओं द्वारा पी गई चन्द्रमा की वे कलाएँ कृष्ण पक्ष में ह्रास को तथा शुक्ल पक्ष में वृद्धि को प्राप्त होती हैं। एक-एक दिन के क्रम से एक पक्ष तक देवगण चन्द्रमा के अमृतरस का पान कर अमावस्या को अन्यत्र चले जाते हैं। उस समय अमावस्या को पितरगण चन्द्रमा के पास रहते हैं। तदनन्तर पन्द्रहवें भाग के कुछ शेष रह जाने पर दूसरे दिन तीसरे प्रहर के समय उन शेष कलाओं को वे केवल दो कला समय तक पीते हैं। अमावस्या को चन्द्रमा की किरणों द्वारा निकलते हुए उस अमृत को पी कर आधे महीने की समाप्ति हो जाने पर वे पितरगण भी अन्यत्र चले जाते हैं। पितरगण सौम्य, बर्हिषद्, अग्निष्वात्त तथा काव्य नाम से प्रसिद्ध हैं। पाँच वर्षों के संवत्सर नामवाले जो काव्य संज्ञक पितरगण कहे जाते हैं, वे भी द्विज के नाम से स्मरण किये जाते हैं। उन सौम्य नामक पितरों को परम तपस्वी जानना चाहिये। सौम्य, बर्हिषद्, तथा अग्निष्वात्त—ये तीनों पितरगण एक ही समान तपस्वी हैं। ये पितृलोक में निवास करनेवाले द्विज कहे जाते हैं। पूर्णिमा तिथि को पितरों द्वारा पिये जाने पर चन्द्रमा की कला का जो भाग क्षय होता है वह पन्द्रहवाँ भाग है। अमावस्या के बाद से चन्द्रमा का रिक्त भाग पूर्ण होता है। चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय दोनों पक्ष के आदि संधिकाल में ही होते हैं। उसकी सत्ता सोलह कलाओं में रक्षित है। इस प्रकार सूर्य के कारण चन्द्रमा में ह्रास एवं वृद्धि होती कही जाती है। ॥३९-७२॥

श्री मात्स्य महापुराण में भुवनकोष प्रसंग में सूर्य आदि गमन वर्णन नामक
एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२६॥

एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! अब इसके उपरान्त मैं तारा, ग्रह तथा स्वर्भानु के रथ का वर्णन कर रहा हूँ । चन्द्रमा के पुत्र बुध का रथ तेजोमय, निर्मल तथा श्वेत रंग का है । उनका वह रथ वायु के समान वेगशाली पीले वर्णों वाले दस अश्वों से युक्त है । उन अश्वों के नाम श्वेत, पिशंग, सारंग, नील, श्याम, विलोहित, श्वेत, हरित, पृषत् और वृष्णि हैं । इन्हीं दस महाभाग्यशाली, अनुपम, वायु के वेग के समान अश्वों से बुध का रथ युक्त है । मंगल का रथ आठ चक्रोंवाला तथा सुवर्ण निर्मित बतलाया जाता है । वह भौमरथ अग्नि में उत्पन्न लाल रंग के आठ अश्वों तथा ध्वजाओं से युक्त है । इस सुन्दर रथ के द्वारा कुमार मंगल सरल तथा वक्र गति में चलते हैं । देवताओं के आचार्य बृहस्पति श्वेत रंग के सुवर्ण निर्मित सुन्दर रथ पर गमन करते हैं । वह उनका रथ आठ अश्वों से संयुक्त तथा अग्नि में उत्पन्न हुई ध्वजाओं से सुशोभित है । देवगुरु बृहस्पति एक राशि पर एक वर्ष रहते हैं और अपनी अभीष्ट दिशाओं को उसी रथ से जाते हैं । भृगुपुत्र शुक्र आठ सुन्दर अश्वों तथा अग्नि के समान ध्वजाओं से युक्त शीघ्रगामी रथ द्वारा भ्रमण करते हैं । शनैश्चर भी बलवान्, वायु के समान वेगशाली, अश्वों से युक्त काले लौह निर्मित रथ पर अधिरूढ़ होकर गमन करते हैं । जिस प्रकार राहु के आठ काले रंग वाले वायु के समान वेगशाली अश्व हैं, उसी प्रकार उनका रथ अन्धकार से युक्त की भाँति है । भली भाँति आवरणों से सुसज्जित अश्वगण राहु के उस रथ का वहन करते हैं । पर्व के अवसर पर सूर्य के मण्डल में स्थित राहु चन्द्रमा के पास जाता है और कृष्ण पक्ष के अन्त में ग्रहण लगने पर चन्द्रमा के स्थान से सूर्य के पास आता है । केतु के अश्व वायु के समान वेगशाली हैं और उनकी संख्या आठ है । वे अश्व तृणादि के धूएँ के समान कान्तिवाले, दुर्बल तथा बड़े ही दारुण हैं । नवग्रहों के अश्वों को रथों के समेत मैं बतला चुका । ये सभी वायु की रश्मियों द्वारा ध्रुव में बँधे हुए हैं । अदृश्य वायु की रश्मियों द्वारा प्रेरित ये ग्रहों के रथसमूह अपने-अपने पथ पर भ्रमण करते हैं । जिस प्रकार ध्रुव में बँधे हुए चन्द्रमा सूर्य आदि ग्रह गण आकाश में भ्रमण करते हैं, अन्यान्य ज्योतिंगण भी उसी प्रकार अदृष्ट वायु रश्मियों द्वारा निबद्ध होकर ध्रुव के पीछे-पीछे चलते हैं । जिस प्रकार नदी के जल में पड़ी हुई नौका जल के साथ बहती है उसी प्रकार वायु की शक्ति से देवताओं के वे निवास-स्थान वहन किये जाते हैं । चन्द्र सूर्य आदि ग्रहों के मंडल वायु की रश्मि द्वारा ही वहन किये जाते हैं । इसीलिए आकाश में ये देवगृह के नाम से प्रसिद्ध हैं । आकाश में जितनी ताराओं की संख्या है उतनी ही संख्या ध्रुव की रश्मियों की भी है । वे सभी रश्मियाँ ध्रुव में बँधी हुई हैं । इसी से भ्रमण करती हुई ताराओं को वे भ्रमाती हैं । जिस प्रकार तैल पेरने का यन्त्र स्वयं घूमता है और अपने से सम्बद्ध अन्य वस्तुओं को भी भ्रमाता है, उसी प्रकार वायु द्वारा बद्ध वे ज्योतिंगण चारों ओर ध्रुव में बँधकर भ्रमण करते हैं । इस प्रकार आलातचक्र की तरह वायु चक्र द्वारा प्रेरित होकर ज्योतिंगण भ्रमण करते हैं । जिस वायु के द्वारा वे भ्रमते हैं, वह प्रवह

नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार ध्रुव में बँधे हुए ज्योतिश्चक्र वायु द्वारा चारों ओर भ्रमण करते हैं। आकाश में स्थित जो शिशुमार नामक चक्र कहा गया है, सभी ताराओं समेत ध्रुव की अवस्थिति उसी के भीतर है। उसे रात्रि के समय देखने पर दिन का सब पाप नष्ट हो जाता है। इस शिशुमार चक्र के पूर्ण शरीर में जितनी ताराएँ हैं, उतने ही वर्षों तक देखने वाला प्राणी जीवित रहता है। और इसकी आकृति को यदि विभाग पूर्वक भली भाँति कोई जान लेता है तो अपनी आयु से उतना वर्ष और अधिक जीवित रहता है। इस (शिशुमार चक्र) के उत्तरीय कपोल में उत्तानपाद को जानना चाहिये। यज्ञ को इसके अधर भाग में तथा धर्म को मूर्धा पर अवस्थित मानना चाहिये। इसके हृदय भाग में नारायण तथा साध्य देव-गण तथा दोनों पादों में अश्विनी कुमार को जानना चाहिये। वरुण तथा अर्यमा-ये दो पश्चिम भाग में उसके रथ के अवयव भूत हैं। शिश्न (लिंग) स्थान पर संवत्सर को तथा गुदास्थान पर मित्र को जानना चाहिये। उसकी पुच्छ पर अग्नि, महेन्द्र, मरीचि, कश्यप तथा ध्रुव अवस्थित हैं। यह ताराओं से बना हुआ स्तम्भ चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, तारा गण तथा ग्रहादि के साथ न तो कभी अस्त होता है और न कभी उदित। उसकी ओर अभिमुख होकर ज्योति समूह चक्र के समान आकाश में अवस्थित हैं। ध्रुव के ही संरक्षण में अवस्थित वे सब देवताओं में श्रेष्ठ तथा आकाश मंडल में मेंढ़ (लिंग) के समान स्थित उन्हीं (ध्रुव) की प्रदक्षिणा करते हैं। उन आग्नीध्र तथा काश्यप के वंश में ध्रुव ही सर्वश्रेष्ठ हैं। ये ध्रुव अकेले ही मेरु के अन्तर्वर्ती शिखर पर निम्नमुख किए अवस्थित सभी ज्योतिश्चक्रों को आकृष्ट करते हुए तथा मेरु को देखते हुए भ्रमण करते रहते हैं। ॥१-२९॥

श्रीमात्स्य महापुराण में भुवन कोश प्रसंग में ध्रुव प्रशंसा वर्णन नामक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२७॥

एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! ये सब जितनी कथाएँ आपने सुनाई हैं उन सब को तो हम लोगों ने सुन लिया, किन्तु वे देवगृह किस प्रकार के हैं? (इसे जानने की इच्छा शेष है) अतः पुनः आप उन ज्योतिष्पुंजों का वर्णन करें। ॥१॥

सूत ने कहा—यह सब विषय मैं बतला रहा हूँ। सूर्य तथा चन्द्रमा की गति पुनः बतला रहा हूँ। जिस प्रकार के देवताओं के गृह होते हैं तथा सूर्य तथा चन्द्रमा के मंडल होते हैं उसे भी बतला रहा हूँ। आदिम काल में यह समस्त जगत् रात्रि काल में अन्धकार से आच्छन्न एवं आलोकहीन था। अव्यक्त योनि ब्रह्मा जी ने जगत् की किसी भी वस्तु में प्रकाश नहीं किया था। इस प्रकार (युगादि में) चार[1] पदार्थों के

---

[1] अग्नि को छोड़कर पृथ्वी, जल, आकाश और वायु—ये चार महाभूत।

शेष रह जाने पर यह जगत् ब्रह्मा द्वारा अधिष्ठित हुआ। पश्चात् स्वयम् उत्पन्न होनेवाले लोक के परमार्थसाधक भगवान् ने खद्योत रूप धारण कर इस जगत् को व्यक्त रूप में प्रकट करने की चिन्ता की। और कल्प के आदि में अग्नि को जल और पृथ्वी में मिली हुई जानकर प्रकाश करने के लिए तीनों को एकत्र किया। इस प्रकार तीन प्रकार से अग्नि उत्पन्न हुई। इस लोक में जो अग्नि भोजन आदि सामग्रियों को पकाने वाली है, वह पार्थिव (पृथ्वी के अंश से उत्पन्न) अग्नि है। जो यह सूर्य में अधिष्ठित होकर तपती है वह शुचि नामक अग्नि है। उदरस्थ पदार्थों को पकाने वाली अग्नि विद्युत् की अग्नि कही जाती है, उसे सौम्य नाम से भी जानते हैं। इस विद्युत् अग्नि का उपकारक इन्धन जल है। कोई अग्नि अपने तेजों से बढ़ती है और कोई विना किसी इन्धन के ही बढ़ती है। काष्ठ के इन्धन से प्रज्वलित होने वाली अग्नि का निर्मथ्य नाम है, यह अग्नि जल से शान्त हो जाती है। भोजनादि को पकाने वाली जठराग्नि ज्वालाओं से युक्त, देखने में सौम्य एवं कान्तिविहीन है। यह अग्नि श्वेत मण्डल में ज्वाला रहित एवं प्रकाश विहीन है। सूर्य की प्रभा सूर्य के अस्त हो जाने पर रात्रि काल में अपने चतुर्थ अंश से अग्नि में प्रवेश करती है, इसी कारण रात्रि में अग्नि प्रकाश युक्त हो जाती है। प्रातः काल सूर्य के उदित होने पर अग्नि की उष्णता अपने तेज के चतुर्थ अंश से सूर्य में प्रवेश कर लेती है, इसी कारण दिन में सूर्य तपता है। सूर्य और अग्नि के प्रकाश, उष्णता और तेज—इन सबों के परस्पर प्रविष्ट होने के कारण दिन और रात्रि की शोभावृद्धि होती है। पृथ्वी के उत्तरवर्ती अर्धभाग तथा दक्षिण भाग में सूर्य के उदित होने पर रात्रि जल में प्रवेश करती है, इसीलिए दिन और रात—दोनों के प्रवेश करने के कारण जल दिन में लाल वर्ण का दिखाई देता है। पुनः सूर्य के अस्त हो जाने पर दिन जल में प्रवेश करता है, इसीलिए रात के समय जल चमक विशिष्ट तथा श्वेत रंग का दिखाई पड़ता है। इस क्रम से पृथ्वी के अर्ध दक्षिणी तथा उत्तरी भाग में सूर्य के उदय तथा अस्त के अवसरों पर दिन-रात्रि जल में प्रवेश करती हैं। यह सूर्य, जो तप रहा है, अपनी किरणों से जल का पान करता है। इस सूर्य में निवास करनेवाली अग्नि सहस्र किरणों वाली तथा रक्त कुम्भ के समान लाल वर्ण की है। यह चारों ओर से अपनी सहस्र नाड़ियों से नदी, समुद्र, तालाब, कुआँ आदि के जलों को ग्रहण करती है। उस सूर्य की सहस्र किरणों से शीत, वर्षा एवं उष्णता का निःस्रवण होता है। उसकी एक सहस्र किरणों में चार सौ नाड़ियाँ विचित्र आकृतवाली तथा वृष्टि करनेवाली स्थित हैं। चन्दना, मेध्या, केतना, चेतना, अमृता तथा जीवना—सूर्य की ये किरणें वृष्टि करनेवाली हैं। हिम से उत्पन्न होनेवाली सूर्य की तीन सौ किरणें कही जाती हैं, जो चन्द्रमा ताराओं एवं ग्रहों द्वारा पी जाती हैं। ये मध्य की नाड़ियाँ हैं। अन्य ह्लादिनी नामक किरणें हिम की सृष्टि करने वाली हैं। शुक्ला, ककुभ, गौ तथा विश्वसृत नामक जो अन्य किरणें हैं, वे सभी नाम से शुक्ला कही जाती हैं, उनकी संख्या भी तीन सौ है। ये सभी घाम की सृष्टि करनेवाली हैं। वे शुक्ला नामक किरणें मनुष्य, देवता एवं पितरों का पालन करती हैं। ये किरणें मनुष्यों को औषधियों द्वारा पितरों को स्वधा द्वारा एवं समस्त देवताओं को अमृत द्वारा सन्तुष्ट करती हैं। सूर्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतु

में तीन सौ किरणों द्वारा शनैः शनैः तपता है। इसी प्रकार वर्षा और शरद ऋतुओं में चार किरणों से वृष्टि करता है तथा हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में तीन सौ किरणों से बर्फ गिराता है। यही सूर्य औषधियों में तेज धारण कराता है, स्वधा में सुधा को धारण कराता है एवं अमृत में अमरत्व की वृद्धि करता है। इस प्रकार सूर्य की ये सहस्र किरणें तीनों लोकों के तीन मुख्य प्रयोजनों की साधिका होती हैं। ऋतु को प्राप्त होकर सूर्य का मण्डल सहस्रों भागों में पुनः विभक्त (?) हो जाता है। इस प्रकार वह मंडल शुक्ल तेजोमय एवं लोकसंज्ञक कहा जाता है। नक्षत्र, ग्रह, चन्द्रमा आदि की प्रतिष्ठा एवं उत्पत्ति स्थान सभी सूर्य हैं। चन्द्रमा, तारागण एवं ग्रहगणों को सूर्य से ही उत्पन्न जानना चाहिये। सुषुम्ना नामक, जो सूर्य की रश्मि है, वही क्षीण चन्द्रमा को बढ़ाती है। पूर्व दिशा में हरिकेश नामक जो रश्मि है, वह नक्षत्रों की उत्पन्न करने वाली है। दक्षिण दिशा में विश्वकर्मा नामक जो किरण है, वह बुध को संतुष्ट करती है। पश्चिम दिशा में जो विश्वावसु नामक किरण है वह शुक्र की उत्पत्ति-स्थली कही गयी है। संवर्धन नामक जो रश्मि है वह मंगल की उत्पत्ति स्थली है, छठवीं अश्वभू नामक जो रश्मि है, वह बृहस्पति की उत्पत्ति स्थली है। सुराट् नामक सूर्य की रश्मि शनैश्चर की वृद्धि करती है। यतः ये ग्रह गण कभी नष्ट नहीं होते अतः नक्षत्र नाम से स्मरण किये जाते हैं। इन उपर्युक्त नक्षत्रों के क्षेत्र अपनी किरणों द्वारा सूर्य पर आकर गिरते हैं, और सूर्य उनका क्षेत्र ग्रहण करता है, इसी से उनकी नक्षत्रता सिद्ध होती है। इस मर्त्यलोक से उस लोक को पार करने वाले (जाने वाले) सत्कर्मपरायण पुरुषों के तारण करने से इनका नाम तारका पड़ा और श्वेत वर्ण के होने के कारण ही इनका शुक्लिका नाम है। दिव्य, पार्थिव सभी प्रकार के वंशों के ताप एवं तेज के योग से 'आदित्य'—यह नाम कहा जाता है। 'स्रवति' धातु-स्रव क्षरण (झरने) अर्थ में प्रयुक्त कहा गया है, तेज के झरने से ही यह सविता के नाम से स्मरण किया जाता है। चन्द यह धातु शुक्लत्व, अमृतत्व, शीतत्व एवं आनन्ददायकत्व आदि अनेक अर्थों में प्रयुक्त कहा गया है, उसी से चन्द्र वा चन्द्रमा शब्द निष्पन्न हुआ है। सूर्य एवं चन्द्रमा के दिव्य तेजोमय प्रभापूर्ण मण्डल आकाश में चलते हुए जलमय तेजोमय शुक्लवर्ण एवं गोले कुम्भ के समान वृत्ताकार एवं मंगलप्रद हैं। सभी मन्वन्तरों में जो ऋषि आदि अपने सत्कर्मों के प्रभाव से देवत्व को प्राप्त करते हैं वे ही सभी ओर से इनमें निवास करते हैं। ये नभोगामी सब स्थान 'देवगृह' नाम से कहे जाते हैं। उन्हीं के नाम पर उनका भी नामकरण होता है। सूर्य सौर स्थान में प्रवेश करते हैं, चन्द्रमा अपने सौम्य नामक स्थान में प्रवेश करता है। उसी प्रकार शुक्र शौक्र नामक स्थान में, जो सोलह पंखड़ियों से युक्त तथा प्रभापूर्ण है, प्रवेश करता है। बृहस्पति अपने बृहत् नामक स्थान में तथा मंगल लोहित नामक स्थान में प्रवेश करता है। शनैश्चर अपने शानैश्चर नामक स्थान में, बुध अपने बुधस्थान में तथा राहु भानु (सूर्य) के स्थान में प्रवेश करता है। अन्य सब नक्षत्र गण नाक्षत्र नामक स्थानों में प्रवेश करते हैं। सुकृती प्राणियों के लिए ये ज्योतिष्पुंज देवगृह जानने चाहियें। ये सभी स्थान महाप्रलय पर्यन्त स्थिर रहते हैं। सभी मन्वन्तरों में यही देवस्थान होते हैं। सभी देवगण अपने-अपने उन्हीं स्थानों में पुनः-पुनः निवास करते हैं। जो अतीत काल वाले स्थानी हैं वे अतीत कालीन देवता के

साथ तथा जो भविष्य में होनेवाले स्थानी हैं वे भविष्यत्कालीन देवता के साथ निवास करते थे और करेंगे, तीनों कालों में इसका यही नियम है। उस नियम के अनुसार वर्तमानकालीन स्थानी वर्तमान देवताओं के साथ वहाँ वर्तमान हैं। ये विवस्वान् नामक सूर्य देव अदिति के आठवें पुत्र कहे गये हैं। कान्तिमान् धर्मपरायण चन्द्र देवता वसु नाम से स्मरण किये जाते हैं। भृगु के पुत्र शुक्र को असुरों का पुरोहित और कर्मणा दैत्य जानना चाहिये। अमित तेजस्वी अंगिरा के पुत्र बृहस्पति देवताओं के गुरु तथा मन को हर लेने वाले बुध चन्द्रमा के पुत्र कहे जाते हैं। विकृत रूप शनैश्चर सूर्य के संयोग से संज्ञा में उत्पन्न कहे जाते हैं। युवा लोहिताधिप मंगल अग्नि के संयोग से विकेशी में उत्पन्न हुए हैं। नक्षत्र नामवाली सत्ताईस नक्षत्र वृन्द स्व क्षेत्र में उत्पन्न दाक्षायणी (दक्ष की स्त्री) की कन्याएँ कही गई हैं। सभी जीवों के संहारक सिंहिका के पुत्र राहु असुर हैं। चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रों मे जो अभिमानी हैं उनका वर्णन किया जा चुका, इन सब के स्थानों को भी कह चुका और जो स्थानी देवता हैं उनका भी वर्णन कर चुका ॥ २—५१ ॥

सहस्र किरणों वाले भास्कर का स्थान शुक्ल वर्ण एवं अग्नि के समान तेजस्वी तथा दिव्य तेजोमय है। चन्द्रमा का स्थान सहस्रों किरणों की प्रभा से पूर्ण तथा जलीय एवं तैजस् उपादानों से युक्त है। मनोज्ञ बुध का स्थान सूर्य की किरणों में स्थित है और उसी दिशा में है। सोलह किरणों से भासमान तथा जलयुक्त शुक्र का स्थान है। मंगल का स्थान नव किरणों से युक्त तथा जलमय है। बृहत् बारह किरणों से भासमान हरिद्रा के समान बृहस्पति का स्थान कहा गया है। शनैश्चर का स्थान आठ किरणों से सुशोभित लौहमय तथा कृष्ण वर्ण का है। राहु का स्थान लौहमय है, जो जीवों को केवल संताप देनेवाला है। सभी ताराएँ सुकृती प्राणियों की आश्रयभूत हैं, उनकी किरणें सुवर्ण के समान हैं। जीवों को संसार से तार देने के कारण ही इनका तारका नाम पड़ा। ये सभी शुक्ल वर्ण कही जाती हैं। सूर्य का विष्कम्भ मण्डल नव सहस्र योजनों में विस्तृत कहा जाता है और इस प्रकार भास्कर का पूर्ण मण्डल विष्कम्भ मण्डल से तिगुना कहा जाता है। सूर्य के विस्तार से दुगुना विस्तार चन्द्रमा का कहा गया है और सूर्य के मण्डल की अपेक्षा चन्द्रमण्डल की चौड़ाई भी तिगुना कही जाती है। सभी मण्डलों के ऊपर जो मण्डल हैं वे तारिकाओं के मण्डल हैं। उन मण्डलों के प्रमाण आधे योजन के कहे जाते हैं। राहु इन सब की समान स्थिति में स्थित होकर भी अपेक्षाकृत नीचे विचरण करता है। ब्रह्मा ने मण्डल की आकृति के समान बनाई गई पृथ्वी की छाया (?) को उठाकर इस राहु के स्थान का निर्माण किया है, जो क्रम में तीसरा एवं अन्धकारपूर्ण है। राहु शुक्ल पक्ष में सूर्य मण्डल से निकलकर चन्द्रमा के समीप जाता है और पुनः कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के मण्डल से सूर्य के समीप पहुँचता है। स्वकीय भा (अपनी छाया) से अन्य को नोदन (कष्ट पहुँचाने) करने के कारण इसका नाम स्वर्भानु स्मरण किया जाता है। विष्कम्भ एवं मण्डल—दोनों के परिमाण में चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग योजनों में शुक्र का कहा गया है अर्थात् शुक्र का विष्कम्भ व मण्डल का परिमाण चन्द्रमा के विष्कम्भ एवं मण्डल का १/१६ है। भृगुपुत्र शुक्र से चतुर्थांश हीन परिमाण बृहस्पति का जानना चाहिये। बृहस्पति से

परिमाण में चतुर्थांश हीन केतु और राहु कहे जाते हैं। उन दोनों की अपेक्षा परिमाण में चतुर्थांशहीन विस्तार एवं मंडल—दोनों में बुध है। इस आकाश मण्डल में जो अन्य शरीरधारी तारा एवं नक्षत्रगण हैं, वे सब विस्तार एवं मण्डल—दोनों में बुध के बराबर स्वरूप वाले हैं। तारा एवं नक्षत्रों के मण्डल एवं स्वरूप आपस में एक दूसरे से हीन हैं। फलतः वे सभी ज्योतिर्गणों के मण्डल—पाँच, चार, तीन, दो और एक सौ योजनों में विस्तृत हैं और आधे योजन के प्रमाण में भी कुछ विद्यमान हैं। इससे क्रम विस्तार किसी का नहीं है। इनसे ऊपर जो क्रूर तथा सात्त्विक ग्रह स्थित हैं उन्हें बता रहा हूँ। वे शनैश्चर, वृहस्पति तथा मंगल हैं—इन ग्रहों को मन्द गमन करनेवाला जानना चाहिए। उनसे नीचे चार महाग्रह विचरण करते हैं। वे हैं चन्द्रमा, सूर्य, बुध एवं शुक्र—ये सभी शीघ्र गमन करनेवाले ग्रह हैं। जितने नक्षत्र हैं उतने ही करोड़ की संख्या में तारकाओं को जानना चाहिये। इन सभी ग्रहों से नीचे होकर सूर्य गमन करता है। उससे ऊपर विस्तीर्ण मंडल बनाकर चन्द्रमा भ्रमण करता है। नक्षत्रों के मण्डल चन्द्रमा से ऊपर चलते हैं। नक्षत्रों से ऊपर बुध हैं और बुध से ऊपर शुक्र हैं। शुक्र से ऊपर राहु केतु हैं और उनसे ऊपर वृहस्पति हैं। वृहस्पति से ऊपर शनैश्चर हैं, इस प्रकार शनैश्चर के स्थान से ऊपर सप्तर्षि मण्डल है, उन सातों ऋषियों से ऊपर ध्रुव हैं, और ध्रुव से ऊपर समस्त आकाश मण्डल है। आकाश में नक्षत्र मण्डल से ऊपर दो लाख योजन के अन्तर पर एक-एक ग्रहों के मंडल अवस्थित हैं। ताराओं और ग्रहों के अंतर ऊपर-ऊपर हैं। आकाश मंडल में दिव्य तेजोमय चन्द्रमा, सूर्य तथा ग्रहादि ज्योतिर्गण नियत क्रमानुसार नक्षत्रों के साथ युक्त होते हैं। ये चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र तथा ग्रहादि नीचे ऊँचे अपने ग्रहों से अवस्थित होते हैं तथा इन सब का उसी क्रम से समागम तथा बिलगाव होता है, उसे जनता एक साथ ही देखती है। इस प्रकार अवस्थित ये ज्योतिर्गण परस्पर एक दूसरे से युक्त होते हैं। बुद्धिमानों को इनका योग असंकर (अमिश्रित) जानना चाहिये। इसी प्रकार का सन्निवेश (अवस्थिति क्रम) पृथ्वी का तथा ज्योतिर्गणों का है। द्वीपों, समुद्रों, पर्वतों, वर्षों तथा नदियों आदि का भी यही क्रम है, यही उनका भी है जो उन सबों में निवास करते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त रीति से सूर्य के कारण ज्योतिर्गणों का अवस्थिति क्रम है। उसके मध्य भाग में आवर्त वायु है, ध्रुव के आ जाने से जो संक्षिप्त है, उसके चारों ओर नक्षत्र मण्डल गोलाकार आकृति में है, जिसे परमात्मा ने लोक के व्यवहार परिचालन के लिए बनाया है। स्वयंभू द्वारा यह सम्पूर्ण ज्योतिर्गणों का अवस्थान कल्प के आदि में बुद्धिपूर्वक बनाया गया है। यह इस प्रधान ज्योतिर्गण का विराट् रूप है, उसको यथार्थ रूप में परिगणित करने में कोई भी समर्थ नहीं है। इन ज्योतिश्चक्रों का गमन एवं अवस्थान मांस की आँखों से मनुष्यों द्वारा नहीं देखा जा सकता। ॥५२-८४॥

श्री मात्स्य महापुराण में भुवनकोश प्रसंग में देवग्रह वर्णन नामक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२८॥

एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—मानद ! देवाधिदेव भगवान् शंकर को पुरारि (पुर के शत्रु) की उपाधि कैसे मिली ? और उन्होंने त्रिपुर को किस प्रकार जलाया ? इस वृत्तान्त को हम लोगों से विस्तार पूर्वक कहिये। हम सभी लोग अति आदरपूर्वक आप से बार-बार इस विषय को पूछ रहे हैं कि मय की माया से रचे हुए उस प्रसिद्ध त्रिपुर दुर्ग को शिव जी ने एक ही बाण में किस प्रकार जला दिया ? कृपया हमसे बताइये। ॥१-२॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! जिस प्रकार भगवान् शंकर ने त्रिपुर का विध्वंस किया उसे सुनिये। परम मायावी मय नामक एक दानव था। संग्राम में देवताओं द्वारा हारकर उसने घोर तपस्या की। तपस्या करते हुए उसे देखकर दो अन्य दानवों ने भी अनुग्रह करके उसी कार्य के उद्देश्य से घोर तपस्या करना प्रारम्भ की। वे दोनों दानव बलवान् विद्युन्माली तथा पराक्रमी तारकासुर थे—दोनों मय के तेज से प्रभावित हो उसी के पार्श्व में स्थित होकर तपस्या करते थे। तीनों अग्नि के समान तेजोमय वे तीनों उस समय ऐसे दिखाई पड़ते थे मानो तीनों लोकों ने स्वरूप धारण कर लिया है। वे राक्षसगण तीनों लोकों को संतापित करते हुए हेमन्त ऋतु में जल शैय्या पर, ग्रीष्म में पंचाग्नि तापकर तथा वर्षा ऋतु में आकाश में शयन कर अपने प्रिय शरीर को दुर्बल करते हुए फल, मूल, पुष्प एवं जल का आहार करते थे। कीचड़ तथा बल्कलों से शरीर ढककर, कभी निर्मल सेवांरों की कीचड़ में लोटकर वे निर्मल तपस्या शील राक्षसगण तपस्या कर रहे थे। इस प्रकार तपस्या करते हुए वे तीनों मांस रहित हो गये और इतने दुर्बल हो गये कि नसों और धमनियों के जाल स्वरूप दिखाई पड़ने लगे। इस प्रकार उनके घोर तप के प्रभाव से समस्त जगत् काँप गया। सभी ओर उदासी दिखाई पड़ने लगी। सभी के स्वर मन्द पड़ गये। घोर तप में दत्तचित्त उन तीनों दानव रूप अग्नियों से जलते हुए संसार को देखकर जगत्स्रष्टा भगवान् ब्रह्मा उनके सम्मुख प्रादुर्भूत होगये। अति साहसी उन तीनों दैत्यों ने शीघ्रता से आये हुए अपने पितामह ब्रह्मा की बन्दना की। तदनन्तर तपस्या के प्रभाव से सूर्य की भाँति प्रभापूर्ण उन दानवों को देखकर प्रसन्नमुख एवं विस्मित नेत्र होकर ब्रह्मा ने उनसे कहा—वत्स वृन्द ! तुम लोगों की इस घोर तपस्या से सन्तुष्ट होकर मैं यहाँ आया हूँ और वरदान देना चाहता हूँ। जो अभिलाषा हो उसे कहो और अपने मनोवांछित वरदानों को प्राप्त करो। इस प्रकार कहते हुए प्रसन्न पितामह को देखकर हर्ष से खिले हुए नेत्रों वाले विश्वकर्मा मय ने कहा—हे देव ! प्राचीन काल में होनेवाले तारकामय संग्राम में दैत्यगण देवताओं द्वारा हरा दिये गये, विविध अस्त्रों से कुछ तो मार डाले गये और कुछ घायल कर दिये गये। देवताओं के बैर के भय से काँपते हुए हम लोग सारे जगत् भर में दौड़े गये पर किसी को शरण देनेवाला नहीं जान सके और न यही जान सके कि किस प्रकार हमारा कल्याण होगा। इस प्रकार देवताओं द्वारा पराजित होकर मैं अपने तप के प्रभाव से तथा तुम्हारी भक्ति की महिमा से एक ऐसे दुर्ग का निर्माण करना चाहता हूँ, जो देवताओं

द्वारा दुर्लङ्घनीय हो। कृतियों में श्रेष्ठ! उस मेरे बनाए हुए त्रिपुर नामक दुर्ग के भूमि में उत्पन्न होनेवाले, जलजंतु एवं मुनि के प्रभाव से दिये गये शाप आदि प्रवेश न कर सकें। हे प्रजापते! यदि मेरा बनाया हुआ वह त्रिपुर दुर्ग आपको अभीष्ट हो तो ऐसा वरदान दीजिये कि देवता लोग भी उस पुर में प्रवेश न कर सकें'—इस प्रकार विश्वकर्मा मय ने संसार निर्माता ब्रह्मा से कहा। उसकी ऐसी बातें सुन ब्रह्मा ने हँसते हुए दानवराज मय से कहा—'दानव! असत्कर्म करनेवाले तुम्ह सरीखे राक्षस को सब प्रकार के अमरत्व के भाव वा कर्म नहीं मिल सकते, अतः तुम तृण से दुर्ग बना सकते हो।' इस प्रकार पितामह का वचन सुनकर मय दानव ने हाथ जोड़कर पद्मयोनि ब्रह्मा से कहा—यदि सर्वथा अवध्य होने का वरदान मिलना मुझे असम्भव है तो भगवान् शंकर अपने एक बार के छोड़े गये बाण से उस पुर को जला सकें। और युद्ध में केवल वही हमको मार भी सकें। अन्य किसी से हमारा बध न हो।' इस प्रकार मय की बातें सुनकर पितामह ब्रह्मा जी 'ऐसा ही हो' कहकर स्वप्न के धन के समान अन्तर्हित हो गये। ब्रह्मा के चले जाने पर दानवगण सूर्य की भाँति ब्रह्मा के वरदान तथा अपने तपःप्रभाव से अति सुशोभित हुए। महाबुद्धि दानव मय दुर्ग के निर्माण का चिन्तन करने लगा और सोचने लगा कि 'किस प्रकार का वह मेरा दुर्ग होगा? इसमें संशय नहीं कि उस पुर में मैं ही निवास करूँगा, अन्य कोई नहीं। ऐसा भी कोई उपाय होना चाहिये जिससे एक बाण द्वारा वह मेरा त्रिपुर किसी प्रकार भी नष्ट न हो सके। देवता लोग तो नष्ट करने की कोशिश करेंगे ही; परन्तु मुझे तो बुद्धिपूर्वक विचार कर लेना ही चाहिए। एक-एक पुर का विस्तार एक-एक सौ योजन का होना चाहिये। उन सबों का विष्कम्भ (आधार मण्डल) भी एक-एक सौ योजन का बनाना चाहिए। पुष्य नक्षत्र में उन तीनों पुरों का सम्बन्ध एवं निर्माण होना चाहिये। उसी पुष्य योग पर वे तीनों पुर अलग अलग रहकर भी आकाश में परस्पर मिल जावेंगे। उनके इस पुष्य योग से युक्त होने की गुप्त बात को जो व्यक्ति जान लेगा वही एक बाण द्वारा उनको नष्ट भी कर सकेगा। उस त्रिपुर का एक पुर पृथ्वी तल पर लौहमय, एक आकाश में रजतमय तथा एक रजतमय से ऊपर सुवर्णमय रहेगा। इस प्रकार तीन पुरों में संयुक्त वह त्रिपुर के नाम से विख्यात होगा। इन तीनों पुरों के विष्कम्भ सौ-सौ योजनों के अन्तर पर होंगे। और सर्वदा शत्रुओं द्वारा दुर्लंघ्य होंगे। इस प्रकार अटारियों से तथा तोप, मंत्र, चक्र, शूल, पत्थर आदि अस्त्रों से युक्त, मन्दर तथा मेरु के समान विशाल द्वारों, खाइयों तथा शिखरों से सुशोभित तारक, मय तथा विद्युन्माली द्वारा विरचित, गुप्त तथा सर्व साधन सम्पन्न उस त्रिपुर को भगवान् त्रिनेत्र शंकर के अतिरिक्त कौन विध्वंस करने में समर्थ हो सकता है—इस प्रकार से वह मन ही मन विचारने लगा।' ॥३-३६॥

श्री मात्स्य महापुराण में त्रिपुराख्यान नामक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१२९॥

एक सौ तीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण ! इस प्रकार के उपायों के प्रभाव से बननेवाले तथा मन की कल्पनाओं से कल्पित त्रिपुर नामक दिव्य दुर्ग की रचना को मय दानव ने सोचा । 'इस मार्ग में प्राकार बनेगी, यहाँ पर चहारदीवारी होगी, यहाँ पर अँटारियों का दरवाजा होगा, यहाँ पर अँटारियों की मुड़ेरें होंगी, यहाँ पर मुख्य राजमार्ग बनेगा, यहाँ पर सड़कें तथा गलियाँ बनेंगी, यहाँ पर चबूतरा होगा, यह अंतःपुर की जगह है, यहाँ शिवालय बनेगा, यहाँ पर वटवृक्षों समेत सरोवर होगा, यहाँ बावली और छोटे-छोटे तालाब बनेंगे । यहाँ पर बाग लगेगा, यहाँ सभा भवन बनेगा, यहाँ पर फुलवाड़ी लगेगी, यहाँ पर दानवों के निकलने के लिए मनोहर सड़क बनेगी ।' इस प्रकार पुर की रचना में परम प्रवीण मय ने मन की कल्पनाओं द्वारा त्रिपुर के निर्माण का कार्यक्रम तैयार किया । सूत ने कहा—इस प्रकार मय द्वारा निर्मित उस पुर का नाम हम लोगों ने 'त्रिपुर' सुना है । सर्वप्रथम मय द्वारा विनिर्मित जो काले लौह का पुर था उसमें तारकासुर अध्यक्ष पद पर आसीन हुआ और उस पर अपना पूर्ण आधिपत्य जमाया । जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान दूसरा रजतमय पुर बनाया गया था उसमें विद्युन्माली नामक दानव ने विद्युन्माला से युक्त बादलों की भाँति अपना आधिपत्य जमाया । जो सुवर्णमय तीसरा पुर बनाया गया था उस पर स्वयं मय ने अपना आधिपत्य जमाया । मय के पुर से तारकासुर तथा विद्युन्माली का पुर सौ-सौ योजन के अन्तर पर अवस्थित था । इन सबों में सुमेरु पर्वत के समान मय का पुर अति महान् एवं विशाल था । ॥१-१०॥

प्राचीन काल में पुष्य नक्षत्र के संयोग पर मय ने उस त्रिपुर का इस प्रकार निर्माण किया, जिस प्रकार भगवान् त्रिलोचन शङ्कर ने पुष्पक को बनाया था । एक पुर से दूसरे पुर में जिस-जिस मार्ग द्वारा पुर निर्माण करता हुआ मय चलता था, पश्चिम की दिशा वाले उस-उस मार्ग में स्वयमेव सैकड़ों, सहस्रों भवन सुवर्ण रजत एवं लोहे के तैयार होते जाते थे । देवताओं के शत्रु उन दानवों के रत्नखचित पुर परम सुशोभित थे । उनमें सैकड़ों सुन्दर महल तथा क्रीड़ागार बने हुए थे । सभी लोग इच्छापूर्वक उनमें प्रवेश कर सकते थे । वे मनोहर पुर तीनों लोकों के पुरों का अतिक्रमण करनेवाले थे । वाटिका, बावली एवं पद्मों वाले सरोवरों से वे समन्वित थे । उन सब में अशोक के वन लगे हुए थे, जिनमें कोकिला सुरीली ध्वनि सुनाती थीं । विशाल चित्रशालाएँ तथा चौशालाएँ सुशोभित हो रही थीं । क्रमशः सात, आठ और दस भूमिका (तल्ले) वाले सुन्दर भवनों को मय ने सुन्दरता के साथ निर्मित किया था, जिन पर अनेक ध्वजा तथा पताकाएँ सुशोभित थीं तथा विविध प्रकार की मालाओं से अलंकृत थे। उनमें किंकिणी से युक्त करधनों के सुन्दर रव हो रहे थे । अति सुगंधि से वे पूर्ण थे । चारों ओर से उनकी लिपाई पुताई हुई थी तथा पुष्प नैवेद्य आदि पूजन की सामग्रियाँ यथास्थान सजाकर रखी गई थीं । यज्ञ के धुएँ से अंधकार हो रहा था, चारों ओर भरे हुए पूजा के निमित्त कलश सजाये गये थे। उस त्रिपुर में कहीं आकाश की भाँति नीले और कहीं हंसों की पंक्तियों की भाँति सफेद पर एक ही पंक्ति में विराजमान थे । चन्द्रमा की कान्ति को

हंसनेवाले मोतियों के गुच्छों के लटकने से शोभायुक्त तथा मल्लिका, चमेली आदि सुगंधिपूर्ण पुष्पों तथा गंध-धूप आदि से सुवासित, तथा पाचों इन्द्रियों के सुखों से समन्वित नित्य सत्पुरुषों की भाँति वे भवन परम सुशोभित हो रहे थे। सुवर्ण, रजत, तथा लौह से बने हुए तथा मणि रत्न तथा अंजन से चिह्नित प्राकार (घेरे) उस त्रिपुर में ऐसे दिखाई पड़ रहे थे मानों पर्वत के प्राकार हों। उस त्रिपुर के एक-एक पुर में पताका तथा ध्वजाओं से युक्त सौ-सौ गोपुर (प्रवेश-द्वार) थे, जो पर्वतों के शिखरों की भाँति दिखाई पड़ते थे। त्रिपुर के उन तीनों पुरों में कन्याओं के निवास स्थान अलग बने हुए थे, जिनमें नुपूरों के सुन्दर रव हो रहे थे। वे सुन्दर पुर स्वर्ग से भी बढ़कर शोभाशाली थे, बड़े बड़े बगीचों तथा विहार के साधनों व वट वृक्ष युक्त सरोवरों, तालावों, चौराहों, नदियों वनों तथा उपवनों से वे सभी परम शोभा सम्पन्न थे। दिव्य भोगविलास की सामग्रियों से सुशोभित थे। उस त्रिपुर के बाहर जाने वाले सीधे मार्ग पुष्पों के समूहों से सुशोभित थे। माया को निवारित करनेवाले उपकरणों द्वारा उन राक्षसों ने उस त्रिपुर की चारों ओर सौ गहरी परिखाएँ बनाई थीं। अद्भुत पराक्रमशाली मय द्वारा विनिर्मित उस सुन्दर एवं अभेद्य दुर्ग के निर्माण को सुनकर देवराज इन्द्र के वैरी दिति के वलवान पुत्रगण सहस्रों की संख्या में वहाँ पहुँच गये। उच्च विशाल पर्वत तथा मत्त गजराज के समान गर्वीले वैरियों के विनाशक तथा मनुष्यों के शत्रु उन असुरों से आकीर्ण वह त्रिपुर उस समय ऐसा हो गया जैसे आकाश काले बादलों से युक्त होकर हो जाता है। ॥११-२८॥

श्री मात्स्य महापुराण में त्रिपुराख्यान नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३०॥

एक सौ इकतीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! असुरशिल्पी मय द्वारा विनिर्मित वह दुर्ग (त्रिपुर) पारस्परिक वैर भावनायुक्त देवता तथा दानवों के लिए दुर्गता को (कठिनता से पहुँचने योग्य) प्राप्त हुआ। मय के आदेश से महाकाल की भाँति वे दानवगण अपने स्त्री पुत्रादि तथा हथियारों के साथ उन पुरों में इस प्रकार आनन्द समेत प्रविष्ट हुए जिस प्रकार सिंहों के समूह कठोर वन में तथा मकर वृन्द समुद्र में प्रविष्ट होते हैं। मूर्तमान क्रोध के समान अतिकठोर भीषण शरीर वाले, मय के समान बलशाली सौ करोड़ सुर शत्रुओं (दानवों) से वह त्रिपुर आकीर्ण हो गया। दानवों के निवास स्थान पाताल तथा सुतल आदि लोकों से निकलकर तथा (देवताओं के भय से) पर्वतों पर जीविका निर्वाह करनेवाले दानवगण, जो आकार में बादलों के समान थे, शरणार्थ आ-आकर उस त्रिपुर में उपस्थित हो गये। वहाँ पहुँचकर जो दानव जिस किसी भी मनोरथ की कामना करता था उस को मय अपनी माया द्वारा पूर्ण कर देता था। चाँदनी रातों में कमलों से सुशोभित सरोवरों, आमवाले बगीचों एवं तपस्या के वनों में सुन्दर शरीरवाले अंगों में चन्दन लपेटे हुये मतवाले हाथियों की भाँति स्वच्छ वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित सुन्दर माला एवं अंगराग आदि से अलंकृत दानवगण, हावभाव करनेवाली परम कामिनी प्राणवल्लभा अपनी स्त्रियों के साथ सर्वदा भोग

विलास में लगे हुए क्रीडा किया करते थे। त्रिपुर में रहनेवाले उन देव शत्रुओं का समय परम आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था। उनके स्वर्गवासियों के समान सुखमय दिवस व्यतीत होते थे। मय द्वारा विनिर्मित उस त्रिपुर में आनन्द का अनुभव करते हुए उन दानवों ने स्वयं ही अर्थ धर्म एवं काम में अपनी प्रवृत्ति की। पुत्रगण पिता की सेवा में तत्पर रहते थे, पत्नियाँ अपने पति की शुश्रूषा में दत्तचित्त रहती थीं। सभी लोग झगड़े तकरार से नितान्त रहित रह एक दूसरे से विशुद्ध प्रेम करते थे। कोई बलवान अधर्म से किसी निर्बल को किसी प्रकार का कष्ट नहीं देता था। दिति के वे पुत्रगण उसी त्रिपुर में बने हुए भगवान शंकर के आयतन (मंदिर) में उनकी पूजा करते थे। वे मांगलिक शब्दों का उच्चारण करते थे, वेदों तथा कल्याणप्रद आशीर्वादों का प्रयोग करते थे। अपने अलंकार, नूपुरों के रवों से मिश्रित वेणु एवं वीणा के सुरीले एवं मनोहारि शब्दों का वे उच्चारण करते थे। वहाँ सुन्दरी रमणियों के चित्त को व्याकुल करनेवाली मनोहर हँसी होती थी। इस प्रकार त्रिपुर में उन दानवेन्द्रों को सर्वदा सुख भोग में मग्न ही सुना जाता था। देवता एवं ब्राह्मणों की पूजा तथा नमस्कार करनेवाले धर्मार्थ तथा काम के साधक उन दानवों के बहुत समय इस प्रकार आनन्द के साथ व्यतीत हो गये। ॥१-१६॥

इसके उपरान्त कभी उस त्रिपुर में अलक्ष्मी (दारिद्र्य), असूया (गुणों में भी दोष लगाना), तृष्णा, बुभुक्षा (भूख) कलि तथा कलह—ये सब एक ही साथ प्रविष्ट हुए। संध्या के समय इन सब उपर्युक्त भयदायी दारिद्र्यादिकों ने त्रिपुर में प्रवेश किया और सबों ने एक ही साथ चारों ओर से राक्षसों के शरीरों में प्रविष्ट हो उन्हें इस प्रकार आक्रान्त कर लिया जैसे निर्बल शरीर में रोग प्रवेश कर लेते हैं। त्रिपुर में प्रवेश करते हुए इन दारिद्र्यादिकों को मय ने भयानक रूप में दानवों में अधिष्ठित होते हुए स्वप्न में देखा। तदनन्तर सहस्रकिरण शुभ्र कान्तिमान् भगवान् भास्कर के उदित होते ही मय ने दो सूर्यों से युक्त मेघ की भाँति उक्त दोनों दानवों के साथ सभा भवन में प्रवेश किया। सुवर्ण से अलंकृत मेरु पर्वत के समान उच्च सिंहासन पर वे तीनों दानवगण इस प्रकार विराजमान हुए, जिस प्रकार कांचन पर्वत पर मेघ सुशोभित हों। मय की बगल में तारक और विद्युन्माली इस प्रकार बैठे हुए थे जैसे हाथी अपने दो बच्चों के साथ बैठा हो। तदनन्तर सब दानवगण रणभूमि में कोपाविष्ट की भाँति उस सभा भवन में दृढ़ आसन लगाकर बैठे। उन दानवों के सुखपूर्वक बैठ जाने पर मायावी मय ने कहा—'आकाश में चलने वाले! तथा आकाश में शब्द करनेवाले! दाक्षायणी के पुत्रगण! मैंने आज रात में एक अति भयानक एवं दारुण स्वप्न देखा है। उसे सुनो। उस स्वप्न में मैंने चार स्त्रियाँ तथा तीन पुरुषों को, जो भयानक स्वरूप वाले थे, क्रोधाग्नि से जिनके मुख जल-से रहे थे, और जो त्रिपुर के विनाश करनेवाले थे, देखा है। अतुल पराक्रमशाली वे लोग हमारे इस त्रिपुर में प्रवेश कर निवास कर चुके हैं और अनेक रूपों में विभक्त होकर सब के शरीरों में भी प्रवेश कर चुके हैं। स्वप्न में मैंने अपने त्रिपुर को अन्धकार से आकीर्ण देखा है, और यह देखा है कि घर द्वार तथा तुम सब के समेत यह त्रिपुर समुद्र में डूब गया है। एक सुन्दरी नारी नंगी होकर उलूक तथा गधे पर सवार थी, उसके साथ अन्य भी बहुतेरी चुम्बन करने में मग्न सुन्दरी स्त्रियाँ थीं। एक

लाल तिलक लगाए हुए चार पैर तथा तीन नेत्रों वाला पुरुष भी उसके साथ था। उसी पुरुष ने उस सुन्दरी बाला को पीटा भी और उसी ने मुझे स्वप्नावस्था से जगा भी दिया। इस प्रकार की अति भयावह आकृतिवाली सुन्दरी स्त्री मैंने स्वप्न में देखी है। दिति के पुत्रो! इस प्रकार यह स्वप्न मैंने देखा है। और, यह भी देखा है कि असुरों को किस-किस प्रकार का कष्ट होगा। यदि तुम लोग हमें राजा मानते हो, और यह समझते हो कि मैं तुम लोगों की कल्याण की बातें बतला रहा हूँ तो सुप्रसन्न मन से सावधान हो जाओ। कभी किसी की झूठी निन्दा मत करो, काम, क्रोध, ईर्ष्या, असूया आदि दुर्गुणों को छोड़कर सत्य, क्षमा, धर्म एवं ऋषियों के मार्गों पर खड़े होओ। चित्त में शान्ति धारण करते जाओ, और महादेव की पूजा में दत्तचित्त हो। इसी प्रकार से उक्त दुःस्वप्न की शान्ति हो सकती है। हे दानवो! निश्चय ही ऐसा मालूम पड़ रहा है कि हम लोगों के ऊपर देवाधिराज भगवान् त्रिलोचन अप्रसन्न होगये हैं, क्योंकि हमारे इस त्रिपुर में भविष्य में होनेवाली अमांगलिक घटनाएँ अभी से घटित होती दिखाई पड़ रही हैं। अतः तुम लोग सभी प्रकार के कलह को छोड़कर सरल व्यवहार धारण कर इस दुःस्वप्न के परिणाम स्वरूप आनेवाले कुसमय के आगमन की प्रतीक्षा करते जाओ।' दाक्षायणी के पुत्र वे दानवगण उस सभा में मय की ऐसी बातें सुन क्रोध ईर्ष्या आदि से आविष्ट होकर विनाश के समीप जाते हुए-से प्रतीत होने लगे। अलक्ष्मी के प्रभाव से प्रभावित वे अपने विनाशों को प्रत्यक्ष देखते हुए भी सभाभवन में परस्पर क्रोध से पूर्ण हो गये और उनके नेत्र लाल-लाल हो गये। ॥१७-३८॥

दैव योग से विनष्ट वे त्रिपुर निवासी दानवगण, तभी से सत्य एवं धर्माचरण को छोड़कर अति निन्दनीय कार्य करने लगे। ब्राह्मणों तथा सत्कर्मों की निन्दा करने लगे। देवता की पूजा छोड़ दी। गुरु का भी सम्मान न करते और आपस में क्रोधपूर्ण व्यवहार करते। कलह में तत्पर रहकर अपने धर्म के ऊपर ही वे हँसने लगे। एक दूसरे की निन्दा करने लगे तथा घोर अहङ्कार से युक्त हो कर बातें करने लगे। वे गुरुजनों से उच्च स्वर में बातें करने लगे, तथा पूजनीयों के प्रति सम्मान प्रदर्शन तो दूर रहा सबों ने उनसे बातें करना भी छोड़ दिया। बिना किसी कारण के ही उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे और सदा उत्कंठित-से रहने लगे। रात्रि में दही, सत्तू, दूध तथा कैंथा खाने-पीने लगे और भोजनोपरांत जूठे मुँह तथा शरीर को ढँककर शयन करने लगे। पेशाब करके बिना पैर धोए ही वे सब को स्पर्श करने लगे तथा पवित्रता के आचार से एकदम विवर्जित रह कर शय्या पर शयन भी करने लगे। वे लोग बिना कारण ही भय से इस प्रकार संकुचित हो जाते जिस प्रकार बिल्ली को देखकर चूहे डर जाते हैं। गोपनीय कार्यों में भी वे लज्जारहित हो गये। स्त्री समागम के बाद शारीरिक शुद्धि न करते। इस प्रकार प्राचीनकाल में शीलवान् होकर भी वे त्रिपुरवासी दानवगण इतने क्रूर हो गये। वे सभी दानव देवताओं तथा तपस्वियों को पीड़ा पहुँचाने लगे। इस प्रकार मय से निवारित किये जाने पर भी वे विनाश को प्राप्त हुए। कलह की इच्छा करनेवाले वे दानवगण सर्वदा ब्राह्मणों के अनुपकार ही में दत्तचित्त रहने लगे। वैभ्राज, नन्दन, चैत्ररथ, अशोक, वराशोक आदि सुन्दर वनों को, जो सभी ऋतुओं में फल-पुष्प प्रदान करने वाले थे, वे

विध्वंस करने लगे। इस प्रकार पहले देवताओं के अनुगामी कहाकर भी वे दानवगण कुद्ध होकर देवताओं के निवास स्वर्ग को तथा तपोवनों को ध्वस्त करने लगे। उस समय इस समस्त जगत् के देवमंदिर आदि तोड़ डाले गये, देव और ब्राह्मणों के पूजक नष्ट कर डाले गये। देवेन्द्र के शत्रु दानवों द्वारा समस्त जगत् इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया गया जिस प्रकार भ्रमरों (टीड़ियों) के समूहों द्वारा अन्न के पौदे नष्ट कर दिये जाते हैं। ॥३९–५०॥

श्री मात्स्य महापुराण में त्रिपुराख्यान प्रसंग में मय का दुःस्वप्न दर्शन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३१॥

एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—दुरात्मा निःशील तथा दुष्ट उन त्रिपुरवासी दानवों द्वारा समस्त लोकों व तपस्वियों के वनों के ध्वस्त किये जाने पर और आकाश में चलते हुए उनके भीषण शब्दों को सुनकर जब त्रिलोक भय से विमूढ़ होगया, सारा संसार अन्धकार में डूब जैसा गया तथा जीव जंतु डर के मारे इधर-उधर भागने लगे, तब आदित्य, वसु, साध्य, पितर तथा मरुतों के समूह भी भय से आक्रान्त होकर संसार के प्रपितामह ब्रह्मा की शरण में गये। सुवर्ण के कमल पर समासीन पाँच मुखवाले भगवान् ब्रह्मा के पास जाकर उन लोगों ने प्रणाम किया और निवेदन किया—'निष्पाप पितामह! आपके वरदान से सुरक्षित होकर त्रिपुर में रहनेवाले दानवगण हम लोगों तथा हमारे अनुचरों को पीड़ित करते हैं अतः उन्हें वश में कीजिए। पितामह! जिस प्रकार मेघों के आगमन से हंस, तथा सिंह के भय से मृग भागते हैं, उसी प्रकार इन दानवों के भय से हम लोग इधर से उधर भाग रहे हैं। अनघ! उन असुरों के भय से भागते हुए हम लोगों को अपने पुत्रों तथा स्त्रियों के नाम तक भूल गये हैं। लोभ तथा मोह से अन्धे होकर राक्षसगण देवताओं के सब घरों को तोड़-फोड़ रहे हैं तथा तपस्वियों के आश्रमों को नष्ट करके इधर-उधर घूम रहे हैं। देव! यदि ऐसी अवस्था में आप अति शीघ्र लोक की रक्षा नहीं करते तो निश्चय ही इस दमन से सारा जगत् मनुष्य तथा देवताओं से रहित हो जायगा।' इस प्रकार देवताओं द्वारा कहे जाने पर चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाले पद्मयोनि भगवान् ब्रह्मा ने इन्द्रादि समेत उन देवताओं से कहा—'परम बुद्धिमान् देवगण! मय को मैंने जो वरदान दिया था, उसका यह अन्तिम अवसर आगया है—जैसा कि मैंने उन लोगों से कहा भी था। देवों में श्रेष्ठ! उन लोगों का वह सुन्दर निवास स्थान त्रिपुर तो एक ही बाण द्वारा नष्ट हो सकता है, उसके लिए बाण-वृष्टि करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु देवगण! आप लोगों में से मैं किसी को भी ऐसा नहीं देख रहा हूँ जो दानवों समेत उस त्रिपुर को एक बाण द्वारा विध्वस्त कर सके। एक प्रजापति भगवान् शंकर को छोड़कर उस त्रिपुर को कोई अल्प पराक्रमशाली एक बाण में विध्वस्त करने में समर्थ नहीं हो सकता। यदि आप लोग तथा अन्य देवगण भी मिलकर दक्ष यज्ञ

विध्वंसक भगवान् शङ्कर से प्रार्थना करें तो वह त्रिपुर का विनाश करेंगे। उन तीनों पुरों का विष्कम्भ स्थल सौ-सौ योजनों में निर्मित है। शिव के एक वाण द्वारा वह नष्ट हो सकता है। उसका तात्पर्य यूँ है कि वे तीनों पुर पुष्य नक्षत्र के संयोग के अवसर पर एक ही क्षण में आपस में संयुक्त कर दिये गये हैं।' इस प्रकार ब्रह्मा के कहने के बाद दुःखी देवताओं ने कहा—'अच्छी बात है, हम लोग उनके पास चल रहे हैं।' इतना कहने के उपरान्त स्वयं भगवान् ब्रह्मा भी शङ्कर की सभा में सम्मिलित हुए। वहाँ जाकर देवताओं तथा ब्रह्मा ने त्रिशूलपाणि भूतभावन भगवान् शङ्कर को पार्वती तथा महात्मा नन्दिकेश्वर के साथ विराजमान देखा। अजन्मा, अग्नि के कुंड के समान कान्तिमान, अग्नि के समान लाल नेत्रोंवाले, तेज के आधिक्य से सहस्रों सूर्य तथा मूर्तमान अग्नि के समान तेजोमय, मस्तक पर बालचन्द्र से सुशोभित, सुन्दर पूर्णेन्दु के समान मुखवाले, नीललोहित, वरदायक, गोपति तथा पार्वतीपति भगवान् शङ्कर के समीप जाकर स्तुति करते हुए वे सब देववृन्द खड़े हुए। ॥१-२१॥

देवताओं ने कहा—भव, शर्व, रुद्र, वरदायक, पशुपति, नित्य उग्र स्वरूप वाले, कपर्दी! तुमको हम सब नमस्कार कर रहे हैं। भीम, महादेव, त्र्यम्बक, शान्ति, ईशान, भय विनाशक, अन्धकासुर के निर्मूलक! भगवन्! तुमको हमारा नमस्कार है। नीलकण्ठ, भीम, वेधा, ब्रह्मा द्वारा प्रशंसित, षडानन के शत्रु संहारक तथा कुमार के उत्पत्ति कर्त्ता, विलोहित, धूम्र, वर, क्रथन स्वरूप भगवान् शङ्कर को हमारा नमस्कार है। नित्य नील शिखण्ड रखनेवाले, त्रिशूलधारी, दिव्यशायी, उरग, त्रिनेत्र, हिरण्य, वसुरेता, अचिन्त्य, अम्बिका के पति, सर्व देवों द्वारा नमस्कृत शिव को हम लोग प्रणाम करते हैं। वृषवाहन, मुण्डमाला तथा जटाधारी, ब्रह्मचर्य व्रत परायण, तप्यमान, ब्राह्मणों के हितेच्छु, अजित, विश्वात्मा, विश्वसृष्टा, समस्त विश्व को ढककर अवस्थित होनेवाले शिव को हमारा नमस्कार है। दिव्य स्वरूप प्रभु शम्भु को हमारा नमस्कार है। स्तुत्य, कामना योग्य, पूजनीय, समीप जाने योग्य, सर्वदा भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करने वाले, जो कुछ मन की अभिलाषा हो उसे पूर्ण करनेवाले, शिव को सर्वदा हमारा नमस्कार है। ॥२२-२९॥

श्री मात्स्य महापुराण में त्रिपुर दाह प्रसंग में ब्रह्मादि सर्वदेवकृत महेश स्तव नामक
एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३२॥

एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने पर महादेव ने प्रजापति ब्रह्मा से कहा—'अरे! देवताओं को क्यों महाभय प्राप्त होगया है? देवगण! आप सब का हम स्वागत करते हैं? जो अभिलाषा हो, कहें, वह मैं अवश्य ही दूँगा, क्योंकि आप लोगों के लिए मुझे कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। देवश्रेष्ठगण! मैं नित्य आप लोगों का मंगलकारी हूँ, इसीलिए श्रुति महान्, उग्र एवं

भीषण तप करता हूँ। आप लोगों के जो शत्रु हैं, वे हमारे भी घोर शत्रु हैं, आपके लिए जो कष्ट के विषय हैं, वे चाहे कष्ट एवं पराक्रम ही से सुसाध्य क्यों न हों पर उनका निर्मूलन मुझे अवश्य ही करना चाहिये। मैं भव हूँ।' इस प्रकार प्रेमपूर्वक देव (शिव जी) के पूछने पर ब्रह्मा के समेत भाग्यशाली समस्त देवों ने महाभाग शिव से कहा—'भगवन्! भीषण पराक्रम वाले कुछ असुरगण उग्र तपस्या के प्रभाव से हम लोगों को कष्ट दे रहे हैं, उन्हीं द्वारा दुःखी होकर आपकी शरण में हम आये हैं।' हे त्रिनेत्र! दिति का पुत्र मय नामक एक दैत्य है, जिसने पीले रंग के द्वारवाले एक विशाल त्रिपुर की रचना की है। महादेव जी! उसी त्रिपुर दुर्ग का आश्रय लेकर सभी दानवगण निर्भय होकर अब हम लोगों को इस प्रकार सता रहे हैं जैसे लोग स्वामी विहीन भृत्य को पाकर सताते हैं। नन्दन आदि जितने हम लोगों के मनोहर उद्यान थे उन सबों को नष्ट कर दिया गया। रम्भा आदि जो श्रेष्ठ अप्सराएँ थीं, उनको भी वे दानव हर ले गये। महेश्वर! इन्द्र के घोड़े तथा जो कुमुद, अञ्जन, वामन तथा ऐरावत आदि नामवाले हाथी थे, उनको भी उन लोगों ने छीन लिया। जो इन्द्र के रथ के मुख्य घोड़े थे, उन्हें भी वे छीन ले गये। और अब वे उन दानवों का रथ खींच रहे हैं। अधिक क्या कहें, जो भी रथ, हाथी, स्त्रियाँ तथा सम्पत्ति आदि हम लोगों के पास थीं उन सब को उन दैत्यों ने छीन लिया है। अब हम लोगों के जीवन में भी संशय उपस्थित हो गया है।' इन्द्र आदि प्रमुख देवताओं के ऐसा कहने पर त्रिनेत्र देवाधिदेव वृषवाहन भगवान् शङ्कर ने देवताओं से कहा—'देवगण! आप लोगों का समस्त कष्ट दूर हो जायगा, मैं ही उस त्रिपुर का विध्वंस करूँगा। किन्तु उसके लिए मैं जो कुछ कहूँ वैसा ही कीजिये। यदि आप लोग यह चाहते हैं कि मैं उस त्रिपुर का विध्वंस करूँ तो एक सर्व साधन सम्पन्न अच्छा-सा रथ सुसज्जित कर मुझे दें।' इस प्रकार दिगम्बर शिव के कहने पर ब्रह्मा समेत इन्द्रादि देवों ने 'तथास्तु' कहकर उनके लिए एक सुन्दर रथ का निर्माण किया। इस रथ का निम्न स्तर पृथ्वी का तथा शिव के पार्श्व में चलनेवाले दो गणों का जूआ बनाया, शिर के नीचे रखने के लिए मेरु शिखर की तकिया बनाया, मन्दर से दो पहियों का अक्ष[1] बनाया, चन्द्रमा और सूर्य से दो सुवर्ण तथा रजतमय चक्के बनाये। कृष्णपक्ष तथा शुक्ल पक्ष से रथ की दोनों धुरिया बनाई गईं एवं अन्यान्य यंत्रों को उन्हीं देवताओं द्वारा निर्मित किया गया। कम्बल तथा अश्वतर—इन दोनों नागों से वह रथ चारों ओर परिवेष्टित था। भार्गव (शुक्र), अङ्गिरा (बृहस्पति), बुध, मंगल तथा शनैश्चर आदि श्रेष्ठ देवों ने उस रथ पर अवस्थित हो आकाश को उस रथ का वरूथ (आवरण) बनाया। सर्पों के नेत्रों के समूहों से उस रथ का त्रिवेणु निर्मित किया जो सुवर्ण के समान चमक रहा था। आठ मुख वाले देवताओं ने मणि, मोती तथा नीलम आदि रत्नों से उसे जड़कर सुसज्जित किया था। गंगा, सिंधु शतद्रु, चन्द्रभागा, इरावती, वितस्ता, विपाशा, यमुना, गण्डकी, सरस्वती, देविका तथा सरयू—इन श्रेष्ठ नदियों को उक्त रथ में वेणु के स्थान पर नियोजित किया गया था। धृतराष्ट्र नामक जो नागों के वंशधर थे

---

[1] चक्र का मध्यवर्ती काष्ठ जिसमें धुरा रहता है।

उनको शिव के श्रृंगार के लिए रखा तथा जो वासुकि तथा रैवत के वंशज दर्पयुक्त सर्पराज थे, वे शीघ्र गमन करनेवाले अनेक प्रकार की जाति तथा मुखवाले बाणों का रूप धारण कर बाणों के तरकसों में स्थित हुए। सुरसा, सरमा, कद्रू, विनता, शुचि, तृषा, बुभुक्षा—ये सब उग्र स्वभाववाली तथा सर्वशमा और मृत्यु ब्रह्मवध्या गोवध्या, बालवध्या तथा प्रजाभया नामक शक्तियाँ थीं, वे गदा तथा शक्ति का रूप धारण कर उस समय शिव के रथ में उपस्थित हुईं। उस विशाल रथ में सतयुग जुवा बना तथा चार हवन करनेवाले चार वर्णवाले लीला समेत सुवर्ण के कुण्डल बने। वह जुआ रथ के शिरोभाग में महाबलवान् धृतराष्ट्र नाग के दृढ़ बन्धनों से बाँधा गया। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद—इन चारों वेदों ने अश्वरूप धारण किया। अन्नदान आदि प्रमुख जितने भी प्रशस्त दान कहे गये हैं, वे सब सहस्रों की संख्या में उन अश्वों के आभूषण बने। पद्म, महापद्म, तक्षक, कर्कोटक तथा धनंजन—ये सब नाग उन अश्वों के बाल के बन्धन हुए। ॐकार से उत्पन्न होनेवाले जितने स्तवन तथा मंत्रादि एवं यज्ञों के अनुष्ठान थे, तथा उपद्रव एवं उनके प्रतिकार, (शान्ति के उपाय) पशुबन्ध आदि इष्टि तथा यज्ञोपवीत एवं विवाहादि के संस्कार थे वे सब उसमें मणि, मुक्ता एवं प्रवालों के स्थान पर नियत हुए। इस प्रकार वह सुन्दर रथ विभूषित हुआ। ॐकार का चाबुक निर्मित हुआ, उसका अग्रभाग वषट्कार से बना, सिनीवाली[1], कुहूँ[2], राका[3] तथा अनुमती[4] नामक चार तिथियों की अश्वों के जुए में बाँधे जानेवाली रस्सी तथा बागडोरें बनीं, जिनसे वे अश्व इधर-उधर घुमाये जा सकते थे। उस महान् रथ की काली, पीली, श्वेत, मंजीठ के रंग एवं भूरे रंग की पवन से हिलती हुई पताकाएँ थीं। छहों ऋतुओं से समन्वित संवत्सर का धनुष बना। उस धनुष की दृढ़ प्रत्यंचा कभी वृद्ध न होनेवाली अम्बिका बनीं। भगवान् रुद्र स्वयं काल स्वरूप हैं। उस काल ही को लोग संवत्सर नाम से जानते हैं, इसी कारण भगवती पार्वती कालरात्रि रूप से उस महान् धनुष की कभी पुरानी न होनेवाली प्रत्यंचा बनीं। भगवान् त्रिनेत्र शङ्कर ने जिस श्रेष्ठ बाण से संधियों के समेत उस महान् त्रिपुर का विध्वंस किया, वह श्रेष्ठ बाण विष्णु, चन्द्रमा एवं अग्नि के संयुक्त तेज से बना हुआ था। उस बाण के मुख भाग में अग्नि का, फाल में अन्धकार नाशक चंद्रमा का तथा समस्त बाण में सुदर्शन चक्रधारी विष्णु की तेजोराशि विद्यमान थी। उस बाण को अति भीषण प्रभावकारी बनाने तथा उसके तेज को अति उद्दीप्त करने के लिए नागराज वासुकि ने उस पर प्रचुर परिमाण में विष का वमन किया। इस प्रकार देवताओं ने दैवी प्रभाव से युक्त उस दिव्य रथ की रचना कर लोकाधिपति शंकर के पास ले जाकर यह बात कही—'दानवों औष शत्रुओं को जीतनेवाले! हम लोगों ने आपके लिये ऐसे दिव्य रथ का संस्कार किया है, यह प्रत्येक आपत्तियों से बचानेवाला रथ है।' आगे चलनेवाले इन्द्र समेत समस्त देवताओं तथा मेरु के शिखर की तरह विशाल तथा तीनों लोकों में सर्वोत्तम उस रथ को देखकर शंकर ने देवताओं की प्रशंसा की। उस विशाल रथ को

---

[1]चतुर्दशी से युक्त अमावस्या तिथि। [2]वह अमावस्या जिसमें चन्द्रमा की कला छुप जाय। [3]प्रतिपदा से युक्त पूर्णिमा तिथि। [4]कला से हीन चन्द्रमा वाली अर्थात् चतुर्दशी युक्त पूर्णिमा तिथि।

भली भाँति बारम्बार देख-देखकर 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'—ऐसा बारम्बार कहकर वे प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर उन इन्द्र समेत समस्त देवताओं से उन्होंने स्वयं कहा—'देवगण! आप लोगों ने जिस प्रकार का रथ हमारे लिए प्रस्तुत किया है उसी रथ की मर्यादा के अनुकूल एक सारथी भी शीघ्र ही तैयार कीजिये।' देवाधिदेव शंकर के ऐसा कहने पर देवता लोग वाणों से विद्ध जैसे कर दिये गये। वे बड़ी चिन्ता में मग्न होकर कहने लगे—'अब यह कार्य किस प्रकार सम्पन्न होगा? महादेव के समान केवल सुदर्शन चक्रधारी भगवान् विष्णु को छोड़कर अन्य कौन देवता है जो सारथी के पद पर नियुक्त किया जा सकता है। सो वे तो उस वाण के अग्रभाग पर अवस्थित ही हैं।' इस चिन्ता से चिन्तित होकर देवगण शिलाखण्ड से प्रतिहत गाड़ी के जुए में नधे हुए बैलों की भाँति ऊर्ध्व श्वासें खींचते हुए 'किस प्रकार यह कार्य सम्पन्न होगा'—ऐसा कहने लगे। लोकनाथ इन्द्र के आगे इस प्रकार चिन्तित खड़े हुए देवताओं को पितामह ब्रह्मा ने देखा और तब 'मैं सारथी का काम सँभालूँगा'— ऐसा कहकर उन्होंने घोड़ों की बागडोर अपने हाथों में ले ली। तदनन्तर हाथ में चाबुक लेकर सारथी बने हुए ब्रह्मा को देखकर गन्धर्वों समेत सभी देवताओं ने प्रसन्न मन से महान् सिंहनाद किया। विश्वेश भगवान् शंकर ने पितामह ब्रह्मा के रथ पर बैठ जाने पर 'हमारे समान ही सारथी मिल गया' कहकर रथ पर आरोहण किया। शंकर के रथारूढ़ हो जाने पर उनके असह्य भार से आकुल होकर अश्वगण घुटनों के बल पृथ्वी पर गिर पड़े और धूलि का फंका उनके मुख में भर गया। इस प्रकार (अश्वरूपधारी) वेदों को भय से गिरा हुआ देखकर शंकर ने स्वयं उन्हें उठकर इस प्रकार उबार लिया जैसे दुःखी तथा सन्तप्त पितरों को पुत्रगण उबार लेते हैं। तदनन्तर उस महान् रथ से भीषण शब्द होने लगे और समुद्र की गर्जना के समान देवताओं ने 'जय जय कार' किया। वरदायी स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने ॐकार रूप चाबुक को हाथ में लेकर मंत्रोच्चारण कर वेगपूर्वक उन अश्वों को प्रचालित किया। तब वे अश्व मानो आकाश को लीलते हुए, सारी पृथ्वी को स्ववश करते हुए, मुख से सर्पों की भाँति भीषण फुफकार छोड़ने लगे। इस प्रकार जटाजूट धारी शंकर तथा स्वम्भू ब्रह्मा के प्रेरित करने पर वेगशाली वे अश्व प्रलय के झंझावात के समान चलने लगे। ध्वजा को अत्यधिक ऊँचा करने में निपुण नंदीश्वर ने उस श्रेष्ठ रथ की सर्वोत्तम ध्वजदंड पर शिवजी की इच्छा से अपना आसन जमाया। सूर्य के समान तेजस्वी, भृगु-पुत्र शुक्र तथा अंगिरा पुत्र वृहस्पति ने हाथों में दण्ड धारण कर उस श्रेष्ठ रथ के दोनों चक्कों पर रुद्र की हितकामना से निवास किया। तब शत्रुओं के विनाश करने में सहस्र हाथों वाले अनन्त भगवान् शेषनाग हाथ में वाण धारण कर रथ की तथा ब्रह्मा जी के आसन की रक्षा में नियुक्त हुए। यमराज अपने अत्यन्त दारुण महिष पर, धनपति कुबेर सर्प पर, देवराज अपने वाहन ऐरावत पर, वरदायक कार्तिकेय सौ चन्द्रकवाले मयूर पर, जो कूजते हुए किन्नर के समान था, शीघ्र चढ़कर, पिता के उस युगोपम रथ की रक्षा करने लगे। तेजस्वी भगवान् नंदीश्वर शूल धारण कर रथ के पीछे से तथा दोनों बगलों से लोक विनाशक काल के समान उग्र रूप धारण कर रक्षा करने लगे। अग्नि के समान विकराल वर्णवाले, ज्वालामुखी पर्वत के समान भीषण प्रमथगण भगवान् शंकर के रथ के पीछे-पीछे इस प्रकार चलने लगे मानो

महासमुद्र में नाकगण तैर रहे हों। भृगु, भरद्वाज, वसिष्ठ, गौतम, क्रतु, पुलस्त्य, तपस्वी पुलह, मरीचि, अत्रि, भगवान् अंगिरा, पराशर तथा अगस्त्य आदि प्रमुख महर्षियों ने विचित्र भूषणों तथा स्तुतियों द्वारा अजन्मा, अजित शंकर जी को परम सन्तुष्ट किया। सुवर्ण गिरि के समान सुन्दर वह रथ आकाश मार्ग में अवस्थित उस त्रिपुर की ओर पक्षधारी पर्वत के समान चला। हस्ती, पर्वत, सूर्य एवं मेघ के समान आकार तथा तेजवाले, जलयुक्त बादल के समान भीषण रव करनेवाले वे प्रमथगण देवताओं द्वारा सुरक्षित उस रथ को चारों ओर से घेरकर बड़े गर्व के साथ पीछे-पीछे चलने लगे। अति तेजोमय वह सुन्दर रथ वज्रपात एवं मेघ गर्जना के समान भीषण रव करता हुआ आकाश मार्ग में इस प्रकार चलने लगा जैसे प्रलयकाल में मकर आदि जलीय जन्तुओं से व्याप्त एवं उद्धत समुद्र चला जा रहा हो। ॥१-७१॥

श्री मात्स्य महापुराण में त्रिपुरदाहप्रसंग में रथ प्रयाण वर्णन नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३३॥

एक सौ चौतीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—इस प्रकार उस श्रेष्ठ रथ की देवाताओं तथा अन्य लोगों ने आकर पूजा की और भगवान् शंकर उसपर विराजमान हो गये। प्रथम (शिव जी के गण) घोर शोर मचा कर 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा'—इस प्रकार चिल्लाने लगे। महावृषभ नंदीश्वर ईश्वर के स्वर के समान भीषण शब्द करने लगे, विप्रगण जय-जयकार मचाने लगे और घोड़े हिनहिनाने लगे। तब रण भूमि से उछल कर देवर्षि नारद भगवान्, जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहे थे, शीघ्र ही उस त्रिपुर की ओर प्रस्थित हुए। वहाँ दैत्यों के त्रिपुर में भीषण उत्पात एवं अपशकुन आदि हो रहे थे उसी समय वहाँ पर परम तपस्वी भगवान् नारद जी प्रकट हुए। श्वेतमेघ के समान कान्तिमान् नारद को आया देख सभी दानव गण एक साथ ही अभिवादन करते हुए उठ खड़े हुए। त्रिपुरेश्वर मय ने देवर्षि नारद का अर्घ्य मधुपर्क तथा पाद्यादि से इस प्रकार पूजन किया जैसे देवराज इन्द्र सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्मा की पूजा करते हैं। पूजनीय परम तपस्वी नारद ने मय की पूजा अंगीकार की और तदुपरान्त वे सुवर्ण के एक सुन्दर आसन पर आसीन हुए। नारद जी के सुखपूर्वक आसन पर बैठ जाने के बाद दानवपति मय भी दानवों के साथ अपने उचित आसन पर विराजमान हुआ। महा असुर मय ने ब्रह्मपुत्र नारद जी को बैठा देख अति प्रसन्नता से पुलकायमान हो प्रसन्न मन एवं विकसित नेत्रों से पूछा––'वर्तमान के जाननेवाले नारद जी! हमारे इस त्रिपुर में इस प्रकार के भीषण अपशकुन दिखाई पड़ रहे हैं जैसे अन्यत्र कहीं भी न होते होंगे। लोगों को परम भयानक स्वप्न दिखाई पड़ते हैं, पताकाओं के दण्ड टूट-टूट कर गिर पड़ते हैं। विना वायु के ही पताकाएँ पृथ्वी पर आ गिरती हैं। अट्टालिकाएँ पताकाओं एवं प्रवेश द्वारों के साथ काँपती हैं, त्रिपुर भर में 'मारो-मारो' की भयंकर ध्वनि सुनाई पड़ती हैं। नारद जी! मैं एक सृष्टि के स्थाणु स्वरूप, वरदायी, भक्तों को अभयदान देनेवाले शंकरजी को छोड़ कर इन्द्र समेत समस्त देवताओं को कुछ नहीं डरता हूँ। निष्पाप

नारद जी ! इन उत्पातों के विषय में आप से कुछ छिपा हुआ नहीं है, आप तो भूत तथा भविष्य के विषय में भी पूरी जानकारी रखते हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद जी। हम लोगों को अतिशय भय देने वाले इन अपशकुनों का क्या कारण है ? कृपया इसके विषय में आप बतायें। मैं आपकी शरण में हूँ।' इस प्रकार मय की प्रार्थना सुन शोकरहित प्रसन्न चित्त नारद जी बोले।॥१—१६॥

नारद ने कहा—दानव पति ! जिस कारण से ये अपशकुन हो रहे हैं, उसके विषय में कह रहा हूँ, सुनिए। धर्म शब्द धृञ् धातु से बना हुआ है, जो धारण तथा माहात्म्य के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। परमेश्वर के महत्त्व को अंगीकार कर (अपने को) धारण करने को धर्म कहा जाता है। मनोरथों को सिद्ध करनेवाले इस धर्म की ऐसी व्याख्या आचार्यों द्वारा बतलायी गई है। इससे भिन्न जो वैसा इष्ट साधक नहीं होता अर्थात् जो अनिष्ट फलदायी होता है, वह अधर्म है। आचार्य लोग उसका उपदेश नहीं करते। मनुष्य को कुमार्ग से सन्मार्ग पर आना चाहिए। जो सन्मार्ग से कुमार्ग पर जाते हैं, उनका विनाश निश्चित है। वेद के माहात्म्य को जाननेवाले ऐसा जानते हैं। तुम इन सब उन्मत्त दानवों के साथ अधर्म के रथ में आरूढ़ होकर देवताओं के अपकारियों की सहायता करते हो। वे सब अपशकुन, जिन्हें तुमने मुझे बतलाया है, इन्हीं दानवों के विनाश के सूचक हैं। भगवान् रुद्र सम्पूर्ण लोकमय रथ पर आरूढ़ होकर तुम्हारे इस त्रिपुर को, तुम्हें तथा असुरों को विनष्ट करने के लिए आ रहे हैं। इसलिए हे दानव ! अपने पुत्रों तथा दानवों को साथ लेकर तुम महा तेजस्वी शाश्वत भगवान् महेश्वर की शरण में चले जाओ।' इस प्रकार देवर्षि नारद दानवों को इस आगत महाभय की सूचना देकर पुनः देवाधिदेव शंकर जी के पास वापस चले आये। नारद मुनि के चले जाने पर मय ने अपने मन में विचार किया कि 'इस प्रकार का कार्य शूर सम्मत ? (नहीं) है।' तदुपरान्त उसने दानवों से कहा—'दानवगण ! तुम लोग शूर वीर हो, पुत्रादि से सम्पन्न हो, सभी प्रकार की कामनाओं को प्राप्त कर चुके हो। इन देवताओं के साथ युद्ध अवश्य करो, इसमें भय मत करो। असुरगण ! इन्हें जीत कर हम लोग देवताओं की उस सभा के सभासद हो जायँगे तथा इन्द्र समेत समस्त देवताओं को मारकर समस्त लोकों का उपभोग करेंगे। तुम लोग युद्ध के लिए सुसज्जित होकर हाथों में विविध हथियार कवच आदि धारण कर सभी शस्त्रास्त्रों को तैयार कर दुर्ग के ऊपर वा अटारियों पर जा बैठो। इन तीनों पुरों में अपने-अपने योग्य स्थानों को प्राप्त कर बैठ जाओ, नहीं तो देवगण इन पुरों पर आक्रमण कर के और बचकर चले जायँगे। आकाशमार्ग में चलनेवाले वे शूरवीर देवगण तुम लोगों के जाने हुए हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक रोकते जाओ और अपने तीक्ष्ण बाणों से उन्हें भलीभाँति घायल करो।' मय ने देवरूपी आक्रमणकारी हाथियों के निवारण के लिए इस प्रकार की बातें दानवों से कर स्त्रियों की चिन्ता तथा व्याकुलता से व्याप्त उस त्रिपुर में प्रवेश किया। और तदनन्तर उसने शुभ्र रजत के समान पवित्र मूर्ति, कामादि के शत्रु, अन्धकासुर के उन्मूलक, दक्ष के शरीर के विनाशक भगवान शंकर की मनोहर स्तोत्रों से पूजाकर सर्वतोभावेन उन्हीं की शरण प्राप्त की। उस समय चन्द्रशेखर भगवान शंकर का तृतीय नेत्र यद्यपि क्रोध की अग्नि की उद्दीप्ति से युक्त था किन्तु अभय पद की इच्छा रखने वाले मय की प्रार्थना के बाद वे उसकी

अभिसंधि को कुछ भी नहीं समझा तथा उसके अभिमत वरदान को दे भी दिया, जिसके कारण वह दानवपति और अधिक निडर होगया। ॥१—३३॥

श्री मात्स्य महापुराण में त्रिपुरदाहप्रसंग में नारद गमन वर्णन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३४॥

एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—तदनन्तर देवर्षि नारद जी त्रिपुर से रणभूमि में वापस आकर देवताओं की सेना में उपस्थित हुए और वहाँ देवताओं की सभा में सम्मिलित हुए। वह अति विस्तृत वर्ष इलावृत्त के नाम से विख्यात था, जहाँ पर दैत्यराज बलि संयत चित्त से यज्ञाराधन में निरत था। वह पुण्य स्थान त्रिलोक में 'देवताओं की जन्म भूमि' नाम से विख्यात है; वहाँ पर देवताओं के विवाह, यज्ञ, जात कर्म आदि पवित्र संस्कार तथा क्रियाएँ सम्पन्न होती थीं। वहीं पर देवताओं के कन्यादान आदि पुनीत व्रत भी सम्पन्न किये जाते थे। यही नहीं वहीं अपने गणों समेत भगवान् शंकर भी नित्य विहार करते थे। उसी स्थान पर लोकपाल गण भी सुमेरु पर्वत की भाँति निवास करते हैं। द्वितीया के चन्द्रमा को धारण करने-वाले मधुपिंगल नेत्र भगवान शंकर ने उक्त स्थान पर इन्द्र से तथा अपने गणाधीशों से कहा—'देवराज! इन्द्र! यहाँ से तुम्हारे शत्रुओं का त्रिपुर सामने दिखलाई पड़ रहा है, जो अनेक प्रकार के विमान, पताका तथा ध्वजाओं से सुशोभित तथा अति प्रसिद्ध है। यह बात प्रसिद्ध है कि यह त्रिपुर अग्नि की तरह शत्रुओं को परम दुःख देने वाला है। और उसमें ये काले बादलों के समान भीषण आकृति वाले दानवगण दिखाई पड़ रहे हैं, जो कुण्डल तथा किरीट धारण किये हुए चहार दीवारी, फाटकों तथा अँटारियों पर बड़े-बड़े पर्वतों के समान विराजमान हैं। ये सभी विजय की इच्छा से हथियार धारण कर विकराल मुख वाले, दानवगण त्रिपुर से बाहर निकल रहे हैं, सो तुम इन सब महान दानवों को, मेरे गणों के साथ अपने असंख्य शस्त्रों से मारो। मैं अपने इस अनुपम रथ पर बैठकर पर्वत के समान निश्चल होकर तुम लोगों की विजय कामना से इस त्रिपुर के छिद्रों को देखूँगा। हे इन्द्र! जब पुष्य नक्षत्र के योग पर तीनों पुर परस्पर एक स्थान पर मिलेंगे, उस समय मैं अपने एक ही बाण से इस समस्त त्रिपुर को दग्ध करूँगा।' देवराज इन्द्र ने शिव की ऐसी बातें सुन अपनी सेना को साथ लेकर त्रिपुर को जीतने के लिए प्रस्थान किया। सिंह के समान भीषण गर्जन करने वाले देवताओं तथा शिव के भयानक गणों को साथ लेकर इन्द्र प्रस्थित हुए। वे प्रमथगण उस समय सुन्दर रथों पर आरूढ़ होकर दौड़ते हुए बादलों की तरह मालूम पड़ रहे थे। उनके भीषण चीत्कार को सुनकर युद्ध की लालसा से दानवगण हथियार ले-लेकर त्रिपुर से बाहर निकल पड़े और आकाश में उन गणेश्वरों तथा देवताओं के सम्मुख आ गये। उनमें बहुत-से दानवगण बादलों के समान भीषण गर्जना करनेवाले थे और आकार में भी काले मेघों के समान थे। वे सभी उद्धत स्व-भाव वाले दानव मुँह से सिंह की तरह घोर गर्जन करते हुए अनेक प्रकार के बाजे बजा रहे थे। उन

त्रिपुरवासी दानवों के सिंहनाद के सम्मुख देवताओं के सिंहनाद तथा सम्पूर्ण वाद्यों के शब्द इस प्रकार अस्त हो गये जैसे काले बादलों में चन्द्रमा अस्त हो जाता है। पूर्णिमा के चन्द्रमा के उदित होने पर जिस प्रकार समुद्र स्फीत होकर ऊपर उठता है उसी प्रकार उन भयानक शरीर वाले दानवों से समस्त त्रिपुर उद्दीप्त हो उठा। उस समय कुछ दानवगण त्रिपुर की चहार दीवारियों पर, कुछ फाटकों पर तथा कुछ अँटारियों पर शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर बैठे हुए थे। कुछ दानव चलते हुए बाजा बजा रहे थे। कुछ सुवर्ण की मालाएँ धारण किये हुए थे, कुछ सुन्दर वस्त्रों तथा चमकीले आभूषणों से सुशोभित हो रहे थे, और कुछ इतने भीषण शब्द कर रहे थे मानो जलयुक्त बादल गरज रहे हों। कुछ दानव अपने वस्त्रों को उड़ाते हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे, और परस्पर एक दूसरे को पकड़ कर पूछ रहे थे कि "अरे! यह क्या हो रहा है। मैं नहीं जानता कि यह सब क्या हो रहा है, मेरी तो बुद्धि ही लुप्त हो गई है, अभी चुप रहो, जीवन के बहुत दिन शेष हैं, कभी तो मालूम ही हो जायगा कि यह क्या है? वह कौन ऐसा सिंह के समान महा पराक्रमी है जो रथ में अवस्थित होकर समस्त पृथ्वी के सारभूत इस हमारे त्रिपुर को इस प्रकार पीड़ित कर रहा है जैसे व्याधि शरीर को पीड़ित करती है। यह जो है, सो रहे? ऐसी हड़बड़ी में इसकी चिन्ता करनी ठीक नहीं, हथियार लेकर शीघ्र ही मैदान में आ जाओ, तब मुझसे पूछने की जरूरत ही कहाँ होगी।" इस प्रकार वे त्रिपुर निवासी दानवगण उस समय आपस में एकत्र होकर एक दूसरे से प्रश्न करते तथा उत्तर देते थे। तारकासुर के पुर में रहनेवाले तारक के अनुगामी दैत्य गण अपने पुर से क्रुद्ध होकर इस प्रकार बाहर निकले जैसे क्रुद्ध महा सर्प अपनी बिल से बाहर निकलते हैं। दौड़ते हुए असुर गण शिव के गणों तथा यूथपों द्वारा इस प्रकार रोक लिए गये जैसे सिंहों के यूथपतियों द्वारा हस्तियों के समूह रोक लिये जाते हैं। इस प्रकार गणपों द्वारा अवरुद्ध अग्नि की तरह गर्वीले उन राक्षसों के आकार निर्धूम अग्नि की तरह और भी उद्दीप्त हो उठे। तदनन्तर भयानक तथा बड़े बड़े धनुषों को, जो भीषण टंकार करने वाले थे, धारण कर वे लोग प्राण संहारक बाणों द्वारा एक दूसरे की सेना में आघात करने लगे। रूपवान् दानवगण बिलाड़, मृग तथा अन्य प्रकार के भयानक मुखवाले शिव के पार्षदों को देखकर ऊँचे स्वर में हँसने लगे। मूसल के समान विशाल भुजाओं द्वारा खीचें हुए धनुषों से निकले हुए बाण वीरों के कवचों में इस प्रकार घुसने लगे जैसे पक्षी तालाबों में घुसते हैं। दानव गण शिव के गणों से 'अरे अब तो तू मरे ही हो, हमारे हाथ से बाहर कहाँ जा सकते हो, अभी हम लोग तुम्हें मार डालेंगे, भागो मत, लौट आओ', इस प्रकार की कठोर बातें कह-कह कर अपने तीखे बाणों से उनका इस तरह भेदन करने लगे जैसे सूर्य की किरणें बादलों का भेदन करती हैं। सिंह के समान बलशाली तथा विकराल नेत्रोंवाले शिव के गण भी पर्वतों के खण्डों, वृक्षों तथा बड़ी-बड़ी शिलाओं द्वारा दैत्यों तथा दानवों का संहार करने लगे। जिस प्रकार काले मेघों से व्याप्त हंस के समूह आकाश में दिखाई पड़ते हैं, उसी प्रकार बहुत-से दानव गणों से आकीर्ण वह संपूर्ण त्रिपुर नभ में सुशोभित हो रहा था। बड़े-बड़े असुर गण धनुष खींच कर बाण की झड़ी लगा

रहे थे। वह बाणों की वृष्टि इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जैसे मध्य में उगे हुए इन्द्र धनुष से सुशोभित बादलों से वृष्टि हो रही हो। असुरों के बाणों से अतिशय घायल होकर गणेश्वर गण इस प्रकार रक्त उगलने लगे जैसे पर्वत से सुवर्ण धातु निकल रही हो। शिवगणों द्वारा फेंके जानेवाले वृक्ष, शिला, वज्र, शूल, छुरी तथा कुल्हाड़ों से घायल दानव गण इस प्रकार चूर्ण कर दिये जाते थे जैसे पत्थर के टुकड़ों के पटकने से शीशा चूर्ण-चूर्ण हो जाता है। भयानक रूप वाले महान् असुरों से वह त्रिपुर इस प्रकार प्रभावशाली हो गया था जैसे चन्द्रमा के उदित होने पर पूर्णिमा का समुद्र उफन पड़ता है। दैत्य गण 'तारकासुर की विजय हो रही है' ऐसा कह रहे थे, और इधर 'इन्द्र और रुद्र की विजय हो रही है।' गणेश्वर लोग यह कह-कह कर चिल्ला रहे थे। उस सैन्य समुद्र में बाणों द्वारा युद्ध से निवारित तथा घायल योद्धा गण इस प्रकार घोर शब्द कर रहे थे जैसे वर्षा काल में जल युक्त बादल गरज रहे हों। कटे हुए हाथों, शिरों, पीले वर्ण की कटी हुई ध्वजा और पताकाओं से आकीर्ण तथा मांस और रक्त से भरी हुई युद्ध की भूमि अतिशय भयावनी दिखाई पड़ रही थी। अच्छे-अच्छे शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित दानव तथा प्रमथ गण सहसा रण भूमि से कूद कर ताड़ की ऊँचाई तक आकाश में पहुँच जाते थे तथा अति घायल होने के कारण फिर ऊपर से गिर पड़ते थे। उस सयय आकाश में विचरण करनेवाले सिद्ध, अप्सरा तथा चारणादि के समूह योद्धाओं के घायल होने पर 'बहुत अच्छा' 'बहुत अच्छा' कह कह कर चिल्लाने लगते थे। उस समय देवताओं की दुन्दुभियाँ विना बजाए ही आकाश में इस प्रकार सुनाई पड़ रही थीं जिस प्रकार बादलों की कड़क सुनकर क्रुद्ध कुत्ते हुँआने लगते हैं। ॥१-४४॥

असुर गण उस समय त्रिपुर में इस प्रकार प्रविष्ट हो रहे थे जैसे नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं तथा क्रुद्ध सर्प अपनी बिल में प्रवेश करता है। तारकासुर के उस प्रसिद्ध पुर में शूर देवतागण शस्त्रों समेत इस प्रकार गिरे हुए थे जैसे पक्षधारी पर्वत गिरे हों। गणेश्वर लोग तीन भागों में विभक्त होकर उस त्रिपुर में युद्ध कर रहे थे। रणभूमि में बलवान् विद्युन्माली तथा मय वृक्ष के समान निर्भय खड़े होकर युद्ध कर रहे थे। पर्वत के समान शोभाशाली दैत्यराज विद्युन्माली ने अति भयानक मूसल को हाथ में लेकर नन्दिकेश्वर के ऊपर प्रहार किया। दानवराज विद्युन्माली के मूसल से अतिशय घायल होकर नंदिकेश्वर इस प्रकार घूमने लगे जिस प्रकार पहले मधु द्वारा ताडित होकर भगवान् विष्णु घुमाये गये थे। उस युद्धभूमि में घायल होकर नंदी के चले जाने पर विख्यात पराक्रमी घण्टाकर्ण, शंकुकर्ण तथा महाकाल नामक प्रमुख शिव के गणपतियों ने अति क्रुद्ध होकर विद्युन्माली के ऊपर एक साथ आक्रमण किया। विद्युन्माली ने अपने कठोर बाणों द्वारा सभी गणपों को, जो आकृति में गणेश के समान थे और अन्यान्य गणेश्वरों के प्रमुख थे, अति घायल कर-कर के बड़े ज़ोरों से इस प्रकार घोर. गर्जना की जैसे श्रावण के महीने में मेघ गरजता है। उसके इस महान् तथा भीषण रव से सूर्य के समान तेजस्वी नंदिकेश्वर ने मूर्च्छा छोड़कर होश सँभाल ली और विद्युन्माली की ओर आक्रमण किया। शिव से प्राप्त प्रज्ज्वलित अग्नि के समान दीप्तिमान् वज्र से उन्होंने वज्र के समान पुष्ट शरीर वाले दानव पर प्रहार किया। नंदिकेश्वर के हाथों से छूटा हुआ,

मोतियों की लड़ियों से सुशोभित वह भीषण वज्र उसकी छाती पर आकर गिरा। वज्र के समान शरीरधारी वह असुर वज्र से घायल होकर इस प्रकार धरती पर गिरा जैसे इन्द्र के वज्र से ताड़ित होकर पहाड़ गिर पड़ता है। अपने वर्ग को आनन्द देने वाले नंदी ने दैत्यराज विद्युन्मली का बध कर दिया—ऐसा देखकर दानव लोग विलाप करने लगे तथा शिव के गणाधिप लोग अतिशय उत्साह से दौड़ने लगे। असुर गण विद्युन्माली के मारे जाने पर क्रोध तथा अमर्ष से पूर्ण होकर वृक्षों तथा पहाड़ों की बादलों की भाँति वर्षा करने लगे। उन बड़े-बड़े पर्वतों द्वारा घायल वे शिव के गण इस प्रकार किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये जैसे अधार्मिक पुरुष वन्दनीय देवता एवं ब्राह्मणों के विषय में हो जाते हैं। तत्पश्चात् असुरनायक प्रतापी तारकासुर वृक्षों तथा पर्वतों के समान स्वरूप धारण कर रणभूमि में सुशोभित हुआ। उस समय शिर पैर तथा हाथों से विहीन तथा हथियारों से घायल मुखवाले गणपति लोग मंत्र से विवश किये गये सर्प की भाँति दिखाई पड़ने लगे। मायावी मय द्वारा घायल किये गये गणाधिपति गण अनेक प्रकार से शब्द करते हुए इस प्रकार इधर-उधर घूम रहे थे जिस प्रकार पिंजरें में बंद पक्षी। असुरपति तारकासुर ने देवताओं की तमाम सेना को इस प्रकार जलाना शुरू किया जैसे सूखे काष्ठ को अग्नि। तारकासुर की बाणों की वृष्टि द्वारा शिव के गण उस समय निवारित कर दिये गये। इस समय मय की माया से तथा तारकासुर के बाणों से गणाधिपति गण इस प्रकार विह्वल हो गये जैसे पुरानी जड़ोंवाले वृक्ष। मायावी मय ने माया के प्रभाव से शत्रुओं की सेना पर अनेक बार अग्नि की वर्षा की तथा ऊपर से ग्राह, मकर, सर्प, पहाड़, सिंह, बाघ, वृक्ष, काले हिरण, तथा एक प्रकार के विशेष हिरण, जिनके आठ पैर होते हैं, की वर्षा की तथा अति मात्रा में जल की भी वृष्टि की और प्रचंड वायु को भी बहाया। इस प्रकार शिव के गण मय तथा तारकासुर की माया से एकदम सम्मोहित हो गये। वे मन से भी किसी प्रकार की चेष्टा करने में इस प्रकार असमर्थ हो गये जिस प्रकार काम आदि-इन्द्रयों के विषय मुनियों द्वारा विवश कर दिये जाते हैं। अपार जलराशि, भीषण प्रचंड अग्नि, उसी में गिरनेवाले हाथी, सर्प, सिंह, बाघ, रीछ, भेंड़िया तथा राक्षसों द्वारा पीड़ित तथा घने अपार अंधकार में इधर-उधर मार्ग न दिखाई पड़ने से सम्मोहित वे प्रमथगण इस प्रकार विवश हो गये जिस प्रकार समुद्र की थाह लगानेवाला मनुष्य विवश हो जाता है। इस प्रकार शिव के गणों को मारे जाते हुए तथा दैत्यों को गरजते हुए देख कर बड़े-बड़े देवताओं के अधिपतियों ने गणों की रक्षा के लिए हथियार धारण कर शत्रु की सेना में एक साथ ही प्रवेश किया। गदा धारण कर यमराज, वरुण, भास्कर तथा एक करोड़ देवताओं के साथ अश्विनीकुमार और श्वेत हाथी पर सवार हो वज्रधारण कर स्वयं देवराज इन्द्र, चन्द्रमा, अपने पुत्र शनैश्चर समेत सूर्य, अन्तक समेत महाद्युतिमान् त्रिनेत्रधारी भगवान शंकर—ये सभी देवगण क्रोध से उन्मत्त होकर इस प्रकार शत्रुओं की सेना में प्रविष्ट हुए जैसे मतवाले हाथी वन में तथा दिवाकर सूर्य मेघाच्छन्न आकाश में प्रवेश करते हैं। उनके प्रवेश करते ही दैत्यों की सेना इस प्रकार भाग चली जैसे निर्जन वन में सिंहों के मारे गौएँ भाग चलती हैं। अपने भीषण बाणों से पीड़ित कर दैत्यों को

शिव के पार्षदों ने छिन्न-भिन्न कर दिया। वे अतिदीन हो गये। जैसे आकाश मंडल में विद्यमान् स्वर्गीय ज्योतिः पुञ्जों में श्रेष्ठ सूर्य मनुष्यों के अंधकार को दूर कर देता है, जिस प्रकार रात्रि के घने अंधकार को चंद्रमा दूर कर देता है उसी प्रकार रणाङ्गण में शिव की कृपा से दैत्यों के अंधकार रूपी शस्त्रों का प्रभाव दूर हो गया। उस समय दिक्पाल, लोकपाल तथा गणेश्वरों ने सिंह के समान घोर गर्जना की। तदनन्तर युद्ध में दैत्य लोग गणों द्वारा बिंधे हुए अंगों वाले तथा पाद, हाथ तथा शिरों से भिन्न हो-होकर गिरने लगे। श्रेष्ठ देवताओं द्वारा घायल किये गये असुर गण इस प्रकार दुःखी थे जैसे कीच में फँसे हुए हाथी के समूह। उन पर इन्द्र ने वज्र से प्रहार किया। कार्तिकेय ने अपनी शक्ति से, धर्मराज ने अपने भयानक दंड से, वरुण ने पाश से, सुकेश कुवेर ने अपने पराक्रम द्वारा अति प्रभाव युक्त त्रिशूल से उन दैत्यों का घोर संहार किया। गणेश्वर गण पूर्णाहुति से देदीप्यमान अग्नि के समान तेजोयुक्त होकर युद्ध भूमि में दैत्यों को भगांते हुए गिरती हुई बिजली के समान तेजी से इधर-उधर कड़कने लगे। तदनन्तर मय ने देवताओं के रक्षक कार्तिकेय को बाणों से घायल कर तारकासुर दैत्य से कहा—॥१–८०॥

'दैत्य! अब मैं भीषण प्रहार करता हुआ दैत्यों की श्रेष्ठ सेना लेकर इस त्रिपुर में प्रवेश करूँगा और वहाँ कुछ देर विश्राम कर पुनः शक्ति सम्पन्न होकर यहाँ आने वाले देवों से अनुचरों समेत पुनः युद्ध करूँगा। हथियारों के लगने से हम लोग सभी विकृत अंगों वाले हो रहे हैं, सभी के हथियार, ध्वजा, कवच तथा वाहनादि छिन्न-भिन्न हो गये हैं। ये सब गणेश्वर तथा लोकाधिपति अन्तिम बार हम लोगों को जीतने की इच्छा से ऐसा उत्कट पराक्रम दिखा रहे हैं।' मय की ऐसी बातें सुन रक्तनेत्र तारकासुर ने आकाश मार्ग से दिति के पुत्रों के साथ अपने पुर में शीघ्रतापूर्वक प्रवेश किया। इससे अदिति के पुत्र देवगण समरभूमि में अत्यधिक प्रसन्न हुए। तदनन्तर मय के पीछे दौड़ती हुई शिव की सेना में शंख, दुन्दुभि एवं नगाड़े के साथ भीषण सिंहनाद इस प्रकार होने लगा मानो हिमालय में गज एवं सिंहों के समूह गरज रहे हों।॥८१-८४॥

श्री मात्स्य महापुराण में त्रिपुरदाह वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त॥१३५॥

एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—दानवराज मायावी मय देवताओं पर भीषण प्रहार कर समरभूमि से शीघ्र ही इस प्रकार त्रिपुर में प्रविष्ट हुआ जैसे आकाश में काला मेघ प्रविष्ट होता है। चिन्ता से दीर्घ श्वासें खींचते हुए त्रिपुर के मध्य में भागकर आये हुए दानवों को देखकर लोक के विनाश के अवसर पर दूसरे काल की भाँति वह चिन्तन करने लगा। 'जिसके सामने युद्ध की इच्छा रखने वाला इन्द्र भी डरता था वह महान् यशस्वी विद्युन्माली मारा जा चुका। हमारे इस त्रिपुर दुर्ग के समान कोई अन्य दुर्ग त्रिलोकी में नहीं हैं; किन्तु उसकी भी आज यह हाल हो रहा है। इसलिए निश्चित है कि विनाश के उपस्थित होने

पर ऐसा दुर्ग भी हमारी कुछ सहायता नहीं कर सकता। क्यों न हो; इस संसार में दुर्ग क्या दुर्ग से भी बढ़कर जो वस्तुएँ मनुष्य की सहायक हो सकती हैं वे सभी उस महाकाल के वश में रहती हैं। जब वह महाकाल ही हम लोगों पर क्रुद्ध हो गया है तो हम लोगों की अब रक्षा किस प्रकार हो सकेगी? इन तीनों लोकों में जो कुछ भी है, संसारी जन्तुओं में जो कुछ भी पराक्रम विद्यमान दिखाई पड़ता है, वह सब उसी महाकाल के अधीन है। यह पितामह ब्रह्मा का विधान है। ऐसे अपरिमित पराक्रमी तथा असाध्य उस महाकाल की क्रूरता में कौन-सा उद्योग सफल हो सकता है? उस महाकाल को पराजित करने में श्री शंकर जी के विना कौन समर्थ हो सकता है? मैं देवराज इन्द्र से कुछ डर नहीं खाता, न तो यमराज ही से कुछ डरता हूँ। न तो कुवेर अथवा वरुण का ही मुझे कुछ भय है, किन्तु इन सभी देवताओं के स्वामी महादेव ही हमारे भय के कारण हो रहे हैं; उनका जीतना महान् कठिन है। मेरे ऐश्वर्य का जो कुछ भी परिणाम है, मेरी प्रभुत्व-प्राप्ति का जो कुछ भी फल है, उसको आज मैं सभी वीरों तथा सामन्तों के सम्मुख प्रदर्शित करूँगा। मैं एक अमृत जल से पूर्ण बावली का निर्माण करूँगा और ऐसी सर्वश्रेष्ठ औषधियों के समूहों का अविष्कार करूँगा जिनके सेवन से मेरे सभी सैनिक दानव वृन्द पुनः जीवित हो जायंगें।' ॥१—१०॥

इस प्रकार सैनिकों से कहने के उपरान्त मायावियों में श्रेष्ठ बलवान उस मयासुर ने माया द्वारा इस प्रकार एक बावली का निर्माण किया जिस प्रकार पितामह ब्रह्मा ने रम्भा की सृष्टि की थी। आठ कोस लंबी, चार कोस चौड़ी, सुन्दर चढ़ाव उतार वाली कथा की भाँति मनोहर सीढ़ियों से अति सुन्दर, चन्द्रमा की किरणों के समान स्वच्छ, सुस्वादु एवं परम सुगंधित अमृत जल से परिपूर्ण, सर्वांग सुन्दरी रमणी की भाँति सभी गुणों से प्रपूर्ण एवं सन्तापहारिणी वह बावली थी। सूर्य तथा चन्द्रमा के समान वर्ण वाले कमल, कुमुदिनी तथा विविध पद्मों एवं कलहंस आदि देखने में भयानक पक्षों वाले सुन्दर एवं मीठे शब्द करने वाले, सुवर्ण के समान मनोहर विविध प्रकार के पक्षियों से वह वावली इस प्रकार चारों ओर से आकीर्ण थी मानों अपनी-अपनी कामना की प्राप्ति के इच्छुक विविध जीवों के समूह से भरी हुई हो। पूर्वकाल में महादेव ने जिस प्रकार गंगा की अवतारणा की थी उसी प्रकार उस विचित्र वावली की रचना कर सर्व प्रथम मय ने विद्युन्माली के शव का उसमें स्नान कराया। महाबलशाली, देवताओं का परम शत्रु विद्युन्माली उस वावली में गिरते ही इस प्रकार उठ खड़ा हो गया जिस प्रकार शीघ्र हवन की हुई अग्नि ईन्धन डाल देने पर उद्दीप्त हो उठती है। तारकासुर ने मय के पास जाकर करवद्ध प्रणाम किया और विद्युन्माली ने मय को अंजलि बाँध कर इस प्रकार की बातें कहीं—'नन्दीश्वर शृगालों तथा दुष्ट गणों के सहित वह रुद्र कहाँ है? उन शत्रुओं का संहार कर अब हम लोग युद्ध करेंगे। हम लोगों की अब इस शरीर पर दया कैसी? रुद्र को यहाँ से खदेड़ कर ही हम सब प्रभुत्व प्राप्त कर सकेंगे अथवा उसके द्वारा युद्ध में निहत होकर यमराज के ग्रास बनेंगे।' विद्युन्माली की ऐसी जोशीली बातें सुनकर महासुर मय अति प्रसन्नतापूर्वक आँखों में आँसू भर कर उससे गले मिला और बोला—'महाबाहु विद्युन्मालिन्! तेरे विना

मुझे न तो राज्य करने की अभिलाषा है न तो अपने जीवन धारण की ही कोई इच्छा है। महाअसुर! अन्य वस्तु की तो बात ही क्या है। वीर! यह अमृतमय जल से परिपूर्ण दीर्घ बावली मैंने माया द्वारा निर्मित की है। वह मरे हुए दैत्यों तथा दानवों को पुनर्जीवित करने वाली है। दैत्य! भाग्यवश इसी के प्रभाव से स्वर्गलोक से वापस लौटे हुए तुमको मैं यहाँ उपस्थित देख रहा हूँ। अब तुम्हारे वापस आजाने से हम लोग अपनी उस महानिधि का उपभोग कर सकेंगे, जो उस घोर आपत्तिकाल में अनीतिपूर्वक हमसे छीन ली गई थी।' इस प्रकार मय की बातें सुन बारम्बार उस बावली को देख कर प्रसन्न मुख तथा प्रफुल्लित नेत्रों से उन दैत्य नायकों ने यह बात कही। ॥११—२५॥

'दानवगण! अब तुम लोग भयरहित होकर शिव के गणों के साथ जाकर युद्ध करो। मय ने जो बावली बनाई है, वह मरने पर तुम लोगों को पुनः जीवित कर देगी।' इस प्रकार की बातें सुन कर क्षुब्ध समुद्र की भाँति भयानक भेरी आदि रणवाद्यों को बजाते हुये दैत्यों तथा दानवों ने बारम्बार भीषण गर्जना की। बादल की कड़क के समान भीषण रणभेरी के कठोर शब्दों को सुनकर युद्ध करने के इच्छुक असुर गण त्रिपुर से नीचे उतर पड़े। मणि समूहों द्वारा अलंकृत, लोहे, चाँदी तथा सुवर्ण के बने हुए कुण्डलों तथा हारों से विभूषित, भयानक मुकुट धारण कर अविराम गति से चलने वाली धूम राशि से युक्त देदीप्यमान अग्नि की भाँति कान्तिमान् तथा दृढ़ पराक्रमशील दैत्यगण विविध प्रकार के हथियारों को धारण कर रणाङ्गण में इस प्रकार शोभित होने लगे जैसे रङ्गस्थली में नाचते हुये नट तथा आकाश मण्डल में गरजते हुए बादलों के समूह। उस समय अपने हाथों को उठाते हुए वे ऐसे दिखाई पड़ रहे थे मानो सूँड़ उठाये हुए हाथियों के वृन्द हों। इस प्रकार सिंह की भाँति भय रहित, सरोवर की भाँति गम्भीर, सूर्य की भाँति तेजोमय तथा वृक्षों की भाँति स्थिर रहने वाले वे दानवगण युद्ध भूमि में प्रमथों की सेना को भयभीत करने लगे। इधर शिव के गण वृन्द भी उत्साहपूर्वक गरुड के झपटने की तरह इधर-उधर झपट कर उन पर प्रहार करने लगे। दानवों के शत्रु वे प्रमथ गण बारम्बार मारने की इच्छा से दानवों पर प्रहार करते थे। ॥२६—३३॥

उस समय युद्ध में प्रमथ गण नन्दिकेश्वर की अध्यक्षता में तथा दानवगण तारकासुर की अध्यक्षता में समवेत होकर परस्पर युद्ध करने लगे। वे लोग उस समय चंद्रमा के समान चमकनेवाली तलवारों, अग्नि के समान विकराल पीले वर्ण वाले त्रिशूलों तथा दृढ़ आघात करनेवाले वाणों से एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। लक्ष्य स्थानों पर गिरते हुये वाणों तथा तलवारों के भीषण दृश्य आकाश में गिरती हुई उल्का के समान भयानक दिखाई पड़ रहे थे। शक्तियों द्वारा कटे हुए हृदय वाले निर्भय असुरों तथा प्रमथों के शरीर रणभूमि में इस प्रकार दिखाई पड़ रहे थे जैसे नरक में पड़े हुए पापियों के जीवगण बोल रहे हों। सुवर्ण निर्मित कुंडल तथा उत्कृष्ट मुकुट से विभूषित वीरों के शिर समूह प्रलयकाल में गिरे हुए बड़ी-बड़ी शिलाओं तथा पर्वतों के शिखरों की तरह बिखरे पड़े थे। फरसे, गड़ासे, अन्यन्य शस्त्रों एवं तलवारों तथा मूसलों के प्रहार से कटे फटे हुए वे दैत्य तथा प्रमथ गण बड़े-बड़े हाथियों के समान पृथ्वी तल पर मरे

हुए पड़े थे। शीघ्र ही प्रसन्न हो कर भयंकर गर्जना करने वाले शिव के गण लोग एक भयंकर हँसी हँसते हुए युद्ध कर रहे थे। उधर सिद्ध गण एवं अद्भुत गन्धर्व भी युद्ध में प्रवृत्त हो गये थे। युद्ध भूमि में आगे चलने वाले चारण गण ऐसी बातें कर रहे थे। 'प्रमथ! तुम तो बड़े बलवान् दिखाई पड़ते हो, दानव! तुम भी तो बड़े गर्वीले हो।' युद्धभूमि में कुछ शंकर जी के गण दानवों के मुसल-प्रहार से अतिशय घायल होकर मुँह से रक्त उगल रहे थे, वह दृश्य ऐसा मालूम पड़ता था मानों पर्वत से पिघला हुआ तरल सुवर्ण निकल रहा हो। प्रमथों द्वारा फेंके गये बाणों वृक्षों तथा पर्वत की बड़ी-बड़ी शिलाओं की भयानक मार से युद्ध में अनेक दानव गण मार डाले गये। मारे गये उन दानवों को अन्य बड़े-बड़े दानवों ने उठा-उठा कर मय की आज्ञा से उसी बावली में डाल दिया। उसमें पड़ने पर वे दानव गण स्वर्ग लोक में अवस्थित देवताओं की भाँति कान्ति युक्त सुन्दर शरीर धारण कर, मनोरम आभूषण तथा वस्त्रों से सुसज्जित हो कर पुनः उठ पड़े। बावली में से प्राण प्राप्त करके पुनः उठने वाले वे अनेक दानव तथा दैत्य गण भीषण सिंहनाद करके पुनः युद्ध के लिए दौड़ पड़े और जाकर अन्य दानवों से कहने लगे—'अरे दानवो! अब दौड़ो और इन शिव के गणों को दौड़ाकर पकड़ो, क्यों बैठे हो? मरने का तो अब कोई डर है नहीं, क्योंकि मारे जाने पर भी तुम लोगों को वह बावली पुनः जीवित कर देगी!' ग्रहों के समान तेजस्वी प्रमथों में अग्रणी शंकुकर्ण नामक गण ने दानवों की जब ऐसी बातें सुनीं तो शीघ्र ही जाकर देवाधिदेव शंकर से इस प्रकार निवेदन किया—॥३४-४८॥

'देव? आप के गणों द्वारा मारे जाने पर ये असुर गण पुनः भयानक रूप धारण कर ऐसे उठ पड़ते हैं जैसे पानी से सींचे जाने पर कुम्हलायी हुई कृषि हरी-भरी हो जाती है। सुनाई पड़ता है कि इस त्रिपुर में अमृत के जल से परिपूर्ण कोई बावली है, जिसमें डाले जाने पर वे मरे हुए दानवगण पुनः जीवित हो जाते हैं।'—इस प्रकार की सूचना जिस समय शंकुकर्ण ने महादेव को दी उसी समय दानवों की सेना में भयंकर उत्पात होने लगे। तब भयानक नेत्रों वाला तारकासुर भीषण सिंह की भाँति मुँह फैलाकर अति क्रुद्ध हो महादेव के रथ की ओर दौड़ा। उस समय त्रिपुर में भेरी तथा शंख का महान् भीषण निनाद हुआ। देवाधिदेव शंकर जी के रथ में तथा आसपास खड़े हुए देवताओं को देखकर दानवगण त्रिपुर से बाहर निकल पड़े। वहाँ पर भीषण भूकम्प आ गया तथा पृथ्वी तल के सैकड़ों टुकड़े हो गये। दानवों की इस प्रकार की कुचेष्टा को देखकर भगवान् रुद्र तथा स्वयम्भू पितामह अति क्षुभित हुए। उस समय अतिक्षुब्ध देवश्रेष्ठ शिव तथा ब्रह्मा से युक्त वह सुन्दर रथ इस प्रकार निरर्थक एवं अवसन्न हो गया जैसे गुणवान् व्यक्ति बुरे स्थानों में जाकर विवश हो जाते हैं! अथवा धातु (वीर्य) के नष्ट हो जाने से शरीर दुर्बल हो जाता है। गीष्म ऋतु में जिस प्रकार जलाशय का जल नष्ट हो जाता है, अपमानित होने से जिस प्रकार स्नेह नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार वह सुन्दर रथ रणभूमि में जाकर निरर्थक हो गया। इस प्रकार त्रैलोक्यात्मक उस सुन्दर रथ को निरर्थक एवं निश्चलता को प्राप्त होते देख कर महाशय स्वयम्भू ब्रह्मा ने उसके उद्धार करने की चेष्टा की। पीताम्बर धारी जनार्दन भगवान् विष्णु ने बाण से बाहर निकल कर एक बहुत बड़े वृषभ का रूप धारण कर कठिनता से

धारण करने योग्य उस सुन्दर रथको ग्रहण किया। उन वृषभ रूप धारी भगवान जनार्दन ने अपनी विशाल सीगों से त्रिलोकमय उस सुसज्जित रथ को पकड़ कर इस प्रकार आगे उद्वहन किया जिस प्रकार गृहपति अपने परिवार को संकट से बाहर करता है। इस घटना को देख पत्तधारी महान् पर्वत की भाँति विशालकाय दानवराज तारकासुर ब्रह्मा की ओर बड़े वेग से दौड़ा और उन्हें भीषण आघात से घायल करके नीचे गिरा दिया। तारकासुर द्वारा अभिहत भगवान् ब्रह्मा हाथ में लिये हुये चाबुक को रथ के जूये पर रख कर मुँह से बारम्बार श्वासें खींचते हुये अतिशय वेदना से ज्वलित-से होने लगे। ॥४९—६०॥

उसका ऐसा भीषण पराक्रम देख उसी समय रणभूमि में दैत्यों तथा दानवों ने तारकासुर का सम्मान प्रकट करने के लिये बादलों की भाँति भीषण गर्जना की। तदनन्त सुदर्शन चक्रधारी, वृषभरूपधारी, महादेव से पूजित भगवान् केशव ने दिति के पुत्रों की सेना का विनाश कर उस त्रिपुर में प्रवेश किया और अमृतमय जल से पूर्ण, बादलों से चारों ओर सुशोभित, खिली हुई कुमदिनी, श्रेष्ठ कमल तथा अनेक प्रकार के पुष्पों से समृद्ध उस विशाल बावली के सारे अमृतमय जल को इस तरह पान कर लिया जैसे सूर्य उदित होते ही रात के घने अंधकार को पी लेता है। पीताम्बर धारी भगवान् जनार्दन इस प्रकार असुरों की उस बावली का अमृत-जल पान करने के बाद शब्द करते हुए पुनः उसी बाण में प्रविष्ट हो गये। उस समय भयानक मुखवाले भीषण शिव के गणों द्वारा मारे गये असुरों के भीषण प्रहारों से बहनेवाली शोणित की नदियाँ रणभूमि में भीषणरूप में बहने लगीं और दानवगण इस प्रकार पराङ्मुख कर दिये गये जैसे नीतिमार्ग पर चलने वाले अनीति पर चलनेवालों को निवारित कर देते हैं। शिव के गणों द्वारा भीषण आक्रमण किये जाने पर वे तारकासुर, विद्युन्माली तथा मय नामक दानवनायक बाणों से पीड़ित एवं त्रस्त होकर इस प्रकार शिथिल होकर आगे नहीं लौटे जैसे उनके शरीर से प्राण ही निकल गये हों। उस समय संग्राम भूमि में अतिशय दर्प से चमकते हुए गणेश्वर, शिव के बाहन नन्दिकेश्वर तथा कार्त्तिकेय आदि उच्च स्वर से नाद करने लगे, उन्मत्तों की भाँति हँसने लगे तथा यह कहने लगे कि 'अब चन्द्रमा, सूर्य आदि दिक्पालों के साथ निश्चय ही हम लोग विजयी होंगे। ॥६१—६८॥

श्री मात्स्य महा पुराण में त्रिपुरदाह वर्णन नामक एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३६॥

एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—इस प्रकार शिव के गणों द्वारा कटे हुए अंगोवाले देवताओं के शत्रु वे त्रिपुर वासी दानव एवं दैत्य गण भयभीत हो करके पुनः उस त्रिपुर में प्रविष्ट हो गये, जिसके प्रवेशद्वार तथा चहार दीवारी को शिव के गणों ने तोड़-फोड़ डाला था। जिस प्रकार नष्ट दाढ़ों (विषैले दाँत) वाले सर्प, टूटी हुई सीगों वाले वृषभ, पक्ष विहीन पक्षी तथा, अल्प जल वाली नदी शोभा रहित हो जाती है उसी प्रकार श्री विहीन, देवताओं द्वारा नष्ट भ्रष्ट अंगों वाले, मृतप्राय वे दैत्य तथा दानव गण अतिशय खिन्न होकर

सोचने लगे कि अब कैसे क्या किया जाय? इस प्रकार खिन्न मन वाले उन दैत्यों को देखकर कमल के समान सुन्दर मुख वाले दैत्यों के महान् अधिपति मय ने उनसे कहा 'दैत्यो—इसमें सन्देह नहीं कि तुम लोगों ने समर भूमि में लड़ने वाले शिव के गणों से घोर युद्ध किया है और युद्ध में देवताओं समेत उन को अपनी मार से सन्तुष्ट भी किया है; किन्तु इस प्रकार पहले वीरोचित कार्य कर और फिर बाद में देवताओं और प्रमथों की सेना द्वारा पीड़ित और घायल होकर तुम लोग भय के कारण त्रिपुर में आकर घुस रहे हो। प्रकट है कि देवता लोग यह अप्रिय कार्य कर रहें हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तुम लोग महाभाग्यशाली एवं बलवान् हो; पर पर्वत की गुफा तथा वन में इस समय प्रवेश करते हो। हाय! यह समय का फेर है। काल कैसा दुर्जेय है? जिसने ऐसे त्रिपुर को शत्रुओं द्वारा आक्रान्त करा दिया है।' मेघ के समान कड़कते हुए मय के इस प्रकार क्रुद्ध होकर आक्षेप करने पर दानव तथा दैत्य गण ऐसे निस्तेज हो गये जैसे चन्द्रोदय होने पर ग्रह गण निष्प्रभ हो जाते हैं। ॥१-६॥

तदनन्तर उक्त बावली के रक्षक दैत्यों ने आकर यमराज के समान भीषण मय से हाथ जोड़कर निवेदन किया—'महाराज! आपने जो अमृत मय जल से परिपूर्ण बावली निर्मित की थी, उसे खिले कमल के समूहों तथा मछलियों के समेत वृषभ रूपधारी किसी देवता ने आकर पी डाला। इस समय यह मूर्च्छित सुन्दरी स्त्री की भाँति कुरूप दिखलाई पड़ रही है।' बावली के रक्षकों द्वारा ऐसा सन्देश सुनकर दानवराज मय ने कहा—'अरे महान् कष्ट का विषय है।' ऐसा बारम्बार कह कर राक्षसों से उसने कहा—'यदि माया द्वारा विनिर्मित यह बावली सचमुच किसी ने पी डाला तो निश्चय है कि त्रिपुर निवासी हम समस्त दैत्यों तथा दानवों का विनाश अब उपस्थित हो गया है। जो बावली देवताओं द्वारा मारे जाने वाले दैत्यों तथा दानवों को पुनः जीवित कर देती थी निश्चय है कि उसे पीताम्बरधारी विष्णु ने ही पी लिया है। उनके सिवाय कौन दूसरा ऐसा है जो मेरी माया द्वारा रचित अमृत जल पूर्ण बावली को पान कर सके? अवश्य गदाधारी अजेय विष्णु को छोड़कर किसी अन्य ने उसे नहीं पिया है। इस पृथ्वी में जो बात दैत्यों से भी छिपी है वह उस से नहीं छिपी है। मैंने जिस प्रकार का वरदान कुशलतापूर्वक प्राप्त किया था उसे बुद्धिमान् व्यक्ति जान भी नहीं सकते और न वरण कर सकते हैं। किन्तु हरि तो सब कुछ जानते हैं कि हमारे त्रिपुर का यह सुन्दर प्रदेश समान है, वृक्षों से रहित है, पर्वत रहित है, किसी प्रकार विघ्न नहीं है, नवीन जल से पूर्ण है। ऐसे हमारे इस सुरम्य प्रदेश को भली भाँति जान कर और यहाँ आ-आकर वह हम लोगों को पीड़ित करते हैं। इस लिए यदि तुम लोग ऐसा स्वीकार करो तो हम लोग समुद्र के ऊपर उपस्थित हो जायँ और वहाँ से वायु के समान तीव्र शिव के गणों का वेग एक बार सहन करें क्योंकि वहाँ समुद्र के जल में देवताओं तथा शिव के गणों का वेग एकदम शिथिल हो जायगा। अतएव तुम लोग एक बार पुनः युद्धार्थ प्रवृत्त हो जाओ। निश्चय ही वहाँ इनके वेग शिथिल हो जायँगे और इनके रथों का मार्ग भी रुक जायगा। वहाँ युद्ध करने वाले शत्रुओं के साथ हम निर्भययुद्ध करें। भयभीत होकर भागने पर भी वहाँ विशाल आकाश के समान समुद्र हम लोगों की शरण होगा।' दानवपति मय ने दानवों से इस प्रकार की बातें कर नदियों के बान्धव

समुद्र में त्रिपुर के समेत शीघ्र प्रस्थान किया। उस समय सागर के गम्भीर जल में वह श्रेष्ठ त्रिपुर उपस्थित हो गया और उसमें वे तीनों पुर, अट्टालिकाएँ तथा प्रवेशद्वार आदि यथास्थान स्थित ही रहे। इस प्रकार उस समय त्रिपुर के समुद्र में चले जाने पर त्रिपुरारि भगवान त्रिलोचन ने वेद विशारद ब्रह्मा से कहा—॥१०-२४॥

'भगवन् ब्रह्मन्! दानव गण हम लोगों से अतिशय भयभीत हो गये हैं। अब वे त्रिपुर समेत समुद्र की अपार जलराशि में अपना ठिकाना जमा बैठे हैं। अतः पितामह! समुद्र में जहाँ पर वे लोग गये हुए हैं वहीं पर हमारे इस रथ को भी आप पहुँचा दें।' शिव की इस बात को सुनकर देवताओं ने सिंह के समान गर्जना की और देवाधिदेव शंकर के उस रथ को चारों ओर से घेर कर अति प्रसन्नचित्त हो कर खड़े हो गये। तदनन्तर हथियार धारण कर पश्चिम के समुद्र की ओर सब के सब प्रस्थित हो गये। ॥२५-२७॥

देवता लोग देवाधिदेव शंकर को चारों ओर से घेर कर घोर शब्द करते हुए दानवों के नये निवास स्थान की ओर चले। वहाँ सुन्दर पताकाओं से सुसज्जित ढोल नगारा शंख आदि वाद्यों से शब्दायमान उस विशाल त्रिपुर को देखकर देवताओं की वह विशाल वाहिनी बादलों की भाँति गरजने लगी। उधर दैत्यों के त्रिपुर में भी दारुण मेघ गर्जन की भाँति मृदंग का भीषण रव गूँजने लगा और दैत्यों तथा दानवों की गर्जना की प्रतिध्वनि से मिश्रित समुद्र का शब्द और भी भीषण हो चला। त्रिभुवन तथा देवताओं को शरण देनेवाले प्रत्युत्पन्नमति भगवान् शंकर ने शत्रुओं के शिकार की बुद्धि की। और उसी समय शीघ्रता से त्रिपुर में प्रवेश करते हुए शत्रुओं की सेना को देखकर उन्हों ने देवता तथा गणों के सेनाधिपति इन्द्र से कहा—'देवताओं तथा गणों की सेना के स्वामी देवराज इन्द्र! समस्त दानवगण अपने त्रिपुर दुर्ग में प्रविष्ट हो गये हैं और अभी कुछ हो भी रहे हैं। यमराज, कुबेर, कार्त्तिकेय तथा अन्य गणपों को साथ लेकर तुम इन्हें नष्ट करो, मैं भी इन्हें मार रहा हूँ। तुम इस शत्रु की सेना का विनाश करते हुए आगे-आगे वहाँ तक चले चलो जहाँ तक समुद्र में त्रिपुर अवस्थित है। उस महान् सुन्दर रथ में आरूढ़ होकर शिव पुनः त्रिपुर का विध्वंस करनेके लिए समुद्र के पास पहुँच गये हैं—ऐसा कहते हुए उस समय दैत्य एवं दानव गण भी द्वार समुद्र के ऊपर पहुँच जाँयगे। सुरपतिश्रेष्ठ! दानवेन्द्रों के साथ उस त्रिपुर को बाणों मुसलों तथा वज्रों की मिश्रित वर्षा से पराजित करते हुए मैं इस सुन्दर रथ पर आरूढ़ होकर तुम्हारे पीछे-पीछे हो लूँगा। निष्पाप! उन असुरों के संहार के लिए समुद्यत तुम लोगों की सुविधा के लिए ही मैं ऐसा प्रयत्न कर रहा हूँ।' शिव की ऐसी बातों से प्रेरित विकसित कमल के समान नेत्रवाले इन्द्र ने तदनन्तर त्रिपुर के विनाश की अभिलाषा से प्रस्थान किया। ॥२८-३६॥

श्री मात्स्य महापुराण में त्रिपुरदाहवर्णन नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३७॥

एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—देवराज इन्द्र ने उन त्रिपुर निवासी दानवों के विनाश के लिए जब प्रस्थान किया तब सभी लोकपाल तथा गणपतियों ने भी महादेव के अनुमोदन करने पर आकाश मार्ग से उन्हीं के पीछे ही प्रस्थान किया। उस समय आकाश मार्ग में उड़ते हुए वे लोग पत्तधारी पर्वतों के समान शोभित हो रहे थे, और त्रिपुर का विनाश करने के लिए इस प्रकार चल रहे थे मानो शरीर को विनाश करने के लिए व्याधियाँ चल रही हों। उस समय त्रिपुर निवासियों ने शंख नगाड़ा तथा पणव आदि विविध वाद्यों को बजाते हुए देवताओं को सेना के अग्रभाग में चलते हुए देखा। और 'यहाँ भी शिव आ गये', की कर्कश ध्वनि करते हुए वे इस प्रकार अति क्षुभित हुए जैसे प्रलय काल में समुद्र। भयानक दिखाई पड़ने वाले दानव गण देवताओं के वाद्यों को सुनकर अनेक प्रकार के बाजे बजाते हुए उच्च स्वर से गरजने लगे। ॥१–५॥

उस समय एक दूसरे के ऊपर अति क्रुद्ध होकर अति पराक्रम शाली उन असुरों तथा देवताओं की सेना परस्पर संहार में प्रवृत्त होकर युद्ध करने लगी। उस समय दोनों ओर से भीषण शब्द हो रहे थे। वीरों के शरीरों का विनाश हो रहा था, भीषण प्रहार के शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ रहे थे—इस प्रकार का अति भीषण संग्राम प्रारम्भ गया। जैसे कई सूर्य आकाश से नीचे गिर रहे हों, भीषण अग्नि समूह प्रज्वलित हो उठा हो, बड़े-बड़े गजराज चिग्घाड़ रहे हों, अनेक पक्षी बड़े वेग से दौड़ दौड़कर युद्ध कर रहे हों, पर्वतों के समूह काँप रहे हों, बादल आपस में कड़क रहे हों, सिंह जमुआई ले रहा हो, भयानक झंझावात चल रहा हो, समुद्र में अति विशाल तथा उँची तरंगे उठकर पछाड़ खा रही हों—इस प्रकार का भीषण युद्ध करते हुए महान् शूर वीर वे शिव के गण तथा महा बलवान् वे राक्षस गण दिखाई पड़ रहे थे। भीषण हथियारों के लगने पर भी वे वीरगण इस प्रकार निश्चल होकर युद्ध करते थे जिस प्रकार पहाड़ों की चोट पाकर भी वज्र विचलित नहीं होता। धनुषों के खींचने पर ऐसे अति भीषण शब्द हो रहे थे जैसे महाप्रलय के समय वायु द्वारा प्रेरित मेघों के समूह आकाश में गरज रहे हों। युद्ध में वे वीरगण 'मत डरो, अरे कहाँ भाग रहे हो, अब अपने को मरा समझो, जल्दी से मारो, मैं यहीं खड़ा हूँ, मेरे समीप आकर जरा पौरुष दिखलाओ, पकड़ो, काट डालो, तोड़ डालो, खा डालो, मार डालो, चीर डालो', इस प्रकार के भीषण शब्द एक दूसरे के प्रति वे वीर गण चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे और सब यमराज की नगरी की ओर प्रस्थान कर रहे थे। कुछ वीर तलवार से काट डाले गये थे, कुछ फरसों से काटे गये थे, कुछ मुद्गरों द्वारा एक दम चूर्ण बना दिये गये थे, कुछ शूलों द्वारा विदारित कर दिये गये थे, कुछ हाथ की मार से घायल कर दिये गये थे, कुछ पट्टिशों द्वारा मार डाले गये थे तथा कुछ शूलों द्वारा विदारित कर दिये गये थे। वाणों के पुष्पों (पूछों) से युक्त दानवगण उस समय वन समेत पर्वतों की भाँति दिखाई पड़ रहे थे। इस प्रकार वे घायल असुर गण भयानक मकर तथा नाकों से आकीर्ण समुद्र के जल में गिर रहे थे। निष्प्राण तथा पाश आदि में बँधे हुए अंगोंवाले उन देवशत्रु राक्षसों के गिरने से समुद्र में जल

युक्त काले मेघ की गर्जना के समान शब्द हो रहे थे। उस शब्द को सुनकर तथा गिरने वाले राक्षसों के रक्त को पानकर समुद्र में रहने वाले मतवाले ग्राह नाक तिमि तिमिंगिल आदि जन्तु गण महा समुद्र को विक्षुब्ध कर रहे थे। वे भयानक स्वरूप वाले जल जन्तु एक दूसरे से लड़ते हुए समुद्र में गिरे हुए दानवों के रक्त का पान करते हुए इधर से उधर आनन्द से घूम रहे थे। जल में रहने वाले बड़े-बड़े ग्राह आदि जन्तु अन्य छोटे-छोटे जलचरों को खदेड़ कर रथ हथियार अश्व वस्त्र तथा आभूषणादि से संयुक्त समुद्र में गिरे हुए उन असुरों का भक्षण कर रहे थे। आकाश मंडल में जिस प्रकार का युद्ध प्रमथों तथा असुरों में मचा हुआ था उसी प्रकार का युद्ध समुद्र के जल में जलचरों के बीच में हो रहा था। जिस प्रकार आकाश में दैत्यों के साथ शिव के गण भ्रमण करते हुए युद्ध कर रहे थे उसी प्रकार जल में तिमि नाकों के साथ घूम-घूम कर युद्ध कर रहे थे। जिस प्रकार कटे-फटे अंगोंवाले शिव के गण तथा दैत्य लोग आपस में एक दूसरे पर प्रहार करते थे उसी प्रकार ये भी एक दूसरे के शरीर को काट कर खाते थे। देवताओं और राक्षसों के मुखों तथा घावों से निकलने वाले तथा तिमि और नाकों के अंगों से निकलने वाले रक्त से सारे समुद्र का जल मुहूर्त्त भर में रक्त से मिला हुआ-सा दिखाई पड़ने लगा। ॥६-२२॥

उस त्रिपुर की पूर्व दिशा में विशाल मेघ तथा पर्वत के समान दिखाई पड़नेवाले द्वार पर देवराज इन्द्र अवस्थित थे, जो अति पराक्रम तथा देवताओं की विशाल सेना के सहयोग से राक्षसों की सेना का अवरोधकर विनाश कर रहे थे। उसके अनन्तर उत्तर दिशा के द्वार देश पर उदयकालीन सूर्य तथा सुवर्ण के समान कान्तिवाले भगवान शंकर के ज्येष्ठ आत्मज स्कन्द (कार्त्तिकेय) ने इस प्रकार आरोहण किया था जिस प्रकार अस्तकालीन सूर्य अस्ताचल के शिखर पर आरोहित होते हैं। यमराज तथा धनपति कुबेर ने अपने-अपने दण्ड तथा पाश को धारण किया। देवशत्रु दानवों के उस त्रिपुर के पश्चिम दिशा के द्वार उन्हीं दोनों देवताओं द्वारा अवरुद्ध हुआ था। उस त्रिपुर के दक्षिण द्वार को त्रिनेत्रधारी दक्षशत्रु भगवान् रुद्र ने, जो उस समय सहस्रों सूर्य की भाँति कान्तिमान् प्रतीत हो रहे थे तथा उस सर्वश्रेष्ठ देवरथ के साथ थे, अवरुद्ध किया था। कैलाश की स्वच्छ शिलाओं पर प्रकाशमान चन्द्रमा की भाँति शुभ्र तथा सुवर्ण निर्मित ऊँचे-ऊँचे त्रिपुर के राजप्रासाद प्रवेशद्वारों के साथ, पत्थर बरसाने वाले प्रसन्नचित शिव के गणों द्वारा इस प्रकार घेर लिये गये थे जैसे नक्षत्र मण्डलों तथा ज्योतिष चक्रों को मेघ वृन्द ढँक लेते हैं। प्रलयकालीन मेघों के समान दिखाई पड़नेवाले शिव के गण त्रिपुर के महलों को तथा पर्वतों की श्रेणी के समान उच्च वेदिकाओं को उपार-उपार कर समुद्र के मध्य में फेंक-फेंक कर गरजने लगे। वे वेदियाँ लाल वर्णवाले अशोक के तथा अन्यान्य वृक्षों के समूहों से आकीर्ण थीं, उनके ऊपर कोकिलाएं कूँज रही थीं। उन महलों में 'हे स्वामी, हे पिता, हाय बेटा, अरे माई, हे प्रिये! 'हे कान्ते' ऐसी अनेक प्रकार की करुणा भरी ध्वनियाँ आ रहीं थीं। उन नष्ट किये गये गृहों में स्त्रियाँ अनेक प्रकार की अनार्योचित शब्द बक रही थीं। इस प्रकार जब उस त्रिपुर में अति विकराल युद्ध मच जाने पर स्त्री पुत्र आदि के मर जाने से समुद्र के समान वेगशाली महाअसुर गण तथा गणाधिपति

गण—दोनों ओर के वीरगण—अति कोपाविष्ट हो गये तब फावड़ों, शिलाओं के खंडों, त्रिशूलों तथा वज्रों की अति भीषण एवं सैनिकों के शरीर रूप गृहों को नष्ट करने वाली मारा मारी हुई। जिससे सभी लोग काँपने लगे। दोनों ओर के योद्धा अतिदृढ़ वैर भावना से अतिघोर युद्ध करने लगे, जिसमें दैत्यों तथा दानवों के एक दूसरे के मारने, मर्दन करने और भागने से ऐसा कोलाहल मच गया मानो प्रलयकालीन समुद्र गण गरज रहे हों। गणेश्वरों एवं दानवों के शरीरों में होने वाले भीषण घावों से निरन्तर रक्त की धारा बहने लगी और वे आपस में क्रोधान्ध हो कर अनेक प्रकार के भीषण शब्द करने लगे। उस त्रिपुर के वे सारे मार्ग रक्त से सनी हुई कीचड़ों से भर गये, जो स्फटिक और सुवर्ण की चित्र-विचित्र ईंटों के टुकड़ों से बनाये जाने के कारण अति शोभायुत दिखाई पड़ रहे थे। इस प्रकार उस महा भयानक युद्ध में सुख-पूर्वक जाने योग्य जो मार्ग थे वे एक ही मुहूर्त में दैत्यों तथा दानवों के कटे हुए सिरों, पैरों तथा हाथों से विकराल दिखलाई पड़ने लगे। तब अति क्रोध से भरा हुआ तारकासुर युद्धभूमि में वृक्षों तथा पर्वतों को हाथ में लिए हुए पुर से बाहर निकला। किन्तु उसी क्षण में वह अद्भुत पराक्रम सम्पन्न शिव के द्वारा दक्षिण द्वार ही पर रोक दिया गया। इतने ही में उस अतुल पराक्रमशाली दैत्य ने खाईं पर रहने वाले शिवगणों का विनाश कर दिया और अति गर्व के साथ पुर से बाहर निकलकर घोर गर्जना की। इस प्रकार बड़ी देर तक रोका गया बहुत बड़े पर्वत के समान भीषण आकारवाला तथा मदोन्मत्त हाथी के समान बलवान् उस दैत्यराज ने शिव के रथ को पकड़ने की इस प्रकार चेष्टा की मानो ऊँची तरंगोंवाला समुद्र उछल रहा हो। उसकी इस प्रकार की कुचेष्टा देखकर भगवान् अनन्त शेषनाग, उत्तम धनुष धारण करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा तथा शिव जी उस पर ऐसे क्रुध हुए जैसे वायु के प्रचंड झोकों से समुद्र उद्वेलित हो जाते हैं। आकाश मार्ग में उस सुन्दर रथ पर अवस्थित शेषनाग, ब्रह्मा तथा शिव जी ने अति क्षोभ के साथ उस अति बलवान् राक्षस की अंग-संधियों का भेदन कर अतिशय घोर शब्द किया। उस समय शिव ने अपने एक पैर को अश्वरूपधारी ऋग्वेद की पीठ पर तथा दूसरे को अपने वाहन वृषभ की पीठ पर रखा और इस प्रकार पैर जमाकर त्रिपुर को दृष्टि के सम्मुख कर वह धनुष पर बाण रखकर तैयार हो गये और त्रिपुर के विनाशकाल के उस पुण्य समागम की प्रतीक्षा करने लगे। उस समय त्रिशूलधारी महादेव जी के पैर के असह्य भार से उस अश्व के तथा वृषभ के स्तन और दाँत नीचे गिर पड़े। तभी से अश्वों के स्तन तथा वृषभों के दाँत छिपे रहने लगे और इसी से साधारणतया अदृश्य भी हो गये अर्थात् सहसा नहीं दिखाई पड़ते। उस समय महा भयानक रक्त के समान नेत्रोंवाले तारकासुर को अपने परिवार को आनन्द देनेवाले नन्दिकेश्वर ने आगे बढ़ने से रोक दिया। और अपने तीक्ष्ण फावड़े से उसके शरीर को इस प्रकार काट दिया जैसे बढ़ई अपने कुल्हाड़े से चंदन की डाली काट देता है। नन्दिकेश्वर के फावड़े से आहत होकर वह शूर तारकासुर इस प्रकार क्रुद्ध होकर नन्दी के सम्मुख दौड़ा जैसे पर्वतीय शरभ (एक पहाड़ी हिंस्र जानवर)। अपनी तलवार निकालकर जब गणेश्वर की ओर वेग से वह दौड़ पड़ा तब नन्दिकेश्वर ने यज्ञोपवीत (?) लेकर उसे फिर काट डाला और उच्च स्वर से गर्जना की। इस प्रकार उस समय तारकासुर के निधन हो जाने पर गणेश्वरों

ने सिंह के समान गर्जना की और शङ्ख आदि वाद्यों का भीषण शब्द किया। शिव के गणों की इस प्रकार गर्जना तथा उनके वाद्यों की विशेष ध्वनि को सुनकर बगल में खड़े हुये दानवराज मय ने अतिबलवान् विद्युन्माली से कहा—'विद्युन्मालिन्! बताओ यह क्या बात है, जो ये अनेक मुखवाले शिव के गणों के सागर की गर्जना के समान भीषण स्वर सुनाई पड़ रहे हैं? क्यों इतने उत्साह से ये गणेश्वर लोग युद्ध कर रहे हैं और हमारे गजराज रणभूमि से भागे चले जा रहे हैं?' इस प्रकार की मय की अंकुश की तरह चुभनेवाली बातों से विक्षुब्ध होकर सूर्य के समान कान्तिमान शत्रुनाशक विद्युन्माली ने, जो देवताओं की युद्धभूमि के अग्रभाग से लौटकर वहाँ आया था, अतिदुःख से यह बात कही—'हे वीर! जो यमराज, वरुण, महेन्द्र एवं रुद्र की भाँति पराक्रमशाली था, जो सभी युद्धों में सबसे आगे आपके यश का निधि रूप था, जो पहाड़ की भाँति अडिग रहता था, जो रणाङ्गण में शत्रुपक्ष को संतप्त करता था, वही अरिन्दम तारकासुर युद्ध क्षेत्र में अति भीषण युद्ध करते हुए गणपतियों के हाथ से मारा गया। सूर्य तथा प्रचण्ड अग्नि के समान उद्दीप्त और विशाल नेत्रोंवाले तारकासुर को मरा सुनकर ये शिव के गण पुलकित वदन और प्रसन्न नेत्र हो इसी कारणवश बादलों की तरह चिग्घाड़ मचा रहे हैं।' अपने मित्र विद्युन्माली की इस सत्य बात को सुनकर सुवर्ण की माला पहननेवाले कज्जल के पर्वत के समान कृष्ण शरीरवाले मय ने विद्युन्माली से कहा—'हे विद्युन्मालिन्! अब यह थोड़ा-सा समय असावधानी से बिता देने के लिए नहीं है। अब मैं अपने पराक्रम से इस त्रिपुर को पुनः आपत्तियों से रहित बनाऊँगा।' मय की ऐसी बात सुनकर विद्युन्माली ने तथा स्वयं त्रिपुराधीश्वर मय ने शेष बचे हुए उन महान् असुरों की सेना की सहायता से शिव के गणों का विनाश करना प्रारम्भ किया। त्रिपुर के मध्य में जिस-जिस मार्ग से होकर मय तथा विद्युन्माली चलते थे उस-उस मार्ग पर लड़नेवाले शिव के गण एक भी नहीं दिखाई पड़ते थे। उनके ऐसे युद्ध को देखकर यमराज तथा वरुण के मृदङ्ग के स्वरों के साथ अनेक प्रकार के ढोल, डिमडिम, धनुष की प्रत्यंचा आदि शब्दों को करते हुए तथा हथेली बजाते और सिंहनाद करते हुये समस्त देवगण शिव जी की पूजा में निरत हो एकत्र खड़े हो गये। सूर्य के समान कान्तिमान, सत्य परायण, तपोनिष्ठ तथा महात्मा उन अदिति के पुत्रों से पूजे जाते हुये भगवान् शङ्कर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे अस्ताचल पर जाते हुये भगवान् भास्कर। ॥२३–५७॥

श्री मात्स्य महापुराण में त्रिपुर दाह प्रसंग में तारकासुरवध वर्णन नामक एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३८॥

एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—इस प्रकार तारकासुर के मारे जाने पर मय ने त्रिपुर से देवताओं तथा शिव के गणों को बाहर निकाल कर उन भयभीत असुरों से बारम्बार कहा। 'वीरश्रेष्ठ असुरो! इस भीषण समय में महाबलवान् आप लोगों का जो कर्तव्य है तथा मैं जो कुछ करना चाहता हूँ, उसे ध्यान से सब लोग सुनिये! चन्द्रमा के समान सुंदर मुखवालो! समय आने पर चन्द्रमा जब पुष्य नक्षत्र पर आकर उपस्थित होता

है, ठीक उसी समय पर एक क्षण के लिए यह तीनों पुर एक हो जाता है, सो ऐसे अवसर पर तुम लोग निर्भय होकर कोकिलों की भाँति शब्द करना। पुष्य नक्षत्र और चन्द्रमा के संयोग काल में ही मैंने इस त्रिपुर का निर्माण किया है। उस काल की विशेषता को जानने वाला जो कोई देवता इन तीनों पुरों के संबंधों को जान लेगा वह उसी क्षण इस सारे त्रिपुर का विनाश एक ही बाण द्वारा कर देगा। इसलिए असुरो! अपनी वीरता, अपने मरे हुए साथियों के प्राण तथा देवताओं के साथ अपनी पूर्व वैरभावना का हृदय में ध्यान रख इस त्रिपुर की रक्षा में तत्पर हो जाओ। संसार के समस्त प्राणधारियों द्वारा भी रोकने में अति-भीषण महादेव के उस एक रथ को इस त्रिपुर से किसी भी प्रकार से विमुख कर दो, जिससे वे इस पर बाण न छोड़ सकें। इस प्रकार हम लोग जब इस बार त्रिपुर की रक्षा कर लेंगे तो फिर विवश होकर देवता लोग पुनः पुष्य योग उपस्थित होने तक की प्रतीक्षा करेंगे।' यमराज के समान भीषण त्रिपुर निवासी दानवों ने मय की ऐसी बातें सुनकर बारम्बार सिंहवत् गर्जना की और कहा—'अवश्य ही हम लोग सब प्रयत्न करके आपकी आज्ञा का पालन करेंगे और ऐसा कर देंगे जिससे महादेव त्रिपुर पर बाण न छोड़ सकें। आज हम लोग उस रुद्र का संहार करने के लिए ही रणभूमि में प्रस्थान करेंगे।' इस प्रकार की बातें प्रसन्नमनस्क पुलकित शरीर वाले दिति के पुत्रों ने मय से कहा। तदुपरान्त ही उन्होंने पुनः कहा—'या तो एक कल्प पर्यन्त हमारा यह त्रिपुर निश्चल रूप से आकाश में विराजमान रहेगा अथवा सर्वदा के लिए दैत्यों तथा दानवों से शून्य ही हो जायगा। आप जिस बात के लिए हम लोगों को नियुक्त कर रहे हैं, उससे हम लोग कदापि विचलित न होंगे, मनुष्य लोग अब से इस सारे जगत् को या तो देवतारहित ही पायेंगे या दैत्यरहित ही पावेंगे। दोनों में एक ही बात होगी।' देवताओं के शत्रु दैत्य तथा दानव गण त्रिपुर में इस प्रकार की सम्मति कर अति प्रसन्न हुए और रात्रिकाल में अति प्रमुदित होकर अन्तिम बार काम क्रीडा करने में प्रसक्त हुए। उस समय महामणि के समान सुन्दर आकाशमणि भगवान् चन्द्रमा अति प्रकाश युक्त हो अंधकार का विनाश कर आकाश मंडल में उदयाचल पर समासीन हुए थे। विकसित कुमुदों द्वारा सुशोभित अतिविस्तृत सरोवर में जिस प्रकार हंस शोभित होता है तथा वैदूर्य के शिखर पर बैठा हुआ जिस प्रकार सिंह सुशोभित होता है वा भगवान् विष्णु के विशाल वक्षस्थल पर जिस प्रकार हार शोभायमान होता है उसी प्रकार विशाल आकाश मंडल में महर्षि अत्रि के नेत्रों से उत्पन्न चन्द्रमा बलात् समस्त भूमंडल को अपनी अमृतमयी किरणों से सिंचित करते हुए तथा समस्त लोक को शोभा सम्पन्न करते हुए सुशोभित हो रहे थे। उस दिन सभी कलाओं से पूर्ण शीतरश्मि चन्द्रमा के त्रिपुर में समुदित होने पर असुरों ने रात्रि काल में अपने-अपने घरों में पूरी सजावट की थी तथा स्वयं अपने-अपने शरीरों को अलंकार आदि से विधिवत् सजाया था। गलियों में, सड़कों पर, राजप्रासादों में तथा घरों में चम्पा के पुष्पों की भाँति दीपक प्रज्वलित किये गये थे, जिनमें खूब तेल भरे गये थे। उसी समय मन्दिरों में भी तेलों से भरे हुए वैसे सुरम्य दीपक जलाये गये थे। राक्षसों के वे भवन धन-धान्यादि से परिपूर्ण थे तथा सभी प्रकार के रत्नों की समृद्धि उनमें भरी थी। इस प्रकार जलते हुए वे दीप, चन्द्रमा के उस शुभ्र प्रकाश में नक्षत्रों

की भाँति चमक रहे थे। चन्द्रमा की किरणों से सुशोभित तथा दीपों से सजाये हुए उस त्रिपुर से सारा अन्धकार इस प्रकार नष्ट हो गया था जैसे उपद्रवों तथा कलह आदि से कुल नष्ट हो जाता है ॥१—२१॥

उस त्रिपुर में आधीरात के समय चन्द्रमा के निर्मल प्रकाश में विलास की कामना करने वाले दानवगण अपने घरों में स्त्रियों के साथ चिरकाल तक विलास करने में प्रवृत हो गये। काम ने उन्हीं पाँचों वाणों द्वारा, जिनसे भगवान् शंकर को कामवश कर लिया था, त्रिपुर निवासिनी स्त्रियों तथा महान् असुरों पर प्रहार किया, जिससे वे तथा सुन्दरियाँ-दोनों अति कामासक्ति के कारण स्वेदयुक्त हो गयीं। दानवों की स्त्रियों की सुन्दर गीतों पर कोयलों की मतवाली कूकों पर तथा वीणा के स्वरों पर काम मूर्च्छित होने वाले दैत्यों तथा दानवों पर धनुषबाण धारी कामदेव ने अपना अचूक प्रहार किया और उन्हें विक्षुब्ध कर दिया। चन्द्रमा ने रात्रि के समस्त अंधकार को दूर कर चाँदनी से समस्त भूमण्डल को श्वेत कर दिया और आकाश में अपनी प्रिया रोहिणी को साथ लेकर शुभ्र किरणों से अपना साम्राज्य स्थापित कर दिया। उस चाँदनीरात में त्रिपुर की कोई सुन्दरी दानव स्त्री कुछ देर तक अपने पति के चरणों पर पड़ी-पड़ी फिर अपने कपोलों के मूलभाग पर सुन्दर तिलक लगा कर अपने स्वाभाविक सुन्दर मुख को और भी अधिक सुन्दर बना रही थी। कोई सुन्दरी विशाल दर्पण में अपने सुन्दर मुख को देख कर 'मेरे मुख की तो अतीव शोभा हो रही है—'ऐसा धीरे से कह कर फिर अपने पति की बातों का स्मरण कर उसी के भाव के अनुकूल रति क्रीड़ा में निमग्न हुई। अन्य सुन्दरियाँ काम के मद से अभिभूत होकर सुन्दर शरीर वाले काम वासना से रोमांचित नवयुवकों को देखकर सुरत व्यापार की कामना से अपने पति के साथ स्वयं ही शीघ्रता से इस प्रकार पहुँच गईं जैसे सूर्य के अस्त हो जाने से दिन के समाप्त होने पर रात्रि शीघ्रता से विना बुलाये ही पहुँच जाती है। विपरीत रति करनेवाली कोई सुन्दरी अति कामासक्ति के कारण अपने प्रियतम के मुख का प्रसन्न मन से खूब पान कर रही थी और कोई अति प्रसन्न हो कर अपने प्रियतम से बहुत देर तक वार्ता लाप में ही निमग्न थी। असुरों की उन स्त्रियों के सुन्दर पयोधर गोशीर्ष तथा हरिचन्दन के सुगंधित विलेपनों से सुशोभित होकर इस प्रकार मनोहारी दिखाई पड़ रहे थे मानो अमृत से भरे हुए सुवर्ण के कुम्भ हों। जिनके शीघ्रता से काट लेने के कारण क्षत-विक्षत अधर लाल वर्ण के हो रहे थे—ऐसी अपनी प्रियाओं में दैत्यगण अति अनुरक्त हो गये थे। स्त्रियों के व्यर्थ की बकवासों से विरक्त होकर त्रिपुर में बजने वाले वीणा के सुमधुर स्वरों में कितने एकदम मस्त हो गये थे। उस त्रिपुर में कहीं पर तो कामदेव के वाणों द्वारा विनिर्मित काम का खजाना रूप सुमधुर गायन हो रहा था, और कहीं मदिरा की शालाओं में सुखपूर्वक लोग स्वयंगान कर रहे थे। उस सुन्दर गान के अवसर पर कुछ असुर अपनी-अपनी प्रियाओं के साथ घूम रहे थे। और कुछ असुर लोग अपनी प्रियाओं को उन ललित कलाओं को समझा रहे थे और समझा-समझा कर क्रीड़ा विलास आदि में निमग्न हो रहे थे। सूर्य के अस्त होते ही सारे त्रिपुर में आम्र के बौरों की भीनी सुगन्धि फैल गई थी, उन वृक्षों के नीचे कामिनिओं के नूपुर तथा करधनी के मनोहारी शब्द, पल्लवों की मर्मर ध्वनि तथा कोयलों की कूक एक साथ ही होने लगी थी। ये सब बलात् दानवों के मन को परवश कर

रहे थे। प्रियतम के अंकों में खूब लपेट ली गई कोई सुन्दरी स्त्री, जिसके सभी रोंगटे खड़े हो गये थे, इस प्रकार शोभायमान हो रही थी जैसे आषाढ़ के नवीन जल द्वारा सींची गई सुन्दर छोटे-छोटे अंकुरों से भरी भूमि शोभायमान होती है। चन्द्रमा की मनोहर किरणों से सुन्दर राजप्रासादों के अति सुशोभित कर दिये जाने पर वीराङ्गनाओं के आभूषणों की सुमधुर तथा गम्भीर ध्वनियाँ कामदेव की ध्वनि के समान मनोहारी सुनाई पड़ रही थीं। बड़ी देर तक अधर पान के कारण खिन्न हुई कोई सुन्दरी अपने प्रियतम से कह रही थी—'अरे इस मेरे कपोल को भला क्यों चूस रहे हो, आओ इस मेरी विशाल पृथुल तथा ऊँची कटि पर, जो सुवर्ण की मेखला से सुशोभित है, चढ़ जाओ।' आकाश मंडल के सुप्रकाशित हो जाने पर गलियों में भी खिली चाँदनी के कारण घूमती हुई दैत्यों तथा दानवों की वे बालाएँ यूथ की यूथ इस प्रकार सुशोभित हो रही थीं जैसे रात्रि में चन्द्रमा के उदित होने पर तारागण सुशोभित हो रहे हों। अपनी घंटिओं के शब्दों की भाँति कामदेव की चंचलता के कारण झूले झूलते समय तथा अट्टहास करते समय वे सुन्दर वाणियाँ बोल रही थीं तथा उत्तर-प्रत्युत्तर कर रही थीं। सुन्दर खिली हुई मालाओं से अलंकृत तथा हर्ष से पूर्ण उन सुन्दरी दैत्यस्त्रियों की सुमधुर वाणी बावली और सरोवरों पर सुवर्णमय राजहँसों के शब्दों के समान मनोहारी सुनाई पड़ रही थी। उन दैत्यस्त्रियों की करधनों की सुन्दर ध्वनि अंगों में लगे हुए चन्दनादि तथा झूले पर झूलते समय काम विलास के मनोहर हाव भाव उनके काम विकारों को प्रियतम के निवास स्थान पर तोड़ (?) रहे थे। उन दानवों की स्त्रियों के सुन्दर एवं रंग-विरंगे वस्त्र केशपाश रहित केश विन्यास, जो अनेक प्रकार के वेशों की बनावट तथा आभूषणों से युक्त था, झूलता हुआ इस प्रकार मनोहर लग रहा था मानों तारागणों से युक्त चन्द्रमा की ज्योति शोभायमान हो रही हो। झूले पर झूलते समय कुछ स्त्रियों के किंकिणी के सूत्र उछलते रहने के कारण टूट गये थे। जिससे उसकी चन्द्रमा के समान सारी श्वेत मणियाँ नीचे विखर गई थीं। इससे वहाँ की भूमि ताराओं के युक्त चन्द्रमा से सुशोभित आकाश की भाँति शोभित हो रही थी। इस प्रकार उस त्रिपुर में चाँदनी, रात्रिकाल, उपवन एवं कोकिल की काकली प्रभृति उन्मादक साधनों से युक्त होकर अपने पराक्रम को दिखलाता हुआ कामदेव बाण शून्य होकर विचरण करने लगा। तात्पर्य यह कि इन उपर्युक्त कामोन्मादक वस्तुओं से सारा त्रिपुर व्याप्त हो गया। तत्पश्चात् कुछ देर बाद सूर्य के अश्वों की खुर के आघात से क्षीण हुई चाँदनी उस त्रिपुर में रण भूमि में पराजय प्राप्त करने वाले देवताओं के शत्रु उन असुरों के विनाश की सूचना सी देती हुई पश्चिम दिशा को पहुँची और इधर शंकर जी के अश्व त्रिपुर की ओर उन्मुख हुए। उस समय जो कुन्द पुष्पों के स्तवक की भाँति दिखाई पड़ रहा था वह चन्द्रमा क्रमशः किरणों के जालों से रहित होने के कारण निष्प्रभ हो निर्जन बादलों की भांति प्रतीत होने लगा। शोभा रहित वह इस प्रकार दिखाई पड़ने लगा जैसे अभाग्यवश पूर्व ऐश्वर्य तथा सम्पत्ति के विनाश हो जाने पर धनवान् पुरुष शोभाविहीन दिखाई पड़ता है। उस समय उदयाचल की चूड़ा पर समासीन अति प्रभावान् भगवान् भास्कर अपने सारथी अरुण के द्वारा चन्द्रमा की किरणों को तिरस्कृत कर तपाये हुए सुवर्ण के बड़े चक्र की भाँति

संसार के समस्त अंधकार तथा बादलों को तिरोहित करते हुए अति शोभायमान हो रहे थे ॥२२-४७॥

श्री मात्स्य महापुराण में त्रिपुरकौमुदी वर्णन नामक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३९॥

एक सौ चालीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—सहस्रांशुमाली भगवान् भास्कर के उदयाचल पर समुदित हो जाने पर सारी देवताओं की सेना ऐसा घोर शब्द करने लगी जैसे महाप्रलय में समुद्रगण भीषण शब्द करते हैं। तत्पश्चात् सहस्र नेत्रोंवाले पुरंदर देवराज इन्द्र कुबेर तथा वरुण को साथ लेकर भगवान् शंकर त्रिपुर की ओर प्रस्थित हुए। अनेक प्रकार के रूपधारी शत्रुओं के विनाशक वे शिव के गण भी अनेक प्रकार के बाजे बजाते हुए तथा घोर शब्द करते हुए उस त्रिपुर की ओर चल पड़े। इस प्रकार घोर शब्द तथा वाद्यों के भीषण शब्दों, छत्रों तथा महान् वृक्षों से वह सारी प्रमथ गण की सेना इस प्रकार दिखाई पड़ रही थी मानों कोई वन चला जा रहा हो। अति भयानक रुद्र की सेना को आते देखकर असुरों की सेना में समुद्र की भाँति घोर संक्षोभ होने लगा। दैत्यगण फावड़ा, गड़ासा, बरछी, शूल, दंड, धनुष, बाण, वज्र तथा बड़े-बड़े मूसलों को धारणकर लाल नेत्र हो इस प्रकार दौड़ पड़े जैसे पक्षधारी पर्वत दौड़ रहे हों। शीघ्रतापूर्वक दौड़कर वे असुरगण इन्द्र के ऊपर ऐसा प्रहार करने लगे मानों वर्षा ऋतु के मेघ बरस रहे हों। इस प्रकार शस्त्रास्त्रों से लैस होकर देवताओं के शत्रु उन दानवों तथा दिति के पुत्रों ने विद्युन्माली के साथ हो बड़ी प्रसन्नता के साथ देवाधिदेव शंकर के ऊपर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। मरने का संकल्प करनेवाले बलरहित उन दैत्यों की, जो अपनी विजय की आशा छोड़ चुके थे, सेना के सभी अंग निर्बल की तरह दिखाई पड़ रहे थे। उनकी सेना स्त्रियों की सेना के समान मालूम हो रही थी। बादल के समान भीषण शरीर वाले युद्ध करने में प्रवीण वे असुर गण परस्पर अति क्रुद्ध होकर युद्ध कर रहे थे और बादलों के समान भीषण गर्जना कर रहे थे। चन्द्रमा के समान चमकनेवाले तथा अग्नि के समान भीषण दिखाई पड़नेवाले, हथियारों को ग्रहण किये हुए वे राक्षसगण युद्ध करते समय अति क्रोध से एक दूसरे के अङ्गों का छेदन कर रहे थे। उस युद्धभूमि में कुछ योधागण वज्र से घायल होकर, कुछ बाणों द्वारा छिन्न-भिन्न अंगोंवाले होकर तथा कुछ चक्रों द्वारा घायल होकर समुद्र के जल में गिर रहे थे। युद्धभूमि में शिव के प्रमथ गण तथा देवता लोग, जिनके माला हार आदि छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो चुके थे, वस्त्र तथा आभूषणादि विनष्ट हो चुके थे, समुद्र के मध्य में रहनेवाले तिमि तथा नाकों के बीच में जा-जाकर गिर रहे थे। ॥१-१३॥

उस समय युद्धभूमि में क्रोध में भरे हुए उन सुरासुर वीरों में परस्पर गदा, मूसल, तोमर, फावड़ा, वज्र, त्रिशूल, बरछी, पट्टिश, पर्वत की चोटी तथा बड़े-बड़े पत्थर—इन सबकी मारें हो रही थीं। अतिवेगशाली उन दानवों के धूम से युक्त सूर्य की कान्ति के समान तेजवान् शस्त्रास्त्रों के महान् वेग तथा स्वर सागर में गिरते हुए वीरों की ध्वनि के साथ सुनाई पड़ रहे थे। देवताओं तथा असुरों के हाथों से छोड़े

गये उन शस्त्रास्त्रों से आकाश मण्डल में नक्षत्रों की पंक्तियाँ अस्त-सी हो गयीं। उस समय युद्धभूमि में वीरों का महान् विनाश होने लगा। जिस प्रकार हाथियों के युद्ध में छोटे-छोटे जन्तुओं का विनाश हो जाता है उसी प्रकार उस युद्ध में देवताओं तथा असुरों के समूहों द्वारा समुद्र में रहनेवाले तिमि तथा नाक आदि जल जन्तुओं का विनाश होने लगा। तदनन्तर विद्युत की माला के समान कान्तिमान् विद्युन्माली विद्युत् तथा मेघमाला के समान भीषण गर्जन करते हुए नन्दिकेश्वर की ओर झपटा। सूर्य के समान तेजस्वी मुखवाले नन्दिकेश्वर से समुद्र के समान भीषण गरजनेवाले बोलनेवालों में परम प्रवीण उस दानवराज विद्युन्माली ने क्रोधपूर्वक कहा—'नन्दिकेश्वर! सँभल जाओ! बलवान् विद्युन्माली अब सचमुच युद्ध करने की इच्छा से तुम्हारे सम्मुख आ गया है। अब यदि तुम उसके हाथ से जीते बच जाओ तो अपने को धन्य समझो। विद्युन्माली दानव का युद्ध में बातों द्वारा विनाश नहीं हो सकता।' तपस्वियों में श्रेष्ठ तथा वाक्य बोलने में अति पटु नन्दिकेश्वर ने उस दैत्यराज के ऊपर प्रहार करते हुए कहा—'दानव अब यह अवसर धर्म विचारने का नहीं है, मुझे मारने में तुम समर्थ हो—यह तो अभी देखा जायगा पर मारने के पहले ही तुम अपनी ओछी जाति के स्वभाव से इतनी धौंस क्यों गाँठ रहे हो? तुम तो पहली ही बार मेरे हाथों से युद्धभूमि में पशु की तरह मारे जा चुके हो। क्या अब मैं तुझ जैसे यज्ञविद्वेषी को न मारूँगा, अवश्य मारूँगा। जो अपनी बाहुओं से समुद्र को पार कर सकता है तथा सूर्य को नीचे गिरा सकता है, वह भी मुझको आँख से नहीं देख सकता; इससे और अधिक क्या कहूँ!' इस प्रकार की बातें करते हुए नन्दिकेश्वर को समान बलशाली दैत्य विद्युन्माली ने अपने एक वाण से इस प्रकार भेदन किया जैसे सूर्य अपनी किरणों से बादल को भिन्न कर देता है। विद्युन्माली द्वारा छोड़ा गया वह वाण नन्दिकेश्वर के वक्षस्थल में घुस कर इस प्रकार रक्तपान करने लगा जैसे सूर्य अपने प्रताप से समुद्र तथा नदियों के जल का शोषण करता है। इस दारुण प्रहार द्वारा अतिशय क्रुद्ध होकर नन्दिकेश्वर ने अपने हाथों से एक वृक्ष उपार कर हाथी की भाँति उस दैत्य पर फेंका। नन्दिकेश्वर द्वारा फेंका गया वह वृक्ष वायु के वेग से पुष्पविहीन होकर घोर शब्द करता हुआ जब विद्युन्माली के वाणों द्वारा छिन्न-भिन्न होकर बड़े पतिंगों की भाँति नीचे गिर पड़ा तब महाबलवान् नन्दिकेश्वर श्रेष्ठ वाणों द्वारा दानवराज विद्युन्माली से भिन्न किये हुए उस महावृक्ष को देखकर अतिशय कुपित हुए। ॥१४-२९॥

उस समय वे घोर शब्द करते हुए सूर्य तथा इन्द्र के करों के समान बलशाली अपने हाथों को ऊपर उठा कर उस क्रूर दैत्यराज का विनाश करने के लिये इस प्रकार दौड़ पड़े जैसे भैंसे को मारने के लिये कोई बड़ा हाथी दौड़ रहा हो। वेग से सम्मुख आते हुए नन्दिकेश्वर को देखकर विद्युन्माली ने सौ वाणों द्वारा उन्हें आच्छादित कर दिया जिससे नन्दिकेश्वर का सारा शरीर वाणों से व्याप्त हो गया, तब उन्होंने शत्रु विद्युन्माली के रथ को हाथों में पकड़ कर बड़े वेग से ऊपर फेंक दिया जिससे रणभूमि में दूर चले जाने से अश्वों से रहित तथा टूटे-फूटे रथ पर गिरा हुआ शिर रहित वह दैत्य इस प्रकार नीचे गिर पड़ा जैसे मुनि के शाप से सूर्य समेत सूर्य का रथ। किन्तु माया के प्रभाव से वह दैत्य फिर भीतर से बाहर निकला और एक शक्ति

को हाथ में लेकर नन्दिकेश्वर के ऊपर पुनःप्रहार किया। प्रमथों के अग्रणी नन्दी ने रक्त से लिप्त उस शक्ति से अपने को बचा हाथों से पकड़ लिया और उसी से विद्युन्माली को लक्ष्य करके प्रहार किया, जिससे उसका कवच एकदम छिन्न-भिन्न हो गया, हृदय फट गया तथा वज्र से विदारित किये गये पर्वत की भाँति वह निरीह होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। ॥३०—३६॥

इस प्रकार विद्युन्माली का विनाश हो जाने पर सिद्ध चारण तथा गन्धर्वगण 'बड़ा अच्छा हुआ—बहुत अच्छा हुआ—'ऐसा कह-कह कर भगवान् शंकर की पूजा करने लगे। नंदी द्वारा दैत्यराज विद्युन्माली संहार किये जाने के उपरांत मय ने शिव के गणों की सेना का इस प्रकार विध्वंस करना प्रारम्भ किया जिस प्रकार दावानल जंगल का विध्वंस करता है। उस समय शूल से बिल्कुल फटे हुए हृदय वाले, गदा से टूटे हुए मस्तक वाले तथा बाणों से अतिशय घायल किये गये शिव के गण ऊपर से समुद्र में गिरने लगे। तब शत्रुरहित गदाधर, यमराज, धनपति कुबेर, नन्दिकेश्वर तथा षडानन कार्त्तिकेय ने उत्तम शस्त्रास्त्रों द्वारा युद्ध करने में निरत असुरनायक मय के ऊपर भीषण प्रहार करना प्रारम्भ किया। उधर दानवपति मय ने भी नागाधिपति इन्द्र के शताक्ष नाग को शीघ्र ही अपने श्रेष्ठ बाणों द्वारा घायल कर यमराज और कुबेर को बेध कर मेघों के समान भीषण गर्जना की। अति वेगवान् तथा पराक्रमशाली दानवगण भी देवताओं के बाणों तथा शिव के गणों द्वारा अतिशय घायल होकर इस प्रकार त्रिपुर के भीतर घुसा दिये गये जैसे युद्ध में भगवान् विष्णु द्वारा पराजित होकर शिव। दैत्यों के इस प्रकार लुक छिप जाने के बाद शिव की सेना में शंख, ढोल, भेरी के गम्भीर स्वर तथा वीरों के सिंहनाद होने लगे, जो दानवों की पराजय को सूचित करनेवाले तथा वज्र के भाँति कठोर थे। ॥३७—४३॥

तदुपरांत दैत्यराज मय के उस विख्यात त्रिपुर का विनाशक पुष्ययोग आगया। उस समय वे तीनों पुर परस्पर एक हो गये। योग को आया विचार स्वर्ग लोक के स्वामी त्रिनेत्र भगवान् शंकर ने तीनों देवताओं से युक्त अपने बाण को तीन लक्ष्यों पर विभक्त करके छोड़ दिया। उस छूटे हुए बाण ने बाण (एक वृक्ष) के पुष्प के समान शोभायमान सूर्य से युक्त आकाश मण्डल को सुवर्ण के समान ही लाल रंग का कर दिया। किन्तु भगवान् शंकर त्रिदेवमय अपने उस बाण को त्रिपुर पर छोड़ने के बाद 'अरे धिक्कार है मुझको, धिक्कार है मुझको' 'बड़ा दुःख हुआ, बड़ा दुःख हुआ'—ऐसा कह-कह कर पश्चाताप करने लगे। इस प्रकार शिव को शोकनिमग्न देख कर नंदीश्वर ने मत्त गजराज के समान जाकर शूलपाणि महेश्वर से पूछा—'भगवन्! आप क्यों ऐसा पश्चात्ताप कर रहे हैं?' नन्दिकेश्वर के इस प्रकार पूछने पर चन्द्रशेखर भगवान् कपर्दी ने अति आर्त की भाँति नन्दिकेश्वर से कहा—'आज मेरे इस कठोर एवं निर्मम कार्य से मेरा प्रियभक्त मय नष्ट हो जायगा।' शिव की ऐसी बातें सुनकर मन के वेग के समान द्रुतगामी नंदिकेश्वर उक्त बाण के त्रिपुर में प्रवेश करने के पहिले ही त्रिपुर में प्रविष्ट हो गये। वहाँ जाकर सुवर्ण के समान द्युतिमान् गणाधीश्वर नंदी ने मय को देखकर कहा—'मय! अब तुम्हारे इस त्रिपुर का क्रूर विनाश काल उपस्थित हो गया है, अतः मैं तुमसे कह रहा हूँ कि तुम अपने इसी भवन के साथ यहाँ से शीघ्र ही निकल

जाओ ।' मय ने नंदी की ऐसी बातें सुनकर महादेव के चरणों में दृढ़ भक्ति की भावना कर अपने निवास के उस गृह को साथ लेकर त्रिपुर से प्रस्थान कर दिया । ॥४४—५२॥

त्रिपुर से मय के निकल आने के बाद शिव का वह बाण पत्ते से बने हुए झोपड़े की भाँति समस्त त्रिपुर को जला कर तीन भागों में—अग्नि, चन्द्रमा और नारायण के रूप में—विभक्त होगया । (सूत ने कहा)—महर्षिगण ! शिव के बाण के तेज से वह त्रिपुर इस प्रकार जलने लगा जैसे कुपुत्रों के दोष से ऊपर के पूर्वज भी नष्ट होते हैं । सुमेरु, कैलास और मंदराचल के शिखरों के समान अग्रभाग वाले, किवाड़े झरोखे और छज्जे आदि से सुशोभित, सुन्दर जल आदि के स्थान, बहुतेरी ध्वजायें, सुवर्ण तथा चाँदी की बंदनवार से सुशोभित, अग्नि के समान देदीप्यमान, दानवों के सहस्रों गृह उस दानवों के उपद्रव में अग्नि के समान लाल दिखाई पड़ते हुए जलाये जा रहे थे । मनोहर राजप्रासादों के अग्रभागों में, बनों में, बगीचों में, आकाश मण्डल में, बड़े बड़े झरोखों में बैठी हुई अपने पतियों द्वारा अंकों में छिपाई गईं तथा रमण में प्रवृत्त उन दानवेन्द्रों की स्त्रियाँ अनाथों की भाँति जलाई जाने लगीं । कोई अपने पतिदेव को छोड़ कर प्राण रक्षा के लिये अन्यत्र नहीं गईं और उसके सम्मुख ही अग्नि की ज्वालाओं में लीन हो गईं । कमल के समान सुन्दर नेत्रोंवाली कोई सुन्दरी आँखों में आँसू भर कर तथा हाँथ जोड़ कर अग्नि से कह रही थी—'अग्नि देव ! मैं तो दूसरे की स्त्री हूँ । तुम समस्त जगत् के धर्माधर्म के साक्षीरूप हो, अतः ऐसे स्थानों में तुम मेरा स्पर्श मत करो । शिव के समान अपनी पिंगल लपटों से शोभायमान् अग्निदेव ! मैंने अपने आराध्यचरण को सुला रखा है, मैंने कुछ भी अत्याचार नहीं किया है अतः तुम दूसरे मार्ग से होकर जाओ । पति समेत मेरे इस घर को छोड़ दो ।' एक दानव की स्त्री ने अपने अंकों में अपने प्रिय पुत्र को लेकर अग्नि के समीप में उपस्थित होकर अग्नि से निवेदन किया—'अग्निदेव ! मैं अपने इस प्राणवत् प्रिय बालक को बड़े प्रयत्नों के बाद प्राप्त कर सकी हूँ, हे कार्त्तिकेय के वल्लभ ! तुम मेरे इस प्राणप्रिय पुत्र रत्न को मत जलाओ ।' कुछ दैत्यों की स्त्रियों ने भय से विह्वल होकर अपने प्रियतम को छोड़ दिया तथा स्वयं अग्नि की लपटों से अतिशय पीड़ित होने लगीं । उस समय वे अपने आभूषणों को तथा वस्त्रों को हाथों से नोचती हुई समुद्र की अपार जलराशि में गिर पड़ीं । इस प्रकार उस त्रिपुर में अग्नि की ज्वालाओं से प्रपीड़ित दैत्यों की स्त्रियाँ 'हे तात् ! हे पुत्र ! हे माता, हे मातुल !' आदि आर्त्तस्वर करती हुई भस्म होने के भय से काँपने लगीं । जिस प्रकार पर्वत के वन्यप्रान्त में लगी हुई वाडवाग्नि कमल समेत सुन्दर सरोवर को भी दग्ध कर देती है उसी प्रकार उस त्रिपुर में अग्नि ने उन सुन्दरी स्त्रियों के कमलोपम सुन्दर मुखों को अपनी भीषण लपटों में मिला दिया । जिस प्रकार शीत ऋतु में तुषार सुशोभित सरोवरों के कमलों को विनष्ट कर डालता है, उसी प्रकार उस भीषण अग्नि ने त्रिपुर निवासिनी कमल के समान मनोहर नेत्रों तथा मुखों वाली दैत्यांगनाओं को विनष्ट कर दिया । उस समय त्रिपुर भर में शिव के बाण से उत्पन्न उस भीषण अग्नि की लपटों से भयाकुल उन अति कोमलांगिनी दैत्य स्त्रियों के दौड़ने से उनकी करधनी के सूत्रों तथा नूपुरों की ध्वनिओं से मिश्रित उनके चिल्लाने की एक विचित्र प्रकार की ध्वनि हो रही थी । त्रिपुर में उस समय अर्ध चन्द्रमा

के आकार में वेदियों के समेत जले हुए, ऊपर के परकोटों के जल जाने से छिन्न-भिन्न, तोरण विहीन जलते हुए घरों के समूह मानो रक्षा के लिये समुद्र की उस अपार जलराशि में धमाधम गिर रहे थे। अग्नि की ज्वालाओं से देदीप्यमान गिरते हुए गृहों से समुद्र का जल इस प्रकार जलने लगा जैसे किसी धनवान् व्यक्ति का परिवार अपने ही कुपुत्र के दोषों से नष्ट हो जाता है। उस समय जब जलते हुए भवनों की असह्य उष्णता से समुद्र का जल एक दम संतप्त होकर चारों ओर से वेगवान् हो गया (खौलने के कारण जल में गति हो जानी स्वभाविक है) तब उसमें रहने वाले जलीय जंतु तथा तिमि, नाक, तिंमिंगल आदि को अतिशय कष्ट होने लगा। मंदराचल के चरणप्रान्त की भाँति उच्च प्रवेशद्वार के समेत जो सबसे ऊँचा तथा सभी राजप्रासादों में श्रेष्ठ एक राजभवन था, वह भी उन अगल-बगल के जलने वाले कई गृहों के साथ घोर शब्द करता हुआ समुद्र में आ गिरा। जो सुन्दर तथा महान् त्रिपुर कभी सहस्रों श्रृंगोंवाले प्रसादों से युक्त सहस्रों श्रेणियोंवाले पर्वतराज की भाँति शोभाशाली था, वह इस अग्नि में छोड़ी हुई बलि की भाँति नाम मात्र का शेष कर दिया गया। उस जलते हुए त्रिपुर से आकाश पाताल समेत समस्त भुवन मण्डल एकदम सन्तप्त हो गया। वह त्रिपुर, जिसमें मय का विशाल राजप्रासाद था, उस समुद्र में मग्न तो हो गया किन्तु बहुत कष्ट से केवल मय का भवन बचाया जा सका—ऐसा सुनकर इन्द्र ने मय के उस महल को भी यह शाप दे दिया कि—'मय का भवन किसी के सेवन करने के योग्य नहीं रहेगा, जगत् में उसकी कभी प्रतिष्ठा न होगी, एवं अग्नि के समान वह सर्वदा भय से युक्त रहेगा। जिस-जिस देश का पराभव होनेवाला होगा, वहाँ-वहाँ के विनाश को प्राप्त होने वाले मनुष्य इस त्रिपुर के अवयवभूत मय के इस भवन का दर्शन करेंगे।' अब भी वह मय का भवन आपत्तियों से मुक्त और शेष है। ॥५३—७८॥

[ऋषियों ने कहा—] भगवन्! यज्ञ के चमस से उत्पन्न होनेवाले! वह दानवराज मय जिस भवन के साथ भागकर अपने प्राणों को बचा सका था, उसकी आगे चल कर क्या दशा हुई? कृपया उसे हमें बताइये ॥७९॥

सूत ने कहा—आकाश मण्डल में जहाँ पर ध्रुव का लोक दिखाई पड़ता है प्रथमतः वहीं पर मय का वह स्थान दिखाई पड़ता था किन्तु खिन्नचित्त देवशत्रु मय ने उस स्थान को बदल कर दूसरे लोक में रक्षा के निमित्त अपना स्थान बनाया। उसके इस दूसरे निवास स्थान के लोक में भी देवतागण विराजमान थे जो आप्तोर्यामा नाम से उत्तम देवता कहे जाते थे अतः वहाँ से पुर समेत अन्यत्र जाने में असमर्थ मय को देख कर शिव ने एक नवीन गृह का निर्माण कर उस गृह अभिलाषी मय को प्रदान किया। ऐसा देखकर सहस्र नेत्रोंवाले देवराज इन्द्र ने रुद्र की विशेष पूजा की। इन्द्र द्वारा पूजित रुद्र की वहाँ पर उपस्थित अन्यान्य देवताओं ने भी स्तुति की। इस प्रकार देवताओं तथा प्रमथों द्वारा पूजा किये जाते गणाधिपति को देख कर देवता लोग हर्ष से उल्लसित होकर हाथ उठा कर उछलने कूदने हँसने तथा उच्च स्वर से जय-जयकार मचाने लगे। शिव के बाण से जले हुए उस समस्त त्रिपुर को समुद्र में डूबा देख कर देवताओं ने पितामह ब्रह्मा तथा महादेव की वंदना कर अपने अपने धनुष को कंधे पर

धारण कर संसार के जीवगणों को संतोष प्राप्त करने का अवकाश दिया तथा रथ पर चढ़ कर अपने-अपने पुर को प्रस्थान किया। जो कोई मनुष्य विजय प्रदान करनेवाली महादेव के त्रिपुर विजय की इस सुन्दर कथा को पढ़ता है, उसके समस्त कार्यों में वृषभध्वज शंकर विजय प्रदान करते हैं। पितरों के श्राद्धादि कार्यों में जो कोई इसे सुनाता है उसे सम्पूर्ण यज्ञों के फलों को प्रदान करने वाले पुण्य की प्राप्ति होती है, शिव की त्रिपुर विजय की यह कथा मंगल प्रदान करनेवाली परम पुण्य प्रद, तथा सन्तति उत्पति करने में परम सहायिका है, इसका पाठ तथा श्रवण करने से मनुष्य शिव के समान लोक की प्राप्ति करता है। ॥८०—८७॥

श्री मात्स्य महापुराण में त्रिपुराख्यान प्रसंग में त्रिपुर दाह वर्णन नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४०॥

एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! इल का पुत्र राजा पुरूरवा किस प्रकार प्रत्येक मास की अमावस्या को स्वर्ग लोक में जाता है और किस प्रकार वह अपने पितरों का तर्पण करता है, उस बुद्धिशाली पुरूरवा के प्रभाव को हम लोग सुनना चाहते हैं ॥१॥

सूत ने कहा—इसी कथा को सूर्यपुत्र राजा मनु ने पूर्वकाल में मत्स्य भगवान् से पूछा था, उस समय जिस प्रकार मत्स्य भगवान् ने राजा मनु को बतलाया था वह सब वृत्तान्त मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ। ॥२॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—पुरूरवा का वृत्तान्त मैं विस्तारपूर्वक आपसे बतला रहा हूँ, सुनिये। उस इलपुत्र पुरूरवा का संयोग स्वर्ग में परम बुद्धिमान चन्द्रमा से था, चन्द्रमा से ही उसे अमृत की प्राप्ति होती थी, जिससे वह पितरों का तर्पण किया करता था। सौम्य वर्हिषद्, काव्य तथा अग्निष्वात्त—इन उपाधियों से विभूषित उसके पितर गण थे। नक्षत्रों पर विचरण करते हुए जब चन्द्रमा तथा सूर्य एक ही मण्डल अर्थात् राशि में अमावस्या तिथि को एक साथ निवास करते हैं, उस समय वह सूर्य तथा चन्द्रमा को देखने के लिये प्रत्येक अमावस्या को स्वर्गलोक में जाता है और उस अवसर पर अपने पितामह (पिता के पिता) तथा मातामह (माता के पिता) को प्रणाम कर वहाँ पर कुछ समय तक प्रतीक्षा करता हुआ निवास करता है। इल का पुत्र परम विद्वान् वह पुरूरवा अति परिश्रम से चन्द्रमा की पूजा कर वहाँ से गमन करता है। श्राद्ध करने की इच्छा से वह स्वर्गलोक में चन्द्रमा तथा अपने पितरगणों का उपस्थान करता है। दो क्षण प्रमाण की अमावस्या तिथि को, जब कि सिनीवाली अमावस्या में कुहू का उदयकालीन अल्प योग रहता है, उस दिन दो लव कुहू मात्र में पितरों के उद्देश्य से वह उन दोनों का ध्यान कर (?) उनकी उपासना करता है। उपासना करने के बाद चन्द्रमा की कला की (?) प्रतीक्षा करता हुआ वह वहाँ स्थित रहता है। वहाँ निवास करते हुए वह उन पितरों की तृप्ति के लिये चन्द्रमा से पन्द्रह सूक्ष्म किरणों द्वारा

स्वधा रूप अमृत को ग्रहण करता है। कृष्णपक्ष में भोग प्राप्त करने वाले पितरों की प्रीति उन सूक्ष्म किरणों से पूर्ण होती है। इस प्रकार तत्काल स्रवित होते हुए चन्द्रमा द्वारा प्राप्त उस सौम्य अमृत को विधि पूर्वक श्राद्ध में देता हुआ पुरूरवा पितरों को तृप्त किया करता है। वे पितर गण सौम्य वर्हिषद्, काव्य और अग्निष्वात्त के नाम से विख्यात हैं। साधु ब्राह्मणों ने ऋतु को अग्नि कहा है और ऋतु को ही संवत्सर भी माना है, उसी संवत्सर से समस्त ऋतुओं की उत्पत्ति होती है, और ऋतुओं से ही आर्तवगणों की उत्पत्ति मानी गई है। पितरगण, आर्तव और अर्धमास—इनको ऋतुओं का सन्तान जानना चाहिये। पितामह गण, अमावास्या तथा ऋतुगण—ये वर्ष के पुत्र कहलाते हैं। प्रपितामह गण तथा पाँच वर्ष—ये ब्रह्मा के पुत्र देवता कहलाते हैं। ॥३—१४॥

सौम्य बर्हिषद, काव्य और अग्निष्वात्त—ये पितरगण तीन प्रकार के कहे गये हैं। इनमें जो गृहस्थाश्रमी हैं, यज्ञ करनेवाले हैं और हवन करनेवाले हैं—वे पितर वर्हिषद् नाम से पुराण में निश्चित हैं। गृहस्थाश्रमी आर्तव एवं यज्ञकर्ता पितरगण अग्निष्वात्त कहलाते हैं और अष्टका के पतिगण काव्य संज्ञक पितर कहे जाते हैं। उन पाँचों वर्षगणों का वृत्तांत सुनिये। उनमें अग्नि संवत्सर, सूर्य परिवत्सर, सोम इडुवत्सर, वायु अनुवत्सर और रुद्र वत्सररूपी हैं। ये युग संज्ञक पाँच वत्सर या वर्ष कहे गये हैं। कालचक्र के अनुसार इन्हीं पर अवस्थित चन्द्रमा अमृत का क्षरण करता है—ये सब पितरगण कहे जा चुके। देवता सोमपा तथा ऊष्मपा आदि जितने पितरगण हैं, उनकी पुरूरवा जबतक वहाँ रहता था तब तक चन्द्रमा अपनी किरणों से अमृत के द्वारा तृप्ति करता था। प्रत्येक मास में सोमपान करने वाले उन पितरगणों को तृप्त करने वाला वह स्वधारूप अमृत चन्द्रमा से क्षरित होता है। इस प्रकार उस सोम अमृत एवं उसकी प्राप्ति की कथा कही जा चुकी। सोम पान करनेवालों से पी लेने पर जब चन्द्रमा क्षीण हो जाता है तब सूर्य अपनी सुषुम्ना नामक किरण द्वारा एक-एक दिन के क्रम से चन्द्रमा की उन कलाओं को पूर्ण करता है। शुक्लपक्ष में वह उन सभी कलाओं को पूर्ण करता है। इस प्रकार कृष्णपक्ष में उन सभी कलाओं का क्षय एवं शुक्ल पक्ष में उनकी पुष्टि होती है। सूर्य के द्वारा चन्द्रमा पुष्टि लाभकर पूर्णता प्राप्त करता है। शुक्ल पक्ष के प्रत्येक दिनों में वह इसी क्रम से पुष्टि प्राप्त करता है। इसी से पूर्णमासी को चन्द्रमा श्वेत और पूर्ण मण्डल वाला दिखाई पड़ता है। प्रथमतः देवताओं द्वारा अमृत पान कर लेने के बाद चन्द्रमा का सूर्य पान करता है। पन्द्रह दिनों में क्रमशः एक-एक कला का पान सूर्य करता है और शुक्ल पक्ष में फिर सुषुम्ना नामक नाडी से क्रमशः एक एक कला की वृद्धि करता है। इस प्रकार चन्द्रमा की शुक्ल पक्ष में कला बढ़ती है। शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ इसी से बढ़ती-घटती जाती हैं। पन्द्रह सुधा बरसाने वाली कलाओं से पूर्ण कान्तिमान सुधात्मक चन्द्रमा को इसी कारण पितृमान् कहा जाता है। ॥१५—२८॥

अब इसके बाद पर्वों की संधियों का वर्णन कर रहा हूँ। जिस प्रकार बाँस तथा ईख आदि के पर्वों में गोलाकार गाँठ रहती है उसी प्रकार पर्वों में भी परस्पर संधियाँ होती हैं। वर्ष मास, शुक्ल, कृष्णपक्ष

और पूर्णमासी—ये सब उसकी ग्रन्थि तथा संधियाँ हैं। अर्धमास (एक पक्ष) के पर्व द्वितीया तृतीया आदि तिथियाँ हैं। उन पर्व की संधियों में अग्नि स्थापन आदि वैदिक क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। पर्व के आदि में प्रतिपदा आदि तिथियों के संधिकाल में अनुमति और राका के सायंकाल के दो लव[1] काल को आपराह्णिक जानना चाहिये। उस आपराह्णिक काल तक कृष्ण पक्ष की प्रकृति मानी गई है। उसके बाद सायंकाल की प्रतिपदा तिथि के योग में पूर्णमासी का काल माना गया है। जब व्यतीपात पर सूर्य स्थित होता है तब चन्द्रमा विषुव स्थल से ऊपर युगान्तर स्थान पर अवस्थित होता है। पूर्णमासी और व्यतीपात—यह दोनों उस समय परस्पर दिखाई पड़ते हैं(?)और उस स्थान पर सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों प्रतिपदा तिथि तक उसी भाव से अवस्थित रहते हैं। उस समय सूर्य को देखकर संख्या (?) की जा सकती है और वही छठवां सत्क्रिया काल के नाम से विख्यात काल है (?) पक्ष के पूर्ण हो जाने पर जब रात्रि की संधि में पूर्णिमा तिथि हो जाती है तब चंद्रमा पूर्णमासी की रात्रि में अपनी सभी कलाओं से पूर्ण हो जाता है। जब सूर्य चन्द्रमा एवं दिन—ये तीनों सायंकाल के समय एक दूसरे को देखते हैं, तब चन्द्रमा के पूर्ण होने के कारण उसी को पूर्णिमा तिथि कहते हैं। सभी देवताओं समेत पितरगण उस तिथि को मानते हैं, अतः उसका नाम अनुमति कहा जाता है, और यतः उक्त तिथि को चन्द्रमा पूर्ण रहता है अतः पूर्णिमा भी उसे ही कहते हैं। पूर्णमासी की रात्रि में चन्द्रमा अति प्रकाशमान होकर शोभित होता है अतः उसे राका भी कहते हैं। चन्द्रमा और सूर्य एक ही नक्षत्र पर अमा अर्थात् एक साथ में निवास करते हैं अतः कृष्णपक्ष की वह पन्द्रहवीं रात्रि अमावस्या कहलाती है। उक्त अमावस्या तिथि को यतः चन्द्रमा तथा सूर्य एक दूसरे के दृष्टि पथ में आ जाते हैं अतः दर्श भी कहते हैं। अमावस्या से परे दो क्षण काल तक प्रतिपदा की संधि रहती है उसी दो क्षण तक 'कुहू' मात्र काल को पर्वकाल कहते हैं। जिस अमावस्या को चन्द्रमा दिखलाई पड़ता है, उस दिन दोपहर के बाद वह रात्रि में सूर्य के साथ एक स्थान पर संयुक्त होता है और शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को वह प्रातःकाल सूर्य के साथ दिखाई पड़ता है। और इस प्रकार चन्द्रमा मध्याह्न काल तक सूर्य मण्डल से दो लव(?)परिमाण की दूरी पर हो जाता है। जब चन्द्रमा और सूर्य का मंडल पृथक-पृथक हो जाता है, तब उसे अमावस्या का अन्वाहुति काल कहते हैं, जिसमें पितरों के उद्देश से वषट् क्रिया करनी चाहिये। यही अमावस्या का ऋतुसंज्ञक पर्व काल भी है। दिन के मध्य में सूर्य के साथ क्षीण चन्द्रमा का योग होने पर भी यह योग होता है इसीलिए दिन में सूर्य के प्राप्त होने पर अमावस्या का ग्रहण होता है। वह पर्वकाल कोकिल की 'कुहू' इस ध्वनि की समाप्ति जब तक होती है उतने ही समय तक रहता है। उतने ही अल्पक्षण तक यह अमावस्या 'कुहू' कहलाती है। सिनीवाली वह अमावस्या है, जिसमें क्षीण चन्द्रमा सूर्य मण्डल में प्रविष्ट होता है। अनुमति, राका, सिनीवाली और कुहू—इन चारों के काल परिमाण केवल दो लव हैं और 'कुहू' उच्चारण करने में जितना समय लगता

[1]एक पल के तीसवें भाग का नाम लव होता है।

है केवल उतना मात्र काल 'कुहू' कहलाता है। इन तिथियों की पर्वसन्धियों का केवल दो क्षण काल है और वह पर्वकाल के समान पुण्यदायी कहा जाता है। इनमें की हुई वषट् तथा पितरों की क्रियाएँ पर्वकालीन क्रियाओं की भाँति ही फलदायिनी होती हैं। चन्द्रमा तथा सूर्य का व्यतीपात योग पर संयोग एवं पूर्णिमा ये सभी तुल्य फलदायक हैं। प्रतिपदा के संयोग का पर्वकाल दो लव का होता है। कुहू और सिनीवाली का भी दो क्षण काल कहा जाता है, जब चन्द्रमा सूर्य मण्डल से बाहर होता है उस समय भी एक लव मात्र काल तक पर्वकाल कहा जाता है। ॥२९-५४॥

एक-एक दिन के क्रम से पन्द्रहवीं तिथि के दिन चन्द्रमा पन्द्रह कलाओं द्वारा पूर्ण किया जाता है, इसी कारण उसे पूर्णिमा कहते हैं। और इसी कारण चन्द्रमा में सोलहवीं कला नहीं होती क्योंकि उसकी पन्द्रह कलाएँ ही पन्द्रह दिनों में क्षय होती हुई दिखाई पड़ती हैं। इसीलिए पन्द्रहवीं तिथि को ही चन्द्रमा का क्षय होना भी कहा गया है। ये देव पितरगण सोम पान करनेवाले तथा सोम की वृद्धि करनेवाले—दोनों हैं। आर्तव, ऋतु एवं अब्द संज्ञक पितरगण तथा देवगण उन्हीं के परिपोषक हैं। ॥५५-५७॥

अब इसके बाद मैं श्राद्धभोजी पितरों का वर्णन कर रहा हूँ। उनकी गति, उनका पराक्रम तथा उन्हें श्राद्धीय वस्तु की प्राप्ति कैसे होती है इसका भी वर्णन कर रहा हूँ, आप लोग सावधानीपूर्वक सुनिये। मृतात्मा के आवागमन का हाल कोई योगदृष्टि सम्पन्न महातपस्वी भी नहीं जान सकता तो फिर चर्म दृष्टिवाले साधारण मनुष्य कैसे जान सकते हैं? इस लोक में किये गये धर्माचरण की सामर्थ्य से अन्य लोक में जाकर पितर एवं देवगणों के साथ जो लोग निवास करते हैं, उन्हें ब्राह्मण लौकिक पितर कहते हैं। दूसरे जो पितरगण हैं वे इस जीवन में गृहस्थादि आश्रम धर्मों में निष्ठ रहकर श्रद्धायुक्त कार्यों में निरत रहकर उसी पुण्य से परलोक में निवास करते हैं। ब्रह्मचर्य, यज्ञ, तपस्या, पुत्रोत्पत्ति, श्राद्ध, विद्याध्ययन और अन्नदान—ये इस पृथ्वी तल पर उत्तम सात धर्म कहे गये हैं। इन सत्कर्मों में जो अपने जीवन पर्यन्त प्रवृत्त रहते हैं, वे ऊष्मप, सोमप पितर तथा देवताओं के साथ आनन्द से स्वर्ग में प्राप्त होकर पितरों की उपासना करते हैं। सन्ततिवाले गृहस्थाश्रमी पुरुषों के लिए, जो श्राद्धादि कार्यों को करनेवाले हैं, यह सिद्धि कही गई है, इसी से उत्तम कुलीन सपरिवार एवं श्राद्ध में निष्ठाशील को श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। प्रत्येक महीने में श्राद्ध का भोग करनेवाले वे पितर चन्द्रलोक के कहे जाते हैं। मांसभोजी पितरगण मनुष्यों के पितर कहे जाते हैं। उनके अतिरिक्त जो अन्य लोग कर्म के अनुसार विविध योनियों में भ्रमण करते हुए, आश्रमधर्म से भ्रष्ट तथा स्वाहा और स्वधा से वंचित रहनेवाले हैं, शरीर के नष्ट होने पर आपत्ति सहन करते हुए यमराज की पुरी में प्रेत रूप धारण कर अपने पूर्व जन्म के कर्मों का प्रायश्चित भोगते हुए अनेक प्रकार की पीडा के स्थानों में विविध यातनाएँ झेलते हैं। वे लंबे शरीरवाले, अति कृशकाय, बड़ी-बड़ी दाढ़ियों से युक्त, वस्त्ररहित, क्षुधा और पिपासा से व्याकुल होकर इधर-उधर भटकते रहते हैं। नदी, तालाब, सरोवर, पोखरी आदि जलाशयों पर इधर-उधर दूसरे के दिये हुए अन्न की प्राप्ति

की इच्छा रखते हुए घूमते रहते हैं। उस भीषण नरकपुरी के यातना स्थलों में—अर्थात् शाल्मलि, वैतरणी, कुंभीपाक, इक्षुबालुक, असिपत्रवन आदि घोर कठोर नरकों में—अपने कर्म के अनुसार अनेक प्रकार की यातनाओं को झेलनेवाले उन प्रेतात्माओं के परिवारवालों को चाहिये कि उनके नाम गोत्रादि का उच्चारण कर अपसव्य हो पृथ्वी पर कुशा के ऊपर उनके निमित्त तीन पिंडदान करें। उन पिंडों से उन प्रेत-स्थानों में यातना झेलते हुए उन प्रेतात्माओं को परम शान्ति मिलती है। जो उन नरक के स्थानो में नहीं स्थित हैं,—निम्नोक्त पाँच प्रकारों से भृष्ट हैं, अर्थात् जो मृत्यु के बाद स्थावर योनि में पैदा हो गये हैं, अपने दुष्कर्मों से भूतों के समूह में उत्पन्न हो गये हैं, जातियों के अनेक प्रकार के रूपों में, पशु आदि तिर्यक योनियों में अथवा जलचरों में उत्पन्न हो गये हैं—उनको निमित्त करके जो आहार दिया जाता है वह उन-उन योनियों में भी उन्हें प्राप्त होता है, और वहाँ उनकी तुष्टि भी करता है। इस प्रकार अन्य जन्मों में उत्पन्न होने पर भी उन्हें श्राद्धादि में दिये हुए पदार्थ जाकर सन्तुष्ट करते हैं। श्रेष्ठकाल में विधिपूर्वक सत्पात्र को दिया हुआ अन्नादि पदार्थ किसी भी योनि में प्रेतात्मा को आहार रूप में उपलब्ध होता है। जिस प्रकार सैकड़ों गौओं में छिपी हुई अपनी माँ (गौ) को उसका बछड़ा ढूँढ़ लेता है उसी प्रकार का दृष्टान्त श्राद्धों में मंत्रों का कहा जाता है। अर्थात् मन्त्रपूर्वक दिया हुआ अन्नादि पदार्थ जिस प्राणी के उद्देश से दिया जाता है उसी को प्राप्त होता है। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक दिया हुआ श्राद्ध सभी स्थानों में प्राप्त हो जाता है—ऐसा मनु का कथन है। अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर सनत्कुमार भी, जो कि प्रेतात्मा के आवागमन की बातें विधिपूर्वक जानते हैं, यही कहते हैं कि प्रेतात्मा को दिया हुआ श्राद्ध उपर्युक्त रीति से उसे प्राप्त हो जाता है। उन पितर लोगों का दिन कृष्ण पक्ष है और रात्रि शुक्ल पक्ष। इस रीति से ये पितृ देवता और देव पितर गण सब स्वर्ग में परस्पर एक दूसरे के जनक हैं। ये पितृदेवता एवं मनुष्यों के पितर गण सोमपायी हैं। मनुष्यों के पितरगण पिता पितामह और प्रपितामह हैं। पितरोंका महत्त्व पुराणों में निश्चयपूर्वक कहा गया है। इस प्रकार चन्द्रमा तथा सूर्य से इलापुत्र पुरूरवा का समागम किस प्रकार होता है ? पितरों को तृप्ति किस प्रकार मिलती है ? श्रद्धापूर्वक पितरों का तर्पण किस प्रकार किया जाता है ? पर्वों का कौन-सा काल अधिक माहात्म्यप्रद है ? यातना भोगने के स्थान कौन-से हैं—इन सब विषयों का संक्षिप्त वर्णन मैंने कर दिया। यही प्रथा सर्वथा प्रसिद्ध रही है। इन सब का विस्तार बहुत अधिक है, उनके कुछ अंशों का वर्णन मैंने किया है, विस्तार से अलग-अलग उनकी संख्या परिगणित नहीं की जा सकती। ऐश्वर्य चाहने वालों को उसके ऊपर श्रद्धा रखनी चाहिये। यह स्वायम्भुव मनु द्वारा किये गये सृष्टि तत्त्व का वर्णन मैंने किया है, इसके अतिरिक्त और क्या आप लोग सुनना चाहते हैं ?। ॥५८-८५॥

श्री मात्स्य महापुराण में मन्वन्तरानुकीर्तन प्रसंग में श्राद्ध माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४१॥

एक सौ बयालीसवाँ अध्याय

मुनियों ने कहा—पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर में जिन चारों युगों का प्रवर्तन हुआ है, उनके स्वभाव तथा समय को विस्तारपूर्वक सुनने की हम लोगों की विशेष इच्छा है ॥१॥

सूत ने कहा—इस विषय को संक्षेप में पृथ्वी तथा आकाश के प्रसंग में तो कह दिया गया है, तथापि यदि आप लोगों की इच्छा है तो पुनः उसी विषय को सुनिये। उन के प्रमाणों का वर्णन करने के उपरान्त समय आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन भी मैं क्रमशः सुना रहा हूँ। मनुष्य के वर्ष का प्रमाण लौकिक प्रमाण द्वारा जानना चाहिये, उसी के द्वारा चारों युगों के प्रमाणों की संख्या बतला रहा हूँ। पन्द्रह निमेष अर्थात् पन्द्रह बार आँखों के खोलने तथा मूँदने में जितना समय लगता है उतने समय को एक काष्ठा कहते हैं, तीस काष्ठा की एक कला होती है, तीस कला का एक मुहूर्त्त होता है और तीस मुहूर्तों का एक दिन रात—दोनों मिलकर होते हैं। लौकिक तथा दैविक दोनों प्रकार के दिन तथा रात्रि का विभाग सूर्य करता है। उसमें रात्रि तो जीवों को सोने के लिए है, और दिन जीवन के व्यापार को चालू रखने के लिए। मनुष्यों के एक महीने का पितरों का एक दिन-रात होता है। उसका विभाग इस प्रकार है—पितरों का दिन कृष्णपक्ष है, रात्रि शुक्लपक्ष; जिसमें वे लोग शयन करते हैं। मनुष्यों के तीस महीनों का पितरों का एक महीना होता है और मनुष्यों के तीन सौ साठ महीनों का पितरों का एक वर्ष होता है। प्रमाण में सभी को मनुष्यों का महीना ही जानना चाहिये। इसी मनुष्य के ही महीनों तथा वर्षों के प्रमाण से जो एक सौ वर्ष होता है, उतने ही समय का पितरों का तीन वर्ष और चार महीना होता है। पितरों के बारह मासों की संख्या बताई जा चुकी। मनुष्यों के प्रमाण में जो एक वर्ष है वही देवताओं का एक दिन रात है—ऐसी वैदिक श्रुति है। उस लौकिक एक वर्ष में जो देवताओं का दिन रात पड़ता है, उसका विभाग इस प्रकार है। लौकिक उत्तरायण का छः महीना देवताओं एक का दिन है, और लौकिक दक्षिणायन का छः महीना उनकी एक रात्रि। यही देवताओं का एक दिन रात है। मनुष्यों के तीस वर्ष का देवताओं का एक महीना होता है। मनुष्यों के सौ वर्ष देवताओं के तीन महीने और कुछ दिन (१० दिन) होते हैं—यह तो देवताओं की परंपरा है। इस प्रकार मनुष्यों के तीन सौ साठ वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होता है। मनुष्यों के तीन हजार तीस वर्षों (३०३०) का सप्तर्षियों का एक वर्ष होता है, और मनुष्यों के नौ सहस्र नब्बे (९०९०) वर्षों का ध्रुव का एक वर्ष होता है। मनुष्यों के छत्तीस हजार (३६०००) वर्षों का देवताओं का एक शत वर्ष होता है तथा तीन लाख साठ सहस्र वर्ष का एक सहस्र वर्ष होता है। हे ऋषिगण! इसी प्रकार का कालप्रमाण कालज्ञ ज्योतिषियों ने कहा था और इसी प्रकार दिव्य संख्या का प्रमाण ऋषिगण भी बतलाते हैं। इन्हीं दिव्य वर्षप्रमाणों द्वारा युगों के प्रमाणों की संख्या कही गई है। इस भारतवर्ष में ऋषियों ने चार युग बतलाये हैं, कृतयुग (सतयुग), त्रेता, द्वापर और कलियुग। इन चारों में प्रथम कृतयुग अर्थात् सतयुग है, तत्पश्चात्, त्रेता फिर द्वापर और तब कलियुग। चार सहस्र दिव्य

वर्षों का सतयुग का प्रमाण कहा गया है, और दिव्य चार सौ वर्षों की उसकी संध्या तथा चार सौ वर्षों का संध्यांश माना गया है। शेष तीनों युगों के प्रमाण की संख्या में और संध्या तथा संध्यांशों में क्रमशः हजार और सैकड़े की संख्या का एक-एक पादहीन होता गया है, अर्थात् त्रेता तीन हजार दिव्य वर्षों का होता है—यह सब युग के प्रमाण को जानने वाले ऋषियों ने कहा है। त्रेता की संध्या ३०० वर्षों की है, और इतने ही का संध्यांश भी है। द्वापर दिव्य दो हजार वर्षों का है, तथा संध्या और संध्यांश मिलाकर चार सौ वर्षों के होते हैं। कलियुग एक हजार दिव्य वर्षों का है, उसकी संध्या तथा संध्यांश—दोनों मिलकर दो सौ वर्षों के हैं। इस प्रकार सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन सबकी संख्या मिलकर देवताओं के बारह हजार वर्षों की होती है। अब मनुष्यों के जितने वर्षों के प्रमाण इन युगों के होते हैं उसे सुनिये। मनुष्यों के सत्रह लाख अट्ठाईस सहस्र वर्षों का १७,२८,००० सतयुग का प्रमाण माना गया है। इसी प्रकार बारह लाख छानबे सहस्र १२,९६,००० वर्षों का त्रेता का, आठ लाख चौसठ सहस्र ८,६४,००० वर्षों का द्वापर का तथा चार लाख बत्तीस सहस्र वर्षों ४,३२,००० का कलियुग का प्रमाण कहा गया है। ये सभी प्रमाण मनुष्यों के वर्षों से माने गये हैं। चारों युगों एवं उनकी संध्या और संध्यांश की संख्या मानवीय वर्ष के प्रमाणों से कही गई। चारों युगों की यह संख्या जब इकहत्तर बार समाप्त हो जाती है अर्थात् चारों युगों की एक चौकड़ी जब इकहत्तर बार समाप्त हो जाती है, तब एक मनु बदलते हैं। एक मनु के बदलने के काल प्रमाण को मानव वर्षों द्वारा बतला रहा हूँ, सुनिये। इकतीस करोड़, दस लाख, बत्तीस हजार, आठ सौ, अस्सी वर्ष, और छः महीनों (३१,१०,३२,८८० वर्षों) में एक मनु[1] बदलते हैं। मनुष्यों के वर्षों के अनुसार मन्वन्तर की यह संख्या बतला चुका। अब दिव्य—देवताओं के—वर्षों से मनु का प्रमाण बतला रहा हूँ। एक लाख चालीस हजार दिव्य वर्षों में एक मनु का परिवर्तन होता है, यह मन्वन्तर का प्रमाण युगों के साथ कहा जा चुका। यह अवधि चारों युगों के इकहत्तर बार बीत जाने पर समाप्त होती है उतने ही समय का एक मन्वन्तर कहा गया है। इसके चौदह गुने काल को काल के जाननेवाले लोग एक कल्प कहते हैं, और जब एक कल्प पूरा होता है तभी जगत् का विनाश होता है, जिसे महाप्रलय कहते हैं। यह महाप्रलय प्रमाण में कल्प से दूने काल तक रहता है। इस प्रकार

---

[1]वास्तव में जोड़ने पर एक मन्वन्तर की वर्ष-संख्या मानवीय प्रमाण से ३०,६७,२०,००० वर्ष होती है। जैसा कि अग्निपुराण तथा लिंगपुराण में कहा भी गया है।

"सप्तषष्टिश्च लक्षाणि त्रिंशत्कोट्यास्तथैव च।
विंशतिश्च सहस्राणि, मन्वन्तरमिहोच्यते॥" अग्निपुराण
"त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण द्विजोत्तमाः।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु॥
विंशतिश्च सहस्राणि कालो यः साधिकां विना।
मन्वन्तरस्य संख्यैषा लिंगेऽस्मिन् कथिता द्विजाः।" लिंगपुराण।

सतयुग त्रेता आदि चारों युगों के प्रमाण की संख्या आप लोगों को बतला दी गई। ॥२-३७॥

अब मैं त्रेता की सृष्टि तथा द्वापर और कलियुग की सृष्टि का वर्णन कर रहा हूँ। इसके पूर्व सतयुग एवं त्रेता के कुछ अंश का वर्णन मैं कर चुका हूँ। ये दोनों बिल्कुल एक दूसरे से मिले हुए हैं, अतः इनको पृथक-पृथक करके कोई वर्णन नहीं कर सकता। पूर्व कथाप्रसङ्ग में मैं तुम लोगों से इन दोनों युगों का वर्णन नहीं कर सका, क्योंकि उस समय ऋषियों के वंश का विस्तृत प्रसङ्ग छिड़ जाने से चित्त की व्यग्रता से वह विषय छूट गया था। अस्तु ? अब पूर्वकथा प्रसङ्ग में शेष रह गये त्रेता की सृष्टि का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। त्रेता युग के आदि में जो मनु तथा सातों ऋषि थे उन लोगों ने ब्रह्मा की प्रेरणा से श्रुतियों तथा स्मृतियों से अनुमोदित धर्म का उपदेश किया था। स्त्री सम्बन्ध (विवाह), अग्निहोत्र, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद आदि में मन्त्रों की संहिता तथा धर्मों की व्याख्या आदि उन्हीं ऋषियों ने की थी। स्मृतियों द्वारा अनुमोदित परम्परा से चले आते हुए आचार-व्यवहार आदि के लक्षणों को वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा के अनुरूप स्वायम्भुव मनु ने बतलाया था। ब्रह्मचर्य, सत्य, धर्म, वेदज्ञान एवं तपस्या से त्रेता में उत्पन्न होनेवाले उन सातों महर्षियों तथा मनु ने, जो अतिशय तपस्वी, प्रभावशाली तथा विशेषज्ञ थे, केवल एक बार के चिन्तन से उन प्राक्तन मन्त्रों को अपने हृदय में स्फुट रूप से प्रकाशित किया। वे मन्त्रादि आदि कल्प में उन देवादि के हृदयों में स्वयं प्रकाशित हुए थे। प्रमाणों से सिद्ध अन्यान्य व्यक्ति भी उन मंत्रों के सम्बन्ध में प्रवर्तित (?) होते थे, बीते हुए कल्पों में वे मंत्र समूह सैकड़ों सहस्रों की संख्या में विद्यमान थे, वे ही पुनः उन देवता आदि की प्रतिमाओं में उपस्थित हुए थे। वे सभी मंत्र ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्व वेद के थे, जिन्हें सातों ऋषियों ने कहा है। जैसा कि ऊपर कह भी चुके हैं, स्मृतियों में अनुमोदित धर्म की व्यवस्था को मनु ने कहा था। त्रेतायुग के आदिम काल में वे सब एकत्रित किये गये थे। मंत्र ही वेदों के रूप में धर्म के सेतु स्वरूप थे; किन्तु द्वापरयुग में मनुष्यों की बुद्धि एवं आयु के न्यून होने के कारण सरल एवं सुबोध करने के लिए इनके अलग-अलग विभाग किये गये। महर्षियों ने अपने तपोबल के प्रभाव से एक दिन रात में इन वेदों का अध्ययन किया था। प्राचीन काल में ब्रह्मा ने सभी अंगों समेत प्रत्येक युगों के अपने-अपने धर्मों से संयुक्त, आदि एवं अवसान रहित उन वेद समूहों का उपदेश किया था। युगों के प्रभाव से वेद वाक्यों से प्रस्खलित होकर वे धर्म धीरे-धीरे विकृत होते जाते हैं। क्षत्रिय को यज्ञारम्भ करना, वैश्य को हविर्यज्ञ करना, शूद्र को सेवारूप यज्ञ करना तथा ब्राह्मण को जपयज्ञ करना चाहिये। इस प्रकार त्रेतायुग में वेदोक्त धर्मों में सभी लोग प्रवृत्त थे और संतानों से युक्त होकर धर्मपूर्वक सुख भोग करते थे। अनुग्रह बुद्धि से ब्राह्मण लोग क्षत्रियों को, क्षत्रिय लोग वैश्यों को तथा वैश्य लोग शूद्रों को शिक्षा देते थे। इस प्रकार त्रेतायुग में सारी प्रजा वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा में व्यवस्थित रहकर मानसिक संकल्प वाणी और हस्त आदि इन्द्रियों से आरम्भ किये गये कर्मों का सुचारु रूप से शीघ्र ही फल प्राप्त करती थी। त्रेता युग में आयु, रूप, बल, बुद्धि, स्वास्थ्य, धर्म, शील आदि विशेष गुण सर्वसाधारण जनता में पाये जाते थे। और वर्णाश्रम धर्म

की व्यवस्था ब्रह्मा ने स्वयं की थी उसी प्रकार ब्रह्मा के पुत्रों—ऋषियों—ने सभी मंत्रों के तथा आरोग्य और धर्मशीलता आदि का विधान तथा मंत्रों का संकलन प्रजाओं के लिए किया था। देवताओं ने यज्ञों की प्रथा प्रचलित की थी। उसी समय सम्पूर्ण यज्ञीय साधनों समेत याम, शुक्ल, जय, विश्वसृक् तथा अमित तेजस्वी देवराज इन्द्र के साथ सर्वप्रथम देवताओं ने स्वायम्भुव मन्वन्तर में जनता में यज्ञों की प्रवृत्ति प्रचलित की थी। सत्य, जप, तपस्या तथा दान—ये सब सर्वश्रेष्ठ धर्म हैं। जब इनका प्रभाव घटने लगता है तभी अधर्म की भावना बढ़ने लगती है। जब इस प्रकार का अवसर आता है, अर्थात् धर्म का ह्रास होकर अधर्म की अभिवृद्धि होने लगती है तब दीर्घजीवी, महाबलवान्, दंड देनेवाले, महायोगी, यज्ञपरायण, ब्रह्मनिष्ठ, कमल के समान नेत्रोंवाले, लम्बे मुँह, दृढ़ अंगों वाले, सिंह के समान विशाल वक्षस्थलवाले तथा परम पराक्रमी, मत्तगयंद की तरह चलने वाले, महाधनुषधारी चक्रवर्ती राजागण त्रेता में उक्त अधर्म भाव का विनाश करने के लिये उत्पन्न होते हैं। वे विशाल वटवृक्ष के समान अति विशाल उन्नत तथा विस्तृत परिमण्डलवाले एवं सभी राजलक्षणों से समन्वित होते हैं। बरगद का अर्थ वाहु से कहा गया है, व्याम अर्थात् विस्तारित दोनों वाहुओं के मण्डल को भी न्यग्रोध कहते हैं। उसी व्याम जितनी स्थूलता तथा उच्चता होने के कारण शरीरी की उच्चता तथा विस्तार को वटवृक्ष का परिमण्डल(?)कहा गया है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में रथ, चक्र, स्त्री, मणि, घोड़े, हाथी और सुवर्णादिक धन—यही सात निधि रूप में माने जाते हैं। चक्रवर्ती राजा इस भूलोक पर विष्णु के अंशरूप में उत्पन्न होते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमानकालिक सभी मन्वन्तरों के त्रेता युगों में उक्त चक्रवर्ती सम्राटगण विष्णु के अंश से प्रादुर्भूत होते हैं। उन उत्तम राजाओं को कल्याण तथा अणिमादिक सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं। तथा पराक्रम, धर्म, सुख, एवं धन—ये अद्भुत चार पदार्थ एक दूसरे का विना विरोध किये ही उन्हें एक साथ प्राप्त होते हैं। अर्थ, धर्म, काम, यश, विजय तथा अणिमादि ऐश्वर्यों से युक्त प्रभुता की शक्ति और बल से संयुक्त होने से उन्हें सर्वदा विजय की भी प्राप्ति होती रहती है। वे चक्रवर्ती राजा गणवेद विहित धर्मों का पालन करते हुए अपनी उग्र तपस्या से ऋषियों को लज्जित करनेवाले होते हैं और बल से बड़े-बड़े दानवों को मात करते हैं। उनके सभी लक्षण सर्वसाधारण मनुष्यों के लक्षणों से भिन्न होते हैं। उनके सुन्दर ललाट पर मनोहर केश होते हैं, उनकी जिह्वा अति स्वच्छ तथा स्निग्ध होती है। वे श्याम वर्ण सुन्दर तन, उर्ध्वरेता, ताल के समान विशाल आजानुबाहु, वृषभ के समान विशाल वक्षस्थल, विशालाकृति, लम्बाई और विशालता में सिंह के समान, विशाल, पृथुल एवं विस्तृत स्कंध वाले, यज्ञ परायण तथा पैर में चक्र और मत्स्य के चिह्नों से विभूषित रहते हैं। उनके हाथ शंख और चक्र के चिह्नों से विभूषित होते हैं। इस प्रकार वृद्धावस्था तथा रोगादि से रहित होकर वे पचासी सहस्र वर्ष का दीर्घ जीवन लाभ करने वाले होते हैं। उन चक्रवर्ती सम्राटों की आकाश, समुद्र, पाताल और पर्वतों में बे रोक टोक तथा विना किसी वाहन के ही गति (गमन) होती है। उस त्रेता युग में यज्ञ, तपस्या तथा दान—ये तीन प्रमुख धर्म कहे गये हैं। उसमें वर्णाश्रम विभागपूर्वक धर्म की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिए दण्ड नीति की प्रथा भी प्रचलित रहती है। उस युग के सभी लोग हृष्ट-पुष्ट रोग

रहित तथा सर्वदा सन्तुष्ट चित्त वाले होते हैं। उस में एक ही वेद के चार उपविभाग किये जाते हैं। उस युग के सर्वसाधारण जन तीन सहस्र वर्षों तक जीवन धारण करते हैं, वे पुत्रपौत्रादि से युक्त होकर क्रमानुसार मृत्यु प्राप्त करते हैं। त्रेता युग की यही गति तथा स्वभाव है, उसके संध्या काल में उसके स्वभाव का एक चरण रहता है, और सन्ध्यांश में सन्ध्या के स्वभाव का एक चरण रहता है, अर्थात् उत्तरोत्तर एक एक अंश मात्र में ही स्वभाव शेष रहते हैं। ॥३२-७७॥

श्री मात्स्य महापुराण में मन्वन्तर कीर्तन प्रसङ्ग में त्रेता स्वभाव वर्णन नामक
एक सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥१४२॥

एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय

ऋषियों ने पूछा—'सूतजी ! उस स्वायम्भुव मन्वन्तर में त्रेता के आरम्भ काल में इस लोक में यज्ञों की प्रवृत्ति किस प्रकार हुई ? उसे यथार्थ रूप से हम लोगों को बतलाइये। सन्ध्या के समेत सतयुग की समाप्ति होने पर त्रेता की प्रवृत्ति होती है, उस समय सुवृष्टि होने पर जब वसुधा तल में समस्त औषधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, ग्रामों तथा पुरों की प्रतिष्ठा हो जाती है, लोगों की वृत्तियाँ चलने लगती हैं, तब प्राचीन काल से प्रचलित मन्त्रों द्वारा वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा करके तथा संहिताओं को संक्षिप्त करके यज्ञ की वह्न प्रतिष्ठा किस प्रकार होती है ?' ऋषियों की ऐसी बातें सुनकर सूत ने कहा—आप लोगों ने अच्छी बात पूछी। सुनिये, इस विषय का वर्णन जैसा किया गया है वैसा मैं सुना रहा हूँ। ॥१-४॥

सूत ने कहा—ऋषि वृन्द ! उस अवसर पर विश्व के भोक्ता इन्द्र ने ऐहिक तथा पारलौकिक कर्मों में मन्त्रों को विनियुक्त कर सम्पूर्ण यज्ञीय साधनों से संयुक्त हो अन्य देवताओं को साथ ले सर्वप्रथम यज्ञ की प्रथा प्रचलित की थी। इस प्रकार प्रारम्भ किये गये उनके अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर सभी महर्षि गण उपस्थित हुए थे। उस यज्ञ के अनुष्ठान में सर्वप्रथम पुरोहित गण उपस्थित हुए थे। अग्नि में अनेक प्रकार की हवि की आहुति किये जाने पर सामगान करने वाले देवता गण स्वर समेत गायन कर रहे थे, यजुर्वेद जानने वाले होता धीमे स्वर से मन्त्रोच्चारण करते हुए स्थित थे। और यज्ञ भूमि के मध्य भाग में बलिदान के लिए पशुओं के समूह ला-लाकर स्नानादि से निवृत्त कराये जा चुके थे और यज्ञ के भोग को ग्रहण करने वाले विविध देवगण भी आवाहित किये जा चुके थे। जो शरीर के इन्द्रियात्मक देवता कहे गये हैं, वे ही यज्ञ के भागों के भोगनेवाले कहे जाते हैं। यज्ञों में लोग इन्हीं के उद्देश से यज्ञ करते हैं, ये देवतागण कल्प के आदिम काल में उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार इन्द्र के उक्त यज्ञ में जब यजुर्वेद के अध्येता तथा हवन करनेवाले ऋषिगण पशुबलि का उपक्रम कर रहे थे, उसी समय वहाँ पर बँधे हुए उन दीन पशुओं को देखकर कुछ ऋषि तथा महर्षिगण विश्वभोक्ता इन्द्र से यह पूछने लगे—'तुम्हारे इस यज्ञ की विधि किस प्रकार की है ? हिंसापूर्ण धर्म की इच्छा से तुम यह महान् अधर्म कर रहे हो। सुरश्रेष्ठ ! तुम्हारे

इस यज्ञ में पशुवध की यह प्रथा नवीन मालूम पड़ रही है। जान पड़ता है, इन पशुओं के हिंसा रूप अधर्म को तुम धर्म का विनाश करने के लिए कर रहे हो। यह धर्म नहीं है, अधर्म है। हिंसा कभी धर्म नहीं कही जाती। यदि आप सचमुच धर्म करने के इच्छुक हैं तो वेदविहित धर्म का अनुष्ठान कीजिये। सुरश्रेष्ठ! निष्पाप तथा विधियुक्त यज्ञ का अनुष्ठान करिये। त्रिवर्ग को प्रदान करनेवाले वेदोक्त यज्ञलक्षणों से युक्त जो यज्ञ हों, उनका ही अनुष्ठान आप करिये। इन्द्र! ऐसे ही महान् यज्ञों का अनुष्ठान प्राचीनकाल में स्वायम्भुव मनु भी कर चुके हैं।' इस प्रकार तत्त्वदर्शी मुनियों के कहने पर भी मान एवं अज्ञान के कारण इन्द्र ने उनकी बातों को स्वीकार नहीं किया। उन महर्षियों तथा इन्द्र के इस विवाद ने कि—यज्ञ स्थावर (अन्न फल आदि) अथवा जंगमों (पशुओं के बलिदान आदि) में से किससे किया जाय—उग्ररूप धारण कर लिया। परस्पर के विरोधी विवादों एवं तर्कों से खिन्नचित्त होकर उन शक्तिशाली महर्षियों ने इन्द्र से समझौता करके आकाशमण्डल में चरनेवाले वसु से इस विवाद के निर्णयार्थ पूछा। ॥६—१७॥

ऋषियों ने पूछा—परम बुद्धिमान् उत्तानपाद के पुत्र! राजन्! समर्थ वसु! आपने यज्ञ की विधि किस प्रकार की देखी है। उसे कृपया हम लोगों को बतला कर प्रकृत संशय को दूर कीजिये ॥१८॥

सूत ने कहा—राजा वसु ने महर्षियों की इस बात को सुन बल (उचित) तथा अबल (अनुचित) का कुछ भी विचार न कर वैदिक एवं शास्त्रसम्मत विधियों का स्मरण कर केवल यज्ञों के सिद्धान्तों की बातें कीं। उसने कहा—'विधिपूर्वक मंत्रों द्वारा प्रस्तुत किये गये यज्ञों में योग्य पदार्थों द्वारा आहुति करनी चाहिये, पशुओं की मांस से भी यज्ञ हो सकता है और मूल तथा फल से भी हो सकता है। मेरी जहाँ तक जानकारी है, अनुभव है, वहाँ तक यज्ञ का तो स्वभाव ही हिंसा से है। तारका आदि के निदर्शक तथा उग्र तपस्वी महर्षियों ने हिंसा को प्रतिपादित करनेवाले मंत्रों को संहिताओं में संगृहीत किया है। उसी प्रमाण के अधार पर मैं यह बात कह रहा हूँ। अतः यदि आप लोगों को मेरी बात बुरी लगे तो क्षमा कीजियेगा। ऋषिगण! यदि आप लोग अपने ही द्वारा कहे गए मन्त्रों तथा वाक्यों को प्रमाणभूत मानते हैं तो उसीके अनुकूल यज्ञ का अनुष्ठान करते जाइये, अन्यथा झूठ-मूठ की बातों से क्या फल है?' राजा वसु के इस प्रकार के उत्तर देने पर उन ऋषियों ने अपनी बुद्धि को आत्मा के साथ संयुक्त कर अवश्य घटित होने वाले होनहार को देख उस (राजा वसु) को आकाश मंडल से नीचे गिर जाने का शाप दे दिया। ऋषियों के कहते ही वह राजा रसातल को गिरने लगा। देखते-देखते क्षणभर में ही शाप के कारण आकाश में भ्रमण करनेवाला वह राजा रसातल को पहुँच गया। ऋषियों के उसी वाक्य से वह आकाश से गिरकर पृथ्वी मण्डल पर आ गया। मतभेदों को दूर करनेवाला राजा वसु आकाशगामी होकर भी तनिक से अपराध के कारण रसातल को पहुँच गया अतएव बहुत जाननेवाले विद्वान् पुरुष को भी अकेले कभी धार्मिक संशय में निर्णय करने का साहस नहीं करना चाहिये। अनेक धारावाले (बहुमुखी) इस धर्म की अत्यन्त सूक्ष्म तथा दुर्गमनीय गति है। इसलिए देवताओं ऋषियों तथा स्वायम्भुव मनु को छोड़ कर कोई भी धर्म के विषय में कोई निश्चय नहीं कर सकता कि ऐसा करना चाहिए और ऐसा नहीं करना चाहिये। अतएव प्राचीन काल

में जैसा कि ऋषियों ने कहा है, यज्ञों में हिंसा नहीं की जाती थी। करोड़ों ऋषिगण अपने तपोबल के प्रभाव से स्वर्ग की प्राप्ति करते थे। इसी कारण से महर्षिगण हिंसामय यज्ञ की प्रशंसा नहीं करते। वे परम तपस्वी ऋषिगण, भिक्षा वृत्ति द्वारा प्राप्त अन्न, मूल, फल, शाक, जल, पात्र आदि का यथाशक्ति दान करके स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित हुए हैं। संसार के किसी भी जीव के प्रति द्रोह की भावना न रखना, इन्द्रिय निग्रह, जीवों के ऊपर दयाभाव, शान्ति ब्रह्मचर्य, तपस्या, पवित्रता, करुणा, क्षमा, धैर्य—ये सब सद्गुण उस सनातनधर्म के मूल हैं, जो कठिनाई से प्राप्त करने योग्य होता है। यज्ञ द्रव्य तथा मंत्रों द्वारा सम्पन्न होता है और तपस्या सभी जीवों पर समानदृष्टि रखने से अर्जित की जा सकती है। अर्थात् यज्ञ तो द्रव्य मंत्रात्मक है और तपस्या समतात्मक है। यज्ञों से देवताओं की प्राप्ति होती है अर्थात् देवतागण प्रसन्न होते हैं, तपस्या से विराट् स्वरूप की प्राप्ति होती है, अर्थात् उस परम ब्रह्म की प्राप्ति होती है जो विराट स्वरूप है। कर्मों का त्याग कर देने से ब्रह्म की प्राप्ति होती है, वैराग्य से प्रकृति का लय होता है, तथा ज्ञान से कैवल्य की प्राप्ति होती है—ये पाँच गतियाँ कही गई हैं। इस प्रकार का बहुत बड़ा विवाद पूर्वकाल में यज्ञ की प्रथा के प्रचलित करने के अवसर पर स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवताओं तथा ऋषियों के बीच में हुआ था। उस समय यह देखकर कि यहाँ पर केवल बल द्वारा धर्म का हरण किया जा रहा है, राजा वसु की उन बातों का अनादर कर वे ऋषिगण जहाँ-जहाँ से आये थे वहाँ-वहाँ खिन्न मन होकर वापस लौट गये। यज्ञभूमि से ऋषियों के उठकर चले जाने के बाद भी देवताओं ने यज्ञ की क्रिया पूरी की। ऐसा सुना जाता है कि तपस्या करके सिद्धि प्राप्त करनेवाले ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि राजाओं ने अपनी तपस्या के बल पर स्वर्ग की प्राप्ति की है। प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेधा, अतिथि, वसु, सुधामा, विरजा, शंखपाद, राजस्, प्राचीनवर्हि, पर्जन्य, हविर्धाम आदि नृपतियों ने तथा इनके अतिरिक्त अन्य राजर्षियों तथा महात्माओं ने भी, जिनकी कीर्ति आज भी भूमण्डल पर छाई हुई है, केवल अपने तपोबल से स्वर्ग की प्राप्ति की है। इसीलिए तपस्या यज्ञ से सभी प्रकार अधिक महत्त्वपूर्ण मानी गई है। प्राचीन काल में ब्रह्मा ने तपोबल द्वारा ही इस समस्त सृष्टि का निर्माण किया था। इसलिए यज्ञ के द्वारा उस अक्षय पदार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती, जिसकी तपस्या द्वारा हो सकती है। तपस्या ही सब पुण्य कर्मों की जड़ है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में इस प्रकार से यज्ञ की प्रथा का प्रचलन हुआ था, तभी से यह यज्ञ प्रत्येक युगों के साथ होता चला आ रहा है। ॥१९-४२॥

श्री मात्स्य महापुराण में मन्वन्तर वर्णन प्रसंग में यज्ञारम्भ में देवर्षि संवाद नामक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४३॥

एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण ! अब इसके उपरान्त मैं द्वापर की विधि का वर्णन कर रहा हूँ। उस त्रेतायुग के क्षीण हो जाने पर द्वापर युग की प्रवृत्ति होती है। द्वापर युग के आदिम काल में प्रजाओं को त्रेतायुग के समान ही सिद्धि मिलती है। बाद में द्वापर के पूर्ण रूप से प्रवृत्त हो जाने पर, वह त्रेता की सिद्धि विनष्ट हो जाती है। इस प्रकार द्वापर युग के पूर्णतया प्रवृत्त हो जाने पर उन प्रजाओं में लोभ, धैर्य, वाणिज्य, युद्ध, सिद्धान्त का अनिश्चय, वर्णों का विनाश, आश्रम धर्म का उलट फेर, यात्रा, वध, दंड, मान, अहंकार, अक्षमाशीलता, पराक्रम, रजोगुण तथा तमोगुण का आधिक्य—ये सब बातें मुख्य रूप से पाई जाने लगती हैं। सब से प्रथम सतयुग में तो अधर्म का नाम भी नहीं रहता, त्रेतायुग में प्रजाओं में उसकी तनिक-सी प्रवृत्ति हो जाती है, द्वापर में तो बेचारा धर्म अधर्म के मारे परेशान होकर व्याकुल हो जाता है और कलियुग के आने पर तो वह एकदम नष्ट हो जाता है। इस द्वापर युग में सभी वर्णों के धर्म तथा चारों आश्रम एक दूसरे में मिल-जुल जाते हैं और श्रुतियों तथा स्मृतियों में दुविधा का भाव उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार श्रुतियों और स्मृतियों में द्वैध उत्पन्न हो जाने पर किसी सिद्धान्त का निश्चय नहीं होता। अनिश्चय के कारण धर्म की वास्तविक स्थिति का लोप हो जाता है और धर्म के तत्त्व के विनष्ट हो जाने पर बुद्धि में भी भेद पड़ जाता है। दृष्टि के विभ्रम हो जाने के कारण लोग एक दूसरे के विपरीत निश्चय करने लगते हैं। दृष्टि विभ्रम होने के कारण ही धर्म व्याकुल होने लगता है। इस द्वापर युग में ऋषिगण एक वेद के चार चरणों को लोगों की आयु के स्वल्प होने के कारण बारम्बार संक्षेप करके अनेक भागों में विभक्त कर देते हैं। द्वापर आदि युगों में एक ही वेद को दृष्टि भ्रम होने के कारण ऋषिपुत्र गण चार भागों में विस्तृत करके अलग-अलग कर देते हैं। वे ऋषि पुत्र ब्राह्मण भाग के नवीन विन्यास तथा स्वर के क्रमों का विपर्यय करके ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद की संहिताओं को संक्षिप्त कर देते हैं। किन्हीं-किन्हीं स्थलों पर भिन्न दृष्टि वाले महर्षि वृन्द सामान्य अर्थ तथा विकृत अर्थ को लगाने के कारण ब्राह्मण, कल्पसूत्र, भाष्यविद्या आदि के तत्त्वों को भी ठीक-ठीक नहीं समझ सकते। इस प्रकार तो कुछ अंशों को ठीक और कुछ-कुछ को उलट-पुलट कर उन्होंने रख दिया है। इस प्रकार अपने-अपने दर्शनोंके अनुकूल भिन्न-भिन्न अर्थ लगाने वाले महर्षियों द्वारा द्वापर युग में वेदों का विभाग हो जाता है। अध्वर्यु प्राचीन काल में एक था, उसको पुनः दो भागों में उन लोगों ने विभक्त किया। इस प्रकार सामान्य तथा विरोधी अर्थों का आश्रय लेकर सामान्य धर्म को अपने-अपने दर्शनों द्वारा उन्होंने व्याकुल (अनिश्चित-सा) कर दिया। उन भिन्न अर्थ करने वालों ने अध्वर्यु (यज्ञभाग) को तो विशेष कर के व्याकुल कर दिया है, उसी प्रकार अथर्व वेद तथा सामवेद के मन्त्रों को भी यथार्थ अर्थ को नष्ट करने वाले अपने मनमानी अर्थों द्वारा व्याकुल कर दिया है। इस प्रकार प्रत्येक द्वापर युग में भिन्न-भिन्न दृष्टि वाले ऋषियों द्वारा वेदों का यथार्थ अर्थ भ्रष्ट कर दिया जाता है और अर्थ में व्यतिक्रम हो जाने पर कलियुग में तो निश्चय ही वे नष्ट हो जाते हैं। द्वापर

युग में वेदों के अर्थों के विपर्यय हो जाने से सामान्य लोगों में भी यथार्थदृष्टि का लोप हो जाता है। लोगों की मृत्यु होने लगती है। अनेक प्रकार के उपद्रव होने लगते हैं। लोग मनसा, वाचा, कर्मणा केवल दुःख ही दुःख का अनुभव करते हैं। पीछे चलकर उन्हें अपने किये धरे पर पश्चात्ताप होता है, जिससे दुःख से छुटकारा पाने का उपाय सोचने लगते हैं। उस दुःखनाश के उपायों को सोचते समय उन्हें संसार से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और तब वैराग्य में अपने दोषों का दर्शन होता है, और दोषों के देखने से उनमें ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ॥१-२०॥

इस प्रकार मनुष्यों में उन मेधावी ऋषियों के वंश में स्वायम्भुव मन्वन्तर के द्वापर युग में शास्त्रों के अहितकारी दुर्बुद्धि लोग उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद में विकल्प (दुविधा), वेदों के प्रमुख अंगों में विकल्प, अर्थशास्त्र में विकल्प, न्यायशास्त्र में विकल्प, व्याकरण सूत्र भाष्य विद्या आदि में भी विकल्प हो जाता है। स्मृतियों तथा अन्यान्य शास्त्रों के भिन्न-भिन्न अंग प्रतिष्ठापित हो जाते हैं। द्वापर युग में मनुष्यों में अनेक ऐसे मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे मन, वचन तथा कर्म द्वारा बड़ी कठिनाई से लोगों की जीविका सिद्ध होती है। उस द्वापर में सभी जीवों का जीवन बड़े क्लेश से व्यतीत होता कहा जाता है। जैसा कि ऊपर भी कहा गया है, जनता में लोभ, अधैर्य, वाणिज्य, व्यवसाय, युद्ध, किसी सिद्धान्त तत्त्व का अनिश्चय, वेदों तथा शास्त्रों का मनमानी ढंग से संस्करण, वर्णसंकरता, वर्णाश्रम धर्म का विध्वंस, काम तथा द्वेष की भावना आदि दुर्गुणों का उदय हो जाता है। उस समय मनुष्य की अधिक से अधिक आयु दो सहस्र वर्ष की होने लगती है। द्वापर युग के व्यतीत हो जाने पर उसकी सन्ध्या गुण से हीन होकर केवल चतुर्थ चरण में उपस्थित होती है, उसमें द्वापर युग का धर्म एक चौथाई भाग में शेष रहता है। इस प्रकार मैं द्वापर युग का वर्णन कर चुका। अब कलियुग का वर्णन सुनिये। द्वापर के अंशमात्र शेष रह जाने पर कलियुग की प्रवृत्ति होती है। जीवहिंसा, चोरी, मिथ्या बोलना, माया तथा दम्भ—कलियुग में ये सब दुर्गुण तो तपस्वियों में भी हो जाते हैं। उसका यही स्वभाव ही है। अपने इस स्वभाव द्वारा वह समस्त प्रजा को इन्हीं दुर्गुणों से युक्त कर देता है। उसका एकमात्र अविकल धर्म यही है। यथार्थ धर्म का तो उसमें एक दम लोप हो जाता है। मन वचन तथा कर्म द्वारा अति प्रयत्न करने पर भी जीविका सिद्ध होगी या नहीं—इसमें सन्देह बना ही रहता है। उस कलियुग में महामारी आदि रोग फैलते हैं, निरन्तर क्षुधा तथा अवर्षण का भय लगा रहता है, देशों का उलट-फेर तो हुआ ही करता है। घोर कलियुग के प्रवृत्त हो जाने पर देशों की स्थिति का कोई प्रमाण नहीं रह जाता, चाहे जहाँ से वह उलट कर दूसरी सीमा में निबद्ध कर दिया जाता है। कोई गर्भ ही में मर रहा है तो कोई भरी जवानी में शरीर त्याग रहा है, कोई वृद्धावस्था में तो कोई कुमारावस्था में—इस प्रकार कलियुग में लोग अकाल मृत्यु का शिकार होते हैं। उस कलियुग में अल्प तेजस्वी, थोड़े बल वाले, पाप परायण, महाक्रोधी, अधार्मिक, असत्य बोलनेवाले तथा दूसरे का माल हथियाने में प्रवीण लोग उत्पन्न होते हैं। अनिष्ट के इच्छुक, अपढ़, दुराचारी, वेद शास्त्रों को न जानने वाले ब्राह्मणों के कर्मों के दोष से कलियुग में लोगों को सभी वस्तुओं का भय लगा रहता है। हिंसा, मिथ्या अभिमान, ईर्ष्या, क्रोध, निन्दा, असहनशीलता, अधैर्य—

—ये सब दुर्गुण सभी लोगों में पाये जाते हैं। कलियुग में लोभ और मोह तो चारों ओर से लोगों को घेर लेते हैं। दूसरों की उन्नति देखकर हृदय में जलन उत्पन्न होने की भावना तो बहुत बढ़ जाती है। उस कलियुग के उपस्थित हो जाने पर ब्राह्मण लोग न तो वेदों को पढ़ते हैं और न यज्ञादि ही करते हैं। जिससे वे प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार वैश्यों के साथ क्षत्रिय भी अपने कर्मों से च्युत होकर नष्ट (प्रभाव रहित) हो जाते हैं। शूद्र लोग मंत्रों के ज्ञाता बन जाते हैं, उनका सम्बन्ध ब्राह्मणों के साथ होने लगता है। और ब्राह्मणों के साथ शैय्या तथा आसन पर बैठकर भोजन करने लगते हैं। राजा लोग अधिकांश में शूद्रयोनि के होते हैं और उनकी प्रवृत्ति पाषण्ड में अधिक रहती है। शूद्र लोग गेरुआ वस्त्र धारण कर बिना काँछ बाँधे वस्त्र पहने हुए हाथ में नारियल का कपाल धारण किये हुए संन्यासी के वेश में इधर-उधर घूमते हैं। कोई देवताओं की पूजा करनेवाला है, तो कोई धर्म को दूषित करनेवाला है, कोई देवताओं के समान शुद्ध आचरण करनेवाला है तो कोई जीविका के लिए वेश बनाकर घूमनेवाला है—इस प्रकार के लोग उस कलियुग में उत्पन्न होने लगते हैं। धर्म एवं अर्थ की मर्यादा को जाननेवाले बनकर शूद्र लोग वेदों का अध्ययन करते हैं। शूद्र योनि में उत्पन्न राजा लोग अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। उस समय लोग स्त्री, बालक तथा गौ की हत्या करके तथा आपस में एक दूसरे का विनाश कर के अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। देश में चारों ओर कष्ट की अधिकता हो जाती है और लोगों के अल्पायु होने के कारण तथा रोगों की बाढ़ से देश उजड़ जाते हैं। कलियुग में मनुष्यों की स्वाभाविक अभिरुचि अधर्म की ओर तथा तामसिक विचारों की ओर हो जाती है—यह बात सर्वप्रसिद्ध है। गर्भ की हत्या होती है। इन्हीं सब कारणों से कलियुग में लोगों की आयु बल तथा रूप का विनाश हो जाता है। इसमें दुःख सहकर जो लोग बहुत दिन तक जीते हैं, वे अधिक से अधिक सौ वर्ष तक। उस कलियुग में वे सम्पूर्ण वेद विद्यमान रहकर भी नहीं रह जाते, और एकमात्र धर्म के कारण यज्ञों का भी विनाश हो जाता है। यह तो कलियुग की अवस्था का वर्णन किया गया है, उसकी संध्या तथा संध्यांश का वर्णन सुनिये। प्रत्येक युग में उनकी सिद्धियों के तीन चौथाई अंश नष्ट हो जाते हैं। युगधर्म का केवल चतुर्थांश अपनी संध्या में शेष रह जाता है और संध्या का चतुर्थांश धर्म संध्यांश में शेष रह जाता है। इस प्रकार कलियुग के अन्तिम समय में संन्ध्यांश के लगने पर उन अधर्मियों को ठीक करनेवाला महर्षि भृगु के कुल में चन्द्रमा के गौत्र से प्रमति नामक एक राजा उत्पन्न होता है। मैं स्वायम्भुव मन्वन्तर में कलियुग के संध्यांश का यह वृत्तान्त बतला रहा हूँ। वह प्रमति नामक राजा स्वयं अस्त्र धारण कर हाथी, घोड़ा तथा रथ आदि से सुसज्जित सेना को साथ लेकर सम्पूर्ण पृथ्वी-मंडल पर तीस वर्षों तक भ्रमण करता है, उसके साथ हथियार धारण किये हुए लाखों ब्राह्मण भी चलते हैं। वह महान् प्रतापशाली राजा सारे म्लेच्छों को मार डालता है और चारों ओर के शूद्र वंशीय राजाओं का भी उन्मूलन कर देता है। जिससे सारे अधर्म तथा पाषण्ड भी निःशेष हो जाते हैं। उस समय जितने भी अधार्मिक राजा गण पाये जाते हैं उन सब का वह विनाश कर देता है। उत्तर देश के रहने वाले, मध्य देश के रहने वाले, पर्वतीय, पूर्व दिशा के रहने वाले, पश्चिम दिशा के रहने वाले, विन्ध्या-

चल के पृष्ठ भाग तथा अपर भाग के रहने वाले, द्रविड़ तथा सिंहल द्वीप में रहने वालों को लेकर जितने भी दक्षिण दिशा निवासी होते हैं उनको, तथा गांधार देश के, पारददेश के, पह्लव देश के, यवन, शक, तुषार, वर्बर श्वेत, हलिक, दरद, खस, लंपक, अन्धक तथा चोर जाति वालों को वह शूद्रों का शत्रु परम बलवान् हाथ में चक्र धारण कर विनष्ट कर देता है और संसार के समस्त पापात्मा जीवों को खदेड़ कर समस्त पृथ्वी मण्डल पर भ्रमण करता है। वह परम पराक्रमी प्रमति इस मर्त्यलोक में राजा के वंश में उत्पन्न होता है और जन्म के पूर्व विष्णु रूप में था। पूर्व कलियुग में वह बलवान् चन्द्रमा का पुत्र था। बत्तीस वर्ष की अवस्था हो जाने पर उसने बीस वर्षों तक घूम घूम कर पृथ्वी के समस्त पापी मनुष्यों को चारों ओर से विनष्ट कर दिया। अपने इस क्रूर कर्म द्वारा उसने समस्त पृथ्वी को बीज रूप में शेष कर छोड़ दिया। (अर्थात् निर्बीज नहीं किया, जिससे पुनः सृष्टिविस्तार हो सके) व परस्पर कारणी भूत आकस्मिक काल की महिमा से वह विशाल सेना प्रमति के साथ गंगा तथा यमुना के मध्य भाग में समाधि द्वारा सिद्धि को प्राप्त हुई। अन्यायी राजाओं का विनाशकर क्रूर कर्म करने वाले उन सबों के स्वयं विनष्ट हो जाने पर युग के अन्तिम अवसर पर संध्यांश के समय जब थोड़े परिमाण में पृथ्वी पर प्रजा शेष रह गई, तब भी कहीं कहीं पर कुछ लोग ऐसे बच गये थे जो अपनी वस्तु कभी किसी को नहीं देते थे, तथा दूसरे की वस्तु को प्राप्त करने के लिए लालायित रहते थे। समूह में एकत्र होकर वे एक दूसरे का संहार करते थे और एक दूसरे को लूटते खसोटते थे। राजा से रहित उस युग के संध्यांश के व्यतीत होने के अवसर पर सारी प्रजा परस्पर भय से कातर हो चली थी। व्याकुल होकर जान ले लेकर घर छोड़कर भागती फिरती थी। लोग देवताओं का भरोसा छोड़कर अपने-अपने प्राणों की रक्षा की चिन्ता में दुःखी थे, डाकुओं की निर्दयता से अत्यन्त भयभीत थे। श्रुतियों तथा स्मृतियों द्वारा अनुमोदित धर्म के विनष्ट हो जाने से वे सब कामी तथा क्रोधी हो गये थे, लज्जा स्नेह तथा आनन्द से रहित होकर मर्यादा रहित हो चुके थे। धर्म के विनष्ट हो जाने से वे लोग पच्चीस वर्षों की अल्पायु तक जीवित रहते थे। अतः स्त्री तथा पुत्रादि को छोड़कर शोक विषाद से वे व्याकुल रहने लगे। अनावृष्टि के कारण जीविका के अभाव में परम दुःख झेलने लगे और अपने-अपने आश्रय स्थानों को छोड़कर कुछ तो पहाड़ियों में रहने लगे, और कुछ नदियों, समुद्रों, अन्तरीपों तथा पर्वतों में चीर तथा मृगचर्म लपेटे हुए अकर्मण्य होकर विना किसी साधन-सम्बल के घूमने लगे। इस प्रकार अल्प परिमाण में शेष वह सारी प्रजा वर्णाश्रम धर्म से च्युत होकर घोर संकरवर्ण हो गई और अनेक प्रकार का कष्ट झेलने लगी। इसी प्रकार सभी जीव जन्तु भी क्षुधा से अतिशय पीड़ित होकर उन्हीं पर्वतीय आदि देशों में चक्र की तरह घूम फिर कर आश्रय प्राप्त करने लगे। ॥२१-७४॥

सारी प्रजा अन्न-कष्ट से अति दुखित होकर मांस आहार करने में प्रवृत्त हो गयी और मृग, शूकर, वृषभ तथा अन्यान्य जंगली पशुओं को खा-खाकर जीवन बिताने लगी। भक्ष्य तथा अभक्ष्य सभी जीवों को वे सभी लोग खाने लगे। जो लोग समुद्र तट पर ठहरे हुए थे तथा नदियों के किनारों पर निवास

कर रहे थे, वे सब आहारक्रिया मछली मारकर करने लगे। इस प्रकार अभक्ष्य आहार के दोष से सारी प्रजा एक वर्ण की हो गई। जिस प्रकार सतयुग के प्रारम्भ में एक जाति थी, उसी प्रकार कलियुग के अन्त समय में सारी प्रजा एकमात्र शूद्र जाति में परिणत हो गई। इस प्रकार जीविकार्जन करते हुए उन लोगों के देवताओं के एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये। मनुष्यों के वर्षों में वह संख्या छत्तीस सहस्र ३६००० वर्षों की होती है। इतने लम्बे समय में पक्षी, पशु, मत्स्य आदि जलीय जन्तु उन क्षुधापीड़ित मांसाहारी मनुष्यों द्वारा चारों ओर से खोज-खोजकर मारकर खा डाले गये। जब इस प्रकार संध्यांश के पूर्ण रूप से प्रवृत्त हो जाने पर सभी पशु पक्षी तथा मत्स्यादि जीव उन मांसाहारियों द्वारा निःशेष कर दिये गये, तब सारी प्रजा क्षुधा से पीड़ित होकर कन्द और मूल खोद-खोदकर खाने लगी। उस समय सभी लोग फल और मूल का भोजन करने लगे। घर-द्वार छोड़कर वृक्ष के बल्कलों को धारण किये हुए पृथ्वी पर शयन करने लगे। स्त्री तथा परिवारवर्ग से हीन होकर धन-धान्यादि से भी पूर्णतया रहित हो गये। इस प्रकार उस समय अति अल्प परिमाण में बची हुई प्रजा विनाश को प्राप्त हो गयी और उनमें से जो थोड़े बची वह आहार मिलने के कारण वृद्धि को प्राप्त हुई। इस प्रकार संध्या तथा संध्यांश समेत देवताओं के सौ वर्ष के बीत जाने पर कलियुग निःशेष हो जाता है। उस समय अत्यल्प परिमाण में स्त्री तथा पुत्रादि जब शेष रह गये तब उन्हीं के द्वारा परस्पर मैथुनादि कर्मों से पुर्ववत् संतानोत्पत्ति हुई और उनके पहलेवाली सारी प्रजा मृत्यु को प्राप्त हो गई। उन नवीन उत्पन्न हुई संततियों के साथ ही सतयुग का आगमन तथा प्रारम्भ हुआ, जैसे जीवात्मा के शरीर स्वर्ग तथा नरक दोनों का उपभोग उसी शरीर द्वारा करते हैं उसी प्रकार सतयुग की वह आदिम संतति, कलियुग का क्षय तथा सतयुग का प्रारम्भ दोनों का अनुभव प्राप्त करती है। आत्मा की साम्यावस्था के विचार से प्रजा में सांसारिक विषयों से निर्वेद उत्पन्न होकर ज्ञान उत्पन्न होता है तथा ज्ञानोत्पत्ति से आत्मा रूप ब्रह्म का सम्यक ज्ञान होता है और उस आत्मज्ञान से धर्मशीलता की वृद्धि होती है। इस प्रकार कलियुग के अवसान में शेष बची हुई उस प्रजा में नियति के माहात्म्य से सतयुग की प्रवृत्ति हो जाती है। व्यतीत हुए तथा आने वाले सभी मन्वन्तरों में जिस प्रकार का फल मिलता है, वैसा फल उन्हें भी प्राप्त होने लगता है। मैंने युगों के स्वभावों का वर्णन संक्षेप रूप में किया है। अब पुनःस्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा को नमस्कार करके क्रमशः विस्तारपूर्वक सतयुग की प्रवृत्ति का वर्णन कर रहा हूँ। इस प्रकार कलियुग के बीत जाने पर उन प्रजाओं में सतयुग की प्रजा उत्पन्न होती है। सतयुग में वर्तमान उन क्रियाशील संततियों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रादि जातियों की बीज रक्षा के लिए जो समस्त सिद्ध लोग कलियुग में प्रच्छन्न रूप से विचरण करते थे, वे सब तथा सातों ऋषिगण उस समय मिलकर उस अभिनव प्रवृत्त सतयुग की प्रजाओं को धर्मोपदेशादि करते हैं। श्रुति स्मृति द्वारा अनुमोदित धर्म का उपदेश करते हुए प्रत्येक सतयुग में वे उपस्थित रहते हैं। वे ऋषिगण मन्वन्तर पर्यन्त अवस्थित रहते हैं। जिस प्रकार दावाग्नि द्वारा तृणादि के समूह एक दम जलकर भस्म हो जाते हैं और फिर उन्हीं के मूलों में से नये प्रोह निकलकर वन के रूप में परिणत हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार

एक युग की समाप्ति हो जाने पर दूसरे युग के आरम्भ में प्रजा की वृद्धि होती है और मन्वंतरों के विनाश काल तक वह अविच्छिन्न रूप से वर्तमान रहती है। सुख, आयु, बल, रूप, धर्म, अर्थ, काम—ये सब एक युग की अपेक्षा अगले युग में तीन अंशों से हीन हो जाते हैं। ऋषिगण! मैंने यह युग की प्रतिसंधि तुम लोगों को बतलाई है। चारों युगों के सम्बन्ध में यही नियम है। इन चारों युगों की जब इकहत्तर चौकड़ी समाप्त होती है, तब मनु का परिवर्तन होता है। एक सृष्टि में जिस प्रकार का व्यवहार और जैसी प्रजा की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है वैसा ही व्यवहार तथा उत्पत्ति अन्य युगों में भी होती है। जैसी सृष्टि रचना एक युग की है वैसी ही चौदहों मन्वन्तरों के प्रत्येक युगों में होती है। प्रत्येक युगों में आसुरी, यातुधानी, पैशाची, यक्ष, तथा राक्षसी —इन सब प्रजाओं की उत्पत्ति होती है, उन्हें सुनो। कल्प के अनुसार युगों के अनुरूप लक्षणोंवाली संतानें उत्पन्न होती हैं। युगों के स्वभाव से उन सभी मन्वन्तरों का भी परिवर्तन होता है। यह जीवात्मा, सतत विनाश एवं उत्थान के परिवर्तन में लगा रहकर क्षणमात्र भी एक अवस्था में स्थिर नहीं रहता। तुम लोगों को इस प्रकार युगों के स्वभाव के विषय में मैं काफी बतला चुका, अब इन कल्पों में जितने मन्वन्तर होते हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। ॥७५-१०७॥

श्री मात्स्य महापुराण में मन्वन्तर वर्णन प्रसंग में युग व्यवहार वर्णन नामक
एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४४॥

एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय

सूत ने कहा —ऋषिगण! प्रत्येक कल्पों में व्यतीत एवं भविष्य में आनेवाले जो चौदह मन्वन्तर हैं उनकी स्थिति तथा घटनाएँ युग-युग में जिस प्रकार की होती है उनका क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ, और यह भी बतला रहा हूँ कि उस युग में प्रजाओं की उत्पत्ति किस प्रकार होती है? तथा लोगों का कितना जीवन होता है? इन सभी मन्वन्तरों में कुछ लोग पूरे युग भर जीवित रहते हैं तथा कुछ न्यून काल तक जीवित रहते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी तथा स्थावर वृक्ष आदि सभी अपने अपने युग के स्वभाव के अनुकूल जीवित रहते हैं। चौदहों मन्वन्तरों में ऐसा ही होता है अर्थात् युग धर्म के अनुकूल सभी जीवधारियों की आयु होती है। कलियुग में पञ्च महाभूतों की तथा आयु की अनिश्चितता देखकर मनुष्य की अधिक से अधिक सौ वर्ष की आयु होती है—ऐसा कहा जाता है। सतयुग में देवता, राक्षस, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व तथा राक्षस—ये सभी ऊँचाई में बराबर क़दवाले होते हैं। उनकी ऊँचाई छानबे ९६ अंगुल की होती है और आठ विशेष देवयोनि में उत्पन्न होनेवालों की ऊँचाई नव अंगुल (?) की होती है। यह उनके स्वाभाविक शरीर का प्रमाण कहा जाता है। इस मर्त्यलोक में युग संधि में उत्पन्न होनेवाले मनुष्यों देवताओं तथा असुरों की लंबाई के प्रमाण क्रमशः उनचास अंगुल का होता है वा सात-सात अंगुल का (?) कहा जाता है। कलियुग में उनकी लम्बाई आज कल के मान से चौरासी अंगुलों

की होती है। पाद तल से लेकर मस्तक पर्यन्त जो व्यक्ति नवताल प्रमाण का होता है, जिसके बाहुदंड घुटने तक विस्तृत रहते हैं, वह देवताओं द्वारा पूजित होता है। प्रत्येक युगों में गौ, हस्ती तथा भैंस और स्थावर जीवों की ऊँचाई तथा लम्बाई में ह्रास तथा वृद्धि इसी क्रम से जान लेनी चाहिये। नीचे से लेकर डील तक पशु की ऊँचाई छिहत्तर अंगुलों की होती है। हाथियों की ऊँचाई आठ सौ ? अथवा एक सौ आठ अंगुलों (?) की होती है। अधिक से अधिक एक सहस्र बानबे १०९२ अंगुल की ऊँचाई वृक्षों की कही गई है। मानव शरीर की स्थिति जिस प्रकार की कही गयी है, वैसी ही दोनों के वंश की एकता के देखने से देवताओं के शरीर की भी स्थिति समझनी चाहिये। केवल देवताओं का शरीर अत्यन्त निर्मलबुद्धि से संयुक्त रहता है——यही विशेषता है। मानवशरीर उतनी बुद्धि से संयुक्त नहीं रहता। देवताओं तथा मानवों के शरीर में एवं भाव में जो मुख्य अन्तर है वह इतना ही है। पशुओं, पक्षियों तथा सभी स्थावर जीवों के शरीर यज्ञ की क्रिया में उपभोग के लिये विहित हैं। गौ, बकरा, अश्व, हाथी, पक्षी तथा मृग ——ये सभी जीव क्रमानुसार देवताओं की पशु मूर्तियाँ हैं और देवताओं के उपभोग के लिये उनका उपयोग हैं। उन-उन भोक्ता देवताओं के रूपों के अनुरूप प्रमाणवाले इन स्थावर तथा जंगम वृक्ष पशु आदि की मूर्तियाँ होती हैं। देवता गण उनके मनोज्ञ उपभोगों द्वारा सुख की प्राप्ति करते हैं। ॥१-१८॥

अब मैं सन्त तथा साधु लोगों का वर्णन कर रहा हूँ। श्रुतियों के शब्दसमूह तथा ब्राह्मण ये दोनों भी देवताओं की पशुमूर्तियाँ हैं। इनकी अन्तरात्मा में यतः ब्रह्म की स्थिति रहती है, अतः सन्त कहे जाते हैं। साधारण तथा विशेष धर्मों में सर्वत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—ये सभी श्रुति तथा स्मृतियों में कहे गये धर्मों के अनुकूल आचरण करते हैं। जो लोग वर्णाश्रम व्यवस्था में रहते हैं तथा जिनके सुख का अन्तिम परिणाम स्वर्गीय सुख की प्राप्ति है उनके द्वारा आचरित श्रुतियों तथा स्मृतियों में कहा हुआ धर्म ज्ञानधर्म कहलाता है। गुरु का कल्याण करनेवाले, तथा दिव्य सिद्धियों की प्राप्ति में निरत ब्रह्मचारी को साधु कहते हैं। सभी आश्रमों के कल्याण के आदि कारण होने से तथा स्वयं साधना में निरत रहने से गृहस्थ भी साधु कहा जाता है। जंगल में जाकर तपश्चर्या करनेवाले वैखानस (वानप्रस्थी) को भी साधु कहते हैं। योगसाधना में निरत रहने के कारण संन्यासी को भी साधु कहते हैं। यह धर्म का शब्द क्रियात्मक धर्म की गति में रहनेवाला कहा गया है। प्रभु ने कल्याण एवं अकल्याण देनेवाले नियमों को ही धर्म तथा अधर्म नाम से कहा है। किन्तु देवता, पितर, ऋषि तथा श्रेष्ठ मनुष्य——ये सब, 'यह धर्म है, यह धर्म नहीं है'——इस प्रकार की स्वीकृति मौन धारण कर देते हैं। धृञ् धातु धारण करने तथा महत्त्व के अर्थ में है, अतः उससे निष्पन्न धर्म शब्द भी धारण करने अथवा महत्त्व के अर्थ में प्रयुक्त होता है। आचार्य लोग कल्याण तथा इष्ट के प्राप्त करानेवाले उस धर्म का उपदेश करते हैं, और जो अनिष्ट का प्राप्त करानेवाला अधर्म है, उसका उपदेश नहीं करते। अवस्था में वृद्ध, निर्लोभ, आत्मज्ञानी, अदाम्भिक, अति विनम्र तथा मृदु स्वभावशील को आचार्य कहते हैं। धर्म के तत्त्वों को जाननेवाले ब्राह्मणों द्वारा किया हुआ श्रुति तथा स्मृति द्वारा अनुमोदित

कर्म ही धर्म कहा जाता है। स्त्री तथा अग्निहोत्र से सम्बन्ध और यज्ञ का अनुष्ठान—यह श्रौत धर्म का लक्षण है। यम, नियम तथा वर्णाश्रम धर्म के अनुकूल आचार-व्यवहार—इनको स्मार्तधर्म कहते हैं। पूर्वकाल में सातों महर्षियों ने पूर्व कल्पीय महर्षियों से सुनकर इस धर्म का उपदेश जगत्कल्याण के लिये किया था, अतःवह श्रौत धर्म कहा जाता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद—ये तीनों वेद ब्रह्मा के अंगभूत हैं। विगत मन्वन्तरों में किये जानेवाले धर्मों का स्मरण कर मनु ने उनका उपदेश किया है। इस कारण वर्णाश्रम के विभाग के साथ उस धर्म का नाम स्मार्त धर्म कहा जाता है। इस प्रकार के वे दोनों धर्म—श्रौत तथा स्मार्त—शिष्टाचार भी कहे जाते हैं। शिष् धातु से निष्ठा (क्त) प्रत्यय के संयोग होने पर शिष्ट शब्द की सिद्धि होती है। प्रत्येक मन्वन्तर में, धर्म के मूल तत्त्वों को जाननेवाले जो लोग इस पृथ्वी तल पर विद्यमान थे, उन्हें शिष्ट कहा जाता है। लोक के मंगल करनेवाले तथा सृष्टि का विस्तार करनेवाले सातो महर्षि तथा मनु—इस पृथ्वी तल पर धर्मोपदेश के लिए उपस्थित रहते हैं, अतः उन्हें ही शिष्ट कहते हैं। प्रत्येक युगों में अपने समुचित मार्ग से विचलित होता हुआ धर्म उन्हीं शिष्टों द्वारा पुनः स्थापित किया जाता है। प्रजा के वर्णाश्रम धर्म की रक्षा की इच्छा से दूसरे मन्वन्तर के उपस्थित होने पर तीनों वेद, वार्ता तथा दण्डनीति का वे शिष्ट लोग पुनः आचरण कर प्रतिष्ठा करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक युग में पूर्वजों द्वारा अभिमत होने के कारण वह शिष्टाचार चिर सनातन है। दान, सत्य, तपस्या, अहिंसा, विद्या, यज्ञ, पूजन तथा इन्द्रियनिग्रह—ये आठ उत्तम चरित्र शिष्टाचार के लक्षण के अन्तर्गत हैं। यतः सभी मन्वन्तरों में सातों महर्षि तथा मनु—जो सभी शिष्ट माने गये हैं—इन नियमों का पालन करते हैं, अतः इन्हें शिष्टाचार कहते हैं। श्रवण किये जाने से श्रुति सम्बन्धी धर्म को श्रौत तथा स्मरण किये जाने से स्मृति प्रतिपादित धर्म को स्मार्त जानना चाहिये। श्रौत धर्म यज्ञ तथा वेदोक्त नियम वाला है तथा स्मार्त धर्म वर्णाश्रम के आचार सम्बन्धी नियमों से युक्त है। अब धर्म के प्रत्येक अंगों का लक्षण बतला रहा हूँ। अपने द्वारा देखी गयी तथा अनुभव की गयी किसी ऐसी बात को, जिसके विषय में पूर्वकाल से वैसी ही प्रसिद्धि चली आती हो, यथातथ्य प्रकट करने को सत्य कहा जाता है। सत्य, ब्रह्मचर्य, तपश्चर्या, मौनावलम्बन, तथा निराहार रहना—ये तपस्या के अत्यन्त कठिन तथा दुर्गम अंगभूत लक्षण हैं। पशुओं—हवनीय वस्तुओं—ऋगवेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के मन्त्रों और पुरोहितों की दक्षिणा के संयोग को यज्ञ कहते हैं। सभी जीवों के साथ हित तथा शुभ के लिए अपने ही समान व्यवहार करना, सर्वदा प्रसन्न मन रहना, अपमानित तथा पीड़ित होने पर भी दूसरों को अपमानित तथा पीड़ित न करना तथा मन, वाणी और शरीर तीनों से सहन करना क्षमा है। स्वामी द्वारा रखवाली में नियुक्त की गई तथा शीघ्रता वा भूल से छूटी हुई परकीय वस्तु को न लेना निर्लोभिता है। रति कर्म का अव्यवहार, कथन तथा चिंतन दोनों उपायों द्वारा मैथुन की चिन्ता की निवृत्ति, तथा ब्रह्मचर्य धारण ये शम के लक्षण हैं। अपने तथा दूसरे—किसी के लिए भी इन्द्रियों का विषयों में प्रवृत्त न होना दम कहलाता है। पाँचों कर्मेन्द्रियों के विषय तथा आठों कारणों में प्रतिहत होकर

भी क्रुद्ध न होना जितात्मा का लक्षण है। अत्यन्त मनोवाञ्छित जो जो द्रव्य हैं और जिनकी प्राप्ति न्याय के द्वारा हुई है उन्हें गुणवान् व्यक्तियों को देना—यह दान का लक्षण है। श्रुतियों तथा स्मृतियों द्वारा अनुमोदित वर्णाश्रमात्मक तथा शिष्टाचार द्वारा समृद्ध धर्म साधु पुरुषों से सम्माननीय होता है। अनिष्ट के प्रति द्वेष का अभाव, इष्ट के प्रति सम्मान अथवा अभिनन्दन का न प्रकट करना तथा प्रेम, दुःख तथा विषाद से निवृत्ति (मुक्ति)—यह विरक्तता का लक्षण है। किये गये कर्मों का न किये गये कर्मों के साथ त्याग करना—संन्यास कहलाता है, अर्थात् कृत एवं अकृत—दोनों प्रकार के कर्मों का त्याग करना ही संन्यास है। कुशल (कल्याण) तथा अकुशल (अकल्याण) दोनों का विनाश ही न्यास कहलाता है अर्थात् शुभाशुभ कर्मों को कर उनके शुभाशुभ फल की कामना न करना ही संन्यास है अव्यक्त से लेकर विशेष तत्त्व तक सभी पदार्थों को यथार्थरूप में जानकर जो सब से निवृत्त भी हो जाता है, वही ज्ञानी है। धर्म के प्रत्येक अंगों के यही लक्षण कहे गये हैं। पूर्व काल में स्वायम्भुव मन्वन्तर में संसार के सभी तत्त्वों के जानने वाले मुनियों ने उनके यही लक्षण बतलाये हैं। अब मैं तुम लोगों से मन्वन्तरों में होनेवाले चारों वर्णों की यज्ञीय विधियों के समेत उनका चातुर्होत्र का विधान वर्णन कर रहा हूँ। प्रत्येक मन्वन्तर में भिन्न-भिन्न श्रुतियों का विधान होता है। ऋक्, यजु तथा साम—ये तीनों वेद पूर्ववत् देवताओं से युक्त रहते हैं। विधि, स्तोत्र तथा अग्निहोत्र—ये भी पूर्व युगों के समान पिछले युगों में प्रचलित रहते हैं। द्रव्य स्तोत्र, गुण स्तोत्र, कर्म स्तोत्र और अभिजन स्तोत्र—ये चार प्रकार के स्तोत्र सभी मन्वन्तरों में वेदों से ही भिन्न-भिन्न रूप में आविर्भूत होते हैं। उन्हीं से ब्रह्मस्तोत्र पुनः पुनः प्रवृत्त होता है। ऐसे मंत्र के गुणों की उत्पत्ति चार प्रकार से कही गई है—अथर्व, ऋक, यजु और साम। मन्वन्तर के आदिम काल में परम कठोर तपस्या में लीन रहनेवाले ऋषियों के हृदय में वे पूर्व में वर्तमान रहनेवाले मन्त्र समूह प्रादुर्भूत हुए थे। वे मन्त्र तपस्या करते समय असंतोष, भय, दुःख, मोह और शोक—इन पाँच प्रकार के दुःखों से मुनियों को तारनेवाले हैं। अब मैं ऋषियों का धर्म बतला रहा हूँ। व्यतीत हुए तथा भविष्यत्कालीन वे ऋषिगण पाँच प्रकार के होते हैं। ऋषि और आर्ष का विवरण सुनिये। उस समय जब कि तीनों गुण अपनी साम्यावस्था में थे, सभी जगत् का महाप्रलय होगया था, सब कुछ अविभाज्य, अनिर्देश्य एवं अन्धकार में विलीन था, देवताओं का कोई विभाग नहीं था....? जो विना किसी बुद्धि के सहारे से ही चेतनार्थ प्रवृत्ति करता है, चैतन्य जीवों में भी बुद्धिपूर्वक स्फुरण करता है, वही आर्ष कहा जाता है....? वे भाव मत्स्य एवं जल की भाँति आधाराधेय सम्बन्ध से विद्यमान थे। वह गुणात्मक जगत् चेतना द्वारा अधिष्ठित होने पर ही प्रवृत्तिशील होता है....? कार्य कारण भाव ही इसकी प्रवृत्ति है। विषय एवं विषयत्व अर्थपद कहे जाते हैं....?काल ही कारणात्मक महदादि तत्त्वसमूहों को भेदात्मक करता है, (भिन्न करता है) इसीलिए वे महदादि तब क्रमशः सांसिद्धिक हो जाते हैं....?महत्तत्त्व के द्वारा अहंकार की उत्पत्ति होती है, अहंकार से भूतेन्द्रियाँ सूक्ष्म पंच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हीं से स्थूलभूत का जन्म होता है। इसके उपरान्त स्थूलभूत से परस्पर अनेक भूतगण उत्पन्न होते हैं। मूलरूप में वर्त्तमान कारण

पदार्थ इसी प्रकार यथाशीघ्र कार्यरूप में परिणत हो जाता है। जैसे जलते हुए और घुमाये जाते हुए उल्मुक (लुआठे) से एक ही बार में बहुत वृत्तगण प्रकाशित हो जाते हैं (?) उसी प्रकार सभी क्षेत्रज्ञ जीव काल द्वारा शीघ्र ही प्रवृत्त हो जाते हैं (?) जैसे घोर अन्धकार में खद्योत सहसा दिखाई पड़ता है उसी प्रकार अप्रकट रूप में वर्त्तमान वे क्षेत्रज्ञ गण सहसा प्रकट होते हैं। वे महात्मा क्षेत्रज्ञ शरीर धारण कर इस जगत् में विद्यमान रहते हैं। और अति घोर अन्धकार राशि के पार भी अवस्थित रहते हैं। उनका यह स्थान तप द्वारा प्राप्त होनेवाले स्थानों में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है—ऐसा सुना जाता है। सृष्टिकाल में वृद्धि को प्राप्त होते हुए उन्हें ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य एवं धर्म मय—चार प्रकार की बुद्धियाँ प्राप्त हुईं। ये सांसिद्धिक बुद्धियाँ उन्हें अप्रतीत हैं (?) उस महात्मा पुरुष का शरीर चैतन्यमय है, उसी से सिद्धि की प्राप्ति कही जाती है। वह पुर में—सभी जीवों के अन्तःकरण में—शयन करता है तथा उसे क्षेत्र समूहों का ज्ञान रहता है। पुर में शयन करने से वह पुरुष तथा क्षेत्र का ज्ञान होने से क्षेत्रज्ञ कहलाता है। यतः धर्म से उत्पन्न होता है अतः उसे धार्मिक कहते हैं। अव्यक्त रूप में रहनेवाला चेतनात्मक वह क्षेत्रज्ञ बुद्धि के द्वारा व्यक्त नहीं होता, प्रत्युत विना किसी अभिसंधि के ही वह क्षेत्रों में प्रविष्ट होता है, निवृत्ति के समय वह पुराण अचेतन क्षेत्रज्ञ द्वारा 'यह हमारा भोग्य विषय था' इस प्रकार जाना जाता है (?) ॥१९-८०॥

ऋषि धातु हिंसा और गति अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः ब्रह्मज्ञान, विद्या, सत्य, तप और शास्त्रीय ज्ञान (वेदज्ञान)—इनका जो लाभ करता है वही ब्राह्मण ऋषि कहलाता है। वही ऋषि जब निवृत्ति के समय बुद्धिबल से परम अव्यक्त में गमन करता है तब परम ऋषि का पद प्राप्त करता है। गति अर्थ में प्रवृत्त होनेवाले ऋषि धातु से निष्पन्न ऋषि शब्द सभी जीवों की निवृत्ति का कारण होता है एवं स्वमेव उद्भूत होता है इसीलिए उसकी ऋषिता मानी गई है। ब्रह्मा के मन से उत्पन्न होनेवाले वे परमैश्वर्यशाली ऋषिगण स्वयमेव उत्पन्न हुए हैं और उनकी निवृत्ति बुद्धि द्वारा उस परम महान् में आश्रित होती है। यतः वे उस परमतत्त्व के ज्ञाती थे अतः उन्हें महर्षि कहा गया। उन परमैश्वर्यशालियों के मानस तथा औरस पुत्र हुए, जो उक्त परम तत्त्व के आश्रय से परमर्षि कहे गये। उनसे उत्पन्न होनेवालों को ऋषि कहा गया, उन ऋषियों के पुत्र ऋषीक कहे गये; जो कि स्त्री-पुरुष-संयोग से उत्पन्न हुए। परत्व के कारण महतत्त्व के आश्रय से इनको ऋषिक कहा जाता है। उन ऋषिकों के पुत्रों को ऋषिपुत्रक जानना चाहिये। यतः वे महत्तत्व को सुनकर परवर्ती हुए अतः उन्हें श्रुतर्षि कहा गया। अव्यक्तात्मा, महात्मा, अहङ्कारात्मा, भूतात्मा और इन्द्रियात्मा—ये पाँच प्रकार की ऋषियों की जातियाँ हैं। भृगु, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, वसिष्ठ और पुलस्त्य—ये दस ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। ये परत्व एवं ऋषित्व दोनों ऋषिधर्मों से युक्त हैं अतः महर्षि कहे जाते हैं। इन ऐश्वर्यशाली महर्षियों के पुत्र, जो अन्य ऋषिगण हैं, उन्हें सुनो। शुक्र, वृहस्पति, कश्यप, च्यवन, उतथ्य, वामदेव, अगस्त्य, कौशिक, कर्दम, बालखिल्य, विश्रवा, और शक्तिवर्द्धन—ये भी ऋषि कहे जाते हैं, जो अपनी तपस्या के बल से ऋषित्व को प्राप्त हुए हैं। इन ऋषियों के औरस पुत्र जो ऋषीक नामक ऋषिगण उत्पन्न हुए हैं, उन्हें

सुनो। वत्सर, नम्रहू, भरद्वाज, दीर्घतमा, वृहद्वक्षा, शरद्वान्, वाजिश्रवा, सुचिन्त, शाव, पराशर, श्रृंगी ऋषि, शंखपाद, वैश्रवण और राजा—ये सब ऋषियों के पुत्र हैं, जो सत्य के बल से ऋषित्व को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार ईश्वर, ऋषि और ऋषीक कहे जानेवाले ऋषियों का वर्णन किया जा चुका। अब मन्त्र का निर्माण करनेवाले समस्त ऋषियों को सुनो। भृगु, काश्यप, प्रचेता, दधीचि, उर्व, जमदग्नि, सारस्वत, आर्ष्टिषेण, च्यवन, पीतहव्य, वेधा, वेणय, पृथु, दिवोदास, गृत्स और शौनक—ये उन्नीस (?) मंत्रकर्ता ऋषि भृगुवंश में उत्पन्न कहे जाते है। अंगिरा, त्रित, भरद्वाज, लक्ष्मण, कृतवाच, गर्ग, स्मृति, संकृति, गुरुशील, मान्धाता, अंबरीष, युवनाश्व, पुरुकुत्स, स्वश्रव, सदस्यवान, अजमीढ, स्वहार्य, उत्कल, कवि, पृषदश्व, विरूप, काव्य, मुद्‌गल, उतथ्य, शरद्वान, वाजिश्रवा, अपस्यौष, सुचित्ति, वामदेव, ऋषिज, वृहच्छुल्क, दीर्घतमा ऋषि तथा कक्षीवान्—ये तैंतीस ऋषि अंगिरस गोत्र में उत्पन्न कहे जाते हैं। ये भी मंत्रकर्ता ऋषि कहे जाते हैं। अब कश्यप गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषियों को सुनो। कश्यप, वत्सार, नैध्रुव, नित्य, असित और देवल—ये छः ब्रह्मवादी ऋषि कश्यप के वंश में उत्पन्न हुए थे। अत्रि, अर्द्धस्वन, शावास्य, गविष्ठिर, कर्णक और पूर्वातिथि—ये छः अत्रिगोत्रीय मंत्रकर्ता ऋषि कहे जाते हैं। और वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, इन्द्रप्रतिम, भरद्वसु, मित्रावरुण तथा कुंडिन—ये सात ऋषि वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न हुए हैं, तथा ब्रह्मवादी हैं। गाधिपुत्र विश्वामित्र, देवरात, वल, विद्वान् मधुच्छन्दा, अघमर्षण, अष्टक, लोहित, मृतकील, अम्बुधि, देवश्रवा, देवरत, पुराण, धनंजय, शिशिर, महातेजा और शालंकायन—ये तेरह (?) ब्रह्मनिष्ठ ऋषि कौशिक के वंश में हो गये हैं। अगस्त्य, दृढ़द्युम्न, इन्दुवाहु—ये तीनों अगस्त के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले परम यशस्वी तथा ब्रह्मनिष्ठ ऋषि हुए हैं। वैवस्वत मनु तथा इल के पुत्र राजा पुरूरवा—ये दो क्षत्रिय कुलश्रेष्ठ मंत्रवादी राजा जानने चाहिये। भलंदक, वासाश्व और संकील—इन तीन वैश्य कुलोत्पन्न मंत्रकर्ता ऋषियों को जानना चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य–इन तीनों जातियों के कुल बानबे ऋषि होते हैं, जिन्होंने मंत्रों को प्रकाशित किया है। ये ऋषि के पुत्रगण, जो श्रुतऋषि कहे जाते हैं, उन्हीं ऋषीकों के पुत्र हैं ॥ ८१—११८ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में मन्वन्तर कल्प वर्णन नामक एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४५ ॥

एक सौ छियालीसवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूतनन्दन! तारक नामक असुर के महावध का वर्णन भगवान् मत्स्य ने किस प्रकार किया है? और किस समय यह महान् कथा समाप्त हुई (कही गई)? आपके मुख रूपी क्षीर समुद्र से निकली हुई अमृत के समान सुन्दर इस कथारस को दोनों कानों से पान करते हुए भी हम लोगों की तृप्ति नहीं हो रही है। अर्थात् जितना ही इसको सुनते जाते हैं उतना ही और सुनने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न होती जाती है। अतएव हे मुनि जी! आप कृपापूर्वक हमारे इस मनोवांछित विषय को विस्तार से कहिये। ॥१-३॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! उसी अवसर पर मत्स्य रूपधारी भगवान विष्णु से महाराज मनु ने पूछा—'भगवन् ! शरों (सरपतों) के वन में षडानन कार्त्तिकेय की उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी ?' इस प्रश्न को सुनकर अमित तेजस्वी भगवान् ने प्रसन्नतापूर्वक परम बुद्धिमान् एवं तेजस्वी राजा मनु से इस कथा को इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया । ॥ ४-५ ॥

मत्स्य भगवान् बोले—'प्राचीनकाल में एक वज्रांग नामक दैत्य था, उसका तारक नामक महाबलवान् पुत्र था । उसने एक बार देवताओं को अति कष्ट देकर पुरों से बाहर निकाल दिया । तब वे उसके भय से अतिशय भयभीत होकर ब्रह्मा के समीप गये । देवताओं को इस प्रकार भयभीत देखकर ब्रह्मा जी ने कहा—'देववृन्द ! भय छोड़ दो । हिमाचल की पुत्री पार्वती के संयोग से महादेव को एक शिशु उत्पन्न होगा और वही तुम्हारे परम शत्रु इस दैत्य का विनाश करेगा ।' इस वरदान के बाद एक बार कभी महादेव ने पार्वती को देखकर किसी विशेष कारण वश अपने वीर्य को अग्नि के मुख में त्याग दिया । अग्नि के मुख में गिरे हुए शिव के उस वीर्य ने देवताओं को तृप्त कर दिया । देवताओं के पेट में अजीर्ण हो जाने पर वह वीर्य उनके उदर प्रदेश को फाड़कर बाहर निकला और वहाँ से सुरनदी के प्रवाह में मिल गया । उसके अनन्तर वह शरों के एक वन में पहुँच गया । उसी शरवन से सूर्य के समान कान्तिमान् षडानन कार्त्तिकेय की उत्पत्ति हुई । सात दिन के उस अद्भुत बालक ने ही महावीर तारकासुर का संहार किया था ।' सूत की ऐसी बातें सुनकर श्रेष्ठ ऋषियों ने उनसे पूछा । ॥ ६-११ ॥

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! यह तो परम विस्मय में निमग्न करनेवाली कथा है । साथ ही अति मनोहारिणी तथा पापों को विनष्ट करनेवाली भी है, इसका विस्तारपूर्वक यथार्थ रूप में वर्णन कीजिये । प्राचीनकाल में वह वज्रांग नामक दैत्य किस वंश में उत्पन्न हुआ था, जिसका पुत्र देवताओं का विनाशक परम बलवान् तारकासुर हुआ । उस दैत्यराज के वध में किस प्रकार का युद्ध हुआ था ? हे मानद ! षडानन कार्त्तिकेय की सम्पूर्ण कथा हम लोगों को बतलाइये ! ॥१२-१४॥

सूत ने कहा—ऋषिगण ! ब्रह्मा के मानस पुत्र दक्ष नामक प्रजापति थे, जिन्होंने अपनी वैरिणी नामक पत्नी में साठ कन्याएँ उत्पन्न की थीं—ऐसा हमने सुना है । उन कन्याओं में से प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र दक्ष ने दस धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताइस चन्द्रमा को, चार अरिष्टनेमि को, दो बाहुकपुत्र को, दो अंगिरा को और दो विद्वान् कृशाश्व को समर्पित किया । उनमें अदिति, दिति, दनु, विश्वा, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि—ये तेरह लोकमाताएँ कश्यप की स्त्रियाँ थी । जिनके संयोग से अनेक प्रकार के स्थावर जंगमात्मक जगत् की उत्पत्ति हुई । इसके अतिरिक्त अन्य शरीरधारियों की भी उत्पत्ति उन्हीं से हुई । स्वयं देवराज इन्द्र, उपेन्द्र तथा सूर्य आदि देवगण अदिति के ही गर्भ से उत्पन्न हुए । दिति के संयोग से हिरण्यकशिपु आदि दैत्यगण उत्पन्न हुए । दानवगण दनु से तथा गौ सुरभि से उत्पन्न हुए । गरुड आदि प्रमुख पक्षीगण विनता के पुत्र कहे जाते हैं । नाग तथा अन्य शेष सरीसृपों (रेंग कर चलने वाले जन्तु) को कद्रू का पुत्र जानना चाहिये । सभी देवगणों के स्वामी त्रैलोक्याधिपति

इन्द्र को जीतकर दितिपुत्र महाबलवान् हिरण्यकशिपु ने स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया था। तदनन्तर एक समय युद्ध में विष्णु भगवान् के द्वारा वे हिरण्यकशिपु आदि दैत्य गण मार डाले गये थे तथा शेष अन्य दानवों को इन्द्र ने मार डाला था। पुत्रों के मारे जाने पर पुत्रहीना दिति ने अपने पतिदेव कश्यप से एक महाबलवान् पुत्र के प्राप्त करने का वरदान माँगा। उसकी प्रार्थना पर प्रभु कश्यप ने युद्ध में इन्द्र का वध करने में समर्थ एक परम बलवान पुत्र का वरदान देते हुए उससे कहा—'देवि! पवित्र मन से तू एक सहस्र वर्षों तक मेरे द्वारा कुछ कहे गये नियमों का पालन करो, तब तथोक्त गुण सम्पन्न पुत्र की तुम्हें प्राप्ति होगी।' कश्यप की बातों का दिति ने पूर्ण पालन किया। उन्हीं नियमों के पालन में निरत दिति के पास आकर सहस्रनेत्र इन्द्र ने उसकी समाधि अवस्था में परम सेवा की, जिससे प्रसन्न होकर उसने इन्द्र को परम विश्वस्त मान लिया। इस प्रकार एक सहस्र वर्ष बीतने में जब दस वर्ष शेष रह गये तब इन्द्र की सेवा से अति प्रसन्न होकर तपस्या में निरत दिति ने इन्द्र से कहा—॥१५-२९॥

दिति ने कहा—'पाकशासन! अब तुम मेरे व्रत को समाप्तप्राय जानो। इसकी समाप्ति पर तुम्हें एक भाई प्राप्त होगा, जिसके साथ मिलकर इस शत्रुरहित समस्त त्रैलोक्य की राज्यलक्ष्मी को इच्छा पूर्वक भोगना।' ऐसा कह कर नींद से अभिभूत दिति सो गई। उस समय उसके शिर के बाल चरणों पर बिखरे हुए थे तथा वह अपने पूर्व के अंगीकृत नियमों से च्युत हो गई थी। भावी की प्रबलता से ही दिति सो गई थी। उसी अवसर पर छिद्र मार्ग का आश्रय लेकर पाकशासन इन्द्र ने दिति के उदर में प्रवेश कर लिया! वहाँ पहुँच कर देवराज ने अपने वज्र से उदरस्थित गर्भ को सात टुकड़ों में काट दिया और बाद में उन्हीं सातों में से एक-एक टुकड़े को भी सात-सात खंडों में विभक्त कर दिया। इसी बीच दिति जग पड़ी और उठकर कहने लगी—'अरे शक्र मेरी संतति का सहार मत करो।' दिति की ऐसी बातें सुन इन्द्र उदर से बाहर निकल आये और आगे खड़े होकर भयभीत एवं दुःखपूर्ण स्वर में हाथ जोड़कर अपनी विमाता से इस प्रकार कहने लगे। ॥३०-३५॥

इन्द्र ने कहा—'जननि! तुम आज दिन में ही बालों को पैरों पर बिखेरे हुए नियमोल्लंघन कर शयन कर रही थी अतः मैंने तुम्हारे गर्भस्थ शिशु को उनचास भागों में विभक्त कर दिया। देवताओं की सम्माननीय! वज्र द्वारा उनचास भागों में विभक्त किये गये तुम्हारे उन पुत्रों को मैं अपने स्वर्गलोक में स्थान दूँगा।' इन्द्र द्वारा प्रार्थना किये जाने पर दिति ने कहा—'अच्छा ऐसा ही हो।' ऐसा कह कर काले नेत्रों वाली दिति ने अपने पति कश्यप से कहा—'हे प्रजापते! अत्यन्त बलशाली इन्द्र का वध करने में समर्थ एक अन्य पुत्र मुझे दीजिये, जिसका संहार स्वर्गनिवासी देवगण अपने शस्त्रास्त्रों द्वारा भी न कर सकें।' ऐसा कहने पर कश्यप ने अति दुःखित अपनी पत्नी दिति से कहा—'ऐसे पुत्र की प्राप्ति तू दस सहस्र वर्षों तक घोर तपस्या करके कर सकोगी। हे पुत्रवत्सले! इस प्रकार फौलाद के समान दृढ़ तथा वज्र के सार के समान प्रौढ़ अंगों से युक्त वज्रांग नामक पुत्र तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होगा।' ॥३६-४१॥

कश्यप द्वारा उक्त वरदान प्राप्त कर देवी दिति ने तपस्या के लिए वन का मार्ग ग्रहण किया और

दस सहस्र वर्षों तक घोर तपस्या की। तपस्या की समाप्ति हो जाने पर तेजस्वी दिति ने अनुपम पराक्रमी अजेय, वज्र से भी दुष्छेद्य उक्त पुत्र को उत्पन्न किया। उत्पन्न होते ही वह बालक सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों की कलाओं में पारंगत होगया और भक्तिपूर्वक अपनी माता से बोला—'मातः! मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ!' तब प्रसन्न होकर दिति ने अपने पुत्र दैत्याधिपति से कहा—'पुत्र! मेरे बहुत से पुत्र सहस्राक्ष इन्द्र द्वारा मारे जा चुके हैं, उनका बदला चुकाने के लिए तथा इन्द्र का संहार करने के लिए तुम स्वर्ग लोक को जाओ!' उस बलवान ने माता की ऐसी बातें सुनकर कहा—'बहुत अच्छा' और तदनन्तर उसने स्वर्ग की राह पकड़ी। वहाँ पहुँच कर उसने विफल न होने वाले अपने पाश से इन्द्र को बाँध लिया और माता के पास इस प्रकार लाकर उपस्थित किया जैसे बाघ एक छोटे-से मृग को पकड़कर लाता है। ठीक इसी समय ब्रह्मा तथा महा तपस्वी कश्यप भी वहाँ आये हुये थे, जहाँ पर वे निडर माता तथा पुत्र उपस्थित थे। दिति तथा वज्रांग को वहाँ उपस्थित देखकर ब्रह्मा तथा कश्यप ने कहा—'पुत्र! इस देवराज इन्द्र को तुम छोड़ दो। इसके बाँधने या हत्या करने से तुम्हारा भला क्या स्वार्थ सिद्ध होगा? पुत्र! यशस्वी पुरुष का अपमान ही उसकी मृत्यु कही जाती है, यदि यह हम लोगों की कृपापूर्ण बातों द्वारा यह तुमसे छुटकारा पा रहा है तो इसे इसकी मौत ही समझो। दूसरे के गौरव से शत्रु द्वारा छुटकारा पाने वाला शत्रुओं का भारवाही होता है अर्थात् उसके हृदय पर शत्रु की धाक सदा बनी रहती है। मेरे पुत्र! ऐसे पुरुष को तो प्रतिदिन मृतक तुल्य ही समझना चाहिए। शत्रु के वश्य हो जाने पर महान् पुरुषों का वैर वैरी में नहीं रह जाता अर्थात् बड़े लोग वश में किये गये शत्रु से पुनः वैर भाव नहीं मानते।' ब्रह्मा तथा कश्यप की ऐसी बातें सुनकर विनम्र वज्रांग ने कहा—'हे महाराज! मेरा इस इन्द्र से कोई मुख्य प्रयोजन नहीं था। केवल माता की आज्ञा का पालन करने के लिए ही मैंने ऐसा किया है। तुम तो सुर तथा असुर—दोनों के स्वामी हो और मेरे प्रपितामह हो। देव! मैं तुम्हारे वचन का पालन करूँगा। अब मैं इस इन्द्र को छोड़ देता हूँ। देव! तुम्हारी कृपा से मेरी श्रद्धा तथा रति तपस्या में हो तथा मेरा तप निर्विघ्न समाप्त हो'—ऐसी प्रार्थना कर वज्रांग चुप हो गया। दैत्य के चुप हो जाने पर पितामह ब्रह्मा ने उससे कहा। ॥४२-५५॥

ब्रह्मा ने कहा—'तुमने हमारे द्वारा बताये गये नियमों का पालन करते हुए परम कठोर तपस्या की है, इस चित्त शुद्धि से तुम्हें जन्म लेने का पर्याप्त फल भी प्राप्त हुआ'—ऐसा कहकर कमलयोनि ब्रह्मा ने एक परम सुन्दरी दीर्घ नेत्रोंवाली कन्या का निर्माण किया और उसे पत्नी रूप में वज्रांग को प्रदान कर दिया। उस सुन्दरी का 'वराङ्गी' नाम रखकर पितामह ब्रह्मा चले गये। वज्रांग भी पत्नी को साथ लेकर तपस्या करने के लिए वन की ओर प्रस्थित हुआ। शुद्धबुद्धि, महान् तपस्वी, कमल के दलों के समान सुन्दर विशाल नेत्रोंवाले दैत्यराज ने ऊपर हाथ उठाकर एक सहस्र वर्ष पर्यन्त कठोर तप किया और उतने ही समय तक नीचे मुखकर तपस्या की। तथा उतने ही समय तक पंचाग्नि के मध्य में स्थित होकर घोर तप किया। निराहार रहकर ऐसे घोर तपस्या को कर के वह असुरराज तपस्या की राशि हो गया। तदनन्तर भी वह जल के मध्य में अवस्थित होकर एक सहस्र वर्ष तक घोर तप करता रहा। जल में प्रविष्ट

होकर तप करते समय उसकी परम तपस्विनी पत्नी ने भी उस सरोवर के किनारे रहकर पति के चरणों में प्रीति रखकर मौन व्रत का पालन किया ! और इस प्रकार उस परम कान्तिमती ने निराहार रहकर घोर तप का पालन किया। उसके तप करते समय इन्द्र ने उसे डराने के लिए अनेक उपाय किया। उसने उसी आश्रम में एक बहुत बड़े बन्दर का रूप धारण कर उसके कमण्डलु तथा पुष्पों की डालियों को घुमाकर समाप्त कर दिया और फिर मेष का रूप धारण कर उसे खूब कँपाया, फिर सर्प का रूप धारण कर उसके दोनों पैरों को अपने शरीर से बाँधकर दूर तक खींचा और देर तक पृथ्वी मण्डल पर परिभ्रमण किया। किन्तु इन्द्र के इतने उत्पात करने पर भी वह परम तपस्विनी मारी नहीं जा सकी। तब इन्द्र ने एक सियार का रूप धारण कर उसके आश्रम को दूषित कर दिया। फिर बादल का रूप धारण कर आश्रम को गीला कर दिया। इस प्रकार अनेक प्रकार की विभीषिकाओं से उसे कष्ट पहुँचाते हुए इन्द्र ने जब विश्राम नहीं लिया तब वज्रांग की पत्नी वह वराङ्गी इन सब उत्पातों में उसी पर्वत की दुष्टता समझकर शाप देने को उद्यत हो गई। इस प्रकार उसे शाप देने के लिए प्रस्तुत देखकर परम भयभीत हो पर्वत ने एक पुरुष का शरीर धारण कर उस सुन्दरी वरांङ्गी से कहा—'सुन्दरि ! मैं दुष्ट नहीं हूँ। मेरा सेवन तो सभी जीवधारी कर सकते हैं। आपको यह विघ्न देवराज इन्द्र रुष्ट होकर पहुँचा रहे हैं।' ठीक इसी अवसर पर तपस्या के एक सहस्र वर्ष की अवधि समाप्त हो गई। उस अवधि के बीत जाने पर कमलयोनि भगवान् ब्रह्मा सन्तुष्ट होकर उस जलाशय के मध्य में उपस्थित होकर वज्रांग से बोले।॥५६-७१॥

ब्रह्मा ने कहा—'दितिनंदन ! उठो। मैं तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथों को दे रहा हूँ।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर परम तपस्वी दैत्यराज वज्रांग ने हाथ जोड़ कर सभी लोकों के पितामह ब्रह्मा से कहा।॥७२॥

वज्रांग ने कहा—देव ! मेरे हृदय में आसुरी भावनाओं का संचार न हो। मेरे लोक अक्षय हों। तप में मेरी रुचि हो और मेरा शरीर सदा विद्यमान रहे।' उसकी ऐसी बातें सुन कर ब्रह्मा ने 'ऐसा ही हो' कह कर अपने लोक का मार्ग ग्रहण किया। वज्रांग भी तपस्या के निर्विघ्न समाप्त हो जाने पर संयम को स्थिर रखकर जब भोजन की इच्छा से बाहर आया तो अपनी स्त्री को उक्त स्थान पर नहीं देख सका। तब क्षुधा से पीड़ित हो गहन वन की ओर फल मूलादि आहार की खोज में वह चला। आगे चल कर वन में उसने रोती हुई अपनी प्रिया को अति दीन दशा में मुँह को थोड़ा-सा ढँके हुए देखा। ऐसी दयनीय दशा में उसे देख कर दैत्यराज ने सान्त्वना भरे शब्दों में कहा—॥७३-७६॥

वज्रांग ने कहा—भीरु। यमलोक जाने को इच्छुक किस अभागे ने तुम्हारे साथ यह अपकार किया है। अथवा हे प्रिये ! शीघ्र बोलो, तुम्हारी किस इच्छा की पूर्ति मैं करूँ ?।॥७७॥

श्री मात्स्य महापुराण में एक सौ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४६॥

एक सौ सैतालीसवाँ अध्याय

वरांगी ने कहा—'प्रियतम ! भयानक आकृति वाले देवराज से मैं बहुत डरायी गयी हूँ । विधवा की भांति अपमानित की गई हूँ । ताडित की गई हूँ और पीड़ित की गई हूँ । उससे इस प्रकार सतायी जाकर ही मैं यहाँ अपने प्राणों के त्याग करने को उद्यत हो रही थी । अतः मुझे ऐसे दुःख तथा शोक के महासागर से बचाने वाले एक पुत्र का वरदान मुझे दीजिए ।' वरांगी के ऐसा कहने पर क्रोध से व्याकुल नेत्रों वाले उस महाबलवान दैत्यराज ने—स्वयं देवराज से बदला लेने में समर्थ होते हुए भी—पुनः और अधिक तप करने का विचार किया । उसके इस परम कठोर संकल्प का विचार करके ब्रह्मा उसी समय वहाँ पधारे, जहाँ पर वह दितिपुत्र वज्रांग स्थित था । ब्रह्मा ने आकर मधुर वाणी में कहा—॥१-५॥

ब्रह्मा ने कहा—'पुत्र ! किस प्रयोजन से भोजन करने के लिए तैयार होने पर भी तुम पुनः कठोर तपस्या करने का विचार कर रहे हो ? महाव्रत ! उसे हमसे बतलाओ । एक सहस्र वर्ष तक निराहार रहकर तप आराधन करने का जो फल होता है, वह सामने उपस्थित भोजन का त्यागकर तपस्या का विचार करने मात्र से एक क्षण में प्राप्त हो जाता है । कमललोचन ! अप्राप्त मनोरथ वाले यदि अपने मनोरथ का त्याग करते हैं तो वह उतना महत्त्वपूर्ण त्याग नहीं है जितना प्राप्त हुए मनोरथ का त्याग करना महत्त्वपूर्ण है ।' ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर तपस्वी वज्रांग ने हाथ जोड़कर हृदय से ब्रह्मा की इन बातों पर विचार करते हुए कहा—॥६-९॥

वज्रांग ने कहा—देव ! आपकी आज्ञा से समाधि छोड़कर उठने पर मैंने देखा कि मेरी स्त्री एक वृक्ष के नीचे डरी हुई दीन भाव से रुदन कर रही है । उसे ऐसा देखकर अति खिन्न मन से जब मैंने पूछा कि हे भीरु ! क्यों ऐसी अवस्था में तुम हो और मुझसे कहो कि तुम क्या चाहती हो ? तो मेरे ऐसा कहने पर उस भयभीत सुन्दरी ने टूटे-फूटे शब्दों में अपने भय का यह कारण मुझे बताया ।॥१०-१२॥

वरांगी ने कहा—'प्रियतम ! भयानक आकृति वाले देवराज इन्द्र से मैं अत्यन्त डरायी गई हूँ । विधवा की भाँति अपमानित की गई हूँ । घसीटी तथा पीड़ित की गई हूँ और अपने दुःख के अन्त होने का कोई उपाय न देखकर अपने प्राणों का त्याग करने के लिए यहाँ आई हुई हूँ । अतः इस दुःख के महासागर से उबारने वाले एक पुत्र को मुझे दीजिये ।' ब्रह्मन् ! अपनी स्त्री के ऐसा कहने पर मैं अतिशय क्षुब्ध होकर उसे पुत्र देने के लिए उद्यत हुआ हूँ । इस प्रकार देवताओं को पराजित करने के लिए मैं घोर तपस्या करने जा रहा हूँ ।' उसकी ऐसी बातें सुनकर कमलयोनि चतुरानन ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर दैत्याधिपति वज्रांग से कहा—॥१३-१६॥

ब्रह्मा ने कहा—वत्स ! तुम्हारी तपस्या अब पर्याप्त है । अब कठोर क्लेश में तुम मत प्रवेश करो । तुम्हें महाबलवान् तारक नामक पुत्र मिलेगा । जो देवांगनाओं के शिर पर बँधी तथा सँवारी गयी चूडा का छोड़नेवाला होगा । ब्रह्मा के ऐसा कहने पर दैत्यराज वज्रांग ने ब्रह्मा को प्रणाम किया और प्रसन्न

मुख हो अपनी स्त्री के पास आकर इस शुभ वरदान प्राप्ति का संदेश कह कर उसे प्रसन्न किया। इस प्रकार उस समय वे पति-पत्नी कृतार्थ होकर अपने आश्रम को वापस चले गये। कुछ दिनों बाद सुन्दर अंगोवाली वरांगी ने वज्रांग के संयोग से गर्भ धारण किया। जिसे एक सहस्र वर्ष तक उदर में ही लिये रही। सहस्र वर्ष का समय बीत जाने पर वरांगी ने उक्त पुत्र को उत्पन्न किया। लोक को भय पहुँचाने वाले उस महा घोर असुर के उत्पन्न होते समय समस्त पृथ्वी चलायमान हो गयी। सभी समुद्र काँपने लगे। सारे पर्वत अपने-अपने स्थानों से विचलित हो गये। भयंकर झंझावात बहने लगा। मुनि लोग भय से जप करने लगे। सर्प तथा पशु आदि उच्च स्वर में नाद करने लगे। चन्द्रमा तथा सूर्य ने अपनी शोभा छोड़ दी। दशों दिशाएँ शोभा रहित होकर मलीन हो गईं। उस महान् असुर के उत्पन्न होने पर सभी बड़े-बड़े राक्षस अति प्रसन्न होकर वहाँ आये तथा राक्षसों की स्त्रियाँ भी आईं। हर्ष से फूली न समाती हुई वे असुरस्त्रियाँ गान करने लगीं तथा नाचने लगीं। ऋषिगण! तदनन्तर उन दानवों के यहाँ महान् उत्सव का समारम्भ किया गया। ऐसा देख इन्द्र समेत सभी देवता लोग अति विषाद युक्त हो गये। अपने महान् पुत्र को देखकर वरांगी खुशी से फूल उठी और उसी समय उसने इन्द्र को पराजित करने को कोई बहुत बड़ा काम नहीं समझा। उत्पन्न होते ही वह भयानक पराक्रमशाली दैत्याधिराज तारकासुर सभी असुरों द्वारा राजा के पद पर अभिषिक्त कर दिया गया। मुनिगण! कुजंभ तथा महिष आदि पृथ्वी को उठाने की क्षमता रखने वाले महान असुरों द्वारा महाराज की पदवी पर अभिषिक्त होकर उस तारकासुर ने उन बड़े-बड़े दानवराजों से इस प्रकार की युक्तिसंगत बातें कहीं। ॥१७-२९॥

श्री मात्स्य महापुराण में तारकासुर कथा प्रसंग में तारक उत्पत्ति वर्णन नामक एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४७॥

एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

तारकासुर ने कहा—'महाबलवान् असुरवृन्द! सभी लोग ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनते जाइये। आप सब लोगों को अपने कार्य की निष्पत्ति में तथा कल्याण में वृद्धि करनी चाहिए। दानवगण! ये देवगण हम सभी लोगों के वंशों के नाश करनेवाले हैं। उनके साथ हमारा जातिगत विरोध है। कभी नष्ट न होने वाला बैर है। उन देवताओं को दण्ड देने के लिए हम अपनी भुजा के बल का सहारा लेकर उनके निवास स्थान पर जा रहे हैं और इसमें संशय नहीं कि उन सभी को हम दंड भी देंगे। किन्तु विना तपस्या किए हुए मैं उन देवताओं के साथ युद्ध करने की बात को ठीक नहीं समझता। अतएव दिति के पुत्रगण! उस कार्य के लिए मैं सर्वप्रथम घोर तपस्या करूँगा और तब देवताओं को पराजित कर तीनों लोकों का उपभोग करूँगा। स्थिरतापूर्वक उपाय करने वाला पुरुष स्थिर लक्ष्मी का भी उपभोग करता है। चंचल लोग प्राप्त की गई चंचला लक्ष्मी की यथावत् रक्षा नहीं कर सकते।' इस प्रकार की उस दैत्यराज की

बातें सुनकर सभी दैत्य तथा दानवगण विस्मित होकर 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहने लगे और तदनन्तर वह तारकासुर पारियात्र गिरि की उत्तम कन्दरा की ओर तपस्या के लिए प्रस्थित हुआ। वह सुन्दर कन्दरा सभी ऋतुओं में विकसित होने वाले पुष्पों से घिरी हुई थी। अनेक प्रकार की औषधियों से प्रकाशमान हो रही थी। अनेक प्रकार की धातुओं के चूनेवाले रसों से विचित्र रंग की हो रही थी तथा विविध प्रकार के वृक्षों से घिरी हुई छोटी-छोटी गुफाओं के गृहों से संयुक्त थी। चित्र-विचित्र रंग के कल्पद्रुम के सघन वृक्षों की सुखद छाया से वह सुशोभित थी, अनेक प्रकार के मनोहर आकृति वाले पक्षियों के समूहों से व्याप्त थी। उस कंदरा के आसपास अनेक प्रकार के मनोहारि झरने प्रवहमान थे। उसी के समीप नाना प्रकार के जलाशय भी विराजमान थे। इस प्रकार सर्व-साधन-सम्पन्न उस कन्दरा को प्राप्त कर दैत्यराज घोर तपस्या में प्रवृत्त हो गया। निराहार रह कर पंचाग्नियों को तापते हुए वृक्षों के पत्तों का तथा जल का आहार करते हुए उसने सौ-सौ वर्षों तक अति कठोर नियमों का पालन किया। तदनन्तर अपने शरीर से प्रति दिन सवा-सवा तोले मांस-खण्ड को काट-काटकर वह अग्नि में हवन करने लगा जिसके कारण उसका शरीर निर्मांस हो गया। इस प्रकार निर्मांस हो जाने पर वह तपोराशि हो गया। उसके तेज से समस्त भूतगण जलने लगे। समस्त सुरगण उसकी इस भीषण तपस्या से भयभीत होकर उद्विग्न हो गये। ऐसे अवसर पर ब्रह्मा उसकी ऐसी कठोर तपस्या से परम संतुष्ट होकर वरदान देने के लिए स्वर्गपुरी से उस पर्वतराज की कंदरा में अवस्थित तारकासुर के पास पहुँचे और मधुर स्वर में उससे बोले—॥ १-१५ ॥

ब्रह्मा बोले—'पुत्र! तुम्हारी तपस्या पर्याप्त है। संसार में कोई भी वस्तु अब तुम्हें अप्राप्य नहीं है। जो भी आकांक्षा तुम्हारे मन में हो, उसे मुझसे माँगो।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर परम पराक्रमशाली दैत्यराज तारक ने भगवान् ब्रह्मा को प्रणाम किया और फिर विनम्र भाव से हाथ जोड़कर कहा—॥ १६-१७॥

तारक ने कहा—'सभी जीवों के मन में निवास करनेवाले देव! आप तो सभी जीवों के मनोरथों को स्वतः जानते हैं। प्रायः सभी लोग अपने अपकारी से बदला लेने की भावना से उसे जीतने की इच्छा रखते हैं। हम लोगों का देवताओं के साथ जातिगत वैर है, अपनी स्वाभाविक दया भावना का त्यागकर उन क्रूर कर्म करने वाले देवताओं से हम दैत्यगण निःशेष कर दिये गये हैं। अतः उन सबों का मैं विनाश करना चाहता हूँ—यही मेरा मनोरथ है। मैं ऐसा परम बलवान हो जाऊँ कि सभी प्रकार के जीवों तथा परम तेजोयुक्त शस्त्रास्त्रों द्वारा भी मेरी मृत्यु न हो—ऐसे वरदान की याचना करने की इच्छा मेरे मन में है। देवाधिदेव! यही वर मुझे दीजिये। किसी अन्य वरदान को प्राप्त करने की मेरी इच्छा नहीं है।' दैत्य की ऐसी बातें सुनकर देवनायक ब्रह्मा ने उससे कहा—'दैत्यश्रेष्ठ! देहधारी जीव बिना मृत्यु का तो नहीं हो सकता अर्थात् जो जन्म धारण कर लेता है उसकी मृत्यु तो निश्चय ही होगी। अतः तुम जिससे कुछ भी भय नहीं मानते उससे अपनी मृत्यु का वरदान मुझसे माँग लो।' ब्रह्मा की ऐसी बातें सुन दैत्यराज तारक ने अति गर्व से युक्त होकर खूब सोचने-विचारने के बाद सात दिन के बालक से अपनी मृत्यु होने की याचना की। तदनंतर ब्रह्मा उसके मनोवांछित वरदान को देकर स्वर्ग को चले गये। उधर

वह दैत्य भी अपने निवास स्थान को लौट गया। तपस्या से लौटे हुए उस दैत्यराज तारक को घेर कर समस्त असुरों के अधिपति इस प्रकार बातें करने लगे जैसे स्वर्ग लोक में सहस्रनेत्र इन्द्र को घेर कर देवतागण बातें करते हों। महान् पराक्रमी उस दैत्यपुत्र तारक के सिंहासन पर आरूढ़ होने के समय सभी ऋतुएँ स्वरूप धारण कर अपने-अपने समय के गुणों से युक्त होकर उपस्थित हुई थीं। सभी लोकपाल गण उसके सामने सेवक का रूप धारण कर उपस्थित हुए थे। कान्ति, द्युति, धृति, बुद्धि तथा श्री—ये सब भी उस दैत्याधिपति के अनुपम प्रभाव को देखकर सभी गुणों से युक्त होकर उसके पास उपस्थित रहती थीं। और सभी त्रुटियों से रहित रहती थीं अर्थात् सभी निष्कपट भाव से उसकी सेवा में तल्लीन रहती थीं। कृष्ण अगुरु के लेप से लिप्त अंगोंवाले, महामुकुट के भूषण से अलंकृत, मनोहर केयूर से बाहुभाग में सुशोभित, परमोच्च सिंहासन पर अधिष्ठित उस दैत्यराज के चारों ओर अप्सराएँ पंखा झलती हुई उपस्थित रहती थीं और क्षण मात्र के लिए भी उसका परित्याग नहीं करती थीं। चन्द्रमा तथा सूर्य ये दोनों देव उसके भवन में दीपों के स्थान पर प्रकाशमान रहते थे। पंखे की जगह पर स्वयं पवन की नियुक्ति थी। मुनिश्रेष्ठ गण! उस तारकासुर का अग्रगामी स्वयं कृतान्त था। इस प्रकार सुखपूर्वक बहुत दिन बीत जाने पर तारकासुर ने अपने परम अतुल सम्पत्ति शाली वरदान के गर्व से गर्वित हो कर एक दिन अपने मंत्रियों से कहा—॥१८-३१॥

तारक ने कहा—असुरवृन्द! विना स्वर्गपुरी पर आक्रमण किये इस मेरे राज्य का क्या फल है? देवताओं से अपने पूर्वजों के अपकार का विना बदला चुकाये मेरे हृदय में शान्ति नहीं है। आज दिन भी देवता गण स्वर्ग में निर्भीक होकर यज्ञ के अंशों का उपभोग करते हैं। निश्चिन्त होकर विष्णु भी स्वर्ग में विराजमान है, और आज अपनी लक्ष्मी का संग नहीं छोड़ता है। स्वर्ग के क्रीडागारों में सुन्दर देव गण कमल नालों के साथ मदिरा की सुगंधि से युक्त होकर परम सुन्दरी देवांगनाओं द्वारा कामपीडित किये जाते हैं। जन्म पाकर जो मनुष्य अपने पौरुष का शत्रुओं के संग उपयोग नहीं करता उसका जन्म निरर्थक है, उससे तो जन्म न लेने वाला ही श्रेष्ठ है। जो अपनी माता तथा अपने पिता के मनोरथों को पूर्ण नहीं करता, अपने बन्धुओं को शोक से रहित नहीं करता तथा हिम के समान शुभ्र विस्तृत कीर्ति का अर्जन नहीं करता, वह पुरुष जन्म लेने पर भी, मेरी समझ में, मरा हुआ है। अतः देवताओं के बड़े-बड़े अधिपतियों को जीतने के लिए तथा तीनों लोकों की लक्ष्मी का हरण करने के लिए शीघ्र ही आठ चक्के वाले एक सुन्दर रथ का तुम लोग निर्माण करो तथा दुर्जय दैत्यों के समूहों से युक्त दानव सेना का संगठन करो। मेरे रथ की ध्वजा को सुवर्ण के पट्ट से समृद्ध बनाओ। मेरे छत्र को मोतियों की झालर से सुशोभित करो।' तारकासुर की ऐसी बातें सुनकर दैत्य सेनाधिपति महाबलवान् ग्रसन ने अपनी गंभीर भेरी को बजाकर शीघ्र ही दैत्यों को एकत्र किया। तथा सहस्र घोड़ों से युक्त आठ चक्के वाले महान् रथ का निर्माण किया, जो श्वेत वस्त्र के परिच्छद से सुशोभित था। चार योजन के परिमाण में विस्तृत था। गीतों तथा वाद्यों के मधुर स्वरों से मनोहर तथा अनेक प्रकार के कीडाग्रहों से सुशोभित था। वह अनुपम विमान देवराज शतक्रतु इन्द्र के पुष्पक विमान के समान सुन्दर था। दैत्यों में जो परम प्रचण्ड शक्तिवाले दस

करोड़ दैत्य थे उसके साथ विराजमान थे। उन दैत्यों का अगुआ जम्भ नामक दैत्य था। उसके बाद कुजंभ नामक असुर था तथा उसके अतिरिक्त महिष, कुंजर, मेघ, कालनेमि, निमि, मथन, जंभक तथा शुंभ नामक दैत्यराज थे—ये दसों बीर असुर सेनापति थे। इनके अतिरिक्त अन्य सैकड़ों असुरगण थे जो अकेले ही पृथ्वी का मर्दन करने में समर्थ थे। सभी दैत्यगण बड़े-बड़े पर्वतों के समान विशाल शरीर वाले तथा प्रचण्ड पराक्रम सम्पन्न थे। अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करने में निपुण तथा अनेक प्रकार की शस्त्रास्त्र क्रियाओं में पारंगत थे। दैत्यराज तारकासुर की पताका महाभयानक थी, जो सुवर्ण के भूषणों से अलंकृत थी। शत्रुओं के विनाशक दैत्य सेनाधिपति ग्रसन का रथ ग्राह की पताका से युक्त था। जंभ सेनापति की पताका का मुख पिशाच के मुख की भाँति विकराल आकार का तथा लोहे का बना हुआ था। कुजंभ की ध्वजा में पूछ हिलाने वाले गधे का चित्र अंकित था। महिष की ध्वजा में सुवर्ण निर्मित शृगाल का चित्र था। शुम्भ की ध्वजा में कृष्ण वर्ण के लौह द्वारा निर्मित एक काक नियोजित किया गया था। अन्य दानवों की ध्वजाएँ अन्य अनेक प्रकार के आकारों वाली बनाई गई थीं। ग्रसन का रथ सुवर्णनिर्मित मालाओं से आभूपित तथा शीघ्र चलनेवाले सौ बाघों से सन्नद्ध था। उसी प्रकार किंकिणी के समूहों तथा मालाओं से अलंकृत सौ सिंहों से युक्त जम्भ का अजेय रथ था। कुजंभ का रथ पिशाच के समान भीषण मुखवाले गधों से युक्त था। महिष का रथ ऊंटों से, गज का घोड़ों से, मेघ का गैडों से तथा कालनेमि का भयानक हाथियों से संयुक्त था। दैत्य निमि पर्वत के समान विशाल आकार वाले ऐसे अनेक हाथियों वाले रथ पर समारूढ़ था, जो सब के सब चार दातोंवाले, मद जल से सुगंधित, मेघ के समान भीषण गर्जन करने वाले तथा सुशिक्षित थे। सुवर्ण के आभूषणों से अलंकृत दक्षिण दिशा में सौ हाथ लम्बे कृष्ण वर्ण के अश्वों से सुशोभित विशाल काले रथ में अनेक प्रकार के पुष्पों की मालाओं से सुशोभित श्वेत चंदन के लेप से विलेपित सुन्दर अंगोंवाला मथन नामक दैत्यराज हाथ में पाश लिये हुए सुशोभित हो रहा था। जंभक नामक असुर किंकिणी के जालों तथा मालाओं से सुशोभित एक ऊँट पर सवार था। काल के समान भयंकर श्वेतरंग के बहुत बड़े मेष पर शुम्भ नामक दैत्य आरूढ़ था। इन सबों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के वाहनों पर प्रचण्ड तथा विचित्र कार्य करने वाले, कुण्डल तथा पगड़ी बांधने वाले, अनेक प्रकार के दुपट्टों से सुशोभित, विविध प्रकार की मालाएँ पहने हुए, अनेक प्रकार की सुगंधिओं से सुवासित असुरगण युद्ध भूमि में शोभायमान हो रहे थे। उनके चारों ओर अनेक बन्दीगण प्रशंसा गान कर रहे थे। उन सबों के आगे अनेक प्रकार के युद्ध के बाजे बजते हुए चल रहे थे। अनेक रथ चल रहे थे। अनेक प्रकार की वीर गाथाओं का गान करते हुए अनेक महान् असुर भी साथ-साथ चल रहे थे। इस प्रकार उस दैत्यसिंह तारकासुर की वह सेना महान् विकराल दिखाई पड़ रही थी। मतवाले तथा महाभयानक हाथियों, विशाल तुरंगों तथा रथों से संकुलित वह सेना असंख्य पैदल और पताकाओं से युक्त होकर देवताओं से युद्ध करने के लिए प्रस्थित हुई थी। इसी अवसर पर देवताओं के दूत के रूप में वायु देव आकाशमार्ग से असुरों की उस महती सेना को प्रस्थान करते देखकर देवताओं से कहने के लिए इन्द्र के पास गये। महात्मा देवराज इन्द्र

की सभा में जाकर वायु ने देवताओं के मध्य में उस उपस्थित महा कार्य की चर्चा की। असुरों की चढ़ाई का समाचार सुनकर दीर्घबाहु इन्द्र ने कुछ काल के लिए आँखें मूँद लीं तदुपरान्त बृहस्पति से वे इस प्रकार बोले—॥३२-६२॥

इन्द्र ने कहा—'गुरो! दानवों के साथ देवताओं का यह महान् संग्राम आ पड़ा है। नीति का आश्रय लेकर हमें कौन-सा उपाय इस समय करना चाहिये, उसे आप कहिये।' देवराज इन्द्र की ऐसी बातें सुनकर महाभाग उदारबुद्धिशाली बृहस्पति ने कहा—'सुरश्रेष्ठ! शत्रुओं पर विजय की कामना करने वालों के लिए साम आदि चार अंगोंवाली नीति विजय प्रदान करने वाली कही गई है। सनातन से यह रीति चली आ रही है। साम, भेद, दान और दण्ड—नीति के ये चार अंग हैं। राजनीति में क्रम से इनका प्रयोग देश, काल और शत्रु की योग्यता आदि का विचार करके किया जाना चाहिये। शान्ति के उपाय से लालची, क्रूर तथा वे शत्रु, जिन्हें आश्रय प्राप्त हो चुका है, वश में नहीं हो सकते। दुष्ट लोग तो दुःख देने पर ही अपने संशय को छोड़कर वश में आते हैं। अतः इन दैत्यों के लिए साम नीति का प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि ये लोग आश्रय पा चुके हैं। जाति धर्म के द्वारा भेद नीति के योग्य भी वे नहीं हो सकते हैं। जिन्हें स्वयं लक्ष्मी प्राप्त है उन्हें दान देने से भी क्या फल होगा? अतः चारों उपायों में केवल एक उपाय—दण्ड—हमें उपयुक्त समझ पड़ रहा है। सो यदि आपको यह उचित प्रतीत हो तो इसी उपाय का अवलम्बन कीजिये। दुर्जन व्यक्तियों में साम नीति का प्रयोग फलशून्य होता है। क्रूर लोग महात्मा पुरुषों की साम नीति को भय के कारण उत्पन्न समझ कर उपेक्षा करते हैं, अतः उनके साथ सरलता, श्रेष्ठबुद्धि तथा दयानीति का विपरीत परिणाम होता है। दुर्जन लोग सर्वदा सामनीति को भय का कारण मानते हैं अतः उन को आक्रान्त करने के लिए पौरुष का आश्रय लेना ही श्रेयस्कर है। दुर्जनों को दबा दिये जाने पर ही उनके साथ की जानेवाली क्रिया सफल होती है। यह महान् व्रत सज्जनों के लिए है, क्योंकि दुर्जन पुरुष कभी सुजन नहीं हो सकता, सुजन पुरुष भले ही कभी संयोग से अपने स्व-भाव को छोड़ सकता है। मेरी बुद्धि तो यही कह रही है। आप लोग इसमें जो सोचें?' बृहस्पति के ऐसा कहने पर सहस्रनेत्र इन्द्र ने इस विषय में अपने कर्त्तव्य को भली भाँति सोच-विचार कर उस भरी देवसभा में उनसे कहा—'ऐसा ही करना ठीक होगा।' ॥ ६३-७४ ॥

और तदुपरान्त इन्द्र ने कहा—'स्वर्गपुरी के निवासियो! मेरी बात को आप लोग सावधानीपूर्वक सुनिये। आप लोग यज्ञ के भागों के भोगने वाले हैं, परम सात्त्विक बल सम्पन्न हैं, सन्तुष्ट आत्मावाले हैं, अपनी महिमा के बल पर स्थित हैं, नित्य ही जगत् की परिपालना करने वाले हैं; किन्तु ऐसे होकर भी आप विना कारण ही दैत्यों तथा दानवों के स्वामियों द्वारा पीड़ित होते आये हैं। उन लोगों को वश में करने के लिए साम आदि तीनों उपायों का आश्रय नहीं लेकर दण्ड का ही विधान करना चाहिये। अतः आप लोग संग्राम की तैयारी कीजिये। सेना को सुसज्जित कीजिए, शस्त्रों का अभ्यास कीजिये तथा अस्त्रों के देवताओं की पूजा करते जाइये। देवगण! सभी लोग मिलकर वाहन तथा रथों का सँजोव कीजिये।'

इन्द्र के ऐसा कहने पर स्वर्गनिवासी देवताओं ने सेनापति के पद पर यमराज को नियुक्त कर यथा शीघ्र ही सेना को सजाना शुरू किया। जो लोग देवताओं के प्रधान थे, उन लोगों ने मिलकर दस सहस्र घोड़ों से युक्त सुवर्णनिर्मित घंटे से परिष्कृत,सब प्रकार की आश्चर्यजनक सैन्य सम्पतियों से तथा सभी देवताओं से युक्त, मातलि नामक सारथी द्वारा रचे गये सुन्दर रथ को देवराज इन्द्र के लिए प्रस्तुत किया, जो शत्रुओं द्वारा कठिनाई से जीता जा सकता था। सेना के अग्रभाग में यमराज भैंसे पर आरूढ़ होकर चल रहे थे, उनके चारों ओर प्रचण्डकर्मा किंकर गण चल रहे थे। यमराज की आँखें महाप्रलय काल की प्रचण्ड ज्वालाओं से पूर्ण आकाश की भाँति धक-धक जल रही थीं। उसी सेना में अग्नि देव बकरे पर सवार होकर हाथ में शक्ति नामक अस्त्र लेकर चल रहे थे। पवन, जिनका वेग सेना में चारों ओर विस्तारित था, हाथ में अंकुश लेकर चल रहे थे। जल के स्वामी वरुणदेव भुजगेन्द्र पर आरूढ़ थे। यक्षेश आकाशगामी नर युक्त रथ पर सवार थे। भयानक आकृति वाले धनपति कुबेर बलवान् सिंह के समान घोर शब्द करते हुए हाथों में गदा तथा तीक्ष्ण तलवार धारणकर उस समर भूमि में चल रहे थे। चन्द्रमा,सूर्य तथा दोनों अश्विनी कुमार विशाल चतुरंगिणी सेना के साथ-साथ चल रहे थे। सुवर्ण के आभूषणों से अलंकृत गन्धर्व गण अपने अधिपतियों के साथ थे। वे सभी गन्धर्व गण सुवर्णनिर्मित आसनों पर विराजमान थे। विविध प्रकार के कवच तथा हथियार धारण किये हुए थे। उनके रथ विचित्र ढंग के थे। उनके शिर पर लगे हुए मयूरपुच्छ शोभायमान हो रहे थे तथा वैदूर्य मणि की बनी हुई मकर की आकृति उनकी ध्वजाओं पर बनी हुई थीं। इधर राक्षसगण लाल रंग के केशों से सुशोभित हो रहे थे। वे युद्ध भूमि में जवाकुसुम के फूल के समान रक्त वस्त्र धारण कर शीघ्रतापूर्वक चल रहे थे। उनकी ध्वजायें गृद्ध के आकार की थीं। वे सब के सब महाबलवान् तथा स्वच्छ श्वेत रंग के लोहे के बने हुए आभूषणों से विभूषित थे। मूसल, तलवार तथा गदा को हाथ में लेकर वे लोग पगड़ी बाँधे हुए रथ में आरूढ़ थे। गजराज तथा प्रलय कालीन मेघों के समान उनके भीषण स्वर हो रहे थे। उस समय उनका भीषण स्वर ऐसा मालूम हो रहा था मानो भयानक उल्कापात अथवा वज्रपात हो रहा हो। उसी सेना में यक्षगण काले रंग की पोशाक पहिने हुए थे। वे भयङ्कर धनुष तथा वाण धारण किये हुए थे। लाल वर्ण के उलूक से समन्वित उनकी महा भयानक ध्वजाएँ थीं। सभी सुवर्ण तथा रत्नों के आभूषणों से अलंकृत थे। राक्षसों की वह सेना गैंडों के चमड़े को पहने हुए शोभायमान हो रही थी। गृद्धों के पंखों की उसमें ध्वजाएँ बनी हुई थीं। हड्डियों के विविध प्रकार के आभूषणों से वह आभूषित थी। मूसल तथा अन्य प्रकार के देखने में महा भयङ्कर हथियारों से युक्त वह सारी सेना बड़ी कठिनाई से देखी जा रही थी। उसमें विविध प्रकार के प्राणियों का भीषण स्वर हो रहा था। किन्नर गण श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थे। श्वेत रंग के बाणों की उनकी पताकाएँ बनी हुई थीं। प्रायः सभी लोग मतवाले हाथियों पर आरूढ़ होकर चल रहे थे। तीक्ष्ण तोमर तथा अन्यान्य शस्त्रास्त्रों को धारण किये हुए थे। मुक्ताओं के जालों से सुपरिष्कृत चाँदी से निर्मित हंस की पताका जलधिनाथ वरुण की थी, जो भयानक धूम की पताका से युक्त अग्नि के समान दिखाई पड़ रही थी। धनपति कुबेर की पताका पद्मराग

तथा महामणि के बने हुए वृक्ष की थी, जो आकाश मण्डल में बहुत ऊपर तक उठी हुई इस प्रकार मालूम हो रही थी मानो आकाश के ऊपर जाने के लिए निरन्तर उठती जा रही है। यमराज की महान् ध्वजा काष्ठ तथा लौह द्वारा निर्मित भेड़िये से युक्त थी। राक्षसराज की पताका प्रेत के मुख की भाँति विकराल मालूम पड़ रही थी। अनुपम कान्तिमान् चन्द्रमा तथा सूर्य की ध्वजाएँ सुवर्णनिर्मित सिंह की बनी हुई थीं। दोनों अश्विनीकुमारों की ध्वजाएँ रत्नों द्वारा अनेक रंग के बने हुए कलशों से विराजमान थीं। सौ यज्ञों को निर्विघ्न समाप्त करने वाले देवराज इन्द्र की ध्वजा सुवर्ण द्वारा निर्मित हाथी से, जो विचित्र प्रकार के रत्नों से सुशोभित तथा श्वेत रंग के चामर से अलंकृत था, संयुक्त थी। इस प्रकार नागों, यक्षों, गन्धर्वों, महान् सर्पों तथा निशाचरों से युक्त वह रणभूमि अति विकराल दिखाई पड़ रही थी। देवराज इन्द्र की सेना तीनों लोकों में अजेय थी। उनकी उस विशाल सेना में देवताओं की तैंतीस करोड़ संख्या थी। श्वेत वर्ण के कान तथा चामर से सुशोभित, हिमालय के समान विशाल आकृति-सम्पन्न, सुवर्णकमल के निर्मल हार द्वारा सुशोभित, कुंकुम आदि के मनोरम चिह्नों से चिह्नित, कपोलभाग पर भ्रमरों के समूहों से व्याप्त ऐरावत नामक महान् गजराज पर, उस समय महा बलवान् विचित्र वर्ण के आभूषणों से आभूषित सहस्रनेत्र पाकशासन इन्द्र स्वर्ग में सुशोभित हो रहे थे, और अपने जाज्वल्यमान वज्र की किरणों के जालों से चकाचौंध उत्पन्न कर रहे थे। चामर तथा केयूर के द्वारा अलंकृत भुजाओं से वे समन्वित थे। सहस्रों वन्दियों द्वारा उनकी प्रशंसा हो रही थी। इस प्रकार तुरंग, मातंग आदि की भयानक सेनाओं से संकुलित श्वेत वर्ण के छत्र तथा ध्वजाओं के समूहों से सुशोभित विफल न होने वाले बाणों से युक्त वह देवताओं की विशाल वाहिनी अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों तथा योद्धाओं द्वारा कठिनाई से जीतने योग्य दिखाई पड़ रही थी। ॥७५-१०२॥

श्री मात्स्य महापुराण के तारकोपाख्यान में रणयोजना नामक एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१४८॥

एक सौ उनचासवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण! देवताओं तथा असुरों के उस महा भयानक युद्ध में दोनों सेनाओं में अति घोर एवं तुमुल संघर्ष हुआ था। गरजते हुए उन देवताओं तथा दैत्यों की सेनाओं में शंख तथा भेरी के शब्दों से, तुरुहियों की सुरीली ध्वनियों से, हाथियों के चिघाड़ने से, घोड़ों की हिनहिनाहट से, रथ के चक्कों की घर्घराहट से, शूर वीरों के धनुष की प्रत्यंचा के भीषण स्वरों से, एक विचित्र एवं भीषण ध्वनि हो रही थी। दोनों पक्षों की सेनाओं के एक दूसरे के सम्मुख उपस्थित हो जाने पर परस्पर विजय की कामना करने वाले, अतिशय क्रोध में उबलते हुए, जीवन की आशा छोड़ देने वाले उन वीरों के मध्य में आपस में भयंकर अनुलोम और विलोम संग्राम होने लगा। रथ वालों से और पैदल से, रथ वालों से और घोड़े वालों से, हाथी वालों से पैदलों से तथा कहीं पर रथी के साथ रथी का ही युद्ध होने लगा। एक पक्ष के

हाथियों से दूसरे पक्ष के हाथियों का तथा घोड़ों से अनेक हाथियों का युद्ध होने लगा। एक पक्ष के कितने पैदल सिपाही शत्रु के अनेक हाथियों तथा घोड़ों से युद्ध करने लगे। तदनन्तर युद्ध भूमि में भाले, वज्र, गदा, भिन्दिपाल, फावड़े, शक्ति, पट्टिश, शूल, मुद्गर, कुणप, गड, श्वेत वर्ण के चक्र, शंकु, तोमर, अंकुश, कर्णि, नालीक, नाराच (सम्पूर्ण लोहे का बना हुआ हुआ अस्त्र), वत्सदन्ता, अर्द्धचन्द्रक, माला शतपत्र, शुकतुण्ड आदि चमकते हुए शस्त्रास्त्रों की अत्यन्त अद्भुत वृष्टि आकाश मण्डल में होने लगी, जिससे सारी दिशाएँ आच्छादित हो गईं। उस समय सारा संसार ही अन्धकार मय दिखाई पड़ने लगा था। इस प्रकार शस्त्रास्त्रों की विपुल वृष्टि में उन दोनों सेनाओं के योद्धागण एक दूसरे को पहचान भी नहीं सकते थे। अतः विना किसी निशाने के ही वे अपने हथियारों के क्रूर लक्ष्यों को विद्ध कर रहे थे। दोनों सेनाओं में कटकर या मरकर गिरे हुए वीरों को वे एक दूसरे के पक्ष वाले भली भाँति देखकर ही पहचानते थे। इस प्रकार युद्ध की सारी भूमि रथ की ध्वजाओं, वीरों की बाहुओं, छत्रों, कुण्डल समेत शिरों, हाथियों, घोड़ों, गिरते हुए तथा गिरने वाले पैदल के सिपाहियों से इस प्रकार आकीर्ण हो गई मानों आकाश सरोवर से नीचे गिरे हुए कमलों से पट गई हो। उस विशाल लड़ाई के मैदान में टूटे हुए दातों तथा फाड़े गये कपोलों वाले बड़े-बड़े विशाल शुण्डादण्डों से विहीन, पर्वत के समान विशालकाय हाथियों के समूह पृथ्वी पर गिरे हुए थे, जिनके मुख से रक्त निकल रहा था। टूट गये हैं, जुआ के काष्ठ दण्ड चक्के तथा धुरी के अग्रभाग जिनके—ऐसे विशाल रथ खण्ड-खण्ड होकर उस युद्ध भूमि में तितर-बितर होकर पड़े हुए थे। सहस्रों की संख्या में घोड़े छिन्न-भिन्न होकर नीचे गिरे हुए थे। इस प्रकार सारी युद्धभूमि रक्त के बड़े-बड़े तालाबों से युक्त होकर कठिनाई से पार करने योग्य बन गई थी। वहाँ की नदियाँ रक्त-जल की भँवरों से युक्त होकर मांस खानेवाले जीव धारियों के हर्ष का कारण बन गयी थीं। रक्त से सनी हुई उस समस्त भीषण रणभूमि में बेताल गण प्रसन्नतापूर्वक क्रीडा कर रहे थे। ॥१-१६॥

श्रीमात्स्य महापुराण में तारकासुरोपाख्यान में देवासुरयुद्धवर्णन नामक
एक सौ उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥१४६॥

एक सौ पचासवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण! इस प्रकार के महा भयानक युद्ध के उपरान्त अतिक्रोध से मूर्छित होकर देवताओं के सेनानी यमराज ने असुरसेनापति ग्रसन नामक दानव को देखकर अपने अतिशय प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी बाणों की घोर वृष्टि की। यम के अनेक बाणों द्वारा बींधे गये अतुल पराक्रमशाली ग्रसन ने इस प्रकार भीषण आक्रमण करनेवाले यम से बदला चुकाने की भावना से अपने भयानक धनुष को कानों तक खींचा और अत्यन्त भयानक पाँच सौ बाणों द्वारा यमराज के ऊपर भीषण आक्रमण किया और इस प्रकार उसे घायल कर दिया। यमराज ने उन घोर बाणों के तथा ग्रसन के परम

पराक्रम को देखकर अपनी उग्र बाणों की वृष्टि द्वारा ग्रसन के ऊपर घोर आक्रमण किया। दानवराज ग्रसन ने यमराज की उस भयानक बाणवृष्टि को, जो समस्त आकाशमंडल में फैलती जा रही थी, देखकर अपने बाणों की वृष्टि से छिन्न-भिन्न कर दिया। यमराज ने अपने बाणों के उस समुदाय को इस प्रकार छिन्न-भिन्न होते देखकर अत्यन्त वेग से एक महा भयानक मुद्गर को उसके ऊपर फेंका। दानवनन्दन ग्रसन ने आकाशमण्डल में अपनी ओर आते हुए उस विशाल मुद्गर को देखकर उछलकर बाएँ हाथ से पकड़ लिया और उसी मुद्गर को ठीक तौर से पकड़ कर अतिक्रोधपूर्वक यमराज के वाहन महिष पर वेग से प्रहार किया, जिससे वह धराशायी हो गया। गिरते हुए उस महिष से उछल कर यमराज कूद पड़े और खड़े होकर भाला लेकर ग्रसन के मुख पर दृढ़ प्रहार किया। उस प्रहार से मूर्च्छित होकर ग्रसन पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस प्रकार समरभूमि में ग्रसन को गिरा देखकर भयानक पराक्रमी जम्भ नामक दैत्य ने भिन्दिपाल द्वारा यमराज के हृदय में कठोर आघात किया, जिसके प्रहार से यमराज के मुख से रक्त गिरने लगा। यमराज को पीड़ित देखकर धनपति कुबेर हाथों में गदा लेकर दस सहस्र यक्षों से युक्त हो अति क्रोध से युद्ध करने के लिए जंभ के सम्मुख आ पहुँचे। दानवों की प्रबल सेना से संयुक्त बुद्धिमान् जम्भ ने क्रोध से आये हुए कुबेर को देखकर एक स्नेही की भाँति मीठी-मीठी बातें की। उधर ग्रसन की मूर्च्छा टूटी और उसने यमराज के ऊपर एक ऐसी गदा द्वारा आघात किया, जो मणियों तथा सुवर्ण के द्वारा सजायी गई थी। वह भीषण गदा वजन में बहुत भारी थी और शत्रुओं का निश्चय ही विनाश करनेवाली थी। महिष वाहन यमराज ने उस गदा को इस प्रकार अप्रत्याशित रूप में ऊपर गिरते देखकर प्रतिरोध के लिए समस्त संसार के विनाश करने में समर्थ अत्यन्त भयानक उस दण्ड को ग्रसन के ऊपर फेंका, जिसके चारों ओर प्रचण्ड अग्नि की लपटें उठ रही थीं। आकाशमण्डल में जाकर उस भीषण दण्ड ने गदा का संयोग प्राप्तकर भयानक बादलों की भाँति गर्जना की। उस समय उन दोनों अस्त्रों में पर्वत के समान दुःसह संघर्ष होने लगा। उनके परस्पर के संघर्ष के कारण निकले हुए शब्दों से सारी दिशाएँ व्याप्त हो कर जड़ हो गईं। समस्त जगत् प्रलय के आगमन की आशंका से व्याकुल हो गया। क्षण ही भर में शब्दों के शान्त हो जाने पर जलती हुई उल्का के समान दोनों के मध्य में एक प्रकाश हुआ। इस प्रकार उन दोनों—गदा और दण्ड—के संघर्ष से समस्त गगनमण्डल भयानक दिखलाई पड़ने लगा। तदनन्तर यम के दण्ड ने गदा को तोड़कर ग्रसन के शिर पर इस प्रकार कठोर आघात पहुँचाया जिस प्रकार दुराचारी पुरुष का दुर्व्यवहार उसकी श्री का अपहरण करके उसके ऊपर दृढ़ प्रहार करता है। उस भीषण दण्ड के प्रहार से ग्रसन ने सारी दिशाओं को अंधकार में लीन होते हुए के समान देखा अर्थात् उसकी आँखों के आगे अंधकार छा गया और वह निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसका शरीर धूलि से धूसरित हो गया जिससे देवताओं तथा दानवों—दोनों की—सेनाओं में महान् हाहाकार फैल गया। ॥१-२१॥

तदुपरान्त दो घड़ी के बाद ग्रसन ने जब होश संभाला और अपने शरीर को आभूषणों तथा वस्त्रों के टूट तथा फट जाने से श्रीविहीन तथा चोट के कारण छिन्न भिन्न देखा तो इसका भीषण बदला लेने का

विचार किया। अपने मन में वह सोचने लगा कि मुझ जैसे बलवान् पुरुष के जीते ही मेरे स्वामी की बेइज्जती के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। मेरे पराजित हो जाने पर मेरे आश्रय में रहनेवाली सेनाएँ भी विनष्ट हो जायँगी। जो असम्भावित अथवा अयोग्य है, वह अपनी इच्छानुरूप चाहे जो करे; किन्तु जो व्यक्ति पहले योग्य एवं सम्भावित मान कर सैकड़ों बार व्यर्थ ही उद्घोषित किया गया है, उसका ऐसे समय अपनी इच्छा से कार्य करना अनुचित है, अर्थात् उस व्यक्ति के, जिसकी योग्यता के विषय में कोई ख्याति नहीं है, स्वेच्छाचारी होने में कोई हर्ज नहीं है, किन्तु जो सैकड़ों बार प्रतिष्ठित हो चुका है, उसे तो स्वामी की इच्छा के अनुरूप कार्य करना ही चाहिये। इस प्रकार विचार करके महाबलवान् ग्रसन वेगपूर्वक उठ खड़ा हुआ। पर्वत के समान विकराल आकृति वाले उस महान् असुर ने यम के दण्ड के समान भीषण मुद्गर को हाथों में ले घोर संकल्प से होठों के दोनों दलों को चबाते हुए रथ द्वारा शीघ्रतापूर्वक युद्ध भूमि की ओर प्रस्थान किया। युद्ध भूमि में यमराज के सम्मुख पहुँचकर उसने अपने उस भयानक मुद्गर को घुमाकर यम के मस्तक पर घोर आघात किया। अचकचाये हुए नेत्रों से महाबलवान् यम ने शिर पर आते हुए उस प्रभावशाली मुद्गर को देखा और शीघ्रतापूर्वक उसे लक्ष्य से वंचित कर दिया अर्थात् अपने पूर्व स्थान से वह हट गये। यमराज के अपने स्थान से दूर हट जाने पर उस मुद्गर की प्रचण्ड चोट से महापराक्रमी यमराज के सहस्रों अनुचरों का विनाश हो गया। उस मुद्गर के द्वारा घोर किंकरों की सेना को विनष्ट देखकर अनेक के प्रहार करने की चेष्टा से ग्रसन ने उस यम किंकरों की सेना को देखा और अपने मन में यह समझा कि ये सब माया द्वारा विनिर्मित सहस्रों यमराज ही हैं। ऐसा विचार कर ग्रसन ने अस्त्रों की भीषण वृष्टि कर उस सेना को तितर-बितर कर दिया। तदनन्तर कल्पान्त के समुद्र की भाँति भीषण क्षुब्ध होकर वह क्रोध से मूर्च्छित-सा हो गया। उसने अपने प्रचण्ड शूलों द्वारा किसी को भिन्न कर दिया तो किसी की अपने अमोघ बाणों द्वारा प्राणविहीन कर दिया। किसी को गदा से चूर्ण कर दिया तो किसी को मुद्गरों की मार से जीवविहीन कर दिया और किसी को दारुण भालों की चोटों से मार डाला। उस समय अन्य बहुत से यम के किंकरगण ग्रसन के बाहु मण्डल में लटके हुए थे, उनमें से कुछ लोग शिलाओं द्वारा प्रहार कर रहे थे तो कुछ लोग ऊँचे-ऊँचे वृक्षों द्वारा आघात कर रहे थे। कुछ अन्य लोग उसके शरीर में अपने तीक्ष्ण दांतों से काट भी रहे थे। यमराज के अन्य अनुचरगण दानव की पीठ में अपनी मुट्ठियों से प्रहार कर रहे थे। इस प्रकार यम के घोरकर्मा अनुचरों द्वारा पीड़ा किये जाने पर क्रोध से मूर्च्छित होकर उस ग्रसन ने अपने शरीर को पृथ्वी पर गिराकर सहस्रों को पीस डाला। कितनों को उठकर उसने अपने मूके के प्रहार से मार डाला। इस प्रकार यम के अनुचरों के युद्ध से जब ग्रसन थक गया तब यमराज ने भी उसे थका हुआ देखा। तदुपरान्त अपनी सेना को विनष्ट देखकर महिष पर सवार होकर और अपने दण्ड को ऊपर उठाकर वे युद्धभूमि में पुनः प्रस्थित हुए। ग्रसन ने आते हुए यमराज को देखकर अपनी गदा द्वारा उनके वक्षस्थल पर कठोर प्रहार किया। ग्रसन के इस प्रहार को कोई परवा न कर शत्रुओं के विनाशक यमराज ने क्रोधपूर्वक अपने दण्ड से ग्रसन के रथ में आगे चलने वाले बाघों के ऊपर घातक प्रहार किया। इस प्रकार दण्ड द्वारा मारे

गये उन बाघों से ग्रसन का रथ युद्धभूमि के आधे मार्ग में खड़ा कर दिया गया। बीच युद्धभूमि में खड़ा हुआ दैत्य का वह रथ इस प्रकार शोभित हो रहा था जैसे संशय में पड़कर पुरुष का चित्त आगे बढ़ने से रुक जाता है। तदनन्तर विवश होकर वह रथ को छोड़कर पैदल ही युद्ध भूमि में आगे बढ़ा और अपनी दोनों भुजाओं से यमराज को पकड़कर मल्ल युद्ध करने लगा। उस समय यम भी शस्त्रों को छोड़कर बाहु युद्ध में प्रवृत्त हो गये। बलशाली ग्रसन ने यमराज के कटिभाग के वस्त्र को पकड़कर उन्हें इस प्रकार घुमाया जैसे भ्रम द्वारा चित्त इधर-उधर घूमता है। यमराज ने भी अपनी दोनों बाहुओं से ग्रसन के कण्ठ को पकड़कर बलपूर्वक पृथ्वी तल से ऊपर उठाकर खूब घुमाया। तदनन्तर वे दोनों एक दूसरे पर मुष्ठियों द्वारा कठोर प्रहार करने लगे। उस समय दानवराज ग्रसन के भीमकाय होने के कारण यमराज के बाहु श्रान्त हो गये, जिससे दैत्य के कंधों पर अपने मुख को रखकर वे थोड़ी देर तक विश्राम करने की इच्छा करने लगे। यमराज को इस प्रकार थका हुआ देखकर ग्रसन ने उन्हें पृथ्वी पर पटक दिया और अपने पैरों तथा हाथों के प्रहार से उन्हें तब तक खूब पीटा जब तक कि उनके मुख से बहुत-सा रक्त नहीं निकलने लगा। तदुपरान्त दानवराज ग्रसन यमराज को मृत समझ विजय प्राप्ति की सूचना देने के लिए उन्मुक्त कण्ठ होकर घोर शब्द करने लगा और स्वयं सेना में पहुँचकर महान् पर्वत की भाँति अवस्थित हुआ। ॥२२-४१॥

उधर क्रुद्ध होकर जम्भ ने अपने मर्मभेदी बाणों द्वारा सभी दिशाओं को आच्छादित कर धनाधिप कुबेर की सारी सेना का विनाश करना प्रारम्भ किया। तब क्रोध से आगबबूला होकर धनाधिप ने युद्ध भूमि में दानवपति जम्भ के हृदय में अग्नि के समान भीषण सहस्र बाणों द्वारा आघात किया और सौ बाणों द्वारा सारथी, दस बाणों द्वारा ध्वजा, पचहत्तर बाणों द्वारा दोनों हाथों तथा दस बाणों द्वारा धनुष के ऊपर प्रहार किया। वे सब बाण तेजोमय पुच्छों से सुशोभित तैलतप्त तथा लक्ष्य से कभी चूकनेवाले नहीं थे। कुबेर ने एक बाण द्वारा सिंह पर तथा तीक्ष्ण दस बाणों द्वारा उस असुरराज पर जब घातक प्रहार किया। तब दैत्यराज जम्भ ने हृदय में धैर्य धारणकर कुछ संत्रस्त चित्त हो शत्रु के मर्म का विदारण करने वाले बाणों को हाथ में लिया और धनाधिप कुबेर के उस दुष्कर कार्य को देखकर क्रोध युक्त हो धनुष को कान तक खींचकर अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा वक्षस्थल पर चोट किया। फिर एक बाण द्वारा उसके सारथी के हृदय में दृढ़ प्रहार किया। एक तैलधौत बाण द्वारा कुबेर के धनुष की प्रत्यंचा को काट दिया। इसके उपरान्त भी उस क्रूरकर्मा जम्भ ने मर्मभेदी अति तीक्ष्ण दस बाणों द्वारा धनपति कुबेर की छाती में कठोर प्रहार किया। असुर के इस घातक प्रहार से अतिशय घायल धनाधिपति कुबेर ने अति मूर्च्छित होते हुए की भाँति क्षण भर धैर्य धारण कर अपने भयानक धनुष को खींचा और वेगपूर्वक सहस्रों तीक्ष्ण बाणों को बरसाते हुए दसों दिशाओं को, आकाश को, असुरों की सेना को तथा सूर्य मण्डल को आच्छादित-सा कर दिया। तदनन्तर जम्भ ने भी पौरुष की अतिशयता के कारण युद्ध में अपने एक-एक बाणों द्वारा अल्प आयास में ही कुबेर के उन सारे बाणों को नष्ट कर दिया। दानवराज जम्भ के इस कार्य को देखकर धनाधिपति कुबेर ने अति

क्रुद्ध होकर अनेक प्रकार के बाणों की वृष्टि करके उसकी सेना का विध्वंस-सा कर दिया। दानव ने धनपति कुबेर का यह अद्भुत कर्म देख अति भयानक लोहे के बने हुए सुवर्ण से विभूषित मुद्गर को हाथ में लेकर कुबेर के अनुचर यक्षों को सहस्रों की संख्या में चूर्ण कर डाला। दैत्य द्वारा मारे जाते हुए वे यक्षगण परम घोर भयानक शब्द करते हुए धनाधिपति कुबेर के रथ को घेर कर खड़े हो गये। कुबेर ने अपने अनुचरों को दुःखित देखकर अपने परम दारुण शूल को हाथ में लिया और उसके द्वारा शीघ्र ही सहस्रों दैत्यों का विनाश कर दिया। कुबेर द्वारा विनाश किये जाते हुए दैत्यों को देखकर क्रोध से मूर्च्छित होकर जम्भ ने दैत्य के शत्रु देवताओं के मर्दन करनेवाले अपने परशु को हाथ में लिया। जम्भ ने अपने उस श्वेत धारवाले परशु से कुबेर के महारथ को तिल-तिल करके इस प्रकार काट डाला जैसे चूहा चिकने कपड़ों को काट डालता है। तब धनाध्यक्ष कुबेर पैदल ही अपनी उस महा भयानक गदा को, जो महा युद्धों में गर्वीले शत्रुओं का विनाश करने वाली थी, जो सभी जीवधारियों से असहनीय थी, जिसकी अनेक वर्षों से पूजा की जा रही थी, जो अनेक प्रकार के चन्दनों से अलंकृत थी, देवताओं के पुष्पों से सुवासित निर्मल श्वेत रंग के लोहे की बनी थी, वजन में बहुत भारी थी, जिसका निशाना कभी चूकने वाला नहीं होता था, जो सुवर्ण के विविध आभूषणों से आभूषित थी, ग्रहण कर अति क्रुद्ध हो जम्भ दानव के शिर पर घातक आघात किया। बिजली के समूहों से अलंकृत की भाँति तेज से जलती हुई उस गदा को अपने ऊपर आती देखकर जम्भ ने उसे तोड़ने तथा विफल करने के लिए शस्त्रों की विपुल वृष्टि की। चक्र, कुणप, भाला, भुशुण्डी, पट्टिश आदि शस्त्रों को उस महापराक्रमशाली दैत्य ने अपने सुवर्ण के केयूर से अलंकृत दोनों बाहुओं द्वारा उस गदा के ऊपर फेंका। किन्तु उस महती गदा ने उन सभी हथियारों को व्यर्थ करके दैत्य की छाती पर इस प्रकार कठोर आघात किया जैसे कन्दरा में बहुत बड़ा उल्कापात होता है। उस गदा द्वारा अति ताडित वह दानवपति रथ के जुए पर गिर पड़ा। उस समय नष्ट चेतनावाले उस दानव के इन्द्रियों के स्रोतों से रक्त की धारा फूट निकली। ॥ ५०-७५ ॥

जम्भ को मरा हुआ समझ कर भीषण शब्द करता हुआ कुजम्भ नामक असुर धनाधिप कुबेर की बात से अति कुपित हो परम क्रोध के साथ युद्ध भूमि में उतरा। और यक्षाधिपति के चारों ओर सभी दिशाओं में उसने बाणों का जाल-सा रच दिया। कुबेर ने अपने अर्द्धचन्द्राकार बाणों से उस जाल को छिन्न-भिन्न कर दिया। उसके विनाश के लिए बलवान यक्षपति ने बाणों की विपुल वृष्टि की। उस बाण के समूहों को दैत्य ने अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा एकदम काट दिया। धनाधिप ने अपनी बाण वृष्टि को व्यर्थ हुई देख परम दुर्धर्ष अपनी शक्ति को हाथ में लिया, जो सुवर्ण के बने हुए घण्टों से स्वर युक्त हो रही थी। उसने रत्नजटित केयूर की किरणों के समूहों से आभूषित अपने हाथ से उसे आजमा कर कुजम्भ के लिए वेगपूर्वक छोड़ दिया। कुबेर द्वारा छोड़ी गई उस शक्ति ने कुजम्भ के अति कठोर हृदय को फाड़ डाला। इस प्रकार अति बलवान् राक्षस को अति तुच्छ मानते हुए धनाधिपति कुबेर ने हृदय का विदारण कर पृथ्वीतल पर प्रस्थान किया। तदनन्तर दो घड़ी में उस चोट से कुछ स्वस्थ होकर दारुण

आकृतिवाले उस दैत्य ने एक ऊँची तथा श्वेत धारवाली अपनी बरछी को हाथ में लिया और उससे कुबेर के दोनों स्तनों के मध्य भाग में इस प्रकार कठोर आघात किया जिस प्रकार दुष्टों की मर्मवेधिनी तीखी वाणी द्वारा सज्जनों का हृदय बिंध जाता है। उस बरछी के कठोर आघात से धनपति कुबेर मूर्च्छित हो गये, और रथ के जूए पर बुड्ढे बैल की भाँति लड़खड़ा कर गिर पड़े। नरवाहन धनपति कुबेर को ऐसी दयनीय दशा में देखकर हाथ में तलवार लेकर निर्ऋति युद्ध भूमि में आये। उनके पीछे-पीछे निशाचरों की विशाल वाहिनी चल रही थी। युद्ध भूमि में आकर निर्ऋति ने वेगपूर्वक भयानक पराक्रमशाली कुजम्भ का पीछा किया। पीछा करते हुए उस राक्षसराज भयानकपराक्रमी निर्ऋति को देखकर कुजम्भ ने उस समय अपनी सारी सेना को उस का संहार करने के लिए प्रेरित किया। भाला तथा अन्य अनेक प्रकार के अस्त्रों को बरसाती हुई कुंजभ की प्रेरणा से सेना को सामने आती देख कर आभूषणों की कान्ति से चमकते हुए राक्षसराज निर्ऋति ने वेगपूर्वक रथ से कूद कर अपनी नीले म्यान वाली तलवार से शत्रुओं के उन शिरों को चारों ओर से कमल की भाँति काट डाला, जो विचित्र रंग के मालूम पड़ रहे थे। उस लम्बी भुजा तथा भीषण तलवारवाले राक्षस ने ऊँचे-नीचे पीछे-आगे—जहाँ कहीं भी पाया—सब स्थानों पर शत्रुओं का भीषण विनाश किया। और अति क्रोध से होठों को चबाते हुए भृकुटी चढ़ाये तथा मुँह की विकृत आकृति बनाये हुए प्रचण्ड कोप से लाल नेत्र हो रण भूमि में दानवों का विनाश कर दिया। तदनन्तर अपनी सेना को विनष्टप्राय होती देख कुंजभ धनाधिपति कुबेर को छोड़कर राक्षसराज निर्ऋति की ओर दौड़ा। तब तक जम्भ दानव की मूर्च्छा भी छूट गई और उसने धनाधिप के अनुचर यक्षों को जीते हुए ही पकड़ कर सहस्रों की संख्या में अपने पाश में बाँध लिया। दानवों ने उन धनाधिप के अनुचरों के अति सुन्दर विविध प्रकार के रत्नों तथा विमानों को छीनकर अपने अधीन कर लिया। इधर धनाधिपति कुबेर की भी मूर्च्छा तब तक बीत गई और वे उस समय अपनी सेना की ऐसी दशा देख गरम दीर्घ उच्छ्वासें छोड़ने लगे। तदनन्तर रोष से लाल नेत्र होकर उन्होंने अपने दिव्य गरुड के अस्त्र का ध्यान कर धनुष पर बाण का संधान किया। और उस शत्रु सेना के विनाशक बाण को दानवों की सेना पर छोड़ा। सर्वप्रथम उस धनुष से धूएँ की प्रचण्ड लपटें उठीं, उसके अनन्तर चिनगारियों के समूह उठे। इस प्रकार उस अस्त्र ने अपने भीषण प्रभाव से समस्त आकाशमंडल को चारों ओर से अग्नि की लपटों से व्याप्त-सा कर दिया। तदुपरान्त धीरे-धीरे क्रमानुसार वह अनेक रूपों में इस प्रकार शत्रु सेना में फैल गया कि एक दम दुर्निवार हो गया। थोड़ी ही देर में सारा संसार अंधकार में लीन हो गया और रूप रहित-सा दिखाई पड़ने लगा। उस अनुपम तेज की आकाश मण्डल में उपस्थित देवतागण प्रशंसा करने लगे। अत्यन्त पराक्रमशाली दैत्य कुंजभ शत्रु की ऐसी शक्ति को देखकर जोरों से शब्द करता हुआ पैदल ही कुबेर की ओर दौड़ पड़ा। धनाधिप कुबेर सम्मुख उपस्थित भीषणाकृति दैत्य जम्भ को देखकर सम्भ्रम में पड़ गये और युद्ध भूमि से विमुख होकर भागने लगे। भागते हुए उनके मस्तक से रत्न जटित मुकुट इस प्रकार पृथ्वी पर गिर पड़ा जैसे आकाश से सूर्य का बिम्ब। 'उत्तम शूरवीरों के कुल में उत्पन्न होने वाले

शूरवीरों का स्वामी (सेनापति) जब रण से भाग जाता है तो उस समय उसका आभूषण सेना के अग्रभाग में विनियुक्त होता है।' अर्थात् उसी को आगे करके उस समय भी उसके वीर अनुयायी रणभूमि में युद्ध चालू ही रखते हैं—ऐसा विचारकर उन दुर्धर्ष यक्ष वीरों ने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों को हाथों में धारणकर मुकुट को चारों ओर से घेर लिया और युद्ध करने की इच्छा से वे संग्राम भूमि में पूर्ववत् बने ही रह गये। कुबेर के अनुगामी वे वीर यक्षगण स्वाभिमान के परम धनी थे। उनको उस प्रकार युद्ध भूमि में कुबेर के अभाव में भी खड़ा देखकर प्रचण्ड पराक्रमशाली दैत्य अत्यन्त अमर्षयुक्त हुआ और पर्वत के समान गम्भीर अति भयानक बनी हुई मुशुण्डी को हाथों में लेकर मुकुट की रक्षा करनेवाले उन यक्षों को उसने पीस डाला। इस प्रकार उन रक्षकों का संहार कर देवशत्रु दानवराज जम्भ ने मुकुट को अपने रथ में रखकर युद्ध में कुबेर को जीतकर तथा शरीरधारियों के आभूषण में लगे हुए विविध अमूल्य रत्न आदि वस्तुओं को लेकर अपनी सेना की ओर प्रस्थान किया। और उधर कुबेर मुकुट के गिर जाने से केशों को इधर-उधर लटकाये हुए दीन भाव से देवनायक इन्द्र के पास पहुँचे। ॥७६-१०८॥

रजनीचर नंदन राक्षसराज निर्ऋति ने कुजम्भ के साथ युद्ध करते हुए अपनी अमोघ माया का विस्तार किया और समस्त जगत् को अंधकारमय करके दैत्यराज को मोहित कर लिया। उस समय समस्त दैत्यों की सेना नेत्रों से विफल हो गई और एक पग से दूसरे पग तक चलने में भी असमर्थ हो गयी। अनेक प्रकार के अस्त्रों की वृष्टि कर दानवों की उस सेना को, जिसके वाहनगण अतिशय हिम के पड़ने से तथा अंधकार की भीषणता से आतुर हो गये थे, विनष्ट कर दिया। इस प्रकार दैत्यों के मारे जाने पर तथा कुजंभ के मूर्च्छित हो जाने पर महाप्रलय के बादलों की भाँति भयानक आकृति वाले दानवराज महिषासुर ने अपने सावित्र नामक अस्त्र को चलाया, जो चारों ओर से उल्का के समूहों से सुशोभित हो रहा था। परम प्रतापशाली सावित्र नामक अस्त्र के संधान किये जाने पर उस निविड़ अन्धकार का विनाश हो गया। उस अस्त्र ने अग्नि की चिनगारियों से युक्त होकर समस्त अंधकार को दूर कर दिया, जिससे समस्त आकाशमण्डल खिले हुए लाल कमलों से युक्त शरत्कालीन सरोवर की भाँति निर्मल हो गया। तदनंतर अंधकार के विनष्ट हो जाने पर नेत्रज्योति को प्राप्त करनेवाले दैत्यों के सेनापतियों ने देवताओं की सेना के साथ अति भयानक तथा अद्भुत संग्राम किया। अमर्ष से युक्त होकर दैत्यों ने बहुत से शस्त्रों का संधान किया तथा भुजंगास्त्र का भी प्रयोग किया। कुजम्भ अपने घोर भयानक धनुष तथा सर्पों के समान विकराल बाणों को लेकर शीघ्रतापूर्वक राक्षसराज निर्ऋति की सेना की ओर दौड़ा। राक्षसराज निर्ऋति ने उसे इस प्रकार क्रोधपूर्वक आते हुए देखकर अपने उन तीक्ष्ण बाणों द्वारा, जो विकरालता में सर्पों के समान थे, उसको घायल किया। उस समय जब कवच से बाण निकालने, लक्ष्य पर उनका संधान करने अथवा किसी उपाय से उन क्रूर बाणों द्वारा जीवन की रक्षा करने का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता था तब देवताओं के शत्रु विचित्र कार्य करनेवाले उस राक्षसराज ने अति लाघवपूर्वक अपने बाणों से उसके बाणों के समूह को छिन्न-भिन्न कर डाला और एक बड़े तीक्ष्ण बाण द्वारा उसके रथ की

ध्वजा को भी विनष्ट कर दिया। भाले को हाथ में लेकर और उसी से सारथी को मारकर रथ से नीचे गिरा दिया। युद्धभूमि में राक्षसराज निर्ऋति के इस पराक्रमपूर्ण कार्य को देख क्रोध से लाल नेत्र होकर दैत्य कुजम्भ रथ से पृथ्वी पर कूद पड़ा और वेगपूर्वक शरद् ऋतु के आकाश के समान नीली तलवार को एक हाथ में तथा उदयकालीन दस चन्द्रमा के समान आभूषणों से विभूषित चर्म (ढाल) को दूसरे हाथ में धारणकर अत्यन्त पराक्रम से राक्षसराज की ओर दौड़ पड़ा। राक्षसराज निर्ऋति ने इस प्रकार क्रोध पूर्वक आये हुए कुजम्भ के हृदय में अपने मुद्गर से घोर आघात किया, जिसके कठोर प्रहार से अति विह्वल होकर वह विक्षुब्ध हो गया। किन्तु निश्चेष्ट होकर भी पर्वत के समान वह धीर दैत्य युद्धभूमि में तब भी अड़ा रहा। कुछ देर बाद आश्वस्त होकर अति पराक्रमशाली उस दैत्यराज ने अपने रथ पर आरूढ़ होकर बाएँ हाथ से राक्षसपति को पकड़ लिया। और घुटनों के बल खड़ा होकर उसके बालों को पकड़कर अति क्रोध युक्त हो तलवार द्वारा उसके शिर को काट लेने की चेष्टा भी की। इसी बीच जलाधिपति वरुण ने अपने पाश से दैत्यराज के दोनों हाथों को बाँध लिया। भुजा के बँध जाने पर उस दैत्य कुजंभ के पौरुष को व्यर्थ करके पाशधारी वरुण ने दयाभाव छोड़ कर अपनी भीषण गदा लेकर उसके ऊपर कठोर आघात किया। उस कठोर प्रहार से मुँह नाक कान आदि इन्द्रियों के छिद्रों से रक्त उगलते हुए उस दैत्यराज ने विद्युत् की मालाओं से सुशोभित मेघ का रूप धारण कर लिया। कुजम्भ को ऐसी अवस्था में गया हुआ देखकर महिषासुर नामक भयानक तथा तीक्ष्ण दांतों वाले दैत्य ने अपने फैलाये हुए अगाध मुख में उन दोनों—वरुण तथा निर्ऋति—देवताओं को निगल लेने की क्रूरचेष्टा की। उस दैत्यराज की इस भयानक चेष्टा को देखकर उन दोनों ने उसके भय से रथ का मार्ग छोड़कर बड़े वेग से शीघ्र ही विह्वल होकर दो दिशाओं में भागना शुरू किया। निर्ऋति ने शीघ्र ही पाकशासन इन्द्र की शरण ली। उधर अतिक्रुद्ध होकर महिषासुर ने वरुण का पीछा करके दौड़ाया। इस प्रकार प्रत्यक्ष काल के मुख में जाते हुए वरुण को देखकर हिमांशु चन्द्रमा ने हिम के समूहों से अतिशय व्याप्त अपने सोम नामक अस्त्र का प्रादुर्भाव किया। और दूसरे वायव्य नामक अनुपम अस्त्र का भी प्रादुर्भाव उन्होंने उसी क्षण किया। चन्द्रमा द्वारा छोड़े गये उस वायु तथा हिम के बाणों द्वारा सभी दैत्यगण अति व्यथित होकर अति शीत से सूख-से गये और पौरुष से एकदम रहित हो गये। उस समय वे अपने पैरों से चलने में भी असमर्थ हो गये और हाथों में अस्त्र भी नहीं ग्रहण कर सके। इस प्रकार चन्द्रमा द्वारा चलाये गये भयानक हिमखण्डों के समूहोंवाले अस्त्रों से असुरों के सैन्यदल का शरीर सब ओर से एकदम बेकाम हो गया। भयानक शीत से काँपते हुए मुखवाला महिषासुर भी उस समय कोई प्रयत्न करने में असमर्थ रहा और दोनों हाथों को काँख में छिपाकर नीचे मुख किये हुए चुपचाप बैठा रहा। इस प्रकार चन्द्रमा द्वारा पराजित किये गये दैत्य गण किसी प्रकार भी प्रतिकार करने में असमर्थ रहे और युद्ध करने की अभिलाषा दूर कर केवल जीवन मात्र की रक्षा करने के लिए बैठे रहे। तब क्रोध से अभिभूत होकर कालनेमि नामक दैत्य ने अन्य दैत्यों से कहा—'अरे ओ! शृंगार करनेवाले शूरो! तुम सभी लोग तो शस्त्रास्त्रों के पारगामी

हो, तुम लोगों में से एक-एक भी अपनी भुजाओं से भूमण्डल को उठाने की क्षमता रखता है। समस्त चराचर समेत भूमण्डल को अकेले ही निगल जाने में तुम सब समर्थ हो, अधिक क्या ? सभी स्वर्गवासी देवता मिलकर तुम लोगों में से किसी एक की भी बराबरी कर सकने की सामर्थ्य नहीं रखते। अद्भुत पराक्रम शालियो ! तुम्हारी सोलहवीं कला की भी तुलना सुर लोग यत्नपूर्वक नहीं कर सकते, तो फिर क्यों इस तरह तुम लोग देवताओं से पराजित होकर यहाँ से भागे जा रहे हो ? रुकते जाओ ! शूरवीरों के लिए यह कार्य उचित नहीं है—विशेषकर दैत्य वंश में जन्म लेने वालों के लिए। समस्त जगत् को मारने की सामर्थ्य रखनेवाला हम लोगों का स्वामी तारक इस समय यहाँ उपस्थित नहीं है। अतः इस प्रकार युद्ध से विमुख हो जाने पर वह क्रुद्ध होकर सभी के प्राणों को हर लेगा।' वे असुरगण, जिनकी शीत के कारण सुनने की शक्ति नष्ट हो गयी थी, उस समय वाक्शक्ति की पटुता से भी शून्य हो गये थे। अतः वे मूक भी हो गये थे। उनके दाँतों की पंक्तियाँ शीत से कटकटा रही थीं। शीत द्वारा असमर्थ किये गये उन दैत्यों को, जिनकी चेतना नष्ट हो गयी थी, देखकर महाअसुर कालनेमि ने उस कार्य को काल की सामर्थ्य समझकर अपनी दानवी माया का सहारा लिया और अपने विशाल शरीर का विपुल विस्तार किया। जिससे समस्त आकाशमंडल एवं दसो दिशाओं को व्याप्त कर लिया। तदुपरान्त उस दैत्येन्द्र ने अपने शरीर में दस सहस्र सूर्यों का निर्माण किया और सारी दिशाओं को प्रचण्ड अग्नि की ज्वालाओं से व्याप्त कर लिया। जिससे समस्त त्रैलोक्य मण्डल क्षण भर में अग्नि की ज्वालाओं से पूर्ण-सा हो गया। उस अग्नि की भीषण ज्वाला से हिमांशु चन्द्रमा शान्त हो गये। फिर क्रम से शीतकालीन उस दुर्दिन का भी विनाश हो गया। कालनेमि की माया द्वारा महा बलवान् दैत्यों की उस सेना को प्रबुद्ध हालत में देखकर लोक को ज्योति प्रदान करनेवाले भगवान् दिवाकर सूर्य ने अति क्रोध युक्त हो अरुण से कहा—॥१०९-१५१॥

दिवाकर बोले—'अरुण ! मेरे रथ को शीघ्र ही वहाँ पहुँचाओ, जहाँ पर कालनेमि का वह रथ है। वहाँ अति विषम युद्ध होगा, जिसमें शूरवीरों का विपुल विनाश होगा। चन्द्रमा तो यहाँ पराजित हो चुके हैं, जिनकी सेना पर हम सभी लोग निर्भर थे।' सूर्य के ऐसा कहने पर गरुड के पूर्वज अरुण ने श्वेतवर्ण की चमर और मालाओं से विभूषित, प्रयत्नपूर्वक सँभाले गये अश्वों द्वारा ढोये जाते हुए सूर्य के रथ को आगे की ओर हाँका। उस समय जगत् के नेत्र महा भाग्यशाली भगवान् भास्कर ने एक बहुत बड़ा धनुष धारण किया। और उस पर सर्पों के समान विकराल दो दिव्य वाणों के संधान करने की चेष्टा की। उनमें से एक वाण को उन्होंने संचार नामक मंत्र से संयोजितकर छोड़ा और दूसरे अस्त्र को इन्द्रजाल से संयोजित करके संधान किया। प्रथम संचार नामक अस्त्र ने सैनिकों के रूपों का क्षण भर में विपर्यय कर दिया, जिसके प्रभाव से देवताओं का रूप एकदम दैत्यों की भाँति हो गया और उधर दैत्यों का रूप देवताओं की भाँति हो गया। परिणाम स्वरूप भय में पड़कर दैत्यों ने देवताओं को अपनी ओर का समझकर अपने ही पक्षवाले सुराकृति दैत्यों के ऊपर अति लाघवपूर्वक घोर प्रहार करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार युद्ध भूमि में, महाप्रलय में क्रुद्ध महाकाल की भाँति, अतिक्रुद्ध होकर कालनेमि ने अपने ही

साथी किन्हीं दैत्यों को तीक्ष्ण खड्गों द्वारा, किन्हीं को बाणों की वृष्टियों से, किन्हीं को घोर गदाओं द्वारा और किन्हीं को भयानक फावड़ों से मार डाला। अति वेगवान् उस असुरराज ने कितनों के शिरों को काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया, कितनों के रथों, भुजाओं और सारथियों का विनाश कर डाला। कितनों को रथ के वेग में चूर्ण कर डाला और कितनों को क्रोध से घोर मुष्टि के प्रहार द्वारा यम द्वार का दर्शन कराया। ॥१५२-१६०॥

तदुपरान्त दैत्यराज नेमि ने अपने ही सैनिक दैत्यों को इस प्रकार मरा हुआ देखकर अपने वास्तविक रूप को प्राप्त किया और अन्य बहुतेरे देवताओं द्वारा पीड़ित असुर भी अपने-अपने वास्तविक रूपों को प्राप्त हुए। किन्तु रोष से पूर्ण कालनेमि ने उस समय भी उनके रूपों के परिवर्तन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। तब नेमि ने उनको मारे जाते देखकर कालनेमि से कहा—'कालनेमि ! मैं देवता नहीं हूँ। तुम्हारा साथी नेमि नामक दैत्य हूँ, मुझे पहिचान लो। माया द्वारा विमोहित होकर तुमने इस संग्राम भूमि में परम पराक्रमशाली तथा अजेय दस लाख दैत्यों का विनाश कर दिया। अतः अब शीघ्र ही सम्पूर्ण अस्त्रों को निवारित करनेवाले अपने ब्रह्मास्त्र का तुम प्रयोग करो।' इस प्रकार नेमि द्वारा बताये जाने पर व्याकुल नेत्रों वाले उस दैत्य ने ब्रह्मास्त्र का अभिमंत्रण कर बाण को धनुष से युक्त किया। तदनन्तर देवताओं के कठोर शत्रु उस दैत्यराज ने देवताओं की सेना पर उसे प्रयुक्त भी किया। उसके उस महान् अस्त्र का तेज समस्त चराचर त्रैलोक्य में व्याप्त हो गया और देवताओं की सारी सेना एकदम भयभीत हो गयी। उसके प्रभाव से युद्ध भूमि में सूर्य का वह संचार नामक अस्त्र भी स्वयमेव शान्त हो गया। उस अस्त्र के विफल हो जाने पर दिनमणि भगवान् भास्कर ने तेजरहित होकर महेन्द्रजाल नामक अपने दूसरे अस्त्र का आश्रय लिया और अपने शरीर को करोड़ों की संख्या में बना लिया। फरकती हुई अपनी किरणों के समूहों से तीनों भुवनों को व्याप्त कर मज्जा तथा रक्त से विहीन दैत्यों तथा दानवों की सेना को अति मात्रा में उन्होंने संतापित करना प्रारम्भ किया। इसके उपरान्त समर्थ सूर्य ने चारों ओर से अग्नि की घोर वृष्टि की जिससे समस्त दानवों की दृष्टि को अंधकाराच्छन्न कर दिया। हस्तियों की मज्जा गल गई, वे विना शब्द किये ही पृथ्वी पर गिर पड़े। अश्वगण घोर निःश्वासें खींचने लगे। रथों के आगे सैनिकवृन्द असह्य घाम से व्याकुल होकर प्यास से पीड़ित इधर-उधर जल की प्रार्थना करते हुए छायादार वृक्षों तथा पर्वतों की गुफाओं की शरण में पहुँचे। इस प्रकार एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की छाया में शीतलता के लिए दौड़ते हुए उन दैत्यों के पास घोर दावाग्नि भी फैल गयी, जिससे वन के वे समस्त हरे-भरे पादप भी जल गये। जल के चाहनेवाले लहरों से शोभायमान जलाशय को देखते हुए तथा आगे रहने पर भी प्राप्त करने में विफल रहे और खिन्न होकर विवश हो गये। इस प्रकार पृथ्वी तल पर जल न पाकर वे मुँह बाये हुए बेहोश हो गये। उस समय पृथ्वी पर जहाँ-तहाँ मरे हुए दैत्यों के अधीश्वर दिखाई पड़ने लगे। रथ, हाथी तथा घोड़े मरे हुए इधर-उधर गिरे हुए पड़े थे। जिनमें से कुछ बैठे हुए थे, कुछ रक्त उगल रहे थे और कुछ शोर करते हुए दौड़ रहे थे। उनके शरीर से रक्त मज्जा तथा चर्बियाँ गल-गलकर गिर रही थीं। इस प्रकार रणभूमि में सहस्रों की संख्या

में पड़े हुए दैत्यगण वहाँ मरे हुए दिखाई पड़ रहे थे। दैत्यों के इस महान् विनाश को होते हुए देख कालनेमि नामक दानव अत्यन्त क्रोध से लाल नेत्र हो महाप्रलय के मेघ के समान विकराल आकृति युक्त हो गया। उस समय वह अनेक समुद्रों की भाँति क्रोध से फड़कता हुआ अपने गम्भीर शब्दों से तीनों भुवनों के हृदय को कँपाने लगा। तदुपरान्त गगनमण्डल में पहुँचकर उसने सूर्य की माया को विनष्ट कर दिया। शीत की घोर वृष्टि की और विशेषतया असुरों की सेना पर जल की वृष्टि की। दैत्यगण जल की इस वृष्टि से आश्वस्त हुए और वृष्टि पाकर पृथ्वीतल के अंकुर की भाँति प्रसन्नचित्त हो उठकर बैठ गये। मेघ रूप धारण करनेवाले उस कालनेमि नामक महान् असुर ने देवताओं की सेना में अति उग्र तथा दुर्जेय वाणों की घोर वर्षा की। महातेजस्वी दैत्येन्द्र की उस विपुल वाणवृष्टि से अति व्याकुल चित्त हो देवता-गण उस समय शीत से आकुल गौ की भाँति बचाव की कोई सूरत भी नहीं लख पाये। अपने-अपने हाथी घोड़ा आदि वाहनों की पीठों पर हथियार छोड़कर छूछे हाथों से वे चिपक गये। इसी प्रकार अपने अपने रथों में भी संत्रस्त होकर वे देवतागण अपने-अपने निवास स्थानों में विलीन हो गये, दूसरे कुछ लोग अपने ही हाथों से मुख को छिपाये हुए इधर-उधर दसों दिशाओं में भयाक्रान्त होकर घूमने लगे। इस प्रकार देवताओं तथा असुरों के उस भीषण संग्राम में भूमि पर पड़े हुए, हथियारों से कटे हुए, अंगों के जोड़ों वाले, भुजा विहीन, शिरोविहीन, जंघा विहीन, घुटना विहीन, रथ से नीचे गिरे हुए तथा जिनके रथ की ध्वजाएँ कट गयी थीं—ऐसे वीरगण दिखाई पड़ने लगे। कटे हुए अंगोंवाले तुरंगों, कटकर पृथ्वी पर गिरे हुए पर्वत के समान विशाल आकारवाले हाथियों तथा घायल वीरों के शरीरों से निकले हुए रक्त के बड़े-बड़े तालाबों से घिरी हुई वह रणभूमि एकदम विकृत एवं वीभत्स दिखाई पड़ने लगी। उस महाबलवान् असुर राज कालनेमि ने युद्ध में इस प्रकार का भीषण काण्ड मचा दिया। और इस प्रकार थोड़ी ही देर में उस बलवान् ने निर्भय होकर एक लाख गंधर्व, पाँच लाख यक्ष, साठ हजार राक्षस, तीन लाख तेजस्वी किन्नर तथा सात लाख बलवान् पिशाचों का संहार कर दिया। इनके अतिरिक्त अन्य देव जातियों के असंख्य वीरों का भी उसने संहार किया। इस प्रकार अस्त्र क्रिया में प्रवीण उस दैत्यराज ने अतिशय क्रुद्ध होकर अपने विचित्र अस्त्रों से देवसेना की करोड़ों की संख्या को विध्वस्त कर दिया। इस प्रकार के विनाश-कारी पराजय के उपस्थित होने पर दोनों अश्विनीकुमार अति कुपित होकर विचित्र हथियार तथा उज्ज्वल कवच धारणकर रणभूमि में उपस्थित हुए और महाकाल तथा अग्नि के समान विकराल रूप धारणकर वे समर भूमि में दैत्यों का विनाश करने लगे। रणभूमि में पहुँच कर उन दोनों देवताओं ने साठ-साठ तीक्ष्ण वाणों द्वारा उस भयानक दिखाई पड़नेवाले दैत्यराज के मर्मस्थलों पर कठोर आघात किया। उन दोनों देवताओं के वाणों के प्रहार से कुछ शिथिल चित्त होकर दानव ने आठ अरे वाले अपने चक्र को हाथ में धारण किया, जो तैलधौत तथा संग्राम भूमि में शत्रुओं का भीषण विनाश करनेवाला था। उस चक्र के द्वारा उसने उन अश्विनीकुमारों के रथ के जुए को काट दिया और धनुष धारणकर सर्प के समान विषैले विकराल वाणों से समस्त दिखाई पड़नेवाले आकाशमण्डल को आच्छादित कर उन देववैद्यों के

शिर पर घोर वृष्टि की । उन दोनों कुमारों ने भी अपने श्वेत धारवाले अस्त्रों से दैत्य के उन बाणों को छिन्न-भिन्न कर दिया । उनके इस पराक्रम पूर्ण कठोर कर्म को देखकर वह विस्मित हो गया और पुनः परम क्रुद्ध हुआ । अति क्रोध करके सम्पूर्ण लोहे से बने हुए शत्रुओं के संहारक तथा यम के दण्ड की भाँति महाभयानक अपने मुद्गर को उसने हाथों में लिया । तदनन्तर उसे वेगपूर्वक घुमाकर अश्विनीकुमारों के रथ पर फेंका । आकाशमण्डल से अपनी ओर आनेवाले उस भीषण मुद्गर को देखकर उन दोनों कुमारों ने अपने रथ को बड़ी शीघ्रता से छोड़ दिया । उनके निकल जाने पर पर्वत के समान भीषण एवं सुवर्ण की राशि से अलंकृत उस मुद्गर ने उन दोनों के रथों को पीस कर वहाँ की पृथ्वी को भी विदीर्ण कर दिया । अद्भुत् युद्ध करनेवाले देववैद्य उन कुमारों ने असुर के इस कार्य को देखकर दानवों के ऊपर वज्रास्त्र का संधान किया, जिससे चारों ओर अतिदारुण वज्रमयी वृष्टि होने लगी । घोर वज्रास्त्रों के प्रहार से वह दानवराज चारों ओर से घिर कर शोभित हुआ । उसके रथ, ध्वजा, धनुष, चक्र एवं सुवर्ण निर्मित कवच—सारी वस्तुएँ सभी सैनिकों के देखते-देखते तिल के समान कट-कट कर चूर्णवत् हो गईं । उन दोनों कुमारों के ऐसे अद्भुत कर्म को देखकर भयानक पराक्रमवाले उस बलवान् असुर ने नारायणास्त्र को रणक्षेत्र में प्रयुक्त किया । और उस के अमित प्रभाव से उस ने उस वज्रास्त्र को शान्त किया । वज्रास्त्र के शान्त हो जाने पर कालनेमि ने दोनों कुमारों को जीते हुए पकड़ने की चेष्टा की । जिससे वे दोनों रण से अति भयाकुल होकर इन्द्र के रथ की ओर भागे । शस्त्रहीन होकर भागते हुए उनको पीछे से उस क्रूर महाबलवान् कालनेमि ने पैदल ही दौड़ा लिया और इन्द्र के रथ के पास जाकर वह स्वयं भी पहुँच गया । उस समय दैत्यों की सेना भी उसके पीछे-पीछे चली आ रही थी । इस प्रकार उग्र क्रोध में आविष्ट उस दैत्यराज को देखकर संसार के सभी जीव भय से व्याकुल हो गये । उसके उस क्रूर कर्म को देखकर सभी लोग देवराज इन्द्र का पराजय मान गये, जिससे समस्त लोक का विनाश हो रहा था । उस समय पर्वत चलने लगे, बड़ी बड़ी उल्काएँ आकाश मंडल से पृथ्वी पर गिरने लगीं, बादल गरजने लगे, दसों दिशाओं में समुद्र गण उछलने लगे । इस प्रकार संसार के समस्त जीवों के भीषण विनाश को होता जान कर गरुडध्वज भगवान् विष्णु; जिनके चरण कमलों की लक्ष्मी के दोनों सुन्दर हाथ सर्वदा सेवा किया करते हैं, शेष शय्या पर अपनी योग निद्रा को भंग कर जग गये । शरत्कालीन नीले कमल की कान्ति के समान सुन्दर शरीर, वक्षस्थल में कौस्तुभ मणि से आभूषित, बाहु में मनोहर केयूर से शोभासम्पन्न, श्रीपति भगवान् ने देवताओं के इस भयानक विनाश का ध्यान कर तत्क्षण गरुड का आवाहन किया । बुलाते ही नाग के समान शरीरवाले गरुड के आ जाने पर उस पर आरूढ़ होकर भगवान विष्णु देवताओं के पास स्वयमेव पहुँच गये । उस समय उनके दिव्य अस्त्रों की तीक्ष्ण किरणों से एक अनुपम शोभा हो रही थी । वहाँ पहुँचकर उन्होंने अति पराक्रमशाली नूतन जलद के समान भीषण आकृतिवाले दानवेन्द्रों से खदेड़े गये देवराज इन्द्र को भागते हुए इस प्रकार देखा जैसे आपत्ति में ग्रस्त विस्तृत परिवार वाला अभागा पुरुष चारों ओर से घोर विपत्तियों से घिरा रहता है । भगवान ने वहाँ पहुँचकर उनकी रक्षा के लिए इस प्रकार शीघ्र ही उपाय किया जैसे

अच्छे तीर्थ में किया हुआ निर्मल कर्म शीघ्र ही आपत्ति में सहायक होता है। भगवान् विष्णु जिस समय युद्धभूमि में पहुँचे उस समय दैत्यों ने आकाशमण्डल में प्रकाश का एक मण्डल देखा, जो उदयाचल पर अवस्थित उष्णकिरणमाली भगवान् भास्कर की भाँति चमक रहा था। दानव गण उस तेज का प्रभाव जानने के लिए अति इच्छुक हुए। सर्वप्रथम उन्होंने महाप्रलय की अग्नि के समान विकराल मूर्ति वाले गरुड को देखा, फिर उस पर बैठे हुए मेघमाला के समान श्यामल द्युतिसम्पन्न अव्यय भगवान् अच्युत को। उनको देखकर असुरनायक गण अत्यन्त हर्ष से खिल उठे और कहने लगे—'अहो, यही तो देवताओं का सब कुछ है। इसके जीत लेने पर सभी देवताओं को पराजित समझना चाहिए। यही हम दैत्यों के समूहों का कालस्वरूप शत्रु केशव है। इसी के बल पर देवतागण यज्ञ में भाग लेते हैं।' ऐसा कहकर महारथी कालनेमि आदि दस प्रमुख दानव युद्ध भूमि में आते हुए विष्णु भगवान् को चारों ओर से घेर कर विविध प्रकार के अस्त्रों से उन पर प्रहार करने लगे। कालनेमि ने साठ वाणों से जनार्दन के ऊपर कठोर आघात किया। निमि ने सौ वाणों द्वारा, मथन ने अस्सी वाणों द्वारा, जम्भक ने सत्तर तथा शुम्भ ने दस वाणों द्वारा घोर प्रहार किया। शेष दैत्यनायकों में से एक-एक ने दस-दस वाणों द्वारा गरुड सहित विष्णु पर घोर प्रहार किया। दानवों के विनाशक विष्णु ने उन असुरों के इस कार्य की कुछ भी परवा न कर एक-एक पर सीधे लक्ष्य पर चोट करने वाले छः छः वाणों द्वारा क्रूर आघात किया। तब अति क्रोध से लाल नेत्र हो कालनेमि ने कर्ण पर्यन्त खींचकर छोड़े गये तीन परम तीक्ष्ण वाणों द्वारा विष्णु के वक्षस्थल पर घोर आघात किया। तपाये गये सुवर्ण की भाँति चमकनेवाले वे वाण विष्णु भगवान् के वक्षस्थल पर अति प्रकाशमान् कौस्तुभमणि की उद्दीप्त किरणों की भाँति चमकने लगे। दैत्य के उन वाणों से कुछ शिथिल होकर भगवान् विष्णु ने हाथ में एक मुद्गर धारण किया और उसे खूब घुमाकर दानव के ऊपर वेग से छोड़ दिया। परम क्रुद्ध दैत्य ने बीच आकाश मार्ग में ही हस्तलाघव दिखाते हुए उस मुद्गर को अपने सौ वाणों द्वारा काट कर तिल के समान जब चूर्णवत् कर दिया तब अतिशय क्रुद्ध होकर भगवान् विष्णु ने अपने हाथ में भयानक भाला लिया और उसी से दैत्य के हृदय में घातक प्रहार किया। किन्तु उसकी भीषण चोट से क्षण भर में चेतना प्राप्तकर उस महाबलवान् असुरराज कालनेमि ने एक अति तीक्ष्ण शक्ति को अपने हाथ में धारण किया, जिसमें सुवर्ण की घंटियाँ बज रही थी। दैत्यपुत्र कालनेमि ने उस शक्ति से विष्णु भगवान् के बाएँ हाथ पर घोर आघात किया। शक्ति से भिन्न भगवान् के उस हाथ से रक्त चूने लगा। उस समय रक्त चूते हुए उस हाथ की ऐसी शोभा हो रही थी मानो पद्मराग मणि की किरणों से संयुक्त केयूर से उनका हाथ विभूषित हो। तब भगवान् ने अति कुपित होकर एक विशाल धनुष धारण किया और उस पर मर्म पर आघात करनेवाले परम तीक्ष्ण सत्रह वाणों का संधान किया। दैत्य के हृदय को छः वाणों से और फिर तीन वाणों से बींधा और फिर चार वाणों से उसके सारथी को, एक वाण से रथ की ध्वजा को, दो वाणों से धनुष तथा प्रत्यंचा को और एक वाण से उसकी अन्य भुजा पर भी कठोर आघात किया। भगवान् विष्णु के उन परम तीक्ष्ण वाणों से हृदय में अतिशय विद्ध होकर वह दैत्य रक्त की बड़ी धारायें

बहाने लगा और अतिशय पीड़ा से उसका चित्त व्याकुल हो गया। उस समय वह इस प्रकार काँपने लगा जैसे झंझावात द्वारा किंशुक (पलाश) का वृक्ष। इस प्रकार दैत्य को काँपते हुए देखकर केशव ने अपनी गदा ग्रहण की और उससे अति वेग से कालनेमि के रथ के ऊपर घोर प्रहार किया। भगवान् की वह उग्र गदा कालनेमि के शिर के ऊपर गिरी, जिससे उसका शिर एकदम चूर्ण हो गया, मुकुट पिस उठा, शरीर में छिद्र होकर रक्त के फौवारे गिरने लगे। उस समय वह इस प्रकार दिखाई पड़ने लगा मानो पर्वत से गेरू की धारा चू रही हो। इस प्रकार वह दैत्य अपने रथ में एकदम बेहोश हो गया, उसका केवल जीवन मात्र शेष रह गया और थोड़ी देर बाद वह स्वतः गिर पड़ा। रथ में गिरे हुए उस दैत्यराज से शत्रु-विनाशी सुदर्शन चक्रधारी भगवान् ने हँसते हुए यह बात कही—'हे असुर! जाओ। मैंने तुम्हें छोड़ दिया। इस समय तुम निर्भय होकर अपना जीवन बचा सकते हो। फिर थोड़े ही समय के बाद मैं तुम्हारा विनाशक होऊँगा।' भगवान् की ऐसी बातें सुनने के उपरान्त कालनेमि के सारथी ने रथ को रणभूमि से हाँककर दूसरे स्थान पर पहुँचा दिया।॥१६१-२४३॥

श्री मात्स्य महापुराण में देवासुर संग्राम प्रसंग में कालनेमि पराजय नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५० ॥

एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय

सूत ने कहा—तदनंतर परम क्रुद्ध होकर दानवगण अपनी-अपनी सेना को साथ लेकर मधु विनाशक विष्णु भगवान् की ओर इस प्रकार चारों दिशाओं से दौड़ने लगे जैसे मधु दुहते समय दोग्धा के चारों तरफ मधु की मक्खियाँ दौड़ने लगती हैं। काले रंग के अनेक चँवरों से सुसज्जित, स्वच्छ श्वेत रोमावली वाले विचित्र वर्ण की पाँच पताकाओं से सुशोभित, सुन्दर गण्डस्थल पर प्रचुर मात्रा में मद चूते रहने से प्रभिन्न मुख वाले, दुर्द्धर्ष, पर्वत के समान विशाल आकृतिवाले गजराज पर आरूढ़ होकर उस बलवान् निमि नामक दैत्य ने विष्णु भगवान् के सम्मुख प्रस्थान किया। उस दैत्य के अंगरक्षक सत्ताईस सहस्र महान् भयानक एवं परम पराक्रमशाली दैत्यगण, जिनके किरीट तथा कवच उज्ज्वल वर्ण के थे, साथ-साथ चल रहे थे। उस समय मथन अश्व पर, जम्भक ऊँट पर तथा शुम्भ एक बहुत बड़े मेष पर सवार होकर रणभूमि की ओर चल रहे थे। इनके अतिरिक्त दूसरे दैत्यगण विविध प्रकार के अस्त्रों को हाथ में लिये हुए समर में अति क्रोध युक्त हो देवताओं के उपकार करनेवाले विष्णु भगवान् के ऊपर प्रहार करने लगे। उस समय दैत्य निमि अपने परिघ से, मथन मुद्गर से, शुम्भ शूल से तथा ग्रसन तीक्ष्ण भाले से भगवान् पर प्रहार कर रहे थे। उस महायुद्ध में महिषासुर चक्र द्वारा तथा जम्भ शक्ति द्वारा नारायण पर आघात कर रहे थे। उनके अतिरिक्त शेष वीर गण अपने-अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा प्रहार कर रहे थे। दैत्यों द्वारा छोड़े गये वे अस्त्र समूह विष्णु भगवान् के शरीर में इस प्रकार प्रविष्ट हो गये जैसे अच्छे छात्र

के कानों में गुरु द्वारा उपदिष्ट वाक्य प्रविष्ट हो जाते हैं। अविचलित चित्त भगवान् ने रणभूमि में धीरता से अपना धनुष धारण किया और उस पर परम तीक्ष्ण सर्पों के आकार वाले, लक्ष्य पर अचूक प्रहार करने वाले तैलधौत बाणों का अभिसंधान किया। इस प्रकार धनुष को कान पर्यन्त खींचकर बाणों को संयोजित कर भगवान् अति क्रुद्ध हो अपने पूर्ण पौरुष से दैत्यों की सेना की ओर दौड़ पड़े। उन्होंने अग्नि की भाँति तेजस्वी बीस बाणों से निमि को, दस बाणों से मथन को, पाँच बाणों से शुम्भ को घायल कर एक बाण से महिष की छाती में कठोर प्रहार किया। बारह तीक्ष्ण बाणों द्वारा जम्भ नामक दैत्य को मार कर अन्य दैत्यों में से एक-एक को आठ-आठ बाणों द्वारा उन्होंने आहत कर दिया। भगवान् के इस हस्तलाघव को देख कर वे दैत्यगण क्रोध से विमूर्च्छित होकर घोर शब्द करते हुए अतिप्रयत्न से अति अद्भुत युद्ध करने लगे। तब दैत्यराज निमि ने अपने भाले को लेकर भगवान् के धनुष को काट दिया और धनुष पर चढ़ाये जाते हुए उनके बाण को हाथ में ही महिषासुर ने काट दिया। जम्भ नामक असुर ने अपने अति तीक्ष्ण बाणों द्वारा गरुड़ को अति पीड़ित किया। पर्वत के समान विशाल आकृतिवाले शुम्भ दैत्य ने भगवान् की भुजा पर घोर प्रहार किया। धनुष के छिन्न हो जाने पर भगवान् गोविन्द ने अपनी भीषण गदा धारण की और उस महायुद्ध में उस विकराल गदा को मथन नामक दैत्य पर वेगपूर्वक छोड़ दिया। ऊपर गिरने से पहिले ही उस गदा को निमि ने अपने बाणों से रणभूमि में तिल के समान काट गिराया। इस प्रकार निष्कृप मनुष्य के आगे विफल हुई प्रार्थना की भाँति अपनी गदा को निष्फल देखकर भगवान् ने दिव्य रत्नों से अलंकृत एक घोर मुद्गर को हाथ में धारण किया और उसको अति वेगपूर्वक दैत्य निमि के ऊपर फेंका। आते हुए उस भीषण मुद्गर को आकाशमार्ग में ही निम्न तीन दैत्यों ने निवारित कर दिया। जम्भ ने अपनी गदा से, ग्रसन ने अपनी बरछी से और महिष ने अपनी शक्ति से अपने पक्ष की विजय की कामना से भगवान् के उस मुद्गर को विफल किया। भगवान् ने दुर्जन पुरुष के सम्मुख प्रेम कथा की भाँति निष्फल अपने उस मुद्गर को देखकर अत्यन्त कठोर आघात करनेवाली आठ घंटा के कर्कश स्वर से युक्त एक शक्ति को अपने हाथों में उठाया। फिर रणभूमि में भयानक कर्म करनेवाले भगवान् ने उस शक्ति को जम्भ नामक दैत्य के ऊपर फेंका। आकाशमण्डल में ही उस शक्ति को गज नामक दैत्य ने जब पकड़ लिया तब भगवान् ने विवेकियों से अपनायी हुई शिक्षा की भाँति उस शक्ति को दैत्य के वश में देखकर एक दृढ़ भार सहन करने में सशक्त दूसरे धनुष को ग्रहण किया और उसी पर रौद्रास्त्र का अभिसंधान किया। उस रौद्रास्त्र के परम तेज से समस्त चराचर जगत् व्याप्त हो गया, जिससे समस्त आकाशमण्डल बाणमय दिखाई पड़ने लगा। पृथ्वी, दिशाएँ तथा सभी कोण बाण के जाल से व्याप्त होकर अति भयानक दिखाई पड़ने लगे। अस्त्र के इस अद्भुत माहात्म्य (प्रभाव) को देखकर दैत्यों के सेनापति ग्रसन नामक असुर ने सभी अस्त्रों के निवारण करने में समर्थ ब्राह्म नामक अस्त्र का प्रयोग किया, जिसके प्रभाव से समस्त लोक के विनाशक रौद्र अस्त्र का प्रभाव शान्त हो गया। तब दानवों के विनाशक भगवान् विष्णु ने कालदण्ड नामक अपने भीषण अस्त्र का प्रयोग किया, जो समस्त

लोक को भय प्रदान करनेवाला है। उस भीषण अस्त्र के अभिसंधान करते ही प्रचण्ड वायु बहने लगी, पृथ्वी काँपने लगी, देवी तथा देवता—सभी की बुद्धि नष्ट हो गयी। अति भयानक पराक्रमशाली दैत्यों ने उस अस्त्र को सम्मुख आते देखकर युद्धभूमि में अनेक प्रकार के रूपोंवाले दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया। उक्त कालदण्ड को निवारित करने के लिए ग्रसन ने नारायणास्त्र को ग्रहण कर उसपर फेंका, निमि ने अपने अस्त्रों में सर्वश्रेष्ठ चक्र को उसपर फेंका और जम्भ ने ऐषीक नामक अस्त्र का प्रयोग किया। इस प्रकार उक्त अस्त्र को निवारित करने के लिए अपने अस्त्रों के संधान करने में ही जब तक दैत्य गण लगे रहे तब तक क्षण भर में ही उस भीषण अस्त्र ने दैत्य नायकों की गज तथा अश्वों के समेत करोड़ों की संख्या में सेना का विनाश कर दिया। तदनन्तर दैत्यों के इन अस्त्रों के संघर्ष होने से वह कालदण्ड नामक विष्णु भगवान् का अस्त्र प्रभावशून्य होकर शान्त हो गया। भगवान् विष्णु ने अपने उक्त अस्त्र को शान्त हुआ देख क्रोध से जलते हुए अति पराक्रम से अपने उस चक्र को हाथ में धारण किया, जो दस सहस्र सूर्य की भाँति तेजोमय तथा प्रभाव में उन्हीं की तरह अद्वितीय था। इस प्रकार वज्र के समान कठोर चक्र का अभिसंधान करके भगवान् ने सेनापति के कण्ठ पर उसका प्रयोग किया। आकाश मार्ग से आते हुए उस चक्र को सभी दैत्यगण पूर्व जन्म के अनिष्ट कर्मों द्वारा निष्पन्न प्रचण्ड अभाग्य की भाँति सम्पूर्ण अंगों से भी निवारित करने में असमर्थ रहे। परिणामस्वरूप अजेय एवं अतर्क्य महिमाशाली भगवान् विष्णु का वह चक्र ग्रसन दैत्य के कण्ठस्थल पर आकर गिरा। जिससे उसका शरीर दो भागों में विभक्त हो गया। तदनन्तर उस दैत्यराज के कण्ठ के रक्त से अतिशय लाल नाभिवोला वह चक्र जलती हुई अग्नि के समान विकराल दीप्ति से पुनः जनार्दन भगवान् विष्णु के हाथों में वापस आ गया। ॥ १-३६ ॥

श्रीमात्स्य महापुराण में देवासुर संग्राम प्रसंग में ग्रसन वध नामक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५१॥

एक सौ बावनवाँ अध्याय

सूत बोले—ऋषिगण! भगवान् विष्णु द्वारा दैत्य सेनापति ग्रसन के मारे जाने पर सभी दैत्य गण भगवान् के साथ युद्ध की सामान्य मर्यादाओं को छोड़ कर भीषण-युद्ध करने लगे। और इस प्रकार बरछी, मूसल, पाश, गदा, कुणप, तीखे अग्र भागोंवाले घोर वाण, चक्र तथा शक्तियों द्वारा वे प्रहार करने लगे। महान् पराक्रमशाली भगवान् विष्णु ने दैत्यों द्वारा फेंके गये इन अस्त्रों के अग्नि की ज्वाला के समान अपने भीषण वाणों द्वारा एक-एक को सैकड़ों टुकड़ों में कर दिया। इस प्रकार हथियारों से नष्टप्राय हो जाने पर व्याकुलचित्त दैत्य गण जब रणभूमि में अस्त्र को ग्रहण करने में असमर्थ हो गये, तब मरे हुए हाथियों तथा घोड़ों को छोड़कर भगवान् से युद्ध करने लगे। उस समय जब चारों ओर से करोड़ों की संख्या में दैत्यगण युद्ध करने लगे तब विष्णु भगवान् ने बहुत से शरीर धारण किये, जिससे

उनके बाहु कुछ शान्त हुए। शान्त होने पर भगवान् ने उस तुमुल युद्ध में गरुड से कहा—'गरुत्मन्! तुम इस समय थके हुए तो नहीं हो? यदि सचमुच तुम थके हुए नहीं हो तो मथन दैत्य के रथ के सम्मुख मुझे ले चलो! और यदि श्रान्त हो गये हो तो फिर कुछ देर के लिए रणभूमि से बाहर चले चलो।' परम प्रभावशाली भगवान् विष्णु के ऐसा कहने पर गरुड ने अति कठोर दिखाई पड़नेवाले मथन नामक दैत्य के सम्मुख भगवान् को पहुँचा दिया। मथन ने शंख, चक्र तथा गदाधारी भगवान् को सम्मुख आया देखकर अपने श्वेत धारवाले भिन्दिपाल से उनके वक्षस्थल पर पहुँचते ही कठोर आघात किया। उस महायुद्ध में दैत्य के इस प्रहार की कोई परवा न कर भगवान् विष्णु ने अपने अनुपम तीन शिलीमुख बाणों द्वारा उस पर घोर प्रहार किया और पुनः खूब खींचकर चलाए गये दस बाणों से उस दैत्य के स्तनों के मध्य भाग में कठोर आघात किया। भगवान् के बाणों से दैत्य का हृदय प्रदेश अतिशय बिंध गया और उस समय वह अति पीड़ा से काँपने लगा। तदनन्तर थोड़ी देर बाद आश्वस्त होकर उसने अपने परिघ को हाथों में धारण किया। और अग्नि के समान विकराल उस परिघ से हरि पर कठोर आघात किया, जिसके प्रहार से भगवान् कुछ विचलित-से हो गये। तदनंतर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु ने क्रोध से आँखें फैलाकर अपनी भीषण गदा को हाथों में ग्रहण किया। और अत्यन्त क्रोध से उसके द्वारा रथ समेत उस मथन नामक दैत्य को पीस डाला। गदा से मारा हुआ वह दैत्य रथ से इस प्रकार नीचे गिरा जैसे प्रलयकाल में पर्वत नीचे गिरते हैं। उस पराक्रमशाली दैत्य के नीचे गिर जाने पर दैत्यगण कीचड़ में फँसे हुए हाथी की भाँति अवसन्न-से हो गये। तब उन अति अभिमानी दैत्यों के इस प्रकार अति शोकाकुल हो जाने पर दैत्यराज महिषासुर क्रोध से लाल नेत्र किए हुए अति भयानक रूप धारणकर अपने बाहु बल पर निर्भर होकर हरि की ओर युद्धार्थ अग्रसर हुआ। और आते ही अपने तीक्ष्ण फालवाले शूल से भगवान् विष्णु को उसने आहत भी किया। फिर उस वीर ने शक्ति से गरुड के हृदय पर भी आघात किया। और फिर महान् पर्वत की भयंकर गुफा के समान अपने भीषण मुख को फैलाकर उस दैत्य ने गरुड समेत अच्युत भगवान् को रणभूमि में लील लेने की भीषण चेष्टा भी की। महाबलवान् गरुडध्वज भगवान् अच्युत ने उसकी ऐसी क्रूर चेष्टाएँ देखकर अपने दिव्य अस्त्रों के समूहों से उसके मुख को एकदम भर दिया जिससे पर्वत के समान विकराल आकृतिवाला वह दैत्य भगवान् के बाणों से अति घायल हो गया। उसका सारा शरीर एकदम विकृत हो गया और वह रथ से नीचे गिर पड़ा, परन्तु मरा नहीं। पृथ्वी तल पर गिरे हुए महिष को देखकर भगवान् केशव ने कहा—'महिषासुर। इस युद्ध भूमि में मेरे अस्त्रों द्वारा तुम मृत्यु लाभ नहीं कर सकते। क्योंकि प्राचीन काल में कमलयोनि ब्रह्मा ने तुम से यह कहा था कि तुम किसी स्त्री द्वारा मारे जाओगे। अतः जाओ, और अपने जीवन की रक्षा करो। इस रणभूमि से शीघ्र ही दूर चले जाओ।' इस प्रकार महिषासुर दैत्य के युद्ध भूमि छोड़कर हट जाने पर शुम्भ नामक दैत्य ने क्रोध से ओठों को चबाते हुए एवं भृकुटी तथा मुख को चढ़ाये हुए, अति क्रोध के कारण एक हाथ से दूसरे हाथ को मींजते हुए भयंकर धनुष को अपने हाथ में धारण किया और सर्पों के समान भीषण एवं विकराल

वाणों का उस पर संधान किया। विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाले उस दैत्य ने प्रथमतः बड़े जोर से मुष्टि पात किया और फिर विफल न होने वाले अग्नि की ज्वाला के समान विकराल दिखाई पड़नेवाले अपने असंख्य वाणों द्वारा गरुड तथा विष्णु भगवान् पर घोर आघात किया। दैत्यनायक के वाणों से आहत होकर भी विष्णु भगवान् विचलित नहीं हुए और अपने हाथ में एक महाकाल के समान भीषण मुशुण्डि को उन्होंने धारण किया और उससे शुम्भ दैत्य के पर्वताकार वाहन मेष को एकदम चूर्ण कर डाला। तब उस मरे हुए मेष से कूदकर वह दैत्यपति पैदल ही रणभूमि में चलने लगा। प्रलय कालीन अग्नि के समान उग्र स्वरूप वाले भगवान् ने पृथ्वी पर चलते हुए उस दैत्य के ऊपर अपने वाणों के समूह बरसाये। क्रोध से फैले हुए नेत्रोंवाले भगवान् विष्णु ने कर्ण पर्यन्त खींच कर फेंके गये अपने तीन वाणों से उसकी भुजा का छेदन किया और छः वाणों से शिर प्रहार कर दस वाणों से रथ की ध्वजा को काट गिराया। भगवान् विष्णु द्वारा आहत होकर वह दैत्य एकदम व्यथित हो गया, उसके शरीर से रक्त की धारायें फूट निकलीं। कुछ धैर्य धारण कर रणभूमि में चलते हुए उससे शंख, कमल तथा धनुष धारी भगवान् ने कहा—'असुरवर शुम्भ! थोड़े ही दिनों में तुम एक कुमारी कन्या के हाथों से मारे जाओगे, अतः रणभूमि को छोड़ कर चले जाओ। मूर्ख! मेरे हाथों से तुम्हारा संहार नहीं हो सकता, अतः क्यों बेकार में मुझसे युद्ध करने के लिए उत्सुक हो रहे हो?' भगवान् विष्णु के मुख से ऐसी बातें सुनकर जम्भ और निमि नामक दैत्यों ने उन्हें पीस डालने की चेष्टा की। निमि ने एक प्रचण्ड गदा उठाकर विष्णु भगवान् के शिर पर जोरों से प्रहार किया और शुम्भ ने भी चमकते हुए दलों के समूहों की विचित्र कान्ति से सुशोभित अपने परिघ द्वारा भगवान् पर प्रहार किया। उन दोनों दैत्यों के विषम प्रहारों से अति आहत होकर घन के समान श्यामल कान्तिवाले भगवान् तथा अग्नि के समान लाल आकृतिवाले गरुड़—दोनों पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके ऐसे पराक्रमपूर्ण कार्यों को देखकर दैत्यगण मारे खुशी के सिंह के समान नाद करते हुए जोरों से गरजने लगे। वे प्रचण्ड दैत्यगण धनुष को बजाते हुए पैरों की चोटों से पृथ्वी को विदारित करने लगे। मारे खुशी के अपने वस्त्रों को उड़ाने लगे। शंख, शहनाई, नगाड़ा आदि विविध प्रकार के बाजनों को बजाने लगे। तदनंतर कुछ देर बाद गरुड समेत भगवान् विष्णु ने होश सम्भाला। और चैतन्य होते ही शीघ्र ही रणभूमि से पीछे की ओर मुखकर वे बड़े वेग से भाग खड़े हुए। ॥ १-३६ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में देवासुरसंग्राम प्रसंग में मथनादि संग्राम नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५२ ॥

एक सौ तिरपनवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषि वृन्द! ध्वजा तथा धनुष आदि से विहीन होकर रणभूमि से इस प्रकार भागते हुए विष्णु भगवान् को देखकर सहस्रनेत्र इन्द्र ने उस महायुद्ध में अपनी पराजय मान ली। विजय

के मद में हर्षित दैत्यों एवं दानवों को देखकर वे कुछ सोच नहीं सके कि 'इस समय क्या करना चाहिये ?' तब पाकशासन इन्द्र विष्णु भगवान् के निकट आये और उत्साह प्रदान करनेवाले मधुर वाक्यों द्वारा उनसे यूँ कहने लगे—'देव ! इन क्षुद्र दुष्टचित्त असुरों से क्यों खिलवाड़ कर रहे हैं ? जिसके भेद को दुर्जन लोग जान जाते हैं—ऐसे सज्जन मनुष्य की क्रिया भला क्यों कर सफल हो सकती है ? बलवान् द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया नीच पुरुष अपने मन में अपने पराक्रम को अधिक मानने लगता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि दुर्गहीन ऐसे नीच शत्रु को कभी न छोड़े। समर्थ ! रथी लोग युद्ध भूमि में आगे चलने वालों की शक्ति से जय प्राप्त करते हैं?....पूर्वकाल में हिरण्याक्ष वध के अवसर पर कौन आपका मित्र हुआ था ? हिरण्यकशिपु दैत्य परम पराक्रम शाली एवं मदोन्मत्त था, किन्तु रणभूमि में अपने सम्मुख आपको पाकर उसके भी होश उड़ गये थे और आपको घोर विषम रूप से उसने देखा था। उसके पूर्व भी जो अति बलवान् देवशत्रु दैत्याधिपति थे उन लोगों ने भी रणभूमि में आपके सम्मुख अग्नि में पड़े हुए कीट पतंगों की भाँति विनाश की ही प्राप्ति की थी। हरे ! इस प्रकार प्रत्येक युग में आप ही दैत्यों के विनाशकर्त्ता होते आये हैं। भगवन् ! उसी प्रकार आज भी इस भयानक महायुद्ध में फँसे हुए देवताओं के आप अवलंबन हैं।' इन्द्र के ऐसा कहने पर दीर्घबाहु भगवान् विष्णु ने अपनी भुजाओं को बढ़ाया। उस अवसर पर परम कान्ति से युक्त, दैत्यविनाशी, सम्पूर्ण जीवों के आश्रयभूत वे भगवान् विष्णु, जिनके स्वरूप का साक्षात्कार इन्द्रियों द्वारा नहीं होता, समयानुसार उपयुक्त बातें इन्द्र से बोले—'इन्द्र ! ये दैत्याधिपति अपने द्वारा प्राप्त किये गये वध के उपायों द्वारा ही विनष्ट हो सकते हैं। दूसरे किसी उपाय से इनका विनाश होना सम्भव नहीं है। वह तारक दैत्य तो दुर्जेय ही है। सात दिन के बालक को छोड़कर वह किसी दूसरे से पराजित नहीं किया जा सकता ! इनमें कोई तो स्त्री द्वारा मारा जा सकता है और किसी के वध के लिए कुमारी कन्या की आवश्यकता है। परम पराक्रमी जंभ नामक दैत्य मारा जा सकता है, अतः उस जगत् को संतापित करनेवाले जंभ को तुम अपने दिव्य अस्त्रों द्वारा विनष्ट करो। तुम्हारे विना वह असुर संसार के समस्त जीवों से भी नहीं मारा जा सकता। रणभूमि में मुझसे रक्षित रहकर जगत् के कंटक स्वरूप उस जंभ को तुम उखाड़ दो।' भगवान् विष्णु के इस वचन को सुनकर दैत्यों के शत्रु सहस्राक्ष इन्द्र ने सभी देवताओं को सैन्य संगठित करने के लिए पुनः आदेश किया। और उस समय सम्पूर्ण लोकों के पराक्रम तथा तपस्या के सारभूत जो ग्यारह रुद्रगण थे वे भगवान् विष्णु द्वारा सेना के अग्रभाग में विनियुक्त किये गये बलवान् नीलेकण्ठवाले विकराल सर्पों की फणों को अंगों पर लटकाये हुए, मस्तक पर बाल चन्द्रमा, गले में मनुष्य के मुंडों की माला एवं वक्षस्थल पर मयूर पिच्छ से शोभायमान, त्रिशूल की चमकती हुई ज्वाला से युक्त अंगों वाले, अति भयानक भुजामण्डल सम्पन्न, पीले वर्ण की उत्तुंग जटाजूटों से सुसज्जित तथा सिंह का चर्म पहने हुए कपाली तथा ईश आदि रुद्रगण, जो भय से असुरों को दूर भगा रहे थे, उस देव सेना के अग्रभाग में नियुक्त किये गये। कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजेश, शासन, शास्ता, शम्भु, चण्ड तथा ध्रुव—ये ग्यारह महा बलवान् प्रभावशाली रुद्र हैं। ये सभी देवसेना की

रक्षा तथा दानवों का विनाश करते हुए एवं समस्त सुरलोक निवासियों को सन्तुष्ट करते हुए मेघ के समान गरज रहे थे। हिमाचल के समान श्वेत एवं सुवर्ण के समान सुन्दर वर्णवाले कमल की माला से सुसज्जित, चलते हुए चमर तथा सुवर्ण की अनेक घंटाओं से सुशोभित शब्द करनेवाले चतुर्दन्त ऐरावत गज पर, जो विशालता में पर्वत के समान था, जिसके गण्डस्थल से मद का जल चू रहा था, जो इच्छानुरूप अनेक प्रकार का स्वरूप धारण करनेवाला था, सहस्रक्रतु इन्द्र आरूढ़ होकर इस प्रकार शोभित हुए जैसे हिमवान् पर्वत के शिखर पर किरणमाली भगवान् भास्कर उदित हुए हों। उन इन्द्र के बाएँ पाद की रक्षा अमित पराक्रमशाली पवन कर रहे थे तथा दूसरे पैर की रक्षा अग्नि देव कर रहे थे, जिनकी विकराल ज्वालाओं से सारी दिशाएँ पूर्ण हो रही थीं। सैन्यसमेत इन्द्र के पृष्ठ भाग के रक्षक भगवान् विष्णु हुए। आदित्य, वसु, विश्वेदेव, मरुत गण तथा दोनों अश्विनीकुमार—ये सब देवता गण तथा गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, किन्नर, महासर्प आदि देवताओं की जातियाँ विविध प्रकार के विचित्र हाथियारों को धारणकर सुवर्ण के आभूषणों से अलंकृत हो, अपने-अपने विशेष चिह्नों से चिह्नित हो, एक-एक करोड़ का यूथ बनाकर, अपनी-अपनी कीर्तियों को अग्रसर वंदियों के समूहों द्वारा सुनते हुए, उस संग्राम भूमि में दैत्यों के वध होने से अति प्रसन्न हो इन्द्र के साथ-साथ घूम रही थीं। देवताओं के समूहों द्वारा अभिरक्षित सैकड़ों हाथियों तथा घोड़ों के समूहों से संयुक्त करोड़ों की संख्या में श्वेत रंग के छाते ध्वजा एवं पताकाओं से सुशोभित वह इन्द्र की सेना दैत्यों के शोक को बढ़ाती हुई आगे जा रही थी। ॥१-२८॥

इस प्रकार रणभूमि में समुपस्थित दैत्यों की विशाल सेना देखकर गज नामक असुर ने हस्ती का रूप धारण कर लिया और बादलों के समूहों की भाँति भीषण स्वरूप में वह दिखाई पड़ने लगा। उस दैत्य ने कर में फावड़ा लेकर अति क्रोध से अपने ओठों को चबाते हुए रणभूमि में कितने देवताओं का मर्दन कर दिया और कितनों को कर से उठा-उठा कर फेंक दिया। भयानक पराक्रमशाली उस दैत्येन्द्र ने कुछ देवताओं को परशु द्वारा काट डाला। इस प्रकार सेना का विनाश करते हुए-उसके ऊपर यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नरों ने मिलकर अनेक प्रकार के विचित्र प्रभाववाले शस्त्रास्त्रों की विपुल वर्षा की। पाश, फावड़ा, चक्र, भिन्दिपाल, मुद्गर, अति तीक्ष्ण छोटे भाले, बड़े भाले, तथा दुःसह्य मुद्गरों को उन लोगों ने उस राक्षस के ऊपर फेंका। किन्तु उनके इन शस्त्रास्त्रों को वह दैत्यराज इस प्रकार निगल गया जैसे यूथ का स्वामी गजराज घास के ग्रासों को उदरस्थ कर लेता है। क्रोध से हिलाते हुए अपने विशाल कर की चोटों से कितने देवताओं को पृथ्वी पर गिराते हुए वह गज नामक दैत्य उस कठिन युद्ध में विचरण करने लगा। जिस-जिस देवताओं के समूह में वह गजासुर प्रवेश करता था, उस-उस में घोर हाहाकार मच जाता था। इस प्रकार चारों ओर से देवताओं की सेना को भागते हुए देखकर रुद्रगण परस्पर अहंकार से पूर्ण होकर चिल्लाने लगे—'अरे अरे! पकड़ते जाओ इस दैत्येन्द्र को। इस मृत्यु के मुख में गये हुए को मींज डालो। तीक्ष्ण धारवाले शूलों से इसको पकड़कर खींच लो। इसके मर्मस्थलों में कठोर आघात करो।' ऐसी बातें सुनकर कपाली नामक प्रथम रुद्र क्रोध से विस्तृत नेत्र हो तीक्ष्ण धारवाले शूल को बाएँ हाथ में

लेकर भृकुटी को कुटिल कर रणभूमि में उस दैत्येन्द्र के सम्मुख दौड़े। वहाँ जाकर दृढ़ मुट्ठी में इस निर्मल शूल को थामकर कपाली ने गजासुर के गण्डस्थल पर कठोर आघात किया। तदनन्तर शेष दस रुद्रों ने भी अपने निर्मल लोहे से बने हुए शूलों से उस पर्वत के समान विशालशरीर दैत्येन्द्र के ऊपर कठोर आघात किया। उस तीक्ष्ण शूल से आहत होकर छिद्रों से रक्तों को चुवाता हुआ वह कृष्ण शरीर दैत्यराज इस प्रकार शोभित हुआ जैसे शरद् ऋतु के निर्मल सरोवर में चारों ओर से नीले और लालवर्ण वाले कमलों के पुष्पसमूह खिले हुए हों। उस समय वह शरीर के चारों ओर हंसों के समूहों की भाँति भस्म के समान शुभ्र कान्तिवाले रुद्रगणों से घिरा हुआ था। इस प्रकार चारों ओर से कठिनाइयों में फँसे हुए गजासुर ने, जिसके कानों के दोनों पल्लव हिल रहे थे, अपने दाँतों से शम्भु के नाभि प्रदेश में कठोर प्रहार किया। दोनों रुद्रों से युद्ध करते हुए गजासुर को देख शेष नव रुद्रों ने अपने विचित्र प्रकार के अस्त्रों से उस दैत्यशत्रु के ऊपर क्रूर आघात किया। वे परम बलवान् रुद्र गण युद्ध में निर्भय तथा रणभूमि में व्यवस्थित चित्त होकर युद्ध कर रहे थे। गजासुर के ऊपर आघात करते हुए वे रुद्रगण इस प्रकार दिखाई पड़ रहे थे जैसे वन में मरे हुए महिष को प्राप्त कर शृगालों के समूह जुट पड़े हों। तदनन्तर असुरनायक गज ने कपाली को छोड़कर दूसरी ओर प्रस्थान किया। आगे कुपित होकर वेग से उसने अन्य नवों रुद्रों का पीछा किया और उनको अपने पैरों की चोटों, दाँतों और चपेटों से खूब मर्दित किया। इस प्रकार रुद्रों के साथ युद्ध करते हुए दैत्य जब बहुत थक गया तब कपाली नामक रुद्र ने उस देवशत्रु के कर को पकड़ लिया और अतिशय वेग से उसको खूब घुमाया। घुमाते समय अतिश्रम के कारण व्याकुल हो जाने पर जब उन्होंने देखा कि कुछ प्राण शेष रह गया है और युद्ध करने की अभिलाषा बीत चुकी है तब जोर से पटक दिया। और गिरते ही उसके कठोर चर्म को उसके चारों ओर से रक्त चूने वाले शरीर से निकाल कर अपना परिधान बना लिया। इस प्रकार मारे गये उस दैत्येन्द्र को देखकर अन्य महाबलवान् दैत्यगण भय के मारे त्रस्त हो गये, और सहस्रों की संख्या में भाग गये। कितने रणभूमि छोड़ कर धीरे से खिसक गये, और कितने वहीं गिर पड़े। उस समय सभी दैत्यगण गज के चर्म से आवेष्टित कपाली रुद्र के भयंकर रूप को देखकर पृथ्वीमण्डल में तथा सभी दिशाओं में सर्वत्र रुद्र ही रुद्र देखने लगे। इस प्रकार उस दैत्येन्द्र गजासुर के निधन हो जाने पर हाथी पर सवार होकर दैत्यराज निमि महाप्रलय कालीन मेघों के विकराल स्वरों के समान अति दुर्धर्ष शब्दों वाली दुन्दुभि को बजवाकर अत्यन्त शीघ्रता से देवताओं की सेना को व्याकुल करता हुआ युद्ध भूमि में अग्रसर हुआ। जिस-जिस दिशा में उस निमि दैत्य का हाथी जाता था, उस-उस दिशा से देवगण अति भयभीत हो हथियार छोड़कर वाहन समेत भाग जाते थे। असुर के उस हाथी के मद की सुगन्धि से देवताओं के हाथी भी भाग गये। देवताओं की सेना के भाग जाने पर केवल पाकशासन इन्द्र आठों दिक्पालों तथा भगवान् केशव के साथ युद्ध भूमि में अवस्थित शेष रह गये। अन्त में दैत्येन्द्र निमि का हाथी जिस समय इन्द्र के हाथी के सम्मुख आया उस समय इन्द्र का हाथी भी भयंकर शब्द करते हुए भागने लगा। इन्द्र द्वारा प्रयत्नपूर्वक रोके जाने पर भी वह रणभूमि में तनिक भी नहीं रुक सका। तब उस भागते हुए गजराज पर

आरूढ होकर पाकशासन उल्टा मुख करके दानवों की सेना की ओर अभिमुख हो युद्ध करने लगे। उस समय देवराज इन्द्र ने अपने वज्र से निमि के वक्षस्थल पर घोर प्रहार किया और गदा से उसके गज पर भी भीषण प्रहार किया। किन्तु उनकी कोई भी परवा न कर निर्भय पौरुषशाली निमि ने अपने मुद्गर से ऐरावत पर घोर आघात किया। युद्धभूमि में दैत्य के मुद्गर द्वारा आहत देवराज का हाथी अपने पिछले पैरों से पृथ्वी पर पहाड़ की भाँति गिर पड़ा। किन्तु अमर गजराज वह ऐरावत पुनः लाघवपूर्वक शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ और फिर निमि के हाथी से भयभीत होकर तुरन्त रण से भागना प्रारम्भ किया। उसी समय प्रचुर परिमाण में छोटे-छोटे कंकण और धूलि के कणों से युक्त तीक्ष्ण वायु जोरों से बहने लगी। ॥२९-६४॥

तदनन्तर रणभूमि से ऐरावत के भागने पर भी इन्द्र के सम्मुख युद्ध में पर्वत के समान अचल निमि का वह हाथी फिर दिखाई पड़ा। उस समय रक्त के प्रवाह से वह गेरु के सरोवर से सुशोभित पर्वत की भाँति दिखाई पड़ रहा था। तब धनपति कुबेर ने अपनी बड़ी भारी गदा को उठाकर बड़े वेग से उस दैत्य के हाथी के ऊपर प्रहार किया। जिससे उसके मस्तक से दैत्येन्द्र निमि नीचे गिर पड़ा और वह गजराज गदा की उस भीषण चोट से बिल्कुल मूर्च्छित हो गया। उस समय अपने दातों से पृथ्वी को विदारित कर एक गिरिराज की भाँति वह नीचे गिरा था। उस गज के गिर जाने पर चारों ओर से देवताओं की सेना में हाथियों के दहाड़ने से, घोड़ों के हिनहिनाने से, धनुर्धारियों के प्रत्यञ्चा बजाने से महान् भीषण नाद होने लगा। तब उस गज को मरा हुआ तथा निमि को युद्ध से विमुख होते देख, और उधर देवताओं की सेना में इतना घोर शब्द होते सुन अत्यन्त क्रोधी जम्भ नामक असुर इतना क्रुद्ध हुआ जैसे घी डालने से अग्नि प्रवृद्ध होता है। क्रोध से लाल नेत्रवाले उस असुर ने अपने धनुष पर तीक्ष्ण बाणों का संधान कर देवताओं से कहा—'खड़े हो जाओ।' और यह कहने के बाद सारथी को युद्धभूमि में चलने के लिए उसने प्रेरित किया। वेग से चलते हुए उस महाअसुर की एवं उसके रथ की ऐसी शोभा हुई जैसे उदयाचल पर उदित सहस्रों सूर्यों की तथा उनके रथों की शोभा होती हो। किंकिणी के समूहों की माला से सुशोभित, पताका संयुक्त, चन्द्रमा के समान श्वेत शुभ्र छत्र से अलंकृत सुन्दर रथ पर आरूढ देवताओं के सैनिकों के हृदयों को विलोडित करता हुआ वह सम्मुख दिखाई पड़ा। रणभूमि में सम्मुख आये हुए उस दैत्यराज को देखकर अपने धनुष पर इन्द्र ने निर्भय होकर एक तैलधौत अर्धचंद्राकार लक्ष्यपर न चूकनेवाले बाण को चढ़ाया। वृत्र के शत्रु इन्द्र ने अपने उस अर्धचंद्राकार बाण से उस दैत्य के बाण सहित धनुष को काट दिया। दैत्यराज जम्भ ने शीघ्र ही उस धनुष को छोड़कर वेगपूर्वक एक दूसरा भार सहन करने में सशक्त धनुष धारण किया। और उस पर तैलधौत कभी विफल न होनेवाले सर्पों के समान विकराल कई बाणों का संधान किया। उन बाणों में से दस बाणों द्वारा उसने इन्द्र की कुक्षि में आघात किया और तीन बाणों से हृदय में तथा दो बाणों से दोनों कंधों में प्रहार किया। इन्द्र ने भी उस दैत्यराज जम्भ के लिए ऐसे ही प्रभावशाली बाणों को छोड़ा। किन्तु इन्द्र द्वारा छोड़े गये बाणों को अपने समीप पहुँचने के पहिले ही उसने अपने अग्नि की ज्वाला के

समान भीषण बाणों से आकाश में ही दस खण्डों में परिणत कर दिया। तब देवराज इन्द्र ने अति प्रयत्न करके अपने बाण समूहों द्वारा जम्भ को इस प्रकार आच्छादित कर दिया जैसे वर्षा काल में मेघों से नभमण्डल आच्छादित हो जाता है। तदनन्तर दैत्यराज जम्भ ने भी अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा इस प्रकार इन्द्र के बाणों को निष्फल कर दिया जैसे प्रचण्ड वायु बादलों के समूहों को दिशाओं के मुखों पर से छिन्न-भिन्न कर देती है। इस प्रकार क्रोध के वेग में जब इन्द्र उस दैत्यराज की कोई विशेष हानि नहीं कर सके तब उन्होंने अत्यन्त अद्भुत गन्धर्वास्त्र का प्रयोग किया। उसके उठे हुए तेज से अनेक प्रकार के तोरण आदि से सुसज्जित गन्धर्व नगरों से, जिनके अत्यन्त अद्भुत आकार थे और जो चारों ओर से अस्त्रों की वृष्टि कर रहे थे, आकाश मण्डल एकदम व्याप्त गोचर होने लगा। उन अस्त्रों की वृष्टि से मारी जाती हुई दैत्यों की महती सेना अनुपम पराक्रमशाली जम्भ की शरण में आई। उस समय सहस्रनेत्र इन्द्र द्वारा स्वयं पीडित तथा व्याकुलित हृदय दैत्य अपने मंगलमय समाचारों को स्मरण करता हुआ भयभीत होकर आनेवाले उन सैनिकों का शरणदाता बना। दिति के पुत्र उस जम्भासुर ने तब मौसल नामक अस्त्र का प्रयोग किया, जिससे समस्त जगत् लौहमय मुसलों से व्याप्त हो गया। एक-एक पर प्रहार करने वाले उन परम शक्तिशाली मुसलों से गन्धर्वास्त्र द्वारा बनाये गये गन्धर्व नगर भी जब छिप गये तब दैत्य ने एक दूसरे गान्धर्व नामक अस्त्र को देवताओं की सेना पर छोड़ा। जिसके एक-एक प्रहार से हाथी, घोड़े, महारथी, रथ, उनके अश्वों की सैकड़ों और सहस्रों की संख्या को उसने अति शीघ्रता से विनष्ट कर दिया। तब सुराधिपति इन्द्र ने अपने त्वाष्ट्र नामक अस्त्र का प्रयोग किया। त्वाष्ट्र अस्त्र के संधान किये जाने पर रणभूमि में अग्नि की भीषण लपटें उठने लगीं। तदनंतर यंत्रों से युक्त कभी विफल न होने वाले दिव्य अस्त्रों का प्रयोग भी उसने किया। उन यन्त्रों से आकाश में वितान (मण्डप) की तरह आवरण छा उठा। उस वितान से मुसल अस्त्र का प्रभाव शान्त हो गया। उसके शान्त हो जाने से जम्भासुर ने यंत्रों के समूहों को नष्ट करने वाले शैलास्त्र का अभिसंधान किया, जिससे व्याम[1] जितने बड़े पत्थरों की वृष्टि होने लगी। तब त्वाष्ट्र अस्त्र द्वारा उत्पन्न यन्त्रों के समूह पत्थरों की वृष्टि से काटकर तिल रूप में परिणत कर दिये गये। इस प्रकार वे शैलास्त्र यन्त्रों को तिलशः काटकर शत्रुओं के ऊपर अतिवेग से पृथ्वी को विदारित करते हुए भीषण रूप में गिरने लगे। तदनन्तर सहस्त्रनेत्रों वाले इन्द्र ने वज्रास्त्र का अभिसंधान किया; जिससे पत्थरों की वर्षा चारों ओर से छिन्न-भिन्न हो गयी। शैलास्त्र के शान्त हो जाने पर पर्वत के समान विशाल आकृतिवाले अतिपराक्रमी जम्भासुर ने निर्भय होकर ऐषीक नामक अस्त्र का प्रयोग किया। उस ऐषीक अस्त्र से इन्द्र का प्यारा वज्रास्त्र विनष्ट हो गया। अत्यन्त प्रभावशाली तथा उत्तम ऐषीक अस्त्र के प्रयोग करने पर रथों तथा हाथियों के समेत देवताओं की सेना जलने लगी। इस प्रकार जलती हुई अपनी सेना को देखकर देवश्रेष्ठ पाकशासन इन्द्र ने अति तेज से अपने आग्नेय नामक अस्त्र का प्रयोग किया जिसके प्रभाव से वह अस्त्र प्रभावहीन कर दिया गया। उस अस्त्र के विनष्ट हो जाने पर इन्द्र का पावकास्त्र प्रज्वलित हुआ,

[1]दोनों हाथों के फैलाने से जितना अन्तर होता है उसे व्याम कहते हैं।

जिससे रथ और सारथी समेत जम्भासुर का सारा शरीर जलने लगा। उस अस्त्र से प्रतिहत होने पर प्रभावशाली जम्भ ने अग्नि की लपटों को शान्त करनेवाले वारुणास्त्र का प्रयोग किया। जिससे वेगपूर्वक फड़कती हुई बिजली की लताओं से संयुक्त गम्भीर मृदंग की भाँति ध्वनि करनेवाले बादलों से समस्त आकाशमण्डल पूरित हो गया। उस समय आकाश से गिरती हुई हाथी के शुण्डादण्ड की भाँति मोटी जल धाराओं से समस्त जगत् पूरित होकर शोभित होने लगा। इस अस्त्र के प्रभाव से आग्नेय अस्त्र एकदम शान्त हो गया। सुराधिप इन्द्र ने अपने अस्त्र को शान्त हुआ देख मेघों के समूहों को नाश करनेवाले वायव्य नामक अस्त्र का प्रयोग किया। वायव्यास्त्र के प्रभाव से मेघमण्डल के छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण व्योम मण्डल नीले कमल के दल के समान निर्मल हो गया। अति प्रचण्ड वायु के द्वारा कँपाये गये असुरवृन्द युद्ध भूमि में अति बलवान् होकर भी जब थम नहीं सके तब जंभासुर स्वयं उस प्रचंड वायु को रोकने के लिए दस योजन में विस्तृत पहाड़ के रूप में हो गया, जिस पर अनेक प्रकार के छोड़े गये हथियारों के उद्दण्ड तेज से वृक्षों की पंक्तियाँ प्रकाशमान् हो रही थीं। इस प्रकार दैत्येन्द्र जम्भ के पर्वताकार होने पर जब वायु शान्त हो गयी तब शतक्रतु इन्द्र ने वज्रमयी अति घोर अशनि (बिजली) उस शत्रु सेना पर फेंकी। गिरी हुई बिजली से उस पर्वतरूपधारी दैत्येन्द्र की सारी कन्दरायें छिन्न भिन्न हो गयीं, चारों ओर से बहनेवाले झरने विनष्ट हो गये; इस प्रकार उसकी वह पर्वत रचना की माया समाप्त हो गई। शैलमाया के निवृत्त हो जाने पर मदोन्मत्त दैत्येन्द्र एक महाभीषण महान् गिरि के समान विकराल हाथी के रूप में परिणत हो गया। उसने पैरों से देवताओं की सेना का मर्दन करना प्रारम्भ किया और दांतों से कितने देवताओं का संहार कर दिया। कितनों की पीठ अपने शुण्ड में लपेट कर तोड़ दी। देवसेना का विनाश करते हुए उस दैत्येन्द्र को देखकर वृत्रासुर इन्द्र ने त्रैलोक्य को कंपित करनेवाले नरसिंह नामक अस्त्र का अभिसंधान किया। मंत्र के प्रभाव से रणभूमि में काले रंग की दाढ़ों से भीषण अट्टहास करनेवाले, आरे के समान विकराल नखोंवाले सहस्रों सिंह विचरने लगे। उन सिंहों द्वारा फाड़े जाने पर उस असुर ने अपनी गज की वह माया छोड़ दी और फिर सौ फणों से युक्त अति भयानक सर्प का स्वरूप ग्रहण किया। उस महावीर ने अपनी विषैली श्वासों से देवताओं की सेना को विशेष रूप से जला दिया। तब सुन्दर भुजाओं वाले इन्द्र ने अपने गारुड नामक अस्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र से सहस्रों गरुड निकल पड़े। युद्ध भूमि में उन गरुडों ने जब भुजंग रूपधारी जम्भासुर को पकड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिये, तब उस दैत्य की वह माया भी विनष्ट हो गई। माया के विनष्ट हो जाने पर महान् पराक्रमी जंभासुर ने अपना चंद्रमा तथा सूर्य के मार्ग में भ्रमण करनेवाला एक अनुपम रूप बनाया और मुँह फैलाकर देवताओं के स्वामियों को निगल लेने की क्रूर चेष्टा की। पाताल लोक तक तालु को फैलाये हुए उस दानव के अतिभयानक मुख में महारथियों एवं हाथियों के समेत देवताओं की सेना प्रविष्ट होने लगी। इस प्रकार उस महाबलवान् दैत्य द्वारा सेना के निगल लेने पर देवराज इन्द्र बाहन समेत अति दीन हीन दशा को पहुँच गये। उनके बाहु परिश्रम से क्लान्त हो गये। उस समय क्या करना चाहिये—इसका विचार उनके मन में नहीं आ रहा था।

तब उन्होंने भगवान् जनार्दन से यह बात कही—हे 'भगवन्! इसके बाद अब हमें क्या करने के लिए शेष रहा? जिसके करने से इस दैत्य के साथ युद्ध में हम लोग विजयी हो सकते हैं।' इन्द्र की ऐसी बातें सुन उदारचेता विष्णु ने कहा—'पुरन्दर! इस समय भयभीत होकर इस भयानक युद्ध को तुम्हें छोड़ना नहीं चाहिये। शीघ्र ही शत्रु के विनाश के लिए तुम भी अपनी महामाया का विस्तार करो। समर्थ इन्द्र! यह पराक्रमी दैत्य मेरा जाना हुआ है। अज्ञान में मत फँसो, शीघ्र ही दूसरे अस्त्र का स्मरण (प्रयोग) करो।' हरि की ऐसी बातें सुन देवराज इन्द्र ने अति क्रुद्ध होकर उस दानव के संहारार्थ एकाग्र चित्त हो अपने नारायण नामक अस्त्र का अभिसंधान किया, और उससे दैत्य की छाती में कठोर प्रहार किया। किन्तु इन्द्र के बाण छोड़ने न छोड़ने तक ही वह भयानक दैत्यराज अपना भीषण मुख फैलाकर क्षण ही भर में गन्धर्व, किन्नर, सर्प एवं राक्षसों की तीन लाख सेना को निगल चुका था। इसी बीच वह नारायणास्त्र उस असुर के वक्षस्थल में जा लगा। उस महान् प्रभावशाली अस्त्र से घायल होकर भिन्नहृदय वह असुर राज रक्त गिराने लगा। जिससे उस असुरनन्दन ने उद्गार (वमन) की क्रिया से अपने उदर में स्थित उन निगले गये वीरों को बाहर निकाल कर एक रणागार ही उपस्थित कर दिया। उस अस्त्र के प्रभाव से दैत्य का वह रूप विनष्ट हो गया। उसके बाद ही वह आकाशमार्ग में अंतर्हित हो कर आँखों से ओझल हो गया। आकाशमण्डल में अवस्थित उस दैत्येन्द्र ने आँखों से दिखाई पड़नेवाले उन अस्त्र शस्त्रों से देवताओं की सेना पर प्रहार करना प्रारम्भ किया, जो उस संहार कार्य में प्रमुख कारण थे। भाले, फावड़े, चक्र, बाण, मुद्गर, वज्र, तलवार, कुठार, भिंदिपाल और लोहे की बनी हुई श्रृंखलाओं या फंदों को, जो कभी विफल एवं नष्ट नहीं हो सकते थे, उस भयानक आकृतिवाले असुर ने देवताओं की सेना पर बरसाया। अति भयानक दैत्यों द्वारा बरसाये गये उन अस्त्रों से कटे हुए हाथों एवं कुण्डल समेत मस्तकों तथा हाथी के शुण्ड के समान वीरों की विशाल जंघाओं से सारा पृथ्वी तल पट गया। पर्वत के समान विशाल आकृतिवाले हाथियों तथा सारथी समेत चक्का धुरी आदि से विहीन रथों से आकीर्ण होने के कारण मांस तथा रक्त से एकदम कीचड़ के रूप में सनी हुई, रक्त के तालाबों में उठनेवाली लहरों से युक्त एवं पर्वत शिखर के समान विशाल वीरों के शव समूहों से आकीर्ण पृथ्वी उस समय चलने योग्य नहीं रह गई थी। कटे हुए मस्तक वाले कबंधों के नृत्य से व्याप्त, घायल शरीरों से निकलते हुए मांस तथा रक्त की कीचड़ से युक्त, त्रैलोक्य के सभी देहधारियों के विनाश के कारण उस युद्ध भूमि में गृद्ध, श्रृगाल तथा कौए अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। कहीं पर शव से आखों को खींचता हुआ कौआ ऊँचे स्वर से बोल रहा था, कहीं पर श्रृगालों के समूह शव की भारी अँतरी खींचते हुए चले जा रहे थे, कहीं पर अपनी चोचों से मांस को चबाता हुआ अति विकराल बगुला बैठा हुआ था। कहीं पर कुत्ते की जातिवाले गीदड़ आदि मरे हुए वीर के शरीर से मांस ले जाते हुए दिखाई पड़ रहे थे। कहीं पर कोई एक गीदड़ हाथी के रक्त को उसकी अँतड़ी फाड़कर पी रहा था, कहीं पर मरे हुए घोड़ों के समूह कुत्तों के समूहों से इधर-उधर खींच कर लाये जा रहे थे। रक्त रूप मदिरा भरपूर पान करनेवाले पिशाचों के समुदाय कहीं पर अपनी

स्त्रियों के साथ अति प्रमोद में उन्मत्त होकर शीघ्रतापूर्वक इधर-उधर घूम रहे थे। एक पिशाच की पत्नी कह रही थी—'हे प्रिय! वह दिखाई पड़नेवाला खुर (पैर) मुझे भला मालूम हो रहा है अतः उसे मेरे लिए तुम ला दो। वह दिखाई पड़नेवाला कमल के समान सुन्दर हाथ मेरे कानों का भूषण होगा।' एक दूसरी पिशाचिनी उस समय अपने पति के सन्निकट न रहने के कारण शव की चर्बी को अमर्ष के साथ देख रही थी। कोई दूसरी पिशाचिनी घने पल्लवों के शीतल पत्तों के दोनों में शव के मृदु चर्म को फाड़कर गरम-गरम मदिरा की भाँति रक्त को अपने हाथों से अपने पति को पिला रही थी। कोई यक्ष की कामिनी जिस प्रकार वृक्ष कुठार से काटा जाता है उसी प्रकार हाथी के दाँतों को लेकर उसकी गण्डस्थल को चीरकर उसके श्रेष्ठ गजमुक्ता को लेकर उसीके द्वारा अपने प्रियतम को प्रसन्न करने की अभिलाषा कर रही थी। उस समय यक्ष तथा राक्षसगण मांस समेत रक्त का मदिरा के समान यथेच्छ पान कर रहे थे। एक पिशाच की स्त्री मरे हुए अश्व के रक्त को, जो उसके बालों से दुर्गन्ध युक्त हो रहा था, अपने हाथों में लेकर कह रही थी—'मेरे लिए किसी दूसरे शीघ्र ही मरे हुए जीव का रक्त लाओ, श्मशान में दिखाई पड़नेवाले ये पुराने मरे हुए जीव हमारे लिए पथ्य नहीं हो सकते।' ऐसा कह कर उसने मनुष्य के शव को छोड़ दिया और किन्नर के मुख की प्रशंसा की। 'वह दिखाई पड़नेवाला हाथी यद्यपि मर चुका है, पर फिर भी हम लोगों को भय दे रहा है। दानव का मुख मैं अकेली ही नहीं खा सकती'—यक्षों की स्त्रियाँ इस प्रकार की बातें अपने पतियों से कर रही थीं। दूसरे कुछ पिशाच यक्ष तथा राक्षसगण अपने हाथों में खप्पर लेकर कह रहे थे 'अरे अति भोजन करनेवाले! मुझको भी कुछ दो।' कुछ अन्य पिशाचगण रक्त की नदियों में खूब नहाकर अपने देवताओं तथा पितरों का मांसों से तर्पण कर रहे थे और छोटी नौका वा घन्नाई की भाँति तैरते हुए हाथियों के कटे हुए शरीरों पर स्थित होकर रक्त के सरोवरों में तैर रहे थे ॥९६-१४४॥

इस प्रकार अति संकटापन्न उस देवासुर संग्राम में मानी तथा दुर्जय वीरगण भय छोड़कर पुनः युद्ध करने लगे। महाबलवान् इन्द्र, धनपति कुबेर, वरुण, पवन, अग्नि, यमराज, निर्ऋति आदि वीर देवगण दिव्य अस्त्रों को लेकर आकाश मार्ग में दानवों को लक्ष्य करके प्रहार करने लगे। किन्तु देवताओं के वे सभी अस्त्र, जो दैत्यों को लक्ष्य करके छोड़े गये थे, व्यर्थ हो गये। वे लोग अति क्रोधाकुल होकर एकत्र हुए और तुमुलध्वनि कर युद्ध करते-करते थक से गये, परन्तु दैत्यों की गति का उन्हें पता भी नहीं लगा। दैत्यों के अस्त्रों से घायल अंगोंवाले वे देवगण उस समय यह नहीं विचार कर पाते थे कि अब क्या किया जाय? इस प्रकार वे आपस में शीत से व्याकुलित गौ की भाँति अवसन्न-से हो गये। देवताओं की ऐसी दशा देखकर विष्णु भगवान् ने इन्द्र से कहा—'देवेन्द्र! अब तुम उस ब्रह्मास्त्र का स्मरण करो, जिसके द्वारा कोई भी अवध्य नहीं है।' विष्णु के ऐसा कहने पर इन्द्र ने अपने महातेजस्वी ब्रह्मास्त्र का स्मरण किया। ॥१४५-१५०॥

तदनन्तर परम बुद्धिमान् इन्द्र नित्य शत्रुओं को विनष्ट करनेवाले मंत्र द्वारा भली भाँति सुपूजित

अभिमंत्रित उस ब्रह्मास्त्र को अपने शत्रु के विनाश कार्य में अपने अजेय धनुष पर आरोपित कर, मंत्रोच्चारण करते हुए समाधि में लीन-से हो गये। इन्द्रियों को वश में कर उन्होंने दैत्य के वध करने की नीयत से उक्त वाण का अभिसंधान किया और प्रत्यञ्चा को कर्णपर्यन्त खींचकर उस परम तेजस्वी वाण को, जिसकी लपटें चारों ओर फैल रही थीं, ऊपर आकाश मण्डल की ओर मुख कर के छोड़ दिया। जब असुर ने ब्रह्मास्त्र को छोड़ते हुए देखा तो अपनी सारी माया छोड़कर वह पृथ्वी पर चुपचाप बैठ गया और काँपते एवं सूखे हुए मुख, बल तथा शरीर से एक दम व्याकुल हो गया। उस महा रण में इन्द्र द्वारा छोड़ा गया मंत्र द्वारा अभिमंत्रित वह वाण अर्धचन्द्र के आकार में परिणत हो गया। इन्द्र के शरासन से छूटते ही वह अपने अनुपम तेज से नवीन सूर्य की कान्ति को तिरस्कृत करता हुआ लक्ष्य पर जा गिरा। उस वाण के छूटने से किरीट की मणियों की कान्ति के पुञ्जों से आकीर्ण, अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्य एवं पुष्पों से सुवासित, अति परिमाण में धुएँ से घिरी हुई अग्नि के समान केशों से संयुक्त जम्भासुर का शिर कुण्डल समेत रणभूमि में आ गिरा। इस प्रकार जम्भासुर के मारे जाने पर सभी दैत्यगण रण से विमुख होकर भग गये और अपने-अपने संकल्पों को छोड़ कर वहाँ गये, जहाँ पर स्वयं तारकासुर विद्यमान था। ॥१५१-१५५॥

तारकासुर अपने सैनिकों को अति भयभीत देख तथा सेनापति दानवेन्द्र जम्भ को रण भूमि में देवताओं द्वारा मारा गया सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और अत्यन्त गर्व, क्रोध, पराक्रम तथा आविष्कार से संयुक्त एवं विना किसी रूप रेखा के विचित्र मनोभावों में प्राप्त हुआ अर्थात् इन सब कारणों से उसकी एक विचित्र दशा हो गई। तब सौ गरुड के समान वेगशाली रथ पर आरूढ होकर दैत्येन्द्र तारकासुर ने अति क्रोध से युद्ध भूमि में प्रस्थान किया। उस समय वह सभी प्रकार के हथियारों से संयुक्त था। सभी प्रकार के अस्त्रों से सुरक्षित था। त्रैलोक्य के समस्त ऐश्वर्यों से सुसम्पन्न था। उसका विस्तृत एवं महान् मुख शोभायमान हो रहा था। इस प्रकार बहुत विशाल सेना से चारों ओर घिरकर वह शीघ्र ही युद्ध के लिए नीचे उतर आया। उसने जम्भासुर के अस्त्रों से समस्त अंगों में अति घायल ऐरावत हाथी को छोड़कर उस रथ को चारों ओर से घेर लिया, जो इन्द्र के तेज से मातलि द्वारा रक्षित था, तपाये हुए सुन्दर सुवर्ण के आभूषणों से आभूषित था; बहुमूल्य रत्नों से जटित था, चार योजन में विस्तृत था, सिद्धों के समूहों से संयुक्त था, गन्धर्व एवं किन्नरों के सुन्दर गीतों से गुंजित था, अप्सराओं के नृत्यों से संकुलित था, सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से भरा हुआ था और विचित्र उज्ज्वल रंग का था। उसी बीच में गरुडवाहन भगवान् विष्णु के समेत सभी लोक पाल भी घिरे हुए थे। उस समय समस्त पृथ्वी चलने लगी, प्रचण्डवायु बहने लगी, समुद्रगण उछलने लगे, सूर्य की कान्ति मलीन हो गई। समस्त संसार में अंधकार छा गया। आकाश में तारागण उदित हो गये। अस्त्रों के समूह प्रकाशित होने लगे। दोनों ओर की सेना भय से काँपने लगीं। एक ओर से दैत्यराज तारक तथा दूसरी ओर से देवताओं का समूह था। एक ओर समस्त लोकों का क्लेश था और दूसरी ओर जगत् का पालन था। इस प्रकार सुर एवं असुर के भेद से समस्त चराचर जीव वहाँ पर इकट्ठे हुए थे। वे दो भागों में विभक्त होने पर भी

दर्शकों की भाँति एक समूह में दिखाई पड़ रहे थे। तीनों लोकों में जितनी वस्तुएँ अपनी सत्ता में उपस्थित थीं, वे सभी अपनी विभूति को प्रकाशित करती हुई वहाँ दिखाई पड़ रही थीं। देवताओं तथा दानवों की तपस्या के माहात्म्य से उस युद्ध भूमि में अस्त्र, तेज, धन, धैर्य, सैन्य बल, साहस, पराक्रम—ये सभी सत्त्व एवं तेज के समूह के रूप में दिखाई पड़ रहे थे। ॥१५६-१६९॥

सम्मुख आते हुए देखकर तारकासुर के हृदय में इन्द्र ने तिरछे नव वाणों से प्रहार किया, जिनके अग्रभाग अग्नि की भाँति विकराल एवं दाहक थे। दैत्येन्द्र ने इन्द्र के उन नव वाणों की, जो उसकी छाती पर लगे हुए थे, कोई भी परवा न की और अपने नव-नव वाणों से एक-एक देवताओं पर प्रहार किया। उसके वे वाण समस्त संसार का विनाश कर देने में समर्थ थे और अग्रभाग में अति सूक्ष्म कील की भाँति नुकीले थे। तब देवताओं ने भी युद्ध में घनघोर वाणों की वृष्टि की। आगे भी स्त्रियों के अजस्र प्रवाहित होने वाले अश्रुप्रवाह की भाँति वे निरन्तर वृष्टि करते ही रहे, किन्तु दानव उन्हें अपने पास पहुँचने के पूर्व ही इस प्रकार नष्ट कर देता जैसे कुपुत्र अपने दुश्चरित्रों से परम पवित्र परम्परागत निर्मल सुप्रतिष्ठा से युक्त अपने उच्च एवं विस्तृत परिवार का विनाश कर देता है। इस प्रकार अपने वाणों से उस असुरेन्द्र ने देवताओं द्वारा फेंके गये उन वाणों के जालों को छिन्न-भिन्न कर पृथ्वी तथा दिशाओं को आकीर्ण कर दिया। अपने स्थान पर आये हुए देवताओं के वाणों के मूल भागों को उसने अपने उन वाणों के समूहों से, जिनके अग्रभाग अतितीक्ष्ण थे, जिनके पीछे उड़ने के लिए कंक और वर्हि की पूँछे लगी हुई थीं, कान के समीप तक हाथ लाकर पराक्रमपूर्वक खींचकर लक्ष्य पर छोड़े गये थे, सुवर्ण तथा चाँदी के समान उज्ज्वल वर्ण के थे, इस प्रकार काट दिया जैसे विकल्प पूर्ण शास्त्रार्थों द्वारा संशय में पड़े हुए सिद्धान्त वा तत्त्व। तदनंतर दानव ने अपने सौ वाणों द्वारा इन्द्र पर भीषण प्रहार किया। उसने नारायण पर सत्तर वाणों से, अग्नि पर नब्बे वाणों से, वायु के शिर पर दस वाणों से, यमराज पर दस वाणों से, धनाध्यक्ष कुबेर पर सत्तर वाणों से, वरुण पर आठ वाणों से भीषण प्रहार किया। दैत्यराज ने बीस वाणों से तथा फिर दुबारा आठ वाणों से निर्ऋति पर आघात किया। फिर एक-एक देवताओं पर उसने दस-दस वाणों द्वारा कठोर प्रहार किया। फिर दैत्य ने तीन शीघ्रगामी वाणों से मातलि पर आघात किया और दस वाणों से गरुड को घायल किया। फिर उसने अपने तिरछे वाणों से देवताओं के कवच एवं धनुष को तिलवत् काटकर टुकड़ा-टुकड़ा कर दिया, जिससे देवता लोग कवच धनुष तथा वाणों से एकदम हीन कर दिये गये। ॥१७०-१८२॥

तब उस महायुद्ध में लोकपाल तथा देवतागण अतिशय क्रुद्ध होकर दूसरे-दूसरे धनुष धारण कर चारों ओर से फिर आ गये और अपने-अपने अक्षय वाणों द्वारा दैत्येन्द्र को आहत करने लगे। जिससे अति क्रोध युक्त हो लाल-लाल नेत्र किये हुए दैत्येन्द्र ने अग्नि के समान भीषण एवं विकराल वाणों की वृष्टि देवताओं पर पुनः की। अमर्ष से अति लालनेत्र हो दैत्येन्द्र नें भी देवताओं पर अग्नि के समान विकराल वाणों की विपुल वृष्टि की और शीघ्र ही महाप्रलय कालीन अग्नि की भाँति एक विकराल वाण लेकर सुन्दर भुजाओंवाले इन्द्र के वक्षस्थल पर घोर प्रहार किया, जिससे अतिशय व्याकुल होकर देवराज इन्द्र भी अपने

रथ पर बैठे हुए काँपने लगे। असुर ने आकाशमण्डल में सहस्रों सूर्य की भाँति परम प्रतापी विष्णु भगवान् को देखकर क्रीडा समेत दो बाणों से उनके कंधे के मूलभाग में प्रहार किया, जिससे केशव का शार्ङ्ग धनुष उनके आगे गिर पड़ा। तदनंतर दैत्यराज उस तारकासुर ने अनेक बाणों से प्रेतों के स्वामी यमराज को तथा उनके बाएँ भाग में बैठे हुए वसु को एकदम तुच्छ मानते हुए विधिवत् आहत किया। फिर अग्नि के समान विकराल बाणों से जल के स्वामी वरुण के शरीर को बेधकर उसने उन्हें सुखा दिया। फिर शीघ्र ही अपने अग्नि के समान बाणों से राक्षसों को दसों दिशाओं में अति भयभीत कर दिया। इस प्रकार असुरस्वामी उस तारकासुर ने अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा लीला करते हुए वायु को भी विह्वल कर दिया। थोड़ी देर बाद चेतनता प्राप्त कर स्वयं विष्णु भगवान्, इन्द्र, अग्नि आदि देवतागण अति तीक्ष्ण बाणों को एकत्र कर उस प्रचण्ड तारक दैत्य के साथ विष के ग्रास के समान भयदायी अति घोर संग्राम करने लगे। और उस समय हरि ने अपने धनुष की डोर को खींचकर तीक्ष्ण बाणों द्वारा दैत्यराज तारक के सारथी को मार गिराया तथा साथ ही उसके वक्षस्थल में भी कठोर प्रहार किया। अग्नि ने उसके रथ की ध्वजा को, महेन्द्र ने किरीट को, धनाध्यक्ष कुबेर ने सुवर्ण जटित पृष्ठ भाग वाले धनुष को, यमराज ने बाहुदण्ड को, वायु ने रथ के अवयवों को और राक्षसों के स्वामी निर्ऋति ने कवच को काट गिराया। तब दैत्यनाथ तारक ने युद्ध में देवताओं के इस महान् एवं सत्य पराक्रम को देखकर अपने दोनों उग्र भुजदण्डों की सहायता से रणभूमि में सहस्रनेत्र इन्द्र को मारने के लिए एक भयानक मुद्गर छोड़ा। आकाशमार्ग से आते हुए कभी विफल न होनेवाले उस भीषण मुद्गर को देखकर पाकशासन इन्द्र रथ से कूद कर पृथ्वी पर आ गये। उधर मुद्गर घोर शब्द करता हुआ रथ के जुए पर गिरा, जिससे रथ तो चूर्ण हो गया किन्तु उसी पर स्थित सारथी मातलि नहीं मरा। फिर दैत्य ने बरछी लेकर केशव पर प्रहार किया जिससे अचेत होकर वे गरुड के कन्धों पर दुबक गये। तदनन्तर तलवार लेकर उसने राक्षसराज निर्ऋति के बाहन को काट डाला। भुशुण्डि से उस दैत्य ने यमराज को बाहन पर से नीचे गिरा दिया। भिंदिपाल लेकर अग्नि के शिर पर कठोर आघात किया। वायु को अपनी दोनों बाहुओं से झकझोड़ कर पृथ्वी तल पर पटक दिया। अति क्रुद्ध होकर धनुष की छोर से धनाधिपति कुबेर को खूब पीटा। फिर देवताओं के समूहों में से एक-एक पर उस अमित विक्रमशाली असुरेन्द्र ने असंख्य अस्त्रों द्वारा घोर प्रहार किया। क्षण भर में फिर चेतनता प्राप्त कर सर्वप्रथम विष्णुभगवान् ने अपने दुर्धर्ष चक्र से, जो उसके मांस तथा रक्त से सिंचित था और मांसाहार करनेवाले दैत्यों की ओर सदा उन्मुख रहता था, उस दैत्येन्द्र की छाती में घोर प्रहार किया। सूर्य के समान जाज्वल्यमान दैत्येन्द्र की छाती में वह चक्र जाकर गिरा और उसके शरीर में टकरा कर वह इस प्रकार टूट-फूट गया जैसे पत्थर पर गिर कर नीले कमल का फूल छिन्न-भिन्न हो जाता है। तदनन्तर महेन्द्र ने अपने चिरकाल से पूजित वज्र को, जिससे उनको इस दानवेन्द्र के युद्ध में विजय की पूरी आशा थी, छोड़ा; किन्तु शौर्यशाली तारकासुर के शरीर को प्राप्त कर वह प्रकाशमान वज्र भी सैकड़ों छोटे-छोटे टुकड़ों में परिणत हो गया और एकदम बेकाम हो गया। तब वायु ने असुर के वक्षस्थल पर अतिशय तेज से अग्नि के समान जलते हुए वज्र के समान प्रभावकारी

अपने अंकुश को छोड़ा किन्तु वह भी एकदम नष्ट हो गया। इस प्रकार तेजस्वी अंकुश को रणभूमि में नष्ट हुआ देख वायु ने पाँच योजन में फैले हुए पुष्पित वृक्षों तथा विशाल कंदराओं से सुशोभित एक बहुत बड़े पर्वत को उठाकर उसके ऊपर फेंका। उस विशाल पर्वत को, ऊपर आते देखकर दैत्य ने हँसते हुए क्रीडा में गेंदा पकड़ने के समान बाएँ हाथ से पकड़ लिया और अलग फेंक दिया। तब क्रोध से मूर्च्छित होकर दुर्जय कृतान्त ने अपने कालदण्ड को उठाया और घुमाकर वेग से दैत्येन्द्र के शिर पर कठोर आघात किया। किन्तु शिर पर गिरने पर भी दैत्येन्द्र ने उस डण्डे की कोई परवा न कीं। तब अग्नि ने महाप्रलयकालीन अग्नि के समान भीषण आलोकमयी अजेय अपनी परम दुर्द्धर्ष शक्ति युद्ध में उस असुरेन्द्र के ऊपर छोड़ी, किन्तु वह शक्ति भी उसके वक्षस्थल पर नवीन शिरीष के फूलों की माला की भाँति शोभित होकर रह गयी। तब लोकपाल निर्ऋति ने कोश (म्यान) से आकाश के समान नीले वर्णवाली सभी दिशाओं में एक चमक पैदा करती हुई तलवार को खींचकर उसके शिर पर कठोर आघात किया, किन्तु वह तलवार भी सौ टुकड़ों में परिणत हो गई। तब जल के स्वामी वरुण विष की अग्नि से बुझाये गये भीषण एवं अति दुर्द्धर्ष सर्पपाश को उस दैत्येन्द्र की भुजाओं को बांध लेने की अभिलाषा से छोड़ा, किन्तु वह पाश भी उसकी भुजाओं पर पहुँचकर चूर्णवत् हो गया। उसकी आरे के समान विशाल दाढ़ें एवं क्रूर दांत चूर-चूर होकर नष्ट हो गये। तब महाबलवान् दोनों अश्विनीकुमार मरुत् तथा साध्यों के समूह एवं महा सर्पगण तथा यक्ष; राक्षस, गंधर्व आदि अनेक प्रकार के दिव्य शस्त्रास्त्रों को हाथ में लेकर, युद्ध में उस दैत्यराज के ऊपर एक साथ आघात करने लगे; किन्तु वज्र के पर्वत के समान उस दैत्य के शरीर में वे समवेत होकर भी कुछ प्रभाव नहीं दिखा सके। ॥१८३-२१४॥

इस प्रकार एक साथ प्रहार करते हुए समस्त देवताओं को देखकर असुरेन्द्र तारक ने रथ से नीचे उतरकर अपने हाथों तथा पैरों से करोड़ों देवताओं का संहार करना प्रारम्भ किया। जिससे मारने से बचे हुए देवताओं के सैनिकगण दसों दिशाओं में भयभीत होकर रण सामग्रियों को छोड़-छोड़कर भागने लगे। उधर दैत्येन्द्र ने युद्ध में इन्द्र आदि प्रमुख लोकपालों को भगवान् विष्णु समेत इस प्रकार, बाँध लिया जैसे कसाई पशुओं को बाँधता है। देवताओं को बाँधकर वह रथ पर आरूढ हो अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया, जो एक विशाल पर्वत के शिखर पर अवस्थित था। उस समय सिद्ध गन्धर्व आदि उच्च स्वर में उसके यश का गान कर रहे थे। दिति के पुत्र दैत्यगण उसकी स्तुति कर रहे थे। अप्सराएँ नृत्य आदि से मनोरंजन कर रही थीं। उस समय ऐसा विदित हो रहा था मानो त्रैलोक्य की लक्ष्मी अपने निवास स्थान में प्रविष्ट हो रही हो। वहाँ पहुँच कर दैत्य पद्मराग मणि के बने हुए सिंहासन पर शोभायमान हुआ। उस समय किन्नरों, गन्धर्वों एवं नागों की सुन्दर स्त्रियाँ उसका मनोविनोद करने लगीं। विनोद करते हुए उस दैत्य के मुकुट की मणियाँ तथा कुण्डल झूलते हुए सुप्रकाशित हो रहे थे। ॥२१९-२२०॥

श्री मात्स्य महापुराण में देवासुरसंग्राम प्रसंग में तारकविजयप्राप्ति वर्णन नामक
एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५३ ॥

एक सौ चौवनवाँ अध्याय

सूत बोले—ऋषिगण ! देवताओं को जीतकर दैत्येन्द्र तारक अपनी नगरी में वापस आया और सिंहासनाधिरूढ हुआ । कुछ बाद समय स्वच्छ नीले रंग के रेशमी वस्त्रों को धारण किये हुए उसका द्वारपाल दरबार में उपस्थित हुआ और अपने घुटनों को पृथ्वी पर टेक कर दोनों हाथों से मुँह को छिपा कर अल्प अक्षरों वाले स्पष्ट तथा मृदु शब्दों में अनेक सूर्य के समान तेजोमय शरीरधारण करनेवाले उस दैत्येन्द्र तारक से इस प्रकार निवेदन किया—'महाराज ! दैत्यश्रेष्ठ कालनेमि देवताओं को बाँधकर द्वार पर लाकर खड़ा हुआ है और पूछ रहा है कि इन बंदियों को कहाँ रखा जाय ?' द्वारपाल की ऐसी बातें सुन दैत्य ने कहा—'अरे उनकी इच्छा के अनुसार चाहे जहाँ रखे । मेरा तो तीनों भुवन पर अधिकार है । केवल पाश के बंधनों से उन्हें शीघ्र ही मुक्त कर दिया जाय ।' ऐसा कर देने पर देवतागण अति दुःखी चित्त से कमलयोनि ब्रह्मा की शरण में उन्हें देखने के लिए गये । और वहाँ जाकर उन इन्द्र आदि देवगणों ने अपने ऊपर बीती हुई तमाम बातों को उनसे निवेदित करने का विचार किया । वहाँ जाकर वे अपने अपने शिरों को पृथ्वी पर टेक कर बैठ गये । फिर सबों ने स्पष्ट वर्णों तथा अर्थोंवाले वाक्यों से कमलासन भगवान् ब्रह्मा की इस प्रकार स्तुति की । "हे विश्वात्मन् ! इस अनन्त भेदवाले विश्व के तुम मूल कारण तथा उत्पत्ति के निमित्त एवं ओंकार स्वरूप हो । तुम्हारा वह पूर्वकालीन ओंकार स्वरूप ही इस जगत् वृक्ष का अंकुर है । हे सत्यमूर्ति ! रचना के पीछे तुम्हीं सत्त्वरूप होकर उसका पालन करते हो, और हे रुद्रमूर्ते ! संहार के अवसर पर तुम्हीं भयानक रूप धारण कर सब का संहार करते हो । ऐसे त्रिगुण स्वरूप आप को हम सब लोग नमस्कार कर रहे हैं । तुम अपनी महिमा से अपने शरीर को अंड रूप में परिणत करके उस अंड के ऊपर और नीचे दो विभाग कर पृथ्वी और स्वर्ग की रचना करते हो । तुम अचिन्त्य हो । मनुष्यों की आयु के तुम्हीं निर्माता हो, सभी देवताओं का जन्म भी तुम्हीं से होता है—यह स्पष्ट है । हे देव ! तुम अजन्मा एवं सनातन हो, स्वर्ग तुम्हारा मस्तक है, सूर्य और चंद्रमा तुम्हारे नेत्र हैं; सर्प तुम्हारे केश हैं, दिशाएँ कान हैं, पृथ्वी चरण है, समुद्र नाभि है । तुम्ही माया के रचने-वाले तथा समस्त जगत् के आदि कारण हो । वेद समूह तुम्हें शान्त और ज्योति से विमुक्त कहते हैं । बुद्धिमान् लोग वेदों के अर्थों से तुम्हें भली भाँति जानकर हृदय कमल में विराजित पुराणपुरुष कहकर निश्चित करते हैं । सांख्य एवं योग के जाननेवाले तुम्हें आत्मा कहकर मानते हैं । सात सूक्ष्म पदार्थ कहे गये हैं, एवं उनके कारण स्वरूप आठवाँ पदार्थ तम है, इस प्रकार आठ पदार्थ—उनके यहाँ—जो माने गये हैं, उन सबों में तुम विद्यमान माने गये हो । यही नहीं तुम उससे भी परे माने गये हो । आदि काल में तुमने किसी अज्ञात कारण वश अपनी मूर्ति को स्थूल तथा सूक्ष्म रूप में विविध पदार्थों में परिणत किया था । देवादि जितने शरीरी हैं—वे सभी तुम से उद्भूत हुए हैं और तुम्हारे संकल्प के अनुरूप ही उन लोगों की वैसी-वैसी वासनाएँ भी उत्पन्न हुई हैं । हे देव ! तुम अनन्त माया द्वारा निगूढ हो, एवं कल्पित संख्याओं

से भी अतीत हो। काल स्वरूप हो। आत्म स्वरूप धारण करनेवाले भगवन्! तुम्हीं इस जगत् के सद्-सत् जितने पदार्थ हैं, सब के विनाश के कारण हो। अनन्त रूप धारण कर उन सबों के तुम्हीं करनेवाले भी हो। संसार में जो कुछ भी सूक्ष्म तथा उनकी अपेक्षा स्थूल पदार्थ विद्यमान हैं, तथा अन्य जो कुछ पदार्थ उन स्थूल पदार्थों को भी आवृत (ढकनेवाले) करने वाले हैं, तुम उन सबों से स्थूल हो। सनातन हो। भूत भव्य—सब कुछ हो। तुम अपने संकल्प द्वारा प्रत्येक पदार्थों में अनुप्रविष्ट होकर व्यक्त होते हो, एवं उन-उन पदार्थों से निर्गत भी होते हो। इस प्रकार सभी व्यक्त भावों का निरसन कर के भी तुम अवस्थित हो। तुम अनन्त मूर्ति धारण करनेवाले हो, तुम्हारा स्वभाव ही यह है। तुम अपने भक्त जनों को शरण देनेवाले, त्राण करनेवाले तथा रक्षक—सब कुछ हो।" ॥९-१५॥

देवगण इस प्रकार अविकारी ब्रह्मा की प्रार्थना कर के एकदम चुप हो गये और मन में इष्ट प्रयोजन की सफलता के लिए प्रार्थना करने लगे। देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् ब्रह्मा अत्यधिक प्रसन्न हुए और वर देनेवाले अपने बायें हाथ से निर्देश-सा करते हुए देवताओं से इस प्रकार बोले। ॥१६-१७॥

ब्रह्मा बोले—इन्द्र! विना किसी कारण से इस मलीन मुख तथा सूखे हुए केशों से तुम्हारा शरीर आभूषणादि को छोड़नेवाली पति विहीन स्त्री की भाँति दिखाई पड़ रहा है। हुताशन! (अग्नि) धुएँ से रहित होकर भी तुम इस समय शोभित नहीं हो रहे हो, इतने मलिन दिखाई पड़ रहे हो मानो चिरकाल से बुझे हुए हो तथा राख की ढेर से छिपे हुए हो। यमराज! इस रुग्ण दिखाई पड़नेवाले शरीर में इस समय तुम शोभित नहीं हो रहे हो, मालूम हो रहा है कि रोग के कारण तुम एक पग भी चलने में असमर्थ हो कर इस कालदण्ड के सहारे चले आ रहे हो। यह निशिचरों का स्वामी (निॠति) भी डरा हुआ-सा बातें कर रहा है। राक्षसेन्द्र! शत्रुओं के विनाशक! इस समय तुम शत्रु द्वारा ताडित से दिखाई पड़ रहे हो। वरुण! तुम्हारा शरीर चारों ओर अग्नि से जले हुए की भाँति सूखा हुआ-सा है। सर्पों द्वारा तुम्हारे पाश में रक्त उगला गया दिखाई पड़ रहा है। वायु! स्नेही जनों से पराजित किये हुए की भाँति विचेत-से तुम दिखाई पड़ रहे हो। धनाध्यक्ष कुबेर! तुम अपनी धीरता छोड़कर क्यों इतने भयभीत-से दिखाई पड़ रहे हो? रुद्र गण! आप लोग तो त्रिशूल धारण करने वाले थे, बताइये तो सही कि आप की वह त्रिशूल धारण करने की क्षमता क्या हो गई? आप लोगों के तेज को भला किसने हर लिया? मधुसूदन! इस समय अकर्मण्यता पर पहुँचा हुआ आप का यह हाथ शोभित नहीं हो रहा है, नीले कमल के समान दिखाई पड़नेवाले आप के इस सुदर्शन चक्र की यह कैसी शोचनीय दशा हो गई है? चारों ओर मुखों से सुशोभित! आँखे बंद कर इस समय आप अपने उदर में विराजमान भुवनों को क्यों देख रहे हैं?' भगवान् ब्रह्मा के ऐसा पूछने पर सब देवताओं ने ऐसे अवसर पर बोलने की कला में निपुण होने के कारण वायुदेव को प्रेरित किया। तब विष्णु आदि प्रमुख देवताओं के सिखलाने पर वायु चराचर जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्मा से इस प्रकार बोले— ॥१८-२८॥

'अनन्त ! आप समस्त चराचर जगत् के प्राणियों के मनोभावों को न जानते हों—ऐसा हो ही नहीं सकता । आप समस्त संसार के भावों को जाननेवाले हैं, महान् हैं, सर्वोपरि हैं, समस्त जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता हैं । किन्तु याचक के अभिलाषा के विस्तृत वाक्य को सुनने के लिए आप कुतूहल का भाव रखते हैं । आप चराचर जगत् के समस्त भिन्न-भिन्न गुणों व स्वभावों वाले प्राणियों को उत्पन्न करते हैं । यद्यपि समस्त देवगण तथा असुर गण आप की दृष्टि में समान हैं, क्योंकि आप तो सभी के जनक हैं, तथापि पिता के मन में भी अपने पुत्रों के बलवान्, निर्बल, सगुण तथा निर्गुण होने का अन्तर रहता ही है । आप के वरदान को प्राप्तकर भय से निवृत्त हो वज्रांग का पुत्र महाबलवान् तारक नामक असुर इस समय जगत् के चराचर जीवों का घोर विनाश कर रहा है, उस नीच को आप ने इस प्रकार समर्थ कर दिया है । हे द्विजनायक ! यह सर्व प्रसिद्ध बात है कि आपने जगत् की स्थिति एवं पालन के लिए अत्यद्भुत चरित्र वाले, विचित्र गुणवान, संतुष्ट करनेवाले, समस्त मनोरथों को देनेवाले देवताओं की रचना की थी । और आप ही के आदेशानुसार सर्वदा से स्वर्ग उन यज्ञभोक्ता देवताओं के वश में रहता आया है; किन्तु उस दैत्य ने देवताओं के सब विमानों को छीन कर स्वर्ग को महा मरुस्थल की भाँति उजाड़ बना दिया है । जिस हिमवान् पर्वत को आपने संसार के पर्वतों का राजा होने के कारण सभी प्रकार के गुणों से समन्वित किया था, और जो आकाश मण्डल तक ऊँचा था, वह दैत्य के कठोर वज्र से शिखरों तथा सुन्दर तटों के तोड़ देने से अब उसके निवास एवं विहार की क्रीडाओं के अनुकूल बना लिया गया है । उसकी गुफाओं के समस्त रत्न समूह चुरा लिये गये, और वह अब अनेक दैत्य-समूहों का निवास स्थान बन गया है । हे देवताओं के स्वामी ! इतना ही नहीं वह हम लोगों का प्रिय पर्वतराज उस दैत्य के भय से इससे बढ़कर भी नीच कामों को—शरीर से हीन होकर भी—कर रहा है । अर्थात् बुरे से बुरे उपयोग में लाया जा रहा है । इससे अधिक दुर्दशा मैं देवताओं की और क्या कहूँ ? हम लोगों के उपयोग के लिए अति रुचिर, विशाल तथा अपनी निर्मल कान्ति से दिशाओं को व्याप्त करने वाले आदिम युग में बनाये गये, जो शस्त्रास्त्रों के ये समूह थे, वे भी उस दैत्येन्द्र के शरीर को छूकर अल्प बुद्धिवाले मनुष्य के मन की भाँति सैकड़ों टुकड़ों में चूर-चूर हो गये । कीचड़ और धूल से धूसरित अंग वाले हम लोग निष्प्रयोजन उसके द्वार पर बलात् बिठाये गये थे । इतना ही नहीं बड़ी कठिनाई से उस दैत्यराज के दरबार में हम लोगों का प्रवेश हुआ था । देव ! हम सभी देवगण उसके दरबार में निकृष्ट आसनों पर बैठाये गये थे, और चुपचाप रहने पर भी साथ में वेत धारण किये हुए उसके भृत्यों द्वारा व्यङ्ग्य बातें कह-कह कर हँसे गये थे । 'बहुत बड़े हो, सभी मनोरथों की सिद्धि प्राप्त करने वाले हो, इसीलिए इस समय स्वल्प बोलने वाले बने हो ।' देवताओं ने दैत्यभृत्यों की ऐसी व्यंग्य पूर्ण वाणी का उत्तर चाटुकारी भरी बातों से दिया । 'हे देवगण ! अब यहाँ तुम लोगों को बहुत बोलना चाहिये, चुप क्यों हो । इन्द्र समेत तुम लोग देखो, दैत्यराज के दरबार में कितने सुन्दर आसन पर बिठाये गये हो ।' इस प्रकार उस दैत्य के अनुचरों ने हम लोगों का अपमानपूर्ण उपहास किया था । छहों ऋतुएँ मूर्ति धारण कर

रात दिन उसकी सेवा करती हैं। कभी कोई अपराध न हो जाय—इस भय से उसको कभी नहीं छोड़तीं। सिद्ध, गन्धर्व तथा किन्नर गण वीणा हाथ में लेकर तीनों लयों एवं सुन्दर रागों से उसके भवन में नित्य गान करते हैं और कुछ भी पुरस्कार नहीं पाते। वह दैत्य अपनी प्रशंसा करने वाले भिक्षुकों को भी भीख नहीं देता, (?....) एवं मित्रों में कौन बड़ा है, कौन छोटा है—इसका कुछ भी विचार नहीं करता। शरण में आए हुए का वह त्याग करता है। सत्य का तो उसने व्यवहार ही छोड़ दिया है। यही सब उसकी बुराइयाँ आप से कहनी हैं। अथवा वे इतनी अधिक हैं कि कहकर समाप्त नहीं की जा सकतीं उससे सृष्टा ही रक्षा कर सकता है।' देवताओं से प्रवक्ता वायु द्वारा इस प्रकार दैत्य की कृतियों के कहे जाने पर कमल के समान मुख वाले आत्मभू भगवान् ब्रह्मा मुस्कराते हुए बोले। ॥२९—४६॥

ब्रह्मा ने कहा—देववृन्द! वह तारक दैत्य देवताओं तथा असुरों—दोनों जातियों से भी नहीं मारा जा सकता। जिसके हाथ से वह मारा जायगा अभी उस पुरुष की उत्पत्ति ही त्रिभुवन में नहीं हुई है। वह दैत्यराज तारकासुर त्रैलोक्य को जला देने वाली अपनी अनुपम तपस्या के माहात्म्य से वरदान देकर मेरे द्वारा इस समय रक्षित है। उस ने सात दिन के बालक से अपनी मृत्यु का वरदान माँगा है। भगवान् शंकर से उत्पन्न होने वाले सूर्य के समान परम तेजस्वी उस सात दिन के बालक से ही तारकासुर की मृत्यु होगी। किन्तु इस समय भी तो भगवान् शंकर अपत्नीक हैं। मैंने पूर्वकाल में जिस देवी के हाथ को ऊपर रहने की बात की थी वह देवी हिमालय की कन्या रूप में उत्पन्न होंगी। उनका हाथ वरदान देने के लिए सर्वदा ऊपर उठा रहेगा। उसी देवी से भगवान् शर्व (महादेव) अरणी के संयोग से अग्नि की भाँति जिस पुत्र को उत्पन्न करेंगे, उसी को युद्ध भूमि में प्राप्त कर वह तारकासुर पराजित होगा। मैं भी वैसा ही उपाय करूँगा जिससे यह सब हो। उसके बाद असुर का अवशेष प्रभाव भी नष्ट हो जायगा। अतः आप लोग निःशंक होकर थोड़े दिन की और प्रतीक्षा करें।' साक्षात कमलयोनि ब्रह्मा के ऐसा कहने पर देवता-गण यथायोग्य उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने निवास स्थान को चले गये। देवताओं के चले जाने पर लोकपितामह ब्रह्मा ने अपने शरीर से पूर्वकाल में उत्पन्न होने वाली निशा का स्मरण किया। स्मरण करते ही भगवती निशा ब्रह्मा के सम्मुख उपस्थित हुईं। एकान्त में उपस्थित विभावरी (रात्रि) को देख ब्रह्मा बोले—॥४७-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—विभावरि! इस समय देवताओं का एक बहुत बड़ा कार्य उपस्थित हो गया है, देवि! अतः उस कार्य में तुम्हें जो निश्चय ही करना होगा उसे सुनो। तारक नामक दैत्य देवताओं का परमशत्रु है। वह संसार में किसी से भी नहीं जीता जा सकता, उसके विनाश करने के लिए भगवान् शंकर एक पुत्र उत्पन्न करेंगे। वही पुत्र उस तारकासुर का घातक होगा। शंकर की पूर्व पत्नी दक्ष की पुत्री सती जो थीं, वह विशेष कारणवश कुपित होकर अपना शरीर त्याग चुकी हैं। लोक को पवित्र करने वाली वह देवी हिमालय की पुत्री के रूप में उत्पन्न होंगी। सती की अविद्यमानता में शंकर विरहाकुल हो समस्त जगत् को शून्य मानकर सिद्धों द्वारा सेवित हिमालय की कन्दरा में तपस्या करें और इस प्रकार सती के

पुनर्जन्म की प्रतीक्षा करते हुए कुछ काल तक निवास करेंगे। उन परम तपस्या करनेवाले दम्पति से जो महाबलवान् पुत्र होगा वही उस तारक दैत्य का विनाशक होगा। हिमाचल की पुत्री वह देवी उत्पन्न होने के थोड़े दिनों के बाद जब थोड़ा होश सँभाल लेंगी तभी से विरह से अति उत्कंठित हो महादेव के समागम की लालसा से युक्त होंगी। हे सुन्दर मुखवाली! इस प्रकार परम तपःसाधना में लीन उन दम्पति के पारस्परिक संयोग संघटित होंगे। उस समय उन दोनों में थोड़ी-सी बातचीत के बीच ही वैमनस्य भी उपस्थित हो जायगा। उस समय भी तारकासुर की मृत्यु के लिए बहुत अधिक संशय उपस्थित होता दिखाई पड़ेगा। अतः उन दोनों के समागम के समय ठीक सुरत की आसक्ति के अवसर पर तुम्हें जिस प्रकार विघ्न उपस्थित करना होगा उसे सुन लो। उस की माता मेनका के गर्भ के स्थान उदर में तुम प्रवेश करो और अपने रूप से उस संतति को रंग दो, जिससे उक्त समागम के समय भगवान् शर्व विश्राम के अवसर पर परिहास ही परिहास में उसकी भर्त्सना करेंगे। जिससे वह देवी उसी समय वन को तपस्या करने के लिए पुनः चली जाँयगी। और इस प्रकार तपस्या कर पुनः वापिस आने पर संयोग होगा और उसी संयोग से शिवजी अनुपम कान्तिमान जिस पुत्र की उत्पत्ति करेंगे, वही निःसन्देह देवताओं के शत्रुओं का विनाशक होगा। देवि! इन दुर्जय दैत्यों का संहार तो तुम्हें भी करना चाहिये। किन्तु जब तक तुम्हारे शरीर के रंग से मिलकर तुम्हारे गुणों से युक्त सती देवी पृथ्वीतल पर अवतीर्ण नहीं होंगी तब तक उसके समागम से (?) तुम दैत्यों का संहार करने में समर्थ नहीं हो सकती। तुम्हारे ऐसा करने पर सृष्टि का संहार करनेवाली वह देवी पुनः तपस्या करके अपने नियमों को समाप्त करेंगी और जब उमा नाम से विख्यात हो जायँगी तब वह हिमालय की पुत्री पुनः अपने पूर्वरूप को प्राप्त कर लेंगी। रूप और अंश द्वारा उमा से संक्रान्त होने के कारण तुम्हारी एकानंशा नाम से प्रसिद्धि होगी। हे वरदे! इस कारण लोग एकानंशा नाम से तुम्हारी पूजा भी करेंगे। तुम अपने अनेक प्रकार के भेदों से सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करनेवाली तथा सर्वगामिनि होगी। ब्रह्मवादी लोग तुम्हें ओंकारवक्त्रा गायत्री तथा बलशाली राजा लोग उर्जिता आक्रान्ति के नाम से तुम्हारी पूजा करेंगे। तुम पृथ्वी रूप से वैश्यों की माता होगी तथा शूद्रगणों से शैवी कहकर पूजित होगी। मुनियों के मत में तुम अक्षोभ्या क्षान्ति (अटल क्षमा) रहोगी, नियम की साधना करनेवालों के लिए तुम दया रूप से स्थित होगी। तुम नीति में निपुण व्यक्तियों के लिए श्रेष्ठ उपायों का समूह हो, अर्थों की साधना के लिए तुम साधन रूप हो, तुम समस्त प्राणियों के हृदय में शयन करनेवाली इच्छा हो। तुम समस्त जीवधारियों की मुक्ति हो। तुम समस्त शरीरधारियों की गति हो, एवं कीर्तिमान् पुरुषों की कीर्ति हो। तुम समस्त देहधारियों की मूर्ति हो। अनुरागी पुरुषों के लिए तुम रति स्वरूप हो, प्रसन्नता को प्राप्त करने वाले पुरुषों के लिए तुम प्रीति रूप हो। आभूषण से सुसज्जित होने वालों के लिए तुम शोभा स्वरूप हो; दुःखी पुरुषों के लिए तुम शान्ति रूप हो। सब ज्ञान रखनेवालों वा जीवों की तुम भ्रान्ति हो, यज्ञादि का अनुष्ठान करनेवालों की तुम गति हो, समुद्रों में तुम महा तरंग हो, विलासियों की तुम लीला हो, समस्त पदार्थों की तुम उत्पत्ति करनेवाली हो, लोक पालिनी हो, समस्त जगत् की स्थिति हो। तुम कालरात्रि हो, सम्पूर्ण

भुवनों के समूहों का नाश करनेवाली हो। प्रिय के कण्ठ के पकड़ने में अनुभूत होनेवाले आनन्द की तुम देनेवाली विभावरी (रात्रि) हो। देवि! इस प्रकार तुम अनेक स्वरूपों में लोगों द्वारा पूजित होगी। हे वरदायिनि! जो इन्द्रियों को वश में रख तुम्हें संतुष्ट करेंगे अथवा तुम्हारा पूजन करेंगे वे सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करेंगे—इसमें संशय नहीं।' ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर विभावरी ने हाथ जोड़कर 'अच्छा, ऐसा ही करूँगी, जैसा आप कह रहे हैं' ऐसा कहा और वहाँ से शीघ्रता के साथ हिमालय के सर्वश्रेष्ठ भवन की ओर प्रस्थान किया। ॥५८-८५॥

वहाँ पहुँचकर सर्वश्रेष्ठ अटारी पर रत्नजटित दीवाल के सहारे कुछ पीले वर्ण की कमल की कान्ति के समान मुखवाली मेना को विभावरी ने देखा। मेना का सुन्दर मुख सुन्दर कमल के समान शोभायमान था, शरीर की शोभा थोड़े पाण्डु वर्ण की थी, विशाल स्तनों के भार से, जिसके मुखभाग पर कुछ श्यामलता थी, वह झुकी हुई थीं। वह अति श्रेष्ठ प्रभावशाली औषधियों से पूर्ण, मन्त्रराज से अभिमंत्रित, सुवर्ण से खचित जीव रक्षा कवच से संयुक्त सर्प की आकारवाली माला से सुशोभित थीं। उनका वह सुन्दर भवन मणियों की किरणों की माला से सुप्रकाशित हो रहा था। उसमें स्थान-स्थान पर अनेक प्रकार की सिद्धार्थ महौषधियाँ थीं, एवं उज्ज्वल रेशमी सुन्दर स्वच्छ वस्त्र भू शैय्या के ऊपर बिछाया गया था। सुन्दर धूप की सुगन्धि हो रही थी, जो सर्ज की सुगन्धि से मनोज्ञ थी। तदनन्तर विभावरी धीरे-धीरे मेना के उस सुखमय महल में अपना प्रसार करने लगी। धीरे-धीरे दिन के बीत जाने पर पुरुष गण कुछ सोने-से लगे। शैय्या की रचना की गई। चन्द्रमा पूर्ण रूप से प्रकाशित हो गया। रात्रि में चलने वाले पक्षीगण इधर-उधर घूमने लगे। रजनीचरों और भूतों के समूह चौराहों पर घूमने लगे, रसिक तथा सुन्दर पुरुष अपनी-अपनी प्रियतमा स्त्रियों के साथ निर्भर आलिङ्गन करते हुए क्रीड़ा करने लगे। उस समय मेना के भी दोनों नेत्र कमल नींद से कुछ व्याकुलित-से हो गये। ठीक उसी समय समय पाकर वह रात्रि उस जगन्माता पार्वती की माता मेना के मुख में स्पष्ट रूप में प्रविष्ट हो गई और धीरे-धीरे सारे उदर में उसने स्थान प्राप्त किया। गुफा और जंगल की भयानक रात्रि के समान अपने काले रूप से पार्वती को रँग दिया। यथा समय जगत्पति शंकर की प्राणप्रिया तथा स्वामिकार्त्तिकेय की जननी पार्वती को मेना ने शुभ ब्राह्म मुहूर्त में उत्पन्न किया। जिस समय पार्वती का जन्म हुआ सभी चराचर जीव अति प्रसन्न हुए। नरक के निवासियों को भी स्वर्गीय सुखों का अनुभव हुआ। क्रूर तथा नृशंस जीव-जंतु भी शान्त प्रकृतिवाले बन गये। तारा गणों का तेज बहुत अधिक हो गया। देवताओं की प्रतिष्ठा उन्नत हो गई। वन की औषधियाँ सुस्वादु तथा फलवाली हो गईं। पुष्पों के समूह अति सुगंधित हो गये। मनोहारिणी, प्रिय, शीतल, मंद, सुगंध और अनुकूल वायु बहने लगी। आकाश निर्मल हो गया। दिशाएँ मनोविमुग्धकारिणी हो गईं। पार्वती के अमितप्रभाव से सारी वसुधा खेती अन्न और फूलों से लद-सी गई। फल पकने लगे। उस क्षण निर्मलचित्त वाले मुनियों की बहुत दिनों की की हुई तपस्या मानों सफल हो गई। उन्हें बहुत दिनों से भूले हुए शास्त्र पुनः याद पड़ने लगे। बड़े बड़े तीर्थों के माहात्म्य उस समय और पुण्यदायी हो गये। उस समय आकाशमण्डल में सहस्रों देवतागण

इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, वायु, अग्नि आदि को आगे कर विमानों पर बैठे हुए दिखाई पड़ने लगे, और ऊपर से हिमवान् पर्वत के ऊपर पुष्पों की वृष्टि करने लगे। बड़े-बड़े गन्धर्व यूथबद्ध होकर गान करने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं। सुमेरु आदि बड़े-बड़े विशाल पर्वत मूर्ति धारणकर हिमाचल की सेवा के लिए वहाँ आगये। इसी प्रकार सभी नदियाँ तथा समुद्रादि भी शरीर धारणकर हिमाचल के घर पहुँच गये। उस समय हिमाचल पर्वत सभी चराचर जीवों से आकीर्ण हो गया, सभी लोगों के सेवन करने योग्य, यात्रा करने योग्य तथा मंगल का स्वरूप हो गया। उस पर्वतराज का पुण्य दर्शन कर तथा उत्सव का आनन्द लूटकर समस्त देवगण अपने-अपने स्थानों को वापिस लौटे। ॥८६-१०८॥

तदुपरान्त हिमालय पुत्री पार्वती उद्योगी पुरुष की लक्ष्मी की भाँति दिनानुदिन बढ़ती हुई अपने—देवता, गंधर्व, नगेन्द्र, पर्वत एवं पृथ्वी इन सबके शील तथा स्वभाव से संयुक्त—सौन्दर्य, सौभाग्य तथा बुद्धि से तीनों लोक को पराजित करती हुई सुशोभित हुई। इसी अवसर पर देवराज इन्द्र ने देवताओं के कार्यों को सिद्ध करने में प्रवीण नारद का स्मरण किया। इन्द्र द्वारा स्मरण किये जाने पर भगवान् नारद अति प्रसन्नचित्त हो महेन्द्र के निवास स्थान पर तुरत आये। सहस्रनेत्र इन्द्र ने आते हुए नारद को देखकर अपने सिंहासन से उठकर यथायोग्य पाद्य अर्घ्य आदि पूजा की सामग्रियों से सत्कृत किया। इन्द्र द्वारा प्रदत्त पूजा को यथाविधि ग्रहण कर नारद ने इन्द्र से कुशल-मंगल पूछा। नारद के पूछने पर इन्द्र इस प्रकार बोले—॥ १०९–११५ ॥

इन्द्र ने कहा—मुनिवर्य! त्रिभुवन के कल्याण रूप अंकुर के उत्पन्न हो जाने पर उसके फल एवं उद्भव की सम्पत्ति के लिए आप आलस्य छोड़कर तैयार हो जायँ। यद्यपि आप सभी बातें जानते हैं, हमें कुछ भी आप से कहना नहीं है; तथापि कामना करनेवाला पुरुष अपनी अभिलाषा अपने मित्रों से निवेदित करके परम सन्तुष्ट हो जाता है। सो कहना यह रहा कि हिमाचल की दुहिता पार्वती देवी जिस प्रकार से पिनाकधारी शिव के साथ समागम करें, वैसा उपाय हमारे पक्षवालों की ओर से आप करें।' इन्द्र की सब बातों को सुनकर तथा आगे वाले कार्य में सम्मति लेकर नारद हिमालय के पास पहुँचे। विविध प्रकार की बेतों की लता से आवेष्टित हिमवान् के द्वार पर ब्रह्मर्षि नारद जब पहुँचे तो घर से निकलकर हिमवान् ने समागत नारद को प्रणाम किया और अपने साथ लेकर वह घर में प्रविष्ट हुआ। उसका वह भवन समस्त भूमण्डल का आभूषण था। वहाँ पहुँचकर हिमवान् द्वारा प्रदत्त सुवर्ण के सिंहासन पर अमित कान्तिमान् नारद विराजमान हुए। हिमवान् ने मुनिवर नारद की उपयुक्त अर्घ्य पाद्यादि उपचारों द्वारा विधिवत् पूजा की। मुनिवर ने उसकी पूजा को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया। पूजा आदि ग्रहण कर लेने के बाद मीठी वाणी में मुस्कराते हुए सुन्दर मुखकमल से हिमवान् ने मुनिवर की कुशल वार्ता पूछी और मुनि ने भी पर्वतराज से उनका कुशल समाचार पूछा। ॥ ११६–१२४ ॥

[तदुपरान्त] नारद ने कहा—पर्वतराज! तुमने अपने इस आश्रय स्थल में पृथ्वी के समस्त गुणों को उतार लिया है। अचल! तुम्हारी कन्दराओं की गहराई मन के समान अगम्य है, तुम्हारे

गुणों के समूहों का गाम्भीर्य अन्य स्थावरों से कहीं अधिक है। तुम्हारे भीतर बहनेवाले जल की निर्मलता मन से भी अधिक स्वच्छ है। शैलेन्द्र! मैं ऐसी कोई भी वस्तु नहीं देख रहा हूँ, जो तुम्हारी कन्दराओं में विद्यमान न हों। स्वर्ग में भी कहीं पर वैसी लक्ष्मी (शोभा) नहीं है, जो तुम्हारे यहाँ से अधिक हो। अग्नि एवं सूर्य के समान तेजस्वी, अनेक प्रकार की साधनाओं में लीन तुम्हारी कन्दरा में अवस्थित परम पुनीत तपस्वियों से तुम नित्य पवित्रित किये जाते हो। देवता गन्धर्व तथा किन्नरों के समूह अपने-अपने विमानों का अपमान कर स्वर्ग में निवास करने का अनुराग छोड़ तुम्हारी गुफाओं में पिता के घर की भाँति निवास करते हैं। शैलेन्द्र! तुम सचमुच धन्य हो, इसी से तुम्हारे जैसे भाग्यशाली पर्वत की कन्दरा में समाधि में लीन होकर लोकपति भगवान् शंकर निवास करते हैं।' देवर्षि नारद की इस प्रकार की आदरपूर्ण बातें हो ही रही थीं कि उसी समय मुनि के दर्शन की अभिलाषा से हिमाचल की पत्नी मेना अपनी कन्या तथा कुछ सखियों और दासियों के साथ वहाँ आ गईं। और लज्जा तथा प्रेम से विनम्र हो उक्त निवासगृह में प्रविष्ट हुईं, जिसमें हिमवान् के साथ जितेन्द्रिय देवर्षि नारद विराजमान् थे। शैलराज हिमवान् की पत्नी मेना ने परम तेजोमय देवर्षि नारद को देखकर मुँह छिपाये हुए दोनों कमल के समान मनोहारि हाथों को जोड़कर सादर प्रणाम किया। मेना को देखकर अनुपम कान्तिमान महाभाग्यशाली नारद ने अमृत बरसाने के समान मीठी वचनों से उसे आशीर्वाद दिया। तदुपरान्त हिमवान् की पुत्री पार्वती अति विस्मित होकर उन अद्भुत स्वरूप शाली मुनि नारद को देखने लगीं। नारद ने स्नेह भरी वाणी से 'आओ बेटी, यहाँ आओ' ऐसा कहकर उन्हें अपने पास बुलाया। किन्तु पार्वती अपने पिता की गोद में ही बैठ गईं और गले में दोनों हाथ डालकर छिप-सी गईं।' माता मेना ने पार्वती से कहा—'बेटी! भगवान् नारद मुनि को प्रणाम करो, तब तुम अपने मन के अनुकूल योग्य पति को प्राप्त करोगी।' माता के ऐसा कहने पर पार्वती ने वस्त्रों में अपने मुख को और भी छिपा लिया और अपना शिर हिलाने लगीं; किन्तु कुछ बोल नहीं सकीं। मेना ने फिर उसी बात को पार्वती से कहा—'बेटी! मुनि को प्रणाम कर लो तब तुम्हें उस अति सुन्दर रत्नों का बना हुआ खिलौना, जिसे बहुत दिनों से मैंने छिपा रखा हैं, तुम्हें दूँगीं।' ऐसा कहने पर पार्वती शीघ्रही गोद से उठकर नारद के दोनों चरणों को अपने कमल के समान कोमल हाथों के सम्पुटों से उठाकर अपने शिर पर लगाकर नमस्कार किया। प्रणाम कर चुकने के बाद स्त्री स्वाभाववश पुत्री के भविष्य की चिन्ता को हृदय में धारण कर माता ने अपनी सखियों द्वारा धीरे-धीरे पुत्री के सौभाग्य को बतलाने वाले लक्षणों को देखने के लिए कुतूहलवश मुनिवर नारद जी से अनुरोध किया। शैलेन्द्र हिमवान् पत्नी की अभिलाषा को जानकर हृदय से तो प्रसन्न हुए कि यह अच्छा विषय छिड़ गया, किन्तु स्वयं कुछ भी नहीं बोले और इस चर्चा के छिड़ने में कोई आपत्ति भी नहीं मानी। शैलराज की स्त्री मेना की सखियों द्वारा पूछे जाने पर महाभाग्यशाली मुनिवर नारद हँसते हुए बोले—भद्रे! इस (तुम्हारी पुत्री) का पति तो जगत् में पैदा ही नहीं हुआ है, इसके शरीर में कोई शुभ लक्षण नहीं हैं। यह तो सर्वदा हथेली को फैलाये रहती है, इसके चरण भी कुछ व्यभिचारी के से लगते हैं। अतः इन लक्षणों से ज्ञात होता है कि यह पति से विहीन

रहेगी। यह अपनी ही छाया से वर्तमान रहेगी अर्थात् सर्वदा अकेली ही रहेगी। इससे अधिक क्या कहा जाय ?' नारद की ऐसी बातें सुन परम बलशाली महागिरि हिमवान् भय से व्याकुलित हो गये, उनका सारा धैर्य छूट गया और वे आँसू से गद्गद् कंठ होकर नारद से तुरन्त बोले। ॥१२५-१४७॥

हिमवान् ने कहा—महाराज! इस अति दोषमय संसार की गति जानी नहीं जा सकती, अवश्य घटित होने वाली सृष्टि की घटनाओं में अद्भुत पराक्रमशाली एवं महनीय आत्मा विशिष्ट उसके कर्त्ता द्वारा बनाई गई यह मर्यादा संसारी जीवों के लिए स्थिर है। कारण से जिस कार्य की उत्पत्ति होती है—उससे कारण की सार्थकता कुछ भी नहीं है। जो जिसके अंश से उत्पन्न होता है वह अपने उत्पन्न करने वाले के लिए सार्थक नहीं होता, उत्पन्न करने वाला भी उत्पन्न होने वाले का कोई नहीं है। अर्थात् पिता और सन्तान इन दोनों का भी कोई सम्बन्ध नहीं है—यह स्पष्ट है। संसार में रहनेवाले सभी प्रकार के जीवों की जातियाँ अपने अपने कर्मों के अनुसार ही विविध योनियों में उत्पन्न होती हैं। एकही जीव अण्डज के संयोग से अण्डज योनि में उत्पन्न होता है और वही पुनः मनुष्य के संयोग से मनुष्य योनि में उत्पन्न होता है, वही सर्पादि की योनि में मनुष्य जन्म लेकर भी अपने कर्मों द्वारा दूसरे जन्म में उत्पन्न होता है; तात्पर्य यह कि धर्म के तारतम्य से ही उच्च अथवा नीच योनियों में जीव की उत्पत्ति होती है। उन-उन योनियों में उत्पन्न होकर भी अपने कर्मों के प्रभाव से जीवात्मा श्रेष्ठ योनि में उत्पन्न होता है। बहुतेरे प्राणियों को पुत्रोत्त्पत्ति नहीं होती, वे ही मनुष्य उन-उन अधम योनियों में उत्पन्न होते हैं; क्योंकि उन्होंने जन्म लेकर गृहस्थाश्रम धर्म का पालन नहीं किया। उस गृहस्थाश्रम धर्म की प्राप्ति ब्रह्मचर्य व्रत के पश्चात् होती है। उसी कर्त्ता की आज्ञा से, जिसने संसार की वृद्धि की है, आश्रमों की यह स्थिति मानी गई है। यदि सभी लोग गृहस्थाश्रम को छोड़ दें तो फिर संसार की वृद्धि कैसे हो सकती है। इसी कारण से शास्त्रकारों ने शास्त्रों में नरक से त्राण करने का लाभ दिखा कर समस्त प्राणियों को मोह में फँसाने के लिए पुत्रोत्पत्ति की प्रशंसा की है। वह पुत्रादि संतान स्त्रियों के विना उत्पन्न ही नहीं हो सकती। स्त्री की जाति तो स्वभाव से ही कृपण एवं दीन बातें कहने वाली होती है अतः ब्रह्मा ने उनके विषय में शास्त्रों की आलोचना करने का अधिकार त्याग दिया है। शास्त्रों में निस्सन्देह महाफल देने वाली यह बात बहुत बार कही गयी है कि यदि कन्या शील सदाचार आदि से रहित न हो तो वह दस पुत्रों के समान फल देने वाली है। किन्तु यह बात अब व्यर्थ मालूम पड़ रही है और पुरुष जाति के लिए तो यह परम ग्लानि उत्पन्न करनेवाली हो गई है। पिता तथा माता के कष्टों को अधिकाधिक बढ़ानेवाली कन्या की स्थिति तो सर्वदा शोचनीय ही रहती है। यह बात तो उस कन्या के लिए भी लागू है जो पति पुत्रादि साधनों तथा धनधान्यादि से अति सम्पन्न होती है। तो फिर पति पुत्र धनादि से हीन अभागिनी कन्या के लिए पिता क्यों न सोच करें ? तुम ने मेरी कन्या के शरीर में जैसे अभाग्यपूर्ण अपलक्षण बतलाये हैं, नारद! उन्हें सुनकर मैं अति दुःखी हो रहा हूँ। चिन्ता से सूख रहा हूँ, भयभीत हूँ तथा मेरे हृदय में बड़ी ग्लानि हो रही है। मुनिवर! अब यदि मेरी कन्या के दुःखों को दूर करने के उपाय दुःसाध्य तथा अयुक्त भी हों तब भी बतलाइये और अनुग्रह करके मेरे

इस कन्याविषयक दुःख को दूर कीजिये। निस्सन्देह रूप में कार्य के निष्पन्न होने की सम्भावना होने पर भी परिणाम के लोभ में आसक्त जो अशुभ तृष्णा है, वह मेरे अवसाद युक्त मन को ठग रही है। स्त्रियों के अच्छे पति की प्राप्ति ही उनके दोनों कुलों को, उनके जन्म को तथा उनके इस लोक एवं परलोक-दोनों लोकों को सुखकर बनानेवाली है। प्रिय पति की प्राप्ति उन्हें दुर्लभ होती है, विना पुण्य के तो थोड़े गुण वाला अथवा निर्गुणी भी पति स्त्रियों को कदापि नहीं मिलता; क्योंकि विना यत्न किये ही प्राप्त होने वाला धर्म अपरिमित रति-भोग विलास आदि जीवनोपयोगी धन—ये सब स्त्रियों को उनके पतियों द्वारा ही प्राप्त होता है। निर्धन, कुरूप, मूर्ख तथा सभी शुभ लक्षणों से रहित भी पति सर्वदा स्त्री का इष्ट देवता कहा गया है। देवर्षि! तुमने कहा है कि चराचर जगत् में इस मेरी पुत्री का कोई पति ही नहीं उत्पन्न हुआ है—इस बात को सुनकर मेरा मन अतिशय व्याकुल हो गया है। यह तो इसके महान् अभाग्य की बात है, भला इससे बढ़कर कोई अभाग्य क्या हो सकता है? यह तो मेरे लिए अति दुःसह तथा घोर कष्ट का विषय है। मनुष्यों तथा देवताओं की जातियों के शुभ तथा अशुभ फल के सूचक लक्षण उपर्युक्त हाथ तथा पैर आदि में बतलाये गये हैं। हे मुनिवर्य! तुमने मेरी कन्या के हाथों के उतान होने का जो लक्षण बतलाया है वह सचमुच सर्वदा याचना करनेवालों का ही होता है? मंगलवान् दानपरायण तथा धन्य भाग्यवाले प्राणियों के ऐसे नहीं होते क्या? इसके दोनों चरणों को तुमने अपनी ही छाया में रहनेवाला व्यभिचारी बतलाया है, मुने! उनमें भी मुझे कल्याण की आशा नहीं दिखाई पड़ती है अर्थात् इससे भी मुझे निराशा मिली है। शरीर के अन्यान्य लक्षण भी भिन्न-भिन्न फलों की सूचना देने वाले होते हैं। जिनसे सौभाग्य, धन, पुत्र, आयु तथा योग्य पति के लाभ की सूचना मिलती है। किन्तु तुम कह रहे हो कि उन उन सब शुभ लक्षणों से मेरी कन्या विहीन है। मुनिपुंगव! तुम मेरी मनोगत सारी अभिलाषाओं को जानते हो और सत्य बोलने वाले हो। मुनिशार्दूल! तुम्हारी बातें सुनकर यही कारण है कि मेरा हृदय फटता-सा जा रहा है।' ऐसा कहकर पर्वतराज हिमवान् महादुःख के विचार से विश्राम लेकर चुप हो गये। इन सब बातों को हिमवान् के मुख कमल से सुनकर देवताओं द्वारा सिखाये गये नारद हँसते हुए बोले। ॥१४८-१७५॥

नारद ने कहा—महागिरे! अत्यन्त हर्ष के विषय में भी तुम दुःख की बात सोच रहे हो और अस्पष्ट वाक्यार्थ वाली मेरी बात को न समझ कर तुम अज्ञान से दुःख का अनुभव कर रहे हो। रहस्यपूर्ण इस बात का तात्पर्य मुझसे सुनिये। शैल! मेरी कही हुई बात का विचार करने में तनिक सावधानी कीजिये। हिमाचल! जो मैंने तुमसे यह कहा है कि इस देवी का पति उत्पन्न नहीं हुआ है, सो तो सही ही है, क्योंकि भूतभावन भगवान् शंकर की उत्पत्ति किसी से हुई नहीं है, वे शरणागतों के रक्षक हैं, शाश्वत (अविनाशी) हैं, शास्ता (नियामक) हैं, कल्याण देने वाले हैं, परम प्रभु हैं। हे गिरे! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र तथा मुनि आदि सभी जन्म मृत्यु तथा वृद्धता आदि कष्टों से पीडित होकर उस परम प्रभु शंकर के खिलौने मात्र हैं। संसार के उत्पत्ति कारक भगवान् ब्रह्मा उन्हीं की इच्छा से अवस्थित हैं, तथा

जन्म धारण करते हैं। स्वयं विष्णु भगवान् प्रत्येक युगों में महान् शरीर धारण कर अनेक योनियों में उत्पन्न होते हैं। तुम भी प्रत्येक युगों में मायावश उत्पन्न होने वाले भगवान् विष्णु को तो मानते ही हो! पर्वतराज! स्थावर योनियों में उत्पन्न होकर भी शरीर त्याग करने पर आत्मा का विनाश नहीं होता। संसार में उत्पन्न होने वाले जो प्राणी मृत्यु के वश होते हैं, उनका भी केवल शरीर नष्ट होता है, आत्मा का नाश नहीं होता—ऐसा कहा जाता है। ब्रह्मा आदि से लेकर स्थावर जीवों तक जितने भी प्राणी संसार में हैं, वे सभी जन्म तथा मृत्यु के कष्ट से दुःखी तथा परवश होते हैं; किन्तु महादेव अचल हैं, सृष्टि के स्थाणु हैं, इनका कोई जनक नहीं उत्पन्न हुआ, ये वृद्धावस्था से भी रहित हैं। जगत् के स्वामी रोग रहित वे शंकर ही इस तुम्हारी कन्या के पति होंगे। और भी, जो मैंने यह बात कही थी कि यह देवी सभी लक्षणों से हीन है, उसका भी सम्यक रूप से तात्पर्य सुनिये। शरीर के अवयवों में लक्षण एक प्रकार के भाग्य सूचक दैविक चिह्न हैं, जो आयु, धन, सौभाग्य आदि के फलों की सूचना देनेवाले होते हैं। भूधर! इस (तुम्हारी पुत्री) के अनन्त तथा अपरिमित सौभाग्य के सूचक लक्षण दैविक चिह्न के रूप में इसके शरीर में नहीं बनाये गये हैं अर्थात् वे इतने अनन्त तथा अपरिमित हैं कि उसकी सूचना देना लक्षणों के वश की बात नहीं है। हे शैल! महा बुद्धिमान्! इसी कारण से मैंने तुमसे कहा था कि इसके शरीर में कोई लक्षण ही नहीं है। और जो मैंने इसके हाथों के सर्वदा उतान रहने की बात तुमसे कही थी, उसका कारण यह है। इस देवी का यह सदा उतान रहनेवाला हाथ सदा वरदान देनेवाला होगा और तुम्हारी यह पुत्री सुर असुर तथा मुनियों को शरण तथा वरदान देनेवाली होगी। जो मैंने उस समय इसके चरणों को अपनी ही छाया में रहनेवाले तथा व्यभिचारी बतलाये हैं। शैलराज! उसमें भी मेरी बातों की युक्ति इस प्रकार थी, सुनिये। इसके दोनों चरण स्वच्छ नख की कान्तियों से उज्ज्वल रहने वाले तथा कमल के समान सुन्दर हैं, प्रणाम करने वाले सुरों तथा असुरों के मस्तक के किरीटों में लगी रहने वाली मणियों की विचित्र वर्णों की कान्तियों से शोभा सम्पन्न तथा उस कान्ति में प्रतिबिम्बित अपनी छाया से संयुक्त तथा व्यभिचारी (संक्रान्त) हैं। महीधर! यह तुम्हारी पुत्री जगत्गुरु वृषभध्वज शंकर की पत्नी है, समस्त जगत् तथा धर्म की जननी है, समस्त जीवों को उत्पन्न करने वाली है, अग्नि के समान कान्तिमती है, कल्याण देने वाली है, तुम्हारे क्षेत्र को पवित्र करने के लिए ही यह तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुई है। पर्वतराज! सो जिस प्रकार से अतिशीघ्र इसका संयोग पिनाकधारी भगवान् शंकर से हो, वैसा उपाय विधिपूर्वक तुम्हें करना चाहिये। हिमाचल! देवताओं का परम आवश्यक तथा महान कार्य इस समय आ पड़ा है। ॥१७६-१९४॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! शैलराज मेनापति हिमवान् ने नारद से इस प्रकार की बातें जब सुनीं तब अपने को पुनः उत्पन्न हुआ-सा अनुभव किया। और उस समय परम बुद्धिमान् वृषभध्वज महादेव को नमस्कार कर अत्यन्त हर्षपूर्वक नारद से वह बोले—॥१९५-१९६॥

हिमवान् ने कहा—मुनि जी! तुमने मुझे दुस्तर घोर नरक से उबार लिया है, पाताल से उबार

कर सातों लोकों का स्वामी बना दिया है। मुनिवर! इस समय तुम्हारी कृपा से ही मैं अपने को पूर्ववत विख्यात हिमाचल अनुभव कर रहा हूँ, हिमाचल के अचल गुण तथा समृद्धि को मैं तुम्हारी ही कृपा से प्राप्त कर सका हूँ। मुनि! मेरा हृदय इस समय आनन्दमय दिनों का उपभोग करनेवाला है, यदि मैं बृहस्पति भी हो जाऊँ तब भी आपके उपकारों एवं सद्गुणों के विचार करने में मेरी बुद्धि सफल नहीं हो सकती। आप के उपकारों के अंशमात्र का भी मैं विचार नहीं कर सकता। आपके समान महर्षियों के दर्शन निश्चय ही अमोघ फलदायी होते हैं। महामुनि! आपकी चंचलता (सरलता) जितनी मेरे ऊपर है, वह मुझे मालूम है। हे मुनिवर्य! आत्मस्वरूप देवताओं तथा मुनियों के निवास स्थान के योग्य मैं आप ही द्वारा बनाया जा सका हूँ। यद्यपि मैं स्वयं पाप कर्म का करनेवाला हूँ, तथापि एक कार्य में मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये।' उस समय हर्ष से प्रफुल्लित होकर इस प्रकार हिमालय से बातें करते हुए नारद ने पुनः कहा 'प्रभो! तुमने अपनी नम्रता से सब कुछ कर दिया, मुझे केवल यही कहना है कि देवताओं के कार्य में जो परिणाम होगा उसमें तुम्हारा भी महान् हित निहित है।' इतनी बातें कह नारद शीघ्र ही स्वर्गपुरी को चले गये और इन्द्र के भवन को जाकर अमरपति से साक्षात्कार किया। वहाँ पहुँचकर अति सुन्दर सिंहासन पर विराजमान नारद ने इन्द्र से पूछे जाने पर पार्वती सम्बन्धी सारी कथा उन्हें कह सुनाई। ॥१९७-२०६॥

नारद ने कहा—'जो काम मंत्रणा द्वारा किया जा सकता था उसे तो मैं कर चुका, किन्तु इस अवसर पर अब कामदेव की आवश्यकता आ पड़ी है।' कार्यदर्शी मुनिवर नारद द्वारा ऐसा कहने पर पाकशासन इन्द्र ने आम्र के अंकुर के अस्त्र बनानेवाले कामदेव का स्मरण किया। परम बुद्धिमान् सहस्र नेत्रों वाले इन्द्र द्वारा स्मरण किये जाने पर मकरध्वज कामदेव अपनी पत्नी रति के समेत सविलास उपस्थित हुए। वहाँ समुपस्थित कामदेव को देखकर इन्द्र ने आदरपूर्वक कहा—॥२०७–२०९॥

शक्र ने कहा—मनोभव! तुम मन से उत्पन्न होनेवाले हो, इससे समस्त जीवों के मनोगत भावों का तुम्हें पूर्ण पता रहता है, अतः अपनी कल्याण प्राप्ति के लिए मुझे तुम्हें अधिक उपदेश करने की आवश्यकता नहीं है। तुम इस स्वर्ग निवासी देवताओं का यह एक कल्याण कार्य करो कि इस मधुमास में ऋतुराज वसन्त की सहायता से हिमालय की पुत्री के साथ शंकर का संयोग शीघ्र सम्पन्न कराओ।' इस प्रकार अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए इन्द्र द्वारा निवेदित किये जाने पर भयभीत होकर पंचशर कामदेव ने इन्द्र से कहा—॥२१०-२१२॥

काम ने कहा—जगत् के स्वामी! देवताओं मुनियों तथा दानवों के भी भयभीत करनेवाली इन तुच्छ सामग्रियों द्वारा भगवान् शंकर वश में नहीं किये जा सकते। क्या इस बात को आप नहीं जानते? उस देवाधिदेव की इस दुस्साध्यता का जो सनातन कारण है, उसे आप जानते हैं। महान् पुरुषों की प्रसन्नता तथा उनका क्रोध—दोनों ही महान् होते हैं। सभी उपभोग्य पदार्थों की सारभूत, स्वर्ग में उत्पन्न होने वाली सुन्दरियाँ और अन्य प्रकार के विना इच्छा ही के प्राप्त होनेवाले आनन्द के साधनों का आप उपयोग

कर रहे हैं, किन्तु इस प्रकार की असावधानी से उन सब का विनाश हो सकता है, अतः शिव के प्रति अपने मन में अच्छे विचार कीजिये। इस प्रकार के कार्यों के परिणाम सामान्य जीवों को भी पहले ही से दिखलाई पड़ने लगते हैं। इन्द्र! साधारण (थोड़े) को छोड़ कर जो विशेष (अधिक) के लिए इच्छुक होता है वह सामान्य से भी भ्रष्ट हो जाता है और विशेष तो भ्रष्ट है ही, कामदेव की ऐसी बातें सुनकर देवताओं समेत इन्द्र बोले—॥२१०-२१७॥

शक्र ने कहा—'रतिकान्त! तुम्हारी इस सूझ को हम लोग मानते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तुम जो कुछ कह रहे हो वह ठीक है। किन्तु सन्देश के विना अपकार की शक्ति नहीं मिल सकती। किसी की शक्ति किसी विशेष कार्य में ही दिखाई पड़ती है, सभी कार्यों में नहीं।' इन्द्र के ऐसा कहने पर काम ने अपने मित्र मधु (वसन्त) का आश्रय लिया और रति को भी साथ लेकर शीघ्र ही हिमवान् पर्वत के शिखर को प्रस्थान कर दिया। वहाँ जाकर उसने कार्य की चिन्ता उपायपूर्वक की। जो पुरुष महान् लक्ष्य वाले होते हैं तथा कभी विचलित नहीं होते उनका मन कठिनाई से वश में किया जा सकता है। तो प्रथम लक्ष्य कर मन को ही विक्षुब्ध करके आसानी से विजय लाभ करना चाहिये। क्योंकि पूर्वकाल में अनेक लोगों ने केवल मन को विक्षुब्ध करके कार्य में सफलता प्राप्त की है तो फिर किस प्रकार विविध प्रकार के भावों से द्वेष को विना उत्पन्न किये हुए क्रोध उत्पन्न हो सकता है। और क्रोध के विना अति क्रूर आसक्तिमूलक महाभीषण ईर्ष्या की उत्पत्ति कैसे होगी? चंचलता के शिर में रहनेवाली धैर्य के आधार को नष्ट करनेवाली अति शक्तिशालिनी उस ईर्ष्या को मैं शिव में अनुयुक्त करूँगा, जिससे उन महात्मा के मन में घोर विकृति उत्पन्न होगी। धैर्य के द्वारों को बंद करके तथा सन्तोष को हटाकर के अवस्थित मेरे प्रभाव को कोई पण्डित व्यक्ति जानने में समर्थ नहीं होता। कार्य के प्रारंभ में विकल्प मात्र का विचार करने से मन में विरूपता पैदा हो जाती है, जिससे पश्चात् प्रारभ किये गये कार्य में गम्भीर आपत्तियों की भँवरे आ जाती हैं और कार्य दुस्तरणीय हो जाता है। ॥२१८-२२५॥

अनेक प्रकार के मनोहारि साधनों से संयुक्त होकर उनके इन्द्रियों के समूहों को रुद्ध कर स्थिर आत्मा वाले शंकर की तपस्या को मैं अब भग्न करूँगा—इस प्रकार का विचार निश्चित कर कामदेव ने भूतभावन शंकर के आश्रम की ओर प्रस्थान किया, जो समस्त जगतीतल में एक प्रमुख स्थान था। जिसमें सीधे-सीधे वृक्षों तथा वेदियों से शोभा की वृद्धि हो रही थी, शान्त प्रकृति वाले जीवगण अधिक संख्या में जहाँ पर एकत्र थे। वहाँ समस्त हिमवान् पर्वत पर रहनेवाले जीव दिखाई पड़ रहे थे। अनेक प्रकार के पुष्प वृक्ष तथा लताएँ फूली हुई थीं। ऊपर गगनमण्डल में गणेश्वरों के समूह विराजमान थे। उस पर्वतीय आश्रम के समीप में निश्चिन्त भाव से हरी घास के शिखर पर नंदीश्वर बैठे हुए थे। उस स्थान पर जाकर कामदेव ने त्रिलोचन भगवान् शंकर के समीप में बैठे हुए मनोहारि वेशों वाले किसी दूसरे व्यक्ति वीरभद्र को देखा। जो शिव की दूसरी मूर्ति के समान समस्त जगत् में एक मात्र वीरों का स्वामी था, शंकर के समान कान्तिमान् था, उसकी जटाएँ कुंकुम और किंजल्क के पुञ्ज की भाँति कुछ लाल

पीले वर्ण की थीं, हाथ में बेत था, मुद्रा निश्चिन्त थी, भयंकर सर्पों के आभूषणों से आभूषित था। वहाँ जाने पर मूँदे तथा कुछ खिले हुए पद्म के पत्तों के समान कान्तियुत नेत्रों से सुशोभित शंकर को देखा, जो नीचे की ओर नासिका के अग्रभाग पर एकाग्र दृष्टि रखे सिंह के ऐसे चमड़े को कंधे पर लटकाए हुए थे जिससे रक्त चू रहा था। कानों के पास लगे हुए सर्पों की विकराल श्वासोच्छ्वास की अग्नि से उनका शरीर पिंगल वर्ण का हो रहा था। नीचे रखे गये खप्पर तथा तुम्बी पात्र (कमण्डलु) तक हिलती हुई विशाल जटा शोभित हो रही थी। सर्पराज वासुकि के ऊपर शैय्या लगाकर नाभि के मूल भाग तक बैठे हुए थे। ब्रह्म का ध्यान करते समय उनके हाथों के जुटे रहने से भूषण की भाँति सर्पराज वासुकि की पूँछ शोभायमान हो रही थी। ऐसी मुद्रा में शंकर भगवान् को देखकर कामदेव धीरे धीरे उनके समीप पहुँचा। और बड़े बड़े वृक्षों से सुशोभित शिखर पर भ्रमरों की झनकारों के साथ कान के छिद्र पथ से शिव के मन में प्रविष्ट हुआ। जिससे भगवान् शंकर कामदेव के प्रभाव से प्रभावित हो मधुकरों की मधुर ध्वनि को सुनकर अनुराग युक्त हो गये और अपनी प्रियतमा दक्षपुत्री सती का स्मरण करने लगे। उस समय उनकी वह अति निर्मल समाधि भावना धीरे-धीरे अलक्ष्य रूप से तिरोहित हो गई। और वे विघ्नों से समाधि-भावना के अवरुद्ध हो जाने के कारण तन्मयता को प्राप्त हुए अर्थात् सती के ध्यान में ही तन्मय हो गये। किन्तु जितेन्द्रिय होने के कारण वे अपनी इस दशा को देखकर कार्यात्मक विकारों को समझ गये। तत्पश्चात् उन्होंने धैर्य धारण कर तनिक क्रोध से आविष्ट हो कर योग माया का आश्रय ग्रहण कर अपने को काम की स्थिति से बचाने की चेष्टा की। शिव की माया से आविष्ट होने के कारण कामदेव जलने लगा। और तब वासना और आसक्ति का मूर्त्त रूप इच्छानुरूप शरीर धारण करनेवाला क्रोध एवं दोष का महान् आश्रय वह कामदेव शिव के हृदय प्रदेश से बाहर निकला। वहाँ से बाहर निकल कर मकरध्वज शिव के हृदय प्रदेश से बाहर एक अन्य स्थल का अवलम्ब लेकर उपस्थित हुआ। उसके साथ उसका परम स्नेही मित्र वसन्त भी था। वहाँ पर उसने मंद पवन द्वारा कँपाये जाते हुए एक आम के वृक्ष को देखा, जिसमें एक मनोहर गुच्छ शोभित हो रहा था। उसी पर अवस्थित होकर मकरध्वज ने शिव के वक्षस्थल पर मोहन नामक बाण मारा। कामदेव का महा प्रभावशाली नश्वर वह विमोहन नामक विशाल तथा कठोर पुष्पबाण शिव के विशुद्ध वक्षस्थल में आकर लगा। उस समय हृदय में आहत भगवान् शिव पर्वत के समान धैर्यशाली होने पर भी कुछ कामोन्मुख हो गये। किन्तु भावों के प्रभुत्व से अधिक कामावेश को वे नहीं प्राप्त हुए। इन बाहरी तपस्या के विघ्न समूहों को प्राप्त कर वे क्रोधाग्नि से अभिभूत हो गये और तब मुख से घोर हुँकार का शब्द किया। उनके मुख के ऊपर उनका तीसरा नेत्र क्रोधानल से आकुलित हो गया जिससे उनका महाभयानक शरीर प्रलय कालीन जगत् के संहार करने में प्रवृत्त की भाँति भीषण दिखाई पड़ने लगा। तदुपरान्त धूर्जटि शिव ने समीप में अवस्थित कामदेव पर अपने तीसरे नेत्र को फेरा। उस तृतीय नेत्र में उठनेवाली चिनगारियों से कामियों को उन्मत्त करनेवाला रतिकान्त शीघ्र ही जल कर भस्म रूप में परिणत हो गया। उस समय स्वर्ग के निवासी देवगण हाहाकार

करने लगे। शिव के नेत्र से उद्भूत होनेवाली वह अग्नि उस कामदेव को भस्मसात् करके अपनी ज्वालाओं की भीषण हुँकार से फूफू करती हुई समस्त जगत् को जलाने के लिए उद्यत हो गई। किन्तु भगवान् शिव ने जगत् के मंगल की कामना से उस अग्नि को कई विभागों में विभक्त कर दिया। आम के वृक्ष, वसन्तऋतु के समय, चन्द्रमा, पुष्प, भ्रमर तथा कोकिलाओं के मुख में उस काम को जलानेवाली अग्नि का शिव ने विभागपूर्वक स्थापन किया। अन्तर एवं बाह्य दोनों मर्म स्थलों पर आहत शिव द्वारा वे कामवाण अनुराग एवं स्नेह से उद्दीप्त एवं तीव्र वेग से दौड़ने वाले अग्नि के रूप में उपर्युक्त स्थलों में विभक्त होकर लोगों के हृदयों को तभी से क्षुब्ध करनेवाले हो गये। उनका दूर करना कठिन हो गया। कामुक व्यक्तियों के स्नेहपूर्ण हृदय को वे रात-दिन जलाते रहते हैं। उस जलन की चिकित्सा कठिनाई से हो सकती है। ॥२२६-२५५॥

इस प्रकार महादेव के हुँकार की ज्वाला से भस्मीभूत कामदेव को देखकर कामदेव के मित्र वसन्त के साथ रति घोर विलाप करने लगी। बहुत विलाप कर चुकने पर मधु के बहुत समझाने बुझाने पर रति त्रिलोचन चन्द्रशेखर भगवान् शंकर की शरण में गई। जाते समय उसने पवित्रक के स्थान पर भ्रमरों के समूहों से व्याप्त आम्र की प्रफुल्लित लता को अपने एक हाथ में ग्रहण किया था, दूसरे हाथ में अपनी सखी कोकिला को पकड़े हुए थी। उसने अपने घुघुराले बालों की टेढ़ी अलकें सँवार कर बाँध लिया था, शरीर पर कामदेव के स्वच्छ भस्म को लपेट लिया था। वहाँ जाकर घुटनों के बल पृथ्वी पर स्थित होकर रति ने चन्द्रशेखर भगवान् शंकर से कहा—॥२५६-२५९॥

रति ने कहा—निरामय शिव! तुम्हारे लिए हमारा नमस्कार है, मनोमय शिव तुम्हें हमारा नमस्कार है। देवताओं द्वारा पूजित भक्तों के ऊपर कृपा करनेवाले शंकर! तुम्हें मैं नमस्कार करती हूँ। भव! मेरा तुम्हें नमस्कार है। भवोद्भव! मैं नमस्कार करती हूँ। मनोभव! कामदेव को विध्वस्त करनेवाले! मेरा नमस्कार है। गूढ़ व्रत करने वाले! तुम्हें मैं नमस्कार करती हूँ। माया के गहन आश्रय! तुम्हें मेरा नमस्कार है। शर्व! नमस्कार है। शिव! नमस्कार है। सिद्ध! पुरातन! नमस्कार है। काल! मैं नमस्कार करती हूँ। कल! तुम्हें मेरा नमस्कार है, श्रेष्ठज्ञान देने वाले! तुझे मैं नमस्कार कर रही हूँ। काल तथा कला—दोनों के अतिक्रमण करने वाले! तुझे मेरा नमस्कार है। स्वाभाविक! निर्मल भूषणधारी तुम्हें नमस्कार है। अपरिमित पराक्रमशाली! अन्धकासुर के मर्दन करने वाले! नमस्कार है। शरण देने वाले! नमस्कार है। गुण रहित! तुम्हें नमस्कार है। भयंकर प्रमथ गणों से सुसेवित! तुम्हें मैं नमस्कार करती हूँ! अनेक भुवनों के आदि-कर्त्ता! तुम्हें मेरा नमस्कार है। नाना जगत् की रचना करने वाले! तुझे मेरा नमस्कार है। विचित्र फलों के देने वाले! विचित्र यज्ञों के फल को भोगने वाले! तुम्हें मेरा नमस्कार है। भक्तों को उनका अभिमत प्रदान करने वाले! भवभीति से संग छुड़ाने वाले! तुझे मेरा नमस्कार है। अनन्तरूप शाली! असह्य कोपवान्! तुम्हें मेरा नमस्कार है। अपरिमित मान धारण करनेवाले! चन्द्रमा से विभूषित! देवताओं द्वारा

सम्मानित! तुम्हे मेरा नमस्कार है। नन्दीश्वर पर आरूढ़! त्रिपुर के विनाशक! प्रसिद्ध महौषध रूप!

तुम्हें मैं नमस्कार कर रही हूँ। सब की विपत्तियों को हरने वाले! भक्तों के अभिमत दाता! तुमको मेरा नमस्कार है। चराचर जगत् के आचार विचार के आचार्य! समस्त सृष्टि के जीवों को देखनेवाले! महान् महेश्वर! अतुलित शक्तिशाली! इन्दुमौलि! मैं अब तुम्हारी शरण में हूँ। हे प्रभो! मुझे काम तथा यश की समृद्धि दीजिये। ऐसा कीजिये जिससे मेरा प्रिय कान्त कामदेव पुनः जीवित हो उठे। मेरे प्रियतम को तुम्हारे विना इस जगत् में दूसरा कौन जिला सकता है? तुम अपने प्रिय जनों के प्रभु हो, प्रिय समूहों की उत्पत्ति के कारण हो, पर तथा अपर इन अर्थ समूहों के तुम ही पर्याय हो अर्थात् पर तथा अपर—दोनों ही तुम हो, दयालु हो, भक्तों की भीति को विनष्ट करनेवाले हो। ॥२६०—२७०॥

सूत ने कहा—बालचन्द्रधारी, कामपत्नी रति के इस प्रकार प्रार्थना करने पर संतुष्ट हो गये और उसे आगे खड़ी हुई देखकर मधुर स्वर में यों बोले। ॥२७१॥

शंकर ने कहा—'रति! तुम्हारा पति कामदेव शीघ्रही तुम्हे पुनः पति रूप में प्राप्त होगा, और 'अनंग' नाम से लोक में विख्यात होगा।' महादेव के ऐसा कहने पर काम की पत्नी रति ने शिर झुका गिरिश शंकर को नमस्कार कर हिमवान के परमरमणीय उपवन की ओर प्रस्थान किया। और उस सुरम्य स्थान पर पति वियोग से कातर होकर दीन स्वर से बहुत विलाप किया, किन्तु शिव की आज्ञा से मृत्यु की अभिलाषा को उसने छोड़ दिया था। ॥२७२-२७४॥

इधर नारद के कहने से हिमवान् पर्वत आभूषणादि से सुसज्जित, कौतुकवश मांगलिक विधानों से अलंकृत स्वर्गीय पुष्पों से शिर की माला बनाकर, श्वेत चीन के रेशमी कपड़े की साड़ी पहिनकर दो सखियों से युक्त अपनी पुत्री को साथ ले शुभ योग में प्रसन्न चित्त हो जंगलों, उपवनों तथा वनों में घूमता हुआ प्रस्थित हुआ। थोड़ी दूर बाद उसने अति तेजस्विनी, असाधारण सौन्दर्यशालिनी स्त्री (रति) को उस मनोहर शिखर पर रोते हुए देखा। उसे दीन भाव में रोती देखकर कुतूहल वश वह उसके समीप गया और यूँ बोला। ॥२७५-२७९॥

हिमवान् ने कहा—'लोक में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? क्यों इस प्रकार निर्जन वन में तुम रो रही हो? इस रुदन का कोई साधारण कारण मैं नहीं मानता।' रोते हुए मधु समेत रति ने हिमवान् की ऐसी वाणी सुनकर शोक को उत्पन्न करनेवाली तथा दैन्यपूर्ण निम्न बातें दीर्घ श्वासें खींचते हुए कहा। ॥२८०-२८१॥

रति ने कहा—सुव्रत! मुझ अभागिनी को कामदेव की प्राणवल्लभा रति समझो। महाभाग्य शालिन्! इसी पर्वत के शिखर पर शंकर देव तपस्या कर रहे हैं। विघ्न के कारण रुष्ट होकर उन्होंने अपने तीसरे नेत्र को खोलकर मेरे प्राणप्रिय पति मकरध्वज को भस्म कर दिया। भय से विह्वल होकर मैं उन्हीं की शरण में अभी गई हुई थी, वहाँ स्तुति करते समय शंकर ने मुझसे कहा है 'कामदेव की प्रिये! मैं तेरे ऊपर सन्तुष्ट हूँ, यह कामदेव फिर तुम्हें पति रूप में प्राप्त होगा। तुम्हारी की हुई स्तुति को पढ़नेवाला मनुष्य

भक्तिपूर्वक मेरे आश्रय में रहकर अपने मनोवांछित प्रयोजन की सिद्धि प्राप्त करेगा। तुम भी संतोष धारण कर मृत्यु से निवृत हो जाओ।' महाद्युतिमान्! उन्हीं शंकर की बात की प्रतीक्षा करती हुई मैं कुछ समय तक पति के भावी मिलन की आशा से अपने इस शरीर की रक्षा करूँगी। रति के मुँह से ऐसी बातें सुन कर पर्वतराज हिमवान् अति भयभीत हो गया और अपने हाथ से अपनी कन्या को पकड़ कर वह अपने पुर की ओर गमनोद्यत होने लगा। तब भावी की अवश्यम्भाविता से प्रभावित होने के कारण भूतभाविनी पार्वती लज्जा से युक्त होकर अपनी सखियों द्वारा पिता से बोलीं। ॥२८२-२८८॥

पार्वती ने कहा—'पिता जी! मेरे इस भाग्य रहित शरीर से क्या लाभ है? मैं किस प्रकार किस सत्कर्म द्वारा वैसे आनन्ददायी पति की प्राप्ति करने योग्य हो सकती हूँ? केवल तपस्या द्वारा अभीष्ट की प्राप्ति की जा सकती है। तपोनिष्ठ को संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। मनुष्य ऐसे साधनों के रहते हुए व्यर्थ ही दुर्भाग्य को अपने शिर पर ढोता फिरता है। बिना तपस्या किये भाग्यरहित जीवन से मर जाना तो कहीं अच्छा है। मैं अवश्य अपने मनोरथ की प्राप्ति करूँगी। तपस्या के नियमों से शरीर को सुखा डालूँगी। तपस्या में सन्देह को व्यर्थ करके (निस्सन्देह होकर) मनोरथ की प्राप्ति के लिए उद्यम करूँगी। मैं उस घोर तपस्या को करूँगी जिसे करके सर्वसाधारण से दुर्लभ पदवी को प्राप्त करूँ।' पुत्री पार्वती के ऐसा कहने पर स्नेह से विह्वल गिरिराज हिमवान् स्नेह से भरे गद्गद् स्वर में पार्वती से इस प्रकार बोले। ॥२८९—२९३॥

हिमवान् ने कहा—('उ मा') नहीं, मत, ऐसा मत करो। चंचले! बेटी! तुम्हारा शरीर तपस्या करने योग्य नहीं है। मेरी भोली भाली दिखाई पड़नेवाली बेटी! तपस्या क्लेश स्वरूप है, उसे सहन करने योग्य तू नहीं है। भावी पदार्थों के लिए इतनी चिन्ता नहीं करनी चाहिये इसीलिए मैं ऐसा कह रहा हूँ। जो भावी में है वह तो बिना प्रयास वा इच्छा किये ही बलात् प्राप्त होता है। वत्से! इसलिए तुम्हें तपस्या करने की कोई आवश्यकता नहीं है। चलो, घर लौटकर सब लोग चलें, तब फिर वहाँ विचार कर लेंगे। पर्वतराज हिमवान् के ऐसा कहने पर भी जब शैलपुत्री पार्वती घर को नहीं लौटीं, तब हिमवान् कुछ चिन्ता से व्याकुल होकर उसकी प्रशंसा करने लगे। उसी समय आकाश से पृथ्वी मण्डल पर यह दिव्यवाणी सुनाई पड़ी। (शैलराज) 'तुम ने यतः (उ मा,) नहीं मत, ऐसा मत करो हे चंचले बेटी!' ऐसा कहा है, अतः 'उमा' इस नाम से तुम्हारी यह पुत्री त्रिभुवन में विख्यात होगी। सिद्धियों की मूर्ति यह देवी सभी प्रकार की चिन्ताओं को दूर करेगी। इस प्रकार की आकाश से होनेवाली वाणी को सुनकर काश के फूल के समान श्वेतवर्णवाले हिमवान् ने पुत्री को तपस्या के लिए आज्ञा प्रदान कर शीघ्र ही अपने निवासस्थान की ओर प्रस्थान किया। ॥२९४—३००॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! तदनन्तर अपनी दोनों सखियों के साथ नगराज हिमालय की पुत्री पार्वती उस पर्वत शिखर पर तपस्या करने गईं जहाँ देवगण भी नहीं जाते थे। हिमवान् पर्वत के उस शिखर पर वे पहुँची जो विविध प्रकार की धातुओं से विभूषित था, दिव्य पुष्पों तथा लताओं से आकीर्ण था, सिद्धों

तथा गन्धर्वों के समूहों से सेवित था। उस स्थल पर अनेक प्रकार के मृग गण अधिक संख्या में विद्यमान थे, वृक्षों पर भ्रमर गूँज रहे थे। दिव्य झरने झर रहे थे, अनेक वावलियाँ शोभायमान हो रही थीं। विचित्र प्रकार के पक्षियों के समूह चहचहा रहे थे। कहीं कहीं पर मनोहर चक्रवाक के जोड़े दिखाई पड़ रहे थे। जल एवं स्थल में होनेवाले पुष्पों के समूह खिलकर उस स्थान की शोभा वृद्धि कर रहे थे। विचित्र प्रकार की कन्दरायें दिखाई पड़ रही थीं, गुफाओं में सुन्दर मनोहारि छोटे गृह बने हुए थे। पक्षियों के समूह के समूह जिस पर बोल रहे थे—ऐसे कल्पवृक्षों के समूहों से उस स्थान की शोभा और भी अधिक हो रही थी। उस स्थान पर जाकर पार्वती ने एक बहुत बड़े शाखाओं वाले वृक्ष को देखा, जिसके पत्ते हरे-हरे थे। जो सभी ऋतुओं में होनेवाले पुष्पों से समन्वित था, सैकड़ों मनोरथों की भाँति उज्ज्वल था, उसमें अनेक प्रकार के पुष्प खिले हुए थे, अनेक प्रकार के फल लगे हुए थे, सूर्य की किरणें उसके सघन पत्तों को पार कर नीचे तक नहीं आ रही थीं। उसी मनोरम वृक्ष के नीचे पार्वती ने अपने वस्त्रों को छोड़ कर बल्कल का वस्त्र तथा कुश की बनाई हुई मेखला को धारण किया। प्रथमतः सौ वर्ष तक पार्वती तीनों बेला स्नान कर पाटल का भोजन करती रहीं, उसके बाद सौ वर्ष तक सूखे पत्तों से जीवन यापन करती रहीं। फिर सौ वर्ष तक निराहार रह कर घोर तपस्या में निरत रहीं, इस प्रकार वे तपोनिधि हुईं। जब उनकी तपस्या के तेज से जगत् के सभी प्राणी उद्वेलित हो गये तब भगवान् इन्द्र ने सातों मुनियों का स्मरण किया। स्मरण करते ही वे सभी मुनिगण आनन्दित होकर वहाँ उपस्थित हुए। इन्द्र द्वारा पूजित सप्तर्षियों ने अपने बुलाये जाने का प्रयोजन पूछते हुए कहा—'देवश्रेष्ठ! किस प्रयोजन के लिए आप ने हम लोगों का स्मरण किया है।' इन्द्र ने कहा—'महर्षिगण! मेरे प्रयोजन को सुनिये। हिमवान् की पुत्री पार्वती हिमाचल पर घोर तप कर रही है, उसके मनोवांछित प्रयोजन को आप लोग पूर्ण करें।' ऐसी बातें सुन कर इन्द्र की आज्ञा स्वीकार कर सप्तर्षिगण जगत् के कल्याण के निमित्त अति शीघ्रतापूर्वक पार्वती के पास हिमालय पर पहुँचे, जहाँ पर सिद्धगण अधिक संख्या में विद्यमान थे। वहाँ जाकर उन लोगों ने पार्वती से मृदुस्वर में पूछा—'पुत्रि कमललोचने! तुम्हें कौन-सा प्रयोजन सिद्ध करना है?' उन ऋषियों के पूछने पर लज्जायुक्त पार्वती ने गौरव से शिर को ऊपर कर कहा:—'महाभाग्यशालियो! तपस्या करते समय मैंने यद्यपि मौन व्रत का नियम किया था; किन्तु आप जैसे महान पुरुषों का दर्शन प्राप्त कर मेरी बुद्धि नमस्कार करने के लिए प्रवृत्त हुई है, जो निश्चय ही मुझे पवित्र कर रही है। आप लोगों के प्रश्नोन्मुख होने के कारण मुझे प्रथमतः आप लोगों को आसन देना उचित लग रहा है, आइये, बैठ जाइये। परिश्रम से कुछ छुटकारा पा लीजिये तब मुझसे जो पूछना हो पूछिये।' ऐसा कहकर पार्वती ने उन लोगों को आसन आदि से संयुक्त किया तथा विविध भाँति से विधान पूर्वक पूजा कर सत्कृत किया। तदुपरान्त सूर्य के समान तेजस्वी उन सातों मुनियों से धीरे-धीरे कुछ कहना प्रारंभ किया। किन्तु उस समय बातें करते हुए पार्वती ने व्रत के मौन को छोड़कर लज्जा के मौन को धारण किया। जिससे उनके समस्त मनोभाव मौन दशा में परिणत हो गये। तब मुनियों ने गम्भीर भावों से युक्त पार्वती से पुनः उस प्रयोजन के बारे में

पूछा। सुन्दर हास करनेवाली पार्वती ने अपने गौरव का ध्यान रख शान्तिपूर्वक वार्तालाप करनेवाले उन मुनियों से वाणी पर संयम रखते हुए इस प्रकार कहा—'आप लोग तो प्राणियों के मन में रहनेवाली उनकी सभी कल्याण की अभिलाषाओं के जाननेवाले हैं। प्रायः सभी शरीरधारी अपने मनोगत भावों के कारण ही दुःख का अनुभव करते हैं। कुछ लोग जो उनमें निपुण हैं सफलता के लिए दैवी उपायों से प्रयत्न करते हैं। जो आलस्य नहीं करते, वे अपने उपायों से दुष्प्राप्य प्रयोजनों की भी सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। दूसरे कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अनेक प्रकार के उपायों से युक्त होकर दूसरे शरीर के लिए कल्याणदायी शास्त्र सम्मत कार्यों को करते हैं। किन्तु मेरा मनोरथ आकाश में फूलनेवाले पुष्पों की माला से विभूषित है। मेरा मन बारम्बार वन्ध्या के पुत्र की प्राप्ति करना चाहता है अर्थात् असम्भव अभिलाषा को सफल करने के लिए सतत प्रयत्नशील है। मैं भगवान् शंकर को पति रूप में वरण करने को इच्छुक हूँ। जो स्वभाव से ही दुराराध्य हैं और विशेषतया इस समय तपःसाधना में निरत हैं। देवता तथा दानवों में से कोई भी उनका अन्त नहीं जान सका वे परमार्थ प्रयोजन के एकमात्र आश्रय हैं। अभी थोड़े समय की बात है कि उन्होंने कामदेव को ही जला दिया है, और स्वयं वीतराग होकर अवस्थित हैं, तो फिर ऐसे रुद्र को मुझ जैसी कुमारी किस प्रकार आराधना कर प्रसन्न कर सकती है।' पार्वती की ऐसी बातें सुन कर मुनियों ने उनके मन की स्थिरता को और अधिक जानने के लिए क्रमशः उसी विषय पर पुनः कहा। ॥२०१—२२९॥

मुनियों ने कहा—बेटी! इस संसार में दो प्रकार के सुख कहे गये हैं। प्रथम तो शरीर के सम्भोग द्वारा, दूसरा मन की शान्ति द्वारा। किन्तु वे शिव तो स्वभाव से ही नंगे रहनेवाले हैं, भयानक आकृतिवाले हैं, वन में निवास करनेवाले हैं। वे कपालों को धारण करनेवाले हैं। भिक्षुक हैं, नग्न रहते हैं, विकृत नेत्रोंवाले हैं, सुस्त हैं, पागलों की भाँति आकार बनाये रहते हैं, वीभत्स वस्तुओं के संग्रह करने में ही उनकी रुचि देखी जाती है। ऐसे अनर्थ स्वरूप योगी से भला तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? तुम जो उनके द्वारा इस शरीर के सम्भोग की अभिलाषा कर रही हो सो तो एकदम असम्भव है। ऐसे भयानक आकृतिवाले घृणोत्पादक उन महादेव से तुम्हें इस सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है? उनके शरीर से सर्वदा रक्त और मज्जा बहा करती है, नर कपालों को उन्होंने आभूषण बना रखा है, अतिभयानक दिखाई पड़नेवाले फुफकारने वाले भुजंगों को वे अपने शरीर में लिपटाये रहते हैं, श्मशान भूमि में निवास करते हैं। उनके पीछे भयानक स्वरूप वाले प्रमथगण घूमा करते हैं। उनके अतिरिक्त देवराज इन्द्र के मुकुट की मणियों के समूहों से जिनका चरण घिसा जाता है—ऐसे शत्रुओं के विनाशक, जगत् के पालन करनेवाले, अनन्त शोभाशाली, लक्ष्मी के आराध्य भगवान् विष्णु हैं, तथा यज्ञभोक्ता देवताओं के स्वामी पाकशासन देवेन्द्र हैं, देवताओं के निधि स्वरूप सब मनोरथों की पूर्ति करनेवाले अग्निदेव हैं, जगत्पालक वायु हैं, जो सभी शरीर धारियों के प्राण कहे जाते हैं। सभी प्रकार की सम्पत्तियों से भरे पुरे परम बुद्धिमान् कुबेर हैं—इनमें से किसी एक को वरण करने की तुम क्यों नहीं इच्छा करती हो? यदि अन्य जन्म में सुख प्राप्त करने की

तुम्हें इच्छा है सो वह भी इन्हीं देवताओं से पूर्ण हो सकती है। और तुम्हें तो इसी जन्म में सर्वोत्तम कल्याणमय सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं। तुम्हारे पिता के पास ऐसी वस्तुएँ हैं, जो देवताओं को भी दुर्लभ हैं। अतः उनके लिए क्लेश सहन करना बेकार है। भद्रे ! प्रायः माँगी हुई थोड़ी भी वस्तु अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होती है। तुम्हारे ऐसे मनोरथों का एकमात्र विधाता ही पूर्ण करनेवाला है। ॥३३०—३४१॥

सूत ने कहा—ऋषियों के ऐसा कहने पर शैलपुत्री पार्वती उन पर अति अप्रसन्न तथा क्रोध से लाल नेत्र होकर बोलीं, उस समय उनके दाँत और होंठ मारे क्रोध के फड़कने लगे। ॥ ३४२ ॥

देवी ने कहा—असत् पदार्थों की प्राप्ति में कौन-सा आनन्द है ? और मन यदि किसी वस्तु में आसक्त हो गया है तो उसकी प्राप्ति में कौन-सी बाधा है ? अर्थात् मनोवाञ्छित पदार्थों की प्राप्ति में बाधाएँ कुछ नहीं कर सकतीं। विपरीत अर्थ जाननेवालों को सन्मार्ग पर किसने नियुक्त कर दिया है ? आप लोग मुझे कुबुद्धिपूर्ण तथा अनावश्यक एवं अनुपयुक्त वस्तु की अभिलाषा करनेवाली जानते रहें। मेरे लिए आप लोगों को विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मुझमें तो असद्ग्रह की लगन लग चुकी है। मेरी समझ से आप सभी लोग प्रजापति के समान सर्वदर्शी हैं। पर ऐसा होते हुए भी निश्चय ही उस शाश्वत, जगत् के परम कारण, भगवान् शंकर को आप लोग नहीं जानते, जो कि अजन्मा हैं, ईश्वर हैं, अव्यक्त हैं, अपरिमित महिमामय तथा परम तेजोमय हैं। उनके अद्भुत क्रियाकलाप एवं तत्त्व निर्णय की चिंता आप बेकार कर रहे हैं, रहने दीजिये। जिसको भलीभाँति स्वयं विष्णु तथा ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जानते हैं, जिनके अपने वैभव तथा ऐश्वर्य से संसार के समस्त जीवों में चैतन्य भाव विद्यमान है क्या आप लोग उसे भी नहीं जानते ? यह विस्तृत आकाश किसकी मूर्ति है ? यह अग्नि किसकी मूर्ति है ? वायु किसकी मूर्ति है ? पृथ्वी किसकी मूर्ति है ? वरुण किसकी मूर्ति है ? सूर्य तथा चन्द्रमा किसके नेत्र हैं ? इस संसार में दैत्य तथा देवगण अति भक्तिपूर्वक किसके लिंग की पूजा करते हैं ? ब्रह्मा इन्द्र आदि देवगण तथा महर्षिगण जिसे ईश्वर, सब का उत्पत्ति कर्त्ता बतलाते हैं, क्या उसके भी प्रभाव को आप लोग नहीं जानते ? अदिति किसकी माता हैं ? जनार्दन विष्णु किससे उत्पन्न हुए हैं ? नारायण आदि देवगण अदिति तथा कश्यप के संयोग से उत्पन्न हुए हैं। मरीचि से कश्यप ऋषि उत्पन्न हुए हैं और अदिति दक्ष की पुत्री हैं ? मरीचि और दक्ष—ये दोनों ब्रह्मा से उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। ब्रह्मा हिरण्यमय अण्डे से उत्पन्न हुए हैं, जो दिव्य ऐश्वर्य एवं सिद्धियों की विभूति से संपन्न था। किसके ध्यान से प्रकृति के अंश क्षुब्ध होकर हिरण्यमय अण्डरूप में परिणत हुए ? तृतीय प्रकृति (?) में मधु सूदन की उत्पत्ति क्रिया हुई ? और उत्पन्न होकर उसने बुद्धिपूर्वक अपने कर्म से उत्पन्न होने वाले षड्वर्गों की सृष्टि की। उसी अव्यक्त जन्मा ब्रह्म के संयोग से अजन्मा जगत् का रचनेवाला ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। जिसने अपने संयोग से प्रकृति को विक्षुब्ध कर इस प्राकृत जगत की रचना की। ब्रह्मा की लोक सर्जनात्मक शक्ति, ऐश्वर्य तथा सभी प्रयोजनों में व्याप्त उनकी सिद्धियों को विष्णु आदि देवगण जानते हैं, जो सर्वदा अपनी महिमा से अवस्थित रहते हैं। भगवान् हरि अपने अनेक अन्यान्य शरीरों को धारण कर जगत् के उत्तम, मध्यम एवं अधम कार्यों

को करते हैं। जन्म मरणात्मक संसार की भी स्थिति ऐसी ही हैं। कर्मों के फल भी इसी प्रकार अनेक रूप में उत्पन्न होते हैं। नारायण भगवान् अपनी छाया का आश्रय लेकर उसी की प्रेरणा से प्रेरित होकर नाना प्रकार के शरीरों को धारण करते हैं, वह प्रेरणा भी भाग्य के वश में रहनेवाले जीवों के कर्मों के फलानुकूल ही कही गई है। उसके द्वारा प्रेरित प्राणी की बुद्धि पागलपन आदि रोगों से ग्रस्त मनुष्य की बुद्धि की भाँति इष्ट वस्तु में भी अनिष्ट का तथा अनिष्ट वस्तु में भी इष्ट का निश्चय करती है। अतएव इस रचे गये जगत् के व्यवहारों में धर्म एवं अधर्म के फल के विषय में एकमात्र विष्णु ही कारणभूत जाने गये हैं। इनके अनादित्व को मानते हुए भी साधारणतया किसी एक शरीर में दीर्घकाल तक जीवन धारण करते हुए नहीं देखा गया। आप लोग इनके अन्त अथवा आदि को नहीं देख सके हैं। शरीरधारियों का यह स्वाभाविक धर्म है कि वे कहीं जन्म लेते हैं तो कहीं मरते हैं, कहीं गर्भ में ही मर जाते हैं तो कहीं बुढ़ापे और रोग के वश होकर भी जीवित रहते हैं। कहीं सौ वर्षों तक जीवित रहते हैं तो कहीं पर बाल्यावस्था में ही मृत्यु की आपत्ति में फँस जाते हैं। जो पुरुष सौ वर्ष तक जीवित रहता है, वह अल्प जीवन धारण करने वाले की अधिक अनन्त जीवन धारण करनेवाला कहा जाता है। जो जीवित रहते हुए भविष्य में मृत्यु को नहीं प्राप्त होता वही अमर कहा जाता है। उन विष्णु आदि देवगणों का इस प्रकार जीवन और मरण कभी देखा नहीं जाता। इस प्रकार के अद्भुत ऐश्वर्य को इस संसार में कौन प्राप्त कर सकता है ? इस प्रकार विलय आदि के संयोग के कारण यह जगत् विविध आश्चर्यों से पूर्ण है। अतः हे भद्रगण! मलिन रहनेवाले अत्यल्प विभूतियों वाले तथोक्त समस्त देवताओं को मैं पिनाकधारी भगवान् शर्व को छोड़कर वरण करना नहीं चाहती। यह जो न्यूनाधिक्य का विचार है, वही संसार के प्राणियों में विशिष्ट वस्तु है। जिसकी बुद्धि, बल, ऐश्वर्य एवं कार्य महान् से भी अति महान् हैं, जिससे बढ़कर समस्त जगत् में कोई नहीं है, जिससे समस्त जीवों की गति है, जिसके ऐश्वर्य का न आदि है न अन्त—ऐसे शर्व की ही मैं शरण में हूँ। मेरा यह कार्य अतिदीर्घ तथा विपरीत है। मेरे कल्याण की शिक्षा देनेवाले मुनिवर्य गण! आप लोग चाहे यहाँ से चले जायँ या ठहरें। देवी की ऐसी बातें सुनकर मुनियों ने आनन्द की आँसू गिराते हुए उस परम तपस्विनी का आलिंगन किया और परम प्रसन्न होकर शैलपुत्री से पुनः मधुर वचन में यों बोले। ॥३४२-३७३॥

मुनियों ने कहा—पुत्रि! तुम ज्ञान की मूर्ति की भाँति परम पवित्र हो, अति अद्भुत कार्य करनेवाली हो, महादेव के प्रति तुम्हारे अनुराग पूर्ण भाव हम लोगों को अति आनन्द प्रदान कर रहे हैं। उन देवाधिदेव शंकर के अति अद्भुत ऐश्वर्य को हम लोग नहीं जानते—यह बात नहीं है, जानते हैं। केवल तुम्हारे निश्चय की दृढ़ता को जानने के लिए हम लोग यहाँ आये हैं। सुकुमार अंगोंवाली! तुम्हारा यह मनोरथ शीघ्र ही सफल होगा, सूर्य की प्रभा भला अन्यत्र कहाँ जा सकती है ? रत्न की शोभा रत्न को छोड़कर दूसरी जगह कैसे जा सकती है ? वर्णों के समूहों को छोड़कर कौन अर्थ रह सकता है ? इसी प्रकार शंकर के बिना तुम कैसे रह सकती हो ? अब हम लोग अनेक उपायों द्वारा शिव की प्रार्थनाकर

प्रसन्न करने के लिए जा रहे हैं, हम लोगों के हृदय में भी वही अभिलाषा विशेष रूप में विद्यमान् है, अतः तुम्ही वह बुद्धि हो, वह नीति हो, जिसके द्वारा कार्य की सिद्धि हो सकती है। इसलिए निश्चय है कि शंकर तुम्हारे उक्त मनोरथ को पूर्ण करेंगे।' इतना कह मुनिगण गिरिकन्या पार्वती द्वारा पूजित होकर प्रस्थित हो गये। और पर्वत पर शयन करनेवाले भगवान् शंकर के दर्शन की अभिलाषा से हिमालय पर्वत के उच्चशिखर पर गये। वहाँ गंगाजल द्वारा नहाये हुए, पीली बड़ी बड़ी जटाओं को बाँधे, पिङ्गियाये हुए भ्रमरों द्वारा संकुलित मन्दार के कुसुमों की माला को हाथ में लिये आश्रम में बैठे हुए शंकर को हिमालय की चोटी पर पहुँच कर उन लोगों ने देखा। उनका आश्रम शान्त प्रकृतिवाले सभी प्रकार के जीवों के समूहों से भरा हुआ था, वहाँ नये फूले हुए वृक्षों की पंक्तियाँ शोभायमान हो रही थीं; बिल्कुल निःशब्द एवं वेग से रहित जल के सुन्दर झरने सभी दिशाओं में धीरे धीरे बह रहे थे। वहीं पर द्वार देश पर बैठे हुए वीरभद्र को मुनियों ने हाथ में वेत लिये हुए देखा। तब उन पूज्य विनम्र एवं बोलनेवालों में परम प्रवीण सातों मुनियों ने कार्य की गम्भीरता का अनुभव करते हुए मधुर वाणी में वीरभद्र से कहा—'हम लोग शरण देने वाले, गणों के स्वामी भगवान् शंकर के दर्शनार्थ आये हुए हैं। देवताओं के कार्य के लिए प्रेरित होकर हम लोगों के आगमन की सूचना त्रिलोचन को तुम दो। इस अवसर पर तुम्ही हम लोगों के एकमात्र साधन हो, जिस प्रकार से हम लोगों के समय का अतिक्रम न हो, वैसा ही करो। हम लोगों की यही प्रार्थना है। प्रभु प्रायः प्रतिहारी द्वारा ही बाहर आनेवालों को जान सकते हैं, अतः तुम्हीं हम लोगों के इस मनोरथ को पूर्ण करने में समर्थ हो।' मुनियों के इस प्रकार कहने पर वीरक ने गौरवपूर्वक उन लोगों से कहा, अभी थोड़ी ही देर हुई, त्रिशूलधारी शंकर मन्दाकिनी में स्नान तथा सन्ध्या बन्दन के लिए गये हैं और थोड़ी ही देर में आ जाते हैं, तब उनको आप लोग देख सकेंगे।' वीरक के ऐसा कहने पर शिवजी के आगमन के समय की प्रतीक्षा करते हुए मुनिगण इस प्रकार वहाँ स्थित रहे जैसे वर्षा ऋतु में प्यासे पपीहे गम्भीर बादल की प्रतीक्षा किया करते हैं। तदनन्तर थोड़ी देर बाद जब सभी क्रियाओं को सम्पन्न कर भगवान शंकर ने मृगचर्म पर से अपने वीरासन को भंग किया, तब अति विनीत भाव से घुटनों को पृथ्वी पर टेककर प्रणाम करते हुए वीरक ने कहा—'महाराज! परमतेजस्वी सातों ऋषि आपके दर्शन के लिए आये हुए हैं, उनको अपने दर्शन करने के लिए आने की आज्ञा दीजिये। उन्होंने अपने को देव कार्य के लिए आया हुआ बतलाया है, वे सभी आपके दर्शनाभिलाषी हैं। उनके मनोभावों को जानने के लिए अपने दर्शन की उन्हें आज्ञा प्रदान करें।' महात्मा वीरक के ऐसा कहने पर धूर्जटि शिव ने भृकुटी के इशारे से उन मुनियों को वहाँ प्रवेश करने के लिए आज्ञा प्रदान की। वीरक ने भी अपने शिर को हिलाकर थोड़ी दूर पर बैठे हुए उन महामुनियों को पिनाकधारी शिव के दर्शन करने के लिए बुलाया। शीघ्रता से आधी जटा को बाँध कर वे मुनिगण विभूतियों से संयुक्त गिरिश शंकर की सिद्ध वेदी में प्रविष्ट हुए। उस समय उनके मृगचर्म भूल रहे थे। दोनों हाथों की हथेलियों को सम्पुटित कर स्वर्गीय पुष्पों को लिये हुए वे मुनिगण स्वर्ग निवासी देवताओं के पूज्य शंकर के दोनों चरणों

पर पड़े। स्नेह से पूर्ण नेत्रों वाले, शान्त चित्त वे मुनिगण शूलपाणि से सम्मानित होकर अति हर्षित हुए और काम के शत्रु भगवान् शंकर की इस प्रकार सामूहिक प्रार्थना की। ॥३७४-३८६॥

मुनियों ने कहा—अहा! हम लोग अब कृतार्थ हो गये। सुरनायक इन्द्र भी इस कार्य में यशस्वी होंगे। आपके प्रसन्नता रूपी निर्मल जल के सिंचन के फल से कोई तपस्विनी तप की आराधना में दत्तचित्त है। यह हिमवान् पर्वत अतिशय धन्य है, जिसके आश्रय में स्वयं उसकी पुत्री तपस्या कर रही है। समस्त देवताओं का नाश करनेवाला वह दैत्यराज तारकासुर भी धन्य है, जिसके पुण्य का फल अतिशय मात्रा में उदित हुआ है। तुम्हारे अंश (पुत्र) को देखकर वह निष्पाप हो, अपने इस शरीर को छोड़ देगा। बुद्धिमान लोकपिता चतुर्मुख ब्रह्मा धन्य हैं, भय की अग्नि से उद्दीप्त विष्णु भगवान् धन्य हैं, जो अत्यन्त दुःखदायी ताप को प्रशान्त करने के एक मात्र कारण आप के दोनों चरणकमलों का सर्वदा ध्यान हृदय से किया करते हैं। प्रसिद्ध है कि एक मात्र तुम विविध प्रकार की आकृतियों को धारण कर अनेक प्रकार के कार्यों के करनेवाले हो, ऐसी वाणी द्वारा वे लोग, जिनके शिर से सांसारिक कर्मों का भार अलग हो गया है, तुम्हें पुकारते हैं। तुम ही इस समस्त जगत में सर्वप्रथम कहे जाते हो, अतः ऐसा कार्य मत करो जिससे जगत तुम्हारी निर्दयता का अनुभव करे। प्रजा के ऊपर होनेवाले इन दुःखों को तुम नहीं जानते हो, जिससे तुम्हारी क्रियाएँ निश्चय ही सभी ओर से विघ्नपूर्ण हो रही हैं। यदि आप इस प्रकार जगत् में होनेवाले उपद्रवों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं तो आप को दयामय कौन कह सकता है? अपनी योग माया की महिमा के आश्रय पर टिका हुआ आप का गौरव अब निर्मल विभूतियों से युक्त नहीं मालूम होता है। शरीरधारियों में हम लोग भी अतिशय धन्य हैं, जो इस प्रकार ऐश्वर्यमय आपको देख रहे हैं, अतः हम लोगों की प्रार्थना है कि हमारे मनोरथों का लोप न हो, जिससे हमारे मन की इच्छाएँ सफलता को प्राप्त हों। यह विनाशकारी अवस्था, जो जगत् के विनाशार्थ उपस्थित है, उससे सब की रक्षा कीजिये। हम लोग इन्द्र के अनुचर होकर यहाँ आये हैं। महर्षियों ने अपनी सुमधुर वाणी को भगवान् शंकर के वेदों से पवित्रित वेदिका के समीप स्थित होकर इस प्रकार निवेदित किया जैसे किसान लोग अच्छे फल की प्राप्ति के लिए भली भाँति जोती तथा कमाई हुई पृथ्वी में अच्छे बीज की मुट्ठियाँ बोते हैं। ॥३८६-४०४॥

इस प्रकार उन लोगों के विविध उपाय एवं तर्कों से युक्त मनोहर वाणी को सुनकर शंकर वृहस्पति की भाँति परम सन्तुष्ट होकर हँसते हुए बोले—॥४०५॥

महादेव ने कहा—'समस्त जगत् के उपकारार्थ जो यह उत्तम कार्य उपस्थित है, उसे मैं जानता हूँ। हिमवान पर्वत के घर एक पुत्री उत्पन्न हुई है, आप लोग उसी के विषय में प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए यहाँ आये हुए हैं। सचमुच आप सभी लोग देवकार्य को सम्पन्न करने के लिए उत्सुक हैं, और सब के चित्त में उक्त कार्य को शीघ्र सम्पन्न करने की जल्दी भी दिखाई दे रही है, किन्तु कार्य होने में कुछ देर तो होगी ही। बुद्धिमान पुरुषों को आवश्यक है कि नियमों और पद्धतियों की रक्षा करते हुए लोक व्यवहार को निभायें, क्योंकि उन्हीं के निश्चय किये गये धर्ममार्ग पर सर्वसाधारण भी चलते हैं।' शिव के ऐसा कहने

पर महर्षिगण तुरन्त हिमालय की ओर प्रस्थित हो गए। वहाँ पहुँच कर हिमालय द्वारा सादर पूजित हो, वे मुनिगण परम प्रसन्न हुए और शीघ्रता के कारण स्पष्टाक्षरों में इस प्रकार बोले। ॥४०६-४०९॥

मुनियों ने कहा—'नगराज हिमवान्! भगवान पिनाकधारी शिव साक्षात् तुम्हारी कन्या को प्राप्त करने को इच्छुक हैं, अतः अग्नि में आहुति कर उसी के समक्ष पार्वती को समर्पण कर आप अपने को पवित्रित कीजिये। देवताओं का यह कार्य बहुत दिनों से सोचा गया है। समस्त जगत् का उद्धार करने के लिए इस उद्योग को आप सम्पन्न कीजिये।' मुनियों के ऐसा कहने पर अति हर्ष से प्रफुल्लित होकर हिमवान् मुनियों को उत्तर देने को उत्सुक हुआ, किन्तु असमर्थ होकर रुक गया और मन ही मन भगवान् शंकर की प्रार्थना करने लगा। इस प्रकार उसे रुका देखकर कार्य के तत्वों को जाननेवाली मेना ने उन समागत मुनियों की वन्दना की और उन के चरणों के समीप स्थित हो कन्या के स्नेह से आर्द्र हृदय होकर इस प्रकार बोलीं—॥ ४१०-४१३ ॥

मेना ने कहा—'जिस कठिनाई के कारण लोग अतिशय पुण्य फल देनेवाली पुत्री के जन्म की अभिलाषा नहीं करते, वे ही सब सुविधाएँ मेरे सम्मुख उपाय समेत इस समय उपस्थित हैं। जो वर कुल, जन्म, अवस्था, रूप, सम्पत्ति तथा विभूतियों से समन्वित होने पर भी कन्या के लिए स्वतः प्रार्थना नहीं करता है, उसी को बुलाकर कन्यादान करना चाहिये। सो उस परम तपस्वी को मेरी पुत्री किस प्रकार अंगीकार कर सकेगी जिसका एक मात्र तप ही धन है। इस विषय में पुत्री के कथनानुसार जो कुछ करना उचित हो उसे आप लोग करें।' हिमवान् की प्रिया मेना के ऐसा कहने पर मुनि लोग स्त्री के चित्त को प्रसन्न करने वाली उदारतापूर्ण वाणी में बोले। ॥ ४१४-४१७ ॥

मुनियों ने कहा—'भगवान् शंकर के अतुल ऐश्वर्य को देवताओं तथा असुरों द्वारा तुम जान सकती हो, जिन्होंने उनके कमलवत् दोनों चरणों की आराधना कर परम सिद्धियों की प्राप्ति की है। जिसके उपयोग के लिए जो रूप होता है उसी रूप के द्वारा वह सन्तुष्ट भी होता है। उन्हीं की प्राप्ति करने के लिए चिरकाल से तुम्हारी पुत्री घोर तपस्या कर रही है। शिव के उसी रूप से उसकी इच्छापूर्ति होगी। जो व्यक्ति उसके दिव्य व्रतों को समाप्त करेगा, उसी में वह देवी अतिशय प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होगी। ऐसा कह कर मुनि लोग हिमवान् के साथ वहाँ पहुँचे जहाँ पर्वतपुत्री, अग्नि एवं सूर्य की ज्वाला को जीतनेवाली, तप एवं तेजोमयी उमा तपस्या कर रही थी। वहाँ पहुँच कर मुनियों ने पार्वती से स्नेहपूर्ण वाणी में कहा—'पुत्रि! अब तुम्हारा सम्माननीय मार्ग तुम्हारे सामने आ गया है अर्थात् अब तुम्हारी तपस्या सफल है। अब अपने रमणीय मनोहर एवं प्रिय रूप को तुम कठोर तप द्वारा मत जलाओ। प्रातःकाल शंकर तुम्हारा पाणिग्रहण संस्कार करेंगे, हम लोग यहाँ आने के पहिले ही तुम्हारे पिता से इस विषय में प्रार्थना कर चुके हैं तब यहाँ आये हैं। अब तुम अपने पिता के साथ अपने घर जाओ हम लोग भी अपने-अपने निवास स्थानों को प्रस्थित हो रहे हैं। ॥४१८-४२४॥

मुनियों के इस प्रकार कहने पर पार्वती ने इस अपनी घोर तपस्या का सत्य फल मान कर शीघ्रता

के साथ दिव्य सम्पत्तियों से सुसम्पन्न अपने पिता के भवन की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पहुँच कर सती ने उस रात को दस सहस्र वर्ष के समान व्यतीत किया। उस समय वह हिमवान् की पुत्री महादेव के दर्शन की उत्कट उत्कण्ठा से आत्मविभोर सी हो रही थीं। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त होने पर देवताओं की स्त्रियों ने क्रमपूर्वक समुचित स्थान पर अनेक प्रकार के मांगलिक उपचारों से उन्हें विभूषित किया और अनेक मांगलिक उपचारों से सुसज्जित भवन में बिठाकर दिव्य आभूषणों से अलंकृत किया। सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करनेवाली छहों ऋतुएँ उस समय आ-आकर गिरिराज हिमवान् की सेवा कर रही थीं। वायु और बादल स्वयं आकर पर्वतराज की गुफाओं की सफाई में लगे हुए थे। राजभवन में साक्षात् लक्ष्मी अनेक प्रकार के साज बाज के साधनों समेत आकर विराजमान थीं। कान्ति तो वहाँ की प्रत्येक वस्तुओं—भाव एवं विचारों तक में—विराजमान थीं। ऋद्धियाँ व्याकुल हो चली थीं। चिन्तामणि आदि प्रमुख रत्न समूह पर्वत राज के चारों ओर उपस्थित थे। कल्पद्रुम आदि कामनाओं को सफल करनेवाले वृक्षगण भी सुशोभित हो रहे थे। दिव्य औषधियाँ, एवं सभी प्रकार की अन्य सामान्य औषधियाँ मूर्ति धारण कर वहाँ आयी हुई थीं। सभी प्रकार के रस और धातुएँ पर्वतराज के किंकर रूप में आये हुए थे और आज्ञा पालन में तत्पर रहकर सभी आनन्दातिरेक से व्यग्र से हो रहे थे। इनके अतिरिक्त सभी नदियाँ, समुद्र, संसार के जड़ चेतन जीव गण, आ आकर हिमवान् की महिमा एवं शोभा की वृद्धि कर रहे थे। ॥४२५-४३३॥

उधर गन्धमादन पर्वत पर अवस्थित शंकर के विवाहोत्सव समारोह में भी सभी मुनि, नाग, यक्ष गंधर्व किन्नर तथा सुर गण सम्मिलित हुए थे। वे सभी भव्य स्वरूप धारण कर आभूषणादि सामग्रियों के सजाने में तत्पर थे। अति प्रेम युक्त उदार भावना पूर्ण प्रफुल्लित नेत्रों वाले पितामह ब्रह्मा ने शंकर की जटा में लघु चन्द्र को बाँधा। चामुण्डा ने एक कपालों की लंबी माला शिर में बाँधा और कहा—शंकर ऐसे पुत्र को उत्पन्न करो, जो दैत्येन्द्र तारकासुर के परिवार का विनाशकर मुझे रक्त से तृप्त करे। सूर्य के पुत्र शनैश्चर ने देदीप्यमान रत्न, अग्नि के समान लहलहाते हुए मुकुट तथा भुजंगों के आभूषण को लाकर शंकर को आभूषित किया और उनके सम्मुख खड़े होकर अभिनन्दन किया। देवराज इन्द्र ने शंकर को गजचर्म लाकर पहिनाया, जो चर्बी से भीगा हुआ था। उस समय वे बड़े वेग में थे और उनके विस्तृत मुख कमल पर पसीने की बूँदें छाई हुई थीं। वायु ने हिमवान् पर्वत के समान तेजस्वी तीक्ष्ण सींगोंवाले, अतिबलवान्, महा तेजस्वी शंकर के वाहन नन्दीश्वर नामक वृषभ को आभूषणों से विभूषित किया। शंकर के नेत्रों में निवास करनेवाले जगत् के सभी कर्मों के साक्षी चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि ने अपने अपने तेजों को अधिकाधिक उत्तेजित किया जिससे लोकेश्वर की शोभा की वृद्धि बहुत विशेष हुई। प्रेतपति ने मस्तक में चाँदी के समान चमकीले चिता के भस्म को लगाकर एक हाथ से मनुष्य की हड्डियों की बनी हुई माला बाँधी और द्वार देश पर गदा समेत स्वयं उपस्थित हुए। धनाध्यक्ष कुबेर द्वारा लाये गये अनेक प्रकार के बहुमूल्य रत्नों एवं आभूषणों को तथा जलाध्यक्ष वरुण द्वारा लाये गये कभी न कुम्हलाने वाले पुष्पों से रचित सुन्दर माला को छोड़कर शंकर ने स्वयं अपने हाथों से जिसमें अत्यन्त

विकराल सर्पों को केयूर की भाँति धारण किये हुए थे, वासुकि और तक्षक नामक सर्पों को अपने कानों का आभूषण बनाया।..........तदनन्तर वहाँ पर आये हुए शिव के गणाधीशों ने वीरभद्र से अति विनय के साथ निवेदन किया—'भयंकर आकृतिवाले! आप हम लोगों की बात त्रिशूलधारी को सूचित करें कि उन्हें हम लोग समस्त आभूषणों से सुसज्जित करेंगे। तदनन्तर सातों समुद्र दर्पण का कार्य करने के लिए वहाँ उपस्थित हुए। उस समय महासमुद्र के उदर में अपने स्वरूप को देखने वाले स्थाणु शंकर से भगवान् विष्णु घुटनों को पृथ्वी पर टेक कर बोले—'देव! सम्प्रति इस जगत् के आनन्ददायी स्वरूप से आप अधिक शोभित हो रहे हैं।' ॥४३४-४४८॥

ठीक उसी समय उपर्युक्त समय जान मातृकाओं ने विधवा के समान वेशादि को बनाये हुए कामदेव की स्त्री रति को इशारा किया और वह शिव के सम्मुख उपस्थित हुई। तब वे सुन्दरियाँ हँसती हुई शिव से बोलीं—'महाराज! कामदेव से विहीन यह रति आप के सामने खड़ी हुई सम्प्रति शोभा नहीं पा रही है।' शिव ने अपने बाएँ हाथ के अग्रभाग के इशारे से सान्त्वना देकर रति को आगे से हटाकर गिरिजा के मुखदर्शन की उत्कण्ठा से प्रस्थान किया। ॥४४९-४५१॥

तदनन्तर शिव हिमालय के शिखर के समान भीषण, प्रमथों की तुमुलध्वनि से लाल नेत्रवाले, श्वेतवर्ण वाले महावृषभ नंदीश्वर के ऊपर सवार होकर कोड़े की मृदु चोटों से प्रेरित किया। उस समय वे पर्वतों को वज्र के समान कँपा रहे थे। प्रस्थान करते समय भगवान् विष्णु आगे शीघ्रता से कदम चलाते हुए अपने से आगे चलनेवाले वृक्ष के समूहों पर बैठे हुए बरातियों से कह रहे थे 'अरे! चलते चलो, मार्ग को रोककर भीड़ मत करो!' उस समय पृथ्वी की धूल से उनके आभूषणों की रंग विरंगी शोभा हो रही थी। शंकर के पुत्र वीरक ने प्रभु की आज्ञा को विस्तृत करते हुए उच्चस्वर से कहा—'अरे आकाश में चलने वालो! आकाश में क्या ऐसी मनोहर वस्तु है, जिसे तुम लोग देख रहे हो, आगे चलते चलो, अरे पर्वतो! दूर से होकर चलो। समुद्रो! तुम लोग अपना जल शिलाओं के समान बना लो। देवताओं से द्वेष करने वाले भूत प्रेत गण! तुम लोग मार्ग की कीचड़ हटाकर साफ करो। गणेश्वरगण! तुम लोग चंचलता से मत चलो। स्थिर बुद्धि प्रमुख सुर गण देख रहे हैं। पिनाकधारी शिव के सम्मुख जो कंकाल लेकर चल रहा है, वह भृंगी अपने शरीर को देखता हुआ नहीं चल रहा है। यमराज व्यर्थ में ही तुम तीक्ष्ण दाँतरूप कोटर से युक्त अपने अस्त्र को लेकर इस समय भी चल रहे हो; भय छोड़कर चलो! त्रिपुर के शत्रु शंकर के अनेक माताओं से संकुलित मार्ग को रथ के घोड़े नहीं छोड़ रहे हैं। शिव जी के प्रिय देवगण अपने अपने अनुयायियों से घिरे हुए पृथक-पृथक पैदल ही दूने मार्ग को समाप्त कर रहे हैं। आमोद प्रमोद के साधनों से समन्वित एवं पवन से विकम्पित चामरों से युक्त अपने ऐसे वाहनों समेत, जिनकी ध्वजाएँ हिल रही हैं, आप लोग चलिये। देवगण! राग समेत नियत तीनों लयों से युक्त संगीत स्वरों का विचार आप लोग क्यों नहीं कर रहे हैं। आभूषणों के समूहों से निकलने वाली ध्वनि को किन्नरगण अपने बाजों से पराजित (दबा) नहीं कर सकते। अपनी-अपनी जाति की

एक समान ध्वनियों से संयुक्त ये षडज्, मध्यम एवं परम उच्च स्वर लहरियों की ध्वनियाँ क्यों नहीं यहाँ अधिक मात्रा में गायी जा रही हैं। ये गौडकगण कालभेद के अनुसार अति सूक्ष्म एवं कठिनाई से दिखने योग्य स्वरों के भेदों को दिखाते हुए नतानत, नत और आनत–इन तीनों तान के भेदों समेत सुमधुर संगीतालाप करते हुए शीघ्रता के साथ चले जा रहे हैं। ये सम्मिलित स्वर, ललित पद, एवं स्पष्ट अर्थवाले संगीत को करने वाले षाड़गवादि गण क्यों नहीं प्रभु के सम्मुख जाते हैं?.... विलासोन्मत्त अनेक नागों की जातिवाले, शिव के यशोगान के विस्तार से युक्त, बहुत गमक से युक्त, पृथक पृथक मनोहर रास से संयुक्त संगीत की ध्वनि कर रहे हैं। इस दिशा की ओर, विविध संगीतज्ञ लोग बहुओं से संयुक्त हो, प्रतिक्षण कैसे गान कर रहे हैं, जो मृदङ्ग आदि की ध्वनियों के साथ अनेक प्रकार के स्वरालाप तो सुने जाते हैं, मगर मूर्च्छना एक भी नहीं सुनाई पड़ रही है। क्यों इधर तुम्बुरु की ध्वनि के साथ विविध आरोह-अवरोह क्रम एवं भेदों से युक्त वीणा एवं मृदङ्ग आदि बाजनों का शब्द नहीं सुनाई पड़ रहा है।' इस प्रकार वीरभद्र की आदेशपूर्ण बातें सुनते हुए, सुर तथा असुर गण बड़े हर्ष एवं सावधानी के साथ अपने अपने बाजे और गानादि से चराचर जगत् को व्याप्त करते हुए आगे बढ़ने लगे। समुद्र एवं मेघ गर्जने लगे। दिशाएँ स्वरों से गूँज उठीं। पर्वतों की कंदराएँ प्रतिध्वनित होने लगीं। शिव की शीघ्रता पूर्वक गति से समस्त जगत् में तुमुल ध्वनि व्याप्त हो गई और उधर पर्वत राज हिमवान् व्याकुल हो गया। तदनन्तर भगवान् शंकर थोड़ी ही देर में सुर एवं असुर गणों के साथ हिमाचल के नगर में प्रविष्ट हुए। उस मनोहर नगर में कोई स्थान सैकड़ों सुवर्ण जटित तोरणों से सुसज्जित था। किसी स्थान पर मरकत मणि की शिलाओं के बने हुए घर बनी हुई वेदियों से सुशोभित थे। कहीं कहीं पर वैदूर्य मणि की फर्श बनी थी। किसी स्थान पर बादल के समान वेग से झरने झर रहे थे। भवनों पर सहस्रों लम्बी लम्बी पताकाएँ शोभायमान थीं, जो श्वेत, काले एवं लाल रंगों से रंगी हुई थीं। चौराहों पर मनोहर कल्पद्रुम आदि वृक्षों के पुष्पों के गुच्छे बिखरे पड़े थे। मार्ग अति विस्तृत थे तथा पुर का प्रवेशद्वार अति विशाल था। समस्त पुर में अति सुगन्धित अनुपम वायु बह रही थीं, इस प्रकार नगर की शोभा अति मनोहारिणी थी। हिमालय के पुर में शिव के पहुँचने पर उन्हें देख कर सारा पुर व्याकुलित हो गया। सभी लोग भयभीत होकर भागने लगे और उनसे सारा मार्ग आकीर्ण हो गया। कोई उच्च सुवर्ण अट्टालिका के झरोखे में बैठी हुई देवता की स्त्री अपने आभूषणों की किरणों के वितान में सुशोभित होकर प्रकट रूप से लोगों के नेत्र रूपी नील कमल माला को देख रही थी। कोई अन्य सुन्दरी अपने सभी आभूषणों से आभूषित होकर सखी की प्रीति भरी बातों को अनसुनी कर शिव को ही देख रही थीं। कोई अन्य सुन्दरी शिव के दर्शन से अत्यन्त सुन्दर मनोभाव की भूमि में पहुँच गई थी और अपनी सखी से कह रही थी—मुग्धे! शिव को देख कर कातरता मत धारण करो, क्योंकि कामदेव को जलाने वाले पिनाकधारी शिव अब स्वयमेव विहारकी इच्छा कर रहे हैं। शिव को देख कर कोई गिरती हुई स्त्री अपनी विरह से विस्खलित अंगोंवाली सखी से कह रही थी—'चंचले! तू शिव के उत्पन्न हुए काम विकार विषयक कथा को भूल

से दूसरों से कह-कह कर मत फैलाओ। कोई कामिनी व्यवधान पड़ने के कारण शिव को न देखकर भी उन्हीं के लक्ष से युक्तिपूर्वक कह रही थी—ये जो स्वर्ग के स्वामी इन्द्रादि देवगण यहाँ पर आये हुए हैं, वे अपने नामों को ले-लेकर अपनी अपनी सेवा अर्पित करने के लिए चन्द्रशेखर को प्रणाम करते हुए चेष्टा कर रहे हैं। कोई सुन्दरी अपनी सखी से कह रही है—'अरे वह नहीं, वह शंकर जी हैं, जिनके मस्तक पर चन्द्रमा है, और शरीर पर गजचर्म सुशोभित है और जिनके आगे देवताओं के स्वामी इन्द्र आगे आगे मार्ग को साफ करने के लिए दौड़ते हुए चल रहे हैं। देखो, यह ब्रह्मा जी हैं जो लंबी जटा और मृगचर्म से सुशोभित हैं और हाथ से मुख पकड़ कर शिव के कान में कुछ बातें कर रहे हैं।' उस समय जब हिमवान् पर्वत के नगर में शिव पहुँचे तब इस प्रकार पुरनारियों में परस्पर यह बातें होने लगीं—'इन महादेव के आश्रय से पार्वती का जन्म सुफल हो गया, उस समय उन सभी के चित्त अति प्रेम के कारण आर्द्र हो गये थे। ॥४५२-४७१॥

तदनन्तर विश्वकर्मा द्वारा विनिर्मित महानीलमणि के बने हुए खम्भों से सुशोभित, उज्ज्वल प्रकाशमान सुवर्णमय फर्शवाले मोतियों की मालाओं से परिष्कृत, देदीप्यमान् औषधियों के प्रकाश से सुप्रकाशित, सहस्रों क्रीडागारों एवं वाटिकाओं से सुसमृद्ध, सुवर्ण की सीढ़ीवाली बावलियों से सुशोभित हिमवान् पर्वत के सुन्दर भवन को देखकर, महेन्द्र आदि देवताओं ने मन में मान लिया कि 'आज मेरे नेत्र सफल हो गये।' तदनन्तर द्वार पर विष्णु भगवान् द्वारा रोके गये स्वर्गनिवासी प्रमुख देवतागण किसी प्रकार अपने चूर-चूर कुचले गये केयूर आदि आभूषणों से युक्त होकर हिमाचल के भवन में प्रविष्ट हुए। वहाँ विनत भाव से अचलेश्वर हिमवान् द्वारा सुपूजित चतुर्मुख ब्रह्मा ने विधिपूर्वक मंत्रादि का उच्चारण कर सभी विधानों को समाप्त कराया। निश्चित मुहूर्त में शर्व, भगवान् शंकर ने अग्नि को साक्षी कर पार्वती का पाणिग्रहण किया। उस महान् उत्सव के समय महादानी पर्वतों का स्वामी हिमालय दान करनेवाला, चतुर्मुख ब्रह्मा हवन करनेवाले साक्षात् शिवजी वर तथा जगदम्बिका पार्वती कन्या रूप में थीं। यह सब था किन्तु वे चराचर-सभी जीवगण देवता एवं राक्षस जो द्रष्टारूप में थे, कार्याधिक्य से व्यग्र हो गये। फिर भी शान्ति पूर्वक सब लोग वहाँ अवस्थित रहे। सभी प्रकार के मनोरम भावों से पूर्ण होकर साक्षात् पृथ्वी देवी ने नूतन अन्नों, रसों एवं औषधियों को व्यग्रता समेत आकर छोड़ा। स्वयं वरुण सभी प्रकार के रत्नों एवं आभरणों को जो, पुण्य, पवित्र एवं अनेक प्रकार के रत्नों से बने हुए थे, लेकर वहाँ उपस्थित थे। सभी प्रकार के जीवों को हर्ष प्रदान करने वाले विनीत भाव से धनाध्यक्ष कुबेर भी सुवर्ण के बने हुए तथा विचित्र ढंग वाले दिव्य आभूषणों को लिये हुए उपस्थित थे। सभी जीवों को हर्ष प्रदान करनेवाले भगवान् शंकर अपने दिव्य आभूषणों से सजे हुए थे। भगवान् वायु अति सुगन्धियुत सुखमय स्पर्श कराते हुए बह रहे थे। इन्द्र चन्द्रमा की किरणों के समान प्रकाशमान अतिश्वेत छत्र लिए हुए परम प्रसन्न हो रहे थे। उस समय वे माला धारण किये हुए थे, तथा उनके हाथ अनेक प्रकार के आभूषणों से अलंकृत थे। प्रमुख गन्धर्वगण समवेत रूप से सुमधुर गान कर रहे थे, अप्सराएँ नाच रहीं थीं, कुछ गन्धर्व तथा किन्नरों के समूह अति मधुर स्वर में अनेक प्रकार

के बाजनों को बजाते हुए अलग भी गान कर रहे थे। सभी ऋतुएँ भी रूप धारण कर नाच गान कर रही थीं। शिव के चंचल प्रकृति वाले प्रमथगण हिमालय को विचलित करते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। ऐसे अवसर पर विश्व के पालन करनेवाले भगनेत्रहारी भगवान् शंकर ने यथोचित रीति से अपनी वल्लभा पार्वती के साथ वैवाहिक कर्म सम्पन्न किया। तदनन्तर देव समूहों द्वारा प्रार्थना किये गये, गिरिराज हिमालय द्वारा पूजित, भगवान् त्रिपुरान्तक शंकर ने वहाँ पर पत्नी के साथ एक रात्रि व्यतीत भी किया। दूसरे दिन प्रातःकाल गन्धर्वों के गीत, अप्सराओं के नृत्य एवं देवता तथा दैत्यों की स्तुतियों से जगाये गये देवताओं के स्वामी भगवान् शंकर ने प्रातःकाल पार्वती के साथ गिरिराज हिमवान् से आज्ञा प्राप्तकर वायु के समान वेगशाली नन्दीश्वर के द्वारा मन्दराचल को प्रस्थान किया। ॥४८०-४९६॥

पार्वती समेत नीललोहित भगवान् शङ्कर के चले जाने पर सपरिवार हिमवान् को आनन्द नहीं प्राप्त हुआ। इस जगत् में भला किस कन्या के पिता का मन उसकी विदाई हो जाने के बाद विह्वल नहीं हो जाता। तदनन्तर शिव ने मन्दराचल में चिरकाल से बनाये हुए उज्ज्वल देदीप्यमान मणियों, स्फटिक की शिलाओं तथा शुभ्र सुवर्ण से बनाये गये अति कान्तिमान् स्फटिक के बने हुए प्रवेशद्वारवाले पुर में देवताओं को बिदा कर स्वयं प्रवेश किया। प्रविष्ट होने के उपरान्त भगनेत्रहारी भगवान् शंकर ने उस पुर के सुरम्य उद्यानों तथा एकान्त वनों में उमा के समेत विहार किया। कामवश अनुरक्त हृदयवाले भगवान् शंकर ने इस प्रकार देवी पार्वती के साथ बहुत दिनों तक विहार किया। और इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर एक बार पुत्र प्राप्ति की अभिलाषिणी पार्वती सखियों के साथ खिलौने के बनावटी पुत्तलों को पुत्र मानकर क्रीडा करने लगीं। उसी प्रसंग में एक दिन शैलपुत्री पार्वती ने उस पुत्तल के अंगों में सुगन्धित द्रव्य युक्त तैल लगाकर कुछ मैले शरीर में सुगन्धित चूर्णों का उबटन भी लगाया और उस उबटन को लेकर हाथी के समान मुखवाले मनुष्य की आकृति का निर्माण किया। इस प्रकार उस बनावटी पुत्तल के साथ क्रीडा करती हुई पार्वती ने उस गजाकृति नर पुत्तल को जल में डाल दिया। पार्वती की सखी जह्नुकन्या गंगा के जल में पड़कर वह पुत्तल लम्बे शरीर वाला हो गया। और अपने विशाल शरीर से उसने समस्त जगत् को व्याप्त-सा कर लिया। उस विशाल शरीरवाले पुत्तले को पार्वती ने 'पुत्र' कहकर पुकारा और उसी को जाह्नवी ने भी 'पुत्र' कहा। फिर गज के आनन के समान मुखवाला वही पुत्तलक देवताओं द्वारा पूजित होकर 'गांगेय' और 'गजानन' नाम से विख्यात हुआ। पितामह ब्रह्मा ने उसे विघ्नों का आधिपत्य पद सौंपा। सुन्दर अंगोवाली पार्वती ने पुनः पुत्र की कामना से एक बार खिलवाड़ किया और इसी प्रसंग में उस सुन्दर मुखवाली ने जमे हुए एक अशोक के मनोहर अंकुर को अनेक संस्कार एवं मंगलादि का विधान कर बढ़ाया। सूर्य आदि देवताओं तथा बृहस्पति आदि ऋषियों ने देवी से इसके कारण को पूछते हुए इस प्रकार की बातें कहीं। 'भवानी! मनोहर रूपवाली! आपकी उत्पत्ति तो लोक की विभूति के लिए हुई है, प्रायः ऐसा देखा जाता है कि लोग पुत्र रूप फल को ही प्राप्त करने को इच्छुक रहा करते हैं। पुत्र

पौत्रादि से ही लोग अपने जन्म की सफलता मानते हैं और प्रायः यह देखा जाता है कि जो लोग पुत्रविहीन हैं, वे संसार से विरक्त होकर ईश्वर को प्राप्त करने का मार्ग ग्रहण करते हैं। इस समय आप सज्जनों के लिए उचित मार्ग की मर्यादा निर्धारित करें। देवि! इन बनाये हुए वृक्षों को पुत्र रूप में मानने से भला क्या फलप्राप्ति होगी?' देवताओं तथा ऋषियों के ऐसा पूछने पर हर्ष से प्रफुल्लित अंगोंवाली पार्वती ने मांगलिक वाणी में उत्तर दिया। ॥४९७-५१०॥

देवी ने कहा—जलरहित देश में जो कोई बुद्धिमान् कूप का निर्माण करता है, वह जल के एक-एक विन्दु के हिसाब से उतने ही वर्षों तक स्वर्गलोक में निवास करता है। दस कूएँ के समान पुण्यदायिनी एक बावली कही गई है, दस बावली के समान पुण्यप्रद एक सरोवर माना गया है। दस सरोवरों के समान एक पुत्र है, और दस पुत्रों के समान एक वृक्ष है। यही लोक को पवित्र करनेवाली मर्यादा है, जिसे मैं निर्धारित कर रही हूँ। ॥ ५११-५१२ ॥

देवी के इस प्रकार कहने पर वृहस्पति आदि ऋषिगण सादर भवानी की बन्दनाकर अपने अपने स्थान को चले गये। उन लोगों के चले जाने पर देवाधिदेव शंकर भी मंगलदायिनी पार्वती को बाएँ हाथ से धीरे से पकड़कर, चित्त को प्रसन्न करनेवाले प्रवेशद्वार के पीछेवाले सुन्दर भवन में प्रविष्ट हुए, जिसमें लम्बी-लम्बी मोतिओं की मालाएँ झूल रही थीं। सुन्दर पुष्प की मालाओं से वेदियाँ सुसज्जित की गयी थीं। उसमें तपाये हुए सुवर्ण के बने हुए मनोहर क्रीडागार में, जहाँ नीचे गिरे हुए पुष्पों की सुगंधि से मतवाले भँवरों के समूह गूँज रहे थे, किन्नरों के सुरीले गायनों एवं संगीतों से गृह के भीतरी भाग की दीवालें प्रतिध्वनित हो रही थीं, धूप आदि पदार्थों की भीनी सुगन्धि हो रही थी। मयूरियाँ क्रीड़ा कर रही थीं, यक्षों की स्त्रियाँ वीणा बजा रही थीं। हँसों के समूह गुंजारव कर रहे थे, स्फटिक के खम्भों से बनी हुई वेदियाँ शोभित हो रही थीं, किन्नरों के समूह क्रीडा में निरत थे। उस सुन्दर भवन में पद्मराग मणि की बनी हुई दीवालों में मोतियों के प्रतिविम्ब झलक रहे थे। शुकगण अनार के भ्रम से उसमें टोंट मार देते थे, ऐसे सुरम्य क्रीडागार में पार्वती जी द्यूतक्रीडा करती हुई विहार करने लगीं। स्वच्छ इन्द्र नील-मणि की बनी हुई फ़र्श पर क्रीडा करते हुए शिव तथा पार्वती परस्पर केलि के रस में विभोर हो एक दूसरे के शरीर की सहायता को प्राप्त हुए। शंकर तथा पार्वती के आपस में क्रीडा करते समय घर के भीतर से एक भीषण शब्द हुआ, उसे सुनकर अति कुतूहल में आकर सुन्दरी पार्वती ने शंकर से पूछा—'यह क्या है?' शिव ने कहा—'विस्मय को प्राप्त होनेवाली! इस स्थान को तुमने पहले नहीं देखा है, इस पर्वत में मेरे अति प्रिय प्रमथों के स्वामी सर्वदा क्रीडा करते हैं, उन्हीं लोगों ने यह शब्द किया होगा? नियम, क्षेत्र सेवन (तीर्थ सेवन), ब्रह्मचर्य तथा तपस्या द्वारा जो पुण्यात्मा मनुष्य मेरा नित्य ध्यान करते हैं वे ही इस रूप में यहाँ मेरे प्रेमपात्र होते हैं। शुभानने! ये सभी हमारे सान्निध्य को प्राप्त करनेवाले हैं, हमारे सुहृद हैं, इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाले हैं, बड़े उत्साही हैं, अतिस्वरूप एवं गुणों से संयुक्त हैं। इन बलशालियों के उत्तम कर्मों द्वारा मैं विस्मय को प्राप्त होता हूँ।

ये सभी चराचर जगत् की सृष्टि के विनाश करने में समर्थ हैं। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, गन्धर्वगण, किन्नर एवं नागगण—इन सबों से घिरा हुआ भी मैं इन लोगों के विना कभी आनन्द नहीं प्राप्त कर सकता। सर्वाङ्गसुन्दरी! ये सभी हमारे हृदय में निवास करनेवाले प्रमथगण इसी गिरि पर क्रीड़ा कर रहे हैं।' शिव के ऐसा कहने पर विस्मय से आकुलित हो पार्वती ने द्यूतक्रीडा छोड़ दी और विस्मित मुख हो झरोखे के रास्ते उन सब को देखा। जिनमें कुछ तो दुबले, लम्बे, छोटे, मोटे, लम्बे पेटों वाले, बाघ एवं हाथी के समान मुखवाले हैं, कोई भेड़ तथा बकरी के रूप के हैं, कुछ अनेक प्राणियों के समान रूपवाले हैं, किन्हीं के मुख अग्नि की ज्वाला के समान विकराल हैं, कोई काले रंग के हैं तो कोई अति पिंगल वर्ण के हैं। कुछ सुन्दर आकृति के हैं, तो कुछ अति भयंकर दिखाई पड़नेवाले हैं। कोई हँस रहे हैं। कुछ काली तथा पीले वर्ण की जटाओं को धारण किये हुए हैं, कुछ अनेक प्रकार के पक्षियों के समान मुखवाले हैं, कुछ विविध प्रकार के पशुओं के समान मुखवाले हैं। कुछ रेशमी वस्त्र धारण किये हैं तो कुछ चमड़े धारण किये हैं, कुछ नग्न हैं तो अन्य बिल्कुल कुरूप हैं। कुछ गाय के समान कानवाले हैं तो कुछ हाथी के समान कानवाले हैं, कुछ अनेक मुख, आँख एवं पेटों वाले हैं। किसी के बहुत पैर हैं, किसी के अनेक हाथ हैं, कुछ दिव्य अनेक प्रकार के अस्त्रों को हाथों में लिये हुए हैं। कुछ अनेक प्रकार के पुष्पों की मालाएँ धारण किये हुए हैं। कुछ अनेक सर्पों का आभूषण बनाये हुए हैं। कुछ भेड़ियों के मुख का हथियार बनाये हुए हैं, कुछ अनेक प्रकार के कवचों एवं आभूषणों से सुसज्जित हैं, कुछ अनेक प्रकार के विचित्र वाहनों पर आरूढ़ होकर दिव्यरूप धारण किये हुए आकाश में चलने वाले हैं। कुछ मुख से वीणा तथा अनेक प्रकार के बाजनों का स्वर करते हुए अनेक स्थानों पर नाचते हुए विराजमान हैं। इस प्रकार उन प्रमथ गणों के स्वामियों को देखकर पार्वती ने शंकर से कहा। ॥५११—५३६॥

देवी ने कहा—इन प्रमथों के स्वामियों की संख्या कितनी है? इनके नाम क्या हैं? इनके स्वरूप कैसे हैं? इन सबों को, जो यहाँ पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ रहे हैं, एक-एक कर के मुझसे बताइये। ॥५३७॥

शंकर ने कहा—इन गणों में उन प्रधान वीरों की संख्या एक करोड़ की कही गई है, जो सब के सब अनेक प्रकार के विख्यात पौरुष वाले हैं। अन्यान्य की तो अगणित संख्या है। इन महाबलवान् भयानक आकृतिवालों से समस्त जगत् व्याप्त है। सिद्ध क्षेत्रों में, सड़कों या गलियों में, पुराने उद्यानों में, पुराने घरों में, दानवों के शरीरों में, बालकों में तथा पागलों में ये प्रवेश करके आनन्दपूर्वक अनेक प्रकार का आहार-विहार करते हैं। ये ऊष्मप (गरम वायु पान करने वाले), फेन पीनेवाले, धूम पान करनेवाले, मधु पीनेवाले, रक्त पीनेवाले, सर्वभक्षी, वायु पान करनेवाले, जल का आहार करनेवाले हैं, गान नृत्य के उपहार से प्रसन्न होनेवाले तथा अनेक प्रकार के वाद्यों के शब्दों के प्रेमी हैं। अनन्त होने के कारण इन सब के गुणों का वर्णन अलग-अलग कर के नहीं किया जा सकता। ॥५३८—५४१॥

देवी ने कहा—मृग चर्म का दुपट्टा ओढ़े हुए, सुन्दर अंगों वाले, मूँज की मेखला से सुशोभित, अति चंचल, मैनशिल के विलेपन से लाल मुखवाला, कमल की माला से विभूषित, अति सुन्दर, मधुर आकृतिवाला, पाषाण के टुकड़े से उतान कांस्य के बाजे पर ताल लगाने वाले गणों को प्रेरित करता हुआ किन्नरों के पीछे जो वह गणेश्वर है; उसका क्या नाम है ? वही जो बारम्बार अन्य प्रमथ गणों की गीतों पर अपना कान लगाये हुए है । ॥५४२—५४४॥

शिव ने कहा—देवि ! उसका नाम वीरक है, वह समस्त गणों का स्वामी है और मुझे हृदय के समान प्यारा है । अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक गुणों में वह निपुण हैं, गणेश्वर लोग उसकी पूजा करते हैं । ॥५४५॥

देवी ने कहा—पुरान्तक ! ऐसे ही पुत्र को प्राप्त करने की मेरी हार्दिक अभिलाषा है, कब मैं ऐसे आनन्दमय पुत्र को देखूँगी ? ॥५४६॥

शिव ने कहा—'सुन्दरी ! नयन को आनन्द देने वाला यह वीरक ही तुम्हारा पुत्र होवे । तुम जैसी माता को प्राप्त कर वीरक भी कृतार्थ हो जायगा ।' शिव की यह बात सुन कर हिमवान् की पुत्री पार्वती ने अति हर्ष तथा उत्कण्ठा से शीघ्र ही वीरक को लिवा लाने के लिए विजया को भेजा । पार्वती की आज्ञा से स्वर्ग को छूनेवाले भवन के ऊपर से उतरकर विजया ने शीघ्रतापूर्वक गणों के मध्य में खेलते हुए गणपति वीरक से कहा । ॥५४७—५४९॥

विजया ने कहा—'वीरक ! यहाँ आवो ! तुम्हारी चंचलता से महाराज शिव क्रुद्ध हो गये हैं, इस नृत्य-रंग के बारे में माता पार्वती भी तुम्हें क्या कह रही हैं ।' इस प्रकार विजया के बुलाने पर वीरक ने पत्थरों के टुकड़ों को तुरत फेंक दिया और मुंह धोकर वहाँ से 'माता ने किस लिए बुलाया है'—ऐसा सोचते हुए विजया के पीछे-पीछे देवी के समीप आया । प्रासाद के शिखर पर से फूले हुए लाल कमल के समान शोभावाली पार्वती ने वीरक को आते देखा । उस समय उनके स्तनों से अधिक मात्रा में सुस्वादु दुग्ध का प्रस्रवण होने लगा । समीप आने पर स्नेह से भरी मृदु वाणी में पार्वती बोलीं । ॥५५०—५५३॥

उमा ने कहा—'प्यारे वीरक ! यहाँ आवो ! मेरे पास आओ ! देव-देव ने अब तुमको मेरा पुत्र बना कर सौंपा है ।' ऐसा कहकर प्रिय वचन बोलनेवाले वीरक को पार्वती ने अपने अंक में लिपटा लिया और कपोल का चुम्बन लिया । शिर को सूंघ कर उसके सारे धूल धूसरित शरीर को हाथों से साफ किया और दिव्य मनोहर आभूषणों से स्वयं विभूषित किया । किंकिणी, मेखला, नूपुर, मणि का बना हुआ केयूर, हार, कमर की करधनी आदि आभूषण पहिनाये । अति सुन्दर विचित्र रंग के अति कोमल पल्लवों से, दिव्य मांगलिक मंत्रों से अभिमंत्रित किये गये रक्षा कवचों से तथा सफेद सरसों से, जो अनेक धातुओं के चूर्णों से मिश्रित थीं, उसके अंगों की रक्षा का विधान किया । इस प्रकार अति आदरपूर्वक गोद में लेकर मस्तक में गोरोचन की पत्ते के आकार की तिलक लगायी तथा कंठ में एक सुन्दर उज्ज्वल

माला पहिनायी और कहा 'पुत्र ! अब तुम जाओ और जाकर अन्य अपने साथी गणों के साथ सावधान चित्त होकर खेलो। कुछ समय तक सर्प की माला धारण कर मलिन शरीर रहो, पर्वत के शिखर, वृक्ष एवं गजराजों से तुम्हारे साथी पराजित हो रहे हैं, इस गंगा का तल अत्यन्त चञ्चल वेग वाले जल से व्याप्त है, इसमें भूल कर भी प्रवेश मत करना। अनेक व्याघ्रों से दूषित वन में भी मत प्रवेश करना। दुर्गा देवी (?) इन असंख्य गणपतियों के मध्य में इस वीरक के प्रति पुत्र के भाव से एवं शुद्ध अन्तःकरण से व्यवहार करें ?···माता और पिता से प्रार्थित सुन्दर फल मनुष्य को निश्चय ही भविष्य में प्राप्त होता है, अतः मेरा यह आशीर्वाद भविष्य में तुम्हें प्राप्त होगा।' ॥५५४-५६२॥

पार्वती के ऐसा कहने के बाद बालकपन की क्रीडा में मस्त होकर वीरक ने भी हँसते हुए सभी गणेश्वरों से अति प्रसन्न होकर कहा 'माता ने स्वयं मुझे इन आभूषणों को पहिनाया है, यह सुन्दर वस्त्र दिया है; पाटल एवं सिन्दुरवार के पुष्पों से मिश्रित मालती की माला मेरे शिर में पहिनाई है।' उधर 'वह वाद्य धारण करनेवाला कौन गण है ? उसको हाथ से यह खिलौना दूँगी।' इस प्रकार कहते हुए दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर, उत्तर से पूर्व दिशा में सखियों समेत शैलपुत्री पार्वती झरोखे से बाहर वीरक को खेलते हुए देख कर प्रसन्न हो रही थीं। समस्त जगत् की माता को भी पुत्र को खेलते हुए देखकर इस प्रकार चित्त में जब व्यामोह होता है, तो जो अल्प बुद्धि वाले, जड, मांस, मल मूत्र के समूह से भरे हैं, ऐसे पुत्र लोभी जनों को यदि इस विषय में मोह हो जाता है तो क्या दोष ?····तदनंतर चन्द्रशेखर भगवान् शिव को देखने के लिए आये हुए लोकपालों के भीतर प्रविष्ट होने पर सभी प्रमथगण उनके बाहनों पर चढ़ गये और उनके हथियारों को धारण कर इधर-उधर घुमाने लगे। वीरक ने हाथ में एक तलवार धारण किया और जोर से चिल्ला कर कहा कि 'इस तलवार द्वारा कौन दो खण्ड में परिणत होगा ? किसने निर्मम काल को अपने पास बुलाया है, कहो, तुम सब जब मौन रह जाते हो तो मालूम होता है कि इस अस्त्रदण्ड से डरते हो। इस भयानक आकृति एवं मुख वाले मेरे रहते इस पर्वत में ऐसा कौन-सा कार्य है, जो अस्त्र जाननेवाले से सिद्ध न हो ?' इस प्रकार जब वीरक कह रहे थे तो देवताओं ने यह कह कर कि 'व्यर्थ में लोकपालों की चित्तवृत्ति का अनुकरण नहीं करना चाहिये' मना किया[1] ।··········?

तदनन्तर देवाधिदेव शंकर के अनुगामी वीरक से लक्षणा देवी बोलीं कि इस वन में तुम सभी भूतों के पालने वाले लोग झरनों के जल की धारा में प्रविष्ट हो जाओ, पुष्पों के समूहों से सुशोभित भवनों में शयन करो, इच्छानुकूल अति उच्च विविध पर्वतों के कुंजों में जाकर वायु के समान प्रबल शब्दों को करते हुए खूब शोर करो।·········?

पुत्र की उत्कट इच्छा करनेवाली पार्वती जी खिलवाड़ करने की इच्छा से सुवर्ण की धूलि समूह से धूसरित अंगोंवाले प्रमथ गणों के साथ विराजमान, सिद्ध नारियों द्वारा पिये जाते हुए रूपामृत को धारण

---

[1] यह स्थल प्रायः सभी पुस्तकों में भ्रमपूर्ण है, अतः बहुत प्रयास करने पर भी अर्थ की संगति कहीं-कहीं ठीक नहीं बैठती।

करनेवाले वीरभद्र का, सुवर्ण की अति विशाल एवं ऊँची चढ़ाई की भूमि पर, जहाँ आकाशगामी जीवों के सुन्दर वन विद्यमान थे,—अति सुन्दर अनेक प्रकार की सौन्दर्यमयी समृद्धि विखरी हुई थी, सुन्दर मन्दार के पुष्प एवं लाल कमल खिले हुए थे—ऐसी मन्दराचल की कन्दराओं में क्षण-क्षण पर स्मरण करती थीं। वे एक टक विस्फारित नेत्रों से वीरक को ताकती रहती थीं। पूर्व जन्म के पुण्य के प्रभाव से पार्वती के पुत्र रूप में प्राप्त हुआ वीरभद्र भी अपने भाग्य को सफल मानता था और क्रीडा में निमग्न रहता हुआ तृप्ति को नहीं प्राप्त होता था। जगत् के निर्माता ब्रह्मा द्वारा वह विशेष तैजस् अंश से कल्पित किया गया था। प्रतिक्षण वह दिव्य गीतों को सुनता था। गणेश गण उसकी वन्दना में निरत रहते थे। वह स्वयम् अति चंचलतापूर्वक विविध प्रकार के नृत्यों को किया करता था। वह कभी तो सिंहों के भयानक नाद से आकुल पर्वतों के शिखरों पर, कभी रत्नों के समूह जिसमें विखरे पड़े थे ऐसी खानों में, कभी बड़े-बड़े साल एवं ताल के वृक्षों से घने जंगल में, कभी फूले हुए तमालों की शाखाओं पर, कभी दूसरे क्षण वृक्षों की जड़ों में, कभी अति चंचलतावश होकर किसी मराल पर, कभी कीचड़ वाले जल में, कभी क्षण भर में कमलों से अति शोभित गहरे जल में और फिर दूसरे क्षण अपनी माता की निष्कलंक गोदी में बाल लीला करते हुए विराजमान दिखाई पड़ता था। इस प्रकार देवताओं को आनन्द देने वाला बालकों की लीला से विहार करने वाला गणेशों का स्वामी वह वीरक, निकुंजों में विद्याधरों के साथ गान करता हुआ लीला पूर्वक शिव की भाँति विराजमान हो रहा था। ठीक इसी समय संसार को प्रकाशित करने वाले भास्कर ने सभी भुवनों को प्रकाशित कर पश्चिम दिशा में अस्ताचल को प्रस्थान किया। उदय और अस्त—ये दोनों पर्वत पूर्व काल की निश्चित् योजना पर स्थिर हैं, जो पर्वत अवसान के समय सूर्य द्वारा अधिष्ठित होता है, उसी के साथ उसकी मित्रता सुदृढ़ है, ऐसा विचार हृदय में कर के नित्य सूर्य द्वारा आराधित, शोभाशाली, मूल भाग में स्थूल एवं समुन्नत मेरु ने गिरते हुए (अस्त होते) सूर्य को कोई सेवा वा कोई उपहार नहीं अर्पित किया, जल में भी ऐसी ही व्यवस्था है, ऐसा विचार कर सभी विषयों पर बुद्धिमान् संशय करेंगे....? दिन के अवसान पर जाते हुए सूर्य ने अपनेपन की पूर्ति की। संध्या करते समय अंजलि बाँध कर सूर्य के सम्मुख उपस्थित हुए मुनि गण आत्मा में अवस्थित दुःखमय भावों का संवरण कर शीघ्र ही सूर्य के आगमन की प्रार्थना करने लगे। इस प्रकार सूर्य के अस्त हो जाने पर धीरे-धीरे समस्त लोक में रात्रि का अन्धकार दुष्ट के हृदय में मन को दूषित करने वाले पापों की भाँति घना होने लगा। तदनन्तर अति प्रभापूर्ण सर्पों की फणि-मणियों के दीपकों से उद्भासित दीवालों वाले सुन्दर भवन में, चन्द्रमा के समूहों के समान शुभ्र एवं स्वच्छ उत्तरीय वस्त्र से सुशोभित, अनेक प्रकार के रत्नों की शोभा से इन्द्र धनुष के समान शोभायमान, रत्न की किंकिणियों के समूहों से विभूषित, लटकती हुई मोतियों की मालाओं से अलंकृत, ऊपर सुन्दर और चंचल वितानों से आच्छादित शैय्या पर, मन्द-मन्द गमन करते हुए गिरिजा के साथ शिव जी पुनः विराजमान हुए। उस समय पार्वती की भुजलता से उनका कन्धा मिला हुआ था। चन्द्रभूषण शंकर की श्वेत कान्ति

थी और वे पवित्रता से पूर्ण दिखाई पड़ रहे थे। गिरिपुत्री पार्वती भी, नीले कमल के समान श्यामल कान्ति युक्त थीं, उनके नेत्र प्रान्त विशेष श्यामल थे कृष्ण वर्णा रात्रि के संयोग से उत्पन्न पार्वती अंधकार मय रूप में विराजमान थीं। देवाधिदेव शिव परिहासपूर्वक क्रीडा एवं केलि से युक्त होकर बोले। ॥५६३-५८८॥

श्रीमात्स्य महापुराण के कुमारसम्भव प्रसंग में एक सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त। ॥१५४॥

एक सौ पचपनवाँ अध्याय

शिव ने कहा—'सुकुमार अङ्गों वाली! हमारे श्वेत वर्ण के शरीर में तुम्हारी कृष्ण वर्ण की शोभा इस प्रकार शोभित हो रही है, जैसे चन्दन के वृक्ष में काली नागिन। चन्द्रमा की शुभ्र कौमुदी से युक्त सुन्दर आकाश में कृष्ण पक्ष की रात्रि के समान तुम मेरी आँखों को दूषित कर रही हो।' ऐसा कह कर परिहास ही परिहास में शंकर ने गिरिजा के कंठ को छोड़ दिया। तब भौं को टेढ़ी कर क्रोधपूर्ण नेत्र एवं मुखवाली पार्वती ने कहा। ॥१-३॥

पार्वती ने कहा—अपने द्वारा की गई मूर्खता से सभी को अपमान सहन करना पड़ता है, स्वार्थ की अभिलाषा करने वाला प्राणी जन समाज में जाकर अवश्य ही अपमान को प्राप्त करता है। बहुत दिनों तक की गयी तपस्या द्वारा मैंने जिस मनोरथ की प्रार्थना की थी, उसी के परिणाम स्वरूप यह मेरा अपमान पद-पद पर हो रहा है। हे शर्व! मैं कुटिल नहीं हूँ। हे धूर्जटे! मैं विषम भी नहीं हूँ। तुम विषयुक्त[1] (विषयी) के नाम से ख्याति प्राप्त कर चुके हो, स्पष्ट है कि तुम दोषों के आकर (दोषाकर, चन्द्रमा) के भी आश्रय हो। मैं पूषा का दाँत नहीं हूँ, भग का नेत्र नहीं हूँ। बारह अंशों में विभक्त भगवान आदित्य मुझे भली भाँति जानते हैं। अपने दोषों द्वारा मुझे अपमानित करते हुए तुम शिर में पीड़ा पैदा कर रहे हो। तुम मुझे कृष्णा (काली) नाम से सम्बोधित कर रहे हो, सो तुम भी तो 'महाकाल' नाम से विख्यात हो। मैं अपने इस जीवन को समाप्त करने के लिए तपस्यार्थ पर्वत पर जा रही हूँ, तुम जैसे धूर्त से अपमानित होकर अब मुझे इस जीवन के रखने से कोई प्रयोजन नहीं है।' पार्वती की अतिशय कोपयुक्त इन तीखी बातों को सुनकर शिव अति आवेश सम्भ्रम तथा प्रणय से मिश्रित वाणी में बोले। ॥४-१०॥

महादेव ने कहा—'शैलपुत्रि! तुम यथार्थ बात को नहीं समझ रही हो। मैंने तुम्हारी कोई निन्दा नहीं की है। तुम्हारे ऊपर भक्तिपूर्ण बुद्धि रखकर मैंने तुम्हारे नाम पड़ने का कारण बतलाया है। हे गिरिजे! मेरा चित्त स्वच्छ है, पर उसमें भी तुम ऐसे विकल्प की कल्पना कर रही हो यही ठीक नहीं। तुम्हारा अपमान समझ कर ऐसी बात मैंने नहीं कही थी। हे भीरु! यदि तुम इतनी अप्रसन्न हो गयी हो, तो अब मैं

[1] इस स्थल पर दो पाठ हैं, 'सविषत्वं' 'और सविषयस्त्वं' किन्तु प्रथम पाठ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

पुनः कभी तुम्हारे साथ परिहास नहीं करूँगा। हे सुन्दर हँसनेवाली! क्रोध को तुम छोड़ दो। देखो, मैंने तुम्हें हाथ जोड़ा है, और शिर से नम्र हुआ हूँ। जो स्नेहयुक्त अपमान द्वारा एवं व्याजनिन्दा किये जाने से ही अप्रसन्न हो जाता है, उस व्यक्ति के साथ कभी परिहास की बातें नहीं करनी चाहियें।' इस प्रकार अनेक चाटुकारी भरी बातों द्वारा पार्वती शिव से समझायी जाने पर भी अपने क्रोध को नहीं छोड़ सकीं क्योंकि उस व्यंग से उनका मर्मस्थल विद्ध हो गया था। शंकर के हाथ से अपने वस्त्र की छोर को छुड़ाकर बालों को बिखेरे हुए शैलपुत्री वहाँ से वेगपूर्वक जाने की चेष्टा करने लगीं। इस प्रकार अति क्रोधावेश में जाती हुई सती से पुरान्तक भगवान् शिव ने कहा—'सच बात है कि तुम सभी अवयवों में अपने पिता हिमाचल के समान ही हो। हिमांचल के उन आकाशचुम्बी, दुरधिगम्य शिखरों के, जिन पर कोई नहीं जा सकता तथा जो मेघों की मालाओं से घिरा रहता है तथा गुफाओं के समान तुम्हारा हृदय भी कठिन एवं दुर्गम है। वहाँ के वनों के समान ही तुम्हारे अंकों में कठोरता है। पहाड़ी मार्गों से भी अधिक कुटिलता तुम्हारी चाल में है, तुम बरफ से भी अधिक कठिनाई से सेवन करने योग्य हो। सुन्दरि! तुम सर्वदा पर्वतराज हिमवान के गुणों के संयोग से बनी हुई हो।' शिव के ऐसा कहने पर शैलपुत्री महादेव से पुनः बोलीं। उस समय उनका शिर अति क्रोध से काँप रहा था, दाँतों के ऊपरवर्ती होठों के दल फड़क रहे थे। ॥११-२०॥

पार्वती ने कहा—दोष देकर अन्य गुणी व्यक्तियों को बेकार क्यों दूषित कर रहे हो? दुष्टों के सम्पर्क से तुम्हारा ही सब कुछ विकृत हो गया है। सर्पों के संयोग से तुम अधिक जीभों वाले हो गये हो, भस्म लगाते-लगाते तुम्हारे हृदय में भी स्नेह (प्रेम तथा चिकनाहट) का सर्वथा अभाव हो गया है, शशांक (चन्द्रमा) के संयोग से तुम्हारे हृदय में कालिमा आ गयी है, वृषभ नन्दीश्वर के संयोग से तुम में दुर्बोधता आ गई है। तुम्हारी अधिक बुराइयों के कहने से क्या फल होगा, व्यर्थ की बातों में श्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम श्मशान में निवास करने वाले हो, अतः किसी का भय तुम्हें नहीं है। सर्वदा नंगे रहते हो, अतः तुम्हे लज्जा क्यों कर लगेगी? कपालों के धारण करते-करते तुम निर्मम हो गये हो, दया तो चिरकाल से तुम से विदा ले चुकी है।' ऐसी कठोर बातें कह कर हिमवान् की पुत्री पार्वती उस भवन से चली गयीं। पार्वती के जाते ही देवेश गण किलकिला कर रोते हुए दौड़ने लगे और कहने लगे 'जननि! हम लोगों को इस प्रकार असहाय छोड़ कर तुम कहाँ जा रही हो। वीरक ने आसूँ से गद्गद् कण्ठ हो पार्वती के चरणों पर गिर कर कहा—'मातः यह क्या हो गया, क्रोध में भरी हुई तुम कहाँ चली जा रही हो। हे तपोनिष्ठे! इस प्रकार मैं स्नेह छोड़ कर जाती हुई तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा, नहीं तो पर्वत के शिखर पर से कूद पड़ूँगा।' पार्वती ने अपने दाहिने हाथ से वीरक के मुख को ऊपर कर के कहा—'बेटा! शोक मत करो, तुम्हें पर्वत शिखर पर से नहीं गिरना चाहिये और न यही चाहिये कि तुम मेरे पीछे आओ। हे पुत्र! तुम्हें मैं इसका कारण बता रही हूँ। सुनो। अनिन्दनीय होते हुए भी शिव ने 'कृष्णा' (काली) ऐसा कह कर मेरी भर्त्सना की है; सो मैं अब जा कर तपस्या करूँगी; जिससे गौरीत्व (गौर वर्ण) की प्राप्ति कर सकूँ? यह शिव स्त्रियों के विषय में अति आसक्त हैं, मेरे चले जाने के बाद तुम इनके छिद्रों

को देखते हुए नित्य घर के प्रवेश द्वार मार्ग की रखवाली किया करना जिससे कोई अन्य स्त्री इन के समीप में न पहुँच सके। पुत्र! यहाँ पर आई हुई पराई स्त्री को देख कर तुम मुझे सूचित करना। मैं उसके बाद शीघ्र ही जो उचित समझूँगी करूँगी।' पार्वती की ऐसी बातें सुनकर वीरक ने कहा 'अच्छी बात है, मैं ऐसा ही करूँगा'। इस प्रकार माता के आज्ञामय आह्लाद्दायी अमृत वचन से स्नान कराये गये अंगोंवाले वीरभद्र का संन्ताप दूर हो गया और वे माता को प्रणाम कर अन्तःपुर में रखवालो करने के लिए चले आये।॥२१-३४॥

श्री मात्स्य महापुराण के कुमारसम्भव प्रसंग में पार्वती का तपोनुगमन नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५५ ॥

एक सौ छप्पनवाँ अध्याय

सूत ने कहा—पार्वती ने जाते समय अपनी माता मेना की सखी एवं पिता हिमवान् की देवता रूपेण आराधित अलंकारों से विभूषित कुसुमामोदिनी नामक देवी को देखा। प्रेम से विह्वल चित्त हो कुसुमामोदिनी ने भी गिरि पुत्री पार्वती को देखकर आलिंगन किया। और 'हे बेटी कहाँ जा रही हो।' ऐसा उच्चस्वर से कहा। पार्वती ने भी शंकर से उत्पन्न हुए अपने क्रोध के समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया और पुनः माता के समान सम्मानित कुसुमामोदिनी से कहा।॥ १-३ ॥

पार्वती ने कहा—'अनिन्दते! तुम सर्वदा मेरे पिता शैलाधिराज की देवता मानी गयी हो, सभी कार्यों में तुम्हारा सम्पर्क मेरे साथ रहता है, तू मेरे ऊपर अत्यन्त वात्सल्य भाव रखती हो। अतः मैं तुमसे एक ऐसा कार्य बतला रही हूँ, जो मेरे चले जाने के बाद तुम्हें अपनी बुद्धि से करना होगा। वह यह है कि तुम अन्य स्त्री के प्रवेश की रखवाली प्रयत्नपूर्वक करती रहना। इस पर्वत में प्रयत्नपूर्वक रहस्यात्मक ढंग से स्थिर होकर व्यवस्थित चित्त से तुम देखा करना, और पिनाकधारी के समीप में अन्य स्त्री के प्रवेश करते समय तुम मुझसे बतलाना। निष्पापे! तदन्तर मैं जो समुचित समझूँगी, करूँगी।' इस प्रकार पार्वती की बातें सुनने के बाद कुसुमामोदिनी ने 'अच्छी बात है मैं ऐसा ही करूँगी' कहकर अपने मंगलदायी पर्वत की ओर प्रस्थान किया। पर्वतपुत्री उमा ने भी शीघ्र ही उद्यान की ओर प्रस्थान किया। उद्यान में प्रवेश करते समय पार्वती की शोभा इस प्रकार हो रही थी जैसे मेघों की माला आकाश में प्रविष्ट होकर दिखाई पड़ रही हो। वहाँ जाकर पार्वती ने आभूषणों को छोड़ वृक्षों के वल्कलों को धारण किया। वह ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि तापती थीं और वर्षा ऋतु में जल में निवास करती थीं। शिशिर ऋतु की रात्रि में सूखी धरती के चबूतरे पर शयन करती थीं। इस प्रकार की साधना में निरत रह वे तपस्या से व्यवस्थित चित्तवाली बन गईं। बकासुर के भाई अन्धक का पुत्र आडि नामक जितेन्द्रिय दैत्य अत्यन्त

घमण्डी तथा युद्ध में अत्यन्त भयानक था। इस उपयुक्त अवसर पर पार्वती को तपस्या करते हुए जानकर अपने पिता की हत्या का स्मरण कर वह संग्राम में समस्त देवताओं को पराजित कर रात दिन चन्द्रमौलि शंकर के छिद्रान्वेषण में ही तत्पर रहा करता था। इस प्रकार देवताओं का शत्रु वह दैत्य त्रिपुरविध्वंसी शंकर के निवास स्थान पर आया और आकर उसने द्वार पर खड़े हुए रखवाली में तत्पर वीरक को देखा। वहाँ पहुँचने के बाद अपने वरदान के प्रभाव को, जिसे प्राचीन काल में पद्मयोनि ब्रह्मा से उसने प्राप्त किया था, भली भाँति सोचकर बदला लेने का निश्चय किया। प्राचीन काल में शंकर द्वारा देवशत्रु अन्धक नामक दैत्य की मृत्यु हो जाने के उपरान्त उस आडि ने घोर तपश्चर्या की थी। तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा उसके समीप आकर बोले थे। 'दानवराज आडि! तुम इस घोर तपस्या से किस वस्तु की अभिलाषा रखते हो' दैत्य आडि ने ब्रह्मा से कहा था कि 'मैं मृत्यु से छुटकारा पाने का वरदान चाहता हूँ।' ॥४—१६॥

ब्रह्मा ने कहा— 'दानव! इस जगत् में कोई भी शरीरधारी मृत्यु के विना नहीं है! दैत्येन्द्र! शरीरधारी को तो किसी न किसी बहाने से मृत्यु को प्राप्त ही करना पड़ता है।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर दैत्यसिंह आडि ने पद्मयोनि ब्रह्मा से कहा—'पद्मसम्भव! जब कभी मेरे स्वरूप का परिवर्तन हो तभी मेरी मृत्यु हो, अन्यथा मैं अमर ही रहूँ।' उसकी तपस्या से सन्तुष्ट ब्रह्मा ने कहा—'ठीक है, जब कभी तुम्हारे स्वरूप का परिवर्तन होगा, तभी तुम्हारी मृत्यु भी होगी, अन्यथा तुम अमर रहोगे।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर दैत्यपुत्र ने अपने को अमर समझ लिया। उस अवसर पर उसने अपनी मृत्यु के उपर्युक्त उपाय का स्मरण कर वीरक के दृष्टिपथ को बचाने के लिये सर्प का स्वरूप धारण किया और एक बिल मार्ग से प्रविष्ट हो गणेश वीरक की दृष्टि को बचाकर अलक्षित रूप से पुरारि शंकर के समीप पहुँचा। पहुँचने के उपरान्त अति बलशाली उस मूर्ख दानव ने भुजंग के रूप को परिवर्तित कर उमा का स्वरूप धारण कर शिव को छलने की चेष्टा की। इस प्रकार माया कर किसी से भी न पहचानने योग्य मनोहर रूप को धारण कर पार्वती के सभी अवयव तथा प्रमुख शरीर चिह्नों से युक्त होकर मुख के भीतर वज्र के समान भीषण तीक्ष्ण एवं दृढ़ दाँतों को उसने बनाया और बुद्धि के अभाव से महादेव की हत्या करने को उद्यत हुआ। इस प्रकार वह दैत्य पार्वती के समान अंगों एवं चिह्नादि को बनाकर शिव के पास गया। उस समय वह पापिष्ठ दैत्य अति सुन्दर आकृति युक्त होकर चित्र-विचित्र आभूषणों एवं वस्त्रों से सुशोभित था। उमारूप धारी उस दैत्य को देखकर शंकर ने सन्तुष्ट होकर उसका आलिंगन कर उसके सभी अंग-प्रत्यंगों को देखकर उसे पार्वती ही माना और पूछा—'गिरिपुत्र! अब तुम्हारे भाव मेरे प्रति स्वाभाविक एवं सच्चे तो हैं न? बनावटी भाव बनाकर तो तू मेरे पास नहीं आयी है? श्रेष्ठ अंगोंवाली! सुन्दरी! मेरे हृदय गत भावों को जानकर ही तू यहाँ आयी होगी? तुम्हारे विना मुझे त्रिलोक सूना-सा मालूम पड़ रहा था; प्रसन्न मुखवाली! तुम यहाँ जो आ गई हो वह तुम्हारी जैसी देवी के लिए उचित ही है।' महादेव की ऐसी बातें सुनकर दानवेन्द्र आडि मुस्कराते हुए धीरे-धीरे बोला। किन्तु उस समय त्रिपुरघाती

शंकर के पहिचान वाले चिह्न को, जिसे उन्होंने पार्वती के शरीर में निश्चित किया था, वह नहीं जानता था। ॥१७—३१॥

पार्वती (रूपधारी आडि) ने कहा—'तुम्हारी अतिशय वल्लभा होने के लिए मैं यहाँ से तपस्या करने के लिए गयी थी, किन्तु वहाँ जाने पर मेरा मन नहीं लगा; अतः तुम्हारे पास वापस लौट आयी।' उसके ऐसा कहते ही शंकर के हृदय में कुछ शंका उत्पन्न हुई, जिसे उन्होंने हृदय में ही समाहित कर लिया और विहँसते हुए बोले—'सुकुमार अंगोंवाली! घोर तपस्या करनेवाली! तू मुझसे अतिशय कुपित होकर तपस्या के लिए गयी थी किन्तु बिना मनोरथ की प्राप्ति किये ही क्यों लौट आई? यह कैसी बात है? मुझे सन्देह हो रहा है।' ऐसी बात कहकर शंकर ने पार्वती के तथोक्त विशेष चिह्न का स्मरण किया जो रोमावली द्वारा पार्वती के बाएँ अंग में कमल के आकार की भाँति था; पर नहीं देखा। तब पिनाकधारी शंकर ने आकार को छिपाते हुए उस दानव की माया को जान लिया और लिंग में वज्रास्त्र को धारण कर उस दानव को मार डाला। इस प्रकार मारे गये उस दानवेन्द्र को वीरक नहीं जान सका। शिव द्वारा मारे गये स्त्री रूपधारी दानवराज वीरक को मारा हुआ देख हिमालय की देवता (कुसुमामोदिनी) ने यथार्थ बात को न जानकर शीघ्र जाने वाले वायु दूत से पार्वती को यह संदेशा भिजवा दिया। वायु के मुख से उक्त बात सुन क्रोध से लाल नेत्रोंवाली पार्वती ने हृदय में अति दुःख माना और पुत्र वीरक को शाप दे दिया। ॥३२-३९॥

श्री मात्स्य महापुराण के कुमारसम्भव प्रसंग में आडिवध नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५६ ॥

एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय

देवी ने कहा—गणों के स्वामी वीरक! स्नेह से विकल मुझ माता को छोड़कर जो तुमने शंकर के एकान्त में अन्य स्त्री के प्रवेश करने के अवसर को अपने सामने ही होने दिया है, उसी कारण से अति कठोर, रूखी, मूर्ख, हृदयहीन राख के समान स्नेहरहित शिला तेरी माता होगी। सूत कहते हैं कि शिला से वीरक की उत्पत्ति होने रूप कार्य में यही शाप ही कारण रूप है, यही शाप धीरे-धीरे विचित्र कथाओं से सम्बन्ध रखनेवाला हो जाता है। इस प्रकार गिरि पुत्री पार्वती जी जब शाप दे चुकीं तब उनके मुख से सिंह रूप धारण कर मूर्तमान महाबलवान् क्रोध प्रादुर्भूत हुआ। वह सिंह विकराल मुख, घनी केसर, लपलपाती हुई लम्बी पोंछ, तीखे दाँतों एवं विकराल दाढ़ों से युक्त था और मुख बाए हुए जीभ लपलपा रहा था। उसका (पेट) बिल्कुल चिपटा हुआ था, किसी को निगल जाने की

टोह में था। जब शीघ्र ही पार्वती देवी ने उस सिंह पर अधिरूढ़ होने की चेष्टा की, तब चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा पार्वती की मनोगत इच्छाओं को जान कर सम्पत्तियों के आधार रूप उनके आश्रम में आये और आकर गिरिपुत्री से स्पष्ट वाणी में बोले। ॥ १-७ ॥

ब्रह्मा ने कहा—बेटी। तू क्या चाहती हो, किस अलभ्य पदार्थ को मैं तुझे दूँ, मेरी आज्ञा से तुम अब इस अति क्लेशदायी तपस्या से विरत हो जाओ। जगद्गुरु ब्रह्मा की गौरवपूर्ण वाणी सुनकर गिरिजा ने चिरकाल से सुविचारित एवं निश्चित अक्षरों में अपने मनोरथ को व्यक्त करते हुए कहा— ॥ ८-९ ॥

पार्वती ने कहा—'अति कठिन तपस्या करके मैंने पतिरूप में शिव को प्राप्त किया था, किन्तु उन्होंने मुझे 'श्यामलवर्णवाली' कहकर घोर अपमान किया है, सो मैं सुवर्ण के समान गौरवर्ण की होकर उनकी अति प्रिया हो जाऊँ, और भूतनाथ के अङ्गों में एक ओर से उन्हीं के अङ्ग के समान होकर प्रविष्ट हो जाऊँ—यही चाहती हूँ।' पार्वती की ऐसी बातें सुनकर पद्मासन ब्रह्मा ने कहा,—'तुम ऐसी ही होकर अपने पति के आधे शरीर को धारण करनेवाली हो जाओ।' ऐसा कहने पर पार्वती ने खिले हुए नीले कमल के रंग वाले अपने चमड़े को छोड़ सुवर्ण के समान गौर वर्ण धारण किया। जिससे उनका चमड़ा अत्यन्त प्रकाशमय हो गया। हाथ में घण्टा, तीन नेत्रों से युक्त अनेक प्रकार के आभूषणों से विभूषित अङ्गों वाली, पीले रेशमी वस्त्र को धारण किये हुए, नीले कमल के समान कान्तिधारिणी देवी से ब्रह्मा ने कहा। 'निशे! तू मेरी आज्ञा से पर्वतपुत्री उमा के शरीर के संपर्क के कारण कृतकृत्य हो गई, इसके पहिले तुम एकानंशा नाम से विख्यात हो चुकी हो हे सुन्दर मुखवाली! देवी के क्रोध से उत्पन्न हुआ जो यह सिंह दिखाई पड़ रहा है अब यह तुम्हारा वाहन होगा और तुम्हारी ध्वजा पर भी इसका निवास रहेगा, तू विन्ध्याचल जाओ और वहाँ जाकर देवताओं का कार्य करो। एक लक्ष यक्ष जिसके पीछे चलते हैं, ऐसा यह पंचाल नामक यक्ष मैं तुम्हें सेवक रूप में दे रहा हूँ, यह सैकड़ों माया जानता है।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर कौशिकी देवी ने विन्ध्याचल को प्रस्थान किया। अपने संकल्प को प्राप्तकर पार्वती ने भी शिव के समीप गमन किया। घर में प्रवेश करती हुई पार्वती को द्वार देश से खींच कर सावधान चित्तवाले वीरक ने, जो सुवर्ण निर्मित वेत की लता को हाथ में धारण किये था, प्रवेश करने से रोक लिया। स्वरूप से दूसरी स्त्री की भाँति दिखाई पड़ने वाली पार्वती को रोक कर वीरक ने क्रोध से कहा,—'तुम्हारा यहाँ आने का कोई प्रयोजन नहीं है, भाग जाओ, जब तक कि मैं तुझे पीट नहीं देता। इसी स्थान पर देवी पार्वती का स्वरूप धारण कर एक दैत्य शिव को छलने की इच्छा से प्रविष्ट हो गया था, जाते समय मैंने उसे नहीं देखा था, देवाधिदेव ने उसे मार डाला। और मारने के बाद अति क्रुद्ध होकर नीलकंठ ने मुझे आज्ञा दी है कि अब से द्वार पर तुम असावधानी मत करना। तभी से मैं खूब ध्यान से रखवाली कर रहा हूँ। अभी अनेक वर्षों तक तू

मेरे द्वार पर नहीं आ सकती। यही कारण है कि मैं तुझे प्रविष्ट न होने दूँगा, शीघ्र ही यहाँ से चली जा।॥ १०—२४॥

श्री मात्स्य महापुराण के कुमारसम्भव प्रसंग में वीरक शाप नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त।॥ १५७॥

एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय

वीरक ने कहा—'कमललोचने! मेरी स्नेहवत्सला माता पार्वती ने भी मुझे इसी प्रकार की आज्ञा दी है। अतः शिव के पास कोई अन्य स्त्री प्रवेश नहीं कर सकती।' वीरक के ऐसा कहने पर पार्वती सोचने लगीं कि वायु ने जिस स्त्री के प्रवेश की चर्चा मुझसे की थी, वह स्त्री नहीं प्रत्युत कोई दैत्य था। क्रोध से अभिभूत होकर मैंने व्यर्थ में ही वीरक को शाप दे दिया, प्रायः क्रोध से प्रेरित होकर मूर्ख लोग अकार्य को भी कर बैठते हैं। क्रोध से यश का नाश होता है, क्रोध स्थिर लक्ष्मी का नाश करने वाला है। शोक है कि यथार्थ बात को न विचार कर मैंने अपने पुत्र को ही शाप दे दिया, जिन लोगों की बुद्धि विपरीत अर्थ को ग्रहण करती है उनको आपत्तियाँ सर्वदा सुलभ रहती हैं। पर्वतपुत्री उमा ने इस प्रकार की चिन्तना कर कमल के समान कान्तिमान मुख से लज्जा का भाव व्यक्त करती हुई वीरक से कहा।॥१—५॥

पार्वती ने कहा—वीरक! मैं तुम्हारी माता हूँ, तुम अपने मन में मेरे प्रति सन्देह मत करो, मैं ही शंकर की प्रियतमा तथा हिमवान् की पुत्री हूँ। पुत्र! मेरे शरीर की अभिनव शोभा से तुम सन्देह मत करो, यह गौर कान्ति मुझे पद्मसंभव भगवान् ब्रह्मा ने संतुष्ट होकर दी है। दैत्य के न जाने हुए वृत्तान्त में मैंने शंकर के एकान्त में स्थित होने के अवसर पर यह समझा कि कोई स्त्री तुम्हारी असावधानी से उनके पास प्रविष्ट हो गई है। अतः मैंने तुम्हें शाप दे दिया है। यद्यपि वह शाप अब टाला नहीं जा सकता; किन्तु यह तुमसे बतला रही हूँ कि तुम शीघ्र ही मनुष्य योनि प्राप्त कर मनोरथ युक्त हो मुझे पुनः प्राप्त करोगे।॥ ६—९॥

सूत ने कहा—पार्वती के ऐसा कहने पर वीरक ने शिर नवाकर हृष्टमना हो माता को प्रणाम किया और उदित हुए पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शोभाशाली हिमवान् की पुत्री पार्वती से कहा।॥ १०॥

वीरक ने कहा—विनम्र देवताओं तथा राक्षसों के मुकुट मणियों के समूहों की कान्ति से सुशोभित करालनखों वाली! पर्वतपुत्रि! शरणागतवत्सले! नम्र भक्त जनों की आपत्ति को दूर करनेवाली मैं तुम्हारी शरण में हूँ। हे सूर्य के मण्डल के समान विभासमान कंधेवाली, प्रचुर सुवर्ण के पर्वत के समान कान्तिमती! तरकस के समान विषयुक्त भुजंगों से विभूषित गिरिजे! मैं आप ही के आश्रय पर अवलंबित हूँ। हे सिद्धों द्वारा प्रणाम की जाने वाली! तुम्हारी भाँति कौन ऐसा अन्य देवता है जो ... से प्रणाम करने वाले के मनोरथ को पूर्ण कर देता है?

हे भूधरनन्दिनि ! तुम्हारे विना कौन ऐसी सुन्दरी इस जगत् में है जिसे शंकर हृदय से चाहते हैं। तुम विशाल हो। अपने विमल योगबल से भगवान् शंकर के अनुरूप अपने शरीर की दुर्लभ कान्ति प्राप्त कर तुम उनके मण्डल स्वरूप हो। तुम अन्धकासुर के परिवार वर्ग को विनष्ट करने वाली हो। श्रेष्ठ देवताओं द्वारा तुम्हारी सर्व प्रथम स्तुति की गयी है। हे जननि ! तुम श्वेत वर्ण की केसरों के भार से लदे हुए कंधोंवाले बहुत बड़े मृगराज पर सवार होने वाली हो। चमचमाती हुई शक्ति की धारा से निकलने वाली अग्नि की लपटों से पिंगलवर्ण की विस्तृत बाहुओं से बड़े-बड़े असुरों को पीस देने वाली हो। शुम्भ तथा निशुम्भ को मारनेवाली हो। सारा संसार तुम्हें चण्डिका नाम से पुकारता है। सेवा में आकर विनम्र हुए दानव एवं देवताओं की एक मात्र तुम आनन्ददायिनी हो। अपने तेज से पृथ्वी में आकाश में वायुमार्ग में अग्नि की भीषण ज्वालाओं में तथा पृथ्वी तल में, जो तुम्हारा शरीर भासमान है, हे किसी से न जीती जानेवाली ! अनुपमे ! भव वल्लभे ! भुवन को पवित्र करनेवाली ! तुम्हारे उस स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ। मनोहर छोटी-छोटी तथा बड़ी-बड़ी उद्धत लहरों से व्याप्त समुद्र, चराचर जगत् में व्याप्त होने वाली अग्नि की भयानक लपटें, सहस्रों फणों को धारण करने वाले अति भयानक भुजंगगण——ये सभी तुम्हारा नाम लेने से मेरे लिए कुछ भी भयंकर नहीं दिखाई पड़ते। हे स्थिर भक्त जनों की आश्रय भगवति ! मैं तुम्हारे चरणों की शरण में हूँ, तुम्हें प्रणाम करने के थोड़े-से पुण्य कार्य के फल स्वरूप मेरी भक्ति अविचलरूप में तुम्हारे चरणों में हो। हे अपने पुत्रों पर वात्सल्य भाव रखनेवाली, तीनों लोकों की आधारभूते ! जननि ! मेरे ऊपर शान्त हो, तुम्हें मेरा नमस्कार स्वीकार हो। शिवे ! तेरे चरणों में मेरी बुद्धि सर्वदा लगी रहे। मैं तुम्हारी शरण में हूँ, विनत हूँ और तुम्हें पुनः नमस्कार करता हूँ। ॥११-१९॥

सूत ने कहा——वीरक के इस प्रकार प्रार्थना करने के उपरान्त गिरिपुत्री पार्वती प्रसन्न चित्त हो अपने पति शंकर के भवन में प्रविष्ट हुईं।[1] तब रुद्र ने महा गौरवर्णा मतवाले हाथी के समान गमन करनेवाली चित्त को विमुग्ध करनेवाली पूर्णिमा के चंद्रमा के समान सुन्दर मुखवाली, पतले अंगोंवाली, घने जंघों से सुशोभित मध्य भाग में पतली, पूर्ण सौन्दर्य से अमृत रस की वृष्टि करने वाली सभी प्रकार के आभूषणों से विभूषित, मन्द गमन करती हुई सुन्दरी गौरी पार्वती को देख कर कामाविष्ट हो गये, सशंकित हो गये, दीन हो गये, रौद्र हुए, वीर एवं भयानक भी बने। तत्पश्चात् उनके चित्त में करुणा, हास्य एवं वीभत्स भावना का भी संचार हुआ। उन्होंने देवताओं की बात का स्मरण कर दैत्य के संहार करने की इच्छा से अपने शरीर को भयानक बनाया। महादेव की प्रतिरूपिणी पार्वती ने भी अपने स्वरूप को परिवर्तित कर भैरवी (अति भयानक) का स्वरूप धारण किया। शिव ने पार्वती के उस भयानक सहस्र रूप का दर्शन किया। तदनन्तर सहस्र रूपों के समाप्त हो जाने पर जब पार्वती

[1] यहाँ से लेकर आठ श्लोकों का पाठ सभी पुस्तकों में नहीं है।

ने अपना तारा के समान सुन्दर रूप दिखलाया तब उस स्वरूप को देखकर शंकर की शंका निवृत्त हुई। सुरतप्रिय शिव इतने दिनों की विरह जन्य उत्कण्ठा से प्रतीक्षित जगन्मयी पार्वती को देखकर अति आनन्दित हुए और एकान्त में स्थित होकर वे दोनों प्राणी एक सहस्र वर्ष तक अनेक प्रकार की काम केलियों में लगे रहे। द्वार पर नियुक्त वीरक ने शिव के दर्शन के अभिलाषी आये हुए देवताओं को आदरपूर्वक प्रार्थना आदि कर के अपने-अपने घरों को वापिस कर दिया और उनसे कहा कि 'इस समय आप लोगों के मिलने के लिए ठीक अवसर नहीं है। वृषभध्वज भगवान् शंकर एकान्त में पार्वती के साथ क्रीडा विलासादि कर रहे हैं।' वीरक के निवेदन पर सभी देवगण जहाँ जहाँ से आये थे, वहाँ-वहाँ वापिस लौट गये। एक सहस्र वर्ष बीत जाने पर देवगण अति उतावले हो गये और अन्तःपुर से शंकर की चेष्टा जानने के लिए अग्नि को प्रेरित किया। हुताशन ने शुक का रूप धारण कर झरोखे के छिद्र से भीतर जाकर देखा तो शिव को पार्वती के साथ रति करते हुए पाया। महादेव ने शुक रूप धारी अग्नि को आया हुआ देखा और कुछ कुपित होकर कहा। ॥२०—३३॥

महादेव ने कहा—'शुक का शरीर धारण करने वाले अग्नि देव! मेरे वीर्य का आधा भाग पार्वती में निहित हो चुका है; किन्तु तुम्हारे इस प्रकार के आगमन को देख लज्जा के कारण उमा के रति से विमुख हो जाने पर अब आधा वीर्य बच रहा है, उसे तुम्हें पीना पड़ेगा। क्योंकि तुम्हीं ने हमारी रति क्रीडा में इस प्रकार आकर विघ्न पहुँचाया है; अतः इसे रखने के योग्य पात्र भी तुम्हीं हो।' शिव के ऐसा कहने पर अग्नि ने हाथ जोड़ कर शिव के द्वारा छोड़े गये वीर्य का पान किया। अग्नि ने पान कर उस वीर्य द्वारा सभी देवताओं के उदर की पूर्ति की। उन पान करने वाले देवताओं के पेट को भेद देने के कारण वह तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्तिशाली वीर्य शंकर के विस्तृत आश्रम में चारों ओर फैल गया। और वहीं पर अनेक योजन में विस्तृत एक निर्मल महान् सरोवर के रूप में परिणत हो गया। उस सुन्दर सरोवर में सुवर्ण के समान शोभायमान कमल खिल गये, अनेक प्रकार के पक्षीगण चहकने लगे। उस सुवर्णमय वृक्ष तथा कमलवाले एवं प्रचुर जल सम्पन्न सरोवर की चर्चा सुन पार्वती जी अति कौतुक से देखने के लिए वहाँ गईं और उसी में फूले हुए कमलों को शिर का आभूषण बनाकर जलक्रीड़ा करने लगीं। तदनन्तर उस के तट पर सखियों समेत बैठी हुई पार्वती ने सुन्दर निर्मल कमलों से सुरभित सुस्वादु जल को पीने की इच्छा की और वहीं कमल के पत्ते में उस सरोवर के निर्मल जल को रखकर घर के लिए प्रस्थित, सूर्य की किरणों के समान कान्तिमयी छहों कृत्तिकाओं को, जो उस सरोवर में स्नान कर चुकी थीं, देखा। और हर्षित होकर कहा, मैं कमल के पत्तों में रखे गये उस जल को देख रही हूँ।' पार्वती की बात सुन उन कृत्तिकाओं ने कहा। ॥३४-४२॥

कृत्तिकाओं ने कहा—हम लोग इस जल को आपको दे देंगी यदि यह प्रतिज्ञा कीजिये कि इसके पान करने से जो गर्भ आप को रहे वह उत्पन्न होकर हम लोगों का भी पुत्र कहा जाय, और हमीं लोगों

के नाम पर उसका नामकरण संस्कार भी किया जाय। हे सुन्दर मुखवाली! वह बालक सभी भुवनों में विख्यात होगा। ॥४३॥

कृत्तिकाओं के ऐसा कहने पर गिरिपुत्री पार्वती ने कहा—'भला जो सभी अंगों में मेरे ही समान होगा, मेरे शरीर से उत्पन्न होगा वह बालक किस प्रकार आप लोगों का पुत्र कहा जा सकता है?' तब कृत्तिकाओं ने कहा कि 'हम लोग उस बालक के उत्तम अंगों (शिरों) की रचना अपने समान करेंगी, यदि ऐसा होगा तो वह बालक हम लोगों का पुत्र कहलायेगा।' उन सबों के इस प्रकार कहने पर शैलपुत्री ने कहा—'अनिन्दनीय गुणोंवाली! ऐसा ही करो।' पार्वती की स्वीकृति से कृत्तिकाएँ हर्ष से खिल उठीं और कमल पत्र पर रखे गए उस जल को पार्वती के लिए समर्पित कर दिया। पार्वती ने भी उस जल को धीरे-धीरे पी डाला। उस जल के पी लेने के उपरान्त उसी सरोवर में पार्वती की दाहिनी कोख को फाड़कर एक अद्भुत बालक, जिसका तेज समस्त लोकों में भासमान हो रहा था, निकला। उसकी आभा सूर्य के समान थी, चमक सुवर्ण के समान थी, छः मुख थे, हाथों में भयानक चमकती हुई अति कठोर शक्ति एवं शूल धारण किये हुए था। सुवर्ण के समान शोभाशाली वह बालक तेज से देदीप्त हो रहा था और जन्मते ही वह कुत्सित पापाचरण में लीन दैत्यों को मारने के लिए उद्यत-सा था। यही कारण है कि वह कुमार नाम से भी प्रसिद्ध हुआ। ॥४४-४९॥

श्री मात्स्य महापुराण के तारकोपाख्यान में कुमारसम्भव नामक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५८॥

एक सौ उनसठवाँ अध्याय

सूत ने कहा—पुनः देवी की बायीं कोख को फाड़कर एक अन्य शिशु बाहर निकला। प्रथमतः अग्नि के मुख में वीर्य के क्षरण होने के कारण वह बालक सुन्दर मुखवाला एवं शत्रुओं का विनाशक हुआ। विशेषकर शिखाओं (अङ्ग-प्रत्यंगों) में उन कृत्तिकाओं के मेल होने के कारण वह बालक शाखामिध भी हुआ, उसके छः मुख थे। यही कारण है कि वह विशाख नामधारी हुआ और लोक में षण्मुख (छः मुखों वाला) भी उसका नाम पड़ा। इस प्रकार उस बालक का स्कन्द (क्षरण होने के कारण) विशाख (शाखाओं अङ्गों में, कृत्तिकाओं के मेल होने के कारण) - षण्मुख (छः मुख होने के कारण) तथा कार्त्तिकेय (कृत्तिकाओं के पुत्र होने के कारण) नाम विख्यात हुआ। चैत्र महीने के कृष्ण पक्ष की पन्द्रहवीं (अमावस्या) तिथि को विशाल शरों (सरपत या रामशर) के वन में वे दोनों महाबलवान् तथा सूर्य के समान तेजस्वी बालक उत्पन्न हुए थे। उसी चैत्र महीने के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को पाक शासन इन्द्र ने देवताओं के कल्याणार्थ उन दोनों बालकों को एक में जोड़ दिया। उसी महीने की षष्ठी

तिथि को भगवान गुह सभी देवसमूह तथा ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, सूर्य आदि देवताओं द्वारा सेनापति के पद पर अभिषिक्त किये गये। सुगंधित द्रव्य, पुष्प, मांगलिक धूप, खिलौने, छत्र, चामर समूह, आभूषण, तथा चन्दनादि सामग्रियों द्वारा विधिपूर्वक षण्मुख स्वामिकार्त्तिकेय का अभिषेक किया गया। शक्र ने देवसेना नामक कन्या को स्वामिकार्त्तिकेय को स्त्री पद के लिए सौंपा। विष्णु ने उन देवाधिदेव को शस्त्रास्त्रों के समूह दिये। धनाध्यक्ष कुबेर ने दस लाख यक्ष दिये, अग्नि ने तेज दिया, वायु ने वाहन, त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने खिलौने तथा इच्छानुरूप स्वरूप धारण करनेवाला एक कुक्कुट (मुर्गा) दिया। इस प्रकार आनन्दयुक्त मन से सभी देवताओं ने सूर्य के समान परम तेजस्वी स्कन्द को सर्वश्रेष्ठ परिवार वर्ग दिया। तदनन्तर प्रमुख देवताओं ने घुटनों के बल पृथ्वी पर अवस्थित होकर वरदायी षडानन स्वामिकार्त्तिकेय की इस निम्न स्तोत्र द्वारा स्तुति की। ॥१-१२॥

देवताओं ने कहा—महातेजस्वी कुमार! तुम्हें हम लोगों का नमस्कार स्वीकार हो, तुम स्कन्द हो, दानवों का विनाश करनेवाले हो। नवीन सूर्य के समान कान्तिमान् हो, छः मुखोंवाले हो, इच्छानुरूप रूप धारण करने वाले हो, तुम्हें हम लोग नमस्कार करते हैं। अनेक प्रकार के आभूषणों से आभूषित, समस्त जगत् के पालनेवाले, दारुण दानवों के विनाशक, सूर्य के समान ओजस्वी! तुम्हें हम लोग नमस्कार कर रहे हैं। गुह्य के लिए, गुह के लिए हम लोगों का नमस्कार स्वीकार हो। तीनों लोकों के भय को दूर करनेवाले, कृपापूर्ण बालक! हम लोग तुम्हें नमस्कार करते हैं। विशाल निर्मल नेत्रों वाले! तुम्हें नमस्कार है। विशाख एवं महाव्रत स्वरूप! तुम्हें हम लोगों का नमस्कार स्वीकार हो। मन को हरण करनेवाले! तुम्हें हम लोगों का नमस्कार है। रण में अत्यन्त भयानक! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकार हो। उज्ज्वल मयूर पर सवार होनेवाले! तुम्हें हम सबों का प्रणाम स्वीकार हो। श्रेष्ठ केयूर धारण करनेवाले! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकार हो। उत्कट पताका धारण करनेवाले! प्रणत जनों के दुःख को दूर करनेवाले! तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है। श्रेष्ठ पराक्रम शाली! क्रिया परायण भक्त जनों के लिए मनोहर भव्य मूर्तिवाले! तुम्हें हम सब नमस्कार करते हैं। देवताओं के स्वामी इन्द्रादि सत्क्रिया परायण देवगण इस प्रकार की स्तुति यज्ञपति भगवान् स्वामि कार्त्तिकेय की कर चुप होगये। उस समय उन देवताओं ने सन्तुष्ट चित्त हो अति हर्ष से जब इस प्रकार स्तुति की तो गुह भगवान स्वामिकार्त्तिकेय ने अपने निर्मल नेत्रों से उन देवताधिपतियों की ओर ताक कर कहा—देवगण! अब आप लोग अपना दुःख दूर हुआ समझिये, मैं सभी शत्रुओं का विनाश कर दूँगा। ॥१३-१८॥

कुमार ने कहा—'देवगण! आप लोग बताइये मैं आप लोगों के किस मनोरथ की पूर्ति करूँ। मैं आप लोगों की उस हार्दिक अभिलाषा को, जिसे आप लोग हृदय में बहुत दिनों से सोच रहे हैं, पूर्ण करूँगा, भले ही वह दुस्साध्य क्यों न हो?' कुमार के ऐसा कहने पर देवगण विनत हो अनुकूल हृदय वाले बन महात्मा गुह से बोले—'सभी देवकुल का विनाश करने वाला, अति बलवान् एक दुर्जय तारक नामक दैत्यराज है, जो अत्यन्त दुराचारी तथा क्रोधी है। हम लोगों के भय को दूर करने वाले! आप उस

राक्षस का संहार कीजिये, यही हम लोगों की हार्दिक अभिलाषा है।' देवताओं के इस प्रकार निवेदन करने के बाद सभी देववृन्दों के परम उपकारी जगत् के स्वामी स्वामिकार्त्तिकेय वहाँ जगत् के कण्टक स्वरूप तारकासुर के वध के लिए प्रस्थित हुए। स्कन्द के बल का भरोसा पाकर इन्द्र ने दानवराज तारक के पास कठोर बचन बोलनेवाले एक दूत को भेजा। भयानक आकृतिवाले उस दूत ने भयरहित होकर तारक के पास जाकर इन्द्र का सन्देश कहा—॥१९-२४॥

दूत ने कहा—दैत्यपते! स्वर्ग के स्वामी देवराज भगवान् इन्द्र ने तुम को कुछ सन्देश कहा है। तारकासुर! उसे सुनकर अपनी शक्ति के अनुसार जो चाहो करो। उन्होंने कहा है। 'दानव! इस संसार का विनाश कर तुमने जो पापाचरण किया है उसके दण्ड देने के लिए मैं अब त्रिभुवन के राजा रूप में प्रस्तुत हुआ हूँ। उन सब की शान्ति करूँगा। दूत की ऐसी बातें सुनकर क्रोध से लाल नेत्रोंवाले दुष्टात्मा तारकासुर ने, जिसकी विभूति प्रायः नष्ट हो चुकी थी, कहा—॥२५-२७॥

तारकासुर ने कहा—'शक्र! युद्धों में सैकड़ों बार मैंने तेरे पराक्रम को देखा है। दुर्बुद्धि इन्द्र! निर्लज्ज होने के कारण तुम्हें ऐसा कहते हुए लज्जा तो लगेगी नहीं।' इस प्रकार इन्द्र को सन्देश दे देने के बाद जब दूत चला गया तब दानव ने मन में चिन्ता की कि विना किसी की सहायता का भरोसा पाये हुए इन्द्र इस प्रकार की निर्भीकतापूर्ण बातें नहीं कर सकता, क्योंकि मुझसे यह पूर्व ही पराजित हो चुका है। न जाने कहाँ से उसे सहायता की प्राप्ति हो गई है? इस प्रकार चिन्ता में निमग्न हो दुष्ट चेष्टावाले उस दैत्य ने अति अमंगलपूर्ण निमित्तों को घटित होते हुए देखा। उस समय गगनमण्डल से अनेक वार पृथ्वी पर धूलि की वर्षा होने लगी। अनिष्ट सूचक भुजा और नेत्र फड़कने लगे, मुख सूख गया, चित्त में घबराहट हो गई, अपनी रमणियों के कमलवत मुख को मलिन देखने लगा। अमंगल की सूचना देने वाले भयानक आकृतिवाले दुष्ट प्राणियों के दर्शन होने लगे। किन्तु इन सभी अमांगलिक अपशकुनों की कोई चिन्ता न कर वह दैत्य क्षण भर में पुनः जब तक निश्चित हुआ तब तक हाथियों के समूहों की भयानक घंटाओं की आवाजों से अतिशय भयानक, उसी प्रकार घोड़ों के समूहों की खुरों से उठी हुई धूलियों से श्वेत वर्ण वाली, अद्भुत प्रकार के विमानों एवं देवताओं द्वारा चलते हुए चँवरों से युक्त, विविध प्रकार के आभूषणों से आभूषित, किन्नरों की गीतों से शब्दायमान, विविध रंग वाले स्वर्गीय पुष्पों की मालाओं को धारण किये हुए वीरों से सुशोभित, म्यान रहित तलवार आदि हाथियारों से परिष्कृत दिखाई पड़नेवाले निर्मल कवचों से संयुक्त, वन्दियों द्वारा स्वर से स्तुति की जाती हुई, विविध प्रकार के बाजनों से घोर शब्दोंवाली सेना को आते हुए राजमहल के ऊपरी भाग पर खड़े होकर देखा। और तब कुछ चिन्तित एवं घबराहट से युक्त होकर सोचा कि यह कौन अपूर्व योद्धा आ रहा है, जिसे मैंने अभी तक नहीं हराया है। थोड़ी देर बाद फिर दैत्य ने कठोर स्वर सुने, सिद्ध तथा वंदीगण उस समय दैत्य के हृदय को विदारण करनेवाले इस स्तोत्र का पाठ कर रहे थे। ॥२८-३९॥

हे अनुपम शक्ति की किरणों से पिंगल वर्ण की कान्ति वाले! कठोर भुजदण्डों से भयानक रण

मचा देने वाले ! सुखदायी ! प्रणत भक्त जन रूपी कुमुद कानन को विकसित करने में चन्द्रमा रूप ! तुम्हारी जय हो । हे कुमार ! दैत्य कुलरूप समुद्र के लिए वाडवाग्नि ! छः मुखों वाले ! मनोहर मधुर स्वर मयूर के ऊपर सवार होने वाले ! सुरों की मुकुट मणियों की कोर से घिसे हुए चरणों के नखों की किरणों से सुशोभित श्रेष्ठ सिंहासनवाले ! मनोहर केश कलाप से युक्त ! अभिनव निर्मल कमल की पंखुड़ियों के समान मनोहर स्वरूप वाले ! दैत्य वंश रूप बांस के विनाशार्थ दुःसह दावाग्नि रूप ! तुम्हारी जय हो । भगवन् विशाख ! तुम्हारी जय हो । सकल लोकों का उद्धार करनेवाले ! स्कन्द ! गौरीनन्दन ! घण्टा के प्रेमी ! तुम्हारी जय हो । हे परमप्रिय भगवन् विशाख ! हाथ में पताका के समूह धारण करने वाले ! अति देदीप्यमान आभूषणों से दिनकर की शोभा धारण करनेवाले ! भय के उत्पन्न करनेवाले ! अखिल दानवों का लीलापूर्वक विनाश करने वाले, सकल लोकों के तारक ! संमग्र दैत्यों के स्वामी ! तारकासुर के परमशत्रु ! स्कन्द ! सात दिन के बालक ! चौदहों भुवनों के शोकापहर्त्ता तुम्हारी जय हो, जय हो ! ॥ ४०–४३ ॥

श्री मात्स्य महापुराण के देवासुर संग्राम में रण उद्योग प्रसंग नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय समाप्त । ॥ १५९ ॥

एक सौ साठवाँ अध्याय

सूत ने कहा—देवताओं के वन्दियों द्वारा उच्चस्वर से उद्घोषित उपर्युक्त प्रार्थना को सुनकर तारकासुर ने ब्रह्मा की अपनी मृत्युवाली पूर्व बात स्मरण की । (जिसमें उन्होंने बालक से मृत्यु का वरदान दिया था,) उसने यह समझ लिया कि अब हमारी मृत्यु समीप आ गई है । फिर काल के धर्म का स्मरण कर विना कवच लिए पैदल ही वह विना किसी को साथ लिये शोकाकुल चित्त हो अपने भवन से बाहर निकला और बोला—'शीघ्रता के कारण घबराये हुए चित्त वाले ! कालनेमि आदि प्रमुख योधा दैत्यगण ! दौड़ते जाओ, पकड़ो, और इस सेना को पराजित कर दो ।' तदनंतर भयानक आकृति वाले तारकासुर ने देखकर कहा 'बालक ! क्या तुम युद्ध करने को इच्छुक हो ? यदि चाहते हो तो आओ, कन्दुक के समान खेलो । रणभूमि में भीषण दानवों को अभी तक तुमने नहीं देखा है, बालक होने के कारण तुम्हारी बुद्धि थोड़ी ही दूर तक देखती है । देवताओं को आनन्दित करते हुए स्वामिकार्त्तिकेय ने भी आगे खड़े हुए तारकासुर से कहा—'हे तारक ! सुनो, तुम्हारे शास्त्रीय अर्थ को मैं निरूपित कर रहा हूँ । समर भूमि में न डरनेवाले योद्धा गण रण में शास्त्रों द्वारा अर्थ को नहीं देखते, मेरे बालकपन का तुम अपमान मत करो, भुजंग का बच्चा ही मृत्यु देने वाला होता है । उदयकालीन सूर्य भी दुष्प्रेक्ष्य (कठिनाई से देखने योग्य) होता है, उसी प्रकार मैं भी दुर्जय बालक हूँ । दैत्य ! क्या तुम यह नहीं देखते हो कि थोड़े ही अक्षरोंवाला मंत्र कितना प्रभावशाली होता है ।' इस प्रकार की बातें कुमार कर ही रहे थे कि इतने ही अवसर में दैत्य ने उनके ऊपर अपना मुद्गर छोड़ दिया । कुमार ने अपने अमोघ

तेजस्वी वज्र से उसे निष्फल कर दिया। तब दैत्येन्द्र ने लोहे के बने हुए भिन्दिपाल को उनके ऊपर छोड़ा जिसे दैत्यों के शत्रु स्वामिकार्त्तिकेय ने अपने हाथ में पकड़ लिया। षण्मुख ने घोर शब्द करनेवाली अपनी गदा को दैत्य के ऊपर छोड़ा, उसके घात से दैत्य महागिरि के समान प्रकम्पित हो गया। उसने रणभूमि में षण्मुख स्वामिकार्त्तिकेय को कठिनाई से जीतने योग्य मान लिया और बुद्धि से चिन्तन करने लगा कि अब निस्सन्देह हमारा काल आ गया है। कालनेमि आदि प्रमुख दैत्यों के साथ प्रायः सभी दैत्यों के स्वामियों ने इस प्रकार कुपित देखकर रण में अत्यन्त कठोर कार्य करनेवाले कुमार के ऊपर शस्त्रास्त्रों द्वारा एक साथ प्रहार किया। किन्तु स्वामिकार्त्तिकेय उन कुछ भी क्लेश न पहुँचानेवाले घोर प्रहारों से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन रणमत्त देवकण्टक बलवान् दैत्येन्द्रों ने पुनः अपने तीक्ष्ण भालों तथा बाणों से कुमार को समरभूमि में भीषण चोट पहुँचाई; परन्तु दैत्यों के अस्त्रों से उन्हें तनिक भी व्यथा नहीं हुई। किन्तु दानवों का यह भयानक युद्ध देवताओं के प्राणों का महान् घातक सिद्ध हुआ। तब देवताओं को अति दुःखित देखकर कुमार अत्यन्त क्रुद्ध हुए और अपने अस्त्रों से दानवों की सेना को विचलित कर दिया। उस समय उन अमोघ अस्त्रों की चोट से घायल हुए देवताओं के शत्रु कालनेमि आदि दैत्यगण युद्ध भूमि से पीछे लौट पड़े। दैत्यों के इस प्रकार निहत होने एवं रणभूमि छोड़कर भाग जाने पर असुरों का स्वामी महादैत्य तारक परम क्रुद्ध हुआ और सुवर्ण के बने हुए जालों से परिष्कृत अपनी दिव्य गदा को धारण किया। अत्यन्त तपाये गये सुवर्ण के बने हुए केयूर से सुशोभित भुजावाले उस दैत्यराज ने गदा से कुमार को आहत किया और मयूर के पंखोंवाले बाणों से देवताओं को विमुख किया। और दूसरे अतिभयानक विशाल भालों से कार्त्तिकेय के वाहन मयूर को घायल कर दिया। इस प्रकार रणभूमि में असुरनायक तारक ने अतिक्रुद्ध हो देवताओं की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। तब देवताओं को रणभूमि से पराङ्मुख होते तथा अपने वाहन मयूर को रक्त उगलते हुए देखकर षडानन देवताओं के सेनापति स्वामि कार्तिकेय परम मनोहर सुवर्ण निर्मित केयूर से सुशोभित भुजाओं द्वारा रणभूमि में सुवर्ण से अलंकृत शक्ति को धारण किया और अतिवेग पूर्वक दानवराज तारक की ओर अभिमुख हो पुकार कर कहा—'हे कुबुद्धे! खड़े हो जाओ! खड़े हो जाओ! भागो मत, संसार के जीवों की ओर देखो, अब तुम इस मेरी शक्ति से मारे जा चुके हो, अपने सुशिक्षित शस्त्र का स्मरण करो।' ऐसा कहकर कुमार ने उस शक्ति को दैत्य के ऊपर छोड़ दिया। कुमार के केयूर की ध्वनि के साथ हाथों से छुटी हुई उस शक्ति ने वज्र के महागिरि के समान अत्यन्त कठोर दैत्य के हृदय को छिन्न-भिन्न कर दिया। और वह निष्प्राण होकर पृथ्वी तल पर प्रलय काल के पहाड़ की भाँति गिर पड़ा। पगड़ी तथा मुकुट गिरकर बिखर गये और शरीर के सारे आभूषण पृथ्वी तल पर छिटक गये। इस प्रकार उस महादैत्य के मारे जाने पर स्वर्गलोक के महान् उत्सव के अवसर पर कोई भी दुःखी प्राणी नहीं रहा, नरक में निवास करने वाले पापात्मा जीव भी सुखी हुए। अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करते हुए देवगण षडानन की स्तुति करते हुए अति उत्सुक होकर अपने-अपने घरों को चले गये। उस समय अपनी मनोवाञ्छित सारी इच्छाओं को

प्राप्त करनेवाले समस्त देवतागण, तपस्वियों तथा सिद्धों को साथ ले अत्यन्त सन्तुष्ट चित्त हो स्कन्द को वरदान देने लगे । ॥ १-२९ ॥

देवताओं ने कहा—जो कोई महाबुद्धिशाली मनुष्य स्कन्द से सम्बन्ध रखनेवाली इस पुण्य कथा को सुनता है अथवा सुनाता है, वह कीर्तिशाली होता है। दीर्घायु, सुन्दर आकृति वाला, लक्ष्मीवान् शोभाशाली मंगलमय दिखाई पड़नेवाला सभी जीवों से भयरहित तथा सभी प्रकार के दुःखों से विवर्जित होता है। जो मनुष्य प्रातःकाल की सन्ध्या करने के बाद स्कन्द के चरित को पढ़ता है वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर महाधनवान् होता है। बालकों को, व्याधि से पीड़ितों को तथा राजद्वार का सेवन करने वाले पुरुषों को, यह स्कन्द चरित परमोपयोगी, सर्वदा सभी मनोरथों की पूर्ति करनेवाला एक दिव्य उपाय है। इसका पाठ करनेवाला मनुष्य शरीर के नष्ट होने पर षडानन की समीपता प्राप्त करता है। ॥ ३०-३३ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में तारक वध प्रसंग नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ।॥१६० ॥

एक सौ इकसठवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—अब हम लोग हिरण्यकशिपु का वध तथा पापों को नष्ट करनेवाले नरसिंह भगवान् के माहात्म्य को सुनना चाहते हैं। ॥ १ ॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! प्राचीन काल में हिरण्यकशिपु नामक अति प्रभावशाली दैत्यों के आदिम पुरुष ने घोर तपस्या की थी। जल में निवास करते हुए स्नान एवं मौन का व्रत धारण कर उसने ग्यारह सहस्र वर्षों तक तपस्या की थी। तब उसकी तपस्या, नियम, शान्ति, इन्द्रिय निग्रह एवं ब्रह्मचर्य से ब्रह्मा सन्तुष्ट हुए और स्वयम्भू भगवान् स्वयमेव वहाँ सूर्य के समान परम तेजोमय विमान पर हंसयुक्त उपस्थित हुए। आदित्य, वसु, साध्य, मरुत, विश्वेदेव के साथ रुद्र, यक्ष, राक्षस, सर्प, दिशाएं, विदिशाएँ, नदी, सागर, नक्षत्र, मुहूर्त, आकाशगामी ग्रह, महाग्रह, देवता, ब्रह्मर्षि, सिद्ध, सप्तर्षि, राजर्षि, पुण्यकर्त्ता गन्धर्व तथा अप्सराओं के समूहों तथा स्वर्ग निवासियों से घिरे हुए ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ चराचर जगत् के गुरु शोभा सम्पन्न ब्रह्मा ने दैत्य से कहा—'सद्व्रत परायण ! तुझ जैसे भक्त की इस घोर तपस्या से मैं अति प्रसन्न हूँ, अतः तुम श्रेष्ठ वरदान माँग लो और अपनी मनोवांछित अभिलाषा की प्राप्ति करो। ॥२—१०॥

हिरण्यकशिपु ने कहा—देवसत्तम ! देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस, मनुष्य तथा पिशाच—ये सब मुझे न मार सकें। प्रपितामह ! न तो ऋषिगण मुझे शाप ही दे सकें। भगवन्। यदि आप सचमुच हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो मैं यह वरदान माँग रहा हूँ। न अस्त्र से, न शस्त्र से, न पर्वत से, न वृक्ष

से, न किसी सूखे हुए पदार्थ से, न गीले पदार्थ से, न दिन में और न रात में अर्थात् कभी भी और किसी से भी मेरी मृत्यु न हो। मैं ही सूर्य हो जाऊँ, चन्द्रमा, वायु एवं अग्नि हो जाऊँ, जल, आकाश, नक्षत्र तथा दसों दिशाएं बन जाऊं। मैं क्रोध, काम, वरुण, इन्द्र, यमराज, कुबेर, यक्ष तथा किंपुरुषों का स्वामी हो जाऊँ। ॥११-१५॥

ब्रह्मा ने कहा—'प्रियवर! इन दिव्य वरदानों को मैं तुम्हें दे रहा हूँ। वत्स! सर्वदा इनके प्रभाव से निस्सन्देह अपने मनोरथों को तुम प्राप्त करोगे।' इस प्रकार कहकर भगवान् ब्रह्मा ब्रह्मर्षियों के समूहों से सेवित वैराज नामक अपने निवास स्थान को चले गये। तब सब देवता नाग तथा गन्धर्व ऋषियों के साथ वरदान की प्राप्ति का समाचार सुनते ही ब्रह्मा के पास पहुँचे। ॥१६-१८॥

देवताओं ने कहा—भगवन्! आपके वरदान को प्राप्त कर वह असुर हम सबों का संहार करेगा। अतः उसके संहार की भी आप शीघ्र ही चिन्ता करें। भगवन्! आप जगत् के समस्त जीवों के स्वयम् आदिकर्त्ता हैं, प्रभु हैं, हव्य कव्य के स्रष्टा हैं, अव्यक्त प्रकृतिवाले हैं। ॥१९-२०॥

इस प्रकार समस्त जगत के कल्याण की बातें सुनकर प्रजापति ब्रह्मा ने सुन्दर एवं शीतलतापूर्ण अपने बचन रूपी जल से देवताओं को आश्वस्त किया और कहा—'देवगण! अवश्य ही वह दानव अपनी तपस्या का फल प्राप्त करेगा; परन्तु तपस्या के पुण्यफल के समाप्त हो जाने पर उसका संहार स्वयम् विष्णु भगवान् करेंगे।' कमल से उत्पन्न होनेवाले भगवान् ब्रह्मा की इस बात को सुनकर सभी लोग प्रसन्न चित्त हो अपने-अपने दिव्य स्थानों को चले गये॥ २१-२३ ॥

ब्रह्मा से वरदान की प्राप्ति करते ही उस हिरण्यकशिपु ने वरदान से गर्वित होकर सभी प्रजाओं को विशेष कष्ट पहुँचाया। उस दानव ने आश्रमों में, प्रशंसनीय व्रतों में परायण सत्य तथा धर्म की सेवा में तत्पर महापुण्यशाली त्यागी मुनियों को अत्यन्त अपमानित किया। इस प्रकार वह महान् असुर त्रिभुवन में रहनेवाले देवताओं को पराजित कर तीनों लोकों को स्ववश कर स्वर्ग लोक में निवास करने लगा। जब काल की प्रेरणा से उसने वरदान के मद से उन्मत्त होकर दैत्यों को यज्ञ भाग का अधिकारी बना दिया तथा देवताओं को यज्ञभागों से वहिष्कृत कर दिया। तब सूर्य, साध्य, विश्वेदेव, वसु, तथा इन्द्र समेत समस्त देवगण यक्ष, सिद्ध, तथा महर्षि गण शरणागतवत्सल महा बलवान् देवाधिदेव सनातन वासुदेव विष्णु की शरण में गये।। २४-२९ ॥

देवताओं ने कहा—महाभाग्यशालिन्! नारायण! देवता लोग तुम्हारी शरण में आये हुए हैं। प्रभो! इन सब की तुम रक्षा करो, दैत्यपति हिरण्यकशिपु का संहार करो। तुम हम लोगों के सब से बड़े उत्पत्तिकर्त्ता हो, परम गुरु हो, परम देव हो। देवश्रेष्ठ! तुम ब्रह्मादि देवताओं के भी देवता हो। ॥३०॥

विष्णु ने कहा—देववृन्द! तुम लोग भय छोड़ दो, मैं तुम लोगों को अभयदान दे रहा हूँ। देवगण! तुम लोग उसी तरह पुनः स्वर्ग को प्राप्त करोगे, देर न होगी। मैं वरदान से उन्मत्त, देवताओं

के स्वामियों द्वारा अवध्य उस दानवराज को सैन्य समेत विध्वंस करने चल रहा हूँ। इस प्रकार की बातें कह भगवान् विष्णु ने देवताओं को विसर्जित कर मन में हिरण्यकशिपु के संहार का संकल्प किया। तदुपरान्त शीघ्र ही महाबाहुवाले भगवान् ने ओंकार को ग्रहण कर अपनी सहायता में नियुक्त किया। ओंकार की सहायता प्राप्तकर कभी नष्ट न होने वाले भगवान् विष्णु हिरण्कशिपु के निवास स्थान की ओर प्रस्थित हुए। उस समय तेज में सूर्य के समान तथा शोभा में दूसरे चन्द्रमा के समान आधे शरीर को मनुष्य का तथा आधे शरीर को सिंह का बना कर भगवान् ने अपना नरसिंह स्वरूप बनाया और एक हाथ से दूसरे हाथ का स्पर्श किया। तदनन्तर अत्यन्त विस्तृत, दिव्य, अति रमणीय, मन को हरने वाली, सभी प्रकार की अभिलाषाओं से युक्त, शुभ हिरण्यकशिपु की सभा को उन्होंने देखा। वह सभा आकाश के मध्य में सौ योजन में फैली हुई थी, पांच योजन चौड़ी थी, सभी मनोरथों को देनेवाली, वृद्धता शोक एवं कष्टों से रहित, धैर्यशील, कल्याणदायिनी, सुखकारी, सुन्दर भवन तथा अटारियों से संयुक्त, तेज से देदीप्यमान, अन्तःसलिल से संयुक्त, विश्वकर्मा की बनाई हुई, दिव्य रत्नों से संयुक्त, फल पुष्प देनेवाले वृक्षों से सुशोभित, नीले, पीले, श्वेत, श्याम, कृष्ण तथा लाल पुष्पों वाले गुल्मों तथा सैकड़ों मंजरीवाले गुच्छों से सुहावनी, श्वेत बादल के समान मानो जल से स्नान करती हुई-सी वह दिखाई पड़ रही थी। तेज से सुप्रकाशित उस सभा के चारों ओर जुन्हाइयाँ विराजमान हो रही थीं। दिव्य सुगंधि से वह अतिशय मनोहारिणी हो रही थी। अति आनन्द की देनेवाली थी, दुःखदायिनी नहीं थी, न तो उसमें अधिक शीतलता थी और न अधिक धूप ही थी। उसमें स्थित लोगों को क्षुधा, पिपासा तथा ग्लानि का अनुभव नहीं हो रहा था। रंग-विरंगे अति चमकीले पदार्थों से वह सुशोभित थी, स्तम्भों पर बनी हुई थी, उसकी अनुपम छटा सर्वदा एक रूप में रहनेवाली तथा टिकाऊ थी। स्वयमेव अति प्रकाशित वह सभा चन्द्रमा, सूर्य तथा अग्नि की तेजस्विता को दबाने वाली थी, स्वर्ग के पृष्ठ भाग पर अवस्थित वह प्रकाश फैलाती हुई सूर्य के समान देदीप्यमान हो रही थी। सभी प्रकार के मनोरथ—चाहे वे देवताओं से सम्बन्ध रखने वाले हों अथवा मनुष्यों से सम्बन्ध रखने वाले हों—वहाँ पर प्रचुर परिणाम में विद्यमान थे। षट् रस संयुक्त विविध प्रकार के भक्ष्य-भोज्यादि पदार्थ प्रचुर परिमाण में वहाँ रखे हुए थे। वहाँ की मालाएँ अति गम्भीर तथा सुगन्धिवाली थीं, वहाँ के वृक्ष सर्वदा पुष्प एवं फलों से लदे रहते थे, गर्मी की ऋतु में शीतल तथा शीत की ऋतु में गर्म जल वहाँ पर रहता था। फूली हुई लम्बी शाखाओंवाले कोमल पत्तों तथा अंकुरों से युक्त लता के वितानों से ढके हुए वृक्ष, नदियों तथा तालाबों के तट पर वहाँ विद्यमान थे। इस प्रकार के अनेक वृक्षों को नरसिंह भगवान् ने वहाँ पर देखा। वे सभी सुगंधिपूर्ण पुष्पों तथा रसयुक्त फलों से लदे हुए थे। वहाँ के तालाब न तो अत्यन्त शीतल जल वाले थे और न गर्म जलवाले थे। हिरण्यकशिपु की उस विस्तृत सभा में भगवान् ने सभी तीर्थों को उपस्थित देखा। सुगंधियुक्त नलिन, पुण्डरीक, शतपत्र, लाल कमल, नीले कमल, कुमुद उन तालाबों में खिले हुए थे। ॥ ३१-५२॥

अत्यन्त सुन्दर धार्तराष्ट्र[१], नेत्रों को अत्यन्त प्रिय दिखाई पड़ने वाले राजहंस, कारण्डव, सारस, कुरर[२] स्वच्छ स्फटिक की शिलाओं के समान शुभ्र वर्ण तथा पीले वर्ण के पंखों वाले पक्षियों से वहाँ के सरोवर शोभायमान हो रहे थे। अनेक प्रकार के हंस तथा सारसों के कलरव उनमें हो रहे थे। भगवान् नृसिंह पर्वत के अग्रभाग पर सुगंधिपूर्ण मनोहारिणी, बड़ी-बड़ी मंजरियों को धारण करनेवाली अनेक प्रकार के रंग विरंगी पुष्पों से लदी हुई लताओं को देखा। केतकी, अशोक सरल[३], पुन्नाग[४], तिलक, अर्जुन, आम, बड़ी कदम्ब, प्रस्थपुष्प, छोटी कदम्ब, बकुल, धव, प्रियंगु, पाटल शाल्मलि, हरिद्रक, साल, ताल, तमाल तथा मनोहर चम्पक आदि वृक्ष वहाँ सुशोभित हो रहे थे। इसी प्रकार अन्य कई पुष्पों के वृक्ष उस स्थल में खिले हुए विराजमान हो रहे थे। जलती हुई अग्नि के समान प्रकाशमान मूंगे के वृक्ष वहाँ ऊंचे तना लम्बी शाखाओं से युक्त ताल वृक्षों के समान विराजमान हो रहे थे। अंजन के समान काले, अशोक के वर्णवाले अनेक चित्रक के वृक्ष वहाँ पर थे। वरुण, वत्सनाभ, चन्दन, पनस (कटहल) नीम, खिले हुए फूलोंवाले कदम्ब, पीपल, तिन्दुक, पारिजात, लोध्र, मल्लिका, भद्रदारु, इमली, जामुन, बड़हर, शैलवालुक, खजूर, नारियल, हर्रे, विभीतक, कालीयक, द्रुकाल, हिंगु, पारियात्रक मन्दार, कुन्द, लक्त, पतंग, कुटज, लाल कुरंटक, काले अगुरु, मनोहर कदम्ब, अनार, बिजौरा, छितवन, बेल, भ्रमरों से घिरे हुए बहुत-से खिन्नी के वृक्ष, अनेक प्रकार की लताओं से घिरे हुए अशोक तथा तमाल के वृक्ष, तथा महुआ के वृक्ष वहाँ सुशोभित हो रहे थे। पत्तों, पुष्पों तथा फूलों से लदी हुई विविध प्रकार की लताएँ तथा उपर्युक्त वृक्षों के अतिरिक्त अन्य बहुत-से जंगलों में होनेवाले वृक्ष भी वहाँ विद्यमान थे। चारों तरफ से ये वृक्ष अनेक प्रकार के पुष्पों तथा फलों से लदे हुए शोभायमान हो रहे थे। चकोर, शतपत्र, मतवाली कोयलें तथा मैना खिली हुई वृक्ष की एक डाली से दूसरी पर फुदक रही थीं। लाल, पीले तथा लोहित वर्णवाले, वृक्षों की डालियों पर बैठे हुए पक्षी वहाँ पर विराजमान हो रहे थे। अत्यन्त प्रसन्न होकर जीवजीवक (चकोर) नामक पक्षी के जोड़े वहाँ बैठे हुए एक दूसरे की ओर देख रहे थे। ॥५३-६८॥

उक्त सभा में बैठा हुआ दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु उस समय विचित्र वस्त्र एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर विराजमान था। वह सहस्र स्त्रियों से घिरा हुआ था, उसके आभूषण तथा वस्त्रों की शोभा निराली थी, अति मूल्यवान मणियों एवं रत्नों की कान्तियों से उसके कुण्डल सुशोभित हो रहे थे। उसका सिंहासन दस हाथ का था, सूर्य के समान अतिदिव्य वस्त्र फर्श पर विछा हुआ था। अति सुखकारी सुगंधित वायु वहाँ बह रही थी, सुप्रकाशित कुण्डल से विराजमान दैत्य उक्त सिंहासन पर बैठा हुआ था। उस समय सेवक गण हिरण्यकशिपु की सेवा में लगे हुए थे। प्रमुख गन्धर्व गण मनोहर ताल एवं लय से गीत गा रहे थे। विश्वाची, सहजन्या, प्रम्लोचा, सौरभेयी, समीची, पुञ्जकस्थली, मिश्रकेशी, रम्या, सुन्दर

[१]एक प्रकार का हंस जातीय पक्षी। [२]टिटिहरीका पुरुष। [३]एक प्रकार की पीली लकड़ीवाला वृक्ष विशेष। [४]जायफल का वृक्ष।

हँसनेवाली चित्रलेखा, चारुकेशी, घृताची, मेनका, उर्वशी—ये सब स्वर्ग लोक की अप्सरायें तथा अन्य सहस्रों नाचने-गाने में अति निपुण अप्सराएँ प्रभावशाली असुरपति हिरण्यकशिपु की सेवा में उपस्थित थीं। सभा के मध्यवर्ती आसन पर समासीन अद्भुत पराक्रमशाली उस महाबाहु हिरण्यकशिपु की परिचर्या में दिति के पुत्र दैत्यगण, जो सब के सब वरदान प्राप्त कर चुके थे, सहस्रों की संख्या में तत्पर थे। बलि, विरोचन, नरक, पृथ्वीपुत्र, प्रह्लाद, विप्रचित्ति, महासुर गविष्ठ, देवताओं का शत्रु सुनामा, प्रमति, दैत्य श्रेष्ठ सुमति, घटोदर, महापार्श्व, कुथन, पिठर, विश्वरूप, सुरूप, महाबलवान् स्वबल, दशग्रीव, वाली, महासुर मेघवासा, घटमुख, अकम्पन, प्रजन, इन्द्रतापन—आदि असुरगण वहाँ पर उपस्थित होकर हिरण्यकशिपु की सेवा में तत्पर थे। सभी दैत्यों तथा दानवों के समूह उज्जवल कुण्डल से सुशोभित, सुन्दर माला धारण किये हुए विराजमान थे। वे सब के सब बोलने में प्रवीण तथा सर्वदा व्रत में परायण रहनेवाले थे। सभी वरदान प्राप्तकर मृत्यु से रहित हो गये थे। ये उपर्युक्त तथा अन्य बहुतेरे दैत्यगण प्रभावशाली हिरण्यकशिपु की सेवा में तत्पर थे। दिव्य वस्त्रों से सुशोभित होकर विविध प्रकार के आकारोंवाले अग्नि के समान प्रज्वलित विमानों पर आरूढ़ होकर इन्द्र के समान सुन्दर शरीरवाले विचित्र प्रकार के केयूरों से सुशोभित बाहुओं वाले, आभूषणों से आभूषित दिति के पुत्र गण चारों ओर उसकी उपासना में तत्पर थे। उस दिव्य सभा में पर्वतों के समान भीषण आकृतिवाले दैत्यगण सुवर्ण के समान कान्तिमान् शरीर से सूर्य के समान शोभायमान हो रहे थे। सूत ऋषियों से कहते हैं कि दैत्यसिंह महात्मा हिरण्यकशिपु के समान ऐश्वर्य न तो कहीं सुना गया है और न कहीं देखा गया है। सुवर्ण तथा चाँदी से बनी हुई विचित्र वेदी पर, रंग विरंगे रत्नों से जटित वीथिका में, जो रत्नों से जटित झरोखों से सुशोभित थी। नरसिंह भगवान् ने, सूर्य की कान्ति के समान अतिशय तेजोमय, सुन्दर सुवर्ण की बनी हुई माला से सुशोभित सेवा में तत्पर सैकड़ों-सहस्रों दैत्यों से संयुक्त दिति के पुत्र उस हिरण्यकशिपु को देखा। ॥६६-८९॥

श्री मात्स्य महापुराण में नरसिंह प्रादुर्भाव प्रसंग नामक एकसौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त। ॥१६१॥

एक सौ बासठवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण! तदनन्तर नरसिंह रूप में छिपे हुए महनीय आत्मा भगवान् विष्णु को राख में छिपी हुई अग्नि के समान अथवा कालचक्र की भाँति आया हुआ देखकर हिरण्यकशिपु के पुत्र पराक्रमशाली प्रह्लाद ने दिव्य दृष्टि द्वारा उन आये हुए भगवान् को सिंह रूप में देखा। इस प्रकार वहाँ उपस्थित सुवर्ण के पर्वत के समान शोभायमान् अपूर्व शरीरवाले नरसिंह भगवान् को विस्मित होकर सभी दानवों ने तथा उस हिरण्यकशिपु ने भी देखा। ॥१—३॥

प्रह्लाद ने कहा—महाबाहुशाली महाराज! दैत्यों के मूल पुरुष! इस प्रकार का आधा मानव तथा आधा सिंह का शरीर, मैंने न तो कभी देखा था और न सुना था। अव्यक्त उत्पत्ति एवं दिव्य स्वरूप

वाला यह कौन यहाँ आया हुआ है, मेरे मन में संदेह हो रहा है कि यह भयानक स्वरूप दैत्यों का अन्त करनेवाला है । इस देव के शरीर में सागर तथा नदियाँ विराजमान दिखाई पड़ रहीं हैं, हिमवान् पारियात्र तथा अन्य जो कुल पर्वत हैं, नक्षत्रों सहित चन्द्रमा, वसुओं समेत बारह आदित्य, धनाध्यक्ष कुवेर, वरुण, यमराज, शचीपति इन्द्र, मरुत्, देवता, गन्धर्व, तपस्वी ऋषिगण, नाग, यक्ष, पिशाच, भयानक पराक्रमवाले राक्षस इस शरीर में दिखाई पड़ रहे हैं । ब्रह्मा तथा भगवान् शंकर ललाट में विराजमान हैं । सभी प्रकार के स्थावर तथा जंगम जीव, हम सभी दैत्य गणों के साथ आप तथा सौ विमानों से आकीर्ण आप की सभा भी उसमें दिखाई पड़ रही है । राजन् ! समस्त त्रिभुवन, सनातन लोक धर्म इस नृसिंह के शरीर में दिखाई पड़ रहे हैं, संक्षेप में सारा जगत् ही उसमें विराजमान है । प्रजापति महात्मा मनु, ग्रह, योग, वृक्ष, उत्पात, काल, धैर्य, मति, रति, सत्य, तप, दम, महानुभाव सनत्कुमार, विश्वेदेव, सभी ऋषि गण, क्रोध, काम, हर्ष, धर्म, मोह तथा सभी पितरगण भी इस शरीर में विराजमान हैं ।' प्रह्लाद के वचन सुनकर प्रभावशाली हिरण्यकशिपु ने सभी दानवों तथा उनके गणों के प्रति अभिमुख होकर कहा—'तुम लोग जाकर अपूर्व शरीर धारण करनेवाले इस नरसिंह को पकड़ो, यदि पकड़े जाने में कोई सन्देह हो तो इस वन्य पशु को कहीं भी पाकर मार डालो ।' हिरण्यकशिपु की आज्ञा से उन सबों ने महापराक्रमी उस मृगेन्द्र रूपधारी भगवान् के ऊपर अत्यन्त हर्षित होकर अस्त्रों का प्रहार किया और अपने तेज से दुखाने की कोशिश की, महाबलवान् नरसिंह ने सिंह गर्जना कर मुँह बाये हुए काल के समान भीषण हो उस सभा को भंग कर दिया । सभा के भंग हो जाने पर स्वयं हिरण्यकशिपु ने व्याकुल नेत्र होकर सिंह के ऊपर अपने अस्त्रों का प्रहार किया । ॥४–१८॥

हिरण्यकशिपु ने सभी प्रकार के अस्त्रों में श्रेष्ठ अत्यन्त दारुण दंड को, घोर काल चक्र को, श्रेष्ठ विष्णु चक्र को, तीनों लोकों को जलानेवाले अत्यन्त उग्र पितामह के ब्रह्मास्त्र को, विचित्र वज्र को, पुनः शुष्क तथा आर्द्र दो वज्रों को, अत्यन्त भयानक तथा रौद्र शूल को, कंकाल तथा मूसल को, मोहन, शोषण, संतापन, तथा विलापन नामक अस्त्र को, वायव्य, मथन, कापाल, कैंकर, कभी विफल न होनेवाली कठोर शक्ति, क्रौञ्चास्त्र, ब्रह्मशिरा अस्त्र, सोमास्त्र, शिशिरास्त्र, कम्पन, शातन, त्वाष्ट्र, तथा सुभैरव, अत्यन्त क्षुब्ध करनेवाले कालमुद्गर को, महा पराक्रम दिखाने वाले तपनास्त्र को, संवर्तन, मोहन, तथा श्रेष्ठ मायाधर को, प्रिय गान्धर्व अस्त्र, असिरत्न, नन्दक, प्रस्वापन, प्रमथन, अति श्रेष्ठ वारुण नामक अस्त्र तथा पाशुपत नामक विख्यात अस्त्र को, जिसकी गति कहीं भी नहीं रोकी जाती, हय शिरा नामक अस्त्र को, ब्राह्म अस्त्र को, नारायण, ऐन्द्र तथा अद्भुत सार्प नामक अस्त्र को, कभी विफल न होनेवाले पैशाच, शामन, शोषद, अति विक्रमी भावन, प्रस्थापन तथा विकम्पन—इन उपर्युक्त अस्त्रों को उस समय हिरण्यकशिपु ने नृसिंह भगवान् के ऊपर इस प्रकार छोड़ा जैसे जलती हुई अग्नि के ऊपर आहुति छोड़ी जाती है । अस्त्रों द्वारा प्रकाशमान होते हुए नरसिंह भगवान् को असुरनायक हिरण्यकशिपु ने इस प्रकार आवृत कर लिया था जैसे ग्रीष्मऋतु में हिमालय को सूर्य अपनी किरणों द्वारा । भगवान् के

अमर्ष रूप वायु से कँपाया गया वह दैत्यों का सैन्य समुद्र क्षणभर में इस प्रकार क्षुब्ध हो गया जैसे समुद्र मैनाक पर्वत को डुबोकर क्षुब्ध हो गया था। अनन्तार भाले, फाँसी, तलवार, गदा, मूसल, वज्र, अग्नि समेत अशनि, बड़े-बड़े वृक्ष, मुद्गर, भिन्दिपाल, शिलाएँ, उलूखल, पर्वत, जलती हुई तोपें तथा कठोर दण्डों से युद्ध होने लगा। ॥१९-३२॥

इन्द्र के समान वज्र एवं अशनि को धारण किये हुए वेगपूर्वक वे दानवगण हाथ में फाँसी लेकर, चारों ओर से प्रहार के लिए हाथ को उठाये हुए उस युद्ध भूमि में तीन शिरोंवाले नाग पाश के समान स्थित हुए दिखाई पड़ रहे थे। वे सभी सुवर्ण की बनी हुई मालाओं से विभूषित अंगों वाले थे, पीले रेशमी वस्त्रों से अपने अंगों को सजाये हुए थे। उस समय वे मोतियों की माला से सुशोभित पार्श्ववाले विशाल पंखोंवाले हंसों के समान सुशोभित हो रहे थे। केयूर तथा बलय से सुशोभित उत्कट पराक्रमशाली, वायु के समान तेजस्वी उन दानवों के शिर चारों ओर से प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान कान्तिमान शोभित हो रहे थे। चारों ओर से गिरते हुए देदीप्यमान, अतिशय प्रभाववाले, महान् अस्त्रों के समूहों तथा महा बलवान् राक्षसों से घिरे हुए नरसिंह भगवान् उस समय इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे जिस प्रकार निरन्तर बरसने वाले मेघों तथा वृक्षों द्वारा किये गये घने अंधकार से युक्त गुफाओंवाला पर्वत। उन महान् अस्त्रों के समूहों तथा महाबलवान् दैत्यों द्वारा प्रहार किये जाने पर भी प्रतापशाली नरसिंह भगवान् इस प्रकार रणभूमि में विचलित नहीं हुए जैसे प्रकृति से ही गम्भीर हिमवान् पर्वत। अग्नि के समान उग्र स्वरूप वाले नरसिंह भगवान् से डरवाये गये दैत्यों के समूह इस प्रकार विचलित हो गये जैसे प्रबल वायु के थपेड़ों से क्षुब्ध होने पर समुद्र में लहरियाँ दौड़ने लगती हैं। ॥ ३३—३८ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में नरसिंह प्रादुर्भाव नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६२ ॥

एक सौ तिरसठवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! उस रणभूमि में कुछ दानव खर के आकार वाले, खर के समान मुख वाले, मकर तथा सर्प के समान मुखवाले थे, तो कुछ मृग के समान मुखवाले तथा शूकर के समान मुखवाले थे। कुछ प्रातःकालीन सूर्य के समान मुखवाले थे तो अन्य अग्नि के समान मुखवाले थे। कुछ आधे चन्द्रमा के समान मुखवाले तथा प्रज्वलित अग्नि के समान मुखवाले थे। भयानक आकृति वाले, मुख बाये हुए कुछ असुर हंस तथा मुरगे के समान मुखवाले थे। कुछ सिंह के समान भयानक मुखवाले किसी को चट कर जाने की ताक में थे, कुछ काक तथा गृद्ध के समान मुखवाले थे। कुछ दो जीभों वाले कुछ टेढ़े शिरवाले तथा कुछ उल्का के समान मुखवाले थे। अन्य कुछ महा ग्राह के समान मुखवाले अत्यन्त गर्वीले दानवों के समूह थे। किन्तु युद्धभूमि में उन असुरों के बाणों की वृष्टियों से पर्वत

समान दृढ़ शरीरवाले अवध्य नरसिंह भगवान् के शरीर में कुछ भी व्यथा नहीं हुई और दानवेन्द्रों द्वारा छोड़े गये वे अत्यन्त कठोर दानवों के बाण आकाश में ही पर्वत में खद्योत की भाँति प्रकाशित होकर विलीन हो गये। तब क्रोध से अभिभूत होकर उन दैत्यों ने चारों ओर से अग्नि के समान जलते हुए दिव्य प्रभावशाली चक्रों को नरसिंह के ऊपर छोड़ा। इधर-उधर उड़ते हुए उन चक्रों से समस्त आकाशमण्डल प्रलयकाल में प्रकाशमान चन्द्रमा सूर्य तथा ग्रहों के इधर-उधर भ्रमण करते हुए की भाँति दिखाई पड़ने लगा। अग्नि की लपटों के समान ऊपर प्रकाशित होते हुए उन सभी चक्रों को महात्मा नरसिंह ने अपने मुख में निगल लिया। मुख में प्रविष्ट होते समय वे चक्रों के समूह बादलों के पेट में प्रविष्ट होते हुए चन्द्रमा, सूर्य तथा अन्यान्य ग्रहों की भाँति शोभित हो रहे थे। इस प्रकार उन चक्रों के निष्फल हो जाने पर हिरण्यकशिपु ने अति प्रभावशालिनी अति कठोर बिजली के समान चमकती हुई शक्ति को नरसिंह के ऊपर छोड़ा। उस परम तेजोमयी सुप्रकाशित शक्ति को आती देख नरसिंह ने अपने अति भयानक हुङ्कार से ही भङ्ग कर दिया। भगवान् द्वारा भंग की गई वह शक्ति पृथ्वीतल पर गिरते समय इस प्रकार शोभायमान हो रही थी मानो आकाश से गिरी हुई चिनगारियों समेत बहुत बड़ी उल्का हो। नरसिंह के समीप दैत्यों द्वारा छोड़े गये उन बाणों की उज्ज्वल पंक्तियाँ नीले कमल के पत्तों की माला के समान शोभायमान हो रही थी। भगवान् नरसिंह ने अपने पराक्रम को प्रदर्शित करते हुए सुखपूर्वक गर्जना की और उस समस्त दानव की सेना को इस प्रकार सामने से हटा दिया जैसे वायु तृणों के तिनकों को उड़ा देता है। उस समय वे दैत्यों के सेनापति आकाश में जाकर बड़े-बड़े पत्थरों की वर्षा करने लगे। नरसिंह के ऊपर गिरकर वे पत्थर इस प्रकार विकीर्ण हो गए जैसे खद्योतों के समूह। तब दानवों ने अति दृढ़ पर्वतों के बड़े-बड़े शिखरों के आकारवाले, छोटी-छोटी पहाड़ियों के समान बड़े-बड़े पत्थरों की चट्टानों को शत्रुओं को वश में करनेवाले नरसिंह भगवान् के ऊपर इस प्रकार बरसाना प्रारम्भ किया जैसे जल की धारा पर्वत पर गिर रही हो। किन्तु इस प्रकार पत्थरों की वृष्टि करके भी दैत्यगण देव श्रेष्ठ भगवान् को विचलित करने में इस प्रकार असफल रहे जैसे मन्दराचल पर्वत को समुद्र इधर-उधर टस से मस नहीं कर सकता। दैत्यों ने पत्थरों की वृष्टि से कोई लाभ होता न देखकर जल की वृष्टि की, जिससे चारों ओर से मूसलाधार वृष्टि होने लगी। आकाश से गिरती हुई तिरछे वेगवाली जल की धाराओं ने चारों ओर से आकाश दिशाओं और दिशाओं के कोणों को घेर लिया। पृथ्वी और आकाश में व्याप्त हुई वह जल की धारा रात-दिन गिरती हुई भी देवाधिदेव को छू तक नहीं सकी। बाहर इधर-उधर चारों ओर से घोर वृष्टि तो होती थी पर मृगेन्द्र भगवान् के युद्ध भूमि में उपस्थित होने के कारण उनके प्रभाव से उनके ऊपर होकर वृष्टि नहीं हो रही थी। इस प्रकार पत्थर की वर्षा के निष्फल कर देने तथा जल की वृष्टि के सोख लिये जाने पर उस दैत्य ने अग्नि तथा वायु के वेगों से युक्त माया को छोड़ा। किन्तु अति द्युतिमान सहस्र नेत्रोंवाले देवराज इन्द्र ने बादलों के साथ अति घोर वृष्टि द्वारा उस अग्नि को शान्त कर दिया। युद्ध भूमि में उस माया के भी निवारित हो जाने पर दानव ने चारों ओर से अत्यन्त

घोर तथा घने अन्धकार युक्त माया को छोड़ा। अंधकार से समस्त जगत् के व्याप्त हो जाने पर उस युद्ध भूमि में दैत्य गण विविध अस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्धार्थ आये। नरसिंह भगवान् उस समय अपने तेज से देदीप्यमान सूर्य की भाँति दिखाई पड़ने लगे, दानवों ने रण में उनकी तीन रेखाओं वाली भृकुटि को ललाट में स्थित तीन पथों से जानेवाली त्रिशूल के आकार में अंकित गंगा के समान देखा। इस प्रकार अपनी सब मायाओं के निष्फल हो जाने पर दिति के पुत्रगण अत्यन्त दुःखी एवं चिन्तित होकर हिरण्यकशिपु की शरण में गये। ॥१–३०॥

तदुपरान्त अत्यन्त क्रुद्ध होकर तेज से जलते हुए की भाँति जब दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु युद्ध भूमि में आया तो समस्त जगत् अन्धकार में लीन-सा हो गया। आवह, प्रवह, विवह, उदावह, परावह, संवह तथा परिवह नामक अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी, श्रीमान्, उत्पात एवं भय की सूचना देनेवाले वायु गण आकाश में बहने लगे। जो ग्रह समस्त लोक के क्षय काल में दिखाई पड़ते थे, वे सभी उस समय आकाश में सुखपूर्वक विचरते हुए देखे गये। रात में निशाचर राहुगण हाथ में लोहे (?) लिए हुए टहलने लगे। रात में नक्षत्रों तथा ग्रहों समेत शत्रुओं को वश में करनेवाले चन्द्रमा तथा दिन में सूर्य एकदम मलिन हो गये। विस्तृत आकाशमण्डल में काला कबन्ध दिखाई पड़ने लगा। भूमि पर रह कर भी अग्नि देव चिनगारियों के समूह छोड़ने लगे एवं आकाशमण्डल में भी अवस्थित भगवान् अग्नि निरन्तर दिखाई पड़ने लगे। ज्ञात धूएँ के समान अति भयानक आकृतिवाले सूर्य आकाशमण्डल में उदित हुए दिखाई पड़ने लगे, आकाश में अवस्थित चन्द्रमा के शिखर पर ग्रह गण स्थित हो गये। उसकी बाईं तथा दाहिनी ओर से शुक्र और वृहस्पति विराजित हो गये। अग्नि के समान तेज से देदीप्यमान शनैश्चर और मंगल-ये दोनों ग्रह साथ ही साथ आकाश में दिखाई पड़ने लगे। वे सभी आकाश में दिखाई पड़नेवाले नक्षत्रगण, जो युगान्त के सूचक थे एवं अत्यन्त विषम-परिणाम देनेवाले थे, एक ही साथ आकाश मण्डल में धीरे-धीरे शिखर पर आरोहित होते हुए दिखाई पड़ने लगे। अंधकार को दूर करनेवाले चंद्रमा ने नक्षत्रों तथा ग्रहों के साथ चराचर के विनाश के लिए रोहिणी को अभिनंदित नहीं किया। राहु से ग्रस्त हुआ चन्द्रमा उल्काओं से पीडित होने लगा, उसमें जलती हुई उल्काएँ सुखपूर्वक विचरण करने लगीं। देवताओं का भी देवता जो है वह रक्त की वर्षा करने लगा और उस समय आकाशमण्डल से अति घोर शब्द करती हुई विद्युत् के रूप में उल्काएँ पृथ्वी पर गिरने लगीं। सभी वृक्ष विना अपने समय के आये अकाल ही में फूलने और फलने लगे, लताएँ सभी फलने लगीं, जो सभी दैत्यों के विनाश की सूचना दे रही थीं। फलों से फल पैदा होने लगे, पुष्पों से पुष्प फूलने लगे, देवताओं की मूर्तियाँ आँखें खोलने लगीं, बन्द करने लगीं, हँसने लगीं, रोने लगीं, जोर-जोर से चिल्लाने लगीं, धूआँ करने लगीं, जलने लगीं, इस प्रकार का उत्पात कर वे घोर भय की सूचना देने लगीं। ग्राम में उत्पन्न होनेवाले पशु पक्षी जंगली पशु पक्षियों से अति भयानक युद्ध करने लगे, गन्दे जल से युक्त होकर नदियाँ उलटी बहने लगीं, रक्त और धूलि से व्याप्त दिशाएँ प्रकाश से रहित हो गई। पूजा के योग्य वनस्पति वर्गों की पूजा (रक्षा) नहीं हुई। वे सभी वायु

के प्रवल झोकों से टूटने लगे, नम्र होने लगे, ताडित होने लगे। इसके अतिरिक्त अपराह्न में सूर्य के रहते हुए भी जीवों की छाया परिवर्तित होती नहीं दिखाई पड़ती थी। इस प्रकार युगान्त के समान भयकारी उस समय में हिरण्यकशिपु दैत्य के भवन पर, खजाने पर तथा अस्त्रागार के ऊपर मधु गिरने लगी। असुरों के विनाश तथा देवताओं की विजय के सूचक अत्यन्त घोर तथा भयानक अनेक प्रकार के उत्पात उस समय घटित होने लगे। ये ऊपर कहे गये तथा इन सबों के अतिरिक्त अन्य बहुत से उत्पात, काल की प्रेरणा तथा विधि के विधान से दिखाई पड़ने लगे। तब महाबली दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पृथ्वी के कँपा देने पर अमित तेजस्वी पर्वत तथा नागों के समूह गिरने लगे, विष की ज्वाला से पूर्ण मुखोंवाले चार शिरवाले, पाँच शिरवाले तथा सात शिरवाले सर्प गण आग उगलने लगे। वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनंजय, एलामुख, कालिय, बलवान् महापद्म, सहस्रफणों वाला प्रभावशाली हेमतालध्वज नामक नाग, महाभाग्यशाली अनन्त शेषनाग, जो कठिनाई से कँपने-वाले हैं—सभी उस समय प्रकम्पित हो उठे। पृथ्वी के धारण करनेवाले, जल के अन्दर रहनेवाले सभी जीवगण उद्दीप्त हो उठे। उस समय रणभूमि में क्रुद्ध हुए हिरण्यकशिपु ने सभी को विकम्पित कर दिया। इस प्रकार पाताल में टहलने वाले परम तेजस्वी नागगण अतिशय कम्पित हो गये, जिस समय हिरण्यकशिपु दैत्य ने पृथ्वी का स्पर्श किया। पूर्वकाल में उत्पन्न होनेवाला वह दैत्य वाराह भगवान् की भाँति दोनों होठों को चबाता हुआ उस समय शोभित हो रहा था। भागीरथी, सरयू, कौशिकी, यमुना, कावेरी, कृष्णावेणी नामक नदी, महाभाग्यशालिनी सुवेणा नदी, गोदावरी, चर्मण्वती, सिन्धु, अनेक नदियों तथा नदों का स्वामी कमलों का उत्पत्ति स्थान मणि के समान स्वच्छ जलवाला शोण नामक नद, सुन्दर जलवाली नर्मदा, वेत्रवती गौओं के देशों में बहने वाली गोमती, पूर्व सरस्वती, मही, कालमही, तमसा, पुष्प बाहिनी,—इन सभी नदियों, जम्बूद्वीप, सभी प्रकार के रत्नों से सुशोभित रत्नवट, जिसमें सुवर्ण प्रकट होते हैं और जो सुवर्ण की खानि से सुशोभित है, नामक द्वीप, जंगलों तथा पर्वतों से सुशोभित लौहित्य नामक महानद, ऋषियों तथा वीरों का उत्पत्ति स्थान कोशकरण नामक देश, बड़े बड़े ग्रामों वाले मागध देश, मुड, शुंग, सुह्म, मल्ल, विदेह, मालव, काशी, कोसल इन सब प्रदेशों को तथा विनता के पुत्र गरुड के भवन को भी, उस दैत्येन्द्र ने प्रकम्पित कर दिया, जिसे विश्वकर्मा ने कैलास पर्वत के शिखर के आकार के समान का बनाया था। अत्यन्त भयानक लाल जलवाले लौहित्य (लाल) सागर, सौ योजन ऊँचे उदय नामक पर्वत को भी, जो सुवर्ण की वेदी से सुशोभित, शोभाशाली तथा मेघों के समूहों द्वारा सुसेवित तथा सूर्य के समान देदीप्यमान सुवर्णमय साल, ताल, तमाल, तथा फूले हुए कनेर के वृक्षों से सुशोभित है, उस दैत्य ने कँपाया। सभी धातुओं से विभूषित अयोमुख नामक पर्वत को, तमाल के वनों से सुशोभित सुगंधियुक्त सुन्दर मलय नामक पर्वत को, सुराष्ट्र, वाह्लीक, शूराभीर, भोज, पाण्ड्य, वङ्ग, कलिंग, ताम्रलिप्त, उण्ड्र, पौण्ड्र, वामचूड तथा केरल देश के निवा-सियों को देवताओं तथा अप्सराओं के समूह समेत उस दैत्य ने क्षुब्ध कर दिया। इसी प्रकार महर्षि अगस्त के भवन को भी उसने कँपा दिया, जहाँ पर प्राचीन काल में कोई नहीं जाता था, तथा जहाँ पर सिद्धों

तथा चारणों के समूह सर्वदा विराजमान रहते थे। वहीं पर अनेक प्रकार के पक्षीगण कलरव किया करते थे तथा फूले हुए बड़े बड़े वृक्ष विद्यमान थे एवं सुवर्णमय पहाड़ों के शिखर सुशोभित थे। अप्सराओं के समूह वहाँ क्रीडा में निरत रहते थे। गिरिपुष्पितक नामक शोभाशाली देखने में अति मनोहर पर्वत, जो सागर का भेदन कर सूर्य तथा चन्द्रमा को विश्राम देने वाला था, वहीं अत्यन्त उच्च शिखरों से आकाश का भेदन करता हुआ स्थित था। चन्द्रमा तथा सूर्य की किरणों के समान मनोहर एवं तेजस्वी, समुद्र की अपार जलराशि से चारों ओर घिरे हुए शिखरों से शोभासम्पन्न विद्युत्वान् नामक पर्वत भी वहाँ था, जो सौ योजन में विस्तृत था। उस श्रेष्ठ पर्वत पर विजलियों के समूह सर्वदा गिरते रहते थे, वहीं पर ऋषभ शोभाशाली वृषभ तथा कुंजर नामक पर्वत भी थे, जहाँ पर अगस्त्य मुनि का सुन्दर भवन था। अत्यन्त दुरधिगम्य विशालाक्ष नामक पर्वत भी वहीं था, जो सर्पों का निवास स्थान था। इन सबको तथा पुरी, तथा भोगवती नामक नगरी—इन सबको भी दैत्येन्द्र ने कंपा दिया। महासेन, पारियात्र, गिरिश्रेष्ठ चक्रवान तथा वाराह नामक पर्वत, सुवर्णमय सुन्दर-प्राग्ज्योतिष नामक पुर, जिसमें अति दुष्टात्मा नरक नामक दानव का निवास स्थान था, मेघों के समान सर्वदा गम्भीर ध्वनि करनेवाला मेघ नामक गिरिश्रेष्ठ, हे ऋषि वृन्द! जिसमें अन्य साठ पर्वत भी सम्मिलित हैं, मध्यकालीन सूर्य के समान महागिरि सुमेरु, जिसकी कन्दराओं में नित्य ही यक्षों, राक्षसों तथा गन्धर्वों का समूह निवास करता है, महान् पर्वत हेमगर्भ, हेमसख तथा शैलराज कैलास—इन सब को भी दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु ने कँपा दिया। उस दैत्य ने सुवर्ण के कमलों से ढके हुए वैखानस नामक सरोवर, हंसों तथा कारण्डवों से आकुलित मानससरोवर, त्रिशृंग पर्वत, नदियों में श्रेष्ठ कुमारी नामक नदी, वर्फों के समूहों से ढँका हुआ मन्दर नामक पर्वत, उशीरविन्दु नामक पर्वत, गिरिराज चन्द्रप्रस्थ, प्रजापति गिरि, पुष्कर पर्वत, देवाभ्र पर्वत, रेणुक गिरि, सातों ऋषियों का क्रौञ्च नामक पर्वत, धूम्रवर्ण पर्वत—इन सबको तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य पर्वतों को, देशों को, गावों को, नदियों को तथा समुद्रों को उस दैत्यराजने कँपा दिया। महीपुत्र कपिल तथा व्याघ्रवान भी काँप उठे, सती के पुत्र आकाश में चलनेवाले तथा पाताल में निवास करनेवाले रुद्र के गण मेघों का अंकुशधारी उध्वर्ग (ऊपर जानेवाला) भी मवेग, ये सब भी कँपा दिये गये। इस प्रकार गदा तथा शूल धारण कर अति कराल रूप हिरण्यकशिपु बादलों के समूहों के समान भीषण आकृत हो, मेघों के समूहों की भाँति भयानक शब्द करता हुआ, बादलों के समूहों के समान गरजता हुआ, अति वेग से नरसिंह भगवान् के ऊपर झपटा। उस समय युद्धभूमि में ओंकार की सहायता प्राप्त कर नरसिंह ने अपने विकराल तीक्ष्ण नखों से उसे फाड़कर मार डाला। इस प्रकार उस दैत्य के विनष्ट हो जाने पर पृथ्वी, काल, चन्द्रमा, आकाश, ग्रहगण सूर्य, सभी दिशाएँ, नदियाँ, पर्वत, महासमुद्र—सभी अति प्रमुदित हुए। और तपस्वी ऋषि तथा देवगण दिव्य नामों का उच्चारण करते हुए सनातन भगवान् की प्रसन्न चित्त हो प्रार्थना करने लगे। 'हे देव! यह जो आपने नरसिंह का शरीर धारण किया है, पूर्व एवं पश्चात् दोनों अवस्थाओं को जाननेवाले लोग उसकी पूजा करेंगे।' ॥ ३१–९६ ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे भगवान्! ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र तथा अन्य श्रेष्ठ देवगण तुम्हीं हो, समस्त लोकों

के कर्त्ता, संहर्त्ता तथा उत्पत्ति स्थान तुम्हीं हो, तुम सनातन हो, परम सिद्धि वाले हो, परम देव हो, परम मंत्र हो, परम हवि हो, परम धर्म हो, परम विश्व हो, तुम्हीं परम पुराण पुरुष एवं संसार के अग्रजन्मा कहे जाते हो। परम शरीर, परब्रह्म, परम योग, परम वाणी, परम रहस्य, परम गति तथा परम पुराण पुरुष तुम्हीं कहे जाते हो। इसी प्रकार परम से परम जो पद है, वह तुम ही हो, तुम्हीं परम से भी परम देव हो, अति परम से भी परम भूत हो, लोग तुम्हीं को सर्व श्रेष्ठ पुराण पुरुष कहते हैं। तुम पर से भी परे परात्पर हो, परम रहस्य हो, परम से भी अति परम महत्त्ववाले हो, परात्पर जो महत्तत्व है, वह तुम्हीं हो, तुम्हीं परम पुराण पुरुष कहे गये हो। तुम परम से परम निधान हो, परम से भी अति परम पवित्र हो, परम से भी अति दयालु हो, तुम्हीं पुराण पुरुष एवं जगत के अग्रजन्मा कहे गये हो।' इस प्रकार लोक के पितामह भगवान् ब्रह्मा नरसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु की स्तुति कर ब्रह्मलोक को चले गये। वहाँ पर तुरुहियाँ बजने लगीं, अप्सराएँ नाचने लगीं। भगवान् विष्णु क्षीर सागर के उत्तरी तट को गये। अपने नृसिंह रूप का त्याग करके अपने पुराने अति तेजस्वी सनातन स्वरूप को धारण कर अव्यक्त प्रकृति गरुडध्वज भगवान् अति तेजोमय शोभाशाली आठ चक्कों वाले सुन्दर रथ पर आरूढ़ हो अपने निवास स्थान को गये। ॥ ९७-१०६ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में हिरण्यकशिपुवध नामक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६३॥

एक सौ चौंसठवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! आप विस्तारपूर्वक नृसिंह स्वरूप के माहात्म्य का वर्णन तो कर चुके, अब पुनः उन्हीं भगवान् के अन्यान्य स्वरूप के माहात्म्य को हम लोगों से कहिये यह समस्त जगत् किस प्रकार सुवर्णमय पद्म के रूप में था, और प्राचीन काल में किस प्रकार विष्णु भगवान् द्वारा उत्पन्न यह सृष्टि उस पद्म के मध्य में से प्रादुर्भूत हुई थी? इसे हम लोग जानना चाहते हैं। ॥१-२॥

सूत ने कहा—भगवान् मत्स्य से नृसिंह स्वरूप के माहात्म्य का वर्णन सुनकर सूर्यपुत्र मनु ने विस्मय से उत्फुल्ल नेत्र होकर पुनः केशव से पूछा। ॥३॥

मनु ने कहा—जनार्दन! पाद्म नामक महाकल्प में जब आप समुद्र के जल में विराजमान थे तो आप की नाभि से इस पद्ममय जगत् की उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी? सागर के जल में शयन करनेवाले पद्मनाभ के प्रभाव से किस प्रकार देवता तथा ऋषिगण प्राचीन काल में उस कमल से उत्पन्न हुए थे? योग जानने वालों के स्वामी! इस सम्पूर्ण योग को मुझे बताइये, उस भगवान् की कीर्ति को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती। पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु कितने दिनों तक वहाँ शयन करते हैं? तथा यह बताइये कि उनके शयन करने की अवधि कितनी है? इस काल का उद्भव कहाँ से होता है? महायशस्वी वे भगवान् कितने दिनों बाद फिर उठते हैं? उठने के बाद किस प्रकार इस जगत् की रचना करते हैं? महामुने! पूर्व काल में कौन-कौन-से प्रजापति हो गये हैं? भगवान् ने इस विचित्र सनातन जगत् को किस

ढंग से निर्मित किया है ? ब्रह्मन् ! जब इस जगत् के निवासी देवता तथा असुर गण दग्ध हो जाते हैं, सर्प एवं राक्षस नष्ट हो जाते हैं, सभी स्थावर जंगमात्मक प्रकृति नष्ट होकर शून्य में विलीन हो एक समुद्र के रूप में परिणत हो जाती है, लोक में वायु एवं अग्नि, आकाश एवं पृथ्वी तल का सर्वथा विनाश हो जाता है, केवल अत्यन्त घना अंधकार दिखाई पड़ता है। अर्थात् महाप्रलय आ जाता है ; उस समय योग में लीन महातेजस्वी, विराट्, सभी जगत् के आदि स्वामी, देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् किस प्रकार अपने विधान में तत्पर रहकर अवस्थित रहते हैं ? धर्म की महत्ता को जाननेवाले ! भगवन् ! परम भक्ति तथा श्रद्धा से युक्त हम लोगों को भगवान् विष्णु के समस्त यश को बतलाइये । ॥ ४—१४ ॥

मत्स्य ने कहा—सूर्य कुल में श्रेष्ठ ! नारायण के यश के श्रवण करने में तुम्हारी जो स्पृहा है वह तुम जैसे उच्चवंश में उत्पन्न होनेवाले के लिए सर्वथा उचित ही है। आदि पुराणों में तथा वेदों द्वारा जिस प्रकार मैंने यह कथा सुनी है, सच्चे महान् आत्मा ब्राह्मणों के कहते हुए जैसा वृत्तान्त सुन रखा है, वैसा ही तुम से बतला रहा हूँ ; सुनो । बृहस्पति के समान तेजस्वी पराशर मुनि के पुत्र आचार्य द्वैपायन वेदव्यास ने अपने तपोबल से देखकर जिस प्रकार उक्त प्रसंग का वर्णन किया है, उसी को मैं अपनी शक्ति के अनुकूल तथा जैसा कि सुन रखा है, तुम से बतला रहा हूँ । उन्होंने मुनियों से कहा था कि मुनिवृन्द ! भगवान की उक्त कथा को केवल मैं जानता हूँ । उस नारायण के परम चरित को कौन जानने का उत्साह कर सकता है, जिसे विश्व के आश्रय स्वरूप ब्रह्मा भी तत्त्वतः नहीं जान सके हैं। वे भगवान् विश्व एवं वेदों के कर्म स्वरूप हैं, महर्षियों के (ध्येय) रहस्य हैं, सभी यज्ञों के स्वामी हैं, सर्वदर्शी महात्मा जनों के परम तत्त्व हैं, अध्यात्मवादियों के चिन्तनीय विषय हैं, कुकर्मी जनों के लिए नरक हैं, इसके अतिरिक्त जगत् में जो अधिदैव दैव तथा अधियज्ञ की संज्ञा से प्रसिद्ध है, वह वस्तु वे भगवान् ही हैं, अर्थात् दैव से भी बड़े तथा समस्त यज्ञों के वे स्वामी हैं, वे परम श्रेष्ठ महर्षियों के परम ध्येय हैं, वेदों द्वारा निर्दिष्ट यज्ञ भी वे ही हैं, पंडित लोग उन्हें ही तप नाम से जानते हैं । जो कर्त्ता, कारक, बुद्धि, मन एवं क्षेत्र कहा जाता है, विविध देवगण जिसे एकमात्र प्रणव, पुरुष, शास्ता, पाँच प्रकार के प्राण, ध्रुव, अक्षर (अच्युत) काल, पाक, (परिणाम) पक्ता (पकाने वाला) द्रष्टा एवं स्वाध्याय कहते हैं, वह यही है, उससे बढ़कर अन्य कोई वस्तु जगत् में नहीं है । वही भगवान् इस समस्त जगत् का उत्पत्ति कर्त्ता तथा संहार कर्त्ता है, वही हम सब को बनाता है तथा अन्त समय में विनाश भी करता है। उसी सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाले के उद्देश्य से हम लोग यज्ञ करते हैं, उसी को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं । जो वक्ता है, जो वक्तव्य है, जिसको मैं आप लोगों को बता रहा हूँ। जो सुनाई पड़ता है, जो सुनाने के योग्य है, जो कहने का विषय कहा जाता है, जिसके विषय में कथाएँ प्रचलित होती हैं, श्रुतियाँ जिसमें तत्पर हैं, जो विश्व है, समस्त विश्व का जो स्वामी है, वही तो नारायण नाम से प्रसिद्ध है । जो सत्य है, जो अमृत है, जो अक्षर (अव्यय) है, जो परम है, जो परम भूत है, जो भविष्यमाण

है, जो जगत् में चर अचर रूप में विद्यमान् है, इसके अतिरिक्त भी जो कुछ है, वह सब कुछ पुराण पुरुष श्रेष्ठ ही है। ॥१५-२८॥

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव नामक एक सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त। ॥१६४॥

एक सौ पैंसठवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—सूर्यपुत्र मनु जी! सतयुग की अवधि चार सहस्र दिव्य वर्ष कही गई है, उसकी संध्या की अवधि आठ सौ वर्षों की है। उसमें धर्म अपने चारों चरणों से निवास करता है, अधर्म का एक चरण रहता है, उसमें उत्पन्न होनेवाले मानव अपने-अपने धर्म में निरत रहनेवाले होते हैं। ब्राह्मण लोग धर्म परायण, राजा (क्षत्रिय) गण राजकीय वृत्ति में, वैश्य कृषि कर्म में तथा शूद्र सेवा कार्य में तल्लीन रहते हैं। उस युग में सत्य, पवित्रता, तथा धर्म की अभिवृद्धि होती है, सत्पुरुषों द्वारा किये गये कर्म को लोग करते हैं तथा उसी की प्रसिद्धि करते हैं। राजन्! सभी जातियों के लोगों में सतयुग में यही व्यवहार पाया जाता है वे चाहे धर्म प्राण उच्च जाति वाले हों अथवा नीच कुल में उत्पन्न हों। सभी अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म में व्यवस्थित रहते हैं। त्रेतायुग की अवधि तीन सहस्र वर्षों की कही गई है, उसकी संध्या छः सै वर्षों की मानी गई है। उसमें अधर्म दो चरणों तथा धर्म तीन चरणों से व्यवस्थित रहता है। त्रेता-धर्म सत्य एवं सत्त्वगुण प्रधान माना गया है। ये ब्राह्मणादि वर्ण त्रेतायुग में विकार को प्राप्त हो जाते हैं—इसमें सन्देह नहीं। इन चतुर्वर्णवालों के विकारयुक्त होने के कारण आश्रम धर्म भी दुर्बल हो जाते हैं। भगवान् द्वारा रचित यह विचित्र व्यवस्था त्रेतायुग की कही गई है। अब द्वापर युग की जो रूपरेखा है उसे भी सुनो। सूर्यपुत्र मनुजी! उस द्वापर युग में रजोगुण के कारण लोग अर्थ, नीति में तत्पर रहते हैं, प्रायः सभी लोग निष्कर्म एवं क्षुद्र विचारवाले होते हैं। पूर्व त्रेतायुग में धर्म अपने दो चरणों से तथा अधर्म तीन चरणों से अवस्थित रहता है किन्तु द्वापर युग में क्रमशः क्षीण होता हुआ धर्म कलियुग में आकर क्षय को प्राप्त होता है। इस प्रकार द्वापर की समाप्ति आने तक जनता में ब्राह्मणत्व की उत्कण्ठा का विनाश हो जाता है, लोग व्रत उपवास आदि को छोड़ देते हैं। तदुपरान्त एक सहस्र वर्ष तथा दो सौ वर्ष—अर्थात् संध्या समेत बारह सौ वर्षों तक क्रूर कलियुग की अवधि मानी गई है। जिसमें अधर्म चार चरणों से तथा धर्म एक चरण से विद्यमान रहता है। उस कलियुग में उत्पन्न होनेवाले मनुष्य, कामी तथा तपस्या से रहित होते हैं, अहंकार से ग्रस्त तथा स्नेह से रहित होते हैं। न तो कोई अत्यन्त सात्त्विक होता है, न कोई साधु अथवा सत्यवादी ही होता है, प्रायः परलोक न माननेवाले एवं ब्रह्म की उपासना करनेवाले लोग उत्पन्न होते हैं। उस कलियुग में सभी ब्राह्मण शूद्रों का सा आचरण करनेवाले हो जाते

हैं। इस प्रकार कलियुग के पूर्णतया प्रवर्तित होते-होते आश्रम धर्म का उलट-फेर हो जाता है। रविनन्दन! युग की समाप्ति आते-आते तो वर्णों में सन्देह उत्पन्न हो जाता है। अर्थात् वे सभी मिल जाते हैं। इस प्रकार पहले कहे गए इन बारह सहस्र वर्षों की संख्या चारों युगों की अवधि मानी गई है। इनके उतने वर्षों का देवताओं का एक वर्ष होता है। और देवताओं के एक सहस्र वर्ष का ब्रह्मा का एक दिन होता है। इस ब्रह्मा के एक दिन के बीतने पर सभी जीवों के शरीर को अस्त होते हुए देखकर लोक के संहार करने की भावना से सभी ब्रह्मा आदि देवताओं, दैत्यों, दानवों, यक्षों, राक्षसों, पक्षियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, सर्पों, पर्वतों, नदियों, पशुओं, तिर्यग् योनिवालों (विच्छू आदि) एवं कृमियों के शरीरों से पाचों महाभूतों—पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि तथा वायु— का हरण करके महाभूत पति, भूतों का स्रष्टा भगवान् समस्त चराचर के संहारार्थ महान् विनाश करता है। वह सूर्य बनकर सभी लोगों के नेत्रों की ज्योतियों को ग्रहण करता है, वायु होकर सभी के प्राणों को समेटता है, अग्नि होकर समस्त लोकों को जलाता है, एवं मेघ होकर भयानक वृष्टि करता है। ॥१-२४॥

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव नामक एक सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त। ॥१६५॥

एक सौ छाछठवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—मनु जी! उसी प्रकार वे योगी सत्त्वमूर्ति नारायण भगवान् सूर्य का रूप धारण कर अपनी जलती हुई किरणों से समुद्रों को सोख लेते हैं, और सभी समुद्रों को पीकर सभी नदियों तथा कूपों को जल रहित कर देते हैं। किरणों से पर्वतों के जल को ग्रहण कर लेते हैं और पुनः उन्हीं किरणों से पृथ्वी को भिन्न कर के रसातल को जाते हैं और पाताल के सुन्दर जल को पान कर जाते हैं। फिर प्राणियों में निश्चय रूप से रहने वाले मल, मूत्र, मांस मज्जा आदि जलीय उपादानों को भी वे कमलनेत्र पुरुषोत्तम भगवान् ग्रहण करते हैं। फिर बलवान् वायु बनकर समस्त जगत् को प्रकम्पित करते हुए वे हरि प्राण, अपान समान् आदि वायुओं को खींचते हैं। तदनन्तर सभी देवगण एवं अन्य भूतों के तत्त्व तथा गन्ध, घ्राण (नासिका) एवं शरीर—ये सब पृथ्वी में मिल जाते हैं। जिह्वा, रस, एवं स्नेह (चिकनाहट)—ये जल में मिल जाते हैं। रूप, नेत्र तथा विपाक ये आकाश में, स्पर्श, प्राण तथा चेष्टा—ये पवन में मिल जाते हैं। इस प्रकार पुराकाल में उस भगवान् ने इस समस्त लोक की माया को क्षण भर में विनष्ट कर दिया, जो सभी प्राणियों का मन एवं बुद्धि है, जो क्षेत्रज्ञ नाम से प्रसिद्ध है, उस श्रेष्ठ परमेष्ठी हृषीकेश भगवान् के समीप में अवस्थित सूर्य की किरणों से व्याप्त, वायु द्वारा आक्रान्त, वृक्षों की शाखाओं पर आश्रित, वृक्षादि के संघर्ष से उत्पन्न सैकड़ों लपटों में जलते हुए संवर्तक नामक अग्नि ने समस्त जगत् को भस्म कर दिया। उसने पर्वत, वृक्ष, लता, गुल्म एवं तृणों को, दिव्य विमानों को तथा उन अनेक पुरों को, जो सभी आश्रय के लिए थे, भस्म

कर दिया। इस प्रकार समस्त लोकों को लोकेश भगवान् विष्णु ने भस्म कर पुनः युगान्तकारी अन्यान्य कर्मों द्वारा सृष्टि का विनाश किया। महाबलवान् उस भगवान् ने सैकड़ों सहस्रों प्रकार की वृष्टि का स्वरूप धारण कर दिव्य जल से तथा हवि से पृथ्वी को पूरित कर दिया। जिससे उस परम स्वादिष्ट अपार जल राशि से, जो परम कल्याणकारिणी एवं पवित्र थी, पृथ्वी चारों ओर से डूब गई। अपार जल वृष्टि एवं जल के समूह से छिपी हुई पृथ्वी एक महासमुद्र के रूप में परिणत हो गई, और उसपर निवास करनेवाले सभी जीव-जन्तु भी विनष्ट हो गये। बड़े-बड़े जीव जन्तुओं एवं सामर्थ्यवान् अत्यन्त तेजस्वी प्राणियों का भी विनाश हो गया। सूर्य, पवन एवं आकाश के नष्ट हो जाने पर जगत् की सभी वस्तुएँ सूक्ष्म रूप में परिणत हो गईं। इस प्रकार समुद्रों एवं देहधारियों का शोषण कर, जला कर तथा जल से आप्लावित कर वह सनातन भगवान् एकाकी होकर शयन करता है। वह अनुपम पराक्रम शाली, एक समुद्र रूप में परिणत समस्त जगन्मण्डल रूप जल में व्याप्त रहनेवाला भगवान् योग बल का आश्रय लेकर अपने पुराने स्वरूप को ग्रहण कर अनेक सहस्र वर्षों तक वहाँ शयन करता है। कोई उस अव्यक्त भगवान् का पता प्रकट रूप में नहीं ज्ञात कर सकता। वह कौन पुरुष है ? उसका क्या योग है ? कौन योग करता है ? कितने दिनों तक वह इस जगत् को एक समुद्र रूप में किये रहेगा ? और पुनः सब की रचना कब करेगा—ऐसी बातों को कोई नहीं जानता। न कोई उसे देखनेवाला है, न कोई उसके समीप जा सकता है, न कोई उसे जानता है, न कोई उसके समीप में ही पहुँचने वाला है। उसे, उसी देवश्रेष्ठ को छोड़ कर कोई अन्य जान भी नहीं सकता कि वह वास्तव में कौन है ? (अर्थात् वही अपने को जानता है।) इस प्रकार वह आकाश, पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, प्रजापति, भुवन को धारण करनेवाले (पहाड़ अथवा देवता) सुरेश्वर, पितामह ब्रह्मा, वेदों के समूह एवं महामुनि सबको प्रशान्त करके पुनः शयन की इच्छा करता है। ॥ १-२४ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव नामक एक सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥१६६॥

एक सौ सरसठवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—इस प्रकार जगत् के एक समुद्र रूप में परिणत हो जाने पर उस महासमुद्र रूपी सरोवर में महा द्युतिमान् भगवान् विष्णु हंस स्वरूप हो जल से पृथ्वी को आच्छन्न कर शयन करते हैं। महान् रजोराशि के मध्य में सागर रूपी सरोवर में सोनेवाले उन्हीं को, रजोगुण रहित, महाबाहुशाली अक्षय ब्रह्म कहा जाता है। उस समय वह प्रभु अंधकार से घिरे हुए उस महासमुद्र में अपने स्वरूप के प्रकाश से प्रकाशमान एवं सत्त्वगुण युक्त मन में समाधिलीन हो विराजमान था। यही उसका सत्त्व भाव था। वही प्रभु यथार्थतः परम ज्ञानमय है, उसी से पूर्वकाल में ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है। वही आरण्यक का रहस्य

एवं उपनिषदों का ज्ञान कहा गया है। जो यज्ञपुरुष कहा गया है, जो उसके बाद का पुरुष कहा गया है, एवं जो पुरुषोत्तम कहा गया है, वह सब यही पुरुषोत्तम है। इसी यज्ञपुरुष से प्राचीनकाल में यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणगण एवं पुरोहितगण उत्पन्न कहे गये हैं। प्रभु ने सर्वप्रथम मुख से ब्रह्मा को तथा दोनों बाहुओं से उद्गाता,[1] सामग,[2] होता[3] तथा अध्वर्यु, को उत्पन्न किया था। उस परब्रह्म के पृष्ठभाग से ब्राह्मणाच्छंसी, प्रस्तोता, मित्रावरुण[7] तथा प्रस्थाता[8] उत्पन्न हुए। हे राजन्! उदर से प्रतिहर्त्ता[9] तथा पोता[10] तथा दोनों उरुओं,—जंघाओं—से अच्छावाक्[11] और नेष्टा[12] को उत्पन्न किया। दोनों हथेलियों से आग्नीध्र[13] को और जानुभाग से सुब्रह्मण्य[14] को, दोनों चरणों से ग्रावस्तुत[15] तथा उन्नेता[16] को, जो युजुर्वेद के ऋत्विक् माने गये हैं, उत्पन्न किया—इस प्रकार जगत् पति ने सभी प्रकार के यज्ञों के प्रवक्ता इन श्रेष्ठ ऋत्विजों को उत्पन्न किया। सो यह वेदमय पुरुष ही यज्ञ नामधारी है, छहों अंगों के समेत वेद, उपनिषद् तथा क्रियाएँ—ये सभी उसमें निहित हैं। प्राचीनकाल में जिस समय समस्त जगत् एक समुद्ररूप में परिणत था, उस समय आश्चर्यमय जो घटना घटित हुई, हे विप्रवृन्द! प्राचीनकाल में मार्कण्डेय को आश्चर्य-चकित करनेवाली उस घटना को मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ, सुनिये। वे महामुनि मार्कण्डेय जी उस भगवान् की उदरस्थली में उनके वरदान की महिमा से अनेक सहस्र वर्षों तक टहलते हुए विराजमान थे। वहीं पर तीर्थयात्रा के प्रसंग से पृथ्वीतल पर दिखाई देनेवाले तीर्थों को देखते हुए पुण्यप्रद आश्रमों तथा देव मन्दिरों को देखते हुए, अनेक प्रकार के राष्ट्र, देश, विचित्र-विचित्र ग्रामों में टहलते हुए वे मार्कण्डेय जी जप, हवन आदि पुण्यकर्मों को करते हुए शान्त चित्त हो घोर तपस्या में निरत रहते थे। इस प्रकार मार्कण्डेय जी भगवान् के उदर में घूमते हुए धीरे-धीरे मुख भाग से बाहर निकल पड़े; किन्तु भगवान् की माया की महिमा से वे अपने को भगवान् के उदर में अवस्थित अथवा उनके मुख द्वार से निकला हुआ नहीं जान सके। भगवान् के मुख से निकलकर समस्त जगत् को उन्होंने एक समुद्र के रूप में चारों ओर से घोर अन्धकार में छिपा हुआ देखा, जिससे उनके हृदय में अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ और अपने जीवन में भी उन्हें सन्देह हो गया। उसी समय चित्त में भगवान् के दर्शन से अति प्रसन्न होकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए। जल के बीच में खड़े हुए मार्कण्डेय जी सोचने लगे कि यह मेरे मन में इसी प्रकार की चिन्ता उत्पन्न हो रही है वा मुझे मोह तो नहीं हो गया है अथवा मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ, परन्तु स्पष्ट है कि मैं इनमें से किसी एक का अनुभव कर रहा हूँ, इस प्रकार अत्यन्त क्लेश से युक्त संसार तो सचमुच नहीं हो सकता। चन्द्रमा, सूर्य, वायु, पर्वत, पृथ्वीतल आदि से विहीन यह भला कौन-सा लोक है—इस प्रकार की चिन्ता उनके हृदय में उत्पन्न हुई। आगे चलकर उन्होंने पर्वत के समान विशालकाय पुरुष को जल में आधा डूबा हुआ शयन करते हुए देखा, जो समुद्र में बादल की भाँति शोभायमान हो रहा था। अपने तेज से वह किरणों

१-१६ ये सोलह पुरोहित चारों वेदों के माने गये हैं।

से उद्दीप्त भास्कर की भाँति दिखाई पड़ रहा था। अपने तेज एवं प्रकाश से उस अन्धकारमयी रजनी में वह जाग्रत-सा दिख रहा था। इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि जिस समय उस विशेष पुरुष को यथार्थ रूप में निश्चित करने के लिए कि 'आप कौन हैं,' विस्मयान्वित होकर समीप पहुँचे, उसी समय पुनः उदर प्रदेश में कर दिये गये। इस प्रकार पुनः उदरगत होकर मार्कण्डेय अत्यन्त विस्मित हुए और बाहर के उस आश्चर्यमय दृश्य को स्वप्न माना। वहाँ पहुँच कर जिस प्रकार पहले वे तीर्थ यात्रा आदि में निरत रहते थे उसी प्रकार पुनः पृथ्वी-पर्यटन करने लगे और वहाँ पवित्र तीर्थ स्थानों एवं पवित्र जलवाली नदियों, विविध प्रकार के पवित्र आश्रमों को देखने लगे। भगवान् के उदर में अवस्थित यजमानों को यज्ञ कराकर दक्षिणा ग्रहण करनेवाले यज्ञकारी ब्राह्मण पुरोहितों को सैकड़ों की संख्या में देखा, वहाँ रहनेवाले ब्राह्मण आदि चारों वर्ण अपने-अपने धर्म एवं आश्रमों में सत्कर्म में परायण थे, उन चारों आश्रमों को मैं तुम्हें बता चुका हूँ। इस प्रकार सौ वर्ष तक बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनि के समस्त पृथ्वी के घूमते रहने पर भी भगवान् की उदरस्थली का अन्त नहीं दिखाई पड़ा। इसी के बाद वे फिर घूमते-घूमते मुख द्वार से बाहर निकल पड़े और सामने वरगद की शाखा में छिपे हुए एक बालक को उन्होंने देखा। पूर्व की भांति उस समय भी समस्त जगत् एक महासमुद्र के रूप में था, आकाश चारों ओर हिम से आच्छादित था, लोक के इतने विशाल प्रदेश में कोई भी प्राणी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था तथापि वह बालक व्यग्र नहीं था। उसे देख कौतूहल से युक्त मार्कण्डेय मुनि अत्यन्त विस्मित हुए और सूर्य के समान अति तेजस्वी उस बालक की ओर देखने में असमर्थ से हो गये। चिन्ता में निमग्न मार्कण्डेय मुनि जल में खड़े हुए देव की माया से विमोहित होकर इस दृश्य को पूर्वकाल में देखा हुआ सा मानने लगे। और उस अगाध जलराशि में विस्मित होकर भय से संत्रस्त नेत्र हो दुःखित होने लगे। तत्पश्चात् बाल योग धारी पुरुषोत्तम भगवान् ने मेघ के समान गम्भीर स्वर से मार्कण्डेय के लिए स्वागत बचन कहा—और कहा 'वत्स! मत डरो, तुम्हें डरना नहीं चाहिये यहाँ मेरे पास चले आओ।' भगवान् की वाणी सुनकर भय श्रम आदि से पीडित मार्कण्डेय मुनि बाल रूप धारी भगवान् से बोले। ॥ १-३७ ॥

मार्कण्डेय ने कहा—'कौन है, जो इस तरह मेरा नाम लेकर मेरी कठोर तपस्या का अपमान कर रहा है, तथा दिव्य सहस्र वर्षों तक कही जानेवाली मेरी दीर्घायु को भी अपमानित कर रहा है। देवताओं में भी मेरा ऐसा व्यवहार समुचित नहीं है, अर्थात् यदि तुम कोई देवता हो तब भी तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिये। देवेश ब्रह्मा भी मुझे 'दीर्घायु' कहकर पुकारते हैं। कौन है, जो ऐसे महान् अज्ञानांधकार में लीन होकर जीवन रहित हो 'मार्कण्डेय' इस प्रकार मेरा नाम लेकर मृत्यु का मुख देखना चाहता है?' ॥ ३८-४० ॥

सूत ने कहा—इस प्रकार बालरूपधारी भगवान् से क्रोधपूर्वक कहकर महामुनि मार्कण्डेय जब चुप हो गये तब मधुसूदन भगवान् उसी प्रकार पुनः बोले। ॥ ४१ ॥

श्री भगवान् ने कहा—'वत्स! मैं तुम्हारा पिता हृषीकेश हूँ, मैं ही तुम्हारी दीर्घायु का देने

वाला पुराण प्रसिद्ध गुरु हूँ, तुम क्यों नहीं मेरे पास आते ? पुत्र की इच्छा करने वाले तुम्हारे पिता अंगिरा मुनि ने पूर्वकाल में अति घोर तपस्या करके मेरी आराधना की थी तब अति प्रभावशाली आत्मभूत महर्षि की उस घोर तपस्या से प्रसन्न होकर मैंने अमित तेजस्वी तुमको पुत्र रूप में उन्हें प्राप्त होने का वरदान दिया था। अपने आत्मीय भक्त के पुत्र तुम्हारे विना कौन ऐसा साहस कर सकता है जो इस एक समुद्र में योग मुद्रा में क्रीडा करते हुए मुझे देख सके।' तदनन्तर भगवान् की ऐसी बातें सुनकर विस्मय से विकसित नेत्र हो लोकपूजित दीर्घायु महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि ने शिर से अञ्जलि बाँधकर प्रसन्नमुख हो अपने नाम तथा गोत्र का उच्चारण कर उस बाल रूपधारी भगवान् की प्रार्थना की। ॥ ४२-४७ ॥

मार्कण्डेय ने कहा—निष्पाप ! मैं तुम्हारी इस माया को तात्त्विक दृष्टि से जानना चाहता हूँ, जो आप इस प्रकार का बालक रूप धारण कर इस विशाल समुद्र के मध्य में अवस्थित हो रहे हैं। प्रभो ! आप किस नाम से लोक में प्रसिद्ध होते हैं, इस प्रकार जल में शयन करने वाले आप को मैं महनीय आत्मा समझ रहा हूँ, आपके विना कौन इस प्रकार यहाँ अवस्थित हो सकता है ? ॥ ४८-४९ ॥

श्री भगवान् ने कहा—'ब्रह्मन् ! सभी भूतों का विनाशकर्त्ता मैं नारायण हूँ, जिसे लोग 'सहस्र-शीर्षा' (सहस्र शिरोंवाला) आदि नामों से पुकारते हैं। मैं आदित्य वर्ण पुरुष हूँ, यज्ञों में मेरा नाम ब्रह्ममय यज्ञ है। मैं हवि का वहन करने वाला अग्नि हूँ, जल में निवास करनेवाले जीवों का स्वामी हूँ, अव्यय (कभी न नाश होने वाला) हूँ। मैं ही इन्द्र के स्थान पर शोभित शक्र हूँ। वर्षों में मैं परिवत्सर हूँ, मैं योगी हूँ, मैं ही युग कहा जाता हूँ; युगों का अन्त करनेवाला भी मैं ही हूँ, मैं ही समस्त जीवों, देवताओं एवं अन्य वस्तुओं में निवास करने वाला हूँ। भुजंगों में मैं शेष हूँ, सब पक्षियों में मैं गरुड हूँ, सब जीवों का मैं कृतान्त हूँ, समस्त जगत् का काल भी मुझे कहा गया है। मैं सभी आश्रमों में निवास करने वालों का धर्म हूँ, तप भी मेरा नाम है, मैं दिव्य नदी हूँ, क्षीर का महा समुद्र मैं ही हूँ, जो कुछ परम तत्त्व है, वह सब मैं एक प्रजापति रूप में हूँ। मैं सांख्य हूँ, मैं योग हूँ। मैं वह परम पद हूँ, मैं यज्ञ दान आदि की क्रियाएँ हूँ। मैं समस्त विद्याओं का स्वामी कहा गया हूँ। मैं ज्योति हूँ, मैं वायु हूँ, मैं पृथ्वी हूँ, मैं आकाश हूँ, मैं जल हूँ, समुद्र हूँ, नक्षत्र समूह हूँ, दशों दिशाएँ भी मैं ही हूँ। मैं वर्ष हूँ, मैं चन्द्रमा हूँ, मैं बादल हूँ, मैं सूर्य हूँ, क्षीर सागर में निवास करने वाला हूँ, समुद्र में मैं वडवामुख नामक अग्नि हूँ, संवर्तक नामक अग्नि होकर मैं ही जलरूप हवि का पान करता हूँ, मैं ही परम पुराण कहा जाता हूँ, उसी प्रकार मैं ही सब का आश्रय दाता हूँ। मैं ही भूत, भविष्य एवं वर्तमान—सब का उत्पत्ति कर्त्ता हूँ। हे विप्र ! जो कुछ तुम देख रहे हो, जो कुछ सुन रहे हो, लोक में जो कुछ अनुभव कर रहे हो, उन सब में मेरा ही स्मरण करो। मैंने ही पूर्वकाल में इस समस्त जगत् की सृष्टि की है, मुझे ही इस की रचना पुनः करनी है, मुझे देखो ! हे मार्कण्डेय ! प्रत्येक युगों में पुनः मैं ही इस समस्त जगत् की सृष्टि करूँगा। अतः इन सब वस्तुओं का सम्बन्ध मुझसे ही समझो। मेरे धर्म के श्रवण की इच्छा से तुम पुनः आकर मेरे उदर में सुखपूर्वक विचरण करो, समस्त देवताओं तथा ऋषियों के साथ ब्रह्मा मेरे शरीर में ही अवस्थित हैं।

प्रकट एवं अप्रकट योगवाले मुझको असुरों का संहारकर्त्ता मानो। मैं ही एकाक्षर रूप एवं तीन अक्षर रूप तारक मंत्र हूँ। तीनों वर्गों से परे, तीनों वर्गों का प्रयोजन देनेवाला ओंकार मैं ही हूँ।' समस्त जगत् के स्वामी महामतिशाली भगवान् ने इस प्रकार की बातें कहते समय शीघ्रता से अपने मुख को पुनः विकसित किया। परिणामतः मुनिसत्तम मार्कण्डेय भगवान् के उदर प्रदेश में पुनः प्रविष्ट हो गये। और उस एकान्त प्रदेश में शाश्वत हंस रूप भगवान् के विषय में अधिकाधिक श्रवण करने की इच्छा से सुखपूर्वक विचरण करने लगे। वहाँ घूमते हुए मार्कण्डेय ने इस प्रकार हंस ध्वनि सुनी। 'मैं ही वह शास्वत हंस हूँ, जो समर्थ होकर चन्द्रमा तथा सूर्य से रहित भी इस विशाल समुद्र में धीरे-धीरे घूमता हुआ पुनः इस विशाल संसार की रचना करता हूँ। ।।५०-६७

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव नामक एक सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त ।।१६७।।

एक सौ अरसठवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—इस प्रकार जल में निवास करते हुए उस महान् आत्मा ने अपने शरीर को छिपाकर जल में ही तपस्या की, उस समय वे जलचर जन्तुओं के कुल में उत्पन्न हुए। तदनन्तर उस महाबलवान् महान आत्मा ने लोक के सर्जन करने की इच्छा की और पाँच महाभूतों की समष्टि से बने हुए उस विश्व का चिन्तन किया। वायुरहित समुद्र में विश्व का चिन्तन करनेवाले भगवान् के सम्मुख उस आकाश रहित जलमय गम्भीर समुद्र के जल में, जिसमें जगत् सूक्ष्म रूप से वर्तमान था, कुछ संक्षोभ उत्पन्न हुआ। उसी से उठनेवाली लहरों से सूक्ष्म छिद्र उत्पन्न हुआ, उस छिद्राकाश से अभिहत होकर शब्द एवं वायु का प्रादुर्भाव हुआ। दुर्द्धर्ष वायु वहीं पर अवकाश प्राप्त कर वृद्धि को प्राप्त हुई। उस बढ़ती हुई वायु से समुद्र पुनः विक्षुब्ध हुआ, और संक्षोभित हुए उस समुद्र की जलराशि मन्थन के समान उद्वेलित हुई एवं मथे हुए उस जल में काले धूमोंवाली वैश्वानर नामक अग्नि उत्पन्न हुई, उस अग्नि ने समुद्र का बहुत-सा जल सोख लिया, जिससे समुद्र के जल के विनाश हो जाने से छिद्र विस्तृत आकाश रूप में परिणत हो गया। उस विभु के आत्म तेज से उद्भूत जल अत्यन्त पवित्र तथा अमृत के रस के समान सुस्वादु हुआ। छिद्र से आकाश उत्पन्न हुआ और आकाश से वायु प्रादुर्भूत हुई। इन आकाश और वायु के संघर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई, जो वायु से उत्पन्न कही जाती है। महाभूतों को उत्पन्न करनेवाले देवाधिदेव इन तत्त्वों को उद्भूत हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, एवं लोक सृष्टि के लिए इन महाभूतों को उपस्थित देखकर ब्रह्मा की उत्पत्ति एवं अनेक स्वरूपवाली अन्य आवश्यक वस्तुओं के विषय में चिन्तन किया। चारों युगों के सहस्र वार बीत जाने तक जितने जीवात्मा पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं, उन सब में सबसे अधिक विशुद्ध आत्मावाले को ब्रह्मा कहते हैं। योग के जाननेवाले प्रभु ने, पृथ्वी पर तपस्या से पवित्र आत्मावाले महर्षियों में जो

ज्ञान देखा जाता है, योगियों में योग करने की जो क्षमता पाई जाती है, उन सब गुणों से युक्त, सम्पूर्ण उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त, उस विश्व के रचने की योग्यतावाले महात्मा को विश्व की सृष्टि के लिए ब्रह्मा के पद पर नियुक्त किया। तदनन्तर उस अपार जलराशि में महीश अच्युत भगवान् विष्णु ने, जो सभी लोकों की रचना करनेवाले हैं, स्वयं क्रीडा करते हुए विधिपूर्वक आनन्द का अनुभव किया। और अपनी नाभि से सहस्र पंखड़ियोंवाले रजरहित सुवर्णमय एक कमल की उत्पत्ति की, जो सूर्य के समान अनुपम कान्ति से युक्त था। अग्नि की जलती हुई लपटों के समान देदीप्यमान, निज शरीर की रोमावलि के समान सुन्दर दिखाई पड़नेवाला, मनोहर कान्तियुक्त, शरत्कालीन सूर्य के समान शोभित वह कमल परम शोभासम्पन्न था। ॥१-१६॥

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव प्रसंग में पद्मोद्भव नामक एक सौ अरसठवाँ अध्याय समाप्त। ॥१६८॥

एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—तदनन्तर भगवान् ने समस्त भुवन के स्रष्टा योगियों में श्रेष्ठ अति तेजस्वी चारों ओर मुंहवाले ब्रह्मा की रचना की और अनेक योजनों में विस्तृत उस सुवर्णमय कमल में सभी राज-लक्षणों से सुभोभित तेजोमय सभी गुणों से संयुक्त ब्रह्मा उत्पन्न हुए। पुराणों की महिमा जाननेवाले उस कमल को पृथ्वी का उत्तम स्वरूप मानते हैं, महर्षिगण उसे नारायण से उत्पन्न हुआ मानते हैं। जो पद्म है वही रसा नाम से पृथ्वी देवी कही जाती है, और जो उस पद्म में बोझीले पदार्थ हैं, उसे लोग दिव्य गुणयुक्त पर्वत जानते हैं। हिमवान्, सुमेरु, नील, निषध, कैलास, मुंजवान, गन्धमादन, पवित्र त्रिशिखर, सुन्दर मन्दर, उदय, पिंजर तथा विन्ध्य—ये पर्वत पुण्यशील सिद्ध महात्माओं तथा देवताओं के समूहों के निवास स्थान तथा सभी प्रकार के मनोरथ एवं फलों को देनेवाले हैं। इन सभी पर्वतों के मध्यभाग में जम्बू द्वीप की अवस्थिति कही जाती है। जम्बू द्वीप की पहचान है, जहाँ पर यज्ञ की क्रियाएँ होती हैं। इन उपर्युक्त पर्वतों से दिव्य अमृत रस के समान सुस्वादु जल चूकर जिनमें बहता है वे ही दिव्य, सैकड़ों तीर्थ स्थानों से युक्त सुरम्य नदियाँ कही जाती हैं। उस कमल के चारों ओर जो अत्यन्त सुरम्य केसरें हैं, वे ही इस पृथ्वी के असंख्य धातु पर्वत कहे जाते हैं। राजन्! जो उस पद्म के अधिक संख्या पत्ते हैं, वे ही पहाड़ों से घिरे हुए दुर्गम म्लेच्छों के देश हैं, जो नीचे के पत्ते वाले हैं, वे क्रमशः दैत्यों, सर्पों, तथा पतंगों के निवास स्थान कहे जाते हैं। उन सब दैत्यों सर्पों आदि का महासमुद्र जहाँ पर है; वह रसा नाम से कहा जाता है, वहीं पर महापाप करनेवाले मानव डूबते हैं। उस पद्माकार पृथ्वीमण्डल के चारों ओर चार समुद्र कहे गये हैं। इस प्रकार नारायण की इच्छा मात्र से वह

पुष्कराकार पृथ्वी उत्पन्न कही गई है, अतः उसके उत्पन्न होने का वृत्तान्त भी पुष्कर नाम से प्रसिद्ध है। यही कारण है कि उस वृत्तान्त को जाननेवाले प्राचीन महर्षियों ने, जो परम याज्ञिक माने गये हैं, वेद के दृष्टान्तों से यज्ञ में पद्म का विधान बतलाया है। इस प्रकार उस भगवान् ने समस्त पृथ्वी का पर्वत नदी एवं सरोवरों के साथ निर्माण किया। तदुपरान्त अतुलित प्रभावशाली, सूर्य के समान शोभाशाली, सामर्थ्यवान् स्वयम् उत्पन्न होनेवाले भगवान् जगन्मय उस पद्म का विधान करके उस महासमुद्र में धीरे से पुनः शयन करने लगे। ॥१-१८॥

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव नामक एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त। ॥१६९॥

एक सौ सत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—इस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयम्भू के योग निद्रा में निमग्न हो जाने पर तपस्या के विघ्न स्वरूप रजस्तमोमय मधु और कैटभ नामक दो असुर एक ही समय उत्पन्न हुए। रजोगुण तथा तमोगुण से उत्पन्न वे दोनों महाबलवान् विघ्नकारी राक्षस उस महा समुद्र में समस्त जगत् को क्षुब्ध करने लगे। उस समय वे दोनों लाल वर्ण के दिव्य वस्त्रों को धारण किये हुए थे, उनके अगले दाँत अति उज्ज्वल होने से चमक रहे थे, वे किरीट तथा कुण्डल धारण किये हुए थे, उज्ज्वल केयूर और वलय से सुशोभित थे। वे महान् विक्रमी थी, आँखें लाल थीं, वक्षस्थल दृढ़ थे, भुजाएँ विशाल थीं, आकृति देखने में महागिरि के समान दिखाई पड़ती थी। उस समय वे चलते हुए पर्वत के समान लग रहे थे। उनके मुख नवीन मेघ के समान श्यामल तथा सूर्य के समान तेजोमय थे, वे गदा के अग्रभाग तथा हाथों से विद्युत् के समान अत्यन्त भीषण दिख रहे थे। वे दोनों पैरों के विन्यास से समुद्र को फेंकते हुए के समान मालूम हो रहे थे और शयन करते हुए मधुसूदन भगवान् विष्णु को कम्पित कर रहे थे। इस प्रकार महा समुद्र में घूमते हुए उन दोनों ने कमल में विराजमान योगियों में श्रेष्ठ चतुर्मुख ब्रह्मा को देखा, जो उस समय अन्यन्त तेजोमय थे तथा नारायण की आज्ञा से मानसिक संकल्प द्वारा समस्त प्रजाओं की एवं सभी देवताओं, ऋषियों तथा असुरों की सृष्टि कर रहे थे। उन आसन्न असुरनायकों ने ब्रह्मा के समीप जाकर अति क्रोध से व्याकुलित नेत्र हो कहा—'चार भुजा वाले, श्वेत रंग की पगड़ी बाँधे कमल के मध्य में निवास करनेवाले तुम कौन हो? अज्ञान से योग की आराधना कर शान्तचित्त हो यहाँ मौज कर रहे हो, यहाँ आवो। कमल से उत्पन्न होने वाले! मुझ दोनों के साथ युद्ध करो, इस महा समुद्र में तुम हम दो महान् स्वामियों के सामने एक नगण्य व्यक्ति हो, असमर्थ हो, यहाँ कहाँ से तुम्हारी उत्पत्ति हो गई है? किसने तुम्हें इस काम में नियुक्त किया है? तुम्हारी सृष्टि किसने की है? तुम्हारी रक्षा भला कौन करता है? तुम्हारा नाम क्या है?'॥१-१२॥

ब्रह्मा ने कहा—सहस्र नेत्रों वाला, जिसे लोग जान नहीं सकते वह प्रभु लोक में एक कहा गया है, तुम लोग दो दिखाई पड़ रहे हो, अतः तुम दोनों के नाम तथा काम को मैं जानना चाहता हूँ । ॥१३॥ ।

मधु कैटभ ने कहा—महा बुद्धिमान् ! हम दोनों से बढ़कर इस विश्व में कोई नहीं है, हम दोनों ने रजोगुण तथा तमोगुण से समस्त विश्व को आवृत कर लिया है । हम दोनों रजोगुण एवं तमोगुण से संयुक्त हैं, ऋषिगण हम दोनों से पार नहीं पा सकते, हम धर्म एवं शील को छिपाते हुए समस्त देहधारियों से पराजित नहीं किये जा सकते । प्रत्येक युग में हमी दोनों लोक का वहन करते हैं, हम दोनों के लिए ही अर्थ, काम, यज्ञ एवं स्वर्ग का विधान बना हुआ है । जहाँ पर आनन्द एवं सुख है, लक्ष्मी एवं यज्ञ है, प्राणियों के मन में जितनी अभिलाषाएँ हैं, वे सब मुझ दोनों की ही समझनी चाहियें । ॥१४-१७॥

ब्रह्मा ने कहा—योग के यत्न से एवं दृष्टि से मैंने पूर्व काल में योग की आराधना की थी, उसी के कारण मैं सत्त्व गुण को प्राप्त कर सका हूँ । जो इस जगत् में सर्वश्रेष्ठ है, मतिमान् है, जिसकी संज्ञा ही 'योग' है, जो वास्तव में सत्त्वरूप ही है, जो विश्व का उत्पत्तिकर्त्ता एवं रजोगुण तथा तमोगुण का भी सृष्टिकर्त्ता है, उसी से सत्त्वगुण युक्त, रजोगुणमय एवं तमोगुणमय जीवों की उत्पत्ति होती है । वही देव आप दोनों के विनाश करने में समर्थ है, और वही संहार भी करेगा । ॥१८-२०॥

ठीक इसी अवसर पर भगवान् विष्णु ने शयन करते हुए अपनी माया से अपनी बाहु को अनेक योजन तक विस्तृत बनाया । जिससे उस लम्बी बाहु वाले की बाहु से खींचे जाते हुए वे दोनों दैत्य इधर-उधर दीन दशा में घूमते हुए मोटे पक्षी की भाँति दिखाई पड़ने लगे । तदनन्तर वे दोनों दैत्य सर्वदा एकरूप में रहनेवाले हृषीकेश पद्मनाभ भगवान् विष्णु के पास जाकर प्रणाम करते हुए बोले—'देव ! विश्व को उत्पन्न करनेवाले ! पुरुषोत्तम ! एकमात्र आपको हम जानते हैं, हम दोनों की आप रक्षा करें, आप ही हमारे कल्याण रूप हैं । आप का दर्शन किसी को कभी विफल नहीं होने देता, आपको हम लोग शाश्वत जानते हैं, इसीलिये आपके दर्शनार्थ हम दोनों यहाँ आये हुए हैं । शत्रुओं को वश में करनेवाले देव ! अतएव हम आपसे यह वरदान प्राप्त करने की प्रार्थना कर रहे हैं । युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले ! आपका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता ।' ॥ २१-२६ ॥

श्री भगवान् ने कहा—दानवों में श्रेष्ठ असुर द्वय ! किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए आप लोग इस वरदान को माँग रहे हैं, आप लोगों की आयु तो समाप्त हो गई है । क्या अभी अधिक जीवित रहने को इच्छुक हैं ? ॥ २७ ॥

मधुकैटभ ने कहा—महाव्रतशाली देव ! जिस स्थल पर कोई भी नहीं मरा है, वहाँ और आपके हाथों द्वारा हम दोनों अपनी मृत्यु की अभिलाषा करते हैं । ॥ २८ ॥

श्री भगवान् ने कहा—'तुम दोनों दैत्यों की उत्पत्ति भविष्य में अवश्य ही श्रेष्ठ शक्तिशाली रूप में होगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, मैं सत्य कह रहा हूँ ।' इस प्रकार उन श्रेष्ठ दैत्यों को वरदान

देकर विश्व में श्रेष्ठ सुरोत्तम सनातन भगवान् विष्णु ने रज एवं तमोगुणमय उन भयानक दैत्यों के जोड़े को अपनी जाँघों के मूल भाग पर रखकर मार डाला। ॥ २९-३० ॥

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव प्रसङ्ग में मधुकैटभ वध नामक एक सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७० ॥

एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ महातेजस्वी ब्रह्मा जी उस कमल में अवस्थित होकर ऊपर हाथ किये हुए घोर तपस्या कर रहे थे। उस समय वे अपने अतिशय तेज तथा शोभा से चारों ओर घनीभूत अंधकार का विनाश कर रहे थे, एवं अपनी अनुपम आभा से सहस्र किरणों वाले सूर्य की भाँति दिखाई पड़ रहे थे। उस समय अव्यय नारायण भगवान् ने, जो समस्त जगत् को कल्याण प्रदान करनेवाले हैं, अति तेजस्वी महा यशस्वी योगाचार्य का स्वरूप धारण किया। ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सांख्याचार्य परम बुद्धिमान् कपिल भी वहाँ आगये, फिर वे दोनों अपने-अपने मार्ग में तत्पर भूत एवं भविष्य को जानने वाले महर्षियों से पूजित महात्मा स्तुति करते हुए अमित तेजस्वी ब्रह्मा के पास पहुँचे और बोले—'विशाल जगत् के रचनेवाले तीनों लोकों में पूजे जाने वाले दृढ़ आसन पर विराजमान ब्रह्मा ही सभी जीवों के निर्माण करनेवाले तथा प्रमुख हैं।' उन दोनों प्रार्थना करनेवालों की ऐसी बात सुनकर योगज्ञानी ब्रह्मा ने अपने योगबल द्वारा इन तीनों लोकों की रचना अपनी ब्रह्मशक्ति के अनुरूप की। तदनन्तर ऋषि ने एक मंगलाचार सम्पन्न एक पुत्र की उत्पत्ति की। ब्रह्मा का वह मानस पुत्र उत्पन्न होते ही अजन्मा एवं अव्यय ब्रह्मा के अग्रभाग में चुपचाप विनम्र भाव से खड़ा हुआ और बोला—'भगवन्! मैं आपकी क्या सहायता करूँ, उसे बतलाइये।' ॥१-९॥

ब्रह्मा ने कहा—'महा बुद्धिमान्! यह जो कपिल नामक महर्षि तथा नारायण ब्रह्म रूप भगवान् सम्मुख खड़े हैं, वे तुम से जो तत्त्व की बातें बतायें, उनका पालन करो।' ब्रह्मा के ऐसा कहने पर वह पुत्र हाथ जोड़कर पुनः भगवान् और कपिल के सम्मुख उपस्थित हुआ और बोला 'भगवन्! मैं क्या करूँ? ॥१०-११॥

भगवान् ने कहा—'ब्रह्मन्! जो कुछ सत्य एवं शाश्वत कहा गया है वह अठारह प्रकार का है, जो सत्य है, जो अनश्वर है, वही परम पद है, तुम उसी का अनुसरण करो।' ऐसी बातें सुनते ही वह पुत्र उत्तर दिशा की ओर प्रस्थित हुआ और वहाँ पहुँच कर अपने ज्ञान के तेज से उसने ब्रह्मत्व की प्राप्ति की। तदनंतर महामना भगवान् ब्रह्मा ने मन से उसी प्रकार के 'भुव' नामक द्वितीय पुत्र को उत्पन्न किया और वह भी उनके सम्मुख आकर बोला—'पितामह! मैं क्या करूँ?' पितामह की आज्ञा से उस द्वितीय पुत्र भुव ने भी पृथ्वी से जाकर उन सांख्य एवं योग के आचार्य कपिल तथा विष्णु से वेदाभ्यास किया और कालान्तर में चलकर परम पद प्राप्त किया। उस दूसरे पुत्र के भी इस प्रकार चले जाने पर भगवान् ब्रह्मा ने सांख्य आदि विषयों में प्रवीण 'भूर्भुव' नामक तीसरे पुत्र को उत्पन्न किया।

ब्रह्मा के इस तृतीय पुत्र ने भी उन्हीं दोनों भाइयों की भाँति गोपतित्व (इन्द्रियजित्त्व) की प्राप्ति कर उत्तम गति प्राप्त करो। इस प्रकार ये तीन पुत्र महात्मा शम्भु (ब्रह्मा) के जिस प्रकार उत्पन्न हुए वैसा मैं तुम्हें कह चुका। ॥१२-२०॥

तदनन्तर ब्रह्मा के उन पुत्रों को अपने साथ ले भगवान् नारायण तथा यतीश्वर कपिल जी अपने स्थान को चले गये। जिस समय वे दोनों चले गये उसी समय ब्रह्मा जी पुनः अपने आसन पर बैठकर परम व्रत एवं तपस्या में लीन हुए। किन्तु इस प्रकार अकेले तपस्या करते हुए वे कुछ भी आत्म-सन्तोष का लाभ नहीं कर सके। तदनन्तर उन्होंने शरीर द्वारा एक परम सुन्दरी स्त्री को उत्पन्न किया, जो तपस्या, तेजस्विता, ओजस्विता एवं नियम में उन्हीं के समान एवं लोक की सृष्टि में भी समर्थ थी। तपस्या में तत्पर रह कर ब्रह्मा ने उसी स्त्री के साथ विहार करते हुए कालयापन किया। तदनन्तर ब्रह्मा ने वेदों द्वारा पूजित तीन चरणोंवाली गायत्री की सृष्टि की। फिर भगवान् ने प्रजापतियों का निर्माण किया और समुद्रों की भी सृष्टि की, तथा गायत्री से उत्पन्न हुए वेदों को भी प्रकट किया। फिर पितामह ने अपने ही समान तेजस्वी पुत्रों की सृष्टि की, जो विश्व में विविध प्रजाओं के सृष्टिकर्त्ता हुए, समस्त प्रजाएँ उन्हीं से उत्पन्न हुईं। सर्वप्रथम उन्होंने अपने पुत्र महातपस्वी धर्म को उत्पन्न किया, जो सभी मंत्रों से अभिरक्षित, अति पवित्र तथा महान् तपस्वी थे। फिर दक्ष, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, गौतम, भृगु, अंगिरा और मनु नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। इन अत्यन्त अद्भुत कर्मशाली, पितामह के महर्षि पुत्रों ने तेरह प्रकार की विशेषताओं से युक्त धर्म का प्रतिपादन एवं अनुसरण किया। ॥२१-२८॥

राजन्। अदिति, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंहिका, मुनि, ताम्रा, क्रोधा, सुरता, विनता और कद्रु—ये बारह दक्ष की कन्याएँ थीं। मरीचि के कश्यप नामक पुत्र उनके तपोबल के माहात्म्य से उत्पन्न हुआ। सूर्यपुत्र! तदनन्तर दक्ष ने अपनी उन बारह कन्याओं को कश्यप को सौंप दिया और रोहिणी आदि पवित्र सभी नक्षत्र संज्ञक कन्याओं को चन्द्रमा को समर्पित किया। लक्ष्मी, मरुत्वती, साध्या, शुभा विश्वेशा तथा सरस्वती—इन पाँच कल्याणदायिनी देवियों की रचना ब्रह्मा ने पूर्वकाल में की थी। राजन्! सभी कार्यों को देखनेवाले ब्रह्मा ने इन कन्याओं को श्रेष्ठ देवता धर्म को समर्पित किया। जो ब्रह्मा की अर्धरूपवती इच्छानुकूल स्वरूप धारण करनेवाली, जगत् का कल्याण करनेवाली परम हितैषिणी रूपवती स्त्री थी वह अपनी इच्छा के अनुरूप सुरभि (गौ) का रूप धारण कर ब्रह्मा के समीप आई। लोकपूजित ब्रह्मा ने लोक सृष्टि के उद्देश से गौओं की उत्पत्ति के लिए उसके साथ समागम किया, जिससे उसमें धूम के समान काले आकार वाले विशाल पुत्र उत्पन्न हुए, जो रात्रि होने के पूर्व सन्ध्या के बादलों के समान भीषण थे और अपने तेज से सब को भस्म-से कर रहे थे। इस प्रकार उत्पन्न होनेवाले वे पुत्र रोते हुए दौड़ते हुए पितामह की निन्दा कर रहे थे। इसी रोने तथा दौड़ने के कारण वे सभी रुद्र नाम से पुकारे जाते हैं। निर्ऋति, शम्भु, अपराजित, मृगव्याध, कपर्दी, दहन[1], ईश्वर, अहिर्बुध्न्य, कपाली, पिंगल, तथा महातेजस्वी

[1] एक पुस्तक में इस स्थान पर 'खर' पाठ पाया जाता है।

सेनानी—ये ग्यारह रुद्र के नाम से विख्यात हैं। उसी सुरभि नामक देवी में यज्ञ की साधन भूत समस्त गौएँ, उत्तम (माया ?) गौएँ तथा पशु, जिनका कभी विनाश नहीं होता, बकरियाँ, हंस तथा उत्तम अमृत उत्पन्न हुए। जितनी उत्तम रसयुक्त औषधियाँ हैं, वे भी उसी में उत्पन्न हुईं। लक्ष्मी ने धर्म के संयोग से काम की तथा साध्या ने साध्य देवगणों को उत्पन्न किया। भव[1], प्रभव, ईश, असुरहन्ता, अरुण, अरुणि, विश्वावसु, बल, ध्रुव, हविष्य, वितान, विधान, शमित, वत्सर, सभी असुरों के विनाशक भूति एवं सुपर्वा नामक देवताओं को अति सुन्दरी वासव की अनुगामिनी साध्या देवी ने, जिसे लोक नमस्कार करता है, उत्पन्न किया। सुदेवी में धर्म के संयोग से प्रथम धर[2] दूसरे कभी विनष्ट न होने वाले ध्रुव, तीसरे विश्वावसु चौथे भगवान् सोम तदनन्तर अपने ही समान सुन्दर आप, उसके उपरान्त यम, सातवें वायु तथा आठवें निर्ऋति[3] नामक वसु उत्पन्न हुए। ये सभी धर्म के सन्तान कहे जाते हैं। इसी प्रकार सुना जाता है कि धर्म के संयोग से विश्वा में विश्वेदेवों (गणदेवता) की उत्पत्ति हुई। महाबाहु दक्ष, पुष्करस्वन, चाक्षुष मनु, मधु, महोरग, विश्रान्तकवपु, बाल, महायशस्वी विष्कम्भ, अत्यन्त पराक्रमी, तेजस्वी एवं सूर्य के समान कान्तिवाले गरुड इन विश्वेदेव संज्ञक पुत्रों को देवताओं की माता विश्वा ने उत्पन्न किया। मरुत्वती ने मरुत्वान नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। अग्नि, चक्षु, रवि, ज्योति, सावित्र, मित्र, अमर, शरवृष्टि, सुकर्ष, महाभुज, विराजवाच विश्वावसु, मति, अश्वमित्र, चित्ररश्मि, निषधन, हूयन्त, वाडव, चारित्र, मन्दपन्नग, बृहन्त, बृहद्रूप और पूतनानुग—इन मरुत संज्ञक देवताओं को पूर्वकाल में मरुत्वती ने उत्पन्न किया था। अदिति ने कश्यप के संयोग से बारह आदित्य संज्ञक देवताओं को उत्पन्न किया। इन्द्र, विष्णु, भग, त्वष्टा, वरुण, अर्यमा, रवि, पूषा, मित्र, धनद, धाता और पर्जन्य—इन आदित्य संज्ञक पुत्रों को, जो स्वर्ग में निवास करनेवाले देवताओं में सब से अधिक श्रेष्ठ हैं, अदिति ने उत्पन्न किया था। आदित्य की सरस्वती नामक पत्नी में दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए, जो समस्त स्वर्ग निवासी देवताओं के पूज्य तपःश्रेष्ठ और गुण श्रेष्ठ कहे जाते हैं। दनु ने दानवों को तथा दिति ने दैत्यों को उत्पन्न किया। काला ने कालकेय नामक असुरों तथा राक्षसों को उत्पन्न किया। अनायुषा के पुत्र महा बलवान् व्याधि संज्ञक पुत्र उत्पन्न हुए। सिंहिका ग्रहों की माता तथा मुनि गन्धर्वों की माता कही जाती है। हे राजन्! इसी प्रकार ताम्रा पवित्रात्मा अप्सराओं की माता कही जाती है। राजन्! क्रोधा के सभी भूत तथा पिशाच कहे जाने वाले पुत्र उत्पन्न हुए। नृपतिवर! यक्षों तथा राक्षसों के समूहों को भी क्रोधा ने उत्पन्न किया था, चार पैरों वाले जीव—विशेष कर गौएँ—सुरसा की सन्तति कही जाती हैं। विनता ने गरुड तथा अन्य पक्षधारी जीवों को उत्पन्न किया। देवी कद्रू ने पृथ्वी को धारण करनेवाले सभी नागों को उत्पन्न किया। परमतपस्विन्!

---

[1] अग्नि पुराण में साध्यों की संख्या बारह दी गई है, और उनके नाम इस प्रकार हैं, मनः, मन्ता, प्राण, नर, अपान, वीर्यवान्, विनिर्भय, नय, हंस, नारायण, वृष और प्रभुश्च। [2] पूना की मूल पुस्तक में 'वर' पाठ पाया जाता है। [3] अग्नि पुराण तथा ऋग्वेद संहिता में वसुओं का नाम इस प्रकार दिया गया है, आप, ध्रुव, सोम, धर, अनल, अनिल, प्रत्यूष तथा प्रभास।

इसी प्रकार से समस्त लोक की सृष्टि वृद्धि को प्राप्त हुई। राजन्! उस समय महान् आत्मा विष्णु भगवान् की पुष्कर सम्बन्धी सृष्टि का प्रादुर्भाव एवं विस्तार उक्त प्रकार से हुआ, व्यास द्वारा कहे गये पुष्कर सम्बन्धी सृष्टि का वर्णन मैं कर चुका और उस सृष्टि से महर्षियों द्वारा स्तुति किये गये पुराण पुरुष विष्णु एवं हरि प्रभृति नामों से विख्यात प्रभु की महिमा भी बतला चुका। जो मनुष्य सर्वदा विशेष कर—पर्वकाल में—इस पुराण की श्रेष्ठ गाथा को गौरवपूर्वक सुनता है, वह सभी प्रकार के रागद्वेष से मुक्त हो कर ऐहलौकिक सुखों का अनुभव कर पारलौकिक—स्वर्गीय—सुखों के फलों का उपभोग करता है। नेत्र, मन, वचन एवं कर्म द्वारा जो व्यक्ति कृष्ण को प्रसन्न करता है उसे कृष्ण भी प्रसन्न रखते हैं। इसके प्रभाव से राजा राज्य की प्राप्ति करता है, निर्धन को उत्तम धन की प्राप्ति होती है, नष्ट आयु वाले को दीर्घायु की प्राप्ति होती है, पुत्र का अभिलाषी पुत्र प्राप्त करता है। विष्णु की भक्ति करनेवाला प्राणी यज्ञ, वेद, मनोरथ, विविध प्रकार की तपस्याओं द्वारा उत्पन्न हुए फल, सम्पत्ति एवं अन्य विविध पुण्यों को प्राप्त करता है। जिस-जिस मनोरथ की वह अभिलाषा करता है, वह वह लोकेश्वर भगवान् से उसे प्राप्त होता है। हे राजाओं में श्रेष्ठ! जो सभी कार्यों को छोड़कर भगवान् विष्णु की इस पुष्कर सम्बन्धी सृष्टि के प्रादुर्भाव की कथा को सुनता है, उसका कभी अमंगल नहीं सोता। हे महाभाग्यशाली! महान् आत्मा भगवान् विष्णु के इस पुष्कर सम्बन्धी सृष्टि के प्रादुर्भाव एवं विस्तार की कथा का व्यास के वाक्यों एवं श्रुतियों के आधार पर मैं कीर्तन कर चुका। ॥ २९-७१ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव नामक एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त। ॥१७१ ॥

एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—राजन्! अब सतयुग में भगवान् विष्णु के विष्णुत्व तथा हरित्व का, देवताओं में उनके बैकुण्ठत्व तथा मनुष्यों में उनके कृष्णत्व का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। उस ईश्वर के कर्मों की गति अत्यन्त गहन है। उसके बीते हुए तथा भविष्य में होने वाले अवतारों की कथा यथार्थतया सुनो। ॥ १-२ ॥

जो यह अव्यक्तात्मा भगवान् हैं वे व्यक्त चिह्न वाले भी कहे जाते हैं, उन्हें नारायण, अनन्त आत्मा, सभी के उत्पत्तिकर्ता एवं अव्यय नाम से भी कहते हैं। वे सर्वदा एक रूप में रहनेवाले भगवान् नारायण (जलशायी) होकर भी ब्रह्मा, वायु, सोम, धर्म, इन्द्र तथा वृहस्पति रूप में प्रकट होते हैं। प्रत्येक युगों में वे अदिति के भी पुत्र होते हैं, अतएव भगवान् विष्णु (उपेन्द्र) नाम से इन्द्र के छोटे भाई के रूप में भी वे विख्यात होते हैं। इन भगवान् का अदिति के घर में पुत्र रूप में जन्म देवताओं के शत्रु दैत्य, दानव एवं राक्षसों के संहार के लिए होता है। महान् आत्मा भगवान् ने प्राचीन काल में सर्वप्रथम ब्रह्मा की उत्पत्ति,

की, और उस सर्व प्रथम पुरुष ने प्राचीन कल्प में प्रजापतियों की उत्पत्ति की। और पुनः ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न होनेवाले उत्तम चरित्रवाले मनुष्यों को उत्पन्न किया। उन महात्माओं के संयोग से शाश्वत ब्रह्म, जो अब तक एक रूप में वर्तमान था, अनेक रूपों में विभक्त हुआ। यह आश्चर्यमय कीर्तन करने योग्य भगवान् विष्णु के कर्मों का अनुकीर्तन, जिसे मैं कर रहा हूँ, सुनो। ॥१–९॥

सतयुग में विख्यात वृत्रासुर के निधन हो जाने पर त्रैलोक्य विख्यात तारकामय युद्ध हुआ था। जिसमें संग्राम में कठिनता से जीते जानेवाले भयानक दानवों ने सभी देवताओं के समूहों, यक्षों, सर्पों तथा राक्षसों का घोर संहार किया था। युद्ध भूमि में निर्बल दैत्यों द्वारा मारे जाते हुए देवगण युद्ध से विमुख होकर मन से अपने रक्षक भगवान् नारायण की शरण में गये। इसी अवसर पर मेघों ने धूम रहित अंगारे के समान जलती हुई कान्ति से सूर्य चन्द्रमा एवं ग्रहों के समूहों के साथ समस्त आकाश मण्डल को आवृत्त कर लिया, उस समय उनमें प्रचण्ड विजलियाँ उद्दीप्त हो रही थीं, वे भयानक शब्द कर रहे थे। एक दूसरे के वेग से अभिहत होकर सातों वायु भी बहने लगी थीं। उद्दीप्त विजली एवं जल को बरसानेवाले मेघों के समूहों से, वज्र के समान वेगशाली अनल एवं अनिल से तथा अति भयानक उत्पातों से सारा आकाशमण्डल जल सा रहा था। उस समय आकाशमण्डल से सहस्रों उल्काएँ पृथ्वी पर गिर रही थीं, दिव्य देवताओं के विमान इधर से उधर गिरते-पड़ते हुए उड़ रहे थे। चारों युगों के बीत जाने पर सभी लोकों का जिस प्रकार भयकारी विनाश होता है उसी प्रकार उस उत्पात के समय सभी वस्तुएँ रूप रहित हो गई थीं। अर्थात् अंधकार में लीन हो गयीं। सभी पदार्थ शोभा हीन हो गये, कहीं पर किसी वस्तु के अस्तित्व का कोई पता ही नहीं लगता था। अंधकारराशि में छिपी हुई दसों दिशाएँ भी उस समय नहीं प्रकाशित हो रही थीं। उस समय प्रलयकालीन मेघों से घिरी हुई काली रूप धारिणी देवी आकाश में प्रविष्ट हुईं एवं घोर अन्धकार से आवृत्त आकाशमण्डल, जिसमें सूर्य छुप गये थे, नहीं शोभित हो रहा था। उस अवसर पर भगवान् ने अपने दोनों हाथों से उस अत्यन्त निविड अन्धकार के साथ उन मेघ समूहों को खींचकर अपने दिव्य श्यामल शरीर को दिखलाया। ॥१०-२०॥

मेघ एवं कज्जल के समान श्यामल वर्ण, मेघ के समान केश वाले, तेज एवं शरीर-दोनों से काले पर्वत के समान दिखाई पड़नेवाले, जाज्वल्यमान पीताम्बर धारण किये हुए, तपाये हुए सुवर्ण के आभूषण से विभूषित, धूम एवं अन्धकार के समान काले शरीरवाले, उठी हुई प्रलयकालीन अग्नि के समान देदीप्यमान, चतुर्भुज, द्विगुणित पुष्ट कंधेवाले, किरीट से बालों को छिपाये हुए, सुवर्ण के समान शोभायमान, शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित भगवान् को लोगों ने देखा। चन्द्रमा तथा सूर्य की किरणों के समान सुप्रकाशित, पर्वत के शिखर की भाँति ऊँचा दिखाई पड़नेवाले, नन्दक नामक अपने खड्ग से सुशोभित हाथवाले, सर्पों के मुख के समान तीक्ष्ण वाणों को धारण किये हुए विचित्र एवं उद्दण्ड शक्ति, शंख चक्र एवं गदा

युक्त अद्भुत एवं विशाल पर्वत के समान विष्णु भगवान् को लोगों ने देखा। क्षमा मूल थी, श्री वृक्ष थी, शार्ङ्ग धनुष शिखर था, वह स्वर्ग निवासी देवताओं को सुन्दर फल देनेवाला था, स्वर्ग की सुन्दरियाँ पल्लव रूप थीं, वह पर्वत सभी लोकों के मन को रमणीय लगनेवाला तथा सभी जीवों को मनोहर दिखाई पड़नेवाला था। विविध देवताओं के विमान उस पर वृक्ष रूप थे, बादलों से गिरनेवाला जल मीठे झरनों का जल था, विद्या एवं अहंकार सारभूत सामग्री थी, महाभूत उस पर उगनेवाले वनस्पति थे, वे विशेष पत्रों से शोभायमान थे, ग्रह एवं नक्षत्रगण पुष्प रूप में थे। दैत्यों के लोक उसके महान् कन्धे थे, इस प्रकार वह विष्णुरूप शैल मर्त्य लोक में सुप्रकाशित हो रहा था। ॥२१-२८॥

रसातल के महान् आश्रय पर टिका हुआ वह विष्णु रूप महासमुद्र घोर शब्द कर रहा था, बड़े-बड़े मृगेन्द्र को फँसानेवाले पाश उसमें फैल रहे थे, पक्षधारी जन्तुगण उसमें आवास ले रहे थे। शील एवं अर्थ उसमें पवित्र सुगन्धि की समृद्धि बिखेर रहे थे, सभी लोक बड़े विशाल वृक्ष के समान थे। परमेश की जो अव्यक्त एवं अनन्त सत्ता थी, वही उसमें जल रूप थी, व्यक्त जो अहंकार था, वही उसका फेन था। महाभूत गण ही उसमें तरंगों के समूह थे, ग्रह एवं नक्षत्र उसमें बुदबुदों के समान शोभायमान हो रहे थे, देवताओं के विमान ही पक्षी रूप में व्याप्त हो रहे थे, बादल ही उस समुद्र के आटोप एवं उत्कर्ष से विदित हो रहे थे। उस महा समुद्र में जन्तुओं एवं मत्स्यों के समूह व्याप्त थे, पर्वत उसमें शंखों के समूह थे, सत्त्व, रजस् एवं तमस्—इन तीनों गुणों के विषय ही उसमें तरंग रूप थे, सभी लोक बड़े-बड़े मत्स्य रूप में दिख रहे थे। वीरगण वृक्ष एवं लताओं के गुल्म रूप में थे, बड़े-बड़े भुजङ्ग ही सेवार थे, द्वादश आदित्य ही उस समुद्र के महाद्वीप थे, एकादश रुद्र उसके नगर थे। आठ वसु रूपी पर्वतों से वह संयुक्त था, उस महा समुद्र में त्रैलोक्य में व्याप्त सलिल राशि थी। संध्याओं की संख्या ही उसमें लहरियाँ थीं, सुपर्णरूप वायु से वह सेवित हो रहा था। दैत्यों एवं राक्षसों के समूह उसमें ग्राह रूप थे, यक्ष एवं सर्प बड़े बड़े मत्स्य रूप में थे, महाबलवान् पितामह एक मात्र उसमें प्रभावशाली जीव थे। वह समुद्र सभी स्त्री रूप रत्नों से शोभायमान था। श्री, कीर्ति, कान्ति तथा लक्ष्मी रूप नदियों से सुशोभित था। काल, योग, एवं महापर्वों के विनाश एवं उत्पत्ति का कर्त्ता था। इस प्रकार योग के महान् तट वाले उस महासमुद्र रूप विष्णु को, जो देवताओं के भी देवता; वरदायक अपने भक्तों के ऊपर दयाभाव रखने वाले, अनुग्रह करनेवाले, शान्ति प्रदान करनेवाले एवं मंगलदायी हैं, देवताओं ने देखा। उस समय वे भगवान् हरे घोड़े वाले इन्द्र के रथ पर विराजमान थे, उस रथ की पताका पर गरुड विराजमान थे। ग्रहगण, चन्द्रमा एवं सूर्य भी उसमें यथास्थान शोभायमान हो रहे थे, मन्दराचल उस रथ में श्रेष्ठ धुरी के स्थान पर था। इस प्रकार उस रथ में असंख्य प्रकाश किरणें प्रकाशित हो रही थीं, जिससे प्रकाशमान होकर वह विशाल रथ सुमेरु पर्वत की भाँति गम्भीर दिखाई पड़ रहा था। विचित्र ढंग की ताराएँ उसमें पुष्पों के स्थान पर थीं, ग्रह एवं नक्षत्र भी उसमें यथास्थान जुड़े हुए थे, इस अनुपम दिव्य रथ में समासीन, भयानक परिस्थिति में अभयदान देनेवाले भगवान् को आकाश मार्ग में दैत्यों द्वारा पराजित

देवताओं ने देखा और इन्द्र को आगे कर हाथ जोड़ कर जय जय कार करते हुए उन शरणागत वत्सल भगवान् की शरण में प्रस्थान किया ।।२९-४१।।

देवाधिदेव भगवान् विष्णु ने देवताओं की उस करुणापूर्ण वाणी को सुनकर महायुद्ध में दानवों का विनाश करने का विचार किया और आकाश में अवस्थित हो उत्तम शरीर को धारण कर प्रतिज्ञा पूर्ण यह वचन कहा—'मरुतगण (देवताओ) ! शान्ति धारण कीजिये, डरिये मत । मैं सभी दानवों को जीत चुका हूँ, आप लोग पुनः अपने तीनों लोकों को वापिस लीजिये ।' दृढ़प्रतिज्ञ भगवान् की अमृत के समान आनन्द-दायिनी ऐसी बात को सुन कर वे देवगण अति सन्तुष्ट तथा प्रसन्न हुए । तदनन्तर वह निविड अन्धकार नष्ट हो गया और वे बादल भी छिन्न-भिन्न हो गये । शान्तिपूर्ण सुखदायिनी वायु बहने लगी, दसों दिशाएँ भी अति शान्त हो गईं । नक्षत्रों एवं चन्द्रमा की ज्योति शुभ्र हो गई और वे सभी प्रदक्षिणा करने लगे । ग्रहगण किसी प्रकार का उपद्रव नहीं कर सके और समुद्र भी प्रशान्त हो गये, सभी मार्ग धूलि से रहित हो गये तथा स्वर्ग आदि तीनों वर्गों में भी शान्ति स्थापित हो गई । नदियाँ जैसे पहले शान्ति काल में बहा करती थीं वैसी हो गईं तथा समुद्रों का विक्षोभ भी बन्द हो गया । मनुष्यों की इन्द्रियाँ मांगलिक विचारों एवं कामों में लगने लगीं और अन्तरात्मा शुद्ध हो गई । महर्षिगण शोक दुःख आदि से विरत रह कर उच्च स्वर से वेदों का पाठ करने लगे, यज्ञों में सुन्दर सुस्वादु पके हुए हविष्यान्न को अग्नि प्राप्त करने लगे । इस प्रकार भगवान् विष्णु के शत्रुओं के विनाशार्थ प्रतिज्ञा पूर्ण वचन को सुन कर सभी लोग आनन्दित मन से अपने धर्मों में तल्लीन हो गये ।।४२-५१।।

श्री मात्स्य महापुराण में तारकामय संग्राम नामक एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।।१७२।।

एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा— इस प्रकार उस समय भगवान् विष्णु के अभय वचन को सुनकर दैत्यों तथा दानवों ने उस युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए विपुल उद्योग किया । मय दानव ने अपने सुवर्ण निर्मित बारह सौ हाथ लम्बे अक्षय रथ पर, जो अति विशाल सुन्दर विस्तृत जुआ से संयुक्त, चार चक्कों वाला, किंकिणी के जालों से शब्दायमान, गैंडे के चर्म से मढ़ा हुआ, रुचिर रत्नों के जालों एवं सुवर्ण से परिष्कृत, जटित मृगों के समूहों से आकीर्ण, पक्षियों की पंक्तियों से विराजमान, दिव्य अस्त्र एवं तरकसों से सजाया हुआ, मेघ के समान गम्भीर ध्वनि करने वाला, सुन्दर धुरी से युक्त, मनोहर तल से संयुक्त, गगन के समान, गगन चुम्बी पताका से विभूषित, गदा तथा परिघ से भरा हुआ, मूर्तमान समुद्र की भाँति दिखाई पड़नेवाला, सुवर्ण के बने हुए केयूर तथा वलय से आभूषित, सुवर्ण से मढ़े हुए कूबर (पहिये के काष्ठ को संयुक्त करनेवाला काष्ठ) वाले, सुन्दर पताका एवं ध्वजा से युक्त, आदित्य (सूर्य) समेत मन्दराचल की भाँति दिखाई पड़ने वाला,

गजराज के चर्म से आवेष्ठित, कहीं-कहीं सिंह के रूप से युक्त, एक सहस्र रीछों से जुते हुए, घने बादल के समान भीषण गर्जना करनेवाला था, अधिरोहण किया। वह दिव्य सुन्दर रथ आकाश मार्ग में चल रहा था, और शत्रुओं के रथों को पराजित करनेवाला था। सुमेर के समान उस सुन्दर रथ पर सूर्य की भाँति मय युद्ध की आकांक्षा से अधिरूढ़ हुआ। ॥१-७॥

तारकासुर एक ऐसे रथ पर सवार हुआ जो शब्द कर रहा था, जिसके सभी अंग सुवर्णमय थे, आकार में पर्वत के समान दिखाई पड़ रहा था, अति घने काले कज्जल के समूह के समान शोभा पा रहा था, काले लौह की बनी हुई दिव्य पहियों तथा जुआ से सुसज्जित किया गया था, कहीं कहीं पर अंधकार को दूर करती हुई किरणें बाहर प्रकाशित हो रही थीं। वह रथ चलते हुए ऐसा शब्द कर रहा था मानों बादल गरज रहा हो। लोहे के बने हुए बड़े-बड़े गवाक्षों एवं खिड़कियों से वह भली भाँति सुशोभित था, लोहे के बने हुए परिघ, क्षेपणी (भिन्दिपाल) तथा मुद्गरों से भी भरा हुआ था, भाले, फाँसी तथा असंयुक्त कंटकों से आकीर्ण था, भयदायी तोमर एवं परशु भी उसमें सुशोभित हो रहे थे। शत्रुओं की सेना की ओर झुका हुआ वह रथ दूसरे मन्दराचल की भाँति दिखाई पड़ रहा था, उसमें एक हजार गधे जुते हुए थे। तारकासुर दानव उस भीषण रथ पर अधिरूढ़ हुआ। तदनन्तर अति क्रुद्ध होकर विरोचन नामक दानव हाथ में गदा लेकर उस सेना के मुख भाग में देदीप्यमान शिखरवाले पर्वत के समान अवस्थित हुआ। शत्रु की सेना को विध्वंस करनेवाला हयग्रीव नामक दानव अन्य सहस्र रथों के साथ अपने विशाल रथ पर आरूढ़ हुआ। एक सहस्र किष्कु (एक किष्कु का परिमाण बारह अंगुल का है) के परिमाण में विस्तृत विशाल धनुष को ग्रहण कर टंकोर करते हुए बराह नामक दानव ने वृक्षों समेत पर्वत की भाँति युद्ध भूमि में प्रवेश किया। खर नामक दानव अति दर्प के कारण अपने नेत्रों से क्रोध द्वारा उत्पन्न जल को गिराता हुआ, दातों एवं ओठों को कटकटाता हुआ संग्राम के लिए उपस्थित हुआ। अतिशय पराक्रमशाली त्वष्टा नामक दानव आठ हाथियों से युक्त रथ पर सवार होकर दानवों की सेना को एक व्यूह में खड़ा करने के लिए इधर-उधर भ्रमण करने लगा। विप्रचित्ति दानव का पुत्र श्वेत नामक दानव श्वेतवर्ण के कुण्डल को धारण कर, श्वेत पर्वत के समान विशाल आकार युक्त हो युद्ध के लिए प्रस्थित हुआ। बलवान् बलि का पुत्र अरिष्ट नामक दानव, जो पर्वतों को कँपा देनेवाला था, पर्वत की शिलाओं को हथियार बना कर युद्धार्थ प्रस्तुत हुआ। अत्यन्त हर्ष से युक्त होकर किशोर नामक दैत्य भी युद्ध में आया। इस प्रकार क्रमानुसार दैत्य गण कवच पहनकर युद्ध में उपस्थित हुए। नवीन मेघ के समान श्यामल वर्ण का लम्ब नामक दानव, लम्बे वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित होकर उस दैत्य की सेना में सूर्य की भाँति उदित हुआ। मुख, दाँत, एवं आँख से भी युद्ध करनेवाला स्वर्भानु नामक दैत्य दैत्यों की सेना में इस प्रकार दिखाई पड़ रहा था जैसे कुहरे में सूर्य। शत्रुओं के लिए अति भयानक हंस नामक दानव दैत्यों में सबसे आगे उपस्थित हुआ। कुछ लोग घोड़ों पर सवार थे, अन्य कुछ लोग हाथियों के कन्धों पर बैठे हुए थे, अन्य कुछ लोग सिंह तथा बाघों पर सवार थे, कुछ अन्य बाराह और रीछों पर भी बैठे थे। कुछ गधे और ऊंटों पर चढ़ कर चल रहे थे, कुछ

कुर्चों पर भी बैठे हुए थे। कुछ अन्य भयानक मुखवाले पैदल चल रहे थे, कुछ एक पाद तथा आधे पादवाले राक्षस युद्ध की अभिलाषा से नाच रहे थे। बहुतेरे उसी में शब्द कर रहे थे, कुछ कूद रहे थे, कुछ खुश होकर सिंहों की भाँति दहाड़ रहे थे अन्य कुछ बलवान् दानव गण शोर मचा रहे थे। ॥८–२७॥

इस प्रकार युद्धभूमि में उपस्थित वे दानवगण शिला, मूसल, गदा तथा भयानक परिघ आदि हथियारों को लेकर परिघ के समान भीषण अपने हाथों से देवताओं को धमकी देने लगे और फाँसी, भाले, परिघ, तोमर, अंकुश, पट्टिश, तोप, शतघार तथा मुद्गर आदि शस्त्रास्त्रों से युद्धक्रीडा करने लगे। बड़ी-बड़ी शिलाओं, पर्वत के शिखरों, उत्तम लोहे के बने हुए परिघों तथा चक्रों से वे बड़े-बड़े दैत्यगण आनन्दित होकर सेना में घूमने लगे। इस प्रकार युद्ध में अति बलवान् एवं मदोन्मत्त उन दानवों की सारी सेना उद्धत बादलों की सेना के समान देवताओं के सम्मुख उपस्थित हुई। अद्भुत पराक्रमशाली सहस्रों दैत्यों से आकीर्ण वायु, अग्नि, पर्वत एवं बादल के समान भीषण वह दानवों की सेना उस रणभूमि में युद्ध करने की प्रबल इच्छा से पागलों की भाँति दिखाई पड़ने लगी। ॥२८-३२॥

श्री मात्स्य महापुराण में तारकामय संग्राम नामक एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७३॥

एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—रविनन्दन! तुम दैत्यों की सेना के विस्तार का वर्णन तो सुन चुके हो, अब देवताओं की—विशेषकर विष्णु भगवान् की—सेना का विस्तार भी सुनो! आदित्यगण, वसुगण रुद्रगण, महाबलवान् दोनों अश्विनीकुमार—इन सबों ने अपनी-अपनी सेना एवं अपने-अपने अनुचरों को साथ लेकर क्रमानुसार कवच धारण किया। सबसे आगे लोकों की पालना करनेवाले, सहस्रनेत्र पुरुहूत इन्द्र, जो समस्त देवताओं के सेनापति हैं, सुरगज ऐरावत[1] पर आरूढ़ हुए। उसके मध्य भाग में सभी श्रेष्ठ पक्षियों के समान वेग वाला उनका रथ था, जो सुन्दर बने हुए चक्रों से सुशोभित तथा सुवर्ण और मणि आदि से विभूषित था। सहस्रों की संख्या में देवता, गन्धर्व एवं यक्षगण उनके पीछे चल रहे थे। अति शोभाशाली, ब्रह्मर्षिगण, जो सदस्य रूप में वहाँ उपस्थित थे, स्तुति कर रहे थे। उस रथ के चारों ओर वज्र के घोर शब्दों से निनादित, विद्युत्प्रकाश एवं इन्द्रधनुष से संयुक्त पर्वतों के समान भयंकर एवं इच्छानुसार गमन करनेवाले बादलों के समूह घिरे हुये थे। उस रथ पर आरूढ़ होकर भगवान् इन्द्र ने समस्त लोक को व्याप्त

---

[1]यहाँ पर कई पुस्तकों में 'सुरद्विषम्'। पाठ है। जो वस्तुतः समुचित प्रतीत होता है, क्योंकि आगे चलकर इन्द्र का रथ में आरोहण करना लिखा गया है, एक ही स्थल पर दो वाहनों पर चढ़ना ठीक नहीं प्रतीत होता, जिसका अर्थ 'असुरों पर आरूढ (आक्रमण शील) हुए', होता है।

सा कर लिया। उस समय यज्ञों में उपस्थित होनेवाले ऋषिगण स्तुति पाठ करने लगे। स्वर्गलोक में इन्द्र के युद्धार्थ सुसज्जित होने पर देवतागण तुरही बजाने लगे, सुन्दरी अप्सराएँ सैकड़ों की संख्या में नृत्य करने लगीं। नागराज द्वारा विराजमान रवि की भाँति, अति विशाल ध्वजा द्वारा शोभित मन एवं पवन के समान वेगशाली सहस्रों घोड़ों पर चढ़े हुए इन्द्र भगवान् सुशोभित हो रहे थे। उस समय मातलि द्वारा हाँका जाता हुआ वह श्रेष्ठ रथ सूर्य की आभा से परिव्याप्त सुमेरु पर्वत की भाँति दिखाई पड़ रहा था। ॥१-१०॥

काल (मृत्यु) समेत यमराज अपने दण्ड एवं मुद्गर को उठाकर देवताओं की सेना में अपने भीषण नाद से दैत्यों को भयभीत करते हुये विराजमान हुये। चार समुद्रों तथा भीषण जिह्वा को लपलपाते हुये सर्पों से युक्त वरुणदेव शंख तथा मुक्ताजटित विजायठ से सुशोभित जलमय शरीर धारण किये हुए चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेतवर्ण के घोड़ों पर, जो वायु के समान वेगशाली एवं जल के समान थे, सवार होकर काल पाश धारण कर, सहस्रों लीलाएँ करते हुये, पीले वर्ण के वस्त्र को धारण कर, मनोहर प्रवाल जटित अंगद से विभूषित हो, पाश धारण कर देवताओं की सेना के मध्यभाग में अवस्थित हुये। उस समय उनके वस्त्र हिल रहे थे। इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ होने के समय की प्रतीक्षा करते हुए वरुण उस समय उद्वेलित समुद्र की भाँति शोभित हो रहे थे। इसी प्रकार यक्षों एवं राक्षसों की सेना तथा गुह्यकों के समूहों से युक्त होकर पद्म एवं शंख लिये हुए धनाधिपति राजराजेश्वर श्रीमान् कुवेर पुष्पक विमान में अवस्थित हो हाथ में गदा लिये हुए दिखाई पड़े। विमान पर चढ़कर युद्ध करने के लिये आये हुए राजराजेश्वर नरवाहन कुवेर युद्ध में उस समय इस प्रकार शोभित हुए जैसे नन्दिकेश्वर पर बैठे हुए साक्षात् शिवजी स्वमेव आये हुए हों। ॥११-१८॥

उस युद्धभूमि में सहस्रनेत्र इन्द्र पूर्व दिशा में, पिशाचराज यमराज दक्षिण दिशा में, वरुण पश्चिम दिशा में तथा नरवाहन कुवेर उत्तर दिशा में अवस्थित हुए। ये चारों दिशाओं के महाबलशाली लोकपाल गण, चारों दिशाओं में स्थित होकर अपनी-अपनी दिशाओं में स्वयं अपनी रक्षा करते हुए उस देव सेना की भी रक्षा करते रहे। तदनन्तर अति शोभा से जाज्वल्यमान, अति द्रुतगामी सात अश्वों से युक्त रथ पर अधिरूढ़, सुप्रकाशित रश्मियों (लगाम की रस्सी) से युक्त, सुमेरु की प्रदक्षिणा करनेवाले उदय एवं अस्त-दोनों अचलों पर जानेवाले, स्वर्ग के द्वार के समान सुशोभित एक चक्रशाली, सभी अविनश्वर लोकों को सुप्रकाशित करते हुए, परम तेज से देदीप्यमान सहस्रकिरणों से युक्त होकर समस्त लोकों के मध्य में द्वादशात्मक दिनेश्वर सूर्य रणभूमि में भ्रमण करने लगे। चन्द्रमा श्वेत घोड़ों से जुते हुए रथ पर शीतल रश्मियों से युक्त हो, वर्फ मिले जल से पूर्ण अपनी कान्ति द्वारा जगत् को आनन्दित करते हुए युद्धभूमि में आये। पीछे चलनेवाले नक्षत्र समूहों से युक्त शिशिरांशु, द्विजराज, मृग के चिह्नवाले, रात्रि के घने अंधकार का विनाश करनेवाले, नक्षत्रों एवं ग्रहों के स्वामी, रसों के स्वामी, रसप्रदान करनेवाले, सहस्रों औषधियों एवं अमृत के निधान, जगत् के एक अंश के समान विशाल, सत्यमय, सुन्दर दिखाई पड़नेवाले रथ पर आरूढ़ आकाशमार्ग में अवस्थित चन्द्रमा को दैत्यों ने देखा। जो सभी जीवों का प्राण रूप एवं मनुष्यों में पाँच विभागों में विभक्त है, जो सातों धातुओं में पाया जाता है, एवं तीनों लोकों को धारण करनेवाला

तथा तीनों लोकों में विचरण करनेवाला है, लोग जिसे अग्नि का उत्पत्तिकर्त्ता कहते हैं, सभी की उत्पत्ति जिससे होती है, जो अति सामर्थ्यशाली है, सात प्रकार के स्वरों में प्राप्त होकर जो वाणी द्वारा नित्य उदित होता है, जिसे लोग सभी भूतों में उत्तम भूत तथा शरीर से रहित बतलाते हैं, जिसे लोग आकाशगामी कहते हैं, शीघ्रगामी एवं शब्द का उत्पत्तिकर्त्ता भी जिसे लोग कहते हैं, वह वायु देवता सभी जीवों का आयुरूप हो अपने ही तेज से युद्धभूमि में उद्भूत हुआ और दैत्य समूहों को व्यथित करता हुआ बादलों के साथ दैत्यों की प्रतिकूल दिशा से बहने लगा। उस समय वे मरुत् गण गन्धर्व एवं विद्याधर के समूहों के साथ श्वेतवर्ण की उन तलवारों द्वारा, जो म्यान से रहित होने पर सर्पों के समान विकराल दिखाई पड़ रही थीं, क्रीडा करने लगे; और बड़े-बड़े सर्पों के स्वामी तीव्र, जलमय विष की धारा को छोड़ते हुए रणभूमि में मुँह फैलाये हुए बाणों की अविरल धारा के समान आकाश में विचरण करने लगे। पर्वतों, शिलाओं, शिखरों एवं सैकड़ों वृक्षों को साथ लेकर दानवों की सेना में विनाश करने के लिए अन्यान्य देवगण भी उपस्थित हुए। जो देव-देव हृषीकेश, पद्मनाभ एवं त्रिविक्रम के नाम से विख्यात हैं, युगान्त में जो कृष्णवर्ण शरीर धारण कर समस्त जगत् का विनाश करते हैं, जो सभी प्रकार के जीवों की उत्पत्तिस्थली हैं, मधु दैत्य के शत्रु हैं, यज्ञों में उपस्थित होकर हवनीय द्रव्यों का भोग लेते हैं, उन्हीं भूमि, जल, आकाश स्वरूप धारण करनेवाले, श्याम, शान्ति देने वाले, शत्रु संहारक भगवान् गदाधर ने रणभूमि में देवताओं के शत्रुओं के विनाश करनेवाले सुदर्शनचक्र को, जो अपने अनुपम तेज से उदयाचल से उठते हुए सूर्य की भाँति देदीप्यमान था; उठाकर बाएँ हाथ से सभी असुरगणों की विनाशिनी विशाल गदा को उठाया, जो काले वर्ण की आकृति से ही शत्रु को मृत्यु के मुख में सौंपनेवाली थी। अपनी अन्य तेजस्विनी भुजाओं से गरुडध्वज महाबली भगवान् ने शार्ङ्ग धनुष आदि को धारण किया। तदनंतर भगवान् कश्यप के पुत्र, सर्पभक्षी, द्विज (पक्षिराज) पवन से भी अधिक वेगवाले, गगन मण्डल को क्षुब्ध करनेवाले, मुख में एक सर्प लिये हुए, आकाशगामी, खगराज, अमृत मन्थन के उपरान्त मन्दराचल के समान शोभाशाली, देवासुर संग्राम में कई बार अतिशय पराक्रम दिखलानेवाले, अमृत के हरण के समय इन्द्र से युद्ध कर उनके वज्र द्वारा चिह्नित, शिखाधारी, बलवान्, तपाये हुए सुवर्ण के कुण्डल से विभूषित, विचित्र रङ्ग के पंखे को धारण करनेवाले, धातुमान् पर्वत की भाँति शोभायमान, विशाल वक्षस्थल पर, चन्द्रमा के समान उज्वल सर्पों के फणस्थ मणियों से सुशोभित, प्रलयकालीन इन्द्र धनुषों से युक्त दो बादलोंकी भांति दोनों पंखों से लीलापूर्वक आकाश मण्डल को व्याप्त कर, नीली, लाल, पीली पताकाओं से विभूषित, पताका के समान वेश से छिपे हुए महान् एवं विशाल शरीरवाले अरुण के अनुज गरुड पर आरूढ़ होकर वे युद्धभूमि में उपस्थित हुए। उस समय गरुड का शरीर सुन्दर सुवर्ण के समान शोभायमान हो रहा था। भगवान् के उपस्थित होने पर देवगण उनके पीछे-पीछे आये उस समय समाधि में मग्न होकर मुनिगण अति उत्कृष्ट मंत्रों द्वारा जनार्दन की स्तुति करने लगे। इस प्रकार जब कुवेर से युक्त, सूर्य पुत्र यमराज से सुशोभित, द्विजराज गरुड से समन्वित, देवराज इन्द्र से सुशोभित, चन्द्रमा की कान्तियों से विभूषित देवताओं की वह विशाल वाहिनी युद्ध के लिए रणभूमि में प्रस्तुत हुई तब बृहस्पति

ने देवताओं के लिए 'कल्याण हो' ऐसा स्वस्तिवाचन किया। इसी प्रकार शुक्र ने दैत्यों की सेना में स्वस्तिवाचन पढ़ा। ॥१६–५०॥

श्री मात्स्य महापुराण में तारकामय संग्राम नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७४॥

एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—इस प्रकार देवताओं तथा दानवों की विशाल वाहिनी जब एक दूसरे को विजित करने की इच्छा से रणभूमि में उपस्थित हुई, तब दोनों सेनाओं में अत्यन्त तुमुल युद्ध छिड़ गया। अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से लैस हुए दानव गण देवताओं के साथ युद्ध करते हुए इस प्रकार मालूम हुए मानों पर्वतों से पर्वत लड़ रहे हों। देवताओं तथा दानवों से संयुक्त वह अद्भुत धर्म एवं अधर्म से गर्व विनय से युक्त वह युद्ध शोभित हो रहा था। तदनन्तर अलग अलग चलते हुए रथ, प्रेरित किये गये हाथियों, आकाश मण्डल में चलती हुई हाथों से युक्त तलवारों, चारों ओर से चलते हुए मुसलों, गिरने वाले वाणों, टँकोर युक्त धनुषों, शत्रुओं पर फेंके जाते हुए मुद्गरों से वह भयानक युद्ध देवताओं तथा दानवों से संकुलित हो गया और महाप्रलय के समान समस्त जगत् को त्रास युक्त कर दिया। उस रण में दानवगण हाथों से छोड़े गये परिघों तथा ऊपर से फेंके गये पर्वतों द्वारा इन्द्र आदि देवताओं को आहत करने लगे। विजय के इच्छुक, बलवान् उन दानवों द्वारा मारे जाते हुए वे देवगण अति विषाद युक्त हो युद्ध में परम चिन्तित हुए। उन दिति पुत्रों के अस्त्रों तथा शूलों द्वारा अति घायल, परिघों द्वारा छिन्न-भिन्न मस्तक वाले, कटी हुई छाती वाले देवगणों के घावों से रक्त की अविरल धाराएँ बहने लगीं। असुरों के वाणों के समूहों द्वारा घायल होकर देवगण कुछ भी करने में निष्फल रहे, यहाँ तक कि दानवों की युद्ध की उस भीषण माया में पड़कर उनका होश हवास तक गुम हो गया। इस प्रकार राक्षसों द्वारा देवताओं की सारी सेना अस्तप्राय कर दी गई, सब के सब सैनिक प्राण रहित-से दिखाई पड़ने लगे, उनके हथियारों के सारे प्रयत्न भी निष्फल हो रहे। तब अनेक नेत्रोंवाले इन्द्र अपने वज्र से दैत्यों की धनुषों से छूटे हुए उन विकराल वाणों को काटते हुए दैत्यों की विकराल सेना में प्रविष्ट हुए। और बड़े-बड़े दानवों का संहार कर अपने तामस अस्त्र के जाल से उन दैत्यों की विशाल वाहिनी को अंधकार में आच्छन्न कर दिया। इस प्रकार इन्द्र के अद्भुत पराक्रम से निविड अंधकार में छुपे हुए वे दानवगण आपस में एक दूसरे को देखने एवं पहचानने में भी असमर्थ हो गये, यहाँ तक कि देवताओं के वाहनों तक को वे नहीं पहचान सके। इन्द्र के प्रयत्न से उक्त माया पाश से छूटे हुए बड़े-बड़े देवगण प्रयत्नपूर्वक अंधकार में विलीन उन पराक्रमी दानवों के शरीरों को काटने लगे, जिससे अंधकार में विलीन, होश हवास रहित देवताओं द्वारा हताहत वे दानवगण पृथ्वी पर कटे हुए पक्षवाले पर्वतों की भाँति गिरने लगे। समुद्र में घोर अंधकार की भाँति देवताओं के शत्रु उन दानवों की सारी सेना अंधकार में विलीन थी, और बड़े-बड़े दैत्य गण तमों छिपे हुए थे। उस समय मय नामक दानव

ने इन्द्र की उस तामसी माया को विध्वस्त करनेवाली महा भयानक श्रौर्व नामक अग्नि से उत्पन्न होने वाली तथा प्रलय काण्ड उपस्थित करनेवाली अपनी माया की रचना की। मय द्वारा रची गई उस भीषण माया ने सभी देवताओं को जलाना प्रारम्भ किया और दानवगण सूर्य के समान तेजस्वी शरीर धारण कर शीघ्र ही पुनः युद्धार्थ उठ खड़े हुए। उस और्वी माया के प्रभाव से जलते हुए देवगण, इन्द्र तथा शीतलकिरणों वाले तथा जलप्रद चन्द्रमा की शरण में पहुँचे। ॥१-२०॥

जिस समय इस प्रकार शरणार्थी देवगण और्वाग्नि की माया से विह्वल एवं सन्तप्त होकर वज्रधारी इन्द्र की शरण में जाकर कहने के लिए प्रस्तुत हुए उस समय दानवों की घोर माया से सेना के हताहत हो जाने से इन्द्र के पूछने पर वरुण ने कहा—'इन्द्र! प्राचीन काल में महर्षिपुत्र उर्व, जो अतिशय तेजस्वी तथा गुणों में ब्रह्मा के समान थे, घोर तपस्या कर रहे थे। तपस्या करते हुए सूर्य के समान तेजस्वी, तपस्या से अव्यय लोक की प्राप्ति करनेवाले उर्व के पास दिव्य तेजोमय महर्षिगण देवर्षिगण के साथ उपस्थित हुए, उसी समय दानवराज हिरण्यकशिपु भी वहाँ पहुँचा। उस परम तेजस्वी ऋषि उर्व से ब्रह्मर्षियों ने धर्मपूर्वक वचन को निवेदित किया। ऋषियों ने कहा—'भगवन्! ऋषियों के वंश में यह पद विनष्ट हो रहा है, उसका मूल ही नष्ट हो रहा है, उसमें तुम एक मात्र सन्तान थे, तुम्हारे भी कोई सन्तति नहीं है, जो गोत्र की अभिवृद्धि कर सके, और तुम तो कौमार (ब्रह्मचर्य) व्रत को अंगीकार कर क्लेश का सहन करते हुए तपस्या कर रहे हो, उच्चाशय मुनियों तथा ब्राह्मणों के अनेक वंश केवल एक व्यक्ति में शेष हैं, विना सन्तति के सभी छिन्न-भिन्न से हो रहे हैं। इस प्रकार मूल के उच्छिन्न हो जाने पर पुत्र उत्पत्ति का कोई कारण शेष नहीं दिखाई पड़ता। आप तो तपस्या के प्रभाव से अतिश्रेष्ठ पद प्राप्त कर प्रजापति के समान तेजस्वी एवं प्रभावशाली हो गये हैं, अतः अपने उस शरीर से वंश की वृद्धि के लिए भी कोई उपाय कीजिये और अपने प्रभाव से अपने वंश की अभिवृद्धि कीजिये। आपने इस शरीर से बहुत धर्म का अर्जन किया है अतः दूसरे शरीर को बनाइये। अर्थात् सन्तानोत्पत्ति के लिए प्रयत्नशील होइये।' मुनियों के इस प्रकार कहने पर उर्व के मर्मस्थल में आघात हुआ और उन्होंने उन ऋषियों की निन्दा करते हुए कहा—'मुनियों के लिए जिस प्रकार इस धर्म का विधान बनाया गया है, वह कभी नष्ट होने वाला नहीं है। इस धर्म मार्ग में रहकर आर्ष धर्म की सेवा में तत्पर रह जंगल में उत्पन्न होनेवाले मूल फलादि का भोजन कर आत्माभिमानी, ब्राह्मण कुलोत्पन्न मुनि का भली भाँति अर्जित किया हुआ ब्रह्मचर्य ब्रह्मा को भी विचलित कर सकता है। गृहस्थाश्रम में निवास करनेवाले मनुष्यों के लिए अन्य तीन वृत्तियों का विधान किया गया है, पर वन में आश्रम बनाकर निवास करनेवाले हम जैसे लोगों के लिये यही—हमारी—वृत्ति सब से अच्छी है। जल पीकर, वायु पान कर, दाँत द्वारा तथा उलूखल (खरल) में कूट कर या पत्थर से कूट कर जो वस्तु खाई जा सके उसे खाकर दस ओर या पाँच ओर धूनी जलाकर अग्नि का सेवन करनेवाले जो मुनि लोग हैं, वे इससे भी कठोर दुष्कर व्रतों का निर्वाह करते हुए तपस्या में लगे रहते हैं, और सर्व प्रधान लक्ष्य ब्रह्मचर्य की विधिवत् रक्षा कर परम गति की प्राप्ति करते हैं। ब्राह्मण को तो ब्रह्मचर्य से ही ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है, ब्रह्मचर्य की महिमा को जानने वाले लोग इसी प्रकार परलोक

में भी ब्रह्मचर्य को फलदायी बतलाते हैं। ब्रह्मचर्य में स्थित रहने पर धैर्य रह सकता है, ब्रह्मचर्य के रहते हुए ही तपश्चर्या हो सकती है, जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य व्रत में स्थिर रहते हैं वे स्वर्ग में स्थित रहते हैं। विना योग के सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती, सिद्धि के विना यश नहीं मिलता, लोक में ब्रह्मचर्य से बढ़कर यश का मूल कारण कोई अन्य तप नहीं है। जो प्राणी अपने इन्द्रिय समूहों तथा पांचों भूतों को स्ववश रखकर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसके समान घोर तपस्या कोई अन्य नहीं है। विना योगाभ्यास के केशों को रखा लेना, विना संकल्प के व्रत की क्रिया करना, विना ब्रह्मचर्य के अन्य पुण्य कार्यों को करना—ये तीनों निरे पाखण्ड कहे गये हैं। कहाँ स्त्री है? कहाँ संयोग होता है ? कहाँ पर स्त्री-पुरुषों के भाव विकृत होते हैं ? यह तो निश्चय है कि यह ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि संकल्पों से होनेवाली है और ये सारी प्रजाएँ उसकी मानसिक सृष्टि से उद्भूत हुई हैं। यदि आप जैसे आत्मज्ञानी मुनियों में तपस्या का कोई बल है तो ब्रह्मा की भाँति मानसिक सृष्टि की रचनाकर मानस पुत्रों को उत्पन्न कीजिये। तपस्वी गण तो मन से संकल्पित योनि में आधान करते हैं, तपस्वियों के लिये स्त्री का संयोग अथवा गर्भ योनि में बीजाधान करने का कोई नियम नहीं कहा गया है, यह जो धर्म एवं अर्थ से हीन, सज्जनों द्वारा न कहने योग्य बातें आप लोगों ने निर्भय होकर मेरे सम्मुख कही हैं, वे मेरी समझ में अज्ञानियों की भाँति हैं। अपने शरीर को, जो प्रकाशित आत्मा से संयुक्त है, मन से सम्बद्ध कर मैं विना स्त्री समागम के ही आत्म शरीरोत्पन्न पुत्र की सृष्टि करूँगा। इस प्रकार मेरी आत्मा इस जंगली (वानप्रस्थियों के करने योग्य) विधि से समस्त प्रजा को जलाते हुए अपनी दूसरी आत्मा—पुत्र—को उत्पन्न करेगी।' ऐसा कहकर उर्व ऋषि तपस्या के आवेश से युक्त हो अपने उरु (जंघा) भाग को अग्नि में प्रविष्ट कर एक कुशा से अरणि की भाँति मन्थन किया। जिससे शीघ्र ही उनके उरु का भेदन कर ज्वाला से युक्त, इन्धन रहित, जगत के विध्वंस के लिए इच्छुक अग्नि रूपी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार ऊर्व के उरु को फाड़ कर और्व नामक जगत् का विनाशक अग्नि तीनों लोकों को भस्मसात् करते हुए की भाँति अति क्रोधयुक्त हो उत्पन्न हुआ, और उत्पन्न होते ही अपने पिता से विनम्र स्वर में बोला—'तात ! मैं भूख से पीडित हूँ, मुझे छोड़िये, जगत् के भोजन करने की आज्ञा मुझे प्रदान कीजिये।' ऐसा कह कर स्वर्ग तक पहुँचती हुई लपटों से युक्त होकर दसों दिशाओं में फैला हुआ वह और्व अग्नि समस्त जीवों को भस्मसात् करता हुआ बढ़ने लगा। इसी अवसर पर ब्रह्मा जी महर्षि ऊर्व की प्रशंसा करते हुए आये और बोले—'विप्रवर ! अपने पुत्र को रोको, दया कर जगत् की रक्षा करो। मैं तुम्हारे पुत्र के निवासार्थ उत्तम स्थान का प्रबन्ध कर दूँगा, हे बोलने वालों में श्रेष्ठ ! पुत्र ! मेरी यह बात सच मानो।' ॥२१-५४॥

ऊर्व ने कहा—भगवन् ! आज मैं धन्य हो गया। आपने यह मेरे ऊपर अनुग्रह किया। मेरे शिशु के प्रबन्ध के लिए मुझे ऐसी बुद्धि दी, किन्तु प्रातःकाल होने पर जब वह भूखा होकर मुझसे भोजन माँगेगा तब उसे मैं किन पदार्थों द्वारा सन्तुष्ट करूँगा ? कहाँ उसका निवास होगा ? भोजन क्या करेगा ? आप उस महा तेजस्वी के अनुरूप ही प्रबन्ध करेंगे ? ॥५५-५७॥

ब्रह्मा ने कहा—विप्र ! समुद्र में निवास करनेवाली वड़वा के मुख में इस तुम्हारे पुत्र का

निवास स्थान होगा; मेरा उत्पत्ति-स्थान जल है, उसे पीकर तुम्हारे पुत्र को महान् सुख होगा। उसी स्थान पर मैं भी जलमय हवि का पान करते हुए निवास करता हूँ, वही हवि तुम्हारे पुत्र के लिए भी भोजनार्थ अर्पित करूँगा और वही उसका भी निवास स्थान होगा। पुत्र ! युगान्त के समय हम और यह तुम्हारा पुत्र—दोनों सन्तान रहित प्राणियों के पितृ-ऋण का मोचन करने के लिए एक ही साथ विचरण करेंगे, यह जल का भोजन करनेवाला तुम्हारा पुत्र अन्तकाल (महाप्रलय) में देव असुर राक्षस आदि सभी जीवों को जलानेवाला होगा। ॥५८-६१॥

ब्रह्मा की ऐसी बातें सुन 'ऐसा ही हो' कहकर ऊर्व ने अनुमोदन किया और वह और्व अग्नि अपनी भीषण ज्वालाओं के मण्डल से युक्त होकर अपनी कान्ति को पिता में निक्षिप्त कर निष्प्रभ हो समुद्र मुख में प्रविष्ट हुआ। तदुपरान्त वे सब महर्षि, जो वहाँ आये हुए थे, और ब्रह्मा, ऊर्व में अग्नि की प्रभा का प्रवेश हुआ देखकर अपने-अपने गन्तव्य स्थानों को प्रस्थित हुए। इस प्रकार की घटना घटित होते देख हिरण्यकशिपु नामक दैत्य ने दण्डवत् प्रणाम कर उच्चस्वर से ऊर्व से ऐसा निवेदन किया—'भगवन् ! यह अति अद्भुत बात हुई है, सारा लोक इसे साक्षीरूपेण देख रहा है; मुनिश्रेष्ठ ! आपकी इस घोर तपस्या से पितामह भगवान् अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये हैं। महाव्रती ! मैं आपका तथा आपके पुत्र का किंकर हूँ, ऐसा सच जानिये, जो कुछ भी आवश्यकता हो, उसके लिए आप हमें आज्ञा दे सकते हैं, मुझे अपनी ही शरण में आया हुआ समझिये, मैं आपही की आराधना में निरत हूँ, यदि इस प्रकार अनन्य भाव से आपकी शरण में रहते हुए भी मैं कष्ट पाता हूँ तो इससे आपकी ही पराजय होगी। ॥६२-६७॥

ऊर्व ने कहा—'सद्व्रत परायण ! मैं धन्य तथा अनुगृहीत हो गया जो तुम्हारा गुरु हुआ, मुझे अपनी इस कठोर तपस्या एवं सिद्धि से क्या मिलेगा यदि मेरे रहते तुम्हें कष्ट मिले ? तो तुम मेरे पुत्र द्वारा निर्मित उसी अग्निमयी माया को ग्रहण करो, जो विना इन्धन के अग्नि से भी बढ़कर भीषण तथा दुर्द्धर्ष है। शत्रुओं को वश में करते समय यह माया तुम्हारे वंश वालों के वश में रहेगी, अपने पक्ष वालों की यह रक्षा करेगी और विपत्तियों का विनाश करेगी।' मुनि की ऐसी बातें सुन दानवराज हिरण्यकशिपु मुनि-पुंगव ऊर्व को प्रणाम कर अति प्रसन्न चित्त एवं कृतार्थ होकर स्वर्ग को प्रस्थित हुआ। (वरुण कहते हैं) यह पूर्वकाल में ऊर्व पुत्र अग्नि स्वरूप और्व द्वारा निर्मित माया अत्यन्त कठोर तथा असह्य है, देवगण भी इसे सहन नहीं कर सकते। किन्तु उस हिरण्यकशिपु दैत्य के मर जाने पर यह माया निर्वीय हो जायगी—इसमें कोई सन्देह नहीं। ऐसा शाप पूर्वकाल में उन्हीं मुनि ऊर्व ने उसे दिया था, जिसने इसे निर्मित किया था। भगवन् ! यदि इस माया को निष्फल कर सब को सुखी करना चाहते हैं तो जल के आश्रय स्थान निशाकर चन्द्रमा को हमारे मित्ररूप में नियुक्त कीजिये। जिससे उनके तथा जलचरों के साथ आप की कृपा से हम लोग इस माया का विध्वंस कर सकें। मेरे इस कथन में आप संशय न करें। ॥६८-७५॥

श्री मात्स्य महापुराण में तारकामय संग्राम नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त। ॥१७५॥

एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—वरुण की ऐसी प्रार्थना सुनने पर देवताओं को बढ़ानेवाले इन्द्र अति प्रसन्न होकर शिशिरायुध चन्द्रमा को प्रमुखरूपेण उस युद्ध में सहयोग करने के लिए आदेश दिया और कहा—'सोम ! तुम जाओ और असुरों के विनाशार्थ तथा देवताओं के विजयार्थ पाशधारी वरुण की सहायता करो। तुम मुझसे भी बलवान् हो, ज्योतिःपुञ्ज नक्षत्रों के स्वामी हो, रसज्ञ लोग समस्त लोक में व्याप्त रहनेवाले रस को तुमसे ही युक्त जानते हैं, तुम्हारे मण्डल में भी सागर की भाँति क्षय एवं वृद्धि व्यक्त होती है, जगत् में काल (समय) का योग करते हुये तुम दिन तथा रात्रि का परिवर्तन करते हो, तुम्हारा चिह्न लोक की छाया से युक्त है, तुम्हारे अंक में मृग का चिह्न है। सोम ! तुम्हारी महिमा को वे देवतागण भी नहीं जानते, जो स्वयं नक्षत्रों के उत्पत्तिकर्ता हैं। तुम सूर्य के पथ से भी ऊपर, अन्य नक्षत्रगणों के भी ऊपर अवस्थित हो। तुम अपने अनुपम तेज से अंधकार को दूर कर समस्त जगत् को प्रकाशित करते हो। तुम श्वेतभानु कहे जाते हो, हिम शरीर हो, नक्षत्रों के स्वामी हो, शशलांछन हो, काल योगों के स्वामी हो, कभी नष्ट न होने वाले यज्ञस्वरूप हो, औषधीश हो। समस्त जगत् के कार्यों को उत्पन्न करने वाले, जल से उत्पन्न होनेवाले, शीतल कान्तिवाले, शीतांशु, अमृत के आश्रय, चंचल एवं श्वेत वाहन हो। शोभाशालियों की शोभा तुम्हीं हो, सोमपान करने वाले देवताओं के लिए सोम तुम्हीं हो, सभी जीवों में सुन्दर तुम्हीं हो, तुम अंधकार के विनाशकर्त्ता तथा नक्षत्रों के स्वामी हो। महासेन ! इसीलिये मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि तुम कवचधारी वरुण के साथ जाकर इस आसुरी माया को शान्त करो जिससे हम लोग इस समय जल रहे हैं।' ॥१-१०॥

सोम ने कहा—'वरदान देनेवाले देवराज ! यदि आप मुझे युद्ध के लिये आज्ञा प्रदान कर रहे हैं तो अब मैं दैत्य की माया को हरने वाले शिशिर की वर्षा कर रहा हूँ, इन मेरे बरसाये हुये हिम से आच्छादित एवं शीत से सिकुड़े हुये दानवों को देखिये, इस महायुद्ध में मैं इन सभी बड़े बड़े दैत्यों को माया से रहित कर दूँगा और इन सब का गर्व खर्व कर दूँगा।' ऐसा कहकर तारापति चन्द्रमा ने जल के स्वामी वरुण के साथ मांगलिक जल द्वारा देवताओं की सेना के सभी सैनिकों को शान्त करने के लिये ठंडा कर दिया। उनके हिमयुक्त किरणों से छूटी हुई तुषारों की वृष्टि ने वरुण के पाश के साथ उन घोर दैत्यों के समूहों को मेघ के समान आच्छन्न कर लिया। वे पाश और शीतमय किरणों के धारण करने वाले महाबलवान् वरुण और चन्द्रमा अपने पाशों और तुषारों की वृष्टि कर दानवों की सेना को आहत करने लगे, युद्ध भूमि में पाश और हिम के हथियारों का प्रयोग करने वाले दोनों जल के स्वामी, समर में जल के वेग से अत्यन्त क्षुब्ध दो महासमुद्रों की भाँति विचरण करने लगे। इस प्रकार उन दोनों द्वारा जल में डुबोई गई वह दानवों की सेना प्रलयकालीन संवर्तक नामक मेघों से आप्लावित जगन्मण्डल की भाँति दिखाई पड़ने लगी। युद्धभूमि में लड़ते हुये उन—शशलांछन चन्द्रमा तथा वरुण—दोनों देवताओं ने दैत्येन्द्र द्वारा विनिर्मित माया को शान्त कर दिया। युद्ध में चन्द्रमा की शीतमय किरणों द्वारा जलाये गये तथा वरुण के पाशों द्वारा

बाँधे गये दैत्यगण शिर रहित होकर पर्वतों के समान दिखाई पड़ रहे थे। शीतरश्मियों द्वारा मारे गये, जल और तुषार द्वारा पीडित, हिम द्वारा आप्लावित समस्त अंगोंवाले वे दानव ऊष्मा रहित अग्नि की भाँति शोभित हो रहे थे। उन दैत्यों के विचित्र ढंग के बने हुए रथों की कान्ति नष्ट हो गई और वे आकाश मार्ग में इधर-उधर गिरने पड़ने लगे। इस प्रकार चन्द्रमा की शीतल किरणों द्वारा आच्छादित, वरुण के पाश द्वारा बाँधे हुए आकाश में अवस्थित उन दानवों को मायावी मय ने देखा। और शिलाओं के समूहों से संयुक्त, खड्ग एवं चर्म (ढाल) से युक्त होकर घोर शब्द करनेवाली, घने वृक्षों से युक्त, अति भयानक शिखरोंवाली, कन्दराओं एवं जंगलों से आकीर्ण, सिंह तथा व्याघ्र के समूहों से संकुलित, गरजते हुए बड़े-बड़े गजराजों से युक्त, विविध जाति के मृगों से आकीर्ण, पवन द्वारा कँपाये जाते वृक्षों से संयुक्त, अपने ही प्रयत्न से बनाई गई, घोर शब्द करनेवाली, इच्छानुरूप शत्रु पर जानेवाली पर्वत की माया को देवताओं की सेना के चारों ओर छोड़ा। मय द्वारा छोड़ी गयी वह माया खड्गों का शब्द करती हुई शिलाओं की वृष्टि एवं ऊपर गिरते हुए वृक्षों द्वारा देवताओं का संहार करने लगी और दानवगणों को जिलाने लगी। उसके प्रभाव से चन्द्रमा तथा वरुण दोनों की माया अन्तर्हित हो गई। दैत्य ने रण में लोह के विविध अस्त्रों तथा तलवारों से देवताओं के समूहों को अच्छादित कर पृथ्वी को पत्थरों, अस्त्रों, वृक्षों, तथा पर्वतों को गिराकर पर्वतों की भाँति दुर्गम बना दिया। कुछ देवता पत्थरों द्वारा मार डाले गये, कुछ शिलाओं से टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये, और कुछ वृक्षों से छिपे-से दिखाई पड़ने लगे। इस प्रकार वह देवताओं की सारी सेना, बेकार सी हो गई, उस सेना में केवल गदाधर भगवान् विष्णु को छोड़ कर शेष सभी लोगों के धनुष टूट गये और अन्य सभी हथियार व्यर्थ-से हो गए ॥११-३०॥

युद्ध भूमि में विराजमान शोभा सम्पन्न वे जगत् के स्वामी भगवान् तनिक भी अपने स्थान से विचलित नहीं हुए, और सहन शील होने के कारण क्रुद्ध भी नहीं हुए। काल की महिमा जाननेवाले कृष्ण मेघ के समान शोभायमान् वे भगवान् उस समय देवासुर संग्राम को देखने की इच्छा से युद्ध में उपयुक्त अभीष्ट समय की प्रतीक्षा करते हुए अवस्थित थे। तदनन्तर युद्ध में भगवान् विष्णु से देखे गये अग्नि और पवन इन दोनों देवताओं ने उन्हीं की आज्ञा से उस मय की माया को अपने में खींचना प्रारम्भ किया। उस महायुद्ध में अति वेगशाली, पूर्ण वृद्धि की सीमा को पहुंचे हुए उन दोनों देवताओं के प्रभाव से वह पर्वत की माया जल गई और भस्मसात् होकर एक दम नष्ट हो गई, तथा वह पवन अग्नि के साथ, तथा अग्नि पवन के साथ मिलकर युगान्त की भाँति अति विह्वल होकर दैत्यों की सेना को जलाने लगे। युद्धभूमि में आगे-आगे वायु देव दौड़नेलगे, उनके पीछे अग्नि चले, फिर पीछे वायु दौड़े, इस प्रकार अग्नि और वायु क्रीडा करते हुए दौड़ने लगे। दैत्यों की सेना जलती हुई इधर-उधर भागने लगी, दानवों के विमान इधर-उधर गिरने लगे, दैत्यों के कंधे वायु से अकड़ गये, फिर अग्नि से जल गये—इस प्रकार जब दैत्य की माया नष्ट हो गई, चारों ओर से गदाधर भगवान् की स्तुति होने लगी, दैत्यगण निष्प्रयत्न हो गये, त्रैलोक्य का बन्धन छूट गया, देवतागण प्रसन्न होकर चारों ओर से 'बड़ा अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ' कहकर शोर गुल करने लगे। सहस्र नेत्र इन्द्र

की सेना जीत गई और दैत्यगण पराजित हो गये, सारी दिशाएँ स्वच्छ हो गईं, धर्म का विस्तार हो गया, चन्द्रमा शुभ्र हो कर प्रकाशित हो गये, सूर्य अपने स्थान पर विराजमान हो गये, तीनों लोक निश्चिन्त हो गये, सभी में चरित्र बल एवं परिवार की भावना आ गई, यजमान गण यज्ञ करने लगे, पाप शान्त हो गये, मृत्यु का बन्धन बँध गया, अग्नि में विधिवत् हवन होने लगा। यज्ञों की शोभा बढ़ानेवाले देवगण स्वर्ग की प्राप्ति के लिए होनेवाले इन शुभ कर्मों को देखने लगे, लोक पाल गण अपने अपने निवास स्थानों को प्रस्थित हो गये, सिद्ध तपस्वी गण पुण्य कर्मों में प्रवृत्त हो गये, पाप कर्मों का अभाव हो गया, देव पक्ष प्रमुदित हो गया, दैत्य पक्ष चिन्तित हो गया, धर्म तीन चरणों द्वारा स्थित हुआ, अधर्म का एक चरण रह गया, सत्पथ का महा द्वार खुल गया, सभी लोग सद्धर्म में और अपने-अपने आश्रमों में प्रवृत्त हो गये। राजा लोग प्रजा की रक्षा में तत्पर हो कर शोभित होने लगे—इस प्रकार उस रण में अग्नि और वायु के घोर संग्राम होने के बाद लोक का पाप शान्त हो गया और तमोगुण रूप दानव दब गये, सभी विशाल लोक उन दोनों देवताओं के पराक्रम द्वारा प्राप्त किये विजय लाभ से युक्त हो गये। तब उस अवसर पर अग्नि और वायु द्वारा उत्पन्न दानवों के लिए अति भय की चर्चा सुन कालनेमि नाम से विख्यात दानव रणभूमि में दिखाई पड़ा। उसका मुकुट सूर्य के समान था, सुन्दर शब्द करते हुए अंगद आदि आभूषणों से वह अलंकृत था, उस समय वह सुवर्ण से युक्त मन्दराचल के समान शोभायमान हो रहा था, उसने अति भयानक सौ हथियार धारण किये थे, उसके सौ बाहु थे, सौ मुख थे। सौ शिरों से शोभायमान वह दानव रण भूमि में सौ शिखरवाले पर्वत की भाँति दिखाई पड़ रहा था। विस्तृत युद्ध के मैदान में तेज से अतिशय बढ़ा हुआ वह दानव ग्रीष्म कालीन अग्नि की भाँति दिखाई पड़ रहा था। धुएँ के समान उसके केश थे, दाढ़ी हरे रंग की थी, ओठों के दल फड़क रहे थे। त्रैलोक्य भर में विस्तृत विपुल शरीर धारण किये हुए था। बाहुओं से आकाश को नापता हुआ-सा पैरों से पर्वतों को फेंक रहा था, मुख द्वारा फेंकी गई गरम श्वासों से वह जलयुक्त बादलों को इधर से उधर कर देता था। इस प्रकार उस तिरछे किये हुए बड़े-बड़े लाल नेत्रोंवाले, मन्दराचल की भाँति उत्कट तेजोमय सभी देव समूहों को जलाते हुए की भाँति आये हुए कालनेमि को, जो इशारे मात्र से देवताओं को भयभीत कर रहा था, तथा अपने विशाल शरीर से दसों दिशाओं को आच्छादित कर रहा था, युद्ध में आये हुए वीरों ने देखा। उस समय वह प्यासे प्रलयकालीन काल की भाँति उठा हुआ दिखाई पड़ रहा था। रण भूमि में आये हुए कालनेमि ने मोटी गाँठोंवाली अंगुलियों से युक्त, सुन्दर हथेलियोंवाले, ऊँचे दाहिने हाथ से, जिसमें लटकते हुए आभूषण शोभित हो रहे थे, और जो उस समय कुछ चंचल हो रहा था, देवताओं द्वारा मारे गये दानवों से कहा—'अब तुम सब उठो।' इस प्रकार दैत्यों को उद्बोधित करते हुए शत्रुओं के लिए काल के समान भीषण चेष्टावाले कालनेमि को सब देवगण अतिभयपूर्ण कातर नेत्रों से देखने लगे। रण भूमि में घूमते हुए उस भयानक कालनेमि को सभी प्राणियों ने स्वर्ग में घूमते हुए दूसरे नारायण के समान देखा। अति विशाल शरीरवाले उस कालनेमि के वेगपूर्वक चलते हुए पैरों की वायु से आकाश कंपित होने लगा। इस प्रकार उसने देवताओं को युद्ध में भयभीत कर दिया। रण के मैदान में कालनेमि

के आने पर मय ने उसे छाती से लगाया, उस समय वह दैत्य इस प्रकार दिखाई पड़ रहा था मानो विष्णु भगवान् के साथ मन्दराचल दिखाई पड़ रहा हो। दूसरे काल की भाँति युद्ध के मैदान में आये हुए कालनेमि को देखकर इन्द्र आदि समेत सभी देवगण अत्यन्त दुःखी हुए। ॥३१-६२॥

श्री मात्स्य महापुराण में तारकामय युद्ध नामक एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त। ॥१७६॥

एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—दानवों की सेना में महातेजस्वी तथा परम बलशाली वह कालनेमि दैत्य वर्षा ऋतु के बादल के समान दिखाई पड़ रहा था, तीनों लोकों के अन्दर आये हुए उसको देख कर बड़े-बड़े दानव गण बिना किसी परिश्रम का अनुभव किये हीं उठ खड़े हो गये। और सब लोग उत्तम अमृत रस का पानकर भय को छोड़ मय तथा तारकासुर को प्रथम रख उस तारकामय संग्राम में सर्वदा जीतनेवाले के समान शोभाशाली हुए और युद्ध की अभिलाषा से मैदान में भविष्य के बारे में सलाहें करने लगे, इधर-उधर दौड़ने लगे, व्यूह रचना करने लगे, एक दूसरे को देखने लगे। और सभी के चित्त में कालनेमि के प्रति प्रेमभाव का उदय हुआ। फिर उस युद्ध में जो मय की सेना के आगे चलनेवाले प्रमुख दानव थे, वे सब भय को छोड़कर अति हर्षित हो युद्ध करने के लिए उपस्थित हुए। मय, तारक, वराह, पराक्रमी हयग्रीव, विप्रचित्ति का पुत्र श्वेत, दोनों खर और लम्ब, बलि का पुत्र अरित्र, किशोर, स्वर्भानु, प्रसिद्ध चामर, महाअसुर वक्त्रयोधी—ये सब के सब दानव शस्त्रास्त्र विद्या के जाननेवाले तथा तपस्या में सुनिपुण थे। युद्ध में वे सब बलवान्, एवं निपुण दानव उद्धत्त चित्तवाले कालनेमि के पास गये और गदा, भुशुण्डि चक्र, रथ, फरसा, काल के समान मूसल, फेंके जानेवाले मुद्गर, पर्वत के समान भीषण शिलाएँ, अतिदारुण बड़ी-बड़ी पत्थरों की चट्टानें, पट्टिश, भिन्दिपाल, श्रेष्ठ लोहे के बने परिघ, बड़ी भीषण एवं संहार करनेवाली तोपें, हाथों से छोड़े गये अति भयानक बाण, अति दीप्त भाले, पाश, मूर्च्छन, जीभ लपलपाते हुए सर्पों के समान मुखवाले चलते हुए तीक्ष्ण बाण, फेंके जाते हुए वज्र, चमकते हुए तोमर, अति तीक्ष्ण म्यान रहित तलवार, श्वेत निर्मल शूल—आदि शस्त्रास्त्रों से युक्त क्रोध से जलते हुए मतवाले दैत्यों ने धनुष लेकर युद्ध भूमि में विजयार्थ युद्ध प्रारम्भ किया। उस महायुद्ध में कालनेमि को आगेकर जलते हुए भयानक अस्त्रों से लैस दैत्यों की वह सेना इस प्रकार सुशोभित होने लगी मानों सारा आकाश मण्डल काले बादलों से छुप गया हो। उधर इन्द्र द्वारा सुरक्षित देवताओं की विशाल सेना श्वेत और कृष्ण रङ्ग की दिखाई देती हुई सूर्य तथा चंद्रमा से युक्त, वायु के वेग से युक्त, तारागणों को पताका बनाये हुए अति सुन्दर दिखाती हुई, वस्त्र की भाँति बादलों से युक्त तथा ग्रहों और नक्षत्रों से हँसती हुई सी, यमराज, वरुण, इन्द्र एवं बुद्धिमान कुबेर से अभिरक्षित प्रज्ज्वलित अग्नि के समान नेत्रों से युक्त हो

सुशोभित हो रही थी। इस प्रकार अति भयदायिनी वह देवसेना यक्षों एवं गन्धर्वों के गणों से युक्त विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित थी। युद्धभूमि में उन दोनों विशाल वाहिनियों का समागम हुआ, वह समागम उस समय प्रलयकालीन आकाश तथा पृथ्वी के समागम की भाँति भयावना था। देवताओं तथा दानवों की विशाल भीड़ से अति घोर युद्ध होने लगा। क्षमा, पराक्रम, दर्प एवं विनयपूर्वक वह युद्ध हो रहा था। कुछ अति भयानक देवता तथा दानव, देवताओं तथा दैत्यों की सेना से निकल कर युद्ध करने लगे। पूर्व और पश्चिम में खड़ी हुई उन सेनाओं से निकलते हुए वे वीर इस प्रकार दिखलाई पड़ रहे थे मानों पूर्व तथा पश्चिम के समुद्रों से अति विशाल एवं क्षुब्ध बादलों के समूह। उस समय देव तथा दानवों की सेना इस प्रकार प्रसन्नचित्त घूम रहीं थी मानों पर्वत के फूले हुए जङ्गलों में हाथियों के समूह घूम रहे हों। ॥१-२३॥

तदनन्तर उन दोनों सेनाओं में अनेक प्रकार के शंख, भेरी आदि रणवाद्यों का बजना प्रारम्भ हुआ और वे शब्द आकाश, पृथ्वी, स्वर्ग एवं दसों दिशाओं भर में व्याप्त हो गये, धनुषों की प्रत्यञ्चा के कठोर शब्द सुनाई देने लगे। देवताओं की दुन्दुभियों के स्वर ने दैत्यों के रण वाद्यों के स्वरों को दबा दिया। दोनों सेनाओं के सैनिक परस्पर एक दूसरे को लक्ष्य कर प्रहार करने लगे, और आहत कर गिराने लगे। हाथों से हाथों में प्रहार करने लगे, युद्ध के अभिलाषी कुछ द्वन्द्व युद्ध करने लगे। देवतागण अति भयानक वज्र, तथा लोहे के बने हुए श्रेष्ठ परिघों को दानवों के ऊपर छोड़ने लगे, दैत्यगण युद्ध में भारी गदाएँ तथा छुरियाँ और कटारें लेकर प्रहार करने लगे। गदाओं की चोटों से टूटे-फूटे अंगों वाले, बाणों से टुकड़े-टुकड़े किये गये कुछ देवतागण बारम्बार पृथ्वीतल पर गिरने लगे, और कुछ मृत्यु के मुख में चले गये। घोड़ों समेत रथों से तथा शीघ्र चलनेवाले विमानों से अतिक्रुद्ध हुए वीरगण युद्ध में एक दूसरे के ऊपर घोर प्रहार करने लगे। रण के मैदान में आये हुए वीरगण ओठों को फड़काते हुए रथों से रथों पर और पैदलों से पैदलों पर आक्रमण करा रहे थे। शब्द करते हुए उन दोनों सेनाओं के रथों के एक दूसरे पर आक्रमण करते हुए ऐसा मालूम हो रहा था मानो भाद्रप्रद के बादलों के समूह परस्पर भिड़ गये हों, कुछ वीर तो रथों को ही तोड़ रहे थे और कुछ रथों की मार से मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। कुछ अन्य रथ आगे युद्ध भूमि के अवरुद्ध हो जाने के कारण आगे चलने में असमर्थ हो रहे थे। युद्ध में वीरगण एक दूसरे को अपनी बाहुओं से घसीट-घसीट कर, पटक-पटक कर मारने लगे। चर्म धारण करनेवाले कुछ वीरों के आभूषण शब्द कर रहे थे, कुछ अन्य वीरगण अस्त्रों से अत्यन्त घायल होकर रक्त वमन कर रहे थे, इस प्रकार युद्धभूमि में जल की भाँति रक्त बहाते हुए वे दानवगण सचमुच बादलों की भाँति दिखाई पड़ रहे थे। अस्त्रों तथा शस्त्रों से संयुक्त, फेंकी और प्रहार की जाती हुई गदाओं से आकीर्ण, देवताओं तथा दानवों से संकुलित एवं क्षुब्ध वह युद्ध शोभित हो रहा था। देवताओं के हथियारों से सुशोभित वह दानव सैन्यरूपी महामेघ शोभित हो रहा था। एक दूसरे की बाणवृष्टि से युद्ध रूप दुर्दिन (वर्षा काल) उपस्थित हो गया था। इसी बीच कालनेमि दानव युद्ध भूमि में आगे निकला, उस

समय वह क्षुब्ध समुद्र से वृद्धि को प्राप्त हुए बादल की भाँति शोभित हो रहा था। उसके बिजली के समान चंचल दिखाई पड़ने वाली शिर की मालाओं से युक्त शरीर के अंगों से टकराकर हाथी तथा पर्वत के समान भीषण जलते हुए वज्र के बरसाने वाले बादल इधर-उधर छिन्न-भिन्न होकर गिरने लगे। क्रोध से श्वास खींचते हुए, तथा भृकुटि के टेढ़े करने से पसीना बहने के साथ ही साथ उसके विकराल मुख से अग्नि की चिनगारियों से युक्त ज्वालाएँ निकलने लगीं, उसकी विशाल बाहुएँ आकाश में टेढ़ी मेढ़ी होकर बढ़ने लगीं, वे उस समय ऐसी दिखाई पड़ रही थीं मानों पाँच मुखवाले सर्प पर्वत से निकल रहे हों। उस दानव ने अपने अनेक प्रकार के अस्त्रों के समूहों से, धनुषों से तथा परिघों से आकीर्ण आकाश मण्डल को उच्च पर्वतों से अच्छादित-सा कर दिया। उस समय उसके वस्त्र वायु से हिल रहे थे, जिससे संग्राम का अभिलाषी वह दानव, रणभूमि में सायंकालीन धूप से प्रकाशित चट्टानोंवाले साक्षात् सुमेरु पर्वत की भाँति दिखाई पड़ रहा था। जंघों के वेग से तोड़े गये शैल शिखर के अग्रवर्ती वृक्षों से मार-मारकर देवताओं को वह इस प्रकार पृथ्वी पर सुला दिया जैसे वज्र से विशाल पर्वत तोड़े गये हों। कालनेमि द्वारा आहत अनेक प्रकार की छूरियों तथा कटारों से कटे फटे केशोंवाले देवगण युद्धभूमि में चलने में असमर्थ हो गये, मुष्टि के प्रहार से कुछ तो मर गये और कुछ टूट फूट कर छिन्न-भिन्न हो गये, बड़े बड़े-सर्पों के साथ यक्षों और गन्धर्वों के यूथपति गिर पड़े। उस कालनेमि से डराये गये देवगण युद्ध भूमि में अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी बेहोशी के कारण कुछ भी करने में असमर्थ रहे। बाणों के बन्धनों से कँपाये गये सहस्र नेत्र इन्द्र भी रण में ऐरावत पर बैठे हुए इधर उधर टस से मस तक नहीं हो सके। उस समय उनकी दशा निर्जल बादल के समान और निर्जल समुद्र के समान हो रही थी। युद्ध में पाश रहित वरुण भी उस दानव से निर्व्यापार कर दिये गये थे। इच्छानुरूप स्वरूप धारण करनेवाले दानव कालनेमि ने परिघों से मार कर वैश्रवण धनपति कुवेर को भी युद्ध में पराजित कर दिया। उस मृत्युदायक रण में सब को विनष्ट करनेवाले यमराज भी पराजित कर दिये गये, वे भयभीत होकर अपनी दक्षिण दिशा में प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार सभी लोकपालों को रण के मैदान से बाहर खदेड़ कर उनके कर्मों को उसने स्वयं सम्हाला। और चारों दिशाओं में अपने शरीर को चार भागों में विभक्त कर स्थापित किया। नक्षत्रों के विचरण करने योग्य दिव्य मार्ग में जाकर उसने राहु की अभिलषित चन्द्रमा की शोभा को हर कर उसके अधीन रहनेवाले महान् साम्राज्य एवं कार्यों को भी अपने अधीन किया। स्वर्ग द्वार से प्रदीप्त किरणों वाले भास्कर को अपने स्थान से विचलित कर दिया। और उनके सायन एवं दिन आदि के रचने की शक्ति को स्वाधीन कर लिया। उसने अग्नि को सब देवताओं का मुख रूप देख कर उसे अपने ही मुंख में कर लिया, वे वायु को पराजित कर अपने अधीन बना लिया। अपने अनुपम पराक्रम से सभी समुद्रों को तथा नदियों को बलपूर्वक अपने मुख में रख लिया। इस प्रकार नदियाँ उसके शरीर के अधीन हो गईं। आकाश और भूमि—सभी स्थलों पर वर्तमान जलराशि को अपने अधीन कर वह महाभूतपति स्वमम् उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा के समान शोभित हुआ। उस समय सारे लोक उससे व्याप्त थे, सभी जीवों को वह भय देने वाला था। इस प्रकार सभी लोकपालों के एक मात्र मूर्तमान रूप उस दानवराज ने जो चन्द्रमा, सूर्य तथा अन्य

ग्रहपिण्डों से भी संयुक्त था, पर्वतों से सुरक्षित जगती तल स्थापित किया। इस प्रकार युद्ध के मैदान में अग्नि और वायु के वेग के समान शक्तिमान् वह दानव कालनेमि सभी लोकों के उत्पत्ति कर्त्ता परमेष्ठी ब्रह्मा के समान पद पर अवस्थित हो कर शोभित हुआ। दानव गण उसकी स्तुति करने लगे, उस समय वह देवताओं द्वारा स्तुति किये जाते हुए ब्रह्मा के समान शोभित हो रहा था। ॥२४-६०॥

श्री मात्स्य महापुराण में तारकामय युद्ध नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त। ॥१७७॥

एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—विरुद्ध कर्म करने के कारण उस दानव के वश में ये पाँच पदार्थ—वेद, धर्म क्षमा, सत्य, तथा भगवान् नारायण के आश्रय में रहनेवाली लक्ष्मी—नहीं हुए। अतः उनकी अनुपस्थिति से वह दानवेश्वर कालनेमि क्रोध समेत विष्णुपद की प्राप्ति की इच्छा से नारायण के समीप गया। वहाँ जाकर उसने गरुड पर समासीन शंख, चक्र, गदाधारी, सजल बादल के समान कृष्णवर्ण भगवान् विष्णु को, जो विद्युत् के समान पीताम्बर धारण किए हुए गरुड पर शोभायमान होकर दानवों के विनाशार्थ अपनी सुन्दर गदा को घुमा रहे थे, देखा। वहीं पर उसने सुन्दर आकृति, सुवर्ण के समान सुन्दर पंखवाले शिखा-युक्त कश्यप के पुत्र आकाशगामी गरुड को भी देखा। दैत्यों के विनाशार्थ स्वस्थचित्त अनुपम पराक्रमी भगवान् एवं गरुड को रण के मैदान में देखकर दानव ने खिन्न चित्त हो भगवान् की ओर कहा—'हम लोगों के पूर्वजों का यही प्राणनाशक शत्रु है, समुद्र में निवास करनेवाले मधु एवं कैटभ का जीवन इसने ही नष्ट किया है, इसके साथ हम दानवों का वैर प्रसिद्ध है कि कभी शान्त नहीं है, आज ही युद्ध के मैदान में अनेक दानवों की इसने हत्या की है। यह लोक में एकमात्र निर्मम एवं स्त्री और बालकों का संहार करनेवाला शर्म रहित वीर है, इसने दानवों की स्त्रियों के केशों को उपारा है, यह स्वर्ग निवासी देवताओं का विष्णु एवं बैकुण्ठ है, सर्पों में इसका नाम अनन्त विख्यात है, यही सर्वप्रथम स्वयम् उत्पन्न होने वाला आद्य पुरुष है, यह देवताओं का स्वामी है, दुःखीचित्त हम सबों का शत्रु है। इसके क्रोध का भाजन होकर हिरण्यकशिपु मारा गया। इसकी छाया का आश्रय प्राप्त कर देवगण यज्ञों में प्रमुख भाग लेते हैं और महर्षियों द्वारा दिये जाने वाले हवनीय द्रव्यों का, जो तीन प्रकार से अग्नि में डाला जाता है, उपभोग करते हैं। यही सभी देवशत्रुओं की मृत्यु का प्रमुख कारण कहा गया है, हमारे परिवार के लोग युद्ध में इसी के चक्र में प्रविष्ट हो गये हैं। प्रसिद्ध है कि देवताओं के कार्य के लिये यह युद्ध में जीवन की बाजी लगा कर युद्ध करता है और सूर्य के तेज़ के समान परम तेजस्वी अपने चक्र का शत्रुओं पर प्रयोग करता है। यह देवताओं का काल रूप है, और काल ही होकर यहाँ स्थित है किन्तु अब यह विष्णु अपने बीते हुए अच्छे समय का फल प्राप्त करेगा। भाग्यवश मेरे ही सामने यह कैसे आगया है, अब तो मेरी बाहुओं से पिस कर यह मुझे ही

प्रेम करेगा। बड़ा अच्छा संयोग है कि आज युद्ध में मैं दानवों को भय देने वाले इस विष्णु का संहार कर अपने पूर्वजों की समृद्धि तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करूँगा, इसके बाद शीघ्र ही देवताओं के समूहों का नाश करूँगा। किन्तु अन्य जन्म धारण करके भी यह दानवों को पीडा पहुँचाता है। प्राचीन काल में यही अनन्त रूपधारी विष्णु पद्मनाभ होकर सृष्टि के प्रारम्भ में, जब कि समस्त जगत् एक समुद्र के रूप में था, उन मधु तथा कैटभ नामक दानवों का संहार किया था। अपने शरीर को दो भागों में—एक भाग में मनुष्य तथा दूसरे में सिंह का स्वरूप धारण कर इसीने मेरे पितर हिरण्यकशिपु का संहार पहले किया है। देवताओं की माता अदिति ने इसी देवताओं के मंगलकारी को गर्भ में धारण किया था, इसी ने अपने तीन डगों से तीनों लोकों का हरण किया था। अब इस तारकामय संग्राम में यह पुनः आ गया है, अतः मेरे साथ भिड़ कर अब देवताओं समेत नष्ट होगा।' रण के मैदान में इस प्रकार की असह्य बातें करते हुए नारायण को अनेक प्रकार से धमकाते हुए उसने युद्ध करने ही की अभिलाषा प्रकट की। ॥१–२२॥

असुरपति के इस प्रकार असह्य आक्षेपों को सुनकर श्री गदाधर भगवान् विष्णु अपनी अपार क्षमा की महिमा से तनिक भी क्रुद्ध नहीं हुए प्रत्युत हँसते हुए बोले—'दैत्य! दर्प का बल तो बहुत अल्पकाल तक टिकता है, विना क्रोध का जो बल होता है, वही स्थिर बल है। क्षमा को छोड़कर जो तुम ऊट पटाँग की बातें कर रहे हो, उसी गर्व के कारण अब तुम्हारा विनाश होगा। मेरी समझ में तुम अधीर दिख रहे हो, तुम्हारी इस वाक्शक्ति को धिक्कार है, जहाँ पर पुरुष नहीं रहते वहाँ स्त्रियाँ भी डींग हाँका करती हैं। दैत्य! अपने पूर्वजों के अनुचित मार्ग पर तुम्हें भी चलते हुए मैं देख रहा हूँ, कौन ऐसा भाग्यशाली है जो ब्रह्मा की स्थापित की गई सेतु रूप कार्य प्रणाली को तोड़कर कुशलपूर्वक रह सकता है। देवताओं के कार्यों की हानि करनेवाले तुम्हें मैं आज ही नष्ट करूँगा, और सभी देवताओं को अपने-अपने स्थानों पर स्थापित करूँगा।' रण में श्रीवत्स चिह्न से विभूषित भगवान् के ऐसा कहने पर दानव ने हँसकर अपने हाथों में हथियारों को धारण किया। ॥२३–२८॥

रण में अति क्रोध के कारण द्विगुणित लाल नेत्रों से अपने सौ हाथों में सभी प्रकार के अस्त्रों को ग्रहण कर उसने विष्णु की छाती में प्रहार किया। अन्य दानवों ने भी मय और तारकासुर को आगे कर अति तीक्ष्ण छुरी तथा कटारों से विष्णु भगवान् पर आघात किया। सभी प्रकार के शास्त्रास्त्रों से युक्त उन अति बलवान् दैत्यों से आहत किये गये भगवान् विशाल पर्वत की भाँति रण से तनिक भी टस से मस नहीं हुए। गरुड द्वारा आहत महाबलवान् कालनेमि ने क्रुद्ध होकर तमाम बूते से अपनी सभी बाहुओं द्वारा अति विशाल भयानक तथा जलती हुई गदा को उठा कर गरुड के ऊपर प्रहार किया। दैत्य के उस अद्भुत कर्म को देख कर विष्णु भगवान् विस्मय में आ गये। जब उसने गरुड के ऊपर उस भीषण गदा से प्रहार किया तब गरुड को अति व्यथित तथा अपने को भी घायल देखकर क्रोध से लाल नेत्र हो भगवान् विष्णु ने अपने चक्र को हाथ में सम्हाला और वेगपूर्वक चलते हुए गरुड को साथ ले रण भूमि में आगे बढ़े। उनकी भुजाएँ दसों दिशाओं में फैल गयीं। इस प्रकार केशव ने आकाश तथा पृथ्वी को

आच्छादित कर लिया और पुनः अपने परम तेज से सभी लोकों को अतिक्रान्त करते हुए से रण में बढ़े। आकाश मण्डल में असुरपतियों को तर्जित करने के लिए बढ़ते हुए मधुसूदन भगवान् की ऋषियों तथा गन्धर्वों ने स्तुति की। उस समय भगवान् विष्णु ने अपने किरीट तथा वस्त्रों से बादलों समेत आकाश को छूते हुए पैरों से पृथ्वी को आक्रान्त कर, बाहुओं से दिशाओं को व्याप्त कर अपने उस सुदर्शन चक्र को धारण किया, जो सूर्य की किरणों के समान चमक रहा था, शत्रुओं का नाश करनेवाला था, जिसमें एक सहस्र अरे लगे हुए थे। भीषण अग्नि की भाँति घोर होते हुए भी वह सुदर्शन (देखने में सुन्दर) था, सुवर्ण की धूलि से सुशोभित तथा वज्र की नाभि से युक्त था, शत्रुओं को भय देने वाला था। उस में दानवों के शरीर से निकले हुए मेदा, अस्थि, मज्जा तथा रक्त लगे हुए थे, उसकी उपमा किसी अन्य अस्त्र से नहीं की जा सकती। उसके मंडल के चारों ओर छुरे के समान तीक्ष्ण धारें थीं, उसमें मालाएँ तथा हार सुशोभित हो रहे थे, वह इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाला तथा अभीप्सित स्थान पर जाने वाला था। सभी शत्रुओं को भय प्रदान-करनेवाले उस श्रेष्ठ चक्र को स्वयम् भगवान् ब्रह्मा ने बनाया था, महर्षियों के क्रोधों से आविष्ट तथा युद्ध में सर्वदा विजय प्राप्त कर गर्व करने वाला था। उसके प्रहार करने पर सभी स्थावर जंगम जीव भयभीत हो जाते थे। महा समर में जब उसका प्रहार होता था तब मांस खानेवाले जीव तृप्ति प्राप्त करते थे, इस प्रकार सूर्य के समान अति तेजस्वी उस चक्र के सभी कर्म अनुपम एवं उग्र थे। उस भीषण सुदर्शन चक्र को उठा कर गदाधर भगवान् ने क्रोध से जलते हुए की भाँति रणभूमि में अपने तेज से दानव के तेज को अस्त करते हुए प्रहार किया और कालनेमि के बाहु को काट डाला। तदनन्तर उस दैत्य के अग्नि के समान तेजस्वी भीषण अट्टहास करते हुए सौ मुखों को भी हरि ने काट डाला। किन्तु शिर और बाहु से विहीन हो कर भी वह दानव रण के मैदान से विचलित नहीं हुआ। उसका शिर रहित कबन्ध (धड़) रण में डाल रहित वृक्ष की भाँति खड़ा ही रह गया। ॥२९-४९॥

तदनन्तर गरुड ने अपने दोनों पंखों को फैलाकर अपने वेग को वायु के समान कर अपनी छाती से धक्का मार कर कालनेमि को नीचे गिरा दिया। आकाश से गिराया गया उस दानव का शिर तथा बाहु रहित शरीर पृथ्वी तल को शोभित करते हुए नीचे गिरा। उस के गिरने पर ऋषियों समेत देवगण भगवान् वैकुण्ठ (विष्णु) के समीप आकर 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहते हुए उनकी पूजा करने लगे। भगवान् के इस अद्भुत पराक्रम को देखनेवाले अन्य दैत्यगण उनकी भुजाओं से अवरुद्ध होकर रणभूमि में चल भी नहीं सके, भगवान् ने किन्हीं के केशों को पकड़ कर पटका, किन्हीं के कंठों में आघात कर पीड़ा पहुँचाई, किसी के मुख को फाड़ डाला, किसी दूसरे की कमर तोड़ दी, इस प्रकार भगवान् की भीषण गदा और उस भयंकर चक्र से जलाये गये दानव गण रणभूमि में निर्जीव हो कर गिरने लगे। आकाश से सभी अंगों के कट-कट कर गिर पड़ने के कारण सभी दानव गण पृथ्वी पर गिरने लगे। इस प्रकार उन सभी असुरों के मारे जाने पर पुरुषोत्तम भगवान् इन्द्र के मनोवांछित प्रिय कार्य को सम्पन्न कर कृतार्थ हो गदा धारण कर रणभूमि में अवस्थित हुए। ॥५०-५४॥

उस भीषण तारकामय संग्राम के समाप्त हो जाने पर उस युद्ध के मैदान में तुरत ही सभी ब्रह्मर्षियों, गन्धर्वों एवं अप्सराओं के समूहों को साथ लेकर देवाधिदेव लोक पितामह ब्रह्मा जी आये और विष्णु भगवान् का समादर करते हुए बोले—'देव ! आपने देवताओं का यह महान् कार्य किया है, उनके काँटों को आपने निकाल कर फेंक दिया। दैत्यों के इस संहार से हम सभी को परम सन्तोष प्राप्त हुआ है। विष्णो! आपने जिस महान् असुर कालनेमि का संहार किया है, आप को छोड़कर उसका रण में संहार करने वाला कोई अन्य नहीं था। वह दानव चराचर सभी प्राणियों का अपमान कर के देवताओं को जीत कर, ऋषियों का संहार कर मुझे भी डाँट फटकार सुना रहा था। सो अब तुम्हारे इस काल के समान भीषण कालनेमि के वध रूप अति उत्तम कार्य से हम लोग सन्तुष्ट हो गये, तो अब आइये, अब हम अपने उत्तम आवास स्थान स्वर्ग को चल रहे हैं, वहाँ पर सभा में उपस्थित हुए ब्रह्मर्षि गण आप के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वरदान देने वालों में श्रेष्ठ ! मैं तुम्हें कौन-सा वरदान दूँ। तुम तो स्वयं—देवताओं तथा दैत्यों—सभी को वरदान देने वाले हो। विष्णो! अब इस त्रैलोक्य को, जिसमें से असुररूपी कण्टक दूर कर दिये गये हैं, इसी युद्ध के मैदान में महात्मा इन्द्र को वापिस कर दीजिये।' इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर अव्यय भगवान् विष्णु ने इन्द्र प्रभृति सभी प्रमुख देवताओं से शान्तिपूर्ण वाणी में कहा। ॥५५-६४॥

भगवान् ने कहा—जितने भी देवता यहाँ मेरे पास आये हुए हैं, वे सभी इन्द्रादि प्रमुख देवगण सावधानतया मेरी बातों को सुनें। हम सभी लोगों ने इस संग्राम में इन्द्र से भी बलवान् पराक्रम शाली कालनेमि प्रभृति दैत्यों का संहार तो कर दिया, किन्तु इस घोर संग्राम से दो दैत्य भाग गये। उनके नाम दैत्येन्द्र विरोचन तथा महाग्रह राहु हैं। अब इन्द्र अपनी दिशा को चले जायँ, वरुण भी अपनी दिशा का आश्रय लें, यमराज दक्षिण का पालन करें तथा धनाध्यक्ष कुवेर उत्तर दिशा का पालन करें, नक्षत्रों को साथ लेकर चन्द्रमा, जैसे कि पहले रहा करते थे, अपने स्थान को चले जायँ, सूर्य अपने अयनों के साथ प्रत्येक ऋतुओं में वर्तमान हो कर वर्षों का भोग करें। सदस्यों द्वारा अभिपूजित होकर देवगण यज्ञों में अपना भाग ग्रहण करें, ब्राह्मण लोग वेदानुकूलविधि से अग्नि में हवन करें, महर्षिगण अपना स्वाध्याय करें, पितरगण श्राद्ध को प्राप्त कर सुखपूर्वक सन्तोष लाभ करें। वायु अपने तीनों मार्गों से बहते रहें, अग्नि अपने गुणों से तीनों वर्णों को, तथा तीनों को तृप्त करते हुए प्रकाशित हों, दीक्षा देने योग्य ब्राह्मणों की देख-रेख में यज्ञों की प्रवृत्ति बढ़े। यज्ञ करानेवाले लोग पृथक्-पृथक् दक्षिणाओं के वितरण करने का प्रबन्ध करें। सूर्य पृथ्वी को, चन्द्रमा रसों को, वायु प्राणधारियों के प्राणों को तृप्त करते हुए अपने-अपने योग्य कर्मों में प्रवृत्त हों। महेन्द्र और मलय प्रभृति पर्वतों से निकलनेवाली, तीनों लोकों की माता रूप सभी नदियाँ, जैसे पूर्वकाल में अवस्थित थीं—उसी क्रम से, समुद्रों में प्रविष्ट हों। देवगण ! दैत्यों से भय करना छोड़ दो, तुम लोगों का कल्याण हो, अब मैं सनातन ब्रह्म लोक को जा रहा हूँ। आप लोग अपने-अपने घरों में, स्वर्ग लोक में— विशेषतया संग्राम में—कभी भी दैत्यों का विश्वास न करें, क्योंकि ये दानव सर्वथा क्षुद्र विचार रखनेवाले हैं, छिद्रों में प्रहार करनेवाले हैं, इनकी अवस्थिति कभी निश्चित नहीं रहती। आप लोगों जैसे सौम्य,

सरल स्वभाववाले देवताओं का तो सरलता ही परम धन है।' देवताओं से इस प्रकार की बातें कर महा यशस्वी, सत्य पराक्रमी भगवान् विष्णु ब्रह्मा के साथ अपने लोक को चले गये। मत्स्य ने कहा—तुमने जिस तारकामय संग्राम के बारे में मुझसे प्रश्न किया था, वह आश्चर्यकारी दानवों का और विष्णु का संग्राम इसी प्रकार सम्पन्न हुआ था। ॥६५-८०॥

श्री मात्स्य महापुराण में पद्मोद्भव प्रादुर्भाव संग्रह नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त। ॥१७८॥

एक सौ उन्नासीवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—तात! तुम्हारे द्वारा कहे गये पद्मोद्भव का विस्तृत वृत्तान्त तो हम लोग सुन चुके, अब संक्षेप में भैरव भव का माहात्म्य हम लोगों को सुनाइये। ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! उन देवाधिदेव भैरव के उत्तम चरित्र को भी तुम लोग सुनो। प्राचीनकाल में अन्धक नामक अंजन के समूह के समान दिखाई पड़नेवाला एक दैत्य था, जो अपनी अनुपम तपस्या के कारण स्वर्गवासियों द्वारा नहीं मारा जा सका। उस दैत्य ने एक बार पार्वती समेत क्रीडा करते हुए भगवान् महादेव को देखकर पार्वती को हरण करने का उपक्रम किया, तब शंभु के साथ उसका घोर संग्राम हुआ। अवन्ती प्रान्त में महाकाल नामक वन है। उसी वन के पास वह घोर युद्ध हुआ था। उस भयानक युद्ध में अन्धक द्वारा अति दुःखित होकर रुद्र भगवान् शंकर ने अत्यन्त उग्र पाशुपत नामक अस्त्र का प्रयोग किया। रुद्र के वाण के आघात से अन्धक के शरीर से जो रक्तपात हुआ, उससे सैकड़ों सहस्रों की संख्या में अन्धकों की उत्पत्ति हुई। उनके फाड़े जाने पर जो रक्त निकला फिर उससे भी हुए, जो अत्यन्त भयानक दिखाई पड़ रहे थे। मतलब यह कि इस प्रकार उन उत्पन्न होनेवाले अन्धकों से अन्य अन्धक उत्पन्न समस्त जगन्मण्डल आकीर्ण हो गया, बढ़ते हुए उस मायावी अन्धक को देखकर भगवान् शंकर ने उसके रक्त को पान करने के लिए अनेक माताओं की सृष्टि की। ॥१-६॥

माहेश्वरी, ब्राह्मी, कौमारी, सौपर्णी, वायव्या, शाक्री, नैऋता, सौरी, सौम्या, शिवा, दूती, चामुण्डा, वारुणी, वाराही, नारसिंही, वैष्णवी, चलच्छिखा, शतानन्दा, भगानन्दा, पिच्छिला, भगमालिनी, बला, अतिबला, रक्ता, सुरभि, मुखमण्डिका, मातृनन्दा, सुनन्दा, बिडगली, शकुनि, रेवती, महारक्ता, पिलपिच्छिका, जया, अदिति, दिति, मारी, मृत्यु, कर्णमोटी, ग्राम्या, उलूकी, घटोदरी, कपाली, वज्रहस्ता, पिशाची, राक्षसी, भुशुण्डी, शांकरा, चण्डा, लांगली, कुटली, खेटा, सुलोचना, धूम्रा, एक वीरा, करालिनी विशाल दंष्ट्रिणी, श्यामा; त्रिजटी, कुक्कुटी, वैनायकी, वैताली, उन्मत्तोदुम्बरी, सिद्धि, लेलिहाना, केकरी, गर्दभी, भ्रुकुटी, बहुपुत्री, प्रेतयाना, विडम्बिनी, क्रौंचा शैलमुखी, विनता, सुरसा, दनु, उषा, रम्भा, मेनका, सलिला, चित्ररूपिणी, स्वाहा, स्वधा, वषट्कारा, धृति, ज्येष्ठा, कपर्दिनी, माया, विचित्ररूपा, कामरूपा,

संगमा, मुखेविला, मंगला, महानासा, महामुखी, कुमारी, रोचना, भीमा, सदाहा, मदोद्धता, अलम्बाक्षी, कालपर्णी, कुम्भकर्णी, महासुरी, केशिनी, शंखिनी, लम्बा, पिंगला, लोहितामुखी, घण्टारवा, दंष्ट्राला, रोचना, काक जंघिका, गोकर्णिका, अजमुखिका, महाग्रीवा, महामुखी, उल्कामुखी, धूमशिखा, कम्पिनी, परिकम्पिनी, मोहना, कम्पना, श्वेला, निर्भया, बाहुशालिनी, सर्पकर्णी, एकाक्षी, विशोका, नन्दिनी, ज्योत्स्नामुखी, रभसा, निम्भा, रक्तकम्पना, अविकारा, महाचित्रा, चंद्रसेना, मनोरमा, अदर्शना, हरत्पापा, मातंगी, लम्बकुमेखला, अबाला, वञ्चना, काली, प्रमोदा, लाङ्गलावती, चित्ता, चित्तजला, कोणा, शान्तिका, अघविनाशिनी, लम्बस्तनी, लम्वसटा, विसटा, वासचूर्णिनी, स्खलन्ती, दीर्घकेशी, सुचिरा, सुन्दरी, शुभा, अयोमुखी, कटुमुखी, क्रोधनी, आशमी, कुटुम्बिका, मुक्तिका, चन्द्रिका, बलमोहिनी, सामान्या, हासिनी, लम्बा, कोविदारी, समासवी, शंकुकर्णी, महानदा, महादेवी, महोदरी, हुँकारी, रुद्रसुसटा, रुद्रेशी भूतडामरी, पिण्डजिह्वा, चलज्ज्वाला, शिवा, ज्वालामुखी,—तथा इनके अतिरिक्त अन्य बहुतेरी मातृकाओं की देवाधिदेव ने उस समय सृष्टि की। ॥१०–३२॥

उत्पन्न हुई इन महा भयानक मातृकाओं ने उन अन्धकों के रक्त का पान किया और परम तृप्ति का लाभ किया; किन्तु उनके तृप्त हो जाने के बाद भी पुनः प्रचुर संख्या में अन्धकों के सन्तान उत्पन्न हुए। शूल मुद्गर आदि शस्त्रास्त्रों समेत इन अन्धकों के प्रहार करने से महादेव अति व्यथित हुए और अन्धकों द्वारा व्याकुल चित्त होकर वे अजन्मा भगवान् वासुदेव की शरण में गये। शंकर को शरण में आया देख भगवान् विष्णु ने शुष्करेवती नामक एक देवी की उत्पत्ति की; जिसने क्षण भर में ही उन समस्त असुरों के रक्त को पान कर लिया। राजन्! ज्यों-ज्यों उन अंधकों के शरीर से रक्त को देवी ने पान किया त्यों-त्यों वह अधिक सूखती हुई-सी दिखाई पड़ने लगीं। उसके रक्त को पान कर लेने के बाद सभी अन्धकों को त्रिपुरारि शंकर ने विनष्ट कर दिया। अन्ततः जब त्रिलोक को धारण करनेवाले भगवान् शंकर ने अति पराक्रम से उस मुख्य अन्धक को वेगपूर्वक अपने त्रिशूल के अग्रभाग पर रख लिया, तब उसने शंकर की स्तुति की। वह प्रमुख अन्धक महाबलवान् था, उसके ऊपर प्रसन्न होकर शंकर ने उसे सर्वदा अपने समीप में रहने के लिए नियुक्त किया और गणेश का पद समर्पित किया। तदनन्तर उन सभी मातृकाओं ने शंकर से कहा—'भगवन्! हम सब तुम्हारी आज्ञा प्राप्त कर इस समस्त जगत् को—देवताओं, राक्षसों तथा मनुष्यों समेत—खा जायँगी, अतः इसके लिए हमें आज्ञा प्रदान कीजिये। ॥३३-४२॥

शंकर ने कहा—आप लोगों को तो समस्त प्रजा की रक्षा करनी चाहिये, न कि विनाश। अतः शीघ्र ही इस भयंकर अभिप्राय से अपने-अपने मन को लौटा लीजिये। ॥४२॥

शंकर की ऐसी बात का उन लोगों ने अनादर कर दिया और अत्यन्त उग्र स्वरूप होकर चराचर तीनों लोकों का भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया, इस प्रकार उन मातृ गणों द्वारा खाये जाते हुए त्रैलोक्य को देखकर भगवान् शिव ने नारसिंह स्वरूप उन देवाधिदेव भगवान् का ध्यान किया, जो कभी मृत्यु को नहीं प्राप्त होते, जिनका प्रारम्भ नहीं, जो सभी लोकों के उत्पन्न करनेवाले थे। दैत्यपति हिरण्यकशिपु

की छाती फाड़ने के कारण उससे निकले हुए रक्त से उनके भीषण नाखून रंगे हुए थे, उनकी जीभ बिजली की भाँति लपलपा रही थी, उनके दाँत महाभयानक थे, कंधे पर केसर का जाल शोभायमान था, वे प्रलय-कालीन वायु की भाँति अति क्षुभित हुए दिख रहे थे, उनका भीषण स्वर सातों समुद्रों के भयानक स्वरों की भाँति था, नख वज्र के समान अतिपुष्ट तथा तीक्ष्ण थे, भीषण मुख कान तक फैला हुआ था, आँखें सुमेरु पर्वत पर उदित हुए प्रातः कालीन सूर्य के समान तेजोमयी थीं, आकृति हिमवान् पर्वत के शिखर के समान थी, मुख की शोभा सुन्दर दाँतों की श्वेतता से अधिक बढ़ रही थी। जो भीषण नख की क्रोधाग्नि की ज्वाला तथा केसरों से युक्त थे, जिनके विशाल शरीर पर बँधा हुआ अंगद, सुन्दर मुकुट, हार तथा केयूर विराजमान हो रहे थे, कटि प्रदेश में अति विस्तृत सुवर्णमय कमर की करधनी भी सुशोभित थी, नीले कमल की पंखुड़ियों की भाँति दो सुन्दर नीले वस्त्र विराजित हो रहे थे, अपने-अपने अनुपम तेज से जिन्होंने निखिल ब्रह्माण्ड को आक्रान्त-सा कर लिया था, हवन को जलाती हुई अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं के समान देदीप्यमान जिनकी केसर पवन द्वारा इधर-उधर हिल रही थी, जल की भँवरों के समान घुंघुराले शरीर के बालों से जो संयुक्त थे, जिन्होंने कंठ में सभी चित्र विचित्र रंगवाले फूलों की बनाई हुई मनोरम माला धारण की थी।' शिव के ध्यान करते ही भगवान् ने अपना दर्शन दिया। परम बुद्धिमान रुद्र ने जिस प्रकार के स्वरूप का ध्यान किया था, उसी प्रकार के देवताओं द्वारा न देखे जाने योग्य भीषण स्वरूप से संयुक्त होकर भगवान् ने अपना दर्शन उन्हें दिया। दर्शन पाते ही शंकर जी ने हाथ जोड़कर देवाधिदेव की स्तुति की। ॥४३-५४॥

शंकर ने कहा—'जगत्स्वामी नरसिंह शरीर धारण करनेवाले! दैत्य पति हिरण्यकशिपु के रक्त से सम्पूर्ण नख को रंजित करनेवाले! पद्मनाभ सुवर्ण के समान शरीरधारी, इन्द्रादि देवताओं समेत समस्त जगत् के गुरो! युगान्त के मेघों की भाँति भीषण स्वर करनेवाले! करोड़ सूर्य के समान कान्तिमान्! सहस्र यम-राज के समान अति क्रुद्ध! सहस्र इन्द्र जितने पराक्रमी! सहस्र कुबेर के समान शोभायमान! सहस्र वरुण की भाँति पराक्रमी! सहस्रों काल की भाँति विनाश करनेवाले! सहस्रों इन्द्रियजित् महर्षियों के समान मन को स्ववश रखनेवाले! सहस्रों बार उत्पन्न होनेवाले, महाधैर्यशालिन्! सहस्रों, असंख्य मूर्ति धारण करने-वाले! सहस्रों चन्द्रमा के समान शोभायमान, सहस्रों ग्रहों के समान पराक्रमी! सहस्र रुद्र के समान तेजस्वी! सहस्रों ब्रह्मा द्वारा स्तुति किये जानेवाले! सहस्रबाहु अति उग्र एवं वेगवान् सहस्रों मुख तथा नेत्र धारण करने वाले! सहस्रों यन्त्र के समान नाश करनेवाले! सहस्रों का वध एवं मोक्ष करनेवाले! मैंने अन्धकों के विनाश के लिए जिन मातृकाओं की सृष्टि की थी, उन सबों ने मेरी निषेधाज्ञा का अनादर कर प्रजा का भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया है। अपराजित! उनकी सृष्टि करके अब मैं संहार नहीं कर सकता, स्वयं निर्माण करके उनका विनाश भला कैसे कर सकता हूँ?' रुद्र के ऐसा कहने पर नरसिंह रूप धारी महनीय आत्मा भगवान् विष्णु ने सर्वप्रथम जिह्वा से वागीश्वरी देवी की सृष्टि की। इसी प्रकार हृदय से माया का गुह्य प्रदेश से भवमालिनी का तथा हड्डियों से उस काली की सृष्टि की। उसी काली ने उस दुरात्मा अन्धकों के रक्त का पान किया था और वही इस लोक में शुष्करेवती नाम से प्रसिद्ध हैं। तदनन्तर सुदर्शन चक्रधारी विष्णु ने

अपने अंगों से बत्तीस मातृकाओं का निर्माण किया, उन बत्तीसों के नामों का मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। उन सब देवियों के नाम, महाभाग्य शालिनी घण्टाकर्णी, त्रैलोक्यमोहिनी, पुण्य देनेवाली सर्व सत्त्ववशंकरी, चक्र हृदया, व्योमचारिणी, शंखिनी, लेखिनी और काल संकर्षिणी। हे राजन्! ये सब देवियाँ वागीश की अनुचरी तथा पृष्ठगामिनी सुनी गई हैं। संकर्षिणी, अश्वत्था, बीजभावा, अपराजिता, कल्याणी, मधुदंष्ट्री, कमल-हस्तिका, तथा उत्पलहस्तिका। हे राजन्! ये आठ देवियाँ माया की अनुचरी कही गई हैं। अजिता, सूक्ष्महृदया, वृद्धावेशा, अश्मदंशना, नृसिंह भैरवा, बिल्वा, गरुत्महृदया, जया—हे राजन्! ये आठ भवमालिनी की अनुचर देवियाँ हैं। आकर्णनी, संभटा, उत्तरमालिका, ज्वालामुखी, भीषणिका, कामधेनु, बालिका तथा पद्मकरा—ये आठ रेवती की अनुचर देवियाँ हैं। ये सब विष्णु भगवान् के शरीर से उत्पन्न अति बलशालिनी तथा तीनों लोकों की सृष्टि और संहार करने में समर्थ थीं। ।।५५–७४।।

महाराज! भगवान् विष्णु द्वारा उत्पन्न किये जाते ही ये देवियाँ उन मातृकाओं के ऊपर अति क्रोध से विस्तृत नेत्र हो दौड़ पड़ीं। उस समय उनकी आँखों से असह्य तेज दिखाई पड़ रहा था। इन देवियों को देखकर जगत् के विनाश में उद्यत वे मातृकाएँ नरसिंह की शरण में गईं। शरण में जाने पर नरसिंह ने कहा—'जिस प्रकार मनुष्य तथा पशु चिरकाल तक अपनी सन्तति का पालन करते हैं, और शीघ्र ही देवताओं की भाँति विजय प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार मेरी प्रेरणा से आप लोग भी समस्त लोक का पालन करें। मनुष्य तथा देवगण त्रिपुरशत्रु शंकर जी की आराधना करें। जो लोग त्रिपुरान्तक शिव में भक्ति भावना रखनेवाले हैं, उनके कार्यों में वाधा न होनी चाहिये। जो लोग यहाँ मेरा स्मरण करते हैं, उनकी सर्वदा रक्षा करनी चाहिये। जो मनुष्य आप लोगों के लिए सर्वदा वलि कर्म करते हैं, उनके सभी मनोरथों को पूर्ण करें। जो लोग मेरे द्वारा कहे गये महात्मा आदि का वर्णन करते हैं उनको सर्वदा रक्षा करनी चाहिये, शासन की भी आप लोगों को रक्षा करनी चाहिये। महादेव रौद्री नामक एक परम तेजस्विनी मूर्ति प्रदान करेंगे, आप लोग महादेवी के पद पर प्रतिष्ठित होकर उसकी भी रक्षा करेंगी। उनके द्वारा कही गयी बातों की भी आप लोगों को रक्षा करनी होगी। मैंने जिन लज्जाभय से रहित मातृगण की सृष्टि की है, वह विस्तृत नेत्रोंवाला मातृकाओं का समूह नित्य मेरे साथ विहार करेगा। मेरे ही साथ आप लोगों को भी मनुष्यों द्वारा समर्पित की गई पूजा प्राप्त होगी। लोग अलग से भी पूजा करेंगे, उनके मनोरथों को पूर्ण करना होगा। जो पुत्र के इच्छुक मनुष्य शुष्का देवी की पूजा करेंगे, उन सबको वह देवी पुत्र देंगी, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार की बातें कह कर मातृकाओं के साथ, ज्वाला के समूहों से व्याप्त शरीर भगवान् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये। उसी स्थान पर एक तीर्थ उत्पन्न हुआ, जो 'कृतशौच' के नाम से प्रसिद्ध है। राजन्! उसी स्थान पर आदिदेव जगत् के दुःखों के हरण करने वाले भगवान् शंकर उस रौद्र मातृ समूह को अपना अति रौद्र दिव्य शरीर दिया और स्वयं उन्हीं के मध्य भाग में अवस्थित हुए। इस प्रकार अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर उन सात देवियों को उसी स्थान पर स्थापित कर स्वयं अन्तर्हित हो गये। मातृवर्ग के समेत शिव की मूर्ति जब जब उनके तथा नरसिंह

शरीरधारी देवेश्वर विष्णु के समीप में जाती है तब तब त्रिपुरदाहक अन्धक-शत्रुशिव की पूजा करते हैं। ॥७५-९०॥

श्री मात्स्य महापुराण में अन्धक वध नामक एक सौ उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१७९ ॥

एक सौ अस्सीवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! तुम से कहे गये अन्धक के वध का वृत्तान्त तो, जो कुछ था, उसे हम लोग सुन चुके, अब वाराणसी के माहात्म्य का वृत्तान्त सुनना चाहते हैं। उस वाराणसी में महाद्युति भगवान् पिंगल किस प्रकार गण रूप को प्राप्त हुए? और किस प्रकार अन्नदान करने का पद उन्हें प्राप्त हुआ? वे किस प्रकार क्षेत्रपाल और कैसे शंकर के प्रिय हुए? हे ब्रह्मपुत्र! इन सब बातों को हम लोग तुमसे सुनना चाहते हैं। ॥१-३॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! पिंगल ने जिस प्रकार गणेशत्व की प्राप्ति की और जिस प्रकार लोक को अन्नदान देने का पद उन्हें प्राप्त हुआ, वाराणसी नगरी जैसे उनको मिली—उन सब कथाओं को मैं कह रहा हूँ, सुनिये। प्राचीन काल में पूर्णभद्र का पुत्र प्रतापशाली, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणों का प्रतिपालक धार्मिक हरिकेश नामक एक यक्ष था। उसकी जन्म से ही भगवान् शंकर में परम भक्ति थी, उन्हीं के नमस्कार करने में, उन्हीं की भक्ति में तथा उन्हीं की शरण में वह सर्वदा लीन रहता था। सोते, जागते, चलते, फिरते उठते, बैठते, खाते पीते—सब समय वह रुद्र के ही ध्यान में मग्न रहा करता था। शंकर की भक्ति में इस प्रकार अनन्य भाव से लीन अपने पुत्र को देख कर उसके पिता पूर्णभद्र ने कहा कि मैं तुम्हें अपना बेटा नहीं मानता, तुम निश्चय ही किसी दूसरे के संसर्ग से उत्पन्न हुए हो, यक्षों के कुल में उत्पन्न होनेवालों की ऐसी वृत्ति नहीं होती, क्योंकि वे तो स्वभाव से ही क्रूर चित्तवाले होते हैं, कच्चा मांस खाते हैं, कुत्सित जीवों का भक्षण करते हैं, हिंसक होते हैं। पुत्र! यदि तुम सचमुच मेरे पुत्र हो तो ऐसा मत करो, क्योंकि महापुरुषों ने हम लोगों के लिए ऐसी वृत्ति नहीं बतलायी है। भगवान् ब्रह्मा ने जिस प्रकार के कर्मों का उपदेश हमारी जातिवालों को दिया है यदि तुम उसे छोड़ रहे हो तो अनुचित कर रहे हो, किसी गृहस्थाश्रमी परिवारवाले व्यक्ति को दूसरे आश्रम वालों के कर्मों के करने का अधिकार नहीं है। अतः तुम अपने मानवीय स्वभाव का परित्याग कर यक्षों के विविध कर्मों को करो। यदि तुम वैसा नहीं करोगे और इस प्रकार अन्य के मार्ग पर रहोगे तो मैं जानूंगा कि निश्चय ही तुम्हारी उत्पत्ति मनुष्य से हुई है। अतः यक्षों के करने योग्य विविध कर्मों का, जिन्हें मैं करता हूँ, तुम अनुसरण करो, इसमें सन्देह नहीं है कि वे मेरे द्वारा किये गये कर्म यक्ष जाति के करने योग्य हैं। ॥४-१२॥

सूत ने कहा—प्रतापशाली पूर्णभद्र ने अपने पुत्र से इस प्रकार की बातें कर और उस पर अपनी बातों का कोई प्रभाव न देख कर निष्ठुरता पूर्ण स्वर में कहा—'हे पुत्र ! यदि तुम मेरे कथन पर ध्यान नहीं दे रहे हो तो शीघ्र ही यहाँ से, जहाँ तुम्हारा मन कहे, चले जाओ।' पिता की ऐसी बातें सुनने पर हरिकेश ने अपने परिवार सम्बन्धियों तथा घरवालों को छोड़कर वाराणसी नगरी की शरण ली और वहाँ पहुँच कर अति दारुण तपस्या प्रारम्भ की। वहाँ वह विना आँखों को खोले सूखे हुए काष्ठ तथा शिला की भाँति स्थाणुवत् निश्चल हो सभी इन्द्रियों को स्ववश कर अवस्थित रहा। इस प्रकार उस महान् आत्मा के घोर तपस्या में अवस्थित होने पर एक सहस्र दिव्य वर्ष का समय व्यतीत हो गया। उसके शरीर के चारों ओर बिलें बन गईं। वज्र की बनी हुई सूई के समान तीक्ष्ण मुखवाले चींटों ने शरीर को खा खा कर बींध डाला। जिस से माँस रक्त तथा चमड़े से रहित हो वह अस्थि मात्र शेष रह कुन्द के पुष्प तथा शंख के समान दिखाई पड़ने लगा। किन्तु इतने पर भी वह देवाधिदेव शंकर के ध्यान में मग्न रहा। इसी अवसर पर पार्वती देवी ने शंकर से यह निवेदन किया। ॥१४-२०॥

देवी ने कहा—हे देव ! मैं पुनः इस उपवन को देखना चाहती हूँ, और इस काशी क्षेत्र के माहात्म्य का वर्णन सुनने की मुझे उत्कंठा है, क्योंकि यह तुम्हें विशेष प्रिय है और उसके श्रवण करने का फल भी उत्तम कहा जाता है। ॥२१॥

पार्वती के इस प्रकार निवेदन करने पर परमेश्वर शंकर ने इन पूछी गई बातों के बारे में, जैसा कुछ कहा गया है—यथार्थतया सुनाने का निश्चय किया। फिर पार्वती को साथ लेकर पिनाकधारी देवाधिदेव शंकर ने देवी को उस उपवन का दर्शन कराया। ॥२२-२३॥

देवाधिदेव शंकर ने कहा—हे प्रिये ! मन को हरनेवाले अति सुन्दर उपवन को देखो। देखो, झुकी हुई लताओं की वल्लरियों से वह सुशोभित हो रहा है, खूब खिले हुए विविध प्रकार के लता गुल्म उसमें शोभायमान हो रहे हैं, चारों ओर से प्रियंगु की मनोहारिणी लताएँ फूलों से लदी हुए दिखाई पड़ रही हैं, काँटोंवाली केतकी के समूहों में भी खूब फूल खिले हुए हैं। अति सुगंधियुक्त तमाल के गुल्मों से यह उपवन भरा पड़ा है, सभी प्रकार के कनेर तथा बकुल भी खिले हुए हैं, इसमें भ्रमरों के समूहों से युक्त पुष्पों से लदे हुए अशोक तथा पुन्नाग के वृक्ष कितने सुन्दर फूले हुए हैं। इस उपवन में कहीं पर खिले हुए कमलों के मकरन्दों से धूसरित विविध पक्षी गण अति सुन्दर कलरव कर रहे हैं, कहीं पर सारस आदि जल पक्षी कलनाद कर रहे हैं, कहीं पर मतवाले पपीहे और जलकाक पक्षियों की सुरीली ध्वनि हो रही है। कहीं पर चक्रवाक पक्षी के सुन्दर स्वर सुनाई पड़ रहे हैं, कहीं पर हंसों के छोटे-छोटे बच्चे किलोलें मार रहे हैं, कहीं कलहंसों के समूह अपनी मतवाली ध्वनि सुना रहे हैं। एक ओर कहीं मतवाले भ्रमरों के समूह गूँजते हुए उड़ रहे हैं। इस उपवन के किसी भाग में काम मद से आकुल देवांगनाएँ विहार कर रही हैं, कहीं दूसरी ओर खूब फूले हुए आम्र के वृक्ष तथा लताओं से आवेष्ठित तिलक के वृक्ष शोभायमान हो रहे हैं। किसी भाग में सिद्ध तथा गन्धर्वों के समूह गान करने में मग्न हैं तो दूसरी

और अप्सराओं के वृन्द नाचने में प्रवृत्त हैं। अति प्रमोद में लीन विविध प्रकार के पक्षीगण इस उपवन में उड़ रहे हैं, कुछ मतवाले हारीत पक्षी कलरव मचा रहे हैं। कहीं पर सिंह दहाड़ रहा है, कहीं पर हिरणों के जोड़े विहार कर रहे हैं। कहीं पर तालावों में अनेक प्रकार के सुन्दर कमल खिले हुए हैं और कहीं पर मनोहर तालाब शोभित हो रहे हैं। अति नील वर्ण के मनोरम दिखाई पड़नेवाले मनोहर मयूरों से शोभायमान वह उपवन प्रमुदित तथा उन्मत्त विहंगों के समूहों से गुँजरित होकर सुशोभित हो रहा है, फूली हुई वृक्षों की डालियों में लगे हुए उन्मत्त भ्रमर के समूह गुंजार कर रहे हैं। वृक्षों की शाखाओं में नवीन कोंपलों के मनोहारि गुच्छे सुशोभित हो रहे हैं, कहीं पर हाथियों से तोड़ी गयी मनोरम लताएँ पड़ी हुई हैं, कहीं पर सुन्दर लताएँ वृक्षों पर आलिंगन कर रहीं हैं, कहीं पर विलास से अलसाये हुए मयूरगण मन्द-मन्द विचरण कर रहे हैं, और कहीं पर किन्नरों के समूह विहार कर रहे हैं। श्वेत वर्ण के मनोहारि सुन्दर दिखाई पड़नेवाले गगनचुम्बी सुन्दर शिखर, जिस पर कबूतरों की ध्वनियाँ गुँजरित हो रही हैं, विराजमान हो रहे हैं, उन पर्वतों के शिखरों पर मुक्तहास सूचित करनेवाले पुष्पों के समूह बिखरे हुए हैं और स्वर्ग निवासी अनेक देवगण विहार कर रहे हैं। फूले हुए कमल एवं अगुरु के सहस्रों वितानों से युक्त जलाशयोंवाले इस उपवन के मार्ग देवमार्गों की भाँति शोभित हो रहे हैं, इन मार्गों पर विचित्र प्रकार के पुष्प बिखरे हुए हैं और सुन्दर गुच्छेवाले वृक्ष, जिन पर पक्षीगण कलरव कर रहे हैं, विराजमान हैं।॥२४–३४॥

इस उपवन में कहीं पर ऊँची डालियों पर खिले हुए श्यामल वर्ण के पुष्प के गुच्छों के भार से अवनत शाखाओं से सुशोभित अशोक के वृक्ष, जिनके भीतर मद से उन्मत्त सुन्दर भ्रमरों की पंक्तियाँ कानों को सुख देनेवाली मनोहारिणी गीतों की ध्वनि करती हुई शोभायमान हो रही हैं, सुशोभित हैं। और कहीं पर रात्रि में चन्द्रमा की कान्ति से समानता प्राप्त करनेवाले फूले हुए तिल के वृक्ष दिखाई पड़ रहे हैं। कहीं पर वृक्षों की छाया में सोते हुए, बैठे हुए तथा खड़े हुए हरिणों के समूहों से चरे गये कुशों के अग्रभाग शोभित हो रहे हैं। ॥३५॥

इस उपवन में हंसों के पंखों के हिलाने-डुलाने के कारण हिलते हुए कमलों से युक्त स्वच्छ विस्तीर्ण जलराशि शोभित हो रही है, जलराशि के तट पर उत्पन्न फूले हुए केले के पौदोंवाले मार्ग पर नाचते हुए मयूर गण दिखाई पड़ रहे हैं, कहीं पर मयूरों के चन्द्रक युक्त पंखे गिरे हुए हैं, जिनसे पृथ्वी तल शोभित हो रहा है। सभी ओर फैले हुए विहार करनेवाले हारीत पक्षीगण वृक्षों पर शोभित हो रहे हैं। इस उपवन के किसी भाग में सारंग मृग के समूह बैठे हुए हैं, कहीं पर विचित्र रंग के पुष्पों के समूह से पृथ्वी तल छिपा हुआ है, कहीं पर उन्मत्त किन्नरों की स्त्रियाँ अति हर्षित होकर विहार कर रही हैं। उनके सुमधुर गीतों की ध्वनियाँ वृक्षों के गुच्छों में प्रतिध्वनित हो रही हैं। कहीं पर मुनिजनों द्वारा बनाये गये लीप पोतकर स्वच्छ एवं बिछाये गये पुष्पों से सुशोभित आवास स्थलों से युक्त वृक्ष दिखाई पड़ रहे हैं, और कहीं पर जड़ तक फलों से लदे हुए ऊँचे तथा फैले हुए कटहल के वृक्ष-समूह सुशोभित हैं। इस उपवन

के किसी भाग में सिद्धाङ्गनाओं के सुवर्ण निर्मित नूपूर की सुमधुर ध्वनियों से गुंजरित एवं मोतियों के समान खूब फूली हुई लताओं से आवेष्ठित सिद्धों के लीला-गृह विराजमान हैं, कहीं पर सुन्दर प्रियङ्गु लता की मंजरी में लीन मधुपगण गुंजार कर रहे हैं, और कहीं पर मृगों के समूहों द्वारा गिराये गये मनोहर कदम्ब के पुष्प सुशोभित हैं। कहीं पर पुष्पों के समूहों को गिराने वाले वायु से प्रकम्पित वृक्षों की डालियों के अग्रभाग झुककर बाँस की कोठों को नीचे गिरा रहे हैं, उन झुकी हुई बाँस की कोठों में डरी हुई हरिणियों के समूह छिपे हुए हैं, सचमुच यह उपवन देखनेवाले प्राणियों को अपवर्ग का सा सुख प्रदान करने वाला है। इस उपवन में कहीं पर सिन्दूर, केसर तथा कुसुम्भ की भाँति लालवर्ण के अशोक सुशोभित हो रहे हैं, और कहीं लम्बी डालियोंवाले सुवर्ण की कान्ति के समान दिखाई पड़नेवाले फूलों से सुशोभित कनेर के वृक्ष हैं और कहीं पर कमल खिले हुए हैं, कहीं चाँदी के बने हुए पत्रों की भाँति श्वेतवर्ण के, कहीं पर विद्रुम की भाँति लाल वर्ण के और कहीं पर पर सुवर्ण की भाँति पीले वर्ण के पुष्प समूहों से यह भूतल शोभायमान हो रहा है। कहीं पर पुन्नाग के वृक्षों पर पक्षियों के कलरव, कहीं पर लाल अशोकों के गुच्छों के भार से विनम्र डालियाँ, कहीं पर रमणीक स्थल में परिश्रम को दूर करनेवाले वायु के झोंके और कहीं पर विकसित कमलों पर गुंजार करते हुए भ्रमरों की पंक्तियाँ सुख देती हुई शोभायमान हो रही हैं। ॥३६—४३॥

इस प्रकार उस समय समस्त लोकों के स्वामी लोकनाथ भगवान् शंकर ने अपने प्रिय गणेश्वरों को साथ लेकर उस विविध प्रकार के विशाल वृक्षों से सुशोभित तथा उन्मत्त एवं हर्षित करनेवाले मनोहर उपवन को हिमवान् की पुत्री पार्वती को दिखलाया। ॥४४॥

देवी ने कहा—हे देव! अनुपम शोभायुक्त इस उद्यान को तो आप मुझे दिखला चुके अब इस क्षेत्र के समस्त माहात्म्य का वर्णन मुझ से करें। इस परम पुण्यप्रद अविमुक्त क्षेत्र के माहात्म्य को सुनकर भी मुझे तृप्ति नहीं प्राप्त होती अतः पुनः इसको मुझसे कहिये। ॥४५-४६॥

देवाधिदेव शंकर ने कहा—हे देवि! सर्वदा सभी जीवों को मोक्ष देने की हेतु रूप यह वाराणसी नगरी मेरा अति गोपनीय क्षेत्र है। मेरे व्रत में रहने वाले सिद्धगण विविध प्रकार के शरीर धारण कर सर्वदा मेरे लोक की आँकाक्षा करते हुए इसमें निवास करते हैं और इन्द्रियों को वश में कर मुक्तात्मा हो श्रेष्ठ योग का अभ्यास करते हैं। अनेक प्रकार के वृक्षों से आकीर्ण, विविध प्रकार के पक्षियों से गुञ्जरित, कमल उत्पल आदि पुष्प समूहों से सुशोभित, सुन्दर, सरोवरों से अलंकृत, सर्वदा अप्सराओं एवं गन्धर्वों के समूहों से सुसेवित इस शुभ क्षेत्र में, जिस कारण सर्वदा निवास करना मुझे भाता है, वह सब सुनो। मेरे वे भक्त, जो अपनी सभी क्रियाओं को करके मुझी में अर्पित करते हैं, मेरा ही चिन्तन करनेवाले हैं, जिस प्रकार सुगमता से यहाँ मोक्ष को प्राप्त करते हैं, उस तरह कहीं अन्यत्र नहीं। यह मेरा महान् पुर अति दिव्य गुणसम्पन्न तथा अति एकान्त में है। इससे बढ़कर कोई भी क्षेत्र मुझे प्रिय नहीं है, इस बात को या तो ब्रह्मादि देवतागण जानते हैं, वामोक्ष के इच्छुक सिद्ध गण जानते हैं। क्योंकि मैंने अपने इस क्षेत्र को कभी नहीं छोड़ा है और न कभी छोड़ना चाहता हूँ। अतएव इस महान् क्षेत्र का नाम अविमुक्त कहा जाता

है। नैमिषारण्य में, कुरुक्षेत्र में, हरिद्वार में तथा पुष्कर क्षेत्र में स्नान करने तथा ध्यान पूजनादि से सामान्यतः मोक्ष नहीं प्राप्त होता, और यहाँ आने पर जिस कारण वश प्राप्त हो जाता है अतएव इसकी विशेषता है। प्रयाग में मोक्ष प्राप्त होता है और यहाँ मेरे स्थान होने के कारण प्राणियों को मोक्ष की प्राप्ति होती है। किन्तु तीर्थों में श्रेष्ठ प्रयाग से भी इसका अधिक महत्त्व है। महा तपस्वी जैगीषव्य ने, जो परम सिद्धि प्राप्त करनेवाले थे, इस काशी क्षेत्र के माहात्म्य से तथा मेरी भक्ति के कारण यहीं पर नित्य मेरा ध्यान करते हुए योगियों की परमोच्च पदवी को प्राप्त किया था। मनुष्य को मेरा ध्यान करने पर इस काशी क्षेत्र में उद्दीप्त योगाग्नि प्राप्त होती है, जिससे वह कैवल्य पद की प्राप्ति करता है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। सभी सिद्धान्तों के जानने वाले मुनिगण, अप्रकट रूप में छिपे हुए इस क्षेत्र में देवताओं तथा दानवों के लिए भी दुर्लभ मोक्ष की प्राप्ति करते हैं, उन सब को मैं उत्तम ऐश्वर्य एवं भोग देता हूँ, और अंत में अपनी समीपता, एवं उनके मनोवांछित स्थान को भी देता हूँ। मेरे लिए सभी क्रियाओं का समर्पण कर इस क्षेत्र में निवास करने के कारण ही यक्षराज कुबेर ने गणेशत्व की पदवी प्राप्त की है। देवि! भविष्यत् काल में संवर्त नामक जो तपस्वी होगा, वह भी मेरा भक्त होगा, इसी क्षेत्र में मेरी आराधना कर वह परम श्रेष्ठ सिद्धि को प्राप्त करेगा। हे पद्माक्षि! महा तपस्वी योगी मुनिपुंगव पराशर के पुत्र व्यास भी, जो वेदों की मर्यादा के प्रवर्त्तक तथा धर्म कार्यों के कर्त्ता होंगे, इसी क्षेत्र में तपस्या करते हुए निवास करेंगे। यहाँ ब्रह्मर्षियों के साथ ब्रह्मा, विष्णु, वायु, सूर्य, देवराज इन्द्र तथा इनके अतिरिक्त अन्य जो देवगण हैं, वे सभी महान् चेता मेरी उपासना करते हैं। अन्य जो महाव्रत धारी योगाभ्यास में निरत सिद्ध महात्मा हैं, वे प्रच्छन्न रूप धारण कर अनन्य चित्त हो यहाँ मेरी सर्वदा उपासना करते हैं। मेरी ही कृपा से इस काशी पुरी को राजा अलर्क प्राप्त करेगा। वह इस काशी पुरी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चारों वर्णों तथा ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों के पालन करने वाले मनुष्यों से आकीर्ण कर चिरकाल तक मेरी भक्ति से इसका उपभोग करता हुआ अपने सभी कार्यों को मुझको समर्पित कर अन्त में मुझे प्राप्त करेगा। सुन्दरि! उसी समय से लेकर जो कोई प्राणी इस क्षेत्र में निवास करते हुए मेरी भक्ति तथा मेरी शरण में रहकर—चाहे वे गृहस्थाश्रमी हों अथवा संन्यासी हों—मेरी ही कृपा से परम दुर्लभ मोक्ष की प्राप्ति करेंगे। जो प्राणी अपने वर्णाश्रम धर्म को छोड़कर सर्वदा विषयों में आसक्त रहनेवाले हैं; वे भी इस क्षेत्र में शरीर त्याग कर पुनः संसार में जन्म नहीं धारण करते। सुव्रते! फिर तो, जो अहंकार रहित, धैर्यवान्, सत्त्ववृत्ति में निरत रहनेवाले, जितेन्द्रिय, तपस्या में निरत, निरारम्भ एवं संगवर्जित तथा मेरी भक्ति से भावित हैं, वे भी परम बुद्धिमान् शरीर को छोड़कर मेरी कृपा से परम मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। योगी लोग सहस्रों जन्मों में योगाराधना कर के जिस परम पद की प्राप्ति करते हैं, उसको इस काशी क्षेत्र में शरीर त्याग कर प्राप्त करते हैं। हे देवि! संक्षेप में यही इस अतिगोपनीय अविमुक्त क्षेत्र का महत्त्व पूर्ण फल है, जिसे मैं तुम्हें सुना चुका। हे महेश्वरि! इससे बढ़कर गोपनीय सिद्धि की बात कोई नहीं है, इसे योग के माहात्म्य को जानने वाले ही जानते हैं, अथवा वह लोग जानते हैं जो इस पृथ्वी मण्डल में योगिश्वर माने जाते हैं। यही सबसे श्रेष्ठ स्थान है, यही सबसे श्रेष्ठ फल देने वाला क्षेत्र है,

यही परमब्रह्म है, यही परम पद है। हे गिरिराज पुत्रि ! यह रमणीय वाराणसी पुरी, जो तीनों लोकों में सर्वश्रेष्ठ है, मेरी परम प्यारी नगरी है, यहाँ पर आकर अनेक प्रकार के पाप कर्मों के करनेवाले पापी जन भी पाप कर्मों के क्षय हो जाने से रजोवृत्ति रहित होकर सुशोभित होते हैं। देवि ! विचित्र प्रकार के वृक्षों एवं लताओं के गुल्मों एवं पुष्पों से सुशोभित, कभी नष्ट न होने वाला अविमुक्त क्षेत्र मेरा अति प्रिय क्षेत्र कहा गया है, इस मेरे क्षेत्र में शरीर त्याग करनेवाले शरीरधारी, चाहे वे मूर्ख अथवा वेद विरुद्ध क्यों न हों, परम पद की प्राप्ति करते हैं। ॥४७-७९॥

सूत ने कहा—इसके बाद देवाधिदेव शंकर ने गिरिपुत्री पार्वती से कहा—'हे भामिनि ! भक्त यक्ष को वरदान देने के लिए चलना चाहिये। हे सुन्दरि भुवनेश्वरि ! वह यक्ष मेरा भक्त है, जो अपनी घोर तपस्या के प्रभाव से निष्पाप हो चुका है, अब मुझसे वरदान प्राप्त करने का वह अधिकारी है।' ऐसा कह कर पार्वती के साथ महादेव वहाँ गये, जहाँ पर धमनियों के जाल रूप में अवशेष वह यक्ष अवस्थित था। वहाँ पहुँच कर उस समय श्वेतवर्ण चर्मरहित स्नायु से बंधे हुए अस्थि के पंजर रूप में अवशेष यक्ष को देखती हुई पार्वती ने महादेव को उसे दिखलाया और कहा—'हे शंकर ! देवताओं ने आप का नाम जो उग्र रखा है, वह सत्य है, क्योंकि ऐसी घोर तपश्चर्या में लीन होनेवाले को तुम वरदान नहीं देते। देवाधिदेव ! इस पुण्यप्रद क्षेत्र में इतनी घोर उपासना करके यह यक्ष का कुमार क्यों इतने घोर क्लेश को अभी तक सहन कर रहा है, हे परमेश्वर ! शीघ्र ही इसके ऊपर प्रसन्न होकर वरदान दीजिए। हे देव ! मनु आदि परम ऋषिगण आप के विषय में ऐसी चर्चा करते हैं कि सदाशिव से रुष्ट होने पर तथा संतुष्ट होने पर—दोनों दशाओं में इस लोक में भोग की प्राप्ति तथा राज्य मिलता है, और शरीरान्त होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। ॥८०-८७॥

पार्वती के ऐसा कहने पर शिव उन्हें साथ लेकर उस स्थान पर गये जहाँ वह यक्ष धमनियों के जाल रूप में अवशेष हो तपस्या में निरत था। वृषभध्वज ने भक्ति से नमस्कार करते हुए उसे देख कर दिव्य नेत्र प्रदान किया, जिससे उसने शंकर को स्पष्टतया देखा। तदनन्तर यक्ष ने शिव के आदेश से अपनी आँखों को धीरे से खोल कर गण समेत उपस्थित वृषभध्वज शंकर का यथेष्ट दर्शन किया। ॥८८-९०॥

देवदेव ने कहा—तुम्हें मैं सर्वप्रथम इस त्रिलोक में दर्शन करने का वरदान दे रहा हूँ, पुनः अपने शरीर के समान तुम्हारे शरीर के वर्ण होने का वरदान भी दे रहा हूँ, अब सभी दुःखों से तुम दूर हो कर मुझे देखो। ॥९१॥

सूत ने कहा—शिव से वरदान की प्राप्ति कर सुन्दर व्रणरहित शरीर को प्राप्त कर उस यक्ष ने हाथों को मस्तक में लगा शिवजी के चरणों पर गिरकर निवेदन किया—'भगवन् देवदेव ! आप यदि हमें वरदान दे रहे हैं तो आप के चरणों में मेरी अटूट निश्चल भक्ति हो—ऐसा वरदान दीजिये तथा सभी लोगों को अन्नदान देने का तथा गणों के स्वामी होने का अक्षयपद मुझे प्रदान कीजिये, जिससे आपसे कभी नहीं छोड़े गये

इस अविमुक्त क्षेत्र का मैं सर्वदा दर्शन करता रहूँ, मैं इसी सर्वश्रेष्ठ वरदान को प्राप्त करने का इच्छुक हूँ। ॥९१-९४॥

देवदेव ने कहा—यक्ष! तुम वृद्धावस्था एवं मृत्यु से तथा सभी प्रकार की व्याधियों से रहित हो सब के पूज्य एवं गणों के स्वामी धनपति होगे, अतुल ऐश्वर्य एवं योग की प्राप्ति कर सभी प्राणियों द्वारा अजेय होकर सभी लोगों के अन्नदाता तथा क्षेत्रपाल होगे। मेरे प्रिय होकर महाबलवान् परम पराक्रमी सत्त्वगुणसम्पन्न, ब्राह्मणोपकारक, तीन आँखोंवाले, दण्डपाणि तथा महान् योगाभ्यासी होगे। उद्भ्रम तथा संभ्रम नामक दो गण तुम्हारे सेवक होंगे, और तुम्हारी आज्ञा से वे लोक के चित्त को व्याकुल तथा क्षुब्ध करने वाले होंगे। ॥९५-९८॥

सूत बोले—इस प्रकार देवेश महेश्वर भगवान् शिव ने उस यक्ष को गणों का स्वामी बनाकर उसके साथ अपने निवास स्थान को प्रस्थान किया। ॥९९॥

श्री मात्स्य महापुराण में वाराणसी माहात्म्य प्रसंग में दण्डपाणि वर प्रदान नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त। ॥१८०॥

एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय

सूत बोले—परम शुद्धचित्त तपस्वी ऋषिगण! इस पाप को नष्ट करनेवाली पुण्य प्रदायिनी मनोहर कथा को आप सब लोग सुनें। एक समय रुद्र के समान पराक्रमी गणेश्वरों के स्वामी नन्दिकेश्वर से भगवान् सनत्कुमार ने पूछा था—'हे नन्दिकेश्वर! परमात्मा, सभी जीवों के स्वामी, महान्चेता महेश्वर भगवान् शंकर जहाँ पर नित्य अवस्थित रहते हैं, ऐसे पवित्र अति गोपनीय स्थान का पता हमें बतलाइये, जहाँ सृष्टि के स्थाणु रूप भगवान् महेश्वर महाप्रलय पर्यन्त अति भयानक देवताओं तथा दैत्यों के लिए भी दुष्कर स्वरूप को धारण कर स्थित रहते हैं।' ॥१-४॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—देवाधिदेव शंकर ने पहले जिस उत्तम पुण्यप्रदायिनी कथा को मुझसे कहा है, उसी सारी कथा को महेश्वर को प्रणाम कर मैं आप से बतला रहा हूँ। पार्वती के कल्याण की भावना से अति सन्तुष्ट होकर शिव ने पृथ्वी पर विख्यात उस पवित्र स्थान को बतलाया था, जहाँ वे नित्य निवास करते थे। सुमेरु के शिखर पर महादेव जी के आधे आसन पर विराजमान यशस्विनी पार्वती जी ने उनसे विनम्र होकर एकबार ऐसा पूछा। ॥५-७॥

देवी ने कहा—देवदेवेश! मस्तक पर आधे चन्द्रमा से सुशोभित! भगवन्! इस पृथ्वी मण्डल

पर ऊर्ध्वरेता मनुष्यों के धर्मों का उपदेश मुझे दीजिये। किस प्रकार से जपा हुआ जप, हवन किया हुआ यज्ञ, विधिपूर्वक की गई तपस्या, ध्यान एवं अध्ययन से प्राप्त की गई पुण्य तथा विद्या शाश्वत फलदायी हो जाती है। जो पाप पूर्वकाल से— सहस्रों जन्मों से—संचित होता चला आता है, वह किस प्रकार नष्ट हो जाता है, हे शंकर! इस बात को मुझसे बतलाइये। हे महेश्वर। जिस क्षेत्र में अवस्थित होकर आप भक्ति से सन्तुष्ट हो जाते हैं और जहाँ पर किये गये व्रत, आचार, नियम, धर्म आदि सम्पूर्ण सिद्धियों के देने वाले होते हैं और कभी नष्ट नहीं होते, उसके बारे में समस्त वृत्तान्त को सुनने के लिये मुझे बड़ा कुतूहल हो रहा है, कृपया आप कहें। ॥८-१२॥

महेश्वर ने कहा—हे देवि! सभी क्षेत्रों में विख्यात, अति एकान्त एवं गोपनीय मेरे प्रिय अविमुक्त क्षेत्र का वर्णन सुनो, मैं कह रहा हूँ। जहाँ पर पूर्व काल से ही अति उत्तम अड़सठ स्थान गिनाये गये हैं उस अविमुक्त क्षेत्र में रुद्र मूर्ति धारण कर गजेन्द्र का चर्म पहन कर मैं स्वयं निवास करता हूँ। निरन्तर निवास करते हुए मैंने उस क्षेत्र को कभी भी नहीं छोड़ा है। अतः वह अविमुक्त के नाम से विख्यात है। उस अविमुक्त क्षेत्र में परम सिद्धि प्राप्त होती है, परमगति मिलती है। वहाँ पर किये गये जप, दान, हवन, यज्ञाराधन, तपस्या, ध्यान तथा अध्ययन आदि कर्म कभी नष्ट नहीं होते। पूर्वकाल के सहस्रों जन्मों में किये गये सभी पाप कर्म, जो संचित हो जाते हैं, अविमुक्त में प्रवेश करते ही नष्ट हो जाते हैं। रुई के समान इकट्ठे हुए वे पाप अविमुक्त रूप अग्नि से तुरन्त जल जाते हैं। हे प्रिये! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्ण संकर, कृमि, म्लेच्छ, अन्य पापयोनि में उत्पन्न होने वाले नीच मनुष्य, कीट, चींटे आदि, अन्य जो पशु तथा पक्षी जाति के जीव हैं, वे सभी काल के प्रभाव से यदि इस अविमुक्त क्षेत्र में शरीर त्याग करते हैं तो आधे चन्द्रमा से विभूषित मस्तक वाले हो, ललाट में मेरी ही भाँति तृतीय नेत्र तथा वृषभध्वज हो मेरे शिवपुर में आनन्द का उपभोग करते हैं। देवि! कामयुक्त हो वा निष्काम हो, चाहे तिर्यक् योनि में ही क्यों न उत्पन्न हुआ हो, इस अविमुक्त में प्राण छोड़कर मेरे लोक में पूजित होता है। जो मनुष्य कभी काल क्रम से अविमुक्त की यात्रा करता है और पत्थर के टुकड़ों से चरणों को बाँधकर या तोड़कर प्राण त्याग करता है, अविमुक्त को प्राप्त कर फिर कभी उससे बाहर नहीं निकलता, वह भी मेरे स्थान को प्राप्त करता है, इसके बारे में शंका समाधान करने की आवश्यकता नहीं ? ॥१३-२४॥

वस्त्र पद, रुद्रकोटि, सिद्धेश्वर महालय, (सिद्धेश्वर का विशाल आवासस्थान), गोकर्ण, रुद्रकर्ण, सुवर्णाक्ष, अमर, महाकाल, कायावरोहण—ये सब स्थान दोनों—प्रातःकाल तथा सन्ध्याकाल की—सन्ध्याओं में मेरे सन्निधान के कारण परम पवित्र रहते हैं। हे प्रिये! कालिंजर नामक वन, शंकुकर्ण, स्थलेश्वर—ये सब भी मेरे सन्निधान से परम पवित्र हैं। अविमुक्त में मैं तीनों सन्धाओं में निवास करता हूँ। परम एकान्त हरिश्चन्द्र, आम्रांतकेश्वर, जालेश्वर, श्री पर्वत, महालय, कृमिचण्डेश्वर; अति एकान्त केदार तथा महाभैरव—ये आठ स्थान मेरे तीनों संध्याओं में निवास करने के कारण अति पवित्र हैं। हे सुन्दरि! इस अविमुक्त क्षेत्र में तीनों सन्ध्याओं में निवास करता हूँ—इसमें संशय नहीं। हे सुव्रते! तीनों लोकों में जितने पुण्यप्रद स्थान

बतलाये गये हैं, वे सभी अविमुक्त के चरणों में सर्वदा सन्निहित रहते हैं। शोभने! इसके बाद अविमुक्त की दिव्य कथा तथा भक्ति में लीन ऋषियों के वृत्तान्त को स्कन्द कहेंगे। ॥२५-३२॥

श्री मात्स्य महापुराण में अविमुक्त माहात्म्य नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त। ॥१८१॥

एक सौ बयासीवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! प्राचीनकाल में सनकादि परम तपस्वी ऋषिगण तथा महेश्वर में भक्ति रखने वाले जितने राजर्षि हैं—उन सबों ने एक बार कैलास की पीठ पर बैठे हुए ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ स्कन्द से पूछा—'हे स्कन्द! मुझे पृथ्वीतल के उस स्थान का माहात्म्य बतलाइये जहाँ पर नित्य भगवान् शंकर निवास करते हैं। ॥१-२॥

स्कन्द ने कहा—सभी जीवों के आत्मस्वरूप देवादेव, कभी नष्ट न होनेवाले, महनीय आत्मा भगवान् शंकर देवताओं तथा दानवों से दुष्करणीय महा भयानक रूप धारण कर जिस स्थान पर महाप्रलय तक स्थाणु रूप से निवास करते हैं, वह अति गोपनीय एवं एकान्त अविमुक्त नामक क्षेत्र है। उस अविमुक्त क्षेत्र में, जहाँ नित्य शंकर निवास करते हैं, सर्वदा सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, स्वयं शिव ने उस अविमुक्त का जो माहात्म्य कहा है, उसे मैं कह रहा हूँ! यह काशी क्षेत्र परम पवित्र क्षेत्र है, इसमें अनेक पवित्र तीर्थ एवं देवमन्दिर हैं। इसमें श्मशान भूमि पर अवस्थित एक दिव्य भवन है, जो सर्व साधारण को दिखाई नहीं पड़ता। धरातल से उस शिवालय का संयोग नहीं है, प्रत्युत वह आकाशमार्ग में अवस्थित है। उस शिवालय को जो लोग ब्रह्मचारी अथवा योगी नहीं हैं वे नहीं देख पाते, केवल योगी जन समाधिस्थ होकर उसका दर्शन करते हैं। वेदान्त के जाननेवाले ब्रह्मचर्य व्रत में निष्ठ सिद्ध लोग भली भाँति ब्रह्मचर्य का पालनकर तथा विधिपूर्वक यज्ञों का अनुष्ठान कर जिस गति को प्राप्त करते हैं उस गति को इस अविमुक्त क्षेत्र को शरीरान्त तक कभी न छोड़ नेवाला मनुष्य, जो कभी पाप कर्म नहीं करता, प्राप्त करता है। वह गति क्रियानिष्ठ जनों के लिए कही जाती है। जो ब्राह्मण इस अविमुक्त क्षेत्र में कभी समाधि में निमग्न न हो कर एवं आत्मा के साथ सम्बन्ध न करके तीनों बेला भर पेट भोजन करते हुए निवास करता है वह भी वायु भक्षण कर जीवन-यापन करनेवाले योगी की भांति उत्तम गति का अधिकारी होता है। भक्तिपूर्वक जो मनुष्य क्षण भर भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए इस अविमुक्त में निवास करता है वह परम तपस्या का फल प्राप्त करता है। जो धीर पुरुष अल्प भोजन कर इन्द्रियों को स्ववश में रख एक मास तक निवास करता है वह भली भांति महापाशुपत नामक दिव्य व्रत का अनुष्ठान करता है तथा जन्म एवं मृत्यु की भीति छोड़कर परम गति प्राप्त करता है एवं निःश्रेयस् प्राप्त करानेवाली पुण्यगति को प्राप्त कर योगगति का भी अधिकारी होता है। सैकड़ों जन्म प्रयत्न करते रहने पर भी वह दिव्य योगगति मनुष्य को प्राप्त होनेवाली नहीं है;

परन्तु भगवान् शंकर के प्रभाव तथा इस अविमुक्त क्षेत्र के माहात्म्य से वह उस मनुष्य को प्राप्त हो जाती है। ब्राह्मण की हत्या करनेवाला भी यदि कभी अविमुक्त क्षेत्र की पवित्र यात्रा करता है तो वह भी उस क्षेत्र के माहात्म्य से ब्रह्महत्या से छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य शरीरान्त पर्यन्त इस अविमुक्त क्षेत्र को कभी नहीं छोड़ता, उसकी ब्रह्महत्या ही क्या पुराने कई जन्मों के किये गये घोरातिघोर पाप भी छूट जाते हैं। विश्वेश्वर भगवान् शिव का परम पवित्र पद पाकर वह फिर कभी मर्त्यलोक में उत्पन्न नहीं होता। जो मनुष्य अनन्य चित्त हो अविमुक्त क्षेत्र को कभी नहीं छोड़ता, उसके सभी मनोरथों को प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रदान करते हैं। वे भगवान् शंकर भक्तों के ऊपर कृपा करने लिए अपने गणों समेत वहाँ निवास करते हैं, जो सांख्य तथा योग का द्वार है। वह अविमुक्त सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र है, उसमें परमगति की प्राप्ति होती है। उस अविमुक्त में परम सिद्धि की प्राप्ति होती है, उसमें परम पद की प्राप्ति होती है, देवताओं तथा ऋषियों द्वारा सेवित उस अविमुक्त का सेवन अयश्व करना चाहिये। जो बुद्धिमान् पुरुष इस अविमुक्त क्षेत्र की इच्छा करता है वह पुनर्जन्म कभी नहीं धारण करता। सुमेरु पर्वत एवं सभी समुद्रों के तथा द्वीपों के गुणों का वर्णन तो किया जा सकता है पर अविमुक्त के गुणों की प्रशंसा नहीं की जा सकती। मनुष्यों के शरीरान्तकाल में जब कि उसका मर्मस्थल छिन्न-भिन्न होने लगता है, वायु का प्रबल वेग उठने लगता है, स्मृति भी शेष नहीं रहती, सभी कर्मों के फल उदित हो जाते हैं, उस समय भगवान् शंकर स्वमेव अपने उन भक्तों के कानों में गुरुमंत्र का उपदेश करते हैं। मणिकर्णिका नामक तीर्थ पर शरीर को त्यागनेवाला मनुष्य इष्टगति प्राप्त करता है। ईश्वर की प्रेरणा से वह ऐसी उत्तम गति प्राप्त करता है, जो दुष्कर्मियों के लिए सर्वथा दुष्प्राप्य है। अनेक पापपूर्ण प्रपंचों से भरे हुए इस मानवजीवन को नाशवान् समझकर मनुष्य को सांसारिक भय को दूर करने वाले इस अविमुक्त क्षेत्र का सेवन करना चाहिये, यह योग क्षेम का देनेवाला, दिव्यगुण युक्त एवं अनेक विघ्नों को नष्ट करनेवाला है। अनेक विघ्नों से विचलित किये जाने पर भी जो अविमुक्त को नहीं छोड़ता वह वृद्धावस्था मृत्यु तथा नश्वर जन्म को छोड़ता है एवं अविमुक्त के माहात्म्य से शिव की समीपता प्राप्त करता है। ॥३-२७॥

श्री मात्स्य महापुराण में अविमुक्त माहात्म्य नामक एक सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८२॥

एक सौ तिरासीवाँ अध्याय

पार्वती ने कहा—शंकर! अति शोभाशाली हिमवान् गिरि को छोड़कर तथा मन्दराचल, गन्धमादन, कैलास, निषध, सुमेरु के पृष्ठभाग, सुरम्य त्रिशिखर, महागिरि मानस, आदि पर्वतों एवं परम मनोहर देवताओं की विविध अमराइयों, तथा प्रसिद्ध नन्दन वन, प्रमुख देवताओं के स्थानों, मन्दिरों तथा तीर्थों को छोड़कर तुम्हारी अनुरक्ति इस अविमुक्त क्षेत्र में क्यों हुई? इसमें अति गोपनीय कौन-सा ऐसा पुण्य है, जिसके

कारण तुम सभी भूतों समृद्धियों तथा गुणों समेत उसमें नित्य निवास करते हो? इस क्षेत्र की कौन ऐसी महिमा है, कौन-सा बड़प्पन है, वहाँ के निवासी गण कैसे होते हैं? उनके ऊपर अपने द्वारा किये गये किसी अनुग्रह की कथा—इन सब के बारे में यथार्थ रूप में मुझसे कहिये। ॥१-५॥

शंकर ने कहा—प्रिये! तुम जिस प्रश्न को कर रही हो वह अत्यन्त अद्भुत है, उन सभी बातों को मैं बतला रहा हूँ, सुनो। उस मेरे परमप्रिय क्षेत्र में वाराणसी नगरी है, जिसमें सिद्धों तथा गन्धर्वों से सेवित पुण्यसलिला त्रिपथगा गंगा बहती हुई प्रविष्ट होती हैं। हे सुन्दरि! कृत्तिवासा (गजचर्म पहिनने वाले) नामक लिंग में मेरी परम प्रीति है और सभी तीर्थ स्थानों में सर्वश्रेष्ठ होने के कारण इस अविमुक्त क्षेत्र में भी मेरी परम प्रीति है। हे सुरेश्वरि! इसीलिए वहाँ के लिंग में मेरा सान्निध्य है। सभी गुणवानों में श्रेष्ठ! मैं उस अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य बतला रहा हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य अपने सभी पाप कर्मों से छुटकारा पा जाता है, इसमें सन्देह नहीं। यदि पापात्मा, दुष्ट, एवं अधार्मिक मनुष्य भी हों और वे अविमुक्त क्षेत्र की यात्रा करें तो सभी पापकर्मों से छुटकारा पा जाते हैं। प्रलय काल उपस्थित होने पर भी, जब कि सभी स्थावर जंगमात्मक जगत् का विनाश होने लगता है, मैं अपने सौ महान् गणों को साथ लेकर इस अविमुक्त क्षेत्र की रक्षा करता हूँ और इस को उस समय भी नहीं छोड़ता। ॥६-१२॥

महाभाग्य शालिनी! कल्पान्त के समय, जब देवता लोग, गन्धर्वों यक्षों, सर्पों तथा राक्षसों समेत मेरे मुख में प्रविष्ट हो जाते हैं, पार्वति! उस समय उन सब की दी हुई पूजा को साक्षात् मैं ग्रहण करता हूँ। यह मेरा स्थान सभी गोपनीय स्थानों में से एक है, यह मेरा अति प्रिय एवं कल्याणकारी स्थान है। सुन्दरि! वे ब्राह्मणादि द्विजातिवर्ण मेरे भक्त धन्य हैं, जो मेरी भक्ति में तल्लीन होकर नित्य मेरी पूजा में तत्पर रहते हुए इस क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं। वे लोग इस परम पुण्यप्रद क्षेत्र में प्राणों को छोड़कर परम गति की प्राप्ति करते हैं। इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवाले मनुष्य सर्वदा तपस्या करनेवाले, सर्वदा रुद्र के मंत्रों से यज्ञाराधना करनेवाले तथा सर्वदा दान देनेवाले होते हैं। हे प्रिये! जो मनुष्य मेरी नित्य पूजा करता है उसके ऊपर मैं प्रसन्न रहता हूँ। इस अविमुक्त में निवास कर जो मनुष्य सभी प्रकार के दान करते हैं, सभी यज्ञों से दीक्षित होते हैं, सभी तीर्थों के जलों से अभिषिक्त होते हैं, वह मुझे प्राप्त करते हैं। हे देवि सुन्दरि! जो मनुष्य निश्चिन्त होकर सर्वदा अविमुक्त की यात्रा करते हैं, वे मेरे भक्त इस स्वर्गरूप अविमुक्त में निवास करते हैं। हे सुन्दर नेत्रोंवाली! मेरे प्रसाद से वे मनुष्य तेज से प्रकाशित रहते हैं, शत्रुओं द्वारा वश में नहीं किये जाते, अति पराक्रमी होते हैं तथा उनके सभी सन्ताप दूर हो जाते हैं। निश्चय पर पहुँचे हुए मेरे भक्तगण इस कल्याणकारी अविमुक्त को प्राप्तकर सभी पापों तथा सन्तापों से उन्मुक्त होकर निर्मल हो जाते हैं। ॥१३-२१॥

पार्वती ने कहा—हे देव! आप ने मेरे ही प्रिय कार्य को करने के लिए दक्ष के यज्ञ का विनाश किया था। अतः पुनः उसी मुझे प्रिय लगनेवाली कथा को मुझसे कहिये क्योंकि अविमुक्त के गुणों के श्रवण करने से मुझे तृप्ति तो होती ही नहीं। ॥२२॥

महादेव ने कहा—हे महाभाग्यशालिनि ! परम प्रियतमे ! सुन्दरि ! सच है, तुम्हारे प्रिय कार्य को करने ही के लिये मैंने दक्ष के यज्ञ का विनाश किया था, अतः पुनः तुम्हारे प्रिय कार्य को कर रहा हूँ, सुनो। जो मेरे भक्त किसी एक निश्चय पर पहुँचकर इस अविमुक्त क्षेत्र में यज्ञ करते हैं, वे सैकड़ों कोटि वर्षों के बाद भी इस मर्त्यलोक में पुनः नहीं आते। ॥२३–२४॥

पार्वती ने कहा—महेश्वर ! आप अविमुक्त के दुर्लभ गुणों का वर्णन तो कर चुके अब पुनः उनका यथार्थ वर्णन कीजिये। देवाधिदेव ! मेरे हृदय में बड़ा कौतूहल हो रहा है, परमेश्वर ! अविमुक्त के उन सब गुणों के तात्त्विक वर्णन मुझसे करें। ॥२५–२६॥

महादेव ने कहा—सुन्दरि ! जो मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करते हुए मेरी पूजा करते हैं वे अन्त में देवयोनि प्राप्त करते हैं, एवं कलुषित देह से रहित होकर मेरे शरीर में प्रविष्ट होकर मेरे जैसा स्वरूप प्राप्त करते हैं। विशाल नेत्रोंवाली ! पुनः कहो, तुम्हें अन्य कौन-सी कथा सुनायें। ॥२७-२८॥

देवी ने कहा—देव ! उस अविमुक्त क्षेत्र में अतिशय पुण्य प्राप्ति होती है, उसके गुण अपरिमित जान पड़ते हैं, उन सब का वर्णन सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, आप पुनः उनका वर्णन कीजिये। ॥२९॥

ईश्वर ने कहा—सुन्दरि ! महेश्वरि ! इस मेरे अति प्रिय अविमुक्त क्षेत्र में जो अन्यान्य गुण हैं, उन्हें तुम सुनो। इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवाले एवं तीनों बेला भर पेट भोजन करने वाले प्राणी, अन्यत्र रह कर शाक एवं पत्तों पर निर्वाह करनेवाले, संयमी, भली भाँति स्नानादि से पवित्र हो सूर्य की किरणों को पान करने वाले, दाँत से कच्चे फलों का भोजन कर निर्वाह करने वाले, उलूखल में कूट कर पत्थर पर पीस कर भोजन करनेवाले, महीने-महीने तक कुशा के अग्रभाग से जल पीकर निर्वाह करनेवाले वृक्ष की जड़ों पर शयन करनेवाले, पत्थर की शिलाओं पर सोनेवाले, सूर्य के समान तेजस्वी शरीरवाले, क्रोध को वश में रखनेवाले, इन्द्रियों को जीतनेवाले इसी प्रकार के अन्यान्य कठोर उपायों द्वारा साधना में निरत रहनेवाले तपस्वियों के समान महान् पुण्य प्राप्त करते हैं। अथवा दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अन्यत्र रह कर तपस्या करनेवाले मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र की सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते। जो इस अविमुक्त में निवास करते हैं वे मानों साक्षात् स्वर्ग लोक में निवास करते हैं। ॥३०-३४॥

मेरे समान जिस प्रकार जगत् में कोई अन्य पुरुष नहीं है और तुम्हारे समान कोई अन्य स्त्री नहीं है उसी प्रकार अविमुक्त के समान न तो कोई क्षेत्र था और न होगा। अविमुक्त में परम योग की प्राप्ति होती है, अविमुक्त में परम गति मिलती है, अविमुक्त में परम मोक्ष प्राप्त होता है। इसके समान अन्य कोई क्षेत्र नहीं है। हे सुन्दरि ! मैं उस अति गोपनीय बात को बतला रहा हूँ, जिसे इसी अविमुक्त क्षेत्र में मैंने प्राचीन काल में कही है। हे देवि ! सैकड़ों जन्मों के संचित बड़े भाग्य से जो भली भाँति योग का अभ्यास करता है, वह सैकड़ों हज़ारों जन्मों में मोक्ष को प्राप्त करता है या नहीं, इसमें तो सन्देह रहता है, किन्तु इस बात में तो तनिक भी सन्देह नहीं है कि जो मेरा भक्त निश्चयपूर्वक इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करता है वह

एक ही जन्म में योग एवं मोक्ष दोनों की प्राप्ति करता है। हे देवि! जो मनुष्य अति निश्चयपूर्वक अविमुक्त क्षेत्र की यात्रा करते हैं वे परम मोक्ष के पद को प्राप्त करते हैं, जो जगत् में अति दुर्लभ है। इस पृथ्वी मण्डल में इस प्रकार का कोई क्षेत्र न तो था और न होगा। हे प्रिये! उस अविमुक्त क्षेत्र में धर्म चारमूर्ति में सर्वदा सन्निहित रहता है। उसमें निवास करनेवाले चारों वर्णों के लिए परम गति कही गयी है। ॥३५-४१॥

देवी ने कहा—प्रभो! आप के इस अविमुक्त क्षेत्र के ऐहिक एवं पारलौकिक फल प्रदान करनेवाले गुणों को तो मैं सुन चुकी। अब यह बताइये कि पृथ्वी तल पर ब्राह्मण गण यज्ञों द्वारा किस की आराधना करते हैं। ॥४२॥

ईश्वर ने कहा—पार्वति! वे ब्राह्मण लोग दान एवं मंत्रों द्वारा मेरी ही पूजा करते हैं, उनको किसी प्रकार का भी भय नहीं रहता जो भव तथा रुद्र की पूजा करते हैं। विना मंत्र का तथा मंत्रों सहित—ये दो प्रकार की विधियाँ कही गई हैं। सांख्य और योग—ये दो योग माने गये हैं। एकनिष्ठ होकर जो सभी प्राणियों में अवस्थित मेरी सेवा करता है वह योगी सर्वदा गृहकार्य में रहकर भी मुझमें निवास करता है। अपनी तरह जो सभी जीवों में व्यवहार करता है तथा संसार की सभी चराचर वस्तुओं का अस्तित्व मुझी में देखता है, उसको मैं कभी नहीं छोड़ता और न वह कभी मुझे छोड़ता है। पृथ्वी तल पर निर्गुण और सगुण—ये योग के मार्ग कहे गये हैं। सगुण योग का ही ज्ञान हो सकता है, निर्गुण योग तो मन से परे की वस्तु है। हे देवि! जिस बात को तुमने मुझ से पूछा था, वह मैं तुम्हें बतला चुका। ॥४३-४८॥

देवी ने कहा—हे शंकर! बहुधा भक्तों को तुमने तीन प्रकार की भक्ति का उपदेश किया है, उसे मैं सुनना चाहती हूँ, तत्त्वतः उसको मुझे बताओ। ॥४९॥

ईश्वर ने कहा—हे भक्तों की रक्षा करने वाली पार्वति! देवेशि! मनुष्य सांख्य एवं योग की उपलब्धि करके अपने दुःखों का अन्त करता है। भक्तजन सर्वदा भिक्षाटन करते हुए भी परमानन्द का उपभोग करते हैं, एवं उस परमानन्द के कारण तन्मय होकर मुझी में लीन हो जाते हैं। हे सुन्दरि! शास्त्रों में अनेक कारणों एवं वादों के देखनेवाले तथा ज्ञान के वाक्यों पर विवाद करनेवाले मुझे नहीं देख पाते किन्तु परमार्थ ज्ञान से संयुक्त जो योगी जन हैं वही मुझे भली भाँति जान पाते हैं। विद्याद्वारा आत्मा को यथार्थ रूप में जाननेवाले, योग को जाननेवाले ब्राह्मणादि द्विजाति वर्ग प्रत्याहार (निवृत्ति, मनोनिग्रह) द्वारा शुद्धात्मा होकर, अन्यथा चिन्तन न करते हुए, अर्थात् परमात्मा को मुझसे अतिरिक्त न मानते हुए परम सन्तोष, परम योग तथा परम मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इस अविमुक्त क्षेत्र में तीनों गुणों से युक्त होकर ज्ञानवान् पुरुष मेरा दर्शन करता है। देवि! यह वृत्तान्त तो मैं तुमसे कह चुका अब इसके अतिरिक्त तुम क्या सुनना चाहती हो, बताओ। सुन्दरि! सुव्रते! पुनः अविमुक्त के विषय में तुमसे वर्णन कर रहा हूँ। प्रिये! अति गोपनीय, पवित्र, जो कुछ भी मेरे हृदय में भाव विद्यमान हैं, उन सब को तुमसे कह रहा हूँ, स्थिरचित्त होकर सुनो। ॥५०-५६॥

देवी ने कहा—देव ! योगी लोग तुम्हारे किस प्रकार के रूप का दर्शन करते हैं, देवताओं में श्रेष्ठ ! मेरे इस संशय को तुम बतलाकर दूर करो, तुम्हें मेरा नमस्कार है । ॥५७॥

श्री भगवान् ने कहा—वह मेरा ज्योतिःस्वरूप अमूर्त एवं मूर्त स्मरण किया गया है, उसकी प्राप्ति की इच्छाकर ज्ञानवान् पुरुष को यत्न करना चाहिये । मैं तीनों गुणों से सर्वदा रहित एवं निखिल प्राणिरूप हूँ, इस प्रकार से मेरा वर्णन कोई नहीं कर सकता । यदि कोई करे भी तो वह सैकड़ों दिव्य वर्षों में कर सकता है या नहीं—इसमें भी सन्देह है । ॥५८-५९॥

देवी ने कहा—शंकर ! वह तुम्हारा क्षेत्र जिसमें तुम अपने गणों के साथ सर्वदा स्थित रहते हो चारों ओर दिशाओं में कितनी दूर तक फैला हुआ है ? ॥६०॥

ईश्वर ने कहा—वह मेरा क्षेत्र पूर्व पश्चिम में दो योजन तथा दक्षिण उत्तर में आधे योजन तक फैला हुआ है । वरणा से लेकर असी की शुष्क (?)नदी पर्यन्त वाराणसी नगरी है, भीष्म चण्डिका से प्रारम्भ होकर पर्वतेश्वर तक इसका विस्तार है, जहाँ पर कुष्माण्ड, गजतुण्डा जयन्त प्रभृति उत्कट पराक्रमशाली विनायकगण नियुक्त हैं । इन गणों में से कोई तो सिंह तथा व्याघ्र के समान विकराल मुखवाले हैं, कुछ बड़े विशाल हैं, कुछ बौने हैं तथा कुछ कूबरे हैं । नन्दी, महाकाल, चण्डघण्ट, महेश्वर, दण्डचण्डेश्वर, महाबलवान् घंटाकर्ण तथा इन सबों के अतिरिक्त अन्य बहुतेरे गण तथा गणेश्वर वहाँ निवास करते हैं । ये बड़े विशाल उदरवाले, महाकाय, वज्र एवं शक्ति धारण किये हुए इस अविमुक्त तपोवन की निरन्तर रक्षा किया करते हैं । शूल और मुद्गर हाथ में लेकर प्रत्येक द्वार पर वहाँ ये सदा अवस्थित रहते हैं । ॥६१-६६॥

सुन्दरि ! जो कोई मनुष्य सुवर्ण की सींगों वाली, चांदी की खुरों वाली, सुन्दर वस्त्र एवं चर्म से सुशोभित, दूध देनेवाली, सवत्सा गौ को कांसे के बने हुई दोहन पात्र समेत इस काशी पुरी में वेदों के पारगामी ब्राह्मण को दान करता है, वह अपने सातवें पूर्व पुरुषों तक को नरक से उबार लेता है, इसमें सन्देह नहीं । हे सुमुखि ! उस अविमुक्त क्षेत्र में जो मनुष्य ब्राह्मण को सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र तथा अन्नादि का किंचित भी दान देता है, हे सुलोचने ! वह उसे अक्षय एवं अव्यय रूप में प्राप्त होते हैं । हे महाभागे ! अब उस अविमुक्त की विभूति तथा फल को यथार्थतः सुनो । वहाँ स्नान करके मनुष्य रोग से । मुक्त हो जाते हैं । हे वरानने ! उस अविमुक्त क्षेत्र में स्नान कर धर्मात्मा मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञों के करने का फल प्राप्त करता है । अपनी सामर्थ्य के अनुकूल अधिक वा न्यून, जो कुछ भी; वेदों के पारगामी ब्राह्मण को दान करता है वह शुभ गति प्राप्त करता है तथा अग्नि की भाँति तेजस्वी होता है । लोक में विख्यात् गंगा और वाराणसी के संगम पर मनुष्य विधिपूर्वक अन्नदान देकर पुनः मृत्युलोक में उत्पन्न नहीं होता । हे देवि ! उस अविमुक्त तीर्थ का यह सुन्दर फल मैं तुम्हें सुना चुका । पुनः दूसरा फल इसी तीर्थ का तुम्हें बतला रहा हूँ, सुनो । जो मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र में उपवास करके ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता है, वह सौत्रामणि नामक यज्ञ के फल को प्राप्त करता है । हे वरानने ! जो कोई मनुष्य इस अविमुक्त क्षेत्र में एक मास तक निवास करता है, वह अपने समस्त गत जीवन के किये गये

पापों से मुक्ति प्राप्त करता है। हे वरानने! इस अविमुक्त क्षेत्र में जो मनुष्य विधानपूर्वक अग्नि प्रवेश करते हैं वे निस्सन्देह मेरे ही मुख में प्रवेश करते हैं। जो मेरे भक्त निश्चयपूर्वक इस अविमुक्त क्षेत्र में आकर अनशनपूर्वक निवास करते हैं वे शत कोटि कल्प में भी कभी जन्म नहीं ग्रहण करते! हे देवि! मैं तुम्हें इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवाले मनुष्य के लिए अपनी पूजा करने का विधान बतला रहा हूँ, जिस प्रकार उसे पूजा करनी चाहिये। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मेरी बतलाई हुई विधि से मेरी पूजा करनेवाला मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञों के पुण्य को प्राप्त करता है। जो इस अविमुक्त क्षेत्र में पुष्पों द्वारा मेरी पूजा करता है वह दस सुवर्ण मुद्रा के दान करने का फल प्राप्त करता है। धूप देने से अग्निहोत्र का फल प्राप्त करता है, अब गन्ध दान का फल सुनो। वह गन्ध दान अन्यत्र के भूमिदान के बराबर माना जाता है। भली भाँति स्नान कराने से पाँच सौ तथा चन्दन लगाने से एक सहस्र मुद्रा का फल होता है। माला से सौ सहस्र मुद्रा का फल एवं गायन तथा वादन के द्वारा अनन्त मुद्रादान का फल प्राप्त होता है। ॥६७-८२॥

देवी ने कहा—देव! अति अद्भुत इस स्थान का वर्णन तो तुम कर चुके अब मैं इस रहस्य को जानना चाहती हूँ कि किसलिए तुम इसे नहीं छोड़ते? ॥८३॥

ईश्वर ने कहा—सुन्दरि! प्राचीन काल में महात्मा ब्रह्मा को सुवर्ण के समान कान्तिमान एक पाँचवाँ शिर उत्पन्न हुआ था। जो अति तेज से देदीप्त हो रहा था। देवि! ब्रह्मा के उस पाँचवें शिर ने मुझसे इस प्रकार कहा कि 'मैं तुम्हारा जन्म जानता हूँ।' उसकी इस अपमानपूर्ण बात को सुनकर क्रोध युक्त एंव लाल नेत्र हो मैंने अपने बायें अंगूठे के नख के अग्रभाग से उस शिर को काट डाला। ॥८४-८६॥

ब्रह्मा ने कहा—जो तुमने विना किसी अपराध के ही मेरे शिर को इस प्रकार काट दिया सो मेरे शाप के कारण तू कपाल धारण करनेवाला हो जा और ब्रह्महत्या के पाप से आकुलित हो पृथ्वी के सभी तीर्थों में भ्रमण कर। देवि! ब्रह्मा की ऐसी बात सुन मैं पर्वतराज हिमालय के ऊपर गया और वहाँ पर विराजमान श्रीयुत् नारायण भगवान् से भिक्षा की याचना की। उन भगवान् ने अपने पार्श्व स्थान को नख के अग्रभाग से विदीर्ण किया, जिससे उनके रक्त की एक विशाल धारा बह निकली। बहते हुए अति विस्तृत रूप में वह धारा पचास योजन तक बह चली किन्तु तब भी मेरा वह अति अद्भुत एवं घोर दिखाई पड़ने वाला कपाल पूर्ण नहीं हो सका। इस प्रकार जब एक सहस्र दिव्य वर्षों तक वह धारा अविरत रूप में प्रवाहित होती रहीं, तब भगवान् विष्णु ने कहा कि 'यह इस प्रकार का अद्भुत कपाल कहाँ से आगया। देवेश! यह तो अति आश्चर्य मय कपाल है, मेरे हृदय में संशय उत्पन्न हो रहा है, अतः मुझसे बताइये कि यह कहाँ से आप को प्राप्त हुआ?' ॥८७-९२॥

देवदेव ने कहा—देव! इस आश्चर्य पूर्ण कपाल की उत्पत्ति सुनिये। सौ सहस्र वर्षों तक अति घोर तपस्या करके ब्रह्मा ने अति अद्भुत विशाल एवं रोमांचकारी शरीर की सृष्टि की, उनकी घोर तपस्या के तपस्या प्रभाव से उनका शरीर अति दिव्य तेजोमय एवं सुवर्ण के समान शोभायमान था। महात्मा ब्रह्मा को फिर अति तेज से देदीप्यमान एक पाँचवें शिर की उत्पत्ति हुई। हे देव! मैंने उस पाँचवें शिर को काट लिय।

उस दुर्जय शिर को आप देखिये, वही यह है, मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहाँ-वहाँ यह कपाल मेरे ही साथ जाता है।' इस प्रकार शिव जी के कहने पर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने कहा—॥९३-९६॥

श्री भगवान् ने कहा—शिव ! जाओ ! अपने स्थान को लौट जाओ, और वहाँ जाकर ब्रह्मा को प्रसन्न करो, वहीं जाने पर उनके अमिट प्रभाव से यह कपाल तुम्हारे साथ जाने से रुकेगा। हे सुन्दर कटि वाली ! तब तक मैं सभी तीर्थों एवं पुण्यप्रद स्थानों का परिभ्रमण कर चुका था, किन्तु कहीं भी वह कपाल रुका नहीं था। तदनन्तर मैं इस अति प्रभावशाली अविमुक्त क्षेत्र में आया, इस स्थान पर पहुँचते ही वह रुक गया और इस प्रकार मेरा वह शाप निवृत्त हो गया। सुन्दरि ! यहाँ आने पर भगवान् विष्णु की कृपा से वह कपाल सहस्रों टुकड़ों में चूर्ण होकर स्वप्न की सम्पत्ति की भाँति विलीन हो गया। तभी से इस अविमुक्त क्षेत्र को मैंने ब्रह्महत्या के दोष को दूर करने वाला बनाया। देवि ! देवताओं का यह पवित्र तीर्थ पृथ्वी पर कपालमोचन तीर्थ के नाम से विख्यात है। मैं ही समस्त जगत् का काल रूप होकर निर्माण करता हूँ तथा संहार भी मैं ही करता हूँ। ॥९७-१०१॥

सुरेश्वरि ! इसी कपालमोचन तीर्थ में आने पर वह कपाल गिर पड़ा और शाप की भी निवृत्ति हो गई। यह कपालमोचन ब्रह्महत्या को भी दूर करनेवाला है, यहीं पर अवस्थित होकर मैं समस्त जगत् की सुव्यवस्था परिचालित करता हूँ। देवेशि ! मेरे सभी गोपनीय स्थानों में यह अविमुक्त इसीलिए मुझे अति प्रिय है। मेरी भक्ति करनेवाले तथा भगवान् विष्णु की भक्ति करनेवाले मनुष्य इस क्षेत्र की यात्रा करते हैं। देवि ! लोकनाथ भगवान् भास्कर के भक्त गण भी इसी तीर्थ की यात्रा करते हैं। यहाँ पर अवस्थित रहकर जो शरीर को त्यागता है वह मुझमें ही प्रवेश करता है। ॥१०२-१०४॥

देवी ने कहा—देव ! भगवान् ब्रह्मा ने यह जो बात कही है वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है। महाद्युतिवाले ! यह त्रिपुरान्तक शिव का—तुम्हारा—गोपनीय स्थान है। जगत् के अन्यान्य जो तीर्थ स्थान हैं, वे इसकी सोलहवीं कला की भी समता नहीं कर सकते, जहाँ पर साक्षात् देवाधिदेव शंकर—तुम निवास करते हो। सहस्रों तीर्थों के समान पुण्यप्रदायिनी गङ्गा हैं, या नहीं, इसमें तो सन्देह है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्य तीर्थ इस पवित्र तीर्थ की समानता नहीं कर सकते। देवेश ! तुम्हीं भक्ति के स्वरूप हो, तुम्हीं उत्तम गति हो। देव ! ब्रह्मादि देवगणों की गति को कभी नष्ट न होनेवाली बतलाया जाता है।' इस अविमुक्त के उत्तम माहात्म्य को द्विजाति ब्रह्मणादि भक्तों को अनुकम्पापूर्वक श्रवण करना चाहिये। ॥१०५-१०८॥

श्री मात्स्य महापुराण में अविमुक्त माहात्म्य नामक एक सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥१८३॥

एक सौ चौरासीवाँ अध्याय

महेश्वर ने कहा—अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवाले प्राणियों के इस परम प्रभावशाली क्षेत्र

का माहात्म्य समझकर अनेक सिद्धों ने, जो पुर्नजन्म की इच्छा नहीं करते, उसका सेवन किया है। देवाधिदेव का वह तीर्थ तथा तपोवन अति गोपनीय है। इसका सेवन कर वे सिद्धगण उस परम स्थान को जाते हैं, जहाँ जाकर पुनः उत्पन्न नहीं होते। महर्षियों ने ज्ञान में निष्ठा रखनेवाले, परमानन्द के इच्छुक प्राणियों की जो गति बतलाई है, वह गति इस अविमुक्त में मरनेवाले की होती है। यह अविमुक्त क्षेत्र परम एकान्त में है, श्मशान भी इसे कहते हैं। जो मनुष्य पृथ्वी पर उत्पन्न होकर अविमुक्त का सेवन नहीं करते वे ठगे जाते हैं। अविमुक्त क्षेत्र की वायु द्वारा उड़ाई गई पवित्र धूलि से, चाहे घोर दुष्कर्म का भी करनेवाला क्यों न हो, परम गति को प्राप्त करता है। जिस अविमुक्त[१] क्षेत्र में साक्षात् शंकर जी निवास करते हैं, उसकी अमित महिमा का वर्णन देव दानव तथा मनुष्य—कोई भी नहीं कर सकते। कभी अग्निहोत्र न करनेवाला, यज्ञ न करनेवाला, अपवित्र रहनेवाला, चोर भी क्यों न हो, यदि वह अविमुक्त में निवास करता है तो ईश्वर के भवन में निवास करता है। भगवान् की कृपा से वहाँ कोई पुण्य न करनेवाला प्राणी निवास नहीं कर पाता। चाहे जानकर वा विना जाने, स्त्री हो या पुरुष, यदि मानव सुलभ बुद्धिवश अशुभ कर्म करता है तो अविमुक्त में प्रवेश करने से वह सब भस्म हो जाता है। नदियाँ, समुद्र, पर्वत, तीर्थ, पवित्र देवायतन, भूत, प्रेत, पिशाच, प्रमथ गण, मातृगण आदि उन महात्मा शंकर के जो प्रिय कहे गये हैं, श्मशान भूमि के चारों ओर अवस्थित रहते हैं, वे कभी भूतनाथ को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाते और न उनको शंकर ही कभी छोड़ते हैं। अविमुक्त में अवस्थित रहकर प्रभु अपने गणों को, भयभीत, अकिंचन, पाप कर्म में लीन तथा दुरात्मा देखकर भी उन्हीं के साथ विहार करते हैं। देव की अनुकम्पा से वे सभी परम गति प्राप्त करते हैं। भक्तों के ऊपर अनुकम्पा करनेवाले भगवान् तिर्यक् (अधम) योनि में उत्पन्न होनेवाले अपने भक्तों को भी श्रेष्ठ स्थान पर पहुँचा देते हैं, जहाँ पर कि यज्ञों के करनेवाले सिद्ध, महा तपस्वी भार्गव, अगिरा आदि बड़े-बड़े ऋषि जाते हैं। अविमुक्त रूपी अग्नि से पापकर्म रुई की भाँति नष्ट हो जाते हैं। जो गति कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार तथा पुष्कर में भी नहीं मिलती वह गति अविमुक्त में निवास करनेवाले पुरुषों को प्राप्त होती है। अधम योनि में उत्पन्न हुए प्राणी भी, जो अविमुक्त में निवास करते हैं, कालवश मृत्यु को प्राप्तकर परम गति प्राप्त करते हैं। ॥१-१७॥

पापपूर्ण कर्मों की सुमेरु एवं मन्दर के समान विशाल राशि भी अविमुक्त में जाकर विनष्ट हो जाती है। शिव का निवास रूप वह अविमुक्त 'श्मशान' नाम से विख्यात है, देवाधिदेव का वह परम पवित्र गोपनीय तीर्थ तथा तपोवन है। वहाँ पर अवस्थित होकर ब्रह्मा आदि देवगण भगवान् विष्णु को अग्रगण्य बनाकर, तथा मेरे भक्त योगी तथा साधकगण मुक्तचित्त हो मुझी में लीन रहकर शिव का ध्यान करते हैं। ज्ञानपूर्वक तपस्या करनेवाले को जो गति प्राप्त होती है, विविध यज्ञों का अनुष्ठान

१—कुछ मत्स्य पुराण की मूल पुस्तकों में यह पाठ नहीं मिलता। अनु०

करनेवाले को जो शुभ गति प्राप्त होती है, वही शुभ गति अविमुक्त में प्राण त्याग करनेवाले को मिलती है। उसी अविमुक्त क्षेत्र में जगत् की सृष्टि करनेवाले तथा विनाश करनेवाले ब्रह्मा प्रभृति देवगण सदा निवास करते हैं। इसी प्रकार सम्राट् विराट् प्रभृति लोकगण भी इस अविमुक्त क्षेत्र में निवास कर पुनर्जन्म नहीं धारण करते। मह, जन, तप एवं सत्य लोक में निवास करनेवाले ब्रह्मा से लेकर के स्थावर जीवों तक, भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान काल के जीवगण, सांख्य एवं योग के अनुशीलन करनेवाले महर्षिगण—सभी इस क्षेत्र में सदा निवास करते हैं। जो मनुष्य अविमुक्त का त्याग नहीं करते वे ही जगत् में जन्म लेकर ठगे नहीं जाते। अर्थात् वे ही परम चतुर तथा भाग्यवान् हैं। ॥१८-२४॥

यह अविमुक्त क्षेत्र जगत् के सभी तीर्थों में, स्थानों में, क्षेत्रों में, श्मशानों में, कूपों में, तालाबों में, स्रोतों में तथा पर्वतों में श्रेष्ठ है। पुण्य कर्म करनेवाले शिव के भक्तगण इस अविमुक्त की सदा सेवा करते हैं। यह ब्रह्मा का परम स्थान है, ब्रह्माजी यहाँ पहले रह चुके हैं। वे नित्य इसमें निवास करते हैं, एवं नित्य इसकी रक्षा करते हैं। यहीं पर सातों भुवनों का तथा सुवर्णमय सुमेरु पर्वत का भी निवास स्थान है, ब्रह्मा की प्रसन्नता के लिए मन का परम योग यहीं पर प्राप्त होता है। भगवान् ब्रह्मा यहाँ पर शिव में ध्यान लगाकर सर्वदा अवस्थित रहते हैं। यह सभी पुण्यप्रद क्षेत्रों में उत्तम है, पुण्यप्रद लोग सर्वदा इसमें निवास करते हैं। ब्राह्मण लोग यहीं पर आदित्य की उपासना कर देवत्व की प्राप्ति कर चुके हैं, अन्यान्य जो क्षत्रियादि तीन वर्णों के लोग हैं, वे भी शिव की भक्ति से समाधिस्थ हो इस अविमुक्त में अपने नश्वर शरीर को त्यागकर परम गति प्राप्त करते हैं। संयतात्मा यती लोगों को आठ महीने तक विहार करने का विधान है या एक बारगी वे लोग चार महीने का अथवा दो ही महीने के विहार का नियम पालन करें। किन्तु अविमुक्त में प्रविष्ट होने पर उनके लिए विहार के नियमों का कोई बन्धन नहीं रहता। प्राचीन शास्त्रों में यह देखा जा चुका है कि इस अविमुक्त क्षेत्र में शरीर त्याग करनेवाले प्राणी को पुनः शरीर नहीं मिलता, निस्सन्देह उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। शिव जी की भक्ति में तत्पर पतिव्रता स्त्रियाँ अविमुक्त क्षेत्र में विमुक्त होकर परम गति प्राप्त करती हैं। उनके अतिरिक्त अन्य जो कामुक भोग विलास में निरत रहनेवाली स्त्रियाँ हैं, वे भी कालक्रम से इस अविमुक्त में मृत्यु लाभकर परम गति प्राप्त करती हैं। जहाँ पर जाकर मनुष्य दुर्लभ योग एवं मोक्ष की प्राप्ति करता है, ऐसे अविमुक्त क्षेत्र को छोड़कर उसे अन्य तपोवनों में नहीं जाना चाहिये। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि ब्राह्मणों को सभी उपायों द्वारा तप की आराधना करनी चाहिये। जो मनुष्य अविमुक्त में निवास करता है वह मेरे समान हो जाता है। मैंने कभी भी इस क्षेत्र को नहीं छोड़ा है अतः इसका नाम अविमुक्त (कभी न छोड़ा गया) क्षेत्र है। जो ऐसे अविमुक्त का सेवन नहीं करते वे अज्ञानान्धकार से घिरे हुए मनुष्य हैं। बारम्बार उन्हें उसी मल मूत्र रज में निवास करना पड़ता है। स्वयं इन्द्र ने अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवालों के लिए काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, स्तम्भ, अतिमत्सर, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य और कुटिलता—इन दस विघ्नों को नियत किया है, इनके अतिरिक्त शिव के गणों के उपद्रव तो निरन्तर शिर पर सवार रहते हैं, किन्तु भक्तों के ऊपर असीम कृपा रहने के कारण ये सभी

पुण्यप्रदायी हो जाते हैं। इन बातों को अति गोपनीय समझ कर शास्त्रों को देखकर देवदेव ने तथा तत्त्वदर्शी मुनियों ने स्वयम् बतलाया है।।॥ २५-४३ ॥

ऐसी प्रसिद्धि है कि यह सारी पृथ्वी मधुकैटभ के रक्तादि से दूषित हो चुकी है, किन्तु इस अविमुक्त क्षेत्र की पवित्र भूमि मधुकैटभ के मेद से परिप्लुत नहीं है, महादेव से सुरक्षित होने के कारण यहाँ की भूमि चारों ओर से अतिपवित्र है। यही कारण है कि पण्डित लोग अविमुक्त के अतिरिक्त अन्य स्थानों की भूमि का मांगलिक कार्यों में संस्कार करते हैं। जो देवता, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, महानाग आदि भक्ति एवं निष्ठापूर्वक अक्षय परम पद देनेवाले वरदायक शंकर की तथा अविमुक्त की उपासना करते हैं, वे अग्नि में आहुति की भाँति शिव के मुख में प्रविष्ट होते हैं। सभी देवताओं द्वारा पूजित कल्याणकारी उन महादेव को तथा अविमुक्त को प्राप्त कर ऋषि, देवता तथा असुर गण जप हवन में लीन रहकर अपने को कृतार्थ मानते हैं। मोक्ष की अभिलाषा करनेवाले यति, गण, ऋषि, देवता तथा असुर आदि सर्वदा इस अविमुक्त की सेवा करते हैं। कोई भी पापी अविमुक्त में मरकर नरक को नहीं जाते, ईश्वर की असीम अनुकम्पा से वे सभी परमगति प्राप्त करते हैं। पूर्व पश्चिम में यह क्षेत्र ढाई योजन का तथा दक्षिण उत्तर में आधे योजन का कहा गया है। वरुणा और असी के समीप शुक्ल (?) नदी पर्यन्त वाराणसी का विस्तार स्वयम् परम बुद्धिमान् महादेव ने बतलाया है। अविमुक्त में निष्ठा रखनेवाले भक्तगण योग एवं मोक्ष को प्राप्तकर उत्तम ज्ञान की आकांक्षा से उसे कभी नहीं छोड़ते। उस क्षेत्र में जो मनुष्य निवास करते हैं, उनके लिए कभी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। वह अविमुक्त योग क्षेत्र है, तपः क्षेत्र है, सिद्ध एवं गन्धर्वों का निवास स्थान है, नदी, समुद्र एवं पर्वतों में कोई भी अविमुक्त के समान इस धरातल में नहीं है। इस भूलोक में, आकाश में, तथा स्वर्ग में जितने भी तीर्थ हैं, उन सब का अपने अनुपम प्रभाव से अतिक्रमण करके यह अविमुक्त क्षेत्र अवस्थित है। जो ब्राह्मणादि द्विजाति वर्ग इस अविमुक्त क्षेत्र में समाधि लीन हो अन्तरात्मा एवं इन्द्रियों को अधीन रख शतरुद्री का नित्य पाठ करते हैं, वे सफल मनोरथ हो जाते हैं, एवं शिव जी की भक्ति को प्राप्तकर निश्चिन्त मन हो सदा विहार करते हैं। जो अपनी शक्ति के अनुरूप इच्छाओं का निरोध कर, विषयों से बाहर हो सभी विकारों से उन्मुक्त हो तपस्या में सदा निरत रहते हैं, एवं सभी इन्द्रियों को स्ववश रख पुनर्जन्म न होने की अभिलाषा से यहाँ अवस्थित रहते हैं, वे उन महान् आत्मा भगवान् शंकर को प्राप्तकर भयरहित हो जाते हैं। सैकड़ों कोटि कल्पों में भी कभी उनका पुनर्जन्म नहीं होता, भगवान् भव स्वयं उन्हें इस अविमुक्त में अपने में धारण कर लेते हैं। इस प्रकार अति महिमामय इस क्षेत्र को भगवान् ने उत्पन्न किया है, यहाँ पर आकर मानव की सारी अभिलाषा सिद्ध हो जाती है। संक्षेप रूप में अविमुक्त के गुणों का मैंने वर्णन किया है, समुद्रस्थित रत्नों की भाँति इसके भी गुणों की कोई गणना नहीं की जा सकती, जो भक्तिरहित मनुष्य हैं उनको तो ये अविमुक्त के गुण अज्ञान एवं वितर्क में डालने वाले हैं और जो भक्त हैं, उनकी भक्ति के बढ़ानेवाले हैं। वे वितर्की एवं अज्ञानी मूर्ख हैं, अतः अविमुक्त के उन महान् गुणों को न देखकर केवल श्मशान है इसी अज्ञान में पड़े रहते हैं। सैकड़ों विघ्नों से

व्याकुल होकर भी जो विद्वान् पुरुष इस अविमुक्त का सेवन करते रहते हैं, वे उस परम पद की प्राप्ति करते हैं, जहाँ जाकर किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रह जाती, जन्म, मृत्यु एवं बुढ़ापा—इन तीनों कष्टदायिनी अवस्थाओं से मुक्त होकर वे मनुष्य शिव के लोक को प्राप्त करते हैं। मोक्ष की अभिलाषा करनेवालों की वह गति पुनः मृत्यु को प्राप्त करनेवाली नहीं है, पण्डित लोग उस दशा को इस प्रकार मानते हैं कि 'उस उत्तम गति को प्राप्तकर मनुष्य वास्तव में कृतकृत्य हो जाता है।' सारांश यह कि इस अविमुक्त क्षेत्र में वह शुभ गति प्राप्त होती है, जो कभी दान, तपस्या, यज्ञाराधन एवं विद्याध्ययन से नहीं प्राप्त हो सकती। ॥४४-६६॥

अनेक जातियों में उत्पन्न, वर्णसंकर, चाण्डाल एवं घृणित कर्म करनेवाले, पाप कर्मों में सर्वदा निरत रहकर घोर पातकों से भरे हुए मनुष्यों के लिए भी परम उपयोगी औषधि रूप में यह अविमुक्त क्षेत्र सेवन करने योग्य है—ऐसा बुद्धिमान् लोग जानते हैं। सहस्रों अन्य नीच जातियों में से भी यदि कोई इस अविमुक्त में मृत्युलाभ करता है तो देवेश्वर भगवान् की भक्ति के कारण वह पुनः उत्पन्न नहीं होता। जिस अविमुक्त क्षेत्र में जपे हुए जप, हवन, दान, तपस्या तथा सत्कर्म सभी अक्षयरूप में कर्त्ता को प्राप्त होते हैं, उसके विषय में कोई भी संशय नहीं किया जा सकता। काल क्रम से मृत्यु को प्राप्त होनेवाला प्राणी शिव की अक्षय समीपता को प्राप्त करता है। सहस्रों पातकों के करने के उपरान्त पश्चात्ताप कर जो मनुष्य इस अविमुक्त में शरीर-त्याग करता है वह परम गति प्राप्त करता है। उत्तरायण या दक्षिणायन का जो विकल्प न करके अविमुक्त में मरता है, उसके लिए सभी समय शुभदायी है। अविमुक्त क्षेत्र में समय की मीमांसा नहीं करनी चाहिये, चाहे शुभ मुहूर्त्त हो या अशुभ मुहूर्त हो, सभी समय उस अद्भुत माहात्म्यशाली देवता शंकर की कृपा से मृत्यु प्राप्त करनेवाले का वहाँ कल्याण तो होता ही है। शंकर जगत् के सभी चराचर जीवों के स्वामी हैं तथा सर्वाधिक ऐश्वर्यवान् हैं। प्राचीन काल में स्कन्द के मुख से इस सब कथा को सुनकर सभी ऋषियों ने यह निश्चय किया था कि अवश्य ही वह अविमुक्त क्षेत्र अतिपुण्यप्रद क्षेत्र है, शुद्ध इन्द्रियों द्वारा सब को सदा उसका सेवन करना चाहिये। ॥६७-७४॥

श्री मात्स्य महापुराण में अविमुक्त माहात्म्य नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त। ॥१८४॥

एक सौ पचासीवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण! इस प्रकार महापुण्यप्रद अविमुक्त के विषय में अति श्रद्धासम्पन्न आस्तिक बुद्धिवाले सुन्दर स्वरूप भक्तिमान् ऋषिगण ऐसे अविमुक्त के परम पवित्र माहात्म्य को सुनकर परम विस्मित हुए एवं अति हर्ष से गद्गद वाणी में, ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ स्कन्द से बोले—'स्कन्द! तुम ब्राह्मणों के रक्षक हो, महादेव के पुत्र हो, ब्रह्मज्ञानी हो, ब्राह्मणों के प्रिय हो, ब्रह्मनिष्ठ हो, ब्रह्म को जानने वाले हो, स्वयं ब्रह्मा हो, ब्रह्मा से भी बढ़कर हो, ब्रह्मलोक के कर्त्ता हो, ब्रह्म के निर्माणकर्त्ता, ब्रह्मचारी, ब्रह्मा से ज्येष्ठ तथा ब्रह्मा पर दया करनेवाले हो, ब्रह्म के समान हो, तुम्हें हम लोग नमस्कार

करते हैं। तुम्हारी ही कृपा से हम लोगों ने ऐसे परमतत्त्व की प्राप्ति की है, जिसे जानकर अमरत्व प्राप्त किया जाता है, तुम्हारा कल्याण हो, अब हम लोग भूलोक में शंकर के उस निवास स्थान अविमुक्त को जायँगे जहाँ पर सर्वभूतात्मा सृष्टि के स्थाणु रूप भगवान् शंकर सभी लोक की रक्षा के लिए उग्र तपस्या में निरत हो योग द्वारा अपनी रुद्र (भयानक) विभूति सम्पन्न देह में अवस्थित रह, अपने ही समान अनुपम गुणवाले गुह्यकों से घिरे हुए अपने वास्तविक स्वरूप में विद्यमान हैं।' इस प्रकार कहकर ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध तथा महर्षिगण परम भक्तिपूर्वक स्कन्द से पुनः निवेदन करने लगे, 'गणेश्वर! तुम्हारी कृपा से हम सब लोग सुनिश्चित होकर इस प्रकार उपयुक्त अनुपम गुणोंवाले उस अविमुक्त क्षेत्र में निवास करने को इच्छुक हैं, जिसमें धर्मशील, जितक्रोध, अहंकाररहित, जितेन्द्रिय, ध्यान एवं योग के अभ्यासी मनुष्य निवास करते हैं तथा परम अव्यक्त गति को प्राप्त करते हैं। वे भक्तियुक्त मनुष्य योगाराधन में लीन हो योग में सिद्धि प्राप्तकर योग एवं मोक्ष के देनेवाले सनातन एकान्तप्रिय भगवान् की उपासना करते हैं। इस प्रकार परमयोगी महेश्वर के प्रसाद से उस अविमुक्त क्षेत्र को प्राप्त-कर सातों ब्रह्मर्षि गण भव की समीपता को प्राप्त हुए। बुद्धिमान् लोग इस अविमुक्त को परमक्षेत्र मानते हैं। संसार की माया से विमुग्ध हुए मूर्ख लोग अविमुक्त की उस विशेषता को नहीं देखते। उन्हीं शंकर की आज्ञा से वे उनके भक्त गण, जो सर्वदा उन्हीं के चरणों का ध्यान करते रहते हैं, उस अविमुक्त क्षेत्र में शरीर त्याग कर शान्ति प्राप्तकर योगियों की गति प्राप्त करते हैं। वह अवि-मुक्त सभी श्मशानों की अपेक्षा परम एकान्त तथा गोपनीय है। यह प्रसिद्ध है कि पृथ्वी तल पर विना योग के मोक्ष की प्राप्ति मनुष्य को नहीं हो सकती; किन्तु अविमुक्त में निवास करनेवाले को योग एवं मोक्ष दोनों की प्राप्ति एक ही साथ होती है। परमेश्वरि! इस अविमुक्त क्षेत्र का यह एक विशेष प्रभाव अथवा महत्त्व है कि इसमें इसी (एक) जन्म में मनुष्य उत्तम गति प्राप्त कर सकता है। ॥१-१६॥

एक समय की बात है कि इसी अविमुक्त क्षेत्र में निवास करनेवाले अमित तेजस्वी व्यास जी प्रयत्न करने पर भी भ्रमण करते हुए एक बार कहीं से भिक्षा नहीं प्राप्त कर सके। तब क्षुधा से पीड़ित होकर उसे घोर शाप देने का वे विचार करने लगे। उन्होंने सोचा कि एक-एक दिन करके मेरे छ मास व्यतीत हो गये पर क्या कारण है कि मेरा यह नगर भिक्षा के दोष से हतप्राय हो गया अर्थात् कोई भी भिक्षा देनेवाला नहीं दिखाई पड़ रहा है। क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, क्या विधवा, क्या सम्भ्रान्त क्या असम्भ्रान्त— किसी ने भी मुझे भिक्षा नहीं दी, इसका क्या कारण है? यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है कि यहाँ के लोग ब्राह्मण को भिक्षा नहीं देते। अतएव अब मैं इन सबों को शाप दे रहा हूँ, साथ ही इस तीर्थ तथा नगर को भी शाप दे रहा हूँ। यह तीर्थ अब तीर्थ न रहे। नगर को यह शाप दे रहा हूँ कि इस नगर में निवास करनेवालों की विद्या तीन पीढ़ी तक न चले, धन तीन पीढ़ी तक न रहे, मित्रता तीन पीढ़ी तक न चले—इस प्रकार वाराणसी को शाप देते हुए व्यास ने 'अविमुक्त में निवास करनेवाले इन पुण्यकर्मा मनुष्यों को भी विघ्नपूर्ण कर दूँ, जिससे उन्हें किसी प्रकार की कभी सिद्धि न मिले।' इस प्रकार का

विचार किया। देवदेव उमापति व्यास के इस मनोभाव को देखकर अति भयभीत हुए और अपनी प्रियतमा गौरी से कहने लगे—'देवि! यह एक दुःखपूर्ण विषय जिस प्रकार उपस्थित हो गया है उसे सुनो, कृष्णद्वैपायन व्यास क्रोध के कारण मुझे शाप देने को उद्यत हो गये हैं। ॥१७-२५॥

देवी ने कहा—भगवन्! किसने व्यास जी को इस प्रकार कुपित कर दिया है? आपने उनका क्या ऐसा अपकार किया है जिससे वे शाप दे रहे हैं? ॥२६॥

देवदेव ने कहा—प्रिये! इस व्यास ने बारह वर्षों तक समाधिलीन हो मौन व्रत रख कर के घोर तपस्या की है। तपस्या से उठने पर इसे क्षुधा लगी, जिससे भिक्षाटन करते हुए वह यहाँ आये। भामिनि! किन्तु यहाँ पर इसे किसी ने आधे ग्रास की भी भिक्षा नहीं दी। इस प्रकार मुनि के छः महीने व्यतीत हो गये। जिससे अति क्रोधयुक्त होकर यह शाप देने जा रहे हैं। जब तक शाप नहीं देते हैं, तब तक कोई उपाय निश्चित् कर लो। प्रिये! इस कृष्णद्वैपायन व्यास को नारायण स्वरूप ही समझो। भला इसके शाप से कौन ऐसा है जो भयभीत न हो जाय? साक्षात् पितामह भगवान् ब्रह्मा भी इस शाप से भयभीत हो जायँगे। इसके शाप से दैव के अधीन जो कार्य होगा वह भी हो सकता है, और जो नहीं अधीन होगा वह भी हो सकता है। वरानने! इसलिये आवो हम दोनों यहाँ के निवासी बनकर गृहस्थ के वेश में, उसे तृप्ति करनेवाली भिक्षा का दान करें।' भगवान् शंकर ने इस प्रकार पार्वती से उस समय कहा। ॥२७-३२॥

ऐसा विचार निश्चित् करने के उपरान्त भगवान् शंकर तथा पार्वती मनुष्य का वेश धारणकर व्यास के सम्मुख उपस्थित हुए और बोले—'साधु! आवो, यहाँ मेरे पास आओ! श्रेष्ठ! यह भिक्षा ग्रहण करो। महामुने! तुम तो इतने दिनों तक रहकर भी हमारे यहाँ कभी नहीं आये।' शंकर की ऐसी बातें सुन व्यास जी प्रसन्नचित्त हो भिक्षा ग्रहण करने के लिए वहाँ गए। षड्रस व्यंजन समेत उत्तम भिक्षा को देकर पार्वती तथा शंकर वहीं खड़े रहे। मुनिवर व्यास उस अपूर्व स्वादिष्ट भिक्षा का भोजन ग्रहण कर अति हर्षित हो चिन्तन करने लगे कि 'यह ऐसी अपूर्व भिक्षा कहाँ से प्राप्त हो गई।' थोड़ी देर बाद कमल के समान सुन्दर नेत्रोंवाले व्यास ने पार्वती तथा वरदायी शंकर की वन्दना की और यह कहा—'भगवान् महादेव ऐसे देवता, पार्वती ऐसी देवी, भगवती गंगा ऐसी नदी, ऐसा सुस्वादु अन्न, मरने पर उत्तम गति—विशाल नेत्रों वाली! ऐसे सुखद साधनों से सम्पन्न वाराणसी नगरी में भला किसे निवास करना न रुचेगा।' ऐसा कहकर व्यास उस नगरी को देखते हुए तथा हृदय को आनन्द देनेवाली उस अपूर्व स्वादवाली भिक्षा को सोचते हुए अपने सम्मुख खड़े हुए भगवान् शंकर एवं भगवती पार्वती की ओर देखा। घर के आँगन में खड़े हुए व्यास को देखकर देवाधिदेव ने कहा—'महामुने! तुम तो बड़े क्रोधी हो, अतः इस वाराणसी नगरी में तुम निवास मत करो।' शिव की ऐसी वाणी सुन व्यास अति विस्मित हुए और शंकर से बोले। ॥३३-४१॥

व्यास ने कहा—'देव! केवल चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथि को मुझे यहाँ प्रविष्ट होने की आज्ञा दे दीजिये।' तदनंतर शिव तथा पार्वती 'ऐसा ही हो' कहकर वहीं अन्तर्हित हो गए। व्यास ने

देखा कि न तो वहाँ वह घर दिखाई पड़ रहा है न पार्वती जी हैं और न शिव जी । सूत ने कहा—इस प्रकार प्राचीन काल में तीनों लोकों में सुविख्यात महातपस्वी व्यास जी ने अविमुक्त क्षेत्र के उत्तम गुणों को जानकर उसी के बगल में अपना निवास स्थान निश्चित किया था । पण्डित लोग इस प्रकार काशी के समीप में व्यास को अवस्थित जान उस क्षेत्र की प्रशंसा किया करते हैं । ऐसे अविमुक्त के गुणों की प्रशंसा करने में कौन समर्थ हो सकता है ? देवता तथा ब्राह्मणों से विद्वेष करनेवाले, देव भक्ति की उपेक्षा करनेवाले, ब्रह्महत्या करनेवाले, कृतघ्न, निष्कर्मण्य, लोकद्वेषी, गुरुद्वेषी, तीर्थ एवं देवमंदिरों को दूषण देनेवाले, सर्वदा पाप कर्म में निरत, इनके अतिरिक्त अन्य नीच प्रकृति के वे व्यक्ति, जो पृथ्वी पर अत्यन्त कुत्सित कर्मों में सदा लीन रहते हैं—सब के लिए अविमुक्त क्षेत्र में निवास स्थान नहीं है, क्योंकि दण्डनायक (भैरव)—वहाँ पर रक्षार्थ नियुक्त किये गये हैं । मंत्रज्ञाता लोग सुगन्धित हव्य पुण्यादि तथा धूप आदि पूजन की सामग्रियों से यथाशक्ति दण्डनायक की पूजा तथा नमस्कार कर सभी वर्णों के लोगों से घिरे हुए अनेक प्रकार के सर्पादि जन्तुओं से आकीर्ण अविमुक्त में ईश्वर के अनुग्रहवश गणेश्वर की गति प्राप्त करते हैं, अनेक प्रकार के रूपों को धारणकर विविध वेशों में देवगण इस अविमुक्त क्षेत्र में शिव जी में भक्ति तथा निष्ठा रखे हुए, जिस-जिस मुख्य पद की प्राप्ति की इच्छा रखते हैं उस-उस पद को अक्षय रूप में प्राप्त करते हैं । यह शिव जी का पुर देवपुरी अमरावती से भी विशेषता रखनेवाला है, इसका उत्तरी भाग ब्रह्मपुरी की अपेक्षा भी विशेष पुण्यदायी है, यह शंकर के तपोबल एवं योगाराधना द्वारा इस प्रकार सुव्यवस्थित है । इसकी बराबरी में ब्रह्मा आदि प्रमुख देवताओं के निवास स्थान भी नहीं हो सकते । यह अति मनोहारि, इच्छा को पूर्ण करनेवाला, रोगरहित तथा योग की भाँति सभी तपस्या एवं तेजों का अतिक्रमण करनेवाला है । इस अविमुक्त के ऐसे परम पवित्र क्षेत्र में देवाधिदेव शंकर जी सदा विराजमान रहते हैं, इसमें जो तपस्या की जाती है तथा जिन नियमों का पालन किया जाता है, वह अन्यत्र की अपेक्षा अक्षय फलदायी होता है । सभी तीर्थों में स्नानादि करने का जो फल है, सभी दानों के देने का जो पुण्य है, सभी यज्ञों से जो पुण्य प्राप्त होता है वह सब अविमुक्त में निवासमात्र से प्राप्त होता है । भूत काल में अथवा वर्तमान काल में जो कुछ भी पाप कर्म ज्ञान से अथवा अज्ञान से हो जाते हैं वे सभी इस पुण्य क्षेत्र के दर्शन मात्र से निवृत्त हो जाते हैं, ! मन एवं इन्द्रियों को स्ववश रख शान्त चित्त से जो अन्यत्र तपस्या की जाती है, अथवा धर्म के नाम से जो भी आचरण किये जाते हैं, वे सभी अविमुक्त में केवल इन्द्रियों को स्ववश रखने से प्राप्त होते हैं । जो मनुष्य अविमुक्त क्षेत्र में जाकर शिव लिंग की पूजा करते हैं उनका सैकड़ों कोटि कल्पों में भी पुनर्जन्म नहीं होता, तथा वे अमर एवं अक्षय रूप में शिव के समीप क्रीडा करते हैं । सारांश यह कि यह अविमुक्त क्षेत्र संसार के अन्य क्षेत्रों तथा तीर्थों का उपनिषत्स्वरूप है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, जो अविमुक्त में महादेव जी की पूजा करते हैं तथा स्तुति करते हैं वे सभी पापों से निर्मुक्त होकर वृद्धावस्था तथा मृत्यु से भी छुट्टी पा जाते हैं । सभी मनोरथों के पूर्ण करने के लिए प्रसिद्ध जो यज्ञादि हैं, उनके करने से भी मनुष्य को पुनर्जन्म ग्रहण

करना पड़ता है, किन्तु जो अविमुक्त में केवल प्राणत्याग कर देते हैं वे पुनः लौट कर कभी नहीं आते। ग्रहों, नक्षत्रों एवं ताराओं का पतन तो काल योग से कभी हो सकता है किन्तु अविमुक्त में मरनेवाला कभी नहीं गिरता। इस उत्तम क्षेत्र में जो मरते हैं वे सैकड़ों कोटि कल्पों में क्या सहस्रों कोटि कल्पों में भी कभी पुर्नजन्म नहीं धारण करते। इस घोर संसार सागर में कालक्रम से भ्रमण करता हुआ प्राणी जब अविमुक्त को प्राप्त कर लेता है तब परम गति को प्राप्त करता है। इस घोर हाहाकारमय अचेतन कलियुग को जानकर जो प्राणी अविमुक्त को नहीं छोड़ते वे ही पृथ्वी में कृतार्थ होते हैं। जो अविमुक्त में प्रविष्ट होकर पुनः बाहर जाने लगता है, उसे देख सभी जीव ताली पीटकर हँसने लगते है। हे देवि! जो मनुष्य काम, क्रोध तथा लोभ से ग्रस्त होते हैं, वे ही प्राणी दण्डनायक की माया से विमोहित होकर इस अविमुक्त से बाहर जाते हैं। जप एवं ध्यान न करनेवाले अज्ञानी एवं दुःख से पीडित व्यक्तियों के लिए काशी ही एक मात्र गति है। विश्वेश के इस आनन्द कानन अविमुक्त में पाँच तीर्थ सम रूप हैं, दशाश्वमेध, लोलार्क, केशव, विन्दुमाधव तथा सर्वश्रेष्ठ मणिकर्णिका। इन्हीं पाँच अति उत्तम तीर्थों से अविमुक्त की प्रशंसा होती है। परमेश्वरि! इस अविमुक्त क्षेत्र की यह एक विशेषता है कि मनुष्य इसमें आकर एक जन्म में ही उत्तम गति एवं मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। ऋषिगण! पार्वती के प्रति महादेव जी से कहे गये अविमुक्त क्षेत्र के इस माहात्म्य को मैं आप लोगों को सुना चुका। ॥४२-७१॥

श्री मात्स्य महापुराण में अविमुक्त माहात्म्य नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त। ॥१८५॥

एक सौ छियासीवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—श्रेष्ठ सूत जी! अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य तो तुम विस्तारपूर्वक हम लोगों को सुना चुके अब उस नर्मदा के माहात्म्य को सुनाइये, जिसके साथ-साथ ओंकार तीर्थ का माहात्म्य, कपिला संगम का माहात्म्य तथा अमरेश पर्वत का माहात्म्य पापों के विनाश करनेवाले कहे गये हैं? प्रलयकाल आने पर भी प्राचीन काल में नर्मदा का नाश क्यों नहीं हुआ? क्या ऐसा कारण है कि उस समय मार्कण्डेय ऋषि भी विनष्ट होने से बच रहे, तुम यद्यपि इन बातों को कह चुके हो; पर विस्तार-पूर्वक इन्हीं सब बातों को पुनः कहो। ॥१-३॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! प्राचीन काल में वन में निवास करते समय पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ने इसी नर्मदा के माहात्म्य की लम्बी कथा को परमतपोनिष्ठ वनवासी महामुनि मार्कण्डेय जी से एक बार पूछा था। ॥४-५॥

युधिष्ठिर ने कहा—द्विजोत्तम! अच्छे व्रत करनेवाले! तुम्हारी कृपा से मैंने विविध प्रकार के धर्मों का उपदेश सुना है, और पुनः श्रवण करना चाहता हूँ, मुझसे बताओ। हे महामुनि जी!

क्यों कर यह महापुण्य प्रदायिनी सर्वत्र विख्यात नर्मदा नदी इतनी सुप्रसिद्ध हुई, ? इस बात को मुझसे बताओ । ॥६-७॥

मार्कण्डेय ने कहा—सभी पापों का विनाश करनेवाली, सभी नदियों में श्रेष्ठ यह नर्मदाँ नदी स्थावर जंगम —सभी प्रकार के जीवों को तारनेवाली है । हे महाराज ! नर्मदा के माहात्म्य को, जैसा कि मैं पुराणों में सुन चुका हूँ, यथावत रुप में आप से निवेदित कर रहा हूँ । कनखल तीर्थ में गंगा पुण्य प्रदायिनी है, कुरुक्षेत्र में सरस्वती का अधिक माहात्म्य है; किन्तु नर्मदा तो क्या ग्राम क्या जंगल सभी स्थानों पर परम पवित्र मानी गयी है । सरस्वती का ज़ल तीन दिनों में, यमुना का जल सात दिनों में, गंगा का जल शीघ्र ही तथा नर्मदा का जल दर्शन करते ही मनुष्य को पवित्र करता है । कलिंग देश के पृष्ठ भाग में अमरकण्टक पर्वत पर तीनों लोकों में परम पवित्र, रमणीय एवं मनोहारिणी नर्मदा की अवस्थिति है । हे महाराज ! वहाँ पर देवता, असुर, गन्धर्व आदि के समेत परम तपस्वी महर्षिगण तपस्या कर परम सिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं । हे राजन् ! उक्त स्थान पर स्नानकर जितेन्द्रिय तथा नियमपूर्वक रहनेवाला मनुष्य एक रात उपवास करके अपने सौ कुलों को तारता है । जालेश्वर नामक तीर्थ में स्नानकर जो मनुष्य विधिपूर्वक पितरों को पिण्ड दान करता है उसके पितर महाप्रलय तक सन्तुष्ट रहते हैं । वहाँ पर्वत के चारों ओर एक करोड़ रुद्रों की प्रतिष्ठापना हुई है, जो कोई पुरुष वहाँ स्नानकर सुगंधित द्रव्य पुष्प तथा चन्दनादि सामग्रियों से पूजन करता है, उसके ऊपर कोटि रुद्र शंकर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें तनिक सन्देह नहीं। उस पर्वत की पश्चिम दिशा के छोर पर स्वयं देव महेश्वर का पुण्य अधिष्ठान है, वहाँ पर ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर जितेन्द्रिय तथा पवित्र मन होकर जो स्नान कर पितरों का श्राद्धादि कार्य करता है और उसी स्थान पर तिल मिश्रित जल से पितरों का तर्पण करता है । हे पाण्डुपुत्र ! उस मनुष्य का सातवाँ कुल तक इस पुण्य कार्य से स्वर्गलोक में आनन्द लाभ करता है और वह स्वयं सिद्धों तथा चारणों से सेवित, अप्सराओं के समूहों से आकीर्ण स्वर्ग लोक में साठ सहस्र वर्षों तक पूजित होता है । तदनन्तर स्वर्ग से भ्रष्ट होकर दिव्य सुगंधित द्रव्यों को अंगों में लगाकर दिव्य अलंकारों से अलंकृत हो सम्पन्न कुल में जन्म धारण करता है । उस जन्म में भी वह धनवान् दानशील तथा धार्मिक प्रवृत्ति का होता है, और पुनः उक्त तीर्थ का स्मरण कर वहाँ की यात्रा के लिए इच्छुक होता है, सात कुलों को तारता है तथा रुद्र लोक को प्राप्त करता है । वह पवित्र तथा उत्तम नर्मदा नदी सौ योजन से अधिक ही सुनाई पड़ती है । राजेन्द्र ! विस्तार में वह नदी दो योजन की चौड़ी मानी गयी है । साठ करोड़ तथा साठ सहस्र तीर्थ उसके चारों ओर अमरकंटक में अवस्थित हैं । जो कोई मनुष्य ब्रह्मचर्य व्रत धारणकर पवित्र मन हो क्रोध को जीतकर इन्द्रियों को वश में रख, सभी प्रकार की हिंसाओं से निवृत्त हो, सभी जीवों के कल्याण साधन में निरत हो अपने प्राणों को वहाँ छोड़ता है, राजन् ! उस पुरुष के पुण्य का फल सावधान होकर सुनिये । पाण्डुपुत्र ! इस प्रकार की विधि से नियम पालन करनेवाला पुरुष एक लाख वर्ष तक अप्सराओं के समूहों से आकीर्ण, सिद्धों तथा चारणों से सुशोभित स्वर्ग लोक में स्वर्गीय पुष्पों से सुशोभित तथा दिव्य सुगंधित द्रव्यों तथा चन्दनों का लेपकर आनन्द का अनुभव

करता है। देवलोक में स्थित हो देवताओं के साथ विहार करता है, तदनन्तर स्वर्ग से पुण्य क्षीण हो जाने पर पृथ्वी पर पराक्रमी राजा होता है, एवं अनेक रत्नों से विभूषित दिव्य हीरा वैदूर्य आदि मणियों से सुशोभित खम्भों पर बने हुए कारीगरी से युक्त, दासी दासों के समूहों से समन्वित राजभवन को प्राप्त करता है। मतवाले हाथी के चिग्घाड़ तथा घोड़ों की हिनहिनाहट से उसका राज द्वार सर्वदा इन्द्र के द्वार की भाँति क्षुब्ध रहता है। राजाधिराज, श्री सम्पन्न, सभी स्त्रियों का प्रिय होकर वह ऐसे विविध क्रीडा के साधनोंवाले भवन में निवास करता हुआ सभी रोगों से रहित हो सौ वर्ष तक जीवित रहता है। अमरकण्टक पर्वत पर जो प्राणी मरता है उसे इस प्रकार का आनन्द उपभोग करने को मिलता है। अग्नि में, विष में, जल में, तथा अनशन में—सर्वत्र उसकी ऐसी स्वच्छन्द गति रहती है जैसी वायु की आकाश में रहती है। हे राजन्! जो प्राणी इस अमरेश पर्वत से अपने को गिराता है, उसके घर तीन सहस्र कन्याएँ—इनमें एक एक के लिए अन्यान्य भी रहती हैं—उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए प्रार्थिनी रहती हैं। और दिव्य योगों से सुसम्पन्न होकर वह अक्षय काल तक उनके साथ क्रीड़ा करता है। ॥८-२६॥

नृपश्रेष्ठ! इस अमरकण्टक पर्वत पर जिस प्रकार की विशेषता से युक्त यह तीर्थ अवस्थित है ऐसा कोई अन्य तीर्थ समुद्रपर्यन्त समस्त पृथ्वी मण्डल में भी नहीं हो सकता। उतने ही प्रभावशाली तीर्थ पर्वत के पश्चिमी भाग में भी जानना चाहिये। वहाँ तीनों लोकों में विख्यात जलेश्वर नामक एक सरोवर है जहाँ पिण्डदान तथा सन्ध्योपासन करने से पितरगण दस वर्ष तक तृप्त रहते हैं। नर्मदा के दाहिने तट पर कपिला नामक एक नदी है, जो बिल्कुल उसी के समीप में श्वेत अर्जुन के वृक्षों से ढँकी हुई बहती है। वह महाभाग्यशालिनी नदी भी तीनो लोकों में अमित पुण्यप्रदायिनी विख्यात है। युधिष्ठिर! उसमें भी सौ कोटि तीर्थों का निवास है। राजन्! पुराणों में ऐसा सुना गया है कि वहाँ पर किये गये सभी पुण्यकर्म कोटिगुण फलदायी होते हैं। उस नदी के किनारे कालक्रम से गिरनेवाले वृक्ष भी नर्मदा के जल-स्पर्श से परम गति प्राप्त करते हैं। दूसरी एक विशल्यकरणी नामक शुभ नदी है, जिसमें स्नानकर मनुष्य तत्क्षण ही पीड़ा रहित हो जाता है। वहाँ किन्नरों एवं महासर्पों समेत देवगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, तपस्वी ऋषिगण—सभी अमरकण्टक पर्वत पर सर्वदा एकत्र होते हैं तथा उन सबों के साथ परम तपस्वी ऋषिवृन्द नर्मदा तट पर उपस्थित होते हैं। राजन्! सभी पापों को नष्ट करनेवाली महाभाग्यशालिनी यह नदी है, इसमें यदि ब्रह्मचारी मनुष्य इन्द्रियों को वश में रखकर स्नान करे तथा एक रात्रि का भी उपवास करे तो अपने सौ कुलों को तारता है। हे राजाओं में श्रेष्ठ! ऐसी कपिला और विशल्या नामक दो नदियाँ सुनी गई हैं। ईश्वर ने प्राचीन काल में लोक के कल्याण की भावना से इन दोनों का ऐसा माहात्म्य स्वयं बतलाया था। राजन्! इनमें स्नानकर मनुष्य अश्वमेध का फल प्राप्त करता है। नराधिप! इस पवित्र तीर्थ में जो व्यक्ति अनशन करता है, वह सभी पापों से निर्मुक्त एवं विशुद्ध आत्मा हो शिवलोक को प्राप्त करता है। राजेन्द्र! पुराण में नर्मदा का जो माहात्म्य मैंने सुना है वह यह है कि वहाँ स्नानकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। जो इसके उत्तरी

तट पर निवास करते हैं वे रुद्रलोक में निवास करते हैं। युधिष्ठिर ! गंगा, सरस्वती तथा नर्मदा इन तीन नदियों में स्नान एवं दान का समान फल है, जैसा कि शंकर जी ने मुझे बतलाया है। जो मनुष्य अमरकण्टक पर्वत पर अपने प्राणों को छोड़ता है वह शतकोटि वर्षों तक रुद्रलोक में पूजित होता है। नर्मदा का फेनिल लहरों से सुशोभित जल अति पवित्र पुण्यकारी एवं शिर से नमस्कार करने योग्य है, उसके प्रभाव से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। यह नर्मदा सर्वदा अति पुण्यप्रदायिनी तथा ब्रह्महत्या के पाप को भी दूर करनेवाली है। उसके पवित्र किनारे पर मनुष्य एक दिन तथा एक रात्रि का उपवास कर ब्रह्महत्या सरीखे घोर पापों से भी छुटकारा पा जाता है। हे पाण्डुनन्दन ! सचमुच नर्मदा इतनी मनोहारिणी तथा पुण्यप्रदायिनी है। संक्षेप में यह महानदी तीनों लोकों में सर्वाधिक पुण्यप्रदायिनी है। हे ऋषिवृन्द ! महापुण्यप्रद वटेश्वर तीर्थ में तथा तपोवन गंगाद्वार में निवास का उत्तम माहात्म्य बताया गया है किन्तु नर्मदा और समुद्र के संगमस्थल पर उपर्युक्त सभी स्थानों की अपेक्षा दस गुना अधिक पुण्य मिलता है। ॥३७—५८॥

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त। ॥१८६॥

एक सौ सतासीवाँ अध्याय

मार्कण्डेय ने कहा—पाण्डुपुत्र ! श्रेष्ठ नर्मदा नदी पुण्य से भी अति पुण्यप्रदा है। मोक्ष की अभिलाषा करनेवाले महाभाग्यशाली मुनियों ने सर्वदा इसका सेवन किया है। इसकी धारा यज्ञोपवीत की भाँति प्रवाहित होती है, राजेन्द्र ! नर्मदा की धाराओं में स्नानकर मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। तीनों लोकों में विख्यात जलेश्वर नामक अति उत्तम तीर्थस्थान है, हे पाण्डुपुत्र ! मैं उसकी उत्पत्ति बतला रहा हूँ, सुनो। प्राचीनकाल में इन्द्र तथा मरुत्गण के समेत सभी देवताओं ने देवदेव महादेव की स्तुति की थी। स्तुति करते हुए वे वहाँ पहुँचे थे जहाँ महादेव जी का निवास स्थान था। वहाँ पहुँच कर इन्द्र तथा मरुद्गणों के साथ देवताओं ने विरूपाक्ष महादेव से प्रार्थना की थी कि 'प्रभो ! हम लोग भय से अति चिंतित हैं, हम सब की रक्षा कीजिये।' ॥१-५॥

भगवान् शंकर ने कहा—'श्रेष्ठ देवगण ! आप सब का हम स्वागत करते हैं। कहिये, किस प्रयोजन से यहाँ आप लोग पधारे हैं ? क्या दुःख है ? कौन-सा संताप है ? किस से आप लोगों को भय हो रहा है ? महाभाग्यशालियो ! कहिये, आप लोग किस प्रयोजन से यहाँ आये हुए हैं ? उसे हम जानने को इच्छुक हैं'। शिव के ऐसा पूछने पर तपस्वी ऋषियों ने कहा—। ॥६-७॥

ऋषियों ने कहा—एक अतिबलशाली, महाघोर, बलवान् बाण नामक विख्यात् असुर है, जिसका त्रिपुर नामक महान दुर्ग है। उसके अनुपम तेज से वह दिव्य त्रिपुर निरन्तर आकाश में घूमता

रहता है, विरूपाक्ष ! उसी से हम लोग अत्यन्त भयभीत होकर तुम्हारी शरण में आये हुए हैं। इस महान् दुःख से हम लोगों को उबारिये, तुम्हीं हम लोगों की परम गति हो, देवेश ! हम सभी के ऊपर ऐसी महती कृपा करो, जिससे गन्धर्वों समेत सब देवगण सुख प्राप्त कर सकें, प्रभो ! जिस प्रकार से हम लोग परम सन्तोष का लाभ करें वैसा करने की कृपा कीजियें। ॥८-११॥

भगवान् ने कहा—'देवगण ! जैसा कि आप लोग कह रहे हैं, मैं वह सब करूँगा, विषाद मत करते जाइये। थोड़े ही काल में तुम सब को मैं सुखी बनाऊँगा।' मानियों को मान देनेवाले ! इस प्रकार उन सभी देवताओं को आश्वासन देकर देवदेव शंकर ने नर्मदा के तट पर अवस्थित हो उस बाण के संहार की चिन्ता की कि 'किस उपाय द्वारा मुझे इस त्रिपुर का विनाश करना चाहिये।' इस प्रकार विचार करते हुए भगवान् ने नारद का स्मरण किया। स्मरण करते ही नारद वहाँ उपस्थित हो गए। ॥१२-१४॥

नारद ने कहा—देवदेव ! कहिये, किस लिए आपने मेरा स्मरण किया है। देव ! मेरे लिए क्या करना है, उसे बतलाइये। ॥१५॥

श्रीभगवान् ने कहा—'नारद जी ! तुम वहाँ जाओ जहाँ यह महान् त्रिपुर अवस्थित है, दानवेन्द्र बाण के समीप जाकर जैसा मैं कह रहा हूँ, वैसा करो। उसकी स्त्रियाँ पति को ही देवता मानने वाली हैं, वे सुन्दरता में सभी अप्सराओं के समान हैं। विप्र ! उन्हीं के तेजोबल से यह त्रिपुर आकाश में घूमता है। विप्रेन्द्र ! अतः तुम वहाँ जाकर उनकी बुद्धि को विकृत बना दो।' महादेव की बातें सुन नारद जी तुरन्त ही त्रिपुर निवासिनी स्त्रियों के हृदयंगत भावों को नष्ट करने के लिए उस दिव्य त्रिपुर में प्रविष्ट हुए। वह त्रिपुर अनेक रत्नों से सुशोभित हो रहा था। उसकी चौड़ाई सौ योजन तथा लम्बाई दो सौ योजन में थी। वहाँ पहुँचकर नारद ने बल से उद्धत बाण को देखा, जो उस समय मणिजटित कुण्डल, केयूर तथा मुकुट से शोभायमान था, रत्नजटित सुवर्ण के सैकड़ों हार तथा चन्द्रकान्त मणि से शोभित हो रहा था, उसकी करधनी रत्नों से सुशोभित थी, दोनों विशाल बाहु सुवर्ण से विभूषित थीं, उनमें चन्द्रकान्त, महावज्र मणि तथा मूँगे भी सुशोभित हो रहे थे। बारह सूर्य के समान उच्च एवं तेजस्वी आसन पर वह बैठा हुआ था। नारद को देखकर महाबलशाली दानवेन्द्र बाण उठ खड़ा हुआ। ॥१६-२३॥

बाण ने कहा—'देवर्षे ! आपने स्वयममेव हमारी पुरी में पदार्पण किया है—अर्घ्य एवं पाद्य मैं निवेदित कर रहा हूँ।' इस प्रकार नारद का अभिवादन कर बाण ने कहा—'द्विजोत्तम ! मुझे क्या आज्ञा है, विप्र ! आप बहुत दिनों बाद यहाँ आये हुए हैं, विप्रेन्द्र ! आयें, यहाँ विराजमान हों', इस प्रकार आदरपूर्ण शब्दों में नारद का सत्कार बाण ने किया। उसकी स्त्री का नाम अनौपम्या था, जो वास्तव में महादेवी थी। ॥२४-२५॥

अनौपम्या ने कहा—भगवन् ! मर्त्यलोक में भगवान् केशव किस व्रत, नियम, तपस्या अथवा दान द्वारा लोगों पर सन्तुष्ट होते हैं ? कृपया यह मुझे बतलाइये ! ॥२६॥

नारद ने कहा—जो मनुष्य वेदों के पारगामी ब्राह्मण को तिल समेत धेनु का दान देता है,

उसने मानो समस्त सागरों तथा वनों समेत पृथ्वी का दान दे दिया है। करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले विमानों द्वारा वह अक्षय काल तक, जब तक कि सूर्य चन्द्रमा तथा तारागण अवस्थित रहते हैं, आनन्द का अनुभव करता है। आम, इमली, कैथा, वेर, कदम्ब, चम्पक, अशोक, पुन्नाग एवं विविध प्रकार के वृक्षों को, पीपल, केला, बरगद, अनार, नीम, महुआ आदि के वृक्षों को जो स्त्री उपवास कर दान देती है उसके दोनों स्तन कैथे के समान तथा दोनों उरु भाग कदली के समान शोभायुक्त हो जाते हैं। अश्वत्थ के देने पर वह बन्दनीय होती है। नीम के देने पर सुगन्धिपूर्ण रहती है, चम्पक के देने पर चम्पक के समान दिखाई पड़ती है, अशोक के देने पर शोक से रहित हो जाती है, महुवे के देने पर मिष्ठभाषिणी होती है, बरगद के देने पर मनोहर शरीरवाली होती है। वेर तो स्त्रियों को सर्वदा महासौभाग्य प्रदान करनेवाली है। कर्कटी (ककड़ी) और कुक्कुटी का दान स्त्रियों को प्रशंसनीय नहीं माना गया है, इसी प्रकार कदम्ब से मिश्रित कनकमञ्जरी द्वारा पूजा एवं विना अग्नि का पका हुआ अन्न तथा पके अन्न समूहों का अभक्षण, फलों का परित्याग, संध्या काल में मौन साधन भी अप्रशंसनीय है। किसी भी पूजा के पहिले प्रयत्नपूर्वक क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिये। निष्पापे! इस प्रकार पूजा करनेवाली स्त्री का पति सर्वदा उसका मुँह जोहनेवाला होता है। अष्टमी, पंचमी, चतुर्थी तथा द्वादशी तिथि; संक्रान्ति तथा उस दिन, जब कि दिन तथा रात्रि बराबर होते हैं; तथा उस दिन, जब कि सूर्य का मुख ....?, को जो स्त्रियाँ व्रत रहती हैं, उन धर्मपरायणा स्त्रियों का निवास स्वर्ग में होता है—इसमें सन्देह नहीं। कलि के दोषों से तथा सभी प्रकार के पाप कर्मों से उन्मुक्त उन उपवास करनेवाली स्त्रियों के पास यमराज कभी नहीं जाता। ॥२७-३८॥

अनौपम्या ने कहा—महर्षे! मेरे इस जन्म के तथा पूर्व जन्म के सत्कर्मों के पुण्य फल से आप का शुभागमन यहाँ मेरे पुर में हुआ है। कुछ अन्य व्रतों को भी मैं आप से पूछ रही हूँ। विप्रेन्द्र! यशस्विनी विन्ध्यावली नामक बलि की पत्नी, जो मेरी सास लगती हैं, मुझसे कभी सन्तुष्ट नहीं रहतीं, मेरे ससुर भी उनके इस व्यवहार को सर्वदा देखते हुए भी मालूम पड़ता है कि कुछ नहीं देखते या कुछ नहीं जानते, पाप कर्म में निरत रहनेवाली कुम्भीनसी नामक मेरी ननद भी मुझे देखकर बराबर अँगुली तोड़ती रहती हैं। अतः तुम यह बताओ कि ऐसी विषम स्थिति में किस सत्पथ द्वारा मुझे सौख्य की प्राप्ति हो सकती है। मैं जानती हूँ कि ऊषर खेत में बीजों के अंकुर किसी प्रकार भी नहीं उग सकते किन्तु फिर भी विप्रेन्द्र! जिस व्रत के पालन करने से ये मेरे वश में हों, उसे मुझे बतलाइये, मैं आप की दासी हूँ। ॥३९-४३॥

नारद ने कहा—'सुन्दर मुखवाली! सुन्दरि! ऐसे व्रत का विधान मैं अभी तुम्हें बता चुका हूँ, उसी के पालन करने के कारण पार्वती शंकर के शरीर में, लक्ष्मी विष्णु के शरीर में, सावित्री (सरस्वती) ब्रह्मा के शरीर में, अरुन्धती वसिष्ठ के शरीर में आदरपूर्वक विराजमान रहती हैं। इसी व्रत के पालन करने से तुम्हारा पति तुम्हारे वश में रहेगा, सास तथा ससुर को भी तुम्हें कुछ कहने का साहस नहीं होगा। सुन्दर कटिवाली! तुम इस व्रत के नियम को सो सुन चुकी हो, अतः उसी का पालन करो।'

नारद की ऐसी बातें सुन रानी ने कहा—'विप्रेन्द्र ! मेरे ऊपर कृपा करो और मेरे दिये हुए दान को ग्रहण करो। सुवर्ण, मणि, विविध प्रकार के रत्न, वस्त्र तथा आभूषणादि—इन सबों के अतिरिक्त अन्य अति-दुर्लभ सामग्रियों को मैं तुम्हें दान करना चाहती हूँ, द्विजश्रेष्ठ ! उन सब को तुम ग्रहण करो, जिससे विष्णु तथा शंकर मुझ पर प्रसन्न हों।' ॥४४-४९॥

नारद ने कहा—'भद्रे ! इन वस्तुओं को तुम किसी अन्य ब्राह्मण को दो, जिसे कोई वृत्ति अन्यत्र नहीं मिलती, मैं तो सभी सम्पत्तियों से भरा-पुरा हूँ, तुम केवल मुझ पर भक्ति-भाव रखो।' भरतकुलश्रेष्ठ ? इस प्रकार की बातें कर नारद ने उन सभी स्त्रियों के मन को पातिव्रत धर्म से विचलित कर हरण कर लिया और पुनः अपने स्थान को प्रस्थान किया। तदनन्तर त्रिपुर की उन स्त्रियों के मन विचलित हो जाने के कारण अति दुःखी हुए, तथा पातिव्रत धर्म के छोड़ देने से उनके तेज नष्ट हो गये। इस प्रकार पराक्रमी बाण के उस त्रिपुर में यह एक छिद्र पैदा हो गया। ॥५०-५२॥

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ सतासीवाँ अध्याय समाप्त। ॥१८७॥

एक सौ अठासीवाँ अध्याय

मार्कण्डेय ने कहा—कुन्तीपुत्र ! जिस प्रश्न को तुम मुझसे पूछ रहे थे उसे मैं अब बतला रहा हूँ, सुनो। नारद के त्रिपुर से चले जाने के बाद भगवान् रुद्र नर्मदा के तट पर तीनों लोकों में विख्यात माहेश्वर नामक स्थान पर आये और वहाँ पर उन्होंने त्रिपुर के विध्वंस करने की बात सोची। उन्होंने मन्दराचल को गाण्डीव, वासुकि सर्प को डोरी, स्वामिकार्तिकेय को तरकस, विष्णु को उत्तम बाण बनाया और बाण के अग्रभागों में अग्नि को स्थापित कर उनकी पुच्छों में वायु का वेग स्थापित किया। चारों वेदों को रथ के घोड़े बनाकर रथ को सर्वदेवमय निर्मित किया, उसमें दोनों अश्वनीकुमारों को बाग-डोर, तथा धुरी में साक्षात् वज्रधारी इन्द्र को नियत किया। धनाध्यक्ष कुबेर शिव की आज्ञा से पताका के स्थान पर नियत हुए, यमराज दाहिने हाथ पर तथा दारुण काल को स्थित कर चक्कों में करोड़ों देवता तथा लोकविख्यात गन्धर्वों को नियत किया। तदनन्तर देवताओं में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मा जी शिव के सारथी हुए। इस प्रकार सभी देवताओं के सम्पर्क से निर्मित किये गये उत्तम रथ की रचना कर शिव जी स्थाणु रूप हो सहस्रों वर्षों तक प्रतीक्षा करते रहे। जब तीनों योग आकाश में एक साथ उपस्थित हुए तब उन्होंने तीन पर्वों तथा तीन फालों वाले बाण द्वारा उस त्रिपुर का भेदन किया। इस प्रकार जब शिव ने त्रिपुर को लक्ष्यकर अपना उक्तबाण छोड़ा तब वहाँ की स्त्रियों का तेज नष्ट हो गया तथा उनका पराक्रम छिन्न-भिन्न हो गया। उस समय त्रिपुर में विविध प्रकार के सहस्रों उत्पात होते दिखाई पड़ने लगे। उस समय शिव त्रिपुर के विनाशार्थ प्रत्यक्ष कालस्वरूप हो गये, काष्ठ के बने हुए घोड़े भीषण अट्टहास करने लगे, चित्रों

में स्थित आकृतियाँ नेत्र खोलने तथा मूँदने लगीं, लोग अपने को स्वप्न में लाल वस्त्रों से विभूषित देखने लगे। सभी त्रिपुर निवासी स्वप्न में अपनी विपरीत अमांगलिक दशा देखने लगे। इस प्रकार वहाँ के लोग विविध प्रकार के होनेवाले उपद्रवों को देखने लगे। शिव के क्रोध से सभी की बुद्धि तथा शक्ति क्षीण हो गई। उस समय सांवर्तक नामक वायु, जिस प्रकार प्रलयकाल में वेग पूर्वक बहती है, बहने लगी। उस भीषण एवं उग्र वायु से प्रज्वलित अग्नि की लपटें भी त्रिपुर में उठने लगीं, जिससे वृक्षों के समूह जलने लगे, पर्वतों की चोटियाँ ढहकर गिरने लगीं। सभी ओर से घोर हाहाकार मच गया, चराचर जगत् व्याकुल हो गया। सभी उद्यान एवं वाटिकाएँ नष्ट हो गईं। इस प्रकार तीन शिरों वाले उस भयानक रुद्र के बाण द्वारा सभी त्रिपुर जलने लगा, विविध प्रकार के वृक्षवाले बगीचे, विचित्र बने हुए राजप्रासाद सभी ओर से लगी हुई उस प्रचण्ड अग्नि की भीषण ज्वाला में समाविष्ट गये। भीषण अग्नि की लपटों में दसों दिशाएँ मैनशिल के पुञ्ज की भाँति प्रदीप्त दिखाई पड़ने लगीं। जलता हुआ त्रिपुर चारों ओर से फूले हुए पलाश की भाँति दिखाई पड़ने लगा। धुएँ की अधिकता से लोग एक घर से दूसरे घर में भी नहीं जा सके। शिव की कोपाग्नि से जलता हुआ अनेक भीषण चीत्कारों तथा दुःखपूर्ण ध्वनियों से आकुल वह त्रिपुर सभी दिशाओं में जलता हुआ दिखाई पड़ने लगा। राजप्रासादों की चोटियाँ सहस्रों भागों में छिन्न-भिन्न होकर नीचे गिरने लगीं। अनेक प्रकार की मणियों से सुशोभित विचित्र ढंग के बने हुए विमान तथा मनोहर भवन उद्दीप्त अग्नि की ज्वालाओं में भस्म होने लगे। लोग दौड़कर वृक्षों की डालियों तथा भवनों के बारजों पर छिपने लगे। सभी ओर से दौड़कर देवालयों में शरण लेने लगे, अग्नि की प्रचण्ड लपटों से जलते हुए वे चिल्लाने तथा अति आर्त स्वर में रुदन करने लगे। इस प्रकार त्रिपुर में अंगारों की राशि ऊँचे पहाड़ की चोटियों की भाँति दिखाई पड़ने लगी। जिधर-तिधर पर्वतों के शिखरों के समान विशाल आकृति वाले हाथी जलते हुए दिखाई पड़ने लगे। तब त्रिपुरवासी लोग देवदेव की स्तुति करने लगे कि 'हे प्रभो! हम लोगों की रक्षा कीजिए।' अग्नि की लपटों में लीन एक दूसरे के शरीर से स्नेह के कारण लिपटकर वहाँ सैकड़ों क्या सहस्रों दानव गण मृत्यु को प्राप्त हुए। हंस एवं कारण्डवों से शोभित कमलों से युक्त त्रिपुर की पुष्करिणी तथा बावलियाँ भीषण अग्नि से जल कर नष्ट हो गईं। खिले हुए कमलों से सुशोभित योजनों तक फैली हुई उन बावलियों का कहीं पता भी नहीं रह गया। विविध रत्नों से अलंकृत पर्वत के शिखरों की भाँति दिखाई पड़नेवाले राजप्रासाद अग्नि से भस्म होकर जलरहित सरोवर की भाँति दिखाई पड़ने लगे। शिव के क्रोध से प्रेरित अग्नि की लपटें स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, गाय, पक्षी, अश्व आदि के झुण्डों को निर्ममतापूर्वक जलाने लगीं। सैकड़ों व्यक्ति जागते हुए भी जल गये, कितने सोये हुए थे, वैसे ही भस्म हो गये, कितनी स्त्रियाँ पुत्रों को समेटकर उस त्रिपुर की अग्नि में भस्मसात् हो गईं। उस विकराल अग्नि का ऐसा प्रचण्ड निदाघ काल हुआ जैसा अन्तकाल (प्रलयकाल) में हुआ करता है। कितने लोग जो भवनों के भीतर छिपे हुए थे, वहीं जलकर ढेर हो गये, कितने स्त्रियों के अंक में शयन कर रहे थे, वहीं रह गये। कितने अपने पिता तथा माता की गोद में छिपे हुए जल कर चल बसे। इस

प्रकार भीषण अग्नि की ज्वाला में निमग्न उस त्रिपुर में अप्सराओं के समान सुन्दरी स्त्रियाँ अग्नि की लपटों से आहत होकर पृथ्वी पर गिरने लगीं, कोई सुन्दरी, जिसके नेत्र बड़े-बड़े थे तथा मोतियों की लड़ियाँ पहिने हुए थीं, धूएँ से व्याकुल नेत्र हो पृथ्वी तल पर गिर पड़ीं। कोई सुवर्ण के समान गौरांगिनी, जो इन्द्र नीलमणि से जटित आभूषण पहिने हुए थी अपने प्रिय पति को जलकर गिरा हुआ देख उसी के ऊपर स्वयमेव गिर पड़ी। सूर्य के समान तेज से देदीप्यमान कोई सुन्दरी अपने भवन में शयन कर रही थी, उसी समय अग्नि की ज्वाला से भस्म होकर बेहोश हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसी समय उसका पति दानव हाथों में तलवार लेकर उठा, किन्तु अग्नि की भीषण लपटों से जलकर वह भी गिर कर जमीन पर ढेर हो गया। मेघ के समान श्यामल वर्णवाली कोई सुन्दरी जो उत्तम हार तथा केयूर से सुशोभित हो रही थी, श्वेत वस्त्र पहिने थी, अपने दुधमुँहे बच्चे को गोद में लिए हुए खड़ी-खड़ी अपने बालक को जलते देख मेघ की गर्जना के समान रोती हुई स्वयं भस्म हो गई। इस प्रकार शिव के क्रोध से प्रेरित वह अग्नि त्रिपुर में भीषण काण्ड मचाने लगी। कोई चन्द्रमा की कान्ति के समान सुन्दरी, जो हीरों से जटित आभूषण धारण किये हुए थी, अपने पुत्र को गोद में ले काँपती हुई जलकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। कोई कुन्द के पुष्प तथा चन्द्रमा के समान गौर वर्णवाली सुन्दरी अपने भवन में क्रीड़ा कर रही थी, घर को अग्नि की लपटों में जलते हुए देखकर वह आगाह हुई और चिल्लाने लगी कि 'हाय सब कुछ जला जा रहा है, मेरा बेटा कहाँ गया'—ऐसा कहते हुए उसने समीप में ही अपने पुत्र को जला हुआ देखा और स्वयं पृथ्वी पर गिरकर भस्म हो गई। उदयकालीन सूर्य की भाँति वर्णवाली लक्ष्मी के मुख के समान सुन्दर मुखवाली कोई सुन्दरी जलती हुई शीघ्रता से बचाव के लिए दौड़ने लगी; किन्तु पृथ्वी पर गिरकर भस्म हो गई। कोई सुवर्ण के समान गौर वर्णवाली सुन्दरी, जो नीलममणि से जटित आभूषण पहिने हुए थी, प्रचण्ड धूएँ से व्याकुल हो पृथ्वी पर लेट गई और वहीं भस्म हो गई। उसका हाथ पकड़े हुए कोई दूसरी सुन्दरी थी, वह कह रही थी, 'सखि! बेटी जली जा रही है' सभी दिशाओं में उत्पन्न होनेवाले रत्नों से अलंकृत वह सुन्दरी अग्नि की भयावनी लपटों से भयभीत हो शिर पर अंजलियों को बाँध कर अग्नि से निवेदन करने लगी—'भगवन्! यदि तुम्हारा वैर अपकार करनेवाले त्रिपुर के पुरुषों से है तो घर रूप पिंजरे में रहनेवाली कोकिल रूप इन विवश बालाओं ने तुम्हारा क्या अपराध किया है। पाप! निर्लज्ज! निर्दयी! स्त्रियों के साथ तुम्हारा कब का वैर है, न तो तुम्हें कुछ विवेक है, न लज्जा है, न तुममें सत्य है, न पराक्रम ही बचा है। इस प्रकार की आक्षेपपूर्ण बातों से वे लपटों में अग्नि की भर्त्सना करती हुई स्वयम् भस्म होने लगीं। 'क्या तुमने यह नहीं सुना है कि शत्रु की स्त्रियों पर प्रहार नहीं करना चाहिये, किन्तु इस क्रूर दहन कर्म एवं स्त्रियों के प्राण-हरण में वे गुण रूप में तुममें दिखाई पड़ रहे हैं, न तो तुममें दया है, न किसी का भय है, न स्त्रियों के प्रति समुचित व्यवहार करने का विवेक ही है। म्लेच्छ लोग भी स्त्रियों को जलती हुई देख दयाभाव प्रदर्शित करते हैं, किन्तु तू तो म्लेच्छों से भी कष्टदायी हो, दुर्दमनीय हो और जड़ हो! इस प्रकार निर्दयतापूर्वक जलाने तथा मारने का भीषणपूर्ण काम तुम्हें नहीं शोभा देता। दुराचारी! इन

स्त्रियों को जलाने से तुझे भला क्या मिलेगा ? दुष्ट ! निर्दयी ! निर्लज्ज ! दुरात्मा ! अभागे ! क्रूरात्मा ! पामर ! तू क्यों बलपूर्वक हम सबों को जला रहा है ?' ॥१-५३॥

इस प्रकार भर्त्सना करती हुई त्रिपुर की सुन्दरियाँ अनेक उपालम्भपूर्ण बातें करती हुई जलने लगीं । उनमें से कुछेक तो अपने बालकों के जल जाने के शोक से मूर्च्छित थीं, कुछ चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थीं कि 'अरे पूर्वशत्रु की भाँति क्रुद्ध होकर यह दुष्ट शत्रु अग्नि हम सबों को जला रहा है, पुष्करिणियों का जल भस्म हो गया, कूपों के जल भी जल गये । हे म्लेच्छ ! इस प्रकार हम लोगों को जलाकर तू भला कौन-सी गति प्राप्त करेगा ?' इस प्रकार त्रिपुर की सुन्दरियों की भर्त्सनापूर्ण बातें सुन अग्नि देव मूर्तमान् हो प्रत्यक्ष हुए तथा शीघ्रतापूर्वक आसन से उठकर बोले । ॥५४-५६॥

अग्नि ने कहा—'अपने वश में होकर मैं आप लोगों का विनाश नहीं कर रहा हूँ, मैं तो आज्ञापालन करनेवाला हूँ, भला मैं अनुग्रह किस प्रकार कर सकता हूँ ? रुद्र के क्रोध के कारण मैं आप लोगों के इस त्रिपुर में इच्छापूर्वक विचरण कर रहा हूँ ।' अग्नि की ऐसी बातें सुन तथा त्रिपुर को इस प्रकार जलते देख महातेजस्वी सिंहासन पर बैठे हुए बाणासुर ने कहा—'अहो ! देवताओं ने हमारा विनाश कर दिया, उन अल्प बलशाली तथा दुराचारियों ने शंकर से प्रार्थना कर ऐसा कार्य सम्पन्न कराया है । महात्मा शंकर ने हम लोगों की विना परीक्षा किये ही त्रिपुर का विध्वंस किया है । त्रिलोचन शंकर को छोड़कर कोई अन्य देवता मुझे मारने की शक्ति नहीं रखता ।' ऐसा कहकर शिर पर त्रिभुवन के स्वामी शंकर के लिंग को धारणकर अमूल्य रत्नों, अनेक प्रकार की सुन्दरी स्त्रियों, मित्रों तथा परिवार के लोगों को उसी विपत्ति में छोड़ पुर द्वार से बाहर निकला । उस समय शिव लिंग को शिर पर रख आकाश मार्ग से देवाधिदेव त्रिलोक के अधीश्वर शिव की स्तुति करते हुए वह पुर से बाहर हुआ और बोला—'देव शंकर ! यदि सचमुच मैं मारने योग्य हूँ तो अब मैं इस पुरी को छोड़ रहा हूँ । देव ! तुम्हारी कृपा से मेरे इस लिंग का विनाश न हो । देव ! मैंने सर्वदा परम भक्ति से आप की आराधना की है, यदि तुम्हारे क्रोध से मैं सचमुच विनाश का पात्र हूँ तो कोई हर्ज नहीं है । मेरे इस आराध्य लिंग का विनाश न हो—मैं यही चाहता हूँ । महादेव ! तुम्हारे कोप के कारण यह मेरा जलना भी प्रशंसनीय है, किन्तु मैं यह चाहता हूँ कि अपने प्रत्येक जन्म में मैं तुम्हारे चरणों में लगा रहूँ । परमेश्वर ! इन तोटक[1] छन्दों से मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ । शिव ! शंकर ! शर्व ! भव ! भीम ! महेश्वर ! कुसुमायुध के शरीर को विनष्ट करनेवाले ! त्रिपुर के शत्रु ! अन्धक के विनाशक ! त्रिशूलधारी ! स्त्रियों के प्रिय ! मनोहर वेशवाले ! विरक्त सुरासुर तथा सिद्धों के समूहों द्वारा नमस्कृत ! तुझे मैं नमस्कार करता हूँ । अश्व, वानर, सिंह तथा हाथी के समान बहुत छोटे तथा बहुत बड़े अत्यन्त तेजोमय दीर्घ तथा विशाल मुखवाले ! तुम्हारे चरणों को प्राप्त करने में असमर्थ असुरों तथा सैकड़ों बाहुओं से युक्त मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। हे चंचल चन्द्रमा की

[1] प्रार्थना तोटक छन्दों में की गई है।

कला से सुशोभित देव ! तुम्हें हमारा नमस्कार है। अत्र पुत्र, स्त्री तथा अश्वादि की मेरे मन में इच्छा नहीं है, मेरी तो एकमात्र गति तुम्हारी शरण ही है, मैं इस सैकड़ों वीरों जितने बलवान् शरीर को प्राप्तकर के भी व्यथित हूँ, इसके द्वारा तो मैं महानरक में पड़ूँगा, न तो जन्म लेने से छुटकारा मिलेगा, न पाप कर्म से बुद्धि ही निवृत्त होगी, चंचल मन निश्चय किये हुए भी पुण्य कर्मों को छोड़ देता है, बराबर डाँवा-डोल रहता है, भ्रमता रहता है, डरता है, मेरे कुकर्म मुझे सत्कर्मों से निवारण करते हैं। ॥५७-७१॥

जो मनुष्य इस दिव्य तोटक स्तुति का पाठ मन को वश में रख तथा पवित्र मन से करता है उसको भी बाण के समान शंकर प्रसन्न होकर वरदान देते हैं। इस महादिव्य स्तोत्र को सुनकर देवदेव महादेव जी अति प्रसन्न हुए तथा स्वयम् बाण से बोले। ॥७२-७३॥

महेश्वर ने कहा—'वत्स ! तुम मत डरो, अपने पुत्र, पौत्र, सुहृत् परिवार वर्ग, स्त्री तथा नौकरों के साथ सुवर्ण निर्मित त्रिपुर में निवास करो। बाण ! आज से तुम्हारा संहार देवता लोग भी नहीं कर सकते। पाण्डव ! इस प्रकार देवाधिदेव ने उसे पुनः वरदान दिया कि तुम नाशरहित हो, सभी लोकों में इच्छापूर्वक विचरण करो, कहीं भी तुम्हें भय का लेश नहीं है।' बाण से ऐसा कहकर शिव ने अग्नि को त्रिपुर दाह से रोक दिया। इस प्रकार महात्मा शंकर ने बाण के तीसरे पुर की रक्षा की। तब से रुद्र के तेज के प्रभाव से रक्षित वह तीसरा पुर गगनमण्डल में घूमने लगा। महात्मा शंकर ने इसी प्रकार त्रिपुर का दहन किया था। ज्वालाओं के समूह से घिरे हुए त्रिपुर के दो पुर आकाशमण्डल से पृथ्वीतल पर गिरे थे, जिनमें से एक त्रिपुरान्तक के श्रीशैल पर तथा दूसरा अमरकण्टक पर्वत पर गिरा था। राजेन्द्र ! उनके जल जाने पर वहाँ रुद्रकोटि की प्रतिष्ठापना हुई थी। जलते हुए आकाश से गिरने के कारण उसका ज्वालेश्वर नाम पड़ा। उससे उठनेवाली दिव्य ज्वाला स्वर्ग लोक को चली जिससे देवताओं तथा असुरों में महान् हाहाकार मच गया। रुद्र ने अपने माहेश्वर के उत्तम पुर पर चलाये गये बाण को स्तम्भित कर दिया। उस समय अमरकण्टक पर्वत पर इस प्रकार की घटना घटित हुई थी। ॥७४-८२॥

पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार ऊपर कही हुई विधि से पूजन करनेवाला प्राणी चौदहों भुवनों का तीस करोड़ तथा सहस्र कोटि वर्षों तक उपभोग करता है। तदनंतर पृथ्वीतल पर उत्पन्न होकर परमधार्मिक राजा के कुल में उत्पन्न होता है तथा समस्त पृथ्वी का एकच्छत्र राज्य करता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। महाराज ! इस प्रकार का पुण्यदायी वह अमरकण्टक पर्वत है। चन्द्रमा तथा सूर्य के ग्रहण के अवसर पर जो अमरकण्टक की यात्रा करता है उसे अश्वमेध यज्ञ से दस गुना अधिक फल होता है। पण्डितों ने ऐसा कहा है कि वहाँ महेश्वर का दर्शनकर मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त करता है। राहु द्वारा सूर्य के ग्रस्त होने के अवसर पर जो प्राणी वहाँ जाता है उसकी ब्रह्महत्या छूट जाती है, समस्त अमरकण्टक की सीमा भर में ऐसा माहात्म्य कहा जाता है। जो व्यक्ति मन से भी उस अमरकण्टक पर्वत का स्मरण करता है वह सौ चान्द्रायण व्रत का पुण्यफल प्राप्त करता है—इसमें सन्देह नहीं। यह अमरकण्टक पर्वत तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध है, यह सिद्ध तथा गन्धर्वों के समूहों से सेवित अति पवित्र श्रेष्ठ पर्वत है। अनेक प्रकार के वृक्ष

तथा लताएँ इस पर फैली हुई हैं। विविध रंग के फूल खिले रहते हैं, इस महा पर्वत में सहस्रों मृग तथा बाघ घूमा करते हैं। देवी पार्वती के साथ इस पर्वत पर भगवान् शंकर विराजमान हैं, उनके साथ ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, तथा विद्याधरों के समूह भी इस पर्वत पर सन्निहित रहते हैं। ऋषि, किन्नर तथा यक्षगण नित्य इस महागिरि में निवास करते हैं। बड़े-बड़े सर्पों के साथ नागराज वासुकि भी इस पर क्रीड़ा करता है। जो मनुष्य इस महागिरि अमरकण्टक की प्रदक्षिणा करता है वह पौण्डरीक नामक यज्ञ का पुण्यफल प्राप्त करता है। उस अमरकण्टक पर ज्वालेश्वर नामक सिद्धों से सेवित पवित्र तीर्थ है, उसमें स्नान करनेवाला जीव मृत्यु के बाद पुनर्जन्म नहीं लेता। हे महाराज! उस ज्वालेश्वर तीर्थ में जो मनुष्य चन्द्र तथा सूर्य-ग्रहण के अवसर पर अपने प्राणों को छोड़ता है उसे भी जो फल होता है सुनो, सभी कर्मों से विनिर्मुक्त ज्ञान तथा विज्ञान से संयुक्त हो वह रुद्र लोक में महाप्रलय पर्यन्त निवास करता है। हे सुव्रत! इस अमरेश्वर पर्वत के पवित्र दोनों तटों पर कोटि-कोटि ऋषिगण तपस्या करते हैं, चारों ओर से एक योजन के परिमाण में यह अमरकण्टक क्षेत्र विस्तृत है। किसी विशेष कामना से अथवा निष्काम भाव से जो मनुष्य नर्मदा के पवित्र जल में स्नान करता है वह सभी पापकर्मों से मुक्त होकर रुद्रलोक की प्राप्ति करता है। ॥८३-९९॥

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ अठासीवाँ अध्याय समाप्त। ॥१८८॥

एक सौ नवासीवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! युधिष्ठिर को प्रमुख बनाकर उन महात्मा तपस्वी ऋषियों ने महामुनि मार्कण्डेय से पूछा—'भगवन्! हम लोगों की अभिवृद्धि तथा लोक के मंगल की कामना से तुम कावेरी के उस महान् संगम का माहात्म्य बतलाओ, जिसके प्रभाव से सर्वदा पापाचरण में निरत दुष्कर्मी नर सभी पापों से निर्मुक्त होकर परम पद की प्राप्ति करते हैं। हे भगवन्! इसे जानने को हम लोगों की बड़ी इच्छा है, बतलाओ।' ॥१-३॥

मार्कण्डेय ने कहा—युधिष्ठिर तथा ऋषिगण! सब लोग सावधानतापूर्वक सुनिये, सत्यपराक्रमी कुवेर नामक यक्षों का स्वामी, इसी तीर्थ की यात्रा कर यक्षों का स्वामी हुआ। महाराज! जिस प्रकार उसने इस सिद्धि की प्राप्ति की है, उसे मैं कह रहा हूँ, सुनिये। लोकविख्यात कावेरी तथा नर्मदा का पवित्र संगम जिस स्थान पर हुआ है, उसी स्थान पर स्नान कर सत्य पराक्रमी कुवेर ने पवित्र मन हो सौ वर्षों तक तपस्या की जिससे सन्तुष्ट होकर महादेव जी ने उसे उत्तम वरदान देते हुए कहा—'महापराक्रमी यक्षराज! जो वरदान चाहते हो उसे माँग लो। जो कुछ भी तुम्हारे मन में अभिलाषा हो उसे बतलाओ।' ॥४-८॥

कुबेर ने कहा—देव ! यदि सचमुच आप मेरे ऊपर सन्तुष्ट हैं तो यह वरदान मुझे दीजिये कि मैं आज से सभी यक्षों का स्वामी हो जाऊँ । कुबेर की बात सुन शंकर जी अति सन्तुष्ट हुए और 'ऐसा ही होगा' कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये । कुबेर भी शंकर जी के वरदान को प्राप्तकर तथा वरदान के फल को शीघ्र ही अधिगतकर यक्षों द्वारा पूजित तथा स्वामित्व पद पर अभिषिक्त हुए । उस सभी पापों को नष्ट करनेवाले कावेरी के पवित्र संगम पर जो मनुष्य नहीं जाता सचमुच वह वंचित रहता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । अतः सभी प्रयत्नों द्वारा मनुष्य को वहाँ स्नान करना चाहिये । हे राजेन्द्र ! जहाँ पुण्य प्रदायिनी कावेरी तथा महानदी नर्मदा का समागम हुआ है, वहाँ स्नान कर वृषभध्वज शंकर की पूजा करनी चाहिए, ऐसा करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्तकर रुद्रलोक में पूजित होता है । वहाँ पर जो मनुष्य अग्नि में प्रवेश करता है, तथा अनशन करता है, उसकी सभी स्थानों में अप्रतिहत गति है—ऐसा ही शंकर जी ने मुझसे कहा है । वह पुरुष सुन्दरी अंगनाओं से सुसेवित होकर स्वर्ग में शंकर के समान साठ करोड़ तथा साठ सहस्र वर्षों तक क्रीडा करता है, रुद्र लोक में विहार करता हुआ सभी स्थानों में जाने की गति रखता है, पुण्यक्षीण होने पर स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर भी धार्मिक राजा होता है, सभी योग्य सामग्रियों का उपभोक्ता होता है, दानशील तथा उच्चकुल में जन्म ग्रहण करता है । उस कावेरी के संगम स्थल पर जल का पानकर मनुष्य विधिवत् किये गये चान्द्रायण का फल प्राप्त करता है । जो मनुष्य वहाँ के सुन्दर जल का पान करते हैं, वे गंगा यमुना के संगम का फल प्राप्त करते हैं । हे राजेन्द्र ! इस प्रकार कावेरी के संगम स्थल की यात्रा महाफलदायिनी पुण्यप्रद तथा सभी पापों को विनष्ट करनेवाली है । ॥९-२०॥

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त । ॥१८९॥

एक सौ नब्बेवाँ अध्याय

मार्कण्डेय ने कहा— उस नर्मदा के उत्तरी किनारे पर एक योजन विस्तृत यन्त्रेश्वर नामक सभी पापों को दूर करनेवाला उत्तम तीर्थ है, हे राजन् ! उसमें स्नानकर मनुष्य देवताओं के साथ इच्छानुरूप स्वरूप धारणकर, पाँच सहस्र वर्षों तक आनन्द करते हैं, यन्त्रेश्वर से मनुष्य को गर्जन नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ मेघों के समूह उठे हुए दिखाई पड़ते हैं, उसी तीर्थ के प्रभाव से मेघनाद ने इन्द्रजित् का पद प्राप्त किया था । तदनन्तर मेघनाद की यात्रा करनी चाहिये जहाँ पर मेघों की गर्जना सुनाई पड़ती है, वहीं पर मेघनाद नामक शिव के गण ने गणाध्यक्षता प्राप्त की थी । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर आम्रातकेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये । वहाँ स्नानकर मनुष्य सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है । नर्मदा के उत्तरी किनारे पर धारातीर्थ का नाद विख्यात है, उस तीर्थ में स्नान कर मनुष्य को पितरों तथा देवताओं का तर्पण करना चाहिये, इससे वह मन से सोचे गये मनोरथों को प्राप्त करता है ।

हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् ब्रह्मावर्त तीर्थ की यात्रा करे, हे युधिष्ठिर ! जहाँ पर नित्य ही भगवान् ब्रह्मा का सन्निधान रहता है। हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ में स्नानकर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है। तदनन्तर अंगारेश्वर तीर्थ की यात्रा नियत आहार एवं निश्चल चित्त होकर करनी चाहिये। ऐसा करने से वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर रुद्रलोक को प्राप्त करता है। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम कपिला नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, हे राजन् ! वहाँ स्नानकर मनुष्य कपिला गौ के दान का फल प्राप्त करता है। तत्पश्चात् देवताओं तथा ऋषियों के समूहों से सेवित करंज नामक तीर्थ की यात्रा करे, हे राजन् ! वहाँ पर स्नान करने से गोलोक की प्राप्ति होती है। हे राजन् ! तत्पश्चात् उत्तम कुण्डलेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ पर पार्वती के साथ भगवान् शंकर का निवास रहता है। हे राजेन्द्र ! वहाँ स्नानकर मनुष्य देवताओं से भी वन्दनीय हो जाता है। तदनन्तर सभी पापों को नष्ट करनेवाले पिप्पलेश तीर्थ की यात्रा करे, हे राजेन्द्र ! वहाँ स्नानकर मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर उत्तम विमलेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ भगवान् शंकर द्वारा निर्मित एक मनोहर शिला है, वहाँ प्राणत्याग करने से मनुष्य रुद्र लोक की प्राप्ति करता है। तत्पश्चात् पुष्करिणी तीर्थ में जाकर स्नान करे, वहाँ पर स्नान करने मात्र से मनुष्य इन्द्र का आधा आसन प्राप्त करता है। ॥१-१६॥

नदियों में श्रेष्ठ रुद्र के शरीर से निकली हुई नर्मदा सभी स्थावर तथा जंगम जीवों का उद्धार करनेवाली है। सभी देवताओं के अधिदेवता भगवान् शंकर ने स्वयं इस बात को ऋषियों के समूहों में विशेषकर मुझसे बतलाई है। इस परम पवित्र एवं श्रेष्ठ नर्मदा नदी की स्तुति मुनि लोग करते हैं, लोक की मंगल कामना से यह रुद्र के शरीर से निकली हुई है, सभी देवतागण इसको नमस्कार करते हैं, यह सभी पापों को दूर करनेवाली है, देवता, गन्धर्व तथा अप्सराओं के समूह सर्वदा इसकी स्तुति करते हैं। 'हे पुण्य जलवाली, सर्व प्रथम उत्पन्न होनेवाली, समुद्रगामिनी, नर्मदे ! तुम्हें नमस्कार है। हे सुन्दर मुखवाली, पापकर्मों को जलानेवाली ! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकार हो। हे ऋषि वृन्दों द्वारा सेवित ! तुम्हें नमस्कार है। हे शंकर के शरीर से निकलनेवाली ! तुम्हारे लिए हमारा नमस्कार है, हे धर्मिष्ठ प्राणियों को वरदान देनेवाली ! तुम्हें नमस्कार करता हूँ, हे सभी को पवित्र एवं निष्पाप करनेवाली ! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकार हो।' ॥१७-२२॥

जो कोई मनुष्य इस स्तोत्र को नित्य श्रद्धायुक्त हो पाठ करता है, वह यदि ब्राह्मण है तो वेद ज्ञान को प्राप्त करता है, क्षत्रिय है तो संग्राम में विजयी होता है, वैश्य है तो व्यापार में लाभ प्राप्त करता है, शूद्र हो तो शुभ गति प्राप्त करता है। धन की इच्छा रखनेवाला इस स्तोत्र के नित्य स्मरण मात्र करने से अर्थ की प्राप्ति करता है। इस पवित्र नर्मदा नदी का नित्य स्वयम् शंकर जी सेवन करते हैं, उसी से यह पवित्र नदी ब्रह्महत्या जैसे कठोर पापों को भी दूर करनेवाली जाननी चाहिये। ॥२३-२५॥

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९०॥

एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय

मार्कण्डेय ने कहा—राजन् ! तभी से इस पवित्र नदी का सेवन ब्रह्मा आदि तपस्वी ऋषिगण क्रोध, राग आदि से रहित होकर करते हैं ॥१॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! इस पृथ्वी तल पर किस तीर्थ में महादेव जी का शूल गिरा था उस पवित्र तीर्थ का यथावत् माहात्म्य हमें बताइये ॥२॥

मार्कण्डेय ने कहा—वह अति पुण्यदायी शूलभेद नामक विख्यात तीर्थ है, वहाँ पर स्नानकर जो शिवजी की पूजा करता है वह सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है। हे नराधिप ! जो उस तीर्थ में तीन रात्रि निवासकर महादेव जी की पूजा करता है, वह पुनर्जन्म नहीं ग्रहण करता, उसके पश्चात् मनुष्य को भीमेश्वर तथा उत्तम नारदेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। आदित्येश अति पुण्यदायी महा घोर पातकों को विनष्ट करनेवाला तीर्थ बताया गया है। तदतन्तर नन्दिकेश्वर की यात्रा कर जन्म धारण करने का पर्याप्त फल प्राप्त करता है, तदनन्तर वरुणेश का दर्शन करना चाहिये, उसके बाद स्वतन्त्रेश्वर नामक तीर्थ को जाना चाहिये। पंचायतन के दर्शन करने से उस मनुष्य को सभी तीर्थों के दर्शन का फल प्राप्त होता है। हे राजेन्द्र ! तदनन्तर वहाँ जाना चाहिये, जहाँ पर युद्ध रचा गया था, वह कोटि तीर्थ नामक स्थान है, वहीं पर असुरगण मोहित हुए थे। हे राजन् ! उसी स्थान पर बड़े-बड़े बलवान् दानव मारे गये थे, वहीं पर आकर सभी देवताओं ने दैत्यो के शिरों को लिया था। वहीं पर वृषभध्वज शूलपाणि शिव की प्रतिष्ठापना हुई है। वहीं पर एक करोड़ दानवों का संहार हुआ था, अतः उसका कोटीश्वर नाम कहा जाता है। उस पवित्र तीर्थ के दर्शन करने से प्राणी सदेह स्वर्ग का आरोहण करता है। जिस समय इन्द्र ने क्षुद्रता के कारण वज्र को कील द्वारा बाँध दिया तभी से लोगों का स्वर्ग जाने का मार्ग निवारित हो गया। जो मनुष्य इस पवित्र तीर्थ की प्रदक्षिणा कर प्रार्थनापूर्वक बेल का दान करता है तथा दीप दान कर पर्वत को शिर से धारण करता है (नमस्कार करता है), हे पाण्डव ! वह सभी मनोरथों को प्राप्तकर राजा होता है, मृत्यु को प्राप्तकर रुद्रलोक को प्राप्त करता है, तदनन्तर पुनः उत्पन्न होता है तथा स्वर्ग से उतरकर राजा होता है, तथा राज्य सुख का अनुभव कर स्वर्गलोक को जाता है। तदनन्तर त्रयोदशी तिथि को मनुष्य को बहुनेत्र तीर्थ का दर्शन करना चाहिये, वहाँ पर स्नान मात्र करने से मनुष्य सभी यज्ञों के फल को प्राप्त करता है। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् परम रमणीक मनुष्यों के समस्त पापों को दूर करनेवाले उत्तम अगस्त्येश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। हे राजन् ! वहाँ स्नानकर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है। कार्तिक महीने की कृष्ण चतुर्दशी तिथि को मनुष्य इन्द्रियों को स्ववश रख, समाहित चित्त से घृत द्वारा महादेव जी को स्नान कराये। ऐसा करने से वह महादेव जी के सुन्दर स्थान से इक्कीसवीं पीढ़ी तक कभी नीचे नहीं गिरता। उस स्थान पर गाय, जूता, छाता, घृत तथा कम्बल का दान तथा ब्राह्मण भोजन को कराने से कोटि गुना अधिक फल होता है। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् उत्तम बलाकेश्वर

की यात्रा करे। हे राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य सिंहासन का स्वामी होता है। नर्मदा के दाहिने किनारे पर इन्द्र का विख्यात तीर्थ है, वहाँ एक रात का उपवास कर विधिवत् स्नान तथा जनार्दन की पूजा करे, ऐसा करनेवाले को एक सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है तथा वह अन्त समय में विष्णु लोक को जाता है। तदनन्तर मनुष्यों के सभी पापों को हरनेवाले ऋषितीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, वहाँ स्नान मात्र करने से मनुष्य शिवलोक को प्राप्त करता है। वहीं पर नारद जी का अति सुन्दर तीर्थ है, वहाँ स्नान करने से सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् प्राचीनकाल में ब्रह्मा द्वारा निर्मित देवतीर्थ की यात्रा करे। राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है। तदनन्तर प्राचीनकाल में देवताओं द्वारा स्थापित अमरकण्टक की यात्रा करनी चाहिये, वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र! उसके बाद उत्तम रावणेश्वर नामक तीर्थ को जाय, वहाँ मन्दिर का प्रतिदिन दर्शनकर मनुष्य ब्रह्महत्या से छूट जाता है। वहाँ से ऋणतीर्थ जांय, वहाँ जाने से निश्चय ही मनुष्य ऋणों से मुक्त हो जाता है, वहाँ से वटेश्वर तीर्थ की यात्रा करे, जिससे जन्म लेने का पर्याप्त फल प्राप्त हो जाता है। तत्पश्चात् सभी प्रकार की व्याधियों को नष्ट करनेवाले भीमेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे। हे राजन्! वहाँ के स्नान मात्र से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम तुरासंग नामक तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ जाकर महादेव जी की पूजा करने से मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है। तदनन्तर सोम-तीर्थ जाकर उत्तम चन्द्रमा का दर्शन करे, हे राजन्! वहाँ अति भक्तिपूर्वक स्नान करने से प्राणी उसी क्षण दिव्य शरीर धारण कर शिव के समान चिरकाल तक आनन्द का अनुभव करता है तथा साठ सहस्र वर्षों तक रुद्र लोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् उत्तम पिंगलेश्वर की यात्रा करे, वहाँ दिनरात के उपवास से तीन दिन-रात के उपवास का फल प्राप्त होता है। हे राजेन्द्र! उस पवित्र तीर्थ में जो मनुष्य कपिला गौ का दान करता है, उस गौ के जितने रोयें होते हैं, उतने सहस्र वर्षों तक उस दानी के वंश एवं कुल के लोग रुद्रलोक में पूजित होते हैं। हे नराधिप! जो कोई प्राणी उस पवित्र तीर्थ में प्राणों को छोड़ता है, वह अक्षय काल पर्यन्त—जब तक कि सूर्य तथा चन्द्रमा रहते हैं—आनन्द का अनुभव करता है। जो मनुष्य उत्तम नर्मदा के पवित्र तट पर निवास करते हैं, वे मरने पर जिस प्रकार सुकृती तथा सन्त जन स्वर्ग जाते हैं। उसी प्रकार स्वर्गलोक को जाते हैं। तत्पश्चात् कर्कोटकेश्वर नाम से विख्यात सुरेश्वर यात्रा करनी चाहिये, उस पवित्र दिन में उस तीर्थ में गंगा उतरती हैं, इसमें सन्देह नहीं। तदनन्तर नन्दी तीर्थ जाय और वहाँ स्नान करे, जिससे नंदीश्वर भगवान् शंकर सन्तुष्ट होते हैं और स्नान करनेवाला चन्द्रलोक में पूजित होता है। तत्पश्चात् व्यास के तपोवन दीपेश्वर तीर्थ की यात्रा करे। प्राचीन काल में उसी स्थान पर व्यास से डरकर महानदी पीछे को लौट पड़ी थी, उनके हुँकारने पर वह दाहिनी ओर से बहने लगी थी। हे नराधिप! जो मनुष्य उस पवित्र तीर्थ में जाकर प्रदक्षिणा करता है वह अक्षयकाल तक—जब तक कि सूर्य तथा चन्द्रमा विद्यमान् हैं—आनन्द का अनुभव करता है। ऐसा करनेवाले के ऊपर व्यास प्रसन्न होते हैं और वह अपने मनोवांछित को प्राप्त करता है। एक सूत्र से बाँधकर वेदी बनाकर

वहाँ जाकर दीप दान करना चाहिये, जो मनुष्य ऐसा करता है वह रुद्र के समान अक्षय काल पर्यन्त क्रीडा करता है ! हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् उत्तम एरण्डी तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये । संगम स्थल पर स्नान कर मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है । यह एरण्डी पाप को नष्ट करनेवाली तीनों लोकों में विख्यात है । उस एरण्डी तीर्थ में आश्विन महीने की शुक्ल अष्टमी तिथि को मनुष्य पवित्र मन से उपवास कर यदि एक ब्राह्मण को भोजन करा देता है तो मानो उसने एक करोड़ ब्राह्मणों को भोजन करा दिया । एरण्डी के पवित्र संगम स्थल पर भक्तिभाव में डूबा हुआ मनुष्य स्नानकर शिर पर मिट्टी रख पुनः जल में अवगाहन करे, नर्मदा के जल से मिश्रित होने के कारण वह सभी पापों से छूट जाता है । हे नराधिप । जो मनुष्य उस तीर्थ में प्रदक्षिणा करता है, उसने सातों द्वीपोंवाली वसुन्धरा की मानो प्रदक्षिणा कर ली । ऐसा करने के बाद उसके सुवर्णवत् सुन्दर जल में स्नान कर सुवर्ण का दान देकर मनुष्य सुवर्ण के सुन्दर विमान में बैठकर रुद्रलोक में पूजित होता है और पुण्य क्षीण होने पर स्वर्ग से च्युत हो पुनः कालक्रम से पराक्रमशाली राजा होता है । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर इक्षु नदी के संगम की यात्रा करे, यह पवित्र तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है, वहाँ सदाशिव जी का सन्निधान रहता है । हे राजन् ! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर मनुष्य गणों का स्वामित्व प्राप्त करता है । तत्पश्चात् सभी पापों को दूर करनेवाले स्कन्द तीर्थ की यात्रा करे उसकी यात्रा कर केवल स्नान करने से जन्म भर का किया हुआ पाप छूट जाता है। उसके बाद लिंगसार नामक तीर्थ की यात्रा करे तथा वहाँ स्नान करे । वहाँ स्नान करने से एक सहस्र गोदान का फल होता है तथा वह रुद्रलोक में पूजित होता है । तत्पश्चात् सभी पापों को नष्ट करनेवाले भृङ्गतीर्थ की यात्रा करनी चाहिये । हे राजेन्द्र ! वहाँ जाकर स्नान करे । इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ स्नान करने से सात जन्म के किये हुए पापों से छुटकारा मिल जाता है । तदनंतर सभी तीर्थों में श्रेष्ठ वटेश्वर तीर्थ की यात्रा करे । हे राजन् ! वहाँ स्नान कर मनुष्य सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है । तत्पश्चात् सभी देवताओं से नमस्करणीय संगमेश तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ स्नान करने मात्र से मनुष्य निश्चय ही इन्द्रत्व की प्राप्ति करता है । तदनन्तर सभी पापों को हरनेवाले परम पवित्र कोटितीर्थ को जाय, जहाँ स्नानकर मनुष्य राज्य प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं । उस तीर्थ में जाकर जो मनुष्य दान देता है, तीर्थ के प्रभाव से उसका सौ कोटि गुना महत्त्व बढ़ जाता है । यदि कोई स्त्री वहाँ पर स्नान करती है तो वह भी गौरी के समान अथवा इन्द्र की पत्नी के समान हो सकती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । तत्पश्चात् अंगारेश की यात्रा कर वहाँ स्नान करे । वहाँ के स्नान करने मात्र से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है । अंगारक चतुर्थी को वहाँ स्नान करना चाहिये । पवित्र एवं मन को वश में रख वहाँ जो स्नान करता है वह अक्षयकाल पर्यन्त आनन्द करता है । अयोनिसम्भव नामक तीर्थ में स्नान कर मनुष्य योनि संकट (जन्म कष्ट) नहीं देखता । वहीं पर पाण्डवेश नामक तीर्थ है, वहाँ जाकर जो मनुष्य स्नान करता है वह देवताओं से भी अवध्य होकर अक्षय काल तक आनन्द प्राप्त करता है, तथा विष्णुलोक में जाकर अनेक भोग की प्राप्ति करता है । वहाँ अति उत्तम भोगों का उपभोग कर राजा होता है । तत्पश्चात् करण्डेश्वर तीर्थ में जाकर स्नान करे। उत्तरायण के समय यदि वहाँ मनुष्य जाता है तो

जिस मनोरथ की चिन्ता करता है वह उसे प्राप्त होता है। तत्पश्चात् चन्द्रभागा में जाकर वहाँ स्नान करे। हे राजन् ! वहाँ जाकर स्नान करने मात्र से मनुष्य चन्द्रलोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् इन्द्र के प्रसिद्ध तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, जो स्वयम् देवराज इन्द्र द्वारा पूजित तथा नमस्कृत है। हे राजन् ! उस पवित्र तीर्थ में स्नानकर जो सुवर्ण का दान देता है अथवा नीले रंग के बैल को छोड़ता है, वह मनुष्य वृषभ के जितने रोयें होते हैं, उतने सहस्र वर्षों तक अपने कुल परिवार समेत शिवलोक में निवास करता है तदनन्तर वहाँ से पुण्यक्षीण हो जाने पर पराक्रमी राजा होता है। राजन् ! ऐसा करनेवाला मनुष्य श्वेत-वर्ण के सहस्रों अश्वों का अधिपति होता है। उस तीर्थ के अद्भुत प्रभाव से मनुष्यों में वह राजा होता है। राजेन्द्र ! तदुपरान्त अति उत्तम ब्रह्मावर्त्त नामक तीर्थ की यात्रा करे, हे राजन् ! वहाँ स्नानकर पितरों तथा देवताओं का तर्पण करे, रात भर का उपवास कर विधिपूर्वक पिण्ड दान करे। सूर्य के कन्या राशि पर स्थित होने के अवसर पर ऐसा करने से उसका पुण्य प्रभाव कभी नष्ट नहीं होता। हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् उत्तम कपिला तीर्थ की यात्रा करे, हे राजन् ! इस कपिलातीर्थ में जाकर जो मनुष्य कपिला गौ का दान करता है, वह सम्पूर्ण पृथ्वी दान कर के जो फल प्राप्त होता है वह फल प्राप्त करता है। नर्मदेश अति उत्तम तीर्थ स्थान है, उसके समान न तो कोई तीर्थ हुआ है न होगा। हे राजन् ! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। नर्मदा नदी के दाहिने किनारे पर उत्तम संगमेश्वर नामक तीर्थ है, हे राजन् ! उसमें स्नान कर मनुष्य सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त करता है, वहाँ स्नान करने से मनुष्य इसी पृथ्वी तल पर ही सभी कार्यों में उद्योगशील राजा होता है, सभी राजलक्षण से युक्त तथा सभी व्याधियों से रहित रहता है। नर्मदा के उत्तरी किनारे पर अति रमणीक आदित्यायतन नामक दिव्य तीर्थ है, जिसकी चर्चा स्वयम् शिव ने की है। हे राजन् ! उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर जो यथाशक्ति दान दिया जाता है वह उस तीर्थ के माहात्म्य से अक्षयं हो जाता है। जो लोग दरिद्र हैं, व्याधियों से पीडित हैं, पाप कर्म में निरत रहनेवाले हैं, वे भी उस तीर्थ के प्रभाव से सभी पापों से छूटकर सूर्यलोक को चले जाते हैं। माघ के महीने में शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि को उस आयतन में निराहार तथा जितेन्द्रिय हो निवास करे, ऐसा करने से न तो वृद्धावस्था से पीडित हो सकता है, न गूँगा हो सकता है, न अन्धा न बहिरा; प्रत्युत सुन्दर रूपवान् तथा स्त्रियों का प्रिय होता है। इस प्रकार के अति पुण्यप्रद तीर्थ की चर्चा मार्कण्डेय जी ने की थी। हे राजेन्द्र ! जो इनको नहीं जानते वे सचमुच जगत् में वंचित ही रह जाते हैं। ॥३-८१॥

तदनन्तर गर्गेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे तथा वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नान मात्र के करने से मनुष्य स्वर्गलोक की प्राप्ति करता है तथा स्वर्गलोक में तब तक निवास करता है जब तक चौदहों इन्द्र रहते हैं। उसी तीर्थ के समीप में नागेश्वर नामक तपोवन है, हे राजेन्द्र ! वहाँ स्नान करने से नागलोक की प्राप्ति होती है तथा वहाँ जाकर वह प्राणी अनेक नागकन्याओं के साथ अक्षयकाल पर्यन्त आनन्द का अनुभव करता है। तत्पश्चात् कुबेरभवन नामक तीर्थ की यात्रा करे, जहाँ पर कुबेर का निवास है, वहीं पर कालेश्वर नामक उत्तम तीर्थ भी है जहाँ कुबेर सन्तुष्ट किये गये थे। हे राजेन्द्र ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य को

सभी सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। तदनन्तर उससे पश्चिम अतिश्रेष्ठ मारुतालय नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। हे राजेन्द्र! वहाँ पवित्र तथा समाहित चित्त हो स्नान कर बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्ति के अनुकूल सुवर्ण का दान करे तो उसके प्रभाव से वह पुष्पक विमान द्वारा वायुलोक को जाता है। हे युधिष्ठिर! तदुपरान्त माघ महीने में यव नामक तीर्थ की यात्रा करे और कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को वहाँ स्नान करे और रात में भोजन करे—ऐसा करने से वह जन्म लेने के संकट को नहीं देखता। तत्पश्चात् अहल्यातीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नान मात्र करने से मनुष्य अप्सराओं के साथ आनन्द का अनुभव करता है। उसी पवित्र तीर्थ में अहल्या ने तपस्या कर मुक्ति की प्राप्ति की थी। चैत्र मास के आने पर शुक्लपक्ष की चतुर्दशी तिथि को, जब कि कामदेव का दिन पड़ता है, जो उस तीर्थ में अहल्या की पूजा करता है, वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ-वहाँ सर्वसाधारण का प्रेमपात्र होता है, लक्ष्मीयुक्त हो दूसरे कामदेव की भाँति स्त्री का वल्लभ होता है। राम के प्रसिद्ध अयोध्या तीर्थ में जाकर मनुष्य केवल स्नान करने से सभी पापों से छुटकारा पाता है। तदनन्तर सोमतीर्थ की यात्रा कर वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नानमात्र के करने से मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है। हे राजेन्द्र! उस सोमग्रह में मनुष्यों का सभी पाप नष्ट हो जाता है। हे राजन्! यह सोमतीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है, उसके प्रभाव एवं फल अमित हैं। हे नराधिप! जो मनुष्य उस तीर्थ में चान्द्रायण व्रत का पालन करते हैं वे सभी पापों से उन्मुक्त एवं विशुद्धात्मा हो सोमलोक को जाते हैं। अग्नि प्रवेश कर, जल में डूबकर, अथवा अनशन कर जो मनुष्य इस सोमतीर्थ में प्राणत्याग करते हैं वे पुनः मृत्युलोक में जन्म नहीं धारण करते। तदनन्तर शुभतीर्थ की यात्रा कर वहाँ स्नान करे, वहाँ के स्नान मात्र के करने से मनुष्य गोलोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम विष्णुतीर्थ की यात्रा करे, वह स्थान योधनीपुर नाम से विख्यात है, तथा भगवान् विष्णु का उत्तम निवास स्थान है, भगवान् वासुदेव ने उसी स्थान पर करोड़ों असुरों से युद्ध किया था, तभी से वह पवित्र तीर्थ प्रचलित हुआ है। वहाँ की यात्रा से विष्णु प्रसन्न होते हैं, एक दिन तथा रात्रि का उपवास करने से वह तीर्थ ब्रह्महत्या को छुड़ा देता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम तापसेश्वर की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ पर कि एक व्याध से भयभीत होकर मृगी गिर पड़ी थी तथा जल में शरीर को गिराकर स्वर्ग को चली गयी थी। ऐसा देख वह व्याध अति विस्मित हुआ था। वहीं तापेश्वर नामक वह तीर्थ है, जैसा कि न तो कोई तीर्थ था न होगा। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम ब्रह्मेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, वह अमोहक तीर्थ के नाम से भी विख्यात है, वहाँ जाकर पितरों का ही तर्पण करे तथा पूर्णिमा और अमावास्या तिथि को विधिपूर्वक श्राद्ध करे, हे राजन्! वहाँ स्नान कर पितरों को पिण्ड दान करे। वहाँ हाथी के आकार की एक शिला जल के मध्यभाग में प्रतिष्ठित है, विशेषकर वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि को वहाँ पिण्डों का दान करे। ऐसा करने से उसके पितर तब तक तृप्त रहते हैं जब तक इस पृथ्वी का अस्तित्व रहता है। हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति उत्तम सिद्धेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे, हे राजन्! वहाँ के स्नान करने से मनुष्य गणपति के समीप प्राप्त होता है। हे

राजेन्द्र ! तदुपरान्त जहाँ पर जनार्दन का लिंग है; वहाँ की यात्रा करे । हे राजेन्द्र ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक में पूजित होता है । नर्मदा नदी के दाहिने किनारे पर परम रमणीक एक तीर्थ है, वहाँ पर स्वयम् कामदेव ने सहस्र दिव्य वर्षों तक घोर तपस्या की थी और वहीं पर भगवान् शंकर के समाधि भंग के कारण उत्पन्न हुए क्रोध से वह दग्ध भी हुआ था । उस कुसुमेश्वर तीर्थ में अवस्थित होकर श्वेतवर्मा, यम, हुताश तथा शुक्रपर्वा एक अवसर पर दग्ध हो गये थे । एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो जाने पर उन लोगों पर भगवान् शंकर सन्तुष्ट हुए थे और सन्तुष्ट होकर पार्वती समेत वरदान देने को इच्छुक हुए थे । शंकर सभी को मोक्ष प्रदान कर नर्मदा के तट पर अवस्थित हुए और वे लोग तीर्थ के प्रभाव से पुनः देवत्व को प्राप्त हुए तथा अति भक्तिपूर्वक देवदेव वृषभध्वज से बोले—'हे महाराज ! यह स्थान आप की कृपा से चारों ओर आधे योजन के परिमाण में उत्तम तीर्थ हो जाय ।' उस पवित्र तीर्थ में स्नान कर तथा उपवास कर मनुष्य कामदेव का स्वरूप धारण कर रुद्रलोक में पूजित होते हैं । राजेन्द्र ! उस तीर्थ में वैश्वानर, यम, कामदेव तथा मरुत—इन सबों ने तपस्या कर परम सिद्धि की प्राप्ति की थी । अंकोल के समीप तथा उस तीर्थ के थोड़ी दूर पर स्नान, दान, भोजन तथा पिण्ड दान करना चाहिये । अग्नि में प्रवेशकर, जल में डूबकर तथा अनशन कर प्राण त्यागने वाले प्राणी की इस क्षेत्र में सर्वत्र बेरोकटोक गति होती है । जो मनुष्य त्र्यम्बक तीर्थ के जल के द्वारा चरु को पकाता है तथा अंकोल की जड़ में विधिपूर्वक पिण्डदान करता है, उसके पितर जब तक सूर्य तथा चन्द्रमा का अस्तित्व रहता है, तब तक तृप्त रहते हैं । जो व्यक्ति सूर्य के उत्तरा-यण होने पर घृत द्वारा स्नान करता है, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, यदि शुचि मन हो आयतन में निवास करता है तथा प्रातःकाल सिद्धेश्वर देव की पूजा करता है तो वह जिस उत्तम गति को प्राप्त करता है वैसी उत्तम गति कोई सभी महायज्ञों द्वारा भी नहीं प्राप्त कर सकता । कालयोग से जब कभी वह पुनर्जन्म ग्रहण करता है तो सुन्दर होता है, मर्त्यलोक में आकर समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का राजा होता है । जो मनुष्य क्षेत्रपाल महाबलवान दण्डपाणि का दर्शन नहीं करता, कर्ण कुण्डल को नहीं देखता, उसकी सारी यात्रा नष्ट हो जाती है । इस प्रकार उस तीर्थ की अति उत्तम महिमा के प्रभाव से वहाँ सभी देवगण उपस्थित होते हैं तथा पुष्पों की वृष्टि करते हैं—इसी कारण उसका कुसुमेश्वर नाम है । ॥८२-१२५॥

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त । ॥१९१॥

एक सौ बानबेवाँ अध्याय

मार्कण्डेय ने कहा—तदनन्तर भार्गवेश तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ महाबलवान् असुरों से युद्ध करते हुए भगवान् जनार्दन भग्न हुए थे । हे राजेन्द्र ! वहाँ देव के हुँकार से दानवगण नष्ट हो गये थे । उस तीर्थ में स्नानकर मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पाता है । हे पाण्डुनन्दन ! अब तुम शुक्ल

तीर्थ की उत्पत्ति सुनो। एक बार अनेक प्रकार की धातुओं से रंग-बिरंगे हिमवान् पर्वत के मनोहर शिखर पर, मध्यकालीन सूर्य की भाँति देदीप्यमान, तपाये हुए सुवर्ण के समान दिखाई पड़नेवाले स्फटिक तथा वज्र की सीढ़ियोंवाले विचित्र रंग के दिव्य सुवर्णमय शिला पट्ट पर, जो विविध प्रकार के पुष्पों से सुशोभित था, विराजमान अव्यय सर्वज्ञ पार्वती समेत लोकानुग्रह कर्त्ता भगवान् महादेव से मार्कण्डेय मुनि ने पूछा। उस समय वे भगवान् गणों से परिवेष्टित थे तथा समीप में स्कन्द, नन्दीश्वर, महाकाल, वीरभद्र प्रभृति प्रमुख प्रमथ गण खड़े थे। ॥१-६॥

देवाधिदेव! महादेव! ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र द्वारा वन्दनीय! मैं संसार के भय से भीत हूँ, अतः सुख प्राप्ति के उपाय मुझे बताइये। हे भगवन्! भूत और भविष्य के भी स्वामी महेश्वर! सभी तीर्थों में जो उत्तम तीर्थ स्थान हो तथा सभी पापों को नष्ट करनेवाला हो उसे मुझे बतलाइये। ॥७-८॥

ईश्वर ने कहा—सभी शास्त्रों में विशारद! महा बुद्धिमान्! सुभग! ऋषि समूहों के साथ स्नान के लिए प्रस्थान करो। मनु, अत्रि, कश्यप, याज्ञवल्क्य, भृगु, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, वृहस्पति, नारद तथा गौतम—ये सभी ऋषिगण धर्म की अभिलाषा करनेवाले हैं। कनखल में गंगा अति पुण्यदायिनी है, प्रयाग, पुष्कर तथा गया तीर्थ भी अति पवित्र हैं। राहु द्वारा सूर्य के ग्रस्त होने पर कुरुक्षेत्र का विशेष महत्त्व है, क्या रात क्या दिन—सभी समय में शुक्लतीर्थ महाफलदायी है। यह महापवित्र शुक्लतीर्थ नर्मदा नदी पर है, वहीं पर चाणक्य नामक राजर्षि को सिद्धि प्राप्त हुई थी। यह क्षेत्र एक योजन के परिमाण में गोलाकार अवस्थित है, यह शुक्लतीर्थ महापुण्यदायी तथा सभी पापों को नष्ट करनेवाला है। वृक्ष के अग्रभाग पर अवस्थित होकर देखने पर यह ब्रह्महत्या को दूर कर देता है। पृथ्वीतल से देखने पर भ्रूणहत्या का पाप छूट जाता है। ऋषिश्रेष्ठ! मैं उस पवित्र तीर्थ में पार्वती के साथ निवास करता हूँ, वैशाख तथा चैत्र मास की कृष्ण चतुर्दशी तिथि को मैं कैलास से भी आकर वहाँ निवास करता हूँ। दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, मेरे प्रमथ गण, अप्सराएँ, नाग तथा सभी देवगण आकाशमण्डल में सर्वत्र चलनेवाले विमानों पर बैठकर उस तीर्थ में सदा अवस्थित रहते हैं। हे राजेन्द्र! यह शुक्लतीर्थ धर्म के इच्छुकों के आजन्म किये गये पापों को, जिस प्रकार धोबी के धोने से मलिन वस्त्र श्वेत हो जाता है उसी प्रकार नष्ट कर देता है। हे ऋषिश्रेष्ठ मार्कण्डेय! वहाँ का स्नान तथा दान अति पुण्यदायी है। इस शुक्लतीर्थ से बढ़कर न तो कोई तीर्थ हुआ और न होगा। मनुष्य अपने पूर्व जन्मों में किये गये पापों को वहाँ के केवल एक दिन रात के उपवास से नष्ट कर देता है। इस पवित्र तीर्थ में तपस्या, ब्रह्मचर्य पालन, यज्ञाराधन, दान अथवा देवार्चन से जो पुष्टि होती है वह सैकड़ों यज्ञों से भी नहीं होती। कार्तिक महीने के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को उपवास कर परमेश्वर शंकर को घृत द्वारा स्नान कराये, ऐसा करनेवाला इक्कीस पीढ़ियों समेत कभी महादेव जी के स्थान से च्युत नहीं होता। यह शुक्लतीर्थ ऋषियों तथा सिद्धों द्वारा सुसेवित महापुण्यमय एवं पवित्र तीर्थ है। हे राजन्! वहाँ के स्नान करने से मनुष्य फिर जन्म नहीं ग्रहण करता। उस शुक्ल तीर्थ में स्नानकर वृषभध्वज की पूजा करे तथा कपाल

को पूर्ण करे, इससे महेश्वर सन्तुष्ट होते हैं। भक्तिपूर्वक अर्धनारीश्वर महादेव की वस्त्र या लेख्य पत्र पर प्रतिमा बनवाये, ब्रह्म (वेद) का उच्चारण करते हुए ब्राह्मणों एवं शंख, तुरुही आदि वाद्यों के साथ नृत्य गीत आदि कराते हुए रात भर जागरण करे। प्रातःकाल शुक्लतीर्थ में स्नानकर महादेव की पूजा करे, पश्चात् शिव की भक्ति करनेवाले पवित्रआचरण आचार्यों को भोजन कराये, कृपणता छोड़कर यथाशक्ति दक्षिणा दे, पश्चात् प्रदक्षिणा कर धीरे से देव के समीप जाय। इस प्रकार विधानपूर्वक जो इस व्रत का पालन करता है उसके पुण्य का फल सुनो। वह पुरुष दिव्य रथ पर समासीन हो, गाती हुई अप्सराओं के साथ शिव के समान अतुलित बलयुक्त हो महाप्रलय पर्यन्त स्थित रहता है। इस शुक्लतीर्थ में जो स्त्री सुवर्ण का दान करती है, घृत से देव को स्नान कराती है तथा स्वामिकार्त्तिकेय की पूजा करती है, उसके पुण्य का फल सुनो, वह स्त्री जब तक चौदहों इन्द्र वर्तमान रहते हैं तब तक शिव के लोक में आनन्द का अनुभव करती है। पूर्णिमा, चतुर्दशी, संक्रान्ति तथा विषुव के अवसर पर उपवास कर इन्द्रियों को स्ववश में रख समाहित चित्त हो जो स्नान करके यथाशक्ति दान देता है उसके ऊपर भगवान् शंकर तथा विष्णु प्रसन्न रहते हैं। इस तीर्थ के प्रभाव से उसके सभी दान अक्षय परिणाम देनेवाले हो जाते हैं। इस तीर्थ में जो अनाथ, दुर्गतिग्रस्त, अथवा सनाथ ही, ब्राह्मण का विवाह करवा देता है उसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उसे सुनो। उसके जितने रोयें हैं, उसके वंश से उत्पन्न होनेवालों में जितने रोये हैं, उतने सहस्र वर्षों तक वह मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है। ॥७-३८॥

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय समाप्त। ॥१९२॥

एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय

मार्कण्डेय ने कहा—तदनन्तर अनरक तीर्थ की यात्राकर वहाँ स्नान करे। वहाँ के स्नान करने मात्र से मनुष्य नरक का दर्शन नहीं करता। हे पाण्डुनन्दन! उस अनरक तीर्थ के माहात्म्य को तुम सुनो। हे राजेन्द्र! उस पवित्र तीर्थ में जिसकी हड्डियाँ फेंकी जाती हैं, वह मनुष्य पुनर्जन्म में अतिरूपवान होता है तथा उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर गोतीर्थ की यात्रा कर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम कपिला तीर्थ की यात्रा करे। हे राजन्! उस तीर्थ के स्नान करने से मनुष्य सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है। ज्येष्ठ के महीने में—विशेषतः चतुर्दशी तिथि को—उस तीर्थ में उपवास रख जो मनुष्य कपिला गाय का दान देता है। घृत से दीपक जला घृत द्वारा शिव का स्नान करा, घृत समेत बेल का भोजन कर अन्त में प्रदक्षिणा कर, घण्टा एवं सभी आभूषणों से आभूषित कपिला का दान दे भक्तिपूर्वक शिव की पूजा कर ब्राह्मणों को भोजन कराता है। विशेषकर अंगारक की नवमी तथा अमावास्या

को स्नान कराता है वह भावी जन्म में सुन्दर आकृतिवाला होता है। घृत द्वारा लिंग का स्नान करा भक्ति-पूर्वक ब्राह्मणों की पूजा कर मनुष्य सैकड़ों की भीड़ के साथ पुष्पक विमान द्वारा शिव का स्थान प्राप्त करता है, जहाँ जाकर उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं और अक्षयकाल पर्यन्त जिस प्रकार शिव जी विहार करते हैं उसी प्रकार वह भी विहार करता है। फिर जब कर्मों के संयोग से मृत्युलोक में आता है तो परमोच्च-कुल में अति स्वरूपवान् तथा धर्मिष्ठ राजा होता है। हे राजेन्द्र! तदुपरान्त अति उत्तम ऋषितीर्थ की यात्रा करे, जहाँ तृणविन्दु नामक ऋषि शाप के कारण दग्ध हुए थे, किन्तु उस तीर्थ के प्रभाव से वे वहाँ शापमुक्त हुए थे। हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम गंगेश्वर नामक तीर्थ की यात्रा करे। श्रावण के महीने में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को वहाँ के स्नान मात्र करने से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है, वहाँ पर पितरों का तर्पण कर मनुष्य तीनों ऋणों से मुक्त होता है। गंगेश्वर तीर्थ के समीप में उत्तम गंगावदन नामक तीर्थ है, वहाँ किसी विशेष कामना से अथवा निष्काम भावना से मनुष्य स्नानकर अपने जन्म भर के पापों से छुटकारा पाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। उस पवित्र तीर्थ में स्नानकर मनुष्य वहाँ जाता है जहाँ शंकर का निवास है। सर्वदा पर्व के दिनों में वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ पितरों का तर्पण करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। महात्मा शंकर ने प्रयाग में स्नानादि का जो फल देखा है वही सब गंगावदन के संगम तीर्थ में भी देखा है। उस तीर्थ के पश्चिम ओर, अधिक दूर पर नहीं, दशाश्वमेध-जनन नामक तीनों लोकों में विख्यात तीर्थ है, भाद्रपद महीने की अमावास्या तिथि को एक रात्रि का उप-वास कर मनुष्य वहाँ जाता है जहाँ शंकर का निवास है। सर्वदा पर्व के दिनों में वहाँ स्नान करना चाहिये। पितरों का तर्पण कर वहाँ मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। दशाश्वमेध तीर्थ की पश्चिम दिशा में ब्राह्मणों में श्रेष्ठ भृगुजी ने सहस्र दिव्य वर्षों तक शिव जी की आराधना की थी, उस समय उनका शरीर बिलों से जर्जरित तथा पक्षियों का घोंसला-सा बन रहा था। उन्हें ऐसा देख पार्वती तथा शंकर जी परम विस्मित हुए थे। पार्वती ने देवदेव से पूछा था—'हे महेश्वर! इस प्रकार स्थित यह कौन हैं? कोई देवता हैं या दानव हैं?' ॥१-२५॥

महेश्वर ने कहा—'हे प्रिये! यह ब्राह्मणों में श्रेष्ठ भृगु नामक मुनि हैं, समाधिलीन हो ये मेरा ध्यान कर रहे हैं।' शिव जी की बात सुन देवी ने हँसते हुए महादेव से कहा—'तपस्या करते-करते इनकी शिखा धूएँ के समान हो गई है किन्तु तब भी तुम सन्तुष्ट नहीं हो रहे हो, अतः इससे निस्सन्देह यह सिद्ध होता है कि तुम कितनी कठिनाई से अनुकूल बनाये जा सकते हो।' ॥२६-२७॥

महेश्वर ने कहा—'हे महादेवि! तुम यह नहीं जानती, ये मुनि क्रोध से भरे हुए हैं। देखो, इनके क्रोध को दिखलाकर तुम्हें विश्वास दिला रहा हूँ।' ऐसा कह महादेव ने धर्मरूप वृष का स्मरण किया, स्मरण करते ही वृषभ शीघ्र उपस्थित हुआ और मनुष्य वाणी में बोलते हुए कहा—'हे प्रभो! मेरे लिए क्या आज्ञा कर रहे हो?' ॥२८-२९॥

भगवान् ने कहा—'इस बिल को तुम खन डालो और इस ब्राह्मण को नीचे पृथ्वीतल पर

गिरा दो।' शिव के ऐसे आदेश पर योगमुद्रा में लीन भृगु को उस वृषभ ने नीचे ढकेल कर गिरा दिया, जिससे उसी क्षण अति क्रुद्ध एवं सन्तप्त हो हाथ को उठा उन्होंने वृषभ को 'अरे वृषभ! कहाँ जा रहे हो।' ऐसा कहते हुए यह शाप दे दिया कि 'आज मैं अति क्रोध से तुम्हारा नाश किये देता हूँ।' मुनिवर भृगु जी इस प्रकार अपमानित हुए और वृषभ ऊपर आकाश में चला गया। उसे आकाश में जाते देख ब्राह्मण ने सोचा कि यह क्या अद्भुत बात है? उसी अवसर पर ऋषि के आगे हँसते हुए भगवान् रुद्र उपस्थित हुए। शिव के तीसरे नेत्र को देख मुनि विह्वल हो पृथ्वी पर गिर पड़े और दण्ड की भाँति पृथ्वी पर पड़े-पड़े परमेश्वर की स्तुति करने लगे। ॥३०-३३॥

'हे भुवनों के स्वामी! प्रभो! तुम संसार के अतीत पुरुष हो, सभी भूतों के स्वामी भवोद्भव, दिव्यस्वरूप तुमसे मैं कुछ विज्ञापित (निवेदित) कर रहा हूँ। भुवनपते! तुम्हारे गुणों के समूहों का कौन मनुष्य वर्णन कर सकता है, सर्पराज वासुकि की भाँति कोई यदि किसी तरह सहस्रमुख भी हो जाय तब भी तुम्हारी महिमा का वर्णन नहीं कर सकता। हे शंकर! यह जानते हुए भी मैं भक्ति के कारण तुम्हारी स्तुति करने को उद्यत हुआ हूँ। हे भगवन्! मैं आपके चरणों में पड़ा हूँ, मेरी यह ढिठाई क्षमा कीजिए। हे देव! तुम सत्त्व, रज एवं तम—तीनों गुणों से युक्त सृष्टि की स्थिति उत्पत्ति तथा विनाश करनेवाले हो। हे भुवनेश्वर! भुवनपते! तुम्हें छोड़कर जगत् में अन्य कोई देवता ऐसा नहीं है। यम, नियम, यज्ञ, दान, वेदाभ्यास, धारणा अथवा योग—ये सभी आप की भक्ति के सहस्रवें अंश की भी बराबरी नहीं कर सकते? उच्छिष्टरस, रसायन, खड्ग, अंजन, पादुका, विवर-सिद्धि आदि चिह्न इस जन्म में शिव के व्रत करनेवालों के प्रत्यक्ष चिह्न देखे जाते हैं। देव! यद्यपि तुम्हारा भक्त तुम्हें दुष्टता के भाव से अभिभूत होकर नमस्कार करता है; पर तुम उसकी भी अभिलाषाओं को तो पूरा करते ही हो। हे नाथ! इस सांसारिक दुःखों एवं द्वन्द्वों को दूर करनेवाली एवं मोक्ष प्राप्ति की साधन रूप भक्ति को तुमने बना दिया है। दूसरे की स्त्री तथा दूसरे के धन के लोलुप, एवं दूसरे के अपमान जनित सन्ताप से सन्तप्त, परमुखापेक्षी मेरे जैसे की हे परमेश्वर! तू रक्षा कर। मिथ्या अभिमान में जले हुए, क्षण भर में नष्ट होनेवाले शरीर से शोभित, क्रूर कर्म में निरत रहनेवाले, कुमार्ग की ओर अभिमुख तथा गिरे हुए मुझको तुम पाप कर्म से बचाओ। हे शंकर! मुझ जैसे ब्राह्मणों के साथी दीन को, भी जिसकी सभी आशाएँ बन्धुवर्गों ने ही दूषित कर दी हैं, तृष्णा इतना क्यों परेशान कर रही है? तुम इस तृष्णा को शीघ्र ही हर लो और नित्य निवास करनेवाली (चिरस्थायिनी) लक्ष्मी (शान्ति) मुझे दो। मद एवं मोह के पाशों को मेरे समीप से काटकर अलग कर दो, हे महादेव! मेरा निस्तार करो।' इस करुणाभ्युदय नामक सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाले दिव्य स्तोत्र का पाठ जो भक्तियुक्त हो करता है, उसके ऊपर शिव जी उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं, जैसे भृगु के ऊपर प्रसन्न हुए थे। ॥३४-४५॥

ईश्वर ने कहा—'वत्स! मैं तुम पर परम प्रसन्न हूँ, मनोवाञ्छित वरदान माँगो।' ऐसा कह पार्वती समेत भगवान् शंकर ने भृगु को वरदान देने का निश्चय किया। ॥४६॥

भृगु ने कहा—हे देवेश ! यदि आप सचमुच मुझ पर सन्तुष्ट हैं और वास्तव में वरदान देना चाहते हैं तो हे देव ! मैं रुद्र का भली भाँति जाननेवाला हो जाऊँ तथा यह तीर्थ स्थान मेरे नाम से प्रसिद्ध हो जाय । ॥४७॥

ईश्वर ने कहा—'विप्रेन्द्र ! ऐसा ही होगा अब तुम्हें क्रोध नहीं होगा। तुम्हारे पिता और पुत्र में कभी कलह नहीं होगा, अत्र ऐक्य स्थापित होगा।' तभी से ब्रह्मा आदि सभी देवगण किन्नरों के साथ इस भृगु के तीर्थ स्थान की, जहाँ साक्षात् शिव जी सन्तुष्ट हुए थे, उपासना करते हैं । उस तीर्थ के दर्शन मात्र करने से वे शीघ्र ही अपने पापकर्मों से छुटकारा पा जाते हैं । अपने अधीन रहनेवाले या पराधीन रहनेवाले—कोई भी जन्तु यदि वहाँ मृत्युलाभ करते हैं तो गुह्य से अति गुह्य उनकी गति होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । यह विपुल क्षेत्र सभी पापकर्मों का विनाश करनेवाला है । उस भृगुतीर्थ में स्नान करनेवाले प्राणी स्वर्ग प्राप्त करते हैं, जो वहाँ मरते हैं वे पुनः जन्म नहीं धारण करते । उस तीर्थ में जाकर जूते, छाता, अन्न, सुवर्ण तथा भोजन का यथाशक्ति दान करना चाहिये, वहाँ देने से वे सभी अक्षयफल प्रदान करनेवाले हो जाते हैं । सूर्य ग्रहण के अवसर पर जो प्राणी अपनी इच्छा से दान करता है, उसे दान अक्षय फल प्रदान करनेवाला हो जाता है । चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण के अवसर पर जो फल अमरकण्टक तीर्थ में प्राप्त होते हैं, वे ही सब भृगुतीर्थ में भी होते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । दान, कर्म, यज्ञ तथा तपस्या—सभी नष्ट होनेवाली हैं, किन्तु हे युधिष्ठिर ! उन भृगु के तीर्थ में की गई तपस्या कभी नष्ट होनेवाली नहीं है, जिनकी उग्र तपस्या से सन्तुष्ट होकर शंकर जी ने वरदान दिया था । हे राजन् ! वह भृगु का परम पवित्र तीर्थ, जहाँ पर भगवान् महेश्वर सन्तुष्ट हुए थे, तीनों लोकों में विख्यात है । वहाँ महादेव जी का सन्निधान बतलाया जाता है । महादेव जी ने इस प्रकार की बातें पार्वती जी से कही थीं कि इस अति उत्तम भृगुतीर्थ को जो मनुष्य नहीं जानते वे विष्णु की माया से विमोहित हैं, मूढ हैं । हे राजन् ! यह दिव्य भृगुतीर्थ नर्मदा नदी पर अवस्थित है । इस भृगुतीर्थ के माहात्म्य को जो मनुष्य सुनता है, वह सभी पापकर्मों से छुटकारा पाता है तथा शिवलोक को जाता है । हे राजेन्द्र ! तदनंतर अति उत्तम गौतमेश्वर तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, हे राजन् ! वहाँ स्नान कर उपवास में पारायण रह मनुष्य सुवर्णमय विमान द्वारा ब्रह्मलोक में पूजित होता है । हे राजन् ! तदनन्तर धौतपाप नामक क्षेत्र की यात्रा करनी चाहिये, जिसका निर्माण नर्मदा में शिव के नान्दी ने किया था, वह तीर्थ सभी पाप कर्मों से मुक्ति दिलानेवाला है । उस पवित्र तीर्थ में स्नानकर मनुष्य ब्रह्महत्या सरीखे घोर पापों से छूट जाता है । हे राजन् ! उस तीर्थ में जो मनुष्य प्राणत्याग करता है वह चतुर्भुज एवं त्रिनेत्र होकर शिव के समान पराक्रमशाली होता है, इस प्रकार शिव के तुल्य पराक्रमशाली हो वह दस सहस्र कल्पों तक स्वर्ग में निवास करता है । इस दीर्घ कालीन अवधि को समाप्त करने के बाद वह पृथ्वी मण्डल का एकच्छत्र सम्राट् होता है । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अति श्रेष्ठ एरण्डी नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये । मार्कण्डेय जी ने प्रयागतीर्थ के माहात्म्य में जितने पुण्य का वर्णन किया है, हे राजन् ! वे सब पुण्य स्नान करने मात्र से इस तीर्थ में मनुष्य को

मिलते हैं। भाद्रपद महीने में शुक्ल चतुर्दशी तिथि को एक रात का उपवास रख उस तीर्थ में स्नान करे, ऐसा करनेवाले को यमदूत नहीं बाँधते और वह रुद्रलोक को प्राप्त करता है। हे! राजेन्द्र सभी पापों को नष्ट करनेवाले हिरण्यद्वीप नाम से विख्यात उस तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये जहाँ भगवान् जनार्दन को सिद्धि प्राप्त हुई थी। हे राजन्! उस पवित्र तीर्थ में स्नान करनेवाला प्राणी धन तथा रूप से युक्त होता है। हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति महान् कनखल नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। हे नराधिप! उस पवित्र तीर्थ में गरुड ने तपस्या की थी, वह तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध तीर्थ है, वहीं योगिनियों का निवास स्थल है, जो योगियों के साथ क्रीडा करती हैं तथा शिव के साथ नृत्य करती हैं। हे राजन्! उस पवित्र तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है। हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति उत्तम हंस तीर्थ की यात्रा करे, वहीं पर हँसगण मुक्त होकर स्वर्ग को गये थे, इसमें सन्देह नहीं। हे राजेन्द्र! तदनन्तर वाराह तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, जहाँ पर परमेश्वर जनार्दन को सिद्धि मिली थी और वे वाराह रूप में पूजित हुए थे। विशेषकर द्वादशी तिथि को वाराह तीर्थ में स्नानकर मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है तथा नरक का कभी दर्शन नहीं करता। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति उत्तम चन्द्र तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। विशेषकर पूर्णिमा तिथि को वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ के स्नान मात्र के करने से मनुष्य चन्द्र-लोक में पूजित होता है। नर्मदा के दक्षिणी द्वार पर कन्या नामक विख्यात तीर्थ है, शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को वहाँ स्नानकर ईशान शिव को प्रणाम करे, ऐसा करने से बलि प्रसन्न होता है। उस स्थान से आकाश मण्डल में दिव्य हरिश्चन्द्रपुर उस समय दिखाई पड़ता है, जिस समय आकाश इन्द्रधनुष से आच्छन्न रहता है और सभी नागरिकों ?....के शरीर गुप्त ?...हो जाते हैं। नर्मदा की जलराशि वृक्षों को डुबा देगी और इसी स्थान पर मेरा निवास होगा——ऐसा विष्णु भगवान ने शंकर से कहा था। इस दीपेश्वर नामक तीर्थ में स्नानकर मनुष्य पर्याप्त सुवर्ण प्राप्त करता है। हे राजेन्द्र! तदनन्तर कन्या तीर्थ के सुन्दर संगम की यात्रा करे, वहाँ के केवल स्नान करने से मनुष्य पार्वती का उत्तम लोक प्राप्त करता है। तत्पश्चात् सभी तीर्थों में श्रेष्ठ देव तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। हे राजेन्द्र! वहाँ के स्नान करने से मनुष्य देवताओं के साथ आनन्द प्राप्त करता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् अति पवित्र शिखि तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ पर जो दान दिया जाता है सब कोटि गुना परिणाम देनेवाला होता है, अमावास्या तिथि के तीसरे पहर में वहाँ स्नानकर, यदि एक ब्राह्मण को भोजन कराये तो उससे कोटि ब्राह्मणों के भोजन कराने का पुण्य प्राप्त होता है। हे राजेन्द्र! उस भृगुतीर्थ में एक कोटि तीर्थों की अवस्थिति है जो कोई मनुष्य निष्काम भावना से अथवा किसी विशेष कामना से युक्त हो वहाँ स्नान करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का पुण्य प्राप्त करता है तथा देवताओं के साथ आनन्द का अनुभव करता है। उस पवित्र तीर्थ में मुनिपुङ्गव भृगु को परम सिद्धि प्राप्त हुई थी, महात्मा शंकर वहीं अवतार धारण करते हैं। ॥४७-८६॥

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय समाप्त ॥१९३॥

एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय

मार्कण्डेय ने कहा—हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अति पवित्र अंकुशेश्वर तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, वहाँ स्थित देव का दर्शन मात्र करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् उत्तम नर्मदेश्वर तीर्थ को जाय, राजन् ! वहाँ स्नान करने से मनुष्य स्वर्गलोक में पूजित होता है । तदनन्तर अश्व तीर्थ की यात्रा करे तथा वहाँ पर स्नान करे, ऐसा करनेवाला मनुष्य सुन्दर, दर्शनीय तथा सभी धन-धान्यों से युक्त होता है । तत्पश्चात् प्राचीनकाल में ब्रह्मा द्वारा निर्मित पैतामह नामक तीर्थ की यात्रा करे, वहाँ जाकर मनुष्य स्नानकर भक्तिपूर्वक पितरों को पिण्डदान करे । वहाँ पितरों के उद्देश से तिल तथा कुश से विमिश्रित जलाञ्जलि दे । उस तीर्थ के प्रभाव से वहाँ के सभी कार्य अक्षय पुण्यदायी होते हैं । जो मनुष्य सावित्री तीर्थ में पहुँचकर स्नान करता है, वह अपने समस्त पापों को नष्टकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है । तदनन्तर परम रमणीक मनोहर नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये, हे राजन् ! उस पवित्र तीर्थ में स्नानकर मनुष्य पितरों के लोक में पूजित होता है । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर अति पवित्र मनोहर तीर्थ की यात्रा करे, राजन् ! उसमें स्नान करने से मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है । हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् अति पवित्र कुब्जतीर्थ की यात्रा करे, जो तीनों लोकों में सभी पापों को विनष्ट करनेवाला विख्यात है । हे नराधिप ! जिन-जिन कामनाओं की अभिलाषा, पशु पुत्र एवं धन प्राप्त करने की आकांक्षाएँ मनुष्य को उस पवित्र तीर्थ में होती हैं, वे सभी उस तीर्थ में स्नान करने से प्राप्त हो जाती हैं । हे राजेन्द्र ! तदनन्तर त्रिदशज्योति नाम से विख्यात पवित्र तीर्थ की यात्रा करे, जहाँ पर ऋषि की कन्याओं ने अति उत्तम व्रतों को निभाते हुए परम तपश्चर्या की थी, उनकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि सबों के पति अव्यय भगवान् शंकर ही हों । उन सब की तपस्या से सुप्रसन्न हो दण्डधारण कर विकृत मुख महादेव जी उस तीर्थ को पहुँचे थे और उन कन्याओं का वरण किया था । वहाँ पहुँचकर उन्होंने कन्याओं को वरण करनेवाले ऋषियों से 'कन्यादान करो', ऐसा स्वतः अनुरोध किया था । महाराज ! वह पवित्र तीर्थ ऋषिकन्या के नाम से विख्यात है । हे राजन् ! उस तीर्थ में स्नानकर प्राणी सभी पापों से मुक्त हो जाता है । हे राजेन्द्र ! तदुपरान्त स्वर्णविन्दु नाम से विख्यात पवित्र तीर्थ की यात्रा करे, राजन् ! उस तीर्थ के स्नान करने से मनुष्य कभी दुर्गति नहीं देखता । तत्पश्चात् अप्सरेश नामक तीर्थ में जाकर स्नान करे, वहाँ पर स्नान करनेवाला प्राणी अप्सराओं के साथ नागलोक में विहार करता है । हे राजेन्द्र ! तत्पश्चात् अति पवित्र नरक नामक तीर्थ को जाय और स्नानकर महादेव की पूजा करे, ऐसा करने से वह नरक का दर्शन नहीं करता । तदुपरान्त उपवास करते हुए मनुष्य भारभूति नामक तीर्थ की यात्रा करे, इस पवित्र तीर्थ में, जो शंकर का पवित्र तीर्थ है, पहुँच कर विरूपाक्ष की पूजा कर मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है । इस पवित्र भारतभूति तीर्थ में स्नानकर जहाँ कहीं भी प्राण त्याग कर देनेवाले को गणों की अध्यक्षता प्राप्त होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । कार्तिक के महीने में महेश्वर की अर्चना करनेवाले को अश्वमेध से दस

गुना अधिक पुण्य प्राप्त होता है, ऐसा पण्डित लोग कहते हैं। उस पवित्र तीर्थ में घृतपूर्ण सौ द्वीपों का दान करे, ऐसा करनेवाले सूर्य के समान तेजस्वी विमानों पर अधिरूढ हो शंकर के लोक को प्राप्त करते हैं। इस तीर्थ में जाकर जो मनुष्य शंख, कुन्द के पुष्प अथवा चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण के वृषभ का दान करता है, वह वृषयुक्त यान पर सवार होकर रुद्रलोक को जाता है। हे नराधिप! इस पवित्र तीर्थ में जो मनुष्य एक धेनु का दान करता है, तथा दूध में बनाये गये मधुसंयुक्त चावल तथा अन्यान्य विविध प्रकार के भक्ष्य पदार्थों को अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को खिलाता है, वह सब इस तीर्थ के प्रभाव से कोटिगुना अधिक फल देनेवाला हो जाता है। पुण्यसलिला नर्मदा का जल पानकर वृषभध्वज शंकर की पूजा कर मनुष्य उस तीर्थ के प्रभाव से किसी भी दुर्गति को नहीं देखता। इस पवित्र तीर्थ में आकर जो प्राणी प्राणों को छोड़ते हैं वे सभी पापकर्मों से मुक्त होकर शंकर के लोक को प्राप्त करते हैं। हे नराधिप! उस पवित्र तीर्थ में जो प्राणी जल में प्रवेश करता है वह हंसयुक्त यान द्वारा ब्रह्म-लोक को जाता है और तब तक स्वर्ग में पूजित होता है जब तक चन्द्रमा, सूर्य, हिमवान् पर्वत तथा समुद्र विद्यमान हैं एवं गंगा आदि पवित्र नदियाँ प्रवाहित हो रहीं हैं। हे नराधिप! उस पवित्र तीर्थ में जो प्राणी अनशन करता है, राजेन्द्र! फिर वह कभी गर्भ में निवास नहीं करता। हे राजेन्द्र! तदनन्तर अति उत्तम आषाढ़ी तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। हे राजन्! उस आषाढ़ी तीर्थ में स्नानकर मनुष्य इन्द्र का आधा आसन ग्रहण करता है। तदुपरान्त स्त्रियों के परम पवित्र सभी पापों को दूर करनेवाले तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। वहाँ पर भी स्नान करने से निश्चय ही गणों के स्वामित्व की प्राप्ति होती है। एरण्डी तथा नर्मदा नदी का संगम तीर्थ तीनों लोकों में सुप्रसिद्ध है, वह अति पुण्यदायी तथा सभी पापों का विनाश करनेवाला है। हे राजेन्द्र! वहाँ जाकर नित्य कर्मों को सम्पन्नकर उपवास करता हुआ प्राणी ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र! तत्पश्चात् पुण्यसलिला नर्मदा तथा समुद्र के संगम स्थल की यात्रा करे जो जामदग्न्य तीर्थ के नाम से सुप्रसिद्ध है, वहीं पर भगवान् जनार्दन को सिद्धि प्राप्त हुई थी, वहीं पर इन्द्र ने अनेक महान् यज्ञों का अनुष्ठानकर देवताओं के स्वामित्व की प्राप्ति की थी। हे राजेन्द्र! उस नर्मदा तथा समुद्र के संगम स्थल पर स्नानकर प्राणी अश्वमेध के तिगुने पुण्य को प्राप्त करता है। पश्चिम के समुद्र की संधि भूमि पर स्वर्गद्वार विघटन नामक तीर्थ है, हे राजन्! वहाँ पर गन्धर्वों समेत सभी देवगण, ऋषिवृन्द, सिद्ध तथा चारण तीनों सन्ध्याओं में देवदेव विमलेश्वर महादेव की आराधना करते हैं। वहाँ पर स्नान करनेवाला प्राणी रुद्रलोक में पूजित होता है। उस विमलेश्वर देव से बढ़कर प्रभावशाली कोई तीर्थ न तो था और न होगा, वहाँ पर उपवास रखकर जो प्राणी विमलेश्वर का दर्शन करते हैं वे सात जन्म में किये गये पापों से मुक्त होकर शिव के लोक को प्राप्त करते हैं। हे राजेन्द्र! तदुपरान्त अति उत्तम कौशकी नामक तीर्थ की यात्रा करनी चाहिये। हे राजन्! वहाँ पर स्नानकर एक रात का उपवास रख जो प्राणी मन तथा आहारेच्छा को वश में रख निवास करता है वह इस तीर्थ के प्रभाव से ब्रह्महत्या से छुटकारा पाता है। जो मनुष्य सागरेश्वर तीर्थ का दर्शन मात्र कर लेता है वह सभी तीर्थों के स्नान का पुण्य प्राप्त करता है। उस पवित्र

तीर्थ के एक योजन विस्तार तक भँवरों में शिव जी का निवास रहता है, यही कारण है कि उसके देखने से निस्सन्देह सभी तीर्थों के दर्शन का फल प्राप्त होता है। ऐसा करनेवाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो शिव के लोक को प्राप्त करता है। हे राजन्! नर्मदा के पवित्र संगम से लेकर अमरकण्टक पर्वत तक कुल दस करोड़ तीर्थ कहे गये हैं। एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ के अन्तर में करोड़ों विद्वान् ऋषिगण ध्यान में निमग्न रहकर अग्निहोत्र आदि करते हुए निवास करते हैं। हे राजेन्द्र! उन परम विद्वान् ऋषिगणों से सेवित ये दस करोड़ तीर्थ अभीप्सित कार्यों की पूर्ति करनेवाले हैं। जो कोई मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस तीर्थों के माहात्म्य का पाठ करता है अथवा श्रवण करता है, हे पाण्डव! उसको समस्त तीर्थवृन्द स्वयमेव स्नान करवाते हैं तथा पुण्यसलिला नर्मदा सर्वदा उस पर प्रसन्न रहती है—इसमें सन्देह नहीं। उसके ऊपर शिव जी तथा महामुनि मार्कण्डेय भी सन्तुष्ट रहते हैं। यदि वन्ध्या स्त्री इसका पाठ या श्रवण करती है तो वह पुत्र प्राप्त करती है, कुरूप स्त्री सुन्दरी हो जाती है, कन्या को पति की प्राप्ति होती है और भी जो कोई जिस फल की इच्छा रखते हैं इस से वह सब प्राप्त करते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह का अवसर नहीं है। ब्राह्मण वेद ज्ञान प्राप्त करता है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य व्यापार में लाभ पाता है, शूद्र को सद्गति प्राप्त होती है, मूर्ख विद्यावान् होता है। जो कोई मनुष्य इस माहात्म्य का तीनों सन्ध्या के अवसरों पर पाठ करता है वह कभी नरक का दर्शन नहीं करता तथा अपने प्रिय जनों से कभी वियुक्त नहीं होता। १-५१॥

श्री मात्स्य महापुराण में नर्मदा माहात्म्य नामक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त। ॥१९४॥

एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! इस प्रकार ओंकार का वर्णन सुन मनु ने उस समुद्र में मत्स्य रूप से अवस्थित देवदेव भगवान् विष्णु से पूछा—॥१॥

मनु ने कहा—हे प्रभो! अब मुझसे ऋषियों का नाम, गोत्र, वंश, अवतार तथा प्रवरों की समानता तथा विषमता—विस्तारपूर्वक बतलाइये। स्वायम्भुव मन्वन्तर में महादेव के शाप से जब ऋषिगण शापित हुये थे, तब उनकी वैवस्वत मन्वन्तर में पुनः उत्पत्ति किस प्रकार हुई? इसे मुझे बताइये। दक्ष प्रजापति की सन्तानों से उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का वर्णन मुझसे कीजिये तथा उसी प्रसंग में भृगु के वंश का विस्तार किस प्रकार हुआ—इसका भी वर्णन कीजिए। ॥२-४॥

मत्स्य ने कहा—राजन्! इस मन्वन्तर में तथा इसके पूर्ववर्ती वैवस्वत मन्वन्तर में घटित हुए परमेष्ठी ब्रह्मा के चरित्र का वर्णन मैं कर रहा हूँ। महादेव के शाप से स्वयमेव अपने-अपने शरीरों को त्याग कर ऋषिगण पुनः महात्मा ब्रह्मा के अग्नि में हवन किये गये शुक्र से उत्पन्न हुए हैं। राजन्! प्राचीन काल

में एकबार देवताओं की माताओं तथा देवांगनाओं को देखकर परमेष्ठी ब्रह्मा का वीर्य क्षरण हुआ था, उसे

ब्रह्मा ने अग्नि में हवन कर दिया था, जिससे सर्वप्रथम महातेजस्वी तपोनिधि भृगु ऋषि की उत्पत्ति हुई थी। अंगारों में अगिरा ऋषि हुए थे, अग्नि की लपटों से अत्रि तथा किरणों से महातपस्वी मरीचि उत्पन्न हुए थे। केशों से कपिश वर्ण के महातपस्वी पुलस्त्य ऋषि उत्पन्न हुए थे। लटकते हुए लम्बे केशों से महातपस्वी पुलह ऋषि पैदा हुए थे। अग्नि के वसु (सार भाग) से तपोनिधि वसिष्ठ जी उत्पन्न हुए थे। महर्षि भृगु ने पुलोमा ऋषि की सुन्दरी कन्या को स्त्री रूप में ग्रहण किया था। उसमें भृगु के बारह यज्ञ करनेवाले देव स्वरूप पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे थे भुवन, भौवन, सुजन्य, सुजन, क्रतु, वसु, मूर्द्धा, त्याज्य, वसुद, प्रभव, अव्यय तथा दक्ष। ये बारहो पुत्र भृगु के नाम से पुकारे जाते हैं। तदनन्तर भृगु ने पौलोमी में देवताओं से कुछ अवच श्रेणी के ब्राह्मणों को उत्पन्न किया था। उनके नाम महाभाग्यशाली च्यवन तथा आप्नुवान हैं। आप्नुवान के पुत्र और्व, तथा और्व के पुत्र जमदग्नि हुए। इन भृगु के समस्त पुत्रों से उत्पन्न होनेवाले महाभाग्यशाली ऋषियों के गोत्रकर्त्ता और्व ही कहे जाते हैं। अति तेजस्वी भृगु के गोत्रकर्त्ता उन ऋषियों का वर्णन कर रहा हूँ। भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व, जमदग्नि, वात्स्य, दण्डि, नडायन, वैगायन, वीतिहव्य, पैल, शौनक, शौनकायन, जीवन्ति, आवेद, कार्षणि, वैहीनरि, विरूपाक्ष, रौहित्यायनि, वैश्वानरि, नील, लुब्ध, सावर्णिक, विष्णु, पौर, बालाकि, ऐलिक, अनन्तभागिन, मृग, मार्गेय, मार्कण्ड, जविन, नीतिन, मण्ड, माण्डव्य, माण्डूक, फेनप, स्तनित, स्थलपिण्ड, शिखावर्ण, शार्कराक्षि, जालधि, सौधकि, क्षुभ्य, कुत्स, मौद्गलायन, माङ्कायन, देवपति, पाण्डुरोचि गालव, सांकृत्य, चातकि, सार्पि, यज्ञपिण्डायनं, गार्ग्यायण, गायन, गार्हायण, गोष्ठायन, वाह्यायन, वैशम्पायन, वैकर्णिनि, शार्ङ्गरव, याज्ञेयि, भ्राष्ट्रकायणि, लालाटि, नाकुलि, लौक्षिण्य, परिमण्डल, आलुकि, सौचकि, कौत्स, पैंगलायनि, सात्यायनि, माल्यायनि, कौटलि, कौचहस्तिक, सौह, सोक्ति, सकौवाक्षि, कौसि, चान्द्रमसि, नैकजिह्व, जिह्वक, व्याधयाज्य, लौहवैरिण, शारद्वतिक, नेतिष्य, लोलाक्षि, चलकुण्डल, वांगायनि, आनुमति, पूर्णिमागतिक तथा असकृत्। साधारणतः इन ऋषियों के ये पांच प्रवर कहे जाते हैं—भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व तथा जमदग्नि। अब इसके बाद अन्यान्य भृगु वंश में उत्पन्न होनेवालों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। जमदग्नि, विद, पौलस्त्य, बैजभृत, उभयजात, कायनि, शाकटायन, और्वेय तथा मारुत। इनके तीन निम्नलिखित शुभ प्रवर कहे जाते हैं, भृगु, च्यवन तथा आप्नुवान। इन ऋषियों के वंशों में परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है। भृगुदास, मार्गपथ, ग्राम्यायणि, कटायनि, आपस्तम्बि, बिल्वि, नैकशि, कपि, आर्ष्टिषेण, गार्दभि, कार्दमायनि, आश्वायनि तथा रूपि। इनके प्रवर निम्न-पाँच ऋषियों के कहे गये हैं—भृगु, च्यवन, आप्नुवान, आर्ष्टिषेण तथा रूपि। इन पाँचों प्रवर वालों में परस्पर विवाह निषिद्ध है। यस्क, वीतिहव्य, मथित, दम, जैवन्त्यायनि, मौञ्ज, पिलि, चलि, भागिल, भागवित्ति, कौशापि, काश्यपि, बालपि, श्रमदागेपि, सौर, तिथि, गार्गीय, जाबालि, पौष्णायन तथा रामोद। इन वंशवालों के ये निम्न ऋषि प्रवर कहे गये हैं—भृगु, वीतिहव्य, रैवस तथा वैवस। इनमें परस्पर विवाह नहीं होते। शालायनि, शाकटाक्ष, मैत्रेय, खाण्डव, द्रौणायन, रौक्मायणि, आपिशलि, कायनि तथा हंसजिह्व। इनके निम्न ऋषियों के प्रवर कहे गये हैं—भृगु, वद्ध्यश्व तथा दिवोदास। इनमें परस्पर

विवाह कर्म निषिद्ध हैं। हे राजन्! एकायन, यज्ञपति, मत्स्यगन्ध, प्रत्यह, सौरि, चौक्षि, कार्दमायनि गृत्समद तथा महान् ऋषिसनक—इन वंशवालों के प्रवर निम्न दो ऋषियों के हैं। भृगु तथा गृत्समद—इन दोनों ऋषियों के वंशवालों में परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है। हे राजन्! यही भृगुवंश में उत्पन्न महानुभाव ऋषियों के गोत्रकारों का वर्णन है, जिसे मैं तुम्हें सुना चुका। इनके नामों के कीर्त्तन से प्राणी अपने किये हुए समग्र पापों से छूट जाता है। ॥१-४६॥

श्री मात्स्य महापुराण में भृगुवंश प्रवर कीर्त्तन नामक एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय समाप्त। ॥१९५॥

एक सौ छानबेवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! मरीचि ऋषि की सुरूपा नामक कन्या अंगिरा ऋषि की स्त्री थीं, जिसके दस पुत्र देवता माने गये हैं। आत्मा, आयु, दमन, दक्ष, सद, प्राण, हविष्मान्, गविष्ठ, ऋत तथा सत्य। ये दस अंगिरा के पुत्र सोमरस पान करनेवाले देवता कहे गये हैं। इन सर्वेश्वर ऋषियों को सुरूपा ने उत्पन्न किया था। बृहस्पति, गौतम, ऋषिश्रेष्ठ संवर्त, उतथ्य, वामदेव, अजस्य, ऋषिज—ये सभी ऋषिगण गोत्रकार कहे गये हैं, इनके गोत्रों में उत्पन्न होनेवाले गोत्रकारों को मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। उतथ्य, गौतम, तौलेय, अभिजित्, सार्धनेमि, सलौगाक्षि, क्षीर, कौष्टिकि, राहुकर्णि, सौपुरि, कैराति, सामलोमकि, पौषाजिति, भागवत, चैरीडव, कारोहक, सजीवी, उपबिन्दु, सुरैषिण, वाहिनीपति, वैशाली, क्रोष्टा, आरुणायनि, सोम, अत्रायनि, कासोरु, कौशल्य, पार्थिव, रौहिण्यायनि, रेवाग्नि, मूलप, पाण्डु, क्षण, विश्वकर, अरि तथा पारिकारारि—ये सभी ऋषि कहे जाते हैं, इनके प्रवरों को सुनो। वे थे अंगिरा, सुवचोतथ्य तथा महान् ऋषि उशज इन ऋषियों के वंशवाले परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं करते। आत्रेयायणि, सौवेष्ठ्य, अग्निवेश्य, शिलास्थलि, बालिशायनि, चैकेपी, वाराहि, वाष्कलि, सौटि, तृणकर्णि, प्रावहि, आश्वलायनि, वाराहि, बर्हिसादी, शिखाग्रीवि, कारकि, महाकापि, उडुपति, कौचकि, धर्मित, पुष्पान्वेषि, सोमतन्वि, ब्रह्मतन्वि, सालडि, बालडि, देवरारि, देवस्थानि, हारिकर्णि, सरिद्भुवि, प्रातेपि, साधसुग्रीवि, गोमेदगन्धिक, मत्स्याछाद्य, मूलहर, फलाहार, गांगोदधि, कौरुपति, कौरुक्षेत्रि, नायकि, जैत्यद्रौणि, जैह्वलायनि, आपस्तम्बि, मौञ्जवृष्टि, मार्ष्टिपिङ्गलि, महातेजस्वी पैल, शाङ्कलायनि, द्व्याख्येय तथा मारुत। हे नृप! इन ऋषियों के प्रवर प्रथम अंगिरा दूसरे बृहस्पति तथा तीसरे भारद्वाज ऋषि हैं—यही तीन इनके प्रवर कहे गये हैं, इन गोत्रवालों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होते। काण्ड्वायन, कोपचय, वात्स्यतरायण, भ्राष्ट्रकृत्, राष्ट्रपिण्डी, लैन्डाणि, सायकायनि, कोष्टाक्षी, बहुवीती, तालकृत, मधुरावह, लावकृत्, गालविद्, गाथी, मार्कटि, पौलकायनि, स्कन्दस, चक्री, गार्ग्य, श्यामायनि, बलाकि तथा साहरि—इनके निम्न पाँच ऋषि प्रवर कहे गये हैं। महातेजस्वी अंगिरा, देवाचार्य बृहस्पति, भरद्वाज, गर्ग, तथा परमतेजस्वी सैत्य ऋषि।

इन ऋषियों के वंशवालों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता। कपीतर, स्वस्तितर, दाक्षि, शक्ति, पतञ्जलि, भूयसि, जलसंधि, बिन्दु, मादि, कुसीदकि, ऊर्व, राजकेशि, वौषडि, शंसपि, शालि, कलशीकण्ठ, कारीरय, काव्य, धान्यायनि, भावास्यायनि, भरद्वाजि, सौबुधि, लघ्वी तथा देवमति। हे राजाओं में श्रेष्ठ! इन ऋषियों के तीन प्रवर बतलाये गये हैं, अंगिरा, दमवाह्य तथा उरुक्षय—इनके गोत्रवालों में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता। संकृति, त्रिमार्ष्टि, मनु, संबधि, तण्डि, एनातकि, तैलक, दत्त, नारायणि, आर्षिणि, लौक्षि, गार्ग्य, हरि, गालव तथा अनेह। इन सब के प्रवर अंगिरा, संकृति तथा गौरवीति माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता। कात्यायन, हरितक, कौत्स, पिङ्ग, हरिण्डदास, वात्स्यायनि, माद्रि, मौलि, कुवेरणि, भीमवेग, तथा शाश्वदर्भि, इन सभी के तीन प्रवर कहे जाते हैं, अंगिरा, वृहदश्व तथा जीवनाश्व, इन ऋषियों के वंशवालों में परस्पर विवाह नहीं होता। वृहदुक्त तथा वामदेव ये भी तीन प्रवर वाले हैं, इनके प्रवर अंगिरा, वृहदुक्त तथा वामदेव हैं, इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। कुत्सगोत्र में उत्पन्न होनेवालों के तीन प्रवर हैं, अंगिरा, सदस्यु तथा पुरुकुत्स, प्राचीन लोग बतलाते आये हैं कि कुत्सगोत्रवालों से कुत्सगोत्रवालों का विवाह सम्बन्ध नहीं हो सकता। रथीतर के वंश में उत्पन्न होनेवालों के भी तीन प्रवर हैं, अंगिरा, विरूपाक्ष तथा रथीतर, ये लोग आपस में विवाह नहीं कर सकते। विष्णुसिद्धि, शिवमति, जतृण, कतृण, महातेजस्वी पुत्रव तथा वैरपरायण। हे राजन्! ये सभी तीन ऋषियों के प्रवरवाले माने गये हैं, अंगिरा, विरूप तथा वृषपर्व। इन ऋषियों के वंश में परस्पर विवाह कर्म नहीं होता। महातेजस्वी सात्यमुग्रि, हिरण्यस्तम्बि तथा मुद्गल ये सभी इन तीन ऋषियों के प्रवर वाले माने गये हैं। अंगिरा, मत्स्यदग्ध तथा महातपस्वी मुद्गल। इन ऋषियों के गोत्रों में उत्पन्न होनेवाले परस्पर विवाह नहीं कर सकते। हंसजिह्व, देवजिह्व, अग्निजिह्व, विराडप, अपाग्नेय, अश्वयु, परण्यस्त तथा दिव्यमौद्गल। ये सभी तीन प्रवर वाले कहे गये हैं, अंगिरा, ताण्डि, तथा महातपस्वी मौद्गल्य इन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह नहीं होता। अपाण्डु, गुरु, शाकटायन—प्रागाथमा नारी? मार्कण्ड, मरण, शिव, कटु, मर्कण्प, नाडायन, तथा श्यामायन—ये सभी तीन ऋषियों के प्रवर वाले हैं अंगिरा, अजमीढ़ तथा महातपस्वी कव्य—इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। तित्तिरि, कपिभू, महाऋषि गार्ग्य—इन सब के अंगिरा, त्तित्तिरि तथा कपिभू नामक तीन प्रवर कहे गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। ऋक्ष, भरद्वाज, ऋषिवान्, मानव तथा मैत्रवर—इनके अंगिरा, भरद्वाज, वृहस्पति, ऋषि मित्रवर, ऋषिवान् तथा मानव नामक पाँच प्रवर हैं, इनमें परस्पर विवाह कर्म निषिद्ध है। भारद्वाज, हुत, शौङ्ग तथा शैशिरेय—ये सभी द्व्यामुष्यायण गोत्र में उत्पन्न कहे जाते हैं, इन सब के अंगिरा, भरद्वाज, वृहस्पति, मौद्गल्य तथा शैशिर नामक पाँच ऋषि प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। इन अंगिरा के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले महानुभाव ऋषियों के गोत्र प्रवर्तकों का वर्णन मैं तुमसे कर चुका, जिनके नाम का उच्चारण करने से पुरुष अपने सभी पापकर्मों से छुटकारा पाता है। ॥१-५५॥

श्री मात्स्य महापुराण के प्रवरानुकीर्त्तनप्रसग में आङ्गिरवंशकीर्त्तन नामक एकसौ छानबेवाँ अध्याय समाप्त।॥१९६॥

एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न हुए गोत्रकर्त्ता ऋषियों का वर्णन मुझसे सुनो। शारायण, उद्दालकि, शौणकर्णिरथ, शौक्रतव, गौरग्रीवा, गौरजिन, चैत्रायण, अर्धपण्य, वाभरथ्य, गोपन, ताकविन्दु, कर्णजिह्व, हरप्रीति, लैद्राणि, शाकलायनिं, तैलप, सवैलेय, अत्रि, गोणीपति, जलद, भगपाद, महातपस्वी सौपुष्पि तथा छन्दोगेय ये कर्दमायन शाखा से उत्पन्न हुए ऋषि हैं, इनके प्रवर श्यावाश्व, अत्रि तथा आर्चनानश—ये तीन ऋषि कहे गये हैं, इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। दाक्षि, बलि, पर्णवि, उर्णुनाभि, शिलार्दनि, बीजवापी, शिरीष, मौञ्जकेश, गविष्ठिर तथा भलन्दन, इन ऋषियों के अत्रि, गविष्ठिर तथा पूर्वातिथि—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। इसके पश्चात् अत्रि वंशोद्भव ऋषियों की कन्याओं से उत्पन्न होनेवाले ऋषियों का विवरण मुझसे सुनो, कालेय, बालेय, वामरथ्य, धात्रेय तथा मैत्रेय इनके अत्रि, वामरथ्य तथा पौत्रि—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये है, इन ऋषियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध माना गया है। हे राजन्! इन अत्रि वंश में उत्पन्न होनेवाले गोत्रकार महानुभाव ऋषियों का नाम मैं तुम्हें सुना चुका, जिनके पवित्र नाम संकीर्त्तनमात्र से मनुष्य अपने सभी पाप कर्मों से छुटकारा पा जाता है। ॥१-११॥

श्री मात्स्य महापुराण के प्रवरानुकीर्त्तप्रसंग में अत्रिवंशवर्णन नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय समाप्त। ॥१९७॥

एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! अब इसके उपरान्त उन्हीं अत्रि ऋषि के अन्य वंशधरों का वर्णन मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। उन महर्षि अत्रि के पुत्र श्रीमान् सोम हुए जिनके वंश में उत्पन्न होनेवाले विश्वामित्र जी हुए, जिन्होंने अपने तप के माहात्म्य से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति की थी, उन्हीं के वंश का मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। विश्वामित्र, देवरात, वैकृति, गालव, वतण्ड, शलंक, अभय, आयतायन, श्यामायन, याज्ञवल्क्य, जाबाल, वभ्रव्य, करीष, संश्रुत्य, संश्रुत, उलूप, औपहाव, पयोद, जनपादप, खरवाच, हलयम, साधित तथा वास्तुकौशिक। इन सब ऋषियों के वंश में उत्पन्न होनेवालों के विश्वामित्र, देवरात तथा महायशस्वी उद्दाल ऋषि प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। हे नराधिप! देवश्रुव, सुजातेय, सौमुक, कारुकायण; वैदेहरात तथा कुशिक इन सभी ऋषियों के वंशों में देवश्रवा, देवरात तथा विश्वामित्र—ये तीन प्रवर माने जाते हैं। इन ऋषियों के वंश में उत्पन्न होने वालों में परस्पर विवाह नहीं होता। हे राजन् धनंजय, कपर्देय, परिकूट तथा पाणिन—इन वंशों में सब के विश्वामित्र,

धनंजय तथा माधुच्छन्दस ये तीन प्रवर माने गये हैं। विश्वामित्र, मधुच्छन्द तथा अघमर्षण इन तीन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह नहीं होते। कामलायनिज, अश्मरथ्य तथा वञ्जुलि इनके वंशधर ऋषियों के विश्वामित्र, अश्मरथ तथा महातपस्वी वञ्जुलि—ये तीन प्रवर माने गये हैं, इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध माने गये हैं। विश्वामित्र, लोहित, अष्टक तथा पूरण—इनके विश्वामित्र और पूरण ये दो प्रवर माने गये हैं, जिनमें पुराणों में परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। लोहित और अष्टक वंशधरों के तीन ऋषियों के प्रवर माने गये हैं, विश्वामित्र, लोहित तथा महातपस्वी अष्टक। इनमें अष्टक वंशवालों का लोहित वंशवालों के साथ परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। उद्वरेणु, कुथक, ओदावहि—इन सब के ऋणवान्, गतिन तथा विश्वामित्र ये तीन प्रवर माने गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह नहीं होता। उदुम्बर, सौवरिटि, त्राच्चायणि, शाठ्यायनि, करीराशी, शांकलायनि, लावकि तथा मौञ्जायनि—इन ऋषियों के वंशधरों के खिलि-खिलि, विघ तथा विश्वामित्र—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं, जिनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। हे नरेन्द्र! इन कुशिक नाम से प्रसिद्ध महानुभाव ऋषिगणों के नामों को मैं तुमसे बता चुका। जिनके पवित्र नाम के संकीर्तन से मनुष्य अपने समग्र पापकर्मों को छोड़ देता है। ॥१-२२॥

श्री मात्स्य महापुराण के प्रवरानुकीर्त्तनप्रसंग में विश्वामित्रवंशानुवर्णन नामक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय ॥१९८॥

एक सौ निन्यानबे अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! महर्षि मरीचि के पुत्र कश्यप हुए, अब उन्हीं कश्यप के कुल में उत्पन्न होनेवाले गोत्रकार ऋषियों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। आश्रायणि ऋषिगण, मेषकीरिटि-कायन, उदग्रज, माठर, भोज, विनयलक्षण, शालाहलेय, कौरिष्ट, कन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनी में उत्पन्न मृगय, श्रोतन, मौतपायन, देवयान, गोमयान, अधश्छाय, अभय, कात्यायन, शक्रयण, वर्हियोग, गदायन, भवनन्दि, महाचक्रि, दाक्षपायण, योधयान, कार्तिवद, हस्तिदान, वात्स्यायन, निकृतज, आश्वलायनी, प्रागायण, पैलमौलि, आश्ववातायन, कौबेरक, श्याकार, अग्निशर्मायण, मेषप, कैकरसप, बभ्रव, प्राचेय, ज्ञानसंज्ञेय, आग्न, प्रासेव्य, श्यामोदर, वैवशय, उद्वलायन, काष्टाहारिण, मारीच, आजिहायन, हास्तिक, वैकर्णेय, काश्यपेय, सासिस, हारितायन, मातंगिन तथा भृगव—इन वंशों में उत्पन्न होनेवाले ऋषिगण तीन ऋषियों के प्रवरवाले माने गये हैं। उन तीनों के नाम ये हैं, वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी निध्रुव। इन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह निषिद्ध है। इसके उपरान्त द्व्यामुष्यायण के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले ऋषियों के नामों को बतला रहा हूँ। अनसूय, नाकुरय, स्नातप, राजवर्तप, शैशिर, उद्वहि, सैरन्ध्री, रौपसेवकि, यामुनि, काद्रुपिंगाक्षि, जातम्बि तथा दिवावष्ट इनको भक्तिपूर्वक कश्यप के गोत्र में उत्पन्न जानना चाहिये। इन सभी ऋषियों के वंशधरों के निम्नलिखित तीन ऋषि प्रवर कहे गये हैं, वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी

वसिष्ठ। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। संयाति, दोनों नभ नामक ऋषि, पिप्पल्य, जलंधर, सुजातपूर, पूर्य, कर्दम, गर्दभीमुख, हिरण्यवाहु, कैरात, काश्यप, गोभिल, कुलह, वृषकण्ड, मृगकेतु, उत्तर, निदाघ, मसृण, महान् केरल, शाण्डिल्य, दानव, देवजाति तथा पैप्पलादि। इन सभी ऋषियों के तीन आर्ष प्रवर कहे गये हैं, असित, देवल तथा महातपस्वी कश्यप—इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता। हे मनुसिंह राजन्! दाक्षायणी के संयोग से ऋषियों में प्रमुख कश्यप द्वारा इस समग्र जगत् की उत्पत्ति हुई है, अतः उनके वंश का यह विवरण अति पुण्यदायक है। अब इसके अनन्तर मैं किस पवित्र कथा को तुमसे कहूँ? ॥१—२०॥

श्री मात्स्य महापुराण के प्रवरानुकीर्त्तन प्रसंग में कश्यप वंश वर्णन नामक एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय ॥१९९॥

दो सौ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! इसके बाद अब तुम वसिष्ठ के गोत्र में उत्पन्न हुए ऋषियों के नाम मुझसे सुनो। वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न होनेवाले ऋषियों का प्रवर एक मात्र वसिष्ठ ही है, इन वसिष्ठ के वंशजों का विवाह वसिष्ठ गोत्रजों में निषिद्ध है। व्याघ्रपाद, औपगव, वैक्लव, शाद्वलायन, कपिष्ठल, औपलोम, अलब्ध, शठ, कठ, गोपायन, बोधप, दाकव्य, वाह्यक, बालिशय, पालिशय, वाग्ग्रन्थय, आपस्थथूण, शीतव्रत, ब्राह्मपुरेयक, लोमायन, स्वस्तिकर, शाण्डिलि, गौडिनि, वाडोहलि, सुमना, उपावृद्धि, चौलि, बौलि, ब्रह्मबल, पौलि, श्रवस्, पौडव तथा याज्ञवल्क्य—ये सभी महर्षि एक ऋषि प्रवरवाले हैं, इन सबों के प्रवर एक मात्र वसिष्ठ जी हैं। इनके वंशधर परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं स्थापित करते। शैलालय, महाकर्ण, कौरव्य, क्रोधिन, कपिञ्जल, बालखिल्य, भागवित्तायन, कौलायन, कालशिख, कोरकृष्ण, सुरायण, शाकाहार्य, शाकधिय, काण्व, उपलप, शाकायन, उहाक, माषशरावय, दाकायन, बालवय, वाकय, गोरथ, लम्बायन, श्यामवय, क्रोडोदरायण, प्रलंबायन, औपमन्यव, सांख्यायन, वेदशेरक, पौलंकायन, उद्गाह, बलेक्षव, मातेय, ब्रह्ममलिन, तथा पलगारि—इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर कहे जाते हैं, भगीवसु, वसिष्ठ तथा इन्द्रप्रमटि। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। हे नरोत्तम! औपस्थल, स्वस्थलय, वाल, हाल, हल, माध्यन्दिन, माक्षतय, पैप्पलादि, विचक्षुष, त्रैशृंगायण, सैबल्क तथा कुण्डिन—इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर कहे गये हैं, वसिष्ठ, मित्रावरुण तथा महातपस्वी कुण्डिन। दानकाम, महावीर्य, नागेय, परम, आलम्ब, बायन, तथा चक्रोडादि—इनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। शिवकर्ण, वय तथा पादप—इन सभी के तीन प्रवर कहे गये हैं, जातूकर्ण, वसिष्ठ तथा अत्रि। इनमें परस्पर विवाह नहीं होते। हे राजन्! महर्षि वसिष्ठ के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले श्रेष्ठ ऋषियों के नामों को मैं

आपसे बता चुका। जिनके परम पवित्र नामों के संकीर्तन मात्र से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। ॥१-२०॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रवरानुकीर्तन प्रसंग में गोत्रानुवर्णन नामक दो सौवाँ अध्याय समाप्त। ॥२००॥

दो सौ एक अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजाओं में श्रेष्ठ। प्राचीनकाल में वसिष्ठमुनि राजा निमि के पुरोहित थे, राजा निमि यज्ञों का बहुत अनुष्ठान किया करते थे। एक बार मुनि यज्ञ कराते-कराते थक कर विश्राम कर रहे थे कि उनके पास राजाओं में श्रेष्ठ निमि ने पहुँच कर निवेदन किया—'हे भगवन्! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः शीघ्र ही उसे पूरा कराइये।' राजा की यह बातें सुन महातेजस्वी वसिष्ठ जी ने राजा से कहा—'हे राजन्! कुछ समय तक अभी प्रतीक्षा कीजिये, आपके निरन्तर चलनेवाले बड़े-बड़े यज्ञों से मैं बहुत परेशान हो गया हूँ, कुछ दिन तक सुस्ताकर फिर तुम्हारा यज्ञ कराऊँगा।' वसिष्ठ की ऐसी बातें सुन राजा ने कहा कि—'हे मुनि जी! पारलौकिक कार्य में भला कौन ऐसा मनुष्य है जो प्रतीक्षा कर सकता है, ब्रह्मन्! महापराक्रमी काल से मेरी कोई मित्रता नहीं है कि मेरे लिए वह रुका रहेगा, धर्म के कार्य में मनुष्य को शीघ्रता करनी चाहिये; क्योंकि यह जीवन अति चंचल है, धर्म रूप ओदन का पथ्य करनेवाला मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होकर भी सुख प्राप्त करता है। मनुष्य को सर्वदा कल का काम आज और तीसरे पहर किया जानेवाला काम सबेरे के पहर में करना चाहिये, क्योंकि मृत्यु किसी की इसलिए प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने अपने अभीष्ट कार्यों को समाप्त कर लिया है या नहीं। खेत, दूकान, और घर में आसक्त रहनेवाले अथवा कहीं अन्यत्र मन को लगानेवाले प्राणी को मृत्यु इस प्रकार पकड़ कर ले भागती है जैसे विगवा की स्त्री भेड़ को पकड़ कर भागती है। इस संसार में काल का न तो कोई मित्र है न कोई शत्रु। आयु और कर्म के क्षीण हो जाने पर वह बलात् मनुष्य को हर लेती है, प्राणवायु की चंचलता तो तुम जानते ही हो। हे ब्रह्मन्! इस जगत् में, ऐसी स्थिति में जितना कुछ जीवन है वही आश्चर्यमय है, इस नश्वर शरीर को विद्याध्ययन तथा धन के अर्जन में कभी विनाशशील नहीं मानना चाहिये किन्तु धर्म कार्य में तो इसे नश्वर ही मानना चाहिये। इस संकट पूर्ण परिस्थिति में मेरे ऊपर अभी ऋण शेष है, इसी विचार से मैं आपकी सेवा में आया हुआ हूँ, यदि आप इस समय मेरा यज्ञ नहीं करा रहे हैं तो मैं दूसरे ऋषि के पास जा रहा हूँ।' उस समय राजा निमि ने ब्रह्मर्षि वसिष्ठ से इस प्रकार की बातें कहीं। तब वसिष्ठ जी ने राजा निमि को शाप दे दिया कि 'तू विदेह (शरीर रहित) हो जा, इसलिये कि मुझे छोड़कर धर्म की मर्यादा जानते हुए तथा राजा होकर भी अन्य पुरोहित के पास यज्ञ कराने के लिए जाना चाहते हो।' वसिष्ठ के उक्त शाप को सुनकर राजा निमि ने कहा कि—'हे मुने! आपने धर्म कार्य करते हुए मुझको विघ्न पहुँचाया है; और दूसरे भी मुझे यज्ञ कराने की अनुमति नहीं

दे रहे हो; अतः तुम्हें भी मैं शाप दे रहा हूँ कि तुम भी विदेह हो जाओ।' इस प्रकार की बातें कहने के उपरान्त वे राजा तथा ब्रह्मर्षि—दोनों विदेह हो गये और शरीर से हीन होकर उनके जीव ब्रह्मा के पास जा पहुँचे। उन दोनों को आया देख ब्रह्मा ने निमि से कहा कि—'हे निमि के जीव! आज से तुम्हें मैं अलग स्थान दे रहा हूँ। तू सभी मनुष्यों के नेत्रों की पलकों पर रहा करो; तुम्हारे संयोग से उनकी पलकें मँजने लगेंगी। और वे सब आज से नेत्रों के पंखों को चलाते रहा करेंगे।' ऐसा कहने पर सभी मनुष्यों के नेत्रों के पलकों पर स्वयम्भू ब्रह्मा के वरदान के माहात्म्य से निमि के जीव ने अपना स्थान बनाकर प्रस्थान किया, तब वसिष्ठ के जीव से भगवान् ब्रह्मा ने कहा। हे वसिष्ठ! तुम मित्रावरुण के पुत्र होगे, वहाँ भी तुम्हारा नाम वसिष्ठ रहेगा, बीते हुए दो जन्मों का वृत्तान्त तुम्हें स्मरण रहेगा।' ठीक इसी अवसर पर मित्र और वरुण--ये दोनों देवता बदरी आश्रम के समीप घोर तपश्चर्या में निरत थे। इस प्रकार उग्र तपस्या में उन दोनों के लीन रहने पर कभी वसन्त का समय आया, सभी वृक्ष तथा लताएँ पुष्पों से लद गयीं, सुखकारी वायु बहने लगी, और वहाँ उर्वशी नामक परम सुन्दरी अप्सरा फूलों को चुनती हुई पहुँच गयी, उस समय वह अति सूक्ष्म लाल रंग का सुन्दर वस्त्र पहिने हुए थी, धीरे-धीरे वह फूल चुनते हुए उन दोनों तपस्वियों के सामने आ गई। चन्द्रमुखी, नील कमल के समान मनोहर नेत्रोंवाली सुन्दर भौंहोंवाली उर्वशी को देखकर दोनों तपस्वी उसके अनुपम रूप—सौन्दर्य से विमोहित होकर परम क्षुब्ध हो गये। और मृगचर्म के आसन पर तपस्या में निरत उन दोनों का वीर्य स्खलित हो गया। शाप के भय से डरी हुई उर्वशी ने उन महानुभा ऋषियों के मृगासन पर स्खलित हुए वीर्य को देख जल से भरे हुए मनोहर कलश में उस वीर्य को उठा कर रख लिया। उसी घट से अनुपम तेजस्वी वसिष्ठ तथा अगस्त्य ऋषि उत्पन्न हुए, जो मित्र और वरुण के पुत्र कहे जाते हैं। वसिष्ठ ने नारद ऋषि की बहिन परम सुन्दरी अरुन्धती के साथ विवाह किया, जिसके संयोग से उन्हें शक्ति नामक पुत्री उत्पन्न हुई। शक्ति के पराशर नामक पुत्र हुए। उन पराशर ऋषि के वंश का वर्णन अब मुझसे सुनो। ॥१-३०॥

उन्हीं पराशर ऋषि के स्वयं विष्णु भगवान द्वैपायन (व्यास) रूप धारण कर पुत्र रूप में उत्पन्न हुए, जिन्होंने इस लोक में महाभारत रूपी चन्द्रमा का शुभ्र निर्मल प्रकाश उत्पन्न किया। जिस प्रकाश ने अज्ञानांधकार में निमग्न लोक की आँखों को खोल दिया। उन्हीं पराशर ऋषि के पवित्र वंश का वर्णन सुनो। ॥३१-३२॥

काण्डशय, वाहनप, जैह्मप, भीमतापन—ये चार तथा पाँचवें गोपालि ये पाँच गौर पराशर कहे जाते हैं। प्रपोहय, ब्राह्ममय, ख्यातेय, कौतुजातय ये चार तथा पाँचवें हर्यश्वि—इन पाँचों को नील पराशर जानना चाहिये। कार्ष्णायन, कपिमुख, काकेयस्थ, जपातय—ये चार तथा पाँचवें पुष्कर—इनको कृष्ण पराशर जानना चाहिये। श्राविष्ठायन, बालेय, स्वायष्ठ, उपय—ये चार तथा पाँचवें इषीकह—इनको श्वेत पराशर जानना चाहिये। बाटिक, बादरि, स्तम्ब, क्रोधनायन—ये चार तथा पाँचवें क्षैमि—ये पाँच श्याम पराशर हैं। खल्यायन, वार्ष्णायन, तैलेय, यूथप—ये चार तथा पाँचवें तन्ति—ये पाँच धूम्र पराशर कहे

गये हैं। इन सभी पराशरों के तीन ऋषियों के प्रवर कहे गये हैं, पराशर, शक्ति तथा महातपस्वी वसिष्ठ। इन ऋषियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। हे राजन्! तुमको मैं सूर्य के समान प्रभावशाली गोत्र-कर्त्ता पराशर वंशवाले इन ऋषियों के नामों को बता चुका, जिनके पवित्र नामों के संकीर्तन से मनुष्य समग्र पापों से मुक्त हो जाता है। ॥३३-४०॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रवरानुकीर्त्तनप्रसंग में पराशरवंशवर्णन नामक दो सौ एक अध्याय समाप्त। ॥१९४॥

दो सौ दो अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! इसके उपरान्त मैं अगस्त्य के वंश में उत्पन्न होनेवाले ब्राह्मणों का वर्णन कर रहा हूँ। अगस्त्य, करम्भ, कौशल्य, शकट, सुमेधस, नयोभुव, गान्धारकायण, पौलस्त्य, पौलह तथा क्रतु के वंश में उत्पन्न होनेवाले—इन सभी ऋषियों के तीन प्रवर ऋषि कहे गये हैं, अगस्त्य, महेन्द्र तथा मयोभुव। इन ऋषियों के वंशधरों में परस्पर विवाह सम्बन्ध निषिद्ध है। पौर्णमास तथा पारण इन दोनों ऋषियों के तीन प्रवर हैं, अगस्त्य, पौर्णमास तथा महातपस्वी पारण। जिनमें परस्पर पौर्णमास लोग पौर्णमासवालों से विवाह के अयोग्य हैं। इस प्रकार प्रशंसनीय पराक्रमशाली ऋषियों के उत्तम वंश का वर्णन मैं कर चुका, अब इसके बाद आप बतलाइये कि मैं क्या कहूँ ? ॥१-६॥

मनु ने कहा—पुलह, पुलस्त्य तथा महात्मा क्रतु के वंशधरों का सम्बन्ध अगस्त्य ऋषि के वंश से किस प्रकार हुआ, इसे बतलाइये। ॥७॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—वैवस्वत मन्वन्तर में यह बात प्रसिद्ध थी कि महर्षि क्रतु को कोई सन्तति नहीं थी, अतएव उन्होंने अगस्त्य के धर्मिष्ठ पुत्र इध्मवाह को पुत्र रूप में स्वीकार किया था, इसीलिये अगस्त्य के वंशज भी क्रतु के वंशज कहलाये। हे पृथ्वीपते! महर्षि पुलह के तीन पुत्र थे, जिनका वर्णन मैं आगे विस्तारपूर्वक करूँगा, किन्तु उन तीनों पुत्रों के होने पर भी महर्षि पुलह सन्तुष्ट नहीं थे, अतः उन्होंने भी अगस्त्य के पुत्र ऋषि दृढ़ास्य को पुत्र रूप में स्वीकार किया था, हे राजन्! इसीलिए पुलह के वंशज अगस्त्य के वंशज कहलाये। महर्षि पुलस्त्य ने अपने वंशधरों को राक्षसकर्म में निरत होता देख अगस्त्य के पुत्र को पुत्र रूप में वरण किया, इसीलिये हे राजन्! पुलस्त्य के वंशज भी अगस्त्य के वंशज कहलाये। ये सभी सगोत्र होने के कारण आपस में विवाह के अयोग्य हैं। हे राजन्! इस प्रकार मैं इन महानुभाव गोत्रकर्त्ता ऋषियों के प्रवरों का वर्णन तुमसे कर चुका, जिनके नामों के कीर्त्तन से मनुष्य अपने किये गये समस्त पापकर्मों से छुटकारा पा जाता है। ॥८-१४॥

श्री मात्स्य महापुराण के प्रवरानुकीर्त्तन प्रसंग में अगस्त्यवंशवर्णन नामक दो सौ दो अध्याय समाप्त। ॥२०२॥

दो सौ तीन अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन् ! अब मैं दक्ष की कन्याओं में धर्मराज के संयोग से उत्पन्न होनेवाले इस वैवस्वत मन्वन्तर के उत्तम देववंशों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। हे नराधिप ! इस वैवस्वत मन्वन्तर में धर्मराज के संयोग से अरुन्धती के पर्वतादि तथा महादुर्ग के समान विशाल शरीरवाले सोमपायी आठ वसु गण उत्पन्न हुए थे। धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्यूष तथा प्रभास ये उन आठ वसुओं के नाम कहे गये हैं। धर के पुत्र का नाम द्रविण तथा ध्रुव के पुत्र का नाम काल हुआ, हे नराधिप ! उसी काल से मूर्तमान काल के समस्त अवयवों (वर्ष मास आदि) की उत्पत्ति हुई। सोम के प्रभावशाली वर्चा नामक पुत्र हुए, आप के पुत्र का श्रीमान् नाम कहा जाता है, अनल के पुत्र का नाम अनेकजन्मजनन है, अनिल का पुत्र पुरोजव तथा प्रत्यूष का पुत्र देवल हुआ। प्रभास का पुत्र देवताओं का बढ़ई विश्वकर्मा हुआ। नागवीथी आदि नव सन्तानें इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली थीं। लम्बा के पुत्र का नाम घोष था तथा भानु के पुत्र भानुगण (बारह अदित्य) हुए। सभी ग्रह तथा नक्षत्र एवं अन्य अमित प्रभावशाली ज्योतिःपुञ्ज मरुत्वान् गणों की उत्पत्ति मरुत्वती से कही जाती है। संकल्पा के संकल्प, मुहूर्ता के मुहूर्त्त एवं साध्या के साध्यगण पुत्र कहे जाते हैं। मन, मनु, (मंत्र) प्राण, रोष, नय, वीर्यवान्, चित्तहार्य, अयन, हंस, नारायण, विभु और प्रभु—ये बारह साध्य कहे जाते हैं। विश्वा के पुत्र विश्वेदेव के नाम से प्रख्यात हुए। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल काम, मुनि, कुरज, मनुज, वीज तथा रोचमान—ये दस उनके नाम हैं। राजकुल में श्रेष्ठ ! यह धर्मराज के वंश का वर्णन संक्षेप में मैं तुम्हें सुना चुका। राजन् ! इनका विस्तारपूर्वक वर्णन अनेक सैकड़ों वर्षों के विना व्यास भी नहीं कर सकते अर्थात् व्यास भी अनेक सौ वर्षों में विस्तारपूर्वक इनका वर्णन कर सकते हैं। ॥१-१४॥

श्री मात्स्य महापुराण के धर्मवंशवर्णन प्रसंग में धर्मप्रवरानुकीर्त्तन नामक दो सौ तीन अध्याय समाप्त। ॥२०३॥

दो सौ चार अध्याय

मत्स्य ने कहा—नरेश्वर ! इन उपर्युक्त ऋषिवंशों में उत्पन्न ब्राह्मणों को श्राद्धकर्म में प्रयत्नपूर्वक भोजन कराना चाहिये, क्योंकि इन्हें भोजन कराने से पितरों को अति प्रसन्नता होती है। हे राजसिंह ! इसके उपरान्त मैं अपने पुर में अवस्थित श्राद्ध के अभिलाषी पितरों से कही हुई पवित्र कथा को तुमसे कह रहा हूँ। पितर लोग कहते हैं कि "क्या हमारे वंश में ऐसा कोई भाग्यशाली जन्म लेगा जो हम लोगों को जलांजलि—विशेषतया अगाध एवं शीतल जलवाली नदी की जलांजलि—देगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई भाग्यशाली जन्म लेगा जो नित्य श्राद्धकर्म—दुग्ध, मूल, फल, अन्य खाद्य सामग्री,

अथवा तिलमिश्रित जल से ही--करेगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई पुण्यशील पैदा होगा जो वर्षा-ऋतु के मघानक्षत्र की त्रयोदशी तिथि को मधु एवं घृत से मिश्रित दुग्ध में पका हुआ खाद्य पदार्थ हमें देगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई पुण्यवान् उत्पन्न होगा जो एक ही बार तलवार से काटे गये मांस से अथवा कालशाक ही से प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करेगा ? कालशाक, महाशाक, मधु एवं अन्य मुनिजनोचित अन्न तथा सींग से रहित तलवार द्वारा काटा गया मांस----इन सब पदार्थों को हम लोग जब तक सूर्य उदित रहते हैं, तब तक भोजन करते हैं। गयातीर्थ में राहु के दिखाई पड़ने के अवसर (सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण के अवसर) पर एवं गजच्छाया योग में तलवार द्वारा काटे गये मांस से योगियों को हमारे कुल में कौन खिलायेगा ? इन पदार्थों द्वारा हम लोगों की कल्पपर्यन्त की तृप्ति होगी और देनेवाला सभी लोकों में महाप्रलय पर्यन्त अपनी इच्छा के अनुकूल विचरण करनेवाला होगा, इसमें सन्देह नहीं। इन पाँच प्रकार के विधानों में से एक विधान के करने से भी हम लोग सर्वदा अनन्त तृप्ति का लाभ करते हैं तो फिर सभी के करने की तो बात ही क्या है ?" पितर लोग आगे कहते हैं कि "क्या हमारे कुल में ऐसा कोई उत्पन्न होगा जो कृष्ण मृगचर्म का दान देगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई भाग्यशाली नररत्न उत्पन्न होगा, जो व्यायी हुई गाय को श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये दान देगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई होगा जो वृषभ—विशेषकर सभी वर्णों में श्वेत तथा नील वर्ण—का उत्सर्ग (छोड़ना) करेगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई सत्पुरुष उत्पन्न होगा जो श्रद्धापूर्वक सुवर्ण, पृथ्वी तथा गौ का दान करेगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई नररत्न उत्पन्न होगा, जो कूप, बागीचा, सरोवर एवं बावलियों का निर्माण करायेगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई उत्पन्न होगा जो सभी भावों से मधु दैत्य के उन्मूलन करनेवाले देवाधिदेव भगवान् विष्णु की शरण में जायगा ? क्या हमारे कुल में ऐसा कोई विद्वान्, विचारक पुरुष उत्पन्न होगा, जो विधिपूर्वक विद्वानों को भी धर्मशास्त्रों की व्यवस्था दे सकेगा ?" हे पृथ्वीपति ! मुनि द्वारा कही गई श्राद्ध कर्म की इतनी विधि, जो पापों का नाश तथा पुण्य की वृद्धि करनेवाली एवं लोकों में प्रमुखता प्रदान करनेवाली है, मैं तुम्हें बता चुका। इस पवित्र पितरों की गाथा को जो श्राद्धकाल में पितरों को सुनाता है, उसके पितर दिये गये पदार्थों को अक्षय रूप में प्राप्त करते हैं। ॥१-१९॥

श्री मात्स्य महापुराण में पितृगाथानुकीर्त्तन नामक दो सौ चौथा अध्याय समाप्त।॥२०४॥

दो सौ पाँचवाँ अध्याय

मनु ने कहा—धर्म के तत्त्वों को जाननेवाले ! श्रेष्ठ ब्राह्मण को व्यायी हुई गाय के दान देने की चर्चा जो आपने की है, उसका विधान क्या है ? अर्थात् किस विधि से उसका दान किया जाता है ? तथा उसका फल क्या है ? ॥१॥

मत्स्य ने कहा—राजन् ! उत्तम कुलोत्पन्न ब्राह्मण को सुवर्ण जटित सींगोंवाली, चाँदी से मढ़े हुए खुरोंवाली, मोतियों से सुशोभित पूछवाली सवत्सा गौ को काँसे के बने हुए दोहनपात्र से युक्त कर दान देना चाहिये। इस विधि से व्यायी हुई गाय को दान कर लोग महत्पुण्य प्राप्त करते हैं। जब तक बछड़ा योनि के अन्दर रहता है, जब तक गाय गर्भ का प्रजनन नहीं कर देती तब तक उसे पर्वत एवं जंगल समेत पृथ्वी जाननी चाहिये। जो कोई व्यायी हुई गाय को द्रव्य समेत दान देता है, वह मानो सभी समुद्र, गुफा, पर्वत एवं जंगलों समेत चतुर्दिशा युक्त पृथ्वी का दान कर चुका, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। हे नराधिप ! उस बछड़े के तथा गौ के शरीर में जितने रोयें रहते हैं, उतने ही युगों पर्यन्त दाता देवलोक में पूजित होता है। प्रचुर दक्षिणा को देनेवाला मनुष्य निश्चय ही अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामह को इस संसार सागर से उबार लेता है। वह भूरि दक्षिणा प्रदान करनेवाला मनुष्य उस गोलोक में, जहाँ घृत एवं क्षीर से युक्त नदियाँ बहा करती हैं, दही एवं पायस (दुग्ध मिश्रित खाद्य) के कीचड़ रहते हैं, मनोवाञ्छित को प्रदान करनेवाले वृक्ष रहते हैं—सुविधापूर्वक विहार करता है। हे राजन् ! उसके लिए ब्रह्मलोक भी सुलभ है। उस दान देनेवाले पुरुष की वहाँ पर चन्द्रमा के समान मनोहारी मुखवालीं, तपाये हुए सुवर्ण के समान वर्णवालीं, दीर्घ नितम्बिनी, पतली कमरवालीं, कमल के समान नेत्रोंवाली सुन्दरियाँ निरन्तर सेवा करती हैं। ॥२-९॥

श्री मात्स्य महापुराण में धेनु-दान माहात्म्य नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥२०५॥

दो सौ छठाँ अध्याय

मनु ने कहा—निष्पाप ! कृष्ण मृगचर्म के प्रदान करने की विधि, समय, तथा कैसे ब्राह्मण को दान देना चाहिये इसका विधान मुझसे बतलाइये, क्योंकि इस विषय में मुझे अभी बड़ा सन्देह है। ॥१॥

मत्स्य ने कहा—राजन् ! वैशाख मास की पूर्णिमा, चन्द्रमा तथा सूर्य के ग्रहण के अवसर, माघ मास की पूर्णिमा, आषाढ़ तथा कार्तिक की पूर्णिमा, सूर्य के उत्तरायण में आने पर द्वादशी तिथि—इन तिथियों में कृष्ण मृगचर्म के दान का महाफल कहा गया है। जो ब्राह्मण नित्य अग्न्याधान करनेवाला हो उसे ही इसका दान करना चाहिये। जिस प्रकार और जिस विधान से दान देना चाहिये, उसे मैं बता रहा हूँ, सुनो। हे नराधिप ! पवित्र देश में गोबर से लिपी हुई पृथ्वी पर सर्वप्रथम भेंड़ के वस्त्र (अर्थात् कम्बल) को बिछा दे, फिर खुर तथा सींगों समेत कृष्ण मृग के चर्म को बिछा दे। उस मृगचर्म की सींगों को सुवर्ण से, दाँतों को चाँदी से, पूँछ को मोतियों से अलंकृत कर तिल से छुपा दे। बुद्धिमान् पुरुष तिलों से उस मृगचर्म को पूरित कर वस्त्र से ढँक दे, उसकी नाभि को सुवर्णमय बनाकर अपनी शक्ति के अनुकूल रत्नों तथा सुगन्धियों से विशेषतया अलंकृत कर दे। फिर क्रमानुसार चार काँसे के बने हुए पात्रों को दे। फिर पूर्व आदि

दिशाओं में क्रमशः चार मिट्टी के पात्रों में घृत, दुग्ध, दही तथा मधु रखकर विधिवत् दान करे। तदुपरान्त चम्पक की एक शाखा तथा विना फूटा हुआ एक घट बाहर में पूर्व की ओर मंगल भावना से युक्त होकर स्थापित करे। फिर स्नान के लिए एक सूक्ष्म (महीन) पीला वस्त्र दे तथा एक लोहे का बना हुआ पात्र उसके दोनों चरणों के पास रखे और यह कहे कि 'जिन किन्हीं भी पापों को मैंने लोभ में पड़कर किया है, वे लौहमय पात्रादि के दान करने से शीघ्र ही नष्ट हो जायँ।' फिर काँसे के पात्र को तिलों से भरकर बायें पैर के पास रखे और यह कहे कि 'कर्म के प्रसंग में मैंने जिन किन्हीं पापों को किया है वे सर्वदा मेरे इस काँसे के बने हुए पात्रों के दान से नष्ट हो जायँ।' फिर ताम्र के पात्र में मधु भर कर दाहिने पैर के पास रखे और कहे कि 'दूसरे की निन्दा या चुगुली करके अथवा विना किसी विधि के मांस का भक्षण कर के मैंने जो पाप किया है, वह सब मेरे इस ताम्र पात्र के दान करने से नष्ट हो जायँ। कन्या अथवा गौ के लिए मिथ्या कहने में तथा परकीया स्त्री के साथ स्पर्शादि करने में जो मैंने पाप किये हों वे इस चाँदी के पात्र-दान से शीघ्र ही नष्ट हो जायँ।' चाँदी तथा ताँबे के बने हुए इन दोनों पात्रों को ऊपर के पैर के पास रखने चाहियें। 'जनार्दन! मैंने अपनी दुष्ट बुद्धि द्वारा सहस्रों जन्मों में जो पाप कर्म किये हैं, उन सब को इस सुवर्ण पात्र के दान से शीघ्र ही नष्ट कर दीजिये।' यह मंत्र सुवर्ण पात्र को दान करते समय कहे। सुवर्ण, मोती, मूंगा, अनार, बिजौरा नींबू—इन सब को उस मृगचर्म के प्रशस्त कान पर तथा खुर पर सिंगारा (एक जलीय फल) का दान करे। इस प्रकार के विधान में सभी प्रकार के पाक तथा फलों को भी रखे। इन दानों को लेनेवाला ब्राह्मण विद्वान् तथा नित्य अग्न्याधान करनेवाला हो, स्नान किये हुए हो, दो सुन्दर वस्त्रों से विभूषित हो तथा अपनी शक्ति के अनुरूप अलंकारों के द्वारा विभूषित किया गया हो। हे राजन्! उस मृगचर्म का दान पुच्छ देश में प्रशस्त है। तत्पश्चात् उसके समीप स्थित हो निम्न प्रकार से मंत्रोच्चारण करे। 'कृष्णाजिन....' इत्यादि वेद मंत्र का उच्चारण कर कृष्ण चर्म, सुवर्ण, मधु, घृत को जो ब्राह्मण को दान करता है वह सभी दुष्कर्मों से छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य खुर तथा सींगों समेत कृष्ण मृगचर्म को तिलों से आच्छादित कर तथा सभी प्रकार के वस्त्रों से अलंकृत कर वैशाख महीने की पूर्णमासी तिथि को—विशेषकर विशाखा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा को—दान करता है वह मानो सभी पर्वतों व जंगलों समेत सातों द्वीपों से संयुक्त समस्त पृथ्वी का दान करता है। 'हे कृष्णाजिन्! देव! कृष्णस्वरूप! तुम्हें हमारा नमस्कार है, इस सुवर्ण के दान से तथा तुम्हारे दान से मेरे समस्त पाप नष्ट हो जायँ, तुम प्रसन्न हो जाओ। तुम तैंतीस देवताओं के आधार रूप में व्यवस्थित हो, तुम साक्षात् मूर्तिमान् कृष्ण हो। हे कृष्णाजिन्! तुम्हें हमारा नमस्कार है, इस सुवर्णयुक्त नाभि के समेत मैं तुझे दान कर रहा हूँ, इससे वृषभध्वज शंकर मुझ पर प्रसन्न हों। कृष्ण, कृष्ण गलेवाले, (नीलकण्ठ) कृष्ण चर्म धारण करनेवाले वृषभध्वज शंकर इस कृष्णाजिन के दान देने से मुझ नष्ट पापवाले के ऊपर प्रसन्न हों।' इस उपर्युक्त विधि से कृष्ण मृगचर्म का दान देकर हे राजन्! उस प्रतिगृहीत ब्राह्मण का स्पर्श चिता के खूंटों के समान नहीं करना चाहिये, श्राद्धकाल एवं दान काल में उस ब्राह्मण को दूर ही रखे। उस ब्राह्मण को अपने

घर से बिदाकर फिर मंगलस्नान करे। हे राजेन्द्र! उस चम्पक की शाखा तथा पूर्ण कुम्भ द्वारा स्नान कर आचार्य बना कर उक्त विधि से पूजन करे। फिर 'आप्यायस्व...' तथा 'समुद्र ज्येष्ठा....' आदि सोलह ऋचाओं से शिर पर अभिषेचन कर उपरान्त दो बिना फटे हुए वस्त्र पहिनकर आचमन करे तब दाता पवित्र होता है। उस वस्त्र को कलश समेत ले जाकर चौराहे पर छोड़ आवे, तब देवताओं की प्रदक्षिणा कर मण्डल में प्रवेश करे। ब्राह्मण को चाहिये कि वह पीत वस्त्र धारण किये हुए यज्ञ करनेवाले को, यदि वह मुक्ति की कामना करनेवाला हो तो ब्रह्मा के कलश से उसका मार्जन करे। हे राजन्! यदि यज्ञकर्त्ता लक्ष्मी का अभिलाषी है तो वैष्णव कलश द्वारा उसका मार्जन करे, राज्य की कामना करनेवाला है तो उसके शिरपर इन्द्र के कलश द्वारा मार्जन करे, द्रव्य और प्रताप की इच्छा करनेवाला है तो उसका मार्जन अग्नि देवता के घट के जल द्वारा करे, मृत्यु के जीतने के लिए यम के कलश से मार्जन करे। मार्जन के उपरान्त यजमान तिलक लगाये फिर ब्राह्मणों को दक्षिणा दे, दक्षिणा दान के उपरान्त इस समस्त मृगचर्म दान के विधान की सिद्धि के लिए विशेष आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिये। हे नृपतिश्रेष्ठ! इस प्रकार बताये गये विधान से करने पर जो सिद्धि प्राप्त होती है उसके वर्णन की सामर्थ्य यद्यपि देवताओं को भी नहीं है तथापि मैं संक्षेपतः आप से बतला रहा हूँ, सुनिये। इस कृष्ण मृगचर्म के दान करने से दाता निश्चय ही समग्र पृथ्वी के दान करने का फल प्राप्त करता है, सभी लोकों को जीतता है, पक्षी के समान सर्वत्र इच्छानुकूल विचरण करता है तथा निश्चय ही महाप्रलयकाल पर्यन्त स्वर्ग लोक में स्थित रहता है, कभी पिता तथा पुत्र के मरण का दुःखदायी अवसर नहीं देखता, न कभी स्त्री से वियुक्त होता है और न मर्त्यलोक में जन्म लेने पर कभी धन तथा देश के वियोग का दुःखदायी अवसर ही झेलता है। इस प्रकार जो मनुष्य समाहित चित्त हो कुलीन ब्राह्मण को श्रीकृष्ण जी की प्रिय वस्तु इस कृष्ण मृग के चर्म का दान करता है वह कभी मृत्यु के प्रति शोकग्रस्त नहीं हो सकता वरन् अपने मनोनुकूल सभी फलों को प्राप्त करता है। ॥१-४१॥

श्री मात्स्य महापुराण में कृष्ण मृगचर्म प्रदान नामक दो सौ छठाँ अध्याय समाप्त ॥२०६॥

दो सौ सातवाँ अध्याय

मनु ने कहा—भगवन्! अब मैं वृषोत्सर्ग की विधि तथा वृषभ के लक्षणों को और वृषोत्सर्ग के करने से जिस महान् पुण्य फल की प्राप्ति होती है उसे सुनना चाहता हूँ। ॥१॥

मत्स्य ने कहा—राजन्! सर्वप्रथम धेनु की परीक्षा करनी चाहिये। सुशीला, गुणवती, सभी अंगों से युक्त, सरल स्वभाववाली, मोटी-ताजी, जिसके बछड़े जीते हों, रोग रहित, मनोहर रंगोंवाली, चिकने खुरवाली, चिकनी सींगोंवाली, मनोहारिणी, सुदृश्य, न अधिक छोटी, न अधिक ऊँची, अचंचल, भवँरीवाली,

विशेषतः दाहिनी ओर की भँवरीवाली, बायीं ओर बाईं भँवरी से युक्त, विस्तृत जंघोंवाली, मुलायम, संहत तथा लाल होंठोवाली, लाल कंधे से सुशोभित, काली नहीं प्रत्युत लम्बी स्फुटित लाल जिह्वा एवं अश्रुरहित निर्मल नेत्रोंवाली, दृढ़ तथा घने खुरोंवाली, वैदूर्य, मधु अथवा जल के बुद्बुद के समान रंगोंवाली हो, लाल तथा चिकने नेत्र और लाल कनीनिका से युक्त सात अथवा चौदह दाँत तथा श्यामवर्ण की तालु से युक्त हो। छः स्थानों पर उच्च, पाँच स्थानों पर समान तथा विस्तृत तथा आठ स्थानों पर आयत तथा बगल और उरु देश में सुन्दर हो। शिर, और कंधे समान जिस गाय के हों वह ऐसे कार्यों में शुभ लक्षणों से युक्त मानी गई है। ॥२—८॥

मनु ने कहा—भगवन्! आपने जो यह बतलाया कि उस गाय के छः स्थानों को उन्नत, पाँच स्थानों को सम तथा आयत तथा आठ स्थानों को आयत होना चाहिये सो वे कौन-से शुभ लक्षण हैं? ॥९॥

मत्स्य ने कहा—हे वसुधाधिप! उरु, पीठ, शिर, दोनों कोख तथा कमर—, धेनु के इन पाँच उन्नत स्थानों की विचक्षण लोग पूजा करते हैं। हे सूर्यपुत्र! दोनों कान, दोनों नेत्र तथा ललाट—ये पाँच स्थान सम तथा आयत प्रशंसित हैं। पूंछ, गले के पास झूलनेवाला चमड़ा तथा दोनों सक्थियाँ और चारो स्तन—ये आठ तथा शिर और कंधा—ये दो, कुल मिलाकर दस स्थान विस्तृत श्रेष्ठ माने गये हैं। ऐसे सर्व-लक्षण सम्पन्न धेनु के बछड़े को, जो सभी शुभ लक्षणों से संयुक्त हो, जिसका कंधा तथा ककुद् (डिल) ऊँचा हो, पूँछ और गले के नीचे का कम्बल (लटकता हुआ चमड़ा) कोमल हो, कटि तट तथा स्कन्ध विशाल हो, वैदूर्य मणि के समान नेत्रोंवाला हो, सींगों के अग्रभाग पर प्रबाल (मूंगे) के भीतर की भाँति हो, पूँछ लम्बी तथा मोटी हो, अग्र भाग पर नव या अट्ठारह नोकीले सुन्दर दाँत हो, मल्लिका के पुष्पों की भाँति आँख हो, ऐसा वृषोत्सर्ग करने से गृह में धन-धान्य एवं सम्पत्ति की वृद्धि होती है। ब्राह्मण के लिए ताम्र के समान लाल अथवा कपिल वर्ण के वृषभ की प्रशंसा की जाती है। सफेद, लाल, काला, भूरा, पाटल वर्ण का, पीठ पर लाल रंग का, अनेक रंगों का, पाँच प्रकार के बालों वाला, विशाल कान वाला, विशाल स्कन्ध वाला, चिकने रोमों वाला, लाल आँखों वाला, कपिल, लाल सींग व नीचे भाग में लाल रंग वाला, सफेद पेट वाला—ऐसा वृषभ भी ब्राह्मण के लिए श्रेष्ठ कहा गया है। लाल रंग के चिकने रोमवाला वृषभ क्षत्रिय जाति के लिए प्रशंसित है। वैश्य के लिए सुवर्ण के समान वर्णवाला वृषभ प्रशंसित है। शूद्रों के लिए काले बैल का विधान है। जिस वृषभ के सींग आगे की ओर विस्तृत तथा भौंह और मुख की ओर झुकी हुई हों, वह सभी वर्णों के लिए सर्वार्थ का सिद्ध करनेवाला होता है। बिल्ली के समान पैरोंवाला, कपिल तथा कपिल व पीले रंग का मिश्रित वर्णवाला वृषभ धन्य होता है। श्वेत वर्ण का बिल्ली के समान पैरोंवाला, मणि के समान आँखोंवाला वृषभ धन्य है। जो वृषभ श्वेत व पीले रंग का तथा पैरों में श्वेत रंग का हो वह भी धन्य होता है। जो वृषभ सभी पैरों में श्वेतवर्ण का अथवा दो पैरों में श्वेतवर्ण का, रंग में कपिंजल अथवा तीतर के ढँग का होता है वह भी धन्य होता है। जिस वृषभ का मुख कान तक श्वेत दिखाई पड़ता है तथा जो विशेषतः लालवर्ण

का होता है वह नन्दीमुख वृषभ कहलाता है। जिस वृषभ का पेट तथा पीठ श्वेतवर्ण का होता है वह समुद्रान्त नामक वृषभ सर्वदा परिवार को समृद्धि देनेवाला होता है। मल्लिका के फूलों के समान चितकबरे रंगवाला बैल धन्य है। कमल के मंडल के समान विचित्र रंगवाला बैल भी भाग्यदायी होता है। अलसी के फूल के समान नीले रंगवाला बैल तो अति शुभदायी कहा गया है। हे राजन्! उत्तम वृषभों के इन लक्षणों को मैंने आप से बतलाया, अब अशुभ लक्षण सम्पन्न वृषभों का वर्णन कर रहा हूँ। ॥१०-२६॥

काली तालु, ओंठ और मुखवाले, रूखे सींगों व खुरोंवाले, जिनके रंग प्रकट न होते हों (धूमिल या मटमैला), छोटा, बाघ तथा सिंह के समान भयानक और खूँखार, कौवे और गृद्ध के समान मनहूस रंगवाले, मूषक के समान असुन्दर एवं अल्पकाय, मन्द प्रकृतिवाले (कादर), काने, लंगड़े, नीची ऊँची आँखोंवाले, छोटे-बड़े या तीन या एक पैरों में श्वेत रंगवाले, बड़े चंचल नेत्रों वाले—ऐसे वृषभों का उत्सर्ग न तो करना चाहिये और न गृहस्थी के कार्यों के लिए अपने घर पालना ही चाहिये। फिर से मैं उत्सर्ग करने योग्य तथा पालने योग्य वृषभों का लक्षण तुमसे बतला रहा हूँ। जिनके सींग स्वस्तिक के आकार के हों, जिनके स्वर बादलों की गर्जना के समान गम्भीर हों, जो बहुत लम्बे हों, मतवाले हाथी के समान चलनेवाले हों, विशाल छातीवाले हों, ऊँचे हों, अति बलवान तथा पराक्रमी हों, शिर, दोनों कान, ललाट, पूँछ, चारों पैर, दोनों नेत्र तथा दोनों बगलें काले वर्ण की हों—ये लक्षण चन्द्रमा के समान श्वेतवर्ण के वृषभों के हों तो वे प्रशंसनीय हैं। ये उपर्युक्त लक्षण या चिह्न यदि श्वेत हों तो काले वृषभों के लिए प्रशंसनीय हैं। जो वृषभ पृथ्वी को अपनी सींगों से खनता हो, जिसकी विशाल पूँछ पृथ्वी तक लम्बी हो और मोटी हो, जो आगे की ओर उन्नत हो और रंग में नीले वर्ण का हो वह वृषभ प्रशंसनीय माना गया है। जिस वृषभ के शरीर में शक्ति, ध्वजा अथवा पताकाओं की रेखा-सी बनी हो वे अनड्वाह (अंडू) वृषभ विचित्र सिद्धियों के प्रदान करनेवाले कहे जाते हैं। जो वृषभ प्रदक्षिणा करके (घूम कर के) लौटते हों, या स्वयं बिना कहे ही लौट पड़ते हों, जिनके शिर व कंधे समुन्नत हों वे धन्य तथा अपने समूह की वृद्धि करनेवाले हैं। सींगों के अग्रभाग पर लाल चिह्नवाला बैल यदि श्वेत वर्ण का हो और उसके खुर प्रवाल के समान लाल वर्ण के हों तो उससे बढ़कर अति भाग्यशाली कोई वृषभ नहीं होते। ऐसे वृषभों को प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़कर पालना चाहिये अथवा उत्सर्ग करना चाहिये। दोनों दशाओं में ये धनधान्य को बढ़ाते हैं। जिस वृषभ के चारों चरण, मुख, तथा पूँछ श्वेत वर्ण के हों तथा शेष शरीर का रंग लाक्षा के रस के समान हो उसे नील वृषभ कहते हैं। ऐसे वृषभ यदि मिलें तो उनका उत्सर्ग करना चाहिये, घर पर पालना नहीं चाहिये, क्योंकि ऐसे भाग्यशाली वृषभ के उत्सर्ग के लिए पितरों की एक ऐसी सनातन गाथा प्रचलित है कि 'बहुतेरे पुत्रों की कामना करनी चाहिये; क्योंकि यदि उनमें से एक भी गया की यात्रा करेगा, या गौरी (आठ वर्ष की) कन्या का दान करेगा या नीले वृषभ का उत्सर्ग करेगा, तो हम धन्य होंगे।' हे राजन्! ऐसे सर्वलक्षणसम्पन्न वृषभ का—चाहे वह घर पर उत्पन्न हुआ हो या क्रय किया

गया हो—उत्सर्ग करके महात्मा पुरुष कभी मृत्यु के प्रति शोकग्रस्त नहीं होता तथा मृत्यु को प्राप्तकर मोक्ष प्राप्त करता है, इसीलिए मैंने इसको आप से बतलाया है। ॥२७-४१॥

श्री मात्स्य महापुराण में वृषभलक्षण नामक दो सौ सातवाँ अध्याय समाप्त। ॥२०७॥

दो सौ आठवाँ अध्याय

सूत ने कहा—तदनन्तर अमित पराक्रमशाली राजा मनु ने देवाधिदेव मत्स्य भगवान् से पतिव्रता स्त्रियों के माहात्म्य तथा तत्सम्बन्धी कथा को पूँछा। ॥१॥

मनु ने कहा—पतिव्रता स्त्रियों में कौन श्रेष्ठ है? किस स्त्री ने मृत्यु को पराजित किया था? किस भाग्यशालिनी का नामोच्चारण सर्वदा मनुष्यों को करना चाहिये? सभी पापों को नष्ट करनेवाली इस कथा को मुझे सुनाइये। ॥२॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे धर्म के महत्त्व को जाननेवाले! धर्मराज भी स्त्रियों के प्रतिकूल कोई व्यवहार नहीं कर सकते, पतिव्रता स्त्रियाँ उनसे भी सर्वदा सम्माननीय कही गई हैं। इस विषय में तुम्हें मैं पापों को नष्ट करनेवाली एक कथा को सुना रहा हूँ कि किस प्रकार एक पतिव्रता स्त्री ने मृत्यु के पाश में गये हुए अपने प्रिय पति के प्राणों की रक्षा की थी। ॥३-४॥

प्राचीनकाल में मद्रदेश में शाकल अश्वपति नामक एक राजा था, जिसके कोई पुत्र नहीं था, अतः पुत्र की कामना से उत्तम ब्राह्मणों के कहने पर उसने सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करनेवाली सावित्री देवी की आराधना की और प्रतिदिन सैकड़ों ब्राह्मणों द्वारा सावित्री देवी की प्रसन्नता के लिए सफेद सरसों का हवन करवाया। इस प्रकार दस महीने बीत जाने पर चतुर्थी तिथि को सावित्री देवी ने अपनी मूर्ति राजा को दिखलाया अर्थात् दर्शन दिया। ॥५-७॥

सावित्री ने कहा—राजन्! मैं जानती हूँ कि तू नित्य मेरी भक्ति में लगा रहता है अतः मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, तुझे सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या होने का वरदान मैं दे रही हूँ। ॥८॥

राजन्! इतना कहकर प्रणत हुए राजा के सम्मुख सावित्री देवी आकाश में बिजली की भाँति न जाने कहाँ अन्तर्हित हो गईं। राजा की पतिव्रता पत्नी का नाम मालती था, अवसर आने पर रानी ने रूप एवं सौन्दर्य में सावित्री ही की भाँति एक सुन्दरी कन्या को जन्म दिया। राजा ने कन्या की उत्पत्ति के बाद ब्राह्मणों से कहा कि यह मेरी कन्या हवन से प्रसन्न सावित्री देवी की दी हुई है और स्वरूप में भी उन्हीं के समान है, अतः इसका भी नाम सावित्री होगा। राजन्! राजा के इस प्रस्ताव पर ब्राह्मणों ने भी उस पुत्री का नाम 'सावित्री' ही रखा। समय आने पर सावित्री युवती हुई, पिता ने उसका सत्यवान् के लिए वाग्दान कर दिया। तदनन्तर एक बार कभी नारद ने आकर अमित तेजस्वी राजा से कहा कि 'यह तुम्हारा

जामाता सत्यवान् तो एक ही वर्ष में क्षीणायु होने के कारण मर जायगा।' नारद की ऐसी अमंगल वाणी सुनकर भी राजा ने यह सोचकर कि 'कन्यादान एक ही बार होता है' अपनी कन्या सावित्री को द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् को ही व्याहा। सावित्री भी अपने भवन में पतिदेव को प्राप्तकर नारद की उस अशुभ वाणी से काँपते हुए हृदय द्वारा काल यापन करने लगी। वन में अपने सास श्वसुर तथा पतिदेव की वह बड़ी शुश्रूषा करती थी। किन्तु उसका श्वसुर राजा अपने राज्य से च्युत होने एवं अंधा होने के कारण तथोक्त सर्वगुणसम्पन्न एवं सेवापरायण राजपुत्री को पुत्रवधूरूप में प्राप्त कर के भी सन्तुष्ट नहीं होता था। 'आज के चौथे दिन ही सत्यवान् मर जायगा' ऐसा ब्राह्मणों के कहने पर एवं श्वसुर की भी आज्ञा प्राप्त कर राजपुत्री धर्मपरायणा सावित्री ने तीन रात के व्रत का अनुष्ठान किया। उस चौथे दिन जब सत्यवान् ने लकड़ी, एवं आहार की टोह में जंगल को प्रस्थान किया तब सास श्वसुर की आज्ञा लेकर डरी हुई सावित्री भी अपने पति के पीछे उस घोर जंगल को गई। 'प्रार्थना के भंग होने पर राजपुत्री को बहुत कष्ट होगा—ऐसा विचार कर श्वसुर ने भी उसे साथ जाने की आज्ञा दे दी थी। नारद के वचन का ध्यान कर चित्त में अति कष्ट के होते हुए भी उसने अपने महान् भय को पतिदेव से व्यक्त नहीं किया। किन्तु मनबहलाव के लिए वन में छोटे-बड़े वृक्षों के बारे में झूठ-मूठ पूछताछ करती रही। उस भीषण वन में विशाल वृक्षों, पक्षियों एवं पशुओं को दिखला-दिखला कर थकी हुई, पद्म के समान विस्तृत लोचनों-वाली सावित्री को मनुष्यों में वीर एवं श्रेष्ठ सत्यवान् ने सान्त्वना देकर आश्वस्त रखा।॥९-२१॥

श्री मात्स्य महापुराण में सावित्रीउपाख्यान के प्रसंग में सावित्रीवनप्रवेशनामक दोसौआठवाँ अध्याय समाप्त।॥२०८॥

दो सौ नवाँ अध्याय

सत्यवान् ने कहा—विशाल नेत्रोंवाली! इस हरित भूमि से शोभित वन में वसन्त में रति की वृद्धि करनेवाले, नेत्र तथा नासिका को सुख प्रदान करनेवाले, मनोहर आम के वृक्ष को देखो। इस लालिमामय फूले हुए अशोक को इस वन में देखकर मालूम होता है कि यह वसन्त मेरा ही परिहास कर रहा है। दाहिनी ओर दक्षिण दिशा में जलते हुए अंगारों के समान शोभायमान फूले हुए किंशुक वृक्षों से युक्त इस मनोहारिणी वनस्थली की ओर देखो! सुगंधित पुष्पों की सुरभि से समन्वित वनपंक्तियों से हम लोगों की ओर निकलकर आती हुई वायु, मालूम पड़ रहा है, हमारे परिश्रम के क्लेश को हरने के लिए स्वागत करने आ रही है। हे विशाल नेत्रोंवाली! इधर पश्चिम दिशा में फूले हुए कनेर के पुष्पों से युक्त स्वर्णिम शोभावाली वनपंक्ति विराजमान हो रही है, देखो! वृक्षों पर से गिरी हुई लताओं के जालों से वनस्थली के मार्ग रुँध गये हैं। सर्वाङ्गसुन्दरी! देखो पुष्पों के समूहों से वहाँ की पृथ्वी कितनी मनोहारिणी लग रही है। वरवर्णिनी! मधु से उन्मत्त हुए भ्रमर समूहों की गुंजार से मालूम पड़ता है कि

कामदेव हम जैसे पथिकों को मारने के लिए अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर टंकोर कर रहा है। नाना प्रकार के फूलों के सुस्वादु से सुप्रसन्न मुखवाले पुरुष कोकिल के सुरम्य स्वर से निनादित एवं सतिलका (मनोहर तिलक वृक्षों से विभूषित) यह वनस्थली तुम्हारी ही भाँति शोभायमान हो रही है। आम की ऊँची डाली पर बैठी हुई कोकिला मंजरी (बौर) की धूल से पीत वर्ण होने के कारण केवल अपने सुरीले शब्दों से ही अपना पता दे रही है, जैसे चेष्टा दिखाकर कुलीन पुरुष अपनी सूचना देते हैं। काम में अनुरक्त मधुप पुष्पों की धूलि से धूसरित अपनी प्रियतमा का अनुसरण करते हुए एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर उड़-उड़ कर जा रहे हैं। देखो ! पुरुष कोकिल इस अनेक प्रकार के पुष्पों से सुसमृद्ध इस वन में अपनी प्रियतमा की चोंच के अग्र भाग से उच्छिष्ट आम की मञ्जरी का ही स्वाद ले रहा है। कौआ पंखों से बच्चे को छिपाकर बैठी हुई अपनी प्रसूता प्रिया को वृक्ष के अग्रभाग पर बैठकर अपनी चोंच से प्रसन्न कर रहा है। नीचे के भूभाग पर अपनी प्रिया के साथ बैठा हुआ यह कपिंजल (तीतर) कामासक्त होने के कारण आहार को भी नहीं ग्रहण कर रहा है। हे विशालाक्षि ! यह कलविंक (चटक) पक्षी अपनी प्रिया के अंकों में स्थित हो बारम्बार रमण करता हुआ कामियों को उत्कण्ठित कर रहा है। अपनी प्रिया के साथ वृक्ष की डाली पर बैठा हुआ यह शुक अपने हाथों से टहनी को नीचे करता हुआ उसे सफल-सा कर रहा है। इस वन में मांस का आहार कर तृप्त हो यह युवा सिंह निद्रा में लीन हो शयन कर रहा है और उसकी प्रियतमा उसके पैरों के मध्य भाग में शयन कर रही है। पर्वत की कन्दरा में बैठे हुए बाघ के दम्पति को देखो, जिनके नेत्र की कान्ति से होनेवाले प्रकाश में वह गुफा अन्य गुफाओं से भिन्न-सी दिखाई पड़ रही है। देखो, यह गैंडा अपनी प्रिया को जीभ के अग्रभाग से चाट रहा है और प्रिया के चाटने पर स्वयं आनन्द का अनुभव कर रहा है। देखो, वह वानरी अपने अंक में शिर कर के सोते हुए प्रियतम के अंग से ढील को निकाल-निकाल कर आनन्दित कर रही है। देखो, वह बिलाव पृथ्वीतल पर लेटी हुई पेट को दिखाती अपनी प्रिया बिल्ली को अपने नखों और दाँतों से मालूम पड़ रहा है कि काट रहा है, परन्तु वास्तव में वह पीड़ा नहीं दे रहा है। देखो, पीड़ित होकर ये खरगोश और खरगोशिनी अपने पैरों को पेट में छिपाकर कैसे सो रहे हैं, पर इनके दोनों कान किस प्रकार ऊपर उठकर इनकी सूचना दे रहे हैं। हे सुन्दरि ! कमलों से सुसमृद्ध सरोवर में यह कामार्त्त हाथी स्नान करके कमलों के डण्ठलों से अपनी प्रिया को सन्तुष्ट कर रहा है। पीछे चलनेवाले अपने बच्चों के साथ यह शूकरी अपने प्रियतम के सूड़ों द्वारा खनकर बाहर किये गये मोथों को पति के पीछे-पीछे चलती हुई खाती जा रही है। देखो, इस वन में दृढ़ अंगोंवाला कामार्त्त यह महिष अंगों में कीचड़ों से लथफथ हुआ अपनी भागती हुई प्रिया के पीछे-पीछे दौड़ रहा है। सुन्दरि ! इस अपनी प्रिया के सहित मृग को देखो, जो कौतूहल युक्त मुझको अपने मनोहर कटाक्षों से ताक रहा है। देखो, वह रोही मृगी अति स्नेहयुक्त हो अपनी सींगों के अग्रभाग से प्रियतम को ढकेलती हुई अपने पिछले पैरों से मुख को खुजला रही है। अरे, शीघ्र उस श्वेत बालों वाली चमरी गाय को तो देखो, जो खड़ी हुई है और जिसके पीछे कामार्त चमर गर्वित नेत्रों से मुझको ताक रहा है।

उस धूप में खड़े हुए नीलगाय को देखो जो अपनी प्रिया के साथ आनन्दयुक्त हो डिल पर बैठे हुए कौवे को निवारित करता हुआ जुगाली कर रहा है। लम्बे बेर वृक्ष की शाखा पर फलों को खाने की इच्छा से अगले दोनों पैरों को उठाकर खड़े हुए अपनी प्रिया के साथ उस बकरे को तनिक देखो। सरोवर में विहार करते हुए उस हंसिनी समेत हंस को देखो, जो सुप्रकाशित चन्द्रमा के विम्ब की शोभा धारण कर रहा है। हे सुन्दरि! देखो वह चक्रवाक अपनी प्रिया के साथ इस कमलों से सुशोभित तथा समृद्ध सरोवर में अपनी प्रिया को फूली हुई पद्मिनी के समान कर रहा है।' ऐसा कह कर सत्यवान् ने फिर कहा—'हे सुभ्रु! मैं फलों को एकत्र कर चुका तथा तुम पुष्पों को एकत्र कर चुकी; अभी इन्धन का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया, अतः अब उसे एकत्र करना चाहिये। सुन्दरि! तुम तब तक इस सरोवर के तट पर वृक्ष की छाया में बैठकर क्षण मात्र प्रतीक्षा करते हुए विश्राम करो, जब तक मैं इन्धन भी एकत्र किये लेता हूँ। ॥१-३३॥

सावित्री ने कहा—कान्त! यदि तुम कह रहे हो तो मैं वैसा ही करूँगी। परन्तु तुम मेरी आंखों के सामने से दूर मत जाओ, क्योंकि इस विकराल तथा घने बन में मैं अकेले डरती हूँ। ॥३४॥

मत्स्य ने कहा—राजन्! सावित्री के ऐसा कहने पर सत्यवान् राजपुत्री के सम्मुख ही उस सरोवर से थोड़ी ही दूर पर काष्ठ एकत्र करने लगा, परन्तु राजपुत्री उतनी दूर जाने पर भी उसे मरा हुआ-सा मानने लगी। ॥३५॥

श्री मात्स्य महापुराण के सावित्री उपाख्यान में वनदर्शन नामक दो सौ नवाँ अध्याय समाप्त ॥२०९॥

दो सौ दसवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—राजन्! काष्ठ काटते हुए उस सत्यवान् के शिर में पीड़ा होने लगी, जिससे विह्वल होकर वह अपनी प्रिया के समीप आकर कहने लगा—'इस परिश्रम के करने से मेरे शिर में बहुत पीड़ा हो रही है, मालूम पड़ रहा है कि मैं अंधकार में घुसा जा रहा हूँ, दर्द के मारे कुछ भी मुझे सूझ नहीं रहा है। अब मैं तुम्हारे अंक में शिर रख कर सोना चाहता हूँ।' राजपुत्री से इस प्रकार बातें कर सत्यवान् उसके अंक में शिर रख कर सो गया। इस प्रकार उसके अंक में शिर रख कर जब सत्यवान् निद्रा में निमग्न हो गया तब महाभाग्यशालिनी पतिव्रता राजपुत्री सावित्री ने वहाँ पर आये हुए धर्मराज को देखा, जो नीले कमल के समान श्यामल वर्ण के थे तथा पीताम्बर धारण किये हुए थे। वे उस समय बिजली की लता से सुशोभित बादल के समान शोभायमान हो रहे थे, उनके शिर पर सूर्य के समान देदीप्यमान मुकुट सुशोभित था तथा दोनों कानों में कुण्डल विराज रहे थे, विशाल वक्षस्थल पर हार शोभित हो रहा था, हाथों में अंगद थे, उनके पीछे-पीछे महाकाल और मृत्यु भी थे। उस स्थान पर पहुँच कर धर्मराज ने सोये हुए सत्यवान् के शरीर में अँगूठे जितने लम्बे पुरुष को अपने पाश में

बाँधकर वश में किया और दक्षिण दिशा की ओर मुखकर शीघ्र ही प्रस्थान किया। तब सुन्दरी सावित्री भी पति के शरीर को निर्जीव देख, जाते हुए धर्मराज के पीछे-पीछे बिना आलस के चली और काँपते हुए हृदय से अंजलि बाँध कर धर्मराज से बोली—'माता की भक्ति से इस लोक में, पिता की भक्ति से मध्यम लोक में तथा गुरु की शुश्रूषा से ब्रह्मलोक में आनन्द की प्राप्ति होती है। जिस प्राणी ने इन तीनों धर्मों का पालन किया है उसका इन तीनों लोकों में आदर होता है। तथा जिसने इन तीनों का अनादर किया है उसकी सारी सत्क्रिया निष्फल ही समझनी चाहिये। जब तक ये तीन जगत् में जीवित रहते हैं तब तक किसी अन्य प्रकार के धर्म को करने की आवश्यकता नहीं है। उनके प्रिय एवं सुख के लिए मनुष्य को उनकी शुश्रूषा में सर्वदा निरत रहना चाहिये। उन्हें किसी प्रकार का भी क्लेश न हो—इस प्रकार विचार कर जब कभी किसी की दासता भी करे तो मनसा, वाचा, कर्मणा जो कुछ मिले वह सब भी उन्हें ही निवेदित कर दे। माता, पिता और गुरु—इन तीनों के प्रति मनुष्य को सर्वदा इसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिये।' ॥१—१४॥

यम ने कहा—तुम हमसे जिस कामना को पूर्ण कराना चाहती हो उसे छोड़ दो। सचमुच संसार में माता पिता तथा गुरु से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है। किन्तु इस कार्य में तुम्हारे पीछे-पीछे आने से हमारे काम में विघ्न पड़ रहा है और तुम भी बेकार में परेशान हो रही हो। इसीलिए अब मैं तुमसे ऐसा कह रहा हूँ कि तुम लौट जाओ। हे धर्म के तत्त्व को जाननेवाली! तुम्हारा पति सचमुच गुरु जनों की पूजा में प्रेम करने वाला था और तुम भी पतिव्रता और साध्वी हो, किन्तु अब यहाँ हमारे पीछे-पीछे आने से तुम्हारी परेशानी बढ़ रही है, अतः मैं चाहता हूँ कि तुम लौट जाओ। ॥१५-१६॥

सावित्री ने कहा—स्त्रियों का पति ही देवता है, पति ही उसको एक मात्र शरण देनेवाला है। प्राणपति प्रियतम के साथ ही साध्वी स्त्रियों को भी अनुगमन करना चाहिये। कन्या को उसका पिता सीमित तथा अल्प सम्पत्ति देता है, भाई तथा पुत्र भी अल्प सम्पत्ति देते हैं, सर्वदा अमित के देने वाले अपने प्राणनाथ की कौन पतिव्रता पूजा न करेगी। जहाँ पर मेरे प्राणेश्वर ले जाये जा रहे हैं, अथवा स्वयमेव जा रहे हैं, हे सुरोत्तम! अपनी शक्ति भर मुझे भी वहाँ जाना चाहिये। हे देव! अपने प्राणपति को ले जाते हुए तुम्हारे पीछे-पीछे यदि मैं नहीं चल पाऊँगी तो मैं भी अपने प्राणों को छोड़ दूँगी। जो मनस्विनी स्त्री वैधव्य के अक्षरों से दूषित करके पुकारी जाने लगती है वह सभी आभूषणों के योग्य होकर भी असुन्दरी तथा भाग्यहीन है। ॥१७-२१॥

यम ने कहा—हे महाभाग्यशालिनि! पतिव्रते! कल्याणि! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ, अतः सत्यवान् के प्राणों को छोड़ कर जिस किसी वरदान की तुम्हें अभिलाषा हो उसे शीघ्र ही माँग लो ॥२२॥

सावित्री ने कहा—हे धर्मराज ! नष्ट हो गया है राज्य जिनका—ऐसे महनीय आत्मा मेरे श्वसुर को, जिन्हें आँखें भी नहीं हैं, आँख तथा राज्य—दोनों से संयुक्त कर दीजिये । ॥२३॥

यमराज ने कहा—हे कल्याणि ! तुम बहुत दूर चली आई हो, अतः लौट जाओ । तुम्हारी यह सब अभिलाषा सत्य होगी । इस प्रकार मेरे पीछे आने से मेरे कार्य में विघ्न पड़ रहा है और तुम्हें भी परेशानी उठानी पड़ रही है, इस लिये मैं अब तुमसे यह कह रहा हूँ कि तुम लौट जाओ । ॥२४॥

श्री मात्स्य महापुराण के सावित्री उपाख्यान में प्रथम वरलाभ नामक दो सौ दसवाँ अध्याय समाप्त । ॥२१०॥

दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय

सावित्री ने कहा—सुरोत्तम ! सत्पुरुषों के समागम में कैसा परिश्रम और कैसी परेशानी ? इसलिए आप जैसे महानुभावों के समीप में मुझे भी ग्लानि नहीं अनुभव हो रही है । साधु प्रकृति के प्राणी हों, अथवा असाधु प्रकृति के हों—सभी के निर्वाह कर्त्ता सत्पुरुष ही होते हैं, असज्जन पुरुष न तो सज्जनों के काम आ सकते हैं, न सत्पुरुषों का उनसे कोई कार्य सध सकता है और न वे स्वयं अपना ही कल्याण साधन कर सकते हैं । विष, अग्नि, सर्प तथा शस्त्र—इन सबों से भी संसार को उतना भय नहीं होता जितना भय निष्कारण क्रोध करनेवाले दुष्टों से होता है । सत्पुरुष अपने प्राणों की बाजी लगाकर परोपकार करते हैं, किन्तु असज्जन पुरुष अपने प्राणों को देकर भी दूसरे की हानि करते हैं । जिस परलोक की प्राप्ति के लिए सत्पुरुष लोग अपने प्राणों को भी तुच्छ तृण की भाँति होम देते हैं, उस परलोक की पराये की हानि में निरत रहनेवाले असज्जन कुछ भी परवा नहीं करते । जगत् की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा ने प्रत्येक स्थानों या नर समूहों में असत्पुरुषों के निग्रहार्थ या मारणार्थ राजा को बनाया है । राजा सर्वदा सच्चे तथा टुच्चे पुरुषों की परीक्षा करे । सज्जन हों तो उनका आदर करे, दुष्ट हों तो उन्हें दण्ड दे, जो ऐसा करता है वह सभी राजाओं में श्रेष्ठ है । सत्पुरुषों को सम्मान देने तथा दुष्टों के विग्रह करने के कारण ही राजा राजा है, स्वर्ग की प्राप्ति के इच्छुक राजा को इन दोनों बातों पर ध्यान रखना चाहिये । हे जगत् के स्वामी ! राजा लोगों के लिए सत्पुरुषों के परिपालन तथा दुष्टों के नियमन से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है । उन राजाओं से भी जो दुष्ट शासित नहीं किये जा सकते ऐसे असज्जनों को भी आप शासित करनेवाले हैं, इसी कारण आप सभी देवताओं से अधिक महत्त्व एवं विशेषतापूर्ण मुझे मालूम पड़ते हैं । यह समस्त जगत सत्पुरुषों द्वारा धारण किया गया है, उन सत्पुरुषों के आप अगुवा हैं, हे देव ! यही कारण है कि आप के पीछे चलते हुए मुझे कुछ भी क्लेश नहीं हो रहा है । ॥१-११॥

यमराज ने कहा—हे विशाल नेत्रोंवाली ! तुम्हारी इन धर्मयुक्त बातों को सुनकर मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ, अतः सत्यवान् के प्राणों को छोड़कर तुम्हें जिस किसी भी पदार्थ को प्राप्त करने की अभिलाषा हो, उसके लिए शीघ्र मुझसे वरदान माँग लो, देर न करो । ॥१२॥

सावित्री ने कहा—'हे प्रभो ! मैं अपने सौ सहोदर भाई होने की अभिलाषिणी हूँ, विना किसी पुत्र के दुखी मेरे पिता इस शत-पुत्र-लाभ से प्रसन्न हों ।' सावित्री की ऐसी प्रार्थना सुनकर यमराज ने कहा—'हे अनिन्दिते ! अब तुम वहाँ चली जाओ जहाँ से आई हो, और अपने पति के और्ध्वदेहिक (शवसंस्कार आदि) क्रियाओं को जाकर सम्पन्न करो । अब यह दूसरे लोक में आगया है, अतः तुम इसके पीछे नहीं चल सकती, चूंकि पतिव्रता हो, अतः एक मूहूर्त तक और मेरे साथ चल सकती हो । हे कल्याणि ! सत्यवान् ने गुरुजनों की शुश्रूषाकर महान् पुण्य अर्जित किया था अतः मैं स्वयं इसे ले जा रहा हूँ। हे सुन्दरि ! विद्वान् पुरुष को इतना तो अवश्य ही करना चाहिये कि वह अपनी माता, पिता तथा गुरु की सेवा में सदा तत्पर रहे । वन में निवास कर सत्यवान् ने इन तीनों की बड़ी शुश्रूषा की है । हे कल्याणि ! इसके साथ-साथ निवास करके तुमने भी स्वर्ग को जीत लिया है । हे शुभे ! लोग तपस्या, ब्रह्मचर्य, अग्नि और गुरु की शुश्रूषा कर स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, विशेषतया ब्राह्मण को अपने आचार्य, पिता, माता, तथा बड़े भाई का तो कभी अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति है, पिता प्रजापति की मूर्ति है, माता पृथ्वी की मूर्ति है तथा भाई स्वयं अपनी प्रतिमूर्ति है । मनुष्यों को उत्पन्न करते समय माता और पिता अपार कष्ट सहन करते हैं, उस महान् कष्ट से पुत्र का सैकड़ों वर्षों में भी निस्तार नहीं हो सकता । अतः मनुष्य को माता, पिता तथा आचार्य का सर्वदा प्रिय कार्य करना चाहिये, उन्हीं तीनों के सन्तुष्ट होने पर सभी तपस्या को सफल और सम्पन्न समझना चाहिये । इन तीनों की शुश्रूषा ही परम तपस्या कही गई है, उन लोगों की आज्ञा के विना मनुष्य को किसी भी अन्य प्रकार के धर्म का पालन नहीं करना चाहिये । मनुष्य के लिए वे तीन ही तीनों लोक हैं, तीनों आश्रम हैं, तीनों वेद हैं तथा तीनों अग्नियाँ हैं । पिता गार्हपत्याग्नि, माता दक्षिणाग्नि तथा गुरु आहवनीयाग्नि है, ये तीनों अग्नियों की उपासना मनुष्य के लिए गौरव की वस्तु है । जो गृहस्थाश्रमी इन तीनों गुरुजनों की सेवा में कभी असावधानी नहीं करता वह तीनों लोकों को जीतता है तथा अपने दीप्यमान शरीर से स्वर्ग में देवताओं के समान कालयापन करते हुए आनन्द का अनुभव करता है । हे कल्याणि ! अब तुम अपने शेष मनोरथ को त्याग दो और लौट जाओ,जिन प्रार्थनाओं को तुमने किया है वे सभी सफल होंगी । इस प्रकार हमारे पीछे आने से कार्य में विघ्न पड़ता है और तुम भी परेशान हो रही हो, अतः मैं अब तुमसे यही कह रहा हूँ कि तुम लौट जाओ ।' ॥१३-२८॥

श्री मात्स्य महापुराण के सावित्रीउपाख्यान में द्वितीय वरलाभ नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त । ॥२११॥

दो सौ बारहवाँ अध्याय

सावित्री ने कहा—देवश्रेष्ठ ! धर्म के कार्यों में कैसी ग्लानि अथवा कैसा क्लेश ? तुम्हारे चरण कमलों की सेवा तो परम धर्म का मूल हैं । हे देव ! ज्ञानी पुरुष को सर्वदा धर्म-कार्यों में लगे रहना चाहिये;

क्योंकि उसका लाभ सभी लाभों से विशेष महत्त्वपूर्ण है। हे प्रभो ! संसार में जन्म लेने का फल धर्म, अर्थ एवं काम—इन तीनों की प्राप्ति करना है, जो पुरुष धर्म से हीन है उसको अर्थ एवं काम की प्राप्ति बन्ध्या के पुत्र के समान कभी नहीं हो सकती। धर्म से अर्थ एवं काम दोनों की प्राप्ति होती है, तथा धर्म से ही इस लोक और परलोक—दोनों में सुख की प्राप्ति होती है। एक धर्म ही ऐसी वस्तु है जो मनुष्य के पीछे-पीछे चाहे वह जहाँ कहीं भी जाय—चलता है। संसार की अन्य सभी वस्तुएँ शरीर के साथ ही नष्ट हो जाती हैं, मनुष्य इस नश्वर संसार में अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरता है। एक धर्म ही उसके साथ-साथ चलता है, मित्र एवं परिवार के लोग भी उसका अनुसरण नहीं करते। कार्यों में सफलता सौभाग्य एवं सौन्दर्य सब कुछ धर्म से ही प्राप्त होते हैं। पुरुषान्तक ! ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, शिव, चन्द्रमा, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, वसुगण, अश्विनीकुमार एवं कुबेर प्रभृति देवताओं के लोक, जो सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले हैं, मनुष्य उन सब को धर्म द्वारा ही प्राप्त करता है। मनोहर द्वीपों एवं सुखदायी वर्षों (देशों) को मनुष्य धर्म द्वारा ही प्राप्त करते हैं, नन्दनादि देवताओं के मुख्य उद्यानों को भी वह धर्म से ही प्राप्त करते हैं। मनुष्यों को धर्म द्वारा ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है। वहाँ पर उसे विचित्र ढंग के विमान तथा कल्याणदायिनी अप्सराओं की प्राप्ति होती है। पुण्यशाली मनुष्यों के शरीर सदा तेजोमय रहते हैं, उन्हें राज्य की प्राप्ति होती है, राजा लोग उनकी पूजा करते हैं, उनके सभी मनोरथ सफल होते हैं तथा सर्वदा उनका अभ्युदय होता है। पुण्य का फल सर्वदा ही ऐसा देखा जाता है। हे सुराध्यक्ष ! उन भाग्यशाली पुण्यवान् पुरुषों को स्वर्ग में सुवर्ण तथा वैदूर्य के बने हुए डण्डेवाले सूर्य की प्रखर किरणों के समान तेजोमय चँवर डुलाये जाते हैं तथा पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल के समान शुभ्र एवं रत्नजटित वस्त्र से सुशोभित छत्र को भी वहाँ मनुष्य निज मांगलिक कर्मों द्वारा प्राप्त करता है। विजय की सूचना देनेवाले शंखों के स्वरों तथा मागध और वन्दियों की मांगलिक ध्वनियों के साथ अभिनन्दित होते हुए सुन्दर सिंहासन पर समासीन होने का सत्परिणाम पुण्य कर्मों का ही है। लाभकारी अन्न, जल, गीत, आज्ञाकारी अनुचर, मालाएँ, चन्दन, रत्न, सुन्दर तथा बहुमूल्य वस्त्र—ये सब भी पुण्य कर्मों के फल हैं। सुन्दरी एवं दयावती अति मनोहर स्त्रियाँ तथा उच्च महलों की छतों पर सुखपूर्ण निवास—ये भी शुभ कर्म करनेवालों को प्राप्त होते हैं। उस भाग्यशाली मनुष्य को शुभ कर्म के प्रभाव से सुवर्ण के बने हुए घुंघुरों से सुशोभित, चँवर तथा माला से सुशोभित तुरंग वहन करते हैं। चलते हुए पर्वतों के समान, सुवर्ण निर्मित अम्बारी से सुशोभित मत्त-गयन्दों के अचञ्चल पादविन्यास पर वह भाग्यशाली अपने पुण्य कर्म के प्रभाव से वहन किये जाते हैं। हे देव ! सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले, सभी पापों एवं दुश्चरितों को दूर करनेवाले स्वर्ग में वह पुरुष उपर्युक्त सुख-साधनों से सम्पन्न होकर विराजमान होते हैं। मानव अपने पुण्यकर्मों के प्रभाव से ही भक्ति को प्राप्त करते हैं। उस भक्ति के द्वार - यज्ञ, तपस्या, दान, इन्द्रियनिग्रह, क्षमाशीलता, ब्रह्मचर्य, सत्य, मांगलिक तीर्थों की यात्रा, स्वाध्याय, सेवा, सत्पुरुषों की संगति, देवार्चन, गुरुजनों की शुश्रूषा, ब्राह्मणों की पूजा, इन्द्रियों को स्ववश रखना, ब्रह्मचर्य तथा निरहंकारिता—ये सब हैं। इस कारण से उस भक्ति के

महत्त्व को जाननेवाले मानव को सर्वदा धर्माचरण करना चाहिये। मृत्यु किसी की यह प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने जीवन में अपना उद्देश्य पूरा कर लिया है या नहीं। हे देव! इसलिए मनुष्य को शैशव से ही धर्माचरण करना प्रारम्भ कर देना चाहिये क्योंकि यह जीवन नश्वर है। कौन जानता है कि आज ही किसी की मौत आ धमकेगी। हे सुरोत्तम! आँख से देखते हुए भी लोगों के सम्मुख उसकी मृत्यु खड़ी रहती है किन्तु तिस पर भी वह अमरों (मृत्यु रहित देवता) की भाँति आचरण करता है—यह एक महान् आश्चर्य है। युवक की अपेक्षा बालक और वृद्ध की अपेक्षा युवक अपने को मृत्यु से दूर मानता है किन्तु मृत्यु के अंक में बैठा हुआ वृद्ध किसकी अपेक्षा करते हुए गहरी नींव देने की बातें सोचा करता है। इतने पर भी मृत्यु से रक्षा की उपायों को सोचते एवं प्राप्त करते हुए उसकी कौन-सी गति होती है। प्राणधारियों को इस जगत् में केवल मृत्यु से ही भय नहीं है, बल्कि यह कहना चाहिये कि उसे अभय कहाँ है? इतना सब कुछ होने पर भी सुकृती जन सर्वदा निर्भय होकर संसार में जीवित रहते हैं। ॥१-२७॥

यमराज ने कहा—हे विशालनेत्रोंवाली! तुम्हारी इन धर्म युक्त बातों से मैं विशेष सन्तुष्ट हूँ, अतः सत्यवान् के प्राणों को छोड़कर तुम्हें अन्य जिस किसी पदार्थ की कामना हो उसे अविलम्ब माँग सकती हो। ॥२८॥

सावित्री ने कहा—हे देव! मैं तुमसे अपनी कोख से उत्पन्न होनेवाले सौ पुत्रों का वरदान माँग रही हूँ, क्योंकि विना संतति के यह प्रसिद्ध है कि किसी को सद्गति नहीं प्राप्त होती। ॥२९॥

यमराज ने कहा—हे कल्याणि! अब तुम शेष जिस मनोरथ की मुझसे कामना करती हो उसे छोड़कर लौट जाओ, तुम्हारी यह याचना भी सफल होगी। इस प्रकार तुम्हारे अनुगमन से मेरे कार्यों में विघ्न होगा और तुम्हें भी बेकार की परेशानी उठानी पड़ेगी, इसीलिये मैं कह रहा हूँ कि तुम लौट जाओ। ॥३०॥

श्री मात्स्य महापुराण के सावित्री उपाख्यान में तृतीयवरलाभ नामक दो सौ बाराहवाँ अध्याय समाप्त। ॥२१२॥

दो सौ तेरहवाँ अध्याय

सावित्री ने कहा—हे धर्म अधर्म दोनों के विधानों के जाननेवाले! सभी धर्मों के प्रवर्त्तक! तुम्हीं जगत् के स्वामी तथा समस्त प्रजात्मकसृष्टि के नियमन करनेवाले हो! हे देव। तुम सभी प्राणियों का उनके शुभाशुभ कर्मों के अनुसार नियमन (दण्ड आदि की व्यवस्था) करते हो, इसीलिए लोग तुम्हें 'यमराज' कहते हैं। हे प्रभो! धर्मपूर्वक इन सभी चराचर जगत् को तुम प्रसन्न करते हो, इसीलिए सत्पुरुष तुम्हें 'धर्मराज' भी कहते हैं। लोग अपने सत् तथा असत् कर्मों को आगे कर तुम्हारे समीप मृत्यु प्राप्त करने पर जाते हैं, इसीलिए मृत्यु भी तुम्हारा नाम कहा जाता है। संसार के सभी जीवों के काल एवं कला आदि काल के परिमाणों के अर्धभाग तक की स्मृति तथा गणना करते हो इसीलिए तत्त्वदर्शी

लोग तुम्हें 'काल' नाम से भी पुकारते हैं। हे महाद्युति! संसार के सभी चराचर जीवों के तुम संहार करनेवाले हो, इसीलिए सभी देवगण तुम्हें 'अन्तक' भी कहा करते हैं। विवस्वान् भगवान् सूर्य के तुम प्रथम पुत्र हो अतः सभी लोकों में लोग तुम्हें वैवस्वत नाम से भी पुकारते हैं। आयु एवं कर्म—इन दोनों के क्षीण हो जाने पर तुम लोगों को जबरदस्ती अपने पास घसीट लेते हो, इसी कारण लोक में सर्वप्राणहर नाम से भी लोग तुम्हें पुकारते हैं। हे देवेश! तुम्हारी ही कृपा से इस जगत् में ऋक्, साम एवं यजुः—इन तीनों वेदों द्वारा प्रतिपादित धर्म का विनाश नहीं होता और हे देवेश! तुम्हारी ही महिमा से सभी प्राणी अपने-अपने धर्मों में निरत रहा करते हैं। और भी, हे देवेश! तुम्हारी ही सत्कृपा से वर्णसंकर संतति की उत्पत्ति नहीं होती। हे देव! सत्पुरुषों के तुम सर्वदा एक मात्र शरण देनेवाले कहे गये हो। हे जगन्नाथ! इस जगत् की मर्यादा के तुम एक मात्र परिपालन करनेवाले हो। हे सभी देवताओं में श्रेष्ठ! अपनी शरण में आई हुई मुझ भाग्यरहित की तुम रक्षा करो। इस राजपुत्र (सत्यवान्) के माता और पिता बहुत दुःखी हैं। ॥१—११॥

यमराज ने कहा—हे धर्म के महत्त्वों को जाननेवाली! तुम्हारी इस स्तुति से तथा तुम्हारी इस अगाध भक्ति से मैं परम सन्तुष्ट होकर तुम्हारे पति सत्यवान् को छोड़ देता हूँ। अब तू सफल मनोरथ हो गई, हे अबले! अब तो तू जा। तुम्हारे साथ यह सत्यवान् चार[1] सौ वर्षों तक राज्य सुख का अनुभव कर अन्तकाल में स्वर्गलोक की प्राप्ति कर देवताओं के साथ विहार करेगा। तुम्हारे संयोग से सत्यवान् को सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, वे सब के सब देवताओं के समान तेजस्वी तथा उच्च क्षत्रिय स्वभाव सम्पन्न राजा होंगे और चिरकाल तक जीवित रहते हुए तुम्हारे ही नामों से प्रसिद्ध होंगे। तुम्हारे पिता को भी तुम्हारी माता के संयोग से सौ पुत्र उत्पन्न होंगे और वे भी मालती[2] में उत्पन्न होने के कारण मालव नाम से विख्यात होंगे और चिरकाल तक जीवित रहते हुए पुत्र-पौत्रादि से सुखी होंगे और देवताओं के समान ऐश्वर्य सम्पन्न होकर क्षत्रियोचित गुणों का पालन करेंगे। हे धर्मज्ञे! जो कोई पुरुष प्रातःकाल उठकर इस स्तोत्र द्वारा मेरा कीर्तन करेगा वह भी दीर्घायु की प्राप्ति करेगा। ॥१२-१७॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—इतनी बातें सावित्री से कर महात्मा यमराज उस राजपुत्र सत्यवान् को वहीं छोड़कर काल तथा मृत्यु के समेत अदृश्य हो गये। ॥१८॥

श्री मात्स्य महापुराण में सावित्री उपाख्यान में सत्यवान जीवन लाभ नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त। ॥२१३॥

---

[1] आनन्दाश्रम की प्रति में 'वत्सराशीति पञ्चकम्'. पाठ है, अन्य पुस्तकों में 'वर्षाणां शतपंचकम्' पाठ है। [2] पहिले सावित्री की माता का नाम मालती आया है। अनुवादक

दो सौ चौदहवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—इस प्रकार यमराज के अदृश्य हो जाने के बाद सुन्दरी पतिव्रता सावित्री वहाँ से उस स्थान पर वापिस लौट आई जहाँ पर सत्यवान् की मृत्यु हुई थी। और अपने अंक में पति के शिर को स्थापित कर पूर्ववत् वहाँ बैठ गई। उस समय भगवान् भास्कर अस्ताचल पर प्रस्थित हो चुके थे। धर्मराज के पाश से धीरे-धीरे छूटकर सत्यवान् भी अपनी आँखें मींजते हुए धीरे-धीरे पलकों को खोलकर ताकने लगे और उनके हृदय स्थल पर पुनः प्रस्फुरण होने लगा। इस प्रकार पुनः चेतनायुक्त होकर सत्यवान् ने प्रियतमा सावित्री से कहा—'वह पुरुष कहाँ गया जो मुझे खींचे लिये जा रहा था। हे सुन्दरि! कल्याणि! मैं उसे बिल्कुल नहीं पहचानता था कि वह कौन था? हे सभी अंगों से सुन्दरि! इस निर्जन वन में सोते हुए मैंने पूरा दिन बिता दिया और उपवास से थकी हुई तुम को विशेष कष्ट दिया। मुझ दुर्हृदय ने माता और पिता को भी कष्ट दिया। हे सुन्दर भौंहोंवाली! मैं अब उन्हें पुनः देखना चाहता हूँ, चलो, जल्दी करो। ॥१-६॥

सावित्री ने कहा—'हे प्रभो! यदि तुम्हें चलने की इच्छा है तो सूर्य के अस्त हो जाने पर मैं उस आश्रम को चलूँगी जहाँ पर नेत्रविहीन हमारी सास और ससुर बैठे हुए हमारी प्रतीक्षा करते होंगे। और वहीं आश्रम में चलकर जो घटना घटित हुई है उसे भी सुनाऊँगी।' इस प्रकार की बातें कर सावित्री ने पति के साथ वहाँ से आश्रम की ओर प्रस्थान किया। अनन्तर पतियुक्त राजपुत्री वहाँ पहुँची जहाँ श्वसुर का आश्रम था। इतने ही अवसर में राजा द्युमत्सेन अपनी स्त्री के साथ नेत्र ज्योति को प्राप्तकर अति प्रसन्न हो रहे थे। हे भार्गव! इस प्रकार वहाँ पर उन्होंने आये हुए अपने प्रिय पुत्र और दुर्बलांगी पुत्रवधू को देखा। अति हर्ष में सने हुए तपस्वियों द्वारा सान्त्वना दिये जाते हुए राजा ने जंगल से पुत्रवधू के साथ आये हुए अपने प्रियपुत्र को देखा। उस समय सुन्दरी राजपुत्री सावित्री ने सत्यवान् के साथ पत्नी समेत क्षत्रपति राजा द्युमत्सेन को प्रणाम किया। सभी धर्मों के महत्त्वों को जाननेवाले राजा ने दौड़कर अपने प्रियपुत्र सत्यवान् को गले लगाया और तदनन्तर उस वन प्रान्त में निवास करनेवाले समस्त तपस्वियों को अभिवादन कर उन सबों के साथ उस रात को वहीं पर निवास भी किया। रात में अनिन्दित चरित्र एवं सौन्दर्य शालिनी सावित्री ने उस घटना को जैसे-जैसे घटित हुई थी, सुनाया और उसी रात में अपने व्रत को समाप्त भी किया। तदनन्तर उसी रात को जब तीसरा पहर बीत चुका था राजा की सारी प्रजा तुरुही आदि बाजनों का बजाते हुए पुनः राज्य करने के लिए निमंत्रण देने को वहाँ आई, और यह सूचना दी कि राज्य में आप का शासन अब पूर्ववत् हो गया है। नेत्रहीन आपके राज्य को जिस राजा ने लड़कर जीत लिया था, उसे उसी आप के पुर में मंत्रियों ने मिलकर मार डाला। ऐसे सुखदायक समाचार को सुनकर राजा ने चतुरंगिणी सेना को साथ ले महात्मा धर्मराज के माहात्म्य से पुनः अपने समस्त राज्य को प्राप्त किया। सुन्दरी सावित्री ने भी अपने सौ भाइयों को प्राप्त किया। इस प्रकार राजा द्युमत्सेन की पुत्री पतिव्रता सावित्री

ने अपने पिता तथा पति—दोनों के वंशवालों का उद्धार किया और मृत्यु के पाश में बँधे हुए अपने पति के प्राणों को बचाया। इसलिए हे राजन्! मनुष्यों को साध्वी पतिव्रता स्त्रियों की देवताओं के समान सर्वदा पूजा करनी चाहिये, उन्हीं की कृपा से यह त्रैलोक्य ठहरा हुआ है। उन पतिव्रता स्त्रियों के वाक्य इस चराचर जगत् में कभी भी मिथ्या नहीं होते। इसलिए जगत् में सभी मनोरथों की कामना करनेवालों को सर्वदा इनकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य इस पवित्र सावित्री के आख्यान को नित्य सुनता है, वह सभी प्रयोजनों की सफलता प्राप्तकर सुख का अनुभव करता है और कभी भी दुःख नहीं झेलता। ॥७-२३॥

श्री मात्स्य महापुराण में सावित्री उपाख्यान नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१४॥

दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय

मनु ने कहा—हे भगवन्! अभिषेक होने के बाद राजा को उस समय क्या करना चाहिये? उन सब कार्यों को हमें बतलाइये, क्योंकि आप इस विषय को भली भाँति जाननेवाले हैं। ॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! राज्य की चिन्ता करनेवाले राजा को चाहिये कि वह अभिषेचन काल के जल से शिर पर भीगते ही सहायकों (मंत्रियों) की नियुक्ति करे, क्योंकि राज्य तो उन्हीं पर प्रतिष्ठित रहता है। इस संसार में जो सब से छोटा कार्य है वह भी एक निस्सहाय व्यक्ति से दुष्करणीय है तो फिर राज्य जैसे महान् उत्तरदायित्वपूर्ण विषय के लिए क्या कहा जा सकता है? इसलिए राजा को चाहिये कि वह स्वयमेव उत्तम कुलोत्पन्न, शूर, उच्च जातिवाले, बलवान्, श्रीमान् सहायकों की नियुक्ति करे। रूपवान्, बलवान्, गुणवान्, सज्जन, क्षमाशील, कष्टसहिष्णु, महोत्साही, धर्मज्ञ, प्रिय बोलनेवाले, कल्याण का उपदेश करनेवाले, स्वामिभक्त तथा यश के अभिलाषी—सहायकों को मांगलिक कर्मों में नियुक्त करना चाहिये। राजा को चाहिये कि जो कुछ गुणहीन भी सहायक हों, किन्तु अन्य गुण उनमें पाये जाते हैं, उन्हें भी उनके योग्य कार्यों में स्वयं नियुक्त करे। उत्तम कुलोत्पन्न, शीलवान्, धनुर्वेद में प्रवीण, हाथी और अश्व की शिक्षा में कुशल, मृदुभाषी, शकुन और अन्यान्य शुभाशुभ कारणों का जाननेवाला, औषधियों को जाननेवाला, कृतज्ञ, शूर कर्मों में प्रवीण, कष्टसहिष्णु, सरल, सेना की व्यूह रचना आदि के तत्त्वों को जाननेवाला, निस्तत्त्व एवं सार वस्तुओं एवं विषयों को समझनेवाला, ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय हो—ऐसे पुरुष को राजा को सेनापति के पद पर नियुक्त करना चाहिये। आकृति में लम्बे, स्वरूपवान्, सभी कार्यों में दक्ष, प्रियवक्ता, अचंचल, सभी के चित्त को मोह लेनेवाले को प्रतीहारी बनाना चाहिये। जैसा सन्देश हो वैसा ही कहनेवाला एवं देशी भाषाओं में जो पटु हो उसे दूत बनाना चाहिये। वह दूत सामर्थ्यशाली, क्लेशसहिष्णु, बोलने में प्रवीण, देश एवं काल के विभाग को जाननेवाला देशकालज्ञ भी हो। जो मौका आने पर स्वयं भी नीति की बातें कर सके वह राजा का दूत हो सकता है।

आकार में लम्बे, कम सोनेवाले, शूरवीर, राजा में दृढ़ भक्ति रखनेवाले, कभी व्याकुल न होनेवाले, कष्ट-सहिष्णु, हित में निरत रहनेवाले—ऐसे पुरुषों को अंगरक्षा के कार्य में राजा को नियुक्त करना चाहिये। जो दूसरों से किसी प्रकार भी फोड़े न जा सकें, क्रूर स्वभाव के न हों, राजा में अगाध भक्ति रखनेवाले हों—ऐसे पुरुष ताम्बूलग्राहक के पद पर नियुक्त किये जा सकते हैं, अथवा इतने गुणों से विशिष्ट स्त्री भी हो तो वह भी रखी जा सकती है। नीति शास्त्र में कहे गये छः[1] गुणों की विधियों के तत्त्वों को जाननेवाले, देशी भाषाओं के विशारद, नीतिज्ञों को संधि एवं विग्रह का अधिकार देना चाहिये। नौकरों के किये गये और न किये गये कामों का लेखा रखनेवाला, आय और व्यय को जाननेवाला, लोगों की वास्तविक स्थिति का जाननेवाला, देशों की उपज का उचित ज्ञान रखनेवाला देशरक्षक बनाने योग्य होता है। सुन्दर आकृतिवाला, युवक, लम्बे कद का, राज्य में अगाध भक्ति रखनेवाला, कुलीन, शूरवीर तथा कष्टसहिष्णु को खड्गधारी बनाना चाहिये। शूरवीर, बलवान्, हाथी और घोड़ों की विशेषताओं को जाननेवाला, सभी प्रकार के क्लेशों को सहन करने में समर्थ तथा पवित्र व्यक्ति को राजा का धनुर्धारी बनाना चाहिये। शुभाशुभ सूचक शकुनों को जाननेवाले, अश्वशिक्षा में विशारद, अश्वों के आयुर्विज्ञान के वेत्ता, पृथ्वी के समस्त मार्गों की विशेषताओं को जाननेवाले, रथियों के बल एवं निर्बलता को जाननेवाले, स्थिरदृष्टि, प्रियवचन बोलनेवाले, शूरवीर तथा विद्वान् पुरुष को योग्य सारथी कहा गया है। किसी प्रकार भी दूसरों के कहने में न आनेवाले, पवित्र, प्रवीण, औषधियों के गुणों और दोषों को जाननेवालों में श्रेष्ठ, भोजन शास्त्र की विशेषताओं के वेत्ता को भोजनाध्यक्ष बनाना चाहिये। भोजन सम्बन्धी विधानों के जाननेवाले, दूसरों से न फूटनेवाले, वंश परम्परा से चले आनेवाले पुरुषों को रसोई घर में भोजन बनाने का काम सौंपना चाहिये, उनके नख तथा केश साफ तथा कटे हुए होने चाहिये। शत्रु और मित्र में समता का व्यवहार करनेवाले, सभी शास्त्रों के विशारद, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ एवं कुलीन व्यक्ति को धर्माध्यक्ष का पद सौंपना चाहिये। ऊपर कही हुई विशेषताओं से विशिष्ट श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सभासद नियुक्त करना चाहिये। जो सभी देशों के अक्षरों के अच्छे जानकार हों तथा सभी शास्त्रों में पटु हों, उन्हें सभी विभागों में लेखक का काम सौंपना चाहिये। ऊपर की शिरोरेखा से युक्त, सभी प्रकार से पूर्ण, समानान्तर तथा सीधी रेखा में लिखे गये, आकृति में बराबर अक्षरों को जो लिखता है वही अच्छा लेखक कहा जाता है। हे राजन्! अच्छे लेखक को उपाय सम्बन्धी वाक्यों में प्रवीण, सभी शास्त्रों में विशारद, अधिक प्रयोजन को थोड़े शब्दों में कहने की क्षमता रखनेवाला होना चाहिये। हे नृपोत्तम! उसी प्रकार एक अच्छे लेखक को वाक्यों के वास्तविक अभिप्राय का जाननेवाला, देश और काल के विभाग का अच्छा ज्ञाता तथा किसी दूसरे से भेद की बातों को न बतानेवाला होना चाहिये। हे राजन्! मनुष्यों के हृदय की बातों तथा भावों को परखनेवाले, दीर्घकाय, निर्लोभी तथा दान-शील व्यक्तियों को धर्माधिकारी का पद देना चाहिये। एवं राजा को उसी प्रकार के योग्य मनुष्यों को द्वारपाल ।

---

[1] छः गुण ये हैं, संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और आश्रय।

का पद भी सौंपना चाहिये। लौह, वस्त्र, मृगचर्मादि तथा रत्नों की परख करनेवाला, मूल्यवान् तथा व्यर्थ दोनों प्रकार की वस्तुओं का जानकार, दूसरों से न फूटनेवाला, सर्वदा पवित्र रहनेवाला, निपुण, धैर्यशाली तथा विवेकी व्यक्ति को धनाध्यक्ष बनाना चाहिये। आय के सभी विभागों में धनाध्यक्ष के समान पुरुषों को नियुक्त करना चाहिये। उसी प्रकार व्यय के सभी स्थानों पर भी राजाओं को उपर्युक्त गुणोंवाले व्यक्तियों को नियुक्त करना चाहिये। वंशपरम्परा से होनेवाले आठों अंगों की चिकित्सा में सुविज्ञ हो, दूसरों से फूट न सके, धर्मात्मा तथा सत्कुलोत्पन्न हो—ऐसे व्यक्ति को वैद्य बनाना चाहिये। हे राजन्! उस वैद्य को प्राणाचार्य जानना चाहिये और सर्वसाधारण की भाँति राजा को उसको वचनों का सर्वदा पालन करना चाहिये। जंगली जातिवालों के रीति-रस्मों का अच्छा ज्ञाता, हस्ती की शिक्षा का विशेषज्ञ एवं दुःख सहन करने में समर्थ व्यक्ति राजा का प्रशंसनीय गजाध्यक्ष होता है। इन्हीं उपर्युक्त गुणों से युक्त—विशेषकर अवस्था में वृद्ध—व्यक्ति को राजाओं के सभी कार्यों में गजारोही (पीलवान) बनाना अच्छा कहा गया है। अश्वों को शिक्षा देने में प्रवीण, अश्वों की चिकित्सा में विशारद एवं स्थिर आसन से बैठनेवाले व्यक्ति को राजाओं का श्रेष्ठ अश्वाध्यक्ष कहा गया है। शत्रुओं से न फूटनेवाला, शूरवीर, बुद्धिमान्, सत्कुलीन एवं सभी कार्यों में उत्सुक व्यक्ति को राजा को दुर्गाध्यक्ष (गढ़पति) बनाना चाहिये। वास्तु-विद्या में प्रवीण, परिश्रमी, हस्तलाघव दिखानेवाला, दीर्घदर्शी तथा शूर व्यक्ति को स्थपति (कारीगर) के पद पर नियुक्त करना चाहिये। यन्त्रमुक्त, पाणिमुक्त, विमुक्त, मुक्तधारित इत्यादि अस्त्रों के परिचालन की विशेषताओं में सुनिपुण एवं अव्यग्र व्यक्ति को अस्त्राचार्य के पद पर रखना चाहिये। वृद्ध, सत्कुलोत्पन्न, मधुरभाषी, पिता तथा पितामह से उसी कार्य पर नियुक्त होनेवाले पवित्र तथा विनीत व्यक्ति को राजाओं के अन्तःपुर के अध्यक्ष पद पर नियुक्त करना चाहिये। राजाओं के इन सात अधिकार के पदों पर भली-भाँति परखकर सभी कार्यों में परीक्षाकर के तथोक्त गुणोंवाले सातों व्यक्तियों को अधिकारी बनाना चाहिये। राजाओं के सभी कार्यों में नियुक्त किये गये व्यक्तियों को सतत उद्योगशील, जागरूक तथा सभी कार्यों में पटु होना चाहिये। हे राजन्! राजाओं के अस्त्रागार में नियुक्त व्यक्ति को भी दक्ष तथा उद्यम-शील होना चाहिये। राजाओं के कार्यों की गणना नहीं की जा सकती, इसलिए उसे चाहिये कि उत्तम, मध्यम तथा अधम कार्यों को भलीभाँति समझबूझ कर तदनुकूल उत्तम, मध्यम तथा अधम पुरुषों पर सौंपना चाहिये। इसी सौंपे गये कार्यों के उलट फेर हो जाने से—अर्थात् अधम व्यक्ति को उत्तम कार्य तथा उत्तम व्यक्ति को अधमकार्य सौंप देने से—राजा विनाश को प्राप्त होता है। राजा को चाहिये कि अपने पुरुषों के निश्चय (लगन), पौरुष, भक्ति, शास्त्रज्ञान, शूरता, कुल तथा नीति को भली भाँति जान बूझ कर उनका वेतन निश्चित करे। कोई दूसरा व्यक्ति न जानने पावे—इस अभिप्राय से राजा को अपने मत-लब की बात में अनेक मंत्रियों से अलग-अलग सम्मति लेनी चाहिये, एक मंत्री से भी दूसरे मंत्री की दी गई सम्मति को नहीं बतलाना चाहिये। राजा को सर्वदा किसी भी व्यक्ति का विश्वास नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान् राजा को चाहिये कि सम्मति ले लेने पर वह सर्वदा अकेले ही निश्चय करे कि उसे

क्या करना चाहिये ? अथवा दूसरे लोगों की बुद्धि के सहारे से भी निश्चय की प्राप्ति हो जाती है। उस अकेले किये गये निश्चय में भी राजा को चाहिये कि फिर से विचार कर ले राजा को तीनों वेदों के पारगामी ब्राह्मणों की सेवा करनी चाहिये। जो शास्त्रों के जाननेवाले नहीं हैं, उनकी पूजा नहीं करनी चाहिये क्योंकि वे कण्टक रूप से लोक की हानि पहुँचानेवाले हैं। पवित्र आचरणवाले, वेदवेत्ता, वृद्ध ब्राह्मणों की राजाओं को नित्य सेवा करनी चाहिये, उन्हीं ब्राह्मणों से विनयावनत होकर राजा को नित्यशः विनय की शिक्षा भी लेनी चाहिये। ऐसा करने से वह समग्र वसुन्धरा को अपने वश में कर सकता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अविनय के कारण बहुतेरे राजा लोग अपने परिजन एवं अनुचरों के साथ नष्ट हो गये और अनेक भागकर वन में निवास करनेवाले राजाओं ने विनय से पुनः अपने राज्यश्री को प्राप्त किया। राजाओं को तीनों विद्याओं के सुविज्ञों द्वारा तीनों विद्या—दण्डनीति, शाश्वती, आन्वीक्षिकी तथा आत्मविद्या की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये तथा सर्वसाधारण से लौकिक वार्ताओं की सूचना प्राप्त करनी चाहिये। उसे सर्वदा रात और दिन में अपनी इन्द्रियों पर अधिकार रखना चाहिये। जितेन्द्रिय राजा ही अपनी प्रजाओं को वश में रख सकता है। राजा को अनेक प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिये और धर्मार्थ ब्राह्मणों को विविध योग्य सामग्रियाँ तथा सम्पत्ति का दान देना चाहिये। बुद्धिमान् कर्मचारियों द्वारा राजा को चाहिये कि अपने राष्ट्र से वार्षिक कर वसूल करे। उसे सर्वदा स्वाध्याय में लीन रहना चाहिये तथा लोगों के साथ पिता और भाई का सा व्यवहार रखना चाहिए। राजा को गुरुकुल से विद्याध्ययन समाप्त कर लौटे हुए ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। राजाओं की यह अक्षय ब्रह्मविधि कही गई है। उसके ऐसा करने से चोर तथा शत्रु गण उसकी कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते न किसी अन्य कारण से ही उसका विनाश हो सकता है। इसलिए राजा को इस अक्षय ब्रह्मविधि का पालन तो अवश्यमेव करना चाहिये। राजा को चाहिये कि वह अपने उत्तम, मध्यम तथा अधम अनुचरों द्वारा प्रजा का, जब जैसी आवश्यकता पड़े पालन करे और अपने क्षात्रधर्म का स्मरण कर संग्राम से भी कभी विचलित न हो। संग्रामभूमि से विचलित न होना, प्रजाओं का विधिवत् परिपालन एवं ब्राह्मणों की शुश्रूषा—ये तीन धर्म राजाओं के लिए परम कल्याणकारी हैं। दुरवस्था में पड़े हुए असहाय, वृद्ध, एवं विधवा स्त्रियों—के योगक्षेम एवं जीविका का प्रबन्ध राजा को करना चाहिये। विशेष रूप से वर्णाश्रम की व्यवस्था का ध्यान रखना चाहिये। राजा को चाहिये कि अपने धर्म से भ्रष्ट हुए लोगों को अपने-अपने धर्मों में पुनः स्थापित करे, इसी प्रकार चारों आश्रमों पर भी उसे देख-रेख रखनी चाहिये। अतिथि के लिए अन्न, तैल तथा पात्रों की व्यवस्था उसे स्वयमेव करनी चाहिये। सम्माननीय व्यक्तियों का अपमान नहीं करना चाहिये। तपस्वी के लिए राजा को चाहिये कि अपने सभी कर्मों को, राज्य को तथा अपने आप को भी समर्पित कर के और प्रयत्नपूर्वक उसकी देवता के समान चिरकाल तक पूजा करे। मनुष्यों से दो प्रकार की—सरल और कुटिल—बुद्धियों का पाठ सीखना चाहिये, तिनमें से कुटिल बुद्धि को जान तो ले पर उसका प्रयोग न करे, केवल दूसरे द्वारा प्रयुक्त की गई कुटिलता को व्याहत करने के लिए

उसका प्रयोग करे। राजा के छिद्र को दूसरा कोई न जान सके ; किन्तु वह दूसरे के छिद्रों तक पहुँच सके। वह कछुए के अंगों की भाँति अपने छिद्रों को अपने ही विवर में समेट कर रखे। कभी अविश्वसनीय व्यक्ति का विश्वास न करे, विश्वसनीय भी हो तो उसका अति विश्वास न करे, क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ जो भय है वह मूलसमेत नाश का कारण होता है। यथार्थ कारण को प्रकाशित करते हुए दूसरों को अपनी बात पर विश्वास दिलाना चाहिये, वकुले की भाँति उसे सर्वदा अर्थ की चिन्ता में लीन रहना चाहिये, सिंह की भाँति पराक्रम दिखलाना चाहिये। राजा गीदड़ की भाँति अवसर पाते ही पलायन करे तथा खरगोश की भाँति कूद-कूद कर चले तथा सुग्गे की तरह दृढ़ प्रहार करनेवाला बने। राजा मोर की भाँति विचित्र आकारवाला हो, कुत्ते की भाँति दृढ़ भक्ति करे तथा कोकिल की भाँति मृदुभाषी हो। राजा को चाहिये कि वह सर्वदा कौए की भाँति सशंकित रहे, दूसरे लोग जिस स्थान को न जान सकें ऐसे स्थान पर निवास करे, विना एक बार परीक्षा किये हुए भोजन तथा स्थान को ग्रहण न करे। हे मनुजश्रेष्ठ ! इसी प्रकार उसे वस्त्र, पुष्प, अलंकार एवं अन्यान्य दैनिक आवश्यक सामग्रियों को एक बार परीक्षा कर लेने के बाद काम में लाना चाहिए। बहुत-सी भीड़ जहाँ पर इकट्ठी हो वहाँ पर स्नान न करे, न उस जलाशय में स्नान करे, जो पहले से विश्वस्त पुरुषों द्वारा परीक्षित न हो अथवा अज्ञात हो। दुष्ट हाथी, अविनीत तथा अशिक्षित अश्व पर आरोहण न करे, न बिना जानी हुई स्त्री से समागम करे। वह देवोत्सव के अवसर पर देवालयों में निवास भी न करे। हे धर्मज्ञ ! राजा को सर्वदा राज्यलक्ष्मी (राज्य चिह्न) से सुसम्पन्न, दीनरक्षक तथा उद्यमी होना चाहिये। पृथ्वी को जीतने की इच्छा रखनेवाले राजा को सर्वदा सरल स्वभाववाले अनुचरों का पालन, पोषण तथा सम्मान करना चाहिये और उन्हें ही सहायक रखना चाहिये। धार्मिक कार्यों में धार्मिक, संग्राम में शूरवीर, आय के विभागों में उसके विशेषज्ञ तथा सच्चरित्र एवं पवित्र आचरणवाले सहायकों को सर्वत्र नियुक्त करना चाहिये। वह नपुंसकों को स्त्रियों के साथ तथा निर्दयों को क्रूर कार्यों में रखे। हे रविनन्दन ! धर्म, अर्थ, काम तथा नीति के कार्यों में गुप्त पारिश्रमिक आदि देकर अनुचरों की परीक्षा ले फिर परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले को प्रशंसनीय वनचर संन्यासी आदि के वेश में नियुक्त कर यथार्थ बातों का पता लगाता रहे और उनके कार्यों की देखरेख रखनेवालों को उनका अध्यक्ष बनाये। राजन् ! इस प्रकार राजा को राज्य के कार्यों का संचालन करना चाहिये। राजा लोगों को सर्वदा तीखे स्वभाव तथा उग्र कर्मोंवाला नहीं होना चाहिये, हे राजन् ! जिन कर्मों को राजा पापाचरण द्वारा सिद्ध कर सकता है किन्तु सत्पुरुष लोग जिसे नहीं करते, उसे राजा को भी छोड़ देना चाहिये। राजाओं को तीखे व्यवहार एवं उग्र कर्मों को तो नहीं ही करना चाहिये क्योंकि उनसे प्रजावर्ग में असन्तोष फैलता है। जिस कार्य के करने में जो व्यक्ति विशेषता रखता है उस कार्य में राजा को चाहिये कि परीक्षा लेकर उसी को नियुक्त करे। प्रायः सभी कार्यों में उन्हीं लोगों को नियुक्त करना चाहिये जिनके पिता तथा पितामह उस काम को करते आये हैं पर अपने जातीय कार्यों में उन्हें नहीं रखना चाहिये क्योंकि उसमें तो परिवार के लोग ही रहते आये हैं। महाभाग ! राजा को पारिवारिक कार्यों में अपने वन्धुजनों को ही नियुक्त

करना चाहिये क्योंकि वे भी उसके कल्याण करनेवाले होते हैं। अनुचरों को एकत्र करने की भावना से राजा को चाहिये कि जो अनुचर दूसरे राजा की ओर से उसके यहाँ आये हुए हैं—चाहे वे दुष्ट हों अथवा सज्जन हों—उनको प्रयत्नपूर्वक अपने यहाँ आश्रय दे। किन्तु उनमें से दुष्टों को परखकर उनका विश्वास न करे;पर अनुचर संग्रह की कामना से जीविका का प्रबन्ध तो उनका भी करना चाहिये। राजा को चाहिये कि दूसरे देश से अपने यहाँ आये हुए व्यक्ति की विशेष आवभगत करे और यह समझकर उसे अतिशय सम्मान दे कि यह मेरे देश में आया हुआ व्यक्ति है। नराधिप! राजा को अपने कार्यों के लिए स्वयं उद्योगी होना चाहिये, उसके लिए अनुचरों के समूह की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। और अपने यहाँ उन अनुचरों को, जो पहिले अपने पद से पृथक् कर दिये गये हैं, कभी न नियुक्त करे। नरशार्दूल! शत्रुगण, अग्नि, विष, सर्प तथा नंगी तलवार—ये तो एक तरफ हैं तथा क्रुद्ध अनुचर एक तरफ हैं। राजा को चाहिये कि अपने गुप्तचरों द्वारा नित्य अनुचरों के चरित्र की देखरेख करता रहे और उनमें गुणवानों की पूजा तथा निर्गुणों को अनुशासित करता रहे। राजन्! इसी कारण राजा लोग सर्वदा चारचक्षु (गुप्तचर ही जिनकी आँखें हैं) कहे जाते हैं। अपना देश हो या किसी दूसरे राजा का देश हो-सभी स्थानों में ज्ञानी, विवेकशील, निर्लोभी एवं दूसरे से अपने अभिप्राय को न प्रकट करनेवाले तथा कष्टसहिष्णु चरों को नियुक्त करना चाहिये। साधारण जनता जिन्हें न पहचानती हो, देखने में जो सरल दिखाई पड़ते हों, आपस में जो एक दूसरे से परिचित हों (न परिचित हों[1]) तथा वणिक, मन्त्री, ज्योतिषी, वैद्य, तथा संन्यासी के वेश में भ्रमण करनेवाले हों, ऐसे गुप्तचरों को राजा को नियुक्त करना चाहिये। राजा एक चर की बात पर, यदि वह अच्छी लगनेवाली भी हो, तब भी न विश्वास करे। उस समय उसे दो चरों की बातें तथा उनके आपसी सम्बन्ध को जानकर ही विश्वास करना चाहिये, यदि वे दोनों आपस में अपरिचित हों तब विश्वास करना चाहिये। इसीलिए राजा को अति गुप्त रहनेवाले चरों को नियुक्त करना चाहिये। उन गुप्तचरों के कार्यों पर भी राजा को देखरेख रखनी चाहिये। राज्य में अनुचरों का अनुराग एवं वैर तथा उनके गुण और अवगुण—इन सब की देखरेख का कार्यभार राजाओं के गुप्तचरों पर ही है, अतः गुप्तचरों पर राजा का विशेष ध्यान रहना चाहिये। राजा को यह बात सर्वदा ध्यान में रखनी चाहिये कि मेरे किस काम से लोग मुझमें अनुरक्त होंगे और किस काम से विरक्त हो जायँगे, ऐसा समझकर उसे विशेषकर उन कामों से बचना चाहिये जो लोगों में विरक्ति के कारण हों। हे सूर्यकुलश्रेष्ठ! राजाओं की समृद्धि उनकी प्रजाओं के अनुराग पर निर्भर मानी गई है, इस कारण से अच्छे राजाओं को पृथ्वी पर राज्य करते हुए सभी लोगों में अपने प्रति अनुराग उत्पन्न करना चाहिये। ॥२-९९॥

श्री मात्स्य महापुराण में राजा की सहायक सम्पत्ति नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त। ॥२१५॥

---

[1]दोनों पाठ पाये जाते हैं। अनुवादक।

दो सौ सोलहवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—मनुजी ! अब मैं उस बात को तुमसे बतला रहा हूँ कि राजा के अनुचरों को उसके साथ किस प्रकार से बर्त्ताव रखना चाहिये । सुनो । हे रविनन्दन ! इन बातों को भलीभाँति समझकर अनुचरों को चाहिये कि वे भरसक उनका पालन करें । राजा जो बात कह रहा हो उसे प्रयत्नपूर्वक सुनना चाहिये, बीच में उसे टोंककर अथवा उसकी बातों पर आक्षेप करते हुए नहीं बोलना चाहिये, राजसभा में अथवा जहाँ पर अन्य लोग जुटे रहते हैं, राजा के अनुकूल और प्रिय लगने वाली बातें करनी चाहियें, कल्याणकारी भी बात हो, यदि वह सुनने में अप्रिय मालूम हो तो उसे राजा जब एकान्त में रहे, तब कहे । राजन् ! दूसरे के मतलब की बातें जिस समय राजा का चित्त स्वस्थ और प्रसन्न हो, उस समय कहे, अपने मतलब की बातें अपने मित्रों से कहलाये, स्वयमेव कभी न कहे । सभी कार्यों के करते समय यह ध्यान रखे कि उसमें किसी प्रकार की क्षति न हो और किसी कार्य में नियुक्त होने पर धन का अपव्यय न करे । राजा के सम्मान की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, सर्वदा कार्य करते समय राजा की प्रसन्नता की चिन्ता करनी चाहिये, कभी भूलकर भी राजा के वेश-भूषा, बातचीत एवं आकार-प्रकार की नकल नहीं करनी चाहिये । कभी राजा के क्रिया कलापों का अनुकरण भी नहीं करना चाहिये, अर्थात् सभी कार्यों में उसके अप्रिय विषयों को वर्जित करना चाहिये । ज्ञानवान् पुरुष को राजा के समान अथवा उससे बढ़कर अपनी वेशभूषा नहीं बनानी चाहिये । द्यूतक्रीडा आदि में राजा की अपेक्षा अपने हस्तकौशल आदि का प्रदर्शन करे और उसी प्रसंग में अपनी-अपनी विशेषता प्रकट करे । हे राजन् ! विना राजा की अनुमति से अन्तःपुर के अध्यक्षों, शत्रुओं के दूतों तथा निकाले हुए अनुचरों के साथ न जाय । अपने प्रति राजा की स्नेहहीनता तथा अपमान के भाव—इन दोनों को प्रयत्नपूर्वक लोगों से छिपावे और राजा की गोपनीय बातें सर्वसाधारण के सम्मुख न प्रकाशित करे । हे नृपोत्तम ! जो बात—चाहे वह सर्वसाधारण से कहने योग्य हो अथवा अयोग्य हो—राजा ही से कहनी हो उसे कभी भूलकर भी अन्य लोगों से न बतलावे, ऐसा करने से राजा अप्रसन्न होता है । बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि जिस समय राजा दूसरे व्यक्ति से किसी काम के लिए कह रहा हो, उस समय जल्दी से स्वयमेव उठकर राजा से कहे कि "मेरे लिए क्या आज्ञा है, मैं क्या करूँ ?" पर ऐसी बात कार्य की अवस्था देखकर ही करनी चाहिये, बराबर ऐसा कहते रहने से निश्चिय ही राजा की दृष्टि में वह हेय हो जाता है । जो बातें राजा को प्रिय लगती हों, उन्हें उसके सामने बारम्बार नहीं कहते रहना चाहिये, न तो उसके सामने अधिक हँसना ही चाहिये और न कभी भृकुटी हीताननी चाहिये । न बहुत बोलते रहना चाहिये न अति गम्भीरता दिखाते हुए मौन ही रहना चाहिये, लापरवाही भी नहीं दिखानी चाहिये और न कभी आत्मसम्मानी होने का भाव ही प्रदर्शित करना चाहिये । राजा के दुष्कर्मों की चर्चा कहीं भूलकर भी नहीं करनी चाहिये । राजा जिन वस्त्रों, अलंकारों को समर्पित करे उन्हें बराबर धारण किये रहे, कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुषों को चाहिये कि

उन वस्त्रादि सामग्रियों को कभी भी उदारतावश किसी दूसरे को न दे डाले। राजा के सम्मुख कभी यदि भोजने करने का अवसर लगे तो अधिक नहीं करना चाहिये न तो उसके सम्मुख कभी दिन में शयन ही करना चाहिये। कभी उस द्वार से राजभवन में प्रवेश नहीं करना चाहिये, जिससे प्रवेश करने का निर्देश नहीं किया गया है और न कभी अयोग्य स्थान पर स्थित राजा से सात्तात्कार ही करना चाहिये। राजा की दाहिनी बगल अथवा बाईं बगल—जहाँ उपयुक्त हो—बैठना चाहिये, उसके सम्मुख या पीछे की ओर बैठना निषिद्ध माना गया है। जमुंआई लेना, थूंकना, खखारना, खाँसना, क्रोधित होना, आसन पर तकिया लगाकर बैठना, ऊठँगकर रहना, भृकुटी चढ़ाना, कै करना या उद्‌गार निकालना—इन सब कार्यों को राजा के समीप वर्जित रखना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष कभी भूलकर भी राजा के सम्मुख अपने गुणों की प्रशंसा न करे, उसे यदि यह करना ही है तो युक्तिबल से दूसरों द्वारा राजा के कानों में अपने गुणों की चर्चा डाले। सर्वदा हृदय को निर्मल रखनेवाले, परम भक्तिमान्, निरालस अनुचरों द्वारा राजा को अपना काम चलाना चाहिये। राजाओं के अनुचरों को सर्वदा दुष्टता, लोभ, छल, नास्तिकता, छुद्रता तथा चंचलता आदि दुर्गुणों से दूर रहना चाहिये। उसके अनुचरों को सर्वदा विद्या एवं सुजनता द्वारा आत्मसंयमपूर्वक मंगल कामना से राजा की कल्याण करनेवाली सेवा करनी चाहिये। राजा के पुत्र, उसके प्रिय परिजन तथा मंत्रिवर्ग को मिलने पर नमस्कार करना चाहिये किन्तु उसके मंत्रियों का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। विना पूछे किसी भी बात को राजा से न कहे यदि कहे तो ऐसी बात हो जो राजा के हितकरने वाले मनुष्यों से निश्चित कर ली गई हो और वास्तव में सत्य तथा हित करनेवाली भी हो। राजा के अनुचरों को नित्य ही उसकी वास्तविक मनोदशा का पता लगा लेना चाहिये। मनोभावों को परखनेवाला अनुचर अपने स्वामी की सुखपूर्वक सेवा करसकता है। अपने कल्याण की कामना करनेवाले अनुचर को अपने ऊपर राजा के अनुराग एवं क्रोध—दोनों का पता लगाते रहना चाहिये। और इस प्रकार जानकर विरक्त राजा की सेवा नहीं करनी चाहिये तथा अनुरक्त की सेवा में तत्पर रहना चाहिये। क्योंकि विरक्त जो राजा है वह अपना नाशकर विपक्षियों को उन्नत बनाता है, अपने को आशा देकर भी परिणाम का विनाश करता है। विना क्रोध का अवसर आने पर भी वह क्रुद्ध की भाँति दिखाई पड़ता है तथा प्रसन्न होकर भी कुछ फल नहीं देता। जब कभी बातें करता है तो मद भरी हुई। इस प्रकार जीविका का उच्छेद भी कर देता है। प्रदेश की बातों से प्रसन्न होकर भी वह पूर्ववत् सम्मान नहीं देता और सभी सेवाओं को करते समय उपेक्षा का भाव दिखाता है। कोई बात छिड़ने पर बीच में आक्षेप करता है तथा मध्य में ही भंग कर देता है, गुणों का कीर्तन करने पर भी विमुख होकर देखता है। काम के करते समय अपनी आँखें दूसरी ओर किये रहता है—उपर्युक्त लक्षण विरक्त राजा के हैं। अब अनुरक्त राजा के लक्षण सुनो। अनुरक्त राजा भृत्य को देखकर प्रसन्न होता है, कही जानेवाली बात को आदरपूर्वक ग्रहण करता है और कुशल वार्ता पूँछकर आसन देता है। एकान्त में अथवा निर्जन (अन्तःपुर) प्रदेश में भी उसे देखकर कभी सशंकित नहीं होता और वहाँ भी उसकी बातें सुनकर प्रसन्नमुख होता है। उसकी

अप्रिय बातों का भी अभिनन्दन करता है, और थोड़ी-सी भी भेंट आदरपूर्वक स्वीकार करता है, दूसरी कथा के प्रसंग पर भी उसका स्मरण करता है और सर्वदा उसे देखकर प्रसन्नमुख रहता है। हे सूर्य कुलोत्पन्न! ये उपर्युक्त लक्षण अनुरक्त राजा के हैं, ऐसे राजा की सेवा करनी चाहिये। किन्तु विरक्त भी राजा आपत्तिकाल में पड़ गया हो तो सेवक को चाहिये कि पूर्वकाल की सेवा करने के नाते उस आपत्ति में उसका साथ न छोड़े। जो मनुष्य अपने अति निर्गुण भी मित्र भृत्य तथा स्वामी को विशेषकर आपत्ति के अवसर पर नहीं छोड़ते वे देवताओं के समूहों द्वारा सेवित देवराज इन्द्र के धाम को जाते हैं। ॥१-३८॥

श्री मात्स्य महापुराण के राजधर्म प्रसंग में भृत्य व्यवहार नामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त। ॥२१६॥

दो सौ सत्तरहवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—अपने अंगरक्षकों तथा सहायकों समेत राजा अपने राज्य के मध्य में, उस प्रदेश में निवास करे, जहाँ प्रचुर मात्रा में घास तथा इन्धन विद्यमान हो, रमणीय हो, जहाँ पर सामन्तगण विनम्र भाव से एकत्र रहते हों, वैश्य तथा शूद्र जन भी हों तथा जिस स्थान को शत्रुगण छीन न सकें। वहाँ कुछ ब्राह्मणगण निवास करते हों, कार्य करनेवाले लोग भी अधिक संख्या में मिलें। अदेवमातृक[1] हो, जहाँ के निवासी अति अनुरक्त हों, कर के भार से जहाँ के लोग पीड़ित न हों, पुष्प तथा फलों की उत्पत्ति जहाँ प्रचुर मात्रा में पाई जाती हो। शत्रुओं की सेना जहाँ पहुँच न सके—ऐसे स्थान पर राजा को आपत्तिकाल में निवास करना चाहिये। दुःख तथा सुख में समान रूप से सहायता पहुँचानेवाले प्रिय अनुचर गण जहाँ पर सर्वदा राजा की सेवा के लिए समुपस्थित रहते हों। साँप आदि जन्तु, बाघ, सिंह आदि हिंसक पशु तथा चोर जहाँ न हों, ऐसे स्थान में राजा जिस प्रकार प्राप्त कर सके, अपना आवासस्थान निश्चित करे। ऐसे उपर्युक्त साधनों से युक्त उत्तम स्थान को चुनकर बुद्धिमान् राजा नीचे लिखे गये छः दुर्गों में से किसी एक की रचना करे। धनुर्दुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, अम्बुदुर्ग तथा गिरि दुर्ग। हे राजन्! ये छः दुर्ग बताये गये हैं किन्तु इन छहों दुर्गों में गिरी-दुर्ग सब से अच्छा माना गया है। वह गिरिदुर्ग परिखा, खाईं तथा ऊँची अट्टालिकाओं से युक्त रहे। उसके चारों ओर सैकड़ों तोपें रखी गयी हों। उस दुर्ग में एक कपाट के समेत अति मनोहर प्रवेश द्वार हो जिसमें से हाथी पर बैठा हुआ राजा अपनी पताका के समेत दुर्ग के भीतर प्रविष्टि हो सके। उस पुर में खूब चौड़ी चार बीथियाँ बनवाये, जिनमें से एक बीथी के अग्रभाग में किसी देवता का सुदृढ़ मन्दिर हो, दूसरी

---

[1] वृष्टि के जल से उत्पन्न होनेवाले अन्नों द्वारा जिस देश के लोगों का जीवन निर्वाह होता हो उसे देवमातृक कहते हैं, उससे भिन्न प्रकार।

वीथी के अग्रभाग में राजा का निवासस्थान हो, तीसरी वीथी के अग्रभाग में धर्माधिकारी का आवासस्थान हो, चौथी वीथी के अग्रभाग में दुर्ग का मुख्य प्रवेशद्वार हो। उस दुर्ग को चौकोना आयताकार अथवा वृत्ताकार बनवाना चाहिये। अथवा मुक्तिहीन (?) त्रिकोण, यवमध्य, अर्धचन्द्राकार तथा वज्राकार बनवाये। अर्धचन्द्राकार दुर्ग की नदी के किनारे बनवाने में ही प्रशंसा की गई है, दूसरे स्थानों पर विद्वानों को प्रयत्नपूर्वक उसे नहीं बनवाना चाहिये। राजभवन के दक्षिण भाग में राजा कोशगृह का निर्माण कराये और उसके दाहिने भाग में गजशाला निर्मित कराये। गजों की शाला पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होनी चाहिये। राजभवन के अग्निकोण में आयुधागार बनवाना चाहिये। हे धर्म के तत्त्वों को जाननेवाले! उसी कोने पर रसोई घर तथा अन्य कर्मशालाओं की भी रचना करानी चाहिये। राजभवन की बाईं ओर पुरोहित का भवन बनवाना चाहिये। उसी स्थल पर मंत्रियों, वेदज्ञों तथा वैद्यों का भी निवासस्थान हो। और वहीं कोषागार की भी रचना हो। उसी स्थान के समीप गौओं तथा अश्वों के निवास की भी व्यवस्था हो। अश्वों की पंक्ति उत्तराभिमुख करनी चाहिये, अथवा दक्षिणाभिमुख भी हो सकती है, किन्तु अन्य दिशाओं में तो वर्जित ही रहे। अश्वों का जहाँ निवास हो वहाँ रात भर तक दीपकों का प्रकाश रहे। मुर्गे, बन्दर अथवा विशेषकर मर्कटों को घुड़साल में अवश्य बाँधना चाहिये तथा बछड़े सहित गौ भी बाँधी जाय। अश्वों का कल्याण चाहनेवालों को चाहिये कि अश्वों की शाला में प्रयत्नपूर्वक बकरियों को भी रखें। गौ, हाथी, अश्वादि की शालाओं में से उनके गोबर, लीद आदि के निकालने की व्यवस्था देवाधिदेव भगवान भास्कर के अस्त हो जाने पर न की जाय। उन-उन स्थानों में उन-उन पशुओं के सारथियों को भी राजा स्थान देकर क्रमशः टिकाने की व्यवस्था करा दे तथा योद्धा, शिल्पी और समय-समय पर उपयुक्त सम्मति देनेवालों को तो सभी लोगों से बढ़कर सुविधा देकर राजा को टिकाना चाहिये। उसी प्रकार कल्याण करनेवाले गौ, अश्व तथा हाथी के रोगों तथा औषधियों के विशेषज्ञ वैद्यों को राजा अधिक संख्या में अपने दुर्ग में आश्रय दे। क्योंकि दुर्ग में रोगों की प्रबलता रहती है। स्तुति पाठ करनेवाले चारणों तथा ब्राह्मणों की भी दुर्ग में रहने की व्यवस्था हो। इनके अतिरिक्त बिना कार्य के किसी भी व्यक्ति को दुर्ग में रहने का स्थान नहीं देना चाहिये। उस दुर्ग में विविध प्रकार के शस्त्रास्त्र सर्वदा प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत रखने चाहिये। सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों के संग्रह की दुर्ग में विशेष प्रशंसा की गई है। हे राजन्! धनुष, बाण, क्षेपणीय, तोमर, तलवार, लाठी, गुड[1], हुड[2], परिघ, पत्थर, मुद्गर, त्रिशूल, पट्टिश, कुठार, प्रास (भाला), शूल, शक्ति, परश्वध, चक्र आदि शस्त्रास्त्र एवं कवच, चर्म (ढाल), कुद्दाल, रस्सी, बेंत, पीठक, तुष (भूसा), दात्र, अंगार (कोयला)—इन सबों का भी संचय रहना चाहिये। इस दुर्ग में सभी प्रकार के शिल्पियों के पात्रों का भी संचय रहना चाहिये, उसी प्रकार सभी प्रकार के बाजनों तथा औषधियों का भी संचय करना आवश्यक है।

---

[1]हाथी को फँसाने का एक फन्दा। [2]चोरों को रोकने के लिए पृथ्वी में गाड़ा जानेवाला लोहे का बना हुआ एक प्रकार का खूँटा।

प्रचुर मात्रा में घास तथा ईंधन का भी संचय रहना चाहिये । गुड़ सभी प्रकार के तेल तथा गोरस का भी संचय हो । वसा, मज्जा, हड्डियाँ तथा स्नायु भाग के भी संचय रहें । गोचर्म, नगाड़े तथा सभी प्रकार के अस्त्रों का भी वहाँ संचय रखना चाहिये । उसी प्रकार तम्बुओं का भी संग्रह रखना चाहिये । जव और गेहूँ, रत्न, सभी प्रकार के वस्त्र तथा सभी प्रकार के लौह का भी संचय करना चाहिये । ॥१-३७॥

कलाथ, मूँग, उड़द, चना, तिल तथा अन्यान्य प्रकार के अन्न, धूल, गोबर, सन, भोजपत्र, जस्ता, लाह, टांकी (पत्थर तोड़ने की टांकी) आदि का भी राजा अपने दुर्ग में संचय करे तथा अन्यान्य उपयोगी सामग्रियों को भी प्रचुरमात्रा में रखे । सर्पों के विषों से भरे हुए घड़े तथा बाघ और सिंह आदि हिंसक जन्तु भी दुर्ग में रखने चाहिये । सभी प्रकार के मृग तथा पक्षी भी रखे जाने चाहियें, पर यह ध्यान रहे कि उनमें एक दूसरे की किसी प्रकार की हानि न पहुँचा सकें । अतः विरोधियों को एक दूसरे से पृथक् तथा गोपनीय रखे । महाराज ! राजा को यत्नपूर्वक इसकी व्यवस्था करनी चाहिये । प्रजा जन की कल्याण भावना से राजा को अपने दुर्ग में उपर्युक्त तथा अन्यान्य उपयोगी वस्तुओं का संग्रह गुप्त रूप में अवश्य करना चाहिये । जीवक, ऋषभक, काकोली, इमली, अड़ूसा, शालपर्णी, पृष्णिपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, दोनों प्रकार के शारिवा, तीनों बलाएँ (एक औषधि) श्वसन्ती, वृष्या, बृहती, कण्टकारिका, शृंगी, शृंगाटकी, द्रोणी, बर्षाभू, कुश, रेणुका, मधुपर्णी दोनों विदारी, महाक्षीरा, महातपा, धन्वन, सहदेवी, कटुक, रेड़, विष, शतपर्णी, मृद्वीका, फल्गु, खजूर, यष्टिका, शुक्र, अतिशुक्र, काश्मरी, छत्र, अति छत्र, वीरण, ईख और ईख से होनेवाली अन्यान्य वस्तुएँ, फाणितादि, सिंही, सहदेवी, विश्वेदेव, अश्वरोधक, महुआ, पुष्पहंसा, शतपुष्पा, मधूलिका, शतावरी, मधूक, पिप्पल, ताल, आत्मगुप्त, कटफल, दार्विका, राजशीर्षकी, श्वेत सरसों, धनिया, ऋष्यप्रोक्त, उत्कटा, कालशाक, पद्मबीज, गोवल्ली, मधुवल्लिका, शीतपाकी, कुलिंगाक्षी, काकजिह्वा उरुपुष्पिका, दोनों पर्वत और त्रपुष, गुंजातक, पुनर्नवा, कसेरुका, काश्मीरी, विल्व, शालूक, कैसर, सभी प्रकार की भूसियाँ, शमी तथा अन्न इन सब को दुर्ग में एकत्र करे । दुग्ध, शहद, मट्ठा, तैल, घी, नीप (कदम्ब) अरिष्टक, अक्षोट, वाताम्र, सोम और वाणक ये मधुर पदार्थों के समूह हैं—इन सब को राजा को चाहिये कि अपने दुर्ग में अवश्य संचित करे । अनार, आम्रातक, तिंतिड़ी (इमली) अम्लवेतस, सुन्दर बैर, लकुच, करमर्द, करूषक, बिजौरा, कण्डूर, मालती, राजवन्धूक, कोलकद्वय के पत्ते, भाम्रातद्वय के पत्ते, पारावत, नागरक, प्राचीन अरुक, कैथा, इमली, चुक्रफल, दन्तशठ, जामुन, नवनीत, सैवीरक, तुषोदक, सुरा, आसव अन्य सभी प्रकार के मद्य, माँड, मट्ठा, दही, एवं सभी प्रकार के जितने भी ऐसे शुक्ल (सफेद) पदार्थ प्राप्त हो सकें वे सब अम्ल वस्तुएँ हैं, इन सब को तथा अन्यान्य अम्ल वस्तुओं को भी राजा अपने पुर में संचित करे । सैन्धव, उद्भिद्, पाठेय पाक्य, सामुद्र, लोमक, कूप्य, सौवर्चल, विल्व, वालकेय, यव, और्व, क्षार, कालभस्म—ये लवण के सभी भेदोपभेद हैं, इन सब को तथा अन्यान्य लवण जो उपलब्ध हो सकें, दुर्ग में संचित करे । पीपर, पीपर का मूल (पिपरामूल) चव्य, चीता, सोंठ, कुबेटक, मिरच, सहजना, भिलावा, सिरसम, कूट, अजमोदा, ओंगा, हींग, मूली, धनियाँ, सौंफ, अजवाइन, मँजीठ, जवीर, लहसुन, माला के आकारवाला जलीयतृण, हरड़,

हरताल, मैनसिल, गिलोय, रुदंती, रोहिष, तृण, केशर, अरणी, रेड़ी, सेल्लकी, भारंगी, सम्पूर्ण हरेंफिल, छोटी इलायची, तेजपात इत्यादि वस्तुएँ कटु औषधियों के समूह में मानी गई हैं, इन्हें राजा प्रयत्नपूर्वक अपने दुर्ग में रखे। नागरमोथा, चन्दन, ह्रीबेर, कृतहारक, दारुहल्दी, हल्दी, नलद, उशीर, नक्तमाल, कदम्ब, दूर्वा, परवल, तेजपात, बच, चिरायता, भूतुम्बी, पिषा, अतीस, तालीसपत्र, तगर, सातला, खैर, काली गूलर, दिव्या, सुरोद्भवा, षड्ग्रन्थी, रोहिणी, जटामासी, पर्पट, दन्ती, रसांजन, भँगरा, पतंग, परिपेलव, दुःस्पर्शा, अगुरुद्वय, कामा, श्यामाकु, गंधनाकुली, रूपपर्णी, व्याघ्रनख, मंजीठ, चतुरंगुला, केला, अंकुरास्फोता, तालास्फोता, रेणुकबीज, बेत का अग्रभाग, बेत, तुबीं, कँकरासींगी, लोध्रपुष्पा, मालती, करकृष्णा, वृश्चिका, जीवितपर्णिका तथा गुड़ूच—ये तिक्त औषधियों के समूह हैं। इन सब को राजा अपने दुर्ग में संचित रखे। हर्रे, बहेड़ा, आँवला, माल काँगुन, धायके फूल, मोचरस, अर्जुन, असन, अनन्ता, कामिनी, तुवरिका, श्योपाक, कायफल, भोजपत्र, शिलाजीत, पाटल वृक्ष, लोहवाम, मंजीठ, निशोथ, समंगा, त्रिवृत्ता, मूल, कपास, गेरु, अंजन, विद्रुम, शहद, जलकुम्भी, कुमुदिनी, कमल, बरगद, गूलर, पलाश, शीशम, शमी, प्रियाल, पीलु, कासारि, शिरीष, (सिरसा) पद्म (पद्माख), बेल, अरणी, प्लक्ष, श्मामाक, बक, घन, राजादन, करीर, धनिया, प्रियक, कंकोल, अशोक, बेर, कदंब, दोनों प्रकार के खैर—इन वृक्षों के पत्ते, सार भाग (सत्त्व), मूल तथा पुष्प काषाय माने गये हैं, हे राजाओं में श्रेष्ठ! राजा को इन काषाय औषधियों को तथा अन्यान्य काषाय औषधियों को भी प्रयत्नपूर्वक अपने दुर्ग में संचित करना चाहिये। मारने और घायल करनेवाले कीट पतंग आदि जो शत्रु पक्ष को हानि पहुँचा सकें, वायु, धूम जल तथा मार्ग में विविध प्रकार की अवरोध पहुँचानेवाली औषधियाँ, जिन्हें आगे बतलाऊँगा, राजा को अपने दुर्ग में संचित रखनी चाहियें। राजा को प्रयत्नपूर्वक सभी विषों का संचय भी दुर्ग में करना चाहिये। विष के प्रभाव को शान्त करनेवाले रोगनाशक, राक्षस, भूत तथा पिशाचों के प्रभाव को नष्ट करनेवाले, पापनाशक तथा पुष्टिकारक पदार्थ भी उसे रखने चाहियें। उसी प्रकार चौसठों कला के विशेषज्ञ पुरुषों को भी प्रयत्नपूर्वक दुर्ग में वह रखे। अपने उस दुर्ग में राजा को चाहिये कि दुष्ट प्रकृतिवाले, डरकर भगे हुए, उन्मत्त, क्रुद्ध, अपमानित तथा पापी अनुचरों को भूल कर भी आश्रय न दे। सभी प्रकार के यंत्र, अस्त्र तथा अट्टालिकाओं से सुसंयुक्त, विविध प्रकार के अन्न तथा द्रव्यादि से सुसम्पन्न एवं वाणिज्य-व्यवसाय में सुनिपुण व्यक्तियों के साथ अपने अति गुप्त दुर्ग में राजा सर्वदा निवास करे। ॥३८-८७॥

श्री मात्स्यमहापुराण के राजाके दुर्ग में औषधि आदि का संचयवर्णननामक दो सौ सत्रहवाँ अध्यायसमाप्त। ॥२१७॥

दो सौ अट्ठारहवाँ अध्याय

मनु ने कहा—हे धर्मिष्ठों में श्रेष्ठ! राक्षसों के प्रभाव को नष्ट करनेवाली विषों को शान्त करनेवाली रोगनाशक जिन औषधियों को राजा को अपने दुर्ग में रखना चाहिये, अब उन्हें हमसे बतलाइये। ॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—बिल्वाटकी, जवाखार, पाटला, बाह्लिक, ऊषणा, श्रीपर्णी, और सल्लकी—इन समस्य औषधियों का काढ़ा बनाकर सिंचित करने से विषाक्त जव, सैन्धव, पानीय, वस्त्र, शय्या, आसन, उदक (जल) कवच, आभरण, छत्र और चामर व्यञ्जनादि द्रव्य शीघ्र ही विषरहित हो जाते हैं। शेलु, पाटला, अतिविषा, शिग्रु, मूर्वा, पुनर्नवा, समंगा, वृषमूल, कपित्थ, वृषशोषित, तथा महादन्त शठ—इन सभी द्रव्यों के भी काढ़ा बनाकर सेचन करने से बिषनाश होता है। लाह, प्रियंगु, मंजीठ, समान भाग में इलायची, रेणुका, जेठीमधु, मधुरा—इन सब औषधियों को नकुल के पित्त के साथ भावना देकर गाय की सींग में भरकर खनकर पृथ्वी के भीतर रख दे और सात रात्रि रहने के बाद उसे सुवर्ण तथा मणि के साथ हाथ में धारण करे, फिर तो उसे हाथ में धारण कर विष छूने से तुरन्त ही विष निर्विष हो जायगा। जटामाँसी, शमी के पत्ते, तुम्बी, श्वेत सरसों, कपित्थ, कुष्ट, मंजीठ—इन सब द्रव्यों को कुत्ते अथवा कपिला गौ के पित्त के साथ भावना दे, यह सौम्यालिप्त नामक महौषधि सभी प्रकार के विषों को शान्त करनेवाली है। इसके अतिरिक्त मणि तथा रत्नों के साथ मूषिका अथवा लाह को हाथ में रखने से विष का नाश होता है। रेणुका, जटामांसी, हरिद्रा, मधूक, मधु, अक्षत्वक्, सुरसा, लक्षा और कुत्ते का पित्त इन सब को पूर्व कथित विधि से पृथ्वी में गाड़ दे और इससे तमाम बाजनों का तथा पताकाओं का लेपन कर दे, ऐसा करने से बाजनों के शब्दों को सुनकर तथा पताका को देखकर शीघ्र ही विष का शमन हो जायगा। तीनों कटु (आँवला, हर्रा, बहेरा) पाँचों नमक, मंजीठ, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी इलायची, त्रिवृतापत्र, विड़ङ्ग, इन्द्रवारुणी, मधूक, वेतस, तथा मधु—इन सब को सींग में रखकर स्थापित कर उक्त जल में पकावे, इससे खाया हुआ विष शान्त हो जाता है। श्वेत धूप, सरसों, एलवालुका, सुवेगा, तस्कर, सुर और अर्जुन के पुष्प—इन सभी पदार्थों से निवास करनेवाले घर में धूप देने से चर-अचर जितने भी विष होते हैं, शान्त हो जाते हैं। इस धूप के प्रयोग से उस स्थान पर कीट, विष, मेढ़क, रेंगनेवाले सर्पादि जीव तथा कृत्या—ये सब भी नहीं रह जाते। चन्दन, दुग्ध, पलाश वृक्ष की छाल, मूर्वा, एलावालुक, सरसा, नाकुली, तण्डुलीयक एवं काकमाची का काढ़ा बनाने से सभी प्रकार के विष-दोषों में कल्याण होता है। गोरोचनापत्र, नेपाली केसर और तिलक—इन सभी द्रव्यों के धारण करने से विषदोष नष्ट हो जाता है और इसे लिये रहने से स्त्री पुरुष राजा के प्रिय होते हैं। हल्दी, मजीठ, किणिही, पिप्पली और नींबू के चूर्ण का लेप करने से सभी प्रकार के विषों से पीडित शरीर स्वस्थ हो जाता है। शिरीष वृक्ष का फल, पत्ता, पुष्प, छाल और जड़—ये सभी गाय के मूत्र के साथ घिस कर लगाने से सर्व-विष-सम्बन्धी रोगों का नाश होता है। हे एकमात्र वीर राजन्! इसके उपरान्त अति उपयोगी सर्वश्रेष्ठ औषधियों को बतला रहा हूँ जिन्हें राजा को अपने दुर्ग में सदा संचित रखना चाहिये, सुनो। हे राजन्! वन्ध्या, कर्कोटकी, विष्णुक्रान्ता, उत्कटा, शतमूली, सिता, आनन्दा, बला, मोचा, पटोलिका, सोमा, पिण्डा, निशा, दग्धरुहा, स्थलपद्म, विशाली, शंखमूलिका, चाण्डाली, हस्तिमगधा, गोपर्णी, अजपर्णी, करम्भिका, रक्ता, महारक्ता, बर्हिशिखा, कोशातकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, बारुणी, वसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी, शिवगन्धा,

श्यामला, वंशनालिका, जतुकाली, महाश्वेता, यष्टिमधु, वज्रक, पारिभद्र, सिन्दुवारक, जीवानन्दक, वसुच्छिद्र नागर, कण्टकारि, नाल, जाली, जाती, वटपत्र, सुवर्ण, महानीला, कुन्दुरू, हंसपादी, मण्डूकपर्णी, वाराही दोनों प्रकार के ताण्डुलीयक, सर्पाक्षी, लवली, ब्राह्मी, विश्वरूपा, सुखाकरा, रुजापहा, वृद्धिकरी, शल्यदा, पत्रिका, रोहिणी, रक्तमाल, यामलक, वृन्दाक, श्यामा, चित्रफला, काकोली, क्षीर काकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिककाली, महानागा, शतावर, गरुडी, वेगा, जलकुमुदिनी, स्थलोत्पल, महाभूमिलता, उन्मादिनी, सोमराजी, एवं हे राजन्! सभी प्रकार के रत्न—विशेषकर मरकतादि बहुमूल्यरत्न, अनेक प्रकार की कीटज मणियाँ, जीवों से उत्पन्न होनेवाली मणियाँ—सभी को प्रयत्नपूर्वक दुर्ग संचित रखे। इस प्रकार राक्षस, विष, कृत्या, वैताल आदि की नाशक—विशेषकर गौ, गर्दभ, ऊँट, साँप, तीतर, शृगाल, अज, मेढक, सिंह, बाघ, रीछ, बिलाव, द्वीपि, वानर, कपिंजल, हस्ती, अश्व, महिष, और हरिण—इत्यादि जीवों से सम्बन्ध रखनेवाली उपयोगी वस्तुओं का भी राजा संचय रखे। इस प्रकार दुर्ग को उपर्युक्त सभी प्रकार के पदार्थों के प्रचुर परिमाण के संचय से संयुक्त रहना चाहिये। एवं उसमें बने हुए अति निर्मल उपर्युक्त सभी लक्षणों से संपन्न भवन में राजा निवास करे। ॥२-३८॥

श्री मात्स्य महापुराण के विषनाश के उपाय नामक दो सौ अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त। ॥२१८॥

दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय

मनु ने कहा—भगवन्! राजा की रक्षा के लिए अन्यान्य जिन रहस्यपूर्ण साधनों को दुर्ग में संगृहीत अथवा प्रस्तुत करना चाहिये, उन सबी को भी मुझे बतलाइये। ॥१॥

मत्स्य ने कहा—राजन्! शिरीष, गूलर और बिजौरा—इन तीनों को घृत में परिप्लुत कर के पन्द्रह दिनों बाद सेवन करे, प्राचीन लोग इसे क्षुद्योग नाम से पुकारते हैं। कसेठ के मूल भाग तथा फल को, ईख के मूल भाग, विष, दूब, दूध, घी, तथा माँड़ के साथ सिद्ध कर एक मास बाद सेवन करे, इसके सेवन करने से हथियारों से घायल जो मनुष्य होगा वह मर नहीं सकता। उस स्थल पर विचित्र वर्णवाले बाँस के टुकड़ों से अग्नि उत्पन्न करे। हे राजन्। उस अग्नि को अपसव्य होकर तीन वार प्रदक्षिणा करे, ऐसा करने से वहाँ कोई अन्य अग्नि नहीं जल सकती—इस बात में अविश्वास करने की आवश्यकता नहीं है। कपास के साथ भुजंग की हड्डी के जलाने से घर में से सर्पों का निष्कासन होता है। घर में इस वस्तु की धूप सर्प निष्कासन के लिए विशेष प्रसिद्ध है। समुद्र से उत्पन्न सामुद्र, सैन्धव तथा यवा—ये तीन प्रकार के लवण, विद्युत् की ज्वाला से जली हुई मिट्टी—इन सभी वस्तुओं से जिस भवन की लिपाई हुई रहती है, हे राजन्। उस भवन को अग्नि नहीं जला सकती। दुर्ग में दिन के समय, विशेषकर जब वायु का प्रकोप

हो, अग्नि की रखवाली करनी चाहिये। विष से राजा की रक्षा करनी चाहिये; उस विषय में मैं युक्ति बतला रहा हूँ, सुनो। राजा को चाहिये कि दुर्ग में क्रीड़ा के लिए कुछ पशु तथा पक्षियों को भी रखे। सर्वप्रथम उसे अग्नि द्वारा अथवा अन्य किन्हीं उपायों से अपने अन्न की परीक्षा कर लेनी चाहिये। वस्त्र, पुष्प, आभरण, भोजन, आच्छादन आदि अपने नित्य व्यवहार की वस्तुओं को राजा विना पूर्व परीक्षा के कभी स्पर्श न करे। विष का देनेवाला मनुष्य देते समय मलिनमुख, उदास, उद्वेगवान्, चंचल दृष्टि, खम्भे और भीत की छाया में अपने को छिपाने की कोशिश करनेवाला, विष-दान के समय लज्जा तथा शीघ्रता करने लगता है। हे राजन्! वह पृथ्वी में चिह्न बनाने लगता है, गर्दन हिलाने लगता है, शिर खुजलाने लगता है, मुँह छिपाने या धोने की कोशिशें करता है। हे राजन्! निश्चय ही वह बिषदाता पातकी मनुष्य ऐसे विपरीत कार्यों में भी शीघ्रता करने की कोशिश करता है। अतः राजा को ऐसे लक्षणों को देखकर उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये और उसके द्वारा दिये गये अन्न को सर्वप्रथम समीपस्थ अग्नि में डाल देना चाहिये। अग्नि में विषैला अन्न पड़ते ही उसका इन्द्रधनुष के समान अनेक वर्ण मिश्रित रंग हो जाता है। तुरन्त ही सूख जाता है, स्फोट होने लगता है, एक गोलाई में होकर उसमें से चट-चट की आवाज आने लगती है, उसमें से निकलते हुए धूएँ के सूँघनेवाले जीव के शिर में रोग उत्पन्न हो जाता है। हे राजन्! विषयुक्त अन्न के ऊपर मक्खियाँ नहीं बैठतीं, यदि बैठती हैं तो विष संयुक्त होने के कारण तुरत ही मर जाती हैं। हे पार्थिवसत्तम! विषयुक्त अन्न को देखते ही चकोर अपनी आँखें फेर लेता है, कोकिल का स्वर विकृत हो जाता है, हंस की गति लड़खड़ाने लगती है, भौंरे जोर से गूँजने लगते हैं, क्रौञ्च (कुरर) मदमत्त हो जाता है, मुर्गे रोने लगते हैं। हे राजन्! उस विषयुक्त अन्न को देखते ही शुक चें-चें करने लगता है, सारिका वमन करने लगती है, चामीकर भाग खड़ा होता है, कारण्डव मर जाता है। हे राजन्! वानर मूत्र त्याग करता है, जीवजीवक ग्लानियुक्त हो जाता है, नेवले के रोयें खड़े हो जाते हैं, पृषत् मृग रोने लगता है, हे राजन्! विष को देखते ही मयूर हर्षित हो जाता है, क्योंकि वह नित्य विष का भोजन करनेवाला है। हे राजन्! विषयुक्त अन्न चिरकाल बाद नष्ट होता है और तब भी ऐसा मालूम पड़ता है मानों पन्द्रह दिन का पुराना बना हुआ है। उस समय उसमें रस तथा गन्ध बिल्कुल नहीं रहती, देखने में ऊपर से चन्द्रिकाओं से युक्त रहता है। विष के मिलने से बना हुआ व्यंजन सूख जाता है, द्रववस्तुओं में बुल्ले उत्पन्न होते हैं, लवण सहित पदार्थों में फेन उठने लगते हैं, अन्नों से बना हुआ भोजन ताम्रवर्ग का, दूध नीले रंग का, मदिरा तथा जल कोकिल के समान काला, अम्ल अन्न काला, कोदो कपिल, मधु श्यामल, तक्र नीले और पीले वर्ण का हो जाता है। घृत का वर्ण जल की भाँति, छाछ का कबूतर की भाँति, माक्षिक मधु का हरा और तैल का लाल रंग हो जाता है। विष के संसर्ग से न पके हुए फल शीघ्र ही पक जाते हैं और पका हुआ फल विकृत हो जाता है। पुष्प मलीन हो जाते हैं, कठोर वस्तु कोमल तथा कोमल वस्तु कठोर हो जाती है, विष के संयोग से सूक्ष्म वस्त्रादि वस्तुओं का रूप और सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और उनमें एक दूसरी ही रंगत पैदा हो जाती है। वस्त्रों में विशेषकर काले धब्बे

मण्डलाकार पड़ जाते हैं। लोहे और मणि पर विष का प्रभाव पड़ने से ऐसा अनुभव होता है मानों वे मल अथवा कीचड़ में लपेट दिये गये हों। हे नृपोत्तम! शरीर में लेपन किये जानेवाले द्रव्यों एवं उपयोग में में आनेवाले पुष्पों में दुर्गन्धि आने लगती है और उनका वास्तविक रंग विकृत होने लगता है, हे राजन्! उसी प्रकार जल में भी पीलेपन का आभास होने लगता है। हे नृपोत्तम! विष के सेवन से दाँत, ओठ, चमड़ा श्यामल वर्ण के हो जाते हैं और शरीर में क्षीणता का अनुभव होने लगता है—इस प्रकार के उपर्युक्त तथा अन्यान्य चिह्नों से भी विष के लक्षण जानने चाहियें। इसलिए हे राजन्! राजा को सर्वदा मणि, मंत्र एवं उपर्युक्त औषधियों से सम्पन्न तथा असावधानी को छोड़कर रहना चाहिये। इस पृथ्वी तल पर प्रजारूपी वृक्ष की जड़ राजा है, उसी की रक्षा से समस्त राष्ट्र की वृद्धि होती है। हे सूर्यवंश के चन्द्रमा! इसलिए सभी को राजा की उन्नति प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये। ॥२-३४॥

श्री मात्स्य महापुराण में राजधर्म प्रकरण में राजरक्षा नामक दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त।॥२१९॥

दो सौ बीसवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! राजा को अपने पुत्र की रक्षा करनी चाहिये। उसकी शिक्षा के लिए नित्य पहरेदारों की देखरेख में एक आचार्य की नियुक्ति करनी चाहिये। उसे धर्म, काम, एवं अर्थशास्त्र तथा धनुर्वेद की शिक्षा दे और सर्वदा रथ और हाथी पर सवार होने की कुशलता सिखलाते हुए व्यायाम कराता रहे। उसे शिल्प की शिक्षा दिलाने की व्यवस्था करे। ऐसा प्रभाव उस पर पड़े कि गुरुजनों के सम्मुख असत्य प्रिय बातें न करे। तात्पर्य यह कि उसे इस प्रकार की शिक्षा दे कि युवावस्था में वह अति दुर्गम सत्पुरुषों के मार्ग से गिरकर इन्द्रियलोलुप न हो जाय। जिस राजकुमार में स्वभाव की विषमता के कारण उपदेशादि द्वारा गुणों का प्रवेश कराना दुष्कर समझ पड़े उसे बन्धन में डाल दे, पर वहाँ भी उसके सुख की व्यवस्था रखे, क्योंकि अविनीत राजकुमारों से ही कुल छिन्नभिन्न हो जाता है। राजा को सभी अधिकारों पर शिक्षित एवं विनयी व्यक्तियों की नियुक्ति करनी चाहिए। प्रथमतः किसी व्यक्ति को छोटे पद पर नियुक्त करे, धीरे-धीरे उसे उन्नति के पद पर पहुँचावे। राजा शिकार, मद्पान तथा द्यूतक्रीडा—इन सभी को वर्जित रखे, क्योंकि पूर्वकाल में इनके सेवन से बहुतेरे राजागण विनाश को पहुँच गये हैं। हे नृपशार्दूल! उनकी संख्या भी नहीं कही जा सकती। व्यर्थ की सैर, दिन में शयन—इनको तो विशेषकर राजा वर्जित करे। राजा को कभी भी कठोर वाणी नहीं बोलनी चाहिए उसी प्रकार उसे कभी किसी को कठोर दण्ड भी नहीं देना चाहिये। राजा को परोक्ष में किसी की निन्दा भूलकर भी नहीं करनी चाहिये। राजा को दो प्रकार के अर्थ दोषों से बचना चाहिये, वे हैं अर्थ

दोष एवं अर्थ-सम्बन्धी दोष । उनमे से अर्थ के दोष तो ये कहे गये हैं, किले की दीवालों का विध्वंस, राजदुर्ग का असत्कार (विरूप करना) एवं स्फुट विषयों में द्रव्य का दुरुपयोग । राजा को इस अर्थ के दोष से बचना चाहिये । उसी प्रकार विना देश और काल का विचार किये जो दान दिया जाता है, अयोग्य व्यक्ति को जो दान दिया जाता है एवं असत्कर्मों में जो राजा की प्रवृत्ति होती है, वह अर्थ-सम्बन्धी दोष कहा गया है । राजा को इस अर्थ-सम्बन्धी दोष से भी बचना चाहिये । राजा को सर्वदा काम, क्रोध, मद, मान, लोभ तथा हर्ष—इन सबों से प्रयत्नपूर्वक बचना चाहिये । इनको अपने वश में रखकर राजा को अनुचरों को भी स्ववश करना चाहिये, इस प्रकार अनुचरों को स्ववशकर पुरवासियों तथा जनपद में निवास करनेवालों पर राजा अपना अधिकार जमाये । उनको विजित करने के बाद राजा बाहरी शत्रुओं को अपने अधिकार में करे । वे बाहरी शत्रु कई प्रकार के जानने चाहियें, जैसे समान पदवाले, भीतर से द्वेष रखनेवाले तथा किन्हीं कारणों से बाहर से बने हुए । उनमे से क्रमशः एक-एक को महत्त्वपूर्ण समझकर यत्न करना चाहिये । अर्थात् सब से प्रथम समान शक्तिवालों से तदनन्तर भीतर से द्वेष रखनेवालों से पश्चात् बने हुए से । हे महाभाग ! राजाओं के तीन प्रकार के मित्र होते हैं । सर्वप्रथम वे हैं, जो पिता, पितामह आदि के काल से मित्ररूप में व्यवहार करते चले आये हैं, दूसरे वे हैं, जो शत्रु के शत्रु हैं, तथा तीसरे वे हैं, जो किन्हीं कारणों से पीछे मित्र कोटि में आ गये हैं—इन तीनों मित्रों में प्रथम मित्र उत्तम है तथा उसको सब से बढ़कर आदर भी देना चाहिये । हे धर्म के महत्त्व को समझने वाले ! स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, दण्ड, कोश तथा मित्र—ये सात अंग राज्य के कहे गये हैं । पर इस सात अंग के रहते हुए भी स्वामी ही राज्य का मूल कहा गया है, इसलिए सर्वदा उसी की रक्षा करना अन्य अंगों का भी कर्तव्य है और राजा को भी अपने छः अंगों की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये । इन अंगों में से यदि कोई मूर्ख किसी दूसरे अंग का द्रोह करता है तो राजा को उसको शीघ्र ही मार डालना चाहिए । राजा को कोमल वृत्तिवाला नहीं होना चाहिये, कोमल वृत्ति हो जाने से उसकी हार हो जाती है और न अत्यन्त कठोर स्वभाववाला ही होना चाहिये क्योंकि वैसा होने से भी लोग दुःखी होते हैं । जो राजा समय को ध्यान में रखकर मृदु तथा कठोर होता है, वह अपने दोनों लोकों की अपेक्षा करता है और वास्तव में उसे दोनों लोकों में सुख की प्राप्ति होती है । राजा को अपने अनुचरों के साथ परिहास वर्जित रखना चाहिये; क्योंकि उस समय आनन्द में निमग्न राजा की अनुचर-गण अवमानना कर बैठते हैं । राजा को सभी प्रकार के व्यसनों से बचना चाहिये, किन्तु लोगों को वश में रखने के लिए उसे कुछ कपट व्यसन तो करना ही चाहिये । गर्वीले स्वभाववाले तथा नित्य ही उद्धत स्वभाव रखनेवाले राजा से लोग कठिनता से अनुकूल होने के कारण विरक्त हो जाते हैं । अतः राजा को चाहिये कि वह सभी से मन्द मुसकानपूर्वक बातें करे । हे महाराज ! यहाँ तक कि प्राणदण्ड के अपराधी को भी वह कभी भृकुटि न दिखावे । हे धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ ! राजा को सर्वदा स्थूल (महान्) लक्ष्य की ओर दृष्टि रखनी चाहिये, महान् लक्ष्य को सम्मुख रखनेवाले के अधीन समस्त पृथ्वी हो जाती है । सभी कार्यों में उसे अविलंबी होना चाहिये । विलम्ब करनेवाले राजा के कार्य नष्ट हो जाते हैं । केवल अनुराग, दर्प,

आत्मसम्मान, द्रोह, पापकर्म तथा अपने को प्रिय न लगनेवाले कार्य में—राजा की दीर्घसूत्रता प्रशंसित मानी गई हैं। हे नृपोत्तम! राजा को सर्वदा गुप्त स्थल में सम्मति रखनी चाहिये अर्थात् अपनी सम्मति वह कभी किसी से न बतलावे, जो राजा अपनी सम्मति को गोपनीय नहीं रखता उसके ऊपर निश्चय ही सभी आपत्तियाँ आकर गिरती हैं। जिस राजा के केवल किये कार्यों को दूसरे लोग जानते हैं तथा भविष्य मे होनेवाले कार्य को कोई नहीं जानते, उस राजा के वश में समस्त वसुन्धरा हो सकती है। मंत्र ही सर्वदा राज्य का मूल है, अतः उसे सुरक्षित रखना चाहिये। राजाओं को मंत्रणा देने में सुनिपुण मंत्रियों द्वारा दिए गये मंत्र को सर्वदा, फूट जाने के भय से, गोपनीय रखना चाहिये, वह सभी सम्पत्तियों तथा सुखों को देनेवाला होता है। मंत्र ही के छल से पूर्वकाल में बहुतेरे राजा विनष्ट हो गये। आकृति, इशारे, गति, चेष्टा, वचन, नेत्र तथा मुख के विकार से अन्तःस्थित मनोभावों का पता लगता है, जिस राजा के मन का पता इन उपर्युक्त उपायों द्वारा कुशल लोग भी न लगा सकें उसके वश में सर्वदा वसुन्धरा बनी रहती है। राजा कभी एक जन के साथ मंत्र न करे और न अनेक लोगों को ही साथ ले। राजा ऐसी नाव पर, जिसकी नाविक ने कभी परीक्षा नहीं ले ली है, कभी सवार न हो। राजा को, उन्हें जो उसके विरुद्ध आचरण करनेवाले हों, साम दानादि चारों प्रकार के उपायों से वश में करना चाहिये। जिस प्रकार के उपायों से असावधानता वश प्रजावर्ग की दुर्बलता न बढ़े, उन्हीं उपायों से अपने राष्ट्र की रक्षा में उसे तत्पर होना चाहिये। जो राजा अज्ञानता वश असावधानी करके अपने राष्ट्र को दुर्बल करता है, वह शीघ्र ही राज्य से च्युत हो जाता है तथा परिवार के सहित जीवन से भी हाथ धोता है। हे महाभाग! जिस प्रकार पालतू बछड़ा बलवान होने पर कार्य करने में समर्थ होता है उसी प्रकार उसी भावना से पालन पोषण कर समृद्ध किया हुआ राष्ट्र भी भविष्य में कार्यक्षम होता है। जो राजा अपने राष्ट्र के ऊपर अनुग्रह की दृष्टि रखता है वस्तुतः वही राज्य की रक्षा करता है और इसी से महान् फल की प्राप्ति करता है। राजा राष्ट्र से सुवर्ण, अन्न, एवं सुरक्षित पृथ्वी की प्राप्ति करता है। रक्षा में अति प्रयत्नपूर्वक तत्पर रहनेवाला नृपति नित्य प्रति स्वकीय एवं परकीय—दोनों ओर की होनेवाली बाधाओं से माता और पिता के समान अपने राष्ट्र की रक्षा करे। राजा को अपनी इन्द्रियों को संयत तथा गुप्त रखना चाहिये और सर्वदा उनका प्रयोग संयत और गोपनीय करे। जीवन के सभी कार्य दैव और पुरुष इन दोनों के आधिकार में रहते हैं, उन दोनों में दैव के ऊपर तो पुरुष का कोई वश नहीं है, इसलिए उसकी चिन्ता छोड़कर पौरुष में अपना कर्त्तव्य निभाना चाहिये। इस प्रकार ऊपर कहे हुए ढंग से पृथ्वी का पालन करनेवाले राजा के ऊपर लोगों का परम अनुराग हो जाता है एवं लोगों के अनुराग होने ही से राजा को लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तथा लक्ष्मीवान् राजा को ही परम यश की प्राप्ति होती है। ॥१—४७॥

श्री मात्स्य महापुराण में राजधर्म कीर्त्तन नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२०॥

दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय

मनु ने कहा—हे देव! दैव (भाग्य) और पुरुषार्थ—इन दोनों में कौन श्रेष्ठ है? इस विषय में मुझे बड़ा सन्देह है, आप इस मेरे सन्देह को सम्पूर्णतः दूर करें। ॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! देहान्तर में अपने द्वारा किया गया पुरुषार्थ (कर्म) ही दैव कहा जाता है, इसीलिए मनीषी लोग पौरुष को ही श्रेष्ठ मानते हैं। हे मनुजोत्तम! मंगल आचरण करनेवाले नित्य प्रति अभ्युदय शील पुरुषों के प्रतिकूल दैव भी पुरुषार्थ से प्रभाव रहितहो जाता है। पूर्वजन्म में जिन्होंने सात्विक कर्म किये हैं, उन्हीं किन्हीं को इस जन्म में पुरुषार्थ के विना भी अच्छे फल की प्राप्ति होती देखी जाती है। लोक में राजसिक कर्म करनेवाले मनुष्य को कर्म करने से ही फल की प्राप्ति होती है, और तामस् कार्यों के करने से बहुत कष्ट के उपरान्त फल की प्राप्ति जाननी चाहिये। राजन्! मनुष्यों को पुरुषार्थ द्वारा ही अभिलषित पदार्थ की प्राप्ति होती है, जो लोग पुरुषार्थ से हीन हैं वे ही एकमात्र दैव को सब कुछ जानते हैं। अतः सर्वदा तीनों काल में पुरुषार्थ से युक्त दैव ही सफल होता है। राजन्! भाग्य से युक्त, मनुष्य का पुरुषार्थ समय आने पर फल देता है। पुरुषोत्तम! दैव, पुरुषार्थ एवं काल—ये तीनों संयुक्त होकर मनुष्य को फल देते हैं। लोक में वृष्टि के संयोग होने पर ही कृषि में फल प्राप्ति देखी जाती है किन्तु वह भी समय आने पर ही फलवती होती है, विना समय के नहीं। इसलिए मनुष्य को सर्वदा धर्म सहित पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थ में लगे हुए किसी मनुष्य को यदि इस लोक में विपत्तियों के पड़ जाने से फल प्राप्ति नहीं होती तो निश्चय है कि परलोक में उसे फल प्राप्ति होगी। आलसी पुरुष कभी भी अपने मनोरथ को सफल नहीं कर सकते और न भाग्य पर भरोसा रख कर बैठनेवाले ही सफल हो सकते हैं। इसलिए मनुष्य को सभी प्रयत्नों से पुरुषार्थ में सर्वदा जुटे रहना चाहिये। राजेन्द्र! भाग्य पर भरोसा रखकर बैठनेवाले आलसी पुरुषों को छोड़कर लक्ष्मी सर्वथा अभ्युदय में तत्पर पुरुषार्थी पुरुषों को प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़ ढूँढ़कर वरण करती है, इसलिए सर्वदा मनुष्य को अभ्युदय शील एवं पुरुषार्थी होना चाहिये। ॥२-१२॥

श्री मात्स्य महापुराण में भाग्य तथा पुरुषार्थ वर्णन नामक दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥२२१॥

दो सौ बाईसवाँ अध्याय

मनु ने कहा—महाकान्तिमान्! सुरोत्तम! अब तुम मुझे सामादि उपायों को तथा उनके लक्षण और उनके प्रयोगों की विधि बतलाओ। ॥१॥

मत्स्य ने कहा—पार्थिव ! साम, भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया तथा इन्द्रजाल ये सात प्रयोग बतलाये गये हैं, उनकी विधि तथा प्रयोगों मैं बतला रहा हूँ, सुनो । साम दो प्रकार का कहा गया है, एक तथ्य और दूसरा अतथ्य । उनमें अतथ्य साम का प्रयोग तो साधुपुरुषों की नाराजगी का कारण बन जाता है । नरोत्तम ! अतएव सत्पुरुष को तथ्य साम उपाय से ही साध्य जानना चाहिये । अतिउच्च कुल में उत्पन्न होनेवाले, सरल प्रकृति, नित्य धर्म में अभिरुचि रखनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष साम उपाय से ही साध्य होते हैं, अतः उनके लिए अतथ्य साम नीति का आश्रय नहीं लेना चाहिये । तथ्य साम का प्रयोग कुल के वर्णन, उपकारों की चर्चा; सत्कर्मों की प्रशंसा तथा उसकी सेवा एवं कार्यों का विशद वर्णन करके करे और इस प्रकार युक्तिपूर्वक अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करते हुए धर्म में तत्पर रहनेवालों को अपने वश में करना चाहिये । यद्यपि राक्षस भी साम नीति के द्वारा वश में किये गये हैं—ऐसी बातें प्रायः सुनी गई हैं; किन्तु इतने पर भी असत्पुरुषों के लिए इसका प्रयोग उपकारक नहीं होता । वे असज्जन पुरुष साम की बातें करनेवाले को अतिशय डरा हुआ समझते हैं अतः उनके लिए इसका उपाय नहीं करना चाहिये । जो शुद्ध वंश में उत्पन्न, सरल प्रकृतिवाले, धर्मिष्ठ, धर्मपरायण, सत्यवादी, विनयी एवं सम्मानी व्यक्ति हैं वे ही सर्वदा साम उपाय से साध्य हो सकते हैं । ॥१-१०॥

श्री मात्स्य महापुराण के राजधर्म प्रकरण में सामवोध नामक दो सौ बाइसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२२॥

दो सौ तेईसवाँ अध्याय

मत्स्य ने कहा—जो परस्पर बैर रखनेवाले, दुष्ट, क्रोधी, भय से डरे हुए तथा अपमानित व्यक्ति हैं वे भेद उपाय से साध्य होते हैं, उन्हें वश्य करने के लिए भेदोपाय का अवलम्ब लेना चाहिये । जो लोग जिस दोष के कारण दूसरे से अप्रसन्न रहते हैं, उन्हें उसी दोष को दिखाकर आपस में भिन्न करना चाहिये। भेद्य व्यक्ति को उसके निजी दोषों को दिखाकर अच्छी आशा तथा दूसरे से भय होने की आशंका दिखलावे, इस प्रकार एक दूसरे से भिन्न कर उन्हें अपने वश में लावे । जो आपस में एकता के सूत्र में बँधे हुए शत्रु हैं वे भेद उपाय के विना इन्द्र से भी असाध्य होते हैं । इसीलिए नीतिज्ञ लोग ऐसे स्थलों पर भेद उपाय की ही प्रशंसा करते हैं । इस भेद उपाय का कार्य अपने मुख से अथवा दूसरे के मुख से भेद्य व्यक्ति से कहे या कहलावे; परन्तु अपने विषय में दूसरे की भेदनीति की वार्त्ता सुनकर भली भाँति परीक्षा कर ले तब सत्य मानकर विश्वास करे । शीघ्रतापूर्वक अपने कार्य के उद्देश्य से सुनिपुण नीतिज्ञों द्वारा जो भेदित किये जाते हैं वे ही सच्चे अर्थ में भेदित कहे जाते हैं । अर्थचिन्ता में परायण राजा को इसी उपाय से शत्रुओं को भेदित करना चाहिए दूसरे उपाय से नहीं । आन्तरिक कोप (घरेलू वैमनस्य) और बाहरी कोप—ये दो कोप राजाओं के सम्मुख जब

उपस्थित हों, तो उनमें आन्तरिक कोप को अधिक महान् एवं प्रभावशाली जानना चाहिये। उससे राजाओं का विनाश हो जाता है। सामन्त एवं नृपति गणों का क्रोध बाहरी क्रोध कहा गया है तथा रानी, युवराज, सेनापति, मंत्रीगण तथा राजकुमारों के क्रोध को आन्तरिक कोप कहते हैं। जिसका प्रभाव राज के लिए अत्यन्त भयानक बताया गया है। हे महाभाग्यशाली! अत्यन्त भीषण भी बाहरी कोप राजा के ऊपर पड़ गया हो; किन्तु यदि उसका आन्तरिक भाग वैमनस्य रहित है अर्थात् उपर्युक्त सभी उसका सहयोग कर रहे हैं तो वह शीघ्र ही विजय लाभ करता है। और इन्द्र के समान भी पराक्रमी तथा साधन सम्पन्न हो किन्तु यदि भीतरी कलह है तो वह शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है। इसलिए राजा को आन्तरिक कोप के शमन लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। शत्रु को विजित करनेवाले राजा को चाहिये कि दूसरे लोगों से क्रोध पैदा कराकर उसकी जाति में प्रबल भेद उत्पन्न कर दे और प्रयत्नपूर्वक अपनी जाति में भेद न होने दे। यद्यपि जाति के लोग राजा की उन्नति देखकर सर्वदा परिताप की अग्नि से जलते रहते हैं तथापि राजा को गम्भीर भाव से उनकी रक्षा का प्रयत्न करना चाहिये। दान तथा सम्मान देकर सर्वदा उन्हें अपने में सम्मिलित किये रहना चाहिये, क्योंकि जाति में भेदनीति बड़ी भयङ्कर होती है। जातिवालों पर प्रायः लोग अनुग्रह का भाव नहीं रखते और न उनका विश्वास ही करते हैं इसलिए राजाओं को चाहिये कि जाति में फूट डालकर शत्रु को उनसे अलग कर दें। इस प्रकार भेद नीति द्वारा भिन्न किये हुए अधिक शत्रुओं को भी राजा अपनी थोड़ी सेना से संग्राम में विनष्ट कर सकता है; अतएव नीति निपुण लोगों को एकता के सूत्र में बँधे हुए अनेक शत्रुओं के लिए भेदनीति का प्रयोग करना चाहिये। ॥१-१६॥

श्री मात्स्य महापुराण के राजधर्म प्रकरण में भेदप्रशंसा नामक दो सौ तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२३॥

दो सौ चौबीसवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—सभी प्रकार के उपायों में दान सर्वश्रेष्ठ उपाय माना गया है, दान यदि भली भाँति समझ बूझकर दिया गया है तो वह इह एवं पर दोनों लोकों में विजय देनेवाला होता है। हे राजन्! इस पृथ्वीतल पर ऐसा कोई नहीं है जो दान द्वारा वश में न किया जा सके, यहाँ तक कि दान के द्वारा देवता लोग भी सर्वदा मनुष्यों के वश में होते आये हैं। हे नृपोत्तम! दान ही एक ऐसा पदार्थ है जो सभी प्रजाओं का पालन पोषण करता है, दान देनेवाला प्राणी इस पृथ्वी मात्र में सब का प्रिय हो जाता है। दानशील राजा दान द्वारा शीघ्र ही शत्रुओं को अपने वश में कर लेता है, और दानशील ही एकता के सूत्र में बँधे हुए शत्रुओं को परस्पर भेदित करने में समर्थ हो सकता है। यद्यपि इस दान को निर्लोभी तथा सागर के समान गम्भीर प्रकृति वाले मनुष्य अंगीकार नहीं करते; पर वे भी इसके प्रयोग से

अपने पक्ष के बन जाते हैं। आवश्यकता के अतिरिक्त दूसरे स्थानों पर भी किया गया दान दूसरे लोगों को भी अपने वश में कर देता है, इसीलिए लोग सभी उपायों में दान की अति प्रशंसा किया करते हैं। पुरुषों के लिए दान कल्याण देनेवाला है तथा सभी प्रकार के उपायों से अतिश्रेष्ठ है। लोक में दानशील व्यक्ति की सर्वदा पुत्र की भाँति प्रतिष्ठा होती है। दान में तत्पर रहेनवाले दानवीर पुरुष न केवल भूलोक को ही अपने वश में करते हैं प्रत्युत वे उस देवराज इन्द्र के लोक को भी जीत लेते हैं, जो सचमुच अति दुर्जेय तथा देवताओं का निवास है।॥१—८॥

श्री मात्स्य महापुराण में राजधर्म प्रकरण में दान प्रशंसा नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त।॥२२४॥

दो सौ पच्चीसवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! उपर्युक्त तीनों उपायों द्वारा जो शत्रु वश में नहीं किये जा सकते उन्हें दण्ड नीति से वश में करना चाहिये। दण्ड तो सभी मनुष्यों को वश में करनेवाला कहा गया है। किन्तु उस दण्डनीति का प्रयोग भली-भाँति धर्मशास्त्रानुकूल मंत्री की सहायता से बुद्धिमान् राजा को करना चाहिये। राजा को उस दण्डनीति का प्रयोग जिस प्रकार करना चाहिये उसे सुनो। उसे अपने देश में अथवा शत्रु के देश में वानप्रस्थाश्रमी, धर्मशील, संसार की माया से विरक्त रहनेवाले, किसी से कुछ भी न लेनेवाले, धर्मशास्त्र प्रवीण पुरुषों को भली-भाँति देखकर दण्डनीति का प्रयोग करना चाहिये। इस दण्ड की व्यवस्था यद्यपि सब के लिए है किन्तु राजा को अपने धर्म एवं आश्रम में रहनेवाले, वर्णाश्रम की मर्यादा को माननेवाले, पूज्य, गुरु, उच्चाशय को दण्ड नहीं देना चाहिये। अदण्डनीय पुरुषों को दण्ड देकर तथा दण्डनीय पुरुषों को दण्ड न देकर राजा इस लोक में तो राज्य से भ्रष्ट हो ही जाता है उसका परलोक भी नष्ट हो जाता है। इसलिए धर्मशास्त्र से अनुमोदित पथ पर चलते हुए विनयशील-राजा लोगों के ऊपर अनुग्रह की भावना से दण्ड नीति का प्रयोग करे। जिस राज्य में सत्प्रकृतिवाले राजा की देखरेख में श्यामवर्ण एवं लालनेत्रवाला दण्ड प्रचारित है उस राज्य में प्रजाएँ कभी नहीं बिगड़तीं। यदि राज्य में दण्डनीति की व्यवस्था न रखी जाय तो बालक, वृद्ध, आतुर, संन्यासी, ब्राह्मण, स्त्री एवं विधवा—इन सबों को मछली की भाँति आपस में ही सब खा जायँ। अर्थात् जिस प्रकार बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को हड़प जाती हैं, उसी प्रकार दण्ड व्यवस्था के न रहने से बलवान, लोग इन उपर्युक्त असहायों को चूस डालें। यदि राजा दण्ड की व्यवस्था न बाँधे तो सभी देवता, दैत्य, सर्पगण एवं मत प्रेत तथा पक्षी आदि अपनी-अपनी मर्यादा गवाँ बैठेंगे। राजा का यह दण्ड ब्राह्मण के अभिशाप, सभी प्रकार की मार-पीट एवं सभी प्रकार के पराक्रमपूर्वक क्रोध से किये गये कार्य कलापों में व्यवस्थित रहता है। दण्ड देनेवाला व्यक्ति देवताओं से भी पूज्य हो जाता है और दण्ड न देनेवाले की पूजा कहीं नहीं होती। लोक में भी देखिये,

साधारण जनता, जगत् की सृष्टि करनेवाले पितामह ब्रह्मा, जगत् के पालक पूषा तथा अर्यमा की पूजा इसलिए नहीं करते कि वे सभी कार्यों में शान्त रहते हैं। दण्ड देनेवाले रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु एवं अन्यान्य देवगणों की सभी लोग पूजा करते हैं। दण्ड ही सभी प्रजाओं का पालन करता है तथा वही एकमात्र सब की रक्षा भी करता है, दण्ड ही एक ऐसा पदार्थ है जो सभी के सो जाने पर भी सर्वदा जागता रहता है, अतएव बुद्धिमान् लोग दण्ड को धर्म जानते हैं। राजदण्ड के भय से ही पापी लोग पापकर्म नहीं करते। इसी प्रकार कुछ पापी यमराज के दण्ड के भय से और कुछ एक दूसरे—प्रबल शत्रु के भय से पापाचरण में प्रवृत्त नहीं होते, इस प्रकार इस स्वाभाविक जगत् में सभी लोग दण्ड की व्यवस्था के अन्दर बँधे हुए हैं। यदि राजा दण्डनीय को दण्ड नहीं देता है तो वह अन्धतामिस्र नरक में पड़ता है। दण्ड ही एक ऐसा उपाय है जो अभिमान से उन्मत्त लोगों को वश में करके उन्हें उसका फल भी चखाता है, इसीलिए वश में करने तथा दण्ड देने के कारण दण्ड की महिमा को बुद्धिमान् लोग जानते हैं। दण्ड ही के भय से डरे हुए देवताओं ने दक्ष के यज्ञ में शिव जी का भाग रखा था और दण्ड ही के भय से स्वामी कार्त्तिकेय को शैशवावस्था में ही सारी देवसेना का सेनापतित्व सौंपा गया था। ॥१-१८॥

श्री मात्स्य महापुराण में राजधर्म प्रकरण में दण्ड प्रशंसा नामक दो सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥२२५॥

दो सौ छब्बीसवां अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—ब्रह्मा ने दण्ड की व्यवस्था के लिए तथा सभी प्राणधारियों की रक्षा के लिए ही सभी देवताओं के अंशों को लेकर राजा की रचना की है। तेज से देदीप्यमान होने के कारण लोग जो इसे देख नहीं सकते इसी कारण से लोकों में राजा सूर्य के समान तेजस्वी स्वामी कहा जाता है। इसके देखने से लोग प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं, अतः नेत्रों को आनन्द देने के कारण वह उस समय चन्द्रमा हो जाता है। जिस प्रकार समय आने पर यमराज मनुष्यों को कल्याण तथा दण्ड देता है उसी प्रकार राजा को भी समय-समय पर प्रजा के साथ दोनों नीतियों का आश्रय लेना चाहिये—राजा का यह स्वभाव यमव्रत है। जिस प्रकार वरुण पाश से बँधे हुए दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार पापाचरण करने से प्रजा को भी राजा पाशबद्ध करता है, यह उसका वारुण व्रत है। जिस प्रकार मनुष्य पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर अति प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार जिसको देखकर प्रजा प्रसन्न होती है, वह चन्द्रमा के समान राजा ही है। पापाचरण, दुष्टप्रकृतिवाले सामन्तों तथा हिंसकों के लिए नित्य प्रतापशाली एवं तेजस्वी रूप में दण्डादि का व्यवहार करना राजा का अग्निव्रत कहा गया है। जिस प्रकार सभी प्रकार के जीवों को पृथ्वी अपने ऊपर धारण करती है उसी प्रकार राजा भी सभी पापियों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर वहन करता है यही उसका पार्थिवव्रत है। राजा को इस प्रकार इन्द्र, सूर्य, वायु, यमराज, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि तथा पृथ्वी के तेज एवं

धर्म का आचरण करना चाहिये। जिस प्रकार आषाढ़ आदि चार महीनों में इन्द्र वृष्टि करता है उसी प्रकार राजा को भी अपने राष्ट्र में स्वेच्छापूर्वक दानवृष्टि करनी चाहिये—यही उसका इन्द्रव्रत कहा गया है। जिस प्रकार आठ महीने तक सूर्य अपनी किरणों से जलाशयों के जलों का पान करता है उसी प्रकार राजा भी राज्य से कर ग्रहण करे—यह उसका सर्वदा चलनेवाला सूर्यव्रत है। जिस प्रकार वायु सभी चराचर जीवों में सर्वदा विचरण किया करता है उसी प्रकार राजा को भी सभी प्राणियों तक गुप्तचरों द्वारा प्रविष्ट होना चाहिये—यही उसका वायुव्रत है। ॥१—१२॥

श्री मात्स्य महापुराण के राजधर्म प्रकरण में प्रजापालन नामक दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥२२६॥

दो सौ सत्ताईसवां अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! वस्त्रादि की धरोहर को हड़प कर जानेवाले व्यक्ति को उसके मूल्य जितना दण्ड देना चाहिये, ऐसा करने से राजा का धर्म नष्ट नहीं होता। जो व्यक्ति विना धरोहर रखे ही यह दावा करता है कि मैंने अवश्य रखा था और जो रखी हुई धरोहर को हड़प जाता है, वे दोनों ही चोर के समान दण्ड पाने के पात्र हैं अथवा उनको मूल्य से द्विगुणित दण्ड दिया जाय। जो कोई मनुष्य अनेक साथियों के साथ किसी दूसरे के धन को अपहृत करता है उसे सहायकों के साथ वध का दण्ड देना चाहिये अथवा अपनी इच्छानुसार किसी अन्य कठोर दण्ड का भाजन बनाना चाहिये। जो कोई व्यक्ति दूसरे से ली गई वस्तु को समय पर वापिस नहीं लौटाता है, राजा को चाहिये कि उसे पकड़ कर उसका निग्रह करे अथवा बलपूर्वक खूब दण्ड दे। जो व्यक्ति विना जाने हुए किसी दूसरे की वस्तु को बेंच देता है, वह तो निर्दोष है; किन्तु जो जानते हुए भी कि यह दूसरे की वस्तु है बेंचता है चोर के समान दण्डनीय है। जो व्यक्ति मूल्य लेने के बाद विद्या अथवा शिल्प को दान नहीं देता, धर्म की मर्यादा को जाननेवाले राजा को उसे उस सम्पूर्ण मूल्य का दण्ड देना उचित है। जो व्यक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराते समय अपने पड़ोसियों को भोजन नहीं कराता उसे पुण्य न होकर पापही होता है। राजा को उसे एक माष सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये। उसे दण्ड देने से राजा को कोई अपराध नहीं लगता। निमंत्रण दिये जाने पर जो ब्राह्मण अपने घर रह कर भी विना किसी कारण के भोजन करने नहीं जाता उसे एक सौ आठ दम का दण्ड देना चाहिये। जो किसी वस्तु के देने की प्रतिज्ञा करके भी दान नहीं करता उसे एक सुवर्ण मुद्रा का दण्ड देना चाहिये। जो नौकर होकर भी स्वामी की आज्ञा को अभिमान के कारण नहीं पूर्ण करता उसे राजा आठ कुण्डल का दण्ड दे और वेतन भी न दे। जो स्वामी अपने नौकर के संचित वेतन को समय पर नहीं दे देता और कुसमय में उसे नौकरी से निकाल देता है उसे सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति सत्यतापूर्वक किये गये ग्राम देश और अन्न के बटवारे को लोभ के कारण फिर झूठ कहकर असत्य मानता

है उसे राजा को चाहिये कि अपने देश से निकाल दे। किसी वस्तु को खरीदने या बेंचने के बाद यदि कुछ मूल्य शेष रह जाता है तो उसे दस दिन के भीतर दे देना या ले लेना चाहिये। यदि दस दिन बीत जाने के बाद कोई शेष मूल्य को दे देने की या दिला देने की व्यवस्था नहीं करता तो राजा उन दोनों को छः सौ मुद्राओं का दण्ड दे। जो व्यक्ति अपनी दोष से युक्त कन्या को विना दोष को सूचित किये किसी को दान करता है, उसे राजा स्वयं छानबे पणों का दण्ड दे। जो मनुष्य विना दोष के ही किसी दूसरे की कन्या को दोषयुक्त बतलाता है, वह यदि उस कन्या के दोषों को दिखाने में असमर्थ रह जाता है तो राजा उसे सौ मुद्रा का दण्ड दे। जो व्यक्ति एक कन्या को दिखलाकर विवाह समय में किसी दूसरी कन्या को दान देता है राजा को उसे कोई कठोर दण्ड देना चाहिये। जो वर अपने दोषों को गुप्त रखकर किसी कन्या का पाणिग्रहण करता है, वह कन्या देने के बाद भी न दी हुई के समान है, राजा उस अपराधी व्यक्ति के ऊपर दो सौ मुद्राओं का दण्ड लगावे। जो व्यक्ति एक कन्या को किसी दूसरे को दान कर के फिर किसी दूसरे को दान करता है, उसे भी राजा को चाहिये कि किसी कठोर दण्ड का पात्र बनावे। जो व्यक्ति अपने मुँह से यह कह कर कि 'निश्चय ही इतने मूल्य पर अमुक वस्तु आप को दे दूँगा' पर फिर भी अधिक लोभ के कारण अधिक मूल्य पर किसी दूसरे के हाथ बेंच देता है उसे छः सौ मुद्राओं का दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति मूल्य लेकर कन्या का विक्रय करता है अथवा सत्य वचन से टलता है, उसे लिये हुए मूल्य से द्विगुणित द्रव्य का दण्ड देना चाहिये, यह धर्म की व्यवस्था है। मूल्य का कुछ भाग देने के पश्चात् यदि लेने वाला व्यक्ति उसे लेना नहीं चाहता तो उसे मध्यम दण्ड देना चाहिये और उस दिये हुए बयाने को नहीं लौटाना चाहिये। जो गोपाल (चरवाहा) उपयुक्त वेतन लेकर गौओं को दुह लेता है अथवा उनकी ठीक से रक्षा नहीं करता है तो राजा को उसे सौ सुवर्ण मुद्राओं का दण्ड देना चाहिये। दण्ड देने के बाद राजा विरत हो जाय। तदनन्तर राजा द्वारा चिह्नित किया गया अपराधी काले लोहे के बने हुए पाशों से आवद्ध होकर राजा के कथनानुसार कारागार में किसी कार्य में नियुक्त किया जाय। ग्राम के बाहर चारों ओर से सौ धनुष के विस्तार में उनका निवास कराये और नगर के लिए उससे दुगने या तिगुने में कारागार का निर्माण करे। उसके चारों ओर इतना ऊँचा घेरा रहे जिसके भीतर की वस्तु को ऊँट भी न देख सके। तथा उन सभी प्रकार के छिद्रों को भी, जिनमें कुत्ते तथा शूकर हिलकर भीतर जा सकें बन्द करा देना चाहिये। विना घेरे के खेत में अन्न को यदि पशुगण हानि पहुँचाते हैं तो राजा को पशु के चरवाहे को दण्ड नहीं देना चाहिये। उस गाय द्वारा, जिसे ब्याये हुए अभी दस दिन नहीं बीता है, तथा उस वृष द्वारा, जो देवता के उद्देश से छोड़ा गया है यदि घेरा रहने पर भी खेत के अन्न की हानि होती है तो उसके लिए पलुपालक दण्डनीय नहीं है—ऐसा मनु ने कहा है। इन उपर्युक्त कारणों के विना यदि अन्य प्रकार से पशुओं से खेतों के अन्नादि को हानि पहुँचती है तो खेत के स्वामी की क्षतिपूर्ति के लिए पशुपालक तथा पशुस्वामी के ऊपर दस गुना दण्ड लगाना चाहिये। यदि कोई पशु उस खेत में खाकर हानि पहुँचाने के बाद भी वहीं बैठा हुआ मिलता है तो उसके स्वामी के ऊपर उक्त दण्ड से दुगुना दण्ड लगाना चाहिये। यदि खेत का स्वामी क्षत्रिय है,

और वैश्य का पशु हानि पहुँचाता है तो उसे हानि का दस गुना अधिक दण्ड देना चाहिये। यदि किसी के घर, तालाब, बगीचे अथवा खेत को कोई दूसरा छीन लेता है तो उसे पाँच सौ दम का तथा यदि विना जाने इनकी हानि पहुँचाता है तो दो सौ दम का दण्ड देना चाहिये। किसी खेत आदि की सीमा बाँधने के समय यदि कोई व्यक्ति सीमा का उल्लंघन करता है अथवा सीमा के उल्लंघन करने की सम्मति देता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये। शपथ करके जो व्यक्ति सीमा के उल्लंघन करनेवाले व्यक्ति की बातों का समर्थन करता है, उसे उत्तमसाहस का दण्ड देना चाहिये—ऐसा स्वायम्भुव मनु ने कहा है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—ये तीनों वर्णवाले विना किसी विशेषता के समाज में अपनी स्थिति के क्रम से यदि निषिद्ध कार्य करते हैं, तो उसका प्रायश्चित्त करें। यदि असत्याचरण द्वारा कोई स्त्री किसी की हत्या करती है तो उसे शूद्र की हत्या में जो प्रायश्चित्त किया जाता है, करना चाहिये। सर्पादि की हत्या कर धन द्वारा दान आदि के करने में असमर्थ द्विजों को पापशान्ति के लिए एक-एक कृच्छ्रव्रत का आचरण करना चाहिये। फल देनेवाले वृक्षों को काटने के जो अपराधी हैं उन्हें सौ ऋचाओं का जप करना चाहिये। फूली हुई लताओं, गुल्मों, वल्लियों तथा फूले हुए वृक्षों के काटने पर भी सौ ऋचाओं का जप करना चाहिये। हड्डीवाले जीवों का एक सहस्र की संख्या में अथवा एक गाड़ी में भर जाने भर की हत्या करने-वाले को शूद्रहत्या का प्रायश्चित्त करना चाहिये। हड्डीवाले जानवरों की हिंसा करके ब्राह्मण को कुछ दान देना चाहिये, और जो विना हड्डी के हैं, उनकी हिंसा करने पर प्राणायाम से शुद्धि हो जाती है। अन्नादि में उत्पन्न होनेवाले, रसादि में उत्पन्न होनेवाले तथा फल और पुष्पों के जन्तुओं की हिंसा करने पर घृत का भोजन कर लेना चाहिये। कृषि कर्म से उत्पन्न हुई तथा वन में स्वतः जमी हुई औषधियों को विना आवश्यकता के काटने पर एक दिन का दुग्धव्रत रखना चाहिये। हिंसा से उत्पन्न पातक को इन उपर्युक्त व्रतों से दूर करना चाहिये। अब चौर कर्म से उत्पन्न हुए पाप को शान्त करने के लिए उत्तम व्रत का विधान सुनिये। धान्य, अन्न एवं धन का इच्छापूर्वक अपहरण यदि ब्राह्मण अपनी जाति वालों के घर से करता है तो वह अर्धकृच्छ्रव्रत से शुद्ध होता है। मनुष्यों तथा स्त्रियों का हरण करने तथा खेत, घर, कूप और बावली के जल का हरण करने से चान्द्रायण व्रत करने पर शुद्धि मानी गई है। दूसरे के घर से थोड़ी मूल्यवाली सम्पत्ति का अपहरण करके कृच्छ्र सान्तपन व्रत से शुद्धि मिलती है। भोजन की वस्तुओं के अपहरण करने पर तथा वाहन, शय्या, आसन, पुष्प, मूल एवं फलादि की चोरी करने पर पंचगव्य से शुद्धि होती है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड, वस्त्र, चमड़ा तथा मांस की चोरी करने पर तीन रात तक भोजन नहीं करना चाहिये। मणि, मोती, प्रवाल ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा तथा पत्थर की चोरी करने पर अन्न के कणों का भोजन करना चाहिये। सूती, रेशमी, ऊनी वस्त्र, दो तथा एक खुरोंवाले जन्तु, पक्षी, सुगन्धित द्रव्य, औषधि तथा रस्सी की चोरी करके तीन दिनों तक केवल दुग्ध का आहार करना चाहिये। इन उपर्युक्त व्रतों के करने से चोरी के पाप से द्विज जाति वालों का छुटकारा हो जाता है। अगम्य स्त्रियों के साथ समागम करनेवालों को निम्नलिखित व्रतों का

आचरण करना चाहिये। अपनी जाति में उत्पन्न हुई पराई स्त्री के साथ समागम करके गुरुतल्प व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये अर्थात् इसमें गुरु की स्त्री के साथ समागम करने का प्रायश्चित्त विहित हैं, उसी का अनुष्ठान करना चाहिये। मित्र तथा पुत्र की स्त्री के साथ, कुमारी एवं नीच जाति की स्त्री के साथ, फुफेरी तथा ममेरी बहिन के साथ, भाई की स्त्री के साथ समागम करके चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष को अपनी जाति की किन्हीं स्त्रियों के साथ तथा उन स्त्रियों के साथ जो समाज से बहिष्कृत पतितों के साथ हैं, समागम नहीं करना चाहिये। जो पुरुष मनुष्य से भिन्नयोनि, ऋतुमती स्त्री तथा विना योनिद्वार के कहीं अन्यत्र, अथवा जल में वीर्यत्तरण करता है उसे कृच्छ्र सान्तपन नामक व्रत का आचरण करना चाहिये। द्विजाति पुरुष को स्त्री पुरुष के मैथुन को देखकर अथवा बैलगाड़ी पर, जल में, तथा दिन में मैथुन कर के वस्त्र समेत स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण यदि अज्ञान से चाण्डाल और अन्त्यज स्त्रियों के साथ सम्भोग करके, उनके यहाँ भोजन कर उनके दिये हुए दानादि को ग्रहण करता है वह पतित हो जाता है और जानबूझकर करता है तो वह उन्हीं जातिवालों की समता में हो जाता है। ब्राह्मण द्वारा दूषित स्त्री को उसका पति एक निर्जन घर में बाँध दे और दूसरे की स्त्रियों में कामाभिलाषा रखनेवाले पुरुषों को भी यही व्रत कराये। यदि ऐसा करने के बाद भी वह स्त्री पुनः किसी परकीय पुरुष के साथ दूषित होती है तो उसके लिए कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान कहा गया है। जो द्विज एक रात को शूद्र स्त्री के साथ समागम करता है वह केवल एक प्रकार का भोजन वर्ष भर कर के जप करते हुए तीन वर्षों में शुद्ध होता है। चारों जातियों के पापाचरण करनेवालों के लिए यह निस्तार की बातें मैंने कही हैं। अब पतितों के संसर्ग से होनेवाले पाप की निष्कृति का उपाय सुनिये। पतितों के घर यज्ञानुष्ठान, अध्यापन, यौन सम्बन्ध, भोजन, एक वाहन पर गमन तथा समान आसन पर बैठना—इन सब कामों में संसर्ग रखने से द्विजाति एक वर्ष में पतित हो जाता है। जो मनुष्य इन सब कर्मों में पतितों का साथ देता है वह उसी कर्म में पतितों के लिए कहे गये प्रायश्चित्त का अनुष्ठान उस संसर्गजन्य दोष से अपनी शुद्धि के लिए करे तब शुद्ध होता है; किन्तु तब तक उसे प्रेत की भाँति रहना चाहिये। और उसके सपिण्ड में उत्पन्न होनेवालों को चाहिये कि उसकी उदक क्रिया करें। किसी निन्दित दिन को सायंकाल के समय गुरु के समीप, जातिवालों के साथ उक्त विधान होना चाहिये। दासी उक्त व्यक्ति को प्रेत की भाँति समझकर जलपूर्ण घट को ईशान कोण में रखे। और वह परिवार वर्ग वालों के साथ एक दिन-रात का उपवास करे और अशौचवत् व्यवहार रखे। परिवार वर्ग को उस व्यक्ति के साथ सम्भाषण नहीं करना चाहिये तथा साथ बैठना भी नहीं चाहिये। इस पाप कर्मों की जाति को भी उन्हें नहीं प्रकट करना चाहिये—यही लौकिक मर्यादा है। जिस प्रकार ज्येष्ठ भाई के नहीं रहने पर उसके हिस्से की प्राप्ति छोटे भाई को होती है उसी प्रकार अधिक गुणवान् होने पर भी छोटे भाई को उसका फल भोगना पड़ता है। जो पापाचरण करनेवाले प्राणी स्थापित की गई मर्यादा को उल्लंघित करते हैं, उन सब को राजा पृथक्-पृथक् जाति क्रमानुसार उत्तमसाहस का दण्ड दे। यदि क्षत्रिय होकर ब्राह्मण को गाली बकता है तो उसे सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिये, यदि वैश्य है तो

उसे दो सौ का और शूद्र है तो उसे मृत्यु का दण्ड देना चाहिये। यदि ब्राह्मण है और क्षत्रिय को कटु बातें कहता है तो उसे पचास दम का दण्ड दे और वैश्य को कटूक्ति सुना रहा है तो पच्चीस दम तथा शूद्र को तो बारह दम का दण्ड देना चाहिये। यदि वैश्य होकर क्षत्रिय को गाली बक रहा है तो उसे उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये और शूद्र होकर क्षत्रिय को गाली-गलौज बक रहा है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये। क्षत्रिय यदि वैश्य को बुरा भला कह रहा है तो उसे पचास और शूद्र को बुरा भला कह रहा है तो पचीस दम का दण्ड देना चाहिये; किन्तु ऐसा करने से उसका धर्म क्षीण नहीं होता। शूद्र यदि वैश्य को गाली बके तो उसे उत्तमसाहस का दण्ड देना चाहिये और वैश्य होकर शूद्र को बुरा-भला सुना रहा है तो पचास दम का दण्ड देना चाहिये। यदि कोई अपने वर्णवाले को गाली गलौज बकता है तो उसे बारह दम का दण्ड देना चाहिये और यदि ऐसी बातें कहता है, जो नहीं कहने योग्य हैं तो फिर वह दण्ड द्विगुणित हो जाता है। यदि द्विजाति से भिन्न जाति-वाला किसी द्विजाति को कठोर वाणी से बुरा-भला सुनाता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये और उसे परम नीच समझना चाहिये। नाम, जाति तथा घरेलू बातों की चर्चा करते हुए जो गाली-गलौज करता है उसके मुँह में जलती हुई लोहे की बारह अंगुल लंबी शलाका डाल देनी चाहिये। यदि शूद्र होकर द्विजाति के धर्म की कुचर्चा करता है तो उसके कान में तथा मुख में राजा को खौलता हुआ तेल डाल देना चाहिये। वेद, देश, जाति एवं शारीरिक कार्यों के सम्बन्ध में ग्लानि करनेवाले को राजा द्विगुण साहसदण्ड दे। जो व्यक्ति स्वयं पापाचारी होते हुए दूसरी जाति वालों को बुरा-भला कहता है उसे राजा उसकी जाति के अनुरूप उत्तमसाहस दण्ड का पात्र बनावे। जो राजा के बनाये हुए नियम की अवज्ञा करते हैं अथवा राजा के प्रति विरोधमूलक बातें करते हैं उन सब को द्विगुणसाहस दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति अपने अपराध को "मैंने भ्रमवश ऐसा किया है, अथवा मुझसे इस कार्य में प्रमाद हुआ, अब भविष्य में ऐसा फिर न करूँगा", ऐसा कहकर स्वीकार कर प्रतिज्ञा करता है तो वह आधे दण्ड का पात्र है। काना हो लँगड़ा हो अथवा अन्धा हो, यदि उन्हें अपमानित करने की टोन में कोई सचमुच उक्त विशेषणों से पुकारता है तो उसे एक कार्षापण का दण्ड देना चाहिये। माता, पिता, ज्येष्ठ भाई, श्वसुर तथा गुरु—इन सब को बुरा भला कहनेवाले तथा इन गुरुजनों के मार्ग को रोकनेवाले को सौ कार्षापण का दण्ड देना चाहिये। गुरु के अतिरिक्त अन्य मान्य व्यक्तियों को, जो आगे से मार्ग नहीं देता है, उसे उसकी पाप शान्ति के लिए राजा एक कृष्णल का दण्ड दे। द्विजाति से अन्य जातिवाला व्यक्ति यदि किसी द्विज जाति वाले का किसी अंग से अपकार करता है तो राजा उसका शीघ्र ही वह अंग काट ले, इसमें विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं हैं। सामने गर्वपूर्वक थूकने वाले, पेशाब करने वाले तथा अपानशब्द करनेवाले व्यक्ति का राजा क्रमश दोनों होंठ, लिंग और गुदा द्वार काट ले। यदि कोई नीच जाति वाला व्यक्ति किसी उच्च व महान् व्यक्ति के आसन पर बैठने की इच्छा प्रकट करता है तो राजा उसकी कमर में एक चिह्न बनाकर अपने राज्य से निर्वासित कर दे अथवा उसके चूतड़ को काट ले। और इसी प्रकार यदि कोई निम्न जाति

वाला किसी उच्च जाति के व्यक्ति के केशों को पकड़ता है तो उसके हाथों को विना विचार किये ही काट ले। इसी प्रकार का दण्ड दोनों पैरों, नासिका, कंठ तथा अण्डकोश के पकड़ने पर भी देना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति किसी के चमड़े को भेद देता है और उससे रक्त निकलता दिखाई पड़ता है तो उसे सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिये। मांस काट लेने पर छ निष्कों का दण्ड तथा हड्डी तोड़ने पर देश निकाला का दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति किसी के अंगों को तोड़ फोड़ देता है राजा को चाहिये कि उसके उन अंगों को काट ले जिसके द्वारा उसने हानि पहुँचाई है तथा उतने द्रव्य का भी उसपर दण्ड करे, जितना उस आहत व्यक्ति के उठने-बैठने के व्यय के लिए पर्याप्त हो। गाय, हाथी, अश्व एवं ऊँट की हत्या करनेवाले का आधा हाथ तथा आधा पैर काट लेना चाहिये। राजा पशु तथा छोटे जानवरों की हत्या के अपराधी को उनके मूल्य का द्विगुणित दम का दण्ड करे। मृग तथा पक्षियों की हत्या करने पर पचास दम का दण्ड करना चाहिये। कृमि तथा कीटों के मारने पर एक मासा चाँदी का दण्ड लगाना चाहिये और उसके अनुकूल उसके स्वामी को मूल्य भी दिलाना चाहिये। अब मैं शेष उन अपराधों के दण्डों की व्यवस्था बतला रहा हूँ, जो अपने स्वामी की वस्तुओं की हानि पहुँचा कर किये जाते हैं। फलयुक्त वृक्ष को काटने पर अपराधी को सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये, यदि वह वृक्ष किसी खेत आदि की सीमा पर अवस्थित है अथवा जलाशय के समीप है तो उससे द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। फलरहित वृक्ष को भी काटने पर मध्यमसाहस का दण्ड देना चाहिये, गुल्मों, लताओं तथा बल्लियों को काटने पर एक मासा सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये। विना किसी आवश्यकता के एक तृण को भी नष्ट करनेवाला व्यक्ति एक कार्षापण का दण्डभागी होता है। और किसी प्राणी को विना किसी कारण के दण्ड पहुँचाने वाले को तिहाई भाग कृष्णल का दण्ड देना चाहिये। वृक्षादि के काटे जाने पर राजा देश तथा काल के अनुसार उचित मूल्य का दण्ड करे और उसे स्वयं ले ले किन्तु अपराधी उस वृक्षादि के स्वामी को भी उसका उचित मूल्य चुका दे। यदि किसी चालक की गलती से रथ कहीं पर गिर पड़ता है और उससे कोई हानि हो जाती है तो ऐसे अवसर पर यदि वह चालक सुनिपुण नहीं है, नौसिखिया है, तो उसके स्वामी को दण्ड देना चाहिये और यदि चालक निपुण है तो उसी के ऊपर दण्ड लगाना चाहिये किन्तु उसे भी दण्ड नहीं देना चाहिये यदि वह घटना किसी विशेष परिस्थिति में वहाँ घटित हुई हो। जो किसी के द्रव्य को जान कर अथवा विना जाने हुए अपहरण करता है वह राजा के सम्मुख दण्ड स्वीकार करके उसके स्वामी को सन्तुष्ट करे। जो व्यक्ति किसी कूएँ पर से रस्सी अथवा घड़ा उठा ले जाता है अथवा उस कुएँ की कोई हानि करता है उसके ऊपर एक मासा सुवर्ण का दण्ड करना चाहिये और उसकी क्षति पूर्ति करानी चाहिये। दस घड़े से अधिक अन्न चुरानेवाले को वध का दण्ड देना चाहिये और यदि दस घड़े से कम अन्न चुराता है तो जितना अन्न उसने चुराया है उसके ग्यारह गुने अधिक मूल्य का दण्ड उस पर लगाना चाहिये। उसी प्रकार दस घड़े से अधिक खाद्य सामग्री; अन्न एवं पानादि की वस्तुओं के चुराने पर भी उसी प्रकार का दण्ड देना चाहिये किन्तु इससे अधिक के चुराने पर भी उसे बध का दण्ड नहीं देना चाहिये। सुवर्ण, चाँदी आदि के आभूषण तथा उत्तम वस्त्रादि, कुलीन पुरुष—विशेषतया कुलीन स्त्रियाँ तथा बड़े-बड़े

पशुओं, हथियारों, औषधियों तथा रत्नादि की चोरी करनेवाले को वध का दण्ड देना चाहिये। दही, दूध, तक्र, पानी, रस, बाँस, वैदल (?) पात्र, लवण, मिट्टी के पात्रादि, मिट्टी, राख आदि की चोरी करनेवाले को राजा देश व समय के अनुसार दण्ड की व्यवस्था करे। ब्राह्मण के घर से गाय, भैंस अथवा घोड़े की चोरी करनेवाले को राजा शीघ्र ही आधे पैर का बना दे। सूत, कपास (रूई), आसव, गोबर, गुड़, मछली, पक्षी, तैल, घी, मांस, मधु, नमक, मदिरा, चावल एवं इनसे बनी हुई अन्यान्य वस्तुओं तथा पके हुए सभी प्रकार के अन्नों की चोरी करनेवाले को उस वस्तु के द्विगुणित मूल्य का दण्ड देना चाहिये। पुष्प, कच्चा अन्न, गुल्म, लता, बल्ली तथा अधिक अन्न की चोरी करनेवाले को पाँच मासा सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये। प्रचुर मात्रा में अन्न, शाक मूल एवं फल की चोरी करनेवाले को—यदि वह सन्तान हीन है तो सौ मुद्रा का दण्ड यदि सन्तानवाला है तो दो सौ दम का दण्ड देना चाहिये। जिन-जिन अंगों की सहायता से चोर चोरी करता है अथवा चोरी करने की चेष्टा करता है, राजा उसका वह-वह अंग दण्डार्थ काट ले। यदि कोई अकिंचन ब्राह्मण पथिक मार्ग में चलते हुए दो ईख तोड़ लेता है अथवा दो मूल (कन्द, मूली आदि) उखाड़ लेता है अथवा दो खीरे या तरबूज तोड़ लेता है, अथवा दो अन्य फलों को तोड़ लेता है, या दो मुट्ठी अन्न ले लेता है, साग ले लेता है तो वह चोरी के दोष से नहीं दूषित होता। जो व्यक्ति भोजन के लिए जंगल में उगे हुए वनस्पतियों के फल अथवा मूल को अथवा जलाने भर की लकड़ी को अथवा गौ को खिलाने के लिए घास को विना स्वामी की आज्ञा के भी ले लेता है तो उसे मनु चोरी नहीं कहते। विना देवता की वाटिका में उत्पन्न हुए पुष्प को तथा किसी दूसरे के खेत में उत्पन्न हुए पुष्प को यदि कोई देवता के लिए तोड़ता है तो उसे दण्ड नहीं देना चाहिये। ॥१-११३॥

हे राजन्! अपने को मारने के लिए उद्यत सींगवाले, नखवाले तथा दाढ़वाले पशुओं को जो व्यक्ति मारता है उसे कोई पाप नहीं लगता। गुरु हो, बालक हो, वृद्ध हो, ब्राह्मण हो अथवा बहुत विद्वान् ही क्यों न हो, यदि वह आततायी है तो अपने समीप आते ही विना विचार किये उसे मार डालना चाहिये, क्योंकि आततायी के मारनेवाले को किसी प्रकार का भी पाप नहीं लगता। कोई व्यक्ति चाहे वह प्रकाश में कोई पाप करता है अथवा छिपकर करता है उस दोष का भागी तो होता ही है। दूसरों के घर तथा स्त्री का अपहरण करनेवाले, अगमनीय स्त्रियों के साथ समागम करनेवाले, आग लगानेवाले, विष देनेवाले, हथियार लेकर मारने को उद्यत, अत्याचार परायण, राजा के विरोध में विद्रोह करनेवाले—इन सब को धर्मज्ञ लोग आततायी कहते हैं। भिक्षुक, स्त्री तथा चारणादि—यदि ये निषेध करने पर भी घर में घुस जाते हैं तो उन्हें द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। तीर्थ में, जंगल में अथवा घर पर दूसरे की स्त्रियों के साथ वार्तालाप करने से तथा नदी की धारा को भिन्न कर देने से संग्रहण नामक दण्ड देना चाहिये। दूसरी स्त्री के साथ तो साधारण रीति से भी वार्तालाप नहीं करना चाहिये यदि रोके जाने पर भी दूसरी स्त्री के साथ कोई सम्भाषण करता है तो उसे एक सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये। किन्तु यह दण्ड चारणों, स्त्रियों तथा अन्तःपुर में प्रवेश कर नृत्य-गीतादि द्वारा अपनी जीविका चलानेवाले को नहीं देना

चाहिये। ऐसे लोग यदि अन्तःपुर के लोगों के साथ सम्भाषण करते हैं, अथवा वहाँ घूमते-फिरते हैं, तो कुछ नाम मात्र का दण्ड देना चाहिये। घर से निकली हुई सभी दूतियों तथा दासियों के साथ भी यही व्यवहार करना चाहिये। जो व्यक्ति किसी कुमारी के साथ बलात्कार करता है उसे शीघ्र ही बध का दण्ड देना चाहिये। यदि कोई किसी कामुकी कुमारी के साथ व्यभिचार करता है तो उसे दो सौ दम का दण्ड देना चाहिये। यदि उस जगह का, जहाँ पर वह व्यभिचार सम्भव हुआ, रखवाली करनेवाला कोई पुरुष है तो उसे भी यही दण्ड देना चाहिये। जो ऐसे व्यभिचारों को सम्भव बनाने में अवकाश देता है उसे दूसरे की स्त्री के साथ व्यभिचार करनेवाले का दण्ड देना चाहिये। जो कोई किसी दूसरे की स्त्री के साथ बलात्कार करता है, उसका वध दण्ड करना चाहिये और इस अवसर पर स्त्री का कोई भी अपराध नहीं मानना चाहिये। जो कन्या तीसरी बार रजस्वला होकर पिता के घर पर ही अपने लिए पति का वरण कर लेती है वह राजा से दण्डनीय नहीं है। अपने घर पर दी गई कन्या को यदि कोई पुरुष दूसरे देश में भगा ले जाता है तो वह स्त्रीचोर है और उसे भी बध का दण्ड मिलना चाहिये। बिना अलंकारादि के यदि किसी की विधवा स्त्री को कोई ग्रहण करता है तो वह कोई अपराध नहीं करता किन्तु यदि उस पति के द्रव्यादि के साथ ग्रहण करता है तो शीघ्र ही दण्ड का भागी है। जो कन्या अपनी जाति तथा योग्यता से उत्कृष्ट व्यक्ति को प्रेम करती है तो पिता को चाहिये कि अपनी उस कन्या को उसे ही दे दे। यदि कन्या किसी अल्प योग्यतावाले को प्रेम करती है तो उसे विशेष बन्धनों में डालकर अपने घर में रखे। यदि नीची जातिवाला कोई पुरुष उत्तम जाति की कन्या के साथ प्रेम करता है तो उसे दण्ड देना चाहिये, इसी प्रकार यदि उत्तम जाति की स्त्री किसी नीच जाति के पुरुष के साथ प्रेम करती है तो वह भी दण्डनीय है। यदि कोई स्त्री अपनी ज्ञाति वालों (पिता के पक्षवालों) के बल के अभिमान में आकर अपने पति को छोड़ देती है तो राजा को चाहिये कि उसे घर से निकाल कर सुविधा प्रद स्थान में रख दे। समान जाति के पुरुष द्वारा दूषित स्त्री को राजा सभी अधिकारों से वंचित कर दे, वेश आदि छीन कर मलिन बना दे और उस स्वेच्छाचारिणी के केवल भोजन मात्र का प्रबन्ध कर दे। उत्तम कुल एवं जाति में उत्पन्न हुई स्त्री यदि दूषित हुई है तो उसका मुण्डन करा दे, नित्य मैला वस्त्र पहनने को दे और शिर में दस शिखाएँ रख दे। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य क्रम से क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की स्त्री के साथ दुराचरण करते हैं तो राजा उन्हें उत्तमसाहस नामक दण्ड दे। ब्राह्मण वैश्य स्त्री के साथ और क्षत्रिय अन्त्यज की स्त्री के साथ यदि पापाचरण करते हैं तो मध्यमसाहस दण्ड देना चाहिये और वैश्य यदि शूद्रा स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो उसे भी पूर्वोक्त रीति के अनुसार उत्तमसाहस दण्ड मिलना चाहिये। यदि शूद्र अपनी जाति की स्त्री के साथ समागम करता है तो उसे राजा सौ मुद्राओं का दण्ड दे, इसी प्रकार वैश्य को समान वर्णवाली स्त्री के साथ पापाचरण करने पर दो सौ, क्षत्रिय को तीन सौ तथा ब्राह्मण को चार सौ मुद्राओं का दण्ड देना चाहिये। आश्रयहीन स्त्री के साथ पापाचरण करने पर ये उपर्युक्त दण्ड बताये गये हैं। जो सभी प्रकार के साधनों से सुरक्षित परकीय स्त्रियों के साथ दुराचार करते हैं, उनको तो इससे अधिक दण्ड

मिलना चाहिये। माता, फूफी, सास, मामी, चचेरी बहन, चाची की सखी, शिष्य की स्त्री, बहिन, उसकी सखी, तथा भाई की स्त्री—इन सब के साथ समागम करने पर पूर्व कथित दण्ड से द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। भानजे की स्त्री, राजा की पत्नी, संन्यासिनी तथा उच्चवर्ण की स्त्री—ये सभी अगम्य मानी गई हैं। इन सबों के साथ समागम करनेवाले व्यक्ति के लिंग को कटवाकर तदनन्तर मृत्यु का दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार चाण्डाल की स्त्री तथा कुत्ते को खानेवालों की स्त्री के साथ व्यभिचार करनेवाले को भी बध का दण्ड देना चाहिये। गौ को छोड़कर अन्य तिर्यक योनियों में सम्भोग करनेवाले व्यक्ति को मुण्डन का दण्ड देकर उसके लिए घास तथा जल देने का दण्ड देना चाहिये। हे मनुजेश्वर! गौ के साथ सम्भोग करने वाले व्यक्ति को सुवर्ण का दण्ड लगाना चाहिये। वेश्या के साथ खुले रूप में समागम करनेवाले ब्राह्मण को वेश्या को दिये हुए शुल्क जितना आर्थिक दण्ड देना चाहिये। वेश्या यदि वेतन स्वीकार करने के उपरान्त अधिक शुल्क मिलने के लोभ से अन्यत्र चली जाती है तो उसे द्विगुणित दण्ड देने के उपरान्त लिए हुए शुल्क का द्विगुणित आर्थिक दण्ड भी दिया जाय। हे राजन्! दूसरे के बहाने से यदि कोई वेश्या को किसी दूसरे के पास लिवा जाता है तो उसे एक मासा सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये। वेश्या को लाने के बाद जो उसके साथ सम्भोगादि नहीं करता उसे द्विगुणित दण्ड देना चाहिये और राजा को उसे द्विगुणित शुल्क दिलाना चाहिये, ऐसा करने से उसका धर्म नहीं हीन होता। यदि बहुत व्यक्ति केवल एक वेश्या के साथ समागम करने को उपस्थित हों तो राजा उन सबों को द्विगुणित दण्ड दे, और वे सब पृथक्-पृथक् द्विगुणित द्रव्य दण्ड रूप में उस वेश्या को अधिक दें। माता, पिता, स्त्री, पुरोहित, और यजमान—ये सब पतित होने पर भी नहीं छोड़े जाते, पर यदि कोई मनुष्य इनमें से किसी को छोड़ता है तो वह छः सौ सुवर्ण मुद्राओं का दण्डभागी होता है। पतित होने पर गुरुजन भी त्याज्य हो सकते हैं, किन्तु माता नहीं छोड़ी जा सकती। गर्भ काल में धारण एवं पोषण करने के कारण माता का गौरव गुरुजनों से भी अधिक है। अनध्याय के दिन भी अध्ययन करनेवाले ब्राह्मण को तीन कार्षापण का दण्ड देना चाहिये और पढ़ाने-वाले अध्यापक को द्विगुणित दण्ड मिलना चाहिये, इसी प्रकार उन्हें अपने-अपने आचारों के उल्लङ्घन करने पर भी दण्ड देना चाहिये। जिन-जिन अपराधों में केवल दण्ड की चर्चा की गई है और कोई परिमाण नहीं निश्चित किया गया है वहाँ-वहाँ सुवर्ण का एक कृष्णल दण्ड रूप में समझना चाहिये। स्त्री, पुत्र, सेवक, शिष्य तथा सगा भाई भी यदि अपराध करता है तो रस्सी से बाँधकर बाँस की छड़ी से भी दण्ड देना चाहिये; किन्तु शरीर के पिछले भाग पर; शिर आदि अंगों पर नहीं। इन कहे गये स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर ताडना करनेवाले को चोरी करने जैसा पाप लगता है। जो दूती को बुलाकर प्रकाश रूप में अथवा गोपनीय रूप में निषिद्धाचरण करता है उसके लिए राजा अपनी इच्छा के अनुरूप दण्ड व्यवस्था करे। धोबी को चाहिये कि वह कोमल काठ के पीठकों पर वस्त्र को धीरे-धीरे साफ करे, यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसे एक मासे सुवर्ण का दण्ड देना चाहिये। राजा की ओर से रक्षा आदि स्थानों पर नियुक्त किये गये लोग यदि देय भाग को हड़प लेते हैं, राजधानी में जमा नहीं करते अथवा किसानों से कर लेकर उसे

दूसरे कार्यों में लगा देते हैं, राजा उनका सर्वस्व छीन लेने के बाद निर्वासन का दण्ड दे दे। जो लोग अपने पद पर नियुक्त होकर अन्य कार्यार्थियों के कार्यों की हानि करते हैं, वे निर्दय क्रूरात्मा सभी उस कर्म के अपराधी हैं। जो लोग धन की गर्मी से बौखलाये हुए हों, अनुचित कार्य में संलग्न हों, राजा को चाहिये कि उन सभी को निर्धन बना दे। यदि राजा के सेवक गण कूटनीति से शासन करनेवाले, प्रजा वर्ग को राजा के विरुद्ध भड़काने वाले; स्त्री बालक तथा ब्राह्मणादि के संहारक हैं तो राजा उन सभी को बध का दण्ड दे। अमात्य हो, (प्रधान मंत्री हो) अथवा प्रधान न्यायकर्त्ता ही क्यों न हो, यदि वह अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है तो राजा उसके सर्वस्व को छीनकर उसे अपने राज्य से बाहर कर दे। ब्रह्महत्या करनेवाले, मदिरा पान करनेवाले, चोर तथा गुरु की स्त्री के साथ सम्भोग करनेवाले—इन सब महापातकी पुरुषों को राजा पृथक्-पृथक् दण्ड दे। महापाप करनेवाले लोगों को इस प्रकार राजा दण्डित करे। किन्तु यदि ब्राह्मण ऐसा घोर पाप करता है तो उसे निर्वासित करे, अपने देश से उसके शरीर में चिह्न करके निकाले। उक्त चिह्न का विवरण सुनो। यदि ब्राह्मण गुरुपत्नी के साथ समागम करता है तो उसके शरीर में भग का आकार बनाये, मदिरापायी है तो सुराध्वज का चिह्न। उसी प्रकार चोरी के अपराध में कुत्ते के पैरों का तथा ब्रह्मघाती के शरीर में विना शिर के पुरुष का चिह्न बनाना चाहिये। ऐसे घोर पापियों के साथ विशेष कर सम्भाषण, सहभोज तथा विवाहादि सम्बन्धों को उनकी जातिवाले, सम्बन्धी तथा परिवार के लोग भी न करें। महापापी पुरुषों की सम्पत्ति को राजा अपने अधीन करले, और उसमें से दण्ड भाग को जल में वरुण के उद्देश से छोड़ दे। सपत्नीक चोर को राजा को मृत्यु दण्ड नहीं देना चाहिये; किन्तु चुराई हुई वस्तु के साथ ही यदि सपत्नीक भी चोर पकड़ा जाता है तो उसे भी राजा विना किसी विचार के वध का दण्ड दे। ग्रामों में भी यदि कुछ लोग ऐसे हैं, जो चोरों की भोजनादि में सहायता करते हैं, अथवा उन्हें भोजनादि बनाने के पात्र तथा रहने का निवास देते हैं तो उन सभी को राजा वध का दण्ड दे। राष्ट्र में यदि राजा के अधिकारी तथा अधीन रहने वाले सामन्तगण युद्धादि के अवसर पर तटस्थ रहते हैं तो वे भी चोरों के समान दण्ड के भागी हैं। ग्राम में किसी विनाश के उपस्थित होने पर अथवा किसी घर आदि के गिरने के अवसर पर या मार्ग में किसी रमणी के ऊपर अत्याचार होने के अवसर पर जो राजा का अधिकारी या सामन्त अपनी शक्ति के अनुसार नहीं दौड़ पड़ता उसे सभी परिवार तथा साधनों के साथ निर्वासित कर देना चाहिये। राजा के कोश को अपहृत करनेवाले, शत्रु पक्ष की ओर मिले रहनेवाले या उनकी किसी प्रकार की सहायता करनेवाले तथा शत्रु पक्ष का उपकार करने वाले लोगों को राजा विविध प्रकार का मृत्युदण्ड दे। जो चोरगण रात में किसी के घर में सेंध लगाकर चोरी करते हैं, राजा उनके हाथों को कटवाने के बाद तीक्ष्ण-शूल के अग्रभाग पर रखवा दे। तालाब का बाँध तोड़ने वालों को राजा जल में डुबोकर मृत्युदण्ड दे। जो व्यक्ति तालाब में भरे हुए जल की चोरी करता है, अथवा उसमें जल के आने के मार्गों को रोक देता हैं उसे पूर्ववत् साहसदण्ड देना चाहिये। कोष्ठागार, आयुधागार तथा देवागारों के तोड़नेवाले पापाचारी एवं जिनके विषय में पाप की कथाएँ प्रसिद्ध हो चली हों—ऐसे लोगों को राजा शीघ्र ही मृत्यु का दण्ड दे। विना किसी आपत्ति के अवसर आने पर भी जो व्यक्ति

सड़क पर मल आदि अपवित्र वस्तुओं को फेंककर उसे गन्दा करता है उसे एक कार्षापण का दण्ड देना चाहिये और उसी से सड़क को स्वच्छ भी कराना चाहिये। जो चलने फिरने में असमर्थ हो वह, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री अथवा बालक—यदि ये ऐसा अपराध करते हैं तो राजा इन्हें केवल कह दे, चेतावनी भर दे दे। किन्तु इनसे सफाई नहीं करानी चाहिये, ऐसी मर्यादा चली आती है। जो वैद्य लोग झूठी दवाएँ करते हैं अर्थात् वैद्य न होकर भी दवाएँ देते हैं उन्हें प्रथमसाहस दण्ड, जिनकी दवाएँ निन्दित हैं, उन्हें मध्यम साहसदण्ड तथा जिनकी दवाएँ अत्यन्त अवगुणकारी हैं उन्हें उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये। राजा का छाता, ध्वजा, छड़ी एवं देवता की प्रतिमा—इनके तोड़नेवाले को पाँच सौ मुद्रा का दण्ड देना चाहिये और उन्हीं से इन सब का प्रतिशोध भी कराना चाहिये। अदूषित वस्तुओं को दूषित अथवा भेदन करनेवाले को तथा मणि आदि मूल्यवान् वस्तुओं के तोड़नेवाले को राजा प्रथमसाहस दण्ड दे। किसी वस्तु के मूल्य में यदि कोई कमी या वृद्धि करता है तो उसे क्रमशः पूर्व और मध्यमसाहस दण्ड देना चाहिये। राजा को अपराधियों के सभी प्रकार के दण्डों की व्यवस्था आम सड़क पर करनी चाहिये जिससे उस दण्ड को भुगतनेवाले पापात्मा को सभी लोग देख सकें। दुर्ग की चहारदीवारी को तोड़नेवाले, खाई को भंग करनेवाले तथा द्वारों को तोड़नेवाले अपराधी को राजा तुरन्त अपने पुर से बाहर निकाल दे। वशीकरण, अभिचार आदि के करनेवाले को राजा दो सौ दम का दण्ड दे। खराब बीज बेंचने वाले, बोये हुए खेत को फिर से जोत कर हानि पहुँचानेवाले तथा खेतों की निर्धारित सीमा को तोड़नेवाले को राजा बुरी मृत्यु की सजा दे। हे नराधिप! अच्छी धातु में किसी नकली धातु को मिलानेवाले पापात्मा सोनार को, जो अन्याय में प्रवृत्त हो गया है, छुरे से खण्ड-खण्ड काट डालना चाहिये। बनिये के समीप से वस्तु लेकर जो दाम नहीं चुकाता है, या जो अच्छी वस्तु को बुरी बतलाता है, या जो बनिया किसी वस्तु को बाजार में छिपाकर बेचता है उन सब को मध्यमसाहस दण्ड देना चाहिये इसी प्रकार कूटनीति रखनेवाले को उत्तमसाहस दण्ड देना चहिये। इन सभी अपराधियों को राजा अलग-अलग से उत्तमसाहस दण्ड दे। शास्त्र, यज्ञ, तपस्या, देश, देवता, तथा सती की निन्दा करनेवाले पुरुष को राजा उत्तमसाहस दण्ड दे। यदि बहुतेरे व्यक्ति किसी एक व्यक्ति के प्रति कठोर दण्डनीय अपराध करते हैं तो उन सब को द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। जिस व्यक्ति के ऊपर अपराध का आरोप है उसे भी द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। जो ब्राह्मण अपने आचार विचार से अधम हो गया है उसे राजा अपने देश से निर्वासित कर दे। लहसुन, प्याज, सूअर, ग्रामीण मुरगे तथा पांच नखवाले (जिनके भक्ष्य का कहीं-कहीं विधान माना गया है) तथा अन्य अभक्ष्य पदार्थ को खानेवाले ब्राह्मण को अपने राष्ट्र से निर्वासित कर दे। जिन पदार्थों के भक्ष्य होने का विधान नहीं है, उन्हें खाने से शूद्र को एक कृष्णल का दण्ड देना चाहिये तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को क्रमशः चौगुना, तिगुना तथा दुगुना दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति अभक्ष्य वस्तुओं के भक्षण में अधिक उत्साहित करता है उसे द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। जो मनुष्य 'मैं देता हूँ' ऐसा कहकर अभक्ष्य वस्तुओं के भक्षण में दूसरे को प्रवृत्त करता है उसे भी चौगुना दण्ड मिलना चाहिये। संदेश को न देनेवाले, समुद्र में बने हुए अड्डे

को नष्ट करनेवाले व्यक्तियों को राजा पचास मुद्रा का दण्ड दे। जो व्यक्ति पवित्र होकर अस्पृश्य का स्पर्श करता है, अक्षम होकर भी दुःसाध्य कार्य में हाथ लगाता है, बैलों के पुंस्त्व का अपहरण (बधिया) करता है, दासी के गर्भ को गिरवाता है, शूद्र एवं संन्यासियों के घर दैव कार्य (यज्ञादि) और पितृकार्य (श्रद्धादि) में भोजन करता है, निमंत्रण स्वीकार करने के बाद भी नहीं जाता—उन सब को राजा सौ कार्षापण का दण्ड दे। अपने घर में पीडादायक वस्तु को रखनेवाले को एक कृष्णल का दण्ड देना चाहिये। पिता और पुत्र के पारस्परिक विरोध में साक्षी देनेवाले के ऊपर दो सौ का दण्ड लगाना चाहिये। यदि कोई माननीय व्यक्ति यह अपराध करता है तो उस पर एक सौ आठ दम का दण्ड लगाना चाहिये। तराजू की डाँड़ी पर तौलते समय कूट व्यापार करनेवाले को तथा बराबर इस प्रकार से व्यापार करनेवाले को राजा उत्तमसाहस दण्ड दे। विष देनेवाली, आग लगानेवाली, पति, गुरुजन एवं अपने बच्चों की हत्या करनेवाली स्त्री को राजा कान ओंठ और नाक काटकर पशुओं द्वारा मरवा डाले। जो गाँव को जलानेवाले, खेत तथा घर को नष्ट करनेवाले तथा राजपत्नी के साथ व्यभिचार करनेवाले अपराधी हैं, उन्हें भक-भक जलती हुई अग्नि में जलाकर भस्म कर देना चाहिये। जो राजा का अधिकारी राजाज्ञा को घटा बढ़ाकर दूसरे की स्त्री के साथ अपराध करनेवाले एवं चोरी करनेवाले अपराधियों को छोड़ देते हैं उन्हें भी उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति अभक्ष्य वस्तु खिलाकर ब्राह्मण को दूषित करता है उसे उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार क्षत्रिय को विधर्म करनेवाले को मध्यम, वैश्य को प्रथम तथा शूद्र को अर्धसाहस दण्ड देना चाहिये। मृतक के शरीर पर लगे हुए आभूषण तथा वस्त्रादि को चुराकर बेचनेवाले, गुरु को पीटनेवाले, राजा के आसन पर बैठनेवाले को उत्तमसाहस दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति न्याय द्वारा या युद्ध में पराजित होने पर भी अपने को हारा हुआ नहीं समझता है उसे आते ही राजा को चाहिये कि पुनः जीतकर द्विगुणित दण्ड दे। जो व्यक्ति अपराध होने पर सूचना द्वारा बुलाने से नहीं आता है और जो विना बुलाये ही आकर सम्मुख उपस्थित होता है, तथा जो अपराधी दण्ड देने वाले के हाथ से छुड़ाकर भाग जाता है—ऐसे अपुरुषार्थी लोगों को दण्ड देनेवाला न्यायकर्त्ता आर्थिक दण्ड दे। जो व्यक्ति दूत होने पर अपना कर्त्तव्य उचित रीति से नहीं निभाता उसे उपर्युक्त दण्ड का आधा दण्ड देना चाहिये। दण्ड के लिए अथवा नियमन के लिए पकड़कर ले जाते हुए यदि कोई अपराधी भाग जाता है तो उसे आठ गुना दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति सामान्य वादविवाद में किसी के नख को काट लेता है या बाल काट लेता है उसके ऊपर मध्यम दण्ड लगाना चाहिये। जो व्यक्ति बल द्वारा अवध्य अपराधी के बन्धनों को छोड़ देता है अथवा मृत्यु दण्ड के अपराधी को छोड़ देता है उसके ऊपर द्विगुणित दण्ड लगाना चाहिये। जो राजा के सभासद उपस्थित विषयों में पूर्ण मनोयोग नहीं देते उन्हें द्विगुणित दण्ड देना चाहिये। राजा ऐसे अपराधियों को तीस गुना अधिक दण्ड दे और जल में फेंकवा दे। थोड़े से ही अपराध में अधिक दण्ड देनेवाले तथा भीषण अपराध में अल्प दण्ड देनेवाले न्यायकर्त्ता (जज) को जितना कम या अधिक दण्ड हो अपने घर से पूर्ण करना और अपराधी को लौटाना चाहिये। अवध्य अपराधी के

बध करने में जितना पाप लगता है उतना ही पाप वध्य को छोड़ देने में भी लगता है, राजा को इन दोनों दशाओं में समान पापभागी होना पड़ता है। किसी भी अपराध में अपराधी पाये गये ब्राह्मण को मृत्यु दण्ड तो नहीं देना चाहिये; उसे अपने राष्ट्र से सम्पत्ति के साथ निर्वासित कर देना चाहिये। कभी भूलकर भी ब्राह्मण का बध तो नहीं ही करना चाहिये, इससे अधिक पाप लगता है। इसलिए राजा को इस ब्रह्महत्या से तो बचना ही चाहिये। अदण्डनीय पुरुषों को दण्ड देकर तथा जो दण्ड के पात्र हैं उन्हें दण्ड न देकर राजा महान् अयश प्राप्त करता है और अन्त में नरकगामी होता है। इसलिए राजा मनुष्य के अपराध को भलीभाँति जानकर उपयुक्त समय में ब्राह्मणादि की अनुमति प्राप्त कर, जो जिस प्रकार का अपराध करता है, उसको उसी प्रकार का समुचित दण्ड दे ॥११४-२१७॥

श्री मात्स्य महापुराण में राजधर्म कीर्त्तन प्रसंग में दण्डनीति नामक दो सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२७॥

दो सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय

मनु ने कहा—हे केशव ! दिव्य, आन्तरिक्ष (आकाशीय) एवं भौम (पृथ्वीसम्बन्धी) महोत्पातों के उपस्थित होने पर जो शान्ति कही (की) जाती है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। ॥१॥

मत्स्य ने कहा—इसके उपरान्त अब मैं तुम्हारे पूछने पर उन अद्भुत उत्पातों के विषय में बतला रहा हूँ। विशेषतया पृथ्वी सम्बन्धी महोत्पातों के अवसर पर शान्ति करनी चाहिये। हे राजन् ! आन्त-रिक्ष उत्पातों के लिए अभया तथा दिव्य पातों के लिए सौम्या शान्ति कही गई है। हे राजन् ! शत्रु को जीतने की इच्छा रखनेवाला, स्वकीय ऐश्वर्य की अभिलाषा करनेवाला, सभी शत्रुओं को विनष्ट करने का इच्छुक, शत्रुओं द्वारा घिरा हुआ, शत्रु पक्ष से मारण, मोहनादि अभिचारों की शंका से सुशंकित, सभी शत्रुओं को विनष्ट करने को उद्यत राजा, तात्पर्य यह कि सभी प्रकार के भीषण भय का अवसर उपस्थित हो जाने पर, अभया शान्ति करे। राजयक्ष्मा रोग से पीड़ित होकर, किसी घाव से क्षीण होकर एवं यज्ञ की कामना से सौम्या शान्ति की प्रशंसा की गई है। भूकम्प आजाने पर, भीषण दुर्भिक्ष आजाने पर, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि के कुअवसर पर, टिड्डियों से भय होने पर, पागल एवं चोर से भय उपस्थित होने पर वैष्णवी शान्ति करनी चाहिये। शत्रुओं तथा मनुष्यों के भीषण संहार का अवसर आजाने पर तथा भूत पिशाचादि के दिखलाने पर रौद्री शान्ति करानी चाहिये। वेदों के विनाश का अवसर उपस्थित होने पर लोगों के नास्तिक होजाने की सम्भावना पर एवं अपूज्य लोगों की पूजा होने के अवसर पर ब्राह्मी शान्ति कही गई है। अभि-षेक होनेवाला हो, शत्रु की सेना से राष्ट्र को हानि पहुँचने की सम्भावना हो, अपने राष्ट्र में विभिन्नता की सम्भावना हो, शत्रु का संहार कराना हो तो ऐसे अवसर पर रौद्री शान्ति की प्रशंसा की गई है। तीन दिनों से अधिक दिन तक प्रबल अन्धड़ चल रही हो, सभी भक्ष्य वस्तुएँ विकृत होकर अभक्ष्य हो रही हों,

अथवा देश भर में वातज व्याधि उपस्थित हो गई हो तो ऐसे अवसर पर वायु की शान्ति होनी चाहिये। सूखा पड़ जाने का भय हो अथवा घोर वृष्टि से अधिक हानि हो रही हो, अथवा जलाशयों में कोई विकार उत्पन्न हो गया हो तो ऐसे अवसर पर वरुण की शान्ति करानी चाहिये। अभिशाप के भय के उपस्थित होने पर भार्गव की शान्ति होनी चाहिये। हे महाभुज! स्त्री के बच्चे होने के समय यदि कोई बाधा खड़ी हो गई हो तो उस समय प्रजापति की शान्ति करानी चाहिये। हे पार्थिवनन्दन! घरेलू वस्तुओं में अथवा शाक भाजी आदि में विकार हो जाने के अवसर पर त्वाष्ट्री शान्ति (विश्वकर्मा की शान्ति) करानी चाहिये। हे नृप! बालकों की बाधा दूर करने के लिए कौमारी शान्ति होनी चाहिये। अग्नि में विकार उपस्थित होने पर अर्थात् आग लग जाने पर, आज्ञा भंग होने पर, सेवकादि के विनाश उपस्थित होने पर अग्नि की शान्ति होनी चाहिये। अश्वों की शान्ति कामना से अथवा उनके सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने के लिए अथवा अधिक संख्या में अश्व प्राप्ति की अभिलाषा से गंधर्वों की शान्ति करनी चाहिये। हाथी की बाधा उपस्थित होने पर, उनकी कल्याण प्राप्ति की भावना से एवं गजों की प्राप्ति की अभिलाषा से आँगिरस की शान्ति करनी चाहिये। पिशाचादि का भय उपस्थित होने पर, अकाल मृत्यु के भय से तथा दुःस्वप्न देखने पर नैऋ‍ॅति की शान्ति करानी चाहिये। मृत्यु का भय उपस्थित होने पर यमराज की शान्ति तथा धननाश का अवसर उपस्थित होने पर कुबेर की शान्ति करानी चाहिये। वृक्षों का तथा द्रव्यादि का विनाश उपस्थित होने पर तथा समृद्धि की अभिलाषा से पृथ्वी की शान्ति करानी चाहिये। ॥१-२०॥

मनुजोत्तम! दिन के पहले पहर में अथवा रात्रि के समय हस्त, स्वाती, चित्रा अथवा अश्विनी नक्षत्र में सूर्य के जाने पर वायव्यकोण में यदि अद्भुत उपद्रव दिखाई पड़ता है तो आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये। हे रविनन्दन! दिन के दूसरे पहर में अथवा रात्रि के दूसरे पहर में सूर्य के पुष्य, भरणी और विशाखा नक्षत्र में जाने पर आग्नेय कोण अथवा दक्षिण दिशा में यदि कोई उत्पात दिखाई पड़ता है तो आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये। हे रविनन्दन! दिन के तीसरे पहर में अथवा रात्रि में रोहिणी, अथवा ज्येष्ठा नक्षत्र में सूर्य के जाने पर यदि ईशान कोण में, पूर्व दिशा में अथवा अग्नि कोण में कोई अद्भुत उत्पात दिखाई पड़ता है तो इन्द्र की शान्ति करानी चाहिये। हे रविनदन! दिन अथवा रात्रि के चौथे पहर में आश्लेखा, पुष्य, आर्द्रा अथवा मूलनक्षत्र में सूर्य के जाने पर, पश्चिम दिशा में अद्भुत उत्पात दिखाई पड़ने पर राजा को वरुण की महाशान्ति करानी चाहिये। यदि मध्याह्न के समय कहीं पर अद्भुत उत्पात होते हैं तो उस समय दोनों प्रकार की शान्ति करानी चाहिये। इन उपर्युक्त कारणों के उपस्थित होने पर ही शान्ति करानी चाहिये, अन्यथा नहीं। विना किसी कारण के की गई शान्ति बेकार हो जाती है। राजन्! जिस प्रकार कवच से सुरक्षित शरीर वाले मनुष्यों को बाणों का प्रहार कोई हानि नहीं पहुँचाता, उसी प्रकार धर्मपरायण एवं शान्ति करानेवाले मनुष्यों को दैव के प्रहार भी कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। ॥२१-२९॥

श्री मात्स्य महापुराण में अद्भुतशान्ति नामक दो सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२८॥

दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय

मनु ने कहा—देव ! इन अद्भुत उत्पातों के घटित होने का परिणाम क्या होता है ? और उनकी शान्ति का उपाय भी मुझे बतलाइये । हे विशालनेत्रोंवाले ! तुम इन सभी बातों के परम जानकार हो ।॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—मनु ! इस विषय में मैं तुम्हें वह बात बतला रहा हूँ जिसे महातपस्वी एवं सभी धर्मात्माओं में श्रेष्ठ वृद्ध गर्ग ऋषि ने अत्रि से कहा था । हे राजन् ! सरस्वती के तट पर एक बार सुखपूर्वक बैठे हुए सभी मुनियों के प्रिय गर्ग ऋषि से महातेजस्वी अत्रि ने पूछा । २-३॥

अत्रि ने कहा—महर्षे ! विनाशोन्मुख मनुष्यों की, राजाओं की तथा नगरों की, विनाश के पूर्व क्या दशा होती है, उसे अविकल रूप में मुझे बताइये । ॥४॥

गर्ग ने कहा—अत्रे ! मनुष्यों के अत्याचारों से देवतागण बहुत दुःखी हो जाते हैं और उन्हीं की अप्रसन्नता से विनाशसूचक महा उत्पात प्रारम्भ होता है । वह विनाशसूचक उत्पात दिव्य, आन्तरिक्ष एवं पार्थिव—इन तीन भेदों से तीन प्रकार का होता है । ग्रहों एवं नक्षत्रों में विकारों के दिखाई पड़ने पर दिव्य उत्पात जानना चाहिये । आन्तरिक्ष उत्पात को मैं बतला रहा हूँ, सुनो । उल्कापात, दिशाओं का दाह, मण्डलों का उदय, आकाश में गन्धर्व नगर दिखाई पड़े; खंड वृष्टि, अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि होने लगे—इन्हें तथा इसी प्रकार के अन्यान्य उपद्रवों को आन्तरिक्ष उत्पात समझना चाहिये । स्थावर एवं जंगम पदार्थों में विकारों का उत्पन्न होना तथा भूकम्पादि का होना, ये भौम उत्पात हैं । जलाशयों में विकारों के उत्पन्न होने को भी भौम उत्पात मानते हैं । यह भौम उत्पात थोड़े फलों को देता है, और बहुत देर में शान्त होता है । आन्तरिक्ष उत्पात मध्यम फल देनेवाला होता है और मध्यमकाल में अर्थात् न बहुत शीघ्र न बहुत देर में परिणामदायी होता है । इस महोत्पात के उदय होने पर यदि कल्याणदायी वृष्टि हो जाती है, तो यह समझ लेना चाहिये कि एक सप्ताह के अन्दर उस महोत्पात का फल भी नष्ट हो जायगा । किन्तु इस महान् उत्पात का अवसान विना शान्ति कराये कभी नहीं होता । इसे तीन वर्षों के भीतर महान् भयदायक मानना चाहिये । राजा के शरीर में, अन्य लागों के शरीर में, पुर, द्वार तथा पुरोहित के शरीर में, राजपुत्रों में तथा कोषाध्यक्ष के शरीर में उस उत्पात का दुर्विपाक होता है । राजेन्द्र ! ऋतुओं के स्वभाव के कारण कुछ अद्भुत उत्पात मंगल की सूचना देनेवाले होते हैं, उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनो । वज्र एवं बिजली का गिरना, पृथ्वी का कम्पन , सन्ध्या के समय वज्र का शब्द, सूर्य तथा चन्द्रमा में मण्डलों का होना, धूलि और धूएँ का उद्भव, उदय एवं अस्त के समय सूर्य की अति लालिमा, वृक्षों के टूट जाने पर उनसे रस का गिरना, फलवाले वृक्षों की अधिकता, गौ, पक्षियों और मधु की वृद्धि—ये सब उत्पात यदि चैत्र और वैशाख मास में होते हैं, तो मांगलिक हैं । कलुषित नक्षत्रों एवं ग्रहों के पतन, सूर्य एवं चन्द्र के मण्डलों के कपिल वर्ण का होना, सायंकालीन नभ के काले और सफेद मिश्रित, पीले, धूसरित, श्यामल लाल वर्ण, एवं लाल पुष्प के समान विशेष अरुण का होना अथवा ऐसा दिखाई पड़ना मानो विक्षुब्ध

समुद्र हो, तथा नदियों के जलों का एकाएक सूखना, ये सब उत्पात यदि ग्रीष्म ऋतु में होते हैं तो इन्हें शुभ कहना चाहिये। इन्द्र धनुष का मण्डलाकार उदय, विद्युत एवं उल्का के पतन, पृथ्वी में अकस्मात् कम्पन, इधर उधर उलटना, विकृति आना, ह्रास होना, नदियों एवं तालाबों में जल की न्यूनता, नाव, जहाज एवं पुल का काँपना, सींगवाले जानवरों तथा शूकरों की वृद्धि—ये सब उत्पात वर्षा ऋतु में मंगलकारी हैं। शीतल वायु, ओले का पड़ना, पशु एवं पक्षियों का चिग्घाड़ना एवं बोलना, राक्षस, भूत और पिशाचों का दिखाई पड़ना तथा देववाणी, वनों में और पर्वतों की चोटियों पर गाने और बाजे के शब्दों का सुनाई पड़ना, अन्नों की वृद्धि, रस की विशेष उत्पत्ति—ये सब उत्पात शरत्काल में मांगलिक हैं। हिमवात, झंझा वायु का बहना, विरूप एवं अद्‍भुत उत्पातों का दर्शन, आकाश का काले कज्जल के समान दिखाई पड़ना, ताराओं एवं उल्काओं का गिरना, पिंजड़े के समान आकाश का दिखाई पड़ना, स्त्रियों से विचित्र सन्तानों की उत्पत्ति, इसी प्रकार गाय, बकरी, घोड़ी, मृगी एवं पक्षियों से भी विचित्र प्रकार के बच्चों का पैदा होना, पत्तों, अंकुरों एवं लताओं में अनेक प्रकार के विकारों का हो जाना, ये सब उत्पात शिशिर ऋतु में शुभदायी माने गये हैं। इनके अतिरिक्त ऋतु के स्वभाव के विना यदि अद्‍भुत उत्पात देखे जायँ या सुने जायँ तो पृथ्वीपति को चाहिये कि शास्त्रानुकूल, जैसा कि उनका विधान कहा गया है, तुरन्त शान्ति करा दे। ॥१—२६॥

श्री मात्स्य महापुराण में अद्‍भुत उत्पातों की शान्ति नामक दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२९॥

दो सौ तीसवां अध्याय

गर्ग ने कहा—अत्रे! जब देवताओं की मूर्तियाँ नाचने लगती हैं, काँपने लगती हैं, जलने लगती हैं, अग्नि, धूआँ, तेल, रक्त, चर्बी आदि उगलने लगती हैं, जोर-जोर से चिल्लाने लगती हैं, रोने लगती हैं, पसीना बहाने लगती हैं, हँसने लगती हैं, उठने लगती हैं, बैठने लगती हैं, दौड़ने लगती हैं, मुंह बजाने लगती हैं, खाने लगती हैं, अथवा भय प्रदर्शन करने लगती हैं, कोश, हथियार, ध्वजा आदि को इधर-उधर करने लगती हैं, नीचे मुख किये स्थित हो जाती हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करने लगती हैं, जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है, अग्नि, धूम, रक्त, चर्बी तथा तेल को उगलने लगती हैं—इस प्रकार के तथा अन्यान्य आकस्मिक उत्पात यदि शिव लिंग, देवमंदिर तथा ब्राह्मणों के पुर में दिखाई पड़ते हैं तो ऐसे स्थान पर निवास नहीं करना चाहिये। ऐसे उत्पातों के होने पर राजा पर या तो कोई बड़ी विपत्ति आती है अथवा उस देश का विनाश होता है। देवता के दर्शन के लिए जाते समय यदि उपर्युक्त उत्पात दिखाई पड़ें तो उस देश को भय बतलाना चाहिये। ऐसे अवसर पर उस देश में अपने पिता पितामहादि द्वारा बनाये गये भवनों में भी निवास नहीं करना चाहिये। पशुओं के ऊपर जो उपद्रव या भय होते हैं वे रुद्र से सम्बन्ध रखनेवाले हैं, राजाओं के उपद्रव लोकपालों के कोप से होते हैं, इसी प्रकार सेनापतियों की आपत्तियाँ स्वामिकार्तिकेय के कोप से तथा साधारण प्रजा के ऊपर जो उत्पात होता है वह विष्णु, वसु, इन्द्र, एवं

विश्वकर्मा से सम्बन्ध रखनेवाले हैं। गणों के नायकों पर जो उत्पात होते हैं उनका कारण विनायक का कोप है, देवताओं के दूतों की अप्रसन्नता से राजदूतों पर तथा देवांगनाओं के कारण राजपत्नियों पर उत्पात घटित होते हैं। ग्रहों के ऊपर जो उपद्रव दिखाई पड़ते हैं वे भगवान् वासुदेव से सम्बद्ध हैं। देवताओं में उपर्युक्त विकारों के उत्पन्न होने पर वेदों के ज्ञाता पुरोहित देवमूर्ति के पास जाकर उसे स्नान कराये और वस्त्रादि से अलंकृत करे। हे महाभाग ! इस प्रकार वह वेदज्ञ ब्राह्मण उक्त मूर्ति की सुगंधि, पुष्पमाला एवं अन्यान्य पूजन की सामग्रियों से पूजा करे, तदनन्तर विधिपूर्वक मधुपर्क निवेदित करे। हे राजन् ! फिर वह ब्राह्मण सावधानतापूर्वक उक्त प्रतिमा को उसके मंत्रों से स्थालीपाक द्वारा सात दिनों तक अग्नि में आहुति प्रदान करे। हे नरेन्द्र ! उक्त सातों दिनों तक मधुर अन्न-पानादि सामग्रियों से तथा उत्तम दक्षिणा देकर ब्राह्मणों की भी पूजा करनी चाहिये और आठवें दिन पृथ्वी सुवर्ण तथा गौ के दान ब्राह्मणों को देने चाहिये, तब यह पाप शान्त होता है। ॥१–१२॥

श्री मात्स्य महापुराण में अद्भुत शान्ति के प्रसंग में पूजाधिकार नामक दो सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२३०॥

दो सौ इकतीसवाँ अध्याय

गर्ग ने कहा—जिस देश में विना अग्नि का ईंधन जल उठता है, या विना ईंधन के ही अग्नि जलती रहती है अथवा ईंधन लगाने पर भी अग्नि प्रज्वलित नहीं होती वह देश राजाओं से पीडित होता है। जल में मांस जलने लगता है, अथवा कोई भाग जल जाता है, किले की चहारदीवारी, प्रवेशद्वार, तोरण, राजभवन एवं देवालय अकस्मात् जल उठते हैं वहाँ पर राजा को भय होता है। यदि ये उपर्युक्त वस्तुएँ बिजली गिरने से जल जाती हैं तब भी राजा को भय होता है। विना रात्रि के ही आकाश तथा भूमण्डल में जब अंधकार छा उठता है, विना धूलि उड़े ही आकाश धूसरित हो जाता है, विना अग्नि के धूएँ दिखाई पड़ने लगते हैं, उस स्थान पर भी महाभय को उपस्थित जानना चाहिये। विना बादलों के ही आकाश में बिजली का प्रकाश हो, रात को आकाश में विना बादलों के भी ताराओं का अभाव हो, दिन में गगनमण्डल तारायुक्त हो, इस प्रकार के उत्पातों से भी भय की आशंका होती है। ग्रहों एवं नक्षत्रों में विकार का हो जाना, ताराओं में विषमता का दिखाई पड़ना, ग्राम, वाहन, रथ, चौपाये, मृग, पक्षी तथा शस्त्रास्त्रों का अपने ही प्रज्वलित हो उठना अथवा धूमिल हो जाना, कोश से रत्नादि का निकलना तुमुल संग्राम का सूचक है। विना अग्नि की चिनगारियाँ कहीं यदि दिखाई पड़ने लगें, विना खींचे स्वाभाविक ढंग से धनुष की डोरियाँ यदि चढ़ जायँ या विकृत हो जायँ, शस्त्रास्त्रों में विकार हो जाय, तो वहाँ भी संग्राम की आशंका होती है। ऐसे उत्पात जहाँ दिखाई पड़ते हों वहाँ का पुरोहित तीन रात्रि का उपवास कर सन्तुष्ट चित्त से दूधवाले वृक्षों की लकड़ियों से, सरसों तथा घी से अग्नि के मंत्रों का उच्चारण करते हुए हवन करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करवाये और दक्षिणा रूप में उन्हें सुवर्ण, गौएं, वस्त्र तथा पृथ्वी आदि

का दान दे। हे द्विजेन्द्र ! ऐसा करने से वह अग्नि विकार सम्बन्धी पाप नष्ट हो जायगा। ॥१–११॥

श्री मात्स्य महापुराण में अद्भुत शान्ति के प्रसंग में अग्निविकार नामक दो सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त॥२३१॥

दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय

गर्ग ने कहा—जिन ग्रामों में देवताओं द्वारा प्रेरित वृक्ष रोते हुए, हँसते हुए, प्रचुर परिमाण में रस बहाते हुए विना किसी रोग के तथा विना वायु के वेग के डालियाँ गिराते हैं अथवा विना समय के तथा तीन वर्ष के पुराने वृक्षों में फल और फूल दिखाई पड़ते हैं और वृक्षों के बगीचे में से कोई कोई पूर्ववत् ऋतु काल की भाँति अपने को फूलों तथा पुष्पों से लदे हुए दिखाते हैं, दुग्ध, तैल, रक्त, मधु, तथा जल बहाते हैं, विना किसी रोग के ही शीघ्र सूख जाते हैं या सूखने पर पुनः अंकुरित होने लगते हैं, गिर कर भी उठकर खड़े हो जाते हैं तथा खड़े रहने पर भी अकस्मात् गिर पड़ते हैं तो उस स्थान पर इन उपद्रवों से जो परिणाम अथवा विनाश होता है, हे ब्रह्मन् ! उसे मैं तुम्हे बतला रहा हूँ, सुन। वृक्षों के रुदन करने पर व्याधियाँ फैलती हैं, हँसने पर देश में संकट एवं सन्देह की वृद्धि होती है, शाखाओं के गिरने से संग्राम में योद्धाओं का विनाश होता है, विना समय के फूलने से बालकों की अधिक संख्या में मृत्यु होती है। वृक्ष समूहों में से किसी किसी के फलने फूलने पर अपने राष्ट्र में भिन्नता होती है। गाय के दूध गिरने से चारों ओर विनाश उपस्थित होता है, तेल गिरने से महादुर्भिक्ष पड़ता है, मदिरा के गिरने से वाहनों का विनाश होता है, रक्त से संग्राम की सम्भावना बढ़ती है, मधु चूने से व्याधियाँ फैलती हैं, जल गिरने से वृष्टि नहीं होती। हे ब्रह्मन् ! विना किसी रोग के वृक्षों के सूख जाने को दुर्भिक्ष का लक्षण कहा जाता है, सूखे हुए वृक्ष में से हरियाली फूटने पर वीर्य (पराक्रम) एवं अन्न की हीनता बढ़ती है। गिरे हुए वृक्षों के उठने से भेदकारी भय देश में फैलता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से देशभंग होता है, वृक्षों के अकस्मात् जलने से तथा रुदन करने से सम्पत्ति का विनाश होता है, ये उपद्रव यदि पूजित वृक्षों में होते हैं तो अवश्य ही राजा पर विपत्तियाँ आती हैं। वृक्षों के फलों तथा फूलों में विकार हो जाने से राजा की मृत्यु की सूचना मिलती है, इसी प्रकार अन्यान्य वृक्षों में भी उपद्रव के लक्षणों के दिखाई पड़ने पर उत्साही ब्राह्मण उस वृक्ष को ऊपर से ढँककर सुगन्धित द्रव्यों तथा पुष्प एवं मालाओं से विभूषित करे और पाप की शान्ति के लिए वृक्ष के ऊपर छाता लगाये। तदनन्तर शिव की पूजा करे और पशु को 'रुद्रेभ्यः' इस संकल्प से निवेदित कर वृक्षों के नीचे हवन कर शिव का जप करे। मधु तथा वृक्ष से युक्त पायस से (दूध और चावल से पकायी गई खीर) ब्राह्मण को सन्तुष्ट कर पृथ्वी का दान दें, और उस पाप की शान्ति के लिए गीत तथा नृत्य का आयोजन कराकर भगवान् शंकर की आराधना करे। ॥१–१५॥

श्री मात्स्य महापुराण के अद्भुत शान्ति प्रकरण में वृक्षोपताप प्रशमन नामक दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥२३२॥

दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय

गर्ग ने कहा—अतिवृष्टि का होना एवं अनावृष्टि का होना इन दोनों से दुर्भिक्षादि के पड़ने का भय माना जाता है। विना वर्षाऋतु के दिन में अनन्त वृष्टि का होना अति भयानक है। विना बादलों के ही आकाश में उदासी एवं विकारों का दिखाई पड़ना राजमृत्यु का द्योतक है। शीतकाल में गर्मी एवं ग्रीष्म में सरदी इससे राजाओं पर शत्रुपक्ष से भय होता है, जिस स्थान पर आकाश से रक्त की वर्षा होती है वहाँ शस्त्रभय मानना चाहिये। अंगार एवं धूलि ही की वृष्टि नगर का विनाश करती है। मज्जा, हड्डी, तेल एवं मांस की वृष्टि से प्रजावर्ग में मृत्यु का भय उपस्थित होता है। आकाश से फल, पुष्प तथा अन्न की वृष्टि शत्रुपक्ष से भय का द्योतन करती है। धूलि, जन्तु एवं ओला गिरने से रोग का भय होता है। अन्न की वृष्टि अन्न को ही भय पहुँचानेवाली है। आकाश मण्डल में धूलि के न रहने पर भी यदि सूर्य के रहने पर परछाई नहीं दिखाई पड़ती अथवा विपरीत दिखाई पड़ती है तो सारे देश को भय समझना चाहिये। विना बादल के रात्रि में दक्षिण दिशा में अथवा उत्तर दिशा में यदि सफेद रंग का इन्द्रधनुष उदित दिखाई पड़ता है, अथवा उल्कापात होता है, दिशाओं का दाह होता है, सूर्य तथा चन्द्रमा में मण्डल दिखाई पड़ते हैं, गन्धर्वनगर दिखाई पड़ते हैं तो उस समय देश पर शत्रुपक्ष की सेना से भय मानना चाहिये एवं देश में विविध उपद्रवों के संघटित होने की सम्भावना जाननी चाहिये। हे द्विजेन्द्र! ऐसे अवसर पर सूर्य, चन्द्रमा, मेघ, एवं वायु इनके उद्देश्य से यज्ञ करना चाहिये। एवं इस महोत्पात के कारणरूप पाप के विनाश के लिए ब्राह्मणों को धन, गौएँ तथा सुवर्णादि की दक्षिणा देनी चाहिये। ॥ १—१६ ॥

श्रीमात्स्यमहापुराण में अद्भुत शान्ति प्रसंग में वृष्टिविकारशमननामक दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३३॥

दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय

गर्ग ने कहा—यदि नदियाँ, सरोवर या झरने नगर से दूर हट जाते हैं, या दूर होने पर भी समीप चले आते हैं, अथवा सूख जाते हैं, मलिन हो जाते हैं, कलुषित हो जाते हैं, जल जलने लगता है, उनके फेन के समान जंतुओं का आधिक्य हो जाता है, तेल, दूध, मदिरा या रक्त उनमें बहते दिखाई पड़ने लगते हैं, जल विक्षुब्ध हो उठता है, तो उस समय से छः महीने के भीतर ही उस देश पर शत्रुपक्ष की सेना से भय होने की सम्भावना होती है। यदि किसी प्रकार वे जलाशय शब्द करने लगते हैं, या जलने लगते हैं, या हे ब्रह्मन्! उनमें से आग की लपटें, धूआँ एवं धूलि निकलने लगती है, विना खने ही भूमि पर जल निकलने लगता है, जलाशयों में बड़े-बड़े जलजीव हो जाते हैं, या उनमें से संगीत की ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगती हैं तो सर्व साधारण-प्रजावर्ग के मरण का भय मानना चाहिये। ऐसे अवसर पर

घी, मधु, तैल से उन जलाशयों का अभिषेचन कर वरुण के मंत्रों का जप करना चाहिये और उन्हीं मंत्रों का उच्चारण कर जल में हवन करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजनार्थ मधु तथा घृत मिला कर श्रेष्ठ अन्न का दान देना चाहिये एवं जल के उस उत्पात सूचक महापाप की शान्ति के लिए सफेद वस्त्रों से युक्त गौएँ और जल रखने के घड़े दान देने चाहिये। ॥१—७॥

श्री मात्स्य महापुराण में अद्भुत शान्ति प्रकरण में जलाशय विकार शान्ति नामक दो सौ चौतीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥२३४॥

दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय

गर्ग ने कहा—जब विना समय पूरा हुए ही स्त्रियों से सन्ततियाँ उत्पन्न होने लगती हैं, या समय पूरा हो जाने पर भी नहीं उत्पन्न होतीं, उनमें विकार उत्पन्न होने लगता है अथवा जुड़वें लड़के पैदा होने लगते हैं, स्त्रियों से बच्चों को छोड़कर राक्षसादि पैदा होने लगते हैं, विना कंधे के बच्चे उत्पन्न होने लगते हैं, मरे हुए उत्पन्न होने लगते हैं अथवा किसी अंग से हीन या किसी से अधिक अंगवाले बच्चे अधिक संख्या में पैदा होने लगते हैं, पशु एवं सर्पादि में भी इसी प्रकार के बच्चे पैदा होने लगते हैं तब यह समझ लेना चाहिये कि उस देश का विनाश उपस्थित हो गया है। ऐसे उपद्रवों के घटित होने पर राजा अपने राष्ट्र से उन पैदा होनेवाली सन्तानों को निर्वासित कर दे और स्त्रियों की विशेष पूजा करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को विधिवत् सन्तुष्ट करे तब लोक में पाप की शान्ति होती है। ॥१—४॥

श्री मात्स्य महापुराण में भाग्य तथा पुरुषार्थ वर्णन नामक दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥२३५॥

दो सौ छत्तीसवां अध्याय

गर्ग ने कहा—जिस देश मे रथादि घोड़ों के विना जोते ही चलने लगते हैं अथवा घोड़ों के जोतने पर तथा उन्हें हाँकने पर भी नहीं चलते हैं, वहाँ पर भी यह जान लेना चाहिये कि कोई महान् भय उपस्थित हो गया है। विना बजाये ही जब बाजन बजने लगते हैं अथवा बजाने पर भी उनसे ध्वनियाँ नहीं निकलतीं, अचल वस्तुएँ चलने लगती हैं तथा जो चल वस्तुएँ हैं वे अचल हो जाती हैं, आकाश में तुरुही की ध्वनि तथा गान-वाद्यादि का स्वर सुनाई पड़ने लगता है, काष्ठ, करछुल एवं फावड़े आदि में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। गौएँ पूछ से एक दूसरे को मारने लगती हैं, स्त्रियाँ एक दूसरे की हत्या करने लगती हैं एवं घरेलू वस्तुओं में भी विकार उत्पन्न हो जाते हैं, उस समय देश में शस्त्रास्त्रों से घोर भय जानना चाहिये। ऐसे उत्पातों के घटित होने पर सत्तू से वायु देव की पूजा करके उनके मंत्रों का जप

करना चाहिये एवं तदनन्तर दक्षिणा समेत अन्न को प्रचुर परिमाण में दान देना चाहिये। इस प्रकार शान्ति करने पर इस उत्पात के कारण स्वरूप उस महापाप का विनाश होता है । ॥१–१५॥

श्री मात्स्य महापुराण के अदभुतशान्ति प्रकरण में उपस्कर शान्ति नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२३६॥

दो सौ सैंतोसवां अध्याय

गर्ग ने कहा—जब ग्रामों में जंगली पशु एवं पक्षी प्रवेश करने लगते हैं या ग्राम में रहनेवाले पशु पक्षी जंगलों में चले जाते हैं अथवा जल में रहनेवाले जीव भूमि पर डोलने लगते हैं, या भूमि के जीव जल में चले जाते हैं । राजप्रासाद के मुख्य द्वार पर तथा गोपुर पर अमंगल की सूचना देनेवाली श्रृगालियाँ निर्भय होकर रुदन करती हैं । दिन में चलनेवाले प्राणी रात्रि में तथा रात्रि में चलनेवाले प्राणी दिन में इधर-उधर घूमने लगते हैं, ग्राम में रहनेवाले जीव ग्राम छोड़ देते हैं, तो उन ग्रामों के सूनेपन की सम्भावना समझनी चाहिये । जब पशु आदि जीवगण ग्रामों में एकदम क्रोधोन्मत्त होकर मण्डल बनाकर रूखे स्वर में चिल्लाने लगते हैं तब भी यह भय समझना चाहिये । आधीरात के समय मुर्गे चिल्लाने लगें, हेमन्त ऋतु में कोकिल बोले, सूर्योदय के समय सूर्याभिमुख होकर श्रृगालिनी चिल्लाने लगे तो भय का आगमन कहना चाहिये । घर में कबूतर घुस आये, मस्तक पर गृद्ध बैठ जाये, घर के भीतर मधु की मक्खियाँ मधु संचित करने लगे तब यह जान लेना चाहिये कि उस घर के स्वामी की मृत्यु होनेवाली है । रक्षा दीवाल, प्रवेशद्वार, राजभवन, तोरण, बाजार, गली, पताका, ध्वजा तथा अस्त्र-शस्त्रादि पर गृद्ध पक्षी बैठ जाय, अथवा घर में बिल हो जाय, मधु छत्ते से गिरने लगे तब उस देश का विनाश होनेवाला है अथवा राजा की मृत्यु होनेवाली है । मूषक और पतिंगे यदि अधिक परिमाण में दिखाई पड़ते हैं तो क्षुधा का भय होनेवाला है अर्थात् दुर्भिक्ष पड़ने की सम्भावना है । लकड़ी के लुवाठे, हड्डियाँ, सींगवाले जानवर, कुत्ते एवं बन्दरों की अधिकता होनेपर देश में व्याधियों के फैलने का भय रहता है । यदि कौआ चोंच में अन्न लेकर इधर-उधर निर्भय होकर घूमता है तो दुर्भिक्ष की सूचना जाननी चाहिये और उस समय रण छिड़ने की भी सम्भावना रहती है । यदि श्वेत कौआ मैथुन करते हुए दिखलाई पड़ें तो समझना चाहिये कि उस देश का राजा मरेगा और वह देश विनष्ट होगा । जब राजा के द्वार पर अथवा घर में उल्लू बोलते हैं तो उस घर के स्वामी अर्थात् राजा की मृत्यु तथा उसकी सम्पत्ति का विनाश समझना चाहिये । इस प्रकार पशुओं एवं पक्षियों में उत्पात के लक्षणों को देखकर दक्षिणा समेत यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिये । अथवा पाँच ब्राह्मणों को 'देवाः कपोताः....' इस मन्त्र का जप करना चाहिये । तदनन्तर ब्राह्मणों को विधिपूर्वक सुवर्ण समेत गौओं का दान करना चाहिये । इस प्रकार के अनुष्ठान करने से पशुओं एवं

पक्षियों द्वारा सूचित उत्पातों के कारण स्वरूप पाप की शान्ति होती है। ॥१–१४॥

श्रीमात्स्य महापुराण के अद्भुत प्रकरणमें पशु पक्षि विकार शान्ति नामक दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥२३७॥

दो सौ अड़तीसवां अध्याय

गर्ग ने कहा—दृढ़ बने हुए राजभवन, तोरण, अट्टालिका, प्रवेश द्वार, रक्षा दीवाल, एवं अन्यान्य भवन यदि विना किसी कारण के गिर पड़ते हैं तो राजा की मृत्यु की सूचना समझनी चाहिये। जिस देश में दिशाएँ धूलि से तथा धूएँ से भरी दिखाई पड़ती हैं, एवं सूर्य, चन्द्रमा तथा ताराएँ धूमिल रंग की दिखाई पड़ती हैं तो ये भी भय वृद्धि की सूचना देती हैं। जहाँ राक्षस दिखाई पड़ते हैं तथा ब्राह्मण विधर्मी हो जाते हैं, ऋतुओं का विपर्यय होता है, लोग अपूज्यों की पूजा करते हैं, नक्षत्र गण आकाश से नीचे गिरने लगते हैं, तो वहाँ ये महान् भय की सूचना देते हैं। केतु का उदय, ग्रहण, चन्द्रमा एवं सूर्य के विम्ब में छिद्रों का दिखाई पड़ना, ग्रह एवं नक्षत्रों में विकार, ये सब भी जहाँ घटित हों वहाँ भय की सम्भावना समझनी चाहिये। स्त्रियाँ जहाँ आपस में झगड़ने लगें, बालक एक दूसरे को मारने लगें, उचित कार्यों का विनाश हो, यज्ञादि कार्यों में आहुति देने पर भी अग्नि उद्दीप्त न हो, पिपीलिका और गृद्धों का उत्तर दिशा में होकर जाना, भरे हुए घड़े में रखी हुई वस्तुओं का चूना, घी का अभाव हो जाना, चारों ओर से मांगलिक वाणियों के सुनने का अभाव एवं लोगों में कास रोग की पीड़ा, जनता में अकारण हँसी और गाने की विशेष अभिरुचि, देवता और ब्राह्मणों की समुचित पूजा का अभाव, बाजनों में स्वरों की मंदता एवं कर्कशता, लोगों में गुरु एवं मित्रों से द्वेष तथा शत्रु की पूजा में विशेष अभिरुचि के भाव, ब्राह्मण, मित्र, एवं, माननीय लोगों के अपमान, शान्तिपाठ, मांगलिक यज्ञादि के अनुष्ठान, हवनादि में नास्किता का प्रभाव—ये सब उत्पात जहाँ दिखाई पड़ें वहाँ यह जान लेना चाहिये कि या तो राजा की मृत्यु होनेवाली है अथवा उस देश का विनाश होनेवाला है। राजा के विनाश की सूचना के जो लक्षण हैं, उन्हें मुझसे सुनो। वह राजा सर्वप्रथम ब्राह्मणों से द्वेष करने लगता है, ब्राह्मणों से विरोध करता है, ब्राह्मणों की सम्पत्ति अपने अधीन कर लेता है, ब्राह्मणों के मारने का उपक्रम करता है, सत्कार्यों में उनका स्मरण नहीं करता, याचना करने पर क्रुद्ध होता है, ब्राह्मणों की निन्दा में विशेष रुचि रखता है, प्रशंसा का अभिनन्दन नही करता, लोभ के कारण लोगों पर नये-नये कर लगाता है—ऐसे उत्पात जब राजा में दिखाई पड़ें तो यह समझ लेना चाहिये कि उसके विनाश की घड़ी आगई है। ऐसे अवसर पर हे द्विजोत्तम! शची के समेत इन्द्र की पूजा करनी चाहिये एवं अन्यान्य देवताओं के उद्देश्य से भक्ष्य वलि देनी चाहिए। सत्पुरुषों एवं ब्राह्मणों की पूजा कर उन्हें दान देना चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणों को गौएँ, सुवर्ण, पृथ्वी, वस्त्रादि का दान करना चाहिये, और देवताओं की पूजा कर हवन करना चाहिये। ऐसा करने से

उपर्युक्त उत्पातों का मूल कारण पाप शान्त होता है। ॥१—१६॥

श्रीमात्स्य महापुराण के अद्भुतशान्ति प्रकरणमें उत्पातप्रशमननामक दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त॥२३८॥

दो सौ उन्तालीसवां अध्याय

मनु ने पूछा—हे देव! जनार्दन! राजाओं को ग्रहयज्ञ किस प्रकार करना चाहिये? एवं सभी पापों को नष्ट करनेवाले लक्ष होम तथा कोटिहोम के करने की क्या विधि है? -इस यज्ञ का अनुष्ठान जिस जिस विधि से किया जाता है तथा शान्ति की चिन्ता करनेवाले जिस विधि से इसे सम्पन्न होते देखते हैं—उन सब को विस्तारपूर्वक मुझे बताइये। ॥१—२॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे राजन्! तुम्हारे पूछने पर अब मैं बतला रहा हूँ। धर्म परायण एवं प्रजा के कल्याण के लिए तत्पर राजाओं को यह ग्रहयज्ञ सर्वदा लक्ष होम के साथ करना चाहिये, इस ग्रहयज्ञ को नदियों के संगम पर तथा देवताओं के आगे, सुन्दर चारों ओर समतल भूमि भाग में ज्यौतिषियों से भलीभाँति सम्मति लेकर कराना चाहिये। सर्वप्रथम गुरु तथा पुरोहितों को साथ ले भूमि की परीक्षा करे। तदनन्तर वहाँ एक हाथ गहरा चारों ओर से समान सुन्दर कुण्ड खने, लक्षहोम के लिए इससे द्विगुणित तथा कोटि होम के लिए इससे चतुर्गुणित परिमाण में कुण्ड खने। इस ग्रहयज्ञ के लिए दो पुरोहित बतलाये गये हैं अथवा वेदपारगामी आठ पुरोहित रहें, जो सब के सब कन्द, मूल एवं फल के आहार करनेवाले तथा दही और दूध से निर्वाह करनेवाले हों। यजमान राजा यज्ञ वेदी पर विविध प्रकार के रत्न उन पुरोहितों द्वारा स्थान-स्थान पर स्थापित करवाये। तदनन्तर बालू द्वारा वेदी के चारों ओर मण्डल बनाकर अग्नि प्रज्वलित कराये। फिर गायत्री मन्त्र द्वारा दस दहस्र, 'मानस्तोकेन...' इस मन्त्र द्वारा छ सहस्र, नवग्रहों के मन्त्रों से तीस सहस्र, विष्णु देवता के मन्त्रों से चार सहस्र, कुष्माण्ड द्वारा पाँच सहस्र, पुष्प आदि द्वारा सोलह, तथा बेर के फलों द्वारा दस सहस्र आहुति अग्नि में देनी चाहिये। इसी प्रकार लक्ष्मी के मन्त्रों से चौदह सहस्र आहुतियाँ करनी चाहिये और शेष पाँच सहस्र आहुतियाँ इन्द्र देवता के मन्त्रों से देनी चाहिये। एक लाख आहुतियों की समाप्ति हो जाने के बाद सुवर्ण तथा मांगलिक द्रव्यों से युक्त सोलह कलशों द्वारा पुण्य स्नान करे। इस प्रकार पुरोहित जब यजमान को स्नान कराता है तब शान्ति की प्राप्ति होती है। ऐसा करके तथा अन्त में दक्षिणा प्रदान कर ग्रहों आदि के कारण जो पीड़ा होती है उन सब को राजा विनष्ट कर देता है। यही कारण है कि यज्ञ के सभी कार्यों में दक्षिणा का बहुत अधिक महत्त्व कहा गया है। उस समय राजा अपनी शक्ति के अनुकूल हाथी, रथ, घोड़े, भूमि, वस्त्र के जोड़े, सौ बैल तथा गौएँ आदि दक्षिणा के साथ पुरोहितों को दे, इसमें कृपणता न करे। हे नराधिप! इस प्रकार की विधि से एक मास में लक्षहोम समाप्त होता है। हे राजेन्द्र! यह लक्षहोम का विधान मैं आपको बता चुका, अब कोटिहोम का विधान सुनो, मैं बतला रहा हूँ। हे नरेश्वर! गंगा के तट पर यमुना तथा सरस्वती

के तट पर नर्मदा और देविका के तट पर यह हवन किया जाता है। हे रविनन्दन! इस कोटि होम में सोलह पुरोहित बनाने चाहिये। हे राजर्षे। इस प्रकार सभी हवन कार्यों में ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर राजा पुरोहित तथा आचार्य के साथ दीक्षा ग्रहण करे, यह विधि एक साल की है। हे नृप! चैत्र के महीने में अथवा कार्तिक के महीने में इस यज्ञ को प्रारम्भ करना चाहिये और इसी प्रकार प्रतिवर्ष इसका अनुष्ठान करना चाहिये। हे अनघ! अनुष्ठान के समय यजमान को दुग्ध का अथवा फल का आहार करना चाहिये। जव आदि अन्न, उड़द तिल और सरसों, एवं पलाश की लकड़ी ये सब होम में प्रशंसित हैं। इसके ऊपर वसु की धारा छोड़नी चाहिये। पहिले महीने में पुरोहितों को दुग्ध का भोजन कराना चाहिये, दूसरे महीने में खिचड़ी, जो कि धर्म काम एवं अर्थ सब की साधक है, देनी चाहिये। हे रविनन्दन! तीसरे महीने में घी से गेहूँ का चूर्ण बनाकर यवागू बनवाये और पुरोहितों को दे, चौथे महीने में ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते हुए उन्हें भोजनार्थ लड्डू देना चाहिये। पांचवें महीने में दही और भात तथा छठवें महोने में सत्तू का भोजन देना चाहिये। सातवें महीने में पूप तथा आठवें में घी का पूआ देना चाहिये। नवें महीने में साठी का भात नथा दसवें में जव और साठी का भोजन दे। हे रविनन्दन! ग्यारहवें महीने में पुरोहितों को उड़द युक्त भोजन देना चाहिये। इसी प्रकार हे सूर्य कुलोत्पन्न! बारहवें महीने के आने पर उन्हें छहों रसों से युक्त सभी मनोरथों की पूर्ति करनेवाला सुन्दर भोजन देना चाहिये। हे राजेन्द्र! उन ब्राह्मणों को प्रतिमास दक्षिणा भी देनी चाहिये और मध्याह्न के समय पवित्र वस्त्र धारण कर हवन करना चाहिये। इस कार्य के लिए यजमान को सर्वदा पुरोहितों के साथ प्रातःकाल ही उठना चाहिये और इन्द्र आदि देवताओं की पूजा करनी चाहिये, जो सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली है। हे राजेन्द्र! फिर देवताओं के उद्देश्य से पशु की बलि देकर सभी प्रकार के दान कर्मों को सम्पादित करे और फिर अग्निष्ठोम का अनुष्ठान करे। इस प्रकार विधिपूर्वक पूर्णाहुति करे। शत होम में दो सौ, सहस्र होम में उसका दुगुना, तथा लक्षहोम तक इसी प्रकार पूर्व की संख्या से दुगुना करते हुए पूर्णाहुति करनी चाहिये। तदनन्तर देवताओं के लिए पुरोहितों द्वारा पुरोडाश का दान कराना चाहिये और उन्हें उन्हीं आगत मनुष्यों में ही उपस्थित समझना चाहिये। फिर पूजित ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके पितरों की तृप्ति के लिए शास्त्रोक्त विधि से पिण्डदान करना चाहिये। इस होम के समाप्त हो जाने पर ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिये। तदनन्तर राजा को चाहिये कि कृपणता को छोड़कर तराजू में दो पलड़े बाँध कर अपने आप को तथा अपनी पत्नी को तौले। उसे अपने को सुवर्ण से तथा पत्नी को चाँदी द्वारा तौलना चाहिये और तौलने के बाद ब्राह्मण को दान करना चाहिए। तदनन्तर चाँदी तथा सुवर्ण की बनी हुई एक लक्ष मुद्रा का दान करना चाहिये अथवा अपने सर्वस्व का दान कर देना चाहिये। इस प्रकार उसे राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ की समाप्ति कर तब ब्राह्मणों को विसर्जित करे और कहे 'कमलनेत्र भगवान् विष्णु जो सभी यज्ञों के स्वामी हैं, प्रसन्न हों, उनके संतुष्ट होने पर समस्त जगत सन्तुष्ट होता है।' सभी प्रकार की आधिदैविक

तथा मनुष्य द्वारा उपस्थित होनेवाली बाधाओं के आने पर इस शान्ति को करना चाहिये, जिसे मैं तुम्हें बता चुका, इस शान्ति के अनुष्ठान को करके मनुष्य सुकृती होता है और जन्म तथा मृत्यु के विषय में उसे फिर कोई सोच नहीं रहती और न उचित एवं अनुचित कार्यों के विचार में ही वह मोहित होता है। सभी तीर्थों के स्नान करने से तथा सभी यज्ञों के अनुष्ठान करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है, हे नृप! उस पुण्य को इन तीनों यज्ञों को करनेवाला मनुष्य प्राप्त करता है। ॥३–४०॥

श्री मात्स्य महापुराण में ग्रहयज्ञ विधानं नामक दो सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥२३९॥

दो सौ चालीसवाँ अध्याय

मनु ने कहा—हे सभी धर्मों के तत्त्वों को जाननेवाले! सभी शास्त्रों के विशारद! भगवन्! अब मुझे राजाओं की यात्रा के सम्बन्ध में आवश्यक विधानों को बतलाइये। ॥१॥

मत्स्य भगवान ने कहा – जब राजा अपने को किसी भयंकर युद्ध से घिरा हुआ समझे और वह जान ले कि पड़ोस की सीमा का शत्रु पराजित हो चुका है, उस समय अपनी विजय यात्रा करे। और उस समय भी वह यात्रा करे जब यह समझ ले कि हमारे पास अधिक संख्या में योद्धा गण मौजूद हैं, हमारी सेना अति बलवान् तथा बहुसंख्यक है, और मैं अपने दुर्ग की रक्षा करने में समर्थ हूँ। जिस राजा की सीमा शत्रु के कारण शान्त नहीं है, अर्थात् पड़ोसी राजा बलवान है तथा अपने राज्य पर दृष्टि लगाये हुए है, उस समय वह यात्रा न करे। उस समय वह जितने सामन्त शत्रु गण हैं उनसे अधिक संख्या में सेना को राजधानी में नियुक्त करने के बाद विजय के लिए यात्रा करे। राजा को चैत्र की अथवा मार्गशीर्ष की पूर्णिमा तिथि को विजयार्थ यात्रा करनी चाहिये। चैत्र की पूर्णिमा को यात्रा करने वाला निदाघ का दर्शन करेगा तथा शरद् काल के शीत के भय से उन्मुक्त रहेगा क्योंकि निदाघ से शीत का विनाश हो चुका रहेगा। ठीक इसी के समान मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के अवसर पर यात्रा करने से राजा को सुविधा प्राप्त होती है। अथवा शत्रु के आपत्ति में फँसने पर राजा विजययात्रा करे, यह समय तो यात्रा के लिए अति दुर्लभ है। दिव्य, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी के उत्पातों से अतिशय पीड़ित, हाथ पैर आदि छः प्रकार की इन्द्रियों के भंग होने के कारण अति संतप्त एव ग्रहों द्वारा पीड़ित शत्रु पर राजा को विजयार्थ यात्रा करनी चाहिये। जिस दिशा में आकाश मण्डल से जलती हुई उल्का गिरती है तथा भूकम्प एवं उल्का पतन आदि जिस दिशा में अधिक होते हैं, तथा जिस दिशा में पुच्छल तारा उदित होता है, राजा को उसी दिशा में विजयार्थ यात्रा करनी चाहिये। जिस स्थान पर वज्रपात होता हो वहाँ भी राजा यात्रा करे। जो राजा अपनी सेना के विद्रोह के कारण विपन्न हो, जिस राजा का देश दुर्भिक्ष से पीड़ित हो जिस राजा के प्रजावर्ग में आन्तरिक विद्रोह की प्रबलता हो रही हो, ऐसे शत्रु राजा के देश पर राजा तुरन्त यात्रा

कर दे। जिस देश में ढील, यूक, मधुमक्खी की अधिकता हो, अधिक कीचड़ हो, देश मलिन एवं अपवित्र हो, जहाँ का राजा नास्तिक हो, अपनी मर्यादाओं को भङ्ग करनेवाले हो, फूहड़ एवं अमांगलिक बातें कहनेवाला हो, दुश्चरित्र तथा पराक्रमहीन हो—ऐसे शत्रु को राजा शीघ्र ही स्ववश करे। किस राजा के सेनानी उससे द्वेष रखते हों, सेनाओं में परस्पर विद्वेष फैला हो, ऐकमत्य न हो, राजा किसी आफत अथवा दुर्व्यसन में फँसा हो, जिसकी सेना बलवान् न हो, ऐसे शत्रु के ऊपर राजा उसी समय शीघ्र ही आक्रमण कर दे। जिस देश के राजा के सैनिकों के अस्त्र एवं अंग युद्धभूमि में आकर प्रस्फुरित न होते हों, तथा रात में बुरे स्वप्न देखते हों उनके ऊपर राजा अपनी सेना का धावा बोल दे। उत्साह एवं पराक्रम से संयुक्त अपने ऊपर अनुराग करनेवाली विशाल सेना से सुसज्जित होकर सन्तुष्ट चित्त हो राजा शत्रुओं के ऊपर आक्रमण करे। अच्छे अंगों के स्फुरण हो रहे हों, दुःस्वप्नों के विनाशक शुभ मांगलिक लक्षण आगे दिखाई पड़ रहे हों, मांगलिक शकुन आगे पड़ रहे हों ऐसे शुभ समय में राजा को शत्रु पर यात्रा करनी चाहिये। जन्म आदि छहों नक्षत्र शुभ योग में हों, ग्रहों की स्थिति अनुकूल दशा में हो, प्रश्न करने पर शुभदायक उत्तर मिला हो, ऐसे अवसर पर राजा शत्रुओं पर आक्रमण करे। इस प्रकार दैवबल तथा अपने पराक्रम से संयुक्त होकर राजा देश एवं समय के अनुरूप शत्रु पर अपनी यात्रा प्रारम्भ करे। स्थल भाग में मगर हाथी के वश में होता है किन्तु जल में जाकर हाथी भी मगर के वश में हो जाता है, इसी प्रकार रात्रि में काक उल्लू के अधीन हो जाता है किन्तु दिन में उलूक ही काक के वश में रहता है, इसी प्रकार राजा देश एवं समय दोनों की स्थिति में बलाबल का विचार कर शत्रु पर अपनी यात्रा प्रारम्भ करे। यदि वर्षा ऋतु में उसे आक्रमण करना है तो पैदल और हाथी इन दोनों की सेना में अधिकता होनी चाहिये। हेमन्त और शिशिर ऋतु में अधिक रथ और घोड़े से युक्त सेना को विजयार्थ साथ ले जाना चाहिये। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में राजा गधे और ऊँटों की संख्या में वृद्धि करके शत्रु पर आक्रमण करे। वसन्त और शरत् इन दोनों ऋतुओं में चतुरंगिनी सेना से युक्त होकर आक्रमण करना चाहिये। जिस राजा की सेना में पैदल की अधिक संख्या हो वह दुर्गम प्रदेश में स्थित शत्रु पर आक्रमण करे। अधिक वृक्षों से युक्त देश में जाने के लिए अथवा ऐसे देश में अवस्थित शत्रु पर आक्रमण करने के लिए अथवा कुछ कीचड़वाले देश में आक्रमण करने के लिए राजा अधिक संख्या में हाथियों को अपने साथ ले जाय। समतल भूमि में अवस्थित शत्रु पर आक्रमण के लिए राजा रथ और घोड़ों को अधिक संख्या में साथ ले जाय। जो सैनिक युद्धभूमि में राजा की सहायता अथवा अङ्गरक्षा के लिए नियुक्त हों, उन्हें राजा दान सम्मान आदि से खूब सम्मानित करे। वर्षा ऋतु में यदि अधिक संख्या में गधे और ऊँट की सेना रखनेवाला राजा शत्रु पक्ष से बाँध भी उठता है तब भी उसे युद्ध करते रहना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से विजय की सम्भावना रहती है। जिस देश में बरफ गिरता हो वहाँ पर पर राजा ग्रीष्म ऋतु में आक्रमण करे। काष्ठ तथा घास आदि साधनों से युक्त होकर हेमन्त काल में राजा को आक्रमण करना चाहिये। धर्म के मर्म को जानने वाले! इसलिए शरत् और वसन्त ये दोनों समय आक्रमण के लिए साधारण रूप से उपयोगी होते

हैं। राजा देश एवं काल अर्थात् भूत भविष्यत् तथा वर्तमान की परिस्थिति पर भली भाँति विचार विमर्श करने के बाद ज्योतिषियों की सम्मति से तथा मन्त्र जाननेवाले ब्राह्मणों के साथ शत्रु पर विजयार्थ प्रस्थान करे। ॥२-२७॥

श्री मात्स्य महापुराण में यात्रा निमित्त काल आदि चिन्ता नामक दो सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४०॥

दो सौ इकतालीसवाँ अध्याय

मनु ने कहा—सभी धर्मज्ञों में श्रेष्ठ! अब मुझे शुभ तथा अशुभसूचक शकुनों को बताइये। आप सब कुछ जाननेवाले कहे जाते हैं।

मत्स्य ने कहा—मनुष्य के शरीर के दाहिने भाग का स्फुरण प्रशंसनीय तथा बाएं भाग, पीठ और हृदय का स्फुरण अशुभसूचक माना गया है। ॥२॥

मनु ने कहा—हे भगवन्! सभी अंगों के स्फुरण, जो शुभाशुभ की सूचना देनेवाले कहे गये हैं, मुझे विस्तार से बतलाइये, जिससे मैं पृथ्वी तल पर उनका जाननेवाला बन जाऊँ। ॥३॥

मत्स्य ने कहा—हे रविनन्दन! मूर्धा के स्फुरण होने से पृथ्वी का लाभ होता है, ललाट के स्फुरण से स्थान की वृद्धि होती है, भौंह और नासिका के स्फुरण से प्रियजनों का समागम होता है, आँखों के स्फुरण से सेवक की प्राप्ति होती है; आँखों के समीप स्फुरण होने से धन की प्राप्ति होती है। आँख के मध्य भाग में स्फुरण होने से उत्कण्ठा बढ़ती है, हे राजन्! विचक्षणों ने ऐसा देखा है। आँखों की पलकों के फड़कने से संग्राम में शीघ्र ही विजय होती है, अपांग के स्फुरण से स्त्री के साथ सम्भोग एवं कान के फड़कने से प्रियवार्ता सुनाई पड़ती है। नासिका के स्फुरण से प्रीति एवं सौख्य की प्राप्ति होती है, नीचे के होंठ के फड़कने से सन्तान-प्राप्ति होती है, कण्ठ के स्फुरण से भोग लाभ एवं दोनों कंधों के स्फुरण के भोग की वृद्धि होती है। बाहुओं के स्फुरण से मित्र-स्नेह की प्राप्ति तथा हाथ के स्फुरण से धन की प्राप्ति होती है। पीठ के फड़कने से शीघ्र ही युद्ध में पराजय एवं छाती के फड़कने से शीघ्र ही विजय-प्राप्ति होती है। दोनों कुक्षियों के स्फुरण से प्रीति की वृद्धि कही गई है तथा स्तन के स्फुरण से स्त्री से सन्तानोत्पत्ति होती है। नाभि के स्फुरण से स्थान से च्युत होना पड़ता है तथा आँत के फड़कने से धन की प्राप्ति होती है। जानु के संधि भाग के स्फुरण से बलवान् शत्रुओं से भी संधि की बातचीत चलने लगती है। हे रविनन्दन! जाँघों के स्फुरण होने से अपने देश के किसी भाग का विनाश होता है। इसी प्रकार हे नृप! दोनों पैरों के स्फुरण से उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है। हे राजन्! पैरों के तलुओं के स्फुरण से लाभयुक्त यात्रा होती है। स्फुरण के समान ही चिन्ह एवं पिटकों (वे लक्षण तथा मांस पिण्डादि जो जन्म के समय से ही बालकों के अंगों में उत्पन्न हो जाते हैं।) के भी फलाफल कहे गये हैं।

ये ऊपर जो फल कहे गये हैं, वे पुरुषों के लिए हैं, स्त्रियों के लिए इनके विपरीत फल घटित होते हैं, अर्थात् पुरुषों के जिन अंगों के स्फुरण होने से शुभ फल मिलता है, स्त्रियों के उन्हीं अंगों के स्फुरण से अशुभ फल मिलता है। बाएँ अंगों के स्फुरण, जो कि अशुभफल की सूचना देनेवाले कहे गये हैं; यदि यात्राकाल में होते हैं तो उनसे विशेष अशुभ होने की सम्भावना होती है, इसी प्रकार शुभसूचक दाहिने अंग के स्फुरण यात्रा में विशेष शुभदायक होते हैं। ये शुभाशुभ के सूचक जो अंगों के स्फुरण कहे गये हैं उनका शुभ तथा अशुभ फल निश्चय ही घटित होता है, अनिष्ट सूचक अङ्गों में स्फुरण होने पर ब्राह्मणों को सुवर्ण दान देकर सन्तुष्ट करना चाहिये। ॥४–१४॥

श्री मात्स्य महापुराण में यात्रा प्रसंग में शरीर स्फुरण नामक दो सौ इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥२४१॥

दो सौ बयालीसवाँ अध्याय

मनु ने कहा—देव! यात्रा के समय एवं स्वप्न में विविध प्रकार के दृश्य दिखाई पड़ते हैं, उनका क्या फल घटित होता है, कृपया उन्हें कहिये ॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—हे मनु! अब मैं तुम्हें स्वप्नों के फलों को बतला रहा हूँ। नाभि के विना अन्य अंगों में तृण वृक्ष आदि का उगना, मूर्धा पर काँसे के चूर्णों का गिरना, मुण्डन, नंगा होना, मलिन वस्त्रों को पहिनना, तेल लगाना, कीचड़ में गिरना, ऊँचे स्थान से गिरना, झूले पर चढ़ना, कीचड़ और लोहे को इकट्ठा करना, घोड़ों को मारना, लाल पुष्पवाले वृक्षों की श्रेणी, शूकर, रीछ, गधे और ऊँटों पर चढ़ना, पक्षी और मछलियों का भोजन करना, तैलयुक्त भोजन करना, खिचड़ी खाना, नाचना, हँसना, विवाह होते देखना, गायन, वीणा को छोड़कर अन्य बाजनों का स्वागत करना, जल के सोते में स्नान करना, गोबर से युक्त जल में स्नान करना, इसी प्रकार कीचड़युक्त जल में तथा पृथ्वी के थोड़े जल में नहाना, माता के उदर में प्रवेश करना, चिता पर चढ़ना, इन्द्र की (धनुष) ध्वजा का गिरना, चन्द्रमा और सूर्य का पतन, दिव्य आन्तरिक्ष तथा भौम उत्पातों का दर्शन, देवता, द्विजाति, राजा और गुरु का क्रोधित होना, कुमारी स्त्री का आलिंगन, पुरुषों का सम्भोग, अपने ही शरीर की हानि, विरेचन, वमन, दक्षिण दिशा की यात्रा, किसी व्याधि से पीड़ित होना, फलों की हानि, पुष्पों की हानि, घरों का गिरना, घरों की सफाई होना, लिपाई पुताई करते हुए घरों को देखना, शत्रु से पराजित होना या उसकी ओर से किसी प्रकार की उद्विग्नता होना, काषाय वस्त्रधारी होना, उसी प्रकार स्त्री के साथ क्रीड़ा करना, तेल का पान करना या उसी में स्नान करना, लाल पुष्प एवं लाल चन्दन को धारण करना, ये उपर्युक्त तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे दुःस्वप्न कहे गये हैं। इन्हें देखने के बाद साथियों से कह देना तथा पुनः शयन करना शुभदायक कहा गया है। ॥२–१५॥

कल्क[1] द्वारा स्नान, तिल से हवन, ब्राह्मणों का पूजन, भगवान वासुदेव की स्तुति अथवा उनकी पूजा, गजेन्द्रमोक्ष की कथा का श्रवण—ये सब उपाय दुःस्वप्न के नाशक बताये गये हैं। वे स्वप्न जो रात्रि के पहले पहर में दिखाई पड़ते हैं, एक वर्ष में फल देते हैं। दूसरे पहर में छः महीने में फल देते हैं, तीसरे में तीन महीने में तथा चतुर्थ पहर में देखने पर एक ही महीने में फल देते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। सूर्योदय के समय देखा गया स्वप्न दस दिन में फल देता है। यदि एक ही रात में शुभ तथा अशुभ दो प्रकार के स्वप्न दिखाई पड़ते हैं तो उनमें से पीछे का स्वप्न फलित होता है। इसलिये शुभ स्वप्न के देखने पर मनुष्य को फिर से सोना नहीं चाहिये। पर्वत, राजमहल, हाथी, घोड़ा, वृषभ-इन पर आरोहण करना शुभदायक है। हे द्विज! उसी प्रकार गमनकाल में श्वेत पुष्पवाले वृक्षों पर आरोहण करना शुभप्रद है। उसी प्रकार नाभि से वृक्ष एवं तृण की उत्पत्ति होना तथा अनेक बाहुओं का होना, अनेक शिरों का होना, फलवाले उद्भिजों का दर्शन, सुन्दर सफेद माला धारण करना, सफेद वस्त्र पहिनना, चन्द्रमा सूर्य एवं ताराओं को हाथों से पकड़ना या उन्हें स्वच्छ करना, इन्द्रधनुष का आलिंगन करना, या उसे ऊपर उठाना, पृथ्वी एवं समुद्रों को निगलना, शत्रु का संहार करना, हे द्विज! संग्राम, विवाद एवं जूए में जीतना, कच्चे मांस का खाना, मछलियों का खाना, दूध की बनी हुई खीर को खाना, रक्त का दर्शन, अथवा रक्त से स्नान करना, मदिरा, रक्त तथा दुग्ध का पीना, अपनी आँतों से पृथ्वी को बाँधना, निर्मल आकाश को देखना, भैंस तथा गायों को मुँह द्वारा दुहना, उसी प्रकार सिंहनी, हथिनी तथा घोड़ियों को भी मुँह से दुहना, देवता गुरु तथा ब्राह्मणों की प्रसन्नता—ये सभी स्वप्न शुभदायक होते हैं। जल द्वारा अभिषेचन होना, अथवा गाय की सींग से चूने वाले जल द्वारा अभिषेक होते अपने को देखना, अथवा चन्द्रमा के समीप से अपने को गिरते हुए देखना—हे राजन्! यह सब राज्य देने वाले स्वप्न कहे गये हैं। अपना राज्याभिषेक होते देखना, शिरों को काटते देखना, मृत्यु, अग्नि दाह, घर में आग लगना, राज्यचिह्नों की प्राप्ति, वीणा का स्वर सुनाई पड़ना, उसी प्रकार जल में तैरना दुर्गम स्थानों को पार करना, घर में हथिनी घोड़ी तथा गायों का बिआना, घोड़े पर सवार होना तथा रोना, ये सब स्वप्न भी शुभदायक होते हैं। सुन्दरी स्त्री की प्राप्ति, उसका आलिंगन, अपने को जंजीरों से बाँधते हुए देखना, तथा मल का लेपन होते हुए देखना, जीवित राजाओं तथा मित्रों का दर्शन, देवताओं तथा निर्मल जल का दर्शन—ये सभी प्रकार के स्वप्न मनुष्य को शुभ देनेवाले कहे गये हैं, इनके देखने से बिना परिश्रम के ही निश्चित अर्थ की प्राप्ति होती है। हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ! इन स्वप्नों को देखनेवाला आतुर व्यक्ति भी सभी प्रकार की व्याधियों से मुक्त होता है।॥१६-३५॥

श्री मात्स्य महापुराण में यात्रा प्रसंग में स्वप्न विवेक नामक दो सौ बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥२४२॥

---

[1] तथाकथित पवित्र शास्त्रीय औषधियों को भिगोकर फिर पीसकर शरीर में लगाने के बाद स्नान करने को कल्प-स्नान कहते हैं।

दो सौ तैंतालीसवाँ अध्याय

मनु ने कहा—राजा की विजय-यात्रा के अवसर पर किन-किन वस्तुओं का दर्शन शुभ माना गया है, उन सभी को मुझे बतलाइये। ॥१॥

मत्स्य ने कहा—हे राजन्! अनुपयुक्त औषधियाँ, काले अन्न, कपास, तृण, सूखा गोबर, इन्धन, अंगार, गुड़, तेल—ये सब अशुभ वस्तुएँ हैं। तेल लगाये हुए मनुष्य, मुण्डन कराये हुए मनुष्य, नंगे मनुष्य, बाल छोड़े हुए मनुष्य, रोगपीडित, काषाय वस्त्रधारी, पागल, दीन तथा नपुंसक व्यक्ति लोहा, कीचड़, चमड़ा, केश का बन्धन, खली आदि वे वस्तुएँ जिनसे सारभाग खींच लिया गया है, चाण्डाल, कुत्ते खानेवाली जातियों के लोग, बन्धन में डालनेवाले राजा के कर्मचारी, फाँसी देनेवाले जल्लाद, पाप करनेवाले, गर्भिणी स्त्री, भूसी, राख, खपड़ोई, हड्डियाँ, टूटे हुए पात्र, छूँछे पात्र, मरा हुए, सींगोंवाले जीव—ये सब राजा के यात्राकाल में यदि दिखाई पड़ें तो अमंगलकारी कहे गए हैं। बाजनों के वे शब्द, जो एक दम भयानक तथा बिना ताल आदि के रूखे ढंग से बज रहे हों, भी अशुभ सूचक कहे गये हैं। सामने से यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि 'आओ' तो शुभ है किन्तु पीछे से यदि कोई बुलाता है तो वह अशुभ है। इसी तरह हे धर्मज्ञ! पीछे से यदि कोई कहे कि 'जाओ' तो वह शुभसूचक है किन्तु आगे से यदि कोई ऐसा कहे तो वह अशुभ है। 'कहाँ जा रहे हो, रुको, बैठो, मत जाओ, तुम्हारे वहाँ जाने से क्या लाभ ?' इसी प्रकार वे शब्द जो अनिष्ट के सूचक हों, यदि यात्राकाल में सुनाई पड़ते हैं तो सभी विपत्ति करनेवाले होते हैं। ध्वजा, पताका आदि पर मांसभक्षी पक्षियों का बैठना भी निन्दित माना गया है, वाहनों पर से गिरना अथवा वस्त्र का अँटक जाना भी अमंगल सूचक माना गया है। द्वार आदि से निकलते समय यदि शिर में चोट लगती है अथवा छाता, ध्वजा एवं वस्त्रादि नीचे गिर पड़ते हैं तो वे भी अशुभकारक है। प्रथम बार अमंगलसूचक शकुन के सामने घटित होने पर विद्वान् राजा को चाहिये कि अमंगल के विनाशार्थ केशव की पूजा करे तथा मधु दैत्य के शत्रु उन भगवान् विष्णु की प्रार्थना करे जो अभी अमंगलों के विनाशक हैं। किन्तु यदि दूसरी बार भी अशुभ-सूचक शकुन सम्मुख दिखाई पड़ता है तो अपने घर में प्रवेश करे और यात्रा स्थगित रखे। अब शुभ-सूचक शकुनों का वर्णन कर रहा हूँ जो मंगल कार्यों को करनेवाले कहे गये हैं। हे राजन्! सफेद फूल, भरे हुए कलश, जलजीव, पक्षी, मांस, मछलियाँ, गौएँ, घोड़े, हाथी, बँधे हुए पशुओं में केवल बकरा, देवता, मित्र, ब्राह्मण, जलती हुई अग्नि, वेश्या, दूर्वा, गीला गोबर, सुवर्ण, चाँदी ताँबा, सभी प्रकार के रत्न, हे धर्मज्ञ! अच्छी औषधियाँ, जव, पीली सरसों, मनुष्यों को ढोते जाता हुआ वाहन, सुन्दर सिंहासन, तलवार, छत्र, पताका, मिट्टी, हथियार, सभी प्रकार के राजचिह्न, रुदनवर्जित शव, घी, दही, दूध, विविध प्रकार के फल, स्वस्तिक के चिन्ह से युक्त झज्झर, नदी की भँवरे, कौस्तुभ मणि विविध

प्रकार के बाजनों के सुखदायी शब्द, जो गम्भीर और मनोहारी हों, गान्धार, षड्ज, ऋषभ के स्वर जो प्रशंसनीय हैं शुभदायक माने गये हैं। हे द्विज! बालू के कणों से युक्त यदि रूखी वायु सामने से बह रही हो अथवा अति प्रचण्ड वेग से बह रही हो तो वह भयकारी है। इसी प्रकार अनुकूल दिशा में बहनेवाली मृदु, शीतल, मंद एवं सुगन्धित वायु सुख देनेवाली होती है। एवं मांस खानेवाले रूखे स्वर में बोलनेवाले जीव भी जो देखने में भद्र मालूम पड़ें सुखदायी होते हैं। अति सघन जलयुक्त मेघों के दर्शन भी शुभदायी माने गए हैं, जो हाथियों के समान गम्भीर शब्द कर रहे हों। पीछे से चमकनेवाली बिजली का प्रकाश एवं इन्द्रधनुष भी यात्राकाल में प्रशंसनीय है। यात्रा में सूर्य एवं चन्द्रमा के मण्डल यदि दिखाई पड़ें तो अशुभ की सूचना समझनी चाहिये। अनुकूल दिशा में उदित हुए ग्रहों को शुभ-सूचक कहा गया है, विशेषकर बृहस्पति का उदय। हे धर्मज्ञ! इसी प्रकार यात्राकाल में आस्तिकता, श्रद्धा के भाव, पूज्यों के प्रति पूज्यभाव के प्रदर्शन, एवं वे मनोभाव, जिनमें अपनी विशेष अभिरुचि हो, प्रशंसनीय माने गये हैं। सारांश यह कि यात्राकाल में मन का सन्तोष ही विजय का लक्षण है। तुलना में एक ओर सभी प्रकार के शुभ शकुन हैं और एक ओर अपने मन का सन्तोष। हे राजन्! वाहनों की उत्सुकता और मन में आनन्द का अतिरेक—ये भी शुभ का लाभ एवं विजय की वार्ता प्राप्त करानेवाले हैं। इन उपर्युक्त मांगलिक वस्तुओं का दर्शन अथवा इनके नामों का श्रवण, इन सब को नित्य विजय की सूचना देनेवाला जानना चाहिये। ॥२-१८॥

श्री मात्स्य महापुराण में यात्रा प्रसंग में मङ्गलाध्याय नामक दो सौ तैतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४३॥

दो सौ चौवालीसवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—हे सूत! तुम मुझे विस्तारपूर्वक राजधर्म का वर्णन सुना चुके, अद्भुत मंगलदायी शकुनों को तथा स्वप्नों के विषय में भी कुछ बातें बता चुके। अब पुनः भगवान् विष्णु के माहात्म्य को सुनाइये। किस प्रकार भगवान् ने वामन का स्वरूप धारण कर दानवराज बलि को बाँधा था और किस प्रकार क्रमशः धीरे-धीरे भगवान् का वह शरीर बढ़कर तीनों लोकों में व्याप्त हो गया था? ॥१-२॥

सूत ने कहा—हे मुनिगण! इसी वृतान्त को प्राचीनकाल में कुरुक्षेत्र के वामनायतन में अर्जुन ने उस समय तपस्वी शौनिक जी से पूछा था जिस समय द्रौपदी के साथ सहवास नियम का उलंघन कर उन्होंने युधिष्ठिर के प्रति पापाचरण किया था और पाप की शान्ति के लिए तीर्थयात्रा की थी। उस समय धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र के वामनायतन में अवस्थित अर्जुन ने वामन भगवान् को देखकर इस प्रकार पूछा था। ॥२-५॥

अर्जुन ने कहा—हे ऋषि! किस प्रयोजन से इन भगवान् की इस वामनाकृति मूर्ति में पूजा की जाती है और प्राचीन काल में वाराह रूपधारी भगवान की पूजा किस कारण से हुई थी और किस लिए

यह क्षेत्र वामन भगवान् का प्रिय क्षेत्र हुआ है ? ॥६॥

शौनक ने कहा—हे कुरुनन्दन ! भगवान् वामन एवं वाराह के माहात्म्य को संक्षेप में फिर तुमसे बतला रहा हूँ, सुनो । प्राचीन काल में दानवों द्वारा देवताओं के पराजित हो जाने पर तथा इन्द्र के अपने पद से निर्वासित कर दिये जाने पर देवताओं की माता अदिति ने अपने पुत्रों की पुनः उन्नति के विषय में चिन्ता की । और यही सोचकर उसने अतिघोर तपस्या की । हे राजन् ! एक सहस्र वर्षों तक उसने इसी के लिए घोर तपस्या की । इन्द्रियों को स्ववश कर वायु पान करती हुई अदिति ने दैत्यों द्वारा निष्कासित तथा अपमानित अपने पुत्रों को देखकर यह सोचा कि मुझ पुत्रवती का जीवन व्यर्थ है । इस प्रकार की ग्लानि से युक्त होकर उसने भगवान् की वन्दना की । और परमार्थ की चिन्ता करती हुई प्रिय वाणियों से उनकी वन्दना की और देवाधिदेव सर्वान्तरयामी भगवान् हृषीकेश को नमस्कार कर इस प्रकार कहा । ॥७–११॥

अदिति ने कहा—सभी प्रकार की आपत्तियों के विनाश करनेवाले, कमलधारी परमकल्याण को भी कल्याणदायक हरि को हमारा नमस्कार है । आदिकर्त्ता, कमलनेत्र, पद्मनाभ, ब्रह्मा के उत्पत्ति स्थान, स्वयम्भू, शंख, खड्ग को धारण करनेवाले हरि को हमारा नमस्कार है । श्री के स्वामी, परम उपकारक, चक्र धारण करनेवाले भगवान् को हम नमस्कार करती हैं । हे भगवन् ! तुम सुवर्णरेता हो, आत्मज्ञानी हो, परम विज्ञानमय हो, योग द्वारा चिन्तन करने योग्य हो, आत्मयोगी हो, निर्गुण हो, अविशेष हो, हरि हो, ब्रह्मरूपी हो, तुम्हें हम नमस्कार करती हैं । जिसमें समस्त जगत् स्थित है, जगत् जिसे नहीं देख सकता, जो अतिस्थूल तथा परम सूक्ष्म है, जो शंख धारण करनेवाला है – ऐसे तुम्हें हम नमस्कार करती हैं । जिस परब्रह्म को सभी मनुष्य समस्त चराचर संसार को देखते हुए भी नहीं देख पाते, हृदय में स्थित रहकर भी जो जगत् की दृष्टिपथ में नहीं आता, जिसमें इस समस्त चराचर जगत् का अवसान होता है, जिसका यह समस्त जगत है, उस समस्त जगत् के आधार रूप भगवान् तुमको हमारा नमस्कार है । जो सभी प्रजापतियों में अग्रगण्य है, सभी प्रभुओं का भी प्रभु है, जगत् में सब से परे है, सभी देवताओं का स्वामी है, उस आदिकर्त्ता कृष्ण को हम नमस्कार करती हैं । जो प्रवृत्ति एवं निवृत्ति विषयों में मनुष्यों से अपने-अपने कर्मों द्वारा उपासित होता है, उस स्वर्ग अपवर्ग के प्रदाता गदाधर भगवान् को हमारा नमस्कार है । जो मनुष्यों द्वारा मन से भी चिन्तित होने पर शीघ्र ही पापों को दूर करनेवाला है, उस आदिकर्त्ता विशुद्ध परब्रह्म विष्णु को हमारा नमस्कार स्वीकार हो । जिस देवाधिदेव अविनाशी परब्रह्म को जानकर प्राणी पुनः जन्म मरण के संकट को नहीं प्राप्त करता उसे हम नमस्कार करती हैं । जो परम यज्ञकर्त्ता ऋषियों द्वारा यज्ञ नामधारी होकर पूजित होता है, उस यज्ञपुरुष परमप्रभु विष्णु को हमारा नमस्कार है । सभी वेदों के जाननेवाले जिसे वेदों में विद्वानों का शिरोमणि मान कर यशोगान करते हैं, उस वेदों द्वारा जानने योग्य विजयशील विष्णु को हमारा नमस्कार है । जिससे इस चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई है तथा जिसमें इस जगत् का अवसान होता है उस विश्वाधार वेदों की मर्यादा के रक्षक महात्मा विष्णु को हमारा नमस्कार है । ब्रह्मा से लेकर छोटे तृण तक को बनाकर जिसने इस चराचर निखिल जगत् का विस्तार किया है उस

उपेन्द्र (इन्द्र के छोटे भाई) को इस मायाजाल से उबरने के लिए मैं नमस्कार करती हूँ। जो प्रभु जल स्वरूप हो कर सभी जगत् का भरण पोषण करता है, उस विश्व स्वरूप, विश्व के स्वामी आदि प्रजापति विष्णु को हमारा नमस्कार है। जिस भगवान् की मनुष्य विशुद्ध मन, वचन एवं कर्म से आराधना कर सभी अविद्याओं के समुद्र को पार करता है उस उपेन्द्र को हमारा नमस्कार है। जो सभी चराचर जीवों में विद्यमान होकर विषाद, सन्तोष, रोष, आदि भावों से सभी को नचाता है उस उपेन्द्र को हमारा नमस्कार है। मोह रात्रि में उत्पन्न असुर रूप मूर्तमान अंधकार का जो सूर्य रूप होकर विनाश करता है उस उपेन्द्र को हमारा नमस्कार है। कपिल आदि महर्षियों में अवस्थित होकर जो भगवान् अपने ज्ञान-दान द्वारा अज्ञानान्धकार को दूर करता है उस उपेन्द्र को हमारा नमस्कार है। जिस परब्रह्म के नेत्र स्वरूप चन्द्रमा तथा सूर्य संसार के शुभाशुभ कर्मों को बराबर देखते रहते हैं उस उपेन्द्र को हमारा नमस्कार है। जिस सर्वेश्वर के लिए मैंने इन उपर्युक्त सभी विशेषणों को सत्य ही वर्णन किया है, मिथ्या नहीं, उस अजन्मा समस्त जगत् के कर्त्ता को हमारा नमस्कार है। हे देव जर्नादन ! यदि मैंने ये बातें तुम्हारे लिए सत्य रूप में कही हैं तो उस सत्य से मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हों। ॥१२–३४॥

शौनक ने कहा—अदिति द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान वासुदेव, जो सभी चराचर जीवों के दर्शन-पथ में नहीं आते उस समय दिखाई पड़े और उससे इस प्रकार बोले। ॥३५॥

श्री भगवान् ने कहा—अदिति ! तुम जिन मनोरथों की मुझसे अभिलाषा करती हो, हे धर्मज्ञे ! उन सभी को तुम मेरी कृपा से प्राप्त करोगी, इसमें सन्देह नहीं। हे महाभाग्यशालिनी ! तुम्हारे हृदय में मुझसे जिस वरदान को माँगने की इच्छा है उसे तुम शीघ्र ही माँगकर अपनी इष्टसिद्धि करो। तुम्हारा निश्चय ही कल्याण होगा। मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होता। ॥३६–३७॥

अदिति ने कहा—भक्तवत्सल देव ! यदि तुम मेरी भक्ति से प्रसन्न हो तो मेरा पुत्र इन्द्र फिर से तीनों लोकों का स्वामी बने। महान् राक्षसों द्वारा छीना गया उसका राज्य तथा उसके यज्ञभाग तुम्हारे जैसे वरदानी के प्रसन्न हो जाने पर मेरा पुत्र पुनः प्राप्त करे। हे केशव ! छीना हुआ मेरे पुत्र का राज्य मुझे उतना कष्ट नहीं दे रहा है जितना सौतेले पुत्रों द्वारा मेरे पुत्रों का छीना गया अधिकार मेरे हृदय में चुभ रहा है। ॥३८–४०॥

श्री भगवान् ने कहा—हे देवि ! मैं तुम्हारे मन की बातें पूरी करूँगा और कश्यप के वीर्य सयोग से मैं अपने अंश द्वारा गर्भ से उत्पन्न होऊँगा और तुम्हारे गर्भ द्वारा उत्पन्न होकर देवताओं के जितने भी शत्रुगण हैं उन सभी को विनष्ट करूँगा, हे नन्दिनि ! तुम सन्तोष धारण करो। ॥४१–४२॥

अदिति ने कहा—देवाधिदेव ! समस्त जगत के कर्त्ता ! केशव ! मेरे ऊपर कृपा करो। मैं तुम्हें गर्भ में धारण करने में अपने को समर्थ नहीं पा रही हूँ, जिस तुम्हारे शरीर में यह समस्त चराचर जगत् प्रतिष्ठित है, जो तुम स्वयं विश्वस्वरूप हो, उस अतिदुर्धर तुमको मैं अपने उदर में धारण करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। ॥४३–४४॥

श्री भगवान् ने कहा—हे महाभाग्यशालिनी ! तुम सच कह रही हो, सच बात है कि मुझमें समस्त चराचर जगत् की स्थिति है, मेरा भार वहन करने में इन्द्र समेत सभी देवगण भी समर्थ नहीं हो सकते। किन्तु मैं तो सभी लोकों को, देवता, राक्षस एवं मनुष्यों को—सभी चर अचर जीव एवं कश्यप समेत तुमको—सबको वहन कर सकता हूँ, अतः तुम्हें विकल नहीं होना चाहिये। गर्भ में मेरे अवस्थित होने पर तुम्हें किसी प्रकार की ग्लानि या खेद नहीं होगा, हे दाक्षायणि ! तुम्हारे लिये मेरी वह प्रसन्नता सुलभ है जो दूसरों के लिए अति दुर्लभ है। मेरे गर्भकाल में तुम्हारे पुत्रों से जो शत्रुता करेगा, उसके भी तेजोबल को मैं विनष्ट कर दूँगा, तुम किसी प्रकार का दुःख मत करो। ॥४५-४८॥

शौनक ने कहा—भगवान् ऐसा कहने के बाद तुरत वहीं पर अन्तर्हित होगये। हे कुरुसत्तम ! देवताओं की माता अदिति भी थोड़े दिनों बाद गर्भवती हुई। भगवान् कृष्ण (विष्णु) के गर्भस्थित होने पर सारी पृथ्वी चलायमान होगई, बड़े-बड़े पर्वत काँपने लगे, सभी समुद्र विक्षुब्ध हो उठे। हे वसुधाधिप ! जिधर-जिधर से होकर अदिति जाती थीं तथा अपने मनोहर पैरों को पृथ्वी पर रखती थीं उधर-उधर भार के कारण पृथ्वी विनम्र हो जाती थी। मधुसूदन भगवान विष्णु के गर्भस्थ होने पर सभी दैत्यों के तेज बिल्कुल मन्द हो गये जैसा कि परमेष्ठी भगवान् ने स्वयं अदिति से कहा था। ॥४९-५२॥

श्री मात्स्य महापुराण में वामन प्रादुर्भाव नामक दोसौ चौवालीसवाँ अध्याय समाप्त। ॥२४४॥

दो सौ पैंतालीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—दैत्यों के निस्तेज हो जाने पर बलि ने उन्हें इस प्रकार तेजोहीन देखकर अपने पितामह प्रह्लाद से पूछा। ॥१॥

बलि ने कहा—हे तात ! क्या ऐसी बात है कि सभी दैत्य गण अग्नि से जले हुए की भाँति निस्तेज-से होगये हैं, और क्या ऐसा कारण है कि ये इतने शीघ्र ही ब्रह्मदण्ड से मारे हुए की भाँति दिखाई पड़ने लगे हैं। यह दैत्यों के ऊपर कोई अरिष्ट तो नहीं आ गया है ? अथवा वैरियों द्वारा कोई कृत्या तो इन पर विनाश के लिए नहीं छोड़ी गई है, जो आकर पड़ी है, जिससे सभी तेजोहीन होगये हैं। ॥२-३॥

शौनक ने कहा—हे राजन् ! तब इस प्रकार बलि के पूछने पर धैर्यवान् दैत्याधिपति प्रह्लाद ने बड़ी देर तक ध्यान कर के असुरनायक बलि से पूछा। ॥४॥

प्रह्लाद ने कहा—दानवपति बलि ! इस समय सभी पर्वत हिलने लगे हैं, भूमि भी अपनी स्वाभाविक क्षमता छोड़ रही है, समस्त समुद्र विक्षुब्ध हो रहे हैं, दैत्य तथा दानव गण तेजोहीन हो गये हैं, ग्रहगण जिस प्रकार पहले सूर्य का अनुगमन करते थे उस प्रकार उदित होने पर भी अनुगमन नहीं कर रहे हैं। इन कारणों से अनुमान लगता है कि देवताओं की विशेष अभ्युन्नति प्राप्त

होने वाली है। हे महाबाहुवाले! यह महान् कारण दिखाई पड़ रहा है। हे देवताओं के शत्रु! इसे तुम तुच्छ कारण मत समझो। ॥४–७॥

शौनक ने कहा—दानवराज बलि से इस प्रकार की बातें कर असुरों के बीच में महात्मा प्रह्लाद ने, जो भगवान् के परमभक्त थे, मन से हरि का चिन्तन किया और योगबल से ध्यान करके उन्होंने भगवान् जनार्दन का अन्वेषण किया कि वे इस समय कहाँ है? ध्यान करने पर प्रह्लाद ने अदिति के उदर में वामन रूप में विराजमान उन आदि प्रजापति भगवान् विष्णु को देखा, जिनके अन्दर सातों लोक विराजमान थे। उस समय प्रह्लाद ने भगवान के अन्दर आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, दोनों अश्विनीकुमार, उनचास मरुत् गण, साध्य देव गण, विश्वेदेव गण, आदित्य गण, गन्धर्व गण, उरगगण, राक्षस समूह, अपने पुत्र विरोचन, असुरस्वामी बलि, जम्भ, कुजम्भ, नरक, बाण तथा अन्यान्य असुरपति, स्वयं अपने आप, सारी पृथ्वी, विशाल आकाश, वायु, जल, अग्नि, सभी समुद्र गण, वृक्ष, नदियाँ, सरोवर, पशु, मृग गण, पक्षि गण, संसार के सभी मनुष्य, सर्पादि रेंगनवाले सभी जीव, सभी लोकों की सृष्टि करनेवाले भगवान् ब्रह्मा, शिवजी, सभी ग्रहों, नक्षत्रों नागों, एवं दक्ष आदि सभी प्रजापतियों को अति विस्मय से व्याकुल होकर देखा। और तब क्षण भर बाद पुनः स्वस्थ होकर अपने पुत्र विरोचन के पुत्र बलि से कहा। ॥८–१५॥

प्रह्लाद ने कहा—हे वत्स! मैं उस कारण को भली भाँति जान चुका जिस लिए आप लोगों के तेज की हानि हुई है, उसे विस्तारपूर्वक सुनो। देवाधिदेव! सभी जगत् के उत्पन्न करनेवाले, सृष्टि के आदिकर्त्ता, विश्व भर में जिनसे पूर्व कोई नहीं था, जो एक मात्र सब से प्रथम हैं, ऐसे पूज्य वरदायक भगवान विष्णु पर से भी परम (परात्पर), प्रमाणों के भी प्रमाण, सातों लोकों के गुरु के भी गुरु हैं। प्रभु के भी प्रभु हैं, परम्से भी परे हैं, अनादि हैं, अमध्य हैं, अनन्त हैं। वे भगवान अपने अंश द्वारा इस त्रैलोक्य को सनाथ करने के लिए अदिति के गर्भ से उत्पन्न हो रहे हैं। हे दैत्यपति! जिनके स्वरूप को भगवान रुद्र, पद्मयोनि ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, मरीचि प्रभृति महर्षिगण भी नहीं जान पाते वे भगवान् वासुदेव अपनी कला से उत्पन्न हो रहे हैं। जिन भगवान् ने पूर्व काल में अपनी एक कला द्वारा नृसिंह रूप में अवतीर्ण होकर मेरे पिता का वध किया था तथा जो सभी योगिराजों के मन में निवास करनेवाले हैं वे ही भगवान् वासुदेव अपनी कला से अवतीर्ण हो रहे हैं। वेदों के जाननेवाले विद्वान् लोग जिन अव्यय भगवान् को भली भाँति जानकर प्रवेश करते हैं तथा सभी पापों से निर्मुक्त होकर प्रवेश करके पुनः इस मृत्युलोक में जन्म नहीं धारण करते उन भगवान् वासुदेव को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। जिन भगवान् वासुदेव से सभी जीव गण समुद्र से लहरों की भाँति निरन्तर उत्पन्न होते हैं और प्रलय काल में पुनः उसी में सन्निविष्ट हो जाते हैं, उन अचिन्त्य महिमाशाली को हमारा नमस्कार है। जिस परम पुरुष के स्वरूप को, बल को, प्रभाव को एवं भाव को शिव तथा ब्रह्मा आदि देवगण भी नहीं समझ पाते उन भगवान् वासुदेव को मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ। जिन भगवान् वासुदेव ने मनुष्यों को स्वरूप देखने के लिए नेत्र, स्पर्श के लिए चमड़ा, रसास्वादन के लिए जिह्वा, शब्द सुनने के लिये कान तथा सुगन्ध ग्रहण

करने के लिए नासिका दी है, उन्हें हमारा नमस्कार है। जिसने अपने एक दाँत के अग्र भाग से इस अनन्त पृथ्वी मण्डल का उद्धार किया है, जो इन सभी पर्वतों को धारण करता है, जिसमें यह समस्त चराचर जगत् शयन करता है उस सर्वप्रथम भगवान् विष्णु को हमारा नमस्कार है। जो सर्वेश्वर अन्तयात्मा नासिका, नेत्र एवं कान आदि इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता; केवल मन द्वारा जिसे ग्रहण किया जा सकता है, उस पूज्य परमात्मा विष्णु के सम्मुख हम विनत हैं। अपने अंश मात्र से अवतीर्ण होकर जिसने गर्भस्थ होते हुए भी बड़े-बड़े दैत्यों के तेजों का हरण कर लिया, जो समस्त भव-भयरूप वृक्ष के लिए कुठार रूप है उस अनन्त परमात्मा को नमस्कार करता हूँ। हे महासुरेन्द्र ! वह महान् आत्मा समस्त जगत् का उत्पत्तिकर्त्ता भगवान् विष्णु अपने सोलह अंशों से देवताओं की माता अदिति के उदर में प्रविष्ट हुआ है, उसी ने अपने तेज से तुम लोगों के शरीर को निस्तेज कर दिया है। ॥१६–२६॥

बलि ने कहा—हे तात ! यह हरि नामक कौन-सा देवता है ? जिससे हम लोगों को इतनी विपत्ति आ गई है। मेरे पास तो उस वासुदेव से भी अधिक बलवान् सैकड़ों दैत्य हैं। विप्रचित्ति, शिबि शंकु, अयःशंकु, अयःशिरा, अश्वशिरा, भङ्गकारी, महाहनु, प्रताप, प्रघस, शुम्भ, अति कठिनाई से जीतने योग्य कुकुर,—ये महाबलवान् दैत्य हमारी सेना में हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सैकड़ों दैत्य तथा दानव भी हैं, जो महाबलवान्, महान् पराक्रमी तथा समस्त पृथ्वी के भार को उठाने में समर्थ हैं, इन सबों में से एक एक के भी आधे पराक्रम से कृष्ण की समानता नहीं है। ॥३०–३३॥

शौनक ने कहा—दैत्यपुंगव प्रह्लाद अपने पौत्र की दर्पोक्ति सुनकर भगवान् की निन्दा करनेवाले उस बलि को 'धिक्कार है, धिक्कार है' ऐसा कहने लगा। ॥३४॥

प्रह्लाद ने कहा— मुझे मालूम हो रहा है कि ये सभी दैत्य तथा दानव गण विनाश के मुख में जाने वाले हैं क्योंकि जिनको तुम जैसा अविवेकी एवं दुर्बुद्धि राजा मिला है। देवाधिदेव, महान तेजस्वी एवं भाग्यशाली अजन्मा वासुदेव भगवान को तुझ जैसे पापकर्मों को छोड़कर भला ऐसा कौन कह सकता है। तुमने इन जितने दैत्यों तथा दानवों के नाम ऊपर गिनाये हैं, वे सभी मिलकर, ब्रह्मा के समेत सभी देवगण, स्थावर जंगम सभी जगत्, तुम, मैं, पर्वत, वृक्ष, नदियाँ और सभी नदों के समेत यह सारा संसार, सभी समुद्र, द्वीप एवं सभी लोक—ये सब भगवान् केशव की समानता नहीं कर सकते। जिस जगत् व्यापी अति वन्दनीयों का भी वन्दनीय परमात्मा का यह समस्त चराचर जगत् केवल एक अंश है, उसके बारे में भला कौन ऐसा है जो तुम्हारी तरह बातें करेगा। तुझ जैसे अविवेकी, विनाशोन्मुख, कुबुद्धि, अजितात्मा, वृद्धों के शासन को न माननेवाले के सिवा ऐसी अविवेकपूर्ण बातें भला कौन कर सकता है ? मुझ अभागे की स्थिति अब शोचनीय है जिसके घर में तुम्हारा नीच पिता उत्पन्न हुआ, जिसके तुझ जैसा देवाधिदेव विष्णु भगवान् का निन्दक पुत्र पैदा हुआ। संसार में एकत्र घोर पापों के समूहों को नष्ट करनेवाली भगवान् कृष्ण के चरणों में हमारी भक्ति अक्षुण्ण बनी रहे मैं भले ही तुमसे अपमानित क्यों न होऊँ ! उस महान् आत्मा कृष्ण से बढ़कर मेरा इस संसार में कोई भी प्रिय विषय नहीं है, अपना शरीर भी मुझे उतना प्रिय नहीं है। हे मूर्ख

दैत्य ! इस बात को सारा संसार जानता है किन्तु तुम अकेले नहीं जानते । मेरे इतने प्राणों से भी प्रिय भगवान् कृष्ण की जानते हुए भी जो तुम निन्दा कर रहे हो सो मेरा सम्मान नहीं कर रहे हो । हे बलि ! तुम्हारा पूज्य विरोचन है और मैं उसका भी पूज्य हूँ, और मेरे भी क्या समस्त संसार के पूज्य भगवान् विष्णु हैं । इस कारण जो तुम अपने पूज्य के पूज्य मेरे भी गुरु की निन्दा कर रहे हो सो अवश्य ही शीघ्र तुम इस ऐश्वर्य के पद से नीचे गिरोगे । हे बलि ! मेरे सर्वस्व, जगत् के स्वामी, भगवान् वासुदेव में हमारी प्रीति अक्षुण्ण बनी रहे, इसमें मैं तुम से अपमानित ही रहूँगा तो कोई हानि नहीं है । तीनों लोकों के गुरु भगवान् की महिमा को जो तुमने नहीं जाना और इस प्रकार का उनका अपमान किया है इसीलिए मैं तुम्हें शाप दे रहा हूँ । हे अच्युत की निन्दा करनेवालो ! जिस प्रकार शिर काट लेने से मुझे दुःख होता उसी प्रकार तुम्हारी इस कठोर एवं गम्भीर वाणी से मुझे दुःख हुआ है, अतः तू अपने राज्य से भ्रष्ट हो जा और तुम्हारा पतन हो जाय । जिस प्रकार यह निश्चय है कि इस संसार सागर में भगवान् कृष्ण को छोड़कर कोई अन्य शरणदायक नहीं है उसी प्रकार शीघ्र तुमको मैं राज्य पद से च्युत हुआ देखूँ । ।।३५—५०।।

शौनक ने कहा—दैत्यपति बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद की ऐसी शाप की अप्रिय बातें सुनकर बारम्बार प्रणाम करते हुए उन्हें प्रसन्न किया । ।।५१।।

बलि ने कहा—हे तात ! मुझ अज्ञान से मोहित के ऊपर तुम कृपा करो, क्रोध मत करो । बल के गर्व से उन्मत्त होकर मैंने वैसी दर्पोक्ति तुम को सुनाई है । हे दैत्यश्रेष्ठ ! अज्ञान एवं मोह से मेरी सारी बुद्धि चौपट हो गई है, मैं बड़ा पापकर्मी हूँ । अतः मुझ जैसे दुराचारी को जो आप ने यह शाप दिया है सो अच्छा ही किया है । हे तात! मैं राज्य से च्युत हो जाऊँगा, मेरी सारी सम्पत्ति विनष्ट हो जायगी—इन बातों से मैं तनिक भी दुःखी नहीं हूँ किन्तु मुझे इस बात से अधिक दुःख है कि मैंने आप के साथ अविनयपूर्ण व्यवहार किया है । तीनों लोकों पर साम्राज्य हो जाना, एवं अति ऐश्वर्यमान् हो जाना—ये दोनों बातें इस पृथ्वी तल पर उतनी दुर्लभ नहीं हैं, जितनी आप जैसे परम भागवत् गुरुजनों की प्रीति दुर्लभ है । हे दैत्यों के पालक ! यह समझ कर कि मैं आपकी क्रोधपूर्ण दृष्टि से अति दुःखी हूँ शाप से नहीं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जायँ, कोप न करें । ।।२५-२६।।

प्रह्लाद ने कहा—'हे वत्स ! अति कोप के कारण मैं मोहित हो गया, जिससे अभिभूत होकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया और अज्ञान ने मेरी विवेकशक्ति का बिल्कुल हरण कर लिया । हे महाअसुर ! यदि अज्ञान के कारण मेरी विवेकशक्ति नष्ट न हुई होती तो सर्वान्तर्यामी भगवान् विष्णु को जानता हुआ भी मैं शाप देने को क्यों उद्यत होता । हे असुरपुंगव ! यह जो शाप मैंने तुम्हें दिया है, यह तो अवश्य ही घटित होगा अतः इसके लिए तुम विषाद मत करो । आज से तुम्हारी भक्ति देवेश अच्युत भगवान् में होगी और वही तुम्हारी रक्षा करनेवाला होगा। हे वीर ! इस शाप के घटित होने पर जब तुम मेरा स्मरण करोगे, तब मैं वैसा प्रयत्न करूँगा जिससे तुम्हारा कल्याण हो ।' ऐसी बातें कह कर महा मतिमान् प्रह्लाद चुप हो गया । इसी अवसर पर अदिति के गर्भ से भगवान् गोविन्द वामन स्वरूप में भूतल पर अवतीर्ण हुए ।

उन सभी देवताओं के स्वामी जगन्नाथ विष्णु के अवतरित होने पर सभी देवगण दुःख से विमुक्त हो गए। विशेषकर देवमाता अदिति को बड़ी प्रसन्नता हुई, सुख-स्पर्शकारी वायु बहने लगी, आकाश धूलिरहित हो गया, सभी जीवों की धर्म में अभिरुचि हो गई, मनुष्यों और राक्षसों के मन में भी तनिक विह्वलता नहीं हुई, तात्पर्य यह कि पृथ्वी, आकाश और स्वर्ग इन तीनों लोकों के जीवों में तनिक भी उद्वेग नहीं हुआ। हे राजन्! भगवान् के उत्पन्न होते ही लोकपितामह ब्रह्मा ने जातसंस्कार आदि कराकर उनका दर्शन किया और सभी ऋषियों के सुनते हुए देवाधिदेव भगवान् की स्तुति की। ॥५७-६६॥

ब्रह्मा ने कहा—हे सब के आदि में होनेवाले! परमात्मन्! तुम्हारी जय हो। हे अजेय! सब की आत्मा में विचरण करनेवाले! जन्म एवं वृद्धता के कष्टों से विमुक्त भगवन्! तुम्हारी जय हो। तुम अनन्त हो, कभी नाश को प्राप्त होनेवाले नहीं हो। हे अजित! अमेय! अव्यक्त स्थितिवाले! परमात्मन्! तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम परमार्थ के प्रयोजन के सर्वज्ञ हो, ज्ञान द्वारा जानने योग्य हो, स्वयं अपनी महिमा से प्रकट होनेवाले हो। हे सम्पूर्ण जगत् के साक्षी! जगत् के कर्त्ता, जगत् के गुरु! इस जगत् के विनाशक देव! तुम्हीं इसको बनानेवाले तथा पालनेवाले हो, तुम्हारी जय हो, जय हो। मोक्ष की इच्छा रखनेवालों को तुम्हारा पता नहीं लगता। तुम्हीं शेष हो, अशेष हो, अखिल प्राणियों के हृदय में स्थित हो, तुम जगत् के आदि हो, मध्य हो, अन्त हो! सर्वज्ञाननिधे! तुम्हारी जय हो, जय हो। मोक्षार्थी जन तुम्हारा पता नहीं पाते, तुम स्वयं दृष्ट हो, ईश्वर हो, योगी जनों को मुक्ति देनेवाले हो, दम आदि गुणों से विभूषित हो, तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम जगत् में सब से स्थूल हो, सब से सूक्ष्म हो, दुर्ज्ञेय हो, जगन्मय हो, इन्द्रियवान् हो, अतीन्द्रिय हो, तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम अपनी योगमाया में सर्वदा स्थित रहनेवाले हो, शेषनाग के फण पर शयन करनेवाले हो, अव्यय हो, एक दाँत के अग्रभाग से वसुन्धरा का उद्धार करनेवाले हो, तुम्हारी जय हो, जय हो। तुम नृसिंह हो, हिरण्यकशिपु के वक्षस्थल का विदारण करनेवाले हो। हे विश्वालय। इस समय भी तुम्हारी जय हो। हे वामन! तुम्हारी जय हो। हे केशव! तुम्हारी जय हो। तुम अपनी ही माया से बने हुए आवरण से छिपे रहते हो। हे जगन्मूर्ते, जनार्दन, अचिन्त्य, अनेक स्वरूप धारण करनेवाले, प्रभो! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे हरे! तुम सभी प्रकृति के विकारों से युक्त हो, तुम्हारी वृद्धि हो, तुझ जैसे परमात्मा में ही इस जगत के धर्म की मर्यादा मर्यादित हुई है। हे हरे! न मैं, न भगवान् शंकर, न ब्रह्मा जी, न इन्द्रादि देवगण, न सनकादि मुनिगण, न योगी जन—अर्थात् कोई भी तुम्हारी महिमा को यथार्थतया जानने में समर्थ नहीं है। हे जगत्पते! हे सर्वेश! जगत् में तुम्हारी माया रूपी वस्त्र से लिपटा हुआ कौन प्राणी विना तुम्हारी कृपा के हुए तुझको जानने में समर्थ हो सकता है। हे देव! प्रसन्नता से हर्षित मुखवाले! भगवन्! जिस व्यक्ति ने तुम्हारी भली भाँति सेवा कर ली है वही तुम्हें जानता है; अन्य लोग भला तुम्हें क्या जानेंगे! हे विश्वात्मन्! दीर्घनेत्रोंवाले! वामन भगवन्! नन्दीश्वरेश्वर ईशान! इस विश्व की उन्नति के लिए तुम्हारी जय हो। ॥६७—८०॥

शौनक ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार ब्रह्मा के स्तुति करने पर वामन स्वरूपधारी भगवान् हृषीकेश ने हँसकर कमलयोनि ब्रह्मा जी से भावों से युक्त यह गम्भीर वाणी कही। 'हे ब्रह्मन्! प्राचीनकाल में इन्द्रादि देवताओं के साथ कश्यप ने तथा आपने मेरी स्तुति की थी उसी समय मैंने आप लोगों से यह प्रतिज्ञा की थी कि यह त्रिभुवन इन्द्र का होगा, फिर अदिति ने भी मेरी तपस्या की थीं और उससे भी मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि शत्रुओं को विनष्ट करके मैं इन्द्र को यह त्रैलोक्य समर्पित करूँगा। सो मैं अपने उस वचन का पालन करने के लिए ऐसा उपाय करूँगा जिससे सहस्राक्ष इन्द्र जगत् के पुनः अधिपति बनेंगे, मैं यह आप लोगों से सत्य बात कह रहा हूँ।' भगवान् के ऐसा कहने के उपरान्त ब्रह्मा ने उन्हें कृष्ण मृग का चर्म दिया, भगवान् बृहस्पति ने उन्हें यज्ञोपवीत दिया। ब्रह्मा के पुत्र महर्षि मरीचि ने पलाश दण्ड, वसिष्ठ ने कमण्डलु, अंगिरा ने कुशासन तथा वेद, पुलह ने अक्षसूत्र तथा पुलस्त्य ने श्वेत वस्त्र के जोड़े समर्पित किये। फिर प्रणव 'ऊँकार' के स्वरों से विभूषित वेदों ने भगवान् की स्तुति की और उसी समय सांख्य-योग आदि छहों शास्त्रों ने भी भगवान् की स्तुति की। हे राजन्! इस प्रकार वामन स्वरूप धारी भगवान् ने जटा, दण्ड, छत्र, कमण्डलु से विभूषित एवं समस्त देवताओं के तेज से सम्पन्न हो बलि के यज्ञ भूमि की ओर प्रस्थान किया। उस समय जहाँ-जहाँ पृथ्वीतल पर वामन ने अपने चरणों को रखा वहाँ-वहाँ अति पीड़ित होने के कारण पृथ्वी में दरारें पड़ गईं। इस प्रकार धीरे-धीरे मृदु गति से चलते हुए भगवान् वामन ने उस समय अपनी गति से सभी पर्वतों, समुद्रों तथा द्वीपों समेत समस्त पृथ्वी को चलायमान कर दिया। ॥८१—९०॥

श्री मात्स्य महापुराण में वामन प्रादुर्भाव प्रसंग में वामन जन्म नामक दो सौ पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त॥२४५॥

दो सौ छियालीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—भगवान् वामन के चलने पर पर्वतों एवं वनों समेत समस्त पृथ्वी को विक्षुब्ध होते देख बलि ने हाथ जोड़कर विशुद्धात्मा शुक्राचार्य से पूछा—'आचार्य! किस कारण से समुद्रों, पर्वतों एवं वनों समेत यह पृथ्वी विक्षुब्ध हो रही है, और असुरों के यज्ञ भागों को अग्नि ग्रहण नहीं कर रही हैं। बलि के ऐसा पूछने पर वेदज्ञानियों में श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् शुक्राचार्य ने बड़ी देर तक ध्यान करने के बाद दैत्याधिपति प्रह्लाद से कहा—'कश्यप के घर जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता सनातन जगदात्मा विष्णु भगवान् वामन के रूप में अवतीर्ण हुए हैं, हे दानवपति! वे भगवान तुम्हारे यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आ रहे हैं उन्हीं के पैरों के भार के कारण पृथ्वी विक्षुब्ध होकर हिल रही है, पर्वत काँप रहे हैं, सभी समुद्र क्षुब्ध हो रहे हैं। इन सभी जीवों के स्वामी परमात्मा को देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरों समेत यह पृथ्वी वहन करने में सम्प्रति समर्थ नहीं है। हे महान असुर! इन्हीं परमात्मा ने इस पृथ्वी को धारण किया है,

जल, अग्नि, पवन, और आकाश को भी ये ही धारण करनेवाले हैं, सभी मनु आदि युग पुरुषों के स्रष्ठा ये ही हैं। जगत् के लिए भगवान् कृष्ण की वह घनीभूत माया यही है, जो धार्य-धारक भाव से सारे जगत् को पीड़ित करती रहती है। हे असुरोत्तम! उन्हीं भगवान के समीपस्थ होने के कारण अब असुरगण यज्ञ में भागों के अधिकारी नहीं हैं। यही कारण है कि ये अग्नि असुरों को दिये हुए भागों को अब नहीं ग्रहण कर रही हैं। ॥१–९॥

बलि ने कहा—हे ब्रह्मन्! मैं अब धन्य हूँ, पुण्यवान् होकर मुझसे बढ़कर अन्य कोई भी पुरुष अब नहीं रहा, जिसके यज्ञ में साक्षात् यज्ञपति भगवान उपस्थित हो रहे हैं। जिन अच्युत देवाधिदेव परमात्मा को योगी जन योगदृष्टि द्वारा देखने की लालसा करते हैं वे ही भगवान स्वयमेव हमारे यज्ञ में आ रहे हैं। जिन परमात्मा का भागप्रदान करनेवाला होता तथा उद्गाता गान करते हैं उन सभी यज्ञों के स्वामी विष्णु को मेरे सिवा अन्य कौन प्राप्त कर सकता है। अतएव हे आचार्यचरण! उन सर्वेश्वरेश्वर भगवान् कृष्ण के मेरे यज्ञ में उपस्थित होने के बाद जो कर्त्तव्य हों उन्हें मुझे बताइये। ॥१०–१३॥

शुक्र ने कहा—हे असुर! वेदों के प्रमाणानुसार यज्ञों में भाग प्राप्त करने के अधिकारी केवल देवगण कहे गये हैं किन्तु तू ने तो दैत्यों तथा दानवों को यज्ञ भाग का अधिकारी बनाया है। ये भगवान् सभी सांसारिक जीवों में स्थित रह कर उनकी स्थिति तथा पालन करते हैं और प्रलयकाल में स्वयमेव उनको ग्रास बना कर आत्मसात् कर लेते हैं। हे महाभाग! वे भगवान् विष्णु जो सर्वदा अपनी मर्यादा पर रहने-वाले हैं तुम्हारे ही लिये यहाँ उपस्थित हो रहे हैं, अतः इस बात को भलीभाँति जान कर भविष्य में जो कुछ करना हो, उसकी चिन्ता कीजिये। हे दैत्यपति! इसलिये मेरी यह सम्मति है कि थोड़ी-सी वस्तु के लिये भी इन्हें देने की प्रतिज्ञा न करना; प्रत्युत झूठी-मूठी खुशामदी की बातें बनाकर अपना काम चलाना और कहना कि—'हे देव! मैं तुम्हें कुछ भी देने में समर्थ नहीं हूँ।' हे महान् असुर! क्योंकि वे कृष्ण भगवान् देवताओं की भलाई और अभिवृद्धि के लिये ही इस कार्य में प्रवृत्त हुए हैं। ॥१४—१८॥

बलि ने कहा—हे ब्रह्मन्! अन्य साधारण याचकों के भी प्रार्थना करने पर मैंने उन्हें कभी नकारात्मक उत्तर नहीं दिया, वही मैं संसार के पापों को दूर करनेवाले परमात्मा की याचना को कैसे इनकार कर सकता हूँ। विविध प्रकार के उपवास आदि को कर के लोग जिस भगवान् गोविन्द की आराधना करते हैं वे आकर मुझसे जब याचना कर लेंगे तो फिर उससे बढ़कर संसार में अन्य मनःकामना क्या रह जायगी? जिन भगवान् को प्राप्त करने के लिए विविध प्रकार के उपहारों द्वारा पवित्रता से यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता है, वही भगवान् स्वयमेव आकर मुझसे 'दो' ऐसी याचना करेंगे। निश्चय ही मेरा सब सुकृत फलीभूत हो गया, मेरी सुचरित्रता सफल हो गई, जो मेरे हाथों से दिये गये दान को स्वयम् भगवान् विष्णु ग्रहण करेंगे। यदि मैं उन भगवान् के स्वयम् उपस्थित हो जाने पर 'मेरे पास कुछ नहीं है, मैं आपको दान देने में असमर्थ हूँ' ऐसा कहकर धोखे में डालूँगा तो फिर मेरे जीवन का क्या फल होगा? अतः यदि इस यज्ञ में यज्ञपति भगवान जनार्दन आकर मुझसे याचना करेंगे तो मैं बिना विचार किये ही अपने

शिर को काटकर दे सकता हूँ। अन्य साधारण याचकों की याचना करने पर मैंने कभी 'नहीं है' ऐसा नहीं कहा तो भला अब भगवान के उपस्थित होने पर उस अनभ्यस्त शब्द को क्यों कर कह सकूँगा ? दान देने से आने वाली विपत्तियाँ वीर पुरुषों के लिये शोभनीय हैं। जो दान दे देने के बाद किसी प्रकार की विपत्ति नहीं लाता वह मंगल न देने वाले के समान ही है अर्थात् उसके देने और न देने से कोई विशेष लाभ नहीं। मेरे राज्य में कोई प्राणी सुखविहीन, दरिद्री, आतुर, अशोभन, उद्विग्न अथवा अलंकार तथा पुष्पमाला आदि से विवर्जित नहीं है प्रत्युत सभी लोग हृष्ट-पुष्ट सुगन्धित द्रव्यों से विभूषित सभी सुखों से समन्वित हैं। हे महाभाग्यशालिन्! मैं अपने विषय में क्या कहूँ कि सदा सुखपूर्वक रहता हूँ। हे भृगुवंश में सिंह! मेरे दान रूपी बीज का ही यह फल है, जो इस प्रकार विशिष्टदान का पात्र (दान देने योग्य व्यक्ति) मुझे प्राप्त हुआ, स्पष्ट है कि यह सब कुछ मैंने आपही की कृपा से प्राप्त किया है। अतः हे आचार्य! यह सब जानते हुए यदि मेरा यह दान बीज जनार्दन रूप अति उपयुक्त पात्र में पड़ जाता है तो फिर मैंने जीवन में क्या नहीं प्राप्त कर लिया अर्थात् तब मेरे जीवन की सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जायँगी। यदि मेरे दान द्वारा देवताओं का पालन होता है तो उनके उपयोग से मेरा दान दस गुना अधिक प्रशंसनीय होता है। इसमें सन्देह नहीं है कि मेरे यज्ञ से उपासित भगवान् मेरे ही कल्याण के लिए अपने साक्षात् दर्शन द्वारा उपकृत करने वाले मुझको मारने के लिए यहाँ आ रहे हैं। अथवा क्रुद्ध होकर देव भाग को अपहरण करने वाले मुझको मारने के लिए आ रहें हैं तो फिर अच्युत भगवान् के हाथों से होनेवाली वह मेरी मृत्यु भी प्रशंसनीय है। यह समस्त जगत् उस परमात्मा से ही युक्त है, सभी वस्तुओं में उसी की सत्ता है, उसके लिए जगत् में कोई भी वस्तु अप्राप्त नहीं है। वे भगवान् सिवा अनुग्रह के किसी अन्य कारण वश मेरे पास याचनार्थ नहीं आ रहें हैं। जो स्वयम्भू परमात्मा इस निखिल जगत् की सृष्टि करते हैं, और केवल इच्छा से ही जो उस सब का विनाश कर देते हैं वह हृषीकेश भला मुझे मारने के लिए क्यों इतना यत्न करेंगे ? आचार्यचरण! यह सब बातें भली भाँति सोच विचार का मेरे यज्ञ में गोविन्द भगवान् जगन्नाथ के उपस्थित होने पर आप किसी प्रकार का विघ्न न उपस्थित करेंगे—यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है। ॥१९–३६॥

शौनक ने कहा—बलि शुक्राचार्य से उपर्युक्त बातें कह ही रहे थे कि माया से वामन रूप धारण करनेवाले सर्वदेवमय भगवान् जगत्पति, जिन्हें कोई नहीं जान सकता, तब तक वहाँ पहुँच गये। यज्ञ मण्डप में उपस्थित उन प्रभु को देखकर सभी सभासद असुरगण उनके तेज से निष्प्रभ होकर अति क्षुभित हुये। उस विशाल यज्ञ में आये हुये मुनिगण भगवान् का नाम जपने लगे, बलि ने तो अपना समस्त जीवन सफल मान लिया। सारी सभा क्षुब्ध हो गई, कोई किसी से कुछ भी नहीं बोल रहा। सभी लोग हृदय में देवाधिदेव की प्रार्थना करने लगे। तत्पश्चात् विनीतभाव में उपस्थित बलि को तथा उन मुनिवरों को देखकर देवाधिदेव वामनरुपधारी भगवान् विष्णु ने यज्ञाग्नि की भूरि-भूरि प्रशंसा की, तत्पश्चात् यजमान बलि, उसके पुरोहितों, यज्ञ कर्म में उपस्थित अधिकारी सदस्यों एवं द्रव्य सम्पत्तियों की प्रशंसा की। वामन भगवान् को अति प्रसन्नमुख यज्ञमण्डप में उपस्थित देख चारों ओर से सदस्य गण 'साधु साधु' की ध्वनि

उच्चारित करने लगे। अर्घ्य के लिए हाथों में जल पात्र लेकर पुलकायमान शरीर हो महाअसुर बलि ने गोविन्द से यह कहा। ॥३७-४४॥

बलि ने कहा—सुवर्ण एवं रत्नों के समूह, असंख्य हाथी और घोड़ों के समूह, स्त्रियाँ, विविध प्रकार के वस्त्र तथा अलंकार, असंख्य ग्राम, अथवा मेरा सर्वस्व, अथवा सारा भूमण्डल—जिस किसी वस्तु की आपको अभिलाषा हो, उसे कहो, जिसके लिए मेरे अति प्रिय वामन रूप में तुम मेरे यहाँ आये हुए हो। ॥४५-४६॥

शौनक ने कहा—दैत्यपति बलि के इस प्रकार प्रेमभरी बातें कहने पर कुछ मुस्कराते हुए वामनरूपधारी भगवान् गम्भीर वाणी में बोले। ॥४७॥

वामन ने कहा—राजन्! अपनी अग्नि की रक्षा के लिए मुझे तीन पग पृथ्वी चाहिये, सुवर्ण, ग्राम, रत्न आदि किन्हीं अन्य याचकों को दीजिए। ॥४८॥

बलि ने कहा—हे पदधारियों में श्रेष्ठ! आपका तीन पग पृथ्वी से भला क्या काम चलेगा? सौ अथवा लाख पगों के लिए आपको याचना करनी चाहिये। ॥४९॥

वामन ने कहा— दैत्यपति! मैं धर्म बुद्धि से उन्हीं तीन पगों में ही कृतार्थ हो जाऊँगा, अपनी इच्छा के अनुकूल अन्य याचकों को आप धन दे दें। ॥५०॥

शौनक ने कहा—महात्मा वामन की ऐसी बातें सुन महाबाहु बलि ने वामन को तीन पग भूमि देने की स्वीकृति दे दी। और उधर हाथ में जल के गिरते ही वामन भगवान् विराट् रूप में परिणत हो गये और अपने सर्वदेवमय स्वरूप को तत्काल उन्होंने प्रदर्शित किया। चन्द्रमा तथा सूर्य उनके नेत्रों में थे, आकाश मूर्द्धा पर और पृथ्वी दोनों चरण पर थी, पैरों की उगलियों में पिशाचगण, हाथों की उगलियों में गुह्यक थे। विश्वेदेव गण घुटने में, देवताओं में उत्तम देवता साध्यगण दोनों जंघों में, नखों में यक्ष गण तथा अप्सराएँ रेखाओं में अवस्थित थीं। सभी नक्षत्र गण नेत्रों में, सूर्य की किरणें केशों में, ताराएँ रोमकूपों में तथा रोमावलियों में महर्षिगण थे। उनकी बाहुएँ ही दिशाओं के कोण थे तथा उन विराट के श्रोत्रों में दिशाएँ थीं। कानों में दोनों अश्विनीकुमार तथा नासिका में वायु का निवास था। प्रसन्नता में चन्द्रमा, मन में धर्म, वाणी में सत्य तथा जिह्वा में सरस्वती का निवास था। ग्रीवा में देवमाता अदिति तथा बलय में विद्याएँ थीं, स्वर्गद्वार में मैत्री, त्वष्टा और पूषा दोनों भौंह थे। उनके मुख में वैश्वानर अग्नि तथा अण्डकोश में प्रजापति, हृदय में परब्रह्म तथा पुंस्त्व में कश्यप मुनि थे। उनके पीठभाग में वसु देवगण, सब संधिभागों में मरुत् गण दाँतों में सभी सूक्त, उनकी विमल कान्तियों, में सभी ज्योतिर्गण थे। वक्षस्थल में महादेव, धैर्य में सारे समुद्र, उदर में महाबलवान गन्धर्व अवस्थित हुए। लक्ष्मी, बुद्धि, धृति, कान्ति, एवं सभी विद्याएँ उनके कटि प्रदेश में थीं। अन्य जो ज्योतिष् चक्र थे उन्हें उनके तेज में स्थित जानिये। इस प्रकार देवाधिदेव भगवान का उस यज्ञ मण्डप में अनुपम तेज भासमान् हो रहा था। उस यज्ञ पुरुष के स्तनों तथा कुक्षियों में वेदों का निवास था, उदर में

निवास था, उदर में महायज्ञ, इष्टियाँ, पशुओं के बलिदान, ब्राह्मणों की चेष्टाएँ थीं। महाबलवान् दैत्य-गण भगवान् के उस सर्वदेवमय शरीर को देखकर अग्नि में पतिंगों की भाँति ऊपर फट पड़े तब परमात्मा ने उन सभी असुरों को पैरों के तलुवे तथा हाथों की हथेलियों से मसल डाला और उससे भी अति विशाल काय हो सारी पृथ्वी को शीघ्र ही उनमें हरण कर लिया। भूलोक में बढ़ते हुए भगवान् के शरीर में चन्द्रमा और सूर्य स्तनों के मध्यभाग में आ गये, उससे भी अधिक विराट् रूप धारण करते समय वे दोनों नाभि प्रदेश में तथा उरुभाग में आ गये। उससे भी अधिक ऊपर बढ़ते हुए भगवान् के घुटनों के मूल भाग में चंद्रमा तथा सूर्य स्थित हुए। हे महीपाल! देवताओं के पालनार्थ भगवान् ने इस प्रकार तीनों लोकों को जीतकर तथा असुरपतियों को मार कर पुरन्दर को तीनों लोकों का राज्य सौंप दिया और वसुधातल से नीचे सुतल नामक पाताल लोक को विजयशील विष्णु ने बलि को दिया। तदनन्तर सर्वेश्वरेश्वर ने दैत्यपति से कहा। ॥५०-७०॥

श्री भगवान् ने कहा—बले! जो तुमने मुझे जल का दान दिया है और उसे मैंने अपनी हथेली पर स्वीकार कर लिया है इस कारण एक कल्प तक तुम दीर्घजीवन प्राप्त करोगे, और इस वैवस्वत मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर सावर्णिक मन्वन्तर में इन्द्र तुम होगे। इस समय तो मैंने सारे त्रैलोक्य को देवराज्य इन्द्र को दे दिया है, और चारों युगों की जब तक इकहत्तर आवृत्ति नहीं हो जाती तब तक उनके जितने भी शत्रु उत्पन्न होंगे उन सबको वश में करूँगा। बले! क्योंकि उसने पूर्व काल में घोर तपस्या करके मेरी उपासना की है। असुर! सुतल नामक मनोहर पाताल लोक को तुम प्राप्त कर मेरी आज्ञा का उचित ढङ्ग से पालन करते हुए निवास करो। उस दिव्य वनों से युक्त सैकड़ों राजभवनों से सुशोभित, खिले हुए फूलों से सुमनोहर सरोवरों-वाले सुन्दर नदियों के प्रवाहों से रमणीय, सुन्दर गान एवं नृत्यों से मनोहर उस सुतल लोक में सुगंधित पदार्थों, धूप, माला, आदि विविध सौख्य साधनों से सुसज्जित अनेक सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों से विभूषित हो तथा पुष्प चन्दनादि से प्रसन्न मन हो तुम निवास करो और विविध प्रकार के अन्न पान की सामग्रियों का उपभोग करो। मेरी आज्ञा से उपर्युक्त अवधि तक तुम सौ स्त्रियों से युक्त होकर वहाँ निवास करो। इस प्रकार जब तक देवताओं तथा ब्राह्मणों से तुम विरोध नहीं करते हो, हे महाअसुर तब तक तुम इन सभी अमूल्य भोगों का उपभोग करते रहोगे। जब देवताओं तथा ब्राह्मणों से विरोध करोगे तब निश्चय है कि वरुण के पाश तुम्हें बन्धन में डालेंगे। इस बात को भली भाँति समझ बूझ कर आप मेरी समस्त आज्ञाओं का पालन करते रहेंगे। हे दैत्यपति! कभी भूल कर भी देवताओं तथा ब्राह्मणों से आप विरोध नहीं करेंगे। ॥७१-८१॥

शौनक ने कहा—विजयशील वामन स्वरूपधारी भगवान् विष्णु के ऐसा कहने पर अति प्रमुदित चित्त हो बलि ने प्रणाम करते हुए कहा। ॥८२॥

बलि ने कहा—हे भगवन्! आपके आदेश से पाताल लोक में निवास करते समय मुझे किन उपभोग्य वस्तुओं के ग्रहण करने का अधिकार होगा। ॥८३॥

श्रीभगवान् ने कहा—विना विधान के दिया हुआ दान, विना श्रोत्रिय ब्राह्मण के कराया हुआ श्राद्ध, विना श्रद्धा के की गई आहुति, ये सब वस्तुएँ जितनी भी होंगी सभी तुम्हें फल देंगी। विना दक्षिणा के किया हुआ यज्ञ, विना विधि के की गई सारी क्रियाएँ, व्रतों का परित्याग करके किया गया अध्ययन—इन सब का भी फल तुम्हें प्राप्त होगा। ॥८४-८५॥

शौनक ने कहा—इस प्रकार बलि को वरदान तथा इन्द्र को स्वर्ग का राज्य देकर भगवान् अपने उस त्रिलोकव्यापी विराट शरीर से अदृष्ट हो गये। तीनों लोकों से पूजित इन्द्र अब पूर्ववत् अपना शासन-कार्य चलाने लगे। पाताल में अवस्थित दानवपति बलि अपने परम मनोरथों का सेवन करने लगे। हे महाभाग! देवाधिदेव भगवान् से बाँधा गया दानवराज बलि यहाँ पर स्थित है। और देवताओं के कार्य के लिए भगवान् फिर इस पृथ्वीतल पर अवतीर्ण हुए हैं, जो द्वारका में दानवों के विनाशार्थ एवं पृथ्वी के भार आहरणार्थ तुम्हारे सम्बन्धी (कृष्ण) के रूप के विराजमान हैं और शत्रु को वश में करने में लगे हुए आपकी सहायता के लिए यदुकुल उत्पन्न हो वे भगवान् बलराम के अनुज के रूप में आपके सारथी होंगे। हे महावीर! अर्जुन यह सब कथा महात्मा वामन के अवतार के विषय में तुम्हें सुना चुका! ८॥६-९१॥

अर्जुन ने कहा—महाराज! आपके मुख से भगवान् विष्णु के माहात्म्य को तो मैं पूछ कर सुन चुका, अब यहां से गंगाद्वार जाने की मेरी अभिलाषा है, अतः आज्ञा प्रदान कीजिये। ॥९२॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! ऐसी बातें करने के उपरान्त महावीर अर्जुन गंगाद्वार को प्रस्थित हुए और शौनक मुनि भी वहाँ जाने को प्रस्थित हुए। देवाधिदेव भगवान् वामन का वह माहात्म्य में आप लोगों को सुना चुका, जो कोई इसको पढ़ता है, सभी पापों से छुटकारा पाता है। बलि और प्रह्लाद का सम्वाद, बलि और शुक्र की सम्मतियां, बलि और विष्णु का कथोपकथन, इन सब को जो मनुष्य स्मरण करता है उस को किसी प्रकार की आधि-व्याधि नहीं होती और न उसे कभी आकुलता का अनुभव ही होता है। राज्य से विहीन राजा अपना राज्य एवं वियोगी अपने इष्ट की प्राप्ति इस पुण्यप्रदायिनी कथा को सुन कर प्राप्त करता है। ॥९२-९६॥

श्री मात्स्य महापुराण में वामन प्रादुर्भावो नामक दो सौ छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४६॥

दो सौ सैंतालीसवाँ अध्याय

अर्जुन ने कहा—हे विप्र! अनुपम तेजस्वी भगवान् विष्णु के अवतारों को कहनेवाले महानुभावों से पुराणों में हमने वाराह अवतार की कथा सुनी है, किन्तु उस अवतार के चरित्र को मैं नहीं जानता, न उसकी कोई विधि हमें मालूम है न विस्तार ही मालूम है। उसके कर्म, गुण, आदि, अन्त के

विषय में भी हमें कुछ नहीं मालूम है। न यही मालूम है कि वे वाराह रूपधारी भगवान् किस प्रकार के हैं? उनकी मूर्ति कैसी है? उनके देवता कौन-से हैं? उनका प्रमाण तथा प्रभाव कैसा है? प्राचीन काल में उन्होंने अवतार धारण कर क्या कार्य किये हैं? इसलिये बाराह अवतार के विषय में जो बातें पुराणों में सुनी जाती हों विशेषतः द्विज जातियों में इस कथा का जैसा प्रचार हो, हमें विस्तारपूर्वक सुनाइये। ॥१-४॥

शौनक ने कहा—अर्जुन! अद्भुत कर्मी भगवान् कृष्ण के ब्रह्मसम्मित महाबाराह चरित को, जैसा कि पुराणों में वर्णित है, मैं आपको सुना रहा हूँ। हे राजन्! जिस प्रकार भगवान् विष्णु ने बाराह रूप धारण किया, समुद्र-स्थित पृथ्वी का उन शत्रुमर्दन ने जिस प्रकार अपने एक दाढ़ से उद्धार किया, सुकोमल एवं ललित वेद की उक्तियों से छन्दों में जिस प्रकार उनका अभिनन्दन किया गया—वह सब मैं अब आप से बतला रहा हूँ प्रसन्नचित्त हो सुनो। किन्तु इस परम पुरातन, परम पुनीत, वेदों तथा शास्त्रों से सम्मित अनेक श्रुतियों से अनुमोदित महावाराह चरित को नास्तिक व्यक्तियों के सम्मुख नहीं कहना चाहिये। जो सभी पुराणों, वेदों, सांख्य योगादि शास्त्रों को विधिपूर्वक जानता है वही इसके तात्पर्य को जान सकेगा, समझ सकेगा, उसी से इसकी कथा भी कहनी चाहिये। ॥५-६॥

विश्वेदेवगण, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, दोनों अश्विनीकुमार, प्रजापतिगण, सातों महर्षि, ब्रह्मा के मानसिक संकल्प से होनेवाले सनकादि ब्रह्मर्षि, जो ऋषियों के पूर्वज नाम से विख्यात हैं, वसुगण, मरुत्गण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, नाग, विविध प्रकार के जीव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र म्लेच्छ आदि जितनी जातियाँ पृथ्वी पर हैं, सभी चतुष्पद (चौपाये), सैकड़ों तिर्यक योनि में जन्म लेने वाले, (पक्षी आदि) जंगम जीवगण, स्थावर जीवगण—इन सभी को एक सहस्र युगों के व्यतीत हो जाने पर, जब कि ब्रह्मा का एक दिन व्यतीत होता है और सभी जीवों का विनाश होने लगता है एवं सृष्टि में सभी प्रकार के उपद्रव होने प्रारम्भ हो जाते हैं, तब हिरण्यरेता भगवान्, जो वृषाकपि नाम से विख्यात हैं, तीन शिखाओं (ज्वालाओं) से युक्त होकर अपनी उग्र ज्वालाओं से सभी लोकों का विनाश करते हुए दग्ध कर देते हैं। उस अवसर पर निकलते हुए तेज की राशियों से जलते हुए एवं तेजस्वी तथा ज्वालाकुल उनके मुखों की कान्ति से फीके रंग वाले तथा जले हुए अंगोंवाले होकर छहों अंगों तथा उपनिषदों के साथ वेद, इतिहास पुराणादि, सभी विद्याएँ, सभी धार्मिक क्रियाएँ तैंतीस करोड़ देवताओं के साथ ब्रह्मा को अगुवा बनाकर सभी के उत्पत्तिकर्ता भगवान् के मुख के भीतर प्रविष्ट हो गईं। उस ब्रह्मा के एक दिन के व्यतीत होने के अवसर पर उन हंस, महान्, अच्युत, महात्मा, हरि, नारायण, प्रभु में समस्त चराचर जगत् प्रविष्ट हो गया। जिस प्रकार सर्वदा सूर्य का उदय और अस्त निश्चित रूप से हुआ करता है उसी प्रकार पुनः-पुनः उत्पन्न होने वाले इस लोक में भी सब की उत्पत्ति और विनाश होते रहते हैं। सहस्र युग जिस समय समाप्त हो जाते हैं उस समय एक कल्प की समाप्ति हो जाती है, जिसमें सभी जीवों के कार्य भी समाप्त हो जाते हैं। उस समय देवता, असुर, मानव आदि के समेत, सभी लोकों का संहार कर अपने में समाविष्ट करके एक मात्र जगद्गुरु भगवान् विराजमान होते हैं। प्रत्येक कल्पों की

समाप्ति पर वे ही भगवान्, जो अव्यय तथा शाश्वत कहे जाते हैं, एकमात्र जिन्होंने इस विशाल जगत् का विस्तार किया है, सभी जीवों की पुनः सृष्टि करते हैं। जब सभी लोकों में सूर्य किरणों के विनष्ट हो जाने तथा चन्द्रमा एवं अन्य ग्रहों के न रह जाने पर, जब कि धूम, अग्नि, पवन भी इस संसार में नहीं रह जाते, यज्ञों में वषट्कार की ध्वनि अस्त हो जाती है, पक्षीगणों का इधर-उधर फुदकना बन्द हो जाता है, अर्थात् सभी प्राणियों का अस्तित्व ही लोप हो जाता है, सभी मार्ग शून्य में विलीन हो जाते हैं, भयानक भीषणता की मर्यादा अपनी सीमा के बाहर पहुँच जाती है, चारों ओर घोर निविड़ अन्धकार में जगत् आच्छन्न हो जाता है, तात्पर्य यह कि सभी लोक अदृश्य हो जाते हैं, सभी कर्मों का अत्यन्त अभाव हो जाता है, विशाल जगत् में कहीं कोई भी व्यापार नहीं चलता, परस्पर के वैरभाव सर्वदा के लिए शान्त हो जाते हैं, चारों ओर घोर निस्तब्धता छा जाती है, सभी लोक नारायण के स्वरूप में संहित होकर अपने स्वभाव में विलीन हो जाते हैं, उस समय हृषीकेश भगवान्, जो परमेष्ठी कहे जाते हैं, अपने शयन का समारम्भ करते हैं। उस समय पीताम्बरधारी लालनेत्र, घनश्याम कृष्ण भगवान् सहस्रों शिखाओं से युक्त जटा का भार शिर पर धारण किये, श्रीवत्स पद से चिह्नित लाल चन्दन से अनुलिप्त वक्षस्थल से सुशोभित हो बिजली से युक्त बादल की भाँति शोभायमान होते हैं। उस समय उनके वक्षस्थल में सहस्र कमलों से गुथी हुई मनोहारिणी माला शोभायमान होती है, उस समय उनकी स्त्री लक्ष्मी स्वयं उनके शरीर को घेरे हुए विराजमान रहती हैं। तदनुसार शान्तात्मा सभी लोकों के कल्याणकारी योगात्मा भगवान् निद्रा में निमग्न हुए और एक सहस्र युग व्यतीत होने पर देवताओं के स्वामी परमात्मा पुरुषोत्तम स्वयमेव जाग्रत होते हैं और फिर से वे लोकस्रष्टा लोक की सृष्टि का विचार करते हैं तथा अपने परमेष्ठी कर्म (विरचन शक्ति) द्वारा मनुष्यों और देवताओं की सृष्टि करते हैं। तदनन्तर सत्पुरुषों को सङ्गति प्रदान करनेवाले समितिजय हरि सभी लोकों के उत्पन्न करने का विधान करते हैं। वे ही भगवान् इस समस्त सृष्टि के कर्त्ता हैं, विकर्त्ता अर्थात् बिगाड़ने वाले हैं, संहार करने वाले हैं, प्रजापति हैं, नारायण हैं, परम सत्य हैं। वे नारायण ही परम पद तथा सर्वश्रेष्ठ यज्ञ हैं। वे ही परम गति, स्वयम्भू, सभी भुवनों के स्वामी तथा बनानेवाले हैं। यज्ञ स्वरूप प्रजापति भगवान् ही जगत् के सर्वस्व हैं, देवतागण जिनको 'जानने योग्य' कहते रहते हैं वे भगवान् यही हैं। भगवान् की कृपा द्वारा जो जाना जा सकता है उसे देवगण भी नहीं जानते। सभी प्रजापति, देवतागण, एवं सभी ऋषिगण उन भगवान का अन्त नहीं पा सके—ऐसा वेदों में सुना जाता है। इन परमात्मा का जो परम स्वरूप है, उसे देवता लोग भी देखने में असमर्थ हैं। उन भगवान के प्रादुर्भाव काल में जिस स्वरूप का दर्शन होता है, देवगण उसी स्वरूप की पूजा करते हैं। वे भगवान स्वयं अपने जिस रूप को दिखा चुके हैं, देवगण उसी को देखते रहते हैं, और अपने जिस स्वरूप का दर्शन उन्होंने नहीं दिया है, उसे कौन ढूँढ़ सकता है? वे परमात्मा ही सभी जीवों के स्वामी हैं, अग्नि और वायु को गति देने वाले हैं, तेज, तपस्या एवं अमृत के निधान हैं, चारों आश्रमों तथा धर्मों के स्वामी हैं, सभी यज्ञों के फलों का भक्षण करनेवाले हैं। चारों समुद्रों तक उनकी मर्यादा स्थित है, वे ही चारों युगों

की निवृत्ति करनेवाले हैं। वे भगवान् इस समस्त जगत् का संहार कर तथा सब को अपने भीतर समेट कर अवस्थित रहते हैं। इस प्रकार की समस्त घटनाओं के घटित होने पर सहस्र वर्षों तक उक्त स्वरूप में शयन करनेवाले योगिराट् भगवान ने एक सहस्र वर्ष से सुरक्षित एक अण्ड को उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उन प्रजापति भगवान ने अपनी आत्मा से, सुर, असुर, द्विज, सर्प, अप्सराओं के समूह, समस्त औषधि, पर्वत, यक्ष एवं गुह्यक से युक्त इस जगत् की उत्पत्ति की। ॥१०-४४॥

श्री मत्स्य महापुराण में वराह प्रादुर्भाव नामक दो सौ सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२४७॥

दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

शौनक ने कहा—अर्जुन ! यह चराचर जगत् सर्वप्रथम हिरण्यमय दिव्य अण्ड के रूप में प्रादुर्भूत हुआ। यही अण्ड ही प्रजापति की मूर्ति है—ऐसा वेदों में सुना गया है। एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर यह अण्ड परमात्मा की प्रेरणा से ऊर्ध्व मुख में विभिन्न हुआ और पुनः लोक सृष्टि के लिए विभु ने उसे अधोमुख से भी विभिन्न किया। फिर लोकों की सृष्टि एवं जगत् के विभाग करने वाले उस परमात्मा विष्णु भगवान् ने उस अण्ड को आठ ओर से विभिन्न किया, और उससे समस्त जगत् का विभाग किया। जो छिद्र सर्व प्रथम ऊपर की ओर हुआ था वह विवर (पोल) के आकार में परिणत होकर आकाश हुआ इसी प्रकार विश्वयोग परमात्मा ने नीचे की ओर होने वाले छिद्र को रसातल रूप में परिणत किया। लोक सृष्टि की कामना से जिस अण्ड को भगवान् ने पूर्व काल में उत्पन्न किया था, उससे जो जल नीचे चुआ था, उससे कांचन या सुमेरु गिरि हुआ और उस प्रकार के सहस्रों पर्वतों के विस्तृत हो जाने के कारण पृथ्वी विषमा अर्थात् ऊँची नीची हो गई। उन पर्वतों के समूहों से, जो अनेक योजनों तक पृथ्वीतल पर फैले हुए थे, पीड़ित तथा उनके अपार भार से पृथ्वी व्यथित हो गई। हे महामते ! अति पराक्रमशाली नारायण से उत्पन्न हुए उस तेज को, जो सुवर्णमय था, पृथ्वी धारण करने में असमर्थ होकर नीचे की ओर खिसकने लगी। इस प्रकार उस भगवत्तेज से पीडित होकर नीचे को खिसकती हुई पृथ्वी को देखकर मधुसूदन भगवान् ने कल्याण की भावना से उसके उद्धार की इच्छा की। ॥१-१०॥

श्री भगवान् ने कहा—मेरे तेज को प्राप्त कर यह तपस्विनी पृथ्वी बेचारी उसे धारण करने की असमर्थता से कीचड़ में फँसी हुई दुबली गौ की भाँति रसातल को चली जा रही है। ॥११॥

पृथ्वी ने कहा—अमित पराक्रमशाली, त्रिविक्रम (वामन रूपधारी) ! सुरोत्तम महावराह स्वरूपधारी, लक्ष्मी, धनुष, चक्र, खड्ग एवं गदाधारण करनेवाले सभी देवताओं में श्रेष्ठ ! आपको मेरा नमस्कार है, भगवन् ! मुझ पर कृपा की दृष्टि कीजिये। परमात्मन् ! तुम्हारे ही शरीर से समस्त जगत् की

उत्पति हुई है, तुम्हारे ही शरीर से पुष्कर द्वीप की उत्पत्ति हुई है, तुम्हारे शरीर से उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने इस लोक में एवं सभी प्राणियों में सनातन की प्रतिष्ठा प्राप्त की है। तुम्हारे अनुग्रह से देवराज इन्द्र स्वर्ग का उपभोग कर रहे हैं, हे जनार्दन! तुम्हारे ही क्रोध से बलवान् बलि जीता गया है। तुम्हीं इस निखिल ब्रह्माण्ड के धाता हो, विधाता हो, एवं संहर्त्ता हो, तुम्हीं में समस्त जगत स्थित है। मनु अधिपत्ति कृतान्त, अनल, पवन, मेध, ब्राह्मणादि जातियाँ, ब्रह्मचर्यादि आश्रमधर्म, सारे समुद्र वृक्षगण, पर्वतगण, नदियाँ, धर्म, काम, यज्ञ, यज्ञों की क्रियाएँ, विद्या, जानने योग्य अन्य बातें, जीवगण, लज्जा, श्री, कीर्ति, धैर्य, क्षमा, पुराण, वेद, वेदांग, सांख्य योग, जन्म, मरण, जङ्गम, स्थावर भूत, भविष्यत्—ये तीनों लोकों में तुम्हारे ही प्रभाव से विद्यमान हैं। तुम ही देवताओं को उत्तम फल देनेवाले हो, एवं स्वर्ग की रमणियों के हृदय को जीतनेवाले हो, सभी लोकों के मन को प्रिय लगनेवाले हो, सभी जीवों के मन को हरण करनेवाले हो, तुम महान् हो, विशाल आकाशमय महावन हो, मधुर जल की वृष्टि करनेवाले बादलों से युक्त दिव्य लोक महान् स्कन्ध हैं, सत्यलोक शाखा है, सागरगण रस समूह हैं, रसातल थाल्हा है, ऐरावत वृक्ष है, निखिल जीव जन्तुगण पक्षी हैं, और तुम शील, सदाचार प्रभृति श्रेष्ठ गुणरूप गन्धयुक्त सर्वलोक मय महाद्रुम हो। तुम त्रैलोक्य रूप महान उदधि हो, बारह आदित्यगण उसमें द्वीप हैं, ग्यारह रुद्रगण ग्राम एवं नगर हैं, आठों वसुगण पर्वत हैं, सिद्ध और साध्यगण उस महा समुद्र की तरंगें हैं, पक्षिराज गरुड़ के पंखों की वायु उसमें चला करती है। दैत्यों के समूह घड़ियाल हैं, राक्षस और सर्पगण मछलियाँ हैं। ब्रह्मा महान् धैर्य है, स्वर्ग की अप्सराएँ रत्न समूह हैं। बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा तथा कान्ति—ये नदियाँ उसमें जाकर गिरती है, काल, और योग ये उसके महापर्व हैं, उत्तम यज्ञों के समूह उसमें गति हैं। हे नारायण! तुम अपने योगबल द्वारा महा बलवान् हो, विशाल समुद्र हो और तुम्हीं काल बनकर स्वच्छ जल के द्वारा पुनः सृष्टि को आह्लादित करनेवाले हो। तुम्हीं से तीनों लोकों की सृष्टि हुई है, और तुम्हीं से इसका संहार होता है, योगीजन तुम्हारी ही प्रेरणा से तुममें प्रविष्ट होते हैं। प्रत्येक युगों में तुम पुलयाग्नि का स्वरूप धारण करते हो और प्रति युगों में प्रलयकालीन मेघ भी तुम्हीं बनते हो, हे भगवान्! मेरे भारों को उतारने के लिए तुम्हीं प्रत्येक युगों में अवतीर्ण होते हो। तुम्हीं सतयुग में श्वेतवर्ण त्रेता में चम्पा के पुष्प के समान पीतवर्ण, द्वापर में रक्त के समान, एवं कलियुग में श्यामवर्ण होते हो। युग की संधियों के आने पर तुम्हीं एक वर्ण से दूसरे वर्ण के विकार में लिप्त होने की बातें कहा करते हो, हे वेदज्ञ! उस समय सभी धर्मों में भी तुम विकार उत्पन्न कर देते हो, तुम्हीं प्रकाश करते हो, विचरण करते हो, ताप उत्पन्न करते हो, रक्षा करते हो, यत्न करते हो, क्रोध करते हो, शान्ति उत्पन्न करते हो, जलाते हो, वृष्टि करते हो, तुम हँसते हो, त्याग करते हो, स्थिर होते हो, मारते हो, जागते हो, प्रलयकाल में काल होकर सभी जीवों को निःशेष करते हो, फिर शेष बचे हुए अपने को अकेला देख कर उत्पन्न करते हो, युगान्त की अग्नि में सभी भूतों के दग्ध हो जाने पर एक मात्र तुम्हीं शेष रहते हो, अतः लोग तुम्हें शेष नाम से पुकारते हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, वरुणादि—देवताओं की

उत्पत्ति होती है, उन्हें अपने पदों से च्युत होना पड़ता है; किन्तु तुम अपने पद से कभी च्युत नहीं होते हो अतः लोग तुम्हें अच्युत कहते हैं। ब्रह्मा इन्द्र, यम, रुद्र, एवं वरुण को,—इन सब का निग्रह करके यतः तुम हरण करते हो अतः लोग तुम्हें हरि कहते हैं। अपने विशाल शरीर, यश, और श्री द्वारा सभी जीवों का सम्मान करते हो अतः तुम सनातन कहे जाते हो। ब्रह्मादि देवगण, अति तेजस्वी मुनिगण तुम्हारा अन्त नहीं पाते अतः अनन्त नाम से तुम प्रसिद्ध हो। सैकड़ों करोड़ों कल्पों तक कभी तुम नष्ट नहीं होते, अपने पद से विचलित नहीं होते, अतः अविचलित होने के कारण तुम 'अक्षर' नाम से प्रसिद्ध हो। सभी स्थावर 'जगमात्मक जगत् को तुम अवरुद्ध रखते हो, अतः जगत् को अवरुद्ध करने के कारण तुम विष्णु कहे जाते हो। नित्य सचराचर त्रैलोक्य को नियमबद्ध करते हुए तुम विराजमान हो, यक्षों एवं गन्धर्वों के नगर, महान् सर्पों के निवास स्थान, तात्पर्य यह कि समस्त चराचर त्रैलोक्य तुम्हारे ही आश्रय से परिव्याप्त है, अतः स्वयं विष्णु भगवान् तुम्हें विष्णु नाम से पुकारते हैं। तत्त्ववेत्ता ऋषिगण जल का 'नारा' नाम कहते हैं और वही पूर्वकाल में तुम्हारा निवास स्थान था, अतः लोग तुम्हें नारायण (नारा-अयन) कहते हैं। हे विष्णो! प्रत्येक युगों में नष्ट हुई पृथ्वी तत्वतः तुम्हीं से बचाई जाती है अतः ऋषिगण तुम्हें गोविन्द नाम से पुकारते हैं। तत्वज्ञान के विशारद लोग इन्द्रियों को हृषीक कहते हैं, और तुम उन सभी इन्द्रियों के ईश हो अतः हृषीकेश नाम से प्रसिद्ध हो। युगान्त के समय ब्रह्मादि देवता तथा जीवगण तुम्हीं में निवास करते हैं; अथवा तुम्हीं स्वयं सभी जीवों में निवास करते हो अतः लोग तुम्हें वासुदेव नाम से पुकारते हैं। प्रत्येक कल्पों में तुम फिर फिर से सभी जीवों को आकर्षण कर अपने में धारण करते हो अतः तत्व ज्ञानी लोग तुम्हें संकर्षण नाम से पुकारते हैं। तुम्हारे ही द्वारा देवता, असुर एवं राक्षसगण अपने अपने व्यूहों में अवस्थित रहते हैं, अथवा तुम सभी धर्मों के विशेष ज्ञाता हो अतः प्रद्युम्न नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि है। सभी जीवों से तुम्हारी सत्ता का कोई निरोध (निवारण) करनेवाला नहीं है, अतः अनिरुद्धनाम से पूर्व काल से महर्षिगण पुकारते आये हैं। तुम इस विशाल जगत् को धारण करने वाले हो, तुम्हीं इसका संहार भी करते हो, तुम्हीं सब जीवों को धारण करते हो, तुम्हीं सब का पालन करने वाले भी हो, अपने तेज तथा बल से जो कुछ तुम धारण करते हो, उसी को तुम्हारे पीछे मैं धारण करती हूँ, कोई ऐसी वस्तु मैं नहीं धारण करती जिसे आपने धारण न किया हो, कोई ऐसी वस्तु या जीव नहीं है, जिसे तुमने धारण न किया हो। हे नारायण देव! तुम्हीं प्रत्येक युगों में संसार की कल्याणभावना से मेरे ऊपर पड़ने वाले असहनीय महाभारों को उतारते हो। अतः तुम्हारे ही तेज से भयभीत होकर रसातल को जाती हुई मुझको तुम बचा लो, हे सुर श्रेष्ठ! मैं तुम्हारी शरण में हूँ मुझे बचा लो। क्रूर दानवों से, तथा दुष्ट राक्षसों से अति पीड़ित होकर मैं तुम सनातन की शरण में आयी हुई हूँ, तुम नित्य कहे जाते हो हे देव! मेरे लिए भय का कारण तभी तक रहता है, जब तक तुझ ककुद्मी (डिल वाले) की शरण को मन से भी चिन्तन नहीं करती, विना तुम्हारी शरण में आये मैं सैकड़ों संकटों में पड़ी रहती हूँ। इन्द्रादि देवगण तुम्हारी समानता करने में असमर्थ हैं, इस तत्व के वेत्ता एक मात्र तुम्हीं हो, इसके बाद मैं

अधिक कुछ नहीं कहूँगी । १२-५६ ।

शौनक ने कहा—पृथ्वी के इस प्रकार प्रार्थना करने के उपरान्त धनुष चक्रधारी भगवान् विष्णु अति प्रसन्न हुए और यथेष्ट रूप में उसके अभीष्टों को पूर्ण किया और बोले—हे महादेवि ! तुम्हारे इस माधवीय (परम मधुर) उत्तम स्तोत्र को जो मनुष्य धारण करेगा उसे कभी पराभव नहीं देखना पड़ेगा । और वह पाप रहित वैष्णव लोकों को प्राप्त करेगा । यह तुम्हारा किया हुआ परम माधुर्य्यमय स्तोत्र आश्चर्य जनक फल देने वाला है । इसको जाननेवाला पुरुष वेदों का पढ़ने वाला तथा मुनिजनों का स्नेहभाजन होता है । हे कल्याणि ! धरणि ! तुम तनिक भी मत डरो, मेरे सामने ही शान्ति धारण करो, अब देखो मैं तुम्हें तुम्हारे अभिलषित स्थान पर पहुँचा रहा हूँ । ५७-६१ ।

शौनक ने कहा—ऐसी बातें पृथ्वी से कह कर महात्मा भगवान् विष्णु ने 'मैं कौन सा रूप धारण कर इस पृथ्वी का उद्धार करूँ'—ऐसा सोचते हुए मन में दिव्यस्वरूप का चिन्तन किया और जल क्रीड़ा की अभिलाषा से शूकर का शरीर धारण किया, जो सभी जीव समूहों से अपमानित नहीं हो सकता था, वाङ्मय ब्रह्म (वेद) उनमें अवस्थित था । भगवान् का वह शूकर शरीर सौ योजनों में विस्तृत तथा इससे द्विगुणित परिमाण में ऊँचा था, काले बादल समान उसकी कान्ति थी, मेघों की गड़गड़ाहट की भाँति उसका घुर घुराना था । पर्वत के समान भयानक एवं सुदृढ़ उसके अंग समूह थे, श्वेत वर्ण के दाँत थे जिनके अग्रभाग अतितीक्ष्ण थे उस समय उन दाँतों की शोभा बिजली एवं अग्नि की भाँति हो रही थी । सूर्य के समान् अनुपम तेज शरीर से भासित हो रहा था, कंधा अति पुष्टि तथा चौड़ा था, बल से उन्मत्त सिंह की भाँति गति थी । कटिदेश अति पुष्ठ तथा ऊँचा था, देखने में वृषभ के लक्षणों से युक्त दिखाई पड़ता था । इस प्रकार विशाल एवं भयानक स्वरूप को धारण कर अजित भगवान् विष्णु के पृथ्वी के उद्धार के लिए पाताल लोक में प्रवेश किया । उन ब्रह्म शीर्ष महातपस्वी भगवान् विष्णु के चारों वेद पैर थे, यज्ञों के स्तम्भ दाढ़ थे, यज्ञ दाँत थे, यज्ञ का कुण्ड मुख था, अग्नि जीभ थी, कुश रोम थे, दिन और रात नेत्र थे, वेदों के छः अंग कर्ण के आभूषण थे, आज्य नासिका थी, स्रुवा मुख का थूथड़ था, सामवेद का उच्चस्वर ध्वनियाँ थीं, वे भगवान् सत्य तथा धर्म से युक्त थे; श्री सम्पन्न थे, कर्म एवं विक्रम उनका सत्कार कर रहे थे । प्रायश्चित उनके विशाल एवं भयानक नख थे, पशुगण उनके जानु भाग थे, यज्ञ ही उनकी आकृति थी । उद्गीथ (सामवेद का एक भाग) द्वारा हवन उनका लिंग था, यज्ञ का महाफल बीज और औषधियाँ थीं वेदी अन्तरात्मा, अथवा वायु अन्तरात्मा अस्थियों के समूह सोमरस रक्त, वेद कंधे, तथा हवि ही सुगन्धि थी, वे भगवान् हव्य तथा कव्य के विभाग करने वाले थे । अनेक दीक्षाओं से दीक्षित परम कान्तिमान् वे भगवान् ही समस्त वंशों के आदि पुरुष थे । दक्षिणा उनका हृदय था, वे परम योगी थे, महान् यज्ञों से वे युक्त थे, स्वयं महान् थे । उपाकर्म उनके होठों के फलक थे, प्रवर्ग्य सम्पूर्ण आभूषण, समस्त वेद उसके गमन के मार्ग, गोपनीय उपनिषद उनके आसन थे । छाया ही उनकी पत्नी थी, मणि के शृंग की भाँति के ऊँचे उठे हुए दिख रहे थे । रसातल में गई, पाताल-

तल में मग्न उस पृथ्वी का उन भगवान् ने लोक की हितकामना से दाढ़ के अग्रभाग से उद्धार किया। और तत्पश्चात् पृथ्वी के धारण करनेवाले वाराह भगवान् ने अपने स्थान पर लाकर प्राचीनकाल में मन से धारण की हुई वसुन्धरा को छोड़ा और तब पृथ्वी देवी प्रभु से धारण किये जाने के कारण परम शान्ति को प्राप्त हुईं। उस कल्याणकारी भगवान् को उसने नमस्कार किया। प्राचीनकाल में इस प्रकार समुद्र के जल में निमग्न हुई पृथ्वी का जीवों के कल्याण करनेवाले भगवान् ने यज्ञवाराह रूप धारण कर उद्धार किया था। तत्पश्चात् पृथ्वी का उद्धार कर कमललोचन भगवान् विष्णु ने जगत् की स्थापना के लिए तथा पृथ्वी को विभक्त करने के लिए इच्छा की। अतुलित पराक्रमी, अचिन्त्य विक्रम शाली, सुरोत्तम, वृषाकपि भगवान् ने महान् वाराह का स्वरूप धारण कर रसातल को गई हुई पृथ्वी का इस प्रकार अपनी दाढ़ी के अग्र भाग द्वारा उद्धार किया था॥ ६२-७१॥

श्री मात्स्य महापुराण में वाराह प्रादुर्भाव नामक दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त॥ २४८॥

दो सौ उनचासवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! क्रमानुसार भगवान् नारायण के माहात्म्य को सुनते हुए भी हमें तृप्ति नहीं मिलती अतः पुनः यह कथा बतलाइये कि प्राचीनकाल में किस प्रकार के कर्म, तपस्या अथवा किस देवता की कृपा के प्रभाव से विचक्षण देवताओं को अमरत्व की प्राप्ति हुई थी? ॥१-२॥

सूत ने कहा—उस अमरत्व प्राप्ति के कार्य में भगवान् विष्णु एवं त्रिशूलधारी शंकर जी सभी देवताओं की सहायता में तत्पर थे, तब उन्हें अमरता की प्राप्ति हुई थी। उनके इस कार्य में ये ही सहायक कहे जाते हैं। प्राचीनकाल में देवासुर-संग्राम में देवताओं द्वारा मारे गये सैकड़ों राक्षसों को भृगुनन्दन शुक्राचार्य संजीवनी विद्या के प्रभाव से पुनः जीवित कर देते थे और वे इस प्रकार फिर उठकर लड़ने लगते थे मानो सोकर उठ पड़े हों। उन शुक्राचार्य को यह विद्या भगवान् शंकर ने अति सन्तुष्ट होकर बताई थी। यह माहेश्वरी संजीवनी विद्या अति प्रभावकारी थी। महेश्वर के मुख से बताई गई उक्त संजीवनी विद्या को शुक्राचार्य में स्थित देख सभी दानवगण अति प्रमुदित हुए। और उक्त विद्या के प्रभाव से ही शुक्राचार्य राक्षसों को अमरत्व की प्राप्ति करा देते थे। यह संजीवनी विद्या किसी अन्य यक्ष, राक्षस, देवताएँ अथवा नागनी, ऋषियों, मुनियों यहाँ तक कि ब्रह्मा और विष्णु को भी नहीं मालूम थी। ऐसी परम गोपनीय एवं उपयोगी विद्या को शंकर जी से प्राप्त कर शुक्राचार्य को परम प्रसन्नता थी। संयोगवश कभी एक बार देवताओं और राक्षसों में महान्-युद्ध छिड़ गया, उसमें देवताओं द्वारा मारे गये बड़े-बड़े दैत्यों को विचक्षण शुक्राचार्य अपनी विद्या के बल के लीलापूर्वक फिर जीवित कर उठा देते थे। ऐसा देख इन्द्र तथा उदारचेता बृहस्पति ने सैकड़ों-सहस्रों की संख्या में देवताओं को मारा गया देख अति विषादयुक्त

हुए और सभी देवगण भी चिन्ता से विकल हो गये। इस प्रकार चिन्तित होने पर जगत्पति कमलोद्भव ब्रह्मा जी ने सुमेरु पर्वत के पृष्ठ भाग पर अवस्थित बड़े-बड़े देवताओं से ऐसा कहा। ॥ ३–१२ ॥

ब्रह्मा ने कहा—देवगण! मेरी बातें सुनिये और उनके अनुकूल उपायों का चिन्तन कीजिये। इस कार्य में आप लोग दानवों के साथ मित्रता का सम्बन्ध जोड़ लीजिये, और अमृत प्राप्ति का उद्योग करते जाइये, तथा क्षीरसमुद्र को मन्थन करिये। वरुण की सहायता प्राप्त कर भगवान् चक्रपाणि को उद्बोधित करते जाइये। इस मन्थन कार्य में मन्दराचल को मन्थन दण्ड बनाकर शेषनाग को उसका वेष्टन (बरेत) बनाइये, थोड़े समय के लिए इस मन्थन के कार्य में दानवेन्द्र बलि को अध्यक्ष रूप में शामिल कराइये तथा पाताल लोक में विराजमान अव्यय कूर्मरूप धारी भगवान् विष्णु की प्रार्थना कीजिये और मन्दराचल की भी प्रार्थना कीजिये। इस सब साधनों के प्राप्त हो जाने के बाद समुद्र मन्थन का कार्य प्रारम्भ कर दीजिये। ब्रह्मा की बातें सुन देवगण दानवों के निवास स्थान को गये और कहा कि—'हे बले! अब हमें आप से विरोध करने की कोई आवश्यकता नहीं है, अब से हम सब लोग आपके सेवक हैं, कृपा करके अमृत प्राप्ति के लिए उद्योग कीजिये और इस कार्य में शेषनाग को हमें दीजिये। हे दैत्य! तुम्हारी सहायता से समुद्र मन्थन करके उत्पन्न किये गये अमृत से हम सभी लोग अमर हो जायँगे। तुम्हारी कृपा से हम लोगों की यह अभिलाषा पूर्ण हो जायगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।' इस प्रकार देवताओं के विनीत स्वर में कहने पर बलि अति सन्तुष्ट हुआ और बोला—'देवगण! बताइये, मैं आप लोगों की कौन-सी इस समय सहायता करूँ? मैं तो अकेला ही क्षीर-सागर का मन्थन करने में समर्थ हूँ। आप लोगों को अमरत्व की प्राप्ति कराने के उद्देश से मैं अकेला ही क्षीर-समुद्र से मथ कर दिव्य अमृत को निकाल सकता हूँ। दूर से आश्रय के लिए आये हुए विनत वैरियों को जो व्यक्ति सम्मानित नहीं करता, सन्तुष्ट नहीं करता, वह इस लोक तथा पर लोक दोनों में नष्ट होता है। अब मैं अति स्नेहपूर्वक तुम सभी लोगों की रक्षा करूँगा।' ऐसा कह कर दैत्येन्द्र बलि देवताओं के साथ गया और मन्थन-कार्य में सहायता के लिए मन्दराचल से प्रार्थना करते हुए बोला—'मन्दर! इस अमृत-मन्थन के कार्य में, जो कि देवताओं तथा राक्षसों सभी के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हैं, तुम मन्थन-दण्ड बनो।' मन्दराचल ने कहा कि—'मुझे अंगीकार है, यदि हमारा आधार कोई मिले तब, जिस पर स्थित होकर मैं मन्थन कर सकूँ। ऐसा होने पर मैं वरुणालय का मंथन करूंगा किन्तु इस कार्य में बरेत के कार्य के लिए भी, जो कि मेरे घुमाने की क्षमता रखता हो, निश्चित कर लीजिये।' मन्दर के ऐसा कहने पर महाबलवान् कूर्म तथा शेषनाग पाताल लोक से ऊपर आये, जो कि भगवान् विष्णु के चतुर्थ अंश रूप में पृथ्वी के भार को थामने के लिए नियुक्त थे। उन शेष तथा कच्छप ने आकर भगवान् से गर्वीले स्वर में कहा—॥१३-२७॥

कूर्म ने कहा—इस समस्त त्रैलोक्य को धारण करने पर भी मुझे थकावट नहीं मालूम पड़ती तो भला इस उपकार के कार्य में छोटी गुड़िया के समान मन्दर को थामने में मुझे क्या कठिनाई पड़ेगी? ॥२८॥

शेष ने कहा—इस निखिल ब्रह्माण्ड के वेष्ठन होने से तथा उसके मन्थन करने से जब

हमारे शरीर में कोई थकावट नहीं मालूम पड़ती तो मन्दर के घुमाने से हमें कोई कष्ट नहीं होगा। ऐसा कह कर जब नाग ने लीलापूर्वक उसी क्षण मन्दराचल को उपार कर क्षीर सागर में फेंक दिया, तब कूर्म अधःभाग में आकर अवस्थित हुए। किन्तु समुद्र-मन्थन आरम्भ होने पर जब देवता और दानव मिलकर भी निराधार होने के कारण मन्दराचल को क्षीर-सागर में घुमा नहीं सके तो बलि को साथ लेकर सभी भगवान् नारायण के निवास स्थान को वहाँ गये, जहाँ पर देवाधिदेव भगवान् जनार्दन स्वयं विराजमान हो रहे थे। देवताओं तथा बलि प्रभृति असुरों ने वहाँ जाकर श्वेत कमल के समान कान्तिमान कल्याणदायी उन अच्युत भगवान् को पीताम्बर धारण किए हुए योगनिद्रा में निमग्न देखा। उस समय उनके अंगों में हार और केयूर विराजमान थे, सर्पों की शैय्या पर भगवान् शयन कर रहे थे और अपने चरण-कमल से लक्ष्मी के नाभिमण्डल का स्पर्श कर रहे थे। उस समय गरुड अपने पंखे की वायु से भगवान् को हवा कर रहा था। चारों ओर से सिद्ध, चारण एवं किन्नर गण उनकी स्तुति में मग्न थे। सभी दिशाओं से मूर्तिमान आम्नाय (वेद) स्तुति कर रहे थे। बायाँ हाथ शिर के नीचे शोभायमान था, ऐसे उन शेषशायी भगवान् की देवताओं तथा दानवों ने हाथ जोड़ विनत हो चारों दिशाओं से स्तुति करनी प्रारम्भ की। ॥२९-३६॥

देवताओं तथा दैत्यों ने कहा—हे तीनों लोकों के स्वामी! तेज से सूर्य को पराजित करने वाले। विजयशील विष्णो! कैटभ के शत्रु! तुम्हें हमारा नमस्कार हैं। सृष्टि के उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्मा रूप तुम्हें हमारा नमस्कार है, जगत् के पालनकर्त्ता विष्णु रूप तुम्हें हम सब नमस्कार करते हैं, रुद्र रूपधारी जगत् के संहारकर्त्ता आप को हमारा नमस्कार है। तुम अपने त्रिशूल से भी घर्षित नहीं हो सकते। हे दानवों के विघात करनेवाले! तीन पग में तीनों लोकों के उल्लंघित करनेवाले! अजन्मा! तुम्हें हम लोग नमस्कार करते हैं। हे प्रचण्ड दैत्येन्द्र कुल के काल रूप महा अनल! तुम्हारे नाभिरूप सरोवर से पद्म की उत्पत्ति हुई है, तुम महाबलपान् हो तुम्हें हमारा नमस्कार है। तुम पद्म के उत्पत्तिकर्त्ता हो, महाभूत हो जगत् के हरण करनेवाले, उत्पत्ति करनेवाले तथा प्रिय हो, सभी के जनक हो, सभी लोकों के स्वामी हो, कार्य और कारण—दोनों के निर्माण करनेवाले हो। अमरों के शत्रुओं का विनाश करनेवाले हो, महा समर करनेवाले हो, लक्ष्मी के मुख रूप कमल के मधुप हो, यश में निवास करनेवाले हो! तुम्हें हम सब नमस्कार करते हैं। हम लोगों की अमरत्व प्राप्ति के लिए तुम इस विशाल मन्दराचल को, जो अयुतायुत योजन विस्तृत है, धारण करो, धारण करो। हे देव! तुम्हारे भुजबल का अन्त नहीं है, अपने उन दोनों बाहुओं से उठा एक हाथ द्वारा इसे पकड़ कर स्वाहा स्वधा के अभिलाषी देवताओं के उपकारार्थ अमृत का मंथन करो।' देवताओं तथा दैत्यों द्वारा स्तुतिपूर्वक कही गई इस बात को सुन कर मधुसूदन भगवान् ने अपनी योगनिद्रा को छोड़ कर उनसे कहा। ॥ ३७-४५ ॥

श्री भगवान् ने कहा—देवगण! आप लोगों का स्वागत कर रहा हूँ, आप लोगों के यहाँ आगमन का क्या कारण है? जिस कार्य के लिए आप लोगों ने यहाँ आने का कष्ट किया है उसे चिन्तारहित होकर बतलाइये। नारायण के ऐसा कहने पर स्वर्गवासी देवताओं ने कहा—देवेश!

अमरत्व प्राप्ति के लिए हम लोग महोदधि का मन्थन कर रहे हैं, हे देवाधिदेव ! हमें जिस प्रकार अमरत्व की प्राप्ति हो सके वैसा उपाय आप करें। हे कैटभ के शत्रु ! माधव ! तुम्हारे बिना हम लोगों से वह कार्य नहीं हो सकता। हे नाथ ! उस अमृत-प्राप्ति के कार्य में तुम हमारे अगुवा बनो। देवताओं के ऐसा कहने पर शत्रुनाशक परम ऐश्वर्यशाली भगवान् विष्णु देवताओं के साथ वहाँ चले, जहाँ पर मन्दराचल था, उस समय वह मन्दराचल शेषनाग की फणों से लिपटा हुआ था तथा देवता और दानवगण उसे थामे हुए थे। विष के भय से भीत होकर देवगण तो शेषनाग की पूछ की ओर पकड़े हुए थे और मुख की ओर राहु को अगुआ बना कर दैत्यगण पकड़े हुये थे। शेषनाग के सहस्र मुखवाले शिर को बाएँ हाथ से, तथा देह को दाहिने हाथ से पकड़ कर दैत्येन्द्र बलि खींच रहा था। सुन्दर कन्दराओं से सुशोभित अमृत के मन्थन-दण्ड मन्दराचल को उन भगवान विष्णु ने अपने दोनों हाथों से पकड़ा था। इस प्रकार जय जय कार करते हुए सभी देवताओं तथा दैत्यों ने मिलकर देवताओं के सौ वर्षों तक क्षीर सागर का मन्थन किया किन्तु इसके उपरान्त वे सभी देव दानवगण बहुत थक गये। उन लोगों के थक जाने पर देवराज इन्द्र ने मेघ रूप धारण कर जल-कणों की वृष्टि की, जो अमृत के समान शीतल लगे। शीतल वायु बहने लगी। किन्तु इतने पर भी जब देवगण बिल्कुल थक कर शान्त-से होने लगे तब ब्रह्मा जी ने बारम्बार यह कहना प्रारम्भ किया कि 'अरे समुद्र को मथो, मथो। उद्योगी पुरुषों को सर्वथा लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, उन्हें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती।' ब्रह्मा के इस प्रकार उत्साहित करने पर देवासुर गण पुनः दत्त चित्त हो समुद्र का मन्थन करने लगे। तदुपरान्त दस सहस्र योजन विस्तृत मन्दराचल द्वारा मन्थन किये जाने पर उसके शिखरों पर से हाथियों के समूह समुद्र में गिर पड़े, शूकर तथा शरभादि जीवगण गिर पड़े, लाखों वृक्ष तथा पुष्पों और फलों से लदे हुए वृक्ष गिर पड़े। तब उन फलोंके सारभाग तथा पुष्पों और औषधियों के रस से क्षीरसागर का जल दही के रूप में परिणत हो गया। और तदुपरान्त उन गिरे हुए सहस्रों जीवों के चूर्ण हो जाने पर उनके रक्त तथा चर्बी आदि के संयोग से वह जल मदिरा के समान हो गया। उस वारुणी की गन्ध से देवता तथा दानव प्रमुदित हुए, और उसके आस्वादन से वे देवता दानवगण फिर बलवान् होगये अर्थात् उनकी थकावट बीत गई। तब असुरों ने शेषनाग को चारों ओर से अति वेग से पुनः पकड़ा, जिससे मन्थनदण्ड मन्दराचल एक स्थान पर अचल हो गया। भगवान् विष्णु ने अग्रसर होकर अपनी भुजाओं के बन्धन से मन्दराचल को बाँध लिया, जिससे वासुकि के फणों से सन्निहित होने के कारण वे श्यामल वर्ण के शोभित होने लगे। उस समय उनकी शोभा नीले कमलों से युक्त अति विस्तृत ब्रह्मदण्ड की भाँति दिख रही थी। तदनन्तर समुद्र से सैकड़ों मेघों की ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगीं। शेषनाग के दूसरे भाग में सर्वप्रथम इन्द्र थे, तदनन्तर आदित्य गण थे, उसके बाद अति उत्साहयुक्त रुद्रगण, वसुगण तथा गुह्यकों के समूह थे। दूसरी ओर सर्वप्रथम विप्रचित्ति, नमुचि, वृत्र, शम्बर, द्विमूर्धा, वज्रदंष्ट्र, राहु तथा बलि थे। ये तथा अन्य बहुतेरे राक्षस एवं दानवगण शेष के मुख-भाग की ओर थे। इस प्रकार बल तथा तेज से विभूषित सभी देव दानवगण समुद्र का मन्थन करने लगे। देवताओं तथा दानवों द्वारा मन्थन

करते समय समुद्र से महान् मेघगर्जन के समान भीषण स्वर निकलने लगा। उस विशाल मन्दराचल की चोट से सैकड़ों सहस्रों की संख्या में विविध प्रकार के जलचर विनष्ट होगये। पर्वत ने वरुणलोक में निवास करनेवाले पाताल लोक के विविध प्रकार के निवासियों को विनाश के पथ पर पहुँचा दिया। मन्थन करते समय उस मन्दराचल के ऊपर उगे हुए महान् वृक्षों के समूह परस्पर के संघर्षण से टूट-फूटकर ऊपर से पक्षियों के साथ ही समुद्र में गिरने लगे। उनके संघर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई, जिसकी चिनगारियों से मन्दराचल बिजली से युक्त काले बादल की भाँति आच्छन्न होगया। अग्नि के भय से पर्वत से निकलकर भागते हुए सिंहों तथा हाथियों को उस अग्नि ने भस्मसात् कर दिया तथा विविध प्रकार के मरे हुए जीवों को भी उसने जलाकर राख कर दिया। जीवों को जलानेवाली उस अग्नि को देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र ने बादलों की वृष्टि द्वारा चारों ओर से शान्त कर दिया, जिसके कारण ऊपर विविध प्रकार के रस समुद्र के जल में आकर गिरने लगे। बड़े-बड़े वृक्षों के गोंद तथा औषधियों के रस जल की धारा के साथ समुद्र में आकर मिल गये। उन अमृत के समान गुणकारी रसों तथा समुद्र के दुग्धवत् जल से सुवर्ण की भाँति दमकते हुए देवगण अमरत्व को प्राप्त हुए। वह समुद्र का जल दुग्ध रूप में परिणत हो गया था, फिर से अनेक प्रकार के रसों के मिश्रण से वह दुग्ध से घृत के रूप में बदल गया। तब बैठे हुए ब्रह्मा से देवताओं ने कहा—'ब्रह्मन्! हम लोग तो अब बहुत ही थक चुके हैं; किन्तु अमृत नहीं निकला। हम समझते हैं कि भगवान् विष्णु को छोड़कर हम सभी देवगण तथा दैत्यगण अतिशय श्रान्त हो गये हैं, और समुद्र का मन्थन भी बहुत दिनों तक कर चुके।' देवताओं तथा दैत्यों की ऐसी बात सुन ब्रह्मा ने भगवान् विष्णु से कहा—भगवान्! इन सबों को बल प्रदान कीजिये। ऐसी दशा में आप ही इनकी शरण हैं।॥४६–८१॥

विष्णु ने कहा—इस मन्थन के कार्य में जितने लोग सम्मिलित हैं, उन सब को मैं बल प्रदान कर रहा हूँ, अब इस कार्य के लिए क्रम से सभी लोग मिलकर मन्दर को परिचालित करें।॥८२॥

श्रीमात्स्य महापुराण में अमृतमंथन नामक दो सौ उनचासवाँ अध्याय समाप्त॥२४९॥

दो सौ पचासवाँ अध्याय

सूत ने कहा—भगवान् विष्णु की ऐसी बातें सुन वे बलवान् देव-दानवगण उस महासमुद्र में सम्मिलित होकर उसकी जलराशि को अत्यन्त क्षुभित करने लगे। तदनन्तर समुद्र से सौ सूर्य की भाँति तेजोमय, प्रशस्त कान्तिवाला, शीतरश्मि उज्ज्वल चन्द्रमा उद्भूत हुआ। उसके बाद घृत समुद्र से पीले वर्ण के वस्त्रों से शोभित लक्ष्मी उत्पन्न हुई, फिर सुरादेवी, तदनन्तर पीला घोड़ा, फिर अमृत से उत्पन्न होनेवाली दिव्य कौस्तुभ मणि, जो अपनी किरणों से सुशोभित होकर भगवान् नारायण के वक्षस्थल में विराजमान है। तदनन्तर विकसित पुष्पों के गुच्छों से सुशोभित पारिजात की उत्पत्ति हुई। तदुपरान्त उन देवताओं तथा दैत्यों ने बादल की भाँति धूम को समुद्र से ऊपर उठते हुए देखा, जिससे सभी दिशाएँ

व्याप्त होगई थीं। उस धूम को सभी प्रकार के देहधारी सहन करने में असमर्थ थे, उसे सूँघते ही देवगण मूर्च्छित होकर गिरने लगे और कुछेक हाथ से शिर को पकड़ कर समुद्र के तट पर बैठ गये। तदनन्तर क्रम से वह दुःसह अग्नि-सी वस्तु समुद्र से बाहर निकलती हुई दिखाई पड़ी। उसके चारों ओर विकराल ज्वालाओं का जाल फैला हुआ था, चारों ओर भीषण चिनगारियाँ छिटक रही थीं, उस भीषण अग्नि से प्रायः सब देवता और दानवगण विक्षिप्त हो गये। कुछ बिल्कुल जले हुए तथा कुछ अधजले हुए सभी दिशाओं में भगने लगे। प्रधान देव तथा दैत्य गण भी उस अग्नि से भयभीत हो गये। कुछ देर पश्चात् उस भीषण अग्नि से डुण्डुभ जाति वाले सर्प उत्पन्न हुए। उसी प्रकार काले सर्प, जिनकी दाढ़ बड़ी भयानक होती है, लाल सर्प, वायु पीकर रहनेवाले सर्प, श्वेत वर्ण के पीले वर्ण के तथा अन्यान्य गोनस जाति वाले सर्प उस अग्नि से उत्पन्न हुए। तदुपरान्त मशक, भ्रमर, डँसा, मक्खियाँ, पतिंगे, कर्णशल्य, गिरगिट आदि जीव इधर-उधर घूमने लगे। इनके अतिरिक्त अति भीषण दाढ़ोंवाले अनेक जीवगण तथा अनेक विषों के भेदोपभेद भी उससे उत्पन्न होकर इधर-उधर दिखाई पड़ने लगे। शार्ङ्ग, हलाहल, मुस्त, वत्स, कंगूर, भस्मग, नीलपत्रादि सैकड़ों भेदोपभेदवाले विष उससे उत्पन्न हुए, जिनकी सुगन्धिमात्र से शीघ्र ही पर्वतों के शिखर भी जल उठते हैं। ॥१-१३॥

तदनन्तर शरीरधारियों को अतिशय भय देनेवाली एक मूर्ति दिखाई पड़ी, जिसके शरीर की कान्ति नीलरस के समूह, भ्रमर अथवा कज्जल के पर्वत के समान थी, जोर जोर से विषम श्वासें ले रही थी, उसके अंग प्रत्यंग समस्त लोकों में फैल रहे थे, केशों के समूह जलती हुई अग्नि की भाँति दिखाई पड़ रहे थे, सुवर्ण एवं मोतियों के अलंकारों से उसके अंग विभूषित थे, किरीट धारण किये हुए थी, शरीर पर पीताम्बर था, देह की कान्ति नीलेकमल के समान थी, विविध प्रकार के पुष्प शरीर पर शोभायमान हो रहे थे, गम्भीर गर्जते हुए बादल के समान शब्द कर रही थी। इस प्रकार समुद्र के मध्य में अवस्थित शरीरधारी विष को उन देवताओं तथा दैत्यों ने देखा। उस भीषण नेत्रवाले भयदायी विष को देखकर सभी लोग अतिशय भयभीत हो गये। कितने तो देखते ही चल बसे, और कितने देखते ही बेहोश हो गये, कुछ लोगों के मुख से फेन गिरने लगें और कुछ लोगों की अति चिन्तनीय दशा हो गई। उस विकराल विष की श्वास से विष्णु इन्द्रादि देवता भी कुछ जल गये और थोड़ी देर पहिले जो जीवगण दिव्य रूपवाले थे ये अब जले हुए अंगार (कोयले) के समान काले वर्ण के हो गये। तदनन्तर अति भयभीत होकर विष्णु भगवान् ने उस सुरात्मक (?) से देवताओं की हितकामना से पूछा। ॥१४-१८॥

श्री भगवान् ने कहा—'आप महाकाल की तरह मालूम पड़नेवाले कौन हैं? क्या चाहते हैं? और कहाँ से आ रहे हैं? क्या करने से आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी? इन सब बातों को मुझे बताइये।' भगवान् विष्णु की ऐसी बातें सुन प्रलयाग्नि के समान विकराल उस कालकूट ने दुन्दुभि के समान भीषण स्वर में कहा। ॥१९-२०॥

कालकूट ने कहा—'विष्णो! समुद्र से उत्पन्न होनेवाले मुझ को लोग कालकूट नाम से पुकारते हैं। जब परस्पर एक दूसरे के संहार के अभिलाषी देवता तथा दैत्यगण अति उग्र अमर्ष से इस

अद्भुत क्षीरसागर का मन्थन करने लगे तब मैं उन सभी का संहार करने के लिए उत्पन्न हुआ हूँ। संसार में जितने भी शरीरधारी हैं उन सब को मैं एक क्षण में विनष्ट कर दूँगा। या तो ये लोग मुझे निगल जायँ अथवा शंकर की शरण में हो जायँ।' कालकूट की ऐसी बातें सुन भयभीत देवताओं तथा असुरों ने ब्रह्मा तथा विष्णु को अगुआ बनाकर शंकर के समीप प्रस्थान किया। वहाँ पर नियुक्त गणेशों ने जाकर उन लोगों की बातें शिव से कहीं। तदुपरान्त आज्ञा प्राप्त कर वे लोग शिव के समीप गये। वहाँ मन्दराचल की सुवर्णमय गुफा में, जो मुक्ता तथा मणियों से विभूषित थी, स्वच्छ मणिजटित सीढ़ियाँ लगी हुई थीं, वैदूर्य मणि के खम्भों से सशोभित हो रही थीं, शिव जी विराजमान थे। वहाँ जाकर सभी देवता तथा असुरगण घुटनों के बल पृथ्वी पर लेट गये और ब्रह्मा को अग्रसर बनाकर निम्नलिखित स्तोत्र का पाठ करने लगे। ॥१९-२७॥

देवताओं तथा दानवों ने कहा—'हे विरूपाक्ष! तुम्हें हम लोगों का नमस्कार है। तुम दिव्य आँखोंवाले हो, हाथ में पिनाक धारण करनेवाले हो, वज्र धारण करनेवाले हो, धनुष धारण करने वाले हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है। तुम्हारे हाथ में त्रिशूल विराजमान है, तुम दण्ड धारण करनेवाले हो, जटा के रूप में त्रैलोक्य की चिन्ता धारण करने के कारण तुम धूर्जटि नाम से विख्यात हो, तुम्हीं ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप हो, तुम्हे हमारा बारम्बार नमस्कार है, तुम वेद रूप हो, ब्रह्म हो, देव रूप हो, सांख्य योग स्वरूप हो, जीवों का कल्याण करनेवाले हो। हे महाकाल के क्षय करनेवाले! तुम कामदेव के शरीर को भस्म करनेवाले हो, वेगवान हो, एक वीर हो, वसुरेता हो। पिङ्गल वर्णवाले हो, मुण्डमाला से विभूषित! तुम्हें हमारा नमस्कार है। हे उमापते! दक्ष के यज्ञ एवं त्रिपुर के विध्वंसक तुम्हें हम सब नमस्कार कर रहे हैं। तुम शुद्ध बुद्ध एवं प्रबुद्ध हो, निर्वाण एवं मुक्ति के स्वरूप हो, तीनों लोकों की सृष्टि करने वाले हो, वरुण, इन्द्र एवं अग्नि रूप हो, तुम्हें हम सब का नमस्कार है। तुम ऋक्, यजु, और सामवेद स्वरूप हो, पुरुष हो, पुरुष रूप हो, परमेश्वर-रूप हो, सर्वश्रेष्ठ हो, उग्र हो, ब्राह्मण रूप हो, वेद तुम्हारी आँखें हैं, तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है। तुम सत्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण स्वरूप हो, अन्धकार भी तुम्हारा एक स्वरूप है, अनित्य एवं नित्य—उभय रूप हो, नित्य चरात्मा हो, तुम्हें हम लोग नमस्कार कर रहे हैं। तुम व्यक्त हो, अव्यक्त हो, व्यक्ताव्यक्त—दोनों एक ही साथ हो, भक्तों की आपत्तियों को नष्ट करनेवाले हो, नारायण भगवान् विष्णु के प्रिय हो अथवा भगवान् विष्णु तुम्हारे प्रिय हैं, तुम्हें हमारा अनेकशः नमस्कार है। उमाप्रिय, शर्व, नन्दीश्वर के मुख से सुशोभित, तुम ही ऋतु, मन्वन्तर, कल्प, पक्ष, मास, एवं दिन रूप में वर्तमान हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है! तुम विविध प्रकार के रूपों को धारण करनेवाले हो, मुण्डी हो, स्थूल दण्ड तथा वरुथ को धारण करनेवाले हो, तुम्हारे हाथों में कपाल रहता है, दिशाएँ ही तुम्हारा वस्त्र हैं, शिखण्ड रखनेवाले हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है। तुम धनुषधारी हो, रथी हो, यति हो, ब्रह्मचारी हो,—इस प्रकार के उत्तम चरित्रोंवाले तुम्हें हमारा बारम्वार नमस्कार है।' देवताओं तथा राक्षसों द्वारा इस प्रकार की स्तुति किये जाने पर सृष्टि के स्थाणु स्वरूप भगवान् शंकर परम

सन्तुष्ट हुए एवं उन भयभीत लोगों से मुस्कराते हुए यह बात कहने लगे । ॥२८-४१॥

शंकर ने कहा—'हे देव तथा दानव गण ! तुम लोगों के मुखकमल मुरझाये हुए हैं, तुम लोग किस लिये यहाँ आये हुए हो ? क्या चाहते हो ? जल्दी कहो, आज ही मैं उसे पूरित करूँगा ।' देवाधिदेव शंकर के ऐसा कहने पर सभी देवता तथा राक्षस गण बोले । ॥४२॥

देवताओं तथा राक्षसों ने कहा—'महादेव जी ! अमृत के प्रयोजन से महासमुद्र को मथते समय अति उग्र एवं अद्भुत विष उत्पन्न हुआ है, जो सभी लोकों का विनाश करनेवाला है । सभी देवताओं को भयभीत करनेवाले उस विष ने स्वयं कहा है कि तुम सभी को मैं खा जाऊंगा अन्यथा मुझे पी जाओ । उस उत्कट एवं विकराल विष को पान करने में हम लोग सर्वथा असमर्थ हैं, वह भीषण विष हम सभी को मार सकता है । उस विकराल विष के निःश्वास मात्र से सौ चन्द्रमा के समान कान्तिमान भगवान् विष्णु कृष्णवर्ण के हो गये । यमराज की उसने विषम स्थिति कर दी । अन्य देवताओं में से कुछ तो मूर्च्छित हो गये और कुछ नष्ट हो गये । हे भगवन् ! जिस प्रकार अभाग्यशाली पुरुषों के अर्थ भी अनर्थ के कारण बन जाते हैं तथा आपत्तिकाल में दुर्बलात्मा पुरुषों के संकल्प विपरीत फल देनेवाले हो जाते हैं, उसी प्रकार अमृत की अभिलाषा से मथे गये समुद्र से हम लोगों को इस विकराल विष की प्राप्ति हुई है । इस भय से अब हम लोगों की रक्षा कीजिये, आप ही एक मात्र हम सबों के शरणदाता हैं, और हम सब आप ही की शरण में आये हैं । भक्तों पर अनुकम्पा करनेवाले, मन के भावों को जाननेवाले सभी भुवनों के आदि ईश्वर ! भगवन् ! यज्ञों में सर्वप्रथम भाग ग्रहण करनेवाले आप ही हैं, निखिल हवनीय द्रव्य भी आप ही हैं, सौम्य हैं, सोम हैं, कामदेव को विनष्ट करनेवाले हैं । देव ! एक मात्र तुम्हीं हम सबों की शरण हो, देवताओं का कल्याण करनेवाले हो, इस महाकाल सदृश कालकूट के ज्वर से हे विरूपाक्ष ! हम सबों की रक्षा कीजिये ।' देवताओं तथा दैत्यों की इस आर्त्तवाणी को सुन भग के नेत्रों के हरण करनेवाले भगवान् शंकर ने कहा । ॥४३-५१॥

देवदेव ने कहा—देवासुर गण ! मैं उस कालकूट महाविष को खा जाऊंगा, इसके अतिरिक्त अन्य जो कष्टसाध्य कार्य हों उन्हें बताइये, उसे भी हम करने को तैयार हैं । अब आप लोग चिन्ता छोड़ कर स्थित होइये । भगवान् शंकर के ऐसा कहने पर देवता तथा असुर सभी रोमांचित हो गये । उन सबों के कण्ठ गद्‌गद् हो गये ! आनन्द के आँसू बह चले और उस समय वे अपने को सनाथ अनुभव करने लगे । इस प्रकार आश्वस्त चित्त से प्रसन्न मन वाले ब्रह्मादि सभी देवगण अति प्रसन्न हुए । तदनन्तर जगत्पति शंकरजी पवन के समान द्रुत गति से ककुद्‌मधारी शीघ्रगामी नन्दिकेश्वर पर आरूढ होकर आकाश मार्ग से चले । उस समय उनके आगे-आगे असुर तथा सुरों के अधिपति गण भी अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ हो, सुन्दर चमर डुलाते हुए चल रहे थे । मंगल के आधार उन देवताओं के आगे-आगे चलने से जितेन्द्रिय भगवान् अति शोभायुक्त हो रहे थे, उनके तृतीय नेत्र की अग्नि-ज्वाला से उनकी जटाएँ पिङ्गल वर्ण की हो रही थीं । तदनन्तर महादेवजी उस क्षीरसागर पर पहुँचे, जिससे उस कालकूट विष की उत्पत्ति हुई थी ।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस विषम कालकूट विष को देखा और एक छायायुक्त स्थान में जाकर अपने बाएँ हाथ से उसको पी लिया। विष के पी लेने पर इन्द्र प्रभृति देव तथा हिरण्याक्ष प्रभृति असुर खुशी से नाचने गाने लगे और अनेक बार सिंहों की भाँति दहाड़ने लगे, अति प्रसन्न चित्त हो देवेश की स्तुति करने लगे। भगवान् शंकर के गले में जब विष पहुँचा, तब ब्रह्मा प्रभृति देवता तथा बलि आदि प्रमुख असुरों ने उनसे कहा—'महाराज! कुन्द के समान पीत वर्ण आपके शरीर के कण्ठ देश में भृंगावली की भाँति काले वर्ण का यह विष अति शोभा दे रहा है। अतः उसे वहीं रहने दीजिये।' देवताओं तथा असुरों के ऐसा कहने पर त्रिपुरशत्रु शिव जी ने उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। विष पान कर लेने के उपरान्त शंकर जी देवताओं को वहीं छोड़ पुनः अपने आश्रम मन्दराचल को चले गये, और उनके चले जाने पर देवगण समुद्र को विविध प्रकार से पुनः मथने लगे। ॥ ५२–६१ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में अमृतमन्थन प्रसंग में कालकूटोत्पत्ति नामक दो सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त॥२५०॥

दो सौ इक्यावनवाँ अध्याय

सूत ने कहा—पुनः समुद्र के मथे जाने पर उसमें से आयुर्वेद के प्रजापति (आदि सृष्टिकर्ता) परमैश्वर्यशाली धन्वन्तरि दिखाई पड़े। फिर लोगों के चित्त को घुमा देनेवाली विशाल नेत्रोंवाली मदिरा दिखाई पड़ी। तदनन्तर अमृत। फिर सभी जीवों के भय को दूर करनेवाली कामधेनु दिखाई पड़ी। भगवान् विष्णु ने लक्ष्मी को तथा महामणि कौस्तुभ को ग्रहण किया। सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्र ने गजराज को तथा उस उत्तम अश्व उच्चैःश्रवा को ग्रहण किया। सूर्य ने लोक में आरोग्य के प्रवर्त्तक धन्वन्तरि को ग्रहण किया। छत्र को वरुण ने तथा कुण्डलों को शचीपति इन्द्र ने ग्रहण किया। पारिजात वृक्ष को मुदित होकर वायु ने ग्रहण किया। तत्पश्चात् शरीरधारी धन्वन्तरि उठकर खड़े हुए, उस समय वे एक श्वेतवर्ण का कमण्डलु धारण किये थे, जिसमें अमृत भरा था। इस अद्भुत कार्य को करते हुए देखकर दानवों के दल में उस अमृत के लिए 'यह मेरा है, यह मेरा है', इस प्रकार का महान् कोलाहल मच गया। तब भगवान् विष्णु ने मोहिनी माया का आश्रय लिया और अति सुन्दरी स्त्री का रूप धारण कर दानवों के समीप उपस्थित हुए। उन मूढ़ों ने उस अमृत को मोहिनी के हाथों में सौंप दिया। और उस सुन्दरी स्त्री के लिए सभी दानव तथा दैत्यगण अनुरक्त चित्त हो, विविध प्रकार के प्रमुख प्रमुख-शस्त्रास्त्रों को धारण कर एक साथ ही देवताओं से युद्धार्थ दौड़ पड़े। तब पराक्रमशाली विष्णु ने उस अमृत को नर के साथ उन दानवेन्द्रों से छीन लिया और लेकर अपने पास रख लिया। उधर सभी देवताओं ने उस तुमुल युद्ध के बीच ही विष्णु भगवान् से ले-लेकर उस अमृत का पान कर लिया। चिर अभिलषित उस अमृत को पीते समय

देवताओं के मध्य में देवरूपधारी राहु नामक दानव भी अमृत का पान कर रहा था। उसके कण्ठदेश तक ही अमृत पहुँचा था कि इतने ही में देवताओं की कल्याण भावना से प्रेरित होकर चन्द्रमा तथा सूर्य ने उसके इस भेद को प्रकट कर दिया। भगवान् ने अपने चक्र से उस दानव के शिर को धड़ से अलग कर दिया। अमृत पान करते हुए उस दानव का शिर अति तीक्ष्ण चक्र द्वारा कट कर पृथ्वीतल पर शोभित होने लगा। चक्रद्वारा कटे हुए उस दानव के विशाल शिर ने पर्वत के शिखर की भाँति वसुधातल को गिरते ही विचलित कर दिया। तभी से राहु का चन्द्रमा और सूर्य के साथ वैर सम्बन्ध चला आ रहा है, और वह आज भी उन्हें पीड़ा पहुँचाता है। तदनन्तर विष्णु भगवान् ने अपना सुन्दरी स्त्री का रूप छोड़कर अपने अति विकराल विविध प्रकार के शस्त्रास्त्रों से दानवों को प्रकम्पित कर दिया। अति विस्तृत एवं तीक्ष्ण भाले सहस्रों की संख्या में चारों ओर से दैत्यों की सेना पर पड़ने लगे। भगवान् के चक्र से छिन्न-भिन्न अंगोंवाले राक्षसगण मुँह से अत्यधिक रक्त बहाने लगे। तलवार, शक्ति एवं गदा की असहनीय चोटों के कारण पृथ्वीतल पर वे गिर गये। उस युद्ध में अति दारुण पट्टिशों से उनके शिर काट डाले गये। तपाये हुए सुवर्ण के समान पुष्पों से सुशोभित राक्षसों के शिर प्रचुर परिमाण में निरन्तर कट-कटकर भूतल पर गिरने लगे। रक्त से भीगे हुए अंगों वाले, मारे गये, बड़े-बड़े विशाल राक्षसों के शरीर युद्धभूमि में पहाड़ों के गेरु से रँगे हुए शिखरों की भाँति सोये हुए दिखाई पड़ रहे थे। तदनन्तर संग्रामभूमि में चारों ओर से 'हल, हला' शब्द गूँजने लगा। एक दूसरे को शस्त्रों से मारते हुए उस संग्राम-भूमि में सूर्य लोहित वर्ण के दिखाई पड़ने लगे, अर्थात् सायंकाल आ गया। लोहे के बने हुए परिघों से कुछ लोग एक दूसरे पर प्रहार करने लगे, एक दूसरे के अतिशय समीप होने के कारण कुछ मुष्टियुद्ध करने लगे। इस प्रकार एक दूसरे को मारते हुए उन लोगों के शब्द आकाशमण्डल को छू-सा रहे थे। 'काटो, मारो, दौड़ो, गिराओ, बढ़ो' इस प्रकार के अतिघोर एवं दारुण शब्द चारों ओर से सुनाई पड़ रहे थे। इस अतितुमुल तथा परम भनायक महायुद्ध के छिड़ जाने पर युद्ध भूमि में नर-नारायण देव उपस्थित हुए। दैत्यसूदन भगवान् नारायण ने नर के हाथों में दिव्य धनुष को देख अपने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया। ॥१-२५॥

तदन्तर स्मरण करते ही आकाश मार्ग से भगवान् का वह सुदर्शन चक्र, जो अमित्रों का नाश करनेवाला, परम तेजोमय, महाभयानक, असह्य पराक्रमवाला था, नीचे उतरा। उसका मण्डल सूर्य के समान तेज से देदीप्यमान था। जलती हुई अग्नि के समान विकराल अति भयंकर उस सुदर्शन चक्र को आकाशमण्डल से उतरते ही हाथी के शुण्ड के समान विशाल बाहुवाले अच्युत भगवान् ने अपने हाथ में धारण किया और उस अति प्रभावाले, दानव कुल एवं दैत्यों के संहारक, जलती हुई अग्नि के समान देदीप्यमान्, रिपु के नगरों का विध्वंस करनेवाले, संवर्तक नामक प्रलयाग्नि के समान तेजस्वी सुदर्शन चक्र को अति उग्र भाव से वेग पूर्वक शत्रुओं पर छोड़ दिया। वह भीषण चक्र बारम्बार शत्रुओं पर प्रहार करने लगा। युद्धभूमि में पुरुषोत्तम के हाथ से छोड़े गये उस सुदर्शन चक्र ने सहस्रों की संख्या में दैत्यों को विदारित कर दिया, कहीं

पर उसने वायु से उद्दीप्त अग्नि की भाँति शत्रुवाहिनी को एकदम भस्मसात् कर दिया तो कहीं पर उन असुर समूहों को बलपूर्वक काट डाला। भगवान् के हाथों से प्रेरित उस सुदर्शन ने बारम्बार आकाश में तथा पृथ्वी तल पर पिशाच की भाँति रक्तपान किया। तदनन्तर निर्भय चित्त असुरों ने पर्वतों द्वारा बारम्बार देवताओं की सेना को विनष्ट किया। सहस्त्रों की संख्या में वे महाबलवान् असुर समूह मेघों के समान कान्तियुक्त दिखाई पड़ रहे थे। उस समय वे आकाश मण्डल की भाँति विशाल हो रहे थे। अनेक प्रकार के विचित्र बादलों की भाँति रूप धारण करनेवाले वे राक्षस गण अति भयंकर हो गये। राक्षसों से छोड़े गये, वृक्षों समेत अनेक प्रकार के मेघों के समान दिखाई पड़नेवाले वे विशाल पर्वत, जिनकी चोटियाँ छिन्न-भिन्न हो गई थीं, शब्द करते हुए एक दूसरे पर शीघ्रता से गिरने लगे। उन पर्वतों के गिरने से पर्वतों एवं वनों समेत सारी पृथ्वी कम्पायमान हो गई, और चारों ओर से चोटों के पड़ने के कारण छिन्न-भिन्न हो गई। इस प्रकार उन दोनों वाहिनियों का जब युद्धस्थल में एक दूसरे पर भीषण गर्जन करते हुए बारम्बार घात प्रतिघात होने लगा और देवताओं की सेना में अति आतंक छा गया तब नर ने सुन्दर सुवर्णजटित भूषणों से आभूषित अग्रभाग वाले अपने तीक्ष्ण बाणों से वायु का मार्ग छेंक लिया और छोटे बाणों से पर्वतों के शिखरों को विदारित कर दिया। देवताओं द्वारा ताड़ित किये गये बड़े-बड़े असुर योद्धागण भय के मारे पृथ्वी में, समुद्र के खारे जल में जहाँ, कहीं ठौर पाया प्रविष्ट हो गये। जलती हुई अग्नि के समान भीषण अति कुपित होकर आकाश में प्रहार करनेवाला सुदर्शन चक्र शान्त हो गया और देवताओं ने विजय की प्राप्ति की। तदनन्तर भली भाँति पूजाकर मन्दराचल को अपने स्थान पर स्थापित किया गया और सभी दिशाओं तथा आकाश में फैले हुए जलधर भी जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। देवता गण इस प्रकार अमृत की रक्षाकर परम आनन्दित हुए और उसकी संचित निधि को बलवान् देवताओं के साथ किरीटी (भगवान्) को सुरक्षा के लिए सौंप दिया गया। ॥२६-३६॥

श्री मात्स्य महापुराण में अमृत मन्थन नामक दो सौ इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त ॥२५१॥

दो सौ बावनवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—अब हम लोगों को राजप्रासाद तथा भवन आदि के निर्माण की विधि को विस्तारपूर्वक बतलाइये और यह बतलाइये कि उन्हें किस प्रकार बनाया जाना चाहिये! वास्तु क्या है? इसे भी हम लोग जानना चाहते हैं। ॥१॥

सूत ने कहा—भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति—ये अट्ठारह वास्तुशास्त्र के

उपदेशक अथवा प्रणेता माने गये हैं। मत्स्य रूप धारी भगवान् ने संक्षेप में मनु के लिए जिस उत्तम वास्तु विज्ञान का उपदेश किया था उसे ही मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ। प्राचीन काल में अन्धक के बध के भीषण अवसर पर जब शिव जी ने विकराल रूप धारण किया था तब उनके ललाट प्रदेश से स्वेद का एक भीषण विन्दु पृथ्वीतल पर गिरा था और गिरते ही उससे एक कराल मुखवाला अद्भुत प्राणी प्रादुर्भूत हुआ था, उत्पन्न होते ही वह सातों द्वीपों समेत समस्त वसुंधरा तथा आकाश को लीलने की भाँति उद्यत हुआ और पृथ्वी पर गिरे हुए अन्धक के रक्त विन्दुओं का पान कर गया। उस विकराल प्राणी ने अन्धक के युद्ध में पृथ्वीतल गिरे हुए समस्त रक्त का पान किया और जब पान करने पर भी सन्तुष्ट नहीं हो सका तो सदाशिव भगवान् के सम्मुख घोर तपस्या करने लगा। तीनों लोकों का आहार करने में समर्थ वह विचित्र प्राणी अति क्षुधा से व्याकुल होकर तपश्चर्या करता रहा। कुछ दिनों बाद भैरव ने सन्तुष्ट होकर उससे कहा—'हे निष्पाप! तुम्हारी जो अभिलाषा हो उसे माँग लो।' उसने कहा—'देवदेवेश! मैं यह चाहता हूँ कि तीनों लोकों को ग्रस लेनें की सामर्थ्य मुझमें आ जाय।' त्रिशूलधारी शिव जी ने कहा कि 'ऐसा ही होगा' ऐसा कहने के उपरान्त वह विचित्र प्राणी अपने विशाल शरीर से स्वर्ग, सम्पूर्ण भूमण्डल एवं आकाश को छेंकते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब भयभीत चित्त देवताओं, ब्रह्मा, शिव, तथा समस्त दानव; दैत्य एवं राक्षसों ने ऊपर चढ़कर चारों ओर से उसे रोक लिया। जो लोग उसे जहाँ पर आक्रान्त किये बैठे थे वे वहीं बने रह गए। सभी देवताओं का निवास होने के कारण वह वास्तु नाम से पुकारा गया। इस प्रकार रोके गये उस विचित्र प्राणी ने सभी देवताओं से निवेदन किया—'हे समस्त देवगण! मेरे ऊपर आप लोग प्रसन्न हों। आप लोगों से निश्चलित किया गया मैं भला नीचे मुख किये हुए देर तक किस प्रकार अवस्थित रह सकूँगा।' उसके इस निवेदन पर ब्रह्मादि देवताओं ने कहा कि 'वास्तु के प्रसंग में जो बलि दी जायगी, वैश्वदेव के अन्त में जो आहार चढ़ाया जायगा वह निश्चय ही तुम्हारा होगा। वास्तु की शान्ति के लिए जो यज्ञ होगा वह भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगा। यज्ञोत्सव के प्रारम्भ में दी गई बलि भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगी। वास्तु पूजा के न करनेवाले तुम्हारे आहार होंगे। अज्ञान से किया गया यज्ञ भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगा।' ब्रह्मादि देवताओं के ऐसा कहने पर वह वास्तु नामक प्राणी परम सन्तुष्ट एवं हर्षित हुआ। तभी से लोक में शान्ति के लिए वास्तु यज्ञ का प्रचलन हुआ है। ॥१-१९॥

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु प्रादुर्भाव नामक दो सौ बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥२५२॥

दो सौ तिरपनवाँ अध्याय

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं उस गृहनिर्माण के समय का निर्णय कहने चल रहा हूँ, जिस शुभ समय को जानकर लोगों को सर्वदा भवन का आरम्भ करना चाहिये। जो मनुष्य चैत्र के महीने में घर का बनवाना आरम्भ करता है वह व्याधिग्रस्त होता है। वैशाख में प्रारम्भ करनेवाले को धेनु एवं रत्न

प्राप्त होते हैं, ज्येष्ठ में मृत्यु होती है। आषाढ़ में नौकर चाकर एवं रत्नादि की प्राप्ति तथा पशु आदि की समृद्धि होती है। श्रावण में नौकरों की प्राप्ति तथा भाद्रपद में हानि मिलती है। आश्विन के महीने में गृहनिर्माण करानेवाले की पत्नी का नाश होता है, कार्तिक में धन-धान्यादि की प्राप्ति होती है। मार्गशीर्ष मास में अन्न की प्राप्ति तथा पूस में चोरों से भय होता है। माघ मास में अनेकप्रकार के लाभ होते हुए भी अग्नि का भय रहता है और फाल्गुन में सुवर्ण तथा अनेक पुत्रों की प्राप्ति होती है—यह समय के बल का विवरण है। ग्रहारम्भ में अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, स्वाती, हस्त और अनुराधा—ये नक्षत्र प्रशस्त माने गये हैं। रविवार तथा मंगलवार को छोड़कर शेष दिन भी मंगलकारी हैं। इस गृहारम्भ के कार्य में व्याघात, शूल, व्यतीपात, अतिगण्ड, विष्कम्भ, गण्ड, परिघ, एवं वज्र—इन योगों को भरसक वर्जित रखना चाहिये। स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, गान्धर्व, अभिजित, रोहिणी, वैराज और सावित्र—इन मुहूर्तों में गृहारम्भ करना चाहिये। चन्द्रमा तथा सूर्य—इनके बलवान् होने के साथ ही साथ शुभ लग्न का निरीक्षण भी करना चाहिये। सर्वप्रथम अन्यान्य कार्यों को छोड़कर स्तम्भारोपण करना चाहिये। और यही विधि प्रासाद कूप एवं बावलियों के लिए भी मानी गई है। पहिले भूमि की परीक्षा कर पश्चात् वास्तु की कल्पना करनी चाहिये। श्वेत वर्ण, लाल वर्ण, पीले वर्ण एवं काले वर्ण—इन चार वर्णों की पृथ्वी क्रमशः ब्राह्मणादि चारों जातियों के लोगों के लिए प्रशंसित मानी गई है। इसके देख लेने के बाद फिर परीक्षण करना चाहिये। ब्राह्मणों के लिए मधुर स्वादवाली, क्षत्रिय के लिए कड़वे स्वादवाली, वैश्य के लिए तिक्त स्वादवाली तथा शूद्रों के लिए कसैले स्वादवाली पृथ्वी की प्रशंसा की गई है। इस प्रकार भूमि की परीक्षा हो जाने के बाद एक हाथ विस्तृत एक गड्ढा खोदकर, उसे चारों ओर से भली भाँति लीप पोतकर स्वच्छ कर दे। अनन्तर एक कच्चे पुरवे में घी रखकर चार बत्तियाँ उसमें जलाकर रखे, जो चारों दिशाओं की ओर हों। यदि पूर्व दिशा की बत्ती अधिक काल तक जलती रहे तो ब्राह्मण के लिए उसका फल शुभावह होता है, इसी प्रकार क्रमशः दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के लिए कल्याणकारक समझना चाहिये। यदि सामूहिक रूप से वह वास्तु दीपक चारों ओर बराबर समय तक प्रज्वलित रहते हैं तो प्रासाद एवं साधारण गृह—दोनों के निर्माण के लिए वहाँ की भूमि चारों वर्णों के लिए शुभावह है। एक हाथ गहरे गड्ढे का निर्माण कर उसे उसकी मिट्टी से पूर्ण कर दे और इस प्रकार पृथ्वी की परीक्षा करे। यदि मिट्टी अधिक मात्रा में शेष रह जाती है तो श्री की प्राप्ति होती है, न्यून हो जाने से हानि होती है तथा सम रहने से न तो हानि ही होती है और न लाभ ही होता है। अथवा हल द्वारा जुतवाई गई पृथ्वी में सभी प्रकार के बीजों को भूमि परीक्षा के लिए बो दे। यदि वे बीज तीन पाँच तथा सात दिनों में उग आते हैं तो उनके फल इस प्रकार घटित होते हैं, तीन रात में जिस भूमि में बीज उग आते हैं वह भूमि उत्तमा है, पाँच रातवाली मध्यमा तथा सात रातवाली कनिष्ठा है। कनिष्ठा भूमि को इन कार्यों में सर्वदा वर्जित रखना चाहिये। पञ्चगव्य एवं औषधियों द्वारा भली भाँति परीक्षा करने के उपरान्त भूमि को सींच दे और सुवर्ण द्वारा रेखा बनाकर इक्यासी पद का चिह्न निर्मित करे। उसके बाद सभी

स्थान को चारों ओर से सूत्र द्वारा जो चूर्ण से रंगा हुआ हो चिह्नित कर दस रेखाएँ पूर्व पश्चिम तथा दस रेखाएँ उत्तर दक्षिण की ओर खींचे। सभी प्रकार के वास्तु विभागों में ये नव-नव (९ × ९) अर्थात् इक्यासी पद का वास्तु जानना चाहिये। वास्तु-शास्त्र का विज्ञाता सभी प्रकार के वास्तु सम्बन्धी कार्यों में इसका उपयोग करे। फिर पदस्थ पैंतालीस देवताओं की पूजा करे। उनमें बत्तीस तो बाहर से तथा तेरह भीतर की ओर से पूजने चाहिये। उनका नाम बतला रहा हूँ तथा उनके स्थानों को भी मुझ से सीख लीजिए। भक्त मनुष्य उन देवताओं की पूजा ईशान आदि कोणों में हवि द्वारा करे। शिखी, पर्जन्य, जयन्त, कुलिशायुध सूर्य, सत्य, भृश, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, गृहक्षत, दोनों यम, गन्धर्व, मृगराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, अघदन्त, जलाधिप, असुर, शोष, पाप, रोग, अहिमुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति और दिति, इन बत्तीस देवताओं की बाहरी ओर से पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर ईशान आदि चारों कोणों में अवस्थित इन देवताओं की बुद्धिमान पुरुष पूजा करे। आप, सावित्र, जय तथा रुद्र, ये चार चारों ओर से तथा मध्य में ९वें स्थान पर ब्रह्मा तथा उनके समीप में अवस्थित अन्य आठ देवताओं की भी पूजा करनी चाहिये—ये ही मिलकर मध्य के तेरह देवता होते हैं। ब्रह्मा के चारों ओर अवस्थित वे आठ देवता जो क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में दो-दो के क्रम से रहते हैं, साध्य देवगण के नाम से विख्यात हैं, ऐसा जानना चाहिये। उनके नाम इस प्रकार है, सुनिये—अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर—ये सात तथा आठवें आपवत्स। ये आठ देवता ब्रह्मा के चारों ओर अवस्थित माने गये हैं। आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि, तथा दिति ये पाँच देवताओं के वर्ग हैं, जिनकी पूजा अग्निकोण में करनी चाहिये। उनके बाहर बीस देवता हैं, वे सभी तीन पदों में रहते हैं। अर्यमा, विवस्वान्, मित्र तथा पृथ्वीधर ये चार ब्रह्मा के चारों ओर रहनेवाले देवता हैं जो सभी तीन तीन पदों में अवस्थित रहते हैं। अब मैं उन्हीं देवताओं के वंशों को जो सरल (?) हैं, पृथक् पृथक् बतला रहा हूँ। वायु से लेकर रोग पर्यन्त, पितृगण से शिखी पर्यन्त, मुख्य से भृश पर्यन्त, शेष से वितथ पर्यन्त, सुग्रीव से अदिति पर्यन्त तथा मृग से पर्जन्य पर्यन्त—यही वंश कहे जाते हैं। कहीं-कहीं मृग से लेकर जय पर्यन्त वंश कहा जाता है। पद के मध्य में इनका जो संपात है वह पद, मध्य तथा सम नाम से भी प्रसिद्ध है एवं त्रिशूल और कोणगामी जो हैं वे मर्मस्थल कहे जाते हैं। सर्वदा स्तम्भन्यास एवं तुलादि विधि में इन सब को बचाना चाहिये। मनुष्य को यत्नपूर्वक देवता के पदों पर कीलें गाड़ना, उच्छिष्ट भोजनादि छोड़ना तथा चोटें पहुँचाना ऐसे कार्यों को वर्जित रखना चाहिये। यह वास्तु का चक्र सभी स्थलों में पितृवर्ग एवं वैश्वानर के अधीन माना गया है। उसके मुख में अग्नि का निवास माना गया है, मुख में ही जल का निवास भी है, दोनों स्कन्धों पर पृथ्वीधर तथा अर्यमा का निवास है। उसके वक्षस्थल पर आपवत्स की बुद्धिमानों को पूजा करनी चाहिये। दोनों नेत्रों में दिति और पर्जन्य तथा दोनों कानों में अदिति और जयन्तक तथा दोनों कंधों पर अवस्थित सर्प और इन्द्र की प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। उसी प्रकार दोनों बाहुओं में सूर्य और चन्द्रमा से लेकर पाँच पाँच देवता अवस्थित हैं। रुद्र और राजयक्ष्मा—ये दोनों देवता बाएं हाथ पर अवस्थित हैं, उसी प्रकार सावित्र और

सविता दाहिने हाथ पर स्थित रहते हैं। विवस्वान् और मित्र ये दो उदर में तथा पूषा और पापयक्ष्मा ये दोनों हाथों के मणिबन्धों पर अवस्थित हैं। उसी प्रकार असुर और शोष ये दो बाएँ पार्श्व में अवस्थित हैं। दाहिने पार्श्व में वितथ और गृहक्षत हैं। दोनों उरु भागों में यम और जलाधिप, घुटनों में गन्धर्व और पुष्पक को जानना चाहिये, जंघों में भृङ्ग और सुग्रीव तथा दोनों नितम्बों पर दौवारिक और मृग हैं। लिंग स्थान पर जय तथा शक्र और दोनों पैरों पर पितृगण अवस्थित हैं, मध्य के नौ पदों में ब्रह्मा हैं जिनकी पूजा वास्तु के हृदय में करनी चाहिये। ब्रह्मा से प्रासाद के निर्माण में चौसठ पदों वाले वास्तु के पूजने की विधि सुनी गई है, उसमें ब्रह्मा का निवास चार पदों में रहता है, कोणों में आधे पद में देवगण अवस्थित रहते हैं, वास्तु के बाहरवाले कोणों में डेढ़ पद में देवताओं का निवास रहता है, तथा बीस देवता दो पदों में निवास करते हैं, यह चौसठ पदवाले वास्तु के निर्माण की विधि सुनी गई है। गृहारम्भ के अवसर पर गृहपति के जिस अंग में खुजली उठे वास्तु के उसी अंग के स्थान पर गड़ी हुई शल्य अथवा कील आदि को निकाल देना चाहिये। ऐसी विधि प्रासाद एवं गृह-दोनों के निर्माण के समय की है। क्योंकि शल्य समेत वास्तु की पूजा भयदायिनी मानी गई है और अशल्य वास्तु की पूजा कल्याणकारिणी है। वास्तु निर्माण में अधिक अंग एवं हीन अंग न होने पावें इनको सर्वथा वर्जित रखना चाहिये। नगर, ग्राम एवं देश सभी स्थलों पर इनका वर्जन करना चाहिये। हे ऋषिगण! अब मैं चतु, शाल त्रिशाल, द्विशाल तथा एक शाल वाले भवनों के निर्माण की विधि, नाम तथा स्वरूप का संकेत करते हुए, बतला रहा हूँ, सुनिये। ॥१-५१॥

श्री मात्स्य महापुराण में इक्यासी पद निर्णय नामक दो सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥२५३॥

दो सौ चौवनवाँ अध्याय

सूत ने कहा—अब मैं चारशाला वाले भवनों को, उनके स्वरूप एवं नाम का संकेत करते हुए बतला रहा हूँ। वह चतुःशाल भवन चारों ओर द्वार तथा चौखटों समेत यदि हो, और चारों ओर से एक ही प्रकार से बना हुआ हो तो वह सर्वतोभद्र नामक चतुःशाल है, ऐसा चतुःशाल भवन देवताओं तथा राजा के निवास के लिए मंगलकारक कहा गया है। जिस चतुःशाल भवन में पश्चिम दिशा में द्वार न हो वह नन्द्यावर्त नामक कहा जाता है, दक्षिण दिशा में जिसमें द्वार न हो, वह वर्धमान कहा जाता है, पूर्व दिशा में जिसमें द्वार न हो वह स्वस्तिक कहा जाता है। उत्तर दिशा में जिसमें द्वार न हो वह रुचक नामक चतुःशाल है। तीन शाला वाले भवन में यदि उत्तर दिशा की शाला न बनी हो तो उसे धान्यक कहते हैं, ऐसा भवन सर्वसाधारण मनुष्यों के लिए कल्याण एवं वृद्धि करनेवाला तथा अनेक पुत्रादि का देने वाला कहा गया है। पूर्व दिशा की शाला जिस त्रिशाल भवन में न हो उसे सुक्षेत्र कहते हैं, ऐसा

त्रिशाल भवन धन, यश, दीर्घायु का देनेवाला तथा शोक एवं मोह का विनाशक कहा गया है। दक्षिण दिशा की शाला से विहीन जो त्रिशाल भवन होता है उसे विशाल कहते हैं, ऐसा भवन मनुष्यों के कुल का क्षय करनेवाला तथा सभी प्रकार की व्याधि एवं भयों को देनेवाला कहा गया है। इसी प्रकार पश्चिम दिशा की शाला से हीन जो भवन होता है उसका नाम दक्षघ्न कहा गया है; वह मित्र, बन्धु एवं पुत्रों का विनाश करता है तथा सभी प्रकार के भय को उत्पन्न करनेवाला है। जिस भवन में दक्षिण एवं पश्चिम— इन्हीं दो दिशाओं की शाला बनी हो वह धन धान्यादि का देनेवाला कहा गया है, ऐसा भवन सर्वसाधारण के लिए कल्याण एवं वृद्धि का देनेवाला है तथा पुत्रप्रद कहा गया है। पश्चिम और उत्तर की दिशाओं में जिस भवन में शाला बनी हुई हो वह यमसूर्य नाम से विख्यात है, जिसका फल सर्वसाधारण के लिए राजा एवं अग्नि से भय पहुँचाने वाला तथा कुल को क्षय करनेवाला कहा गया है। पूर्व और उत्तर की शाला से युक्त भवन को दण्डशाला कहते हैं जो अकाल मृत्यु का भय देनेवाला तथा शत्रुपक्ष से हानि पहुँचानेवाला कहा गया है। जो पूर्व तथा दक्षिण की शालाओं से युक्त विशाल भवन है उसे धानक्य कहते हैं, वह सर्वसाधारण को शस्त्र से भय पहुँचानेवाला तथा शत्रु से पराजित करानेवाला कहा गया है। भवन में पूर्व तथा पश्चिम की ओर बनी हुई चुल्ली (चूल्हा) गृहपति के मृत्यु की सूचना देनेवाली है। उसे स्त्रियों को विधवा करनेवाली तथा अनेक प्रकार का भय पहुँचानेवाली कहा गया है। उत्तर एवं दक्षिण की शालाओं से युक्त भवन को सर्वसाधारण को भय पहुँचानेवाला कहा गया है, अतः ऐसे भवन को नहीं बनवाना चाहिए। सिद्धार्थ (?) एवं वज्र (?) से वर्जित एवं शाला से रहित भवनों को बुद्धिमानों को कभी नहीं बनवाना चाहिए। अब इसके उपरान्त मैं पृथ्वीपति (राजा) के भवन के विषय में आपको बतला रहा हूँ। राजा के भवन पाँच प्रकार के उत्तम आदि नामों से कहे गये हैं। एक सौ आठ हाथ की चौड़ाईवाले भवन को उत्तम माना गया है, अन्य चार भवनों में चौड़ाई क्रमशः आठ-आठ हाथ कम हो जाती है, इन पाँचों भवनों में चौड़ाई से सवाया अधिक लम्बाई कही गई है। युवराज के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूँ, उसमें सबसे उत्तम भवन की चौड़ाई अस्सी हाथ की होती है, अन्य चार की चौड़ाई क्रमशः छः छः हाथ कम होती जाती है। इन पाँचों भवनों की चौड़ाई से तिहाई अधिक लम्बाई कही गई है। सेनापति के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूँ। उसके सबसे उत्तम भवन की चौड़ाई चौंसठ हाथ की मानी गई है, अन्य चार भवनों की चौड़ाई छः छः हाथ कम हो जाती है। पाँचों की लम्बाई चौड़ाई से छठें भाग जितनी अधिक होनी चाहिये। अब मन्त्रियों के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूँ, उनमें सबसे उत्तम भवन साठ हाथ का तथा अन्य चार इससे चार चार हाथ कम चौड़े होते हैं। इन पाँचों की चौड़ाई से आठवें भाग जितनी अधिक लम्बाई कही गई है। अब सामन्त एवं अमात्य लोगों के पाँच प्रकार के भवनों को बतला रहा हूँ। इनमें सर्वोत्तम भवन की चौड़ाई अड़तालीस हाथ की कही गई है, अन्य चारों की चौड़ाई उससे चार चार हाथ कम कही गई है, इन पाँचों भवनों की लम्बाई चौड़ाई की अपेक्षा सवाई अधिक कही गई है। शिल्पकार, कञ्चुकी एवं वेश्याओं के पाँच प्रकार के भवनों

को सुनिये, इन सभी लोगों के भवनों की चौड़ाई अट्ठाइस हाथ की कही गड़े है, चौड़ाई में दो-दो हाथ की न्यूनता अन्य चार भवनों में हो जाती है। चौड़ाई की अपेक्षा इन भवनों की लम्बाई दुगुनी कही गई है। मध्यम भवनों के लिए भी यही नियम है। दूती एवं कर्मचारियों तथा परिवार के अन्य लोगों के पाँच प्रकार के भवनों को अब बतला रहा हूँ। उनकी चौड़ाई बारह हाथ की तथा लम्बाई उसकी सवाई होती है। शेष चार गृहों की चौड़ाई क्रम से आधे-आधे हाथ न्यून होती जाती है। ज्योतिषी, गुरु, वैद्य, सभापति और पुरोहित— इन सबों के भी पाँच प्रकार के भवनों का वर्णन कर रहा हूँ। उनके उत्तम भवन की चौड़ाई चालीस हाथ की होती है, शेष की चौड़ाई क्रम से चार-चार हाथ कम होती जाती है। इन पाँचों भवनों की लम्बाई चौड़ाई से छठें भाग जितनी अधिक होती है। अब साधारणतया चारों वर्णों के लिए पाँच प्रकार के गृहों का वर्णन कर रहा हूँ। उनमें से ब्राह्मण के घर की चौड़ाई बत्तीस हाथ की होनी चाहिये, अन्य जातियों के लिए क्रमशः चार-चार हाथ की कमी होनी चाहिये, अर्थात् ब्राह्मण के उत्तम गृह की चौड़ाई बत्तीस हाथ की हो, मध्यमादि के लिए चार-चार हाथ कम चौड़ाई हो। क्षत्रिय के उत्तम गृह की २८ हाथ चौड़ाई हो। मध्यमादि की चार-चार हाथ कम हो, इसी प्रकार वैश्य के घर की २० हाथ चौड़ाई हो तथा शूद्र के घर की १६ हाथ चौड़ाई हो। किन्तु सोलह हाथ से कम चौड़ाई अन्त्यजों के लिए है, इन उपर्युक्त चारों जातियों के लिए नहीं। लम्बाई के लिए ब्राह्मण के गृह की चौड़ाई से लम्बाई दसवें भाग जितनी अधिक, क्षत्रिय की आठवें भाग, वैश्य के तीसरे भाग एवं शूद्र के चौथाई भाग जितनी अधिक होनी चाहिये। ऐसी विधि ब्राह्मणादि के गृहों के लिए है। सेनापति तथा राजा के अन्यान्य गृहों के भीतर राजा के रहने का गृह बनना चाहिये, उसी स्थान पर भाण्डागार भी रहना चाहिये। सेनापति के तथा चारों ब्राह्मणादि वर्णों के गृहों के मध्य भाग में सर्वदा राजा के पूज्य लोगों के निवासार्थ गृह बनवाना चाहिये। अन्तरजातिवालों (?) के लिए उनके पिता का घर मिलना चाहिये। वनवासियों के लिए पचास हाथ का गृह बनाना चाहिये। सेनापति और राजा के गृह के परिमाण में सत्तर का योग करने से चौदह का भाग देने पर व्यास में शाला का न्यास कहा गया है। उसमें पैंतीस हाथ पर बरामदे का स्थान कहा गया है, छत्तीस हाथ सात अंगुल लम्बी ब्राह्मण की बड़ी शाला होनी चाहिये, इससे बड़ी नहीं होनी चाहिये। उसी प्रकार दस अंगुल अधिक क्षत्रिय की शाला होनी चाहिये। वैश्य के लिए पैंतीस हाथ तेरह अंगुल लम्बी शाला होनी चाहिये। उतने ही हाथ तथा पन्द्रह अंगुल शूद्र की शाला का परिमाण है। शाला की लम्बाई में तीन भाग करके यदि सामने की ओर गली बनी हो तो, वह सोष्णीष नामक वास्तु है। पीछे की ओर हो तो श्रेयोच्छ्रय नाम पड़ता है, दोनों पार्श्वों में यदि वीथिका हो तो वह सावष्टम्भ, तथा चारों ओर वीथिका हो तो सुस्थित नामक वास्तु कहा जाता है। ये चारों प्रकार की वीथियाँ चारों वर्णों के लिए शुभदायी हैं। शाला के विस्तार का सोलहवाँ भाग तथा चार हाथ और, यह पहले खण्ड की ऊँचाई का मान है, अधिक ऊँचा करने से हानि होती है। उसके बाद अन्य सभी खण्डों की बारहवें भाग जितनी ऊँचाई रखनी चाहिये, यदि पक्की ईंटों की भीत बन रही है तो गृह की चौड़ाई के सोलहवें भाग जितनी

मोटाई होनी चाहिये। वह भीत लकड़ी तथा मिट्टी से भी बनाई जा सकती है। सभी वास्तुओं में भीतर के मान से लम्बाई चौड़ाई का मान रखना चाहिये। गृह के व्यास से पचास अंगुल विस्तार और अठारह अंगुल वेध से युक्त द्वार की चौड़ाई रखनी चाहिये और उसकी ऊँचाई चौड़ाई से द्विगुणित होनी चाहिये। जितनी ऊँचाई द्वार की हो उतनी ही दरवाजे में लगी हुई शाखाओं (बाजुओं) की भी होनी चाहिये। ऊँचाई जितने हाथों की हो उतने ही अंगुल उन शाखाओं की मोटाई होनी चाहिये — ऐसा सभी वास्तुओं में विद्वानों ने बतलाया है। द्वार के ऊपर का उत्तमाँग तथा नीचे का चौखट (देहली)— ये दोनों शाखाओं से आधे अधिक मोटे हों अर्थात् इन्हें शाखाओं से ड्योढ़े मोटे होने चाहियें। ॥१-४४॥

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु प्रकरण में गृह-मान निर्णय नामक दो सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त ॥२५४॥

दो सौ पचपनवाँ अध्याय

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं स्तम्भ के मान के विषय में आप लोगों को बतला रहा हूँ। बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिये कि वे सर्वदा अपने गृह की ऊँचाई को सात से गुणित करके उसके अस्सीवें भाग जितनी खम्भे की मोटाई रखें, उसके मूलभाग में नवगुणित से अस्सीवें भाग जितनी मोटाई रखनी चाहिये। चार कोणवाला स्तम्भ रुचक नाम से विख्यात है, आठ कोनेवाले को वज्र कहते हैं, सोलह कोणवाला द्विवज्र के नाम से विख्यात है तथा बत्तीस कोणोंवाला प्रलीनक कहा जाता है। मध्य प्रदेश में जो वृत्ताकार (गोला) स्तम्भ रहता है उसे वृत्त नाम से पुकारते हैं। ये पाँच प्रकार के महास्तम्भ सभी प्रकार के वास्तु प्रयोगों में प्रशंसनीय हैं। ये सभी स्तम्भ पद्म, लता, वल्ली, कुम्भ, पत्र एवं दर्पणादि से चित्रित रहने चाहियें। इन पद्म तथा कुम्भों में स्तम्भ के नवें अंश जितना अन्तर रहना चाहिये। स्तम्भ के बराबर ऊँचाई को तुला तथा न्यून ऊँचाई वाली को उपतुला कहते हैं। तृतीय अथवा चतुर्थ अंश से हीन जो तुला रहती हैं वह उपतुला कहाती हैं। सभी भूमियों में चतुर्थ अंश से हीन उपतुला रहती है। सभी के निवास गृहों में दक्षिण (दाहिनी ओर) ओर से प्रवेश करना चाहिये। अब गृह के उन द्वारों को जैसे बताया गया है बतला रहा हूँ। पूर्व दिशा से इन्द्र और जयन्त नामक देवताओं के पदों पर बना हुआ द्वार सभी गृहों में प्रशंसित माने गये हैं। बुद्धिमान् लोग दक्षिण दिशा से याम्य और वितथ नामक देवताओं के पदों पर द्वार को जानते हैं, पश्चिम दिशा में पुष्पदन्त और वरुण के स्थानों पर द्वार प्रशंसित है और उत्तर में भल्लाट तथा सौम्य इन दोनों पर शुभदायक द्वार होते हैं। सभी वास्तुओं में द्वार के वेध को वर्जित रखना चाहिये। गली, सड़क या मार्ग द्वारा द्वार के वेध होने पर सभी कुल का क्षय होता है। वृक्ष द्वारा वेध होने पर द्वेष की अधिकता होती है, और कीचड़ से वेध होने पर शोक की प्राप्ति होती है। निश्चय है कि सर्वदा कूप द्वारा वेध होने पर गृहपति को मृगी का रोग होता है। नाबदान या जलप्रवाह से वेध होने पर व्यथा

होती है, तथा कील से वेध होने पर अग्नि भय होता है। देवता से विद्ध होने पर विनाश तथा स्तम्भ से वेध होने पर स्त्री द्वारा क्लेश-प्राप्ति होती है। एक घर से दूसरे घर में वेध पड़ने पर गृहपति का विनाश होता है। अपवित्र द्रव्यादि द्वारा वेध होने पर स्त्री बन्ध्या होती है, अन्त्यज के घर से वेध होने पर हथियार से भय होता है। गृह की ऊँचाई से दुगुनी भूमि के बाद यदि वेध पड़े तो उससे वेध का दोष नहीं होता। जिस घर के द्वार अपने आप खुल जाते हैं, उसके दुष्परिणाम से गृहवालों को उन्माद का रोग होता है, इसी प्रकार स्वयं बन्द हो जाने पर भी बुद्धिमान लोग कुलनाश की सूचना बतलाते हैं। गृह के द्वार यदि अपने मान से अधिक ऊँचे हैं तो राजभय तथा यदि नीचे हैं तो चोरों का भय जानना चाहिये। एक द्वार के ऊपर जो दूसरे द्वार पड़ते हैं, वे यमराज के मुख कहे जाते हैं। मार्ग के बीच में बने हुए जिस अति दुर्गम गृह की चौड़ाई बहुत अधिक होती है, वह वज्र के समान है, और शीघ्र ही गृहपति के विनाश का कारण है। अन्य द्वारों से पीड़ित जो मुख्यद्वार होता है वह बहुत दोषों को करनेवाला है। इसी प्रकार मुख्यद्वार की अपेक्षा अन्य द्वारों को अधिक शोभित नहीं करना चाहिये। घड़े, श्रीपर्णी लता एवं वल्लियों से मूलद्वार को सुशोभित रखना चाहिये और उसकी नित्य बलि, अक्षत एवं जल से पूजा करनी चाहिये। गृह की पूर्व दिशा में बरगद वृक्ष सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करनेवाला कहा गया है। दक्षिण भाग में गूलर का पेड़ तथा पश्चिम में पीपल का पेड़ शुभ करनेवाला होता है। इसी प्रकार उत्तर की दिशा में पाकड़ का पेड़ मंगलकारी होता है इससे विपरीत दिशा में वे विपरीत फल देनेवाले होते हैं। घर के समीप यदि काँटोंवाला, दूधवाला आसनादि का वृक्ष हो, जिनमें फल हों तो वे क्रम से स्त्री और सन्तान की हानि करनेवाले होते हैं, यदि कोई उन्हें नहीं काटता है, तो उसे चाहिये कि उनके समीप में अन्य शुभदायक वृक्षों को भी लगा दें। वे शुभ वृक्ष ये हैं—नागकेशर, अशोक, मौलसिरी, जाँट, तिलकपुष्पी, चम्पा, अनार, पीपली, दाख, अर्जुन, जंबीर, सुपारी, कटहल, केतकी, मालती, कमल, चमेली, नारियल, केला एवं पाटल। इन वृक्षों से संयुक्त गृह अति शुभकारी होता है। ॥१-३४॥

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु विद्या प्रसंग में वेध परिमार्जन नामक दो सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥२५५॥

दो सौ छप्पनवाँ अध्याय

सूत ने कहा—बुद्धिमान् पुरुष सर्वप्रथम उत्तर की ओर झुकी हुई अथवा समान भाग वाली भूमि की भली भाँति परीक्षा करके पू ॅ कही गई रीति से स्तम्भ की ऊँचाई आदि का निर्माण करावे। बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह अपना भवन देवालय, धूर्त, एवं सचिव के गृह के पास अथवा चौराहे के पास कभी न बनवाये क्योंकि उनके समीपस्थ होने से दुःख शोक एवं भय की प्राप्ति होती है। घर के चारों ओर प्रदेश होते हैं, उनमें अगला भाग..................? इस प्रकार के उत्तम प्रदेश को प्रयत्नपूर्वक देख भाल कर गृह निर्माण कराना चाहिये। सर्वप्रथम

ज्योतिषी के कथनानुकूल शुभ मुहूर्त में सभी बीजों से युक्त शिला को रत्न के ऊपर रख कर चार ब्राह्मणों द्वारा सुपूजित स्तम्भ का निर्माण करा कर वेदों का पारगामी विद्वान् कारीगरों को साथ ले श्वेत वस्त्र धारण कर सभी औषधियों से युक्त स्नान कराये हुए उस स्तम्भ का न्यास करे। विविध प्रकार के अक्षत से युक्त, वस्त्र एवं अलँकारों से सुशोभित उस स्तम्भ को ब्राह्मणों की सुमधुर वेदध्वनि, विविध प्रकार के बाजन नृत्य एवं मंगल ध्वनि के साथ स्थापित करे। ब्राह्मणों को खीर का भोजन कराये, मधु एवं घी से 'वास्तोष्पते प्रति जानीहि' इस मंत्र के द्वारा सर्वदा हवन करे। सूत्र पात करते समय एवं स्तम्भ के उठाते समय भी यह सब विधान पुनः करना चाहिये, इसी प्रकार द्वार का चौखट बैठाते समय तथा गृह प्रवेश के समय भी यह समारोह करना चाहिये। वास्तु की शान्ति के समय भी यही विधान है। ये पाँच प्रकार के वास्तु यज्ञ कहे गये हैं। ईशान कोण में सूत्र पात होता है, आग्नेय कोण में स्तम्भ का आरोपण होता है, वास्तु की प्रदक्षिणा करके उनके पदों का चिह्न निर्मित किया जाता है। दाहिने हाथ की तर्जनी, मध्यमा एवं अंगूठे से मूँगा, रत्न एवं सुवर्ण के चूर्ण से मिश्रित जल द्वारा सभी वास्तु के विभागों में उन के पद की रेखा बनानी चाहिये, ऐसा विधान कहा गया है। राख, अंगार, काष्ठ, नख, शस्त्र, चर्म, सींग, हड्डियाँ, कपाल—इन सब वस्तुओं से कभी भी वास्तु की रेखाएँ नहीं खींचनी चाहिये। इनके द्वारा लिखे जाने पर दुःख शोक भयादि की प्राप्ति होती है। जिस समय गृहप्रवेश होता रहे उस समय भी कारीगर गृह के सभी अंगों का निरीक्षण करता रहे। स्तम्भ एवं सूत्रादि के निर्माण के अवसर पर भी होनेवाले शकुनापशकुन शुभ एवं अशुभ फल के देने वाले होते हैं। यदि ऐसे अवसरों पर कोई पक्षी सूर्य की ओर मुख कर कठोर शब्दों में रुदन करता है अथवा यदि उस समय गृहपति अपने शरीर के किसी अंग पर हाथ रखता है तो यह समझ लेना चाहिये कि वास्तु के उसी अंग पर मनुष्य की हड्डी पड़ी हुई है, जो भय देनेवाली है। सूत्र के अंकित कर देने के बाद यदि गृहपति अपने किसी अंग को स्पर्श करता है तो वास्तु के उसी अंग पर हाथी अश्व तथा कुत्ते की हड्डियाँ हैं, बुद्धिमान पुरुष ऐसा जान ले। सूत्र के फैलाये जाते समय यदि उसे श्रृगाल अथवा कुत्ता लाँघ जाता है, तो ठीक उस स्थान पर भी हड्डी जाननी चाहिये। अति भयानक गदहे के शब्द होने पर भी ऐसा ही अपशकुन समझना चाहिये। यदि सूत्रपात के समय ईशान कोण में कौआ मीठे स्वर से बोलता है तो वास्तु के उस भाग में, जहाँ पर गृहपति खड़ा है, धन जानना चाहिये। सूत्रपात के समय यदि सूत्र टूट जाता है तो गृहपति की मृत्यु समझनी चाहिये, कील के नीचे की ओर झुक जाने से व्याधि की शंका समझनी चाहिये। उस समय यदि अंगार दिखाई पड़ता है तो उन्माद का भय तथा कपाल दिखाई पड़ता है तो भयागम समझना चाहिये। वास्तु का विज्ञाता यदि शंख अथवा घोंघे की हड्डी का दर्शन करता है तो कुलांगनाओं में व्यभिचार की सम्भावना जाने। यदि भवन निर्माण के समय कारीगर को सम्भ्रम हो जाता है तो समझ लेना चाहिये कि गृहपति के इस गृह का निश्चय ही विनाश हो जायगा। यदि स्थापित किया हुआ स्तम्भ कंधे पर गिर पड़ता है अथवा कुम्भ गिर पड़ता है तो गृहपति के शिर में रोग होता है। यदि

कलश टूट जाता है तो समझना चाहिये कि सभी परिवार का विनाश होने वाला है। कुम्भ अपने स्थान से यदि गिर पड़ता है तो गृहस्वामी की मृत्यु तथा भग्न हो जाने पर वह बन्धन में पड़ता है; ऐसा पण्डित लोग जानते हैं। गृहारम्भ के समय यदि उसके परिमाण के हाथों की संख्या नष्ट हो जाती है तो गृहपति का ही नाश समझना चाहिये। बीज एवं औषधियों से विहीन होने पर भूतों से भय की प्राप्ति होती है। स्तम्भ को पूर्व तथा दक्षिण दिशा की ओर सर्वप्रथम स्थापित कर उसके ऊपर छत्र डाल देना चाहिए। तदनन्तर विचारवान् पुरुष अन्य स्तम्भों की स्थापना करे। प्रदक्षिणा के क्रम के विना स्तम्भ की स्थापना भय देने वाली कही गई है अर्थात् दाहिनी ओर से पहले स्थापना करानी चाहिए अतः स्तम्भ के उपद्रवों की नाशक सभी प्रकार की रक्षाओं की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। इस प्रकार के उपद्रवों के विनाशार्थ स्तम्भ के ऊपर फलों से युक्त वृक्ष की शाखा डाल देनी चाहिये, स्तम्भ को उत्तर अथवा पूर्व की ओर होना चाहिये, ऐसा नहीं बनाना चाहिये कि वह किसी भी दिशा में ठीक तरह से न कहा जा सके, अर्थात् वह दिग्भ्रम उत्पन्न करनेवाला न हो। इस बात का ध्यान भवन, स्तम्भ, निवास गृह, तथा द्वार सब के लिए रखना चाहिये क्योंकि इस दिशा की अज्ञानता से कुल का नाश होता है। किसी एक दिशा में घर को अधिक बढ़ाना भी नहीं चाहिये, यदि बढ़ाना है तो चारों ओर से बढ़ाना चाहिये। पूर्व दिशा से बढ़ाया गया वास्तु सर्वदा वैर पैदा करनेवाला होता है, दक्षिण की ओर बढ़ाने से निश्चय ही मृत्यु की प्राप्ति होती है। पश्चिम दिशा की ओर बढ़ी हुई जो वास्तु है वह धनक्षय करनेवाला है, इसी प्रकार उत्तर दिशा के बढ़ाने से बहुत दुःख एवं सन्ताप की प्राप्ति होती है। अग्नि कोण में जिस वास्तु में वृद्धि की जाती है उसमें अग्नि का भय होता है। नैर्ऋत कोण में बढ़ाने पर शिशु की हानि होती है, वायव्य कोण में बढ़ाने पर वातव्याधि का प्रकोप होता है, ईशान में अग्नि से हानि होती है, सर्वदा इस बात का विचार करना चाहिये। गृह के ईशान कोण में देवता का स्थान तथा शान्ति-गृह होना चाहिये। अग्नि कोण में रसोई का घर तथा उसी के पार्श्व में उत्तर दिशा में जल का स्थान रखना चाहिये। बुद्धिमान पुरुष नैर्ऋत्य कोण में घरेलू सामग्रियों के रखने का स्थान बनाये। पशुओं आदि के बाँधने का स्थान तथा स्नानागार गृह के बाहर बनवाना चाहिये। वायव्य कोण में अन्नादि के रखने का स्थान बनवाना चाहिये। कार्य करने की शाला भी निवास स्थान से बाहर बनानी चाहिये, इस ढंग से बना हुआ भवन गृहपति के लिए मंगलकारी होता है।

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु विद्या प्रसंग में गृहनिर्णय नामक दो सौ छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥२५६॥

दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं उत्तम काष्ठ को काटने की विधि बतला रहा हूँ। धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्रों को, जो पंचक नाम से विख्यात हैं, छोड़कर भद्रा आदि का विचार करके

ज्योतिषी द्वारा बताये गये शुभ दिन में बुद्धिमान् पुरुष काष्ठ काटने के लिए प्रस्थान करे। सर्वथा सर्वप्रथम उसे काटे जानेवाले वृक्ष की बलिपूजा करनी चाहिये। पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर अभिमुख होकर गिरने वाले वृक्ष का काष्ठ गृह निर्माण में मंगलकारी होता है, दक्षिण की ओर गिरे हुए वृक्ष शुभदायी नहीं होते। दूधवाले वृक्षों का काष्ठ घर में नहीं लगाना चाहिये। पक्षियों के घोसले जिसमें हों, वायु तथा अग्नि से जिसका कुछ अंग टूट या जल गया हो, हाथी ने जिसकी डाली तोड़ दी हो, बिजली गिरने से जो किसी अंश में भग्न हो गया हो, जिसका आधा भाग सूख गया हो, अथवा कुछ अंश किन्हीं कारण वश टूट फूट गये हों, जो देवालय के पास हों, अथवा जिसमें किसी देवता का निवास माना जाता हो, या ग्राम भर में जिसकी प्रसिद्धि हो, जो नदी के संगम पर अवस्थित हो, श्मशानभूमि या कूप पर हो, तालाब आदि जलाशय के किनारे हो, ऐसे वृक्षों को अपनी विपुल समृद्धि एवं उन्नति की कामना करनेवाले को सर्वथा वर्जित रखना चाहिये। इसी प्रकार गृहकार्य के लिए काटोंवाले वृक्षों को, कदम्ब को, निम्ब को, बहेड़ा को, ढेरा को तथा आम के वृक्षों को भी वर्जित करना चाहिये। असन, अशोक, महुआ, सर्ज एवं शाल के काष्ठ मंगलकारी होते हैं। इसी प्रकार चन्दन, कटहल, देवदारु तथा हरिद्र—इनके भी काष्ठ शुभकारी होते हैं। दो प्रकार के, एक प्रकार के अथवा तीन प्रकार के काष्ठों से शुभ भवन का निर्माण कराना चाहिये, क्योंकि अनेक प्रकार के काष्ठों से बना हुआ भवन अनेक प्रकार का भय देनेवाला होता है। केवल एक प्रकार के काष्ठ में शीशम का काष्ठ श्रेष्ठ है, श्रीपर्णी तथा तिन्दुकी को भी अकेले ही लगाना चाहिये। ये काष्ठ अन्य किसी प्रकार के काष्ठों के साथ लगाने से कभी मंगलकारी नहीं होते। इसी प्रकार स्यन्दन (?), कटहल, सरल, अर्जुन एवं पद्माक के वृक्षों के लिए भी विशेषता जाननी चाहिये, ये भी पूर्वोक्त रीति से अन्य काष्ठों के साथ संयुक्त होने से वास्तु कार्य में शुभ फल देनेवाले नहीं होते ॥१-१२॥

वृक्ष कटते समय विचक्षण पुरुष को यदि अत्यन्त पीले वर्ण का कोई चिह्न मिलता है तो भावी गृह में गोधा (गोह) का भय जानना चाहिये। मँजीठ के रंग का मिलने पर मेघों (भेक) का भय जानना चाहिये, अरुण वर्ण के चिह्न पर सरट (गिरगिट) का भय जानना चाहिये, मोती के समान श्वेत चिह्न मिलने पर शुक का भय समझना चाहिये। कपिल वर्ण के चिह्न पर मूषिका का भय तथा तलवार की भाँति चिह्न मिलने पर जल का भय जानना चाहिये। वास्तु कर्म में काष्ठों के काटते समय यदि उपर्युक्त प्रकार के चिह्न मिलें तो उन्हें वर्जित रखना चाहिये। यदि पहिले ही से कटा हुआ कोई वृक्ष हो तो शुभदायी शकुनों से जाँच पड़ताल कर लेने पर गृहकार्य के लिए लिया जा सकता है। वृक्ष की मोटाई तथा लम्बाई के मान से गुणा कर आठ का भाग दे, जितने हाथ शेष बचें उसके आठ भेद बतला रहा हूँ। उनकी क्रमशः ध्वज, धूम, सिंह, खर, श्वा, वृषभ, हस्ती एवं काक संज्ञा जाननी चाहिये। ध्वज का चारों ओर मुख है, और वह शुभकारी है, विशेषतया वास्तु के पश्चिम दिशा की ओर लगाने से अधिक फल होता है। सिंह का उत्तर मुख रखना चाहिये, वृषभ का पूर्व मुख एवं हस्ती का दक्षिण मुख रहता है, इस प्रकार सात (?) विभागों द्वारा इसे बता चुका। एक हाथ से ध्वज को, तीन हाथ से सिंह को, पाँच हाथ से वृषभ को

तो कह चुका अब इनके अतिरिक्त जो विकोणस्थ हों उन्हें वर्जित करना चाहिये। उक्त कर राशि अंक को आठ से गुणित कर विचक्षण पुरुष सत्ताईस का भाग दे कर शेष को नक्षत्र माने और उस शेष में फिर आठ का भाग करे। जो शेष बचता है वह व्यय माना गया है, जिस वृक्ष में व्यय अधिक निकले उसे न लगावे, क्योंकि वह अनेक दोषों का करनेवाला है। आय अधिक होने पर शान्ति होती है—ऐसा भगवान् हरि ने बतलाया है ॥१३–२१॥

गृह वनकर पूर्ण हो जाने पर आगे श्रेष्ठ ब्राह्मणों को कर के दही अक्षत, आम के पल्लव, पुष्प तथा फलादि से सुशोभित जलपूर्ण कलश को देकर तथा अन्य ब्राह्मणों को सुवर्ण एवं सुवस्त्रादि देकर मांगलिक, शान्तिदायक निवास भवन में गृहपति को प्रवेश करना चाहिये। उस समय वेदोक्त एवं गृह्य शास्त्रोक्त विधि से बलिकर्म करके प्रासाद एवं वास्तु की शान्ति के लिए शास्त्रों में जो विधियाँ कही गई हैं, उनके अनुकूल हवन करे। सुन्दर भोजनादि द्वारा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर धूपादि सुगन्धित द्रव्यों के साथ श्वेत वस्त्र धारण कर गृह प्रवेश करना चाहिये। ॥२२—२३॥

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु विद्यानुकीर्तन नामक दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ॥२५७॥

दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—गृहस्थाश्रमवालों में कर्मयोग की सिद्धि किस प्रकार सम्पन्न होती है, क्योंकि ज्ञानयोग की अपेक्षा सहस्रों गुणों से कर्मयोग विशिष्ट माना गया है। ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिगण! ग्रहस्थाश्रमियों के कर्मयोग, देवार्चन एवं नाम संकीर्तन को मैं बतला रहा हूँ, जो भोग एवं मोक्ष दोनों का देनेवाला है और पृथ्वी तल को छोड़कर अन्य लोकों में जिसकी सत्ता नहीं है। देवताओं की मूर्तियों की प्रतिष्ठा, मूर्तिपूजा, नामसंकीर्तन, देवयज्ञोत्सव ये ही गृहस्थों के कर्मयोग हैं, इनके द्वारा गृहस्थाश्रमी भव-बन्धन से मुक्त होते हैं। सर्वप्रथम तब तक भगवान् विष्णु के स्वरूप को बतला रहा हूँ, जैसा कि कहा गया है। शंख, चक्र, गदा तथा पद्म को हाथों में धारण किये हुए, शान्त विष्णु भगवान् की प्रतिमा कही गई है। उस का शिर छत्र के आकार का होना चाहिये, शंख के समान कंधे तथा मनोहर नेत्र होने चाहियें, नासिका उठी हुई, सुडौल, कान सुतुही के आकार के तथा हाथ और वक्षस्थल विस्तृत प्रशान्त तथा चढ़ाव-उतार वाले होने चाहियें। इन विष्णु भगवान् की प्रतिमा कहीं तो आठ भुजाओंवाली होती है और कहीं चार भुजाओं वाली, दो भुजाओं की प्रतिमा पुरोहित द्वारा भवन में स्थापित करानी चाहिये। अष्टभुज भगवान् की निम्नलिखित वस्तुएँ इसप्रकार रहेंगी। विष्णु भगवान् के दाहिनी ओर के चार हाथों में खड्ग, गदा, बाण और कमल रखने चाहिये और बाएँ हाथों में धनुष, ढाल, शंख और चक्र रहने चाहियें। चतुर्भुज मूर्ति में शस्त्रों की स्थिति

बता रहा हूँ। उन वासुदेव भगवान् की प्रतिमा में दाहिनी ओर के दो हाथों में गदा और पद्म रखने चाहिये। समृद्धि की इच्छा रखनेवाले को बायीं ओर शंख और चक्र रखने चाहिये। कृष्णावतार की प्रतिमा में बायीं ओर गदा रहनी चाहिये। प्रतिमा में अपनी इच्छा के अनुरूप शंख और चक्र को ऊपर उठा हुआ निर्मित करावे, उनके दोनों पादों के मध्य में नीचे की ओर पृथ्वी की मूर्ति रहनी चाहिये और उसी प्रकार विनम्र भाव में गरुड की मूर्ति भी रहनी चाहिये। बायीं ओर से हाथों में कमल लिये हुए सुन्दर मुखवाली लक्ष्मी की स्थापना करनी चाहिये। कल्याण की कामना करनेवाले गरुड़ को भगवान् के आगे भी स्थापित करा सकते हैं। प्रतिमा के दोनों ओर श्री और पुष्टि की मूर्ति रहेंगी जो हाथों में कमल धारण किये रहेंगी। प्रतिमा के ऊपर विद्याधरों के साथ तोरण का निर्माण होना चाहिये। देवताओं की दुन्दुभी तथा गन्धर्वों के दम्पति की प्रतिमा भी रहनी चाहिये। पत्तों और लताओं से युक्त रहना चाहिये, सिंह और व्याघ्र की भी प्रतिमा साथ में बनानी चाहिये। स्तुति करते हुए बड़े-बड़े देवगण सामने खड़े हों, कल्पलता भी निर्म्मित हो। इस प्रकार विष्णु की प्रतिमा होगी, उसकी पीठिका विस्तार में तिहाई भाग जितनी होगी अथवा तीन ओर से होगी। देवता, दानव तथा किन्नरों की प्रतिमा नव ताल (अंगूठे से लेकर मध्यमा अंगुली तक फैलाने पर जितनी लम्बाई होती है, उसे ताल कहते हैं।) की होनी चाहिये। अब इसके बाद मैं प्रतिमाओं के मान एवं उन्मान की विशेषता बतला रहा हूँ, अर्थात् कितनी ऊँची, कितनी नीची, कितनी मोटी, कितनी लम्बी प्रतिमा होनी चाहिये। जाल के भीतर से सूर्य की किरणों के प्रविष्ट होने पर जो धूलिकण दिखाई पड़ते हैं उसे त्रसरेणु कहते हैं, उस आठ त्रसरेणु के बराबर एक बालाग्र होता है। उसके आठ गुने जितनी एक लिख्या और आठ लिख्या की एक यूका होती है। आठ यूका का एक जव होता है, उन आठ जवों से एक अंगुल होता है। अपनी अंगुली के परिमाण से बारह अंगुल का मुख होता है, इसी मुख के मान के परिमाण से सभी अवयवों की कल्पना करनी चाहिये। सुवर्ण की, चाँदी की, ताँबे की, पत्थर की, लकड़ी की, लोहे की, सीसा की, पीतल की, ताँबे और काँसे से मिश्रित धातु की, अथवा अन्य शुभ काष्ठों की बनी हुई देवताओं की प्रतिमा प्रशस्त मानी गयी है। अंगूठे की गाँठ से लेकर बीते भर तक की लम्बी प्रतिमा की स्थापना अपने घरों में करनी चाहिये, इससे बड़ी प्रतिमा बुद्धिमानों ने घर के लिए नहीं पसन्द की है। बड़े भवन में सोलह अंगुल की प्रतिमा रखनी चाहिये, किन्तु इससे बड़ी तो कभी नहीं स्थापित करनी चाहिये। इन प्रतिमाओं को अपनी आर्थिक स्थिति के अनुकूल मध्यम, उत्तम एवं कनिष्ट कोटि की बनानी चाहिये। प्रवेश द्वार की जो ऊँचाई हो, उसे आठ भागों में विभक्त कर दे, उसमें का एक भाग छोड़ कर जो शेष बचे, उसके दो भाग जितनी लम्बाई में प्रतिमा बनवाये। बचे हुए भाग में तीन भाग करके एक भाग में पीठिका (देवताओं की मूर्तियों के नीचे का बना हुआ आसन।) बनाना चाहिये। वह पीठिका न तो बहुत नीची हो और न बहुत ऊँची हो। प्रतिमा के मुख के मान को नव भागों में विभक्त करे। उसमें चार अंगुल में ग्रीवा तथा एक भाग में हृदय होगा। उसके नीचे के एक भाग में सुन्दर नाभि बनानी

चाहिये। उसकी गहराई तथा विस्तार भी एक ही अंगुल का कहा गया है। नाभि के नीचे एक भाग में लिंग बनाये, दो भागों में जंघों का विस्तार रखे। घुटनो को चार अंगुल में बनाये, जंघे दो भागों में प्रसिद्ध हैं, पैर चार अंगुल के हों, उसी प्रकार ऐसी मूर्ति का शिर चौदह अंगुल का बनाना चाहिये, ऐसा विधान बताया गया है। यह तो मूर्ति की ऊँचाई बताई गई अब उसकी मोटाई या विस्तार सुनिये। हे ऋषिगण! मूर्तियों के सभी अवयवों का विस्तार सुनिये। ललाट की मोटाई चार अंगुल की होनी चाहिये, नासिका भी उतने ही अंगुल की ऊँची होनी चाहिये। दाढ़ी दो अंगुल में होनी चाहिये। ओंठ भी दो ही अंगुल के विस्तार में माने गये हैं। मूर्ति के ललाट का विस्तार आठ अंगुलों का होना चाहिऐ, उतने ही विस्तार में दोनों भौहें भी बननी चाहिये। भौहों की रेखा आधे अंगुल की मोटाई में हो, जो बीच में धनुष की भाँति वक्र हो। दोनों छोरों पर उसके अग्रभाग उठे हुए हों, उसकी बनावट चिकनी तथा सुन्दर होनी चाहिये। आखों की लम्बाई दो अंगुल की हो, चौड़ाई एक अंगुल में हो। उसके मध्य भाग में ऊँचाई होनी चाहिये, छोरों पर शुभ नेत्रों में लालिमा होनी चाहिये। तारा के आधेभाग से पाँचगुनी दृष्टि बनानी चाहिये। दोनों भौहों के मध्य में दो अंगुल का अन्तर रहना चाहिये, नासिका का मूलभाग एक अंगुल में रहे। इसी प्रकार नासिका के अग्रभाग एवं दोनों पुटों को बनावे, जो नीचे की ओर झुके हुए हों। नासिक के पुटों के छिद्र आधे अंगुल के हों, दोनों कपोल दो अंगुल के हों जो कानों के मूलभाग से निकले हों। दाढ़ी का अग्रभाग एक अंगुल में तथा विस्तार दो अंगुल में होना चाहिये। आधे अंगुल में भौहों की रेखा हो, जो काली घटा के समान श्याम बनी हुई हो। नीचे का ओंठ तथा ऊपर का ओंठ आधे-आधे अंगुल के बराबर हों। उसी प्रकार नासिका के दोनों पुट निष्पाव समान बनाने चाहिये। दोनों ओठों के समीपवर्तीभागों को ज्योति (?) के आकार का बनावे और उन्हें कान के मूल से छः अंगुल दूर पर बनावे। दोनों कानों की बनावट भौहों के समान रहेगी और उनकी ऊँचाई चार अंगुल की रहेगी। कानों की बगल में दो अंगुल रिक्त छोड़े उनका विस्तार एक मात्रा का हो। दोनों कानों के ऊपर मस्तक का विस्तार बारह अंगुल का होना चाहिये। ललाट प्रदेश से पीछे की ओर आधे भाग का विस्तार अठारह अंगुल का बताया गया, इस प्रकार सारे मस्तक का विस्तार छत्तीस अंगुल का होता है। और केश समेत उसका विस्तार बयालीस अंगुल का होता है। केशों के अन्त प्रदेश से दाढ़ी तक का विस्तार सोलह अंगुल का होता है। दोनों कन्धों के विस्तार का मान चौबीस अंगुल का है, ग्रीवा की मोटाई आठ अंगुल की मानी गई है। ब्रह्मा ने स्तन और ग्रीवा के अन्तर में एक ताल का मान बताया है, इसी प्रकार दोनों स्तनों में बारह अंगुल का अन्तर रहता है। दोनों स्तनों के मण्डल दो अंगुल में कहे गये हैं, दोनों चूचक उन मण्डलों में जव जितने विस्तार में बताये जाते हैं। वक्ष स्थल की चौड़ाई दो ताल की कही गई है, दोनों कक्ष प्रदेश छः अंगुल के होते हैं, जिन्हें बाहुओं के मूल भाग तथा स्तनों के बीच में बनाना चाहिये। दोनों पैर चौदह अंगुल तथा उनके दोनों अंगूठे दो या तीन अंगुल के हों। अंगूठे का अग्रभाग उन्नत होना चाहिये तथा उसका विस्तार पाँच अंगुल में रहे। उसी

प्रकार अंगूठे के समान ही प्रदेशिनी अंगुली को भी लंबी बनाना चाहिये, उससे सोलहवें अंश में अधिक मध्यमा अंगुली होगी, अनामिका अंगुली मध्यमा अंगुली की अपेक्षा आठवें भाग जितनी न्यून रहेगी। उसी प्रकार अनामिका से आठवें भाग में न्यून कनिष्ठिका अंगुली रहेगी। इन दोनों अंगुलियों में तीन पोर बनाने चाहियें। पैरों की गाँठ दो अंगुल में मानी गयी है। दोनों ऐंड़ियाँ दो-दो अंगुल में रहें किन्तु गाँठ की अपेक्षा इसमें एक कला अधिक ही रहे। अंगूठे में दो पोर बनने चाहिये, उसका विस्तार दो अंगुल का है, प्रदेशिनी अंगुली का विस्तार तीन अंगुल का होना चाहिये। हे ऋषिगण! कनिष्ठिका अंगुली क्रमशः इससे आठवें भाग में हीन रहेगी। विशेषतया अंगूठे की मोटाई एक अंगुल की रखनी चाहिये, उसके आधे भाग जितनी अन्य शेष अंगुलियों की मोटाई रखनी चाहिये। जंघे के अग्र भाग का विस्तार चौदह अंगुल का रहे, मध्यभाग में अठारह अंगुल का विस्तार रहे, जानु के मध्यभाग में इक्कीस अंगुल का विस्तार हो, जानु भाग की ऊँचाई एक अंगुल में तथा मण्डल तीन अंगुल में हो। उरुओं के मध्यभाग का विस्तार अट्ठाईस अंगुल का हो, इसके ऊपर इकतीस अंगुल, अण्डकोश तीन अंगुल, लिंग दो अंगुल का हो। उसका विस्तार छ अंगुल का हो, मणिबन्ध आदि, केशों की रेखा, मणिकोश इन सब का विस्तार चार अंगुल का हो। कटिप्रदेश का विस्तार अठारह अंगुल में हो। स्त्रियों की मूर्ति में कटि का विस्तार बाईस अंगुल का तथा स्तन का विस्तार बारह अंगुल का होना चाहिये। नाभि के मध्यभाग का विस्तार बयालीस अंगुल का होना चाहिये। पुरुष के कटि प्रदेश में पचपन अंगुल का विस्तार तथा दोनों कक्षों के ऊपर छः अंगुल विस्तार में स्कन्धों के बनने की विधि है। आठ अंगुल के विस्तार में ग्रीवा का निर्माण कहा गया है, इसकी लम्बाई बारह कला की होनी चाहिये। दोनों भुजाओं की लम्बाई बयालीस अंगुल में हो, बाहु के मूलभाग को सोलह अंगुल के प्रमाण में बनावे। बाहु के ऊपरी अंश तक बारह अंगुल का विस्तार जानना चाहिये। द्वितीय पर्व इसकी अपेक्षा एक अंगुल न्यून कहा गया है, बाहु के मध्यभाग का विस्तार अट्ठारह अंगुल का होना चाहिये। प्रबाहु सोलह अंगुल की होनी चाहिये। हाथ के अग्रभाग का मान छः कला में कहा गया है, हथेली का विस्तार सात अंगुल का है, उसमें पाँच अंगुलियाँ मानी गई हैं। अनामिका अंगुली मध्यमा की अपेक्षा सातवें भाग जितनी हीन रहती है। उससे भी पाँचवें भाग जितनी न्यून कनिष्ठा अंगुली है। मध्यमा से पाँचवें भाग जितनी न्यून तर्जनी है, अंगूठा तर्जनी के उद्‌गम से नीचे होना चाहिये किन्तु लम्बाई में उतना ही होना चाहिये। अंगूठे का विस्तार चार अंगुल का जानना चाहिये। शेष अंगुलियों के विस्तार क्रमशः एक-एक भाग से न्यून होते जाते हैं। मध्यमा के पोरों के मध्यभाग में दो अंगुल का अन्तर रहना चाहिये। इसी प्रकार अन्य अंगुलियों के पोरों में एक-एक जव की कमी होती जाती है। अंगूठे के पोरों का मध्यभाग तर्जनी के समान ही रहना चाहिये। अगला पोर दो जव से अधिक कहा गया है, अंगुलियों के पूर्वार्द्ध में नखों को जानना चाहिये। उन नखों को चिकना, सुन्दर तथा आगे की ओर कुछ लालिमायुक्त बनाना चाहिये। मध्यभाग में पीछे की ओर कुछ नीचा तथा बगल में अंशमात्र ऊँचा बनावे। उसी प्रकार कन्धों के ऊपर दस अंगुल में केशों की लता का निर्माण करना चाहिये

स्त्री प्रतिमाओं को दुर्बलाङ्गिनी बनाना चाहिये। स्तन, उरु प्रदेश एवं जाँघों को स्थूल बनाना चाहिये। उनके उदर प्रदेश की लम्बाई चौदह अंगुल की होनी चाहिये। प्रतिमा को अनेक प्रकार के आभूषणों से विभूषित तथा उसकी भुजाओं को कुछ मृदु एवं मनोहारि बनाना चाहिये। मुखाकृति कुछ अपेक्षाकृत लम्बी हो, अलकावली उत्तम ढङ्ग से बनी हुई हो, उसकी नासिका, ग्रीवा एवं ललाट साढ़े तीन अंगुल के होने चाहिये। अधर पल्लवों का विस्तार आधे अंगुल का प्रशस्त माना गया है। दोनों नेत्र अधर पल्लवों से चार गुने अधिक विस्तृत होने चाहिये एवं ग्रीवा की बलि आधे अंगुल की ऊँची बनानी चाहिये। इस प्रकार सभी देवताओं की प्रतिमाओं एवं स्त्री देवताओं की प्रतिमाओं के निर्माण में उपर्युक्त नियम का पालन करना चाहिये। यह नव ताल के परिमाण की प्रतिमाओं का वर्णन पापों को नष्ट करनेवाला कहा गया है। ॥ १–७५ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में देवपूजा प्रसंग में प्रतिमा प्रमाण कीर्त्तन नामक दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ॥२५८॥

दो सौ उनसठवाँ अध्याय

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त देवताओं की मूर्ति के विषय में विशेषरूपेण बतला रहा हूँ। इस विषय में ब्रह्मा जी ने बताया है कि राम, विरोचन पुत्र बलि, बाराह एवं नृसिंह, इनकी मूर्तियों का परिमाण दस ताल का होता है। वामन का परिमाण सात ताल का, तथा मत्स्य एवं सूर्य का भी सात ताल का कहा गया है। अब इसके उपरान्त रुद्रादि की आकृति का वर्णन कर रहा हूँ। रुद्र को पुष्ट-भुजाओं, उन्नत एवं पुष्ट स्कन्धों तथा तपाये हुए सुवर्ण की भाँति गौरवर्ण का बनाना चाहिये,। श्वेतवर्ण, सूर्य की किरणों के समान देदीप्यमान, परमतेजोमय तथा जटा में चन्द्रमा से विभूषित बनाना चाहिये। जटा एवं मुकुटधारी तथा सोलह वर्ष की इनकी आकृति होनी चाहिये। दोनों बाहु हाथी के शुण्डादण्ड की भाँति होने चाहिये, जंघा एवं उसके मण्डल गोले हों। केशों को ऊपर की ओर उठा हुआ तथा नेत्रों को दीर्घ एवं विस्तृत बनाना चाहिये। व्याघ्रचर्मधारी तथा कटि भाग में तीन सूत्रों से विभूषित बनाना चाहिये। हार, केयूर से सुशोभित तथा सर्पों के आभूषण से इन्हें आभूषित बनाना चाहिये। शिव की भुजाओं को विविधि प्रकार के आभूषणों से विभूषित, कपोल एवं उरु भाग को पुष्ट तथा भरा हुआ और दोनों ओर दो कुण्डलों से विभूषित बनाना चाहिये। बाहुएँ जानु तक लम्बायमान, सौम्य मूर्ति, सुन्दर मुख, बायें हाथ में ढाल, दाहिने हाथ में तलवार, दाहिनी ओर शक्ति, दण्ड और त्रिशूल का निवेश करना चाहिये। बायें पार्श्व में कपाल, खट्वांग एवं नागों को रखना चाहिये, शिव जी का एक हाथ वर देने वाला है और दूसरा रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए रहता है, नन्दीश्वर पर अवस्थित हो उस समय वे नृत्य एवं अभिनय की दशा में रहते हैं। नाचते हुए शिव की प्रतिमा दस भुजाओंवाली बनानी चाहिये, उस समय गज चर्म धारण कराना चाहिये। त्रिपुरदाह के अवसर पर सोलह बाहु बनानी चाहिये। उस समय शंख, चक्र, गदा,

शाङ्‌र्ग धनुष, घण्टा, धनुष, पिनाक, विष्णुमय शर ये वस्तुएँ अधिक धारण करानी चाहिये। शिव जी की चर्तुभुज तथा अष्टभुज मूर्ति ज्ञानयोगेश्वर मानी जाती हैं। तीक्ष्ण दाँतों तथा नुकीले नासिका के अग्रभाग वाली एवं अति कराल मुखवाली मूर्ति को लोक में भैरव नाम से कहते हैं और ऐसी मूर्ति प्रत्येक देव मन्दिरों में स्थापित की जाती है। किन्तु मुख्य मन्दिर में भैरव की स्थापना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ये परम भय देनेवाले देवता हैं, इसी प्रकार नृसिंह एवं बाराह आदि भी भयंकर देवता हैं। कभी देव प्रतिमाओं को हीन अंगोंवाली अथवा अधिक अंगोंवाली नहीं बनाना चाहिये। न्यून अंगोंवाली तथा भयानक मुख-वाली प्रतिमा निश्चय ही स्वामी का विनाश कर देती है, अधिक अंगों वाली प्रतिमा शिल्पकार का हनन करती है, दुर्बल प्रतिमा धन का विनाश करनेवाली कही गई है। कृष्णोदरी प्रतिमा दुर्भिक्ष डालनेवाली तथा मांसरहित दिखाई पड़नेवाली धननाशिनी है। टेढ़ी नासिकावाली प्रतिमा स्वामी को कष्ट देनेवाली तथा सूक्ष्माङ्गी प्रतिमा भय पहुँचाने वाली मानी गयी है। चिपटी प्रतिमा दुःख एव शोक पहुँचानेवाली तथा विना नेत्र की प्रतिमा नेत्र विनाशिनी कही गई है। मुखविहीन प्रतिमा दुःखदायिनी तथा दुर्बल हाथ और पैरवाली अन्य किन्हीं अंगों से हीन, तथा विशेषकर जंघे से हीन प्रतिमा मनुष्यों को भ्रम एवं उन्माद देनेवाली कही गई हैं। सूखे हुए मुखवाली तथा कटि भाग से हीन प्रतिमा राजा को कष्ट देनेवाली कही गई है। हाथ एवं पाद से विहीन प्रतिमा महामारी का भय देनेवाली है, जंघा एवं घुटने से विहीन प्रतिमा शत्रु को कल्याण पहुँचानेवाली कही गई है। वक्षस्थल से विहीन प्रतिमा पुत्र एव मित्रों का विनाश करने-वाली है। सभी अंगों से परिपूर्ण जो प्रतिमा होती है, वह सर्वदा आयु एवं लक्ष्मी—दोनों की देनेवाली कही गई है। इस प्रकार उपर्युक्त लक्षणों से युक्त भगवान् शंकर की प्रतिमा निर्मित करानी चाहिये। उनकी प्रतिमा के चारों ओर सभी देवगणों को स्तुति करते हुए प्रदर्शित करना चाहिये—विशेषतया इन्द्र, नन्दीश्वर एवं महाकाल से युक्त शंकर को बनाना चाहिये। चारों ओर विनम्रभाव से लोकपाल एवं गणपति गणों को बनाना चाहिये। नचाते एवं भृङ्गी बजाते हुए भूतों तथा बेतालों की मूर्तियाँ भी बनानी चाहिये, जो सभी हृष्ट-पुष्ट तथा परमेश्वर शिव की स्तुति में लीन हों। गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, अप्सरा एवं गुह्यकों के पति तथा महेन्द्र प्रभृति सैकड़ों देवताओं एवं श्रेष्ठ मुनिवरों से नमस्कार किये जाते हुए, अक्ष माला धारण किये हुए, सैकड़ों वृक्षों के पुष्पादि रूप उपहारों को समर्पित करते हुए सैकड़ों गणों द्वारा पूजित, अमरों एवं मनुष्यो के पूजनीय त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर की प्रतिमा बनानी चाहिये। ॥१-२६॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रतिमा लक्षण नामक दो सौ उनसठवाँ अध्यायः समाप्त ॥२५९॥

दो सौ साठवाँ अध्याय

सूत ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं अर्धनारीश्वर शिव की सुन्दर प्रतिमा के निर्माण का प्रकार बतला रहा हूँ। देवदेव शंकर जी के आधे भाग में अति सुन्दर स्त्री का रूप निर्मित होता है। अर्ध

भाग में जटा तथा बाल चन्द्रमा को कला से युक्त शिव की प्रतिमा बनानी चाहिये, उमा के अर्ध भाग में सीमन्त (केशकलाप) एवं तिलक निर्मित करनी चाहिये। इस मूर्ति में दाहिने कान के समीप नागराज वासुकि तथा बाएँ कान के समीप कुण्डल बनाना चाहिये। उसके ऊपर की ओर केशों का आभूषण तथा वालिका (वाली) बनानी चाहिये। दाहिने हाथ में कपाल भी बनाना चाहिये, शूल धारी देवदेव शंकर के दाहिने हाथ में त्रिशूल भी बनाना चाहिये। बायीं ओर दर्पण विशेषतया कमल देना चाहिये, बायें बाहु को केयूर तथा बलय से युक्त बनाना चाहिये। मणि एवं मोतियों से संयुक्त यज्ञोपवीत की रचना करनी चाहिये। प्रतिमा के बायें भाग की ओर स्तन का भार निर्मित करना चाहिये, जो पीले वर्ण का हो। हार का आधा भाग उज्ज्वल वर्ण का हो, नितम्ब का आधा भाग भी उसी प्रकार श्वेतवर्ण का होना चाहिये। लिंग से ऊपर का भाग सिंह के चर्म से परिवृत्त बनाना चाहिये। बायें भाग को कटि में पहिने हुए तीन सूत्रों से युक्त विविध प्रकार के रत्नों से विभूषित एवं लम्बे वस्त्र से सुशोभित बनाना चाहिये। दाहिने भाग को सर्पों से घिरा हुआ बनाना चाहिये। देव का दाहिना पैर कमल के ऊपर विराजमान रहता है, उससे कुछ ऊपर की ओर बायाँ पैर नूपुर से विभूषित रहना चाहिऐ, अंगुलियों में विविध प्रकार के रत्नों से विभूषित अंगूठी रहनी चहिये। सर्वदा पार्वती के चरणों को महावर के रंग से रँगा हुआ प्रदर्शित करना चाहिये। इस प्रसंग में मैं अर्धनारीश्वर के रूप का यह प्रकार आप लोगों को बता चुका। ऋषिगण! अब उमा-महेश्वर की मूर्ति के लक्षण सुनिये। उक्त उमामहेश्वर की प्रतिमा मनोहर लीलाओं से युक्त होती है। उसे जटाओं के भार तथा चन्द्रमा से विभूषित दो अथवा चार बाहुओं से युक्त बनाना चाहिये। तीन नेत्र से युक्त शिव का एक हाथ उमा के स्कन्ध पर विराजमान बनाना चाहिये। दाहिने हाथ में कमल तथा शूल हो, तथा बाएँ हाथ को उमा के स्तन पर न्यस्त बनाना चाहिये। इस मूर्ति को विविध प्रकार के रत्नों से विभूषित तथा व्याघ्र के चर्म से परिवृत्त करना चाहिये। इस मूर्ति को भली भाँति प्रतिष्ठित सुन्दर वेशों से सुसज्जित तथा मुखभाग को आधे चन्द्रमा की भाँति मनोहर बनाना चाहिये। इस मूर्ति के बायें भाग में देवी की मूर्ति होगी, जिसके दोनों वक्ष भाग बाहुओं में निगूढ़ रहेंगे। शिर के विविध आभूषणों से आभूषित अलकावलि द्वारा पार्वती की प्रतिमा का मुख भाग अति ललित बनाना चाहिये, जिसमें बालिका (बाली) से विभूषित कान एवं तिलक से विभूषित उज्ज्वल ललाट शोभायमान हो रहा हो। कहीं-कहीं मणियों से जटित कुण्डलों से कानों के आभरण बनते हैं। पार्वती की उक्त प्रतिमा में हार एवं केयूर शोभायमान हों तथा उसका ध्यान शिव के मुख की ओर हो। देवदेव शंकर के बायें भाग को लीला पूर्वक स्पर्श कर रही हों तथा उसका दाहिना हाथ दाहिने भाग से बाहर की ओर बना हुआ हो। अथवा किसी किसी प्रतिमा में शंकर के दाहिने कंधे पर रहता है और अंगुलियों के नखों से कुक्षि प्रदेश में स्पर्श करता रहता है। बाएँ हाथ में दर्पण तथा अति सुन्दर कमल देना चाहिये, नितम्ब में लम्बे तीन कटि-सूत्र बने रहने चाहिये। पार्वती के दोनों ओर जया, विजया, स्वामिकार्त्तिकेय तथा गणेश को बनाना चाहिये, और तोरण द्वार पर शिव के गणों तथा यक्षों को बनाना चाहिये। उसी प्रकार माला, विद्याधरों

एवं वीणा से सुशोभित अप्सराओं के समूह बनाने चाहिये। समृद्धि के चाहनेवालों को उमेश शिव जी की इस प्रकार की प्रतिमा बनवानी चाहिये। अब सभी पापों के विनाशक शिवनारायण की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ। इस प्रतिमा के बाईं ओर के आधे भाग में विष्णु भगवान् तथा दाहिनी ओर के आधे भाग में शूलपाणि को बनाना चाहिये। कृष्ण की दोनों भुजाएँ मणिजटित केयूर से विभूषित होनी चाहियें। दोनों भुजाओं में शंख एवं चक्र धारण किये हों, तथा मनोहर अंगुलियाँ लालवर्ण की बनी हुई हों। चक्र के स्थान में गदा भी दे दी जानी चाहिये, जो नीचे की ओर हो। उत्तर ओर शंख देना चाहिये कटि के आधे भाग में उज्ज्वल आभूषण हो। पीले वस्त्र पहिनाये गये हों तथा चरण में मणिजटित आभूषण हों। उक्त मूर्ति का दाहिना भाग जटा के भार तथा आधे चन्द्रमा रूप आभूषण से विभूषित बनाना चाहिये। वर देनेवाले दाहिने हाथ को भुजंगों के हार रूप वलय से विभूषित करना चाहिये। दूसरे हाथ को सुन्दर त्रिशूल से विभूषित बनाना चाहिये। मूर्ति में यज्ञोपवीत के स्थान पर सर्प बने हों, कटि के आधे भाग में गजचर्म परिवृत्त हो। नाग से विभूषित चरण मणियों तथा रत्नों से अलंकृत हों। शिव-नारायण के उत्तम स्वरूप का निर्माण इस प्रकार करना चाहिये। अब हाथ में पद्म धारण किये हुए गदाधारी महाबाराह की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ, उनके दाँतों के अर्धभाग अतितीक्ष्ण हों, थूथन बना हुआ हो, मुख हो, बायीं केंहुनी पर पृथ्वी हो, दंष्ट्रा के अग्रभाग पर कमलयुक्त भयभीत उवारी हुई पृथ्वी की प्रतिमा हो, जिसका मुख अति विस्मय से सुप्रसन्न हो, ऐसी पृथ्वी को मूर्ति के ऊपर की ओर बनाना चाहिये। उस पृथ्वी का दाहिना हाथ कटि प्रदेश पर हो, नागेन्द्र के मस्तक पर तथा कूर्म पर महाबाराह के एक-एक चरण अवलम्बित हों। सभी लोकपाल गण स्तुति करते हुए चारों ओर बनाये गये हों। नृसिंह की प्रतिमा आठ भुजाओं से युक्त बनानी चाहिये। उन्हीं के अनुरूप अति भयानक सिंहासन का निर्माण करना चाहिये, उनका मुख और आखें फैली हुई होनी चाहियें। कानों तक विकराल जटाएँ बिखरी होनी चाहियें, तथा दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु को फाड़ रहे हों—ऐसा बनाना चाहिये। उस दैत्य के पेट से उसकी आतें बाहर गिर पड़ी हों, मुख से रुधिर गिर रहा हो, भृकुटी, वदन एवं आँखें अति विकराल हों। कहीं कहीं पर नृसिंह की प्रतिमा को युद्ध सामग्रियों से युक्त दैत्यों से युद्ध करती हुई बनानी चाहिये, और अतिशय थके हुए दैत्य से बारम्बार तर्जित किये जाते हुए दिखाना चाहिये। उस प्रतिमा में दैत्य को तलवार एवं ढाल धारण किये हुए प्रदर्शित करना चाहिये एवं विष्णु भगवान् की श्रेष्ठ देवगणों द्वारा प्रार्थना की जा रही हो—यह भी दिखाना चाहिये। त्रिविक्रम की प्रतिमा को बता रहा हूँ, जो निखिल ब्रह्माण्ड को उल्लंघित करने के लिए भयानक आकृति से युक्त रहते हैं। उनके चरणों के समीप में ऊपर की ओर बाहु का निर्माण करना चाहिये। नीचे की ओर उन्हीं की भाँति वामन को कमण्डलु के साथ बनाना चाहिये। दाहिनी ओर छोटी-सी छतरी देनी चाहिये, मुख को दीनता व्यक्त करनेवाला बनाना चाहिये। उन्हीं की बगल में जल के गेड़वे को लिये हुए बलि का निर्माण होना चाहिये, और उसी स्थल पर बलि को बाँधते हुए गरुड को दिखाना चाहिये। इसी प्रकार मत्स्य (मछली) के आकार में मत्स्य भगवान् की तथा कच्छप

की आकृति के समान कूर्म भगवान् की प्रतिमा बनानी चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त नियमों के साथ भगवान् विष्णु की विविध प्रतिमाओं का निर्माण करना चाहिये। ब्रह्मा को कमण्डलु लिये हुए चार मुखोंवाला बनाना चाहिये, कहीं पर हंस पर बैठा हुआ तथा कहीं पर कमल पर विराजमान बनाना चाहिये। उनकी प्रतिमा का रंग कमल के भीतरी भाग के समान हो, चार बाहुएँ हों, सुन्दर नेत्र हों, कमण्डलु बाएँ हाथ में हो, दाहिने हाथ में स्रुवा हो। बाएँ हाथ में भी दण्ड तथा स्रुवा धारण किये हुए प्रतिमा बनाई जाती है। उन के चारों ओर देव, गन्धर्व एवं मुनिगण स्तुति कर रहे हों—ऐसा दिखाया जाना चाहिये। ऐसा उपक्रम दिखाया जाना चाहिये मानों वे तीनों लोकों की रचना में प्रवृत्त हो रहे हैं। श्वेत वस्त्र धारण किये हुए ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्मा की ऐसी प्रतिमा बनानी चाहिये। मृग चर्मधारी तथा दिव्य यज्ञोपवीतधारी भी उन्हें बनाना चाहिये। उनकी बगल में आज्यस्थाली (घृत की थाली), रखी गई हो तथा चारों वेदों की मूर्तियाँ हों। उनके बाएँ बगल में सावित्री तथा दाहिने बगल में सरस्वती की प्रतिमा बनी हुई हो। पितामह के चरणों के अग्रभाग के पास मुनियों के समूह बने हुए हों। अब मध्याह्न के सूर्य की भाँति परम तेजोमय कार्त्तिकेय की प्रतिमा का प्रकार बता रहा हूँ। उन सुकुमार कार्त्तिकेय को कमल के मध्यभाग के समान रंग में, उनके सुन्दर बाहन मयूर से युक्त, दण्ड एवं चीर से सुशोभित बनाना चाहिये। अपने इष्ट नगर में उनकी बारह भुजाओं वाली प्रतिमा बनानी चाहिये, तुच्छ नगर में चार भुजाओं से तथा वन और साधारण ग्राम में दो बाहुवाली प्रतिमा स्थापित करानी चाहिये। शक्ति, पाश, खड्ग, शर और शूल उनके हाथों में शोभायमान हों। एक हाथ अभयदान तथा वरदान देनेवाला बनाना चाहिये—ये छः हाथ केयूर तथा कटक से विभूषित उज्ज्वल वर्ण के दाहिनी ओर बनाने चाहिये। धनुष, पताका, मुष्टि, फैली हुई तर्जनी, ढाल, तथा ताम्रचूड़ (मुर्गा)—इन वस्तुओं तथा विशेषताओं से युक्त बायीं ओर के हाथों को उसी वर्ण का बनाना चाहिये। दो भुजाओंवाली कार्त्तिकेय की प्रतिमा के बाएँ हाथ में शक्ति तथा दाहिने हाथ को कुक्कुट के ऊपर न्यस्त बनाना चाहिये। चतुर्भुज कार्त्तिकेय की प्रतिमा के बाईं ओर के दो हाथों में शक्ति और पाश रहने चाहिये, दाहिनी ओर के तीसरे हाथ में तलवार हो और चौथा हाथ वरदान तथा अभय दान देनेवाला होना चाहिये। अब हाथी के मुखवाले त्रिलोचन गणेश की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ, उन्हें लम्बे उदरवाला, चार बाहुयुक्त, सर्प का यज्ञोपवीतधारी बनाना चाहिये। तथा विस्तृत कर्ण, विशाल तुण्ड, एक दाँत वाला तथा फूले हुए उदरवाला बनाना चाहिये। उनके दाहिने हाथ में अपना दाँत तथा अन्य हाथ में कमल होना चाहिये। प्रतिमा की बाईं ओर मोदक तथा परशु बनाने चाहिये, वृहत् होने के कारण मुख नीचे की ओर विस्तृत, स्कन्ध, पाद एवं हाथ पुष्ट होने चाहिये। ऋद्धि तथा सिद्धि उनकी दोनों ओर से युक्त हों, नीचे की ओर मूषक बना हुआ हो। अब दस भुजाओं वाली कात्यायनी के रूप का वर्णन कर रहा हूँ। तीनों देवताओं की आकृतियों की अनुकरण करनेवाली, जटा जूट से विभूषित, अर्धचन्द्र से परिलक्षित, तीन नेत्रोंवाली, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुखवाली, अलसी के पुष्प के समान नील वर्णवाली, तेजोमय सुन्दर नेत्रों से विभूषित, नव यौवन सम्पन्न, सभी प्रकार के आभूषणों से विभूषित, सुन्दर मनोहारि दाँतों से युक्त, पीन एवं उन्नत स्तनोंवाली

त्रिभंगीयुक्त, महिषासुरनाशिनी की प्रतिमा बनानी चाहिये। त्रिशूल को उसके दाहिने हाथ में देना चाहिये तथा खड्ग और चक्र क्रमशः उसके नीचे होने चाहियें, तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति को भी बायीं ओर से जानना चाहिये। ढाल, पूर्ण धनुष, पाश, अंकुश, घण्टा तथा परशु—इन सब को भी बायीं ओर से सन्निविष्ट करना चाहिये। प्रतिमा के नीचे की ओर शिरोविहीन महिषासुर की प्रतिमा बनानी चाहिये। फिर शिर के कटने पर शरीर से निकलता हुआ दानव दिखाना चाहिये। जिसके हाथ में खड्ग हो, हृदय शूल से भिन्न हो, बाहर निकलती हुई जिसकी आतें दिखाई पड़ रही हों, गिरते हुए रक्त से सारे अंग लाल हो रहे हों, फैले हुए लाल नेत्र दिखाई पड़ रहे हों, नागपाश से चारों ओर घिरा हुआ हो, भृकुटी तथा भीषण मुख बने हों, दुर्गा द्वारा पाशयुक्त बाएँ हाथ से पकड़ा गया हो। देवी के सिंह को मुख से रक्त वमन करते हुए प्रदर्शित करना चाहिये। देवी का दाहिना पैर समान रूप से सिंह के ऊपर स्थित हो तथा बायाँ पैर कुछ ऊपर की ओर हो। उसका अंगूठा महिष के ऊपर लगा हुआ हो, देवतागण चारों ओर से स्तुति कर रहे हों—यह भी दिखाना चाहिये। अब सुरराज इन्द्र की प्रतिमा का प्रकार विशेषरूपेण बतला रहा हूँ। सहस्र नेत्रोंवाले देवेन्द्र को मत्तगयन्द पर विराजमान बनाना चाहिये, वक्षस्थल एवं मुख विशाल हों, स्कन्ध सिंह के समान हो, भुजाएँ विशाल हों, किरीट एवं कुण्डल धारण किये हों, जघन स्थल भुजाएँ तथा आँखें विस्तृत तथा पीवर हों, वज्र एवं कमल धारण किये हों, तथा विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित हों, देवता तथा गन्धर्वगण पूजा कर रहे हों, अप्सराओं का समूह सेवा में लगा हो, पार्श्व में छत्र चमर धारण किये हुए स्त्रियाँ खड़ी हों, ऐसा दिखाना चाहिय। सिंहासन पर भी स्थित देवराज की प्रतिमा गन्धर्वों के गणों से युक्त बनानी चाहिये, उसकी बाईं ओर इन्द्राणी की प्रतिमा हो, जो कमल धारण किये हुए विराजमान हो। ॥१-७०॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रतिमा लक्षण नामक दो सौ साठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६०॥

दो सौ इकसठवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण! अब प्रभाकर सूर्य की प्रतिमा को सुनिये। उन सूर्य देव को सुन्दर नेत्रों से सुशोभित, हाथ में कमल धारण किये हुए, रथ पर विराजमान बनाना चाहिये। उस रथ में सात अश्व हों, एक चक्का हो। सूर्य देव विचित्र मुकुट धारण किये हों, उनकी कान्ति कमल के मध्यवर्ती भाग के समान हो, विविध प्रकार के आभूषणों से आभूषित दोनों भुजाओं में वे कमल धारण किये हुए हों, वे कमल उनके स्कन्ध देश पर लीलापूर्वक सदैव धारण किये गये बनाने चाहियें। उनका शरीर पैर तक फैले हुए वस्त्र में छिपा हुआ हो। कहीं पर चित्रों में भी उनकी प्रतिमा प्रदर्शित की जानी चाहिये। उस समय उनकी मूर्ति दो वस्त्रों में ढँकी हुई हो। दोनों चरण तेजोमय हों, मूर्ति के दोनों ओर दण्डी और

पिंगल नामक दो प्रतिहारियों को रखना चाहिये, उन दोनों पार्श्ववर्ती पुरुषों के हाथों में खड्ग हो। एक पार्श्व में हाथ में लेखनी लिये हुए अविनाशी धाता की मूर्ति हो और चारों ओर विभिन्न विभिन्न देवगण निर्मित किये गये हों। इस प्रकार दिवाकर की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिये। इन सूर्य का सारथी अरुण है, जिसकी कान्ति पद्मिनी के पत्रों के समान है, उसके दोनों अगल बगल के दो अश्व, जो अन्त में स्थित हैं लम्बी ग्रीवावाले तथा अति सुन्दर बनाने चाहिये। भुजङ्गों की रस्सी से बँधे हुए उन सातों अश्वों को लगाम युक्त रहना चाहिये। इस मूर्ति को पद्म पर अथवा बाहन पर अवस्थित बनाना चाहिये, उसके हाथों में पद्म रहने चाहिये। अब सभी प्रकार के मनोरथों एवं फलों को देनेवाले अग्नि के स्वरूप का लक्षण बतला रहा हूँ। अर्धचन्द्राकार आसन पर सुवर्ण के समान कान्तिवाले प्रज्वलित अग्नि की प्रतिमा बनानी चाहिये, उदयकालीन सूर्य की भाँति मुख दिखाना चाहिये, यज्ञोपवीत धारी तथा लंबी दाढ़ीवाला बनाना चाहिये। उनके बाएँ हाथ में कमण्डलु तथा दाहिने में अक्षसूत्र रहना चाहिये। ज्वालाओं के मण्डल से विभूषित इनका उज्ज्वल बाहन अज बनाना चाहिये। अथवा मस्तक में सात ज्वालाओं से युक्त इनकी प्रतिमा को कुण्ड के मध्य में स्थापित करना चाहिये। अब दण्ड-पाशधारी ऐश्वर्यशाली यमराज की प्रतिमा के निर्माण का प्रकार बतला रहा हूँ। महान् महिष पर समारूढ काले अंजन समूह के समान दिखाई पड़नेवाले सिंहासन पर बैठे हुए भी प्रदीप्त अग्नि के समान विकराल नेत्रोंवाले यम की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिये। उनके समीप महिष, चित्रगुप्त के विकराल अनुचर वर्ग, मनोहर आकृतिवाले देवताओं तथा असुन्दर आकृतिवाले असुरों की आकृतियों का भी निर्माण होना चाहिये। लोकपति राक्षसेन्द्र नैर्ऋत की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ। मनुष्य पर आरूढ महान् आकारवाले चारों ओर राक्षससमूहों से घिरा हुआ, खड्ग हाथ में लिये हुए, अति नीलवर्ण, काले कज्जलगिरि के समान दिखाई पड़नेवाले, नर समूहों से संयुक्त विमान पर समारूढ़ पीलेरंग के आभूषणों से विभूषित बनाना चाहिये। महाबलवान् हाथ में पाश धारण करनेवाले वरुण की प्रतिमा का वर्णन कर रहा हूँ। उनकी कान्ति शंख अथवा स्फटिक के वर्ण की होती है, श्वेत हार तथा वस्त्र से विभूषित रहते हैं, मीन के आसन पर विराजमान, शान्त मुद्रायुक्त युवावस्था एवं तिरछी भौहोंवाले हैं। मृग पर अधिरूढ वरदायक पताका एवं ध्वजा से विभूषित दोनों ओर कुण्डलों से अलंकृत कुवेर को बतला रहा हूँ, वे महान् उदरवाले, विशालकाय एवं आठ निधियों से युक्त हैं, बहुतेरे गुह्यक गण उन्हें घेरे रहते हैं, जिनके हाथ धन सम्पत्ति से युक्त रहते हैं। वे कुवेर सर्वदा केयूर तथा हार से विभूषित तथा श्वेत वस्त्रधारी रहते हैं, गदाधारी भी कुवेर की प्रतिमा बनाई जानी चाहिये। उस समय उन्हें वरदान देने में तत्पर मुकुट से विभूषित तथा नर युक्त विमान पर विराजमान, इस प्रकार से निर्मित करना चाहिये। इसी प्रकार ईश, धवल नेत्रोंवाले, श्वेत कान्तिवाले, हाथों में त्रशूल लिये हुए, त्रिनेत्र वृषभारूढ देवाधिदेव शंकर की प्रतिमा का प्रकार भी बताया जाता है। अब क्रमानुसार मातृकाओं की प्रतिमाओं का लक्षण बतला रहा हूँ। ब्रह्माणी की प्रतिमा ब्रह्म के समान चार मुखोंवाली तथा चार भुजाओं वाली बनानी चाहिये। उन्हें हंस पर समासीन अक्षसूत्र एवं कमण्डलु

से विभूषित करना चाहिये। इसी प्रकार महेश्वर की प्रतिमा के अनुरूप माहेश्वरी की प्रतिमा निर्मिति करनी चाहिये। इन्हें जटा एवं मुकुट से विभूषित, वृषभासीन, मस्तक में चन्द्रमा से विभूषित, तीन हाथों में कपाल, शूल, एवं खट्वाँग से युक्त तथा चौथे हाथ को वरदान देने के लिए फैलाया हुआ बनाना चाहिये। स्वामि-कार्त्तिकेय के समान कौमारी की प्रतिमा निर्मित करनी चाहिए, जो श्रेष्ठ मयूर के आसन पर समारूढ़ हों, लाल वस्त्र तथा शूल और शक्ति धारण किये हुए हों, हार एवं केयूर से युक्त, तथा हाथों में कृकवाकु (मुर्गा) धारण किये हों। वैष्णवी विष्णु के समान गरुड के ऊपर विराजमान हों, चार बाहुवाली हों। एक भुजा वरदार देने के लिए उद्यत-सी दिखाई पड़ती हों, तीन भुजाओं में शंख, चक्र और गदा हो, बालक से युक्त सिंहासन पर बैठी हुई भी प्रतिमा निर्मित की जाती है। अब महिष के ऊपर बैठी हुई बाराही की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ, वे देवी बाराह के समान रहती हैं तथा शिर पर चामर धारण किये हुए रहती हैं। हाथों में गदा और चक्र धारण किये हुए बड़े-बड़े दानवों के विनाश में तत्पर रहती हैं। इन्द्राणी को इन्द्र के समान वज्र, शूल और गदा धारण किये हुए हाथी पर विराजमान बनाना चाहिये। वे देवी बहुत-से नेत्रों से युक्त, तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्तिवाली, दिव्य अभूषणों से विभूषित रहती हैं, तीक्ष्ण खड्ग उनके हाथों में रहता है। उन योगेश्वरी की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ, जिनकी जिह्वा लम्बी, केश ऊपर की ओर उठे हुए तथा हड्डियों के टुकड़ों से जो विभूषित रहती हैं। उनके दाँत तथा मुख अति विकराल रहते हैं। उदर को अति दुर्बल बनाना चाहिये, कपालों की मालाएँ तथा मुण्ड मालाओं से विभूषित बनाना चाहिये। बाएँ हाथ में रक्त से भींगा हुआ कपाल रहेगा, जो मांस तथा रक्त से पूर्ण रहता है। दाहिने हाथ में शक्ति रहेगी। उस योगेश्वरी को प्रतिमा गृद्ध पर अथवा काक पर भी बैठी बनायी जानी चाहिये। शरीर में मांस न हो, तथा उदर अति कृश हो, मुख अति कराल हो। उसी के अनुरूप तीन नेत्र भी बनाने चाहिये। चामुण्डा को घण्टा धारण किये हुए तथा बाघ के चर्म से सुशोभित बनाना चाहिये, उसी प्रकार कालिका को नग्न रूप से कपाल धारण किये हुए गधे पर अवस्थित बनाना चाहिये तथा सुन्दर लाल वर्ण के पुष्पों के आभरण तथा झाड़ू की ध्वजा से युक्त प्रदर्शित करना चाहिये। इन मातृकाओं के समीप सर्वदा गणेश की प्रतिमा भी रखनी चाहिये, वे वीरेश्वर भगवान् वृषभारुढ़ जटा धारण किये हुए, हाथ में वीणा धारण किये हुए त्रिशूल से सुशोभित मातृकाओं के आगे विराजमान रहते हैं। नवीन अवस्थावाली लक्ष्मी देवी की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ। उन सुन्दर नवयौवनावस्था वाली लक्ष्मी को उन्नत कपोल, लाल ओष्ठ, तिरछी भौहें, उठे हुए विशाल उरोजवाली तथा मणिजटित कुण्डल से विभूषित बनाना चाहिये। उनका मुखमण्डल अति सुन्दर तथा शिर केश विन्यास से विभूषित रहना चाहिये। अथवा पद्म, स्वस्तिक तथा शंखों से युक्त कुण्डल एवं अलकावलि से सुशोभित कञ्चुक शरीर में धारण किये हुए तथा दोनों स्तनों पर हार की लरें शोभित हो रही हों—ऐसा निर्मित करना चाहिये। हाथी के शुण्डा दण्ड की भाँति स्थूल तथा विशाल दोनों भुजाएँ केयूर तथा कटक से विभूषित हों, बाएँ हाथ में कमल तथा दाहिने हाथ में श्रीफल देना चाहिये। उसी

प्रकार मेखला का आभूषण भी पहिनाना चाहिये, शरीर की कान्ति तपाये हुए सुवर्ण के समान गौर वर्ण की होनी चाहिये। विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित तथा सुन्दर मनोहारी वस्त्रों से सुशोभित करना चाहिये। उन लक्ष्मी के पार्श्व में चामर धारण किये हुए अन्य स्त्रियों की प्रतिमाएँ भी निर्मित करनी चाहिये; वे लक्ष्मी पद्म के सिंहासन पर बने हुए पद्म के आसन पर ही समासीन हों। ऊपर से झज्झर को शुण्डा दण्ड में लिये हुए दो हाथी स्नान करा रहे हों, उन दोनों हाथियों के अतिरिक्त दो दूसरे हाथी उन हाथियों पर जल को झज्झर द्वारा छोड़ रहे हों। गन्धर्व, यक्ष तथा लोकेशगण स्तुति पाठ कर रहे हों। इसी प्रकार यक्षिणी की प्रतिमा सिद्धों एवं असुरों से सेवा की जाती हुई बनानी चाहिये। उसके अगल बगल में दो कलश रहें तथा तोरण में देवताओं और दानवों की प्रतिमा रहे। नागों की भी प्रतिमा वहाँ रहे, जो खड्ग तथा ढाल धारण किये हों, नीचे की ओर उनका शरीर बनाना चाहिये, नाभि से ऊपर मनुष्य की आकृति रहनी चाहिये। शिर में बराबरी से दिखाई पड़नेवाले दो जिह्वा युक्त फण बनाने चाहिये। पिशाच, राक्षस, भूत, वेताल आदि जातियों के लोगों को भी बनाना चाहिये जो कि देखने में अति विकृत, भयानक तथा मांसरहित दिखाई दें। क्षेत्रपाल को जटाओं से युक्त, विकृत मुखवाला, नग्न, शृगाल तथा कुत्तों से सेवित बनाना चाहिये, कपाल उसके बाएँ हाथ में देना चाहिये जो शिर के केशों से घिरा हुआ हो। दाहिने हाथ में असुरों का विनाश करनेवाली छूरी देनी चाहिये। अब इसके बाद दो भुजाओंवाले कुसमायुध कामदेव की प्रतिमा का प्रकार बतला रहा हूँ। उनके एक पार्श्व में मकर की ध्वजा के समेत अश्वमुख का निर्माण करना चाहिये। दाहिने हाथ में पुष्प का बाण तथा बायें हाथ में पुष्पमय धनुष होना चाहिए, दाहिनी ओर भोजन की सामग्रियों के साथ प्रीति की प्रतिमा होनी चाहिये। उनकी बाईं ओर रति की प्रतिमा तथा सारस से युक्त शय्या हो। उसी के बगल में वस्त्र, नगाड़ा तथा कामलोलुप खर होना चाहिये। प्रतिमा के एक बगल में जल की बावली तथा नन्दनवन हो। इस प्रकार भगवान् कुसुमायुध को प्रयत्नपूर्वक अति सुन्दर बनाना चाहिये। प्रतिमा की मुद्रा कुछ वंकिम हो, मुख विस्मय युक्त कुछ कुछ मुस्कराता हुआ हो। हे ऋषिगण! मैंने संक्षेप में प्रतिमाओं का यह लक्षण बतलाया है, इन्हें विस्तारपूर्वक बतलाने की क्षमता तो बृहस्पति भी नहीं रखते। ॥१-५७॥

श्री मात्स्य महापुराण में देवतार्चानुकीर्तन प्रसंग में प्रतिमा लक्षण नामक दो सौ इकसठवाँ अध्याय समाप्त। ॥२६१॥

दो सौ बासठवाँ अध्याय

सूत ने कहा—अब क्रमशः पीठिका के लक्षणों को मैं आप लोगों को बतला रहा हूँ, सुनिये। पीठिका की ऊँचाई को सोलह भागों में विभक्त करे। उसमें एक भाग तो पृथ्वी में घुसा हुआ हो। उसके ऊपर के चार भाग जगती माने गये हैं। उनके ऊपर का एक भाग वृत्त कहलाता है, उसके ऊपर पटल भाग से लेकर एक भाग वृत्त, फिर तीन भागों में कण्ठ, उसके ऊपर तीन भागों में कण्ठपट, उसके

ऊपर दो भागों में ऊंर्ध्वपट्ट तथा शेष भाग को पट्टिका कहा जाता है। एक-एक भाग जगती पर्यन्त दूसरे से प्रविष्ट रहते हैं। फिर शेष पट्टिका पर्यन्त सब का निर्गम होता है। पट्टिका में जल के निकलने के लिए प्रणाली बना देनी चाहिये। यह सामान्य रूप से सभी पीठिकाओं का लक्षण है। हे ऋषिगण! अब विशेष रूप से देवताओं के भेद से पीठिकाओं की विशेषता सुनिये। स्थण्डिला, वापी, यक्षी, वेदी, मण्डला, पूर्णचन्द्रा, वज्रा, पद्मा, अर्धशशी तथा त्रिकोण ये पाठिकाओं के भेद हैं। अब इनकी अवस्थिति सुनिये। स्थण्डिला पीठिका के चार कोने होते हैं और मेखला आदि इसमें कुछ नहीं होती। वापी पीठिका वह है जिसमें दो मेखलाएँ बनी हों, यक्षी को तीन मेखलायुक्त जानना चाहिये। चार पहलवाली आयताकार पीठिका वेदी कही जाती है, उसे लिंग की स्थापना में नहीं प्रयुक्त करना चाहिये। जो गोलाकार मण्डल से युक्त तथा मेखलाओं से युक्त पीठिका है वह गणों की प्रिय कही जाती है। लाल वर्णवाली, दो मेखलाओं से युक्त पीठिका का नाम पूर्णचन्द्रा है। तीन मेखलाओं से युक्त छः कोनेवाली पीठिका को वज्रिक कहते हैं। मूल भाग में कुछ छोटी, सोलह पहलवाली पीठिका पद्मा कही जाती है। उसी प्रकार धनुष के आकारवाली पीठिका को अर्द्धचन्द्रा कहते हैं। ऊपर की ओर से त्रिशूल के समान दिखाई पड़नेवाली पूर्व तथा उत्तर की ओर कुछ ढालू उत्तम लक्षणों से युक्त पीठिका को त्रिकोण कहते हैं, इसके तीन भाग परिधि के बाहर रहेंगे और मूल, अग्र तथा ऊपर—इन तीन भागों के विस्तार अधिक रहेंगे। त्रिभाग में सुन्दर जल निकलने की प्रणाली बनी होनी चाहिये। पीठिका को लिंग के आधे भाग की मोटाई से युक्त बनाना चाहिये एवं लिंग के तीन भाग जितने प्रमाण में मेखला का खात बनाना चाहिये। अथवा चौथाई हीन बनाना चाहिये किन्तु सर्वदा सुन्दर बनाने का ध्यान रखना चाहिये। उत्तर की ओर स्थित जल निकलने की प्रणाली प्रमाण से कुछ अधिक ही बनानी चाहिये। स्थण्डिला पीठिका के स्थापित करने से आरोग्य तथा विपुल धन-धान्यादि की प्राप्ति होती है। यक्षी गौ देने वाली कही गई है, वेदी सम्पत्ति देने वाली कही गई है, मण्डला में कीर्ति-प्राप्ति होती है, पूर्ण चन्द्रिका वरदान देने वाली कही गई है। वज्रा दीर्घायु प्रदान करने वाली तथा पद्मा सौभाग्यदायिनी कही गई है, अर्धचन्द्रा पीठिका पुत्र प्रदान करने वाली तथा त्रिकोणा शत्रुनाशिनी है। देवता की पूजा के लिये ये दस पीठिकाएँ कही गई हैं। पत्थर की मूर्ति में पत्थर की पीठिका स्थापित करनी चाहिये। मिट्टी की प्रतिमा में मिट्टी की पीठिका देनी चाहिये। काष्ठ की प्रतिमा में काष्ठ की पीठिका तथा मिश्रित धातुओं की प्रतिमा में मिश्रित धातुओं की पीठिका रखनी चाहिये। मंगल फल की कामना करनेवालों को दूसरे प्रकार की पीठिका नहीं देनी चाहिये। इस पीठिका की लम्बाई मूर्ति में बराबर नहीं रखी जाती इसी प्रकार लिंग की पीठिका में भी लम्बाई में समानता नहीं रखी जाती है। जिस देवता की जो पत्नी हो उसे भी पीठ में निर्मित करना चाहिये। यह संक्षेप में मैंने आप लोगों को पीठिका का लक्षण बतलाया है। ॥१-२१॥

श्री मात्स्य महापुराण में देवतार्चानुकीर्त्तन प्रसंग में पीठिका वर्णन नामक दो सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६२॥

दो सौ तिरसठवाँ अध्याय

सूत ने कहा – अब इसके बाद उत्तम लिंग के लक्षण मैं आप लोगों को बता रहा हूँ। विचक्षण पुरुष अति चिकना सुवर्ण का लिंग निर्मित करे। मन्दिर के प्रमाण के अनुरूप लिंग का प्रमाण किया जाता है अथवा लिंग के प्रमाणानुरूप प्रासाद का शुभ लक्षण जानना चाहिये। सर्वप्रथम चार कोने वाले समान गर्त में ब्रह्मसूत्र गिराना चाहिये। उस ब्रह्म के बाईं ओर मूर्ति अथवा लिंग की स्थापना करनी चाहिये। वह पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर तो लीन (?) तथा दक्षिण और पश्चिम दिशा की ओर आश्रित (?) रहे। पुर के पश्चिम दिशा की ओर पूर्व द्वार की कल्पना करनी चाहिये और पूर्व दिशा की ओर पश्चिम द्वार तथा दक्षिण और उत्तर की ओर माहेन्द्र द्वार का निर्माण करना चाहिये। प्रथमतः पूर्व द्वार को इक्कीस भागों में विभक्त कर मध्य भाग ब्रह्मसूत्र की कल्पना करनी चाहिये। इसके अर्द्धभाग को तीन भागों में विभक्त कर उत्तर की ओर एक भाग को छोड़ दे। इसी प्रकार दक्षिण की ओर एक भाग छोड़कर ब्रह्म स्थान की कल्पना करे। उस अर्ध भाग में लिंग की स्थापना प्रशस्त मानी गई है। पाँच भागों में विभक्त करके उसमें से तीन भागों को ज्येष्ठ कहा जाता है, भीतरी मान को नव भागों में विभक्त करके उसके पंचम भाग को मध्यम कहते हैं। गर्भ के एक भाग में ही नव भाग विभक्त करके लिंगों को स्थापित करे। इसी प्रकार गर्भ भाग को समसूत्र में विभक्त करके ज्येष्ठ, कनिष्ठ और मध्यम इन तीन स्थल भागों में विभक्त करे। इस प्रकार गर्भ को तीन भागों में विभक्त करना चाहिये, फिर उनमें तीन प्रकार के ज्येष्ठ, तीन प्रकार के मध्यम और तीन प्रकार के कनीय ये भेद होते हैं, जिससे लिङ्गों के कुल नव प्रकार के भेद हुए। बुद्धिमान पुरुषों को चाहिये कि नाभि के आधे भाग में समान आठ भाग करके तीन भागों को छोड़कर चार कोणवाला विष्कम्भ बनाये। लिङ्ग के मध्य भाग में आठ कोण हो, तदनन्तर बचे हुए भाग को दो कोणों से बुद्धिमानों को लांछित करना चाहिये। उसके ऊपर आठ कोणोंवाला बनाये। सोलह कोणोंवाले भाग को गोलाकार में परिणत करे। इन देवता की नाभि में लम्बाई कुण्डलीकृत होगी, एवं माहेश्वर का त्रिभाग ऊर्ध्ववृत्त भाव से अवस्थित होगा। नीचे की ओर ब्रह्मभाग वह होगा जो चार कोणोंवाला होगा। मध्य भाग जो आठ कोणोंवाला होगा वह वैष्णव भाग कहा जाता है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से निर्मित हुआ लिङ्ग समृद्धिप्रद होता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाणों द्वारा गर्भमान को बतला रहा हूँ। गर्भमान के प्रमाण द्वारा जो उचित लिङ्ग निर्मित होता है, उसे चार भागों में विभक्त करके विष्कम्भ की कल्पना करे एवं देवायतन को सूत्र द्वारा नाप करके तीन भागों में विभक्त करे। जिसमें नीचे का भाग चार कोणोंवाला तथा मध्य का भाग आठ कोणोंवाला हो, इसके ऊपर पूज्य भाग और नाभि भाग कहा जाता है। लम्बाई और विस्तार के चौकोने भाग का जो प्रमाण हो, चौकोने भाग को छोड़कर आठ कोने वाले भाग का जो भाग हो, उसके आधे भाग को छोड़कर वृत्ताकार बनावे। अनन्तर शिरोभाग का प्रदक्षिणाकार तथा मूलदेश को संक्षिप्त रूप में न्यास करे, जिस लिङ्ग के नीचे का भाग विस्तृत होता है

उसकी पूजा नष्ट हो जाती है, अर्थात् वह पूजनीय नहीं रह जाता। शिर की ओर से सदा निम्न, मनोहर, उत्तम लक्षणों से युक्त तथा सौम्य जो लिङ्ग दिखाई पड़ता है, वह समृद्धि का देनेवाला होता है। मूल भाग में तथा मध्य भाग में जो लिङ्ग एक समान रहता है वह सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है। इन उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त जो लिङ्ग नहीं होते वे असत् कहे जाते हैं, अर्थात् वे अपूजनीय लिङ्ग हैं। इस प्रकार ऊपर बताये गये प्रमाणों से रत्नमय, स्फटिकमय, मिट्टी का, शुभ काष्ठ का भी—जिस प्रकार की रुचि हो—लिङ्ग स्थापित करना काहिये। ॥१-२५॥

श्री मात्स्य महापुराण में देवतार्चानुकीर्तन नामक दो सौ तिरसठवाँ अध्याय समाप्त। ॥२६३॥

दो सौ चौसठवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! अब इन सभी देवताओं की प्रतिमा के स्थापन करने की प्रचलित विधि बतलाइये। ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! अब मैं आप लोगों से देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा की उत्तम विधि बतला रहा हूँ, साथ ही कुण्ड, मण्डप एवं वेदी इन सबों के प्रमाणों को भी क्रमानुरूप बता रहा हूँ। चैत्र, फाल्गुन, ज्येष्ठ, वैशाख अथवा माघ इन महीनों में सभी देवताओं की प्रतिमा प्रतिष्ठापित करने से मंगलदायी होती है। शुभकारी शुक्ल पक्ष में, जब कि दक्षिणायन बीत चला हो, अर्थात् उत्तरायण में, पञ्चमी, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, दशमी, पूर्णमासी तथा त्रयोदशी तिथियाँ कल्याण देनेवाली कही गई हैं। इनमें की गई विधिपूर्वक प्रतिष्ठा बहुत फल देनेवाली होती है। दोनों आषाढ़ नक्षत्र अर्थात् पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, मूल, दोनों उत्तरा, उत्तर भाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वभाद्रपद, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती—ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदि में प्रशस्त माने गये हैं। बुध, वृहस्पति तथा शुक्र—ये तीनों ग्रह शुभकारी हैं। इन तीनों ग्रहों से शुभ दृष्टि में देखी गई लग्न तथा नक्षत्र प्रशंसनीय हैं। ग्रह और तारा—इन दोनों का बल प्राप्त कर अर्थात् जब ग्रहों एवं ताराओं की शुभ दृष्टि हो, तथा ग्रहों की पूजा करके, शुभ निमित्त शकुनादि को प्राप्तकर अद्भुत आदि बुरे योगों को वर्जित रख, शुभ योग में शुभ स्थान पर क्रूर ग्रहों को वर्जित रख शुभ लग्न एवं शुभ नक्षत्रों में प्रतिष्ठा आदि उत्तम कार्यों को करना चाहिये। अयन, विषव और षडशीति (?) मुख इनमें विधिपूर्वक अनुष्ठान द्वारा स्थापना कार्य प्रशस्त माना गया है। विचक्षण मनुष्य को चाहिये कि वह प्राजापत्य मुहूर्त में शयन, श्वेत में उत्थापन तथा ब्राह्म में स्थापन करे। अपने प्रासाद के पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मण्डप का निर्माण कराना चाहिये। मण्डप सोलह हाथ का बनाना चाहिये अथवा बारह हाथ का ही बनवाये, उसके मध्यभाग में वेदी हो, जो चारों ओर से समान तथा पाँच, सात अथवा चार हाथ विस्तृत हो। चतुर्मुख मण्डप के चारों ओर चार तोरण बने हों, पूर्वदशा में पाकड़ का द्वार हो, दक्षिण में गूलर का हो, पश्चिम की ओर पीपल का तथा उत्तर

का द्वार बरगद का बना हुआ हो। तोरण भूमि में एक हाथ प्रविष्ट हों तथा ऊँचाई में चार हाथ ऊँचे हों। भूतल भली भाँति लिपा हुआ, चिकना तथा सुन्दर होना चाहिये। विविध प्रकार के वस्त्रों से तथा पुष्प और पल्लवों से उसे सुशोभित करे। इस प्रकार मण्डप निर्माण करने के उपरान्त चारों द्वारों पर छिद्रादि रहित आठ कलशों की स्थापना करनी चाहिये जो देदीप्यमान सुवर्ण की भाँति कान्ति युक्त, आम के पल्लवों से आच्छादित, दो श्वेत वस्त्र से युक्त, सभी औषधियों एवं फलों से युक्त तथा चन्दन मिश्रितजल से पूरित हों। इस प्रकार कलश को सुसज्जित कर मण्डप के मध्य में स्थापित कर सुगन्धित द्रव्यादि द्वारा मण्डप के चारों ओर ध्वजा आदि की स्थापना करनी चाहिये। प्रथमतः सभी दिशाओं में लोकपालों के लिए ध्वजा की स्थापना करनी चाहिए। मण्डप के मध्य भाग में बादल के आकार की ऊँची पताका स्थापित करनी चाहिये, लोकपालों की पताका स्थापित करने के बाद उनके मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उन्हें गन्ध-धूपादि समर्पित करे तथा उन्हीं मन्त्रों द्वारा बलि भी दे। ब्रह्मा के लिए ऊपर तथा शेष वासुकि के लिए नीचे पूजा का विधान कहा गया है। संहिताओं में इन देवताओं के लिए जो मन्त्र आये हैं वे मंगलकारी माने गये हैं, उन्हीं मन्त्रों द्वारा लोकपालों की चारों ओर पूजा करनी चाहिये। तीन रात, एक रात, पाँच रात अथवा सातरात का अधिवासन करना चाहिये। इस प्रकार तोरण तथा अधिवासन करके उक्त मण्डप की उत्तर दिशा की ओर उत्तम स्नानमण्डप का निर्माण करना चाहिये। इसका मान उक्त मण्डप के आधे भाग तिहाई अथवा चौथाई भाग में होना चाहिये। सर्वप्रथम बुद्धिमान पुरुष लिंग अथवा मूर्ति को लाकर वस्त्र आभूषणादि द्वारा कारीगरों की अथवा उनकी, जो उसके परिचारक हैं पूजा करे और तदनन्तर यजमान उनसे यह कहे कि मेरे अपराधों को क्षमा करिये। तत्पश्चात् देवता को बिछौने पर लिटा कर उनकी नेत्र ज्योति सम्पादित करे। आगे मैं नेत्रों तथा लिंग के उद्धार का प्रकार संक्षेप में बता रहा हूँ। सर्वप्रथम चारों ओर पीली सरसों घृत तथा खीर द्वारा बलिप्रदान करे, श्वेत पुष्पों से अलंकृत कर घृत एवं गुग्गुल से धूप कर ब्राह्मणों का आवाहन करना चाहिये और उन्हें अपनी शक्ति के अनुकूल दक्षिणा देनी चाहिये। गौ, पृथ्वी, तथा सुवर्ण ये वस्तुएँ स्थापना करानेवाले को देनी चाहिये। ब्राह्मण भक्तिपूर्वक इस मन्त्र द्वारा लक्षण करवायें। वह मन्त्र यह है, 'ओं नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने। हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः।' अर्थात् "हे भगवन्! विष्णो! आपही शिव, परमात्मा, हिरण्यरेता एवं विश्वरूप हैं, ऐश्वर्यशाली हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं।" उपर्युक्त मन्त्र सभी देवताओं की प्रतिमा के नेत्र-ज्योति संस्कार में उपयोगी माना गया है। इस प्रकार देवेश को आमन्त्रित कर सुवर्ण द्वारा उनको चिह्नित करे। तदुपरान्त मांगलिक वाद्य, गीत एवं ब्राह्मणों की वेद ध्वनियों का समारोह करे। विद्वान् पुरुष अपनी समृद्धि के लिए इस अमङ्गल के विनाशक विधान का ऐसा उपक्रम करे। अब लिंग के लक्षणोद्धरण का प्रकार बता रहा हूँ। खूब स्वस्थ चित्त होकर लिंग के तीन भाग कर विभक्त करना चाहिये, और आठ जव का अन्तर रखते हुए तीन रेखा चिह्नित करे, वे न तो बहुत मोटी हों, न सूक्ष्म हों, न टेढ़ी हों और न उनमें छिद्र हुआ हो। ज्येष्ठ लिंग में जव के प्रमाण की निम्न रेखा अंकित करनी चाहिये, उसके ऊपर

उससे कुछ सूक्ष्म रेखा बनी हो। फिर बुद्धिमान पुरुष आठ भाग करके तीन भागों को छोड़ दे और दोनों पार्श्वों में समान अन्तर रखते हुए सात लम्बी रेखाएँ चिह्नित करे। विद्वान् पुरुष चार भागों तक रेखाएँ चिह्नित करे, पाँचवें भाग के ऊपर रेखा घुमानी चाहिये और तदनन्तर मिला देना चाहिये। यहीं पृष्ठ भाग में रेखाओं का संगम होगा। इन दो रेखाओं के संगमस्थल पर पृष्ठदेश में दो भाग हो जायँगे। संक्षेप में मैं यह लक्षण भी आप लोगों को बता चुका। ॥१–४०॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रतिष्ठानुकीर्तन नामक दो सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६४॥

दो सौ पैंसठवाँ अध्याय

सूत ने कहा—ऋषिगण ! अब मूर्तियों की रक्षा करनेवाले तथा प्रतिष्ठा करानेवालों का मैं संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ, आप लोग सुनिये। वह शारीरिक सभी अवयवों से सम्पूर्ण, वेद मन्त्रों का विशारद, पुराणों का जाननेवाला, तत्त्वदर्शी, दम्भ एवं लोभ से रहित, कृष्णसार मृग के देश में उत्पन्न हुआ हो, मनोहर आकृति का हो। नित्य शौच (पवित्रता) तथा आचार में तत्पर रहता हो, पाखण्डों से रहित तथा निःस्पृह हो, मित्र और शत्रु में समता का व्यवहार करनेवाला हो, ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का प्रिय हो, तर्क, वितर्क एवं तत्त्वों का जाननेवाला हो, वास्तुशास्त्र का पारगामी विद्वान् हो। ऐसा व्यक्ति प्रतिष्ठा कराने के लिए उपयुक्त होता है। आचार्य ऐसे व्यक्ति को बनाना चाहिये जो सर्वदा सभी प्रकार के दोषों से दूर रहता हो, मूर्ति की रक्षा करनेवाले ब्राह्मणों को सत्कुलोत्पन्न तथा सरल स्वभाव का होना चाहिये। बत्तीस, सोलह अथवा आठ ब्राह्मण इस कर्म में आवश्यक होते हैं, वे सभी वेदों के पारगामी विद्वान् हों, ज्येष्ठ, मध्य तथा कनिष्ठ—इन तीन प्रकार के भेदों से इनकी तीन श्रेणियाँ रखी गई हैं। लिङ्ग अथवा मूर्ति—जिसकी स्थापना करनी हो, स्नानागार में लाकर गीत तथा मांगलिक शब्दों से उसे स्नान करावे, पंचगव्य, पंच कषाय, मृत्तिका, भस्म, जल—इन सामग्रियों द्वारा चार वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उन्हें पवित्रता से स्नान करावे। वे चार मन्त्र इस प्रकार आरम्भ होते हैं, "समुद्र ज्येष्ठ……" "आपो दिव्य………" "यास्मं राजा……', तथा 'आपो हिष्ठा……' इत्यादि। इस प्रकार देवता की प्रतिमा को स्नान कराकर सुगन्धित द्रव्य तथा चन्दनादि से पूजा कर दो वस्त्रों से ढँककर शयन करावे, यह वस्त्र से ढँकने की विधि है। तदनन्तर 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इस मंत्र का उच्चारण कर प्रतिमा को उठावे और 'आभूरजा, 'रथेतिष्ठ' इन दो मन्त्रों से रथ पर अथवा ब्रह्मरथ पर शिल्पियों द्वारा रखाकर विद्वान् पुरुष 'आकृष्णेन……' इत्यादि मन्त्र द्वारा मूर्ति को मन्दिर में प्रवेश करावे और शय्या पर कुश तथा पुष्पों को बिछाकर बुद्धिमान् पूर्वाभिमुख कर धीरे से स्थापित करे। तदनन्तर वस्त्र और सुवर्ण समेत निद्राकलश को देवता के शिरोभाग की ओर इस मन्त्र को जपते हुए स्थापित करावे। वे मंत्र ये हैं, "आपो देवी…." "आपोऽस्मान मातरो…."इत्यादि। तदनन्तर

रेशमी वस्त्र द्वारा नेत्रोपधाम (?) को ढँक दे अथवा विचक्षण पुरुष को चाहिये कि वह रेशमी वस्त्र को ही देवता की प्रतिमा के शिर के नीचे रख दे। फिर मधु और घृत द्वारा स्नान करा कर पीली सरसों से पूजा करा कर 'आप्यायस्व', इस मंत्र से तथा 'या ते रुद्र शिवा' इस मंत्र से अनन्य भाव से चारों ओर से सुगन्धित द्रव्य तथा पुष्पादि से पूजा करे। फिर 'बार्हस्पत्य' मंत्र द्वारा श्वेत वर्ण का सूत का बना हुआ हाथ का कंगन अर्पित करे। तदनन्तर रेशमी सूती अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र वस्त्रों द्वारा प्रतिमा को भली भाँति ढँककर अगल-बगल में छत्र, चामर, दर्पण आदि सामग्रियाँ रखे और पुष्प युक्त चँदोवा स्थापित करे। विविध प्रकार के रत्न, औषधियाँ-अन्य घरेलू वस्तुएँ, विचित्र प्रकार के पात्र, शय्या आसनादि सामग्रियाँ अपनी आर्थिक शक्ति के अनुरूप 'अभित्वा शूर' इस मन्त्र का जप करते हुए रखे। दुग्ध, मधु, घृत आदि खाद्य सामग्रियों को छहों प्रकार के रसों से संयुक्त अन्नादि एवं दुग्ध की बनी हुई अन्य वस्तुओं को भी चारों ओर रख कर पूजा करे, फिर इस मन्त्र का जप करते हुए प्रचुर परिमाण में बलि दे। वह मन्त्र यह है 'त्र्यम्बकं यजामहे', इत्यादि, इस मन्त्र का धीरे-धीरे जाप हो। तदनन्तर विचक्षण पुरुष सभी दिशाओं में मूर्ति की रक्षा करनेवालों को नियुक्त करे। चारों द्वारों पर चार द्वारपालों को नियुक्त करे। श्रीसूक्त, पावमान, सुमंगलदायी सोमसूक्त, शान्तिकाध्याय, इन्द्रसूक्त, रक्षोघ्न-इन ऋचाओं को पूर्व दिशा से वह्वृच् जप करे। रौद्र; पुरुष सूक्त, सशुक्रिय श्लोकाध्याय तथा मण्डलध्याय को अध्वर्यु दक्षिण दिशा में जप करे। वामदेव्य, वृहत्साम, ज्येष्ठसाम, रथन्तर, पुरुषसूक्त, शान्ति समेत रुद्रसूक्त तथा भारुण्ड साम को छन्दोग पश्चिम दिशा में जप करे। 'इसी प्रकार अथर्वाङ्गिरस, नील, रौद्र, रौद्रक समेत अपराजिता देवी के सप्त सूक्त तथा शान्तिकाध्याय को अथर्वा उत्तर दिशा से जप करे। देव प्रतिमा के शिरोभाग की ओर स्थापक व्याहृतिपूर्वक शान्तिक तथा पौष्ठिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए हवन करे। पलाश, गूलर, पीपल, अपामार्ग (चिरचिरा) तथा शमी—इन सब की एक सहस्र लकड़ियों में से एक-एक को छोड़ते हुए देवता के पैर का स्पर्श करे। इसी प्रकार प्रत्येक बार एक-एक सहस्र हवन कर लेने के उपरान्त नाभि, मध्य, वक्षस्थल और शिरोभाग का स्पर्श करता जाय। इस प्रकार एक हाथ के बने हुए मेखलायुक्त योनिमुख कुण्ड के ऊपर सभी दिशाओं में बैठे हुए मूर्तिस्थापकगण आदरपूर्वक हवन करें। वह योनि एक वित्ते की हो, और हाथी के ओठ के समान हो। आयताकार हो, छिद्रयुक्त हो, इधर उधर दोनों ओर से कलायुक्त तथा ऊँची बनी हो। यह योनि कुण्ड से चारों ओर चार अंगुल ऊँची तथा उतनी ही विस्तृत और समान रूप में बननी चाहिये तथा चतुरस्र और कलापूर्ण भी होनी चाहिए। वेदी की भित्ति से तेरह अंगुल छोड़कर नव कुण्ड दूसरे बनाने चाहिये, उन सबों के भी लक्षण यही हैं, जो ऊपर वाले कुण्ड के हैं। अग्निकोण, पूर्व दिशा तथा दक्षिण दिशा में उत्तर की ओर मुख कर हवन करना चाहिये। शान्ति के लिए होता सावधान चित्त हो लोकपालों के लिए, मूर्तियों के लिए तथा मूर्तियों के अधिदेवताओं के लिए क्रमशः हवन करे। वसुधा, वसुरेता, यजमान, दिवाकर, जल, वायु, सोम तथा आकाश—ये आठ देवताओं की मूर्तियाँ हैं, जिनका कुण्ड में स्मरण करे। अब इनके अधिपों की मूर्तियों के नामों को कह रहा हूँ, जो

अति पवित्र हैं। शर्व सर्वदा पृथ्वी का पालन करते हैं, इसी प्रकार पशुप अग्नि की, उग्र यजमान की, रुद्र आदित्य की, भव जल की, ईशान वायु की, महादेव चन्द्रमा की और भीम आकाश की रक्षा करते हैं। सभी देवताओं की प्रतिष्ठा में ये ही मूर्तिप माने गये हैं। इनके लिए अपनी सामर्थ्य के अनुकूल वैदिक मन्त्रों द्वारा हवन करे, तथा प्रत्येक कुण्डों के लिए सभी ओर से शान्ति घटों की स्थापना करे। सौ आहुति अथवा सहस्र आहुति कर लेने के बाद सम्पूर्णाहुति करनी चाहिये, उस समय पृथ्वी में समान भाव से पद रखे हुए होता शान्त चित्त से सम्पूर्णाहुति को छोड़े। और इन सभी आहुतियों के संपात को पूर्ण कुम्भों के ऊपर छोड़े, मूल, मध्य एवं शिर, इन अंगों में प्रतिमा के उसी के जल द्वारा सेचन करे, और इसी आहुति के जल द्वारा वहाँ के कल्पित देवतागणों को स्नान कराये। प्रत्येक प्रहर के अन्त में पुनः-पुनः धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दनादि द्वारा पूजा किया करे तथा उसी प्रकार पुनः-पुनः हवन भी प्रारम्भ किया करे। इसी प्रकार यजमान को पुनः-पुनः दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिये। उन सब को श्वेत वस्त्र द्वारा पूजित करना चाहिये, विचित्र प्रकार के बने हुए सुवर्ण के कटक, सुवर्ण की जंजीर तथा अंगूठी आदि विविध वस्त्रादि, शय्यासन आदि को भी प्रत्येक प्रहर में अपनी सामर्थ्य के अनुसार देते रहना चाहिये। जब तक अधिवासन न हो जाय तब तक भोजन दान भी देना चाहिये। सामान्य जीवों के लिए सभी दिशाओं में तीनों सन्ध्याओं के अवसर पर बलिदान भी देना चाहिये। पहले ब्राह्मणों को भोजन कराये फिर अन्य वर्णवालों को भी अपनी इच्छानुरूप भोजन कराये। रात्रि के समय गीत वाद्यादि को कराते हुए महान् उत्सव मनाना चाहिये, इस प्रकार जब तक चतुर्थी कर्म न हो जाय तब तक प्रयत्न पूर्वक पूजा करते रहना चाहिये। तीन रात, एक रात, अथवा यदि हो सके तो पाँच रात या सात रात तक अधिवासन करे, कहीं-कहीं सर्वदा अधिवासन किया जाता है, क्योंकि यह अधिवासन विधि सर्वदा सभी यज्ञों के फलों को देनेवाली है। ॥ १–५२ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में अधिवासन विधि नामक दो सौ पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६५॥

दो सौ छाछठवां अध्याय

सूत ने कहा—इस प्रकार उपर्युक्त विधि से देवताओं की प्रतिमा के शुभकारी अधिवासन कर्म को करने के उपरान्त एकाग्रचित्त से यजमान प्रासाद के अनुरूप लिंग का अथवा लिंग के अनुरूप प्रासाद के मान का निरूपण करे। पुष्पमिश्रित जल से मन्दिर को धो कर मन्त्रोच्चारण करते हुए पक्षसूत्र तथा द्वारसूत्र को गिरावे अर्थात् नापे। बुद्धिमान् पुरुष को मध्य भूमि जानकर कुछ ईशानकोण का आश्रय लेना चाहिये, क्योंकि ईशानी दिशा में अवस्थित भगवान् शङ्कर की पूजा देवतागण करते हैं। उत्तर दिशा में अधिष्ठित देवता आयु तथा आरोग्य का फल देनेवाले कहे गये हैं, और कल्याणकारी हैं। बुद्धिमानों ने इनके अतिरिक्त अन्य दिशाओं की स्थापना को अशुभकारी बताया है। लिङ्ग के नीचे कूर्म शिला की

स्थापना करनी चाहिये, यह ब्रह्मशिला की अपेक्षा बड़ी तथा गम्भीर होती है। उस कूर्मशिला के ऊपर ब्रह्मभाग से अधिक ब्रह्मशिला स्थापित होती है। उसके ऊपर पहले बताये गये परिमाणों के अनुसार पिण्डिका की स्थापना करनी चाहिये। सर्वप्रथम पञ्चगव्य द्वारा पिण्डिका को विधिवत् धोकर पुनः पञ्च कषाय के जल से मन्त्रोच्चारण पूर्वक उत्तम रीति से प्रक्षालन करे और देव प्रतिमा के आश्रयवाले मन्त्र से पिण्डिका को अभिमंत्रित करे। तदुपरान्त 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणा....' इत्यादि मन्त्र से उसे उक्त स्थान से उठाकर मण्डप के मध्य भवन में जहाँ पीठिका रहती है, उसे स्थापित करे। अर्घ्य, पाद्य, एवं मधुपर्क समर्पित करे, फिर एक मुहूर्त तक विश्राम करके रत्नों का न्यास करे। वज्र, मुक्ता, वैदूर्य, शंख, स्फटिक, पुखराज, इन्द्रनील और नील—इन रत्नों को पूर्व दिशा के क्रम से स्थापित करे। फिर तालक (हरताल), शिलावज्र ? (शिलाजतु), अञ्जन, श्याम, काक्षी, (मुल्तानी मिट्टी) काशी, (........) माक्षीक (मधु) और गेरु—इन सब को आदि के क्रम से पूर्वादि दिशाओं में रखे। गेहूँ, जव, तिल, मूँग, नीवार (तीनी) सावाँ, सरसों और चावल इन सब को भी पूर्वादि दिशा के क्रम से रखकर चन्दन, लाल चन्दन, अगुरु, अञ्जन, उशीर, विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, लक्ष्मणा (श्वेत कटहली) इन्हें पूर्वादि दिशाओं में क्रम से स्थापित करे। प्रत्येक दिशाओं में उस दिशा के लोकपाल का नाम ॐकारोच्चारण के साथ ले लेना चाहिये। फिर सभी प्रकार के बीज, सभी धातु, सभी प्रकार के रत्न, औषधियाँ, सुवर्ण, पद्मराग, पारद, पद्म, कूर्म, पृथ्वी तथा वृषभ—इन सब को भी पूर्वादि दिशाओं के क्रम से स्थापित करना चाहिये। ब्रह्मा के स्थान पर सभी वस्तुएँ परस्पर समुदित रूप में रखनी चाहियें। सुवर्ण, विद्रुम, ताँबा, काँसा, पीतल, चाँदी, निर्मल पुष्प और लोह—इन सब को भी क्रम से रखे। इन सभी वस्तुओं के अभाव में सुवर्ण और हरिताल को रखा जा सकता है। यदि कोई बीज और औषधि नहीं मिल रही है तो उसके स्थान पर सहदेवी और जव रखा जा सकता है। अब न्यास करने के लिए प्रत्येक लोकपालों के क्रम से मन्त्रों को बतला रहा हूँ। पूर्व दिशा का स्वामी अति तेज से देदीप्यमान सभी देवताओं का अधिपति इन्द्र है, उसके हाथ में वज्र शोभित है, महा पराक्रमी है, उसे नित्य बारम्बार नमस्कार है। सर्वदेवमय ज्वाला विभूषित आग्नेय पुरुष का वर्ण लाल है, धूम उसका केतु है, सभी शक्तियों से वह अनाधृष्य है, उसे नित्य के लिए नमस्कार है, नमस्कार है। दक्षिण दिशा का स्वामी यमराज कमल के वर्ण के समान है, किरीट धारण करनेवाला है, सर्वदा दण्ड धारण किये रहता है, धर्म का साक्षी है, विशुद्धात्मा है, उसे नित्य बारम्बार नमस्कार है, निऋति पुरुष कृष्णवर्ण का है, सभी राक्षसों का अधिपति है, खड्गहस्त है, महा पराक्रमी है, उसे नित्य का नमस्कार है, नमस्कार है। पश्चिम का स्वामी वरुण पुरुष श्वेत वर्ण का है, विष्णु-स्वरूप है, नदियों का स्वामी है, उसके हाथ में पाश विराजमान है, वह विशाल बाहुओंवाला है, उसे हमारा नित्य का नमस्कार है। वायु पुरुष सर्व वर्ण है, सभी प्रकार के गन्ध का धारण करनेवाला है, उसके हाथों में ध्वजा विराजमान है, उसे हमारा नित्य का नमस्कार है। जो सोम पुरुष गौरवर्ण का, सौम्य आकृति का तथा सभी औषधियों से समन्वित है तथा नक्षत्रों का अधिपति है, उसे नित्य का नमस्कार है।

ईशान पुरुष शुक्ल वर्ण का, सभी विद्याओं का अधिपति तथा महान् है, उसके हाथ में शूल विराजमान है; विरूपाक्ष है, उसे नित्य नमस्कार है। जो पद्मयोनि है, चार मूर्तियों वाला है, वेद जिसके वक्ष स्वरूप हैं, ऐसे पितामह, यज्ञाध्यक्ष, चतुर्मुख ब्रह्मा को हमारा बारम्बार नमस्कार है। जो अपने अनन्त स्वरूप द्वारा निखिल चराचर ब्रह्माण्ड को पुष्प की भाँति मस्तक पर धारण किये रहता है, उसे हम नित्य नमस्कार करते हैं। ये उपर्युक्त मन्त्र न्यास तथा बलि देते समय ऊँकार समेत कहने चाहिये। सभी कार्यों में ये मन्त्र समृद्धि तथा पुत्र का फल देनेवाले कहे गये हैं। इन सम्पूर्ण मन्त्रों द्वारा न्यास करके घृत से लेपन की हुई शुभ्र प्रतिमा को श्वेत वस्त्र द्वारा यत्नपूर्वक ऊपर से आच्छादित कर दे। तदनन्तर देवेश को उठाकर शुभ्र इष्ट देश में अर्थात् जहाँ स्थापित करना है वहाँ "ध्रुवा द्यौः...." इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए छिद्र पर स्थापित करे। और स्थिर करके हाथ को मस्तक से संयुक्त कर अपने को परब्रह्म का अंश मानकर जिस देवता का जैसा स्वरूप हो वैसा ही उसका ध्यान करे। अलसी के पुष्प के समान नीले वर्ण के, शङ्ख चक्र और गदाधारी देवेश जनार्दन भगवान् विष्णु को मैं देवरूप होकर स्थापित कर रहा हूँ। इसी प्रकार कभी नष्ट न होनेवाले दस बाहु से सुशोभित अर्द्धचन्द्र द्वारा शिर पर अलंकृत गणो के स्वामी वृषभारूढ़ त्रिलोचन को स्थापित कर रहा हूँ। ऋषिगण जिसकी स्तुति किया करते हैं, ऐसे चार मुखों वाले, जटाधारी, महाबाहु, कमलोद्भव ब्रह्मा की स्थापना करता हूँ। सहस्र किरणों से सुशोभित, शान्त, अप्सराओं के समूहों से संयुक्त पद्महस्त, महा बाहुवाले दिवाकर की स्थापना कर रहा हूँ। रुद्र की स्थापना करते समय रौद्र मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये। इसी प्रकार बुद्धिमांन पुरुष को विष्णु की स्थापना के समय वैष्णव मन्त्रों का तथा ब्रह्मा की स्थापना के समय ब्राह्म मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये। सूर्य की स्थापना के समय सौर मन्त्रों का जप करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य देवताओं की स्थापना के समय उन्हीं के मन्त्रों का जप करना चाहिये। क्योंकि वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए जो प्रतिमा की प्रतिष्ठा होती है, वह आनन्द-दायिनी है। जिस देवतांश की प्रतिमा प्रमुख रूप से प्रतिष्ठापित की जाती है, वही प्रधान देवता माने जाते हैं, उनके अगल-बगल में स्थित जो अन्य देवता प्रतिष्ठापित होते हैं, उन्हें सामूहिक रूप से स्मरण करना चाहिये। गण, नन्दि- केश्वर, महाकाल, वृषभ, भृङ्गिरिटि, गुह, (स्वामिकार्त्तिकेय) देवी, विनायक (गणेश), विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, जयन्त, लोकपाल, अप्सराओं के समूह, गन्धर्वों के समूह, यक्षगण, इनमें से सभी को उस जगह अगल-बगल में स्थापित करना चाहिये जहाँ प्रमुख देवता की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई हो। फिर इस मन्त्र द्वारा यत्नपूर्वक रुद्र का आवाहन करना चाहिये। "जिस भगवान् शंकर के रथ में सिंह तथा व्याघ्र जुड़े हुए हैं, तथा उरग, ऋषिगण, लोकपाल वृन्द, देव, स्कन्द, वृष, प्रिय गण, मातृकाएँ, चन्द्रमा, विष्णु, पितामह ब्रह्माजी, नाग, यक्ष, गन्धर्व, दिव्य नभचर गण जिसके पार्षद हैं, उन तीन नेत्रों वाले, ईशान, वृषभध्वज, रुद्र, उमापति को गणों समेत तथा पत्नी पार्वती समेत मैं आवाहन कर रहा हूँ। हे भगवन्! यहाँ आइये, मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये, एवं कल्याणकारी होइए, शाश्वत फल देनेवाले होइये एवं मेरी दी हुई पूजा को ग्रहण कीजिये, तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है। मन्त्र, "ॐ नमः स्वागतं

भगवते नमः, ओं नमः सोमाय, सगणाय, सपरिवाराय, प्रतिगृह्णातु, भगवन्! मन्त्रपूतमिदं सर्वमर्घ्यपाद्य-माचमनीयमसिनं ब्रह्मणाभिहितं नमो नमः स्वाहा।" अर्थ—हे भगवन्! आपका शुभागमन हो, हे सोम! आप गणों तथा अपने परिवारवर्ग के साथ मन्त्र द्वारा पवित्र तथा ब्रह्म द्वारा अभिनन्दित इस सकल अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय और आसन को ग्रहण करें। आपको मैं नमस्कार करता हूँ।' तदनन्तर पुण्य दिन का उच्चारण कराते हुए एवं ब्राह्मणों द्वारा वेदध्वनि कराते हुए प्रतिष्ठाप्य मूर्ति को दही, क्षीर, घृत, मधु, शक्कर, पुष्प एवं सुगन्धित जल द्वारा एकाग्रचित्त से शिव का ध्यान करते हुए अभिसिंचित करना चाहिए। उस समय इन मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये। वह मन्त्र इस प्रकार प्रारम्भ होते हैं। 'यज्जाग्रतो दूरमुदेति....', 'ततो विराडजायत....', 'सहस्रशीर्षापुरुष....', 'अभित्वा शूर नोनुम....', 'पुरुष एवेदं सर्वं ....', 'त्रिपादूर्ध्वम्....', 'येनइं भूतम्....', 'नत्वा वाँ अन्य....', इत्यादि। इन उपर्युक्त मन्त्रों को बारम्बार जपते हुए चार बार प्रतिमा के मूल भाग, मध्य भाग, तथा शिरोभाग में स्पर्श करे। इस प्रकार स्थापित हो जाने पर यजमान मूर्ति की प्रतिष्ठा करानेवाले विद्वान् पुरुष की, तथा आचार्य की वस्त्र अलंकार एवं आभूषणों से पूजा करे। दीन, अन्ध, कृपण तथा अन्य लोग जो वहाँ उपस्थित हों, उन सब को भी सन्तुष्ट करे। तदनन्तर प्रथम दिन प्रतिमा का मधु द्वारा लेपन करे। इसी प्रकार दूसरे दिन हल्दी तथा सरसों से, तीसरे दिन चन्दन और जव से, चौथे दिन मैनशिल तथा प्रियंगु से लेपन करे, क्योंकि यह लेपन सौभाग्य तथा मङ्गल का देनेवाला, व्याधियों का विनाशक एवं मनुष्यों को परम प्रीति का देनेवाला है, ऐसा वेदों के जाननेवाले जानते हैं। इसी प्रकार पाँचवें दिन काले अंजन तथा तिल से, छठें दिन घृत समेत चन्दन व पद्मकेसर से, सातवें दिन रोचना, अगरु तथा पुष्प से लेपन करना चाहिये। जिस मूर्ति की स्थापना में शीघ्र ही अधिवासन हो जाय वहाँ इन सब को एक साथ ही लेपन में देना चाहिये। अवस्थित हो जाने पर प्रतिमा को अपने स्थान से विचलित नहीं करना चाहिये। विचलित करनेवाला दोषभागी होता है। जहाँ कहीं छिद्र हो, वहाँ बालू लेकर मूँद देना चाहिये और प्रयत्नपूर्वक छिद्ररहित कर देना चाहिये। स्थापना के बाद यदि किसी लोकपाल की दिशा की ओर देव की प्रतिमा अपने आप विचलित हो जाती है तो उस लोकपाल की शान्ति करानी चाहिये तथा निम्नलिखित नियम के अनुसार उनको प्रसन्न करने के लिए दक्षिणाएँ देनी चाहिये। इन्द्र की शान्ति के लिए हाथी देना चाहिये, निर्धन मनुष्य सुवर्ण दे। अग्नि के लिए तो सुवर्ण का ही दान करना चाहिये, यमराज के लिए महिष का दान करना चाहिये। नैर्ऋत राक्षस की शान्ति के लिए बकरा तथा सुवर्ण का दान करना चाहिये। वरुण के लिए सुतुहियों समेत मोतियों का दान करना चाहिये। वायु के लिए दो वस्त्रों समेत पीतल का दान करना चाहिये। चन्द्रमा के लिए गौ का दान तथा शिव के लिए चाँदी तथा वृषभ देना चाहिये। जिस-जिस दिशा में संचलन हो, उस-उस दिशा की शान्ति करानी चाहिये। शान्ति न कराने से कुल के विनाश का घोर भय उपस्थित होता है। अतः बालू से प्रतिमा को ऐसा जकड़कर स्थापित करना चाहिये कि वह इधर-उधर विचलित न हो सके। उस पुण्य दिन में अन्न, तथा वस्त्र का दान करना चाहिये, पुण्य-

प्रद जय-जयकार एवं मांगलिक शब्दों का उच्चारण करवाना चाहिये। तीन, पाँच, सात अथवा दस दिनों तक महान् उत्सव समारोह मनाना चाहिये। प्रतिष्ठा के चौथे दिन महास्नान तथा चतुर्थी कर्म कराना चाहिये, उक्त अवसर पर भी भक्तिपूर्वक भूरि दक्षिणा देनी चाहिये। ऋषिवृन्द! पाप के विनाशार्थ तुम लोगों को मैं देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा की विधि बतला चुका, पण्डितों ने इस विषय को पूर्वकाल में ही अनेक विद्याधर तथा देवताओं से पूज्य एवं अनन्त फलदायी बतलाया है। ॥ १—६९ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में मूर्तिप्रतिष्ठा वर्णन नामक दो सौ छाछठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६६॥

दो सौ सड़सठवाँ अध्याय

सूत ने कहा—अब मैं देवप्रतिमा के उत्तम स्नान की विधि का वर्णन कर रहा हूँ, एवं अर्घ्यदान की उत्तम विधि भी संक्षेप में सुना रहा हूँ, सुनो। दही, अक्षत, कुश के अग्रभाग, दुग्ध, दूर्वा, मधु, यव, सरसों तथा फल, ये आठ पदार्थ अर्घ के अंग माने गये हैं। हाथी और घोड़ा के नीचे की, सड़क और बिल की, शूकर द्वारा गोड़े गये मण्डल की, अग्नि-कुण्ड के समीप की, तीर्थस्थान एवं गौओं के रुकने के समीप की मिट्टी के मन्त्रों का जाननेवाला विद्वान् पुरुष कुम्भ में 'उद्धृताऽसि....' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए डाले। तत्पश्चात् 'शंन्नो देवी....' तथा 'आपोहिष्ठा....' इन दो मन्त्रों का उच्चारण कर जल को, गायत्री 'ऊँ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' मन्त्र का उच्चारण करते हुए, गोमूत्र को, 'गन्धद्वार....' मन्त्र द्वारा गोबर को, 'आप्यायस्व....' मन्त्र द्वारा दुग्ध को, 'दधिक्राव्वण....' मन्त्र द्वारा दही को, 'तेजोऽसि....' मन्त्र द्वारा घृत को, 'देवस्यत्व....' इस मन्त्र द्वारा जल को, शुद्ध करके सब को मिश्रित करके कुश द्वारा छिड़के। तब वह पंचगव्य होता है, इस प्रकार पंचगव्य द्वारा स्नान कराने के उपरान्त और फिर दही द्वारा शुद्ध कर लेने पर, 'दधिक्राव्ण....' इस मन्त्र से अभिमन्त्रण करे। फिर 'आप्यायस्व....' इस मन्त्र का उच्चारण कर दुग्ध से, 'तेजोऽसि....' इस मन्त्र द्वारा घृत से, 'मधुवात....' इस मन्त्र द्वारा मधु से तथा पुष्पमिश्रित जल से और 'सरस्वत्यै....' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए औषधियों से उसका पुनः अभिमन्त्रण करना चाहिये। 'हिरण्याक्ष....' इस मन्त्र से रत्न मिश्रित जल से स्नान करावे। फिर 'देवस्य त्वा....' इस मन्त्र का उच्चारण कर कुश के जल से स्नान करावे। तत्पश्चात् फलमिश्रित जल द्वारा 'अग्न आयाहि....' इस मन्त्र का उच्चारण कर स्नान करावे। तदनन्तर गायत्री मन्त्र द्वारा सुगन्धित द्रव्यों से मिश्रित जल द्वारा अभिमंत्रित करे और फिर सहस्र कलशों द्वारा अथवा पाँच सौ कलशों द्वारा या उसके भी आधे अर्थात् ढाई सौ कलशों द्वारा या एक सौ पचीस कलशों द्वारा या चौंसठ कलशों द्वारा या उसके आधे बत्तीस कलशों द्वारा अथवा उसके आधे सोलह अथवा आठ या चार कलसों द्वारा अल्प वित्तवाला पुरुष स्नान-क्रिया सम्पन्न करे। यदि दो ही कलश हों तो वह सुवर्ण के, चाँदी के, ताँबे के, पीतल के, काँसे के या मिट्टी के हों, अर्थात् अपनी

शक्ति के अनुकूल घटों द्वारा ही स्नान कराये । सहदेवी, वच, व्याघ्री, बला, अतिबला, शंखपुष्पी, सिंही तथा सुवर्चला—ये आठ महौषधियाँ हैं, इन्हें महास्नान के समय व्यवहार में लाना चाहिये । जव, गेहूँ, नीवार, तिल, साँवा, शालि, प्रियंगु तथा चावल—ये अन्न भी स्नान कार्य में उपयोगी कहे गये हैं । स्वस्तिक, पद्मक, शंख, उत्पल, कमल, श्रीवत्स, दर्पण और तगर—ये आठ वस्तुएँ, गोबर, मिट्टी, पाँच प्रकार के वर्ण, पाँच प्रकार के रज, दूर्वा और काला तिल—इन सब वस्तुओं को नीराजन करते समय व्यवहार में लाये । इस प्रकार नीराजन करने के उपरान्त बुद्धिमान् पुरुष आचमन करे । मन्दाकिनी का जल इस कार्य में सभी पापों का विनाश करनेवाला तथा मङ्गलकारी है, तत्पश्चात् इस मंत्र का उच्चारण करते हुए जोड़े वस्त्र को समर्पित करे । 'हे देव ! आपके लिए बने हुए ये युगल वस्त्र देव निर्मित सूत्र द्वारा बने हुए, यज्ञ तथा दान से समन्वित, विविध वर्णोंवाले एवं परम रमणीय हैं, इसे आप ग्रहण करें ।' तत्पश्चात् कपूर और केसर के साथ चन्दन लगावे और हाथ में कुश ग्रहण किये हुए प्रयत्नपूर्वक इस मंत्र का उच्चारण करे । 'हे देव ! आपके शरीर और चेष्टा (चेहरा) को मैं नहीं जानता, मेरे द्वारा समर्पित किये जाते हुए इन सुगंधित द्रव्यों को आप ही ग्रहण कर अनुलेपन कर लें ।' तदनंतर चालीस दीप प्रदान करना चाहिये और प्रदक्षिणा भी करनी चाहिये । 'हे देव ! तुम्हीं चन्द्रमा और सूर्य—दोनों के ज्योतिः स्वरूप हो, तुम्हीं विद्युत् में प्रकाश करनेवाले अग्निरूप हो, तुम्हीं समस्त ज्योतिःपुञ्ज स्वरूप हो, मेरे इस दीप को ग्रहण करो ।' तदनन्तर इस मंत्र का उच्चारण कर विचक्षण पुरुष धूपदान करे । 'हे देव ! यह वनस्पतियों का अति उत्तम रस, दिव्य गन्धयुक्त, सुगंधित द्रव्यों में श्रेष्ठ धूप में अति भक्तिपूर्वक आपको अर्पित कर रहा हूँ, आप इसे ग्रहण करें ।' तदनन्तर 'हे महान् आभूषणों से विभूषित देव ! मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ ।' इस मंत्र द्वारा आभूषण अर्पित करे । इस प्रकार उपर्युक्त विधियों से सात रात तक महोत्सव करने के बाद देवकुम्भों द्वारा यजमान अभिषेचन करे, उनकी संख्या चार हो, आठ हो, अथवा दो हों या एक ही हो । श्वेत वस्त्रों-से ढँके हुए, पञ्चरत्न युक्त कलशों द्वारा 'देवस्य त्वा....' इस मंत्र अथवा साम या आथर्वण मंत्र द्वारा, अथवा नवग्रह के यज्ञों में अभिषेक के जो मंत्र कहे गये हैं, उन मन्त्रों द्वारा स्नान कर यजमान श्वेत वस्त्र धारण करे एवं यत्न-पूर्वक देवताओं की पूजा कर स्थापना करानेवाले की वस्त्र, अलंकार एवं आभूषणों द्वारा पूजा करे । और यज्ञ कार्य में आनेवाले अन्य सभी पात्रादि तथा मण्डपस्थ सामग्रियों को, तथा जो कुछ भी वस्तुएँ वहाँ पड़ी हुई हों, उन सब को भी आचार्य को दे दे; क्योंकि गुरु के प्रसन्न होने पर सभी देवगण प्रसन्न होते हैं । इस देवप्रतिमा के स्थापन के कार्य को दुःशील, दम्भी एवं संन्यासी आदि विशेष चिह्न धारण करने वालों द्वारा नहीं कराना चाहिये, प्रत्युत श्रुतियों के पारगामी गृहस्थाश्रम में रहनेवाले ब्राह्मण द्वारा कराना चाहिये । जो व्यक्ति केवल भक्ति के कारण वैदिक धर्मों में परायण विद्वान पण्डितों को छोड़कर अपने पाषण्डी गुरु को इस कार्य में नियुक्त कर लेता है, उसका कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है तथा वह शीघ्र ही अपूज्य हो जाता है । उस स्थान पर पिशाचों का आधिपत्य हो जाता है, प्रतिमा को लोग थोड़े

ही दिनों बाद अपूज्य समझने लगते हैं। ब्राह्मणों द्वारा करायी गई स्थापना से देव प्रतिमा कल्याणकारिणी होती है, और चिरकाल तक लोग उसकी पूजा करते रहते हैं। ॥१-२५॥

श्री मात्स्य महापुराण में देवप्रतिमा स्नान नामक दो सौ सड़सठवाँ अध्याय समाप्त। ॥२६७॥

दो सौ अड़सठवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी! समृद्धि के इच्छुक लोगों को प्रासादों की रचना किस प्रकार करानी चाहिये? उनका प्रमाण क्या है? लक्षण क्या है? इस विषय को अब विस्तार पूर्वक हम लोगों को बताइये ॥१॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द! अब मैं प्रासादों की विधि को बता रहा हूँ, सुनिये। वास्तु के शरीर को जाननेवाला विचक्षण पुरुष वास्तु की परीक्षा कर लेने के बाद बलिकर्म तथा समिधाओं द्वारा वास्तु की शान्ति करे। जीर्ण प्रासाद के उद्धार, बाटिका के आरोपण, नूतन गृह में प्रवेश, नवीन प्रासाद अथवा भवन के निर्माण, एक प्रासाद से दूसरे प्रासाद में परिवर्तन, प्रासाद तथा गृहों में दूसरे द्वार की रचना, इन सभी अवसरों पर पूर्व कथित रीति से विचक्षण पुरुष सर्वप्रथम वास्तु की शान्ति कराये। तदनन्दर वास्तु के मध्य भाग में पृष्ठ प्रदेश पर एक हाथ गहरे तथा चौड़े कुण्ड में, जो तीन मेखलाओं से युक्त बना हुआ हो, जव, काले तिल तथा दुग्धवाले वृक्षों की समिधाओं द्वारा हवन करना चाहिये। मधु एवं घृत से संयुक्त पलाश अथवा खदिर की समिधाओं का, अथवा मधु तथा घृत से संयुक्त कुश और दूर्वा का हवन करना चाहिये। होम के अन्त में पाँच बेल के फलों द्वारा अथवा पाँच बेल के बीजों द्वारा तथा विविध प्रकार की भक्ष्य एवं भोज्य सामग्रियों द्वारा वास्तु प्रदेश में बलि देनी चाहिये। तथा विशेष नैवेद्य भी तथोक्त क्रम से देना चाहिये। वह क्रम इस प्रकार है। ईशान कोण में घृत से संयुक्त नैवेद्य अग्नि के लिए समर्पित करना चाहिये, फल तथा घृत संयुक्त ओदन पर्जन्य के लिए, जय के लिए पीली ध्वजाएँ तथा आँटे से बना हुआ कूर्म देना चाहिये। इन्द्र के लिए पाँच रत्न तथा आँटे का कुलिश देना चाहिये, सूर्य के लिए धूम्र वर्ण का वितान तथा सत्तू, सत्य के लिए घी और गेहूँ, भृश को मत्स्य, अन्तरिक्ष को शष्कुली (पूड़ी), वायु को सत्तू, पूषा को लावा, वितथ को चना और ओदन, गृहक्षत्र को मधु और अन्न, यम को मांस और ओदन गन्धर्व को सुगन्धित ओदन, भृङ्गराज को भृङ्गिका, मृग को महावर, पितरों को खिचड़ी, दौवारिक को दन्तकाष्ठ तथा आँटे की कृष्ण वलि, सुग्रीव को पूआ, पुष्पदन्त को खीर, वारुण को कुश समूह से संयुक्त पद्म असुरगणों को सुवर्णयुक्त पिष्ठक तथा मदिरा, शोष को घृत समेत ओदन, पापयक्ष्मा को जव का अन्न, रोग को घी का बना हुआ लड्डू, नाग को पुष्प और फल, मुख्य को घी तथा मूँग और ओदन, सोम के लिए भल्लाट के स्थान पर घृत और खीर, भग के लिए साठी का चावल तथा अदिति के लिए पिष्टक, पिष्टक और पोलिक तथा दिति के

लिए पूरी की बलि दे दे—यह वास्तु के बाहरी भाग की बलिप्ठा प्रकार है। यम को खीर, आपवत्स को दही, सावित्र को लड्डू तथा मरिच के साथ कुशमिश्रित जल, सविता को गुड़ और अपूप, जय को घृत और चन्दन तथा विवस्वान् के लिए पुर्नवार लाल चन्दनं तथा खीर दे। इन्द्र को घृत समेत हरिताल और ओदन दे, मित्र को घृत मिश्रितं ओदन तथा रुद्र को घृत और खीर दे। राजयक्ष्मा को पका हुआ तथा कच्चा मांस दे, पृथ्वीधर को मांस खण्ड तथा कुम्हड़े दे। अर्यमा के लिए पुर्नवार शक्कर और खीर, पञ्चगव्य, जव, तिल, अक्षत तथा चरु दे। विविध प्रकार के भक्ष्य तथा भोज्य पदार्थ ब्रह्मा के लिए दे। इस प्रकार से विधिपूर्वक पूजित देवगण सर्वदा शान्ति करते हैं। अन्य उपस्थित लोगों के लिए सुवर्ण का तथा ब्राह्मण को दूध देनेवाली गौ का दान करना चाहिये। राक्षसियों के लिए जिस प्रकार की बलि दी जानी चाहिये, उसे सुनो। मांसयुक्त ओदन, घृत, तथा रक्त समेत पद्मकेसर—इन सब वस्तुओं को ईशानकोण की ओर चरकी नामक राक्षसी को निवेदित करना चाहिये। मांस मिश्रित ओदन, रुधिर तथा हरिद्रायुक्त ओदन—इन सब वस्तुओं को आग्नेयकोण की ओर विदारी नामक राक्षसी के लिए निवेदित करना चाहिये। रक्त समेत दही, ओदन, हड्डियों के टुकड़े तथा पीतरक्त की बलि राक्षस समेत पूतना नामक राक्षसी के लिए नैऋत्यकोण में देनी चाहिये। वायव्यकोण में पापा नामक राक्षसी के लिए, मदिरा, आसव, मछली मांस तथा खीर—को देना चाहिये। क्रमानुरूप इन वस्तुओं को देते समय अपना नाम उच्चारित कर लेना चाहिये। और मन्त्र के आदि में प्रणव का उच्चारण करते हुए अन्त में नमस्कार भी करना चाहिये। तदनन्तर यजमान को सभी औषधियों से युक्त जल के द्वारा स्नान कराना चाहिये। यजमान को भक्तिपूर्वक अपने गृह पर समुपस्थित लोगों की तथा शान्तिकर्म में नियुक्त ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार वास्तु की शान्ति करने के बाद कर्म प्रारम्भ करना चाहिये। प्रासाद, भवन एवं उद्यान के प्रारम्भ करते समय अथवा उनके उद्धार के समय या पुर अथवा गृह में प्रवेश करते समय सभी दोषों के विनाशार्थ रक्षोघ्न और पावमान सूक्तों के पाठ कराने के बाद तथा नृत्य और मांगलिक गीत वाद्यों के साथ ब्राह्मण वाचन करना चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त विधि से जो बुद्धिमान पुरुष प्रतिवर्ष गृह अथवा मन्दिर आदि के प्रारम्भ अथवा प्रवेश आदि के अवसरों पर करते हैं, वे दुःख नहीं झेलते, उन्हें न तो किसी व्याधि का भय होता है, न बन्धुजनों का तथा सम्पत्ति का विनाश ही होता है, प्रत्युत इसके प्रभाव से वह इस लोक में सौ वर्ष तक जीवित रहता है और स्वर्ग में एक कल्प पर्यन्त निवास करता है। ॥ १–३६ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में वास्तु दोष शमन नामक दो सौ अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥२६८॥

दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

सूत ने कहा—इस प्रकार उपर्युक्त प्रकार के वास्तु बलि करने के उपरान्त वास्तु को सोलह भागों में विभक्त करे, जिनमें से चार भागों में मध्य भाग की कल्पना करे। और तदनन्तर बारह भागों में प्रासाद की कल्पना करे। बुद्धिमानों को चारों दिशाओं में बाहर निकलने का मार्ग भी जानना चाहिये। प्रमाण के चौथाई भाग जितनी भीत की ऊँचाई होनी चाहिये और भीत की ऊँचाई के प्रमाण से द्विगुणित शिखर (गुम्बद) की ऊँचाई होनी चाहिये। शिखर की ऊँचाई के चौथे भाग जितनी प्रदक्षिणा बनानी चाहिये। गर्भ (मध्य भाग) के माप का द्विगुणित मण्डप के अग्रभाग का विस्तार होना चाहिये, और तीन भागों से युक्त लम्बाई होगी, जो भद्रयुक्त रहेगी। विचक्षण पुरुष को गर्भमान को पाँच भागों में विभक्त कर एक भाग में प्राग्ग्रीव की कल्पना करनी चाहिये। गर्भसूत्र के समान आगे मुखमण्डप की रचना करनी चाहिये। यह सामान्यतः प्रासाद का लक्षण है, जिसे मैं बतला चुका। अब अन्य प्रासाद की रचना का प्रकार बता रहा हूँ, जो लिंग मान के आधार पर निर्मित होता है। बुद्धिमान पुरुषों को लिंग पूजा की उपयोगी पीठिका बनानी चाहिये। पिण्डिका के अर्ध भाग को विभक्त कर उक्त अर्धांश मान में भित्ति की रचना करनी चाहिये। एवं बाहरी भीत के प्रमाण के अनुरूप ही ऊँचाई भी करनी चाहिये। भीत की ऊँचाई से द्विगुणित शिखर की ऊँचाई होनी चाहिये। शिखर के चतुर्थ भाग परिमित प्रदक्षिणा करनी चाहिये। प्रदक्षिणा के बराबर ही आगे का मण्डप निर्मित करना चाहिये। उसके आधे भाग में आगे की ओर मुख मण्डप बनाना चाहिये। प्रसाद से गर्भमान के अनुसार दो कपोल निकालने चाहिये। उसके ऊपर भीत की ऊँचाई से मंजरी की कल्पना करनी चाहिये। मंजरी के अर्ध भाग में शुक नासा की रचना करनी चाहिए, और ऊपर वाले आधे भाग में वेदी बंध की रचना करानी चाहिये। वेदी के ऊपर जो शेष भाग रह जाता है, वह कण्ठ और अमलसारक है। इस प्रकार विभाग करके मनोहर प्रासाद की रचना बुद्धिमानों को करनी चाहिये। अब अन्य प्रकार के प्रासाद के लक्षणों को बतला रहा हूँ। हे ऋषिगण! मध्य भाग के मान के अनुसार प्रासाद की रचना का प्रकार आप लोग सुनें। मध्यभाग को नव भागों में विभक्त कर मध्य में लिंग की पीठिका स्थापित करे। अगल-बगल में पादाष्टक को अति रुचिर तथा कल्पित करे, उन्हीं के मान के अनुसार भीत का विस्तार करना चाहिए। उस पाद को पाँच गुणित करने पर जो गुणनफल हो, वही भीत की ऊँचाई है, और उसकी द्विगुणित ऊँचाई शिखर की होगी। शिखर को चार भागों में विभक्त कर आधे दो भागों में शुकनासा की कल्पना करनी चाहिये, तीसरे में वेदिका मानी गई है, चतुर्थ में कण्ठ और अमलसार की कल्पना करनी चाहिये। इस प्रासाद में कपाल का मान द्विगुणित माना गया है। मनोहर पत्तियों तथा लताओं से तथा अण्डकों से विभूषित बनाना चाहिये। यह तीसरे ढङ्ग के प्रासाद का प्रकार मैं तुम्हें बता चुका। हे ऋषि-वृन्द! अब साधारण रीति से एक अन्य प्रकार के प्रासाद का वर्णन सुनिये। जहाँ पर देवता स्थित होते

हैं, उस क्षेत्र को तीन भागों में विभक्त कर उसी परिमाण में बाहर की ओर निकला हुआ रथाङ्ग बनाना चाहिये। प्रासाद के चारों ओर चतुर्थ भाग में विस्तृत नेमी बनानी चाहिये। मध्य भाग को उससे द्विगुणित करना चाहिये, वही उसका मान है, और वही भीत की ऊँचाई भी है, शिखर की ऊँचाई उससे द्विगुणित मानी गयी है। उस प्रासाद का प्राग्ग्रीव पाँच भाग में होगा, उसका निष्कास बतला रहा हूँ, उसे प्राकार के तीन भाग में छिद्र युक्त बनाना चाहिये, प्राग्ग्रीव को पाँच भागों में—विशेषतया निष्काष से—बनाना चाहिये! अथवा कर्णमूल से पाँच भाग में प्राग्ग्रीव की कल्पना करनी चाहिये। द्वारमूल के मध्य भाग में सुवर्ण की स्थापना करनी चाहिये। इस प्रकार इसे ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ--इन तीन प्रकारों वाला बनाना चाहिये। वे चाहे लिंग के परिमाण भेद से हों अथवा रूप भेद से हों। इन प्रासादों के निर्माण की विधि मैं संक्षेप में बतला चुका, अब उनके नाम सुनिये। मेरु, मन्दर, कैलास, कुम्भ, सिंह, मृग, विमान, छन्दक, चतुरस्र, अष्टास्र, षोडशास्र, वर्तुल, सर्वभद्रक, सिंहास्र, नन्दन, नन्दिवर्धनक, हंस, वृष, सुवर्णेश, पद्मक और समुद्गक—ये प्रासादों के नाम हैं, ऋषिगण! अब इनके विभागों को सुनिये। सौ शृङ्गोंवाले, चार द्वार वाले तथा सोलह खण्डों में ऊँचे विविध प्रकार के विचित्र शिखरों से युक्त प्रासाद को मेरु कहते हैं। मन्दर बारह खण्डों वाला कहा गया है तथा कैलास नव खण्ड का होता है। विमान और छन्दक भी उन्हीं की भाँति अनेक शिखरों और मुखों से युक्त होते हैं और आठ खण्डों वाले होते हैं। नन्दिवर्धन सात खण्डों वाला होता है। नन्दन विषाणक से संयुक्त रहता है। सोलह पहलों वाले विविध प्रकार के रूपों से सुशोभित अनेक शिखरों से संवलित प्रासाद को सर्वतोभद्र कहते हैं। इसे चित्रशाला से संयुक्त तथा पाँच खण्डों वाला जानना चाहिये। बलभी तथा छन्दक को भी उसी प्रकार अनेक शिखरों और मुखों से युक्त जानना चाहिये। ऊँचाई में वृषभ के समान तथा मण्डल में बिना पहल के सिंह प्रासाद को सिंह की आकृति का जानना चाहिये, गज को गज के समान ही जानना चाहिये। उसी प्रकार कुम्भ को आकृति में कुम्भ की भाँति तथा ऊँचाई में नव खण्डवाला बनाना चाहिये। अंगुली के पुट की भाँति उपस्थित पाँच अण्डकों से विभूषित चारों ओर से सोलह पहल वाले प्रासाद को मुद्गक जाना चाहिये, इसके दोनों पार्श्वों में चन्द्रशालाएँ होंगी तथा ऊँचाई दो खण्डों से युक्त होगी। उसी प्रकार की बनावट पद्मक की भी होगी केवल ऊँचाई में यह तीन खण्डों वाला होगा। इसके शिखर विचित्र तथा सुन्दर दिखनेवाले होते हैं, और यह भी सोलह पहलों वाला होता है। मृगराज प्रासाद वह है, जो चन्द्रशाला से विभूषित तथा प्राग्ग्रीव से युक्त और छः खण्डों में रचा गया हो। गज प्रासाद अनेक चन्द्रशालाओं से युक्त होगा। गरुड़ नामक प्रासाद गृहराज को भी अपमानित करने वाला, तीन चन्द्रशालाओं से विभूषित तथा सात खण्डों में उच्च होता है। उसके बाहर की ओर सब छियासी खण्ड होंगे। एक अन्य प्रकार का भी गरुड़ प्रासाद है जो ऊँचाई में दस खण्डों से युक्त है। पद्मक सोलह पहलों वाला तथा पूर्व कथित गरुड़ से दो खण्ड अधिक ऊँचा होता। पद्म के समान ही श्री वृक्षक प्रासाद का परिमाण सुना जाता है। उसमें पाँच अण्डक, दो खण्ड, तथा मध्य भाग में चार हाथ का विस्तार होता है। वृष नामक यह प्रासाद नाम से ही

सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है। मैंने पाँच सात प्रासादों के प्रकार वर्णित किए हैं, अतः अन्यान्य वे प्रासाद, जिनका वर्णन नहीं किया गया उन्हें सिंहास्य के प्रमाणानुरूप जान लेना चाहिए। सभी चन्द्रशालाओं से संयुक्त तथा प्रागूग्रीव से संवलित रहेंगे। इन्हें ईंटों से, लकड़ी अथवा पत्थर से बनाना चाहिये और तोरण समेत बनवाना चाहिये। मेरु प्रासाद पचास हाथ के परिमाण में रहता है, मन्दर उससे पाँच हाथ न्यून अर्थात् पैंतालीस हाथ के परिमाण में। कैलास का विस्तार चालीस हाथ तथा विमान चौंतीस हाथ का होता है। उसी प्रकार नन्दिवर्धनक का परिमाण बत्तीस हाथ का, नन्दन का तथा सर्वतो भद्र का तीस हाथों का जानना चाहिये। वर्तुल और पद्मक का परिमाण बीस हाथों का, गज, सिंह, कुम्भ, वलभी, तथा छन्दक को सोलह हाथों का जानना चाहिये—ये चारों देवताओं को अति प्रिय हैं कैलास, मृगराज तथा विमानच्छन्दक—ये बारह हाथ के माने गये हैं। गरुड़ आठ हाथों का तथा हंस दस हाथों का कहा गया है, इस प्रकार उपर्युक्त लक्षणों से युक्त शुभ लक्षण सम्पन्न इन प्रासादों की रचना करनी चाहिये दक्ष, राक्षस और नागों के प्रासाद मातृहस्त से प्रशस्त माने गये हैं। श्री वृक्षक आदि आठ मध्यम लिंग के लिये कहे गये हैं। इसी प्रकार हंसादि पाँच कनिष्ठ लिंग के लिए शुभदायक माने गए। बल भी और छन्दक प्रासाद में गौरवर्ण, जटा मुकुट धारण करने वाली, वरदान देनेवाली, अभयदान देने वाली असूक्षत्र और कमण्डलु धारण करनेवाली एवं शुभदायिनी हैं। गृह में लाल मुकुट धारण करने वाली, कमल एवं अंकुश विभूषित वरदान देने वाली अभयदायिनी पति समेत मातृका का पूजन करना चाहिये। तपोवन में अवस्थित उसे बुद्धिमान पुरुष इस प्रकार पूजित करे। देवी के लिए और विनायक के लिए बलभी और छन्दक ये दोनों शुभदायी हैं। १५६॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रासादानुकीर्तन नामक दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त। ॥२६९॥

दो सौ सत्तरवाँ अध्याय

सूत ने कहा:—ऋषि वृन्द! अब मैं मण्डपों का लक्षण बतला रहा हूँ, और प्रासाद के अनुरूप श्रेष्ठ मण्डपों को भी बतला रहा हूँ, सुनिये। ज्येष्ठ, मध्यम, और कनिष्ठ—इन भेदों से विविध प्रकार के मण्डपों की रचना करनी चाहिये। उन सभी का नाम मैं बता रहा हूँ। पुष्पक, पुष्पभद्र, सुव्रत, अमृतनन्दन कौशल्य, बुद्धिसंकीर्ण, गजभद्र, जयावह, श्रीवत्स, विजय, वास्तुकीर्ति, श्रुतिञ्जय, यज्ञभद्र, विशाल, सुश्लिष्ट, शत्रुमर्दन, भागपञ्च, नन्दन, मानव, मानभद्रक, सुग्रीव, हरित, कर्णिकार, शतर्धिक, सिंह, श्यामभद्र, तथा सुभद्र—ये सत्ताईस प्रकार के मण्डप हैं। हे द्विजगण! इनके लक्षणों को सुनिये। जिस मण्डप में चौंसठ स्तम्भ लगे हों, उसे पुष्पक कहते हैं, बासठ स्तम्भों वाले को पुष्पभद्र कहते हैं। साठ स्तम्भों वाले को सुव्रत कहते हैं। अट्ठावन स्तम्भ जिसमें सोलह अमृतनन्दन नामक मण्डप है, कौशल्य छप्पन स्तम्भों वाले मण्डप को कहते हैं। चौवन स्तम्भ जिस मण्डप में हो उसका नाम संकीर्ण है, उससे दो स्तम्भ कम जिसमें हो

वह गजभद्रक है। जयावह पचास स्तम्भों वाले मण्डप को कहते हैं, अड़तालीस स्तम्भों वाले मण्डप को श्रीवत्स; छियालीस स्तम्भों वाले को विजय, होता है उसी प्रकार वास्तुकीर्ति भी छियालीस स्तम्भों वाला मण्डप है, श्रुतिंजय चौवालीस स्तम्भों का है। यज्ञभद्र मण्डप में चालीस स्तम्भ होते हैं, विशालक में उससे दो स्तम्भ न्यून रहता है अर्थात् उसमें अड़तीस स्तम्भ लगते हैं। सुश्लिष्ट में छत्तीस स्तम्भ होते हैं, शत्रुमर्दन में उससे दो स्तम्भ न्यून रहते हैं। अर्थात् वह चौंतीस स्तम्भों वाला है, भाग पंच में बत्तीस स्तम्भ लगते हैं, तीस स्तम्भों वाले को नन्दन कहते हैं, अट्ठाईस स्तम्भों वाले मण्डप को मानव, तथा छब्बीस स्तम्भों वाले को मानभद्र मण्डप कहते हैं। इसी प्रकार सुग्रीव चौबीस स्तम्भों वाला, हरित बीस स्तम्भों वाला, कर्णिकार बीस स्तम्भों वाला; शतर्धिक अट्ठारह स्तम्भों वाला, सिंह सोलह स्तम्भों वाला, श्यामभद्र चौदह स्तम्भों वाला, सुभद्र बारह स्तम्भों वाला कहा गया है। लक्षणों समेत मण्डपों के नाम तुम्हें बतला चुका। इन मण्डपों की, तीन कोनवाला, गोलाकार, अर्धचन्द्राकार, आठ कोनवाला, दस कोनवाला, अथवा चार कोन वाला स्थापित करना चाहिये। ऐसे मण्डपों के स्थापन से राज्य की प्राप्ति होती है, विजय मिलती है, और आयु की वृद्धि होती है पुत्र लाभ होता है लक्ष्मी की पुष्टि होती है—ये फल त्रिकोण के क्रम से जानने चाहिये। इस प्रकार के बनाये हुए मण्डप मङ्गलकारी होते हैं अन्य॰ प्रकार के मण्डप अशुभकर हैं। गृह के मध्य में चौंसठ पदों की कल्पना कर मध्य में द्वार बनाये, चौड़ाई से ऊँचाई दुगुनी होनी चाहिये और उसके कटि भाग को तृतीयाँश परिमित बनाना चाहिये। चौड़ाई का आधा मध्य भाग होना चाहिये, और उसके चारों ओर अन्य भीतें रहेंगी। मध्य भाग का चतुर्थाँश जितना हो उसका त्रिगुणित लम्बा और, द्विगुणितविस्तृत, द्वार होना चाहिये जो गूलर का बना हुआ हो। दोनों शाखाओं का विस्तार द्वार के विस्तार का चतुर्थाँश हो। तीन, पाँच, सात, अथवा नव शाखाओं द्वारा द्वार बनता है। वे क्रमशः कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ कहलाते हैं। एक सौ साढ़े चालीस अंगुल ऊँचे द्वार को उत्तम द्वार कहते हैं, अन्य दो प्रकार के द्वार एक सौतीस तथा एक सौ बीस अंगुल के होते हैं। वायु के निकलने के लिये एक सौ अस्सी अँगुल ऊँचा द्वार होना चाहिये। उसी प्रकार एक सौ दस, एक सौ सोलह एक सौ, नब्बे तथा साठ अंगुल के ऊँचे द्वार होने चाहिये। सर्वदा उपर्युक्त दस प्रकार के द्वार कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के द्वारों को वर्जित रखना चाहिये क्योंकि वे चित्त को उद्विग्न करने वाले कहे गये हैं। सभी वास्तुओं में द्वार के सामने वेध को वर्जित रखना चाहिये। सामने की ओर वृक्ष, कोणभ्रमि-द्वार, स्तम्भ, कूप, ध्वजा, भीत और श्वभ्र इन सबों से विद्ध हुआ द्वार मंगलकारी नहीं होता। क्षय, दुर्गति प्रवास, क्षुधा का भय, दुर्भाग्य, बन्धन भय, रोग, दारिद्र्य, कलह, विरोध, धनहानि,— ये सब कुपरिणाम क्रमशः द्वार वेध से होते हैं, । पूर्व दिशा में फल वाले वृक्ष, दक्षिण दिशा में दुग्धवाले वृक्ष, पश्चिम दिशा में विविध भाँति के कमलों से सुशोभित जल तथा उत्तर दिशा में साल और ताल के वृक्षों से युक्त पुष्पवाटिका मंगलदायिनी है। जल सभी दिशाओं में श्रेष्ठ है, वह चाहे चल हो, अथवा अचल हो। मुख्य भवन के दोनों पार्श्वों में परिवार वर्ग का निवास होना चाहिये, दक्षिण की ओर तपोवन अथवा

तपस्या का स्थान, उत्तर में मातृकाओं का भवन, आग्नेय कोण में पाकशाला, नैऋर्त्य कोण में गणेश का निवास, पश्चिम ओर लक्ष्मी का निवास, वायव्य में गृहमालिका, उत्तर में यज्ञशाला, निर्माल्य का स्थान, पश्चिम की ओर चन्द्रादि देवता का वलिदान देने का स्थान, सामने की ओर वृषभ का स्थान और शेष भाग में कुसुमायुध कामदेव का स्थान निर्दिष्ट करना चाहिये। ईशान कोण में जलयुक्त बावली रहेगी तथा वहीं जल में शयन करनेवाले विष्णु भगवान् का भी स्थान रहेगा। इस प्रकार कुण्ड और मंडप से संयुक्त आयतन का निर्माण करना चाहिये। घण्टा, वितान, तोरण तथा चित्र से सुशोभित, नित्य महोत्सव से प्रमुदित जनसमूह के साथ विविध ध्वजाओं से विभूषित देव मन्दिर को जो पुरुष बनवाता है, उसे कभी लक्ष्मी नहीं छोड़तीं और स्वर्ग में उसकी पूजा होती है। इसी प्रकार सभी मन्त्रों और विधानों से युक्त स्थापन की विधि को अपनी शक्ति के अनुरूप गृहपूजन के अवसर पर भी करना चाहिये। उस समय स्थापना करनेवाले को गुरु तथा ब्राह्मणों को गौ, वस्त्र, सुवर्ण के आभूषण, सुवर्ण तथा पृथ्वी का दान देना चाहिये और अन्न दान भी करना चाहिये। ॥ १—३६ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में प्रासाद अनुकीर्तन नामक दो सौ सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७०॥

दो सौ इकहत्तरवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! पिछली कथा के प्रसंग में आप पुरुवंशी राजाओं के वंश का भविष्य समेत वर्णन तो हम लोगों को सुना चुके हैं, अब सूर्यवंश में जो राजा लोग होंगे कृपया उन्हें हमें बताइये ? इसी प्रकार यादव वंश में कलियुग में जो कीर्तिशाली राजा पृथ्वी पर होंगे, उन्हें भी हमें बताइये ? तथा इन वंशों के अन्त हो जाने पर जो अन्य शुभ व्रत-परायण जातियाँ भविष्य में राज्य करेंगी। उन्हें भी हमें बताइये ? क्रमशः हमारी इन जिज्ञासाओं को आप संक्षेप में बताइये तथा इसी के साथ-साथ यह भी बताइये कि भविष्य में कौन-सी विशेष घटनाएँ घटित होंगी ? ॥१—३॥

सूत ने कहा—राजा वृहद्बल का उत्तराधिकारी राजा उरुक्षय तथा उरुक्षय का पुत्र महायशस्वी वत्सद्रोह होगा। वत्सद्रोह का पुत्र राजा प्रतिव्योम तथा उसका पुत्र दिवाकर होगा। उसी के राज्य के मध्य देश में सुन्दर अयोध्या नामक नगरी होगी। दिवाकर का पुत्र महायशस्वी सहदेव होगा तथा सहदेव का पुत्र महान् चेता ध्रुवाश्व नामक राजा होगा। उस ध्रुवाश्व का पुत्र महाभाग भाव्य तथा भाव्य का पुत्र प्रतीपाश्व होगा। उस प्रतीपाश्व का पुत्र सुप्रतीप नामक राजा होगा। उसका पुत्र मरुदेव होगा, मरुदेव से राजा सुनक्षत्र उत्पन्न होगा। राजा सुनक्षत्र का पुत्र परम तपस्वी राजा किन्नराश्व होगा। किन्नराश्व का पुत्र महामना अन्तरिक्ष नामक राजा होगा। अन्तरिक्ष का पुत्र सुषेण तथा शत्रुओं को जीतनेवाला सुमित्र नामक पुत्र होगा। उनमें सुमित्र का पुत्र बृहद्राज और बृहद्राज का पुत्र परम बलवान् तथा धार्मिक कृतंजय

नामक पुत्र होगा। कृतञ्जय का पुत्र विद्वान् रणंजय नामक राजा होगा। उस रणंजय से संजय नामक राजा की उत्पत्ति होगी। संजय का पुत्र शाक्य तथा शाक्य का पुत्र शुद्धोदन होगा। शुद्धोदन का पुत्र सिद्धार्थ तथा सिद्धार्थ का पुत्र पुष्कल होगा। उससे प्रसेनजित की उत्पत्ति होगी, उससे क्षुद्रक की उत्पत्ति होगी। क्षुद्रक से कुलक और कुलक से राजा सुरथ होगा। राजा सुरथ से सुमित्र की उत्पत्ति होगी, जो अपने वंश का अन्तिम राजा होगा। ये इक्ष्वाकुवंशी राजा हैं, जो कलियुग में उत्पन्न होंगे और राजा बृहद्बल के वंश में होनेवाले कहे जायँगे। ये कुल की वृद्धि करनेवाले राजागण हैं। प्राचीन गाथाओं के जाननेवाले ब्राह्मणों ने इस वंशपरम्परा की सूचना देनेवाला एक श्लोक इस प्रकार कहा है। "इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति। सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्था प्राप्स्यति वै कलौ।' अर्थात् 'इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का यह वंश राजा सुमित्र की अवधि के बाद समाप्त हो जायगा। कलियुग में यह वंश राजा सुमित्र को प्राप्त कर विश्राम करेगा।' इस प्रकार यह मानववंश प्राचीनकाल से ही वर्णित हो रहा है। अब इसके बाद बृहद्रथ के वंशवाले मागधों का मैं वर्णन कर रहा हूँ। सहदेव के वंश में होनेवाले उन भूत, वर्तमान तथा भविष्यत्कालीन राजाओं का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये, जो जरासंध से उत्पन्न होंगे। महाभारत के संग्राम के समाप्त हो जाने पर सहदेव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सोमाधि उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ, जो गिरिव्रज में अपना राज्य करता था, उसने अट्ठावन वर्षों तक राज्य किया। उसी के वंश में श्रुतश्रवा नामक राजा हुआ, जो चौंसठ वर्षों तक राज्य करता रहा। उसके बाद अप्रतीपी नामक राजा हुआ, जो छत्तीस वर्षों तक राज्य करता रहा। उसका पुत्र निरमित्र था, जो चालीस वर्षों तक राज्य कर स्वर्गवासी हुआ। उसके बाद राजा सुरथ हुआ, जिसने छप्पन वर्षों तक राज्य किया। तदनन्तर बृहत्कर्मा ने तेईस वर्षों तक राज्य किया। उसके बाद राजा सेनाजित ने पचास वर्षों तक पृथ्वी का पालन कर स्वर्गयात्रा की। तदनन्तर श्रुतिञ्जय नामक राजा होगा, जो चालीस वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद विभु अट्ठाईस वर्षों के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण होगा। तदनन्तर राजा शुचि चौंसठ वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद क्षेम नामक राजा होगा, जो अट्ठाईस वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेगा। तदनन्तर पराक्रमी राजा अनुव्रत होगा, जो चौंसठ वर्ष तक राज्य करेगा। उसके उपरान्त राजा सुनेत्र पच्चीस वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेगा। तदनन्तर राजा निवृति होगा जो अट्ठावन वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद राजा त्रिनेत्र अट्ठाईस वर्ष धरातल पर राज्य करेगा। तदनन्तर राजा द्युमत्सेन होगा, जो अड़तालीस वर्ष तक राज्य का कार्य करेगा। उसके बाद राजा महीनेत्र का पृथ्वी पर प्रकाश होगा, जो तैंतीस वर्षों तक रहेगा। तदुपरान्त राजा अचल का बत्तीस वर्षीय राज्यकाल प्रारम्भ होगा। उसके बाद रिपुञ्जय होगा, जो पचास वर्षों तक पृथ्वी पर रहेगा। इस प्रकार ये बत्तीस बृहद्रथ के वंशज राजा होंगे। उनका राज्यकाल कुल मिलाकर एक सहस्र वर्ष का होगा। विजयशील क्षत्रिय राजाओं में पुलक नामक बालक उत्पन्न होगा। ॥४--३०॥

श्रीमात्स्य महापुराण में राजवंश का कीर्तन नामक दो सौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७१॥

दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय

सूत ने कहा—बृहद्रथ एवं अवन्ति देशीय वीतिहोत्र राजाओं के बाद पुलक अपने स्वामी राजा को मारकर राजगद्दी पर अपने पुत्र का अभिषेक करेगा। संभ्रान्त क्षत्रियों के देखते-देखते ही वह पुलक का बालक सामन्तों से बन्दनीय तो होगा; किन्तु धर्मतः नहीं, केवल शक्ति के भरोसे। वह नरोत्तम पृथ्वीतल पर तेईस वर्षों तक राज्य करेगा। अट्ठाईस वर्षों तक पालक नामक राजा होगा, उसके बाद विशाखयूप नामक राजा होगा, जो तिरपन वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद सूर्यक नामक राजा होगा, जो इक्कीस वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद उसका पुत्र नन्दिवर्द्धन राजा होगा, जो तीस वर्षों तक राज्य करेगा—इस प्रकार बावन (?) वर्षों तक ये पाँच राजा राज्य का उपभोग कर नष्ट हो जायँगे। (वस्तुतः इन पाँचों के राज्य-काल का योग एक सौ पचपन वर्ष होता है।) इन राजाओं के समस्त यश को अपहृत कर शिशुनाक नामक राजा होगा, जो वाराणसी नगरी में अपने पुत्र को राज्यासन पर प्रतिष्ठापित कराकर गिरिव्रज का आश्रय लेगा। यह शिशुनाक चालीस वर्ष तक राजा होगा। उसका पुत्र काकवर्ण होगा, जो छब्बीस वर्षों तक पृथ्वी का राजा रहेगा, उसके बाद छत्तीस वर्षों तक क्षेत्रधर्मा नामक राजा होगा। तदनन्तर चौबीस वर्षों तक क्षेमजित् नामक राजा राज्य करेगा, उसके बाद फिर अट्ठाईस वर्षों तक राजा विन्ध्यसेन का राज्य होगा। फिर नव वर्ष तक कान्वायन नामक राजा होगा, तदनन्तर उसका पुत्र भूमिमित्र होगा जो चौदह वर्षों तक राज्य करेगा। फिर सत्ताईस वर्षों तक राजा अजातशत्रु रहेगा, उसके बाद चौबीस वर्ष तक वंशक नामक राजा होगा। तदनन्तर तैंतीस वर्षों तक उदासी नामक राजा होगा, उसके बाद चालीस वर्षों तक राजा नन्दिवर्द्धन का शासनकाल होगा। फिर तैंतालीस वर्ष तक महानन्दी राजा होगा—ये सब राजा शिशुनाक के उपरान्त पृथ्वीतल के राजा होंगे। इस प्रकार कुल मिलाकर तीन सौ साठ वर्षों तक शिशुनाक वंशीय राजा राज्य करेंगे, जो क्षत्रियों में निम्नकोटि के क्षत्रिय होंगे। इन्हीं राजाओं के साथ इतने ही समय में कलियुग में अन्य राजागण भी राज्याधिकारी होंगे, जो सभी समसामयिक होंगे। उनका विवरण इस प्रकार है—चौबीस इक्ष्वाकुवंशीय, सत्ताईस पाञ्चाल के, चौबीस काशी के, अट्ठाईस हैहयवंशीय, बत्तीस कलिंग देशीय, पच्चीस अश्मक, छत्तीस कुरुदेश के, अट्ठाईस मैथिल देश के, तेईस शूरसेन देश के तथा बीस वीतिहोत्र के—ये सभी एक समय में ही राज्य करनेवाले होंगे। महानन्दि का पुत्र कलियुग के अंशरूप से उत्पन्न महापद्म नामक राजा होगा, जो शूद्रा के गर्भ से समुत्पन्न होकर सभी क्षत्रियों का विनाशक होगा। उसके उपरान्त सभी राजा लोग शूद्रा के गर्भ से समुत्पन्न होंगे। वह महापद्म नामक राजा एकच्छत्र सम्राट् होगा, जो अट्ठासी वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेगा, और भावीवश अन्य सभी क्षत्रिय राजाओं का विनाश कर निष्कण्टक राज्य करेगा। तदनन्तर उस महापद्म के वंश में सुकल्प आदि आठ पुत्र राजा होंगे, जो क्रमशः केवल बारह वर्षों तक राज्य करेंगे। बारह वर्षों तक उन महापद्मवंशीय आठ राजाओं के राज्य के बाद कौटिल्य राज्य का उद्धार करेगा, तदनन्तर सौ वर्षों तक उक्त नव नन्द राजाओं के पृथ्वी का राज्य करने के बाद मौर्य वंश के अधिकार में राज्य

जायगा। इसके पश्चात् उसका पुत्र शतधन्वा होगा, जो छः वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद उसका पुत्र वृहद्रथ होगा, जो सत्तर वर्षों तक राज्य करेगा। तदनन्तर छत्तीस वर्ष तक राजा शक होगा। शक के बाद उसका नाती सत्तर वर्षों तक राज्य करेगा। उसका पुत्र राजा दशरथ होगा, जो आठ वर्षों तक राज्य करेगा। तदनन्तर उसका पुत्र सप्तति नव वर्ष राज्य करेगा। ये दस मौर्य वंशीय राजा होंगे, जो एक सौ सैंतीस वर्षों तक पृथ्वी का राज्य करेंगे। तदनन्तर उनके हाथ से शुंग वंश में अधिकार जायगा। सेनापति पुष्यमित्र वृहद्रथ वंशज राजाओं का विनाश कर स्वयं राजा हो, छत्तीस वर्षों तक राज्य करायेगा। उसके बाद वसुज्येष्ठ नामक राजा होगा, जो सात वर्षों तक राज्य करेगा। तदनन्तर वसुमित्र नामक राजा होगा, जो दस वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर अन्तक नामक राजा दो वर्ष, फिर उसका पुत्र पुलिन्दक तीन वर्ष तक राज्य करेगा। पुलिन्दक के बाद वज्रमित्र नामक (१४ वर्षतक) राजा होगा, उसके बाद समाभाग (भागवत) नामक राजा होगा, जो बत्तीस वर्षों तक राज्य करेगा। समाभाग के बाद देवभूमि नामक राजा होगा, जो दस वर्ष तक राज्य करेगा। ये दस छोटे-छोटे राजा इस वसुंधरा का तीन सौ वर्ष तक उपभोग करेंगे। इसके बाद राज्य शुङ्गवंशियों के हाथ से चला जायगा। राजा देवभूमि का अमात्य वसुदेव राजा को मारकर पृथ्वी का शासक होगा, जो शौङ्ग नाम से विख्यात होगा, जो काण्वायन अर्थात् कण्ववंशी नाम से नव वर्ष तक राज्य करेगा। उसका पुत्र भूमिमित्र होगा, जो चौदह वर्ष तक राज्य करेगा। उसका पुत्र नारायण होगा, जो बारह वर्ष तक राज्य-करेगा। उसका पुत्र सुशर्मा दस वर्ष तक राज्य करेगा। ये शुङ्गभृत्य राजा काण्वायन नाम से कहे गये हैं। ये काण्व नामक चालीस (चार) द्विज राजागण पैंतालीस वर्ष तक राज्य करेंगे। सामन्तों से प्रणाम किए जानेवाले राजागण परमधार्मिक होंगे। इनके बाद पृथ्वी आन्ध्रवंशीय राजाओं के हाथ जायगी। ॥१-६७॥

श्रीमात्स्य महापुराण में राज्यवंश-कीर्तन नामक दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७२॥

दो सौ तिहत्तरवाँ अध्याय

सूत ने कहा—तदनन्तर सुशर्मा नामक सुप्रसिद्ध काण्वायन राजा को, जो कि शुंग भृत्यों का अन्तिम राजा था, शुङ्गवंशीय शेष राजाओं को पराजित कर उन्हीं का सजातीय शिशुक नामक आन्ध्र राजा इस वसुन्धरा को प्राप्त करेगा। वह राजा शिशुक तेईस वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर उसका छोटा भाई कृष्ण अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद उसका पुत्र श्रीमल्लकर्णि दस वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर पूर्णोत्सङ्ग नामक राजा होगा, जो अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद शान्तकर्णि (शातकीर्ण) नामक राजा छप्पन वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर शान्तकर्णि का पुत्र लम्बोदर अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद आपीतक नामक उसका पुत्र बारह वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर मेघस्वाति नामक राजा होगा जो अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद स्वाति नामक राजा होगा और वह भी अट्ठारह वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर स्कन्दस्वाति नामक राजा होगा, जो केवल सात वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद मृगेन्द्र स्वाति-

कर्ण नामक राजा तीन वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर कुन्तल स्वातिकर्ण राजा होगा, जो आठ वर्ष तक राजा होगा। उसके बाद स्वातिवर्ण नामक राजा एक वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर पच्चीस वर्ष तक रिक्तवर्ण नामक राजा होगा। उसके बाद पाँच वर्ष तक हाल नामक राजा राज्य करेगा। तदनन्तर मन्दुलक नामक राजा होगा जो पाँच वर्ष राज्य करेगा। उसके बाद पुरीन्द्रसेन, तदनन्तर सौम्य स्वभाव सुन्दर शान्तिकर्ण नामक राजा होंगे जो एक वर्ष तक राज्य करेंगे। फिर चकोर स्वातिकर्ण नामक राजा होगा, जो छः महीने तक राज्य करेगा। तदनन्तर अट्ठाईस वर्ष तक शिवस्वाति नामक राजा राज्य करेगा। उसके बाद गौतमीपुत्र नामक राजा होगा, जो इक्कीस वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर गौतमीपुत्र का पुत्र प्रलोमा (पुलोमा) अट्ठाईस वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद शिवश्री पुलोमा नामक राजा होगा, जो सात वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर यज्ञश्री शान्तिकर्णिक नामक राजा होगा, जो उन्तीस सात वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद छः वर्ष तक विजय नामक राजा होगा। तदनन्तर उसका पुत्र चण्डश्री शान्तिकर्ण राजा होगा, जो दस वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद दूसरा पुलोमा नामक राजा होगा जो सात वर्ष तक राज्य करेगा। इस प्रकार ये उन्तीस आन्ध्र राजागण पृथ्वी का उपभोग करेंगे। उनके राज्य के वर्ष योग करने पर चार सौ साठ वर्ष होंगे। तदनन्तर उन आन्ध्रवंशीय राजाओं के सेवकों के वंशज राज्य के अधिकारी होंगे। जिनमें सात आन्ध्र वंशीय होंगे, दस आभीर (अहीर) वंश के होंगे, सात गर्दभिल्ल तथा अट्ठारह शक वंशीय होंगे। आठ यवन, चौदह तुषार, तेरह गुरुण्ड तथा उन्नीस हूण वंशीय राजा होंगे। आठ यवन राजागण सतासी वर्ष राज्य करेंगे। सात गर्दभिलवंशीय राजा इस पृथ्वी का उपभोग करेंगे। सात सहस्र वर्षों तक तुषारों के अधीन यह वसुन्धरा कही गई है। फिर सौ वर्ष, अस्सी वर्ष तथा तीन वर्ष अर्थात् १८३ वर्ष, एक सौ अट्ठारह वर्ष तथा चार सौ पचास वर्ष तक तेरह गुरुण्ड जातीय म्लेच्छ वंशज राजागण शूद्रों के साथ पृथ्वी का उपभोग करेंगे। तीन सौ ग्यारह वर्ष तक आन्ध्रवंशीय राजा राज्य करेंगे, श्री पार्वतीय बावन वर्ष राज्य करेंगे। दस आभीर राजा सड़सठ वर्ष राज्य करेंगे। कालवश उनके विनष्ट हो जाने पर किलकिला नामक राजा होंगे, जो यवन जाति के होंगे। धर्म, काम, अर्थ—तीनों दृष्टियों से सभी प्रान्तों में आर्य लोग उनकी संस्कृति से विमिश्रित हो जायँगे, सभी लोग आश्रम धर्म का विपर्यय करने लगेंगे, परिणामतः प्रजा नष्ट होने लगेगी, राजा लोग लोभी तथा झूठ बोलनेवाले होजायँगे। कलियुग के प्रभाव से सभी आर्य तथा म्लेच्छ लोग प्रभावहत हो जायँगे। अधार्मिकों की वृद्धि होगी, पाषण्ड बढ़ जायगा। इस प्रकार सन्ध्या मात्र शेष रह जाने पर कलियुग में जब सभी राजवंश नष्ट हो जायगा, तब थोड़े रूप में प्रजा शेष रह जायगी, जो धर्म के विनष्ट हो जाने से विशृंखलित रहेगी। असत्कर्म परायण, निर्बल, व्याधि और शोक से जर्जरित, अनावृष्टि से पीड़ित, एक दूसरे के संहार की इच्छुक वे सारी प्रजाएं बिना किसी की शरण प्राप्त किये, अति संकट में ग्रस्त हो भयभीत भाव से नदियों तथा पर्वतों में आश्रय लेगी। राजवंशों के समूल नष्ट हो जाने पर सारी प्रजाएं घर द्वार से विहीन हो, स्नेह रहित, लज्जा रहित, भाई मित्रादि को छोड़, वर्णाश्रम धर्म से विमुख हो, घोर पाप कर्म करती हुई, वृक्षों के पत्ते, मूल और फलों का आहार करने लगेंगी और

भीतर चार हाथ का अन्तर रहे और फिर उन दोनों से मिला हुआ एक सजातीय काष्ठ लगावे, फिर उसी से सजातीय काष्ठ की बनी हुई तुला मध्यभाग में सुवर्ण निर्मित पुरुष से युक्त अवलम्बित करे, वह तुला लम्बाई में चार हाथ लम्बी तथा दस अंगुल मोटी हो, उसमें लोहे की बनी हुई शृंखलाओं को युक्त करे तथा सुवर्ण निर्मित वस्त्र से विभूषित करे। यह तुलादण्ड सुवर्ण खचित रत्नमाला द्वारा विभूषित तथा विविध प्रकार के पुष्प एवं चन्दनादि से अलंकृत हो। फिर पृथ्वी पर विविध रंग के रजों से पद्म के मध्य के आकार का चक्र खिले और उसे पुष्पों द्वारा विकीरित करे, उसके ऊपर पांच वर्ण वाले पुष्प और फलों से सुशोभित वितान तनवाये। तदनन्तर वेदों को भली-भांति जानने वाले, सुन्दर आकृति वाले, सद्वंश में उत्पन्न, शीलवान् पुरोहितों को नियुक्त करना चाहिये, वे पुरोहितगण प्रत्येक विधियों में दक्ष, पटु, अपने अनुकूल, आर्य देशोत्पन्न तथा द्विजेन्द्र होने चाहिये। गुरु वेदान्त विद्या जाननेवाला, आर्यवंशसमुद्भूत, शीलवान्, सत्कुलोत्पन्न, सुन्दर आकृति वाला, पुराण एवं शास्त्रों में निरत रहने वाला, अति पटु, सरल एवं गम्भीर वाणी बोलने वाला, श्वेत वस्त्रधारी, कुण्डल, सुवर्ण सूत्र, केयूर तथा कण्ठाभरण से शोभायमान हो। मण्डप में पूर्व दिशा से दो ऋग्वेद जाननेवाले बैठें, दो यजुर्वेद जाननेवाले दक्षिण दिशा में बैठें। दो सामवेद के जानने वाले विद्वानों को पश्चिम दिशा में दो अथर्ववेद के जानने वालों को उत्तर दिशा में नियुक्त करना चाहिये। विनायकादि ग्रह, लोकपाल, आठों वसुगण आदित्यगण मरुत्गण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य एवं वनस्पतियों के अपने मंत्रों द्वारा चार हवन करने चाहिये। तथा इनके सूक्तों का क्रमानुरूप शुद्ध-शुद्ध जप करवाना चाहिये। हवन हो जाने के उपरान्त तुरुही आदि वाद्यों का शब्द करते हुए गुरु बलि, पुष्प एवं धूप को लेकर क्रमशः सभी लोकपालों का आवाहन यजमान समेत इन मंत्रों द्वारा करे। देवताओं के स्वामी, वज्रधारण करनेवाले, सभी अमर, सिद्ध एवं साध्यों से स्तुति किये जाते हुए, अप्सराओं के समूहों द्वारा पङ्खा डुलाए जाते हुए भगवन् इन्द्र! यहां आइये, यहां आइये, हमारे यज्ञ की रक्षा कीजिये आप को हमारा नमस्कार है", ऐसा कह कर 'ॐ इन्द्राय नम' इन्द्र को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहे। "हे सभी देवताओं के हवनीय द्रव्यों को प्राप्त करानेवाले, आप यहां आवे, यहा आवें, आप की चारों ओर से श्रेष्ठ मुनिगण सेवा कर रहे हैं, तेजस्वी लोकपालगण आप के साथ विराजमान हैं, आप कवि हैं हमारे यज्ञ की आप रक्षा करें आप को हमारा नमस्कार है।" ऐसा कह "ॐ अग्नेय नमः अग्नि को हमारा नमस्कार है— ऐसा कहे। "हे सूर्य के पुत्र धर्मराज, सभी देवताओं से पूजित, दिव्य स्वरूप भगवान्! आप यहां आवें, यहां आइ, हे सभी शुभ अशुभ आनन्द एवं शोक के स्वामी अधीश्वर कल्याण के लिए हमारी रक्षा कर, हमारे यज्ञ की रक्षा करें, आपको हमारा नमस्कार है। ऐसा कह 'ॐ यमायनमः' यमराज को हमारा नमस्कार है' ऐसा कहे। हे राक्षसों के समूहों के नायक, विशाल बेताल तथा पिशाचों के समूहों को साथ ले आप यहाँ आवें, और हमारे इस यज्ञ की रक्षा करें। हे मंगल कार्यों के सर्वप्रथम स्वामी, तुम लोकेश्वर हो, हे भगवन् आपको हमारा नमस्कार है, ऐसा कह 'ॐ निर्ऋतये नमः' निर्ऋति को हमारा नमस्कार है, ऐसा कहे। हे भगवन् वरुण आप समस्त जलचर गण एवं समुद्रों के समूहों के साथ बादलों एवं अप्सराओं के

विराट् समूहों को साथ लेकर हमारे यज्ञ में सम्मिलित होइये, यहाँ आइये। हे विद्याधरों एवं अमरों द्वारा गीयमान भगवान् आपको हमारा नमस्कार है। ऐसा कह '🕉 वरुणाय नमः' वरुण को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहे। हे कालकवि के सहायक और प्राणों के स्वामी वायुदेव! यम पर अधिरूढ़ होकर सिद्धों के समूहों के साथ आप हमारे यज्ञ में रक्षार्थ उपस्थित होइये और हमारी दी गई पूजा ग्रहण कीजिये, भगवन्! आपको हमारा नमस्कार है। ऐसा कह '🕉 वायवेनमः' (वायु को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहे। हे यज्ञों के स्वामी भगवन् सोमदेव! नक्षत्रगणों, सभी औषधियों तथा पितरगणों के साथ आप हमारे यज्ञ में समुपस्थित हो, उसकी रक्षा करें और हमारे द्वारा दी गई पूजा ग्रहण करें, आपको हमारा नमस्कार है।' ऐसा कह '🕉 सोमायनमः' भगवान् सोमदेव को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहे। हे विश्वेश्वर! लोकेश! यज्ञों के स्वामी ईशान देव! त्रिशूल, कपाल, खट्वांग धारण करनेवाले अपने गणों के साथ हमारे यज्ञ में सिद्धि प्रदानार्थ उपस्थित होइये और हमारी दी गई पूजा ग्रहण कीजिये—आपको हमारा नमस्कार है—ऐसा कह '🕉 ईशानायनमः—ईशानदेव को हम नमस्कार करते हैं। हे पाताल एवं पृथ्वी धारण करनेवालों के स्वामी! नागाङ्गनाओं तथा किन्नरों द्वारा गीयमान! अनन्त भगवन्! यक्ष, उरगपति एवं देवगणों के साथ यहां आइये और हमारे यज्ञ की रक्षा करिये, ऐसा कहे '🕉 अनन्तायनमः' अनन्त को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहे। हे विश्वाधिपति! मुनीन्द्र! पितर, देवता एवं लोकपालों के साथ आप यहां आइये। हे अमित प्रभावशाली! आप समस्त जगत् के विधाता हैं, हे भगवन्! आप हमारे इस यज्ञ में प्रविष्ट हों, आपको हमारा नमस्कार है—ऐसा कह '🕉 ब्रह्मणे नमः' ब्रह्मा को हमारा नमस्कार है—ऐसा कहे। इस त्रैलोक्य में जितने स्थावर जंगमात्मक जीवगण हैं—ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के साथ वे सभी हमारी रक्षा करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष राक्षस सर्प ऋषिगण, कामदेव, गौएँ, देव माताएँ—ये सभी हमारे इस यज्ञ में प्रमुदित होकर रक्षा करें। इस प्रकार देवताओं का आवाहन कर पुरोहितों को सुवर्ण का आभूषण दे। सुवर्ण निर्मित कुण्डल, सूत्र, कटक, अंगूठी, पवित्र, सुन्दर वस्त्र तथा शैय्या का दान करे। गुरु के लिए ये उपर्युक्त वस्तुएँ द्विगुणित रूप में दे, भूषण, आच्छादनादि वस्त्र सभी को। उस समय सभी दिशाओं में जप करनेवालों को शान्तिकाध्याय का जप करते रहना चाहिये। वे सभी जप करनेवाले, पुरोहित तथा आचार्य उसी मण्डप में निवास कर उपर्युक्त प्रकार से अधिवासन कर प्रत्येक कार्यों के प्रारम्भ में मध्य में तथा अन्त में स्वस्तिवाचन करें। तदनन्तर मांगलिक शब्दों का उच्चारण करते हुए वेदज्ञानियों द्वारा स्नान कराया हुआ यजमान तीन प्रदक्षिणा कर अञ्जलि में पुष्प ले श्वेत वस्त्र धारण कर उस तुला को अभिमंत्रित करे। हे सभी देवताओं की शक्ति स्वरूप तुम्हें हमारा नमस्कार हैं, तुम सत्य की आश्रयभूत हो, समस्त जगत् को धारण करनेवाली हो, विश्वयोनि ने तुम्हें साक्षी रूप में निर्मित किया है, तुम्हारी एक तुला पर सभी सत्य हैं, दूसरी पर सौ असत्य हैं, हे जगत् की कल्याणकारिणी! धर्म एवं अधर्म के करनेवालों के मध्य में तुम्हारी स्थापना हुई है, इस प्रकार हे तुले! तुम सभी जीवों के कार्यकलापों में प्रमाणरूप से उपस्थित कही गई हो, मुझे तोलते

हुए तुम इस संसार से उबार लो, तुम्हें हमारा नमस्कार है। जो तत्त्वों में पच्चीसवें माने जानेवाले पुरुष संज्ञक सभी तत्त्वों के स्वामी भगवान् हैं, वे एकमात्र तुम्हीं में अधिष्ठित हैं। हे देवि ! तुम्हें हमारा नमस्कार है। हे तुला पुरुष कहे जानेवाले भगवन् गोविन्द ! तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है। हे हरि ! इस संसार रूप कीचड़ से तुम हमें उबार लो। इस प्रकार पुण्यकाल में अधिवासन कर पुनः प्रदक्षिणा कर तुला पर बुद्धिमान पुरुष आरोहण करे उस समय वह खड्ग, चर्म, कवच एवं सभी आभरणों से अलंकृत हो। फिर सुवर्ण निर्मित सूर्य समेत धर्मराज को बँधी हुई मुट्ठीवाले दोनों हाथों से पकड़कर रखे और विष्णु के मुख की ओर ताकता हुआ स्थित रहे। तदनन्तर ब्राह्मणों को चाहिये कि तुला की दूसरी ओर यजमान की तौल से कुछ अधिक शुभ्र निर्मल चमकता हुआ सुवर्ण रखे। पुष्टि की कामना करनेवाला श्रेष्ठ मनुष्य जब तक सुवर्ण की तुला भूमि पर स्पर्श न कर ले तब तक सुवर्ण रखता जाय। फिर क्षणमात्र चुप रहकर इस प्रकार निवेदन करे। 'हे सभी जीवों की साक्षी रूप, सर्वदा वर्तमान रहनेवाली देवि ! तुम परमेष्ठी पितामह द्वारा निर्मित हुई हो, हे तुले ! तुम सभी स्थावर जंगमात्मक जगत् के धारण करनेवाली हो, हे सभी जीवों सा आत्मभूत करनेवाली विश्वधारिणि ! तुम्हें हमारा नमस्कार है।' इस प्रकार निवेदन कर तुला से उतर कर सुवर्ण का आधा भाग गुरु को निवेदित करे, एवं बचे हुए आधे भाग को आचमन कर पुरोहितों में बाँट देना चाहिये। फिर गुरु को तथा पुरोहितों को इसके अतिरिक्त ग्राम एवं रत्नादि का दान देना चाहिये, और उनकी आज्ञा लेकर अन्य ब्राह्मणादि को भी दान करे, विशेषतः दीन एवं अनाथों को भी ब्राह्मणों के साथ दान दे। बुद्धिमान् पुरुष उस तौले गये सुवर्ण को अधिक देर तक अपने घर न रखे, क्योंकि यदि वह यजमान के घर में रह जाता है तो उसे भय देनेवाला, शोक एवं व्याधि का बढ़ानेवाला होता है, और शीघ्र ही दूसरे को दे देने पर श्रेय को प्राप्त करता है। इस प्रकार की विधि से जो पुरुष तुला पुरुष को दान देता है, वह प्रत्येक मन्वन्तरों में प्रतिलोकों के स्वामित्व पद पर निवास करता है। किंकिणी के जालों से युक्त सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर चढ़कर अप्सराओं से सुपूजित हो विष्णुपुर को जाता है, एवं सौ कोटि कल्पों तक उस लोक में पूजित होता है। फिर पुण्यकर्म क्षय होने पर इस पृथ्वी लोक में राजराजेश्वर होता है। अनेक राजाओं के मुकुट की मणियों से उसके पैर का आसन शोभायमान होता है, और इस जन्म में भी उसी दान के माहात्म्य से वह श्रद्धा समेत सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान करता है, और प्रचण्ड प्रताप से समस्त राजाओं को पराजित करता है। जो पुरुष इस तुला पुरुष के दान को दिये जाते हुए देखता है, दूसरे अवसर पर उसका स्मरण करता है, लोक में पढ़कर उसकी विधि को सुनाता है, जो इसकी विधियों को सुनता है, या पढ़ता है, वह भी इन्द्र के समान स्वरूप धारण कर पुरन्दर प्रभृति देवगणों से सेवित स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है। ॥ १–७८ ॥

श्रीमात्स्य महापुराण में महादान अनुकीर्तन प्रसंग में तुलापुरुष दान नामक दो सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७४॥

दो सौ पचहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं हिरण्यगर्भ नामक सर्वश्रेष्ठ महादान की विधि बतला रहा हूँ, जो महापातक का विनाश करनेवाला है। इस हिरण्यगर्भ दान में भी तुला पुरुष के दान की भाँति पुण्य दिन को पुरोहितों द्वारा मण्डप को यज्ञ सामग्रियों तथा आभूषण आच्छादनादि से सुशोभित कर बुद्धिमान् पुरुष उपवास कर लोकपालों का आवाहन करे। तुला पुरुष की भाँति पुण्याहवाचन एवं अधिवासन करके ब्राह्मणों द्वारा सुवर्णमय मांगलिक कलश को मण्डप में मँगवाये, वह कलश बहत्तर अंगुल ऊँचा सुवर्ण कमल के गर्भ की भाँति हो तथा घृत एवं दुग्ध आदि से दो भागों में भरा हुआ हो एक तिहाई भाग रिक्त हो। दस अस्त्र, रत्न, छूरिका और सूची समीप में हो, तथा सुवर्ण का नाल पिटारी समेत रखा हो। कलश के बाहर आदित्य की प्रतिमा बनी हुई हो। उसकी नाभि पर आवरण हो, तथा सुवर्ण का यज्ञोपवीत पहिनाया गया हो। उसी प्रकार कलश के समीप में सुवर्ण का दण्ड तथा कमण्डलु रखा गया हो, कलश के चारों ओर से एक अंगुल से अधिक पद्म के आकार का उसका ढकना बना हो। वह सुन्दर कलश मोतियों की लड़ियों से सुशोभित तथा पद्मराग मणि से युक्त, वेदिका के मध्य भाग में द्रोण परिमित तिल के ऊपर स्थापित हो। तदनन्तर मांगलिक शब्दों एवं ब्राह्मणों द्वारा वेदध्वनि किये जाते समय वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सभी प्रकार की औषधियों से स्नान कराया हुआ यजमान श्वेत वस्त्र धारण कर सभी प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हो पुष्पाञ्जलि ग्रहण किये इस मन्त्र का उच्चारण करे। हे भगवन् हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, सातों लोकों तथा देवताओं के स्वामी, जगत् के विधाता, तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है। हे विश्व के धारण करनेवाले परमात्मन्! तुम्हारे गर्भ में भू-लोक आदि सभी लोक तथा ब्रह्मा आदि देवगण विराजमान हैं तुम्हें हमारा नमस्कार है। हे भुवनों के आधार! भुवनों के आश्रय! हिरण्यगर्भ तुम्हारे गर्भ में पितामह का आश्रय है, तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। हे देव! जिस कारण आप भूतात्मा कहे गये हैं, तथा प्रतिभूतों में आप व्यवस्थित रहते हैं, इस कारण इस अशेष दुःख-संसार सागर से मेरा उद्धार करें।' इस प्रकार आमंत्रित कर उन सामग्रियों के समीप वेदी के मध्य भाग में प्रविष्ठ हो उत्तराभिमुख बैठकर अपनी मुट्ठियों से धर्मराज तथा चतुर्मुख ब्रह्मा को भलीभाँति पकड़कर, अपने घुटनों के बीच में शिर कर पाँच श्वास खींचने के समय तक उसी प्रकार स्थित रहे। तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणगण हिरण्यगर्भ का गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त तथा उन्नयन संस्कार करायें, तब गीत एवं मांगलिक स्वरों के साथ आचार्य यजमान को ऊपर उठाये और जातकर्म आदि अन्य सोलहों क्रियाओं का संस्कार करावे। फिर यजमान उन सूची आदि सामग्रियों को गुरु को इस मन्त्र को पढ़ते हुए दान करे। हिरण्यगर्भ को हमारा नमस्कार है, विश्वगर्भ को हमारा नमस्कार है, इस चराचर जगत के गृहभूत को हमारा नमस्कार है, हे सुरोत्तम! जिस प्रकार मरणधर्मा (मरनेवाला) प्राणी मैं कुछ दिन पूर्व जन्म ले चुका हूँ उसी प्रकार तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होने के कारण अब मैं पुनः दिव्य शरीरवाला होऊँ! इसके बाद सभी

आभूषणों से विभूषित प्रसन्न शरीर वाले वे ब्राह्मणगण चार कलशों द्वारा यजमान का स्नान करवायें। उस समय यजमान सुवर्णमय आसन पर आसीन हो। ब्राह्मणगण स्नान करवाते समय 'देवस्य त्वा' इस मन्त्र का पाठ करें और कहें कि आज उत्पन्न हुए तुम्हारे इन अंगों का हम लोग अभिषेक करवा रहे हैं। इस दिव्य शरीर से अब तुम चिरकाल तक जीवित रहो और आनन्द का उपभोग करो। तदनन्तर विचक्षण यजमान को उस हिरण्यगर्भ को उन ब्राह्मणों को दान दे देना चाहिये। उन ब्राह्मणों की सर्वतोभावेन पूजा करनी चाहिये, तथा उनकी आज्ञा से अन्यान्य बहुत से ब्राह्मणों की भी पूजा करनी चाहिये। वहाँ की अन्य सभी सामग्रियों को गुरु को दान दे देना चाहिये। पादुका, जूता, छाता, चमर, आसन एवं पात्रादि विविध सामग्रियाँ, ग्राम, अन्य पदार्थ तथा सम्पत्ति, तथा अन्यान्य जिन किन्हीं वस्तुओं के दान करने की अभिलाषा हो गुरु को समर्पित करे। इस प्रकार की विधि से पुण्यदिन को जो इस हिरण्यगर्भ नामक महादान को करता है वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है। प्रत्येक मन्वन्तर में लोकपालों के पुरों में वह निवास करता है तथा सौ कोटि कल्प पर्यन्त ब्रह्मलोक में पूजित होता है। कलियुग के पापों से विनिर्मुक्त वह प्राणी सिद्धों तथा साध्यों द्वारा पूजित होकर अप्सराओं द्वारा देवताओं के योग्य चमरों से बीजित (हवा किया जाता हुआ) होकर नरक में गिरे हुए सैकड़ों पितरों, बन्धुओं, पुत्रों, पौत्रों तथा प्रपौत्रों तक को अकेला तार देता है। इस प्रकार मर्त्यलोक में इस हिरण्यगर्भ दान की विधि को जो मनुष्य पढ़ता है तथा सुनता है वह भी विष्णु भगवान् की भाँति भली प्रकार से सिद्धगणों द्वारा पूजित होता है, तथा हितैषिता की दृष्टि से इस दान को करने की जो सूझ देता है, वह देवपतियों का नायक होता है और उस पद से कभी च्युत नहीं होता ॥ १-२९ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादानानुकीर्तन में हिरण्यगर्भप्रदानविधि नामक दो सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७५॥

दो सौ छिहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं सभी दानों में श्रेष्ठ महापापों का विनाश करनेवाले ब्रह्माण्ड-दान की विधि को बतला रहा हूँ। तुला पुरुष दान के समान पुण्य दिन को प्राप्त कर पुरोहित का निश्चय, मण्डप की रचना, यज्ञ की सामग्री भूषण तथा आच्छादनादि सामग्री को एकत्र करे। तथा लोकपालों का आवाहन कर अधिवासनादि विधि सम्पन्न करे। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष अपनी शक्ति के अनुकूल बीस पल* से ऊपर एक सहस्र पल तक का दो कलशों से संयुक्त सुवर्ण का ब्रह्माण्ड बनवाये। वह ब्रह्माण्ड आठों दिग्गजों तथा छहों अंगों समेत वेदों से युक्त हो, आठों लोकपालगण भी

---

*एक पल की तौल बराबर है चार कर्ष के; और एक कर्ष बराबर है सोलह माशे के।

साथ हों, मध्य भाग में चतुर्मुख ब्रह्मा स्थित हों, शिव, विष्णु तथा सूर्य शिखर पर अवस्थित हों, उमा तथा लक्ष्मी भी वही बनी हों। वसुगण, आदित्यगण तथा मरुद्गण गर्भ में हों, महारत्नों से सुशोभित हों। वह ब्रह्माण्ड एक बीते से लेकर सौ अंगुल तक मोटा तथा ऊँचा हो सकता है। उस ब्रह्माण्ड को सुन्दर रेशमी वस्त्र से चारों ओर परिवेष्टित कर एक द्रोण तिल पर स्थापित करे, उसके चारों ओर अन्य अठारह प्रकार के अन्नों को लाकर सुशोभित करे। पूर्व दिशा से अनन्तशायी की, दक्षिण और पूर्व के कोण पर प्रद्युम्न की, दक्षिण दिशा में प्रकृति की, दक्षिण पश्चिम के कोण पर संकर्षण की, पश्चिम दिशा में चारों वेदों की, उसके बाद अनिरुद्ध की, उत्तर दिशा में अग्नि की, ईशान कोण में सुवर्ण निर्मित वासुदेव की परिकल्पना करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष इन सभी देवताओं की प्रतिमा सुवर्ण निर्मित कराके गुड के आसन पर स्थित कर पूजा करे। तथा अन्य दस पूर्ण कुम्भों को वस्त्र से परिवेष्टित कर स्थापित करे। इसी के साथ सुवर्ण वस्त्र एवं दोहन पात्र के साथ दस गौएँ दान करनी चाहिएँ, उनके साथ पादुका, जूता, छत्र, चमर, आसन, दर्पण, भक्ष्य, भोज्य, सामग्रियाँ, अन्न, दीप, ईख, फल, पुष्प एवं चन्दनादि भी हों। हवन एवं अधिवासन के समाप्त होने के बाद वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा स्नान कराये जाने के बाद यजमान तीन बार प्रदक्षिणा कर इस मन्त्र का उच्चारण करे। हे विश्वेश्वर! विश्वधाम! सातो ऋषि, लोक अमर एवं भूतल के स्वामी, जगत् के प्रसवकर्त्ता भगवन्! तुम अपने गर्भ के साथ हमारी रक्षा करो। जो दुःखी हैं वे सुखी हों, चराचर सभी जीवों के पापपुञ्ज नष्ट हो जायँ, तुम्हारे दान रूप शस्त्र से ताड़ित पापों एवं दोषों का विनाश हो जाय।' इस प्रकार उस अमरगणों एवं विश्व को गर्भ में धारण करनेवाले भगवान् रूप उस ब्रह्माण्ड को प्रणाम कर उसे दस भागों में विभक्त कर ब्राह्मणों को दान कर दे, उसमें से दो भाग गुरु को दे और शेष भागों में से समान भाग ब्राह्मणों को दे। स्वल्प हवन में एक गुरु को ही एक अग्नि का विधान कर नियुक्त करना चाहिये और अल्प वित्त में यथोक्त वस्त्र आभूषणादि से उसी की पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार की विधि से इस लोक में जो मनुष्य इस ब्रह्माण्ड दान की क्रिया को सम्पन्न करता है, वह महान् विमान में आरूढ़ हो, सभी कलुषों के नष्ट हो जाने के कारण अति शुद्ध शरीर हो अप्सराओं के साथ मुरारि के आनन्ददायक पद की प्राप्ति करता है। इस ब्रह्माण्ड दान रूप परिघ के द्वारा जिस पुरुष ने अपने पाप समूहों को चूर्ण विचूर्ण कर दिया है उसने अपने सैकड़ों पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र, बन्धु, प्रियजन, अतिथि, स्त्री को तथा अशेष मातृकुल को तार दिया तथा आनन्द किया। इस ब्रह्माण्ड दान की विधि को देवताओं के मन्दिरों तथा धार्मिकों के गृहों में जो पढ़ता है अथवा सुनता है, मति ही देता है वह अमरपति के भवन में अप्सराओं के साथ आनन्द का अनुभव करता है। ॥१–१६॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में ब्रह्माण्ड प्रदान विधि नामक दो सौ छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७६॥

दो सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके बाद मैं सभी पातकों के विनाश करनेवाले अत्युत्तम कल्पपादप दान नामक महादान की विधि बता रहा हूँ। तुला पुरुष दान की भाँति उत्तम पुण्य दिन प्राप्त कर तथा ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन तथा लोकपालों का आवाहन कर पुरोहित वरण, मण्डप रचना, यज्ञ सामग्री आभूषण आच्छादनादि का समारम्भ करे। तथा विविध प्रकार के फलों से सुशोभित सुवर्ण का वृक्ष बनवाये, उस पर विविध प्रकार के पक्षी, वस्त्र तथा आभूषणों की रचना करे। इस वृक्ष को अपनी शक्ति के अनुरूप कम से कम तीन पल से लेकर एक सहस्र पल तक का बनवाना चाहिये। इस सुवर्ण में से आधे का कल्प पादप बनवाना चाहिये, और एक प्रस्थ परिमाण गुड़ के ऊपर उसे दो स्वेत वस्त्रों से संयुक्त कर स्थापित करे, वह कल्पवृक्ष ब्रह्मा-विष्णु एवं शिव से संयुक्त हो, सूर्य समेत पाँच शाखाओं वाला हो, उसके निम्नभाग में स्त्री समेत कामदेव की कल्पना करे। उस कल्पपादप की पूर्व दिशा में चतुर्थांश से संतान वृक्ष की कल्पना करे, दक्षिण दिशा की ओर श्री के साथ मन्दार को घृत के ऊपर कल्पित करे, पश्चिम दिशा में जीरा के ऊपर सावित्री के साथ पारिभद्र की कल्पना करे, उसी प्रकार तिलों के ऊपर गौ के साथ हरिचन्दन वृक्ष को चतुर्थांश द्वारा उत्तर दिशा में फलसंयुक्त कल्पित करे। तथा रेशमी वस्त्र से वेष्टित, ईख, पुष्पमाला एवं फलों से संयुक्त आठ पूर्ण कलशों को स्थापित करे, तथा पादुका, आसन, पात्र, दीप, जूता, चामर एवं आसन से संयुक्त फलों एवं पुष्पों से सुशोभित वितान को ऊपर ताने। उन वृक्षों के चारों ओर अठारह प्रकार के धान्यों को रखे। इस प्रकार हवन एवं अधिवासन की समाप्ति हो जाने पर वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा स्नान कराये जाने पर यजमान तीन प्रदक्षिणा कर के इस मंत्र का उच्चारण करे। हे कल्पपादप, चिन्तित प्रयोजनों को पूर्ण करनेवाले, विश्वमूर्ति, विश्वम्भर देव! तुम्हें हमारा नमस्कार है, हे सनातन! जिस कारण से तुम्हीं विश्वात्मा हो, ब्रह्मा हो, स्थाणु (शिव) हो, दिवाकर हो, एवं अमूर्त हो, इस चराचर विश्व के परम कारण रूप हो अतः मेरी रक्षा कीजिये। तुम्हीं अमृत सर्वस्व हो, अनन्त हो, अव्यय पुरुष रूप हो सन्तान आदि दिव्य वृक्षों से संयुक्त आप इस संसार सागर से मेरी रक्षा कीजिये। इस प्रकार आमंत्रित कर उस कल्पवृक्ष को गुरु को समर्पित करे और अन्य चार पुरोहितों को उन अन्य सन्तानादि वृक्षों को दे। स्वल्प सामग्रियों के होने पर एकाग्नि पूजन की भांति एक गुरु की ही पूजा करनी चाहिये, इस दान में न तो कृपणता करनी चाहिये और न विस्मय ही करना चाहिये। इस उपर्युक्त विधि से जो मनुष्य कल्पपादप का दान करता है वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर अश्वमेध का फल प्राप्त करता है। सिद्ध, चारण, किन्नर एवं अप्सराओं से घिरा हुआ वह मानव अपने भूत तथा भविष्यकाल में होनेवाले सगोत्रीय पूर्व पर पुरुषों को तारता है, स्वर्ग के पृष्ठ पर पुत्र पौत्र एवं प्रपौत्रों के समूहों से स्तुति किया जाता हुआ वह प्राणी सूर्य के समान तेजस्वी विमान से विष्णुलोक को जाता है और वहाँ सौ कल्पों तक निवास करता है तदनन्तर पुनः राजाधिराज होकर जन्म ग्रहण करता है और भगवान् नारायण के पराक्रम से संयुक्त होकर

उन्हीं की भक्ति में निरत रहता है, उन्हीं की कथाओं में उसकी आसक्ति होती है, और पुनः इस पुण्य के प्रभाव से नारायण के पुर को प्राप्त करता है। अथवा जो मनुष्य इस कल्पपादप की दान विधि को समग्र पढ़ता है, सुनता है या जो अल्प वित्तशाली पुरुष केवल स्मरण करता है, वह भी इन्द्रलोक को प्राप्त होकर पाप निर्मुक्त शरीर से अप्सराओं के साथ मन्वन्तर पर्यन्त निवास करता है। ॥१—२२।

श्री मात्स्य महापुराण में महादान अनुकीर्तन प्रसंग में कल्पपादप प्रदान विधि नामक दो सौ सतहत्तरवाँ अध्यांय समाप्त ॥२७७॥

दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके बाद मैं सभी पापों को दूर करने वाले अति उत्तम गो सहस्र प्रदान नामक महादान की विधि बता रहा हूँ। युग एवं मन्वन्तर के प्रारम्भ होने की उत्तम तिथि को प्राप्त कर अपनी शारीरिक शक्ति के अनुरूप तीन रात दुग्ध का व्रत रखे अथवा एक रात का ही रखे, तथा तुला पुरुष के दान की भांति लोकपालों का आवाहन, पुण्याहवाचन, हवन तथा अन्यान्य कार्यों को विधिपूर्वक सम्पन्न करे और उसी प्रकार पुरोहित वरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ सामग्रियों, आभूषण तथा आच्छादनादि को यथास्थान रखे एवं निर्दिष्ट लक्षणों से संयुक्त वृषभ को वेदी के मध्य भाग में बैठावे। और वेदी के बाहर एक सहस्र गौओं को वस्त्र पुष्पादि से विभूषित कर सींगों को सुवर्ण जटित तथा पैरों को चाँदी से अलंकृत करे। फिर उन सहस्र गौओं में से दस गौओं को अलग कर भीतर वेदी में प्रवेश करा कर पुनः वस्त्रों एवं पुष्पों से पूजा करे, उन्हें सुवर्ण की घण्टी से सुशोभित तथा काँसे के बने दोहन पात्र से संयुक्त करे, सुवर्ण की तिलक लगावे, सुनहले वस्त्र से अलंकृत करे, रेशमी वस्त्र से परिवेष्टित कर मालाओं एवं सुगन्धित वस्तुओं से पूजित करे। सुवर्ण एवं रत्नमय सींगों तथा चमरों से सुशोभित कर, पादुका, जूता, छत्र, भाजन एवं आसन से संयुक्त करे। उन दसों गौओं के मध्य में सुवर्ण के नन्दिकेश्वर को रखे, जो रेशमी वस्त्र से परिवेष्टित तथा विविध अलंकारों से विभूषित हों। द्रोण परिमित नमक के शिखर पर पुष्प माला ईख तथा फलों से संयुक्त उस नन्दिकेश्वर को स्थापित करे। इन सब सामग्रियों का समारम्भ सौ पल सुवर्ण से ऊपर तीन सहस्र पल तक अपनी आर्थिक शक्ति के अनुकूल करे। इन सब दशम अंश सौ गौओं के दान में व्यय करे। फिर पुण्यकाल को प्राप्त कर गीत एवं मांगलिक शब्दों के होते हुए वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सभी औष-धियों के जल से स्नान कराया गया यजमान कुसुमयुक्त अंजलि बाँधकर इस मंत्र का उच्चारण करे। हे रोहिणी रूप, विश्वमूर्ति, विश्व की माताओ! तुम्हें हमारा नमस्कार है, तुम सभी लोकों को धारण करने वाली हो, हे माताओ! तुम गौओं के अंगों में इक्कीसों भुवनों का निवास है। ब्रह्मादि देवगण तुम्हीं में निवास करते हैं, हे रोहिणीस्वरूपा तुम सब को हमारा नमस्कार है तुम सभी हमारी रक्षा करो। हे गौ मातृगण! तुम मेरे अग्रभाग में रहो, पृष्ठभाग में रहो, नित्य मेरे शिर पर रहो, मैं गौओं के मध्य में ही

निवास करूँगा। हे सनातन! नन्दिकेश्वर देव जिस कारण तुम सर्वदा विद्यमान रहनेवाले वृषभ स्वरूप से भगवान् अष्टमूर्ति (शिव) के अधिष्ठान माने गये हो अतः मेरी रक्षा करो।' इस प्रकार आमंत्रित कर सभी सामग्रियों के साथ गौ और उक्त नन्दिकेश्वर को गुरु को दान करना चाहिये तथा उन दसों गौओं में से एक-एक गाय को तथा इन गौओं में से एक-एक सौ, पचास-पचास, अथवा बीस, बीस, गौओं को पुरोहितों को देना चाहिये और उनकी आज्ञा से अन्य को दस, दस, अथवा पाँच पाँच गौएँ देनी चाहिये। एक ही गाय बहुतों को नहीं देनी चाहिये; क्योंकि ऐसी रीति दोषपूर्ण है प्रत्युत बुद्धिमान यजमान को आरोग्यवृद्धि के लिए एक एक को अनेक गौएँ देनी चाहिये। तदनन्तर इस प्रकार एक सहस्र गोदान करनेवाला यजमान एक दिन के लिये पुनः दुग्ध का व्रत रखे और इस महादान का अनुकीर्तन स्वयं सुनाये अथवा सुने। यदि विपुल समृद्धि का वह इच्छुक है तो उस दिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त विधि से जो मनुष्य एक सहस्र गौओं का दान करता है वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर सिद्धों एवं चारणों से सेवित होकर सूर्य के समान तेजस्वी विमान से, जिसमें घण्टियों की माला शोभायमान रहती है, सभी लोकपालों के लोकों में अमरों द्वारा पूजित होता है एवं वहाँ पुत्र पौत्रादि समेत प्रत्येक मन्वन्तरों में निवास करता है तथा सात लोकों का अतिक्रमण कर शिवपुर को जाता है। बुद्धिमान् दाता अपने इस महत्पुण्यकर्म के प्रभाव से अपने पूर्ववर्ती एक सौ एक पितरों को तथा नाना पक्ष के पुत्र पौत्रादि युक्त पितरों को साथ ले जब तक सौ कल्प नहीं बीतता तब तक भोग करता है तथा पुनः राजाधिराज होता है। इस नवीन जन्म में भी वह शिव के ध्यान में परायण हो सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान करता है तथा वैष्णव योग की उपासना कर पुनः बन्धन से मुक्त होता है। सहस्र गौ दान करनेवाले पुत्र का पितरगण अभिनन्दन करते हैं, और सर्वदा अपने हृदय में वे यह अभिकांक्षा करते रहते हैं कि क्या हमारे कुल में कोई पुत्र, नाती ऐसा होगा जो सहस्र गौ दान करके हम सबों को नरक से उबारेगा अथवा इस सहस्र गौ के महादान में किसी कार्य में नियुक्त होगा, या देखने के लिए जायगा, जिससे इस संसार सागर में डूबते हुए हम लोगों को उबार लेगा। इस प्रकार इस सहस्र गौ के प्रदान की विधि को जो पढ़ता है, स्मरण करता है अथवा देखता है, वह देवलोक को प्राप्त होता है, तथा भवबन्धन से मुक्ति प्राप्त कर निरन्तर आनन्द का अनुभव करते हुए सभी पापों से विनिर्मुक्त शरीर हो इन्द्रलोक को प्राप्त करता है। ॥१–२१॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में सहस्र गौ प्रदान विधि नामक दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७८॥

दो सौ उन्यासीवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहाः— अब इसके उपरान्त मनुष्यों को सभी मनोरथों के देनेवाले, महापातकनाशी कामधेनु के दान की विधि मैं बतला रहा हूँ। पूर्व कथित प्रणाली के अनुरूप लोकपालों

का आवाहन तथा अधिवासन कर तुलापुरुषदान की तरह इसमें भी कुण्ड मण्डप एवं वेदी की रचना करनी चाहिये। स्वल्प वित्त में एकाग्नि की भांति सुस्थिर चित्त एक मात्र गुरु को ही एतदर्थ नियुक्त करे। और अति विशुद्ध सुवर्ण की धेनु और वत्स बनवाये। इसमें उत्तमा गौ एक सहस्रपल की होती है, उससे आधे की मध्यमा तथा उससे भी आधे की कनीयसी कही गई है। यदि असमर्थ है तो वह भी तीन पल से ऊपर की ही बनवाये। तदनन्तर वेदी में काले मृगचर्म को एक प्रस्थ परिमित गुड़ के साथ बिछावे और उसके ऊपर अति मूल्यवान रत्नों से अलंकृत उस धेनु को स्थापित करे। उस गौ के साथ आठ कुम्भ हों तथा विविध प्रकार के फल हों। वेदी के चारों ओर अठारह प्रकार के अन्नों को रखे तथा उसी प्रकार आठ ईख का दण्ड, एवं विविध प्रकार के फलों को रखे। और उसी के पास पाच, आसन, तथा तामे के बने हुए दोहन पात्र भी रखे। तदनन्तर दो रेशमी वस्त्रों से सुशोभित, घंटी से युक्त, सुवर्ण जटित सींगों और चाँदी जटित पैरों वाली गौ को, जो चारों ओर से सभी प्रकार रसों से, हल्दी से जीरा से धनिया से तथा शक्कर से लेपन की गई हो, ऊपर पाँच वर्ण के तने हुए वित के नीचे, मांगलिक वेद ध्वनि के बीच स्नान कर यजमान सुन्दर पुष्प हाथों में लिये हुए गुरु द्वारा उच्चरित मंत्रों से आवाहित करे और हाथ में कुश लेकर ब्राह्मण को दे। और प्रार्थना करे हे विश्वेश्वर! सभी देवताओं की मन्दिर स्वरूपा हो, एवं त्रिपथगा (गंगा) समुद्र एवं पर्वत सभी की अंग स्वरूपा तुम्हारे दान रूप शस्त्र से विचूर्णित हो गये हैं पाप समूह जिसके—ऐसा मैं परम सन्तोष का लाभ रहा हूँ, तुम्हें हमारा नमस्कार है। हे जननि! इस संसार में यथाभिलषित फल एवं अर्थ को देनेवाला तुम्हें प्राप्त कर भला कौन मर्त्य ऐसा है जो संसार के दुःखों में पड़े, हे मातः! संसार के दुःखों को शान्त करने के लिए तुम निश्चय ही यत्नशील हो इसीलिये देवगण तुम्हें कामधेनु कहते हैं। इस प्रकार सत्कुलोत्पन्न, शीलवान्, रूपवान, गुणवान् ब्राह्मण को आमंत्रित कर जो व्यक्ति इस सुवर्ण निर्मित कामधेनु का दान करता है वह पुरन्दर प्रभृति देवताओं से सुसेवित तथा कन्या समूहों से घिरा हुआ शंकर के लोक को प्राप्त करता है। १—१३।

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में हिरण्य कामधेनु दान विधि नामक दो सौ उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२७९॥

दो सौ अस्सीवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं परम श्रेष्ठ हिरण्याश्व के दान की विधि बता रहा हूँ, जिसके देने से मनुष्य भुवन में अनन्त फल की प्राप्ति करता है। तुला पुरुष दान की भाँति पुण्य तिथि को प्राप्त कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययनादि का पाठ करा लोकपालों का आवाहन करे। तथा पूर्व-कथित रीति से ही मण्डप निर्माण, पुरोहित वरण, भूषण, आच्छादन एवं यज्ञ सामग्रियों को एकत्र करे।

बुद्धिमान यजमान यदि स्वल्पवित्त है तो एकाग्नि की भाँति केवल गुरु द्वारा ही इस सुवर्णाश्व का यज्ञ संपादित करे। उस सुवर्ण निर्मित अश्व को वेदी के मध्य भाग में कृष्ण मृगचर्म एवं तिल के ऊपर स्थापित करे, तथा रेशमी वस्त्र से परिवेष्टित करे। बुद्धिमान पुरुष इस सुवर्णाश्व को अपनी शक्ति के अनुरूप तीन पल से ऊपर एक सहस्र पल तक का बनवाये तथा पादुका, जूता, छाता, चामर, आसन एवं पात्रों से संयुक्त कर परिपूर्ण आठ कलशों से युक्त माला, पुष्प, ईख एवं फल से भी संयुक्त करे। उसी प्रकार सभी सामग्रियों समेत सुन्दर शैय्या भी सुवर्ण निर्मित मार्तण्ड के समेत वहाँ रखे। फिर वेदज्ञानी ब्राह्मणों द्वारा सभी औषधियों से विमिश्रित जल से स्नान कराया गया यजमान कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर इस मंत्र का उच्चारण करे। 'हे सभी देवों के स्वामी! वेदों के लाने वाले देव! अश्वरूपधारी! तुम इस संसार सागर से मेरी रक्षा करो। हे भास्कर! तुम्हीं सात भागों में विभक्त होकर छन्दोरूप धारण कर सभी लोकों को भासित करते हो, हे सनातन! इसलिए मेरी भी रक्षा करो।' इस प्रकार कह कर उस अश्व को गुरु को दान करे। दान देकर पाप के नष्ट हो जाने के कारण वह मनुष्य सूर्य के अक्षयलोक को प्राप्त करता है। अपनी आर्थिक शक्ति के अनुकूल गौओं द्वारा अन्य पुरोहितों की भी पूजा करे, तथा सभी प्रकार के अन्न एवं सामग्रियों को गुरु को निवेदित करे। एवं सभी शैया आदि वस्तुओं को निवेदित कर तैल को छोड़ कर भोजन करे, और भोजन के पश्चात् पुराणों का श्रवण करे। हे नरेन्द्र! इस प्रकार पुण्य दिन को प्राप्त कर इस सुवर्णाश्व दान को विधि के अनुकूल जो मनुष्य करता है वह पापों से विमुक्त होकर सिद्धों द्वारा पूजित होकर मुरारि के पद को प्राप्त करता है। इस सुवर्णाश्व के दान की विधि को जो मनुष्य पढ़ता है तथा देखता है वह सभी पापों से विनिर्मुक्त होकर अश्वमेध यज्ञ का पुण्य प्राप्तकर सुवर्णमय विमान द्वारा सूर्य के लोक को प्राप्त करता है तथा देवपतियों की वधुओं द्वारा पूजित होता है। अथवा जो अल्पवित्त पुरुष इसकी विधि को सुनता है, स्मरण करता है तथा सुवर्णाश्व दान की विधि का लोक में अभिनन्दन करता है, वह भी सभी पापों के नष्ट हो जाने से विशुद्ध शरीर वाला हो पुरन्दर महेश्वर प्रभृति देवेशों से सेवित परम पुनीत स्थान को प्राप्त करता है। ॥१-१५॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में हिरण्याश्व प्रदान विधि नामक दो सौ अस्सीवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८० ॥

दो सौ इक्यासीवां अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त सर्वश्रेष्ठ पुण्यप्रद अश्वरथ नामक महादान की विधि बतला रहा हूँ जो महापापों को नष्ट करने वाला है। इस दान में भी पूर्व कथित तुला पुरुष दान की भाँति पुण्य दिन को प्राप्त कर यजमान ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्यन आदि मांगलिक ध्वनि कराकर लोकपाल आदि का आवाहन करे। तथा पूर्व कथित रीति से पुरोहित वरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ सामग्री, आभूषण तथा

आच्छादनादि को एकत्र करे। फिर कृष्ण मृगचर्म पर तिलों के ऊपर सुवर्णमय रथ की स्थापना करे। वह रथ सात अश्वों से युक्त अथवा पाँच अश्वों से युक्त हो। चार चक्के हों, जुआ बना हो, इन्द्रनील मणि के कलश तथा ध्वजाओं से सुशोभित हो, आठों लोकपालों से युक्त हो। पद्मराग मणि के दल बने हों, चार भरे हुए मंगल कलश तथा अठारह प्रकार के धान्य भी रखे हों। सुन्दर रेशमी वस्त्र से सुशोभित हो, ऊपर चँदोवा तना हो, पुष्प, माला, ईख तथा फल से संयुक्त एवं पुरुष से समन्वित हो। जो पुरुष जिस देवता का विशेष भक्त हो उसी के नाम का उच्चारण कर उसमें अधिवासन कराये। छत्र, चमर, रेशमी वस्त्र, जूते, पादुका एवं गौओं के साथ अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार शैय्या आदि का दान करे। बुद्धिमान पुरुष अभाव में तीन पल सुवर्ण से अधिक तौल का रथ बनवाये। आठ चार अथवा दो ही अश्वों से युक्त रथ हो, उसी प्रकार रथ के अनुकूल सुवर्ण की ध्वजा एवं सिंह भी उसके साथ हों। उस रथ एवं अश्व के आरोही दोनों अश्विनीकुमार हैं, जो उन्हीं अश्वों पर अवस्थित रहकर चक्कों की रक्षा का कार्य करते हैं। इस प्रकार पुण्यकाल प्राप्तकर ब्राह्मणों द्वारा पूर्वकथित मंत्रादि एवं औषधियों के जल से स्नान कर यजमान हाथों में पुष्पाञ्जलि लिये हुए तीन प्रदक्षिणा कर, श्वेत वस्त्र धारण कर इस निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण करते हुए दान करे। 'हे विश्वात्मन्! वेद तुरंगम, पाप विनाशन, तेजोधिपति पापौघ के दावानल! दिवाकर! तुम हमें शान्ति प्रदान करो, हमारा तुम्हें नमस्कार है। तुम आठों वसुगण, आदित्यगण एवं मरुत गणों के धाता हो, परम निधान हो, अतः तुम्हारी कृपा से पाप पुञ्ज के विनाश हो जाने से मेर हृदय धर्म की एकस्वरूपता को प्राप्त करे।' इस प्रकार विधिपूर्वक इस लोक में जो मनुष्य भवभयनाशक इस तुरगरथ प्रदान नामक महादान को देता है वह कलिकलुष के परदों के विनष्ट हो जाने से विमुक्त शरीर हो पिनाकपाणि के परम पुनीत पद की प्राप्ति करता है, तथा इसके अमोघ प्रभाव से देदीप्यमान शरीर द्वारा अखण्डित चण्डभानु के निखिल मण्डल को आक्रान्त करता है एवं समस्त देहधारियों को विजित कर सिद्धों की स्त्रियों के भ्रमर रूप नेत्रों से पीत कमलमुख हो चिरकाल पर्यन्त ब्रह्मा के साथ निवास करता है। इस मर्त्यलोक में जो प्राणी इस सुवर्ण तुरग रथ नामक महादान की विधि को पढ़ता है, सुनता है वह कभी नरक लोक को नहीं जाता और बारंबार नरकासुर के शत्रु भगवान् कृष्ण (विष्णु) के लोक को प्राप्त करता है। ॥१—१६॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में हिरण्याश्वरथ प्रदान विधि नामक दो सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८१ ॥

दो सौ बयासीवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके बाद मैं मंगलकारी सुवर्ण के हस्ती रथ नामक महादान का वर्णन कर रहा हूँ, जिसके देने से मनुष्य विष्णु के लोक को प्राप्त करता है। पूर्व कथित तुला पुरुष दान की भाँति पुण्यप्रद तिथि प्राप्त कर बुद्धिमान यजमान ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्यानादि मांगलिक वाचन कराकर लोक

पालों का आवाहन करे तथा उसी प्रकार पुरोहित वरण, मण्डप रचना, यज्ञ सामग्री, आभूषण तथा आच्छादनादि का प्रबन्ध करे। इस महादान में भी उपवास रखकर ब्राह्मणों के साथ भोजन करे। मणियों से सुशोभित पुष्परथ के आकार के समान सुवर्ण का रथ बनवाये, जिसमें विचित्र बलमियाँ (छज्जे) बनी हों तथा चार चक्के हों। उस रथ को कृष्ण मृगचर्म के ऊपर रखे गये एक द्रोण परिमित तिल पर स्थापित करे। उस रथ पर आठों लोकपालों तथा ब्रह्मा, सूर्य एवं शिव की प्रतिमाएँ भी बनी हों। मध्यभाग में लक्ष्मी के समेत विष्णु भगवान् की भी मूर्ति हो। उसमें पात्र, आसन, चन्दनादि सामग्रियाँ, अठारह प्रकार के अन्न, दीपिका, जूता, छत्र, दर्पण एवं पादुकाएँ भी हों। ध्वज पर गरुड को तथा जूआ के अग्रभाग पर विनायक की कल्पना करे। रथ विविध प्रकार के फलों से युक्त हो तथा उसके ऊपर चँदोवा तना हुआ हो। उसके ऊपर चारों ओर से पाँच वर्णों के रेशमी वस्त्र शोभित हो रहे हों तथा सुन्दर विकसित पुष्पों से भी वह सुशोभित किया गया हो। चार मांगलिक कलश तथा आठ गौएँ भी साथ हों। मोतियों की मालाओं से सुशोभित चार सुवर्ण के हाथी हों। स्वरूपतः इन हाथियों को रथ में संयुक्त कर दान करना चाहिये। अपनी शक्ति के अनुकूल इस दान में पाँच पल सुवर्ण की तौल से एक भार तक सुवर्ण लगाना चाहिये। इस प्रकार वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक शब्दों के बीच स्नान कराया गया यजमान कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर तीन प्रदक्षिणा करे तथा निम्नलिखित मंत्र का उच्चारण कर ब्राह्मणों को दान करे। 'हे तेजोमय स्यन्दन! तुम शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, लोकपाल, विद्याधर एवं वासुदेव से सेवित हो, वेद, पुराण एवं सभी यज्ञ तुम्हारी सेवा में निरत हैं, अतः हमारी रक्षा करो। हे रथाधिरूढ स्वामिन्! जिस आनन्द के कारण गुण, रूपविमुक्त, परम गोपनीय मुरारि के पद को एकमात्र योगदृष्टि द्वारा मुनिगण समाधिकाल में देखते हैं, वह तुम्हीं हो। हे माधव! तुम्हीं भवसागर में डूबने वालों को आनन्द देने वाले, अमृत स्वरूप, तथा यज्ञों में पान के पात्र हो, अतः तुम इस सुवर्णमय हस्तीयुक्त रथ के दान से हमारे पाप पुञ्जों को नष्ट कर हमारे ऊपर प्रसन्न हो।' इस प्रकार प्रणाम करके जो पुरुष कनक हस्तीयुक्त रथ का दान करता है वह सभी पापों के नष्ट हो जाने से विशुद्ध देह हो, विद्याधर, देवगण, मुनीन्द्रगण द्वारा सेवित, शंकर के अदृष्ट लोक को प्राप्त करता है और पूर्व जन्म के किये गये दुष्कर्मों के समूह रूप प्रचण्ड अग्नि की ज्वालाओं में झुलसते हुए, दुःख भोगने वाले अपने समस्त बन्धुओं, पितरों, पुत्रों, परिवार वर्गों को इस हस्तिरथ के दान से विष्णु भगवान् के शाश्वत लोक में पहुँचाता है। ॥१-१६॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में हेम हस्तिरथ प्रदान विधि नामक दो सौ बयासीवाँ अध्याय समाप्त। ॥२८२॥

दो सौ तिरासीवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके बाद मैं महापातकनाशी अतिश्रेष्ठ पञ्चलाङ्गलक नामक महादान की विधि बतला रहा हूँ। युगादि की तथा ग्रहण आदि की पुण्य तिथियों को प्राप्तकर मनुष्य पाँच

हलों से युक्त भूमि का दान करे। पर्वत तथा नदी के तटवर्ती ग्राम को, कृषि कर्म के योग्य ग्राम को, जो अन्नादि से युक्त हो, एक सौ निवर्तन (नीचे मूल में निवर्तन का परिमाण दिया गया है) अथवा उसके आधे को, अपनी शक्ति के अनुकूल दान करे। विचक्षण यजमान पाँच काष्ठमय हलों को सभी सामग्रियों से युक्त कर तथा अन्य पाँच सुवर्ण के बने हुए हलों को कम से कम पाँच पल तौल से ऊपर एक सहस्र पल तक बनवाये। दस वृषभों को, जो उत्तम लक्षणों से युक्त हों, उनकी सींगें सुवर्ण से जटित हों, पूँछों पर मोती की लड़ियों का आभूषण हो, पैरों में चाँदी मढ़ी हो, शिर पर तिलक लगे हों, लाल रेशमी वस्त्र से सुशोभित हों, माला तथा चन्दन से युक्त हों, शाला में अधिवासित कराये। तथा पर्जन्य आदित्य एवं रुद्र को खीर की चरु निवेदित करे। एक ही कुण्ड में गुरु तथा इन सबों को निवेदित करे। इस दान के हवन कार्य में पलाश की समिधाएँ, घृत तथा काले तिल को रखना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष तुला पुरुष दान की भाँति लोकपालों का आवाहन करे। तदनन्तर मांगलिक शब्दों के मध्य शुक्ल वस्त्र एवं पुष्प धारण कर बुद्धिमान् पुरुष द्विज दम्पति का आवाहन कर सुवर्णमय सूत्र, अंगूठी, रेशमी वस्त्र, सुवर्ण के कटक, एवं मणियों द्वारा पूजा करे। सभी सामग्रियों समेत शैय्या तथा एक दूध देनेवाली गाय का दान करना चाहिये। चारों ओर अठारह प्रकार के अन्नों को रखना चाहिये। तब हाथों में कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर प्रदक्षिणा कर इस मन्त्र का उच्चारण कर निवेदन करे। यतः सभी देवगण, स्थावर एवं चर जीव भारवाही वृषभों के अंग में निवास करते हैं, अतः शिव में हमारी भक्ति हो। यतः अन्य सभी दान भूमिपान की सोलहवीं कला की भी समानता नहीं करते अतः इस दान से मेरी भक्ति धर्म में दृढ़तर हो। सात हाथ के दण्ड से तीस दण्ड नापने पर एक निवर्तन होता है और इसके तिहाई अंश से न्यून को गोचर्म कहते हैं—यह मान प्रजापति ने कहा है। जो बुद्धिमान् पुरुष इस मान के अनुसार एक सौ निवर्तन भूमि को इस विधि से दान करता है उसके पापपुञ्ज शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं अथवा उसका अर्द्ध भाग या गोचर्म मात्र अथवा एक भवन बनने योग्य स्थान मात्र भूमि का जो दान करता है, वह भी पापों से मुक्त हो जाता है। जो पुरुष इस मर्त्य लोक में भूमि प्रदान करता है। उस भूमि में जितने भी लाङ्गलक के मुख मार्ग होते हैं तथा सूर्यपुत्री के अङ्ग में जितनी रोमावलि है, उतने ही वर्षों तक वह शंकरपुर में निवास करता है तथा गन्धर्व, किन्नर, सुर, असुर एवं सिद्धों के समूहों द्वारा चँवर डुलाये जाते हुए महान् विमान को प्राप्त कर पिता, पितामह एवं बन्धुवर्गों से युक्त चामर नायक होकर शम्भु के पद को प्राप्त होकर पूजित होता है। मनुष्य इस गौ, भूमि, लाङ्गल एवं वृषभों के प्रदान करने से इन्द्रत्व आदि अविनाशशील पदों को प्राप्त करता है। अतः पापपुञ्ज के परदे को नष्ट करनेवाले भूमि के दान को भूति एवं समृद्धि के लिए मनुष्य को अवश्यमेव देना चाहिये। ॥१-१९॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादानानुकीर्तन प्रसंग में पञ्चलाङ्गलप्रदान विधि नामक दो सौ तिरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२८३॥

दो सौ चौरासीवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं मनुष्यों के अमङ्गल का विनाश करनेवाले सर्वश्रेष्ठ धरादान नामक दान की विधि को बतला रहा हूँ। इस दान में जम्बूद्वीप के आकार की भाँति सुवर्णमयी पृथ्वी की रचना करवाये, उसके मध्य भाग में सुमेरु हो, पर्वतों की मर्यादा बनी हो, आठो लोकपाल एवं नवों वर्षों से युक्त हो, नदी एवं नदों से समन्वित तथा सातों समुद्रों से परिवेष्टित हो। उसे महारत्नों से जटित, वसु, रुद्र तथा आदित्यों से संयुक्त बनवाये। इस पृथ्वी को एक सहस्र पल सुवर्ण के तौल की बनानी चाहिये अथवा अपनी शक्ति के अनुकूल उसके आधे भाग द्वारा। अथवा तीन सौ पल, दो सौ पल, या एक सौ पल का बनवाये। विचक्षण पुरुष अपनी असमर्थता में पाँच पल से ऊपर की बनवाये। बुद्धिमान् पुरुष तुला पुरुष दान की भाँति लोकपालों का आवाहन करे। और उसी प्रकार पुरोहित वरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ सामग्री, आभूषण तथा आच्छादनादि सामग्रियों को यथास्थान रखे। वेदी पर कृष्ण मृगचर्म के ऊपर तिल रखकर उस पर पृथ्वी की प्रतिमा रखे तथा अठारह प्रकार के अन्नों, रसों तथा लवणादि को रखे। सभी ओर से भरे हुए आठ मांगलिक कलशों को स्थापित करे चँदोवा, रेशमी वस्त्र, तथा विविध प्रकार के फलों से सुशोभित करे। तथा मनोहर रेशमी वस्त्रों, चन्दनों के टुकड़ों से अलंकृत कर अधिवासन करने के बाद शुक्ल वस्त्र तथा पुष्पमाला धारण कर, श्वेत वर्ण के आभूषणों से विभूषित हो कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर प्रदक्षिणा करे तथा पुण्यकाल में इस मन्त्र का उच्चारण करे। 'हे वसुन्धरे ! तुम्हीं सभी देवताओं की भवनरूपा हो, सभी जीवों की धात्री हो, अतः मेरी रक्षा करो। यतः तुम सभी प्रकार के अति निर्मल पुष्टिकारक अन्नादि को धारण करनेवाली हो अतः वसुन्धरा तुम्हारा नाम है अतः मेरी संसार के भय से रक्षा करो। हे अचले ! यतः चतुर्मुख ब्रह्मा भी तुम्हारे अन्त को नहीं प्राप्त कर सकते अतः तुम अनन्ता हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है, इस संसार रूप कीचड़ से मेरी रक्षा करो। तुम्हीं ने विष्णु में लक्ष्मी, शिव में गौरी नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की है, ब्रह्मा के समीप तुम्हीं गायत्री हो, चन्द्रमा में तुम्हीं ज्योत्स्ना तथा रवि में तुम्हीं प्रभा हो, वृहस्पति में तुम्हीं बुद्धि नाम से प्रसिद्ध हो, मुनियों में तुम्हीं मेधा नाम से विख्यात हो। यतः तुम समस्त विश्व में व्याप्त हो अतः विश्वम्भरा नाम से तुम्हारी प्रसिद्धि है, तुम्हें ही धृति, स्थिति, क्षमा, क्षोणी, पृथ्वी, वसुमती तथा रसा नाम से लोग पुकारते हैं, हे देवि ! अपनी इन विमल विभूतियों से तुम इस संसार सागर से मेरी रक्षा करो।' इस प्रकार उच्चारण कर पृथ्वी की मूर्ति को ब्राह्मणों को निवेदित करे। धरा के आधे भाग को अथवा चौथाई भाग को गुरु को समर्पित करे। शेष को बराबर भागों में पुरोहितों को प्रणातिपूर्वक समर्पित करे। इस प्रकार उपर्युक्त विधि समेत पुण्यकाल में जो मनुष्य सुवर्णनिर्मित कल्याणी वसुन्धरा का दान करता है वह वैष्णव पद को प्राप्त करता है। तथा किंकिणी के जालों से युक्त सूर्य के समान तेजस्वी विमान द्वारा नारायण के पुर में प्राप्त होकर तीन कल्प पर्यन्त निवास करता है एवं संख्या में इक्कीस पितरों, पुत्रों तथा

पौत्रों का उद्धार करता है। इस प्रकार इस सुवर्णनिर्मित धरा दान की विधि को जो मनुष्य किसी प्रसंग से पढ़ता है, अथवा श्रवण करता है वह अपने सभी पाप के वितानों से मुक्त शरीर होकर अमराङ्गनाओं द्वारा प्रार्थित होकर सहस्रों देवताओं द्वारा सेवित शंकर के निर्मल लोक को प्राप्त करता है। ॥१--२१॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान प्रसंग में हेम पृथ्वीदान माहात्म्य नामक दो सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२८४॥

दो सौ पचासीवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त विश्वचक्र नामक महापातकनाशी अति श्रेष्ठ महादान की विधि बतला रहा हूँ। अति शुद्ध सुवर्ण का विश्वचक्र निर्मित करवाये, यह विश्वचक्र एक सहस्र पल सुवर्ण की तौल का उत्तम होता है, उससे अर्धभाग में मध्यम होता है, उससे भी आधे का कनिष्ठ बताया गया है। अशक्त पुरुष एक अन्य प्रकार के बीस पल तौल के विश्वचक्र को निवेदित करे। यह चक्र सोलह अरों वाला, घूमता हुआ तथा आठ नेमिवाला हो, नाभि के पद्म में योगारूढ़ चतुर्भुज विष्णु स्थित रहें। उनके पार्श्व में शंख एवं चक्र हो, आठों देवियाँ चारों ओर से घेरे हुए हों। दूसरे आवरण में उसी प्रकार जलशायी, अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, ब्रह्मा, कश्यप, मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, रामचन्द्र, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध, तथा कल्कि—इन सब को क्रम से स्थापित करे। तीसरे आवरण में मातृकाओं तथा वसुओं से युक्त गौरी हों, चतुर्थ में बारहों आदित्य तथा चारों वेद हों, पाचवें में पाचों महाभूत तथा ग्यारहों रुद्रगण हों, छठें आवरण में आठों लोकपाल तथा दिशाओं के दिग्गज हों, सप्तम में सभी प्रकार के मांगलिक अस्त्रों को तथा अष्टम में थोड़े-थोड़े अन्तर पर देवताओं को स्थापित करे। शेष भागों में तुला पुरुष दान की भाँति अन्य देवताओं को कल्पित करे। तथा पुरोहितवरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ सामग्री, भूषण, आच्छादनादि को भी उसी प्रकार रखे। तब उक्त विश्वचक्र को कृष्ण मृगचर्म पर रखे गये तिल के ऊपर स्थापित करे। तथा अठारह प्रकार के अन्न, रस, लवण आदि, आठ भरे हुए मांगलिक कलश, विविध प्रकार के वस्त्र, पुष्प, माला आदि, ईख, फल, रत्न, वितान—इन सब को भी यथास्थान रखे। तदनन्तर मांगलिक शब्दों के होते हुए यजमान श्वेत वस्त्र धारण कर हवन एवं अधिवासन के उपरान्त कुसुमाञ्जलि ग्रहण कर तीन प्रदक्षिणा कर इस मंत्र का उच्चारण करे। 'हे विश्वमय, विश्वचक्रात्मन्! तुम्हें हमारा नमस्कार है। तुम परम आनन्दस्वरूप हो, पाप रूप कीचड़ से हमारी रक्षा कीजिये, यतः इस तेजोमय विश्वचक्र को, जिसके गुणों की कोई सीमा नहीं है, योगीगण सदा देखते हैं, हृदय में तत्त्व रूप से धारण करते हैं, अतः उसे हमारा नमस्कार है, यह विश्वचक्र वासुदेव में अवस्थित है और इस चक्र के मध्यभाग में माधव स्थित हैं, अतः एक दूसरे के आधार पर यहाँ अवस्थित दोनों को हमारा नमस्कार है। यतः यह विश्वचक्र सभी बड़े पातकों का विनाश करने वाला कहा गया है, भगवान् का आयुध स्वरूप है तथा उनका निवास रूप भी है, अतः इस भव से वह मेरी रक्षा करे।'

इस प्रकार आमंत्रित कर जो मनुष्य मत्सर रहित हो इस विश्वचक्र का दान करता है वह सभी पापों से विमुक्त होकर विष्णुलोक में पूजित होता है तथा वैकुण्ठ लोक को प्राप्त कर चतुर्बाहुत्व एवं सनातनत्व की प्राप्ति करता है। वहाँ अप्सराओं के समूहों द्वारा सेवित होकर वह तीन सौ कल्प पर्यन्त निवास करता है। अथवा जो व्यक्ति इस विश्वचक्र का निर्माण कर प्रतिदिन प्रणाम करता है उसकी आयु बढ़ती है तथा नित्य लक्ष्मी की वृद्धि होती है। इस प्रकार उपर्युक्त विधि से जो व्यक्ति सुवर्णनिर्मित सोलह अरों से युक्त समस्त जगत् एवं देवताओं के अधिष्ठान रूप इस चक्र को वितरित करता है वह विष्णु भवन को प्राप्त होता है तथा उसको सिद्ध गण शिर झुकाकर नमस्कार करते हैं। वह पुरुष सुवर्णनिर्मित सुदर्शन के दान से निष्पाप होकर शत्रुओं को विकराल रूप में तथा कामिनिओं को मदन की भाँति सुन्दर कमनीय रूप में दिखाई पड़ता है तथा शुभदर्शन केशव की भाँति मनोरम स्वरूप धारण करता है। इस सोलह अरों वाले सुवर्ण निर्मित चक्र के दान करने से किये गये महापाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और कर्त्ता मुरारि की श्रेष्ठ आकृति प्राप्त करता है तथा भव भय का भेदन कर बारम्बार जन्म मरण के भय को भी दूर करता है। ॥१—२३॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में विश्वचक्र प्रदान विधि नामक दो सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२८५॥

दो सौ छियासीवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं महापापों को नष्ट करनेवाले अति उत्तम महाकल्पलता नामक महादान की विधि बतला रहा हूँ। पुण्य तिथि को प्राप्त कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययनादि मांगलिक पाठ करवा कर पूर्वकथित तुलापुरुष दान की विधि के समान पुरोहित वरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ सामग्री, आभूषण एवं आच्छादनादि का प्रबन्ध करे तथा उसी प्रकार बुद्धिमान् यजमान लोकपालों का आवाहन भी करे। सुवर्णनिर्मित बराबर परिमाण की दस कल्पलताएँ बनवाये, जो विविध प्रकार के फलों से युक्त तथा विविध प्रकार के रेशमी वस्त्रों से विभूषित हों। वे लताएँ विद्याधरों तथा गरुड के दम्पति से सुशोभित हों। उन कल्पलताओं को पुष्प चुनने के इच्छुक सिद्धों, फल चुनने के इच्छुक पक्षियों तथा लोकपालों के समान आकृतिवाली वन देवताओं से युक्त बनाना चाहिये। फिर लवण राशि के ऊपर ब्रह्मा एवं अनन्त (विष्णु) की शक्ति (पत्नी)को स्थापित करे। दो लताओं के निम्नभाग में उन दोनों मंगलदात्री देवियों को पद्म एवं शंख से सुशोभित हाथों वाली बनावे। पूर्व दिशा में गुड के ऊपर कुलिश का अस्त्र धारण किये हुए हाथी पर विराजमान इन्द्राणी को स्थापित करे। तत्पश्चात् अग्नि कोण में आग्नायी को हरिद्रा से सुशोभित अजा पर अवस्थित हाथ में स्रुवा लिये हुए स्थापित करे। दक्षिण दिशा में तण्डुल पर महिषारूढ़ गदा धारण किये हुए [illegible] नैर्ऋति की स्थापना करे। पश्चिम दिशा में दुग्ध स्थापित करे। नैर्ऋत कोण में घृत के ऊपर खड्ग

पर नाग पाश धारण किये हुए मत्स्य पर आरूढ़ वारुणी को, वायुकोण में शर्करा के ऊपर मृगारुढ़ पताकिनी की स्थापना करे। उत्तर दिशा में तिल पर निधि पर समारूढ़ शंखिनी की स्थापना करे। वृषभारुढ़ माहेश्वरी को नवनीत पर त्रिशूल धारण किये हुए स्थापित करे। अन्य मुकुट धारण करने वाली वरदायिनी देवियों को भी बालकों के साथ स्थापित करना चाहिये। इस महाकल्पलता दान में अपनी शक्ति के अनुकूल पाँच पल के ऊपर एक सहस्र पल तक की तौल में सुवर्ण रहना चाहिये। इन सभी के ऊपर पाँच रंगों में रंगे हुए वितान को तानना चाहिये, फिर धेनु, दस कलश तथा दो वस्त्र का दान देना चाहिये। इनमें से दो मध्यम लताओं को गुरु को तथा अन्य पुरोहितों को देना चाहिये। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक शब्दों के होते हुए स्नान कर श्वेत वस्त्र धारण कर तीन प्रदक्षिणा कर इस मंत्र का उच्चारण करे। 'हे पाप विनाशिनी मातृ गण! निखिल ब्रह्माण्ड एवं लोकेश्वरों की पालना करने वाली! याचकों को आशंसा से अधिक फल प्रदान करने वाली! तुम कल्पलता वधुओं को तथा दिशाओं की वधुओं को हमारा बारम्बार नमस्कार है।' इस प्रकार सभी दिगंगनाओं के दान को, जो भयभयहारी है, जो पुरुष करता है वह अभिमत फलदायी नागलोक में पितामह के तीस वर्ष तक निवास करता है। तथा सैकड़ों पितरों को भवसागर से तारता है, संसार के घोर पापों के विनष्ट हो जाने के कारण विशुद्ध शरीर हो सहस्रों देवांगनाओं से घिरा हुआ पद्मयोनि ब्रह्मा की सभा में अभिनन्दनीय होता है। इस प्रकार दिगंगनाओं के तथा कनक कल्पलता के दान की विधि को जो पढ़ता है, स्मरण करता है तथा देखता है, वह पुरन्दर प्रभृति देवपतियों द्वारा सेवित पद को प्राप्त करता है। ॥१-१७॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में कनक-कल्पलता प्रदान विधि नामक दो सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२८६॥

दो सौ सतासीवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त अति उत्तम सभी पापों के विनाशक सप्तसागर नामक महादान की विधि बता रहा हूँ। तुलापुरुष दान की भाँति पुण्य दिन को प्राप्तकर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययनादि मांगलिक पाठ करवा कर बुद्धिमान् पुरुष लोकपालों का आवाहन करे तथा मण्डप निर्माण, पुरोहित वरण, यज्ञ सामग्री, भूषण, आच्छादनादि का प्रबन्ध भी उसी भांति से करे। विचक्षण पुरुष सुवर्ण निर्मित सात कुण्डों का निर्माण करे। ये सातों कुण्ड एक प्रादेश (तर्जनी समेत फैले हुए अंगूठे की दूरी को प्रादेश कहते हैं।) मात्र तथा अरत्नि (बँधी हुई मुट्ठी समेत हाथ की लम्बाई को अरत्नि कहते हैं) मात्र के होने चाहिए और इनकी तौल सात पल से लेकर अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार एक सहस्र पल तक की हो। इन सभी कुण्डों को कृष्ण मृगचर्म पर रखे गये तिल के ऊपर स्थापित करे। विचक्षण पुरुष प्रथम कुण्ड को लवण द्वारा पूर्ण करे, द्वितीय कुण्ड को दुग्ध से, तृतीय को घृत से, चतुर्थ को गुड़ से, पञ्चम को

दही से, छठें को शक्कर से तथा सातवें को तीर्थों के जल से पूर्ण करे। लवण पर सुन्दर सुवर्ण निर्मित ब्रह्मा की स्थापना करे। दुग्ध कुण्ड के मध्य में भगवान् विष्णु को, घृत में महेश्वर को, गुड़ में भास्कर को, दही में चन्द्रमा को, शक्कर में लक्ष्मी को तथा जल में पार्वती को स्थापित करे। सभी कुण्डों को सभी ओर से सभी रत्नों तथा अन्नों द्वारा अलंकृत करे। तुलापुरुष दान की भाँति अन्य विधानों को सम्पन्न करे। तदनन्तर वरुण के मंत्र द्वारा कराये गये हवन के उपरान्त वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा विधिपूर्वक स्नान कराया हुआ यजमान तीन प्रदक्षिणा कर इस मंत्र का उच्चारण करे। 'हे सनातन सागरगण! आप सब सभी जीवों के प्राणदायक सभी नदियों के आधारस्वरूप हैं, आप को हमारा बारम्बार नमस्कार है। आप लोग अपने दुग्ध, जल, घृत, दही, मधु, लवण, इक्षुसार (शक्कर) प्रभृति अमृत द्वारा तथा रत्नादि सम्पत्तियों द्वारा तीनों लोकों के जीव समूहों को आनन्द देने वाले हैं अतः हमारे पाप पुञ्जों का भी विनाश करें। आप ही लोग संसार के तीर्थों, देवताओं तथा असुरगणों को पवित्रता एवं सुन्दर मणियों के प्रदान करनेवाले हैं तथा लोक के पापक्षय, अमृत विलेपन एवं भूषण के लिए उन्हें धारण करते हैं अतः मेरे गृह में भी आपकी उस लक्ष्मी का निवास हो।' इस प्रकार उपर्युक्त विधियों से जो मनुष्य पवित्र तथा अविस्मित होकर रस एवं अमृतों से संयुक्त निर्मल सुवर्ण के बने हुए कुण्डों का दान करता है वह देवताओं द्वारा पूजित होकर भगवान् विष्णु का पद प्राप्त करता है एवं सभी पापों के धुल जाने से सुन्दर निर्मल शरीर हो नरकलोक में व्याकुल होते हुए पिता, पितामह, पुत्र एवं कलत्रादि को शीघ्र ही शिवलोक को पहुँचा देता है। ॥१-१५॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में सप्त सागर दान विधि नामक दो सौ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२८७॥

दो सौ अठासीवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं अत्युत्तम मनुष्यों को गोलोक का फल देने वाले रत्नधेनु नामक महादान की विधि बतला रहा हूँ। इस दान में भी तुलापुरुष दान की भाँति पुण्य दिन प्राप्त कर लोकपालों का आवाहन कर धेनु की कल्पना करे। पृथ्वी पर द्रोण परिमित लवण समेत कृष्ण मृगचर्म बिछाकर विधिपूर्वक संकल्प के साथ रत्नमयी धेनु का निर्माण करे। बुद्धिमान् पुरुष इक्यासी पद्मराग मणियों को मुख में स्थापित करे, उसी प्रकार नासिका में एक सौ पुष्पराग, ललाट में सुवर्ण का तिलक, दोनों आँखों में सौ मुक्ताएँ, दोनों भौंहों में सौ विद्रुम, दोनों कानों में दो सुतुही लगावे। सींगे सुवर्ण की बनी हों, शिर सौ हीरों का बना हो, कण्ठ और आँखों की पलकों में सौ गोमेदक, पृष्ठभाग में सौ इन्द्रनील, दोनों पार्श्वस्थानों में सौ वैदूर्य, उसी प्रकार सौ वैदूर्य मणियों द्वारा उदर तथा सौ सौगन्धिक द्वारा कटि देश का निर्माण करे। खुरों को सुवर्णमय तथा पूंछ को मुक्ता की लड़ियों से, दोनों नथुनों को सूर्यकान्त तथा चन्द्रकान्त मणियों से बनाकर कर्पूर और चन्दन से अर्चित

करे। रोमों के स्थान पर केसर तथा नाभि को चाँदी का बनवाये। गुदाभाग में सौ गारुत्म (लाल) मणियों को लगावे, अन्य रत्नों को संधिभाग पर लगावे। जीभ को शक्कर से तथा गोबर को गुड़ से बनवाये। घृत का गोमूत्र तथा दही और दूध के स्थान पर दही और दूध ही रखे। पूछ के अग्रभाग पर चमर दे तथा गौ के समीप में ही तामे की बनी हुई दोहनी रख दे। अपनी आर्थिक शक्ति के अनुसार सुवर्णनिर्मित आभूषण पहिनावे तथा गौ के चतुर्थ अंश से उसी प्रकार उसका बछड़ा बनावे। इस प्रकार गौ एवं बछड़े की रचना के बाद सभी प्रकार के अन्न, ईख के दण्ड, विविध प्रकार के फल, पाँच प्रकार के विभिन्न रंगों वाला वितान—इन सब को भी यथास्थान सजावे। तदनन्तर हवन एवं अधिवास करे और तब पुरोहितों को दक्षिणा देने के उपरान्त धेनु का आमंत्रण करे और पूर्वोक्त गुड़धेनु दान की भाँति आवाहन कर यह कहे—'हे देवि! यतः रुद्र, सूर्य, ब्रह्मा, एवं विष्णु ये सभी देवगण तुम में सभी देवताओं का अवस्थान मानते हैं, समस्त त्रिभुवन तुम्हारे शरीर में व्याप्त है, अतः भवसागर से पीड़ित होने वाले मुझको तुम बचाओ।' इस प्रकार आमन्त्रण कर भक्तिपूर्वक उस गौ को हाथ में जल लेकर ब्राह्मण गुरु को दान करे। जो व्यक्ति इस प्रकार उपवास कर पुण्यप्रद दिन को प्राप्त कर इस दान को करता है वह पापों से रहित शरीर वाला होकर मुरारि के परम पुनीत पद को प्राप्त करता है। इस प्रकार सभी विधियों का जाननेवाला जो पुरुष इस रत्नधेनु नामक दान का वितरण करता है वह अति तेजोमय विमान प्राप्त कर सभी पापों से विमुक्त हो, बन्धुओं, पुत्रों तथा पौत्रों समेत कामदेव के समान सुन्दर स्वरूप धारण कर शिव का स्थान प्राप्त करता है। ॥१-१७॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन प्रसंग में रत्नधेनु दान नामक दो सौ अठासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२८८॥

दो सौ नवासीवाँ अध्याय

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब इसके उपरान्त मैं अति उत्तम, महा पापों को नष्ट करनेवाले महाभूत घट नामक दान की विधि बता रहा हूँ। इस दान में भी तुलापुरुष दान की भाँति पुण्यप्रद दिन को प्राप्त कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्त्ययनादि मांगलिक पाठ करा कर पुरोहित वरण, मण्डप निर्माण, यज्ञ सामग्री, आभूषण एवं आच्छादनादि का प्रबन्ध करना चाहिये तथा लोकपालादि का आवाहन भी उसी तरह करना चाहिये। बुद्धिमान पुरुष इस दान में बहुमूल्य रत्नों द्वारा जड़ित सुवर्ण का कलश निर्मित करवाये। उसका प्रमाण एक प्रादेश से सौ अंगुल तक का होना चाहिये। उसे दुग्ध एवं घृत से पूर्ण कर कल्पवृक्ष से युक्त करे। वहीं पर पद्मासन पर अवस्थित ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, लोकपालगण, देवराज इन्द्रादि देवगणों को भी अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ बनावे। उसी प्रकार वाराह द्वारा उबारी गई कमल समेत पृथ्वी की भी रचना करनी चाहिए। मकर के ऊपर आसन लगाये हुए सुवर्णनिर्मित वरुण, मेष पर आरूढ अग्नि, कृष्णमृग पर आरूढ वायु तथा कोशाधिप रूप में मूषक पर अवस्थित

विनायक—इन सब को पाँचों वेदों समेत उक्त घट में स्थापित करे। वेदों में ऋग्वेद का प्रतीक अक्षसूत्र, यजुर्वेद का कमल, सामवेद की वीणा है। वेणु को दक्षिण ओर स्थापित करना चाहिये। अथर्ववेद का प्रतीक, स्रुक, स्रुवा तथा कमल है—इन्हें हाथों में रखे। वरदायक पंचम वेद पुराण का प्रतीक अक्षसूत्र एवं कमण्डलु है। उस कलश के चारों ओर सभी प्रकार के अन्न, चमर, आसन, दर्पण, पादुका, जूता, छत्र, दीपक, एवं आभूषणादि को अलंकृत करे तथा सुन्दर शैय्या, जलपूर्ण कलश तथा पाँच प्रकार के रंगों वाला वितान ताने। स्नान करने के उपरान्त यजमान अधिवासन हो चुकने के बाद इस मन्त्र का उच्चारण करे। 'हे सभी महाभूतों के अधिदेवगण ! इस चराचर जगत् में आप लोग सभी देवताओं के आधार स्वरूप हैं, आप लोगों को हमारा नमस्कार है, हमें शान्ति एवं कल्याण दीजिये। यतः इस निखिल ब्रह्माण्ड के सभी जीवों में इन महाभूतों के अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ नहीं है, अतः इनकी कृपा से मेरी लक्ष्मी अक्षय हो।' इस प्रकार उच्चारण कर जो व्यक्ति महाभूत घट का दान करता है वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर परम गति को प्राप्त करता है। तथा पितरों एवं बन्धु वर्गों के साथ सूर्य के समान तेजस्वी विमान पर आरुढ़ होकर सुन्दरी स्त्रियों द्वारा प्रार्थित होकर वैष्णव लोक को प्राप्त करता है। जो मानव इस जगत् में इन उपर्युक्त सोलहों दानों का अनुष्ठान करता है, उसको इस लोक में पुनर्वार नहीं आना पड़ता। इन दानों की विधियों को वासुदेव के समीप जो पढ़ता है तथा भली भांति पुत्र, पिता एवं स्त्री के साथ श्रवण करता है, वह सूर्य के समान तेजस्वी होकर निश्चय ही देवाङ्गनाओं के साथ मुरारि (विष्णु) के लोक में कल्प पर्यन्त आनन्द का अनुभव करता है। ॥१-१७॥

श्री मात्स्य महापुराण में महादान वर्णन नामक दो सौ नवासीवाँ अध्याय समाप्त ॥२८९॥

— — —

दो सौ नब्बेवाँ अध्याय

मनु ने कहा—हे अच्युत ! मन्वन्तर एवं युगों का वर्णन करते समय आपने कल्प का प्रमाण तो बताया था, अब कल्पों के नामों को संक्षेप में मुझे बताइये। ॥१॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—अब मैं तुम्हारे अनुरोध पर कल्पों का वर्णन कर रहा हूँ, जो महान् पातकों को नष्ट करनेवाला है तथा जिसके अनुकीर्तन से वेद के अध्ययन का पुण्य प्राप्त होता है। सभी कल्पों में प्रथम श्वेत कल्प है, दूसरा नीललोहित कल्प है, तीसरा कल्प वामदेव तथा चौथा रथन्तर नामक है। पाँचवें कल्प का नाम रौरव कहा गया है, इसी प्रकार षष्ठ देव, सप्तम वृहत्कल्प, अष्टम कन्दर्प कल्प, नवम सद्यःकल्प, दशम ईशान कल्प, ग्यारहवाँ तमःकल्प, बारहवाँ सारस्वत कल्प, तेरहवाँ उदान, चौदहवाँ गारुड तथा पन्द्रहवाँ कौर्म नामक कल्प है, जो पूर्णिमा को उत्पन्न हुआ था। सोलहवाँ नारसिंह, सत्रहवाँ समान कल्प, अठारहवाँ आग्नेय, उन्नीसवाँ सोमकल्प, बीसवाँ मानवकल्प, इक्कीसवाँ तत्पुमान-कल्प, बाईसवाँ वैकुण्ठ, तेईसवाँ लक्ष्मी कल्प, चौबीसवाँ सावित्रीकल्प, पच्चीसवाँ घोर, छब्बीसवाँ वाराह,

सत्ताईसवाँ वैराज, अट्ठाईसवाँ गौरी कल्प, उन्तीसवाँ माहेश्वर है, जिसमें त्रिपुर की हत्या हुई थी। तीसवाँ पितृकल्प है, जो प्राचीन काल में ब्रह्मा की अमावस्या थी। इस प्रकार ये सभी तीसों कल्प ब्रह्मा के महीने हैं, जो सभी पातकों के नष्ट करनेवाले हैं। प्रारम्भ में ही जिस कल्प में जिसका माहात्म्य वर्णित किया गया है, उसी के नाम पर उस कल्प का नाम रखा गया है। ये सभी कल्प संकीर्ण, तामस्, राजस्, सात्त्विक तथा रजस्तमोमय—इन भेदों से युक्त तीस कहे गये हैं। संकीर्ण (संयुक्त)कल्पों में सरस्वती तथा पितरों का, तामस् में अग्नि का तथा शिव का, राजस् (दिवाकर) में ब्रह्मा का अधिक माहात्म्य कहा गया है। प्राचीन काल में ब्रह्मा ने जिस कल्प में जिस पुराण को कहा है उसी कल्प का माहात्म्य उस पुराण में वर्णित है। उसी प्रकार सात्त्विक कल्पों में विष्णु भगवान् का माहात्म्य उत्तम रूप से वर्णित है, योग से सिद्धि प्राप्त करनेवाले लोग उनके पाठ से परम गति को प्राप्त होते हैं। जो व्यक्ति इन ब्रह्म तथा पद्म नामक पुराणों का पाठ करता है, भगवान् ब्रह्मा धर्म में उसकी वृद्धि कर देते हैं तथा विपुल सम्पत्ति प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति पर्व तिथियों पर सुवर्णनिर्मित कल्पों का दान करता है, वह ब्रह्मा तथा विष्णु के पुर में निवास करते हुए स्वर्ग में मुनियों द्वारा पूजित होता है। क्योंकि ये कल्पों के दान सभी पापों के नष्ट करनेवाले हैं। विचक्षण पुरुष मुनि के समान स्वरूप बनाकर इन कल्पों का दान करे। हे राजन्! पुराण की यह संहिता मैं तुम्हें बता चुका, यह सभी पापों को दूर करनेवाली तथा नित्य आरोग्य एवं श्री प्रदान करनेवाली है। ब्रह्मा के सौ वर्ष का शिव का एक दिन होता है, तथा शिव के सौ वर्ष का विष्णु का एक निमेष (एक दृष्टि विक्षेप करने का समय) होता है—ऐसा लोग जानते हैं। जब वे विष्णु जागते हैं तभी यह जगत् भी चेष्टावान् होता है, और जब वे शान्तात्मा होकर शयन करते हैं तब सभी जगत् शान्त हो जाता है। ॥ २–२२ ॥

सूत ने कहा—मनु से ऐसी बातें करने के बाद मत्स्य रूपधारी भगवान् जनार्दन सभी जीवों के देखदे-देखते वहीं पर अन्तर्हित होगये। और विवस्वान् के पुत्र मार्तण्ड कुलवर्द्धन भगवान् मनु ने विविध प्रजाओं की सृष्टि कर अपनी अवधि तक पालन किया, जो मन्वन्तर अभी तक चल रहा है। इस मत्स्य भगवान् द्वारा कहे गये पुण्यप्रद पवित्र पुराण को तुम लोगों को सुना चुका, यह मत्स्य पुराण सभी शास्त्रों में शिरोभूषण रूप से व्यवस्थित है। ॥ २३–२५ ॥

श्री मात्स्य महापुराण में कल्पानुकीर्तन नामक दो सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥२९०॥

दो सौ एकानबेवाँ अध्याय

सूत ने कहा—विश्वस्वरूप मत्स्य भगवान् के कहे हुए सम्पूर्ण मत्स्य पुराण को, जो धर्म, काम एवं अर्थ की सिद्धि देनेवाला है, तुम लोगों को बता चुका। जिसके प्रारम्भ में मनु का संवाद, ब्रह्माण्ड का कीर्तन, तथा चतुर्मुख ब्रह्मा के मुख से कहे गये शारीरिक सांख्य का वर्णन है। तदनन्तर देवताओं एवं

असुरों की उत्पत्ति, मरुत की उत्पत्ति, मदन द्वादशी वृत्तान्त, लोकपालों की पूजा, मन्वन्तरों का उद्देश्य, वैनराज का वर्णन, सूर्य और वैवस्वत की उत्पत्ति, बुध का संगम, पितरों का वंश वर्णन, श्राद्धकाल का निर्णय, पितृ तीर्थों में प्रवास, सोम की उत्पत्ति, सोमवंश का कीर्तन, ययाति का चरित, कार्यवीर्य का माहात्म्य, वृष्णिवंश का कीर्तन, भृगुशाप, विष्णु का दैत्यादि के प्रति शाप, पुरुवंश का कीर्तन, हुताशन का वंश वर्णन, पुराणों का कीर्तन, क्रियायोग का कीर्तन, नक्षत्रसंज्ञक व्रत, मार्तण्ड शयन, कृष्णाष्टमी व्रत, रोहिणी चन्द्र व्रत, तड़ाग विधि माहात्म्य, पादपोत्सर्ग विधि, सौभाग्य शयन व्रत, अगस्त्य व्रत, अनन्त तृतीया व्रत, रसकल्याणिनी व्रत, आर्द्रानन्दकरी व्रत, सारस्वत व्रत, उपरागाभिषेक व्रत, सप्तमीस्नपन व्रत, भीम द्वादशी व्रत, अनङ्गशयन व्रत, अशून्यशयन व्रत, आङ्गारक व्रत, सात सप्तमियों का व्रत, विशोकद्वादशी व्रत, दस प्रकार के मेरुओं के दान की विधि, ग्रह शान्ति, ग्रहों के स्वरूप का कथन, शिव चतुर्दशी, सभी प्रकार के फलों के त्याग का व्रत, सूर्यवार व्रत, संक्रान्ति स्नपन, विभूति द्वादशी व्रत, साठ व्रतों का माहात्म्य, स्नान विधि का क्रम, प्रयाग का माहात्म्य, समस्त भुवनों का कीर्तन, ऐलाश्रम वर्णन, द्वीपों एवं लोकों की चर्चा, सूर्य और चन्द्रमा की गति, आदित्य के रथ का वर्णन, अन्तरिक्ष में उसका गमन, ध्रुव का माहात्म्य, सुरेन्द्रों का भवन, त्रिपुर के प्रति घोषणा, पितरों के पिण्डदान का माहात्म्य, मन्वन्तरों का निर्णय, वज्राङ्ग की उत्पत्ति, तारकासुर की उत्पत्ति, तारकासुर का महत्त्व वर्णन, ब्रह्मा के साथ देवों की मन्त्रणा, पार्वती की उत्पत्ति, शिव का तपोवन गमन, कामदेव के शरीर का दाह, रतिशोक, गौरी का तपोवन गमन, विश्वनाथ की प्रसन्नता, पार्वती और सप्तऋषियों का संवाद, पार्वती के विवाह अवसर पर मंगलादि का वर्णन, कुमार की उत्पत्ति, कुमार की विजय, तारक का घोर संहार, नरसिंह का वर्णन, पद्मोद्भव का विसर्ग, अन्धकासुर का संहार, वाराणसी का माहात्म्य, नर्मदा का माहात्म्य, प्रवरों की अनुक्रमणिका, पितरों की गाथा, उभयमुखी दान, कृष्ण मृगचर्म का दान, सावित्री की कथा, राजधर्म, यात्रा के निमित्त कथन, स्वप्न एवं मांगलिक शुभ शकुनों एवं अपशकुनों का निरूपण, वामन का माहात्म्य, वराह का माहात्म्य, क्षीरसागर का मन्थन, कालकूट की उत्पत्ति, देवासुर संग्राम, वास्तुविद्या का वर्णन, प्रतिमा के लक्षण, देवाराधन की सरणि, प्रासादों के लक्षण, मण्डपों के लक्षण, भविष्यत्कालीन राजाओं की चर्चा, महादानों के देने की विधि तथा माहात्म्य, कल्पों का वर्णन—यही संक्षेप में इस महान् ग्रन्थ की क्रमिक सूची है। मत्स्यपुराण की यह सब कथाएँ परम पुनीत, दीर्घायु प्रदान करनेवाली, यश की वृद्धि करनेवाली, कल्याण दायिनी, तथा घोर से घोर पापों को नष्ट करनेवाली तथा शुभ हैं। मनुष्यों को इस पुराण से सभी तीर्थसमूहों में स्नान करने से, सभी धर्मों के विधिवत् आचरण करने से जो महान् पुण्य फल प्राप्त होते हैं, वे सभी प्राप्त होते हैं। इस परम पवित्र, सभी दोषों को नष्ट करनेवाले तथा परम श्रेष्ठ मत्स्यपुराण को समुद्र में स्थित मनु के लिए मत्स्य स्वरूपधारी भगवान् श्रीहरि ने स्वयं कहा था। इस पवित्र मत्स्यपुराण के एक चरण मात्र को जो पढ़ता है वह भी पापरहित हो निश्चय ही इसके पुण्य के प्रभाव से कामदेव के समान सुन्दर शरीर धारण कर नारायण के पद को प्राप्त करता है तथा सुखी होता है। इस गोपनीय पुण्यप्रद समस्त मत्स्य पुराण को जो मनुष्य सुनता है, वह

शिवजी की प्रसन्नता से अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति के बाद किये गये अवभृथ स्नान के समान प्रभावशाली फल की प्राप्ति करता है। हे द्विजगण! इस मत्स्य पुराण के एक श्लोक को अथवा आधे श्लोक को भी जो पुरुष श्रद्धा से सुनता है अथवा दूसरे को सुनाता है उसका फल सुनिये। वह पुण्यशाली शिव, विष्णु, ब्रह्मा एवं सूर्य की विधिवत् पूजा करने का जो फल प्राप्त होता है, वह सब प्राप्त करता है। इस समस्त मत्स्य पुराण को सुनकर ब्राह्मण विद्या प्राप्त करता है, क्षत्रिय को पृथ्वी की प्राप्ति होती है, वैश्य धन प्राप्त करता है, शूद्र को सुख की प्राप्ति होती है तथा दीर्घ आयुवाले, पुत्रवाले, लक्ष्मीवान्, एवं पापरहित होकर शत्रुओं द्वारा पराजित भी नहीं होते। ॥१--३६॥

श्री मात्स्य महापुराण में अनुक्रमणिका नामक दो सौ नब्बेवाँ अध्याय समाप्त ॥२९०॥

[अब इसके बाद पुराणों के सुनने के समय कैसा आचरण करना चाहिये, इसकी विधि बतला रहे हैं।]

श्रद्धा और भक्ति से युक्त अन्य किसी भी कार्य में अभिलाषा न रख, वाणी को वश में रख, पवित्र शरीर और हृदय से निश्चिन्त मन हो पुण्यभागी श्रोताओं को पुराणों की कथा श्रवण करनी चाहिए। जो अधम मनुष्य विना भक्ति के पुण्य कथा को सुनते हैं, उन्हें पुण्यफल तो कुछ होने का नहीं, जन्म-जन्म दुःख के भागी होते हैं। जो मनुष्य ताम्बूल आदि पूजा की सामग्रियों द्वारा पुराण की पूजा कर कथा श्रवण करते हैं वे निश्चय ही दरिद्रता से सदा हीन रहते हैं। जो मनुष्य कथा के कहते समय उठकर कार्यान्तर से अन्यत्र चले जाते हैं उनकी स्त्री तथा सम्पति दूसरे की भोग्य हो जाती हैं। जो अधम मनुष्य पवित्र कथा को पगड़ी बांधकर सुनते हैं वे पापी बगुले होते हैं। जो नीच मनुष्य पान खाते हुए पवित्र कथा को सुनते हैं उन्हें यम के दूत गण कुत्ते का मल खिलाते हुए अपने लोक को ले जाते हैं। जो दम्भी मनुष्य उच्च आसनादि पर बैठकर कथा श्रवण करते हैं वे अक्षय नरक का भोग करने के बाद भी कौआ होते हैं। इसी प्रकार जो व्यास की अपेक्षा श्रेष्ठ आसन पर अथवा मध्यम आसन पर बैठकर कथा सुनते हैं वे अर्जुन नामक वृक्ष होते हैं। जो व्यक्ति विना प्रणाम किये कथा सुनते हैं वे विष खानेवाले होते हैं तथा सोते हुए कथा सुननेवाले मनुष्य अजगर योनि में जन्म लेते हैं। जो मनुष्य कथा कहनेवाले व्यास के समान आसन पर बैठकर कथा सुनते हैं वे गुरु की शैय्या पर गमन करने के समान घोर अपराध के भागी बनकर नरक को जाते हैं। जो मनुष्य पुराणों के जानने वालों तथा पवित्र कथाओं की निन्दा करते हैं वे सौ जन्मों में सूकर योनि में जन्म धारण करते हैं। कथा के कहते समय जो मनुष्य वक्ता को बुरे उत्तर देते हैं वे गदर्भ तथा गिरगिट योनि में जन्म लेते हैं। जो मनुष्य अपने जीवन में कभी भी पुण्य कथा का श्रवण नहीं करते वे घोर नरक का भोग करने के बाद वनसूकर होते हैं। जो उत्तम मनुष्य कथा के समय विना सुने भी अनुमोदित करते हैं वे परम शाश्वत पद को प्राप्त करते हैं। जो शठ मनुष्य कथा के समय विघ्न पहुँचाते हैं, वे कोटि वर्षों तक नरक का भोग कर फिर ग्रामसूकर होते हैं। जो मनुष्य दूसरे लोगों को पौराणिक कथाएँ सुनाते हैं वे सैकड़ों

कोटि कल्पों तक ब्रह्म लोक में निवास करते हैं। जो मनुष्य पुराणों के जानने वाले पुरुषों को आसन के लिए कम्बल, मृगचर्म या वस्त्रादि अथवा मंच तथा अन्य चर्मादि देते हैं, वे स्वर्गलोक प्राप्त कर यथेप्सित भोगों का उपभोग कर ब्रह्मादि देवों के वीच अवस्थित रह निरामय पद की प्राप्ति करते हैं। जो मनुष्य पुराण के लिये सुन्दर आसन प्रदान करते हैं वे प्रत्येक जन्मों में उत्तम भोगों को भोग कर ज्ञानवान् भी होते हैं। जो व्यक्ति महाघोर पातकी तथा मध्यम पाप कर्म करनेवाले हैं वे पुराणों के सुनते ही परम पद को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार की विधि से जो लोग पुराण का श्रवण करते हैं वे यथेप्सित भोग करके विष्णुलोक को प्राप्त करते हैं। कथा की समाप्ति के बाद वस्त्र एवं अलंकार आदि से पुस्तक की पूजा करनी चाहिये तथा प्रयत्न पूर्वक अन्यान्य ब्राह्मणों के साथ वाचक की पूजा करनी चाहिए। इसी प्रकार वाचक को गौ, भूमि एवं वस्त्रादि देना चाहिये। तत्पश्चात् मण्ड, लड्डू तथा खीर आदि से ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिये। 'हे वाचक! आप हमारे लिए व्यास, वसिष्ठ, भार्गव, अत्रि, अङ्गिरा प्रभृति मुनियों की भाँति पूजनीय हैं, पुण्यवान् हैं, शीलवान् हैं, सत्यवादी हैं, जितेन्द्रिय हैं।' इस प्रकार निवेदन कर पवित्र भावना एवं प्रसन्न मन से श्रद्धा एवं भक्ति समेत व्यास की पूजा करे तथा यह कहे कि 'हे महानुभाव! आपकी कृपा से मैंने इन सब धार्मिक चर्चाओं को सुना है।' इस प्रकार प्रार्थना कर जो भगवान् के मुख कमल से विनिःसृत इस पुण्यकथा का श्रवण करते हैं एवं आदरपूर्वक उपर्युक्त व्यवहार करते हैं वे नित्य यशस्वी होते हैं। नारद द्वारा कहे गये इन पुराणों के सुनने के नियमों का जो मनुष्य इन्द्रियों को वश में रखकर पालन करते हैं वे पुराण श्रवण के अविकल फल को प्राप्त करते हैं। ॥१--२७॥

सूत ने कहा—मुनिगण! उस समय इस प्रकार पुराणों को सुनते समय पालन किए जानेवाले धर्मों के इस अवशिष्ट भाग को मत्स्य रूपधारी जनार्दन भगवान् परम बुद्धिमान् मनुजी को सुनाने के बाद अन्तर्हित हो गये ॥२७॥

श्री द्वैपायन मुनि रचित मत्स्य महापुराण समाप्त।

श्रीरस्तु